

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका



सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल
श्रीनाथसिंह



सितम्बर १९३६

वार्षिक मूल्य ६॥)

एक प्रति का ॥=).

Annas 10

इस अङ्क के कुछ लेख और लेखक ये हैं —

वे स्वास्थ्य के लिये आप पर निर्भर करते हैं

दी ...

... लिए मह

वे आप पर उससे ज़्यादा निर्भर करते हैं, जितना कि वे सोचते हैं। हो सकता है कि वे तेज़ी से बढ़ रहे हों, पर आप ही उनकी अभिवृद्धि के लिए दायी हैं। इसकी नींव वे अच्छे अभ्यास हैं, जो आप अपने बच्चों को लगा देते हैं। इसका मतलब यह है कि आप संसार का सामना करने के लिये उन्हें सब कुछ दे देते हैं। बुद्धिमान् स्त्रियाँ अपने बच्चों में खाद्य-पेय और व्यायाम के सम्बन्ध में ठीक विचार भर देती हैं। नित्य भारतीय चाय नियमित रूप से पीने के लिये उत्साहित करने से बढ़कर आप कुछ कर ही नहीं सकते। इस शुद्ध और स्फूर्तिदायक पेय का अभ्यास उनके शरीर और मन का यत्न कर भविष्य में रक्षक का काम करता है।



❀ **चाय तैयार करने का तरीक़ा**—ताज़ा पानी खौलाइये। साफ़ बर्तन ज़रा गर्म कर लीजिये। उसमें प्रत्येक के लिये एक तथा एक चम्मच अधिक बढ़िया भारतीय चाय रखिये। पानी खौल जाते ही चाय पर ढाल दीजिये। पाँच मिनटों तक चाय को सीझने दीजिये; इसके बाद प्यालों में ढाल कर दूध और चीनी मिलाइये।

एकमात्र पारिवारिक पेय—भारतीय चाय

[illegible] 1936

प्रकाशित हो गया ! प्रकाशित हो गया !!

परिशिष्टाङ्क

महाभारत के जिस अन्तिम खण्ड यानी दसवें खण्ड के लिए ग्राहक लोग पत्र पर पत्र लिखा करते थे वह प्रकाशित हो गया। इसमें कोई साढ़े छः हज़ार नामों और मुख्य-मुख्य विषयों का, अक्षरानुक्रम से, संग्रह है। इनका परिचय महाभारत तथा अन्यान्य पुस्तकों के आधार पर दिया गया है। साथ में पृष्ठ-संख्या भी दे दी गई है। इसकी सहायता से पाठक बात की बात में यह जान सकेंगे कि किस घटना अथवा कथा का वर्णन महाभारत में कहाँ-कहाँ पर है। इस पुस्तक की सहायता के बिना किसी कथा का सम्पूर्ण ज्ञान कठिनाई से होता है; क्योंकि ग्रन्थ में कथा का कोई भाग कहीं है और कोई कहीं। फलतः साधारण पाठक को उसके खोज निकालने में बड़ी असुविधा होती है। देशों, नगरों, पर्वतों, नदियों, जातियों, वृक्षों, पशु-पक्षियों, बाजों, आभूषणों और अस्त्र-शस्त्रों आदि के नाम भी उसी पद्धति पर दिये गये हैं।

पुस्तक छोटे अक्षरों में, महाभारत के आकार में, १७१ पृष्ठों में समाप्त हुई है। 'महाभारत के प्रमुख पात्र' नाम की पुस्तक भी जो कि पाठकों को बिना मूल्य दी जावेगी इसमें संयुक्त कर दी गई है। इसमें महाभारत के पात्रों के चरित का विशद वर्णन और समीक्षा है। इसके पढ़नेवाले के लिए महाभारत की घटनायें सरलता से प्रत्यक्ष हो जाती हैं। किस पात्र में कौन-सी विशेषता थी, किसमें कौन-सी कमी थी, किसकी किस भूल का क्या परिणाम हुआ और किस पात्र की अपेक्षा किस पात्र में कौन-सा गुण अधिक है—यह सब इसके पढ़ने से अवगत हो जाता है। हिन्दी में यह पुस्तक, अपने ढंग की, निराली है। इसके अन्त में महाभारतकालीन भारत का नक़शा भी दे दिया गया है। यह परिशिष्टांक दसवाँ खण्ड है और 'महाभारत के प्रमुख पात्र' नामक ग्यारहवाँ खण्ड है। ४१ अंक तक नवाँ खण्ड समाप्त हुआ है। १० वें खण्ड का मूल्य २) है। ५० रुपया देकर जिन पाठकों ने इसे ख़रीद लिया है उनके पास ये दोनों खण्ड मुफ़्त भेजे जावेंगे और ४१) रुपये देकर जिन जिन पाठकों ने ४१ अंक तक ख़रीदे हैं उन लोगों को १० वें खण्ड का मूल्य देना पड़ेगा और इस १० वें खण्ड के साथ साथ ११ वाँ खण्ड भी जैसा कि हमने प्रकाशित किया है मयमानचित्र के मुफ़्त दिया जायगा। इसलिए महाभारत के सभी ग्राहकों से हमारा यह निवेदन है कि अपना अपना ग्राहक-नम्बर लिखकर शीघ्र हमको सूचित करें। पत्र आने से ही ये दोनों खण्ड भेज दिये जायँगे।

मैनेजर महाभारत-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य की तैयार की हुई कुछ विचित्र ओषधियाँ

किरन जवानी—इसमें हैवानी गदूद या उनके रक्त नहीं हैं फिर भी समस्त श्रेष्ठ अवयवों पर इसका प्रभाव होता है। जवानी की किरनें शरीर में दौड़ने लगती हैं। नपुंसकता तथा तत्सम्बन्धी रोग और साथ ही नज़ला, ज़ुकाम, पट्ठों की सुस्ती इत्यादि दूर होती हैं। रंग निखरता है और झुर्रियाँ भी दूर हो जाती हैं। मूल्य १०० गोली ४), २४ गोली १) है।

चित्तमोहनी—(रजिस्टर्ड) इस उबटन को स्नान के समय मलने से चेहरे के कील, झाइयाँ इत्यादि दूर हो जाती हैं। चेहरे की कांति प्रतिदिन निखरती जाती है। मूल्य १), नमूना ।)

दिलसुन्दरी—(रजिस्टर्ड) इस तैल को स्नान के बाद मलते हैं। जो चेहरे को चमकाता है और दाग़ व कील आदि को दूर करता है। स्नान के पहले चित्त-मोहनी और स्नान के बाद दिलसुन्दरी लगावें तो क्या कहना है! मूल्य १), नमूना ।)

बाग़फूल तैल—(रजिस्टर्ड) बालों के समस्त तैलों का राजा है। बालों को काला करता है। केवल सुगन्धित ही नहीं, मस्तिष्क के लिए भी गुणकारी है। मूल्य ।।।)

बाल उड़ाने की अद्वितीय ओषधि—इस दवा को पानी में घोल कर लगाने से एक मिनट के अन्दर कोमल स्थान के बाल साफ़ हो जाते हैं। जिसने मँगवाया उसी ने गुण गाया। मूल्य ।=), नमूना =)॥

प्राणसुख—(रजिस्टर्ड) छाती को ढलकने से बचाता है और ढलकी हुई को असली दशा में लाता है। स्त्रियों के लिए बहुत ही काम की दवा है। मूल्य ४), नमूना ।)

बालसुख—नन्हों और बच्चों के सर्व रोगों के लिए रामबाण है। ज्वर, अतिसार, वमन, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण आदि दूर होते हैं। मूल्य १), नमूना ।)

मीठा फल—(रजिस्टर्ड) यह एक विचित्र, संसार को अचम्भे में डालनेवाली ओषधि है। जब गर्भ हो जावे तो दो मास के पश्चात् तीसरे मास जब कि अंग बनते हैं खिलाया जाता है। जिससे कि पुत्र ही उत्पन्न होता है, जिसके पुत्रियाँ ही उत्पन्न होती हैं, उनके वास्ते नियामत है। मूल्य १०)

पताली—(रजिस्टर्ड) ऋतुस्राव का कम होना वा न आना, वेदनासहित आना और तत्सम्बन्धी सर्व रोगों को दूर करके ऋतु को खोलता है और बल प्रदान करता है। स्त्रियों के लिए टानिक ओषधि है। मूल्य ४ औंस २), नमूना १ औंस ।।)

सोमावती (रजिस्टर्ड) **श्वेत (प्रदरौषधि)**—स्त्रियों के जो श्वेत पानी जाता है जिसको ल्यूकोरिया, श्वेत प्रदर, जिरयानु, लरेहम, सेलान, रतूबतेजनां, सोमरोगादि भी कहते हैं। चाहे किसी प्रकार का और किसी दर्जे का हो, इससे आराम आ जाता है। मूल्य २४ मात्रा २), नमूना ।।।)

फूलो फलो—यह सूखिया मसान की विचित्र ओषधि है, इसको केवल कटि पर मला जाता है, और वहाँ से महीन २ कृमि निकलते हैं, वे ही रोग का कारण होते हैं। तब बालक पुष्ट होना आरम्भ होता है। मूल्य १) रु०

पत्र या तार का पता :—**अमृतधारा ११ लाहौर।**

विज्ञापक :—**मैनेजर औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा डाकख़ाना, लाहौर।**

सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ६॥) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य ॥=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८॥), छः महीने का ४।=) और प्रतिसंख्या का ॥।-) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिखकर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद," के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक या अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं। का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

सरस्वती के विज्ञापन-छपाई के रेट

कवर का दूसरा पृष्ठ	४५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	४५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	८०)	,,
पाठ्य विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के तीसरे पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
रङ्गीन चित्र से पहलेवाला पृष्ठ ...	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,

साधारण नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ	या	२ कालम की छपाई	...	३०)	प्रतिमास
१/२ ,,	या	१ ,,	,, ...	१६)	,,
१/४ ,,	या	१/२ ,,	,, ...	९)	,,
१/८ ,,	या	१/४ ,,	,, ...	५)	,,

१—"सरस्वती" में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते, अतः कुरुचि-पूर्ण विज्ञापन न भेजिए।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है, औरों को नहीं।

३—छपाई का रेट जो ऊपर दिया है यह अकाट्य (FINAL) है। इसके लिए लिखा-पढ़ी करना व्यर्थ है।

४—जितने समय तक के लिए कन्ट्रैक्ट किया गया है, उतने समय तक विज्ञापन छपाना होगा। विज्ञापन न छपाने पर भी उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा।

पत्र-व्यवहार करने का पता—

मैनेजर, विज्ञापन-विभाग

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

——

चित्र-सूची



चमड़े की दोनों पर्तों को उत्तम बनाइए

चमड़े का रूखापन बहुत जल्द मालूम हो जाता है क्योंकि यह ऊपरी परत में होता है। लेकिन काले धब्बे और झुर्रियाँ नीचेवाली परत में शुरू होती हैं। पहले नीचेवाली परत की छोटी-छोटी तैल-ग्रन्थियाँ सूख जाती हैं। इससे काले धब्बे दिखलाई पड़ते हैं। फिर नीचेवाली परत सिकुड़ती है जिससे रेखायें व झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। सौन्दर्य के लिए चमड़े की दोनों पर्तों की रक्षा अलग अलग कीजिए!

काले धब्बे, रेखायें और झुर्रियाँ सौन्दर्य को कभी बिगाड़ नहीं सकते यदि आप रोज़ रात को 'पांड का कोल्ड क्रीम' लगावें इससे नीचेवाली परत की तैल-ग्रंथियाँ फिर पुष्ट और क्रियाशील हो जायँगी।

चमड़े का कड़ापन भी ग़ायब हो जायगा। हर रोज़ रात को 'पांड का कोल्ड क्रीम' लगाने के बाद चेहरे, गर्दन, हाथ और बाहों पर पांड का वेनिशिंग क्रीम लगाइए। प्रातःकाल आपकी त्वचा रेशम की तरह कोमल व चिकनी हो जायगी।

मुफ़्त मँगाइए—यह कूपन भेजकर पांड के दोनों क्रीम और अभी हाल के तैयार किये हुए फेस पाउडर का नमूना मुफ़्त मँगाइए। नच्युराल......रोज़ क्रीम......ब्रुनेट
(इन तीनों में से एक पर निशान लगाइए)

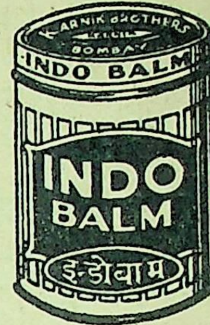
डाज एंड सीमूर लि०,
३, विटेट रोड, बम्बई

नाम ....

पता ....

एक आने का टिकट भेजकर नमूना की डिब्बी मुफ़्त मँगाइए।

इन्डोबाम
मंगाइये.



सर्व शारीरिक दर्दों पर एकमात्र प्रसिद्ध मलहम। इन्डोबाम सिर-दर्द, बदन-दर्द, छाती-दर्द, कमर-दर्द, दाँत-दर्द, बिच्छू-दंश इत्यादि पर रामबाण साबित हुआ है। क़ीमत प्रतिपाट ।।) आ० ३ पाट १।), ख़र्च अलग।

नोट—कृपा करके हमारा सूचीपत्र मँगाइए।

पता—कर्णिक ब्रादर्स, गिरगाँव, बम्बई ४।

इलाहाबाद एजेंट—किंग एन्ड कम्पनी।
कानपुर एजेंट—मेडिसिन सप्लाई कम्पनी।
लखनऊ एजेंट—किंग मेडिकल हाल।
दिल्ली एजेंट—जमनादास एन्ड कम्पनी चाँदनी चौक

प्रो० र० धो० कर्वे कृत

१—आधुनिक कामशास्त्र

क़ी० २।।) रु०, डा० ख़० ५ आने

२—संतति-नियमन

क़ी० १२ आने, डा० ख़० ४ आने

ये दोनों ही ग्रन्थ विज्ञान-सम्मत और लोकोपयोगी हैं। तीस वर्ष के गम्भीर अध्ययन के बाद ये लिखे गये हैं। मूल मराठी में पहले के दो तथा दूसरे के छः संस्करण हो गये हैं।

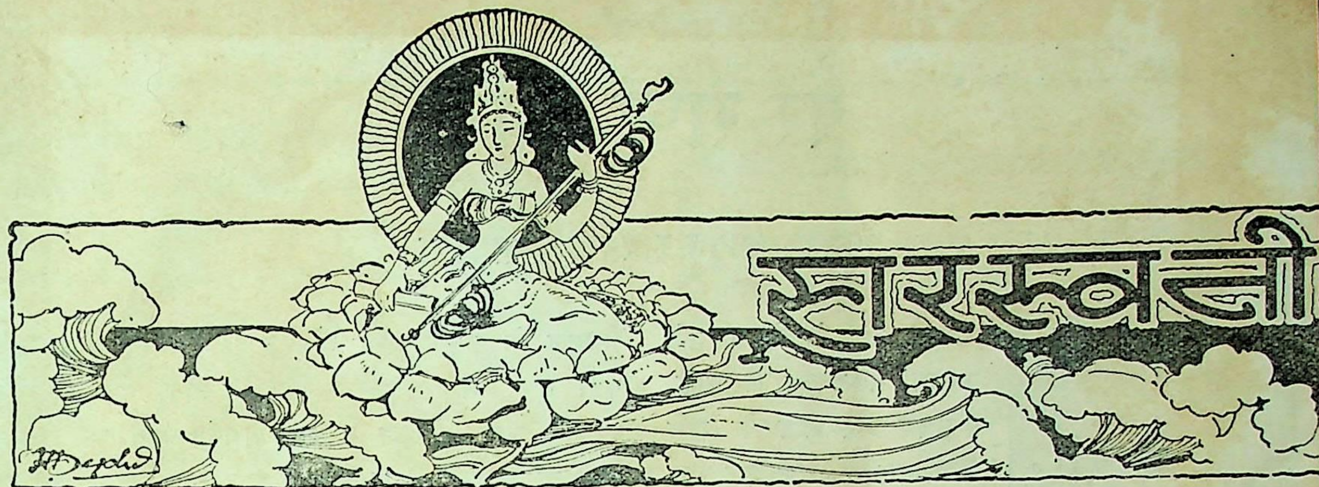
राइट एजन्सी

१३ नवी भटवाडी, मुम्बई ४



ज्ञानोदय

[चित्रकार —श्रीयुत सीताराम अग्रवाल



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

आक्टोबर १९३६ } भाग ३७, खंड २ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४४२ { आश्विन १९९३

समाधान

लेखक, श्रीयुत सरदार नर्मदाप्रसादसिंह

सुख के रवि का अवसान हुआ,
व्यथा-वारिधि का थका नावक हूँ।
प्रिय वासना भूत के भस्म का मैं,
मग व्योम अनन्त में वाहक हूँ॥
इस दीनता में निज वेदना से,
किसी के सुख का यदि साधक हूँ।
बड़ भाग भले हँस लें हँस लें,
अब हास ही का उत्पादक हूँ॥

उपालंभ ही में अवलम्ब मिला,
त्यों विराग में राग अराधना है।
घृणा ही मख का शुभोद्यापन है,
अरु व्यंग ही में सद्भावना है॥
हतभाग्य अकेतन विस्मृत हूँ,
त्यों तिरस्कृत हूँ पर सान्त्वना है॥
घृणा में, हँसी में, अरु व्यंग में भी,
उसी मूर्त्ति की स्मार्त उपासना है॥

सुख में इस दुख का क्षोभ रहा,
दुख में चिर शान्ति की साधना है।
भव में इस अन्त के अंकुर थे,
अब अन्त में उद्भव भावना है॥
उदै में निशि की घटा घेरे रही,
पर रैन में वासर वासना है॥
इसी वेदना में समवेदना है,
इसी ताड़ना में मनो-कामना है॥

पर-राष्ट्र-नीति

लेखक, श्रीयुत राममनोहर लोहिया



नुष्य का आपसी रिश्ता उसे कुटुम्ब में इकट्ठा करता है, पंचायत और जाति के नाते में बाँधता है, एक देश, राष्ट्र अथवा राज्य की उसे एकता देता है। कुटुम्ब, जाति या राष्ट्र का सम्बन्ध काफ़ी मज़बूत सम्बन्ध होता है, इतना मज़बूत कि आदमी सामूहिक फ़ायदे के लिए अपना निजी नुक़्सान सहने के लिए राज़ी होता है, कभी कभी तो जान भी न्योछावर कर देता है।

इन सब सम्बन्धों के अलावा एक और सम्बन्ध है, जिसे हम अक्सर भूल जाया करते हैं। वह है मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध—आदम-जाति का सम्बन्ध। चाहे वह चीनी हो या हिन्दुस्तानी, नीग्रो हो या अँगरेज़, है तो आदमी ही। एक दूसरे के साहित्य, विज्ञान और कला से लाभ उठाने की संभावना है, एक दूसरे के देश की अच्छी बातों का मनन कर ख़ुद और अच्छा बनने की संभावना है, एक दूसरे के गले लगकर सारी दुनिया को शान्तिमय उन्नति की ओर ले जाने की संभावना है।

लेकिन यह नहीं हो पाता। अक्सर युद्ध होते हैं। पिछली ४ बरस की लड़ाई में तो एक करोड़ से भी अधिक आदमी मरे और जब गोला और गैस नहीं भी बरसते रहते तब भी कम से कम उनके लिए तैयारियाँ तो होती रहती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार या ख़रीद-फ़रोख़्त का भी यही उद्देश रहता है कि किसी तरह देश की राजनैतिक और फ़ौजी ताक़त बढ़ती रहे, जिससे व्यापार का फ़ायदा कहीं कम न हो जाय। गरज़ यह कि आदम-जाति का आपसी सम्बन्ध शान्ति, उन्नति और प्रेम की बुनियाद पर नहीं, बल्कि युद्धमय स्वार्थ पर ही अब तक जमा हुआ है।

इसी सम्बन्ध को पर-राष्ट्र-नीति कहते हैं। एक राज्य या राष्ट्र में संगठित समाज का किसी दूसरे समाज के साथ की नीति को पर-राष्ट्र-नीति कहते हैं। यों तो चाहे बतौर मिसाल के इक्के-दुक्के अँगरेज़ या नीग्रो या हिन्दुस्तानी कहीं सफ़र में एक-दूसरे से मिल भी जायँ, शायद दोस्ती भी हो जाय, लेकिन समस्त अँगरेज़-जाति का समस्त नीग्रो या हिन्दुस्तानी जाति के साथ व्यावहारिक सम्बन्ध तो उसके राष्ट्र की पर-राष्ट्र-नीति के ही मुताबिक़ होता है।

इस पर-राष्ट्र-नीति की बुनियाद जैसा कि वर्तमान संसार और मानवीय इतिहास अच्छी तरह बताता है, युद्धमय स्वार्थ है, और यह बिलकुल स्वाभाविक भी है। अगर हम राष्ट्र या राज्य की उत्पत्ति और क्रमविकास का अध्ययन करते हैं तो हमें राष्ट्र की सबसे बड़ी ज़रूरत यह मालूम होती है कि अपने को उत्तरोत्तर मज़बूत बनावें। जब से आधुनिक राष्ट्र बने हैं, और सोलहवीं सदी में फ़्रांस, स्पेन और इँग्लिस्तान बन ही चुके थे, तभी से उन्हें अपनी सत्ता, अपनी एकता और बाहरी हमलों से अपनी ज़मीन की रक्षा के लिए जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ा है। पहले तो अँगरेज़ों को स्पेन के जहाज़ी बेड़े अर्मडा का सामना करना पड़ा, उसे हराने के लिए ताक़त बढ़ानी पड़ी, और फिर इस डर से कि कहीं और हमला न हो, अपनी राज्य-सत्ता को सिर्फ़ क़ायम ही नहीं रखना पड़ा, वरन उत्तरोत्तर बढ़ाना भी पड़ा। अपनी फ़ौज को बढ़ाते रहना, ख़ास ख़ास राष्ट्रों से समय समय पर दोस्ती करते रहना जिससे दुश्मन का अकेले सामना न करना पड़े, दूसरे देशों पर अपनी राज्य-सत्ता का आधिपत्य जमाना जिससे वहाँ के जान और माल भी अपनी हिफ़ाज़त के काम आयें, यह सब कार्रवाइयाँ आधुनिक राष्ट्रों को करनी पड़ी हैं और अब भी करनी पड़ती हैं।

आधुनिक राष्ट्र अगर बढ़ता नहीं, फूलता-फलता नहीं, तो ख़त्म हो जाता है। मुक़ाबिले और मुठभेड़ की दुनिया में रहकर कोई दूसरा चारा भी नहीं है।

मुक़ाबिले और मुठभेड़ के आधुनिक संसार को जब हम समझने की कोशिश करते हैं तब हमें पर-राष्ट्र-नीति का सबसे बड़ा पाया मिलता है—साम्राज्य और ग़ुलाम-राज्य

का पारस्परिक सम्बन्ध। हिन्दुस्तान के पैंतीस करोड़, अफ़्रीका के छः करोड़, अन्य देशों और द्वीपों के बाशिन्दों की कोई पर-राष्ट्र-नीति है तो वह अँगरेज़ी राज्य से साम्राज्य-सम्बन्ध है। इन्डो-चीन तथा उत्तरी-पश्चिमी अफ़्रीका का इसी तरह फ़्रांस से सम्बन्ध है। जावा-सुमात्रा का हालैंड के साथ है। और चीन के पैंतालीस करोड़ तो अँगरेज़ी राज्य, अमरीका, फ़्रांस, जापान के साम्राज्य-सम्बन्ध में गुथे हुए ही हैं, मानो चीन का राष्ट्रीय और साम्यवादी आन्दोलन काफ़ी मज़बूत हो गया है। मतलब यह कि दुनिया का आधे से भी ज़्यादा हिस्सा, एक अरब (१०० करोड़) से भी ज़्यादा लोग, सिर्फ़ एक पर-राष्ट्र-नीति जानते हैं और वह है साम्राज्य की सेवा करना, उसकी जान और माल से हिफ़ाज़त करना। इन्हीं में अमरीका के संयुक्त राष्ट्र के एक करोड़ से अधिक नीग्रो लोग भी शामिल हैं। इन सभों के लिए मानवता का सम्बन्ध सिर्फ़ एक अर्थ रखता है—साम्राज्य-गुलाम-सम्बन्ध। अगर ये लोग दूसरे देश के निवासियों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, उनके साहित्य, विज्ञान, कला और व्यापार से अपनी तरक़्क़ी करना चाहते हैं, तो उन्हें साम्राज्य के तंग, निचले और अक्सर बन्द दरवाज़े के सिवा और कोई मार्ग नहीं।

दुनिया का आधे से ज़्यादा हिस्सा तो यों ही चला गया। बाक़ी हिस्से की पर-राष्ट्र-नीति की बुनियाद, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, युद्धमय स्वार्थ है। दुनिया के बड़े राष्ट्र हमेशा इसी फ़िक्र में रहते हैं कि किसी तरह साम्राज्य का विस्तार करें, व्यापार बढ़ावें, अपनी ताक़त और शान दूसरों से ऊँची रक्खें। इसी लिए इनमें समय समय पर मेल-अनमेल, जोड़-बेजोड़ हो जाया करता है। आजकल इन राष्ट्रों के मेल-अनमेल की नीति एक ख़ास तरह की मालूम होती है। एक तरफ़ तो फ़्रांस, रूस, स्पेन जैसे राष्ट्र और दूसरी तरफ़ जर्मनी और इटली जैसे राष्ट्र हैं। इँग्लिस्तान की अवस्था छछूँदर जैसी है। फ़्रांस आदि का दल राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रगतिशील माना जाता है। यह कैसे? आख़िर फ़्रांस का भी साम्राज्य है, उसे भी अपनी रक्षा के लिए ताक़त बढ़ानी पड़ती है।

फ़्रांस प्रगतिशील है या नहीं, इसे समझने के लिए हमें रूस की पर-राष्ट्र-नीति पर नज़र दौड़ानी होगी। यह तो शायद सभी मानेंगे कि रूस की पर-राष्ट्र-नीति की नींव दुनिया के और राष्ट्रों जैसी नहीं है। रूस को साम्राज्य की ज़रूरत नहीं, न ज़रूरत है उसे ऐसे व्यापार और उद्योग-धन्धे की जिसकी बुनियाद पर-शोषण है। इसका कारण यह है कि रूस की राष्ट्रीय नींव ही बिलकुल असामान्य है, उसमें और अमरीका या इँग्लिस्तान में कोई सामञ्जस्य नहीं। पन्द्रहवीं सदी से अब तक आधुनिक राष्ट्र निर्मित हुए हैं। फ़्रांस, इँग्लिस्तान, अमरीका, जर्मनी, इटली, जापान आदि ऐसे ही राष्ट्र हैं। उनकी सबसे बड़ी बुनियाद है वैयक्तिक विकास, वैयक्तिक पूँजी, वैयक्तिक उद्योग-धंधा। इन राष्ट्रों में ज़मीन, कल-कारख़ाने, पूँजी समस्त राष्ट्र की नहीं, किन्तु कुछ व्यक्तियों के अधीन है। पर रूस में ये सब राष्ट्रीय या सामाजिक सम्पत्ति हैं। इस सारी सम्पत्ति को उद्योग-धंधों में लगाने पर जो नफ़ा होता है वह सारे समाज के काम आता है। और देशों की तरह कुछ ख़ास ख़ास आदमी इस नफ़े के बड़े हिस्से को अपना नहीं पाते, और इस बात की गुञ्जाइश नहीं कि पहले तो अपना समाज ग़रीब बने, फिर और देशों के समाज पर वही हरकत दोहराई जाय। इसी लिए आधुनिक दुनिया में रूस ही अकेला राष्ट्र है, जिसकी पर-राष्ट्र-नीति की बुनियाद युद्धमय स्वार्थ नहीं है।

लेकिन फ़्रांस कैसे प्रगतिशील हुआ? उसकी बुनियाद तो वही है जो जर्मनी या इँग्लिस्तान की है। बात तो ठीक है, लेकिन फ़्रांस की मौजूदा सरकार और अधिकांश जनता अगर इस नींव को तोड़ना नहीं चाहती या तोड़ नहीं सकती तो भी कम-से-कम इसके भयानक और ख़ूनी स्वरूप को

इस लेख के लेखक श्रीयुत लोहिया जी बर्लिन के पी० एच० डी० हैं। इस समय ये कांग्रेस के वैदेशिक विभाग के मंत्री हैं। इन्होंने पर-राष्ट्र-नीति के राजनैतिक रूप का इस लेख में बहुत ही सरल ढंग से विश्लेषण किया है, जो रोचक और बोधगम्य है।

तो प्रकट नहीं होने देती। फ़्रांस में और रूस में विश्व-शान्ति के लिए एक समझौता भी हुआ है। इसी लिए यह कहा जाता है कि तुलनात्मक दृष्टि से फ़्रांस प्रगतिशील है। लेकिन इस सिलसिले में कोई अन्तिम बात कह देना ग़लत होगा। आसार को हम लक्षण नहीं मान सकते। अब फ़्रांस की सरकार का इन्डो-चीन या मोरक्को के साथ कैसा बर्ताव रहेगा, ख़ुद अपने देश के ग़रीब मज़दूर और किसान को कैसे आर्थिक हक़ देगी और विश्व-शान्ति की रक्षा के लिए कैसे उपाय काम में लावेगी, इसका उत्तर तो आज नहीं दिया जा सकता।

मानवता का सम्बन्ध आज साम्राज्य-, गुलाम और युद्ध-मय स्वार्थ की बुनियाद पर रची हुई पर-राष्ट्र-नीति के कुत्सित रंग में रँगा हुआ है। किस सवत् में संसार इस कलंक को मिटा पायेगा, कहना मुश्किल है। लेकिन यह ज़रूर कहा जा सकता है, दुनिया के एक अरब से भी ज़्यादा लोग जाग तो ज़रूर गये हैं, खुद मज़बूत साम्राज्य-वादी राष्ट्रों के मज़दूरों और ग़रीबों के ख़ास ख़ास गिरोह भी इनसे गले मिलना चाहते हैं। कलंक का मिटना अब सदियों का काम नहीं, वर्षों का ही रह गया है। वह समय ज़रूर आवेगा जब मानवता का सम्बन्ध मनुष्य का सबसे बड़ा सम्बन्ध होगा। वह प्रेम, बराबरी, मिलनसारी, मदद और सहानुभूति की भावनाओं को जगावेगा, जिसमें पर-राष्ट्र और पर-राष्ट्र-नीति की गुञ्जाइश न होगी।

गीत

लेखक, श्रीयुत बन्देअली फ़ातमी

चकित-सा मैं देखता हूँ,
भ्रमित-सा मैं देखता हूँ,
प्रकृति की यह रूप-रेखा छकित-सा मैं देखता हूँ।

सुधा बरसाता सुधाकर,
विष वही बनती जलज पर;
प्रात फिर उसकी प्रभा को अमित-सा मैं देखता हूँ।

प्रेम-विष जिस पर चुवा है,
वही इन्दीवर हुआ है;
औ' उसे भव-दृष्टि में भी कलित-सा मैं देखता हूँ।

वह्नि मिलता ग्रास जिससे,
वारि मिटती प्यास जिससे;
किंतु गंगा में, चिता में अहित-सा मैं देखता हूँ।

प्रकृति का यह रूप लोहित,
और उस पर जीव मोहित;
वाक् तो जित, मौन को क्यों अजित-सा मैं देखता हूँ।

चल चुका हूँ यदपि इतना,
कोई कहता, 'और इतना';
पास लक्ष्यस्थान है पर थकित-सा मैं देखता हूँ।

लिखित-सा मैं देखता हूँ,
तड़ित-सा मैं देखता हूँ;
उस अनन्ता सस्मिता को प्रकृत-सा मैं देखता हूँ?

मेरी शिलाँग-यात्रा

लेखक, बाबू सङ्गमलाल अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट

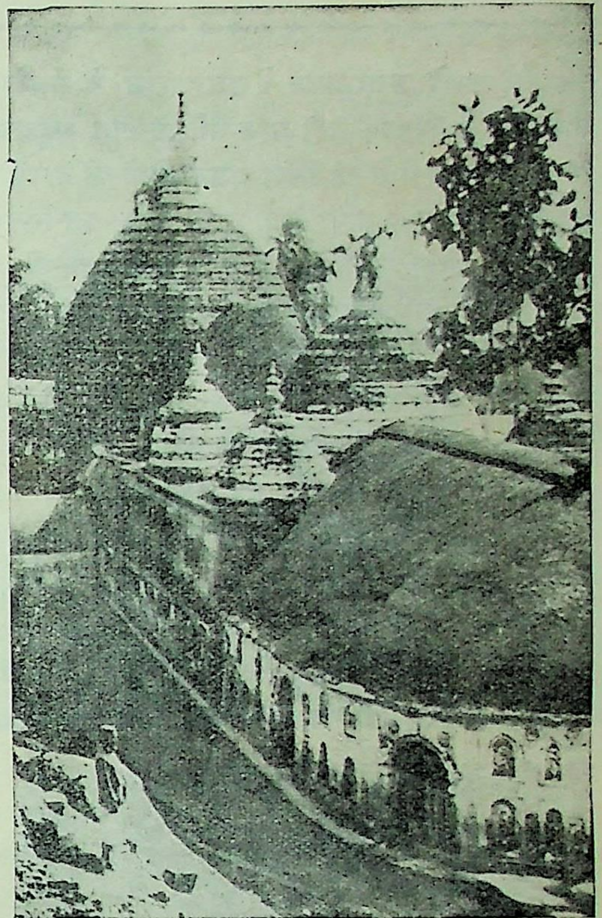
बाबू सङ्गमलाल प्रयाग के एक प्रमुख नागरिक हैं। यहाँ का प्रसिद्ध 'महिलाविद्यापीठ' इन्हीं के अथक परिश्रम का फल है। अपने अवकाश का समय ये इसी की उन्नति में लगाते रहते हैं। इसी सिलसिले में इन्होंने हाल में आसाम की यात्रा की थी। इस लेख में वहाँ की सामाजिक स्थिति पर आपने बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रकाश डाला है।

(१)



महात्मा गांधी ने सन् १९२६ में आसाम का दौरा किया था। उस समय उन्होंने कवित्वमय भाषा में आसाम का बड़ा सुन्दर वर्णन किया था। उसी समय से मेरी इच्छा आसाम और ब्रह्मपुत्रनद के जिसका वर्णन मैं भूगोल में पढ़ा करता था, देखने की थी। सन् १९३४ में आसाम से कुछ लड़कियाँ प्रयाग के 'महिला-विद्यापीठ' में हिन्दी का अध्ययन करने आईं। उनके सम्पर्क से आसाम मेरे अधिक निकट आ गया और उसके देखने की इच्छा और अधिक प्रबल हो गई। हिन्दुस्तान में केवल आसाम ही एक ऐसा प्रान्त था जिसका भ्रमण मैंने नहीं किया था। इस कमी के पूरा करने की भी इच्छा बहुत दिनों से थी। फलतः आसाम-प्रान्त देखने का सौभाग्य मुझे गत जून की छुट्टियों में प्राप्त हो गया।

रेलगाड़ी में मुझे एक आसामी सज्जन मिल गये। उन्होंने आसाम के इतिहास का अच्छा अध्ययन किया है, वे अपने प्रान्त से अच्छा प्रेम करते हैं और उसके निवासी होने का उनको गर्व है। आसाम के सम्बन्ध में

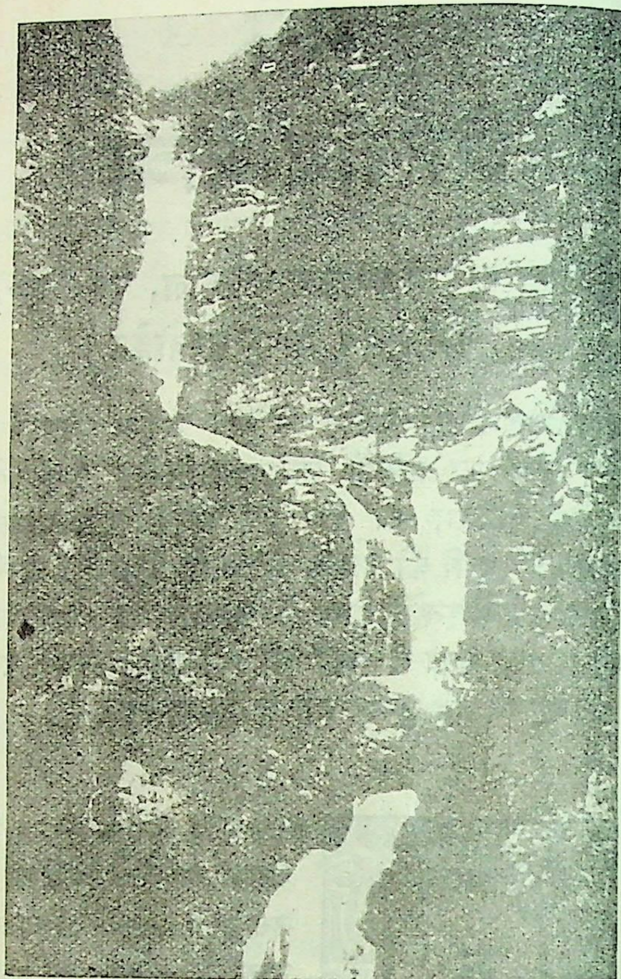


[कामाख्या का मंदिर। इसका सबसे नीचे का भाग २,००० वर्ष का पुराना है।]

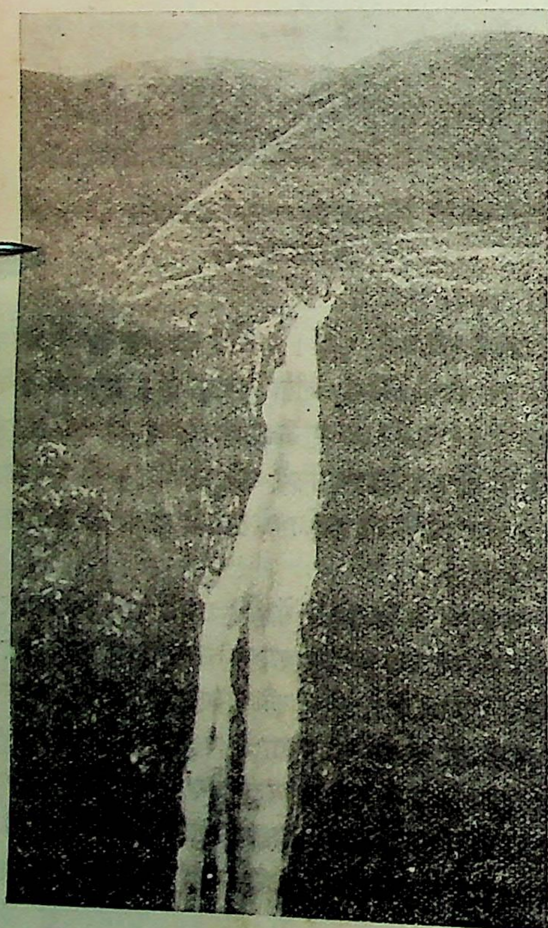
मैंने उनसे कई बातें पूछीं। उन्होंने बतलाया कि आसाम शब्द का अर्थ 'बिना जीता हुआ' है। मुसलमानों के समय में इस प्रान्त को मुसलमानी राज्य में सम्मिलित करने के लिए कई प्रयत्न किये गये, लेकिन सभी असफल हुए। अँगरेज़ों ने भी इसको कौशल से ही अपने अधिकार में किया है।

बातचीत के सिलसिले में मैंने उनसे कहा कि उत्तर-भारत में कामाख्या या कामरूप के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। लोगों की धारणा है कि जो मनुष्य कामरूप या कामाख्या जाता है वह फिर लौटकर वापस नहीं आता। वहाँ जादू का बड़ा ज़ोर है। वहाँ की स्त्रियाँ आदमी को दिन में भेड़ा बनाकर रखती हैं और रात को फिर आदमी बना लेती हैं। उनके वश में मनुष्य इतना हो जाता है कि इच्छा होने पर भी वह अपने देश को नहीं लौट सकता। यह सुनकर आसामी सज्जन बहुत

हँसे। मैंने उनसे उत्तर-भारत में इस धारणा के प्रचलित होने का कारण पूछा। यही प्रश्न मैंने आसाम पहुँचकर और कई आदमियों से भी किया। उन लोगों की बातचीत से तथा जो मैंने स्वयं वहाँ देखा उससे मुझे इस निर्मूल धारणा का कारण यह मालूम हुआ कि रेलगाड़ी के चलने के पहले संयुक्त-प्रान्त और बिहार के वे ही लोग आसाम जाते थे जिनको अपने घर में कोई ठिकाना नहीं होता था और बड़े कष्ट का जीवन व्यतीत करते थे। उनको आसाम पहुँचने में सालों लग जाते थे। मार्ग में बहुत नदियों के कारण बड़ी दिक़्क़तें उठानी पड़ती थीं। वहाँ पहुँचकर अनेक रोगों का शिकार होना पड़ता था। इसलिए बहुत कम आदमी जाते थे और जो थोड़े लोग जाते भी थे वे लौटकर नहीं आते थे। इसके अतिरिक्त संयुक्त-प्रान्त में दिन भर परिश्रम करने के बाद भी पेट भर भोजन उनको नहीं मिलता था। आसाम की भूमि बहुत उप-



[बीडन-जल-प्रपात—शिलाँग]



[बिशप-प्रपात—शिलाँग]

जाऊ है। धान केवल बिखेर देने से ही फ़सल तैयार हो जाती है। जोतने-बोने का कष्ट ही नहीं उठाना पड़ता। वहाँ की स्त्रियाँ भी इतनी मेहनती होती हैं कि उनके पुरुषों को बहुत कम काम करना पड़ता है। ऐसी दशा में जब बिना मेहनत के भोजन मिले और गृहस्थी का समस्त सुख भी प्राप्त हो तो 'देश' को कौन लौटना पसन्द करेगा? आसाम में अब भी ऐसे मारवाड़ी हैं जो सालों तक अपने देश को नहीं लौटते। उत्तर-भारत में भेड़ बनाने की निर्मूल धारणा का यही कारण मालूम होता है। जादू की बात केवल कपोलकल्पित है।

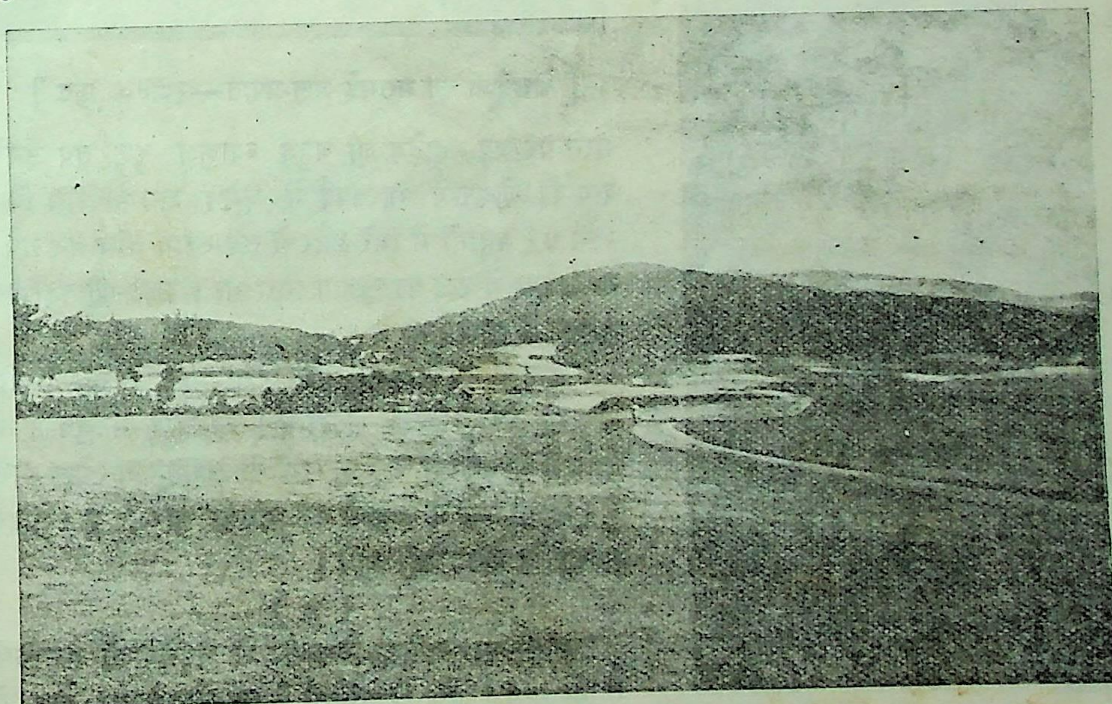
(२)

अमीन गाँव तक रेलगाड़ी जाती है। उसके बाद स्टीमर में ब्रह्मपुत्र को पार करके आसाम के प्रसिद्ध नगर गोहाटी में पहुँचना होता है। गोहाटी को आसाम-प्रान्त

का फाटक कह सकते हैं। अमीन गाँव के स्टेशन पर उतरते ही सुन्दर पहाड़ियाँ और हरी-भरी ज़मीन चारों ओर दृष्टिगोचर होती है। ऐसा मालूम होने लगता है, जैसे कश्मीर का कोई सुन्दर भाग हो।

स्टीमर में बम्बई की प्रसिद्ध श्रीमती अमृतकुँवर तथा उनके पति से भेंट हो गई। स्टीमर से किनारे पर उतरते ही आसाम के प्रमुख कांग्रेसी नेता और गोहाटी म्युनिसिपल्टी के चेयरमैन श्री गोपीनाथ जी बारडोली तथा श्री चाँदमल जी सरावगी रईस और म्युनिसिपल कमिश्नर, लीलाधर जी बरुआ इत्यादि के दर्शन हुए। मेरे ठहरने का प्रबन्ध वहाँ के लोगों ने श्री चाँदमल जी के यहाँ किया था। आप आसाम की 'चुन्नीलाल शालिग्राम' नाम की सबसे धनी मारवाड़ी फ़र्म के मालिक हैं। ये 'बर्मा आयल कम्पनी' की ओर से प्रान्त भर के एजेंट हैं। कहा जाता है कि इनकी तेल के कमीशन की आय ढाई लाख रुपया

[वार्ड-झील और उसका बाँध—शिलाँग]



[गोल्फ़ के खेल का मैदान—शिलाँग]

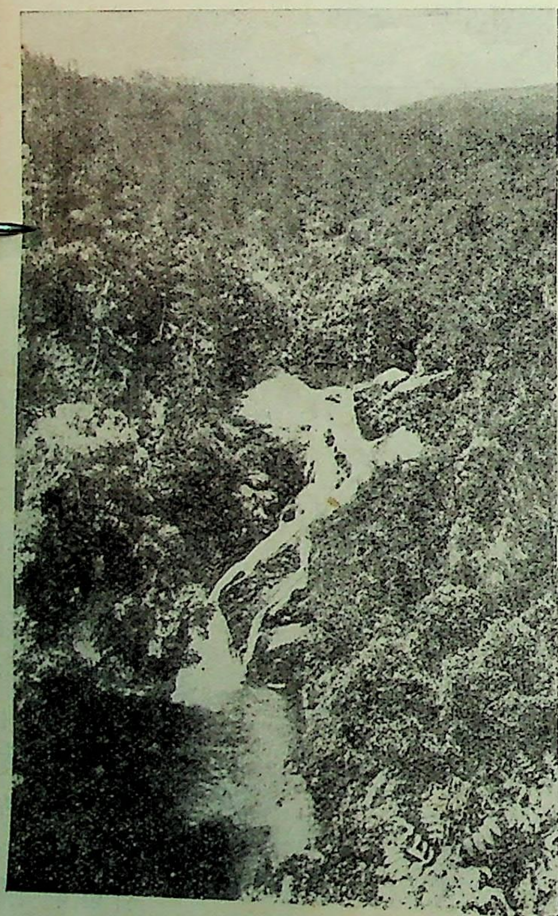
वार्षिक है। प्रान्त भर में इनकी दूकानें हैं। इन लोगों ने मेरा बड़ा स्वागत किया और मुझको घर-सा आराम दिया।

(३)

जाते समय मैं एक ही दिन गोहाटी में ठहरा। गोहाटी में इतने पुराने दर्शनीय मन्दिर हैं कि इसको 'मन्दिर का नगर' कह सकते हैं। इसका सबसे प्रसिद्ध मन्दिर कामाख्या-देवी का है। यह भारत का एक बहुत प्रसिद्ध मन्दिर है। एक ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर का दृश्य बहुत ही मनोरम है। मन्दिर का सबसे पुराना भाग २,००० वर्ष के लगभग का बना है। गत ५०० वर्षों में भक्त लोगों ने कुछ इमारतें और बना दी हैं। मन्दिर का भीतरी भाग बहुत ही अन्धकारपूर्ण और सँकरा है। दीपक रात-दिन जलता रहता है। मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है। केवल स्त्री के गुह्यांग का चिह्न है, जिसकी पूजा होती है। कहा जाता है कि सती के



[चेरापूँजी का मसमई जल-प्रपात—१८०० फ़ुट]



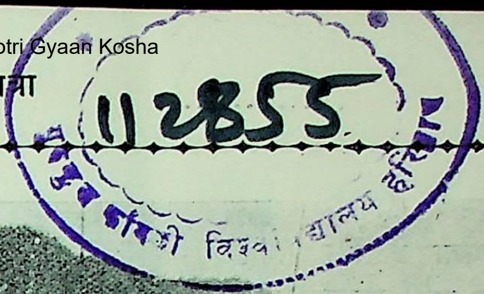
[स्प्रेड ईगल-प्रपात—शिलांग]

मरने पर जब महादेव जी बहुत व्याकुल हुए तब उनके शव को लेकर वे भारतवर्ष में घूमे। शव के भिन्न भिन्न भाग ५१ स्थानों में गिरे और वे सब स्थान तीर्थ बन गये। कामाख्या में शव का गुह्यांग गिरा था। उसी की यहाँ इस मन्दिर में पूजा होती है।

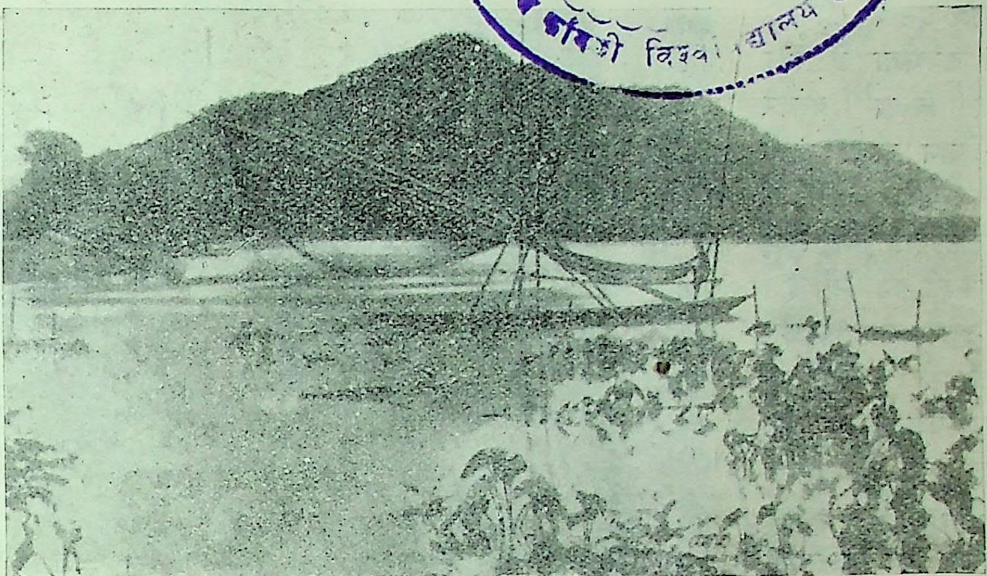
इस मन्दिर के पंडे-पुजारी उत्तर-भारत से गये हैं और अब भी अच्छी हिन्दी बोलते हैं। उत्साही नवयुवकों ने यात्रियों की सुविधा के लिए यहाँ दो वाचनालय खोल रक्खे हैं। आसामियों में वैष्णवों की संख्या अच्छी है। वे इस मन्दिर के भीतर नहीं जाते।

(४)

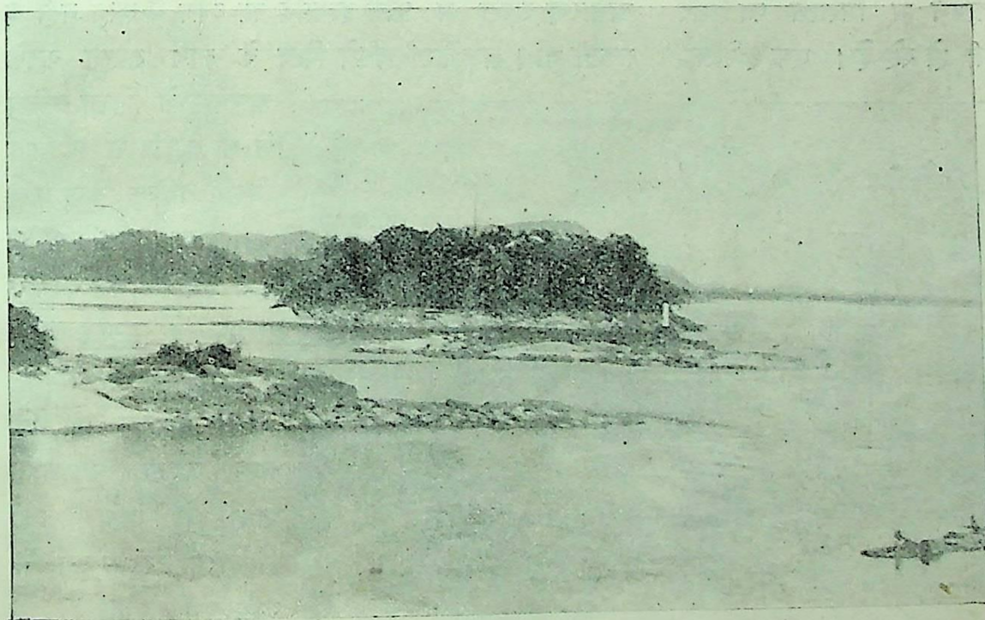
तीसरे पहर महिला-विद्यापीठ में पढ़नेवाली लड़कियों के घर गया। एक विद्यार्थिनी के घर को छोड़कर शेष के घर मिट्टी के थे और फूस से छाये हुए थे। उनके चारों



ओर काफ़ी गन्दगी थी। हरिजनों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचित्र बातें मालूम हुईं। संयुक्त-प्रांत में चमार, मेहतर, डोम इत्यादि को हरिजन कहते हैं। मल्लाहों या मछली मारनेवालों को हरिजन नहीं कहते। पर आसाम में मच्छुए ही सबसे छोटी जाति के समझे जाते हैं। उनसे छोटी जाति वहाँ और कोई नहीं होती और यही लोग आसाम के हरिजन हैं। आसामी लोग मेहतर और अहीर का काम नहीं करते। इनके काम यहाँ बहुत नीच समझे जाते हैं। ये दोनों काम अन्य प्रान्तों के लोगों के हाथ में हैं। मेहतर मध्यप्रान्त से आते हैं और अहीर विहार से। हिन्दी के प्रचार में ये लोग भी बहुत सहायता कर रहे हैं।



[गौहाटी में कामाख्या पहाड़ी के पास मछुए मछली का शिकार कर रहे हैं।]



[ब्रह्मपुत्र नद के बीच में उमानंद नाम का एक सुन्दर द्वीप है। यहाँ शिवरात्रि को मेला होता है। एक लेखक ने इसकी प्रशंसा में इसे 'मयूरद्वीप' लिखा है।]

आसामी साधारणतः सीधे और ग़रीब होते हैं और खेती और बुनाई का काम करके जीवन-निर्वाह करते हैं। यहाँ का व्यापार मारवाड़ियों के हाथ में है। ये लोग गाँव गाँव फैले हुए हैं। ये उन गाँवों में भी मिलते हैं जहाँ शहरी आसामी भी नहीं जाते, क्योंकि ये गाँव मलेरिया, काला आज़ार इत्यादि के केन्द्र हैं। ये डोरी-लोटा लेकर आते हैं और अपने अध्यवसाय, असाधारण मितव्ययिता, सराहनीय कष्टसहिष्णुता तथा व्यापार-कुशलता के कारण थोड़े ही समय में गाँव के सबसे बड़े धनी आदमी हो जाते हैं। यद्यपि ये लोग समय समय पर धन से प्रान्त-वासियों की सहायता करते रहते हैं, तो भी अब इनका पहले के अनुसार आदर नहीं है। आसाम का शिक्षित

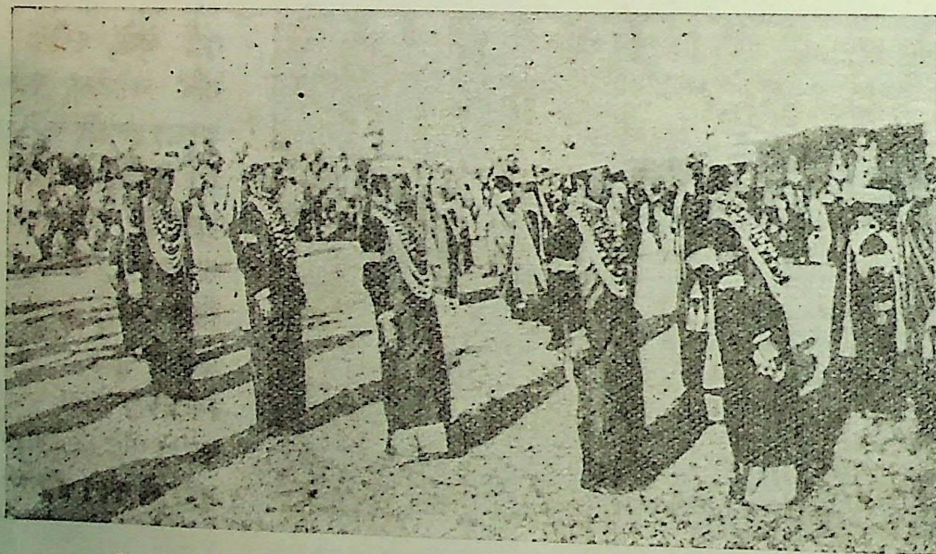
समुदाय इनको शोषण-कारी समझता है और इनके विरुद्ध बराबर आन्दोलन करता रहता है। इनके हितों के प्रतिकूल अब यहाँ कुछ क़ानून भी बन गये हैं। यहाँ इस समय 'आसाम आसामियों के लिए' की पुकार गूँज रही है और कांग्रेस का विरोधीदल इसी पुकार के बल पर कौन्सिल का आगामी चुनाव लड़ने का प्रयत्न कर रहा है।



[खसिया स्त्रियाँ घास ले जा रही हैं। साधारण स्त्रियों का यह यहाँ प्रधान व्यवसाय है।]

(५)

कुछ हरिजन-कुटुम्बों में विचित्र बात दिखलाई पड़ी। साधारण हिन्दू इनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता। ईसाई और मुसलमान इनको अपने में मिलाने का घोर प्रयत्न कर रहे हैं और सफल भी हो रहे हैं। एक हरिजन-कुटुम्ब में दो लड़कियाँ हैं। उनकी पढ़ने तथा आत्मोन्नति की प्रबल इच्छा है। बाप कुछ काम नहीं करता। माता बुनाई करके गुज़र करती है। कुछ दिन इन लोगों ने ईसाई-स्कूल में पढ़ा और कुछ दिन मस्जिद के मक़तब में। दोनों ही जगह ये अपनी इच्छा के विरुद्ध गईं, क्योंकि साधारण स्कूल में फ़ीस इत्यादि का व्यय ये लोग नहीं दे सकती थीं। लड़कियाँ अपने पिता के साथ साहस करके आसाम के शिक्षा-सचिव से भी छात्रवृत्ति के लिए मिलीं, किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। लड़कियों की उम्र १२-१४ वर्ष की है। यद्यपि यह कुटुम्ब हिन्दू-धर्म नहीं छोड़ना चाहता, किन्तु हरिजन भी नहीं बना रहना चाहता। उनमें से एक लड़की गत वर्ष से प्रयाग के महिला-विद्यापीठ में निःशुल्क भोजन, स्थान और शिक्षा पा रही है। दूसरी लड़की में महत्त्वाकांक्षा बहुत है। उसने क़ुरान की आयतें मुखस्थ सुनाईं। गाना भी गाया। आवाज़ अच्छी है। ऊँची से ऊँची शिक्षा पाने के लिए विकल है। हम लोगों



[खसिया बालिकायें नृत्य कर रही हैं। यह पहाड़ी नृत्य है।]

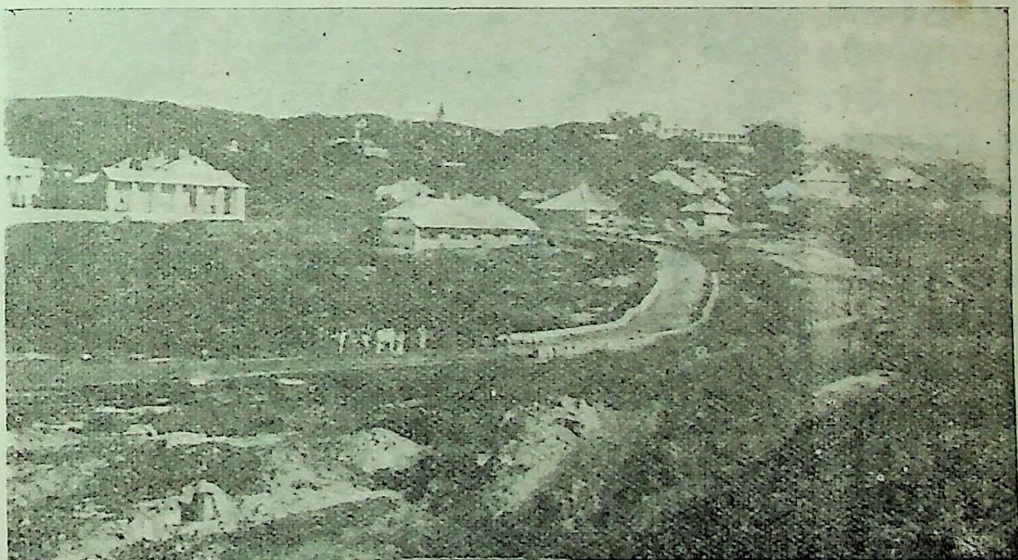


[खसिया कुली खाने के लिए सुपारी तैयार करा रहे हैं ।]

अधिक है। सरकार ने एक ही कम्पनी को मोटर चलाने का अधिकार दे रक्खा है। गौहाटी से शिलाँग तक का मार्ग बहुत ही सुन्दर और आकर्षक है। चारों ओर हरे-भरे पहाड़ और वृक्ष दिखलाई पड़ते हैं। देवदारु के वृक्षों की भरमार है।

शिलाँग ५,००० फ़ुट की उँचाई पर है। अन्य पहाड़ी स्थानों की अपेक्षा इसकी विशेषता यह है कि यहाँ मैदान बहुत लंबे-चौड़े हैं। जैसे काश्मीर के श्रीनगर में पहाड़ और मैदान दोनों का आनन्द मिलता है, वैसे ही शिलाँग में है। शिलाँग को श्रीनगर का छोटा भाई कह सकते हैं।

की धारणा यह हुई कि यदि इसकी शिक्षा का प्रबन्ध शीघ्र नहीं किया जायगा तो यह ईसाइयों या मुसलमानों के हाथ में पड़ जायगी। यह लड़की भी इस वर्ष प्रयाग के महिला-विद्यापीठ में आगई है और निःशुल्क भोजन, स्थान और शिक्षा पा रही है। इसके ख़र्च का भार 'चुन्नीलाल शालिग्राम फ़र्म' के मालिक श्रीयुत नेमचन्द जैन ने एक वर्ष के लिए अपने ऊपर लिया है। ऐसी और भी लड़कियाँ हैं जिनका प्रबन्ध होना भी आवश्यक है।

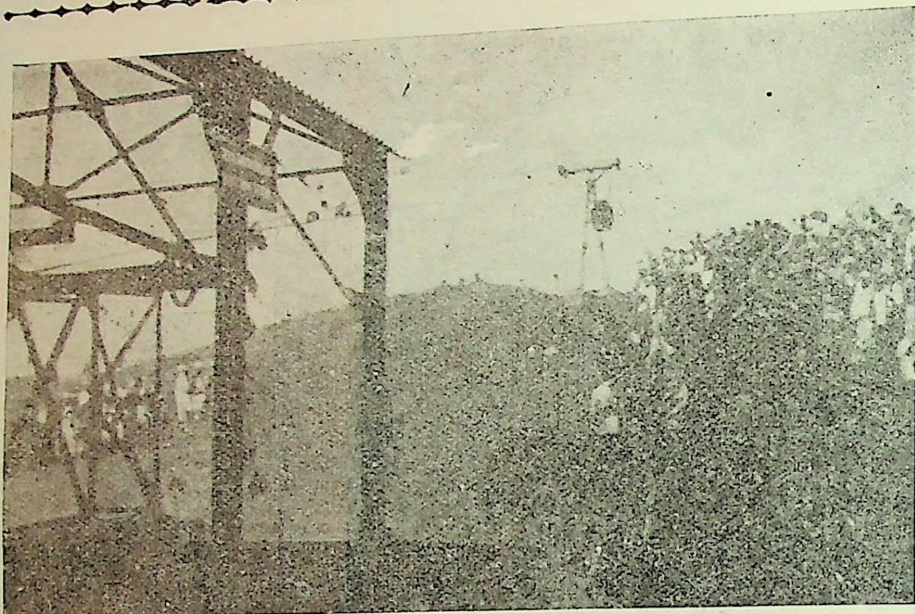


[चेरापूँजी—संसार में यहाँ सबसे अधिक पानी बरसता है। सन् १८६१ में यहाँ ९०३ इंच पानी बरसा था।]

(६)

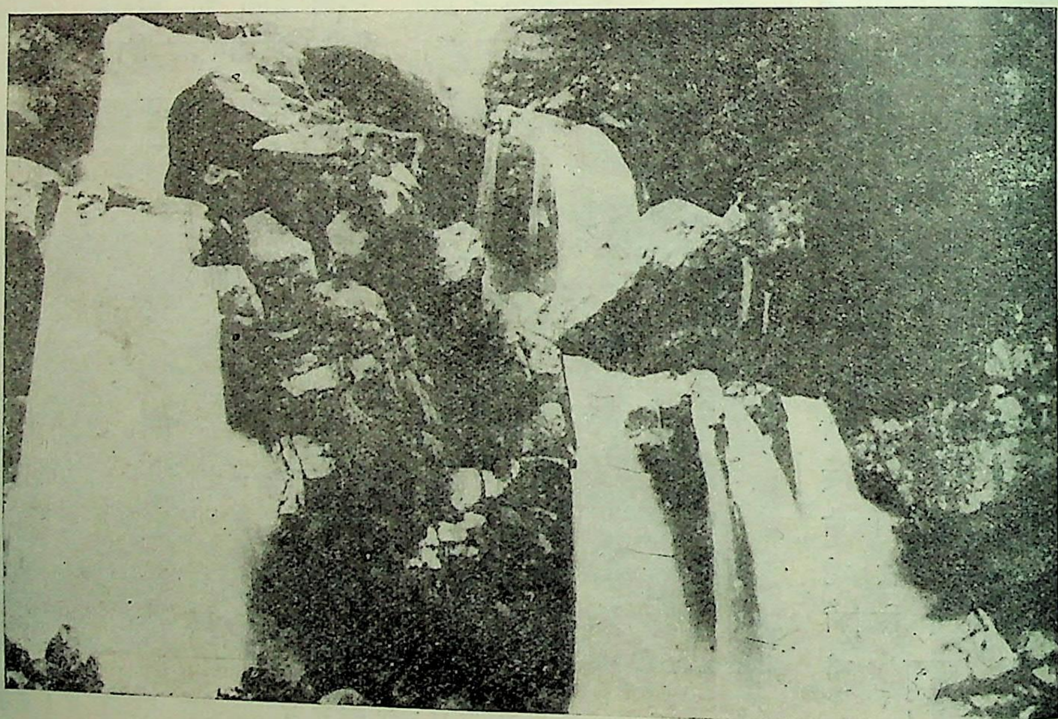
गौहाटी से शिलाँग मोटर से जाना पड़ता है। यद्यपि रास्ता केवल ६५ मील है, तो भी अन्य पहाड़ी स्थानों की अपेक्षा किराया बहुत

यहाँ का वायु स्वास्थ्यकर है। चारों ओर पहाड़ियों, वृक्षों और झरनों का दृश्य मनोरम है। यहाँ का गाल्फ़-कोर्स



[चेरापूँजी का रस्से का पुल। लोग पुल पर होकर जा रहे हैं।]

एशिया भर में दूसरे नम्बर का है। कश्मीर को छोड़कर यह स्थान मुझको सब पहाड़ी स्थानों से सुन्दर मालूम हुआ। यहाँ का जल भारी और क़ाबिज़ है। यहाँ यही एक दोष है। यह आसाम की राजधानी है और जल-वायु ऐसा है कि गवर्नर बारहों महीने यहीं रहते हैं। यह बात किसी दूसरे पहाड़ी स्थान में नहीं पाई जाती। चेरापूँजी यहाँ से थोड़ी ही दूर है, जहाँ साल में ४०० इंच से भी अधिक जल बरसता है, किन्तु शिलाँग में पानी बहुत कम बरसता है।

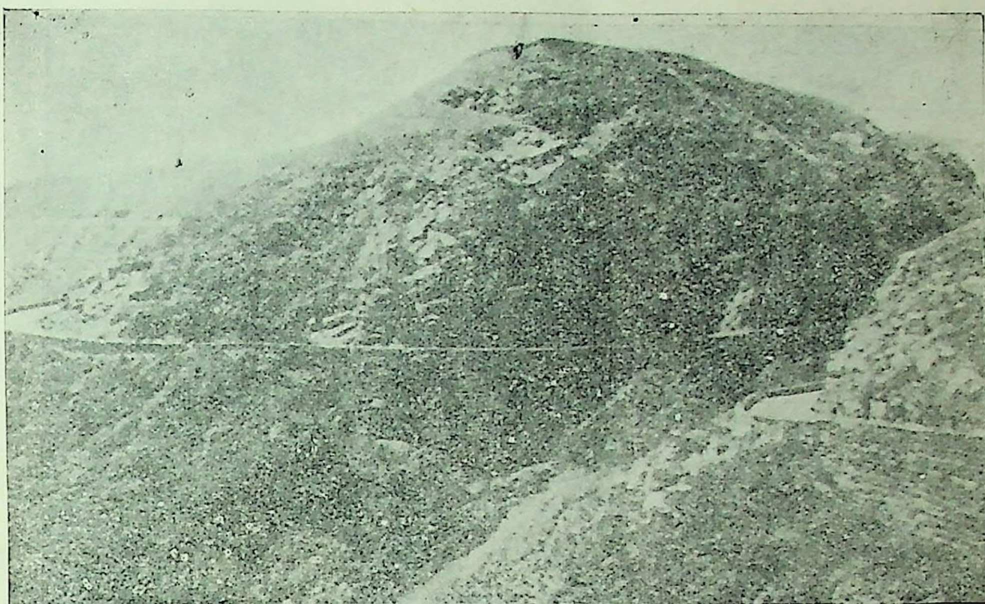


[शिलाँग का गनर-जलप्रपात]

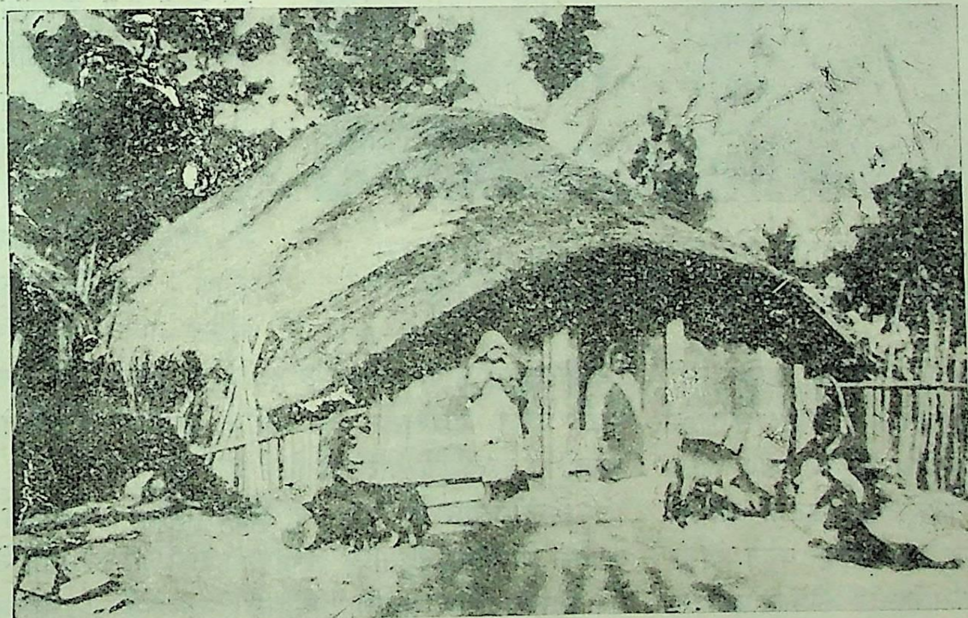
(७)

शिलाँग के चारों ओर खसिया लोगों की बस्ती है। ये लोग बहुत सुन्दर होते हैं। इनकी स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दर और परिश्रमी होती हैं और घर और बाहर का सब काम ये ही करती हैं। पुरुष बोझा ढोने का काम करते हैं। यह पिछड़ी हुई जाति है। इन लोगों के धर्म में भी हिन्दूपन बहुत है। सन् १८४१ से ईसाई-धर्म का यहाँ प्रचार हो रहा है। ५०-६० वर्ष तक इन लोगों को बहुत सफलता नहीं हुई, किन्तु गत ३० वर्षों में ये आशातीत सफल हुए हैं। खसिया लोगों की आबादी २,८९,९२६ है, जिसमें ईसाइयों की संख्या ६०,००० है। यहाँ ईसाई-धर्म

का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि प्रत्येक बड़े गाँव में एक गिरजाघर है। यदि रविवार के दिन इन गाँवों में कोई घूमे तो घंटों की आवाज़ तथा बाइबिल लिये हुए पुरुषों और स्त्रियों के जाने का दृश्य उसको प्रतीत करावेगा कि वह योरप के किसी भाग में भ्रमण कर रहा है। खसिया साधारणतया निर्धन होते हैं, किन्तु जो ईसाई हो गये हैं वे बहुत ही सम्पन्न और सभ्य हैं। साधारण खसिया फूस की झोपड़ी में रहता है, किन्तु ईसाई खसिया पक्के गृहों में रहता है, अच्छे वस्त्र पहनता है, स्वच्छता का प्रेमी है और धनी है। ईसाई होना सभ्यता का लक्षण है। जो ईसाई नहीं है वह असभ्य है।



[चेरापूँजी की ओर का मार्ग—डमपेप ।]



[खसियों का ग्राम्य-जीवन]

मैंने इन लोगों में ईसाई-धर्म के प्रचार के कारण का अन्वेषण किया तब मालूम हुआ कि हिन्दुओं की ओर से कोई प्रयत्न उनको हिन्दू-धर्म में रखने का नहीं किया गया और जहाँ थोड़ा-बहुत कार्य हुआ भी, वहाँ ईसाई गाँव का गाँव हिन्दू हो गया। यदि १५ वर्ष तक लगातार इनमें धर्म का प्रचार तथा शिक्षा और ओषधियों का प्रबन्ध किया जाय तो तीन-चौथाई ईसाई हिन्दू-धर्म में फिर लौट आ सकते हैं। क्या हिन्दू महासभा इस ओर ध्यान देगी ?

(८)

इस यात्रा में मुझको हिन्दी-प्रचार और महिला-विद्यापीठ-सम्बन्धी बातों के जनाने का अच्छा अवसर मिला। आसाम-प्रान्त में हिन्दी-प्रचार का कार्य दक्षिण-भारत की तरह संगठित नहीं है। कुछ स्थानों में हिन्दी के पढ़ाने



[योरपीय ईसाई महिलायें बंगाली, आसामी और खसिया के वेष में। ये खसिया लोगों में ईसाई-धर्म के प्रचार में तल्लीन हैं।]

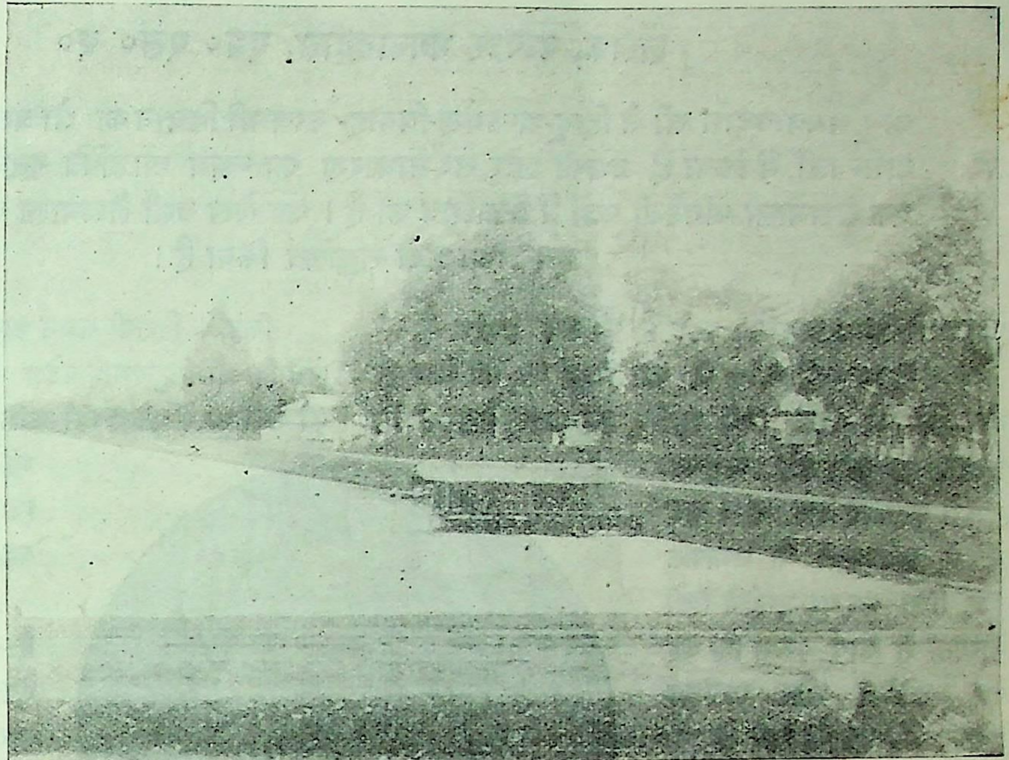
हैं। आसाम में मारवाड़ी, बिहारी और संयुक्त-प्रान्तीय लाखों की संख्या में फैले हुए हैं और प्रान्त भर का अधिकांश व्यापार और वाणिज्य उन्हीं के हाथ में है। आसामियों को उनके सम्पर्क में बहुत आना पड़ता है। वे हिन्दी समझ लेते हैं और टूटी-फूटी हिन्दी बोल भी सकते हैं। शहर के मुसलमान की बात तो कुछ कहनी ही नहीं, गाँव का मुसलमान भी हिन्दुस्तानी बोलता है। शिक्षित आसामियों को नागरी-अक्षर के प्रचार की बहुत कम आवश्यकता है, क्योंकि आसामी स्कूल कलकत्ता-विश्वविद्यालय से सम्बन्ध होने के कारण सातवीं कक्षा से दसवीं कक्षा तक प्रत्येक विद्यार्थी को संस्कृत पढ़ाते हैं और

के केन्द्र हैं, किन्तु उनमें आसामियों की संख्या अधिक नहीं है। कार्यकर्ताओं की भी बहुत कमी है। कांग्रेस के थोड़े से काम करनेवाले हैं, जिनमें हिन्दी-प्रचार के लिए पर्याप्त उत्साह है। किन्तु उनके पास कांग्रेस का इतना अधिक काम रहता है कि वे हिन्दी-प्रचार के लिए बहुत थोड़ा समय निकाल सकते हैं। दक्षिण-भारत की अपेक्षा आसाम में हिन्दी-प्रचार का कार्य बहुत ही सुगम है। आसामी भाषा बँगला की अपेक्षा हिन्दी के अधिक निकट है। इस पर सोलहवीं शताब्दी के वैष्णव-धर्म का अधिक प्रभाव पड़ा है और व्रजभाषा के हिन्दी पद वहाँ आज भी गाये जाते

संस्कृत-पुस्तकें प्रायः नागरी-अक्षरों में ही छपती हैं। इस प्रकार प्रत्येक हाईस्कूल और कालेज का विद्यार्थी नागरी-अक्षरों से बहुत कुछ परिचित होता है।

हिन्दी-प्रचार के लिए धन, सङ्गठन और अच्छे कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है। गौहाटी की हिन्दी-सभा ने मेरे कहने पर एक आसाम प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सङ्गठन करने का निश्चय किया है और दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार सभा की परीक्षाओं के ढङ्ग पर स्वतन्त्र हिन्दी-परीक्षायें स्थापित करने का भी प्रस्ताव स्वीकार किया है। इन दोनों कामों के लिए उनको अनुभवी और उत्साही चौबीस

घंटे काम करनेवाले धुनी हिन्दी-प्रचारकों की आवश्यकता है। यदि दक्षिण-भारत की तरह पाँच वर्ष लगकर आसाम में हिन्दी-प्रचार का काम किया जाय तो दक्षिण-भारत से चौगुनी सफलता यहाँ हो सकती है। इसके लिए बाहर से व्यय के लिए धन आसाम भेजना पड़ेगा। आसाम के मारवाड़ियों से भी हिन्दी-प्रचार के लिए कुछ धन मिल सकता है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि हिन्दी-प्रचार का काम कांग्रेसवालों के सहयोग से अधिक सफल हो सकता है।



[आसाम का शिवसागर तालाब। इसका घेरा २ मील है। विशेषज्ञ इसको देखकर चकित हो जाते हैं कि तालाब का बीच का भाग ऊँचा है और पानी से ढँका है।]

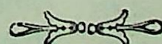
आसाम के शिक्षित लोगों में प्रयाग के महिला-विद्यापीठ के विभिन्न कार्यों की जानकारी बढ़ रही है और वहाँ के लोग बड़ी संख्या में अपनी कन्याओं को शिक्षा के लिए प्रयाग भेजने को उत्सुक हैं, किन्तु धनाभाव के कारण असमर्थ हैं। इस वर्ष आसाम से आनेवाली लड़कियों की संख्या गत वर्ष से दुगुनी हो गई है।

एकाकीपन का भार

लेखक, श्रीयुत रामदुलारे गुप्त

निशा जब अन्धकार में लीन
सोचती चुप कुछ अपनी बात,
ऊब उठता रह रह एकान्त
देखकर गिरता पीला पात;
और जब सूनेपन की शून्य
पैठ अपने में करता नाप,

तारिकायें जीवन का मूल्य
आँकतीं, आँख खोल चुपचाप;
—तभी, एकाकीपन का भार
व्यथा-सा, करवट लेता जाग,
सिहर कर जीवन से कुछ ऊब
और भरता मैं ठंडी साँस!...

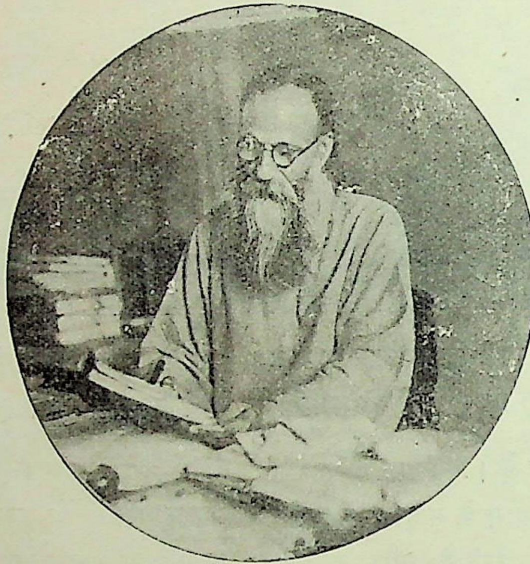


हिन्दू-अन्तर्वर्ण-विवाह

लेखक, डाक्टर भगवान्दास, एम० एल० ए०

बाबू भगवान्दास जी ने हिन्दू-अन्तर्वर्ण-विवाह- सम्बन्धी विधान का जो प्रस्ताव लेजिस्लेटिव असेम्बली में किया है उसकी ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित करने के लिए उन्होंने एक लेखमाला अँगरेज़ी पत्रों में प्रकाशित की है। यह लेख उसी लेखमाला का सार है, जिसे हमने 'आज' से सङ्कलित किया है।

यह विधान* अक्षरशः वही है जो सन् १९१८ में श्री विट्ठल भाई पटेल ने पेश किया था, पर जिस पर वोट लेने की नौबत नहीं आई। उन महान् देशभक्त को क़ानून का ज्ञान और अनुभव मुझसे कहीं अधिक था। बाद में वे असेम्बली के सभापति हुए, जिस पद पर उन्होंने ऐसी योग्यता से कार्य किया कि वह पद शोभित और अलंकृत हुआ। मैंने यही उचित समझा कि उन्हीं के विधान का पुनरुद्धार करूँ और उसमें कोई परिवर्तन न करूँ।



[डाक्टर भगवान्दास]

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हिन्दू-समाज के कितने ही प्रभावशाली अंग इस विधान को नापसन्द करते हैं। उन्हें हम सम्मानपूर्वक और और बिना किसी प्रकार के लेश-मात्र अनादर की सूचना के 'अपरिवर्ती' कह सकते हैं। मैं उनकी इस इच्छा का पूरी तरह सत्कार करता हूँ कि वे जिस प्रकार अब तक रहते आये हैं उसी प्रकार रहते जायँ, और उनके सामाजिक प्रबन्ध और कार्य-क्रम में किसी प्रकार की दिक्कत न पेश होने पाये। उनकी इस आकांक्षा में इस विधान से किसी प्रकार का विघ्न न होगा।

बिल के विरोधी सज्जन अगर केवल इतना भी मान लेंगे कि श्री विट्ठलभाई पटेल नेकनीयती और हिन्दू-समाज की सेवा करने की सच्ची अभिलाषा से प्रेरित थे, तथा मेरा भी भाव वैसा ही है, तो इस विधान पर सार्वजनिक चर्चा और बहस कटुता से रहित होगी।

संस्कृत-शास्त्रों का कहना है—"क़ानून और रवाज को देश-काल और स्थिति के अनुसार बदलना चाहिए। मनुष्य की कोई कार्य -प्रणाली ऐसी नहीं हो सकती जिससे सबका लाभ हो और जिसका परिणाम अच्छा ही हो। अतएव जब किसी विशेष क़ानून के बुरे परिणाम अच्छे परिणामों को दबाने लगते हैं तब दूसरे क़ानून बनाने पड़ते हैं। यह नया क़ानून इसी तरह आगे चलकर देश-काल के परिवर्तन से हानिकर होने लगता है और उसे फिर बदलना पड़ता है। इससे हम देखते हैं कि कोई समता, कोई अन्तिम रूप, कोई अपरिवर्तनीयता कहीं भी किसी क़ानून में नहीं है। इसलिए हम चारों ओर आचारों में भेद देखते हैं।"

हिन्दू-धर्मशास्त्रों ने धर्म-व्यवस्थापन के सिद्धान्तों को स्पष्ट कर दिया है, और उनमें देशकालानुसार परिवर्तन, विरोधी भाव के समन्वय, समझौते आदि की पूरी गुंजायश रक्खी है। मानव-संसार की सबसे पुरानी क़ानून की पुस्तक मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा है कि धर्म, क़ानून, अधिकार और कर्तव्य को परस्पर बाँधनेवाले नियम मनुष्य-जाति की अवस्था के अनुसार बदलते रहते हैं।

* इस विधान का नाम 'हिन्दू-विवाह 'वेलिडिटी ऐक्ट' होगा।

हिन्दुओं का कोई भी विवाह केवल इस कारण ग़ैर क़ानूनी न समझा जायगा कि विवाहित स्त्री और पुरुष एक ही वर्ण के नहीं हैं—चाहे इसके ख़िलाफ़ भी कोई रवाज हो या हिन्दुओं के क़ानून का अर्थ इसके विपरीत लगाया गया हो।

सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग में मनुष्यों के धर्म दूसरे दूसरे होते हैं।

'नाम्ना सवर्ण-विवाह' के नियम का सख़्ती से पालन करने का दूसरी स्थिति में चाहे कुछ ही फ़ायदा हुआ हो, अब तो हिन्दू-समाज में बहुत-से लोगों का यह निश्चित मत हो रहा है कि इसकी 'अति' हो गई है और इससे अब हानि हो रही है, और ये लोग ऐसे हैं जो किसी प्रकार अविवेकी, जल्दबाज़, अथवा अपरिपक्व बुद्धि के नहीं कहे जा सकते।

स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरञ्जन दास और जीवित महात्मा गांधी और श्री राजगोपालाचारी जैसे बड़े बड़े देशभक्त और नेता जिनकी उदार बुद्धि, और आत्म-त्याग में किसी को सन्देह नहीं हो सकता, इन सबकी यही राय है कि इस प्रकार सख़्ती के साथ 'नाम्ना सवर्ण-विवाह' का प्रचार उचित नहीं है, और उन्होंने यह मत ही नहीं रक्खा, बल्कि अपने विचार के अनुसार उन्होंने इसका अनुसरण भी किया, और बड़े अच्छे उदाहरण देश के सामने उपस्थित किये। नागरिकों की अन्य श्रेणियों में भी ऐसे विवाह समय समय पर होते आ रहे हैं और अब अधिक संख्या में हो रहे हैं। अतः इस विधान को उन सब लोगों का आशीर्वाद प्राप्त होने की आशा हो सकती है जो यह मानते हैं कि सत्य और कुशल सदा इसी में है कि मध्यमा वृत्ति का अवलम्बन किया जाय, और भूल तथा भय सदा अति का आश्रय लेने में रहता है।

हिन्दू-रूढ़ियाँ और सामाजिक जीवन के नियम अति की ओर जा रहे हैं। जिन लक्ष्यों के लिए उनकी सृष्टि हुई थी, ठीक उनके उलटे परिणाम वे उत्पन्न कर रहे हैं। आरम्भ में उनकी सृष्टि समाज-व्यवस्था की एक सम्पूर्ण योजना के अंग के रूप में हुई थी। वे इस उद्देश से बनाये गये थे कि ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकें जिसके द्वारा कुटुम्बों के और इस प्रकार सारे समाज के हित और सुख की वृद्धि हो सके।

भारतीय रस्म-रवाज यद्यपि आरम्भ में सामाजिक संघटन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आश्रित थे, धीरे धीरे कुछ अंगों पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिये जाने और दूसरे अंगों की उपेक्षा होने से वर्तमान जाति-भेद में परिवर्तित हो गये हैं। इस व्यवस्था की अत्यधिक कठोरता हिन्दू-धर्म और भारतीय जनता के हिन्दू-अंश के स्पष्ट ह्रास का, और फलतः अप्रत्यक्ष रूप से अन्य अंशों के भी ह्रास का, मुख्य कारण है। जो वर्णव्यवस्था सबको आपस में बाँधे रखने की, केन्द्र की ओर खींचे रखनेवाली शक्ति थी, वह आज सबको अलग अलग करने की और केन्द्र से दूर फेंक देनेवाली शक्ति बन गई है। सबमें मेल कराने के बदले वह सबको सबका विरोधी बना रही है।

यदि ठीक दवा समय से न दी गई तो इन रूढ़ियों और रवाजों की दिन दिन बढ़ती जानेवाली कठोरता हिन्दू-समाज-शरीर की मृत्यु का कारण होगी। जो मानव-समुदाय इस समय हिन्दू-समाज के नाम से पुकारा जाता है वह और उसकी संतति-प्रसंतति यदि हिन्दू-धर्म (ईश्वर न करे) मिट भी जाय तो भी नष्ट न होगी, पर आध्यात्मिक संस्कृति तथा सभ्यता के कुछ बहुमूल्य तत्त्व तथा समाज-संघटन के उत्तम सिद्धान्त बहुत दिनों के लिए लुप्त हो जायँगे, जिससे सारी मानव-जाति की भारी क्षति होगी।

वर्ण-व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्तों की ओर लापरवाही करने, उसके अर्थ का अनर्थ करने, उसके कुछ अंशों पर अत्यधिक ज़ोर देने और दूसरे अंशों को भुला देने, बलवान् और चालाकों के सब अधिकारों को पकड़ने और कर्तव्यों से परहेज़ करने से ही जीविकानुसार विभाजित वर्ण-व्यवस्था बिगड़कर आज उसका स्वाँग-मात्र रह गया है, और अन्य बहुत-सी ख़राबियों के साथ विवाह-सम्बन्धी वे ख़राबियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनको दूर करने के लिए हम लोग इस नये उपन्यस्त विधान के रूप में नये क़ानून के बनवाने का यत्न करने के लिए मजबूर हुए हैं।

इस विधान से कोई विवश नहीं किया जाता है कि वह अपने वर्ण अथवा उपवर्ण के बाहर विवाह करे, परन्तु ऐसा करनेवालों की वह जातिच्युत किये जाने से केवल रक्षा करेगा। किसी के लिए यह लाज़िमी न होगा कि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ वह सामाजिक सम्बन्ध रक्खे ही जिसने इस प्रकार का विवाह किया हो। पर यदि कोई प्रकट रूप से यह घोषणा करेगा कि अन्तर्वर्ण-विवाह करने के कारण कोई स्त्री या पुरुष जातिच्युत हो गया है और सम्बन्ध रखने योग्य नहीं है तो उस पर मान-हानि का मुक़दमा चल सकेगा और वह अदालत में अपराधी और दंडनीय समझा जायगा।

इस विधान से कुछ और लाभ भी होंगे। (१) युवा और युवती की साथ साथ पढ़ाई का कालेजों में जो प्रचार अब चला है और देश में बढ़ता जा रहा है उससे बहुत-से सुखदायी विवाह हो सकेंगे, और अनाचार की घृणा-जनक भूल, मन और शरीर को गंदा करनेवाले और आजीवन हृदय में चोर और शोक-शंकु बैठा देनेवाले कार्य न होंगे और तरह तरह की बीमारियाँ विशेषकर युवतियों को न भोगनी पड़ेंगी। (२) युवतियों की आत्म-हत्यायें और दूसरी ख़राबियाँ जो अब शादी के समय बड़े बड़े दहेज़ माँगने के कारण हो रही हैं वे कम हो जायँगी, और शिक्षित युवा और युवती स्वतंत्र रूप से अपना स्वयं वरण कर सकेंगे, और वर्ण के नाममात्र से अनुचित रूप से बँधे न रहेंगे। याद रहे कि यह बहुत दहेज़ माँगने की प्रथा, कुछ तो आर्थिक संकट के कारण और कुछ आधुनिक सभ्यता की धनलोलुपता के भाव के कारण उत्पन्न हुई है।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि धर्म के किसी आवश्यक सिद्धान्त का अथवा धर्म-शास्त्र के किसी मौलिक आदेश का विना विरोध किये, यह विधान उस समाज को सामाजिक जीवन और संघटन के बहुमूल्य सिद्धांतों को फिर दे सकेगा जिसे अब हिन्दू-समाज कहते हैं, जिसे वास्तव में मानव-समाज कहना चाहिए, और जिसने इन सिद्धान्तों को काल के प्रवाह में धीरे धीरे बहा और भुला दिया है।

जो लोग धर्मशास्त्र के शब्दों को बहुत मानते हैं वे भी अन्तर्वर्ण-विवाह का समर्थन प्राचीन ग्रन्थों में विशेष कर पुराणों में पावेंगे। मैं भी बहुत विनीत भाव से धर्मशास्त्र के शब्दों का आदर करता हूँ, यदि शास्त्र वास्तव में प्राचीन हों और ऐसे समय के हों जब भारतवर्ष स्वाधीन था और ऋषिजन शास्त्रकार थे, तथा उनके शब्दों का अर्थ धर्मशास्त्र के मुख्य अंग निरुक्त और मीमांसा के अनुसार ठीक तरह लगाया जाय। जो लोग बुद्धिवादी और साधारण समझदारी पर भरोसा करनेवाले हैं उनके लिए तो किसी दलील की आवश्यकता ही नहीं है।

स्मृतियों में आठ प्रकार के विवाहों की चर्चा है और दाय की दृष्टि से बारह या उससे भी अधिक प्रकार के पुत्र माने जाते हैं। और आज भी हम देखते हैं कि बहुत-से अन्य प्रकार के विवाह के तरीक़े भी जारी हैं। उदाहरणार्थ, जाटों में श्वसुर का विधवा पतोहू से विवाह होना एक हाईकोर्ट-द्वारा हाल में जायज़ ठहराया गया है। मुझसे यह भी कहा गया है कि जाटों में एक स्त्री के कई पतियों का एक ही समय में होना भी जायज़ माना जाता है, और कभी कभी दो-तीन भाइयों के बीच एक ही विवाहिता स्त्री होती है। कुछ समुदायों में विधवा सास के साथ दामाद का विवाह होना जायज़ है। किन्हीं किन्हीं पहाड़ी हिंदू जातियों में पत्नियों का विनिमय भी होता है। यह एक ओर हद से गुज़रे 'अति' के उदाहरण हैं। साथ ही इसके दूसरी ओर उच्च जातियों में दूसरे प्रकार की 'अति' मिलती है। मुझसे दो मित्रों ने कहा है जो—ब्राह्मणवर्ण के पञ्चगौड़ उपवर्ण के सरयूपारी उप-उपवर्ण के त्रिवेदी और त्रिपाठी उप-उप-उपवर्ण के हैं—कि उनमें और पवित्रतम दल हैं जो पंक्तिपावन कहलाते हैं, जो अवध के कुछ ज़िलों में रहते हैं, और जिनमें अति क्षुद्र निस्सार हेतुओं से इतने लोग जातिच्युत कर दिये गये हैं, और विवाह-सम्बन्ध के योग्य इतने थोड़े कुल रह गये हैं कि अब विवाह सगोत्र में होने लगा है—'केवल दूध का बिराव किया जाता है', अर्थात् एक माता का दूध पीनेवाले भाई-बहनों का ब्याह आपस में नहीं किया जाता है। मैंने दोस्तों से सुना है कि इसी तरह मुसलमानों में क़ुरैशी, मिलकी और सय्यद समुदाय हैं जो यथा-सम्भव यही प्रयत्न करते हैं कि अपने समुदाय के भीतर ही विवाह करें। दक्षिण में मालाबार के समुद्रतट के प्रदेश में मातृपरम्परा से दाय का अधिकार मिलता है, और वहाँ पर उच्च श्रेणी के ब्राह्मणों के विवाह-सम्बन्धी नियमों में उत्तर के ब्राह्मणों के नियमों से बहुत अन्तर है।

रस्मों की यह अनन्त विभिन्नता जो बुद्धि को चकरा देती है, प्रस्तावित विधान से उन लोगों के लिए बहुत सरल हो जायगी जो इससे लाभ उठाना चाहेंगे। जो ऐसा नहीं करना चाहते वे बिना रोकटोक के अपनी विशेष रीति के अनुसार कार्य करने और कौटुम्बिक जीवन का निर्वाह करने के लिए स्वतन्त्र रहेंगे।

इस स्थान पर एक व्यावहारिक प्रश्न का उत्तर दे देना चाहिए। बीच बीच में मुझसे पूछा गया है कि "एक वर्ण की स्त्री जब दूसरे वर्ण के पुरुष से विवाह करेगी, तब विवाह के बाद उसका तथा उसके लड़कों का वर्ण क्या

होगा"। सीधा और स्पष्ट उत्तर इसका यह है कि जिस तरह वह अपना गोत्र बदलकर पति के गोत्र की हो जायगी, उसी तरह वह अपना वर्ण भी बदलकर पति के वर्ण की हो जायगी, और लड़के भी पिता के ही वर्ण के होंगे और कर्मकाण्ड-सम्बन्धी धर्मकृत्य के लिए तथा पुरातन धर्म-व्यवस्थापक मनु ने भी यही कहा है—"यो भर्त्ता सा स्मृतांगना", जो पति है वही पत्नी भी है। इस प्रमाण से जो वर्ण पुरुष का है वही वर्ण उस स्त्री का भी हो जायगा जो उसके साथ विवाह करेगी और जिससे वह विवाह करेगा।

इस विधान का प्रस्ताव करके मैं कोई नये तरीक़े के चलाने का प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ। मैं वास्तव में उस परिपाटी के पुनरुद्धार का यत्न कर रहा हूँ जो सातवीं शताब्दी के पहले इस देश में वास्तव में जारी थी, जब भारतीय जनता का जीवन अधिक सुखी, सप्राण, सबल, स्वाधीन, स्वराज्यवान् था।

स्त्री-पुरुष की परस्पर कामना और विवाह के संबंध में, विगत बीस-तीस वर्षों में पाश्चात्य देशों में इतने लेख और ग्रन्थ निकले हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भारी आमूल उलट-पलट हो रही है। पर ध्यान से देखने से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि इस सब अनंत लिखाई में, एक ही प्रश्न के दो परस्परविरोधी उत्तरों में से, एक का या दूसरे का प्रतिपादन किया जा रहा है; अर्थात् किस प्रकार स्वार्थपूर्ण आनन्द का और कर्तव्य-परायणता पर आश्रित सन्तान-पालन का समन्वय हो—किस प्रकार दम्पति-रति का और संतति-प्रीति का समन्वय हो।

बुद्धिमानी इसी में है कि वैयक्तिक जीवन के तथा सामाजिक, सामूहिक, राष्ट्रीय जीवन के सभी अंगों की क्रियाओं को बीच के रास्ते पर रक्खा जाय, और दोनों ओर की 'अतिकोटि' बचाई जाय।

भारत में अन्तर्वर्ण-विवाह की रुकावट की कड़ाई 'अति' को पहुँच गई है और इससे शिक्षित समुदायों में भी इसके विरुद्ध विद्रोह-सा हो रहा है। यदि यह विद्रोह बुद्धिसंगत और शिष्ट प्रकारों से शान्त नहीं किया जायगा और समय से उपयुक्त रियायतें न की जायँगी तो हिन्दू-समाज में घोर उत्पात मचने का और समाज के नष्ट हो जाने का भय है। "रसरी उतनिहि तानिए जो नहिँ जावै टूट"। शिक्षा, देशाटन और जीविका की आवश्यकताओं के दबाव से अंतर्वर्ण-विवाह बढ़ रहे हैं। बहुत लोग बहुत दिनों के लिए अपने घरों से दूर दूर प्रदेशों में चले जाते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष अपने रिश्तेदारों से और उन सब लोगों से जिनसे साधारणतः उनका संबंध था, कट जाते हैं। यदि कोई कारगर तरीक़े नहीं निकाले जाते जैसा कि यह विधान निकालने का यत्न कर रहा है, जिससे वे सब लोग सामाजिक व्यूहन में अपना उपयुक्त स्थान बनाये रह सकें, तो अवश्य ही इनके कारण समाज-शरीर में ऐसे दुष्परिणाम उत्पन्न होंगे, जैसे रोगी, दुर्बल और जर्जर व्यक्ति के शरीर में पैदा हो जाते हैं, जब उसमें कोई बाहरी, प्रतिकूल, असात्म्य, अजरणीय, अपचनीय, पदार्थ प्रवेश करके रह जायँ और निकालकर दूर न किये जा सकें। ऐसे अजीर्ण और अनुद्गीर्ण द्रव्य शरीर में बड़ा उपद्रव उत्पन्न करते हैं। इसलिए उचित है कि इनका स्नेहन करके इनका समाज-शरीर में परिणमन कर लिया जाय।

उपन्यस्त विधान किसी प्रकार से भी वर्णव्यवस्था का विरोध नहीं करता, प्रत्युत स्वभाव, गुण (जीविका), कर्म के अनुसार सच्ची वर्णव्यवस्था का ही समर्थक है। यह विधान स्वप्न में भी यह नहीं चाहता कि उत्कृष्ट का निकृष्ट से विवाह हो, बल्कि यही चाहता है कि उत्कृष्ट का उत्कृष्ट से, समान का समान से विवाह हो।

अन्तर्वर्ण-विवाह के इस प्रश्न से अस्पृश्यता के प्रश्न का भी सम्बन्ध है। अस्पृश्यता मल का गुण है, न कि मनुष्य का। धर्माभिमानी लोगों के अस्पृश्यता-विषयक भाव में विज्ञान का अंश इतना ही है कि स्पर्श उन लोगों का अनुचित है जो मलिन हैं, अथवा संक्रामक वा छूत के रोगों से पीड़ित हैं। पर मनुष्य चाहे जैसा निर्मल और नीरोग और शुभ्र हो, यदि उसका जाति-वर्ण-नाम किसी ऐसी जाति का है जो प्रचलित प्रथा से अस्पृश्य है तो उसे छूना न चाहिए—यह केवल 'मूढ़ग्राह' है, और ऐसे आदमियों का अपने लिए ऐसे जाति-वर्ण-नाम दाँतों से पकड़े रहना—यह और भी घोर 'मूढ़ग्राह' है!

मैंने अपने एक अँगरेज़ मित्र से सुना है कि उनके देश में जब, चालीस-पचास वर्ष हुए, यह बात पहले-पहल वैज्ञानिकों को मालूम हुई कि मैले हाथों में लगे हुए रोगाणुओं से रोग, स्पर्श-द्वारा, एक शरीर से दूसरे शरीर में संक्रमण करते हैं तब वैज्ञानिकों ने कहा कि आटा तथा अन्य खाद्य

पदार्थ हाथ से गूँधे या अन्य प्रकार से छूए न जाने चाहिए। ज्यों ही यह बात कही गई, त्यों ही खाद्य पदार्थ बनानेवाले अपनी जिन्सों पर इस मज़मून के पुर्ज़े लगाने लगे—'हाथ नहीं लगाया गया।' मेरे मित्र को यह जानने की इच्छा हुई कि देखूँ, गूँधने आदि का काम ऐसे कारख़ानों में अन्य किस प्रकार किया जाता है, जहाँ डबल रोटी, बिसकिट आदि खाद्य बनाये जाते हैं। वे एक कारख़ाने में गये तो क्या देखा कि वहाँ मज़दूर अपने नंगे पैरों से गूँध रहे हैं। डाक्टरों ने हाथ लगाने को मना किया था, पैरों के बारे में तो कुछ नहीं कहा था!

जहाँ बुद्धि का अभाव होता है या सदाचार का स्थान अहंकार ग्रहण करता है या धोखा देने, बहकाने और ठगने की प्रवृत्ति होती है या स्वत्वों या अधिकारों को हथियाने और कर्तव्यों को टालने की इच्छा होती है, वहाँ ऐसा अर्थ का अनर्थ सदा हुआ ही करता है। वर्णव्यवस्था की भी यही दशा हुई है।

आज जाति और उपजाति की पंचायतों के मुखिया भूल गये हैं कि उनका कर्तव्य अपनी अपनी सीमा के भीतर अपनी बिरादरी की सेवा-सहायता करना है। इसकी जगह वे भोजन, विवाह और छूआछूत के मामलों में, उनकी राय से ज़रा भी प्रतिकूल काम करनेवालों को जातिच्युत करके, अपनी अधिकार-शक्ति का रस ले रहे हैं। सर्वत्र अधिकार का अर्थ हो गया है दुःख देने का अधिकार न कि सुख देने का।

मैं तो कोई नई बात भी नहीं कहता। जिसको दृढ़ विश्वास से मानता हूँ कि यही परम पुरानी बात है उसी को आपके सामने कहता हूँ। आदिकाल के वेद-पुराण-सम्मत तात्त्विक धर्म का शुद्धरूप से पुनः प्रतिष्ठापन चाहता हूँ। चारों ओर रहन-सहन बदल रहा है और वह निर्मर्यादता, उच्छृङ्खलता, स्वच्छन्दता की ओर जा रहा है। उस सर्व-संकर की दशा में, सच्ची वर्णव्यवस्था के प्रतिष्ठापन का यत्न, अपनी अत्यन्त क्षुद्र शक्ति भर कर रहा हूँ, और इस कार्य में सब विचारशील सज्जनों से सहायता की प्रार्थना करता हूँ।

ज़रूर इस विधान के भी दुरुपयोग का भय है। किस उत्तमोत्तम पदार्थ के दुरुपयोग का भय नहीं है।

सभी कार्यों में कुछ गुण रहते हैं, कुछ दोष। द्वन्द्वमय संसार है। एक समय में उसी कार्य से गुण अधिक निकलते हैं, दूसरे समय में दोष अधिक। मर्यादास्थापक शासक का और उसके परामर्शदाता निःस्वार्थी अनुभवी विद्वानों का यह काम है कि सदा सावधान होकर देखते रहें कि किस मर्यादा से, जिससे पहले गुण अधिक निकलते थे अब दोष अधिक पैदा होने लगे हैं, और तब उसको बदल कर दूसरी मर्यादा का स्थापन करें। लेजिस्लेचर का एकमात्र यही कर्तव्य है। सो अब चातुर्वर्ण्य की मर्यादा के तीन हज़ार उपोपोपोपोप जातियों में बिखर जाने से निश्चयेन ऐसी दशा आ गई है कि यदि चातुर्वर्ण्य का सर्वथा नाश इष्ट न हो, उसे बचाना मंज़ूर हो, तो यह नया विधान स्वीकार करना चाहिए।

कुछ सज्जनों ने यह सूचना की है कि उपन्यस्त विधान में ऐसी शर्त्त बढ़ा देनी चाहिए जिससे एक पत्नी के जीवनकाल में इस विधान के अनुसार दूसरी स्त्री से विवाह न हो सके तथा यह भी कि विशेष विशेष कारणों से विवाह-सम्बन्ध का विच्छेद भी हो सके। बम्बई-प्रान्त के एक सज्जन का एक लेख प्रयाग के 'लीडर' अख़बार में निकला था, जिसमें उन्होंने यह कहा है कि बम्बई-प्रान्त में कई ऐसे विवाह हुए हैं जिनमें पहले बाल्यावस्था में ब्याही अनपढ़ पुराने चाल की सीधी-सादी पत्नी मौजूद हैं, पर उनके पतियों ने नई 'ग्रेजुएट' (बी० ए० आदि पास) स्त्रियों के लोभ में पड़ कर इनसे ब्याह कर लिया है, और पहली पत्नियों का त्याग कर दिया है, जिससे वे घोर कष्ट में पड़ी हैं। इस बात पर मैंने बुद्धिभर, शक्तिभर, ध्यान दिया; मित्रों से भी सलाह की; अन्त में मेरा वचार यही स्थिर हुआ कि उपन्यस्त विधान में विवाह-विच्छेद, एक-विवाह आदि की शर्त बढ़ाने से कोई लाभ न होगा, प्रत्युत हानि होगी।

विवाह-सम्बन्ध तोड़ने या न तोड़ने का निश्चय स्त्री-पुरुष के शुभचिन्तकों और रिश्तेदारों की पंचायत पर ही छोड़ना चाहिए; कचहरियों पर नहीं। जब ऐसी पंचायत निर्णय कर दे कि स्त्री का दोष नहीं, और पुरुष ऐसा नालायक़ है कि उसके साथ स्त्री का रहना असम्भव है और स्त्री के जीवन-निर्वाह के लिए पुरुष को इतना इतना मासिक या वार्षिक देना चाहिए, और पुरुष इस फ़ैसले को न माने, तब स्त्री अदालत में भले ही उसी फ़ैसले के

भरोसे नान व-नफ़का की नालिश कर सकती है, और मुजव्विज के जब तक कोई विशेष हेतु उस पंचायती फ़ैसले के विरुद्ध मालूम न हों, उसी के अनुसार डिग्री देना चाहिए।

हिन्दू-समाज में एक ही दो नहीं, बहुत-से अनाचार हो रहे हैं। सत्तर-अस्सी वर्ष पहले तक, बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मणों में, पुरुषों के पचास पचास और सौ-सौ स्त्रियों से विवाह होते थे। मुझे याद है कि युवावस्था में मैंने, पचास वर्ष पहले, एक हिन्दी-पुस्तक में पढ़ा था कि कुछ समय पहले एक कुलीन के अस्सी और एक के डेढ़ सौ विवाह हुए थे। ऐसे भाग्यशाली जामाताओं की जीविका ही यह होती थी कि श्वसुरालयों में दो-दो, चार-चार, आठ-आठ दिन ठहरते हुए, भोजन करते हुए, अपनी उम्र बिता दें। पत्नियाँ, पति के घर में नहीं, पिताओं के घरों में ही रहती थीं। काल के प्रवाह से यह सब अनाचार बन्द होते जाते हैं और उनके स्थान पर नये प्रकार के दुराचार पैदा होते जाते हैं।

आज-कल भी राजाओं की, नवाबों की रियासतों में जो घोर पाप हो रहे हैं तथा उससे स्यात् कुछ कम मात्रा में अन्य धनाढ्य घरों में, मठों में, तीर्थस्थानों में हो रहे हैं, वह सब थोड़ा-सा ही दर्याफ़्त करने से मालूम हो जाता है अथवा यह कहना चाहिए कि सभी मध्यवयस्क आदमियों को विदित है ही। गाँव गाँव में, शहर शहर में, तरह तरह के व्यभिचार, कुछ स्त्रियों के आरम्भ किये, कुछ पुरुषों के आरम्भ किये, हो रहे हैं। नये प्रकार की प्रच्छन्न वेश्यायें भी बड़े शहरों में बढ़ रही हैं, बल्कि सिनेमा आदि के प्रभाव से पुराने चाल की, तौर्यत्रिक में, वाद्य, गीत, नृत्य में प्रवीण वाराङ्गनायें कम हो रही हैं। इन सब पापों के परिशोध का यत्न करना नितान्त आवश्यक है। पर उपन्यस्त विधान में इन सबके सम्बन्ध में शर्त बढ़ाना तो स्पष्ट ही किसी को भी उचित और सुप्रशस्त नहीं जान पड़ेगा। मेरी प्रार्थना है कि उक्त द्वितीय विवाह को भी इसी कोटि में डालना चाहिए और इसके परिशोध का यत्न अलग करना चाहिए, सो भी पूर्वापर को बहुत विचार करके।

मेरी क्षुद्र बुद्धि में तो यही बैठा है कि जिस स्वार्थ-बुद्धि, भेद-बुद्धि, परस्पर द्रोह-बुद्धि, मिथ्या-बुद्धि से आज तीन सहस्र खण्डों में यह 'हिन्दू' नामक समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है वह दूषित बुद्धि ही इन सब उपर्युक्त दोषों और रोगों का एकमात्र निदान कारण है, और उस शोधन से वर्णाश्रम-धर्म का शोधन होकर सब रोग शांत होंगे—जहाँ तक ऐसा शांत होना सम्भव है; क्योंकि सब दुःख, शोक, पाप संसार से उठ जायगा, यह तो 'न भूतो, न भविष्यति'।

जिन कुल-कुटुम्बों में अन्तर्वर्ण-विवाह की चर्चा स्वप्न में भी नहीं हुई है उनसे कितनी ही विधवायें या अविवाहिता युवतियाँ प्रतिवर्ष हज़ारों की ही संख्या में अपने ही घर के पुरुषों-द्वारा भ्रष्ट होकर, घरों से घोर निर्दयता से निकाल दी जाती हैं और जीते-जी तरह तरह के नरकों में झोंक दी जाती हैं। इनकी यातना के आगे उन स्त्रियों की संख्या कितनी है और उनका दुःख क्या है, जिनके पतियों ने दूसरा विवाह कर लिया है।

यदि अन्तर्वर्ण-विवाह का सिद्धांत देश में फैले तो धीरे धीरे ऐसी भयङ्कर घटनायें भी कम हो जायँगी।

तत्काल मेरा प्रयत्न यही है कि हिन्दू-समाज में अन्तर्वर्ण-विवाह की धर्म्यता और पत्नी का पति के वर्ण का धारण कर लेने की धर्म्यता स्वीकार कर ली जाय, 'जात-बाहर' करने की प्रथा बन्द हो, परस्पर सौमनस्य बढ़े। यदि यह सिद्ध हो गया तो क्रमशः अन्य सब दोष आपसे आप घट जायँगे।

अन्तर्वर्ण-विवाह का नाम लेते ही 'अपरिवर्तनवादी' सज्जनों को तत्काल ध्यान यही हो जाता है कि यह तो ऊँच-नीच को एक करना चाहता है, उत्कृष्ट स्त्री वा पुरुष का सम्बन्ध निकृष्ट पुरुष वा स्त्री से कराना चाहता है। इसलिए पुनः पुनः यह बात दुहरानी-तिहरानी पड़ती है कि ऐसी मन्शा इस विधान की स्वप्न में भी नहीं है। यह तो सुतरां-नितरां सच्चे उत्कृष्ट का (केवल वर्ण नाम से ही नहीं) सच्चे उत्कृष्ट से ही सम्बन्ध चाहता है और तत्रापि यह किसी से स्वप्न में भी ऐसा नहीं कहता कि तुम ख़्वाहमख़्वाह ऐसा ऐसा विवाह करो, बल्कि केवल इतना ही कहता है कि यदि कभी कदाचित् किसी किसी स्त्री-पुरुष ने परस्पर स्नेह-प्रीति से मन मिलने के कारण विवाह कर लिया तो चाहे उनके वर्णनाम भिन्न भी रहे हों, तो भी उस विवाह को धर्म्म ही जानो, उन दोनों को जातिच्युत करने का यत्न मत करो और पत्नी का वही नाम-वर्ण भी मानो जो पति का है।

३१ मई, सौर १७ ज्येष्ठ के 'आज' में एक मुक़दमे की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसका फ़ैसला २८ अप्रेल सन् १९३६ को ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े न्यायालय प्रिवी कौंसिल ने किया है। इस मामले में 'हिंदू' कहलानेवाले, 'हिंदू-धर्म' को माननेवाले, 'धर्म' का बाना बाँधनेवाले लोगों में प्रचलित रूढ़ियों और रस्म-रवाजों का जिनका उल्लेख किया जा चुका है, ऐसा विचारकारक प्रदर्शन होता है कि उसकी मुख्य बातों का निर्देश यहाँ नितान्त प्रसक्त और प्रयोजक है।

मुसम्मात जग्गो का पहला विवाह बैजनाथ से हुआ। दोनों वैश्य वर्ण की एक ही उपजाति के थे, यह उस रिपोर्ट से स्पष्ट है, यद्यपि उस उपजाति का नाम नहीं दिया गया है। बैजनाथ मर गया। जग्गो ने अपने देवर, यानी बैजनाथ के छोटे भाई शिवनाथ से ब्याह कर लिया। पर शिवनाथ का एक विवाह इसके पहले भी हो चुका था और उस ब्याह की स्त्री जीवित थी। दोनों सौतों में रोज़ झगड़ा होने लगा। ऊबकर शिवनाथ ने जग्गो का त्याग कर दिया। जग्गो ने निक्कूलाल से सगाई कर ली। निक्कूलाल वैश्य वर्ण की कसौंधन उपजाति का था। जग्गो की उपजाति दूसरी थी। निक्कूलाल की मृत्यु के बाद उसकी अपनी उपजाति की स्त्री से उत्पन्न पुत्र गोपीकृष्ण और जग्गो से उत्पन्न पुत्र श्रीकृष्ण में निक्कूलाल की सम्पत्ति के आधे हिस्से के लिए झगड़ा हुआ।

गोपीकृष्ण का कहना था कि जग्गो का निक्कूलाल से जो ब्याह हुआ था वह धर्मानुकूल वा जायज़ नहीं था, क्योंकि (१) ब्याह के समय जग्गो का पहला पति जीवित था और (२) जग्गो और निक्कूलाल एक ही उपजाति के नहीं थे, इसलिए जग्गो का लड़का श्रीकृष्ण निक्कूलाल की सम्पत्ति का वारिस नहीं हो सकता।

प्रिवी कौंसिल के विचारपतियों ने राय दी है कि निक्कूलाल से जग्गो का विवाह जायज़ है, यद्यपि इस विवाह के समय उसका पहला पति जीवित था। विचारपतियों ने स्पष्ट लिखा है—यद्यपि "विवाह द्विजों में गिने जानेवाले वैश्यवर्ण की दो भिन्न उपजातियों के व्यक्तियों में हुआ है," फिर भी "विवाह-सम्बन्धी हिंदू-विधि जिन धर्मशास्त्रों से ठहराई जाती है उनमें एक ही वर्ण की दो उपजातियों में परस्पर विवाह का निषेध कहीं नहीं पाया जाता और न कोई पहले की ऐसी नज़ीर या साधारण सिद्धान्त ही है जिसके अनुसार ऐसा विवाह निषिद्ध माना जाय।"

मथुरा-प्रांत में चौबे उपजाति में भगिनी-विनिमय से विवाह अक्सर होता है, अर्थात् एक सज्जन की बहन दूसरे सज्जन से ब्याही गई तो दूसरे सज्जन की बहन पहले सज्जन से ब्याही गई। दोनों सज्जन परस्पर साले भी और बहनोई भी होते हैं। अब जैन-समाज में भी 'जन्मना वर्ण' माना जाता है, यद्यपि महावीर जिन का और प्राचीन जैनाचार्यों का मत 'कर्मणा वर्ण' का ही था।

इसका दुष्फलों में एक सुफल यह हुआ है कि नाम से एक उपवर्णवाले जैन और वैष्णव 'हिन्दू' कुलों में विवाह-सम्बन्ध अक्सर होता है; यद्यपि दोनों उपधर्मों की विवाह-पद्धतियों में बहुत भेद है, पर प्रायः वरपक्ष की पद्धति से विवाह हो जाता है। 'सिखों' के एक वर्ग के साथ भी 'हिन्दुओं' के विवाह-सम्बन्ध इस प्रकार के होते हैं।

जब इन सब प्रकारों को, व्यवहारों को, 'सर्वसहा मेदिनी' के ऐसा सर्वसह 'हिन्दू-धर्म,' 'सनातन-धर्म' 'मानव-धर्म' बर्दाश्त कर रहा है, बल्कि ख़ुशी से ढो रहा है, तब फिर अन्तर्वर्ण-विवाह में वधू का वर्ण-परिवर्तन होकर वर के वर्ण में सम्मिलित हो जाने को और उस विवाह को धर्मानुकूल मान लेने को क्यों अति भार मानें ?

अन्त में मैं हिंदू-समाज के सब अंगों और वर्गों से प्रार्थना करता हूँ कि हृदय से इस उपन्यस्त विधान का समर्थन करें, क्योंकि इससे हिन्दूत्व और हिन्दू-समाज के उस सुधार, संस्कार और पुनर्जीवन का सूत्रपात होगा, जो उन्हें विनाशकारी, सर्वांगव्यापी, भेदबुद्धिरूप, परस्पर द्रोहरूप महारोग से बचा सकता है, और उनको नया जीवन दान कर सकता है और अपने समाज के भीतर तथा अन्य समाजों और धर्मों और सम्प्रदायों के साथ शान्तिपूर्वक रहने की शक्ति दे सकता है।

इन बातों पर शान्त मन से 'मानव' (हिन्दू) धर्म और 'हिन्दू' समाज के जीर्णोद्धार के भाव से आप सब सज्जन, गंभीर विचार करके यदि आपको निश्चय हो जाय कि मैं किसी दुर्भाव से प्रेरित नहीं हूँ, यदि आपको निश्चय हो जाय कि सचमुच इस उपन्यस्त विधान से हिन्दू-समाज और धर्म का कल्याण ही होगा, तो दिल खोलकर प्रसन्न हृदय से इसको आशीर्वाद दीजिए।

सूक्तियाँ

लेखक, श्रीयुत रामचरित उपाध्याय

(१)

न उपजे धन लेकर हाथ में,
कब परत्र गया तन साथ में ?
कृति करो जग में स्थिर हो कथा,
मचलते चलते तुम हो वृथा ॥

(२)

सुख नहीं मिलता दुख के बिना,
नरक की जननी अपकीर्ति है।
न मन में डरिए परिणाम से,
मरण हो रण हो प्रण के लिए ॥

(३)

डपटना पहले फिर मारना—
द्विरद को, यह केहरि की क्रिया।
न मिलके लड़ते वर वीर हैं,
कपट का पट कायर धारते ॥

(४)

खल नहीं करता उपकार है,
सुजन से अपकार न हो सका।
न कलहंस हुआ सम हंस के,
न घन-सा घनसार हुआ कभी ॥

(५)

विविध दण्डविधान बनाइए,
सजग हो अति दुर्जन के लिए।
स्ववश में रखिए पर साधु को,
विनय से नय से भय से नहीं ॥

(६)

तनय वीर मिला जिसको, उसे—
भुवन में कहिए वर पुत्रिणी।
क्षति न जो सुत-हीन रहे वधू
न जननी जन नीच जने कभी ॥

(७)

न जिसको जग से समता हुई,
न भय है जिसको परलोक से।
बुध नहीं वह है, उस मूढ़ की—
मुखरता खरता-सम जानिए ॥

(८)

अखिल विश्व जिसे अपना हुआ,
अनय भी जिसको सपना हुआ।
बस बिना अवतार लिये वही,
पुरुष ही रुप-हीन मुकुन्द है ॥

(९)

मिल गई यदि लोमश-आयु तो,
कुछ न लाभ हुआ धन के बिना।
दुखद जीवन से सुख-सिन्धु है,
निधन ही धन-हीन मनुष्य का ॥

माँ बाप ने उसे अकेली रहने के लिए छोड़ दिया था पर उसकी भेंट एक परदेशी से हो गई और वह........

परदेशी

लेखक, श्रीयुत जैनेन्द्रकुमार

(१)



[दो पगडंडियों का संधिस्थल। ज़रा पीछे एक कुटी। एक पगडंडी से एक स्त्री जा रही है। दूसरी से एक पुरुष आता है]

पुरुष—भद्रे, मैं दूर से आता हूँ। मुझे प्यास लगी है।

महिला—[पुरुष की ओर देखती है।]

पुरुष—यहाँ पानी मिलेगा ?

महिला—पानी ? [देखती है]

पुरुष—मैं प्यासा हूँ।

महिला—मेरे हाथ फँसे हैं। आँचल में फूल हैं। मैं अभी आकर पानी दूँगी। वहाँ छाँह में बैठें।

पुरुष—फूल कहाँ लिये जाती हो ?

महिला—वह सामने देवालय दीखता है। वहाँ मैं इनको चढ़ाकर अभी लौट कर आती हूँ।

पुरुष—भद्रे, मुझको प्यास लगी है। फूल मुझको दे जाओ और पानी ला दो।

महिला—कहती हूँ, मैं अभी आती हूँ। देर नहीं लगाऊँगी।

पुरुष—नहीं। फूल मुझे दे दो और पानी ला दो। फिर फूल ले लेना।

महिला—बहुत प्यास लगी है ? तनिक देर ठहर जाओ। मैं अभी लौट कर आती हूँ।

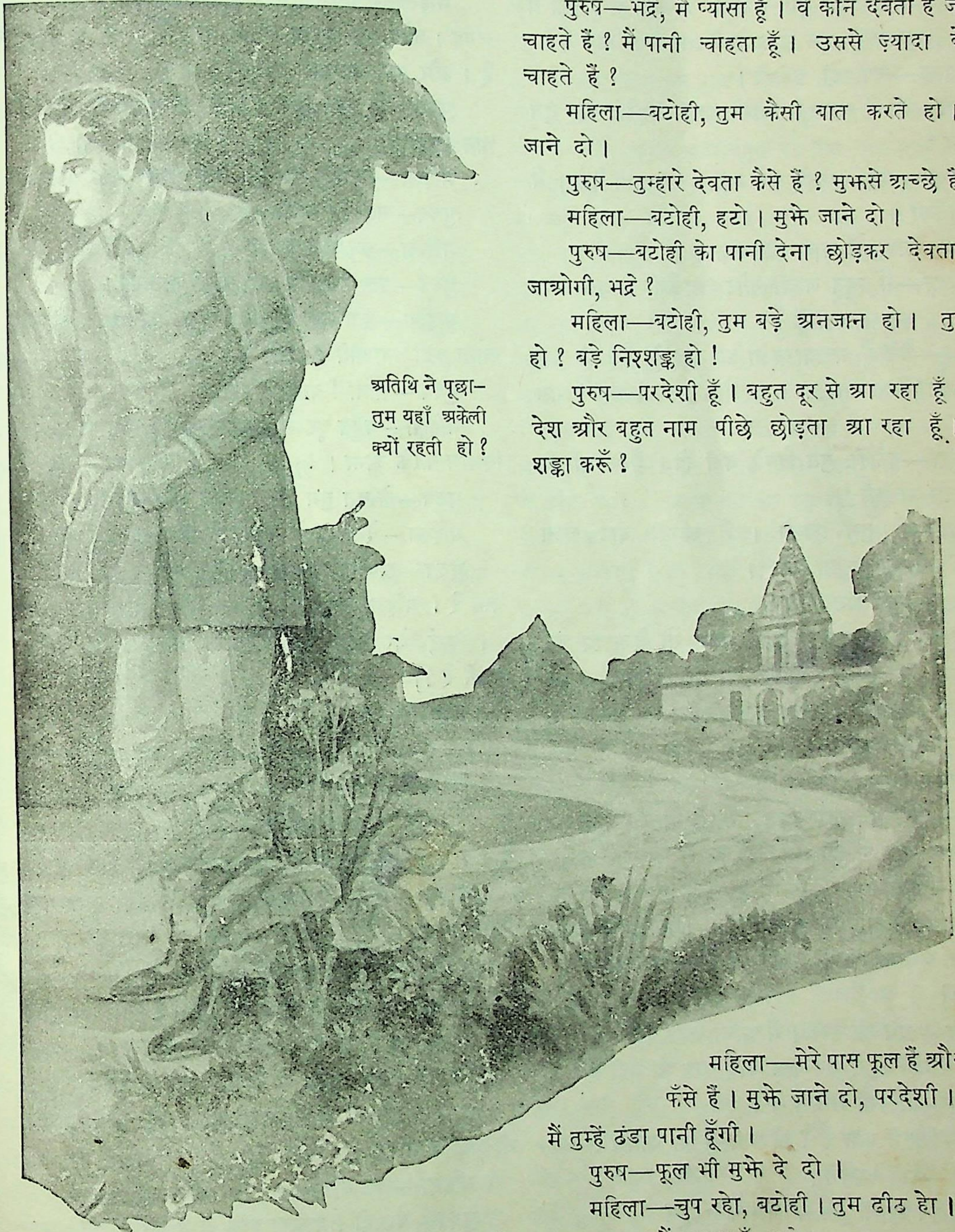
पुरुष—नहीं। फूल मुझको दे दो और पहले पानी ला दो। मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ।

महिला—बटोही, मैं सवेरे ही भगवान् को फूल चढ़ाती हूँ। आज देर हो गई है। मेरा जी अच्छा नहीं था। कहती तो हूँ, मैं अभी आती हूँ। तब तक तुम छाँह में सुस्ताओ। बहुत दूर से आ रहे हो।

पुरुष—लाओ मुझे दो फूल। मैं चढ़ा दूँगा।

महिला—नहीं, नहीं।

पुरुष—मैं बहुत अच्छी तरह देवता पर फूल चढ़ाऊँगा।


अतिथि ने पूछा—तुम यहाँ अकेली क्यों रहती हो ?

पुरुष—भद्रे, मैं प्यासा हूँ। वे कौन देवता हैं जो फूल चाहते हैं ? मैं पानी चाहता हूँ। उससे ज़्यादा वे फूल चाहते हैं ?

महिला—बटोही, तुम कैसी बात करते हो। मुझे जाने दो।

पुरुष—तुम्हारे देवता कैसे हैं ? मुझसे अच्छे हैं ?

महिला—बटोही, हटो। मुझे जाने दो।

पुरुष—बटोही को पानी देना छोड़कर देवता पूजने जाओगी, भद्रे ?

महिला—बटोही, तुम बड़े अनजान हो। तुम कौन हो ? बड़े निश्शङ्क हो !

पुरुष—परदेशी हूँ। बहुत दूर से आ रहा हूँ। बहुत देश और बहुत नाम पीछे छोड़ता आ रहा हूँ। तुमसे शङ्का करूँ ?

महिला—तुम कैसे बटोही हो ! चलो, मुझे जाने दो। [जाना चाहती है]

महिला—मेरे पास फूल हैं और मेरे हाथ फँसे हैं। मुझे जाने दो, परदेशी। लौट कर मैं तुम्हें ठंडा पानी दूँगी।

पुरुष—फूल भी मुझे दे दो।

महिला—चुप रहो, बटोही। तुम ढीठ हो।

पुरुष—मैं प्यासा हूँ, भद्रे।

महिला—प्यासे हो तो मैं नहीं जानती।

पुरुष—देवता के तुम कब से जानती हो ? क्या वे प्यासे हैं ? सुनता हूँ, इस लोक के देवता पत्थर होते हैं।

महिला—चुप रहो, बटोही।

पुरुष—तो मैं चुप रहूँ और चला जाऊँ, यह तुम कहती हो ?

महिला—नहीं—नहीं, यह नहीं। पर अभी बैठो। मैं शीघ्र आऊँगी।

पुरुष—नहीं, मैं चला ही जाता हूँ।

महिला—मैं बहुत जल्दी लौट आऊँगी। सच, देर नहीं होगी। कह तो रही हूँ।

पुरुष—जैसे मैं चलता चला आ रहा हूँ, वैसे ही यहाँ से भी चलता चला जाऊँगा। जाओ, तुम देवता के पास जाओ।

महिला—बटोही, तुम अच्छे नहीं हो। मैं कहती हूँ, मैं अभी आ जाऊँगी।

पुरुष—हाँ, तुम जाओ। मैं अपनी बाट चला जाऊँगा। मुझे तो चलना ही है।

महिला—प्यासे जाओगे ?

पुरुष—क्या उपाय है ? तुम तो देवालय जा रही हो।

महिला—हाँ, मैं देवालय जा रही हूँ।

पुरुष—तो जाओ।

महिला—लेकिन तुम बैठो।

पुरुष—नहीं भद्रे, तुम जाओ, मैं भी जाता हूँ।

महिला—तो—बहुत प्यासे हो ?

पुरुष—बहुत ? नहीं—

महिला—तो लाती हूँ पानी। लो—[महिला ने फूलों-भरा आँचल बढ़ाया कि परदेशी फूल ले। परदेशी यों ही खड़ा रहा।]

महिला—अब लो इन्हें। मैं पानी लाऊँ।

पुरुष—कहाँ लूँ ? मेरे पास कोई वस्त्र तो नहीं है।

महिला—तो क्यों माँगते थे ?

पुरुष—कितने फूल हैं ? अँजली में आ जायँगे ?

महिला—नहीं आयेंगे।

पुरुष—तब इतने फूल बताओ कैसे लूँ ?

महिला—उत्तरीय में ले लो।

पुरुष—उत्तरीय में ? अच्छा लाओ।

महिला—लेकिन एक बात है। तुम यहीं रहना, इसी जगह। और इन्हें ख़राब मत करना। ये पूजा के काम के हैं। और तुम सावधान नहीं हो।

पुरुष—मैं यहीं रहूँगा। ख़राब नहीं करूँगा, मैं सावधान रहूँगा।

महिला—बटोही, फिर तुम पानी पीकर चले जाओगे ?

पुरुष—नहीं तो क्या—

महिला—कहाँ जाओगे ?

पुरुष—पता क्या कि कहाँ कहाँ जाऊँगा।

महिला—पता नहीं है, कहाँ कहाँ जाओगे। अच्छा, खाना कहाँ पाओगे ? बस्ती में ?

पुरुष—खाना ! बस्ती ! क्यों ?

महिला—बहुत दूर से आ रहे मालूम होते हो। ज़रा विश्राम करके जाना।

पुरुष—लेकिन तुम तो देवालय जाओगी।

महिला—देवालय से तुरन्त ही लौट आऊँगी।

पुरुष—अच्छा। [पुरुष अपने उत्तरीय में फूल ले लेता है। महिला जाती है। पुरुष मुस्कराता रह जाता है। कुछ देर बाद महिला एक पात्र में जल लेकर आती है।]

महिला—लो।

पुरुष—ये भी तो तुम लो। [पुरुष महिला के ऊपर फूल बिखेर देता है। फिर हाथ बढ़ाकर पात्र लेता है। लेने लेने तक में पात्र महिला के पैरों के पास गिर जाता है। महिला अप्रसन्न होती है, कुछ प्रसन्न भी होती है।]

महिला—तुम बड़े ख़राब हो जी। मैं और फूल कहाँ से लाऊँगी ?

पुरुष—और फूल क्यों लाओगी ?

महिला—देवता की पूजा कैसे होगी ?

पुरुष—और यह पूजा किसकी हुई है ?

महिला—तुम देवता हो ? आये बड़े देवता !

पुरुष—तुम तो हो ! तुम पर फूल भी बिखरे, जल भी चढ़ गया।

महिला—चुप रहो।

पुरुष—रुष्ट हो ? अच्छा मुझे क्षमा करो। लो, फूल मैं उठाये देता हूँ। [पुरुष झुककर महिला के पैरों पर और आस-पास पड़े हुए फूलों के इकट्ठा करता है।]

महिला—हैं ! हैं ! धरती के फूल !

पुरुष—तो क्या हुआ ? फूल तो फूल हैं।

महिला—वे अब किस काम के रह गये हैं ?

पुरुष—वे अब बड़े काम के हो गये हैं।

महिला—मैं अब ख़ाली हाथ देवालय कैसे जाऊँ ?

पुरुष—मत जाओ।

महिला—तुम बड़े दुष्ट हो।

पुरुष—दुष्ट हूँ तो मैं अपनी राह जाता हूँ। जाऊँ ?

महिला—ज़रा विश्राम करके जाना।

पुरुष—अच्छा [दोनों कुटी की ओर लौटकर जाते हैं।]

(२)

महिला अकेली रहती है। उसकी अभी नई उम्र है। बस्ती से बाहर अलग अपने आप रहती है।

अतिथि ने पूछा—तुम यहाँ अकेली क्यों रहती हो ? माता-पिता नहीं हैं ?

महिला—हैं। उन्होंने मुझे अकेले रहने को छोड़ दिया है।

पुरुष—वे बस्ती में रहते हैं ? उन्होंने तुम्हें अकेले रहने को क्यों छोड़ दिया है ?

महिला—हाँ, बस्ती में रहते हैं। बस्ती में भले आदमी रहते हैं। मैंने सुना है, मैं भली नहीं हूँ। इस वास्ते उन्होंने छोड़ दिया है।

पुरुष—तुम क्यों भली नहीं हो ?

महिला—ठीक मैं नहीं जानती। कुछ दिन हुए, एक कुमार आया था। वह मुझे एक उद्यान में मिला था। वह बहुत अच्छा था और यह याद नहीं रखता था कि दुनिया भी है। मैं भी तब दुनिया को भूल जाती थी। मैं रोज़ उद्यान जाती थी कि कहीं कुमार मिल जाय। मा ने कहा—"यह भला नहीं है। तू वहाँ मत जाया कर। वह लड़का बड़ा ख़राब है।" मैंने कहा—"अम्मा जी, वह ख़राब नहीं है।" उन्होंने कहा—"चल दूर हो, अब वहाँ मत जाना।" मैं वहाँ नहीं गई। पर दिन मुझे फीका लगता था और रात को नींद कठिनाई से आती थी। किसी भी काम में जी नहीं लगता था। सब सूना-सूना लगता था। पर मा-बाप की आज्ञा तोड़कर मैं जाना नहीं चाहती थी। मा-बाप मुझे चाहते थे और मेरी भलाई चाहते थे। ऐसे कई दिन बीत गये। मेरे मन पर पत्थर-सा बैठता जाता था। मैं क्या करूँ ? एक रोज़ मुझे दिखाई दिया कि कुमार हमारी खिड़की की तरफ़ देख रहा है। मैं खिड़की के पास नहीं गई, पर दूर से छिपकर देखती रही। कुमार वहाँ बहुत देर तक खड़ा रहा। कभी थककर वह टहलने लगता था। फिर वहीं आकर खड़ा हो जाता था। मुझे उस पर बड़ी दया आई। मन को बड़ा बुरा मालूम हुआ। मैंने खिड़की के पास आकर कहा—"कुमार, तुम चले जाओ।" कुमार ने कहा—"मैं मर रहा हूँ।" मैंने कहा—"कुमार, मेरा जी भारी है। अम्मा जी नाराज़ होती हैं। तुम चले जाओ।" कुमार ने कहा—"मेरा जी बड़ा व्याकुल है। ऐसे मैं कैसे जिऊँगा ?" मैं फिर नहीं बोल सकी। मेरी आँखों में आँसू आ गये। कुमार भी रोने लगा। तब मुझसे सहा नहीं गया और मैं लौट आई। अम्मा जी को इस बात की सूचना हुई। उन्होंने कहा—"तू वहाँ कुमार से बातें करती थी ? वह बड़ा ख़राब आदमी है।" मैंने कहा—"अम्मा, कुमार ख़राब नहीं है।" उसके बाद कई दिनों तक मैं देखती रही कि कुमार आता है। पर मैं खिड़की पर नहीं जाती थी। मेरा मन भीतर से भर भर आता था, पर मैं रोक लेती थी। सोचती थी, अम्मा जी कहती हैं कि यह ठीक नहीं है, और मैं कोई बुरा काम नहीं करूँगी। मेरा मन सवेरे से उसी घड़ी की बाट देखता रहता था जब कुमार आता था। पर जब वह घड़ी पास आ जाती तब मैं घबरा जाती थी। उससे पहले मैं बार बार खिड़की के पास जाती थी। मैं जानती थी कि कुमार जब नहीं है तब खिड़की के पास जाने में बुराई नहीं है। उसमें फ़ायदा कुछ नहीं था, पर हर्ज भी कुछ नहीं था। और मेरा मन बहलता था। पर जब कुमार वहाँ दिखाई दे जाता तब मैं भाग आती थी और फिर खिड़की के पास नहीं जाती थी। न जाने तब चित्त की हालत कैसी रहती थी। फिर मुझको नहीं पता, क्या हुआ। एक दिन मेरी मा ने मुझे बहुत धमकाया और कहा—"निकल जा मेरे यहाँ से, कुलच्छनी।" मा मुझे बहुत प्यार करती थी। पर जब वह कहती थी कि कुमार बुरा आदमी है तब मुझे बुरा लगता था। मैं कहती थी, कुमार बुरा नहीं है। इस पर वह मुझे मारती थी। तब मैं ज़ोर से कहती थी, कुमार, बहुत अच्छा है।

तुम्हीं बताओ, मुझको कुमार अच्छा दिखता था तब मैं उसको बुरा कहा जाता हुआ कैसे सुन सकती थी ? सो सब मैं सह लेती थी, पर कुमार के सामने नहीं होती थी। एक दिन मुझे मा ने धक्का देकर घर से बाहर कर दिया। बाहर खड़ी खड़ी मैं सोचने लगी, क्या करूँ। मैं मा के मन को जानती थी। मुझसे उनका जी बड़ा क्लेश पाता था। मैं उनको दुख देना नहीं चाहती थी। मैं कैसे कहती कि मा, मुझे भीतर ले लो। मैं यह नहीं कह सकती थी और मैं चली आई। तभी से मैं यहाँ रहती हूँ। बटोही, मैंने सच-सच बात कह दी है। अब तुम देख लो कि मैं भली नहीं हूँ। कुमार फिर मुझे नहीं मिला। न जाने वह कहाँ हो ? बटोही, मुझे अकेलापन अच्छा नहीं लगता है। देखो परदेशी, तुम्हें बस्ती के लोग यहाँ आने के लिए भला नहीं कहेंगे। मुझे वे बहुत खोटी-खोटी बातें कहते हैं। पर मैं नहीं चाहती कि तुम्हें भी कोई खोटी बात कहे। तुम परदेशी हो। तुम्हें लोगों की खोटी बात की परवा न हो, तो परदेशी, तुम कुछ रोज़ यहाँ रह कर चले जाना। मेरा जी लग जायगा। यहाँ कौन कब आता है।

पुरुष—मैं समझा।

महिला—तुम क्या समझे परदेशी, और तुम चुप क्यों हो गये ?

पुरुष—कुछ नहीं। ... देखो, मैं प्रवासी हूँ। मुझको खरा-खोटा नहीं छूता। मैं यहाँ कुछ रोज़ रहूँगा।

महिला—परदेशी, तुम किस देश के वासी हो ? तुम्हें खरा-खोटा क्यों नहीं छूता ?

पुरुष—मैं अनेक देश-देशान्तरों में घूमा हूँ। पर यह तुम लोगों का देश न्यारा है। और सब जगह तो ऐसे खरे-खोटे की बात नहीं है। भद्रे, क्या तुमको पक्का मालूम है कि तुम खोटी हो ?

महिला—हाँ, मैं ऐसा ही जानती हूँ। नहीं तो लोग मुझे क्यों दुरदुराते ?

पुरुष—एक और लोक भी है। इस तुम्हारे लोक से वह अगला है। वहाँ सब उलट जाता है। जो यहाँ दुरदुराया जाता है, वहाँ उसका आदर होता है। यहाँ का दुखी वहाँ सुख पाता है। तुम उस लोक के बारे में कुछ नहीं जानतीं ?

महिला—क्या परलोक ?

पुरुष—हाँ, परलोक।

महिला—मैंने सुना है, परलोक होता है। पर मैं कुछ जानती नहीं। सुना है, यहाँ से लोग वहाँ जाते हैं।

पुरुष—जो सुना है वह मिथ्या नहीं है। अच्छा, तुम कुमार को पहचानती हो ?

महिला—परदेशी, तुम कैसी बात करते हो ? कुमार को नहीं पहचानूँगी ?

पुरुष—लेकिन सच, पहचानती हो ? [महिला देखती है। देखती है कि जो सामने है वह कुमार ही तो है !]

महिला—तुम ! परदेशी !

पुरुष—भद्रे, क्या आश्चर्य है ? मैं ही तो हूँ।

महिला—तुम बड़े ख़राब हो !

पुरुष—मैं परदेशी हूँ रानी, मैं प्रवासी हूँ। [महिला देखती है। देखती है कि सामने कुमार कहाँ, परदेशी ही तो है।]

(३)

[एक पर्वत-शिखर। नितान्त हिममंडित। पुरुष बादल के एक घोड़े की अयाल थामे खड़ा है। घोड़े के मुख में फेन है, देह में विद्युत्। पुरुष अपार दूर तक बिछी पृथ्वी को देख रहा है। वह प्रतीक्षा में है। उसे शायद कहीं दूर जाना है।]

[महिला का प्रवेश]

महिला—आख़िर तुम पा गये।

पुरुष—आओ। देखो, मेरी यात्रा प्रस्तुत है।

महिला—तुम रात न जाने कहाँ विलीन हो गये। मैं खोजती फिरी। मैं रात सोई नहीं। जो यंत्र तुमने मुझे अपने हृदय में धारण करने को दिया था उससे मैंने तुम्हारा पता बहुत पूछा। उसने भी कुछ नहीं बताया। अब सवेरे आख़िर उसने बताया कि तुम यहाँ हो। मैं भागी आ रही हूँ। परदेशी, तुम्हें क्या हुआ है ? तुम्हें ऐसा नहीं चाहिए। मुझे तुमने बेहाल कर दिया।...तुम क्या कहीं जा रहे हो ?

पुरुष—हाँ, मैं जा रहा हूँ।

महिला—कहाँ जा रहे हो ?

पुरुष—तुम्हें क्या बताऊँ, भद्रे। अपने भ्रमण पर चला जा रहा हूँ।

महिला—कब लौटोगे ?

पुरुष—छिः ! छिः ! कैसी बात करती हो ?

महिला—नहीं लौटोगे ?

पुरुष—कैसी बच्ची ऐसी बात करती हो ! अरे लौटना कहीं होता है ?

महिला—मुझे छोड़कर चले जाओगे ?

पुरुष—देखो, यह घोड़ा मुझे ले जाने के लिए आ पहुँचा है। देखो यह कितना बेताब है। जो घड़ी जाने की बँध गई है उसी पल यह मुझे उड़ा ले जायगा। क्षण भर की देर न होगी। मैंने कहा न था भद्रे कि मैं परदेशी हूँ, प्रवासी हूँ। कूच का समय आया तब मैं क्या ठहरूँगा ? इसमें तुम चिन्ता क्यों करती हो ?

महिला—अरे परदेशी, क्या तुम जानते हो, मेरी क्या हालत है ? तुमने मुझे ममता में क्यों डाला ? हाय ! मैं सर्वस्व गँवा बैठी और तुम जा रहे हो।

पुरुष—भद्रे, दुनिया की जैसी बातें न करो। कोई कुछ नहीं गँवा सकता, और क्लेश तो भूल है। सबके कूच का पल बँधा है, और मैं तो प्रवासी हूँ।

महिला—परदेशी, निठुराई मत करो। मेरी हालत देखो। मैं तुम्हारा नाम भी तो नहीं जानती। मैं क्या करूँगी ? कैसे करूँगी ?

पुरुष—नाम-धाम दुनियादारी की बातें हैं। और मैं परदेशी हूँ। मेरा नाम क्या होगा ?

महिला—ओ परदेशी, मुझे ठगकर तुम कहाँ जाते हो ? मैं ठगी गई, और मैंने बुरा नहीं माना। पर अब तुम जाते कहाँ हो ? मेरा सब कुछ तुम्हारा है। वह छोड़कर मत जाओ। छूटकर मैं कहाँ की रहूँगी ?

पुरुष—भद्रे, दुख मत करो। देखो, यह क्षण अन्तिम है। घोड़ा सुम पटक रहा है। जाने का पल अब आया, अब आया। पर क्या तुम्हें दुखी देखते हुए जाना होगा ? रानी, हँसो कि मैं जाता हूँ। क्या हमने परस्पर कम सुख जाना है ? उसको जी में बसाकर हम किस दुख को चुनौती नहीं दे सकते ? क्या उस सुख को हम इतना हलका बना दें कि कोई भी दुख उस पर भारी हो जाय ? हमारा संयोग सब वियोगों से सत्य है। संयोग क्षणकालिक था, वियोग चिरकालिक है। फिर भी संयोग ही सत्य है।

महिला—परदेशी, तुम्हारी बात से मुझे डर होता है। तुम कौन हो ? तुम्हारा क्या नाम है ? नाम मुझे बताये जाओ। इतना सहारा तो मुझे दो।

पुरुष—मैं परदेशी हूँ, नाम-धाम सब पीछे छोड़ता जाता हूँ। अनन्त नाम मैंने धारे हैं, पर वे अलग ही रहते हैं। संज्ञातीत परदेशी की तुम क्या याद रक्खोगी ? उसे परदेशी ही जानो। याद कुछ मत रक्खो। याद दुख है। वे संयोग-सुख के क्षण ही अपने साथ शाश्वत बनाकर रहो जो हमने अपने को परस्पर खोकर पाये हैं।

महिला—ओ निर्दय ! निर्मम !

पुरुष—रानी, क्या अपने ही सुख के प्रति हम अकृतज्ञ बनें ? तुम्हारा सुहाग उन्हीं सुख के क्षणों में है जो अमर हैं। मैं घूमता ही रहता हूँ। उसी घूमने से अब आगे बढ़ा जा रहा हूँ। तुम्हें कैसे बताऊँ कि तुमसे कितना जीवन लिये जा रहा हूँ ? पर उसकी बात नहीं करूँगा, कह कर उसे हलका नहीं करूँगा।

महिला—हाय, मैं क्या करूँ ? तुम बड़े निठुर हो।

पुरुष—निठुर ? रानी तुम नहीं जानतीं।

महिला—तब मुझे छोड़े क्यों जाते हो, राजा ? मत जाओ, मत जाओ।

पुरुष—रानी, रोओ नहीं। हँसो कि मैं जाता हूँ। देखो, तुम्हारी उन दिनों की हँसी मेरे भीतर अब भी जीवित है। वह चाँदनी-सी तुम्हारी हँसी मुझसे खोई नहीं जायगी। उसी को थाम कर मैं तुम्हारे रोने को हँसकर सह जाता हूँ। मत रोओ, रानी। रोना क्रूरता है।

महिला—मैं नहीं जानती थी, तुम ऐसे हो।

पुरुष—रानी,—

महिला—मैं जान रही हूँ, तुमने मुझे खिलौना समझा। हाय ! मैं क्या करूँ ?

पुरुष—[घोड़े पर चढ़ने को उद्यत होकर] रानी, मैं यह नहीं सहना चाहता। क्या वह तुम्हारी प्रतिमा मैं अपने भीतर फीकी होने दूँ जो मग्न है और स्निग्ध है, जो खिलते फूल की तरह मेरे भीतर सदा खिलती ही जायगी ? नहीं, वह प्रतिमा मुझसे नहीं छिन सकती। रानी, तुम वही हो। यों विलाप करनेवाली अबला तुम नहीं हो। उठो, प्रसन्न होओ। माता को प्रसन्न रहना चाहिए।

महिला—माता की बात करते तुमको दया क्यों नहीं आती ? अरे, उसका बच्चा किसे अपना बाप कहेगा, यह तक क्या वह मा जानती है ?

पुरुष—भद्रे, यह क्या कहती हो ?

महिला—क्या कहती हूँ ? यह पूछते हुए तुम लजाते क्यों नहीं हो ?

पुरुष—ओह ! मैं समझा । तुम्हारी दुनिया में पिता का नाम ओढ़े हुए बच्चे होते हैं । यह कैसी तुम्हारी दुनिया है ?

महिला—ओ परदेशी, कैसी निर्लज्ज-सी बात करते हो ?

पुरुष—बिना बाप के नाम के बच्चे क्या यहाँ होते ही नहीं ? यह जगत् क्या इतना अभागा है ?

महिला—बेहया मत बन जाओ, परदेशी ।

पुरुष—यह कैसी तुम्हारी अभागी दुनिया है ? मा यहाँ इसलिए दुखी होती है कि मा है ! छिः ! छिः ! यह कैसी निकम्मी बात है ।

महिला—परदेशी, मैं नहीं जानती, तुम किस लोक की बात करते हो । मुझे अपनी सुध नहीं है । मुझे कुछ नहीं चाहिए । मैंने तुम्हें पाया, यह बहुत पाया । तुम जाते हो ? अच्छा जाओ । तुम मेरे लिए बहुत हो । तुम्हें पाकर मैं अपने भाग्य पर शंकित हो जाती थी । मैं क्या इतने के योग्य थी ? अगर तुम जाते हो तो मैं उस भाग्य को कोसूँगी नहीं । तुम जाओ । पर मैं सोचती थी, कहीं तुम ठहर जाओ तो कैसा हो । लेकिन मैं भाग्य से अपनी पात्रता से इतना अधिक पा चुकी हूँ कि और कुछ भी उससे माँगने का मेरा मुँह नहीं है । मैं नहीं सोचती कि मैं दिन कैसे काटूँगी । नहीं । मैं कोई स्वार्थ की बात नहीं सोचती । मैंने सब तुम पर वार दिया । अब क्या मैं यह सोचूँ कि तुम मेरे लिए क्या छोड़कर जा रहे हो ?

पुरुष—धन ?

महिला—नहीं, नहीं । धन मुझे नहीं चाहिए ।

पुरुष—भद्रे, धन—

महिला—नहीं, नहीं । मुझे नहीं चाहिए ।

पुरुष—भद्रे, धन मैल है और प्रेम निर्मल है । रानी, यह मैल तुम्हारी दुनिया का शाप है । मैं परदेशी हूँ, मैं उस मैल से मैला नहीं हूँ । मैं—

महिला—नहीं, मैं वह कुछ नहीं सोचती । पर मेरा बच्चा दुनिया का अपमान न सहेगा । तुम दुनिया को नहीं जानते । मैं अपमान को उसे छूने नहीं दूँगी ।

पुरुष—अपमान ! रानी तुम नहीं जानतीं । दुनिया का अपमान विनीत मस्तक पर स्वीकार करने से पवित्र बनता है । वह सम्मान हो जाता है । तुम यह समझो । भली भाँति पहचान लो । और सुनो, तुम्हारा बिना बाप का बच्चा दुनिया का राजा होगा । ऐसा राजा होगा जिसके पैरों तक दुनिया का मुकुट नहीं पहुँच सकेगा । रानी, यह ब्रह्माण्ड बड़ा है और तुम्हारी दुनिया बहुत क्षुद्र है ।

महिला—नहीं, नहीं, नहीं । तुम नहीं जानते । मैं अपने बच्चे का अपमान नहीं सहूँगी । मैंने दुनिया का सब खोटा सुना । पर अपने बच्चे का खोटा नहीं सहूँगी । ऐसा ही होगा तो मैं उसे जन्मते ही मार दूँगी ।

पुरुष—ओह ! ऐसी तुम्हारी मूढ़ दुनिया ! वह अपने चलन से मा के दिल में बच्चे के लिए ऐसे हिंस्रभाव पैदा कर सकती है ! रानी, यह तुम क्या कहती हो ?

महिला—तुम नहीं जानते—तुम नहीं जानते परदेशी ।

पुरुष—मैं तुम्हारी दुनिया को नहीं जानता । पर तुम्हारी दुनिया भी बड़ी दुनिया को नहीं जानती, रानी ।

महिला—परदेशी, तुम कौन हो ? तुम्हें देखकर मेरी आँख झिपती है । मुझे बच्चे के बाप का नाम नहीं चाहिए । पर बताओ, तुम कौन हो । मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ । तुम जाओ, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ । तुम चले ही जाओ । यह दुनिया भी तुम्हारे योग्य नहीं है । मैं यहाँ जैसे-तैसे रह लूँगी, पर तुम जाओ । तुम वहाँ के लिए हो, जहाँ क्षुद्रता नहीं है । तुम जाओ, लाख बरस जिओ और सदा राजा रहो, मेरे राजा । मैं आज अपने सौभाग्य को स्वीकार करती हूँ । उसको लेकर लोक का अपमान भी स्वीकार करूँगी । अपने महा-सौभाग्य की बात को भीतर लेकर विनीत रहूँगी और मेरे राजा, तुमसे कहती हूँ, टूटूँगी नहीं ।

पुरुष—तुम्हारा पुत्र निष्कलुष हो, प्रेम से दृढ़ हो और जीवन में जयी हो ।

महिला—पर मुझे बता जाओ, तुम कौन हो । मुझे अपने लिए बता जाओ—[पुरुष का चरण-रज लेती है ।]

पुरुष—मैं—[बिजली तड़पती है । बादल का घोड़ा निनाद करता है, पुरुष कूदकर उस पर सवार होता है ।] समझो, मैं देवदूत हूँ ।

[घोड़े को एड़ लगाकर वह उड़ चलता है । महिला, स्तम्भित देखती रहती है ।]

क्या आज का किसान अधिक समृद्ध है ?

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार



मय-बे-समय हमारे शासक प्रायः यह कहते रहते हैं कि भारतवर्ष उत्तरोत्तर समृद्धि के पथ पर अग्रसर हो रहा है। असेम्बली के अधिवेशन में पिछले बजट के वाद-विवाद के समय भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर जेम्स ग्रिग ने कहा था कि ब्रिटिश शासन की बदौलत इस देश से अकाल का नाम लुप्त हो गया है और किसान की आमदनी बढ़ गई है। वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में आज से दस साल पहले एक कृषि-कमीशन खेती और किसानों की अवस्था की जाँच के लिए यहाँ आया था। उस कमीशन ने भी इस बात की पुष्टि की थी कि अकाल का नाम इस देश में अब लोग भूलते जा रहे हैं; भारतीय खेती की उन्नति के लिए ब्रिटिश शासकों ने जितना कार्य किया है, उतना इस देश के पहले के शासकों ने नहीं किया, सिंचाई की उत्तम व्यवस्था और माल के इधर-उधर भेजने के साधनों की वृद्धि के कारण 'अकाल' शब्द का अर्थ बदल गया है और खेती की पैदावार पहले से बहुत बढ़ गई है।

भारत के किसान आज कितना गरीब हो गये हैं, उनकी इस ग़रीबी का असली कारण क्या है, यह सब प्रामाणिक आँकड़े देकर इस लेख में बताया गया है।

यह सच है कि सिंचाई से जितना लाभ पंजाब को हुआ है, उतना भारत के अन्य किसी प्रान्त को नहीं पहुँचा है। यहाँ की नहर-व्यवस्था संसार के आश्चर्यों में से एक है और पंजाब के आर्थिक जीवन में इसका महत्त्व हर एक स्वीकार करता है।

पंजाब में सबसे अधिक भूमि नहर से सींची जाती है। सारे ब्रिटिश भारत में १९२१-२२ से १९२५-२६ के पाँच वर्षों में औसतन २,६६,००,००० एकड़ ज़मीन सींची गई। इसमें अकेले पंजाब की ही १,०४,००,००० एकड़ ज़मीन है। फलतः नहर से सींची गई ज़मीन में सारे भारत में १५० करोड़ रुपये की और पंजाब में ५७ करोड़ रुपये की अधिक फ़सल हुई। नहर से सींची जानेवाली ज़मीन उत्तरोत्तर पंजाब में बढ़ती जा रही है। १९०६-०७ में ६०,००,००० एकड़ थी और १९२६-२७ में बढ़कर १,०५,००,००० एकड़ हो गई। १९२६-२७ में पंजाब में बोई गई कुल ज़मीन ३,०४,००,००० एकड़ थी, जिसमें नहर से सींची हुई ज़मीन एक तिहाई थी। मगर नहर से सींची ज़मीन में ५९ करोड़ रुपये और बिना सींची हुई ज़मीन में ३२ करोड़ रुपये का अनाज पैदा हुआ।

यह भी है कि अब विविध अनाजों की खेती होने लगी है। बीज पुष्ट और उत्तम बोया जाने लगा है। इन सबके फलस्वरूप कृषि की पैदावार और किसान की आमदनी भी बढ़ गई है। इधर सरकार ने भी भूमि-कर के रूप में अपना लेना कम कर दिया है। १८५५ से पहले सरकार ख़र्च निकालकर बची हुई आमदनी में से आधा लेती थी। १९२९ में पंजाब में यह ठहराया गया कि ख़र्च निकालकर बची हुई आमदनी में से २५ प्रतिशत से अधिक न लिया जाय, साथ ही बन्दोबस्त ४० साल के लिए कर दिया गया। खेती की कुल पैदावार का भूमि-कर इस समय ५ प्रतिशत बैठता है। क्या भारत के पहले किसी शासक ने इतनी कम मात्रा में भूमि की उपज से भूमि-कर कभी लिया है?

मनु ने लिखा है कि राजा भूमि की उपज का ८ वाँ, ६ठा व १२ वाँ भाग ग्रहण कर सकता है। आपत्ति के समय यदि राजा एक चौथाई ले ले तो भी उसे दोष नहीं दिया जा सकता। अर्थशास्त्र ने भी भूमि की पैदावार का ६ठा भाग लेने का राजा को अधिकार दिया है। अलाउद्दीन ख़िलजी भूमि की कुल पैदावार का आधा लिया करता था। अकबर सरीखा उदार शासक कुल पैदावार का एक तिहाई लेता था।

मुग़ल-शासक इतना अधिक भूमि-कर क्यों लेते थे? इसका उत्तर मूरलेंड ने यह कहकर दिया है कि वे मनुष्य रूप में राक्षस थे। मूरलेंड के इस कथन से मालूम होता है कि इस देश के प्राचीन शासक अत्याचारी थे और येन केन

प्रकारेण खेतिहरों से अधिक से अधिक मात्रा में भूमि-कर वसूल करते थे।

परन्तु उस समय राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि-कर ही था। आज-कल के समान इन्कमटैक्स, चुंगी, तट-कर आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर प्रजा पर नहीं थे। दूसरे भूमि-कर वसूल करनेवाले भी कठोर नहीं थे। ओल्डहम ने 'मेमायर आफ़ गाज़ीपुर डिस्ट्रिक्ट' नाम की अपनी किताब में लिखा है कि 'आमिल किसानों का दोस्त होता था। वह ज़रूरत होने पर किसानों को पेशगी रुपया देता था और उसे धीरे धीरे क़िश्तों में वसूल करता था। वह अपनी नाप-तौल में ठीक और न्यायपूर्ण रहता था। फ़सल के मालिक को वह सदा प्रसन्न रखता था। जब कभी फ़सल को क्षति पहुँचती थी, वह नुक़सान का तख़्मीना लगा-कर अपने उच्च अधिकारियों को फ़ौरन रिपोर्ट करता था। जब फ़सल पूरी होती थी तब आमिल को उचित माल-गुज़ारी वसूल करने का आदेश दिया जाता था।' इसका यह अर्थ है कि फ़सल अच्छी न होने पर पूरी मालगुज़ारी नहीं वसूल की जाती थी। आमिल मालगुज़ारी कड़ाई से नहीं, बल्कि प्रेम से वसूल करता था और फ़सल का मौसम गुज़र जाने के बाद तक वह मालगुज़ारी वसूल नहीं करता रहता था। इस प्रसंग में हमें यह न भूलना चाहिए कि अकबर के समय प्रचलित भूमि-कर-पद्धति शेरशाह के समय प्रचलित भूमि-कर-पद्धति ही कुछ थोड़े फेर-फार के साथ प्रचलित थी।

दूसरी बात उस समय राजा और किसान के बीच में कोई तीसरा दलाल, एजेण्ट और ज़मींदार नहीं था। आमिल हर एक किसान से अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता था और ज़मीन का मालिक ज़मींदार नहीं था, बल्कि किसान था। इसी प्रकार मालगुज़ारी ज़मींदार व उसके कारिन्दे किसान से नहीं वसूल करते थे, बल्कि राजकर्मचारी सीधे किसान से मालगुज़ारी लेते थे। रैयतवारी-पद्धति उस समय प्रच-लित थी। अकबर और जहाँगीर के समय खेती की फ़सल राज्य और किसान में बँटती थी, आज के समान तीन में नहीं—गवर्नमेंट, ज़मींदार और किसान में नहीं। इसका क्या प्रभाव पड़ता है और यह कितना महत्त्वपूर्ण अन्तर है, यह हम आगे चलकर देखेंगे।

तीन सौ साल में भूमि की शक्ति घट गई है। अकबर के समय 'पोलाज' ज़मीन (औसतन उत्तम, मध्यम और ख़राब ज़मीन) में १२ मन ३८½ सेर गेहूँ और इतना ही चावल उपजता था। संयुक्त-प्रान्त में जहाँ की उपज आईन-अकबरी में दी हुई है, १२ मन ३१ सेर गेहूँ और १० मन १३ सेर चावल उपजता था।

इस समय खेती का विस्तार हो गया है। उस समय केवल अच्छी ज़मीन ही जोती जाती थी, जिसका भूमि-कर भारी था। दूसरी बात यह है कि निकम्मी ज़मीन नहीं जोती जाती थी। इसके अतिरिक्त उस समय अपनी जीविका के लिए एकमात्र खेती पर निर्भर रहनेवालों की संख्या बहुत कम थी। दूसरी बात यह थी कि आज की अपेक्षा सारी जनता का एक बहुत थोड़ा-सा भाग खेती पर आश्रित था। इससे स्पष्ट है कि उस समय जोत के खाते आज के समान छोटे छोटे नहीं थे।

आज पंजाब में ५६ प्रतिशत खेतिहरों में से प्रत्येक के पास पाँच पाँच एकड़ ज़मीन है। बम्बई को छोड़कर शेष प्रान्तों में प्रति किसान के पास इससे भी कम ज़मीन जोत के लिए है। पंजाब के दो हज़ार गाँवों की जाँच से पता चला है कि ५८ प्रतिशत जोत के खाते ५ एकड़ से कम हैं। यह सब जानते हैं कि हमारे उत्तराधिकार के क़ानून के कारण ज़मीन बराबर के टुकड़ों में बँटती रहती है। डाक्टर मैन के कथनानुसार पूना-ज़िले में १७७१ में जोत के खाते का औसतन परिमाण ·४० एकड़ था। १२४ साल बाद १९१५ में वह ७ एकड़ रह गया। जन-संख्या की वृद्धि के साथ साथ जोत के खाते घटते जाते हैं, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। जोत के खाते का परिमाण किस प्रकार घटता जाता है, यह नीचे दिये हुए पंजाब के आँकड़ों से स्पष्ट हो जायगा—

नाम ज़िला	१८९४	१९२२
	एकड़	एकड़
हिसार	१२·४	७·७
रोहतक	४·६	३·०
गुड़गाँव	३·७	२·४
करनाल	४·७	३·१
अम्बाला	२·७	१·७
शिमला	१·३	१·१
काँगड़ा	२·१	१·२

नाम ज़िला	१८९४ एकड़	१९२२ एकड़
होशियारपुर	१·२	·९
जालन्धर	१·६	१·२
लुधियाना	२·९	२·१
फ़िरोज़पुर	६·९	४·४
लाहौर	५·०	३·६
अमृतसर	५·०	३·६
गुरुदासपुर	२·०	१·६
सियालकोट	१·९	१·३
गुजराँवाला	४·४	२·९
गुजरात	२·८	१·८
शाहपुर	५·३	५·०
जेहलम	३·६	१०७
रावलपिण्डी	३·०	१·३
मिण्टगुमरी	६·७	१०·६
झंग	५·२	४·७

(नहर-द्वारा सिंचाई होने के कारण अब बहुत-सी भूमि जोती जाने लगी है)

इससे स्पष्ट है कि भूमि पर निर्वाह करनेवालों की संख्या बढ़ने के साथ साथ जोत के खाते घटते जा रहे हैं। जिस परिमाण में आबादी और भूमि पर आश्रितों की संख्या बढ़ रही है, उसी मात्रा में जोत की भूमि नहीं बढ़ रही है। इसलिए यह मानना होगा कि मुग़ल-कालीन किसान आज के किसान से अधिक बड़े खाते पर खेती करता था और उसके खाते की औसतन उपज आज से ज़्यादा थी। इसलिए अकबर के समय में अधिक परिमाण की ज़मीन पर खेती करनेवाले किसान के लिए कुल फ़सल का $\frac{1}{3}$ देना सरल था और इस पर भी वह खेती करता रह सकता था। मगर छोटे परिमाण की ज़मीन पर खेती करनेवाले किसान के लिए आज यह सम्भव नहीं है।

यहाँ तक का विवेचन यह मान कर किया गया है कि ब्रिटिश शासन और मुग़ल-शासन में ज़मींदार-पद्धति नहीं थी। मगर हम जानते हैं कि संयुक्त-प्रान्त, बङ्गाल, बिहार में सर्वत्र ज़मींदार हैं। जिस पंजाब के बारे में ख़याल किया जाता है कि वहाँ ज़मींदारी-प्रथा नहीं है और किसान स्वयं ज़मीन के मालिक हैं उसकी वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। यहाँ भी ज़मीन कोई जोतता है और ज़मीन का मालिक कोई और है। बँटाई-पद्धति पर खेती होती है। बँटाई में ज़मींदार $\frac{1}{3}$, $\frac{2}{3}$ व $\frac{1}{2}$ लेता है—ज़्यादातर $\frac{1}{2}$ लेता है। इस पद्धति का प्रभाव किसानों पर क्या पड़ा है, इसका वर्णन मिस्टर स्टीवर्ट ने अपनी 'सम एस्पेक्ट्स आफ़ बटाई कल्टीवेशन इन दि लायलपुर डिस्ट्रिक्ट आफ़ दि पंजाब' में किया है।

मिस्टर स्टीवर्ट ने १९२३-२४ में १८ खेतिहरों की अवस्था की जाँच की थी। उनकी जाँच से प्रकट होता है कि इनमें से दो-एक एक स्क्वायर (२५ किल्ला = एक स्क्वायर; १ किल्ला = १$\frac{1}{8}$ एकड़) और शेष आधे आधे स्क्वायर पर खेती करते हैं। खेत की आधी पैदावार ज़मीन का मालिक ले लेता है, क्योंकि उसने अपनी ज़मीन किसानों को जोतने को दे रक्खी है। भूमि-कर और जल-कर (५-८ रु० प्रति एकड़) ज़मींदार और किसान आधा आधा चुकाते हैं। खेती के अन्य सब ख़र्च बीज, बैल, रखाई, औज़ार आदि का अकेले किसान को उठाना पड़ता है। हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि ज़मींदार को २५) से ४०) तक प्रति एकड़ आमदनी होती है, यानी औसतन ३०) प्रति एकड़ उसको आमदनी होती है। किसान को इसके मुक़ाबिले में १४) से ३१) प्रतिएकड़ आमदनी होती है, यानी औसतन १९≡) खेतिहर को आमदनी होती है। इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि ज़मींदार को औसतन प्रति एकड़ जब ३०) आमदनी होती है तब खेतिहर को केवल १९≡) होती है।

इससे स्वभावतः एक प्रश्न उठता है कि क्या आज के किसान की चाहे वह नहरवाली ज़मीन क्यों न जोतता हो, आज से ३०० साल पहले अकबर के ज़माने के किसान से अच्छी हालत है। आज प्राइवेट लगान उत्पन्न हो गया है और वह बढ़ता जाता है। आज किसान को $\frac{1}{2}$ बँटाई और भूमि-कर देना पड़ता है। उस समय के किसान को केवल भूमि-कर ही देना पड़ता था। भूमि-कर लेनेवाला राज्य हो या ज़मींदार, किसान के पास जो बच रहता है वही उसका है और उसी को हमें देखना चाहिए।

भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब के किसान ख़ुशहाल हैं। पंजाब में भी लायलपुर के किसान ज़्यादा

ख़ुशहाल हैं। यदि लायलपुर के ज़िले में बँटाई पर जोतनेवाले किसान की अकबर-काल के किसान से तुलना करें तो क्या परिणाम सामने आता है?

लायलपुर में एक एकड़ में साधारण रूप से १,२०० पौंड व १४·६३ मन प्रति एकड़ गेहूँ उत्पन्न होता है। अकबर के समय पोलाज ज़मीन में १२·९६ मन गेहूँ उत्पन्न होता था। बँटाई देनेवाले आज के किसान और भूमि-कर देनेवाले अकबर-युग के किसान का ख़र्च निकालकर बची हुई आमदनी प्रोफ़ेसर ब्रजनारायण के मत में इस प्रकार होगी—

लायलपुर का बँटाई किसान

जोती गई ज़मीन (नहरी पानी की) १० एकड़

गेहूँ की पैदावार प्रतिएकड़ १४·६३ मन

कुल पैदावार १४६·३ मन

क़ीमत ५) प्रतिमन ७३२)

ज़मींदार और किसान के बीच बराबर बराबर बँटा ख़र्च—

(१) भूमि और जल-कर ११) प्रतिएकड़	११०)
(२) कमीन्स ५) एकड़	५०)
योग	१६०)

ज़मींदार की बची हुई आय और खेतिहर की कुल आमदनी प्रत्येक की २६०)

वे ख़र्च जो अकेला किसान उठाता है।

(१) बीज २) प्रतिएकड़—	२०)
(२) बैल, हल और औज़ार — प्रतिएकड़—	१०॥)
	१०५)
योग	१२५)

किसान की बची हुई आमदनी १६१)

अकबर के समय का किसान

जोती गई ज़मीन (बारानी) १० एकड़

गेहूँ की पैदावार प्रतिएकड़ १२·९६ मन

कुल पैदावार १२९·६ मन

क़ीमत ५) प्रतिमन ६४८)

खेती का ख़र्च

भूमि-कर	२१६)
कमीन्स	५०)
बीज	२०)
हल, बैल, औज़ार	१०५)
कुल ख़र्च	३९१)
किसान की आमदनी	२५७)

इससे प्रकट है कि लायलपुर के खेतिहर से अकबर के समय के किसान के पास खाने-पहनने के लिए अधिक बचता था।

भारत के सबसे अधिक ख़ुशहाल ज़िले का किसान भी ग़रीब है। उसकी कमाई पर पहले कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। मिस्टर स्टीवर्ट के १८ किसानों में से २ स्क्वायर (२८ एकड़) जोतनेवाले की प्रतिदिन की आमदनी १=)॥ और १) ५ पाई है। शेष आधा स्क्वायर (१४ एकड़) जोतनेवाले १६ किसानों में से ८ की ।-)। से ॥-)१ पाई है। शेष ८ की ॥=) से ऊपर है, मगर १) से कम है। इन सबको साल की (१ जून १९२३ से ३१ मई १९२४ तक की) औसत आमदनी मिस्टर स्टीवर्ट के अनुसार १९≡) पड़ती है।

पंजाब के किसान के पास औसतन जोत का खाता ५ एकड़ से ज़्यादा नहीं है। यदि नहरी और ग़ैर-नहरी ज़मीन की उपज की औसतन आमदनी १९≡) ही मान लें तो एक किसान को बँटाई और भूमि-कर देने के बाद साल में ९६) आमदनी होती है। जो इससे कम जोतते हैं उनकी आमदनी कम होगी। यह पड़ता है प्रतिमास ८) और प्रतिदिन ।)। अर्थात् मिस्टर स्टीवर्ट की जाँच के

हिसाब से एक पंजाबी किसान की प्रतिदिन की आमदनी चार आने से ज़्यादा नहीं पड़ती।

सरकारी अधिकारी खेती की उन्नति और नहरों के प्रसार से बढ़ी हुई पैदावार का ज़िक्र करके बताते हैं कि देश समृद्ध हो रहा है। मगर किसी जाति की उन्नति पैदावार की वृद्धि से नहीं जानी जा सकती। इसके जानने के लिए यह देखना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति की कितनी आमदनी है। प्रोफ़ेसर व्रजनारायण ने एक पंजाबी किसान की प्रतिदिन की औसतन आमदनी ||-) बताई है। आप इस परिणाम पर जिस रीति से पहुँचे हैं वह इस प्रकार है—

खेती के सहारे पंजाब में जीनेवालों की संख्या १९२१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार है—

१ जोती गई ज़मीन के लगान से जिनकी आमदनी है	... ८,८६,४२३
२ खेती करनेवाले साधारण किसान	... ९९,२३,७६५
३ ज़मींदारी के मैनेजर, एजेण्ट, लगान वसूल करनेवाले, क्लर्क आदि	... ११,२६१
४ फ़ार्म के नौकर	... ३,९१,६६५
५ खेतों में मज़दूरी करनेवाले	... ५,४८,८१८
योग	१,१७,५६,९३२

लेंड-रिकार्ड के डाइरेक्टर की रिपोर्ट के अनुसार पंजाब की कुछ सालों की पैदावार इस प्रकार है—

	(करोड़ रुपयों में)
१९२५ २६	... १०९·३
१९२६-२७	... ९१·१
१९२७-२८	... ८२·०

१९२५-२६ का साल स्टेंडर्ड साल माना जाता है, इसलिए इसी साल की पैदावार के आधार पर प्रतिव्यक्ति की आमदनी निश्चित करना ठीक होगा।

१९२५-२६ की प्रधान फ़सलों की पैदावार की क़ीमत १०९·३ करोड़ रुपया ठहराई गई है। इसमें भूसा नहीं शामिल है। इसलिए यदि भूसा और छोटी फ़सलें, मूँग, मोंठ, तम्बाकू की आमदनी जोड़ें तो प्रोफ़ेसर साहब के अनुसार परिणाम इस प्रकार होगा—

१९२५-२६ की फ़सल	क़ीमत करोड़ रुपयों में
प्रधान फ़सल	... १०९·३
भूसा	... १५·०
छोटी फ़सलें	... ७·१
	१३१·४

१९२५-२६ में सरकार ने कुल ४५७ लाख रुपये भूमि-कर में वसूल किये। आबपाशी का सरकारी दावा ८·९७ करोड़ रुपया का था, मगर वसूल ४·४ करोड़ ही हुए। इसके अतिरिक्त कुओं से ३,७०,००,००० एकड़ ज़मीन सींची गई। कृषि-कमीशन के हिसाब से कुएँ से एक एकड़ सींचने में साल में २२) ख़र्च पड़ता है। इसलिए कुएँ से सींचने में २२) प्रतिएकड़ के हिसाब से ख़र्च हुआ ८·१४ करोड़ रुपये।

मिस्टर स्टीवर्ट के कथनानुसार बीज पर प्रतिएकड़ २।) ख़र्च पड़ता है। अच्छा बीज बोने या गन्ने के बीघे पर प्रति एकड़ २=) ख़र्च बैठता है। प्रोफ़ेसर व्रजनारायण ने ग़ैर नहरी ज़मीन के लिए प्रतिएकड़ १॥) बीज का ख़र्च लगाया है। औसतन प्रतिएकड़ बीज पर २) ख़र्च पड़ता है।

एक ज़मींदार को, यदि वह अपने आप खेती करे तो, मिस्टर स्टीवर्ट के मतानुसार बैल रखने में प्रतिएकड़ १७) ख़र्च पड़ता है। बँटाई पर जोतनेवाले किसान को, क्योंकि वह अच्छा खाना नहीं खिलाता, बैल रखने में ९) से १०) ख़र्च बैठता है। हम बैल का ख़र्च प्रतिएकड़ ९॥) मान लेते हैं। १) औज़ार आदि पर लगता है। हमारा यह व्यय ज़्यादा नहीं है। क्योंकि मिस्टर भल्ला ने होशियारपुर की आर्थिक जाँच करके लिखा है कि बैल रखने में साल में १०|||=) प्रतिएकड़ ख़र्च पड़ता है। इस तरह १९२५-२६ में खेती करने में कुल ख़र्च इस प्रकार हुआ—

१९२५-२६ में खेती पर ख़र्च

	करोड़ रुपयों में
मालगुज़ारी	५·४७
आबपाशी	४·४
कुएँ से सिचाई	८·१४
बीज	५·११
हल, बैल और अन्य औज़ार	३०·८७
कुल ख़र्च	५३·९९

कुल आमदनी में से ख़र्च निकालकर १९२५-२६ में खेती से आमदनी हुई ७७·४ करोड़ रुपया।

खेती करनेवालों की कुल संख्या १,१७,५६,९३२ है। इसलिए प्रतिव्यक्ति वार्षिक आमदनी ६६।) हुई। कुल १,१७,५६,९३२ खेती करनेवालों में से वस्तुतः खेती करनेवालों की संख्या ३८,६०,९०० और खेती पर आश्रित रहनेवालों की ७८,९६,०३२ है। इसलिए ७७·४ करोड़ रुपये की सालाना बची हुई आमदनी के हिसाब से प्रति-किसान और उसके साथ दो आश्रितों की सालाना आमदनी १९९·२ रुपया हुई। यह मासिक पड़ती है १६·६ रुपया और दैनिक ।।=) पड़ती है।

इससे मालूम होगा कि पैदावार की मात्रा ज़रूर बढ़ गई है, मगर आमदनी बहुत कम होगई है।

किसान की ग़रीबी का कारण महाजन बताये जाते हैं, अतएव सब प्रान्तों में महाजनों पर प्रतिबन्ध लगाये जा रहे हैं और किसान महाजन के चंगुल से बचाये जा रहे हैं। मगर किसान की ग़रीबी का वस्तुतः कारण महाजन नहीं है। बैल, कुएँ से सिंचाई और खेती के उपकरणों पर लगी हुई पूँजी पर मिस्टर स्टीवर्ट ८ प्रतिशत और मिस्टर भल्ला ९ प्रतिशत सूद लगाते हैं। इसके अतिरिक्त पञ्जाब के किसान वार्षिक ४-५ करोड़ रुपया महाजन को देते हैं। यह खेती के ख़र्च में नहीं शामिल किया गया है। इस पर भी एक पञ्जाबी किसान की आमदनी जिसके ऊपर दो आश्रित व्यक्तियों का भी ख़र्च है, प्रतिदिन ।।=) है। इसलिए किसान की ग़रीबी का मुख्य कारण महाजन नहीं है, बल्कि प्रोफ़ेसर व्रजनारायण के शब्दों में खेती पर जीविका के लिए बेशुमार लोगों का आश्रित होना है।

इस पर कहा जायगा कि आबादी की वृद्धि के लिए हम ज़िम्मेवार हैं। मगर विदेशी अर्थशास्त्री मिस्टर डार्लिङ्ग सरीखे या १९३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट लिखनेवाले सर हाटन जैसे व्यक्ति जन-संख्या की वृद्धि जिस वेग से बढ़ी बताते हैं, वस्तुतः उस तीव्र वेग से आबादी नहीं बढ़ रही है। मिस्टर डार्लिङ्ग कहते हैं कि भारत में शादी जल्दी हो जाती है और जन-संख्या की भयानक वृद्धि ही यहाँ की ग़रीबी का मुख्य कारण है, क्योंकि ५० साल में १०,००,००,००० आबादी बढ़ गई है। १८७२ में भारत की आबादी २०,६०,००,००० थी। १९२१ में ३१,९०,००,००० हो गई, यानी ११,९०,००,००० बढ़ गई। १९३१ में बढ़कर यह ३५ करोड़ हो गई है।

यह ठीक है कि भारत में जल्दी शादी हो जाती है। मगर यह ख़याल करना कि भारत की आबादी तेज़ी से बढ़ रही है, बड़ी भारी भूल है। अगर भारत की उत्पत्ति का रेट ज़्यादा है तो उसकी मौत का रेट भी संसार में सबसे ऊँचा है। हमारी आबादी का नियन्त्रण रोग और मृत्यु करती है। प्रोफ़ेसर व्रजनारायण के मतानुसार १८७१-१९२१ के अन्दर वास्तविक वृद्धि ५,४०,००,००० करोड़ अर्थात् २० प्रतिशत हुई है। इसके मुक़ाबिले योरप की ३०,७७,००,००० से ४४,९७,००,००० की वृद्धि हुई, अर्थात् योरप की आबादी में ४६ प्रतिशत वृद्धि हुई है। यही बात जन-संख्या-परिषद् में गत वर्ष मदरास-यूनिवर्सिटी के अर्थशास्त्र के अँगरेज़ प्रोफ़ेसर ने भी डाक्टर राधा-कमल मुकर्जी के जवाब में कही थी। वस्तुतः फ़्रांस को छोड़कर योरप के अन्य देशों की अपेक्षा भारत की आबादी धीमी गति से बढ़ रही है। इसलिए भारतीय किसान की ग़रीबी का मुख्य कारण देश की आबादी का बढ़ना नहीं, अपितु ज़मीन पर जीविका के लिए अत्यधिक लोगों का आश्रित होना है।



श्रीमती का तलाक़

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

दृश्य—एक बड़ा मैदान है। इधर-उधर दरख़्त हैं। मैदान में छोटी-छोटी घास लगी है। दरियाँ ज़मीन पर बिछी हैं। एक तरफ़ औरतें कुछ चादरें ओढ़े, कुछ बुर्क़े पहने मुँह ढँके, कुछ मुँह खोले बैठी हैं। दूसरी तरफ़ मर्द हैं। किसी किसी के साथ औरतें भी हैं। इनमें से कोई कोई सिर खोले फूल जूड़ों में लगाये, कुछ बाल कटाये भी हैं। सामने एक तख़्त बिछा है। बड़ा तकिया क़ालीन पर रक्खा है। लड़के और लड़कियाँ वालंटियर बिल्ले लगाये इधर-उधर घूम रहे हैं। उस मैदान में भीड़ के पीछे खोंचेवाले बैठे हैं। मिट्टी के तेल की डिबरी उनके खोंचों पर लगी हैं। वे अपनी आवाज़ें अलग लगा रहे हैं "मूँगफली बालू की भूनी।" "चाय गरम।" "पान बीड़ी सिगरेट!" सभी वक्ता के आने का इन्तज़ार कर रहे हैं और आपस में ज़ोर ज़ोर से बातें कर रहे हैं। काफ़ी शोर-गुल है। राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा है।

सभी वालंटियर पुकार रहे हैं और हाथ से इशारा कर रहे हैं—"भाइयो, शान्ति से बैठो!" "बहनो, शान्ति से बैठो!" "माताओ, ज़रा धैर्य धरो!" "वह देखो मोटर आ रहा है।"

बहुत-से लोग खड़े होकर देखने लगते हैं। वालंटियर फिर हाथ से बैठने का इशारा करते हुए चिल्लाते हैं। मोटर का हार्न बजता है। कुछ वालंटियर दौड़ जाते हैं।

"बैठो"! "बैठो"! "बैठिए"! "सावधान हो जाइए"! काफ़ी शोर-गुल है।

लोग बैठने लगते हैं। एक मोटी स्त्री रेशमी साड़ी पहने सिर खोलकर, जूड़े में फूल लगाये, माथे पर लाल टीका अधेड़ अवस्था की सबसे आगे है। उसके पीछे एक युवक ३०-३२ वर्ष की अवस्था का मूँछ-दाढ़ी घोटे, खादी की धोती-कुर्ता पहने, गांधी-कैप सिर पर रक्खे, पैर में चप्पल पहने है। उसके पीछे लड़के-लड़कियाँ वालंटियर जो बाहर भाग गये थे, आते हैं। स्त्री की कुर्ती आधे आस्तीन की है। ये दोनों तख़्त पर जाकर बैठते हैं और वालंटियर पीछे खड़े हो जाते हैं। सभा-नेत्री खड़ी होती है। तालियाँ बजती हैं।

सभा-नेत्री—मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ कि हमें आने में कुछ देर हो गई। कारण मोटर बिगड़ गया था। रास्ते में आधा घंटा ख़राब हो गया। आज की कार्रवाई शुरू होती है। पहले वंदे मातरम् गाया जायगा।

[वह बैठती है। तालियाँ बजती हैं, लड़कियाँ आगे तख़्त पर आकर खड़ी हो जाती हैं और हाथ जोड़कर गाती हैं। दर्शक सब खड़े हो जाते हैं। गीत ख़त्म होने पर बैठते हैं। ताली नहीं बजनी चाहिए।]

एक स्त्री दूसरी अँगरेज़ स्त्री से कहती है—"यह हमारा क़ौमी गीत है। जब यह गाया जाता है, सबको खड़ा होना चाहिए।"

अँगरेज़ स्त्री—"ओह! तुम्हारा क़ौम! हम ख़ाली अपने 'गॉड सेव दि किंग' में खड़ा होता है। सब वाही-तबाही में नहीं।"

"नहीं मेम साहब, वाही-तबाही नहीं......"

"वेल! चुप मारो। डेको, वह मोटा औरट बोलटा है।"

सभानेत्री जो अभी तक मुख्य वक्ता से फुस-फुस कर रही थी, खड़ी होती है। वह बोलती है—

"उपस्थित सज्जनो और देवियो! मेरे व्याख्यान तो आप रोज़ ही सुना करती हैं? आज मैं आपका समय न लेकर अपने मित्र ब्रह्मदत्त जी से प्रार्थना करूँगी कि वे हमें स्त्रियों के हक़ों के बारे में शिक्षा दें। उनके नाम से तो हमारा स्त्री-समाज ख़ूब परिचित है। उन्होंने हमारी उन्नति के वास्ते ज़मीन और आसमान एक कर रक्खा है और हमारे छिने हुए कुल अधिकार वापस दिलाने का बीड़ा उठाया है। मगर कोई उन्नति उस समय तक नहीं हो सकती जब तक हम उसका भार पुरुषगण पर छोड़े रहेंगी। हमें यह दिखा देना है कि हम अब मर्दों का खिलौना नहीं रहीं। हमारी आँख खुल गई है। हम किसी का हक़ नहीं दबाना चाहतीं, परन्तु अपना छिना हुआ हक़

वापस लेने पर तुली हैं। हम उन पुरुषों के अनुगृहीत हैं जो हमें ऊँचा उठने में सहायता दे रहे हैं। ब्रह्मदत्त जी का व्याख्यान आप ध्यानपूर्वक सुनें।

[बैठती है और ब्रह्मदत्त खड़े होते हैं। देर तक ताली बजती रहती है। वे हाथ जोड़े गर्दन झुकाये मुसकराते रहते हैं।]

ब्रह्मदत्त—सज्जनो तथा देवियो, यह तो अब मानी हुई बात है कि स्त्रियों के सारे ही हक़ छीने जा चुके हैं। किसी भी क्षेत्र में उन्हें पैर धरने तक की जगह नहीं रही है। जहाँ वे महाभारत के ज़माने में स्वतन्त्र थीं, वहाँ आज वे समाज के बंधनों से जकड़बंद हो रही हैं। मैं उन सभी विषयों पर यथासमय अपने विचार प्रकट करूँगा। मगर आज का विषय एक ही होगा। वह बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण है। स्त्री और पुरुष दोनों ही पर लागू होगा। वह विषय है हिन्दू-विवाह-विच्छेद या तलाक़।

दुनिया भर में कम-से-कम इस विषय में दोनों पक्षों को समानाधिकार हैं। कुछ हालतों में विवाह-विच्छेद हो सकता है और फिर दोनों ही स्वतंत्र हो जाते हैं। याद रहे कि वहाँ विवाह भी स्त्री-पुरुष अपनी मर्ज़ी से करते हैं। जब अपनी इच्छा से सम्बन्ध जोड़ा हुआ टूट सकता है तब हिन्दू-विचारों ने क्या पाप किया है कि दूसरों का जोड़ा हुआ संबंध न तोड़ सकें। जिस किसी भी स्त्री या पुरुष के साथ हमारे मा-बाप हमें बाँध दें, हम जन्म भर के वास्ते क्यों बँध जायँ?

यों तो हिन्दू-महिलाओं पर होनेवाले अत्याचारों की कहानियाँ बड़ी ही दारुण और कलेजा फाड़नेवाली हैं, पर इन अत्याचारों का स्वरूप और भी भयानक हो जाता है जब हम यह देखते हैं कि पति के परित्याग पर भी पत्नी उसे परित्याग नहीं कर सकती। यह सच है कि पुरुष भी तलाक़ नहीं दे सकता, परन्तु उसे सारी सुविधायें मौजूद हैं। मेरे तजरुबे में कितने ही उदाहरण आये हैं, जहाँ स्त्री या पुरुष एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। उनके घर वास्तव में नरक हैं, जिनसे समाज उन्हें निकलने नहीं देता। मैं केवल दो उदाहरण आपको सुनाता हूँ।

दृश्य—रेलवे-स्टेशन। लोग गाड़ी का इंतज़ार कर रहे हैं। प्लेटफ़ार्म पर बहुत आदमी इधर-उधर घूम रहे हैं। उनमें एक अँगरेज़ी कपड़ों में साफ़्ट फ़ेल्ट हैट लगाये डाक्टर रामावतार हैं। कोई ३०-३२ वर्ष की अवस्था है। दाढ़ी-मूँछ घुटी है। मेवे-मिठाईवाले एक लाइन लगाये बैठे हैं। कुली दूसरी तरफ़ रेल का इंतज़ार कर रहे हैं। चहल-पहल है। एक मेवेवाला—संतरे दिखाऊँ सरकार। संतरा क्या चीनी है! दूसरा—एक रुपये के चौंसठ लीजिए हुज़ूर। गाहक—नहीं भाई नहीं चाहिए। तीसरा—खिलौना दूँ बाबू जी, आख़िर क्या देंगे? गाड़ी आती है। डाक्टर उधर दौड़कर एक ड्योढ़े डिब्बे के पास जाता है। ब्रह्मदत्त उतरता है। खादी की धोती-कुर्ता पहने है। कुली दौड़कर लोहे का ट्रंक-बिछौना उतारता है। डाक्टर इस बीच में आ पहुँचता है।

रामावतार—हेलो! ओल्ड ब्वाय! [हाथ पकड़ते हुए] बरसों बाद मुलाक़ात हुई।

ब्रह्म०—हेलो! इट इज़ यू। मैं तो तुम्हारी इस वेष-भूषा में तुम्हें पहचान ही न सका!

[प्लेटफ़ार्म से बाहर आते हुए]

रामा०—भाई जान, मेरा पेशा ऐसा है कि इस तरह सुसज्जित न रहूँ तो कोई टके को न पूछे। क्या मुझे खादी के कपड़ों में आनंद नहीं आता? और फिर ये भी देशी ही कपड़े हैं।

ब्रह्म०—मेरा यह मतलब नहीं है। मैंने तुम्हें इस पोशाक में पहले नहीं देखा था, इसलिए कहा।

[स्टेशन के बाहर आ जाते हैं। कुली मोटर पर पीछे की सेट पर असबाब रख देता है। रामावतार ख़ुद ही चलाता है। बँगले की बरसाती में मोटर आकर खड़ा होता है, बरामदे में कुछ गमले रक्खे हैं। मोटर के ठहरने पर बनयायन और ऊँची धोती पहने चौकीदार टोपी सँभालता हुआ आता है और सामने खड़ा हो जाता है। दोनों मित्र बरामदे में चले जाते हैं। बिजली के लैंप जल रहे हैं। एक तरफ़ गेस्ट-रूम है। उसी में वे जाते हैं। डाक्टर चिक उठाता है। भीतर जाकर ब्रह्मदत्त सजा हुआ कमरा देखकर]

ब्रह्म०—भाई, मुझ ग़रीब को इस ठाठ की क्या ज़रूरत थी? मेरे बाप-दादा भी कभी ऐसे कमरे में नहीं रहे।

रामा०—ठाठ क्या है! मामूली ज़रूरत की चीज़ें हैं। अच्छा हाथ-मुँह धो डालो। खाना तैयार होगा। हमारी श्रीमती इन्तज़ार में होंगी। इसी कमरे में जल्दी आना।

[जिस कमरे की तरफ़ इशारा करता है उसके दरवाज़े

के पीछे शन्नोदेवी खड़ी झाँक रही है और बातें सुन रही है। पति को उधर आते देख लपककर दूसरी तरफ़ चली जाती है। कमरा ड्राइंग रूम है। सोफ़ा और तीन-चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। तीन-चार छोटी छोटी मेज़ें रक्खी हैं। दीवार पर दो-तीन चित्र टँगे हैं। मेज़ों पर फूलदान। शन्नोदेवी २२ वर्ष की एक सुन्दर स्त्री है। रेशमी साड़ी और उसी रंग की स्लीव लेस फतुही, पैर में चप्पल मख़मली, सिर खुला, माथे पर लाल टीका, एक हाथ में साड़ी के रंग की चूड़ियाँ बहुत-सी हैं। रामावतार ड्राइंग रूम में घुसता है। ब्रह्मदत्त दरवाज़े पर आकर कान लगा देता है।

रामा०—अच्छा आप यहीं मौजूद हैं! क्या आपसे मैं यह आशा कर सकता हूँ कि दो-चार दिन जब तक ये यहाँ रहें, आप ज़रा शान्ति से कट जाने दें, फूहड़पन की बात कम-से-कम इनके सामने तो न हो?

शन्नो०—[ज़रा तिरस्कारभरी आवाज़ से] और क्या मैं भी आपसे आशा कर सकती हूँ कि मुझे आप कम-से-कम उतने ही दिन अपने बराबरवाला समझें, मुझसे बातचीत उसी तरह करें जैसे दूसरों से करते हैं? ज़रा दो-चार दिन तो घूमना छोड़ दें।

रामा०—तुम तो इसी तरह की बातें करती रहती हो, इसी से तो जी जला रहता है। सीधी बात तो कभी करतीं ही नहीं।

शन्नो०—और आप! ज़रा अपनी तरफ़ भी तो देखो!

[ब्रह्मदत्त दरवाज़े से हटकर खाँसता है]

रामा०—वह आ रहा है। चुप रहो।

[ब्रह्मदत्त भीतर जाता है। शन्नोदेवी से नमस्कार करता है। शन्नो भी मुसकराकर नमस्कार करती है]

रामा०—माई वाइफ़ (मेरी स्त्री है)।

ब्रह्म०—गृहस्वामिनी को प्रणाम। मेरा सौभाग्य है कि आप जैसी देवी के मैंने दर्शन पाये। मैं इस घड़ी को जन्म भर नहीं भूल सकता। मैं आपके पति का सहपाठी था। हमारी पुरानी मित्रता है।

शन्नो०—मुझे मालूम है। मैं आपके भाषण हमेशा अख़बारों में पढ़ा करती हूँ। वास्तव में आप हमारी जाति की उन्नति के वास्ते बड़ा परिश्रम कर रहे हैं।

ब्रह्म०—नहीं, मैं तो अपने धर्म का पालन कर रहा हूँ।

[रसोइए का प्रवेश—नंगे बदन, चोटी लटकती हुई, जनेऊ गले में पड़ा है, सिर नंगा है। शन्नोदेवी और रामावतार नाक सिकोड़ लेते हैं]

रसोइया—सरकार थालियाँ परसी रक्खी हैं। ठंडी हो रही हैं। [जाता है]

रामा०—चलो भई, खाने के बाद अपने धर्म का बखान करना। हमारी श्रीमती पहले से ही तुम्हारे धर्म की चेली हैं। मुझे तो भूख लगी है।

शन्नो०—महाशय जी, आपने देखा, हमारे नौकर कैसे बदतमीज़ होते हैं। कितना ही समझाया, डाँटा, फिटकारा कि कुर्ता-टोपी पहनकर सामने आया करो, नहीं मानते। और हम स्वराज्य चाहते हैं!

रामा०—यह नहीं कि कपड़े न हों। मैंने खुद अपने पुराने कपड़े दिये हैं। मगर ये लोग ऐसे पाजी होते हैं कि जब कभी कोई मेहमान आता है, उसके सामने नंगे ही आते हैं। मैले कपड़े भी उसी दिन के वास्ते रख छोड़ते हैं।

ब्रह्म०—भाई, धुलाई में भी तो पैसा लगता है। साबुन ख़र्च होता है।

शन्नो०—भाई जी, शायद आप यह नहीं जानते कि नाज इतना सस्ता है कि दो रुपये में दो मियाँ-बीबी पेट भर सकते हैं, बाक़ी जमा करते हैं।

रामा०—कहते हैं, घर भेजना होता है। क्यों साहब, हम इनके कुनबे को क्यों पालें? वे लोग मेहनत-मज़दूरी क्यों नहीं करते? बात यह है कि कामचोर लोग हैं। मुफ़्त को मिले तो क्यों मेहनत करें?

ब्रह्म०—भाई, वे भी आदमी हैं। मूर्ख-गँवार हैं। उन्हें सिखाना होगा। मगर उन्हें ख़ाली पेट ही तो भरना नहीं है। हम जैसे वे भी आदमी हैं।

शन्नो०—अच्छा चलिए। भोजन तो कर लीजिए। वहीं बहस कीजिएगा।

रामा०—हाँ, चलो। मगर इसमें बहस ही क्या? तुम मोरी के कीड़े को सफ़ाई नहीं सिखा सकते।

[सब जाते हैं दूसरे कमरे में]

[यहाँ दृश्य फिर बदल जाता है। वही सभा का मैदान। भीड़ जमा है। ब्रह्मदत्त मंच पर खड़ा है। लोग चुप बैठे हैं]

ब्रह्म०—मैं अपने एक मित्र के घर चार रोज़ ठहरा। काम समाप्त होने पर मैंने घर लौटने की ठानी। अपने कमरे के दरवाज़े पर—

[दृश्य बदलता है। रामावतार के घर में गेस्ट-रूम के दरवाज़े पर ब्रह्मदत्त दरवाज़ा खटखटा रहा है। ड्राइंग रूम में रामावतार बैठा है। किताब हाथ में है।]

रामा०—कम इन (भीतर आओ)।

[ब्रह्मदत्त भीतर जाता है]

रामा०—हेलो!

ब्रह्म० भाई, मैं आज जाऊँगा तुम्हें अधिक कष्ट देने की ज़रूरत नहीं।

रामा०—कष्ट कैसा? शन्नो! शन्नो! मुझे तो तुम्हारे आने से बहुत ही ख़ुशी हुई। शन्नो!

[शन्नोदेवी अपने ड्रेसिंग-रूम में बड़े शीशे के सामने खड़ी शृंगार कर रही है। कभी कंघी करती है, कभी टीका लगाती है, कभी पाउडर ज़्यादा हो जाने पर रूमाल से साफ़ करती है। लिपस्टिक लगाती है]

शन्नो०—अभी आई।

[शृंगार करना ख़त्म करके जाती है]

रामा०—ये आज जाने को कहते हैं।

शन्नो०—वाह! मैं आज कभी नहीं जाने दूँगी। कल जाइएगा।

ब्रह्म०—यहाँ का सब काम ख़त्म हो गया।

शन्नो०—इससे क्या होता है? हमारा अभी जी नहीं भरा।

[टेलीफ़ोन में घंटी आती है। डाक्टर वहाँ जाकर रिसीवर कान में लगाता है। दोनों उसी तरफ़ देखते हैं]

रामा०—हेलो! मैं हूँ डाक्टर रामावतार, कहाँ?... फ़तेहपुर...अच्छा, क्या हुआ?...ओहो! कितना टेम्परेचर है...१०५। इतना तेज़, अच्छा, नौ बजेवाली गाड़ी से चल दूँगा। आप स्टेशन पर सवारी लावें। इस वक्त सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रक्खी जाय। मेरे आने तक कोई दवा न दी जाय।

[टेलीफ़ोन बन्द करके]

रामा०—फ़तेहपुर के एक तालुक़दार बीमार हैं। मेरे मरीज़ हैं। मुझे फ़ौरन आने को कहा है। अब तुम परसों जाओगे। क्यों शन्नो? देखो ख़ातिर ख़ूब करना। [घड़ी देखकर] साढ़े आठ तो बज चुके। मैं जाता हूँ। परसों सुबह मोटर स्टेशन पर भेज देना या ख़ुद हवा खाती हुई चली आना। इन्हें भी लेती आना। अच्छा, अब देर होती है। गुड बाई! [जाता है कुछ देर दोनों चुप रहते हैं]

ब्रह्म०—मेरी वजह से आपको और डाक्टर साहब को बहुत कष्ट हुआ। आज तो मुझे आपने व्यर्थ ही रोक लिया।

[शन्नो कुछ कहना चाहती है, मगर हिम्मत नहीं पड़ती। कभी कुछ उठाती है, कभी कुछ! आँखें ज़मीन पर गड़ी हैं। कुर्सी पर इधर-उधर हिलती है]

शन्नो०—वाह! कष्ट कैसा? मेरे वास्ते तो ये चार दिन बड़े ही सौभाग्य के थे। नहीं तो मैं तो यों ही अकेली पड़ी सड़ा करती हूँ।

ब्रह्म०—यह आप क्या कहती हैं?

शन्नो०—नहीं, सच कहती हूँ। मैं बड़ी दुखी रहती हूँ। डाक्टर साहब तो रात-दिन घर से ग़ायब ही रहते हैं।

ब्रह्म०—उनका पेशा ही ऐसा है कि दम दम पर जाना पड़ता है।

शन्नो०—ठीक है। मगर वे उसी काम से जाते तो रोना क्या था? बहाना वही है। यों अपना मुँह काला करते फिरते हैं।

ब्रह्म०—श्रीमती जी, आप धोखे में हैं। आप ऐसी सुन्दर स्त्री पाकर कौन ऐसा अभागा होगा जो दूसरा दरवाज़ा ढूँढ़े?

शन्नो०—मर्दों की यही करतूतें हैं। वे इस पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन में मुझसे ऊब गये हैं। कहते लज्जा आती है। शायद पाँच वर्ष में पाँच रातें पूरी घर पर काटी होंगी। मैंने दो-एक दफ़े पकड़ा भी। क़समें खाते हैं कि वैसा न करेंगे, किन्तु फिर वही हरकतें रहती हैं।

[दृश्य बदलता है। रामावतार बेग लेकर बाहर जाने को तैयार है। ड्रेसिंग-रूम में चाय पी रहा है। शन्नो आती है। सादी सफ़ेद साड़ी पहने है। हाथ चूड़ियों से ख़ाली हैं। ज़रा गुस्से में है।]

शन्नो०—किधर की यात्रा है? अब तो शायद आपके कल दर्शन होंगे।

रामा०—नहीं तीन-चार 'काल' हैं। यह लिस्ट टँगवा दो। मैं नौ बजे तक लौट आऊँगा। तुम मोटर पर सैर कर आना। आज सिनेमा देख आओ।

शन्नो०—मेरी फ़िक्र आप क्यों करते हैं। मुझे तो यहीं सड़ना बदा है। सैर-सपाटे तो आपके वास्ते हैं।

रामा०—तुम तो हरदम जली-कटी बातें करती हो।

कभी कभी तो इन्हीं बातों के डर से मैं सड़क पर ही बैठा रहता हूँ।

शन्नो०—ऐसे ही तो आप महात्मा हैं। कहिए, पराई औरतों पर डोरे डालता हूँ।

रामा०—अच्छा यही सही। तुम इसी में ख़ुश हो तो यही सही। [जाता है]

[दृश्य—रामावतार का दवाख़ाना। वह मरीज़ देख रहा है। कुछ देर में कम्पाउंडर को बुलाकर कहता है।]

रामा०—रात हो गई है। अब मैं जाता हूँ। दो-तीन 'काल' अभी बाक़ी हैं। कल ९ बजे आऊँगा।

[दृश्य—एक गली। सन्नाटा है। कभी कभी कोई आदमी निकल जाता है। गली में एक बड़े मकान का फाटक है। उस पर रोशनी हो रही है। दरबान कोई नहीं है। अँधेरे में एक तरफ़ बुर्क़ा ओढ़े शन्नो छिपी खड़ी है, उसी दरवाज़े की तरफ़ देख रही है। डाक्टर रामावतार आता है। अँगरेज़ी कपड़े पहने है। सिर पर साफ़्ट हैट, हाथ में बेग है। दरवाज़े पर आकर खटखटाता है। एक जवान नौकरानी निकलती है। वह साफ़ कपड़े पहने है। गले में भूठे मोतियों का हार है। फ़ुर्तीली बहुत है। पैर नंगे हैं।]

रामा०—ओहो! संतो आज तो बड़े ठाठ हैं। क्या बात है? मालकिन तो अच्छी हैं।

सन्तो [ज़रा मुसकराती हुई]—हाँ बाबू जी, सब अच्छा है। आज तो मालिक भी दिसावर गये हैं। कलकत्ते। तोका मालकिन याद करत रहीं। आप चलो। हम आधे घंटा में आवत हैं।

[वह बाहर जाती है, डाक्टर भीतर]

[शन्नो उसके पीछे दौड़कर पुकारती है]

शन्नो०—ए बहन, ज़रा तो सुने जाओ। यह किसका घर है?

सन्तो [तुनक कर]—काहे! काहे पूछत है? कुछ मालिक से नाता जोड़े चाहत हौ का, जस वह दहजरा हमार मलकिन से जोड़े है?

शन्नो०—नहीं बहन! ख़फ़ा क्यों होती हो? हमने कुछ बुरा किया तो माफ़ करो। लो, यह जुर्माना लो।

[एक रुपया देती है। रुपया लेकर कमर में रखते हुए]

सन्तो—नाहीं बीबी बुराई कछो नाही है। हम ज़रा जलदियान रहे। तोहका चीन्हा नाहीं। यह मेवालाल ठेकेदार का घर है। बड़ा सूध मनई है। बीबी यही दहजरा डाक्टर उसकी मेहेरिया का भ्रष्ट किहिस है। अच्छा अब जावत है।

[दृश्य बदलता है। मेवालाल के घर में एक कमरा! ज़मीन पर चाँदनी बिछी है, तकिये रक्खे हैं। दीवार पर कुछ तस्वीरें टँगी हैं, कोने में पलँग पड़ा है, उस पर पार्वतीदेवी लेटी है। २३, २४ वर्ष की अवस्था है। बहुत सुंदर नहीं। फिर भी अच्छी है। माथे पर लाल टीका है, सिंगार-पिटार किये है। साड़ी सूती कढ़ी हुई है, हाथों में चूड़ियाँ, बदन पर गहना है। डाक्टर रामावतार आता है। सीधा पलँग तक आता है। बेग मेज़ पर रखकर स्टेथेस्कोप निकालता है। कान में लगाकर उसके पास पाटी पर जा बैठता है। वह उठ बैठती है। साड़ी का पल्ला नीचे गिर जाता है। बिना आस्तीन की लोनेक फतुही पहने है। स्टेथेस्कोप को कान से खींच लेती है और हँसती है। हाथ पकड़ कर आराम से बिठाती है।]

पार्वती—इस समय यह ढोंग क्यों? वे कुछ माल लेने कलकत्ते गये हैं। नौकर छुट्टी में गये हैं। इस मुई संतिया को मैंने बाज़ार भेज दिया है। एक घंटे का काम बता दिया है। बीमारी तो ख़ाली तुम्हें देखने की है।

[एक दूसरे का हाथ पकड़ लेते हैं।]

[दृश्य बदलता है। दरवाज़े के पीछे खड़ी शन्नो झाँकती है। क्रोध से नथने फूले हैं। फिर दृश्य बदलकर वही कमरा। डाक्टर घड़ी देखता है।]

रामा०—उफ़! साढ़े आठ बज गये। अब चलता हूँ, फिर मिलूँगा। आज अपनी श्रीमती से नौ बजे का वादा करके आया हूँ।

पार्वती—उँह! बैठो भी! नौ बजे जाना। कह देना मरीज़ ने रोक लिया था।

[दोनों हँसते हैं, दरवाज़े पर खटका होता है। पार्वती चादर ओढ़ कर लेट जाती है, कराहने लगती है। डाक्टर स्टेथेस्कोप कान में लगाकर फिर खड़ा हो जाता है। बुर्क़ा ओढ़े शन्नो का प्रवेश।]

पार्वती—यह कौन चुड़ैल मेरे घर में घुसी आ रही है? चल दूर हो मुँहजली। [उठ बैठती है।]

रामा०—तुम ख़फ़ा न होओ। शायद यह रास्ता भूल गई है। आप किसे चाहती हैं? मेवालाल जी बाहर गये हैं।

शन्नो०—मैं आपको चाहती हूँ।

[रामावतार आवाज़ पहचान कर एक-दम सफ़ेद पड़ जाता है। शन्नो बाहर चली जाती है। वह सिर पकड़ कर कुर्सी पर बैठ जाता है। पार्वती उठती है। उसके सिर पर हाथ फेरती है]

पार्वती—कौन थी यह चुड़ैल जो तुम पर मानो जादू कर गई?

रामा०—ग़ज़ब हो गया। वह मेरी स्त्री थी। मुझे क्या मालूम था कि वह इस तरह मेरे पीछे पड़ी हुई है। शिक्षित स्त्री से विवाह करना ख़तरनाक है। फिर कहो, थोड़ा ही पढ़ी है। कहीं ग्रेजुएट होती तो आफ़त ही होती।

[दृश्य बदलता है। शन्नो अपने ड्राइंग रूम में ब्रह्मदत्त से कह रही है।]

शन्नो०—मगर आप समझेंगे कि डाक्टर साहब कुछ शरमाये! नहीं उन्होंने घर आते आते दूसरा ही ढङ्ग निकाला, उलटा चोर कोतवाल को डाँटेवाला मसला हुआ। मर्दों की यही करतूत है।

[दृश्य फिर बदलता है। रामावतार का ड्राइंग रूम। शन्नो अकेली टहल रही है, ग़ुस्से में है। प्रवेश—रामावतार हाथ में बेग लिये मुसकराते हुए।]

रामा०—कहिए आपके मित्र मेवालाल आज नहीं मिले। आप भी छुपी रुस्तम निकलीं। मैंने भी कैसा पकड़ा?

शन्नो०—[ग़ुस्से में] मैंने आपकी सब हरकतें देखी हैं। मुझ पर इलज़ाम लगाते हुए शर्म नहीं आती?

रामा०—देखो, तुम्हारी ये हरकतें अच्छी नहीं। रात में पराये घरों में जाना किसी शरीफ़ औरत का काम नहीं। कोई सुने कि तुम मेवालाल के घर नौ बजे रात को पाई गईं तो क्या कहेगा?

शन्नो०—[घबरा कर] कहेगा क्या? मैं तो आपको पकड़ने गई थी।

रामा०—कौन मानेगा औरत की बात मर्द के ख़िलाफ़ और ख़ास कर जब पकड़नेवाला उसका ही पति हो? [सिर पकड़ कर बैठ जाती है और रोती है] रोने की कोई बात नहीं। मैं किसी से कहने थोड़े ही जाऊँगा, तुम अपनी हरकतें छोड़ दो। मैं वादा करता हूँ कि मैं भी तुम्हारी सेवा में तत्पर रहूँगा। [उठ कर चली जाती है। रामावतार उसकी तरफ़ देखकर मुसकराता रहता है।]

[दृश्य बदलता है। ब्रह्मदत्त लेक्चर दे रहा है]

ब्रह्मदत्त—भाइयो तथा बहनो! क्या ऐसी हालत से यह अच्छा नहीं कि तलाक़ हो जाय? वे डाक्टर मेरे दोस्त हैं। मैंने उन्हें समझाया। अब दोनों दम्पति प्रकट रूप से मेल से रहते हैं। मगर जब दिल नहीं मिले तब ज़ाहिरदारी किस काम की, तलाक़ हो जाना ही बेहतर है।

अब एक दूसरी कहानी सुनिए, जहाँ पुरुष असंतुष्ट है। वे भी मेरे मित्र हैं। उनका नाम कृष्ण और उनकी स्त्री का राधा है—कम-से-कम इस कहानी के वास्ते।

[दृश्य बदलता है। कृष्ण अपनी बैठक में आराम-कुर्सी पर बैठा है। छोटी मेज़ पर एक बोतल शराब, एक ग्लास, सोडा की कुछ बोतलें रक्खी हैं। वे कभी कभी एक घूँट पीकर रख देते हैं और सोच में पड़ जाते हैं। ब्रह्मदत्त का प्रवेश]

ब्रह्म०—कृष्ण, तुमने यह क्या लत लगाई है? मुझसे वादा भी किया कि छोड़ दोगे, मगर फिर वही देखता हूँ [हाथ से ग्लास छीनता है]

कृष्ण—ठहरो, शायद तुमसे छिपाना अच्छा नहीं। न पियूँ तो क्या करूँ? दफ़्तर से क्या लौटता हूँ, मानो नरक में आ जाता हूँ?

ब्रह्म०—यह तो तुम कितने ही दफ़े कह चुके हो। सभी शराब के लती ऐसा कहते हैं। क्या नरक में शराब ज़रूर पीनी होती है?

कृष्ण—मेरी किसी से तुलना नहीं हो सकती। मैं बड़ा दुखी हूँ, तुम अभी लड़के हो। क्या जानो?

ब्रह्म०—कुछ कहो भी। समझने की तो अक़्ल है। यों तो दुनिया में सभी अपने दुःख को सबसे बड़ा समझते हैं।

कृष्ण—यह तो तुम जानते ही हो कि मेरी स्त्री एक धनवान् पुरुष की लड़की है।

[दृश्य। कृष्ण की बारात। वह दुलहा बना घोड़े पर बैठा है। आरायश, आतशबाज़ी, बाजे-गाजे, ऊँट-घोड़े, भीड़-भाड़। बरात चढ़ रही है। फिर दृश्य बदलता है। कृष्ण ससुराल में। मसनद पर कृष्ण दुलहा बना बैठा है। उसके श्वसुर और पिता भी मौजूद हैं। नाच-रंग का सामान है। नाचनेवालियाँ और साजिंदे हुक्म का इंतज़ार कर रहे हैं। महफ़िल में भीड़ जमा है। एक तरफ़ चिकें पड़ी हैं। उसके पीछे औरतें हैं। कृष्ण के श्वसुर धोती-

अचकन पर छोटी-सी महाजनी पगड़ी लगाये हैं। पान-इलायची बाँटा जा रहा है। सभा में हिन्दू-मुसलमान सभी हैं। पान बाँटनेवाला मुसलमान को ख़ुद ही उठाकर पान देता है।

इधर नाच रंग है, दूसरी तरफ़ बराती भूख से व्याकुल हैं।]

एक बराती—

किस आफ़त में फँसे आकर, अजब याँ कारख़ाना है,
न बिस्तर है बिछाने का, न सर पर शामियाना है।

दूसरा०—कैसा ख़ीमा कैसा डेरा, पेड़ों पर अब लेओ बसेरा।

तीसरा०—पूरी मालें कैसी कैसी रोटियाँ, नोचकर खा जाओ अपनी बोटियाँ।

चौथा०—का कहि तोसे मोरे भैय्या, खात रहे हम सेर सवैया
घर का छोड़ बराते आयेन, चर्बन लोन न कोई दिवैया,

[फिर दृश्य बदल कर नाच-गान होता है। फिर दृश्य बदल कर बरातियों की दशा का दृश्य सामने आता है। फिर नाच का दृश्य तायफ़ा बदलते समय नाचनेवाली दुलहे को सलाम करती है।]

नाच०—ख़ुदा हज़ूर की जोड़ी सलामत रक्खे। इनाम की बंदी भी मुस्तहक़ है [पास जाती है, दुलहा शर्म से आँखें नीची करता है। उसका बाप कहता है—]

बाप—अच्छा सबको मिलेगा। घबराओ मत।

[दृश्य बदलता है, कृष्ण का घर। राधा गाल फुलाये, सिर पर फटी साड़ी पहने, पैर नंगे, खाने का सामान लाकर मेज़ पर रख रही है। चाय के प्याले, तश्तरी फल-मिठाई से सजा रही है। कृष्ण अँगरेज़ी पोशाक में सुसज्जित कचहरी से आता है।]

कृष्ण०—उफ़! मैं तुमसे पचासों दफ़े कह चुका कि कम-से-कम बालों में कंघी तो कर लिया करो। कपड़ों की भी कमी नहीं है। यह फटा-पुराना क्यों पहनती हो? मेरी बदनामी होती है।

रा०—हमको क्या करना है? घर-गृहस्थी की औरत को सिंगार-पिटार क्या करना? देखो तुम्हारे वास्ते कैसी कैसी स्वादिष्ट चीज़ें बनाई हैं। जब से तुम गये क्या हम रसोई से हटी हैं?

कृ०—मुझे इस बात से बड़ी चिढ़ है। मैं तुम्हें ख़िदमतगारिन नहीं बनाना चाहता। सच कहता हूँ, फिर ऐसा करोगी तो घर से भाग जाऊँगा।

रा०—[रोते रोते] हम तो इतना जान मारें। यह उसका इनाम है!

कृ०—[ज़रा धीमी आवाज़ से] मुझे फ़ूहड़पन से नफ़रत है। बस, उसे छोड़ दो।

[दृश्य बदलता है। ब्रह्मदत्त और कृष्ण बातें कर रहे हैं]

रा०—एक दफ़े की हो तो हो, बरसों समझाया, मगर फ़ूहड़पन नहीं गया। फ़ूहड़पन की भी हद नहीं।

[राधा असबाब के कमरे में बैठी है, चारों तरफ़ कपड़े फैले हैं, कोई तहाया हुआ है, कोई खुला पड़ा है। राधा की साड़ी का पल्ला नीचे पड़ा है। कृष्ण का प्रवेश]

रा०—ज़रा मदद कर दो, तह करा दो, मैं अकेली थक जाती हूँ। कोई मदद करनेवाला नहीं है।

कृ०—[व्यंग्य से] तो दूसरा विवाह कर लूँ? तुम्हें मदद करनेवाली मिल जायगी। तुम उधेड़-बुन करना, वह सजाती रहेगी।

रा०—तुम तो यों ही ठट्ठा किया करते हो।

[कृष्ण तह कराने में हाथ बँटाता है]

[घर की अँगनाई का दृश्य, कूड़ा चारों तरफ़ फैला है, झाड़ू बीच में पड़ी है। बरामदे में कुर्सियाँ कोई सीधी तो कोई टेढ़ी रक्खी हैं, कृष्ण कचहरी से आता है। देखते ही क्रोध चढ़ आता है।]

कृ०—कहाँ गया यह कम्बख़्त भोला? आज हड्डी-पसली तोड़ूँगा। चारों तरफ़ दलिद्दर ला रक्खा है [रसोई से कलछी हाथ में लिये नंगे पैर पसीना टपकता हुआ राधा निकलती है।]

रा०—उसे तो हमने दही लेने को भेजा है। आता ही होगा।

कृ०—कुर्सियाँ ऐंड़ी-बेंड़ी लगा गया है। झाड़ू बीच में डाल गया है।

रा०—तुम ज़रा जल्दी आ गये। वह दम भर में आ जायगा। सब ठीक कर देगा।

[आगामी अङ्क में समाप्य

मारकीसन नस्ल की मृत्यु-समस्या

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०



ला तरलोकनाथ जीवन के विषय में हिन्दुस्तानी मनोवृत्ति का एक प्रकार से मूर्तिमान् नमूना हैं। पाँव में जामेशाही जूती, नीचे धोती, ऊपर कुर्ता, सिर पर पगड़ी और गले में दुपट्टा—ये सब चीज़ें उस मनोवृत्ति को जतलाती हैं जिसका जीवन के बारे में यह ख़याल है कि मनुष्य को ज़िंदगी की यह क़ैद काटनी ही है। इसलिए जिस किसी तरह यह क़ैद जल्दी कट जाय वही अच्छा। जब तरलोकनाथ से पूछा जाता है, क्यों लाला जी, क्या हाल है, तब झट बनावटी हँसी बनाकर कह देते हैं—महाराज, जो दम गुज़रे सो ही वाह-वाह!

तरलोकनाथ का यह वाक्य सुननेवाले पर ख़ूब असर करता है। इस वाक्य के अंतस्तल में काम करनेवाले भाव का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि ऐसा कहनेवाले के दिल में जीवन के प्रति जहाँ लापरवाही है, वहाँ शायद कुछ घृणा भी है। यह घृणा उस ग़ुलाम की-सी है जिसको बड़ा भारी पत्थर बग़ैर किसी मज़दूरी या पारिश्रमिक के ज़बर्दस्ती उठाना पड़ता है। मज़दूर चाहता है कि किसी प्रकार हम जीवन से मुक्त हो जायँ, छुट्टी पावें, मर जायँ तो यह वज़न तो न उठाना पड़े, मुसीबत न झेलनी पड़े। परन्तु जीवन का अन्त इच्छा-मात्र से नहीं हो सकता। ग़ुलाम चाहता है कि मर जायँ, लेकिन उसका मालिक इसकी इजाज़त क्यों देगा। यही हालत इन तरलोकनाथ की है। वे चाहते हैं कि इस जीवन से किसी प्रकार मुक्ति मिले। परन्तु घरवाले, पत्नी और बच्चे इसकी इजाज़त नहीं देते। जब वे ख़याल करते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता तब लापरवाह-सा हो जाते हैं और कहने लगते हैं—"अच्छा, चलो जिस किसी तरह यह जीवन व्यतीत हो जाय वही अच्छा।"

यह मनोवृत्ति किस प्रकार पैदा हुई है, इसके बारे में इतिहासज्ञों, दर्शनवेत्ताओं और मनोविज्ञान के पंडितों के विचार भिन्न भिन्न हैं। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वेदांत की एक झूठी शिक्षा ने जिसमें माया का ज़िक्र आता है, इस मनोवृत्ति के बनाने में बहुत मदद दी है। शहरों से सैकड़ों मील दूर छोटे-से गाँव में बैठा हुआ दूकानदार भी जब हुक्का पीते हुए या धूप में बैठे हुए माया की फ़िलासफ़ी छाँटने लगता है तब उसका एक मतलब यह है कि माया का यह विचार हिन्दू-शरीर का एक आवश्यक अंग बन गया है।

क्या यह मनोवृत्ति जाति के सुस्वास्थ्य का चिह्न है? मुझे इसमें संदेह है। और जीव-विद्या का हर एक विद्यार्थी इस विचार के साथ सहमत होगा कि यह मनोवृत्ति किसी जाति की सेहत की निशानी नहीं हो सकती। इस विचार की पुष्टि करनेवाला उदाहरण पालिनेशिया की मारकीसन नस्ल है।

अमरीका और एशिया के दर्मियान प्रशांत महासागर फैला हुआ है। इस महासागर की गिनती संसार के दो-तीन बड़े समुद्रों में होती है। इसमें छोटे-छोटे सैकड़ों द्वीप हैं। मिडवे, हवाई, मार्शल, फ़ेनिंग, गिल्बर्ट, फ़ीनिक्स, माल्डेन, स्टारबक, ऐलिस, सेंटाक्रूज़, ताहिती, समोआ, मारकीसन, लो, कुक, टोंगा आदि—ये सभी द्वीप पालिनेशिया में सम्मिलित हैं।

इनमें दो प्रकार की नस्लें आबाद हैं। एक पीले रंग की जो एशिया की कई नस्लों से मिलती-जुलती हैं, दूसरी काले रंग की जो अफ़्रीका की नीग्रो-नस्ल से समता रखती है। आज से क़रीब सौ साल पहले इनमें से मारकीसन लोगों की आबादी एक लाख साठ हज़ार थी। परंतु अब ये सिर्फ़ इक्कीस सौ रह गये हैं। यही नहीं, एक अमरीकन लेखक श्री ब्राइन* की राय है कि हवाई से लेकर ताहिती तक के सभी द्वीपों में पालिनेशियन लोग मर रहे हैं। और कोई ताज्जुब न होगा अगर ये लोग जल्द ही संसार से मिट गये।

---

* एफ़० ओ० ब्राइन-कृत "व्हाइट शैडोज़ इन सौथ सीज़"। प्रकाशक, सेंचुअरी कंपनी, न्यूयार्क।

प्रश्न होता है कि वह कौन-सी बीमारी है या वे कौन-से कारण हैं जिनसे इस नस्ल का ख़ात्मा इतनी जल्दी हो रहा है।

मारकीसन लोगों के इतिहास का ज़रा ध्यान से अध्ययन करने पर मालूम होता है कि अठारहवीं सदी से पहले जहाँ ये लोग मछलियाँ आदि पकड़कर या थोड़ी-बहुत खेती-बारी करके अपना पेट भरते थे, वहाँ उसके साथ ही ये हर एक काम में खेल को बहुत महत्त्व देते थे। अपनी झोपड़ियों से बाहर बच्चे, बूढ़े और नवयुवक, स्त्रियाँ और पुरुष भिन्न-भिन्न प्रकार के खेलों में भाग लेते थे। ये खेल अक्सर इनके कामों में ही सम्मिलित होते थे। उदाहरणार्थ तीरंदाज़ी, मछलियाँ पकड़ना, कबूतर पकड़ना। इन बातों को इन्होंने अपने लिए बहुत रोचक बना लिया था। दिन में जब कभी ये इन कामों में संलग्न होते तब मैच या मुक़ाबिले की सूरत में गाँव के सब लोग आपस में ही पार्टियाँ बना लेते और मुक़ाबिला शुरू कर देते। इससे इनमें जीत-हार का विचार उत्पन्न हो जाता। इनमें इस बात की इच्छा भी होती कि प्रतिस्पर्द्धी से ज़्यादा मछलियाँ पकड़ी जायँ, जंगली कबूतरों को जल्दी पकड़-कर प्रतिस्पर्द्धी दल को पराजित किया जाय, इत्यादि।

इनके अतिरिक्त ये लोग ख़ालिस खेल भी खेलते। कुश्ती ये लड़ते। मुक्केबाज़ी इनमें होती। लकड़ियों से ये हाकी खेलते। फ़ुटबाल का ढँग भी इनका अपना था। इनके अतिरिक्त इनमें दौड़ें होतीं। तेज़ चलने के मुक़ा-बिले होते। छोटी-छोटी कश्तियों को समुद्र में डालने के बाद उनको तेज़ चलाने का मुक़ाबिला भी इनके लिए बड़े दिलचस्प खेल थे। लेकिन सबको हँसानेवाला खेल इनका समुद्र के किनारे पर रेंगना था। हरी-हरी घास पर मुक़ाबिला करनेवाली स्त्रियाँ और पुरुष एक लंबी क़तार में लेट जाते। सरदार इधर ढोल पर चोट करता और उधर घास पर लेटे हुए मनुष्य पलटा खाने लगते। कई बार ये मीलों तक इसी तरह चले जाते। नेज़ा फेंकना भी सबके लिए आकर्षणकारी था। मुर्ग़ लड़ाना भी इनको बहुत पसंद था।

दिन को ये लोग अपने-अपने काम में मशग़ूल रहते। लेकिन जब शाम को अपनी-अपनी झोंपड़ी में वापस आते तब कुछ देर आराम करने के बाद फिर खेलों में लग जाते। कहीं नाच हो रहे हैं तो कहीं गीत गाये जा रहे हैं। कई मर्द-औरतें आपस में कंकड़ों से जूआ ही खेलने लग जाते। कुछ और एक दूसरे से पहेलियाँ सुनने-सुनाने में लग जाते हैं। बड़े-बूढ़ों के मुख से निकली हुई कहानियाँ भी मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करतीं। परन्तु इन सबसे अधिक सर्वप्रिय वे नृत्य थे जिनके साथ गीत भी गाये जाते थे।

लेकिन अब एक सौ बरस के बाद इनकी क्या दशा है? ये लोग उन खेलों से घृणा करने लग गये हैं। इस घृणा का मुख्य कारण ईसाइयत है, जिसने इनके अंदर यह ख़याल डाल दिया है कि ये खेल हबशीपन की निशानी हैं; यदि तुम सभ्य बनना चाहते हो तो इन जंगली आदतों से बिदा लो।

सन् १७९७ में, अर्थात् अठारहवीं सदी के अन्त या उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में, पहला ईसाई-मिशन इन लोगों के अन्दर दाख़िल हुआ। ये लोग अँगरेज़ थे। उसके बाद एक सौ वर्ष तक योरप के विभिन्न देशों के अनेक मिशन इन द्वीपों में अपना अपना प्रचार-कार्य करते रहे। इनकी मज़हबी शिक्षा का असर यह हुआ कि कुछ मारकीसन भी पादरी बन गये। कुछ-एक ने पढ़ना-लिखना भी सीख लिया। इनमें से अधिकतर ने योरप के मिशनरियों की नक़ल में कोट-पतलून भी पहन लिये। परन्तु सबसे अधिक घातक प्रभाव यह हुआ कि इनकी आबादी धीरे-धीरे कम होने लगी।

मारकीसन लोग वही हैं जो एक सौ साल पूर्व थे। नस्ल वही है जो एक शताब्दी पहले वहाँ आबाद थी। इन द्वीपों की आबहवा में कोई अन्तर नहीं आया। खान-पान भी लगभग वैसा ही है। सवाल होता है कि जब प्रायः सभी बातें ज्यों की त्यों हैं तब आबादी क्यों मर रही है।

जैसा कि पहले बताया गया है, विदेशी ईसाई-शिक्षा ने इन लोगों के दिलों में जीवन के एक आवश्यक अंग के लिए घृणा उत्पन्न कर दी है। वे खेल जिनको ईसाइयत ने बर्बरता या असभ्यता की निशानी बतलाया, वास्तव में मारकीसनों के लिए जीवन का स्रोत थे। ईसाई-शिक्षा ने इन लोगों को अमृत या आबेहयात से हटाकर मृत्यु की ओर कर दिया। एक सदी पहले जहाँ मारकीसन लोग

दिन और रात का बड़ा भाग जीवनदायक खेलों में व्यतीत करते, वहाँ अब ईसाई स्वामियों ने इनको उधर से हटाकर योरप की रीति-नीति में लगा दिया। ये रीति-रवाज स्वयं योरप के लोगों के लिए लाभकारी होंगे, परन्तु मारकीसन लोगों के लिए ये विष-तुल्य सिद्ध हुए हैं। इस समय भी इन द्वीपों के निवासी अपने पुराने धन्धों को करते हैं, लेकिन अब तो निरा कोल्हू का बैल चलता है। तेल अच्छा निकलता है या बुरा, थोड़ा निकलता है या बहुत, इन बातों की बैल को परवा नहीं। हर बात में हँसी, हर काम में आनंद, यह आदत अब कहीं देखने में नहीं आती। बस इसी घुन ने मारकीसन नस्ल को अन्दर ही अन्दर से खा लिया है। इसका फल यह है कि वह बढ़ी नहीं, बल्कि कम होते-होते इस समय मरने को है।

× × ×

हिन्दुस्तानियों को आम तौर पर, और हिन्दुओं को ख़ास तौर पर, अपनी वर्तमान अवस्था की तरफ़ ज़रा ध्यान देना चाहिए। उन्हें देखना चाहिए कि कहीं उनमें भी मौत के ये कीड़े तो नहीं आ घुसे।

संसार की जीवित जातियों में, योरप, अमेरिका और जापान के लोगों में, इस समय कई नैतिक कमज़ोरियाँ देखने में आती हैं। जहाँ स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार मिलने से वह कई बातों में उन्नति कर रही है, वहाँ सामाजिक संगठन ढीला पड़ जाने से वहाँ के समाज में नैतिक पतन आ गया है। तलाक़ ज़ोरों पर है, अपहरण की घटनायें पहले से कहीं ज़्यादा होती हैं, बदमाशी के अड्डे दिन प्रतिदिन बढ़ते चले जा रहे हैं, भोग-विलास ज़्यादा ही ज़्यादा निकलते चले आ रहे हैं। यदि मनुष्य इन बातों को ही देखे तो कह सकता है कि ये लोग तो अपनी क़ब्रें आप ही खोद रहे हैं और अगर ये जल्दी ही मर गये तो इससे किसी को अचम्भा न होगा।

लेकिन नहीं, इन जातियों में मौत की तरफ़ ले जानेवाली बातों के अतिरिक्त जीवन के अंश भी हैं और जीवन के ये अंश ही हैं जो इनको मृत्यु से परे करते हैं। योरप, अमेरिका और जापान की इन जातियों के व्यक्ति समुद्रों, पहाड़ों, चट्टानों, कंदराओं, नदियों, झीलों, जंगलों, आकाश आदि सभी संकटमय स्थानों एवं प्रदेशों में ख़तरों की तलाश में फिरते रहते हैं। वहाँ इनको तरह-तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। इससे इनमें वह जीवन उत्पन्न होता है जो इनकी नैतिक निर्बलताओं पर प्रभुत्व पा लेता है।

जानवर का जीवन एक तरह दो मूल-तत्त्वों का सम्मिश्रण है—एक आराम की इच्छा, दूसरा संकट की खोज। दोनों का परस्पर संघर्ष होता रहता है। जिस पशु, मनुष्य या जाति में पहला मूलतत्त्व दूसरे पर विजय पाता है वह मौत की तरफ़ बढ़ती चली जाती है। लेकिन जिस पशु, मनुष्य या जाति में दूसरा मूलतत्त्व पहले पर ग़ालिब आता है उसका जीवन न केवल दीर्घायु होता है, बल्कि उसमें नया रंग भी आ जाता है।

जिस जाति के व्यक्ति खेती-बारी या हल चलाने से घृणा करते हैं, दूकानों में बैठकर आराम से सौदा तौलना चाहते हैं, देहात को छोड़कर शहरों में आना चाहते हैं, सभ्यता के आरम्भ में उत्पन्न हुई कलाओं—लोहार, तरखान और जुलाहे के काम से नफ़रत करते हैं, नौकरी के पीछे मारे-मारे फिरते हैं, उन्हें यह क्योंकर मालूम हो सकता है कि संकट के अन्दर जीवन के बीज कैसे छिपे होते हैं।

जिस जाति के बच्चों को एक-आध रात घर से बाहर गुज़ारने में मुसीबत नज़र आती हो, जिनको शिकार का नाम भयभीत बनाता हो, जो जंगली जानवर को देखने से काँपते हों, उनको क्या मालूम कि जीवन किसे कहते हैं! वे तो बस अहिंसा का जाप जप कर सो जायँगे। यह नींद उनके लिए नींद न होगी, बल्कि मौत होगी।

इस मृत्यु को वे यदि जीवन में तबदील करना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि देहात से प्रेम करें, खेती-बारी को अपना पेशा बनावें, हफ़्ते के आठ दिन, महीने के बत्तीस दिन और साल के तीन सौ छाछठ दिन उस ख़तरे की तलाश में गुज़ार दें, जो जीवन का चश्मा है।

व्यंग्य

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह



अपनी भाषा का शब्द होने की वजह से व्यंग्य का अर्थ और प्रयोग हम ऐसों को भी मालूम है जो निष्कपटता से कह सकते हैं, 'कवित विवेक एक नहिं मोरे'। भाषा फीकी रहती है यदि उचित स्थान और मात्रा में व्यंग्य की चाट न हो। अँगरेज़ी के एक बड़े व्यंग्य-लेखक जुविनल ने लिखा है कि "व्यंग्य न लिखना कठिन है।" उनका यह कथन ख़ूब है। चाहे गद्य हो या पद्य, कुछ अवसर ऐसे आ जाते हैं जब व्यंग्य का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है—लेखक उसकी सहायता लेने को बाध्य हो जाता है। उसी के साथ यह भी सत्य है कि ऐसे भी अवसर होते हैं जब व्यंग्य का प्रयोग किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होता। हेनरी ऐटवेल का कहना है कि व्यंग्य मित्रता का क्रोध से बढ़कर शत्रु है। इसका प्रयोग करने में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। पोप इँग्लेंड का प्रसिद्ध कवि था। उसने कहा है कि यद्यपि व्यंग्य मेरा अस्त्र है, तो भी मैं उतना अदूरदर्शी नहीं हूँ कि उन्मत्त आदमियों की तरह उससे सबको घायल किया करूँ। ठीक है, 'बावरि कोऊ देति है मतवारन हथियार।'

कुछ ऐसे भी हैं जिनका यह मत है कि व्यंग्य और विनोद में थोड़ा अन्तर है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। विनोद का क्षेत्र वार्तालाप है, और वहीं उसका चमत्कार दिखलाई देता है। वहाँ व्यंग्य से अधिक तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता होती है, क्योंकि प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। इसे अँगरेज़ी में 'विट' कहते हैं और उर्दू में शायद 'हाज़िरजवाबी' कहते हैं। इन उत्तरों में दो भाव होते हैं—एक प्रत्यक्ष, दूसरा अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष में प्रश्न का उत्तर होता है और अप्रत्यक्ष में वह कड़ी चुटकी होती है जो बहुत दिनों तक भुलाने से भी नहीं भूलती। यह माना जा सकता है कि विनोद को व्यंग्य से सहायता बहुत मिलती है, परन्तु इन दोनों के बीच में सीमाबन्दी की रेखा रहती है। व्यंग्य का उद्देश विनोद से पृथक् है। व्यंग्य का मुख्य उद्देश सुधार है। चर्चिल ने लिखा है कि व्यंग्य गुणों का मित्र है। उन्हीं का यह भी कहना है कि व्यंग्य जब असत्यता के परों पर उड़ता है तब वह अल्पजीवी होता है और उसका दंश अशक्त होता है। परन्तु जब सत्यता उसकी सहचारी बन जाती है तब उसका घाव गहरा होता है और दीर्घकाल तक बना रहता है। शब्द चाहे जितने मुलायम हों, किसी को अपने दोषों और त्रुटियों के विषय में कुछ भी सुनना नहीं पसन्द होता है।

हिन्दी-भाषा की कविता में व्यंग्य पर बहुत कुछ लिखा मिलता है। संलक्ष्यक्रम उसे कहते हैं, जहाँ व्यंग्य समझने के लिए किसी और पद की आवश्यकता हो। इसके तीन भेद बतलाये गये हैं—(१) शब्द-शक्ति, (२) अर्थ-शक्ति और (३) शब्दार्थ-शक्ति। फिर शब्द-शक्ति के दो भेद किये गये हैं—(१) वस्तु से वस्तुव्यंग्य और (२) वस्तु से अलंकारव्यंग्य। अर्थशक्ति के भी तीन भेद हैं—(१) स्वतःसम्भवी, (२) कवि प्रौढ़ोक्ति और (३) कविनिबद्ध वक्तृत्व। स्वतःसम्भवी के भी चार भेद किये गये है—(१) वस्तु से वस्तुव्यंग्य, (२) अलङ्कार से अलङ्कारव्यंग्य, (३) अलङ्कार से वस्तुव्यंग्य और

(४) वस्तु से अलङ्कारव्यंग्य। कविप्रौढ़ोक्ति और कविनिबद्ध वक्तृत्व के भी चार चार भेद हैं। शब्दशक्ति और अर्थ-शक्ति के मिलने पर जो व्यंग्य निकले उसे शब्दार्थशक्ति कहते हैं। उपर्युक्त व्यंग्य को उत्तम काव्य कहते हैं। मध्यम काव्य के व्यंग्य के आठ भेद हैं—(१) अगूढ़, (इसके भी दो भेद हैं। प्रथम अर्थान्तर संक्रमित, द्वितीय अत्यन्त तिरस्कृत), (२) अपराङ्ग, (३) तुल्यप्रधान, (४) अस्फुट, (५) काकुक्षिप्त, (६) वाच्य-सिद्धाङ्ग, (७) सन्दिग्ध और (८) असुन्दर। किसी विषय को समझने के लिए हमारे आचार्यों ने पूर्ण उपयोग किया है, चाहे समझने-वाला थक जाय, पर समझानेवाला नहीं थकता। गुरु की यही निष्कपट इच्छा होनी चाहिए कि जो वह जानता है वह सब सीखनेवाले को बतला दे। फ़ैडी (बिजली के आविष्कारकर्ता) के एक चरित-लेखक ने उनकी तुलना न्यूटन (जिन्होंने आकर्षण-शक्ति का पता लगाया है) से करते हुए लिखा है कि न्यूटन जिस सीढ़ी के द्वारा परमोच्च शिखर पर पहुँचे थे उसको हटा लिया था कि उनके पीछे कोई और न चढ़ आवे। परन्तु फ़ैडी ने अपनी सीढ़ी को वहीं रोक दिया ताकि जो चाहे उसे काम में लाये। फ़ैडीवाली इच्छा हमारे देश के विद्वानों की थी। बुरे दिन आते ही यह इच्छा उत्पन्न हुई कि जो कुछ अपने को मालूम है वह अपने ही तक रह जाय। उसी का परिणाम यह है कि अब हमको कुछ भी नहीं मालूम है—जो कुछ जो जानता था वह अपने साथ लेता गया, क़िस्सा ख़त्म हो गया। एक अपने छोटे दस्तख़तों में 'एस' लिखते थे। उनके एक मित्र ने कहा कि इस शब्द को पूर्ण करने के लिए एक 'एस' और बढ़ा दिया कीजिए। एक एस के बढ़ने से उसके अर्थ धोबियों के वाहन के हो जाते हैं। बड़ी बात तो दूर रही, यदि इसी का अर्थ किसी अध्यापक से स्कूल बन्द होने के बाद पूछिए तो कह देगा कि चार बजने के बाद वह पढ़ाने के लिए नौकरी नहीं पाता। स्वार्थ-रहित विद्या-दान के दिन गये!

उपहास को अवश्य व्यंग्य से बड़ी सहायता मिलती है, परन्तु व्यंग्य और कटाक्ष के बीच में भी सीमाबन्दी रेखा है। व्यंग्य का अर्थ जहाँ सुधार है, वहाँ यह भी उसका उद्देश है कि वार गुप्त हो। कटाक्ष का केवल काम यह है कि वार भरपूर हो, घाव गहरा लगे। एक उर्दू का शेर है—'छुरी का तीर का तलवार का तो घाव भरा, लगा जो ज़ख़्म ज़बाँ का रहा हमेशा हरा।' यह कटाक्ष है। लक्ष्मण जी के मुँह से तुलसीदास जी ने कहलवाया है—'कोटि कुलिस सम वचन तुम्हारा, वृथा धरहु धनु बान कुठारा।' अस्तु चाहे विनोद हो, चाहे उपहास हो, चाहे व्यंग्य हो या कटाक्ष हो, अब तो प्रेस-ऐक्ट की कृपा से सब पर पानी पड़ गया है। स्वतन्त्रता से कुछ लिखना हथकड़ियों की झन्कार पर गीत गाना है। और अगर कहीं कोई राजनैतिक विषय हुआ तो शब्दों की वह खींच-खाँच की जाती है कि उन्हीं बेचारों का हृदय जानता होगा, और उनके वे अर्थ लगाये जाते हैं जो लिखनेवाले के ध्यान में स्वप्न में भी न आये होंगे।

अँगरेज़ी-भाषा में व्यंग्य का इतिहास है। उस पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी गई है। अँगरेज़ी विद्वानों का कहना है कि व्यंग्य वह है जिसके द्वारा हम अपने विलास या घृणा के भावों को पर्याप्त रूप से प्रकट करते हैं। परन्तु उन्होंने यह शर्त रक्खी है कि व्यंग्य में सरसता की मात्रा इतनी हो कि पहचाना जा सके। यह भी एक शर्त है कि उसमें साहित्य का स्वरूप हो। यह बिलकुल ठीक है जैसा कि वे लोग कहते हैं कि बिना सरसता के व्यंग्य गाली-गलौज है और बिना साहित्यिक स्वरूप के वह मसख़रापन है। पहले बेशक व्यंग्य का उस समय प्रयोग होता था जब किसी के अवगुणों पर आक्षेप करने का अभिप्राय होता था। तब तक साहित्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं समझा गया। व्यंग्य को प्रतिष्ठा तब से प्राप्त हुई है जब से इसका उद्देश सुधार करना हुआ। इसका महत्त्व और भी बढ़ गया जब से साहित्य का यह एक अङ्ग समझा जाने लगा। व्यंग्य के जो पुराने विवरण मिलते हैं उनसे पता चलता है कि पहले इसका प्रयोग अपना बदला लेने के अभिप्राय से दूसरों को जली-कटी सुनाने में होता था। फिर यह सार्वजनिक जीवन का एक तत्त्व समझा जाने लगा। कहा जाता है कि पहले व्यंग्य से देहाती उत्सवों में गँवारों का मनोरञ्जन होता था और जब उन उत्सवों के नाटक बने और उनमें भी व्यंग्य को स्थान मिला तब से इसका और साहित्य का सम्बन्ध स्थापित हो गया। मालूम होता है कि पहले वह मध्यम

दर्जे की कविता समझी जाती होगी जिसमें व्यंग्य का प्रयोग होता होगा, क्योंकि कहा यह जाता है कि अरिस्टोफ़ेंस ने अपने सुखान्त नाटकों में अपनी उत्तम कविता में व्यंग्य के भावों को स्थान दिया है। कविता और व्यंग्य को सम्मिलित करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है।

असंस्कृत ढंग का व्यंग्य बहुत दिनों से इटली में प्रचलित था। उसका प्रयोग एक प्रकार के पद्य में होता था, और उस पद्य में कामुक विषयों का वर्णन होता था और वहाँ के देहात के लोग नई फ़सल के तैयार होने के समय मस्त होकर गाते थे। अपने देश में भी यह कहा जाता है कि जो ग्यारह महीने भूखों मरते हैं वे भी चैत्र के महीने में उन्मत्त हो जाते हैं। वही एक महीना होता है जब सबके पास कुछ न कुछ खाने को होता है। रहिमन ने ख़ूब कहा है—"रहिमन पूँछत पेट सों क्यों न भयो तू पीठि, भूखे मान बिगारहू भरे बिगारहु दीठि।" पेट भरा हो और निगाह न बिगड़े, यह केवल महात्माओं का काम है। ग्रीस में पहले व्यंग्य का प्रयोग अमर्यादाशील नाटकों में होता था। उन्हें वे लोग सेटुराई (Saturae) कहते थे, जिसका अर्थ अँगरेज़ी-भाषा में 'मिश्रित' या 'अनेक प्रकार के विषय के लेखों का संग्रह' है। सेटुरा लाँक्स (Satura lanx) से बना है, जिसका अर्थ उस भाषा में वह है जो उस साल के नये फलों से भरी हो।

रोम देशवालों ने व्यंग्य-शब्द के नाम का आविष्कार किया था। उनके यहाँ भी बहुत दिनों तक व्यंग्य को साहित्य की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं मिला। उस देश का वास्तव में व्यंग्यलेखक गोएस लूसीलियस हुआ है। उसका काल सन् ईसवी से १०३-१०४ वर्ष पहले है। उसकी कविता बहुत कुछ खो गई है, उसके केवल कुछ अंश मिलते हैं। होरेस और सिसरो इत्यादि का कहना है कि वह कवि था। किसी नये विषय पर लिखकर सफलता प्राप्त करना साधारण बुद्धि का काम नहीं है। फिर होरेस ने इस कला में कमाल दिखलाया। उसने व्यंग्य को ऊँचे शिखर पर पहुँचा दिया। अब इसका नया रङ्ग और रूप हुआ और अब यह साहित्य का सहचर समझा जाने लगा।

अब और देशवालों का भी ख़याल इधर गया और लोगों ने व्यंग्य का प्रयोग संस्कृत-रीति से प्रारम्भ किया। इस अस्त्र के हाथ में आते ही पादरियों पर वार शुरू हुआ। उस समय वही आक्षेपों के केन्द्र थे। सभी को उनके प्रतिकूल कुछ न कुछ कहना था। आवश्यकतानुसार भाषा विस्तृत होती है—अब व्यंग्य के निषङ्ग में सैकड़ों शर थे। एक ही शिकार और सैकड़ों तीर! शिकारों की भी खोज बढ़ी और इरस्मस ने अन्धविश्वासों और अज्ञानता पर हमले किये। ज़िन्दगी हो तो ऐसी हो। जितने आक्षेप, वार और हमले होते हैं, उतनी ही अन्धविश्वासों की आयु में वृद्धि होती जाती है। इन्हें न तो इन्फ़्लुएंज़ा आवे, न हैज़ा और न ताऊन। मालूम होता है कि यह 'त्रिकूटचूर्ण' हम भारतवासियों को ही पचा जाने के लिए है।

फिर व्यंग्य ने राजनीति और धर्म पर शर-संधान प्रारम्भ किया। वहाँ क्या? वहाँ भी धर्म पर जो कुछ कोई कहा चाहे, कह सकता है, धर्म बदलने की धमकी दे सकता, धर्म बदल कर अपना मतलब बना सकता है, पर दूसरे विषयों पर कुछ लिखना आग से खेलना है। १७ वीं शताब्दी में नाटक लिखने की प्रथा बड़े ज़ोरों से प्रचलित हुई। नाटककारों में से अधिकांश लेखक अच्छे व्यंग्य-लेखक थे। १८वीं शताब्दी व्यंग्य की शताब्दी कहला सकती है। इसमें व्यंग्य ने बड़ी उन्नति की। यह इसी समय की कहावत है जो स्वयंसिद्धि समझी जाती थी कि उपहासता सत्यता की असली पहचान है। इससे पूर्ण पता चलता है कि उस समय व्यंग्य का कैसा आदर रहा होगा। वाल्टेर के पहले वैसा प्रसिद्ध कोई व्यंग्य-लेखक नहीं हुआ था। लेसिंग ने (यह जर्मनी का रहनेवाला था) व्यंग्य को और भी उन्नतिशील बना दिया। जब उसने समालोचना में इसकी सहायता ली तब से यह समालोचना का भी सहकारी हो गया और इस ओर भी इसका प्रयोग बराबर होने लगा। व्यंग्य बेचारा तो दूर रहा, अब तो समालोचना में ख़ूब जली-कटी सुनाई जाती है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध कीट्स कवि को कड़ी समालोचना असह्य थी और यही उसकी अकाल-मृत्यु का कारण समझी जाती है। बायरन भी अपने समय का बड़ा व्यंग्य-लेखक था। उसने एक बार कहा था कि "चाहे ठीक हो या ग़लत, मूर्ख मेरा विषय है और व्यंग्य मेरा गीत।" अँगरेज़ी भाषा के विद्वानों का यह कहना है कि यदि 'सार्टररिसार्टस' व्यंग्य मान लिया जाय तो कार्लायल की गणना बहुत बड़े व्यंग्य-लेखकों में होगी।

कहा जाता है कि जेम्स रसेल लौवेल का व्यंग्य उच्च कोटि का है। वही अब उसका नमूना समझा जाता है। आधुनिक लेखकों में बर्नार्ड शा प्रसिद्ध व्यंग्य-लेखक हैं। सामाजिक त्रुटियों और कुरीतियों पर उनके लेख होते हैं।

प्रोफ़ेसर एच० वाकर ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम इँग्लिश सैटायर एंड सेटारिस्ट्स है। पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है। इसमें यह दिखलाया गया है कि व्यंग्य का शनैः शनैः कैसे विकास और विस्तार हुआ। अपनी पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि रोमन देशवालों का यह कहना ठीक है कि उन लोगों ने व्यंग्य का आविष्कार किया है, यद्यपि बहुत कुछ उनके साहित्य का रङ्ग ग्रीस देश का है, क्योंकि उस देश में व्यंग्य का कोई विशेष स्वरूप नहीं था। होमर की कविता में व्यंग्य मिलता है। यह सम्भव है कि उस समय व्यंग्य का कोई सर्वमाननीय स्वरूप न हो। प्रोफ़ेसर वाकर का कहना है कि बायबिल में भी व्यंग्य मिलता है। यह भी उनका कहना है कि किसी देश का व्यंग्य उतना ही पुराना है, जितना उस देश का साहित्य। यद्यपि यह कहा जाता है कि व्यंग्य का प्रयोग केवल गद्य में अच्छी तरह हो पाता है, तथापि सुइफ़्ट और बायरन ने अपनी कविता में पूर्णरूप से व्यंग्य का प्रयोग किया है। हमारे देश की कविता में भी उच्च कोटि का व्यंग्य मिलेगा, और यह हम लोगों का ख़याल नहीं है कि कविता का क्षेत्र व्यंग्य की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है। देखिए कितना सुन्दर व्यंग्य है—"दास सुभाय ही पूछति हौं मैं कहा गुन नैनन पान खवाये।"

अँगरेज़ी व्यंग्य का जन्म १२ वीं शताब्दी में हुआ था, क्योंकि क़रीब क़रीब १४ वीं शताब्दी तक तीन भाषायें इँग्लेंड में बोली जाती थीं। जब से इँग्लेंड को अपनी भाषा मिली तभी से उस देश के विद्वानों ने साहित्य की ओर ध्यान दिया, और साहित्य के साथ स्वभावतः व्यंग्य की उन्नति प्रारम्भ हुई। पहले व्यंग्य एक मोटा डंडा कहलाता था, जिससे वार किया जाता था न कि वह अस्त्र जिसकी काट तेज़ और तीक्ष्ण हो। उस समय इँग्लेंड में जो विद्वान् होते थे वे लैटिन-भाषा में लिखते थे, और अपनी अँगरेज़ी-भाषा में वही लिखते थे जो और किसी भाषा में नहीं लिख पाते थे। यही कारण होगा कि बहुत दिनों तक व्यंग्य भी पुराने ढंग पर लिखा जाता रहा होगा।

प्रथम एडवर्ड के समय में जो व्यंग्य लिखा गया था उसका विषय गिरजा, बड़े घरों की स्त्रियों का अभिमान, बड़े आदमियों के अमलों, बादशाह के वज़ीरों की लोलुपता, करों का बोझ इत्यादि होते थे। द्वितीय एडवर्ड से इँग्लेंड बहुत ही असन्तुष्ट था और इस वजह से व्यंग्य को और ऊँचा उड़ने का मौक़ा मिला।

अँगरेज़ों के साहित्य के इतिहास में १५वीं शताब्दी कोई स्मरणीय शताब्दी नहीं है—उसमें केवल एक ही लेखक, चासर, हुआ है। यद्यपि यह सत्य है कि उस समय उसके जोड़ का तो क्या, कोई दूसरे नम्बर का भी लेखक नहीं था। चासर और उसके बाद व्यंग्यलेखकों की कविता का प्रचार इँग्लेंड से अधिक स्काटलेंड में हुआ। बहुत कम ऐसे कवि हुए हैं जिनको अपने देश में ख्याति प्राप्त हुई है। हम लोगों में से कितने हैं जिन्होंने कालिदास का शकुन्तला नाटक और रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि पढ़ी है।

यों तो गद्य और पद्य दोनों में व्यंग्य का प्रयोग होता था, पर पुराने इँग्लेंड के लेखकों का तो यह कहना था कि गद्य ही व्यंग्य के लिए उचित क्षेत्र है। परन्तु महारानी एलिज़ाबेथ के ज़माने में वहाँ व्यंग्य-पद्य का उत्थान हुआ। उस समय के लेखक प्रायः पद्य में ही व्यंग्य लिखते थे। प्रकृति के नियमानुसार पतन के दिन आये और प्रथम जेम्स की हुकूमत के अन्त से और उसके बीस वर्ष पश्चात् तक लोग व्यंग्य को भूल-सा गये थे। उत्तम व्यंग्यलेखकों में ड्रायडेन और पोप का बड़ा नाम है, और फिर वैसा ही नाम बायरन और बर्न को प्राप्त हुआ।

१९वीं शताब्दी में व्यंग्य के विषय भी समय के साथ बदले और अब राजनीति पर इसकी कड़ी दृष्टि थी। कहा जाता है कि यह समय व्यंग्य के योग्य नहीं था। शायद कारण यह है कि कोई बड़ा व्यंग्य लिखनेवाला इस शताब्दी में पैदा नहीं हुआ, क्योंकि बायरन की मृत्यु से इस समय तक कोई उच्च कोटि का व्यंग्य गद्य या पद्य में नहीं लिखा गया है।

यह व्यंग्य के इतिहास की बाह्यरेखा है। इस लेख के लिखने में काव्यप्रभाकर, इंसायक्लोपीडिया ब्रिटैनिका और प्रोफ़ेसर वाकर की उपर्युक्त पुस्तक से बड़ी सहायता मिली है।

कुसुम और समीर

लेखक, श्रीयुत रंभाग्रज

प्रथम दृश्य

उपवन में सुंदर प्रभात

(बालारुण की स्वर्ण-किरणें हरित उपवन में उल्लास बिखेर रही हैं। नव विकसित प्रसूनों के सौरभ से समस्त उपवन सुरभित है। पत्रों और तृणों पर तुहिन-बिन्दु-कण झलक रहे हैं। एक मंजुल कलिका अपने संपुट अधरों को खोल रही है।

प्रातःसमीर का प्रवेश।

उसकी मृदुल हिलोरों से लतिकायें हिल उठती हैं और पत्रों का सुप्त मर्मर संगीत जाग्रत हो उठता है। समीर उस कलिका से अठखेलियाँ करने लगता है।)

कली (समीर के स्पर्श का अनुभव करती हुई आश्चर्य से)—
कौन ?

समीर : समीर।

कली— यहाँ ?

समीर (विनय से) : आया हूँ देवि, तुम्हारे पास।

कली : क्यों ?

समीर (पूर्ववत्)—हूँ एक भिखारी,

कली (सहानुभूति दिखाती हुई)—मुझसे करो न धन की आश।
मैं न कुबेर, वहाँ जाओ; रत्नों का है भंडार।
वे धनहीन न;

समीर (विरक्ति से) : तो क्या ?

कली— दीनों को देंगे न बिसार।

समीर (सोचता हुआ)—किन्तु

कली : कहो

समीर (रुककर): मुझको न चाहिए रत्न !

कली (आश्चर्य से)— कहो क्या चाह ?

समीर—उसके अगणित रत्नों औ' धन की न मुझे परवाह।
वहाँ न जाऊँगा,

कली (आश्चर्य से): फिर ?

समीर धन भी पाकर चाह अपूर्ण।
आह, नहीं धन से मेरी अभिलाषा होगी पूर्ण।
इसी लिए आया हूँ तुम तक,

कली— है मुझसे क्या काम ?

समीर (दीनता प्रकट करता हुआ):—
भिक्षा-पात्र देवि भर दो

कली— क्या दूँ ?

समीर— ममता अभिराम।
देवि, प्रेम का एक भिखारी ! धन है मुझे असार।

कली (भय और सुसमर्थता से)—
आह !

समीर— निराश करो मत मुझको,

कली (जिज्ञासापूर्वक)— तुम्हें चाहिए प्यार ?

समीर—हाँ, मैं प्रेमभिखारी,

कली— जीवन प्रेम-हीन निस्सार।

समीर—तुमको पा मैं भूल सकूँगा सभी व्यथा का भार।

कली— पर,

समीर (प्रसन्न-सा हो)—क्या ?

कली (चिंतित-सी)—जीवन भर तुम मुझको सदा करोगे प्यार ?

समीर—प्रण करता हूँ,

कली— मेरी ममता देना तुम न बिसार।

समीर (उत्सुक हो)—
स्वीकृत है मम विनय,

कली— किया मैंने प्रियतम स्वीकार।
पर न दुखाना मुझे,

समीर— नहीं कोमल है मेरा प्यार।
पूर्ण दिवस भर छोड़ रहा था मैं दुख का निःश्वास।
प्रेयसि !

कली— प्रियतम !

समीर (अपार सुख का अनुभव करता हुआ)—
अब तो भर लो अधरों में मधु-हास।

(कली खिल उठती है।)

द्वितीय दृश्य

वही उपवन—मध्याह्नवेला।

(कली अब कुसुम है। भीषण अंधड़ का प्रवेश। कुसुम के हृदय में भय का संचार होता है।)

अंधड़ (तीव्र गति से बहता हुआ अस्थिर हो)—
कुसुम !
कुसुम (न पहिचानकर) : कौन ?
अंधड़— तुम मुझे शीघ्र ही भूलीं। हाय,
कुसुम (पहचानती है; आश्चर्यपूर्वक)— समीर !
अंधड़—हाँ, प्रेयसि !
कुसुम— पर दीख रहे क्यों अस्थिर और अधीर ?
तब कोमल थे।
अंधड़— अब ?
कुसुम (भय से)— भीषण दिखता वह कोमल रूप।
(उड़ती हुई चीज़ों को इंगित कर—)
ये क्या ?
अंधड़— तृण औ' पत्र जर्जरित
कुसुम— करते तुम्हें कुरूप।
कुसुम (आश्चर्य से)—
तुम अस्थिर हो, चंचल हो; कैसा परिवर्तन आज ?
अंधड़—प्रेयसि,
कुसुम— बोलो,
अंधड़ (उद्विग्न-सा)— छोड़ो बातें करो न मुझसे लाज।
कुसुम—तुम्हें न समझी।
अंधड़— अभी तुम्हें आया हूँ करने प्यार।
मेरे साथ चलो,
कुसुम— क्यों ?
अंधड़— दिखलाऊँ निज स्नेह-दुलार।
कुसुम—(आश्चर्य से)—
यह परिवर्तन !
अंधड़— स्वाभाविक है; आओ मेरे साथ।
कुसुम—क्यों तब बोलो ? कहाँ मुझे जाना होगा अब नाथ ?
अंधड़—नीरव निर्जन में
कुसुम— न यहाँ भय, तुम हो देव न चोर।
अंधड़—इस उपवन से दूर
कुसुम— कहो तो क्यों, बोलो किस ओर ?
अंधड़—आह ! चलो तुम साथ शीघ्र ही सूने पथ में प्राण।
किसी शैल की ओर, किसी को हो मत जिसका ज्ञान।
और वहाँ मैं प्रिये, करूँगा तुमको जी भर प्यार।
कुसुम (आश्चर्य से)—
फिर क्यों मेरी चाह ? 'पृथकता' देता प्रेम बिसार।
कहीं रहें हम दूर, पास, पर याद करेंगे रोज
एक दूसरे की; रवि को लख खिलता नित्य सरोज।
अंधड़ (क्रोधपूर्वक):
व्यर्थ ! अनर्गल !
कली (आश्चर्य से)— मेरी बातें !
समीर— हाँ, मत करो विलम्ब।
चलो,
कुसुम (भय से)— नहीं।
समीर (शासनपूर्वक) — चलना होगा,
कुसुम (पश्चात्ताप कर)— निष्ठुरता का प्रतिबिम्ब
तब दीखा न !
(विनय से दीन हो) हाय मत लूटो मुझको हे प्राणेश !
मैं हूँ कोमल कुसुम, न मुझको यों तोड़ो हृदयेश।
अंधड़ (क्रोध से)—
पतिता !
कुसुम (ग्लानि से)—
मैं ? या स्वयं पतित तुम ?
अंधड़— चुप रह महाकठोर !
कुसुम (दुखपूर्वक)—
आह !
अंधड़— तुझे चलना होगा मैं ले जाऊँ जिस ओर !
(अंधड़ कुसुम को तोड़कर उड़ा ले जाता है।)

तृतीय दृश्य

एक मरुस्थल—सूर्यास्त के समय।

(अंधड़ तप्त मरुस्थल में कुसुम को गिरा कर चला जाता है। संध्या का प्रवेश।)

सन्ध्या (कुसुम की दयनीय दशा देख)—
तप्त मरुस्थल में सोई हो कौन ?

कुसुम (करुण स्वर में)—　　　कुसुम हूँ दीन।
(संध्या को देख)
देवि, कौन तुम

संध्या—　　　मैं संध्या,
कुसुम—　　　मैं व्यथिता, आश्रयहीन!
सन्ध्या (सहानुभूति दिखाती हुई)—
किस निष्ठुर ने पतन तुम्हारा किया—

कुसुम—　　　कठोर समीर
अंधड़, बन कर आया;
सन्ध्या—　　　उससे मिली तुम्हें यह पीर।
वह पापी था।
कुसुम—(दुखपूर्वक)—अब उपाय क्या ?
सन्ध्या—　　　आओ व्यथिता दीन !
पापी जग से जो लुटता, मुझमें होता है लीन ॥
(अंधकार फैलता है। कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता।)

फूल

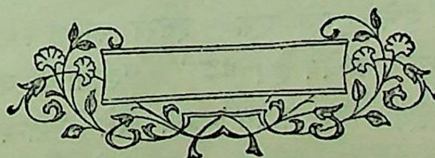
लेखक, श्रीयुत कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक', कविरत्न

बैठ फूलकुंज में लिखूँगा फूल के ही गीत—
सचमुच फूल-सा न कोई हमें प्यारा है।
छवि का विकास जैसा होता इसमें है वैसा—
मिलता न और कहीं ढूँढ़ जग हारा है।
तन, मन, प्राण, सभी इसके सुकोमल हैं—
बहती इसी के उर में ही रस-धारा है।
फूल-सी उँगलियाँ हों तो भी नहीं तोड़ो इसे—
चोट लगने से डरे, काँपता बिचारा है।

आज ही तो आँख इसकी है खुली डाली पर
अभी लाज भरी दृष्टि भी न कहीं डाली है।
चन्द्र-किरणों ने अभी इसको छुआ भी नहीं—
देखी नहीं जी भर प्रभात की भी लाली है।
शीतल समीर का न स्वाद अभी पाया कुछ—
बजते सुनी न पल्लवों की मृदु ताली है।
मधु-पात्र खाली, मान जाओ अभी तोड़ो नहीं।
सोचो एक बार इसका भी कोई माली है!

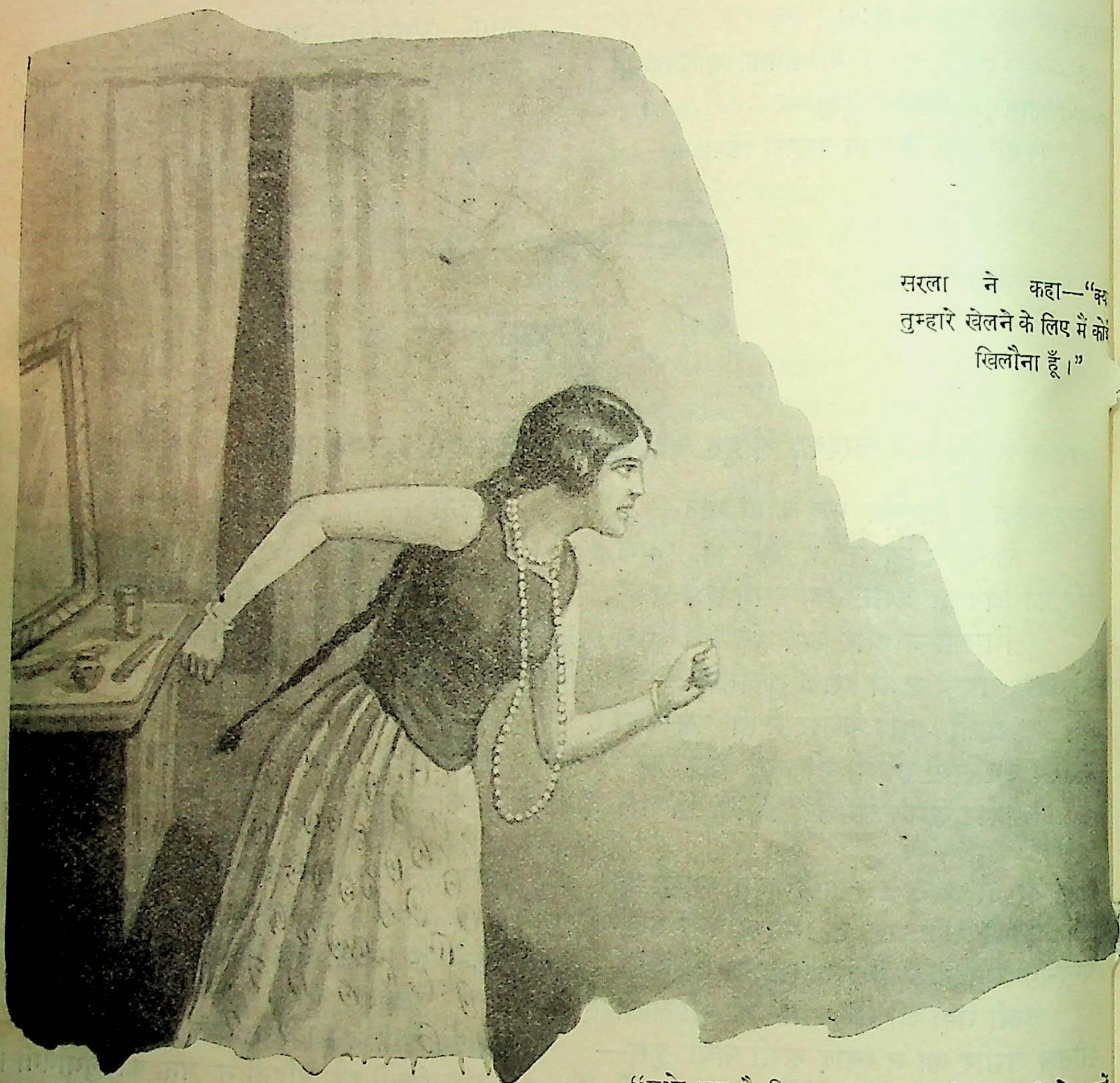
तोड़ना तुम्हें हो इष्ट तोड़ना तो उस काल—
जब मधुपों ने मधु लूट लिया सारा हो।
म्लान मुख देख के न पास भी फटकते हों—
मिलता न कोई जब इसको सहारा हो।
सिर धुनता हो पल्लवों से फोड़ने के लिए—
खो के सुध-बुध जब बावला बिचारा हो।
पर अभी मेरे सामने न तुम तोड़ो इसे—
कौन जाने फूल-सा किसी का कोई प्यारा हो!

तोड़ लिया तुमने न मेरा कुछ माना कहा—
भाग जाओ निठुर! दया न तुम्हें आयेगी।
सूनी पल्लवों की सेज बिलखा करेगी हाय!
बुलबुल फूल के न गीत अब गायेगी।
पतिआयेगी न भोली लतिका किसी को अब—
खिली हुई चाँदनी न मन को लुभायेगी।
देखना तुम्हारे इस क्रूर व्यवहार से ही—
छवि मर जायेगी सुगन्ध उड़ जायेगी।



अभिनेत्री

लेखक, श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह



सरला ने कहा—"क्या तुम्हारे खेलने के लिए मैं कोई खिलौना हूँ।"

सुन्दरी सरला की ओर सहानुभूतिसूचक दृष्टि से देखकर, गम्भीरता से सिर हिलाते हुए लक्ष्मी-फ़िल्म-कम्पनी के सुयोग्य मैनेजर रोबिन बनर्जी ने कहा—मुझे इस बात का खेद है, सरला, कि इस समय मुझे तुमसे एक ऐसे विषय पर बात करनी पड़ेगी जो अत्यन्त अप्रिय है।

आश्चर्य से चकित होकर सरला ने पूछा—वह अप्रिय विषय क्या है, रोबिन बाबू?

"मुझे भय है कि अब यह कम्पनी तुम्हारी सेवाओं से लाभ नहीं उठायेगी।"

सरला सहम गई। उसके सुन्दर, उत्फुल्ल मुखमण्डल पर मलीनता दौड़ गई। अप्रसन्नतापूर्ण स्वर में वह बोली—इसका कारण?

"लोगों की यह राय है कि सवाक् चित्रपटों में अभिनय करने के योग्य तुम नहीं हो।"

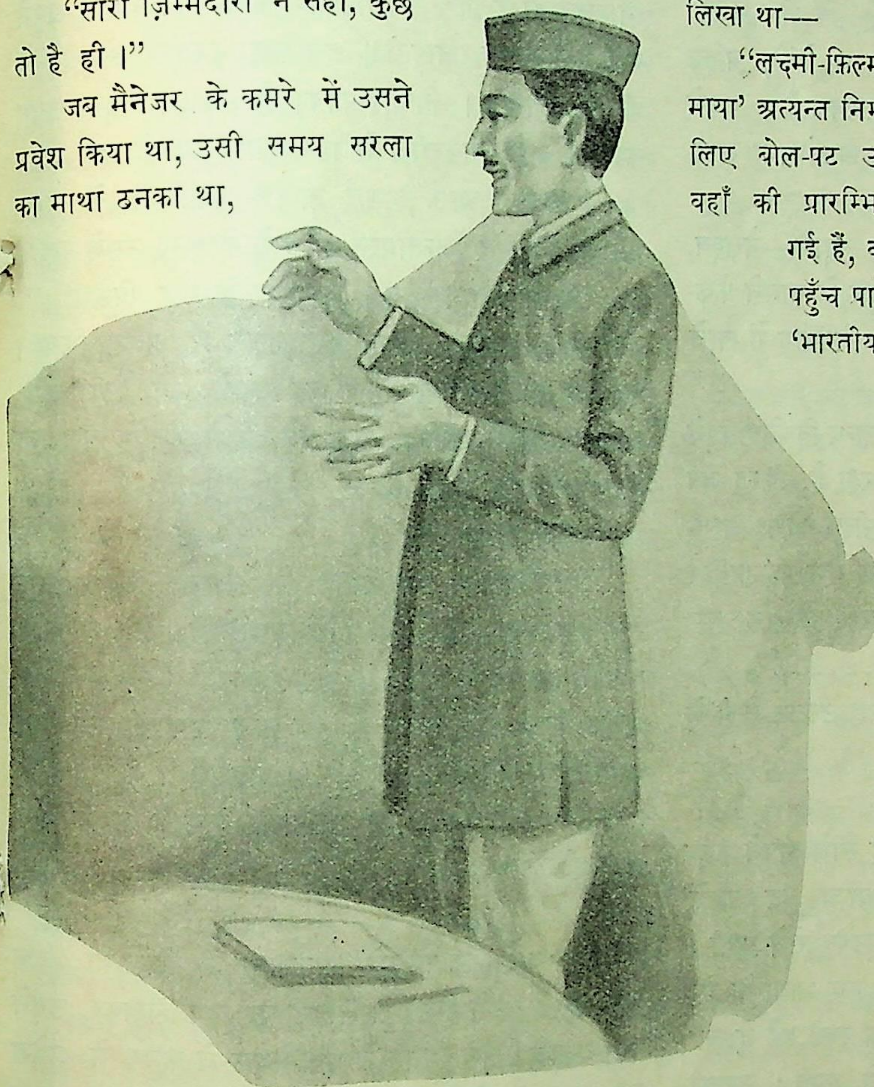
"और आपकी राय भी वही है जो और लोगों की है?"

"बहुमत के सामने एक व्यक्ति की राय क्या है, सरला ? 'धन की माया' के विषय में हमारी जो आशायें थीं उन पर पानी फिरा जा रहा है। हर जगह से निराशा-जनक रिपोर्टें आ रही हैं। यह निश्चित है कि यह फ़िल्म असफल रहेगी, और इससे कम्पनी की भारी हानि होगी।

"और इस असफलता की सारी ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर है ?"

"सारी ज़िम्मेदारी न सही, कुछ तो है ही।"

जब मैनेजर के कमरे में उसने प्रवेश किया था, उसी समय सरला का माथा ठनका था,



किन्तु ऐसी कड़ुई बात सुनने की उसे आशंका नहीं थी। किसी ने उसके मन में कहा, मामला अब हद से बाहर हो चुका है। किन्तु आशा की एक क्षीण रेखा के सहारे उसने कहा—मैंने तो कुछ उठा नहीं रक्खा था, रोबिन बाबू !

"इसमें कोई शक नहीं कि तुमने पूरी कोशिश की थी, किन्तु बोल-पट में अभिनय करनेवाली अभिनेत्री से जिन गुणों की आशा की जाती है उनका परिचय तुम नहीं दे सकीं। जिन आलोचकों की सम्मतियाँ आदरणीय हैं वे सब तुम्हारे ख़िलाफ़ हैं। पब्लिक पर भी तुम्हारा असर अच्छा नहीं पड़ा। तुम ख़ुद देखो।"

मेज़ का एक ड्रार खोलकर उसमें से अख़बारों की कुछ कतरनें निकालकर मैनेजर ने उसके सामने फेंक दीं। उत्सुकता से एक कतरन उठाकर वह पढ़ने लगी। उसमें लिखा था—

"लक्ष्मी-फ़िल्म-कम्पनी का पहला बोल-पट 'धन की माया' अत्यन्त निम्नकोटि का फ़िल्म है। हालीउड के लिए बोल-पट उतना ही नया है, जितना हमारे लिए। वहाँ की प्रारम्भिक कृतियाँ जिस उँचाई पर पहुँच गई हैं, वहाँ तक हमारे बोल-पट शायद कभी न पहुँच पायेंगे। कुछ दिन हुए किसी ने कहा था, 'भारतीय सिनेमा-व्यवसाय अपने बाल्यकाल में नहीं, पागलपन की अवस्था में है !' हार्दिक खेद-सहित हमें इस सम्मति का समर्थन करना पड़ रहा है।

"इस फ़िल्म की कहानी वैसी ही रही है, जैसा इसका रेकार्डिंग; और ऐक्टिंग के विषय में इतना कह देना बहुत होगा कि इस फ़िल्म में पार्ट करनेवाले अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ हमें तो उन निरीह बटोहियों के समान दृष्टि-गोचर होती हैं जो किसी अज्ञात स्थान में पहुँचकर मार्ग भूल गई हों ! ऐसे लोगों के होश-हवास कैसे दुरुस्त रह सकते हैं ? नायक तथा नायिका के पार्ट करनेवालों को ही ले लीजिए। बेचारे श्यामकृष्ण ने हर बार बड़ी सावधानी से निशाना साधा, लेकिन चूक गये। और सरलादेवी में न तो वाणी का ओज है और न वह आत्म-विश्वास जो हम उनमें सदा देखते आये हैं। अवाक् चित्र-पटों में सरलादेवी ने जिस अद्भुत अभिनय-कौशल का प्रदर्शन किया है उसके प्रति हमारे हृदय में इतना अनुराग है कि हमें यह कहने में किञ्चित्-मात्र भी हिचक नहीं

है कि या तो वे अपनी कला को अवाक् चित्र-पटों में ही सीमित रक्खें, नहीं तो रजत-पट से अवकाश ग्रहण कर लें, ताकि हमारे हृदयों में उनकी वही मधुर स्मृतियाँ बनी रहें जो अभी तक विद्यमान हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जो अभिनेत्रियाँ तथा अभिनेता अवाक् चित्र-पटों में चमक चुके हैं वे बोल-पटों में भी प्रतिभासम्पन्न सिद्ध हों। कला की मर्यादा की रक्षा के निमित्त ही विवश होकर हमें यह इशारा करना पड़ा है। हमें आशा है कि जो विवेकशील हैं वे हमारी स्पष्टवादिता से दुखी न होंगे, बल्कि इससे लाभ उठायेंगे। फ़ोटोग्राफ़ी संतोषजनक है। अपने अगले अंक में हम इस चित्र की विस्तृत आलोचना प्रकाशित करेंगे।"—'दि स्क्रीन'।

सरला की आँखों में आँसू छलक आये—नैराश्य, विषाद तथा रोष के आँसू। कतरन मैनेजर के सामने फेंककर, मुख मोड़कर, वह अपने भावावेग को नियंत्रण में लाने का प्रयत्न करने लगी।

"निस्सन्देह इतने दिनों का सुखद सम्बन्ध विच्छेद करने में हमें अकथनीय दुःख का अनुभव हो रहा है, किन्तु जब इसी में हम सबकी भलाई है तब आगा-पीछा करना वास्तविकता से मुख मोड़ना है। इसी लिए मेरा यह अप्रिय कर्त्तव्य है कि मैं तुमसे इस बात का अनुरोध करूँ कि तुम इस्तीफ़ा दे दो, ताकि हमें मजबूर होकर........!"

सरला अब अधिक न सुन सकी। वह उठकर तेज़ी से कमरे के बाहर हो गई।

(२)

किसी न किसी तरह घर पहुँचकर वह सीधे अपने सुसज्जित शयनागार में गई। भीतर से दरवाज़ा बंद करके वह बिस्तरे पर गिर पड़ी और फूट फूटकर रोने लगी। यहाँ उसे एकान्त में तूफ़ान की तरह उठे हुए भावावेग को रोकने की आवश्यकता न थी। अभी तक रुकी हुई दुःखद भावनायें स्वतन्त्र होकर ताण्डव-नृत्य करने लगीं। उसकी मनोवेदना का वारापार न था। एक भावुक युवती के लिए इससे अधिक दुःख की क्या बात हो सकती है कि उसे यह बतलाया जाय कि जिस कार्य के सम्पादन में उसने अपनी सम्पूर्ण योग्यता से काम लिया था वह निंदनीय सिद्ध हुआ। "लोगों की यह राय है कि तुम बोल-पटों में अभिनय करने के योग्य नहीं हो"—मैनेजर के ये कठोर शब्द कानों में गूँज-गूँजकर उसके आन्दोलित हृदय पर चोट कर रहे थे।

बड़ी देर के बाद जब उसका हृदय कुछ शान्त हो गया तब आँखें पोंछकर वह बिस्तरे से उतरी, और सिगरेट जलाकर आरामकुर्सी पर लेटकर कश खींचकर, धुआँ फेंककर, धुएँ की ऊपर उठती हुई लहर को विचारपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। अब क्या करना चाहिए? यह बात तो निश्चित ही है कि लक्ष्मी-फ़िल्म-कम्पनी अब उसे अपने यहाँ नहीं रखना चाहती। इसलिए इस्तीफ़ा तो उसे दे ही देना चाहिए। विचार पक्का हो गया। उठकर वह कमरे से बाहर निकली। सेविका गुलाब सामने आई।

"चाय ले आऊँ, बाई जी?" स्वामिनी के मुखमण्डल की ओर चिन्ताग्रस्त दृष्टि से देखकर उसने पूछा।

"अभी नहीं, गुलाब। कुछ देर के बाद पिऊँगी।"

आगे बढ़कर उसने पुस्तकालय में प्रवेश किया। दरवाज़ा बंद करके वह मेज़ के सामने जा बैठी, और इस्तीफ़ा लिखने लगी। एक घंटे की मेहनत के बाद यह त्याग-पत्र तैयार हुआ—

"प्रिय रोबिन बाबू,

उस खेदजनक परिस्थिति के कारण जिससे आप स्वयं परिचित हैं, मैंने सिनेमा-संसार से अवकाश ग्रहण करने का निश्चय कर लिया है। यह मेरे लिए असीम दुःख का विषय है कि अब आपकी प्रतिष्ठित कम्पनी की सेवा न कर सकूँगी। आप लोगों ने सदैव मेरे प्रति जिस शालीनता का परिचय दिया है उसके लिए अनुगृहीत हूँ।"

सरलादेवी।"

एक बार फिर पत्र को सावधानी से दोहराकर, एक लिफ़ाफ़े में उसे रखकर, लिफ़ाफ़े पर पता लिखकर, उसने घंटी बजाई। एक मिनट में एक सेवक ने कमरे में प्रवेश किया। पत्र उसे देकर सरला ने कहा—इसे रोबिन बाबू के पास ले जाओ। उन्हीं को देना, और किसी को नहीं। अगर जवाब दें तो लेते आना।

सिर झुकाकर सेवक चला गया। तब एक दीर्घ-निःश्वास खींचकर वह उठी, और उधर उस आलमारी के समीप गई। आलमारी खोलकर ह्विस्की की बोतल उठाकर, एक गिलास में थोड़ी-सी ह्विस्की उँडेलकर, सोडा

मिलाकर, पीकर, सिगरेट जलाकर, आलमारी बंदकर, एक आरामकुर्सी पर लेट कर, वह विचारों में मग्न हो गई। समाप्त हो गया आज उसके जीवन का वह अध्याय जिसकी रचना दस वर्ष के कठिन परिश्रम से हुई थी, जिसमें उसकी महत्त्वाकांक्षाओं तथा सफलताओं का इतिहास अंकित था। एक साधारण अभिनेत्री की स्थिति से बढ़ते बढ़ते वह लोकप्रियता, प्रसिद्धि, सम्मान के सर्वोच्च सिंहासन पर आसीन हो गई थी। अपना जादू उसने संसार पर चलाया था, और मंत्रमुग्ध होकर संसार ने उसे अपनी बहुमूल्य निधियाँ अर्पित की थीं। किन्तु उसके भाग्य में यह दुर्दिन देखना भी बदा था। कितना चंचल है मनुष्य का भाग्य! सचमुच उसे वहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं है, जहाँ उसकी आवश्यकता नहीं है। निःसन्देह मूक चित्र-पटों में वह अब भी पार्ट कर सकती है, किन्तु आगे बढ़ कर पीछे हटना कितना अपमानजनक है। किसी अभिनेता अथवा अभिनेत्री के लिए इससे बढ़कर बुद्धिमानी का कोई कार्य नहीं हो सकता कि सम्मान के उच्च आसन से गिराये जाने के पहले ही वह रंग-मंच से अलग हो जाय। सत्य जब यही है तब इससे मुख मोड़ने से क्या लाभ होगा?

अब क्या करना होगा? जिस ढंग से अब तक रहती आई है, उसी ढंग से क्या आगे भी वह रह सकेगी? कदापि नहीं, क्योंकि अपनी संतोषजनक स्थिति को स्थायी समझ लेने के कारण किफ़ायत से चलना उसने आवश्यक नहीं समझा था। यदि वह किफ़ायत से चलती तो एक अच्छी-ख़ासी रक़म आज बैंक में उसके नाम जमा होती। किन्तु वह तो अपने वेतन का अधिकांश उन अनावश्यक वस्तुओं पर ख़र्च कर देती थी जिनका उसकी दृष्टि में आज कोई मूल्य न था। किन्तु अब पछताने से क्या मिलेगा? दुःखद परिस्थिति का साहस के साथ सामना करने से ही काम चलेगा। वह निर्धन है, निराश्रय है। सारा माल-असबाब बेच देना होगा, नौकरों को अलग कर देना होगा, यह घर ख़ाली कर देना होगा, पृथ्वी के किसी ऐसे अज्ञात कोने में जाकर रहना होगा जहाँ उसे कोई न जानता हो, और जीवन के शेष दिन कुढ़-कुढ़कर काटने होंगे।

निस्सन्देह उसके अनेक प्रेमी थे, और उनमें कई अविवाहित भी थे। किसी न किसी गुण के कारण वह उन सबको पसन्द करती थी, किन्तु किसी से विवाह कर लेना असम्भव था। गिरधरलाल! हाँ, गिरधर को वह सबसे अधिक पसंद करती थी, किन्तु वह निर्धन था, और उसका चरित्र भी ठीक नहीं था।

सहसा उसकी अन्तर्दृष्टि के सम्मुख एक स्वस्थ, सुन्दर युवक की छायामूर्ति आ उपस्थित हुई। ग्यारह वर्ष पूर्व उस युवक से उसका परिचय हुआ था। उस समय वह निरी नवयुवती थी, और अभिनेत्री बनने के चक्कर में थी। एक जलसे में विनयशंकर ने पहले-पहल उसे देखा था, और वहीं उससे परिचय प्राप्त किया था। दूसरे ही दिन उस जल्दबाज़ युवक ने एक एकान्त स्थान पर उसे अपने प्रेम का परिचय दिया था, और सरला ने हँसकर उसका उपहास किया था। फिर तो वह उसके पीछे ही पड़ गया। वह नित्य उससे मिलने, और उसका और अपना अमूल्य समय नष्ट करने लगा। यही कारण था उसके पराजय का।

नित्य के अनुसार एक दिन जब अपने कमरे में एक बड़े शीशे के सामने खड़ी हुई वह अभिनय का अभ्यास कर रही थी, विनय उसके घर आया। लापरवाही में उसने कमरे का दरवाज़ा खुला छोड़ दिया था, इसी से विनय को कमरे में चुपचाप घुस आने का मौक़ा मिल गया था। धीरे से प्रवेश करके वह उसे चकित करने के लिए उसके पीछे जा खड़ा हुआ। शीशे में उसकी शक्ल देखकर सरला चौंक पड़ी। फिर उसे क्रोध आ गया। उसकी ओर मुड़कर वह उसे खरी-खोटी सुनाने लगी। वह हँस पड़ा, और उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। वह और भी चिढ़ गई। उसे धक्का देकर उसने कहा— यह लड़कपन अपने पास रक्खो! क्या तुम्हारे खेलने के लिए मैं कोई खिलौना हूँ?

गम्भीर होकर वह फ़र्श की ओर ताकने लगा। उसके आत्म-सम्मान पर चोट लगी। जिसे वह प्यार करता था उसी के मुख से ऐसे अपमानजनक शब्द सुनने की उसे आशा न थी। दो-तीन क्षणों तक निस्तब्ध रहकर सरला ने फिर कहा—तुम्हें इस बात का क्या अधिकार है कि तुम मेरे मार्ग में बाधायें उपस्थित करो?

धीरे से दृष्टि उठाकर, सरला के चेहरे की ओर

देखकर, उसने कहा—मुझे कोई अधिकार नहीं है, मैं यह मानता हूँ। मुझसे बड़ी भूल हुई। माफ़ करो। किन्तु यह अनधिकार चेष्टा करने का अधिकार क्या तुमने मुझे नहीं दिया था ?

"दिल्लगी बुरी नहीं होती, लेकिन जब वह हद से आगे बढ़ जाती है तब घृणित हो जाती है।"

"मैं मानता हूँ कि मुझसे सख़्त ग़लती हुई, लेकिन कोई बुरा भाव मेरे मन में नहीं था। सच्चे हृदय से मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!"

"यह कोरी भावुकता मुझे नहीं चाहिए। प्रेम के अतिरिक्त मुझे अन्य वस्तुओं की आवश्यकता है। मैं पहाड़ की चोटी पर पहुँचना चाहती हूँ, आकाश में उड़ना चाहती हूँ, मैं धन, प्रसिद्धि तथा लोक-सम्मान चाहती हूँ, और जो वस्तु मेरे मार्ग में बाधा उपस्थित करेगी उसे ठुकरा दूँगी!"

"यह कहने के लिए मुझे क्षमा करो, सरला, कि प्रेम-सम्बन्धी तुम्हारे विचार भ्रमपूर्ण हैं। प्रेम, यदि वह सच्चा है तो, बाधायें उपस्थित नहीं करता, सहायता करता है!"

"प्रेम चाहे कुछ करता हो या न करता हो, आपका प्रेम चाहे सच्चा हो या झूठा हो, कृपा करके अपना प्रेम आप अपने पास रखिए! मुझे आपके प्रेम की आवश्यकता नहीं है!"

"तब इसका मतलब यह है कि अब तुमसे कभी न मिलूँ?"

"जी हाँ!"

मुड़कर विनय कमरे से बाहर हो गया। सरला के जी में आया कि उसे वापस बुला ले, किन्तु यह अनुचित प्रतीत हुआ। उबलती हुई वह जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

किन्तु आज तो वह निरी बालिका नहीं है। आज तो ग्यारह वर्ष के सांसारिक अनुभव का बोझ उसके सिर पर लदा हुआ है। आज वह जानती है कि उस समय उसने भूल की थी। विनय की एक साधारण ग़लती के कारण आपे से बाहर हो जाना सर्वथा अनुचित था। विनय अब कहाँ है, क्या करता है, कौन जाने?

(३)

सिनेमा-संसार से सरला के अवकाश ग्रहण करने की बात सारे शहर में फैल गई। दूसरे दिन प्रातःकाल ही उसके अनेक प्रशंसकों, संवाददाताओं और तमाशबीनों ने उसका घर घेर लिया। किन्तु उसने किसी से मिलना स्वीकार नहीं किया। बीमारी का बहाना करके वह अपने शयनागार में पड़ी रही। लोग निराश होकर चले गये।

सारे दिन उसने किसी से भेंट नहीं की, किन्तु संध्या के समय जब गिरधरलाल आया तब वह उससे मिलने से इनकार नहीं कर सकी। हाथ में एक पत्रिका लिये हुए वह अपने ड्राइंग-रूम में एक कोच पर लेटी हुई थी। अजीब शान से गिरधरलाल ने कमरे में प्रवेश किया। सरला उठ बैठी, और वह उसकी बग़ल में जा बैठा।

"तुमने यह क्या कर डाला, सरला? मेरे आश्चर्य का तो ठिकाना ही नहीं है। आख़िर बात क्या हुई?"

"और कोई चारा नहीं था।" विषाद-भरे-स्वर में उसने उत्तर दिया।

"क्या कम्पनीवालों ने तुम्हें इसके लिए मजबूर कर दिया था?"

"हाँ, उन लोगों ने मुझे इस्तीफ़ा देने के लिए मजबूर किया था।"

"बड़े शैतान हैं! ऐसा उन लोगों ने क्यों किया?"

"अपने पहले बोल-पट से उन लोगों को जो आशायें थीं वे पूरी होती दिखाई नहीं देतीं, और उनका ख़याल है कि इसका कारण मैं हूँ।"

"भाड़ में जायँ वे लोग! किसी दूसरी कम्पनी में क्यों नहीं चली जातीं?"

"नहीं, यह असम्भव है। मैंने पक्का इरादा कर लिया है कि अब किसी कम्पनी में काम न करूँगी।"

"तब क्या करोगी?"

"यह मैं अभी नहीं कह सकती।"

"कौन जानता था कि एक दिन तुम अपने पेशे से इस तरह अलग हो जाओगी? बड़े अफ़सोस की बात है! मैं तो कहीं का न रहा। अब किसे तंग करूँगा, किससे मदद लूँगा?"

"दुनिया बहुत बड़ी है, और तुम चालाकों के सरदार हो! ऐसे आदमियों की हमेशा जीत ही रहती है!"

"प्यारी सरला! एक बात कहूँ?"

"कहो।"

"मेरे साथ शादी कर लो !"

"यह नामुमकिन है, गिरधर। यह बात पागलपन से कम न होगी। तुम तो पहले से ही कंगाल थे, अब मैं भी कंगाल हो गई ! और बातों को जाने दो, यही क्या कम है ?"

"यह तो ठीक है, लेकिन हमारा काम किसी न किसी तरह चल ही जायगा।"

"यह बेवक़ूफ़ी का ख़याल दिल से दूर कर दो, गिरधर। जो बात नामुमकिन है वह नामुमकिन है।"

इसी तरह दोनों देर तक बातें करते रहे। भोजन के बाद भी देर तक बातें होती रहीं।

"अब मैं सोऊँगी।" सरला ने अन्त में उठकर कहा।

"क्या मैं यहाँ रात काट सकता हूँ ?"

"शौक़ से रहो।"

"धन्यवाद।"

एक सेवक को बुलाकर और गिरधर के सोने का इन्तज़ाम करने की आज्ञा देकर वह कमरे से बाहर हो गई।

"सरकार ! सरकार !" दूसरे दिन बड़े तड़के ही गुलाब उसके शयनागार का दरवाज़ा खटखटाने लगी।

"क्या है रे ?" जागकर, खीझभरे स्वर में उसने पूछा।

"ग़ज़ब हो गया, सरकार ! जल्दी दरवाज़ा खोलिए।"

तुरन्त उठकर सरला ने दरवाज़ा खोला, और कौतूहल-पूर्ण स्वर में पूछा—क्या बात है गुलाब ?

"घर में चोरी हो गई !"

"चोरी हो गई ! कब ? कैसे ?"

"रात में हुई होगी। चलकर देखिए।"

"चल, देखूँ तो।"

दोनों एक ओर चली गईं।

जिस कमरे में नक़दी और गहने रक्खे रहते थे उसका ताला टूटा हुआ था, तिजोरी खुली पड़ी थी, एक पत्र के अतिरिक्त उसमें कुछ नहीं था। उस पत्र में लिखा था—

"प्यारी सरला,

अपने पेशे से अलग होकर तुमने मेरी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। तुमसे अब मैं क़र्ज़ न ले सकूँगा। आशा थी कि मेरे साथ शादी कर लोगी, लेकिन यह उम्मीद भी जाती रही। अब तुम्हारे पीछे पड़े रहना फ़िज़ूल है ! यह तो तुम जानती ही हो कि मैं पक्का मुफ़लिस हूँ। इसलिए तुम्हारे रुपये और गहने लेता जाता हूँ। तुम क्या करोगी ? जो कुछ कल तुमने मुझसे कहा था, वही दोहराता हूँ, 'दुनिया बहुत बड़ी है, और तुम चालाकों के सरदार हो !' पुलिस को इत्तिला न देना, क्योंकि यह बिलकुल फ़िज़ूल होगा। जब तक पुलिसवाले कार्रवाई शुरू करेंगे तब तक इस शहर से सैकड़ों मील दूर पहुँच जाऊँगा।

"मुझे माफ़ करना पिछली दोस्ती का ख़याल करके। अब तुम्हें कभी तङ्ग न करूँगा। इतमीनान रक्खो। नमस्कार !

तुम्हारा निराश प्रेमी,
गिरधरलाल।"

सरला क्रोध से काँपने लगी। उसने पत्र चीरकर फेंक दिया। बिना एक शब्द भी कहे हुए वह उस कमरे से बाहर हो गई। नौकर आश्चर्य से ताकते रह गये।

ड्राइंग-रूम में पहुँचकर सरला एक सोफ़े पर गिर पड़ी। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे—असीम नैराश्य तथा विवशता के आँसू ! विविध भावों से आन्दोलित वह बड़ी देर तक मूर्तिवत् बैठी रही। फिर, आँखें पोंछकर, फ़र्श की ओर शून्य दृष्टि से ताकने लगी।

बड़ा अच्छा हुआ कि उस शैतान से पीछा छूट गया ! गुण्डा, चोर, लुच्चा ! इसके अतिरिक्त उससे और क्या आशा की जा सकती थी ? पुलिस को इत्तिला देना व्यर्थ है, फ़िज़ूल शोर-शराबा होगा। उसने ठीक लिखा है, उसे पकड़ पाना असम्भव है। वह पकड़ भी गया तो क्या वह यह देख सकेगी कि वह जेल जाय ? नहीं उससे यह कदापि न होगा !

संध्या समाप्त हो रही थी। रात आ रही थी। विकल विचारों में खोई हुई वह अपने बिस्तरे पर पड़ी थी। सर्वनाश हो गया। इस संसार में अब उसके लिए कोई आशा नहीं है, यहाँ रहना वृथा है। अपमान के साथ जीवित रहने से मर जाना ज़्यादा अच्छा है। अब इस निरर्थक जीवन का अंत ही कर देना चाहिए, और जल्द से जल्द। आज रात को ? ज़रूर, ज़रूर !

गुलाब दबे-पाँव कमरे में आई और अपनी स्वामिनी

के समीप गई। उसके हाथ में एक तश्तरी थी, और तश्तरी में एक कार्ड था। सरला ने कार्ड उठाकर देखा। उस पर अंकित था—'विनयशंकर'! आश्चर्य से वह चकित रह गई। क्या यह सम्भव है? वह स्वप्न तो नहीं देख रही है? क्या वह सचमुच आया है? वही जिसके साथ आज से ११ वर्ष पूर्व उसने भद्दा व्यवहार किया था! अकथनीय आनंद उसके हृदय में प्रवाहित होने लगा। विषाद की छाया हट गई, उसका मुखमण्डल चमकने लगा।

"उन्हें ड्राइंग-रूम में बैठाओ। मैं अभी आती हूँ।"

"बहुत अच्छा, बाई जी।" मुस्कराकर, सिर झुकाकर, गुलाब चली गई।

पाँच मिनट के बाद जब उसने ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया तब एक सुन्दर, स्वस्थ युवक ने उठकर, हाथ जोड़कर, उसे नमस्कार किया। नमस्कार का उत्तर देकर, मुस्कराकर, सरला ने कहा—आख़िर आप आ ही गये!

कुछ शर्माकर वह मुस्कराया।

"आराम से बैठिए।" एक सोफ़े की ओर संकेत करके सरला ने कहा।

"धन्यवाद!" वह बैठ गया।

"इस सम्मान के लिए अनुगृहीत हूँ!" उसकी बग़ल में बैठकर सरला ने कहा।

"आपने मुझसे भेंट करना स्वीकार किया, इसके लिए मैं भी अनुगृहीत हूँ!"

विनय के शब्दों में जो मीठी चुटकी थी, उसका उचित असर पड़ा। सरला ने एक दीर्घ निःश्वास खींचा।

"कितने सालों के बाद आज मुलाक़ात हुई है! अपना सारा हाल तो सुनाइए।"

"ग्रेजुएट होने के बाद मैं इँग्लेंड चला गया, और वहाँ से बैरिस्टर होकर लौटा। अब वकालत करता हूँ, और वकालत चलती भी है।"

"यह तो बड़ी ख़ुशी की बात है!"

"ग्यारह साल पहले मैंने तुम्हारे इच्छानुसार तुमसे कभी न मिलने का प्रण किया था। अपने प्रण का पालन तो मैं करता रहा, लेकिन तुम्हारी खोज-ख़बर रक्खे बिना मुझसे नहीं रहा जाता था। कल तक मैं अपने प्रण पर डटा था, और मेरा इरादा था कि सदैव डटा रहूँगा। लेकिन कल जब सिनेमा-संसार से तुम्हारे अलग होने की ख़बर मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ी तब एक बार तुमसे फिर भेंट करने की प्रबल इच्छा मेरे हृदय में उत्पन्न हो गई। मैं लाचार हो गया। इसलिए इस समय हाज़िर हुआ हूँ।"

"तुम्हारे आने से मैं बहुत ख़ुश हूँ। उस समय एक बेवकूफ़ लड़की थी, लेकिन आज मैं अपने को अक़्लमंद औरत समझती हूँ!"

"सरला! आज भी मैं तुम्हें उसी तरह प्यार करता हूँ, जैसे ग्यारह साल पहले करता था!"

"मैं भी विश्वास करती हूँ कि अपने हृदय के एकान्त में तुम्हें सदा प्यार करती रही हूँ!"

वह सुन्दर सुयोग जिसकी प्रतीक्षा में वह आज तक कौमार्य-व्रत धारण किये बैठा था, अंत में इस तरह आ ही गया। उसने उसे कर-पाश में बाँध लिया। उस समय उन दोनों के प्रताड़ित हृदय, एक होकर, एक ही रस में डूब गये।

गीत

लेखक, श्रीयुत 'ललाम'

गुणी, तुम कैसे गाते गान?
मैं अवाक्, केवल सुनता हूँ तेरी मीठी तान।
सुर-प्रकाश तव, भुवन भुवन में,
सुर-समीर तव, व्याप्त गगन में,
सुर-सुरधुनि, पाषाण तोड़ती—
व्याकुल वेग, बही त्रिभुवन में।
अभिलाषा है, मैं भी छेड़ूँ वही अनोखी तान।

गुणी! तुम जैसे गाते गान।
वह स्वर अपने कंठ न पाता,
कुछ कहना है, कहा न जाता,
हार मान कर चुप हो जाता,
केवल हृदय अश्रु टपकाता।
चारों ओर हमारे तुमने ताना गान-वितान।
गुणी, तुम कैसे गाते गान?

—(गीताञ्जलि के एक गीत का अनुवाद)

हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के मूल-कारण

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

जुलाई की 'सरस्वती' में एक सज्जन ने हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण पर कुछ प्रकाश डाला है। उनके बतलाये हुए कारणों में बहुत कुछ सत्यांश है। परन्तु उन कारणों के सिवा और भी कारण हैं। जब तक वे कारण न दूर किये जायँगे, इस सामाजिक व्याधि के दूर होने की आशा नहीं है।

नारी-अपहरण का स्त्री-मनोविज्ञान से गहरा सम्बन्ध है। इस शास्त्र की अवहेलना करके हम इस रोग से मुक्त नहीं हो सकते। प्रकृति ने स्त्रियों और पुरुषों में स्त्री-प्रवृत्ति इतनी प्रबल रक्खी है कि कड़े धार्मिक अनुशासनों और कठोर राजनैतिक दण्डों के होते हुए भी जब जब उनको आपस में अमर्यादित रूप से मिलने-जुलने का अवसर मिलेगा, वे अवश्य ही सभी मर्यादाओं और बाधाओं को ठुकराकर मनोविकारों का शिकार हो जायँगे। यह किसी एक देश, किसी एक जाति या किसी एक युग की बात नहीं है। सभी देशों, सभी जातियों और सभी युगों में ऐसा होता रहा है, आज होता है और आगे भी होता रहेगा। मानव-प्रकृति ही ऐसी है। इँग्लेंड बड़ा सुसभ्य और शक्तिशाली देश है। पर क्या वहाँ स्त्रियों का अपहरण नहीं होता? विलायत के किसी दैनिक पत्र को उठाकर देखिए। आपको पता लगेगा कि ख़ुद लंदन में ऐसे अनेक अड्डे बने हुए हैं, जहाँ गुंडे भोली-भाली लड़कियों को उड़ाकर बंद कर देते हैं और उनसे व्यभिचार कराते हैं। मुसलमानों में अपहरण की घटनायें हिन्दुओं से कुछ कम नहीं होतीं। मनुष्य-प्रकृति सर्वत्र एक-सी है।

परन्तु वर्तमान हिन्दू-समाज का मुस्लिम और क्रिश्चियन-समाज से अन्तर है। उन समाजों में नारी-अपहरण से थोड़ी-सी सामाजिक अशान्ति के सिवा और कोई बड़ी हानि नहीं होती। परन्तु हिन्दू-नारी का अपहरण हिन्दू-समाज की घोर हानि ही नहीं, वरन एक प्रकार से उसकी मृत्यु है। मुसलमान स्त्री अपहृत होने पर भी मुसलमान ही रहती है, वह हिन्दू बनकर हिन्दू-धर्म में खप नहीं सकती। भारत में हिन्दू और मुसलमान इकट्ठे रहते हैं। इसलिए उनका एक दूसरे की स्त्रियों को भगाना एक बहुत साधारण बात है। कड़े सामाजिक बंधन, धार्मिक भय, और राजदण्ड का शासन इसको किसी बड़ी हद तक रोक नहीं सकता। भारतीय अमरीका और योरप से गोरी स्त्रियाँ लाते हैं। अमरीका में नीग्रो लोगों से इतनी घृणा होते हुए भी वहाँ गोरा और काला रक्त मिल ही जाता है। तिलक-धारी ब्राह्मणों का मुसलमानिनों और भङ्गिनों से सम्बन्ध हो ही जाता है। मनुष्य की प्रवृत्ति ही ऐसी है। काम का वेग सभी बन्धनों को तोड़ डालता है। कहने का आशय यह है कि यह दुष्ट कृत्य पूर्णरूप से बंद नहीं हो सकता। हाँ, इसका मर्यादा से अधिक बढ़ जाना भयावह है, जिस प्रकार दिन में दो बार शौच होना तो बुरा नहीं, परन्तु अतिसार लग जाना एक भारी रोग है। हिन्दुओं के लिए इस ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है, नहीं तो उनकी राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक मृत्यु अवश्यम्भावी है। तो फिर करना क्या चाहिए?

कुछ लोगों की धारणा है कि हिन्दू-स्त्री की आर्थिक पराधीनता ही इन अपहरणों का कारण है। परन्तु अनुभव इस बात का समर्थन नहीं करता। स्त्रियों को स्वाधीन बनाने के लिए आप क्या करेंगे? यही न, आप उनको अध्यापिका बना देंगे, डाक्टरनी बना देंगे, नर्स बना देंगे या क्लार्क बना देंगे। परन्तु मैंने ७०) मासिक पानेवाली तीन बच्चों की माता एक हिन्दू-विधवा को एक ३०) मासिक पानेवाले विवाहित मुसलमान हेड कान्स्टेबल के साथ भागते देखा है। वह युवती लाहौर के एचीसन-स्त्री-अस्पताल में नर्स का काम सीखती थी। उन दिनों उससे विवाह करने को कहा गया। उसने सतीत्व का ढोंग रचकर विवाह करने से इनकार कर दिया। यहाँ से पास करके वह क्वेटा के निकट चमन में नौकर हो गई। वहाँ एक मुसलमान हेड कान्स्टेबल ने उसे अपने यहाँ बच्चा जनाने के लिए बुलाया और गाँठ-साँठ कर ली। वह उसकी स्त्री बनने के लिए तैयार हो गई। जब उस स्त्री के संबंधियों को पता लगा तब वे बहुत घबराये। उसे समझा-बुझाकर बड़ी मुश्किल से वे लाहौर ले आये। हमारे जात-पाँत-तोड़क-मंडल से कहा गया कि इसके लिए कोई वर दो। परन्तु शर्त यह रक्खी

गई कि कोई डाक्टर हो और वह दो-तीन सौ रुपया पाता हो। जब हमने वर पेश किया तब वह स्त्री बड़ी लज्जा दिखाती हुई बोली—अब तो मुझे विवाह ही नहीं करना है; वह मुझसे भूल हो गई थी। यह देखकर उसके संबंधी शान्त हो गये। परन्तु इसके कुछ ही दिनों के बाद वह चुपके से भागकर उसी मुसलमान के पास चली गई। जो तीन-सौ रुपये मासिक से कम कमानेवाले हिन्दू पुरुष के साथ विवाह करने को तैयार नहीं थी वह ३०) मासिक पानेवाले कांस्टेबल की दूसरी स्त्री या रखेल बनकर रहने के लिए सहर्ष चली गई!

कुछ वर्ष हुए, लाहौर में एक डाक्टर की रूपवती विधवा, लाखों रुपये की स्वामिनी होकर भी, पड़ोस में रहनेवाले एक मुसलमान युवक के साथ भाग गई थी और हिन्दुओं के पूरा प्रयत्न करने पर भी वापस नहीं आई।

थोड़े दिन हुए, मुझे एक बीस वर्ष की युवती से मिलने का मौक़ा मिला। यह पंजाब के एक इंजीनियर की विधवा थी और एक मुसलमान के साथ भाग आई थी। यह विधवा बड़ी मुश्किल से उसके हाथ से निकाली गई थी। वास्तव में उस मुसलमान युवक ने इसे एक वर्ष रखकर छोड़ दिया था और एक दूसरी मुसलमान स्त्री से विवाह कर लिया था। मेरे पूछने पर युवती ने कहा—मेरे पढ़ने का कोई प्रबन्ध कर दीजिए और कम-से-कम मुझे ३०) मासिक दीजिए। यदि आप मेरा प्रबन्ध नहीं कर देंगे तो मैं फिर उन्हीं के पास 'माडल टाऊन' में चली जाऊँगी। वे बड़े कृपालु हैं। मैं तो चाहती हूँ कि वे मुझे चाहे ४) मासिक ही देते रहें, केवल मेरी पीठ पर हाथ रक्खे रहें। बस, मैं उन्हीं की दासी बनकर रहना चाहती हूँ। क्या हुआ, जो उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया; उसे भी रक्खें, मुझे भी रक्खें। मैं उसकी ऐसी बातें सुनकर दंग रह गया। मैंने कहा—हमसे तो तुम ३०) मासिक माँगती हो, परन्तु उससे ४) मासिक लेकर ही सन्तुष्ट होने को तैयार हो! वह बोली—मैं तो उनके पास से आना ही नहीं चाहती थी। उन्होंने मुझे एक अलग मकान भी ले दिया था। परन्तु मालूम नहीं, अब उनके मन में क्या समा गया, जो उन्होंने मेरे पास आना छोड़ दिया।

बात वास्तव में यह है कि स्त्री और पुरुष की प्रकृति में बड़ा भारी अन्तर है। स्त्री में लज्जा और संयम पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक है। उसे प्रेम-पाश में फँसाकर गिराने के लिए पुरुष को बहुत यत्न करना पड़ता है। परन्तु जब एक बार स्त्री में गिरावट आ जाती है तब फिर वह अपने को सँभाल नहीं सकती। वह आँखें बन्द करके वासना की आग में कूद पड़ती है और जिस पुरुष के संसर्ग में वह आ जाती है उसे फिर वह आसानी से नहीं छोड़ सकती। उसके जूते खाती हुई भी वह उसी के साथ रहती है। मैंने अँगरेज़ स्त्रियों को ख़ानसामों और बहरों के साथ भागकर उनके घरों में गोबर पाथते, रोटी बनाते और जूठे बर्तन मलते देखा है। जालन्धर में मैंने एक हिन्दू कुँजड़े को देखा। वह किसी गोरे सार्जेंट की स्त्री को भगा लाया था। वह घूँघट निकालती थी, उसकी रोटी बनाती थी और मार भी खाती थी। कोई दो बरस हुए, मेरे एक सिक्ख अछूत मित्र कलकत्ता से उन्नीस वर्ष की एक अति रूपवती अँगरेज़ कुमारी भगा लाये थे। कलकत्ता में अँगरेज़ों ने उनको दण्ड दिलाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु उस कुमारी ने कोर्ट में साफ़ कह दिया कि मैं स्वेच्छा से उससे विवाह करना और उसके साथ रहना चाहती हूँ। इस पर उन लोगों को चुप रह जाना पड़ा। अब वह बड़े ही साधारण ढंग से रहती है, पंजाबी बोलती है और देशी खाना खाती है। उक्त सरदार साहब में न कोई रूप है, न यौवन है और न कोई विशेष धन ही। फिर भी गोरी बीवी काले मियाँ पर मुग्ध है, हालाँकि पहले की भी उनकी एक बीवी मौजूद है, और यह बात उनकी नई गोरी बीवी भी जानती है।

इसी प्रकार एक तिवारी जी हैं। साधारण हिन्दी के सिवा और कुछ पढ़े-लिखे नहीं, कमाते भी कुछ नहीं। पर उनकी स्त्री एक अँगरेज़ महिला है। वह नौकरी करके पैसा कमाती है। आप खाती है, पति को खिलाती है, रोटी बनाती है, बर्तन माँजती है, और सास-देवर की भी सहायता करती है। सुना है, इस अँगरेज़ महिला की माता बहुत धनाढ्य है। वह चाहती है कि मेरी बेटी हिन्दू पति को छोड़कर मेरे पास रहे, मैं उसे अपनी जायदाद की अधिकारिणी बना दूँगी। परन्तु 'तिवारिन बीवी' रूखी-सूखी खाकर तिवारी जी के साथ ही रहना पसंद करती है।

मुसलमानों ने नारी-प्रकृति को ख़ूब समझा और

उसका उपयोग भी किया है। हिन्दुओं में गुण्डा-क्लास के मनुष्यों के लिए कोई स्थान नहीं। सुसभ्य, सुशिक्षित और संभ्रान्त व्यक्ति दूसरों की बहू-बेटियों को उड़ाना तो दूर, उन पर कुदृष्टि डालना भी बुरा समझता है। मुसलमानों में हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण करनेवाले प्रायः कुँजड़े, बूचड़, दबगर, लोहार, बढ़ई आदि श्रमजीवी और शिल्पी लोग ही होते हैं। सेठ और जज मुसलमान भी ऐसा काम करने से झिझकते हैं। परन्तु हिन्दुओं में शिल्पी और श्रमजीवी शूद्र और नीच समझकर दुत्कारे और दबाये जाते हैं। इसलिए यह वर्ग हिन्दुओं में रहा ही नहीं। यह प्रायः सारे का सारा मुसलमान हो गया है। इस वर्ग के मुसलमान हिन्दू-स्त्रियों पर हाथ डालने का साहस कर देते हैं। बस, वे इनके पंजे में फँस जाती हैं और फिर निकल नहीं सकतीं। कहावत भी है—"स्त्री, घोड़ा और तलवार जिसके अधिकार में आ जाय उसी की हो जाती है।" इसके अतिरिक्त कोई पतिता स्त्री अपनी भूल का प्रायश्चित्त भी करना चाहे तो हिन्दू-समाज उसे दुबारा ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता और आजीवन उस पर कलंक का टीका लगा ही रहता है। इसलिए कोई भी स्त्री एक बार मुसलमान हो जाने पर दुबारा हिन्दू होने की इच्छा नहीं करती, चाहे उसे वहाँ कितना ही कष्ट क्यों न हो। इसके विपरीत मुसलमानों में वही पतिता फ़ौरन 'पवित्र' होकर उनमें खप जाती है।

गुजरात में एक कहावत है—'ब्राह्मणी राँडे, तुर्क नो घर माँडे।' अर्थात् जब कोई ब्राह्मणी विधवा होती है तब वह किसी दूसरी जाति के हिन्दू के साथ विवाह न करके सीधी मुसलमान का ही घर बसाती है, क्योंकि वह जानती है कि हिन्दुओं में रहते हुए पुनर्विवाह या जात-पाँत-तोड़क विवाह करने के कारण उस पर सदा उँगली उठती रहेगी। मुसलमान हो जाने पर एक बार में ही सारा टंटा समाप्त हो जायगा।

मनु आदि ने यह जो लिखा है कि बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र स्त्री की रक्षा करे, स्त्री अरक्षित कभी न रहे, यह स्त्री-जाति पर कोई लाञ्छन नहीं है, बरन उसकी प्रकृति का गम्भीर अध्ययन करके निकाला हुआ एक तथ्य है। इसकी अवहेलना करने से स्त्री और पुरुष दोनों जातियों का अपकार होता है।

मनु ने लिखा है—

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते॥
एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम्।
परमं यत्नमातिष्ठेत् पुरुषो रक्षणं प्रति॥

अर्थात् स्त्रियाँ न पुरुष की सुन्दरता को परखती हैं, न उसकी आयु को देखती हैं, चाहे सुरूप हो या कुरूप, वे पुरुष में लिप्त हो जाती हैं। प्रजापति ने स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा बनाया है। इसलिए पुरुषों को चाहिए कि बड़े यत्न के साथ स्त्रियों की रक्षा करें।

स्त्रियों की झूठी चापलूसी करके उनको प्रसन्न करनेवाले, हर बात में स्त्री और पुरुष को बराबर माननेवाले और भारत में रहते हुए भी अपने को इँग्लैंड में समझनेवाले हिन्दू उपरिलिखित सम्मति के लिए मनु और उसके साथ ही शायद मुझे भी बुरा-भला कहें, परन्तु अनुभव बताता है कि मनु की बात सत्य है। जो भी व्यक्ति इसकी अवहेलना करता है उसे पीछे से रोना ही पड़ता है।

पंजाब में एक मुसलमान नेता हैं। उनकी एक हिन्दू आई० सी० एस० से मित्रता थी। मुसलमान साहब तो अपनी बीबी साहबा को पर्दे में बन्द रखते थे, पर हिन्दू महाशय की देवी जी विलायती ढंग से उनके मुसलमान मित्र का आतिथ्य-सत्कार किया करती थीं। परिणाम क्या हुआ? नेता साहब उस हिन्दू-स्त्री को ले भागे। सुना है, उन्होंने दिखलावे के लिए तो उसका 'निकाह' अपने साईस के साथ कर दिया, पर वास्तव में रक्खा अपने पास ही। आई० सी० एस० महाशय रोते रह गये!

जहाँ जहाँ भी स्त्रियों की स्वतंत्रता और पुरुष और स्त्री की समानता के नाम पर ऐसी मूर्खता की गई है, वहाँ पश्चात्ताप के आँसू गिराने के सिवा और कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। डेरा इस्माईलख़ाँ के एक हिन्दू राजकर्मचारी ने पहले तो अपनी स्त्री और पुत्री को एक मुसलमान अफ़सर के घर आने-जाने की छुट्टी दे दी, फिर जब वह लड़की उस अफ़सर से चिपट गई तब वे रो-रोकर हाय हाय करने लगे। परन्तु अब क्या हो सकता था? लड़की ने ख़ुद ही आने से इनकार कर दिया। लड़की अशिक्षित नहीं, अच्छी पढ़ी-लिखी थी।

इसमें संदेह नहीं कि अनमेल विवाह, विधवा-विवाह का निषेध, सासों का बहुओं के साथ दुर्व्यवहार और पतियों का पत्नियों को अपने पिता के यहाँ से रुपये लाने के लिए तंग करना आदि बहुत-सी कुरीतियों से दुःखी होकर भी कई स्त्रियाँ घर से भाग जाती हैं, और इन कुरीतियों की जितनी जल्दी हो सके रोक-थाम होनी चाहिए। परन्तु ये बुराइयाँ कुछ ऐसी नहीं जो केवल हिन्दू-समाज में ही हों। मुसलमानों में ये दुर्गुण हिन्दुओं से कम नहीं हैं। मुसलमानों में भी सैयद और राजपूत आदि कई जातियाँ विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं करतीं। परन्तु हिन्दुओं में एक और बड़ी ख़राबी फैल रही है। हमारे कुछ पत्र और पत्रिकायें हिन्दू-स्त्रियों के सामने हिन्दू-समाज का ऐसा घिनौना चित्र खींचती हैं, मानो सारी दुनिया की क्रूरता, नृशंसता, अन्याय, व्यभिचार सब हिन्दुओं में ही पुंजीभूत हो रहा है, और हिन्दू-स्त्रियों पर बड़ा भारी अत्याचार हो रहा है। इससे हमारी अनुभवहीन, कच्ची अक़्ल की भावुक लड़कियों में व्यर्थ ही हिन्दू पुरुषों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वे मुस्लिम आदि दूसरे समाजों को जिनका उन्हें ज्ञान नहीं होता, अच्छा समझने लग जाती हैं और ज़रा-सा भी बहाना मिलने पर भाग जाती हैं, पीछे से चाहे अपनी भूल का अनुभव होने पर उन्हें रोना ही पड़े। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस गये-बीते समय में भी हिन्दू के समान स्त्री का सम्मान करनेवाला, पत्नीभक्त और प्रेमी पति दूसरा कोई नहीं। हिन्दू पत्नी अब भी अपने घर की रानी है। हिन्दुओं में बहुविवाह की मनाही न होते हुए भी रीति एक ही विवाह की है। हज़ार में यदि कोई एकआध दूसरा विवाह करता भी है तो वह बहुत ही लाचारी की हालत में। परन्तु मुसलमानों में यह आम रवाज है। हाल में उनकी एक पत्रिका में एक शिकायत छपी थी कि आज-कल मुसलमान ग़ैरमुसलमान बनने लगे हैं, क्योंकि वे अपनी लड़की का सम्बन्ध करने के पूर्व पूछने लगे हैं कि पुरुष के पहली की कोई स्त्री तो मौजूद नहीं। मुसलमान स्त्रियाँ अपने पतियों से इतनी तङ्ग हैं कि यदि हिन्दू पुरुष उनको ग्रहण करने को तैयार हों तो वे सहर्ष उनके साथ विवाह करने के लिए राज़ी हो जायँ। वे अपनी हिन्दू बहनों की स्वतंत्रता को ईर्ष्या की दृष्टि से देखती हैं। पर बेचारी करें क्या, विवश हैं। पिछले दिनों पंजाब की मुसलमान स्त्रियों में एक लहर-सी चल गई थी। वे ईसाई होकर 'तलाक़' प्राप्त कर लेती थीं और अपने अत्याचारी मुस्लिम पति से छुटकारा पाकर किसी दूसरे से विवाह कर लेती थीं। इस पर मुस्लिम-समाज बहुत चिन्तित हो उठा था। अब तक भी मुसलमान देवियों को अपने छुटकारे के लिए इसी उपाय का अवलम्बन करना पड़ता है।

परन्तु मुसलमान लोग अपनी स्त्री-पत्रिकाओं में मुसलमान पति की कभी निन्दा नहीं करते। कुछ वर्ष हुए 'चाँद' में मुंशी ज़हूरबख़्श ने 'समाज का अग्निकुण्ड' शीर्षक से कई कहानियाँ लिखकर हिन्दू-पतियों की निन्दा और मुसलमान पति की बड़ाई करना आरम्भ किया था। उनके निन्दात्मक लेखों को तो हिन्दू-स्त्रियाँ पढ़ सकती थीं। परन्तु यदि कोई हिन्दू लेखक मुसलमान पतियों के विरुद्ध कुछ लिखे तो उसका लेख मुसलमान स्त्रियों के हाथ तक नहीं पहुँच सकता। मैंने ज़हूरबख़्श जी की कहानियों के सम्बन्ध में 'चाँद' में लिखा। इस पर वे तिलमिला उठे और बोले कि हम तो हिन्दी की सेवा कर रहे हैं, उसका पुरस्कार हमें यह मिल रहा है; अब हम हिन्दी-सेवा ही नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने मेरे सम्बन्ध में लिखा कि यह नगण्य जाति का नगण्य जीव इस्लाम का क्या बिगाड़ सकता है। मैंने उसका उत्तर लिखकर भेजा कि यदि आप हिन्दी-सेवा का मूल्य हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के रूप में लेना चाहते हैं तो ऐसी सेवा को रहने दीजिए; आप एक मुसलमान होकर हिन्दी लिखने लगे तो क्या बड़ा उपकार हो गया; पंजाब में सहस्रों हिन्दू उर्दू की सेवा कर रहे हैं। परन्तु खेद है कि 'चाँद' के हिन्दू सम्पादक ने मेरा उत्तर न छापा, क्योंकि हिन्दी-जगत् को वे एक मुसलमान की सेवा से वंचित नहीं करना चाहते थे! मुझे मुसलमानों से कोई गिला नहीं, मुझे तो उन हिन्दुओं से शिकायत है जो एक ओर हिन्दू-स्त्रियों के बड़े हितचिन्तक बनते हैं और दूसरी ओर मुसलमानों को कहानियों आदि के द्वारा उनमें इस्लाम का प्रोपेगण्डा करने में सहायता देते हैं।

मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि जितनी हिन्दू-स्त्रियाँ भागकर मुसलमानों में जाती हैं उनमें से अधिकांश पीछे से बहुत पछताती हैं। परन्तु रोने-पीटने, चीख़ने-चिल्लाने

के सिवा फिर वे अपनी मुक्ति का कोई उपाय नहीं कर सकतीं। वे मुर्ग़ियों की तरह दरबे में बंद कर दी जाती हैं और वे पर्दे के अन्दर क़ैद हो जाने से बाहर के संसार को अपना दुख-दर्द नहीं सुना सकतीं और भीतर ही भीतर घुल घुलकर मर जाती हैं।

कुछ वर्ष हुए, मैं लाहौर के चंगड़ मुहल्ला में रहता था। मेरे साथ एक मुसलमान फोटोग्राफर ने भी आकर एक मकान किराये पर लिया। एक दिन मैं सो रहा था कि आधी रात के समय मुझे अत्यन्त हृदयद्रावक स्वर में किसी स्त्री के रोने की ध्वनि सुनाई दी। मैं चौंककर उठ बैठा। वह बेचारी कोई दो घंटे तक हाहाकार करती रही। उसे निर्दयतापूर्वक पीटने का शब्द मुझे स्पष्ट सुनाई दे रहा था। सवेरे उठकर मैंने पता लिया तब मालूम हुआ कि उस फोटोग्राफर की दो स्त्रियाँ हैं। एक तो जन्म की मुसलमान है और दूसरी हिन्दू से मुसलमान हुई है, जो पहले एक बूढ़े हिन्दू दूकानदार की थी। वह स्त्री दो-चार हज़ार रुपये का माल लेकर उसके घर भाग आई थी। मुक़दमा हुआ था। अदालत ने हिन्दू पति को उसकी स्त्री दिला दी थी, परन्तु उस समय उस पर भूत सवार था। वह फिर भागकर मुसलमान के पास आ गई। पहले दो-चार महीने तो उस लाये हुए रुपये पर ख़ूब गुल-छर्रे उड़ते रहे। परन्तु अब वह रुपया चुक गया है, घर में चूहे दौड़ रहे हैं। इश्क़ का भूत भी अब उतर चुका है। इसलिए रोज़ जूता-पैज़ार होता है। अब यह स्त्री कहीं जा भी नहीं सकती। एक तो वह इसे बाहर पाँव रखने नहीं देता, दूसरे इसे हिन्दू ग्रहण करने को तैयार नहीं। बस, बेचारी नरक में पड़ी सड़ रही है।

हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में अनमेल विवाहों की संख्या बहुत अधिक है। क़ब्र में पैर लटकाये हुए बुड्ढे भी नवयुवती कुमारिकाओं, वरन बालिकाओं तक से विवाह कर लेते हैं। उनका समाज इसमें कोई पाप नहीं देखता। मुझे एक हिन्दू नर्स ने बताया कि हमारे साथ दो-तीन मुसलमान युवतियाँ भी नर्स का काम सीखती थीं। वे रोया करती थीं कि उनके पति उनके साथ बहुत दुर्व्यवहार करते हैं। परन्तु उनके पास अपने बचाव का कोई उपाय नहीं। इसी लिए वे नर्स बनने यहाँ चली आई हैं।

इसमें तनिक भी झूठ नहीं है कि जिस प्रकार मुस्लिम स्त्री की रक्षा के लिए मुसलमान लोग पल भर में सहस्रों की संख्या में एकत्र हो जाते हैं और अदालत और पुलिस की भी परवा न करके उसे छीन ले जाते हैं, वैसे हिन्दू बिलकुल नहीं करते। ऐसे अवसरों पर हिन्दू युवक दुम दबाकर भाग जाते हैं या हिन्दू-स्त्री को संकट में देखकर भी पास खड़े हँसते रहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो इसमें युवकों का उतना दोष नहीं। उनकी कायरता और दुर्बलता का मूल कारण हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था है। एक मुसलमान अपने को एक बड़ी भारी जाति का एक अंग अनुभव करता है। वह समझता है कि सात करोड़ मुसलमान उसके भाई हैं, विपत्ति में वे उसकी सहायता करेंगे। इसलिए वह अपने को एक नहीं, सात करोड़ समझता है। इसके विपरीत हिन्दू अपने को अकेला समझता है। उसने कभी २३ करोड़ को अपना भाई अनुभव किया ही नहीं। वह तो अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चमार या कहार समझता है, हिन्दू नहीं। हिन्दू का भाई-चारा केवल उसकी अपनी ही छोटी-सी बिरादरी है। उसके सिवा वह किसी दूसरे हिन्दू के यहाँ न खा-पी सकता है और न ब्याह-शादी कर सकता है। इसलिए लड़ाई-झगड़े के मौक़े पर वह अपने को अकेला और कमज़ोर पाता है, और जान बचाकर भाग जाता है। हमारे नई रोशनी के जो बाबू लोग हिन्दू-स्त्रियों को उलाहना दिया करते हैं कि वे अँगरेज़ स्त्रियों की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक अकेली क्यों नहीं घूमतीं, डरती क्यों हैं, उन्हें गुण्डों का मुक़ाबिला करना चाहिए, वे यह नहीं सोचते कि अँगरेज़ स्त्रियों की निडरता उनके व्यक्तिगत शारीरिक बल में नहीं, वरन उनकी जाति के सामूहिक बल में है, जिसको वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दुओं में से बिलकुल नष्ट कर दिया है। यदि नारी के पीछे उसकी रक्षा करनेवाला समाज का सामूहिक बल न हो तो वह अकेली कुछ भी नहीं कर सकती।

हिन्दुओं में अनमेल विवाहों का कारण भी जात-पाँत का ही बंधन है, क्योंकि हिन्दू को अपनी तंग बिरादरी के भीतर ही विवाह करना पड़ता है, इसलिए अनमेल विवाह और दहेज़ की कुरीति रुक नहीं सकती। यदि वर्ण-भेद की विघातक संस्था न हो तो विधवा-विवाह में भी

बड़ी सहूलियत हो जाय और हिन्दू-विधवाओं को विवाह के लिए मुसलमानों में न जाना पड़े। परन्तु हिन्दुओं की तो अवस्था ही विचित्र है। अछूतों ने कहा कि यदि तुम वर्ण-व्यवस्था को मिटाकर हमें समान सामाजिक अधिकार दो तो हम हिन्दू रह सकते हैं। परन्तु हमारे नेताओं ने उत्तर दिया कि हम तो वर्ण-व्यवस्था छोड़ेंगे नहीं, तुम सिख बन जाओ, उनमें जात-पाँत नहीं !

कुछ वर्ष हुए, एक हिन्दू डाक्टर की स्त्री और साली का एक मुसलमान युवक से अनुचित सम्बन्ध होगया। पहले वे देहरादून में रहती थीं, फिर वहाँ से ब्रह्मदेश चली गईं। ब्रह्मदेश में वह मुस्लिम युवक भी साथ पहुँचा। साली अविवाहित थी। उसे गर्भ रह गया और बच्चा पैदा हो गया। वह उस मुसलमान से खुल्लम-खुल्ला लिपट गई। बड़ी मुश्किल से उससे अलग कर वह लाहौर लाई गई। हमारे जात-पाँत-तोड़क-मण्डल को उसके लिए वर ढूँढ़ देने के कहा गया। परन्तु साथ शर्त लगा दी गई कि वह लड़की की जाति का—खत्री—हो। हमने पूछा, यह क्यों ? उत्तर मिला कि लड़की ऐसा ही चाहती है। हमने कहा, यदि खत्री लड़की एक जाट से विवाह कर ले तो क्या यह मुसलमान से विवाह कर लेने से भी बुरा है ? उत्तर मिला, उसे हिन्दुओं में रहते हुए जात-पाँत तोड़ने से सदा उँगली उठते रहने का भय है।

इसलिए स्पष्ट है कि हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण बंद करने के लिए हिन्दुओं की जाति-पाँति का विध्वंस करके उनकी मनोवृत्ति को बदलने की ज़रूरत है। जब इनमें बंधुभाव आ जायगा तब कोई भी दूसरा इनकी स्त्रियों की ओर आँख उठाकर न देख सकेगा और साथ ही ये विधर्मियों के भी अपने में खपाने लगेंगे।

कविं पुराणम्

श्रीयुत शिलीमुख

आओ, मेरे कवि, मैं तुम्हारी पूजा करूँ। मेरे पास धूप, दीप, फूल, पुष्प आदि सब प्रस्तुत हैं।

मैं स्वच्छ हूँ, मैं स्निग्ध हूँ, अनुरक्त हूँ, अभिषिक्त हूँ। आओ, तुम्हारा अभिषेक करूँ, अनुराग का तिलक लगाऊँ, स्नेह का दीपक जलाऊँ और यश का पुष्प चढ़ाऊँ।

मैं तुम्हारे साथ हँसना चाहती हूँ, मैं तुमसे बोलना चाहती हूँ। तुम एक बार तो देखकर मुस्कराये थे, फिर गंभीर हो गये। गंभीर क्यों हो गये ? आओ, मेरे साथ हँस-बोलकर खेलो न।

तुम्हारे नेत्रों में चिन्ता है, समाधि है। तुम विमूढ़ हो, तुम विमुग्ध हो। क्या सोचते हो ?

तुम विमूढ़ हो, तुम विमुग्ध हो। प्रेम से ? या मुझसे घृणा करते हो ? मैं ही तो तुम्हारी कविता हूँ।

और मैं निहोरे करती हूँ—मेरे पास आओ, मेरे पास बैठो, मुझसे हँसो, मुझसे बोलो, खेलो। मैं भी खेलूँ।

तुम्हारी इस तल्लीनता का अर्थ क्या समझूँ ? तुम्हारे पलक इस बार कुछ हिले तो। तुम फिर मुस्कराये भी। तो क्या अभी तक मुझी को देख रहे थे ? मुझी में मग्न थे ? मैं कृतार्थ हुई।

तुम्हारे नेत्र कुछ चमक रहे हैं। उन्माद से ? हँसी से ? या उन्माद की हँसी से ? तुम्हारे स्थिर होठ जैसे कुछ बोल रहे हों।

अपने होठों की यह बोली मुझे भी समझाओ ज़रा। यह तुम अपनी उँगली से क्या दिखा रहे हो ?

हृदय को टटोलूँ अपने ? हाँ, टटोला तो हृदय को। न जाने, कैसा-सा मालूम होता है। कुछ खुशी-सी लगती है। तो क्या तुम्हीं इस अभ्यन्तर में भी बैठते हो ?

ओहो ! अब तो तुम बहुत जल्दी-जल्दी बोल रहे हो। ज़रा धीरे धीरे, मेरे कवि—जिससे मैं सब कुछ समझ भी तो सकूँ।

मैं विमूढ़ हूँ, मैं विमुग्ध हूँ। कितना सारा दिखाई देने लगा एक-दम। अपने के देखूँ या तुम्हें देखूँ—कुछ बतलाओ।

अरे ! तुम बड़े खिलाड़ी निकले। खेल ही रहे थे तब से ? और तुम कहते हो यह सब यथार्थ था !

यथार्थ था सचमुच ! मैं समझ गई। कवि और कविता में भेद ही कहाँ है !

अज्ञात दिशा की ओर

मिसेज़ बोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौन्दर्य्य उनकी एकमात्र पुत्री रेखा में उमड़ता आ रहा था। अपने को हताशगञ्ज का ज़मींदार कहकर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने अपने मित्र निर्मल 'चौधरी' का इनसे परिचय कराया और उसके सम्बन्ध में बतलाया कि ये कोचभूम के प्रिंस हैं। इधर मिसेज़ बोस तथा निर्मल परस्पर एक दूसरे की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गये, किन्तु अहीन्द्र रेखा पर आसक्त था। एक बार वे लोग कलकत्ता छोड़कर देहात में गंगा जी के तट पर एक बँगले में कुछ समय बिताने के लिए गये। वहाँ भ्रमण के समय एकान्त पाकर अहीन्द्र ने रेखा से प्रणय-निवेदन किया, किन्तु रेखा ने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। बाद को रेखा के जी में आया कि अहीन्द्र यदि इस प्रकार मेरे प्रेम में अधीर हो रहा है तो मैं उसके साथ विवाह करके क्यों न उसके जीवन को सुखी बनाऊँ। परन्तु अहीन्द्र उसके साथ विवाह करने पर सहमत नहीं था, वह उसके साथ गुप्त रूप से ही प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहता था। इससे रेखा को बड़ी विरक्ति हुई। और इस वायु-मण्डल से उसे घृणा-सी होगई। अन्त में शान्ति-लाभ करने के विचार से वह घूमने के लिए निकली और एक निर्धन परिवार की सुखमय गृहस्थी देखकर बहुत प्रसन्न हुई। इस परिवार की विचार-धारा से रेखा इतना अधिक प्रभावित हुई कि पहले के समस्त व्यक्तियों के संसर्ग से छुटकारा लेकर इन निर्धन व्यक्तियों के ही समान जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। परन्तु रेखा को सबसे अधिक ग्लानि उस समय हुई, जब उसने अपनी मा को चौधरी के साथ एकान्त में बहुत ही अश्लीलता-पूर्ण अवस्था में देखा। अन्त में उसने इस बात का सङ्कल्प किया कि मा को मैं इस नीच संसर्ग से अवश्य दूर करूँगी।

अनुवादक, श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

ग्यारहवाँ परिच्छेद



रेखा ने सोचा, यही उसका जीवन है, उसकी मा एक वेश्या-मात्र है, उसके पिता के साथ उसकी मा का कभी विवाह नहीं हुआ। किन्तु बात केवल इतनी ही होती तो वह इस तरह की चिन्ता न करती। यदि वह देखती कि पिता की वह स्मृति निष्कपट भाव से हृदय में धारण किये हुए बैठी है! यह भी नहीं था। मा के विलास, बनाव-शृङ्गार और ठाट-बाट में ज़रा भी कमी नहीं है। अपनी भोगलिप्सा को चरितार्थ करने तथा अपने आपको ख़ूब सजाकर मोहिनी-रूप धारण कर रखने में वह भरसक कुछ उठा नहीं रखती। क्या हाव-भाव और क्या वेश-भूषा, आज भी वह पुरुष-समाज में अपने आपको दूकान पर रक्खे हुए विक्रय की वस्तु के ही समान सजाकर घूमा करती है। इस प्रकार की निर्लज्जता तो अब असह्य हो उठी है। छिः! कल रात को एक बार भी वह नीचे नहीं उतर पाई, किन्तु मा इन निर्लज्ज और विलासी आदमियों के ही पीछे इस तरह दीवानी थी कि उसकी ख़बर तक नहीं ली। और ये सब पुरुष! ये लोग भी यह समझ गये हैं कि हमारी सोने से मढ़ी हुई तर्जनी के इशारे पर ही मा नाचती फिरेगी। केवल इतना ही नहीं, मा के सम्बन्ध में तो इन लोगों का यहाँ तक विश्वास है कि नारीत्व का जो कुछ भी कलङ्क है उसे शरीर में लपेटकर उन लोगों की तृप्ति के लिए वह पात्र के समान उनके मुँह के पास अपने को रख देगी और इसमें गर्व का ही अनुभव करेगी। इस अवस्था में इस तरह का अपमान उसे अच्छा भी लगता है!

रेखा मा के इस जीवन से मन ही मन अपने जीवन की तुलना करने लगी। वह सोचने लगी कि मैं तो संसार में अभी तक कुछ पा नहीं सकी हूँ, मेरे जीवन की समस्त पिपासा अभी तक वैसी की वैसी ही बनी है। फिर भी किसी के सामने इस तरह अपने आपको समर्पित नहीं

कर सकती। परन्तु उसकी मा जो इस प्रकार लोगों के पीछे पीछे दौड़ती फिरती है, उसका स्मरण आते ही रेखा लज्जा के मारे मर जाती है। इधर उसकी मा इस प्रकार निःसङ्कोच भाव से बड़े शौक़ से पुरुषों की वासना की दासी हो पड़ी है। इसी से वह इस प्रकार का विभव, इस प्रकार का ठाट-बाट बढ़ा सकी है। हाय रे! इसकी अपेक्षा तो सर्वथा निर्धन होकर गली गली भिक्षा माँगते फिरना कहीं अधिक अच्छा है, अधिक सुखकर है।

रेखा ने बायस्कोप में इसी तरह का एक चित्र देखा था। वह चित्र उसे स्मरण हो आया। चित्र का विवरण इस प्रकार था। एक विलासिनी मा थी। स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी विलास-लिप्सा को चरितार्थ करने के लिए उसने घर छोड़ दिया। सन्तान को फेंककर पति के हृदय में उसने अग्नि जला दी और एक उच्छृङ्खल युवा के साथ वह वंश-मर्य्यादा को तिलाञ्जलि देकर बह गई। बाद को उस युवा ने उसे त्याग दिया। तब वह विलासिनी पाप के अत्यधिक गहरे पङ्क में निमग्न होने लगी। उसके उद्धार की कोई आशा ही नहीं रह गई। नीच पुरुषों के संसर्ग में रहते रहते वह इस प्रकार कलुषित बन बैठी कि उसे देखकर सभी लोग काँप उठते थे। वह तसवीर देखकर रेखा भी काँप उठी थी। उस समय उसे यह कहाँ मालूम था कि उसकी मा भी ठीक उसी के समान वैसे ही पाप के पङ्क में निमग्न है और इस पाप के ही निमित्त उसने इस तरह अपने सारे अङ्गों को सजा रक्खा है। इसी की बदौलत उसका यह ठाट-बाट, यह वस्त्र-आभूषण और यह धन-विभव है। तो भी उस तसवीरवाली स्त्री का उद्धार एक दिन हुआ था। एक दिन एकाएक एक पशु के पैर का आघात लगने पर वह स्त्री बहुत ही पीड़ित हो उठी। उस पीड़ा की ही अवस्था में एक दिन स्वप्न में उसे अपने बहुत दिन के परित्यक्त पुत्र की याद आ गई। वैसे ही वह पागल हो उठी। वही धूलि-धूसर और मलिन मूर्ति लेकर वह पुत्र को देखने के लिए दौड़ पड़ी। परन्तु उस समय घर का द्वार बन्द था। लड़के ने भी उसे नहीं पहचाना। वह कितना करुण मुहूर्त था! अन्त में वह स्त्री दासी होकर उसी घर में काम करने लगी। वहाँ उसने इसी आशा से नौकरी की थी कि वह अपने लड़के को देख सकेगी। इस प्रकार स्वामी के घर में दासी का कार्य करके लड़के की सेवा करती हुई अपने जीवन की उस मलिनता को वह धोती रही। परन्तु यह सम्भव हुआ था केवल मनुष्य की कल्पना से रची हुई कहानी होने के ही कारण। यही न? परन्तु इस तरह की कहानी क्या जीवन में कभी सत्य हो सकती है? न सही। रेखा ने सोचा कि मैं तो इसे जीवन में घटित करूँगी ही। वह कल्पना के द्वारा अङ्कित किये हुए चित्र को अपने जीवन में प्रस्फुटित करके ही रहेगी। मा को वह घृणित संसर्ग से खींचकर दूर करेगी, पापमय जीवन से उसका उद्धार करेगी। रेखा ने मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि मा को समझाऊँगी। नारी का जीवन सचमुच इतना हेय, इतनी अवहेलना की वस्तु नहीं है कि कोई भी पुरुष आकर इच्छानुसार उससे खेलने लगे, उसे तुच्छ बना दे, नारी जीवन को पद-दलित करके उसका प्राण-रस निकाल ले और उसका पान करके पुरुष केवल अपनी गर्हित तृष्णा निवृत्त करे। न! न!

आहा! वह यदि ऐसा कर सकी तब वह मनुष्य के निवास करने का यह स्थान, यह नीचतापूर्ण और बीभत्स संसर्ग, यह कोलाहल छोड़कर किसी सुदूर वन की गोद में आश्रय ग्रहण करेगी। वहाँ वह एक छोटी-सी झोपड़ी बनावेगी और उसी में स्वयं वह और उसकी दुर्भागिनी मा रहेगी। और कोई वहाँ न आ पावेगा। नदी के जल और वन के फल से दिन कट जायँगे। आह! ठीक मानो एक करुण नाटक के अन्तिम अङ्क के मधुर चित्र के समान ही विचित्र माधुर्य से उनका जीवन परिपूर्ण हो उठेगा। चिड़ियों के गान से स्निग्ध, शान्त तपोवन के समान घने और हरे-भरे पेड़-पौधों के बीच में आनन्द की सीमा-परिसीमा न रहेगी। रेखा प्राचीन काल की ऋषि-कन्याओं के समान पौधों को सींचा करेगी, उसकी मा तपस्या से अपने समस्त पाप तथा मन की सारी ग्लानि धोकर फेंक देगी।

यह रंगीन चित्र अङ्कित करने की मादकता से वह बिलकुल ही विह्वल हो उठी। बड़ी देर के बाद एकाएक नीचे मा का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा। मा नौकरों को डाँट रही थी। रेखा को क्षोभ हुआ। वह सोचने लगी कि इतनी देर में भी मा को मेरी याद नहीं आई। यह कितने आश्चर्य की बात है? यह बात मन में आते ही उसका हृदय व्यग्र हो उठा। अब उससे न रहा गया। वह

सोचने लगी कि ये अतिथि शायद इस समय भी डटे हुए हैं। ये लोग कितने निर्लज्ज हैं!

किन्तु अधिक विलम्ब करना भी अब ठीक नहीं है। रेखा नीचे उतर आई। मा एक चायदानी लिये उसे ध्यानपूर्वक देख रही थी कि नौकरों ने उसे ठीक ठीक साफ़ किया है या नहीं। रेखा ने पुकारा—मा!

"क्या है रे रेखा? भला तूने यह कहाँ की भलमन-साहत सीख ली है कि दो भले आदमी घर में मेहमान हैं और तू अपने ही घमण्ड में चूर होकर एक कोने में इस तरह पड़ी है। उनकी तुझे ज़रा भी चिन्ता तक नहीं है। इसका मतलब क्या है? छिः!"

क्रोध के मारे रेखा का एड़ी से लेकर मस्तक तक जल उठा। उसने कहा—हाँ, मुझे जो अच्छा मालूम पड़ा वह मैंने किया। स्वयं मेरा भी तो सुख-दुःख है। उनकी बाँदी तो मैं हूँ नहीं कि वे जब कभी आवें, ठोकर खाकर गिर पड़ने पर भी मैं उनके लिए पाद्य-अर्घ्य लेकर दौड़ पड़ूँ।

मा अवाक् होकर लड़की की ओर देखती रह गई।

रेखा ने कहा—तुमसे मुझे कुछ बातें कहनी हैं। वे बातें बहुत ज़रूरी हैं। क्या तुम उन्हें सुन लोगी?

मा और भी आश्चर्य में आकर कन्या की ओर ताकने लगी। मा के मुँह से कोई बात नहीं निकली।

रेखा ने कहा—सुनने भर का अवसर तुम्हें है?

रेखा उत्तेजित हो उठी थी। आवेग से उसके दोनों होंठ काँप रहे थे। मा ने यह बात देख ली। देखकर उसने कहा—क्या तेरा शरीर अभी तक अच्छा नहीं हुआ है?

रेखा ने कहा—नहीं। उसका स्वर तीव्र था।

मा के हृदय में ममता जाग्रत हो आई। वह रेखा के पास आई और उसके मुँह तथा मस्तक पर हाथ फेरने लगी। अन्त में उसने कहा—बात क्या है? तेरे बाल इस तरह खुलकर बिखर तथा उलझ गये हैं। चेहरा भी न जाने कैसा हो गया है, न जाने कब से निद्रा नहीं आई!

रेखा ने कहा—सचमुच मुझे निद्रा नहीं आई है और न शीघ्र उसके आने की सम्भावना ही है—ख़ासकर जब तक इस घर में रहूँगी तब तक। इन लोगों के संसर्ग के कारण यहाँ की वायु ही ऐसी दूषित हो गई है।

बाधा देकर मा ने चिल्लाकर कहा—रेखा! क्रोध से मा का हृदय जल उठा।

रेखा ने कहा—क्रुद्ध हो रही हो क्या? कल रात को बग़ीचे में मैंने तुम्हें देखा था। देखने के विचार से नहीं देखा था—यों ही दृष्टि पड़ गई थी।

मा और भी क्रुद्ध हो उठी। इतना साहस कन्या का कि मा के मुँह पर इस तरह की बात कहे! मा ने कहा—रेखा, यह सब मैं नहीं पसन्द करती। जैसी तुम लड़की हो, वैसे लड़की की ही तरह रहो। तुम्हारे मुँह से इस तरह की बातें सुननी पड़ेंगी, यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। मैं मा हूँ—

रेखा ने कहा—यह मेरा दुर्भाग्य है। परन्तु करूँ क्या? ज़रा बतलाओ तो! मुझे भी तो इस तरह की बात मुँह से निकालनी पड़ती है—इतनी अधिक लज्जा की बात, इतने बड़े कलङ्क की बात। इसे मुँह से निकालने में कितना दुःख हुआ है, हृदय को कितनी अधिक वेदना हुई है, क्या तुम यह समझ सकोगी? यदि तुम स्वयं अपनी आँखों से कभी यह देख पातीं...तुम्हारी मा इस तरह का अपमान, इस तरह की निर्लज्जता अपने मस्तक पर लादे हुए है, नारीत्व को वह इस तरह पद-दलित कर रही है...

"रेखा!" मा गरज उठी।

निमेष भर में ही रेखा शान्त हो गई। उसने कहा—इन सब बातों के सम्बन्ध में यहाँ तुमसे वाद-विवाद करना मैं नहीं चाहती। ये बातें सुनकर नौकर-चाकर ही अपने मन में क्या समझेंगे? परन्तु एक बात है। तुम मुझे जिस तरह समझती हो, उस तरह की अबोध बालिका भी मैं नहीं हूँ। यह जो तुम इस तरह निर्लज्जता की धारा में कूद-कर आनन्द से तैर रही हो, क्या तुम समझती हो कि यह देखकर भी मैं इसमें बाधा न डालूँगी? सुनो, तुमसे मुझे बहुत आवश्यक बात कहनी है। वह जीवन-मरण की बात है। सुन लोगी तो अच्छा ही है, नहीं तो किसी दिन अनुताप करना पड़ेगा।

यह बात कहकर रेखा चलने को उद्यत हुई। मा को उसकी बात सुनने की प्रबल इच्छा हुई। वह कहने लगी—कौन-सी बात?

रेखा ने कहा—वह बात यहाँ कहने के लायक़ नहीं है। यदि तुम्हें सुनने की इच्छा हो तो मेरे कमरे में आओ। एकान्त में तुम्हें बतला सकूँगी।

रेखा चली गई। मा कुछ देर तक तो अवाक् होकर

खड़ी रही। बाद को एक लम्बी साँस लेकर वह बाहर की ओर बरामदे में चली गई।

ज़रा देर बाद आकर मा ने रेखा के कमरे में प्रवेश किया। उस समय रेखा बिस्तरे पर लेटी हुई दुःख-भरे नेत्रों से खुली हुई खिड़की के द्वारा आकाश की ओर ताक रही थी। मा ने आकर कहा—तुम्हें कौन-सी बात कहनी है?

आग्रह के मारे उच्छ्वसित होकर मा ने रेखा को ज़ोर से पकड़ लिया। बहुत ही गम्भीर और गद्गद स्वर से मा को रेखा ने पुकारा—मा! मा! रेखा ने कहा—कल बग़ीचे में जब मैंने तुम्हें देखा था...उस आदमी के साथ... मुझे कितनी लज्जा हुई! मैंने सोचा कि इसी क्षण आत्म-हत्या कर लूँ।

मा ने कहा—पागलपन छोड़कर तुम्हें जो कुछ कहना हो, कहो।

रेखा ने कहा—यह पागलपन नहीं है। सुनो मा। अपना मन मैं बिलकुल ठीक कर चुकी हूँ। चलो, हम तुम यहाँ से भाग चलें। यह गर्हित संसार त्यागकर—यह निन्दित ऐश्वर्य त्यागकर दूर किसी निर्जन वन में। ऐसे स्थान पर चलें जहाँ हम लोगों के सम्बन्ध की कोई भी बात किसी को मालूम न हो सके। ऐसे ही स्थान पर हम अड्डा जमावें। चलोगी मा? बताओ। चलो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। चलो, यहाँ से निकल चलें।

रेखा के दोनों नेत्र कातर हो उठे। उनमें प्रार्थना-सूचक अश्रु उदित हो आये। मा ने यह देख लिया। कहीं से प्रगाढ़ लज्जा आई और मा का कण्ठ रुद्ध कर लिया। मेरा यह कलङ्क और दुर्बलता इस तरह के दीन वेश में कन्या की पकड़ में आ गया है, यह सोचकर मा का भी मस्तक अपने आप ही न जाने क्यों झुक गया। ज़ोर देकर मा ने इस भाव को दबा लिया। उसने रेखा से कहा—किन्तु तेरी एक भी बात मेरी समझ में नहीं आ रही है रेखा!

रेखा ने कहा—इसमें समझाने-बुझाने की कोई भी बात नहीं है। ये लोग तुम्हें किस दृष्टि से देखते हैं और यहाँ किसलिए आया करते हैं, कल रात को इस सम्बन्ध में मुझे जो कुछ ज्ञात हो सका है, मा, वह सब अब न हो पावेगा। वैसी बात मैं कदापि न होने दूँगी। तुम मेरी मा हो। मैं तुम्हारा प्यार करती हूँ और प्यार के कारण किसी दिन किसी प्रकार का भी अभाव न होने दूँगी। तुम केवल यह सब त्याग दो, इन लोगों का संसर्ग छोड़ दो।

मा का हृदय उस समय भी लज्जा और ग्लानि के कारण काँप रहा था। वह भी तो नारी है और रेखा उसी की कन्या है।

मा ने कहा—सुनो, इसमें बहुत-सी बातें हैं रेखा, जिन्हें तुम जानती नहीं हो। इस समय उन्हें मैं बताना भी नहीं चाहती। किन्तु अभी तुम केवल इतना ही समझ रक्खो कि तुमने जो कुछ देखा है वह सब भूल जाओ। इसके सिवा ये सब बातें फिर मेरे कानों तक न पहुँच पावें, यह मैं तुमसे कहे देती हूँ। मैं मा हूँ, तुम बेटी हो। बेटी के मुँह से इस तरह की बात, ख़ास कर मा के सम्बन्ध में, शोभा भी नहीं देती रेखा। सुनने में बहुत बुरी मालूम पड़ती है।

रेखा ने प्रार्थनामय स्वर में कहा—नहीं मा, यह नहीं होगा। जो बात सुनने में बुरी मालूम पड़ती है वह देखने में और भी कितनी बुरी मालूम होती है, यही एक बात तुम समझ लो। मैंने यह समझ लिया है कि मेरे यहाँ प्रतिदिन इतने अतिथि क्यों आया करते हैं। जितने लोग यहाँ आते हैं वे सभी लम्पट और विषयी हैं। ये लोग समझते हैं कि नारी पुरुष की आमोद-स्पृहा को चरितार्थ करने का साधन-मात्र है, पुरुष के हाथ के खिलौना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपनी उद्दाम वासना को चरितार्थ करने के ही लिए ये लोग यहाँ आया भी करते हैं। यही उनकी मित्रता का दाम है! अस्तु इन सब कुरुचिपूर्ण बातों के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करना मैं नहीं चाहती। ऐसे विषय में तर्क किया भी नहीं जा सकता। तो भी जो हो गया है उसका तो अब कोई चारा नहीं है, परन्तु मैं यह स्पष्ट कहे देती हूँ कि भविष्य में इस तरह की बातें न होने पावेंगी। यहाँ से हम दोनों ही चली जायँगी। कलकत्तेवाले मकान में भी न चलेंगी। चलेंगी किसी सुदूर वन में, किसी गाँव के एक किनारे पर, घास-फूस या पत्तों से बनी हुई किसी झोपड़ी में। तुम्हारे पास हीरा-मोती के जितने भी गहने हैं, उन सबको बेच डालो। उनके बेचने से जो कुछ रुपये मिल सकेंगे उन्हीं से हमारा समय व्यतीत होगा। इस प्रकार पुरुषों की इच्छा पूर्ण

करते रहना, उनकी उन्मादमय भोगलिप्सा को चरितार्थ करने के लिए इस तरह सुरा-पात्र के रूप में अपने आपको उनके सामने अब न रक्खा जा सकेगा। यह सब तुम छोड़ दो और वहाँ चलकर केवल मेरी मा होकर रहो। उसके सिवा तुम्हारा और कोई परिचय न होगा। समझती हो न!

मा के मुखमण्डल पर तथा उसके नेत्रों में क्रोध की रेखा उदित हो आई। वह कहने लगी—इस सम्बन्ध में अभी कल की छोकड़ी के मुँह से नानी-दादी की-सी बातें सुनने को मैं तैयार नहीं हूँ, रेखा। तुम्हारी इस तरह की बात मुझसे नहीं सहन की जा सकती। क्या तुम समझती हो कि केवल इतने से ही समाज हमें मस्तक पर धारण कर लेगा?

रेखा ने कहा—समाज से हमारा कोई मतलब नहीं है। मैं तो केवल अपने जीवन के ही सम्बन्ध की बातें कह रही हूँ। हम लोग भी तो मनुष्य हैं। मनुष्य जब इस तरह अपने मनुष्यत्व को तिलाञ्जलि दे देता है तब वह मनुष्य नहीं रह जाता। जो भी हो, मैं इन मनुष्यों को एक क्षण भी नहीं सहन कर सकती हूँ। इस स्थान में मुझसे अब एक क्षण न रहा जायगा। जो व्यक्ति हमारी मा के इतने बड़े कलङ्क का मूल है...

मा ने भर्त्सना के स्वर में चिल्लाकर कहा—रेखा!

रेखा ने कहा—तुम कहोगी कि मेरा साहस बहुत अधिक बढ़ गया है। परन्तु यह कोई साहस या धृष्टता नहीं है। मैं तुम्हारी पुत्री हूँ। कोई भी पुत्री माता को मातृत्व के अयोग्य कार्य करते देखना नहीं पसन्द करती, वह देख भी नहीं सकती। मेरी एक ही बात है। यदि तुम यह सब नहीं छोड़ सकतीं तो कोई बात नहीं है, तुम इन्हीं को लेकर रहो। मैं अकेली ही जाऊँगी। परन्तु यदि तुम मुझे चाहती हो तो यह सब तुम्हें छोड़ना होगा। अब तुम अपनी रुचि के अनुसार दो में से एक बात चुन लो—चुन लो। यह कहते कहते वह उत्तेजित हो उठी और उत्तेजित होकर कहने लगी—बताओ, तुम क्या चाहती हो। एक ओर दरिद्रता और मैं हूँ, दूसरी ओर आमोद-प्रमोद के लिए पिपासित इन पुरुषों का दल, धन-विभव, शत शत धिक्कारों से परिपूर्ण यह ऐश्वर्य, यह ठाट-बाट और यह राग-रंग—चुन लो। दो में से एक तुम्हें कौन पसन्द है?

उत्तेजना के मारे रेखा काँपने लगी। मा बड़ी देर तक उसकी ओर ताकती रही। बाद को एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा—पुस्तकें पढ़ते पढ़ते तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है रेखा।

रेखा का कण्ठ-स्वर ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। उसने दृढ़ एवं गम्भीर स्वर में कहा—नहीं मा, मुझे काफ़ी ज्ञान है। इन सब बातों से मैं हटनेवाली भी नहीं हूँ। मैं तो तुम पर किसी प्रकार का दबाव डाल नहीं रही हूँ—किसी प्रकार का आग्रह भी नहीं कर रही हूँ। तुमसे तो कह रही हूँ कि चुन लो। एक ओर मैं हूँ, दूसरी ओर तुम्हारा यह चञ्चल एवं उद्दाम आमोद-प्रमोद तथा विलास-ऐश्वर्य!

"परन्तु कहाँ चलना होगा, यह भी तो बतलाओ।"

"चलने के सम्बन्ध में पहले जैसा कि मैंने कहा है, किसी स्थान-विशेष पर चलने का मेरा आग्रह नहीं है। यहाँ से अन्यत्र जाने का मेरा वास्तविक उद्देश भी नहीं है। मेरा वास्तविक उद्देश है सत्पथ पर चलना। जिस मार्ग पर तुम चल रही हो उस पर से तुम्हें लौटना होगा—आज ही इसी दम।

"सत्पथ!" इस बात ने मा के हृदय पर बड़े ज़ोर का आघात किया। वैसे ही विद्रूम का अट्टहास एक-दम उत्थित हो आया। मा ने कहा—सत्पथ! सत् या असत् बनाकर भगवान् ने किसी वस्तु की सृष्टि नहीं की है, रेखा। मेरे लिए कहीं कुछ भी असत् नहीं है। मैं जो इस प्रकार सब लोगों के साथ हिल-मिलकर घूमती फिरती हूँ, यह दोष का विषय नहीं है। मेरे चारों ओर एक चक्र खींचकर समाज ने मुझे एक कोने में क्यों ठेल रक्खा है? यह क्या मेरा दोष है? मेरा जो हृदय हज़ारों आदमियों के हृदय का साथ पाकर उन लोगों के स्नेह और प्रीति में मिलकर अपनी क्षुधा निवृत्त कर सकता उसे इस चक्र के भीतर डालकर और एक भँवर की सृष्टि करके उसमें ग़ोते क्यों खिलाये? इसके अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है। मैं तो मनुष्य हूँ। मेरे मन में भी हँसने-बोलने की इच्छा उत्पन्न होती है। किसके साथ हँसूँ, किसके साथ बात-चीत करूँ? सगा चाहिए, मित्र चाहिए। परन्तु मेरा साथ देने के लिए, बन्धुता से मुझे तृप्त करने के लिए, समाज के द्वारा खींचे गये इस चक्र के भय से

कोई आवेगा नहीं। स्वभावतः जिन लोगों की छाती चौड़ी है वही आते हैं। किन्तु वे लोग इस संग, इस हँसी का दाम चाहते हैं। मुझे भी कर्त्तव्य के अनुरोध से वह दाम देना पड़ता है। पृथ्वी की चारों ही दिशाओं में लेन-देन का कारबार हो रहा है। स्वामी-स्त्री, माता-पिता और सन्तान तथा भाई-बहन आदि सभी के बीच में यह लेन-देन का कारबार चिरकाल से चला आ रहा है। इस तरह का कारबार त्रेतायुग से लेकर इस घोर कलिकाल तक समान रूप से चला आ रहा है। ऐसी दशा में जब ये लोग मुझे अपना सङ्ग देते हैं, मेरे साथ हँसते-बोलते हैं, तब मैं भी उसका वही दाम देती हूँ जो मेरी शक्ति के अनुरूप है, जो ये लोग चाहते हैं।

रेखा का हृदय विदीर्ण हो उठा। उसके नेत्रों में आँसुओं का स्रोत उमड़ आया। वह सोचने लगी कि उसकी मा कितनी अभागिनी और दुःखिनी है! कातर स्वर से उसने कहा—मा!

मा ने कहा—चुप रहो। मुझे समझाने दो सारी बातें। जब बात उठ ही पड़ी है तब इसमें लज्जा करने की कौन-सी आवश्यकता रह गई? अब खुल्लम-खुल्ला हर एक बात स्पष्ट हो जाय, मा-बेटी के बीच में ज़रा भी अन्तर, ज़रा भी भेद न रह जाय। तुमने मुझे जो कुछ समझ रक्खा है, मैं वही हूँ। और आज भी जो मैं इस तरह चलती हूँ उसका भी कारण है। यह सब मैं बतलाती हूँ, सुनो। इसका पहला कारण तो यह है कि मेरे सत्पथ पर चलने का अब कोई उपाय भी नहीं है।

"कोई उपाय नहीं है!" रेखा कम्पित होकर मा की ओर ताकने लगी। कितनी भयङ्कर यह बात है?

मा ने कहा—नहीं, उपाय नहीं है। इस प्रकार यदि मैं न चलूँ तो मस्तक कभी ऊपर की ओर उठा ही न सकूँगी। मेरे पास जो कुछ पूँजी है उसके सहारे पर यह सुख मिल नहीं सकता। यह आचरण यदि मैं छोड़ दूँ तो तुम्हें लेकर भोजन के लिए भी दूसरों के यहाँ दासी का काम करना पड़ेगा। यह जो तुम चिड़िया की तरह, तितली के-से पर फैलाकर घूमती-फिरती हो, यह सब न कर सकोगी। तब तो लोगों के यहाँ हम दोनों को बर्तन मलकर, मसाला पीसकर दिन काटने पड़ेंगे। इसे छोड़कर समाज हम लोगों को दूसरा कोई भी स्थान न देगा। पहले-पहल जब मैंने जीवन आरम्भ किया था तब अच्छी बनकर ही आरम्भ किया था। उस समय अच्छे मार्ग पर ही चला करती थी।

रेखा ने ज़ोर से कहा—मा!

मा ने कहा—नहीं, बात जब उठ पड़ी है तब सभी बातें कहूँगी। एक एक करके सुनती चलो। विवाह होने के बाद जब मैं विधवा हो गई तब भर पेट भोजन नहीं मिलता था। समस्त दिन कठिन परिश्रम करने के बाद कुछ पिता जी ले आते थे और दूसरों के घर में रसोई बनाकर कुछ माता जी उपार्जन करती थीं। इसी से हम लोगों का किसी प्रकार निर्वाह होता था। जिनके यहाँ माता जी भोजन बनाया करती थीं उनके यहाँ साथ में कभी कभी मैं भी जाया करती थी। माता जी की तबीअत ख़राब होने पर मैं रसोई बनाया करती थी। उनके यहाँ एक आदमी आता था। उसी ने पहले-पहल मेरे ऊपर प्यार की दृष्टि डाली। मुझे आशा दी, विश्वास दिलाया और प्यार दिखलाया। उस तरह का प्यार कभी स्वामी से भी नहीं पा सकी। उसका हाथ पकड़कर चली आई। शरीर का कष्ट नहीं सहन करना पड़ा। मन भी प्रेम के लिए कंगाल हो पड़ा था। यही थे मिस्टर बोस—तुम्हारे पिता। उन्होंने मुझे रानी बनाकर रक्खा। किसी दिन किसी प्रकार के अभाव का अनुभव करने नहीं दिया। मुझे निश्चिन्त और प्रसन्न रखने के लिए समाज और बन्धु-बान्धव सब कुछ उन्होंने त्याग दिया। जिस प्रेम में किसी प्रकार का पाप नहीं है वही प्रेम उन्होंने मुझे प्रदान किया। उनके दान के बदले में मैंने भी उन्हें उसी प्रकार का प्रेम प्रदान किया। जब तक वे जीवित रहे, कभी उनका विश्वास भंग नहीं होने दिया।

रेखा ने कहा—वे बहुत ही उदार थे, उच्च थे। तुमने भी जो उनका विश्वास-भंग नहीं होने दिया, यह अपने कर्तव्य का ही पालन किया। किन्तु उनकी मृत्यु हो जाने पर तुमने यह क्या इस तरह का नीच, घृणामय व्यवसाय आरम्भ कर दिया है? उनकी दया की स्मृति को पैरों से रौंद कर, कुचल कर, यह अभिसार—मा ने कर्कश स्वर में चिल्लाकर कहा—रेखा!

आँसुओं के वाष्प से उच्छ्वसित अभिमान के स्वर में रेखा ने कहा—किस साहस से तुम आँखें रँगती हो मा? इस समय तुम कौन हो? कहाँ गिर गई हो?

मा ने कहा—उपाय नहीं है। उपाय था भी नहीं रेखा! अपने आपको खड़ी रखने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है। इस प्रकार निःसङ्ग, निर्जन भाव से जीवन धारण किये रखना मनुष्य की शक्ति से परे है। हम लोगों के कोई नहीं है, कुछ नहीं है, है केवल यही शरीर! यह शरीर, यह यौवन और रूप! यही हमारी सम्पत्ति है! यही हमारा सर्वस्व है रेखा!

रेखा ने कहा—उस शरीर का यह अपमान, उस रूप की यह लाञ्छना।

मा ने कहा—इसके अतिरिक्त और उपाय क्या है रेखा? नारी ने इस शरीर, यौवन और रूप के मोह से ही चिरदिन पुरुष को अपने वश में रक्खा है। स्वामी-स्त्री के बीच में भी क्या यह नियम चालू नहीं है? स्वामी होकर पुरुष एक नारी को स्त्री के रूप में ग्रहण करता है और उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। इसका क्या कारण है? स्त्री की यह शरीररूपी लता यौवनरूपी मुकुल में खिले हुए पुष्पों से भरी हुई है। उसके मधु का आकण्ठ पान करने की लालसा से ही वह इस प्रकार का त्याग करता है। यह त्याग वह एकमात्र इसी आकांक्षा से करता है कि स्त्री अपने इस शरीर, इस यौवन में और किसी का हाथ न लगने देगी। केवल स्वामी के ही लिए स्त्री नित्य नये रूप, नई दीप्ति से विकसित होकर, अपने आपको सजाकर, स्वामी के सामने डाली के समान, स्वामी के भोग के लिए, स्वामी की तृप्ति के लिए रख देती है।

रेखा ने कहा—कभी नहीं। नारी और पुरुष के बीच में एकमात्र शरीर-सम्बन्धी ही हीन सम्पर्क नहीं है। यदि केवल यही बात होती तो कुरूपा स्त्री को स्वामी न प्यार करता, प्रौढ़ा स्त्री को स्वामी घर से बाहर निकाल देता। स्त्री घर की लक्ष्मी है, पुरुष की सन्तानों की मा है, संसार की शक्ति है, शान्ति है, हँसी है, आँसू है, कर्ममयी अधिष्ठात्री। रेखा के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

मा ने कहा—भूल है रेखा, यह तुम्हारी भूल है। रोओ मत। रो रोकर तुम अपने भाग्य में परिवर्तन न कर सकोगी रेखा। समाज के बाहर मन्त्रहीन प्रेम के उपवन में तुम्हारा जन्म हुआ है, इसलिए समाज तुम्हें ग्रहण न करेगा। इधर तुम्हारा यह नवविकसित जीवन निष्पाप है, निर्मल है, विशुद्ध है। शरीर-विक्रय करने के अतिरिक्त संसार में तुम्हारी और कोई गति नहीं है रेखा। भाग्य फेरने की वस्तु नहीं है। यह जन्म इसी तरह काटना होगा। उपाय नहीं है, उपाय नहीं है।

यह बात सुनकर रेखा काँप उठी। उसके शरीर के रोम रोम खड़े हो गये। उसके आँसू भी रोके नहीं रुकते थे। वह ठीक उसी तरह फूट फूटकर रो रही थी, मानो किसी बच्चे ने ज़ोर की मार खाई हो।

मा ने कहा—उठकर इधर चली आ रेखा। सबके साथ मिल कर बैठ, बातचीत कर। उस दशा में मन का यह भाव दूर हो जायगा। निरर्थक रोओ मत रेखा, उठ आओ।

मा ने बेटी का हाथ पकड़ लिया। रेखा ने मा का हाथ झटककर रुँधे हुए स्वर से कहा—छोड़ दो मुझे। मनुष्य के साथ मिलना-जुलना, बात-चीत करना—यह मुँह लेकर उन लोगों के साथ? कदापि नहीं। नीचतामय घृणा से जिन लोगों का हृदय परिपूर्ण है उनके साथ हँस हँसकर बातें करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं इस कमरे से हिलूँगी नहीं। मेरी केवल एक बात है—उन लोगों से कह दो कि वे अभी इसी दम यहाँ से चले जायँ, यह घर छोड़ दें।

मा ने कहा—किन्तु यह मकान तो उन्हीं का है।

रेखा ने कहा—तो इस अनुग्रह, इस प्रसाद का भोग करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। तुम अभी यहाँ से चल खड़ी होओ, पहले अपने कलकत्तेवाले मकान में ही सही। बाद को··· ···रेखा स्तब्ध हो गई। भावी यात्रा के पथ में एक क्षीण रेखा का सन्धान करने के विचार से अपने दोनों ही नेत्रों की दृष्टि शून्य में प्रसारित करके वह चुपचाप बैठी रही।

मा ने कहा—बाद को क्या होगा, सुनूँ तो?

रेखा ने मा की ओर देखा। उसने शान्त स्वर में ही कहा—इतनी बड़ी पृथ्वी में स्थान का अभाव न होगा। परन्तु यहाँ अब इस संसर्ग में मुझसे न रहा जायगा। मेरी तो एक बात है। वह मैंने तुमसे बतला दी। उन लोगों से अब मुलाक़ात न कर सकूँगी। मेरी बातों पर तुम सहमत नहीं होती हो तो न सही, मेरा कोई ज़ोर नहीं है। मैं अकेली ही अपने लिए रास्ता खोज लूँगी।

मा हतबुद्धि होकर कन्या की ओर ताकती रह गई। बाद को मन ही मन बहुत ही विरक्त होकर धीरे धीरे कमरा छोड़कर चली गई।

पाठकों के पत्र

शास्त्री जी की मौलिक (?) कहानी

गत जुलाई की 'सरस्वती' में श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री की 'शराब की सुराही में' शीर्षक कहानी प्रकाशित हुई है। उसको पढ़कर सहसा प्रेमचन्द जी की 'परीक्षा' शीर्षक कहानी का स्मरण हो जाता है, जिसमें नादिरशाह ने 'शाही वेगमों का इम्तिहान' लिया है। ऐसा मालूम होता है कि प्रेमचन्द जी के ही मसाले को लेकर शास्त्री जी ने अपनी कहानी की रचना की है और उसमें शराब का प्रकरण घुसेड़कर उसे मौलिक बनाने का विफल प्रयास किया है। शास्त्री जी उतने परिश्रम से कोई अच्छी मौलिक कहानी लिख सकते थे; फिर इसकी क्या ज़रूरत थी?

—योगेन्द्र मिश्र, मुज़फ़्फ़रपुर

कविवर पन्त जी

सितम्बर १९३६ वाले अंक में कविवर पन्त जी की '**मानव**' कविता हिन्दी की एक आदर्श सृष्टि है। निस्सन्देह पन्त जी की ऐसी रचना का आनन्द मर्मज्ञ जनों को ही मिल सकता है—

पृथुउर, उरोज ज्यों सर, सरोज,
दृढ़बाहु प्रलम्ब प्रेम-बन्धन,
पीनोरु स्कन्ध जीवन-तरु के,
कर, पद, अंगुल, नख, शिख शोभन!—

क्या श्रृङ्खला है! क्या ऐसा भाव नवीन हिन्दी-साहित्य में मिल सकता है?

कुँवर नरेशसिंह, शाहपुर

एक उपयोगी लेख

इस मास (अगस्त) की सरस्वती में—'लोक-सेवकों में शिष्टता का अभाव' नाम का एक बहुत ही उपयोगी लेख दिया गया है। आजकल इसी तरह के लेखों की ज़रूरत है, जिससे लोगों में आत्म-सम्मान का भाव उदय हो, साथ ही Public Servent अपनी ज़िम्मेदारी समझें। कुछ मास पूर्व इस लेख के लेखक महोदय का शायद "ज़ोर से धक्का मारो"? शीर्षक लेख भी इसी भाव का बहुत ही सुन्दर था। इस तरह के लेख पढ़ने से लोगों में बहुत-कुछ दृढ़ता आती है।

कृष्णवल्लभप्रसाद नारायणसिंह, गया

× × × ×

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर हमें इस बुराई का निदान तथा इलाज शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है। सदियों से पराधीनता एवं ग़ुलामी के बन्धन में जकड़े होने के कारण हमारे हृदय में अपने विजेताओं और उच्चाधिकारियों का अनुचित आतङ्क तथा मिथ्या भय घर कर गया है और हमें अपनी आत्ममर्यादा का ख़याल बिलकुल नहीं है। इसी दोष के प्रतिक्रिया-स्वरूप हम अपने भाइयों के साथ अशिष्ट व्यवहार करते और व्यर्थ का अपना रोब गाँठते हैं। ऐसी अवस्था में यदि हम अपने दिल से उक्त अवगुण को निकाल दें तो सभी क्षेत्रों में हम नम्र व्यवहार करना सीख जायँगे। अपनी खोई हुई आत्म-मर्यादा यदि हमें पुनः प्राप्त हो जाय तो हम स्वयं दूसरों का सम्मान करने लगेंगे।

लक्ष्मीनारायणसिंह विशारद
बांक (शाहाबाद)



फिर एक महिला ने एक हज़ार के लगभग प्रतिद्वन्द्वियों को हराया !

वर्ग नं० २ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

श्रीमती रुक्मिणी c/o कौला बाबू स्टेशनमास्टर खुर्जा सिटी

द्वितीय पुरस्कार ५२) (एक अशुद्धि पर)

श्रीमती कमला c/o कौला बाबू स्टेशनमास्टर खुर्जा सिटी

तृतीय पुरस्कार २५) (दो अशुद्धियों पर)

श्रीयुत तारादत्त उप्रेती माधुरी आफ़िस, लखनऊ

चतुर्थ पुरस्कार ७५) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २५ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा जायगा।

प्रत्येक को ३) मिलेगा

श्रीमती धनरानी c/o कौला बाबू स्टेशनमास्टर खुर्जा सिटी। श्रीमती लक्ष्मी शर्मा ६० पी० बी० कीटगंज, प्रयाग। श्रीयुत आर० एम० सांडल, कक्षा ९ के० आर० कालिज, मथुरा। श्रीयुत हरिवल्लभ 'हरि' अध्यापक नार्मल स्कूल कोटा, (राजपूताना)। श्री रामलखन पाण्डेय कक्षा ९ गवर्नमेंट इंटर कालिज, इलाहाबाद। श्रीयुत आनन्दप्रकाश जौहरी वकील, मु० ज़काती, बरेली। श्रीमती मीना अनद ९३, चौक गंगादास, इलाहाबाद। श्रीमती गोपेश दुलारी आचार्य्य, c/o एस० दास आचार्य्य, ब्यावरा राजगढ़ स्टेट सी० आई०। श्रीमती यशोवती देवी तिवारी ९५ कीटगंज, इलाहाबाद। श्रीयुत रघुनाथसिंह चौहान मुरार, ग्वालियर। श्रीमती योगेश्वरीदेवी गुप्त ७३ जानसेनगंज, इलाहाबाद। श्रीयुत नवीनचन्द्र श्रीवास्तव १९५ मोतशिमगंज, इलाहाबाद। श्रीयुत कन्हैयालाल सक्सेना डिपार्टमेंट आफ इंडस्ट्रीज एण्ड लेबर शिमला। श्रीयुत पालीराम शर्मा c/o सीताराम नेवटिया पोस्ट फरेंदा (गोरखपुर)। श्रीयुत स्थाणुदत्त शर्मा गवर्नमेंट हाई स्कूल कैथल (पंजाब)। श्रीयुत गिरीशप्रसाद शिवपुर, बनारस। श्रीयुत वसन्त मेहता ११, एलगिन रोड, प्रयाग। श्रीयुत रामरतनलाल शुक्ल हेडमास्टर हरसूद निमाड़ सी० पी०। श्रीमती दुर्गादेवी तिवारी १५ बड़ी बस्की, दारागंज, प्रयाग। कुमारी गंगारानी १७ ए, हैमिल्टन रोड प्रयाग। श्रीयुत दयालचन्द्र जैन c/o बाबू कैलाशचन्द्र जैन, चाहचन्द प्रयाग। श्रीयुत मोहनलाल गुप्त रामप्रसाद बिलडिंग चेतगंज, बनारस। श्रीयुत भोलानाथ ढप्पा श्री संकटा मंदिर, बनारस। श्रीयुत चन्देश्वरीप्रसादसिंह शिक्षक एस० सी० एस० सेमिनरी, सोनपुर, सारन। श्रीमती तेजकुमारी c/o से० लालचन्द सेठी विनोद मिल्स, उज्जैन।

पञ्चम रियायती पुरस्कार ४८) (चार अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ४८ व्यक्तियों में बाँटा जायगा। प्रत्येक को १) मिलेगा।

श्रीमती सौंदर्य्यलता सांडल, सेवाकुंज, वृन्दावन। श्रीयुत मोतीलाल जैन, ४५ चाहचन्द, इलाहाबाद। श्रीयुत ओंकारनाथ गुप्त, ७३ जानसेनगंज, इलाहाबाद। श्रीमती योगेशनारायण तिवारी, ९५ कीटगंज, इलाहाबाद। श्रीमती प्रमिलादेवी तिवारी, ९५ कीटगंज, इलाहाबाद। श्रीयुत दयानिधान जौहरी c/o आनन्दप्रकाश जौहरी, वकील ज़काती, बरेली। श्रीयुत नारायणदत्त नायक, डी० ए० वी० स्कूल, महोबा, हमीरपुर। श्रीयुत रामप्रकाश पांडे c/o इंडियन प्रेस पोस्ट आफ़िस, इलाहाबाद। श्रीयुत कैलाशचंद्र मिश्र, एम० ए०, असिस्टेंट मास्टर, ए० बंगाली इन्टर कालेज, इलाहाबाद। श्रीयुत श्रीगोपाल मेवालाल c/o इंडियन प्रेस पोस्ट आफ़िस, इलाहाबाद। श्रीयुत रामकृष्ण पाण्डेय c/o बाबू भगवतीचरण वर्मा, १६ पार्क रोड, इलाहाबाद। श्रीयुत रामचरण पाण्डेय, टाम्को सेल्स डिपो, चौक, इलाहाबाद। श्रीमती कुमारी कृष्णा श्रीवास्तव, ३६० शाहगंज, इलाहाबाद। श्रीयुत भगवन्तलाल श्रीवास्तव, फ़तेहपुर बिछुआ, इलाहाबाद। श्रीयुत शिवप्रसाद, ज़ीरो रोड, महाजनी टोला, इलाहाबाद। श्रीमती शीलादेवी ११ एलगिन रोड, इलाहाबाद। श्रीयुत जगदीशनारायण त्रिवेदी c/o पंडित रुद्रप्रसाद त्रिवेदी पोस्टमास्टर, इलाहाबाद। श्रीमती शारदा मेहता ११ एलगिन रोड, इलाहाबाद। श्रीयुत कृष्णदास कपूर अजीतभवन, कानपूर। श्रीयुत मङ्गलानन्दसिंह शि० मि० ई० स्कूल तारर पोस्ट घोघा, ज़िला भागलपुर। श्रीयुत शशि विश्वनाथन कम्पनीबाग़ नवाबगंज, कानपुर। श्रीयुत कैलाशचन्द्र जैन c/o बाबू राजकिशोर जैन बिजनौर यू० पी०। श्रीयुत आदित्यनारायणसिंह शर्मा धौरानी टोला मुकामा। श्रीयुत माहतीराव ओकटे हानीगंज, छिंदवाड़ा सी० पी०। श्रीयुत रामचरण दुबे ९७ इन्माज़ रोड, रंगून बर्मा। श्रीयुत माधवप्रसाद शर्मा खत्रीपाठशाला, प्रयाग। श्रीयुत कृष्णदत्त शर्मा २, घुसड़ी रोड पो० सलकिया हावड़ा। श्रीयुत लक्ष्मीनारायण अग्रवाल ओंकार प्रेस, प्रयाग। मसुरियादीन c/o रामकृष्ण हरिजनआश्रम पो० तेलियरगंज, प्रयाग। श्रीमती सरला देवी गुप्त c/o बी० लाल गुप्त विशारद ब्यावरा (राजगढ़)। श्रीमती रमाजैन डेहरी शूगर मिल। श्रीमती बी० सी० सेठ c/o ट्रेज़री आफ़िसर, आगरा। श्रीयुत कुञ्जविहारीलाल मुख़्तार कटरा, इलाहाबाद। श्रीयुत केशवदेव शास्त्री c/o निहालसिंह शुक्ल गवर्नमेंट हाईस्कूल, मथुरा। श्रीयुत मोहनचन्द्र श्रीभारतेन्दुभवन बनारस सिटी। श्रीयुत कैलाशचन्द्र अग्रवाल जौहरी टोला, इलाहाबाद। श्रीयुत रामकिशोर चौधरी नया कटरा, इलाहाबाद। श्रीयुत विशालनारायण मिश्र बाँस फाटक काशी। श्रीयुत प्रेमचन्द सक्सेना कक्षा १० गवर्नमेंट हाईस्कूल, एटा। श्रीमती सरला अग्रवाल c/o पूरनलाल अग्रवाल कटनी। श्रीयुत काशीप्रसाद अवस्थी, शिक्षक गवर्नमेंट सेंट्रल ट्रेनिङ्ग स्कूल, बाराबङ्की। श्रीमती लक्ष्मी कुशरन ४४४ कटरा, इलाहाबाद। श्रीमती शिवाकिशोर बाई का बाग़, इलाहाबाद। कुमारी विमला उपाध्याय ६० पी० बी० कीटगञ्ज, इलाहाबाद। श्रीयुत अद्भुत तिवारी सी० एस० पी० एस० सेमिनरी सोनपुर सारन। कुमारी सरस्वती गुप्ता रामप्रसाद बिल्डिंग चेतगञ्ज, बनारस। श्रीयुत मुरारीलाल अग्रवाल महावीर शूगरमिल सिसुआ बाज़ार, गोरखपुर। श्रीयुत नित्यानन्द शर्मा जेनरल न्यूज़ एजेंसी, हापुड़।

उपरोक्त सब पुरस्कार २६ आक्टोबर को भेज दिये जायँगे।

नोट—(१) जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

(२) केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियां पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम: —(१) आगे जो वर्ग दिया गया है उसकी सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति होने पर ३००) का पारितोषिक दिया जायगा। वर्ग-पूर्तियाँ एक से अधिक शुद्ध होंगी तो उन पूर्ति करनेवालों में ३००) का पारितोषिक बराबर बराबर बाँट दिया जायगा। इसी प्रकार २००) का पारितोषिक उन पूर्ति करनेवालों में बाँटा जायगा जो न्यूनतम अशुद्धियाँ करेंगे। वर्ग-निर्माता ने वर्ग की शुद्ध-पूर्ति लिखकर एक लिफ़ाफ़े में बन्द कर दी है और उस पर मोहर लगाकर रख दी है। उनकी यह 'शुद्ध-पूर्ति' ही निर्णय का आधार होगी। उत्तर-स्वरूप में जो कोष्ठ-पूर्तियाँ इस शुद्ध-पूर्ति से अक्षरशः मिलती होंगी, वही सम्पूर्णतया शुद्ध मानी जायँगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (■) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए प्रत्येक वर्ग-पूर्ति के लिए ।।) फ़ीस देनी होगी, जो हर हालत में मनीआर्डर से आनी चाहिए। फ़ीस कार्यालय में नक़द भी जमा की जा सकती है। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी सकती हैं। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ३, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर पूर्ति करनेवालों के नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए और उसकी नियत फ़ीस अर्थात् ।।) प्रति वर्गपूर्ति के हिसाब से भेजनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २४ आक्टोबर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २४ ता० को तीन बजे तक और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता को जाँच कर सकें।

(८) ३ नम्बर वर्ग के समस्त शब्द 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' अथवा 'बाल-शब्दसागर' नाम के कोषों में मिल सकते हैं।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—गौरीसुत
३—आर्यों का इतिहास इससे मालूम होता है
६—प्राचीन समय से पालन करना ही इसके जीवन की विशेषता है
७—पृथ्वी पर इसकी अधिकता है
८—प्रजा पर राजा लगाते हैं
११—कार्य करने के अनेक उपाय इसे मालूम रहते हैं
१२—धन्य हैं वे व्यक्ति जिनकी कार्य-शैली......होती है
१४—दुष्ट
१६—भारतवर्ष में इनकी संख्या कम है
१८—शयनागार
२०—कमानेवाला
२३—यह क्रिया शुभ मानी जाती है
२४—कोई कोई इससे दूर भागते हैं
२५—इसमें भाँति भाँति के शब्द सुनाई देते हैं
२६—प्राकृतिक सौंदर्य का आभास.. होने से है
२७—सभ्य मनुष्य अवश्य रखते हैं
२८—कभी-कभी हिन्दुस्तानी फ़िल्म में इसका दृश्य दिखलाई देता है
३०—इस प्रकार का खेल विद्यार्थी पहले ठीक नहीं खेल पाते

ऊपर से नीचे

१—रस्सी से बाँधकर लटकाया जाता है
२—पृथ्वी पर पाया जाता है
३—पृथ्वी
४—चन्द्रमा
५—मनुष्य के अतिरिक्त निर्जीव वस्तुएँ भी इसे रखती हैं
९—मनुष्य यह काम आँख बन्द करके भी करते हैं
१०—स्वाद
१३—इससे कभी-कभी मानसिक पीड़ा भी पहुँचती है
१५—ऐसी चाल सभी पसन्द नहीं करते
१६—इसके सिरे पर धुआँ कम निकलता है
१७—इसको सुनकर व्यवसायी मनुष्य की शान्तिभङ्ग होना सम्भव है
१८—सौ का संग्रह
१९—इसकी कला सीखना कठिन है
२१—रास्ता
२२—इनका अस्तित्व आनन्द का कारण है
२५—शिथिल होने पर टूटने लगता है
२६—इसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता
२९—कोई कोई अबला इसके मारे मर गई है

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

१ ग	जा	२ न	न	■	३	हा	भा	४	५ त
	■		■	६	ही		■	७	
८ रा	९	क	१०	■	■	११ ज		नी	■
■		■	१२ स		१३ ल	■	■	१४	१५ ठ
१६	ना	क्य	■	■		■	१७	■	
	■	■	१८		ना	१९ गा	र	■	क
२० क	२१ मा	२२ सु		■	■	२३	ज	न	■
■	२४		क	■	२५ व		■	■	■
२६	ग	न	■	२७ प		■	२८ च		२९ ला
द	■	■	३० अ	भि	न		■	■	

१ ग	जा	२ न	न	■	३	हा	भा	४	५ त
	■		■	६	ही		■	७	
८ रा	९	क	१०	■	■	११ ज		नी	■
■		■	१२ स		१३ ल	■	■	१४	१५ ठ
१६	ना	क्य	■	■		■	१७	■	
	■	■	१८		ना	१९ गा	र	■	क
२० क	२१ मा	२२ सु		■	■	२३	ज	न	■
■	२४		क	■	२५ व		■	■	■
२६	ग	न	■	२७ प		■	२८ च		२९ ला
द	■	■	३० अ	भि	न		■	■	

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए।
और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े पर मुहर लगाकर रख दी गई थी यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतने वालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

१ ब	२ न	३ मा	ली	■	४ ज	ल	द	■	५ ज
६ च	ल	नी	■	७ ज	ल	न	■	■	य
त	■	■	८ ल	■	च	■	९ उ	१० प	मा
■	■	११ अ	क	ब	र	■	१२ ब	ग	ल
१३ अ	१४ ब	■	डी	■	■	१५ ब	ट	ला	■
१६ मा	न	व	■	१७ आ	ग	म	न	■	१८ क
न	च	■	१९ ज	ह	र	■	■	२० ना	र
■	२१ र	२२ वि	■	त	■	२३ भा	२४ ग	व	त
२५ धा	■	२६ टे	का	■	२७ में	■	ग	■	ब
क	■	प	■	■	म	■	२८ न	य	■

बिन्दीदार लाइन से काटिए

वर्ग नम्बर ३ फ़ीस ।।)

१ ग	जा	२ न	न		३	हा	भा	४	५ त
				६	ही			७	
८ रा	९	क	१०			११ ज		नी	
			१२ स		१३ ल			१४	१५ ठ
१६	ना	क्ष्य					१७		
			१८		ना	१९ गा	र		क
२० क	२१ मा	२२ सु				२३	ज	न	
	२४		क		२५ ब				
२६	ग	न		२७ प			२८ च		२९ ला
द			३० अ	भि	न				

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम..........

पता..........

पूर्ति नं०..........

बिन्दीदार लाइन से काटिए

बिन्दीदार लाइन से काटिए

वर्ग नम्बर ३ फ़ीस ।।)

१ ग	जा	२ न	न		३	हा	भा	४	५ त
				६	ही			७	
८ रा	९	क	१०			११ ज		नी	
			१२ स		१३ ल			१४	१५ ठ
१६	ना	क्ष्य					१७		
			१८		ना	१९ गा	र		क
२० क	२१ मा	२२ सु				२३	ज	न	
	२४		क		२५ ब				
२६	ग	न		२७ प			२८ च		२९ ला
द			३० अ	भि	न				

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम..........

पता..........

पूर्ति नं०..........

बिन्दीदार लाइन से काटिए

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० २ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १५ आक्टोबर तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० २ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०.........में {
- कोई अशुद्धि नहीं है।
- एक अशुद्धि है।
- दो अशुद्धियाँ हैं।
- तीन अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर..........

पता..........

....

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

संकेतों पर ध्यान देने से कोई भी पुरस्कार प्राप्त कर सकता है

वर्ग नं० १ में ३००) का पुरस्कार प्राप्त करनेवाली कुमारी शीलादेवी का पत्र



कुमारी शीलादेवी मेहता

वर्ग नं० १ के पुरस्कार विजेताओं में से कइयों ने हमारे पास धन्यवाद के पत्र भेजे हैं और हमारे इस आयोजन पर हर्ष प्रकट किया है। इनमें कुमारी शीला का पत्र बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण है। इसलिए उसे हम सहर्ष प्रकाशित करते हैं। इससे इन पहेलियों में दिलचस्पी रखनेवालों को यह पता चलेगा कि यह पुरस्कार जीतना कितना आसान है।

११, एलगिन रोड, इलाहाबाद
२५ सितम्बर, १९३६

प्रिय महोदय,

'सरस्वती' ने व्यत्यस्त-रेखा-पहेली-द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषियों के सम्मुख एक नई चीज़ उपस्थित कर दी है। यह पहेली वास्तव में अत्यन्त ज्ञानवर्धक मनोरंजन का साधन है। बहुत-से लोग समझते हैं कि पुरस्कार प्राप्त करना भाग्य पर निर्भर है, लेकिन ३००) का पुरस्कार प्राप्त कर मुझे यह निश्चय होगया कि थोड़े से तर्क, विचार तथा संकेत पर भली भाँति मनन करने से कोई भी पुरस्कार प्राप्त कर सकता है।

वर्ग नं० १ में संकेत दिया गया था 'बहुत पढ़े-लिखे लोग ऐसे **अब** कम होते हैं' इसके उत्तर तीन शब्द होते थे—सबल, सफल, सरल। लेकिन "अब" शब्द पर ध्यान देने से मुझे विश्वास होगया कि ठीक उत्तर 'सबल' है क्योंकि आज-कल के पढ़े-लिखे लोग सफल या सरल तो बहुत होते हैं पर 'सबल' अब कम होते हैं।

दूसरा संकेत था 'अग्नि से बहुधा वस्तुएँ ऐसी हो जाती हैं' इसके दो उत्तर सम्भव थे 'नरम' और 'गरम' लेकिन 'बहुधा' शब्द पर मेरा ध्यान गया — अग्नि से गरम तो वस्तुएँ सदैव हो जाती हैं, किन्तु नरम बहुधा होती हैं। इसी तरह मैंने अन्य संकेतों पर ध्यान दिया।

वास्तव में वर्ग-निर्माता ने बड़ी चतुराई से संकेतों का निर्माण किया है। हिन्दी की अन्य पहेलियाँ इसकी बराबरी कभी नहीं कर सकतीं।

अन्त में मैं 'इंडियन प्रेस' के प्रबन्धक को पुरस्कार देने के लिए धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने मुझे ठीक समय पर यह पुरस्कार भेज दिया।

भवदीया
शीलादेवी

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ २८७ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।

बिन्दीदार लाइन से काटिए

वर्ग नम्बर ३ फ़ीस ।)

१ग	जा	२न	न	■	३	हा	भा	४	५त
	■		■	६	ही		■	७	
८रा	९	क	१०	■	■	११ज		नी	■
■		■	१२स		१३ल	■	■	१४	१५ठ
१६	ना	क्य	■	■		■	१७	■	
	■	■	१८		ना	१९गा	र	■	क
२०क	२१मा	२२मु		■	■	२३	ज	न	■
■	२४		क	■	२५ब		■	■	■
२६	ग	न	■	२७प		■	२८च		२९ला
द	■	■	३०अ	भि	न		■	■	

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लाइन से काटिए

बिन्दीदार लाइन से काटिए

वर्ग नम्बर ३ फ़ीस ।)

१ग	जा	२न	न	■	३	हा	भा	४	५त
	■		■	६	ही		■	७	
८रा	९	क	१०	■	■	११ज		नी	■
■		■	१२स		१३ल	■	■	१४	१५ठ
१६	ना	क्य	■	■		■	१७	■	
	■	■	१८		ना	१९गा	र	■	क
२०क	२१मा	२२मु		■	■	२३	ज	न	■
■	२४		क	■	२५ब		■	■	■
२६	ग	न	■	२७प		■	२८च		२९ला
द	■	■	३०अ	भि	न		■	■	

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

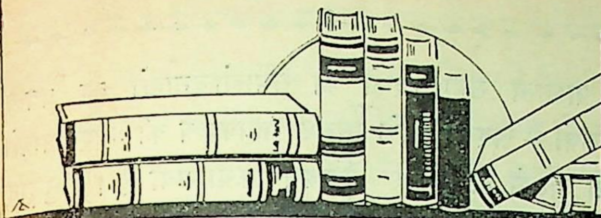
बिन्दीदार लाइन से काटिए

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

१ग	जा	२न	न	■	३	हा	भा	४	५त
	■		■	६	ही		■	७	
८रा	९	क	१०	■	■	११ज		नी	■
■		■	१२स		१३ल	■	■	१४	१५ठ
१६	ना	क्य	■	■		■	१७	■	
	■	■	१८		ना	१९गा	र	■	क
२०क	२१मा	२२मु		■	■	२३	ज	न	■
■	२४		क	■	२५ब		■	■	■
२६	ग	न	■	२७प		■	२८च		२९ला
द	■	■	३०अ	भि	न		■	■	

१ग	जा	२न	न	■	३	हा	भा	४	५त
	■		■	६	ही		■	७	
८रा	९	क	१०	■	■	११ज		नी	■
■		■	१२स		१३ल	■	■	१४	१५ठ
१६	ना	क्य	■	■		■	१७	■	
	■	■	१८		ना	१९गा	र	■	क
२०क	२१मा	२२मु		■	■	२३	ज	न	■
■	२४		क	■	२५ब		■	■	■
२६	ग	न	■	२७प		■	२८च		२९ला
द	■	■	३०अ	भि	न		■	■	

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—**महान् भारत**—लेखक, श्रीयुत रामशङ्कर मिश्र, 'साहित्यरत्न', प्रकाशक, दुर्गादास-प्रेस, चौक पासियाँ, अमृतसर, हैं। मूल्य ३) है।

२—**भारतवर्ष का इतिवृत्त**—प्रकाशक, श्रीभारत-धर्म-महामण्डल, शास्त्र-प्रकाशन-विभाग, जगतगंज, बनारस, हैं। मूल्य २) है।

३—**काव्यकल्पद्रुम (द्वितीय भाग)**—लेखक, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, प्रकाशक, पण्डित जगन्नाथप्रसाद शर्मा, चूड़ीवालों का मकान, मथुरा हैं। मूल्य १॥) है।

४—**हिन्दी-गद्य-गाथा**—लेखक, श्रीयुत सद्गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-पब्लिशिङ्ग-हाउस, प्रयाग हैं। मूल्य १॥) है।

५—**अपराध-चिकित्सा**—लेखक, श्रीयुत भगवानदास केला, प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन हैं। मूल्य १॥) है।

६—**श्री चैतन्यमहाप्रभु (सचित्र) खंड १,२**—अनुवादक, श्री त्रंबकलाल, माणेकलाल शुक्ल, प्रकाशक, सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद हैं। मूल्य २।) है।

७—**तत्त्वार्थ-सूत्र**—समन्वयकर्ता, श्री आत्माराम जी महाराज, प्राप्तिस्थान लाला शादीराम गोकुलचन्द्र जैन जौहरी, चाँदनी चौक, देहली हैं। मूल्य २) है।

८—**हृदयसागर**—लेखक, लाला छैलविहारीलाल बजाज, हाथरस हैं। मूल्य १) है।

९—**मुक्तक (कविता)**—रचयिता, श्रीयुत हरिशरण मिश्र, प्रकाशक, सरस्वती-सदन, जबलपुर हैं। मूल्य ॥।) है।

१०—**ख़ूनी दाग़ (उपन्यास)**—लेखक, श्रीयुत गोपालचन्द्र चक्रवर्ती शास्त्री, प्रकाशक, चाँद-प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद हैं। मूल्य १।) है।

११—**देवकन्या (नाटक)**—लेखक, पंडित श्रीकृष्ण मिश्र, एम० ए०, बी० एल०, प्रकाशक, वाणी-मंदिर, मुंगेर, हैं। मूल्य ॥) है।

१२—**महात्मा बसवेश्वर के बचन**—अनुवादक, श्रीयुत ए० वि० श्रीनिवास मूर्त्ति, श्रीयुत रा० भा० 'विशारद', श्रीयुत एम० सी० शिवानन्द शर्मा व श्रीयुत रा० भा० 'विशारद', प्रकाशक, श्रीयुत एम० एन० शिवप्पा और श्रीयुत एम० एन० नंजप्पा, बंगलोर सिटी हैं। मूल्य ॥।) है।

१३—**जपुजी साहिब**—कर्त्ता, श्री सोढ़ी तेजासिंह जी, प्रकाशक, गुरुवाणी-पुस्तकालय, गुमरी बाज़ार, लाहौर हैं। मूल्य =)॥ है।

१४-१६—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) द्वारा प्रकाशित ३ पुस्तकें—

(१) द्वापर (कविता)—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त और मूल्य १॥) है।

(२) सिद्धराज (कविता)—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त और मूल्य १।) है।

(३) मृन्मयी (कविता)—लेखक, श्रीयुत सियारामशरण गुप्त और मूल्य १।) है।

१७-१८—लीडर-प्रेस, इलाहाबाद-द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) मोतियों के बंदनवार—लेखिकायें, कुमारी शीला और कुमारी लीला मेहता और मूल्य १।) है।

(२) व्रज-रज (कविता)—ले०, श्रीयुत राय कृष्णदास, प्रकाशक, भारतीभण्डार, और मूल्य ॥) है।

१९-२३—प्रतापनारायण चतुर्वेदी लिखित, भारतवासी प्रेस-द्वारा प्रकाशित ५ पुस्तकें—

(१) स्वामी रामतीर्थ—मूल्य =) है।

(२) स्वामी शङ्कराचार्य—मूल्य -)॥ है।

(३) परमहंस श्री रामकृष्ण देव—मूल्य -)॥ है।

(४) स्वामी विवेकानन्द—मूल्य =) है।

(५) गौतम बुद्ध—मूल्य =) है।

२४—महिला-शिष्टाचार—लेखिका, श्री शान्ति-कुमारी अग्रवाल, प्रकाशिका, श्रीमती धर्मिष्ठादेवी माहेश्वरी, c/o श्री लालमणि माहेश्वरी, फ़र्रुख़ाबाद यू० पी० हैं। मूल्य ।।) है।

२५—सुदामा-चरित्र—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत विनायकराव भट्ट, सब पोस्ट-मास्टर, छतरपुर सी० आई० हैं। मूल्य =) है।

२६—श्री रूपकलाजी—लेखक, अखौरी श्री वासुदेवनारायणसिंह, प्रकाशक, सर्चलाइट प्रेस, पटना हैं। मूल्य ।) है।

२७—परिभाषा (कविता)—रचयिता, श्रीयुत रघुवीरशरण जौहरी, प्रकाशक, चतुरबिहारीलाल आनन्दीलाल पुस्तकालय, उज्जैन (मालवा) हैं। मूल्य ।) है।

२८—मकरन्द (कविता)—लेखक, श्रीयुत मधुकुमार, प्रकाशक, श्रीयुत जी० पी० कुलश्रेष्ठ, सोरों, एटा हैं। मूल्य ।=) है।

२९—वाशिष्ठ-गीता—लेखक व प्रकाशक, पंडित अम्बाप्रसाद चौबे, जवाहरगंज, जबलपुर हैं। मूल्य ~) है।

३०—सूबाहिन्द (कविता)—प्रकाशक, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, विश्वविद्यालय, प्रयाग हैं।

३१—चित्रकूट—लेखक, श्रीयुत कुंजलाल 'रत्न', प्रकाशक, आदर्श-ग्रन्थ-प्रकाशक-कार्यालय, पारेश्वर मुहल्ला, झाँसी हैं। मूल्य =) है।

—

१—रघुवंश—अनुवादक, श्रीयुत रामप्रसाद सारस्वत, एम० ए०, एल० टी० हैं। पृष्ठ-संख्या ३८३, मूल्य १।।) है। पता—गणेशाश्रम बुकडिपो, मदियाकटरा, आगरा।

प्रस्तुत पुस्तक महाकवि कालिदास के रघुवंश-काव्य का पद्यबद्ध अनुवाद है। पुस्तक के प्रारम्भ में कालिदास के काल तथा जन्मभूमि के निर्णय करने का प्रयत्न किया गया है। इस विवेचन में महाकवि कालिदास की जन्म-भूमि कश्मीर बताई गई है तथा वे गुप्त-सम्राट चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के समकालीन सिद्ध किये गये हैं। इसके पश्चात् महाकाव्य रघुवंश की आलोचना तथा सर्ग-क्रमानुसार उसकी कथा संक्षेप में दी गई है। स्थान स्थान पर पाश्चात्य समालोचकों की समालोचनाओं का प्रबल युक्तियों से खण्डन करके रघुवंश महाकाव्य की विशेषताओं तथा त्रुटियों का सुन्दर विवेचन किया गया है। अनुवाद की भाषा बोल-चाल की है। तथापि स्थान स्थान पर संस्कृत-पदों का भी यथेष्ट मात्रा में प्रयोग हुआ है। प्रत्येक श्लोक को प्रायः उतने ही शब्दों में हिन्दी-भाषा में रूपान्तरित करने का प्रयत्न किया गया है। इसी कारण अनुवाद में संस्कृत के पदों तथा समासों का आश्रय लेना अनिवार्य-सा हो गया है। सम्पूर्ण महाकाव्य का हिन्दी में ऐसा पद्यरूप में अनुवाद अभी तक उपलब्ध नहीं था। वह कमी इस पुस्तक-द्वारा बहुत कुछ दूर हुई है। अनुवाद में महाकवि कालिदास के भावों की रक्षा का पूरा ध्यान रक्खा गया है और इस कार्य में अनुवादक को काफ़ी सफलता मिली है। पुस्तक के अन्त में कठिन पदों के अर्थ दे दिये गये हैं। पाठकों के विनोदार्थ हम नीचे मूल श्लोक तथा उनके अनुवाद उदाहरण-रूप दे रहे हैं—

क्व सूर्य-प्रभवो वंशः, क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुः दुस्तरं मोहाद्, उडुपेनास्मि सागरम् ॥१॥
कहाँ रवि-कुल! कहाँ मति अति तुच्छ! सिन्धु अपार।
चाहता हूँ मोह-वश, करना उडुप से पार ॥१॥
स्रगियं यदि जीवितापहा, हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेद्, अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया॥
यदि हार प्राणहर है, तो उर-गत न मुझे क्यों हनता।
दैवेच्छा से विष अमृत, अमृत भी विष है बनता॥

हिन्दी-काव्य-रसिकों को इस हिन्दी-रघुवंश का संग्रह करना चाहिए।

२—समालोचना-तत्त्व—लेखक, श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, प्रकाशक, लाला रामनारायणलाल, पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद हैं। मूल्य १।।) है।

इस पुस्तक में समालोचना-तत्त्व, काव्य-रहस्य, कला-तत्त्व और रहस्यवाद-तत्त्व नामक चार विषयों पर लेखक महोदय ने निबन्ध लिखे हैं। इन निबन्धों में पूर्वीय और पश्चिमीय साहित्यज्ञों तथा दार्शनिकों के मतों को उद्धृत करते हुए उन्होंने अपने स्वतन्त्र विचारों को भी स्थान स्थान पर सन्निविष्ट किया है। साहित्यिक विषयों पर लिखे हुए ये सभी निबन्ध उच्च कोटि के हैं और पर्याप्त अध्ययन

तथा चिन्तन के परिणाम हैं। लेखक महोदय ने हिन्दी के कवियों का इनमें यथास्थान उल्लेख किया है तथा उनकी रचनाओं के उदाहरण भी दिये हैं। विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए इन निबन्धों में जानने योग्य प्रचुर सामग्री मिलेगी और आशा है, वे इनका पूर्ण उपयोग करेंगे।

इन निबन्धों की विषय-प्रतिपादन की शैली दार्शनिक है। भाषा कुछ क्लिष्ट है, परन्तु पाश्चात्य मनोविज्ञान के पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी-रूपान्तर तथा विषय को दृष्टि में रखते हुए ऐसा होना अनिवार्य था। कहीं कहीं वाक्यों की रचना में सुधार की आवश्यकता है और छापे की अशुद्धियाँ भी जहाँ-तहाँ हैं।

'छोटी गल्प का स्वरूप' नामक निबन्ध में लेखक महोदय ने लिखा है कि "हिन्दी में छोटी गल्प ? (गल्पें) लिखी जा रही हैं, किन्तु उपर्युक्त कसौटी पर शायद एक आध ही ठहर सकें।" हिन्दी के गल्प-साहित्य की प्रगति से परिचित सहृदय साहित्य-सेवियों को उक्त सम्मति से सहमत होना, हम समझते हैं, कठिन होगा। ऐसी दो-एक त्रुटियों के होते हुए भी ग्रन्थ का महत्त्व कम नहीं होता। पुस्तक में विचार और मनन करने योग्य प्रचुर सामग्री है। आशा है, साहित्यिक निबन्ध-ग्रन्थों में यह पुस्तक उपयुक्त स्थान प्राप्त करेगी।

३—दि स्टोरी ऑफ़ मीराबाई—लेखक, श्रीयुत बाँकेबिहारी बी० एस-सी०, एल-एल० बी० हैं। पृष्ठ-संख्या ९६ है। प्रकाशक—गीता-प्रेस, गोरखपुर। मूल्य ।।) है।

भक्तिमूर्त्ति मीराबाई के दिव्य और निर्मल चरित तथा प्रेम-रस में डूबी हुई उनकी पदावलियों से कौन परिचित नहीं है ? इस पुस्तक में देवी मीरा की पावन कथा फड़कती हुई अँगरेज़ी में लिखी गई है। बीच बीच में मीरा के पद और उनका अँगरेज़ी अनुवाद दे देने से 'प्रेम की दीवानी' मीरा के हृदय के स्पन्दन का, उसकी उन्मादिनी भक्ति का परिचय पाठकों को सहज में हो जाता है। अँगरेज़ी-भाषा के भक्ति-रस के पिपासु पाठकों को इसका संग्रह करना चाहिए। सुन्दर छपाई, अनेक रंगीन चित्र तथा उत्तम काग़ज़ की दृष्टि से दस आने में यह पुस्तक सस्ती है।

४—आभास (काव्य)—लेखक, श्रीयुत बालकृष्ण राव, पृष्ठ-संख्या ३६ और मूल्य ।।) है। प्रकाशक—श्रीयुत कृष्णाराम मेहता, लीडर प्रेस, प्रयाग।

श्रीयुत बालकृष्ण राव ने अल्प-समय में ही हिन्दी-काव्य में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। 'आभास' उनकी २९ कविताओं का संग्रह है। इसकी कविताओं में कवि की प्रतिभा तथा काव्योचित कला के उपादानों पर उनका प्रौढ़ अधिकार सर्वत्र देख पड़ता है। यद्यपि इसकी कुछ कविताओं में भावों की अस्पष्टता है, तो भी इस अस्पष्टता का कारण न कवि की शक्तिहीनता ही है और न उनका प्रतिभा-दारिद्र्य, किन्तु उसका कारण है ऐसे गम्भीर भावों का शब्दों में प्रकट करने की साधना, जो भाषा की सीमा से परे की वस्तु है। विश्व की दृष्टि में जो अवस्था परिपूर्णता तथा सुख की कही जा सकती है उसी एक अव्यक्त वेदना की सुन्दर अभिव्यक्ति कवि ने 'मेरी कविता' में इस प्रकार की है—

"जब सुख के निर्मल नयनों में दुख के आँसू
छा जाते हैं, विमल व्योम में तारागण से,
भव्य भावना-भूमि दिव्य छविमय तब होकर
भर देती है मधुर विकलता सजनि, शान्ति में।

× × ×

तब भाषा में, लय में, छविमय शब्द-जाल में
हो जाती है व्याप्त काव्य की मूक रागिणी।

× × ×

आ न सकी जो सजनि, मधुरिमा के प्रसार में
केवल वह अस्फुट ध्वनि ही है मेरी कविता।"

भाव, भाषा, कल्पना एवं हृदय की सत्य अनुभूतियों का अकृत्रिम चित्र अंकित करने की दृष्टि से इस पुस्तक की कवितायें सुन्दर हैं। हमें विश्वास है, 'आभास' हिन्दी-काव्य-रसिकों में उचित आदर प्राप्त करेगा।

५—नर-भक्षी बकासुर अथवा बालविवाह—मूल-लेखिका, मिस एलीनोर राथबोन, अनुवादक, डाक्टर धनीराम प्रेम हैं, पृष्ठ-संख्या ८७ और मूल्य ।।) है।

पता—रतन पब्लिशिंग हाउस, बम्बई नं० १४।

मिस राथबोन की पुस्तक में बाल-विवाह तथा उन सभी कुप्रथाओं का वर्णन है जिनसे भारतीय नारियाँ पीड़ित हैं। इन कुरीतियों के लिए मूल-लेखिका ने अँगरेज़ी शासकों तथा भारतीय समाज दोनों को ही दोषी

ठहराया है। अनुवादक महोदय ने इस उपयोगी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करके भारतीय सुधारकों तथा भारतीय नारियों के सामने इन कुप्रथाओं के भयंकर परिणामों को रक्खा है। मूल-लेखिका ने इस विषय की संकलित सामग्री का अधिकांश जोशी-कमिटी की रिपोर्ट से लिया है तथा अपने अनुभवों का भी इसमें समावेश किया है। अनुवाद की भाषा सरल तथा सुबोध है। पुस्तक प्रत्येक भारत-हितैषी नर-नारी तथा समाज-सुधारक को पढ़नी चाहिए।

६—संघ-व्यायाम और बोधक पत्र—लेखक, राजरत्न प्रोफ़ेसर माणिकराव हैं। पता—विट्ठल क्रीडा-भवन, बड़ौदा। मूल्य ।) है।

बड़ौदा की 'श्री जुम्मादादा की व्यायामशाला' देश की एक ऐसी प्रसिद्ध संस्था है जिसके कितने ही विद्यार्थी आज विभिन्न संस्थाओं में व्यायाम के शिक्षक के रूप में कार्य कर रहे हैं। इस छोटी-सी पुस्तक में 'संघ-व्यायाम' के प्रचार के लिए लेखक महोदय ने क़वायद के अँगरेज़ी शब्दों का राष्ट्र-भाषा हिन्दी के शब्दों में रूपान्तर दिया है। इन हिन्दी शब्दों में उन्होंने सभी स्थानों पर आज्ञोपयोगी ओज और कड़क लाने का समुचित ध्यान रक्खा है और उन्हें इसमें काफ़ी सफलता भी मिली है। राष्ट्र की सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी सभी संस्थाओं में इस संघ-व्यायाम की प्रणाली का प्रचार होना चाहिए। राष्ट्रीय सभा के स्वयं-सेवक-दल तथा अन्य सामूहिक रूप में ड्रिल तथा व्यायाम करनेवाली संस्थायें इस पुस्तक से लाभ उठा सकती हैं। पुस्तक में व्यायाम करने तथा जुम्मादादा की व्यायाम-शाला में प्रविष्ट होने के नियम भी दिये गये हैं।

७—देवी जी का वरदान—लेखक, श्रीयुत शक्तीश हैं। पता—ज्ञान-धर्म-प्रचार-ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग है। इसका मूल्य ―) है।

लेखक ने इस पुस्तक में दुर्गा-सप्तशती की कथा का सरल और सुबोध हिन्दी में वर्णन किया है। प्रत्येक अध्याय के शीर्षक के नीचे संक्षिप्त रूप में उसकी कथा के दे देने से साधारण लोग भी 'दुर्गा-सप्तशती' के विषय तथा कथानक का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। धर्मार्थ बाँटने के लिए भी इस छोटी-सी पुस्तक का अच्छा उपयोग हो सकता है।

—कैलासचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

८—कृष्णाकुमारी—लेखक, श्री अम्बिकादत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, साहित्यसागर-कार्यालय, सुइथाकलाँ, जौनपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ४५ और मूल्य ।॥) है।

यह कविता-पुस्तक है। इस पुस्तक में उदयपुर की इतिहास-प्रसिद्ध कृष्णाकुमारी की कथा का वर्णन किया गया है। इससे भारत के तत्कालीन पारस्परिक झगड़ों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है, जिनके कारण राजपूतों को अपनी लड़कियों के वध जैसे दुष्कर्म भी करने के लिए विवश होना पड़ता था। कृष्णाकुमारी जैसी सुशील, माता-पिता की आज्ञा की अनुगामिनी बालिका का चरित हमारे देश की लड़कियों के लिए आदर्श है। इसकी कवितायें रोचक और उत्साह-वर्धक हैं। सरल और सुबोध भी हैं।

९—स्त्री-शिष्टाचार—लेखिका, श्रीमती विशनदेवी, 'नन्दरानी' हैं। पृष्ठ-संख्या ८३ और मूल्य ॥) है। पता—श्री भगवानदास वर्म्मा, सिंह-भवन, ११० सिंहगली, मोहल्ला क़ानूनगोयान, भूड़, बरेली (यू० पी०)।

यह पुस्तक ५ अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में हिन्दू-समाज की दशा और दूसरे में भारत के क्षत्रिय-वंश पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे में स्त्रियों के कर्त्तव्यों का विवेचन किया गया है। चौथे में भारत की उन्नति के उपाय बतलाये गये हैं। पाँचवें में कुछ भारतीय वीर महिलाओं के चरितों का वर्णन किया गया है। पुस्तक की भाषा शुद्ध तथा पढ़ने में रोचक है। छपाई आदि भी अच्छी है। स्त्रियों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।

—गंगासिंह

१०-१७—हिन्दी की कुछ नई पत्र-पत्रिकायें—

(१) गीता-धर्म—यह अध्यात्म-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र है। 'कल्याण' के ढंग पर इसका प्रकाशन होता है। पर इसमें एक यह विशेषता है कि इसके संस्थापक स्वामी विद्यानन्द गीता-धर्म के मार्मिक ज्ञाता हैं और उनके अध्यात्म-सम्बन्धी अनुभवों का इसमें काफ़ी समावेश रहता है। इसके आठ अंक निकल चुके हैं और सभी 'विशेषांक' ही निकले हैं, जिनमें व्यासांक को हमने पढ़ा है, जो वास्तव में एक उपयोगी अंक निकला है। इसमें सनातन-धर्म-सम्बन्धी अनेक विषयों के लेख प्रकाशित होते हैं। धर्म-प्रेमियों को इस पत्र का संग्रह करना चाहिए। इसके सम्पादक पंडित पद्मनारायण आचार्य एम० ए०

हैं। पृष्ठ-संख्या १०० और वार्षिक मूल्य ४) है। पता—मैनेजर, गीता-धर्म कार्यालय, साक्षीविनायक, काशी।

(२) **कला**—यह अपने नाम के अनुसार एक कला-पूर्ण स्त्रियोपयोगी पत्रिका है। सचित्र और विविध विषय-विभूषित एक उच्च कोटि की पत्रिका है। गृह-विज्ञान, हस्तकौशल, सौन्दर्य, विज्ञान, संगीत जैसे स्त्रियोपयोगी विषयों की इसमें प्रामाणिक चर्चा की जाती है। साहित्य की तो विशेषता है ही। इसका सम्पादन श्रीमती धनराजपती बख़्शी करती हैं। वार्षिक मूल्य ६) है। पता—मैनेजर 'कला', लालबाग़, लखनऊ।

(३) **बिजली**—यह एक साप्ताहिक पत्रिका है। इसका सम्पादन श्रीयुत प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' करते हैं। मुक्त जी सुकवि और सुलेखक हैं। यह बात उनकी 'बिजली' से भी झलकती है। इसमें कहानियों की अधिकता रहती है। मनोरञ्जन की सामग्री के साथ साथ इसमें देश-विदेश की यत्किंचित् चर्चा भी रहती है। अपने ढंग की यह एक नई साप्ताहिक पत्रिका है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। पता—मैनेजर, 'बिजली', बाँकीपुर (पटना)।

(४) **स्वास्थ्य**—यह स्वास्थ्य-सम्बन्धी एक नया मासिक पत्र है। इसमें गवेषणा-पूर्ण शास्त्रीय लेख तो रहते ही हैं, उनके सिवा रोगों के चिकित्सा-सम्बन्धी उपयोगी लेख भी रहते हैं। वैद्यों के लिए यह पत्र बड़े काम का है। दूसरे लोग भी इससे लाभ उठा सकते हैं। इसका वार्षिक मूल्य २) है। सम्पादक श्री भो० गो० कौशिक वैद्य और प्रकाशक बा० सूरजभानु गुप्त, इलेक्ट्रिक प्रेस, मथुरा हैं।

(५) **दीपक**—यह ग्रामोपयोगी पत्र है और वास्तव में एक ग्रामोपयोगी पत्र है। इसका प्रकाशन अबोहर के स्वामी केशवानन्द करते हैं। स्वामी जी ने अबोहर में 'साहित्य-सदन' नाम की संस्था खोलकर अबोहर तथा उसके आस-पास की देहात में पठन-पाठन की ख़ासी प्रवृत्ति लोगों में पैदा की है। अब इस पत्र-द्वारा वे ग्रामों में वास्तविक शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं। इसमें ग्रामों के सम्बन्ध के अनेक तरह के उपयोगी लेख प्रकाशित होते हैं। इसके सम्पादक श्रीयुत तेगराम विशारद हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या ४५ और वार्षिक मूल्य २) है। पता—प्रबन्धक, साहित्य-सदन, अबोहर (पंजाब)।

(६) **जीवन-सखा**—यह एक नये ढंग का मासिक पत्र है। इसमें भोजन-नियम, व्यायाम, बच्चों का पालन-पोषण, रोगों की सरल प्राकृतिक चिकित्सा इत्यादि स्वास्थ्य-सम्बन्धी और मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाले लेख प्रकाशित होते हैं। भाषा सरल है, जिससे साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी इसके लेखों को पढ़कर लाभ उठा सकती हैं। संपादक श्रीयुत जानकीशरण वर्मा और श्रीकृष्णनन्दनप्रसाद हैं। वार्षिक मूल्य ३) है। पता—श्रीयुत बालेश्वरप्रसादसिंह, नं० ३०, बाई का बाग़, इलाहाबाद।

(७) **दैनिक तज (उर्दू) का कृष्णाङ्क**—खेद है कि दैनिक तेज (उर्दू) के कृष्णाङ्क का ज़िक्र हम इससे पहले नहीं कर सके। इसमें प्रसिद्ध लेखकों के गद्यपद्यमय लगभग १४० लेख संगृहीत हैं। लिखनेवालों में एशिया, योरप और अमरीका के कतिपय विद्वान् और प्रमुख व्यक्ति भी हैं। तिरङ्गे आवरण के अतिरिक्त इसमें तीन तिरङ्गे और एक सादा चित्र आर्ट पेपर पर है। कृष्ण और सुदामा के मिलन का चित्र बहुत ही भावपूर्ण है। लेखों का विषय बहुत व्यापक है। वे वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक के हमारे राष्ट्रीय जीवन के विविध स्वरूपों पर प्रकाश डालते हैं। इन सब विशेषताओं के होते हुए भी इस २०० पृष्ठ के सर्वाङ्ग-सुन्दर अङ्क का मूल्य केवल ।=) है। आशा है, उर्दू-प्रेमी इससे अवश्य लाभ उठायेंगे। पता—मैनेजर, तेज, श्रद्धानन्द बाज़ार, दिल्ली।

(८) **दूध-बताशा**—यह बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र है। अच्छा पत्र निकला है। सम्पादक श्रीयुत कुमार हैं। वार्षिक मूल्य २॥) है। पता—मैनेजर दूध-बताशा, १६१।१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

जाग्रत नारियाँ



यदि स्त्रियों का राज्य होता

पेरिस में होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय महिला-कांग्रेस में लगभग २० देशों की स्त्रियों ने एक सप्ताह तक इस विषय पर वाद-विवाद किया कि यदि स्त्रियों का राज्य होता तो क्या होता।

इस कांग्रेस में इँग्लैंड का प्रतिनिधित्व श्रीमती मेवोन्डी मिडिल्टन ने किया था तथा संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका का प्रतिनिधित्व मज़दूर-विभाग की मंत्री कुमारी फ्रांसेज़ पर्किन्स और व्यवसायी महिलाओं के अन्तर्राष्ट्रीय संघ की अध्यक्षा कुमारी लीना मेडीसन फ़िलिप्स ने किया था।

श्रीमती मिडिल्टन ने कहा कि यदि मैं अपने देश की डिक्टेटर होती तो इँग्लैंड के पेड़ों और ग्रामों पर विशेष ध्यान देती। आपने कहा कि मैं बेकारी दूर करने का भी प्रयत्न करती, परन्तु यह नहीं बतला सकती कि मेरी योजना का रूप किस तरह का होता।

आपने आगे कहा—यदि मैं योरप की डिक्टेटर बना दी जाती तो स्त्री की हैसियत से सबसे पहले मैं स्थायी शान्ति की स्थापना करने का प्रयत्न करती और इसके लिए मैं निम्न नियम बनाती—

(१) आपस की ग़लतफ़हमी हटाने के लिए मैं यह अनिवार्य्य कर देती कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष सभी देशों का भ्रमण करके वहाँ के लोगों से मिले।

(२) भूतकाल के डिक्टेटरों के पदचिह्नों पर चलकर (क्योंकि वे अपनी सन्तान का विवाह-सम्बन्ध अन्य डिक्टेटरों की सन्तान से कर दिया करते थे) मैं प्रत्येक योरपीय राष्ट्र के युवक-युवतियों में से ३ प्रतिशत का सम्बन्ध दूसरे योरपीय राष्ट्र के ३ प्रतिशत युवक-युवतियों से करा देती।



[कुमारी पेरिन जमशेद जी मिस्त्री (बम्बई)। ये प्रथम भारतीय महिला हैं, जिन्होंने गृह-निर्माण-कला में विशेष योग्यता प्राप्त की है और जी० डी० आर्क० की डिग्री प्राप्त की है।]

श्रीमती मिडिल्टन ने आगे कहा कि यदि हम लोगों



[प्रयाग की श्रीमती रामदुलारी जिन्होंने चालीस हज़ार रुपयें व्यय करके शहर के बीच में एक अप-टु-डेट धर्मशाला बनवाई है। उसका उद्घाटन हाल में ही लीडर-सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि ने किया है।]

का आपस में सम्बन्ध स्थापित हो जाय तो इस समस्या का हल एकबारगी ही हो जाय। यद्यपि हम अपने मामा-मामियों से घृणा तो कर सकते हैं, किन्तु उन्हें गोली नहीं मार देते।

कुमारी पर्किन्स ने कहा कि हमें अपनी सफलताओं का महत्त्व उचित से अधिक लगाकर न देखना चाहिए। यदि स्त्रियों को शासनाधिकार मिला तो उनका पहला कार्य पुरुषों को उसमें हाथ बँटाने के लिए निमंत्रण देना होगा। आपने आगे कहा कि स्त्रियाँ तो जीवन की संस्कृति और कला से सम्बन्ध रखनेवाले भाग की ही तरफ़ अधिक झुकेंगी। शिशुओं की रक्षा इत्यादि कार्यों पर वे विशेष ध्यान देंगी। परन्तु मानव-जाति के दूसरे भाग के सहयोग के बिना हम अकेली ही शासन करना नहीं चाहतीं, क्योंकि मानव-समाज का हित पुरुष भी चाहते हैं। ('भारत' से)

लड़कियों को गांधी जी की सलाह

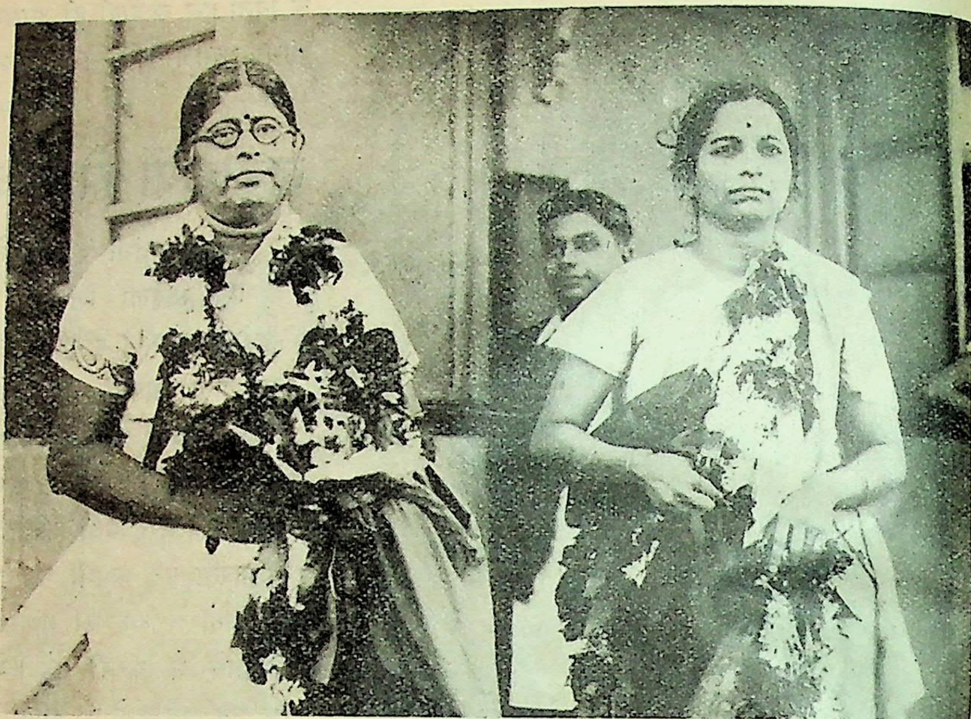
महात्मा गांधी 'हरिजन-सेवक' में लिखते हैं —

एक महिला लिखती है—आपका "ऐसी मुसीबत जिससे बच सकते हैं" शीर्षक मुझे अधूरा-सा लगता है। माता-पिता अपनी लड़कियों की शादी करने का क्यों आग्रह रखते हैं और फिर उसके लिए ऐसी अकथनीय मुसीबतें क्यों उठाते हैं? अगर वे अपनी लड़कियों को भी लड़कों की तरह ऐसी शिक्षा देने लग जायँ जिससे कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी आजीविका भी कमाने लगें तो उन्हें लड़कियों के लिए वर तलाश करने में इतना कष्ट और चिन्तायें न करनी पड़ें। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब लड़कियों को अपनी मानसिक उन्नति करने का अवकाश मिल जाता है और वे इज़्ज़त के साथ अपना भरण-पोषण करने लायक़ हो जाती हैं तब अगर वे शादी करना चाहती हैं तो उन्हें अपने लायक़ वर तलाशने में कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। मेरे कहने का कोई यह अर्थ न लगाये कि लड़कियों को आज-कल की तथोक्त उच्च शिक्षा देने की मैं सिफ़ारिश कर रही हूँ। मैं जानती हूँ कि वह तो हज़ारों लड़कियों के लिए अप्राप्य ही है। मेरा



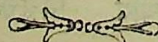
[कानपुर की श्रीमती अग्नेस शा जिन्हें संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने मिलों और कारख़ानों की आनरेरी इन्स्पेक्ट्रेस नियुक्त किया है।]

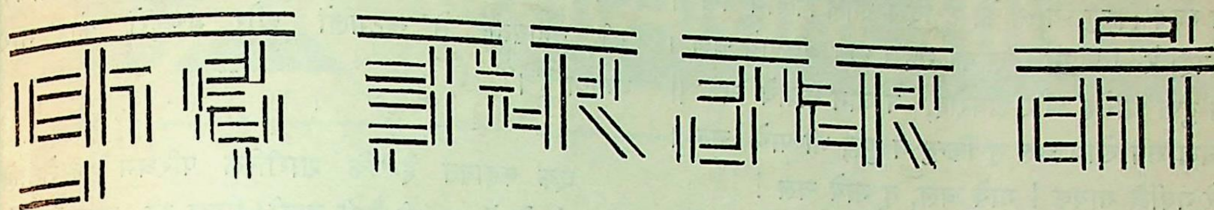
तो मतलब यह है कि लड़कियों को उपयोगी ज्ञान के साथ-साथ किसी ऐसे धन्धे की शिक्षा भी दी जाय जिससे उन्हें यह पूरा विश्वास हो जाय कि वे अपने माता-पिता या पति की निरी आश्रिता बनकर नहीं रहेंगी, बल्कि अगर मौक़ा आया तो संसार में अपने पैरों पर खड़ी रह सकती हैं। हाँ मैं तो ऐसी भी कुछ लड़कियां को जानती हूँ जो पति-द्वारा छोड़ दिये जाने पर आज फिर अपने पतियों के साथ सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं, क्योंकि परित्यक्ता की दशा में उन्हें सद्भाव से स्वाश्रयी बनने तथा अन्य उपयोगी शिक्षा पाने का अवसर मिल गया था। विवाह-योग्य कन्याओं के माता-पिताओं की कठिनाइयों का विचार करते समय, आप सवाल के इस पहलू पर भी ज़ोर दें तो बड़ा अच्छा हो।"



[डाक्टर कुमारी काशीबाई नौरंग और डाक्टर कुमारी सुलोचना श्रीखण्डे (लेडी हार्डिंग कालेज दिल्ली) चिकित्सा-पद्धति में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हाल में विलायत गई हैं।]

पत्र-भेजनेवाली महिला ने जो भाव प्रकट किये हैं उनका मैं हृदय से समर्थन करता हूँ। मुझे तो एक ऐसे पिता के मामले पर विचार करना था जिसने अपने आप को बड़ी मुसीबत में डाल लिया था—इसलिए नहीं कि उनकी लड़की अयोग्य थी, बल्कि इसलिए कि वे और शायद उनकी लड़की भी वर का चुनाव अपनी जाति के छोटे-से दायरे में ही करना चाहते थे। इस मामले में तो लड़की का सुयोग्य होना ही एक विघ्न साबित हो रहा था। अगर लड़की निरक्षर होती तो हर किसी युवक के अनुकूल अपने को बना लेती। पर चूँकि ख़ुद सुशिक्षिता थी, इसलिए सम्भवतः उसके लिए उतने ही सुयोग्य वर की भी ज़रूरत थी। समाज में दुर्भाग्यवश किसी लड़की की शादी करने के लिए क़ीमत के बतौर रुपये माँगना नीचता और निश्चित रूप से बुराई नहीं मानते। कालेज की अँगरेज़ी शिक्षा को ख़ामख़ा इतना अधिक कृत्रिम महत्त्व प्रदान कर दिया गया है। उसमें तो न जाने कितने पाप छिपे रहते हैं। जिन वर्गों के युवकों में लड़कियों से शादी करने के प्रस्ताव मंज़ूर करने पर क़ीमतें माँगी जाती हैं, बड़ा अच्छा होता अगर उसमें सुयोग्यता की परिभाषा बनाने में कुछ अधिक अक़्ल से काम लिया जाता। ऐसा होता तो लड़कियों के लिए वर ढूँढ़ने की चिन्ता अगर पूरी तरह न भी दूर होती तो कम-से-कम काफ़ी घट जाती। इसलिए पाठकों से मैं सिफ़ारिश करूँगा कि वे इन पत्र-प्रेषक महिला के विचारों पर ज़रूर ग़ौर करें। पर साथ ही, जात-पाँत की इन महान् हानिकारक बाड़ों को भी तोड़ने की उन्हें मैं ज़ोरों से सलाह दूँगा। ये बाड़ें तोड़ने पर चुनाव के लिए एक विशाल क्षेत्र खुल जायगा और यह पैसे ठहराने की बुराई बहुत हद तक अपने-आप कम हो जायगी।





कुछ लोग ऐसे हैं जो दूसरों को शिष्ट भाषा का प्रयोग करने की बराबर सलाह देते रहते हैं। पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ऐसे लोगों में अग्रगण्य हैं। नीचे हम इनकी शिष्टशब्दावली का एक नमूना उद्धृत करते हैं।

त्रिपाठी जी के 'रामचरितमानस' की आलोचना लिखते हुए वाजपेयी जी 'विशाल भारत' में लिखते हैं—

"रामायण पढ़ने और सन्दिग्ध तथा वादग्रस्त स्थानों के अर्थ देखने को जब नौबत आई तब ऐसा मालूम हुआ कि उन्होंने (त्रिपाठी जी ने) गुड़ दिखाकर ईंट मार दी अथवा ठग दूकानदार की तरह बढ़िया नमूना दिखाकर घटिया माल दे दिया।"

इस आलोचना का जो उत्तर त्रिपाठी जी ने 'भारत' में छपवाया है उसमें वे लिखते हैं—

"वाजपेयी जी एक चतुर कतरनपंथी संपादक रह चुके हैं। वे किस बिरते पर मुझे अनधिकारी कहते हैं। न तो वे तुलसीदास के प्राइवेट सेक्रेटरी थे, न तुलसीदास की आत्मा ही उनके अन्दर से बोल रही है। अटकलपच्चू बातें वे 'विशाल भारत' के किन मूर्ख पाठकों के लिए लिख रहे हैं।"

शिष्टता के इन दोनों प्रचारकों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है!

× × × ×

हिन्दी-कविता में आज-कल करुणरागिनी ख़ूब छिड़ी हुई है। विश्वभारती के एक प्रोफ़ेसर ने हिसाब लगाकर देखा है कि ऐसी कविताओं की संख्या ६५ प्रतिशत है। पर कतिपय विद्वानों का कहना है कि यह ९५ प्रतिशत तक हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि देश की वर्तमान स्थिति में कवियों का यह निराशापूर्ण करुणगान सर्वथा स्वाभाविक है। तथापि अधिक लोग इस प्रकार की कविता के विरुद्ध हैं और वे कवियों से ऐसी कविताओं की माँग कर रहे हैं जिनमें निराश रुदन नहीं, देश को ऊँचे उठानेवाले आशापूर्ण भाव हों। ऐसे लोग इन रुदनपंथी कवियों को बड़ी हीन दृष्टि से देखते हैं।

× × × ×

यह प्रसन्नता की बात है कि इन कवियों की सहायता के लिए कानपुर के प्रसिद्ध आशावादी राष्ट्रीय गायक श्री सनेही जी मैदान में आ डटे हैं। अपने इन समकालीन मित्रों को ललकारते हुए सनेही जी ने 'वर्तमान' में एक कविता छपाई है, जिसका तात्पर्य यह है कि वीरो यावज्जीवन रोते रहो और किसी की क़तई परवा न करो। सनेही जी की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ऐ रोनेवाले! रोये जा, तू रोये जा, तू रोये जा॥
जब दुनिया तुझ पर हँसती हो, फबती पर फबती कसती हो,
इतनी तो तुझमें मस्ती हो, तू अपनी नाव डुबोये जा।
ऐ रोनेवाले! रोये जा, तू रोये जा, तू रोये जा॥१॥
जब वीर समर में लड़ते हों, जीने के लाले पड़ते हों,
दुश्मन के पैर उखड़ते हों, रँडरोने में दिन खोये जा।
ऐ रोनेवाले! रोये जा, तू रोये जा, तू रोये जा॥२॥

× × × ×

सनेही जी के उत्तर में श्री अबोध जी 'वर्तमान' में लिखते हैं—

किया अगर परिचय है तो अब अपने साथ लगाये चल।
सो न जाय चिर प्यासी पीड़ा करके कृपा जगाये चल॥
बार-बार पीछे मुड़ मुड़ कर देख न ये गीली आँखें।
ओ मेरे गर्वीले गायक! गाये चल तू गाये चल॥
है तेरा आदेश कि निज पग, पग के साथ मिलाये चल।
भूत भगाकर वर्तमान से हृदय-सरोज खिलाये चल॥
मधु-ऋतु के बढ़ते दिवसों में बन जा अधिक उदारमना।

पी मत स्वयं किन्तु प्यासों को तू दिल खोल पिलाये चल ॥
दिखा नहीं रे ! अपने दिल का गहरा घाव छिपाये चल ।
हैं सुख-दुख आरोह और अवरोह, न जान खपाये चल ॥
खोये चल सब खोये चल तू किन्तु न कुछ भी पाये चल ।
ओ मेरे गर्वीले गायक ! गाये चल, तू गाये चल !

पर नक्कारख़ाने में इस तूती की आवाज़ को कौन सुनेगा।

× × × ×

'वर्तमान' में एक इंट्रेंसपास महोदय ने विज्ञापन छपवाया है कि उ काम चाहिए। ट्यूशन या स्कूल अध्यापकी मिले तो वे उसे अधिक पसन्द करेंगे। अपनी विशेषताओं का ज़िक्र करते हुए उन्होंने तैरना, घुड़सवारी, मोटरसाइकिल और हाकी, फ़ुटबाल इत्यादि के ज्ञान रखने का ख़ास तौर से ज़िक्र किया है। उन्होंने यह नहीं सोचा कि इन ख़ूबियों का ज़िक्र सुनते ही जो लोग उन्हें अपने लड़कों को पढ़ाने के लिए रखनेवाले होंगे वे भी भड़क जायँगे, क्योंकि इन चीज़ों में तो उनके लड़के स्वयं ही दक्ष होंगे। यदि विज्ञापक महोदय अपनी मनहूसियत, एक जगह पर घंटों बैठे रहने की आदत इत्यादि का ज़िक्र करते तो शायद अधिक कामयाब होते।

× × × ×

बहुत-से विज्ञापनदाता पाठकों की यह आदत समझ गये हैं कि वे विज्ञापन नहीं पढ़ते, इसलिए उन्हें वे इस तरह छपवाते हैं कि विज्ञापन कदापि न पढ़नेवाले लोग भी कभी कभी धोखा खा जाते हैं और उन्हें पढ़ ही लेते हैं। उदाहरण के लिए अभी हाल में 'स्टेट्समैन' में एक छोटा-सा विज्ञापन छपा था। उसकी पहली लाइन इस प्रकार थी—"प्यारे ईथल ! अब तुम घर लौट आओ।" इसे पढ़कर हमने अनुमान लगाया कि ईथल नाम का कोई व्यक्ति घर से कहीं भाग गया है और उसके दुःखी सम्बन्धी उसे वापस बुला रहे हैं। परन्तु हमारा भ्रम दूर हो गया जब हमने आगे पढ़ा—"हमने ... ..(एक दवा का नाम) की सहायता से खटमलों और मच्छरों को मार भगाया है।"

× × × ×

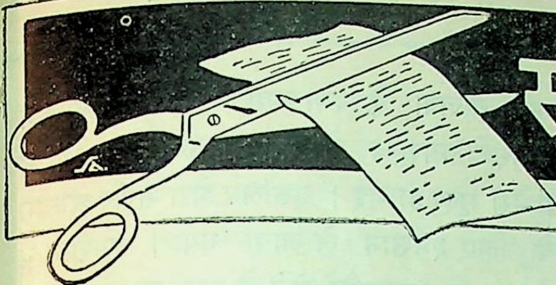
एक कहावत है कि शारीरिक परिश्रम करनेवाले मिट्टी के ढेलों पर भी जैसी गाढ़ी निद्रा का आनन्द लेते हैं, वैसी निद्रा सम्पन्न व्यक्तियों को लाख यत्न करने पर भी नसीब नहीं होती। कलकत्ते के प्रसिद्ध सेठ श्री रामजीदास बाजोरिया जी इस कहावत के एक उदाहरण हैं। आपको बहुत दिनों से उन्निद्र-रोग है और नींद लाने के सारे उपाय विफल गये हैं। आपने घोषणा की थी कि जो व्यक्ति आपको निद्रा ला देगा उसे आप २० हज़ार रुपया इनाम देंगे। इस घोषणा को पढ़कर विलायत से एक विशेषज्ञ डाक्टर आपका इलाज करने आ रहे हैं। ऐसी घटनायें हमें यह संकेत करती हैं कि वास्तविक सुख और आनन्द के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी शारीरिक स्वास्थ्य की।

× × × ×

सीलोन के निगम्बो नामक स्थान में एक लड़की को ३ व्यक्तियों ने उसके घरवालों की प्रेरणा से कोड़े मार-मार कर स्वर्गलोक पहुँचा दिया। लड़की का दिमाग़ कुछ ख़राब हो गया था, पर घरवालों ने समझा कि उसे भूत लगा है। ये तीनों व्यक्ति चिकित्सक थे। ये चिकित्सक अब पकड़े गये हैं और उन पर हत्या करने का बाक़ायदा मुक़दमा चलाया गया है। परीक्षा करने के बाद डाक्टर ने लड़की के शरीर पर कोड़ों की मार के १९२ दाग़ मालूम किये हैं। इस प्रकार के अन्धविश्वास हमारे देश में भी प्रचलित हैं और रोगियों को ऐसे चिकित्सकों से कष्ट भोगना पड़ता है। क्या अच्छा हो कि लोकोपयोगी क़ानून बनवानेवाले लोग इधर भी ध्यान दें और ऐसे नीम हकीमों से जनता की रक्षा करें।

× × × ×





सामयिक साहित्य

महात्मा गांधी की विचार-धारा

'हरिजन-सेवक' में श्रीयुत महादेव देसाई 'साप्ताहिक पत्र' शीर्षक से प्रतिसप्ताह एक सुन्दर लेख लिखते हैं और उसमें महात्मा गांधी के समय समय पर प्रकट किये गये विचारों का सङ्कलन करते हैं। हाल में प्रकाशित एक ऐसे ही पत्र का एक सुन्दर अंश यहाँ हम उद्धृत करते हैं—

उस दिन एक पंडित जी सेगाँव पहुँचे। गांधी जी से उनका परिचय कराते समय कहा गया कि इन्होंने शास्त्रों का अच्छा अभ्यास किया है और गीता पर ये क्रम-बद्ध प्रवचन करते हैं। गांधी जी ने उनसे पूछा कि क्या गीता में अस्पृश्यता के पक्ष में कोई प्रमाण मिलता है। पंडित जी के कथनानुसार ऐसा मालूम हुआ कि यह तो अस्पृश्य की परिभाषा पर निर्भर करता है। उन्होंने कहा—"अस्पृश्य तो वह है, जो बुरी-बुरी बातें सोचता है, गंदे या कटु-शब्द मुँह से निकालता है और कुकर्मों में प्रवृत्त रहता है, अर्थात् मन, वचन और कर्म से जो पाप-रत है। गीता के अनुसार अस्पृश्य ऐसा ही व्यक्ति कहा जायगा।"

"पर इस दृष्टि से विचार किया जाय तो हममें से हर एक अस्पृश्य है। ऐसा यहाँ कौन है जो पाप-रहित हो? मैं ज़रा पूछ तो लूँ। क्यों तुकड़े महाराज, आप पाप-रहित हैं?"

"नहीं, किसी प्रकार नहीं।"

"तब ख़ाँ साहब, कहिए, आप क्या कहते हैं।" ख़ाँ साहब अब्दुल गफ़्फ़ारख़ाँ आज-कल सेगाँव-आश्रम में ही रहते हैं।

"मैं भी यही कहूँगा। बे-गुनाह होने का दावा कौन कर सकता है?" उन्होंने कहा।

"तब इसका मतलब हुआ कि हम सभी अस्पृश्य हैं। कुछ भी हो, अच्छा तो यही है कि हम अपने को दूसरों से कम पवित्र समझें, क्योंकि जितना हमें अपने बारे में पता है उतना दूसरों के बारे में नहीं, और दूसरों के दोष निकालनेवाले हम होते कौन हैं?" गांधी जी ने कहा।

"इसी से तो भक्त सूरदास अपना अन्तर्निरीक्षण करते हुए गा रहे हैं, 'मोसम कौन कुटिल खल कामी'।"

"किन्तु तब क्या इन त्रिविध पापों से शुद्ध होने के लिए शास्त्रों की सहायता आवश्यक नहीं है?" पंडित जी ने कहा।

"हाँ, है।" गांधी जी ने कहा, "पर मैं ऐसे किसी शास्त्र को प्रामाण्य नहीं मानता जो अस्पृश्यता का समर्थन करता हो, अर्थात् मनुष्यों के विशेष वर्गों को 'जन्मना' अस्पृश्य मानता हो। ऐसा शास्त्र भला हमें पापों से उबारेगा? अरे, वह तो हमें पाप-पंक में उलटा और डुबायेगा।"

× × × ×

एक दूसरा साधु, जो हरिजनों का नेता है, एक दिन एक विचित्र-सी पहेली लेकर पहुँचा। कूट प्रश्न उसका यह था—"ईश्वर को जब हम जानते ही नहीं तब फिर उसकी सेवा हम कैसे कर सकते हैं?"

"ईश्वर को हम भले ही न जानें, पर उसकी रची हुई सृष्टि को तो हम जानते हैं।" गांधी जी ने कहा—"और सृष्टि की सेवा उस सिरजनहार की ही सेवा है।"

"पर सिरजनहार की समस्त सृष्टि की हम किस प्रकार सेवा कर सकते हैं?"

"हम केवल परमात्मा की सृष्टि के उस भाग की सेवा कर सकते हैं जो हमारे सबसे अधिक नज़दीक हो और जिसके विषय में हमें अधिक-से-अधिक ज्ञान हो। आरम्भ हम इसका अपने सबसे नज़दीकी पड़ोसी से कर सकते हैं। हमारा आँगन साफ़ है, बस इतने से ही हमें सन्तोष नहीं मान लेना चाहिए। हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारे पड़ोसी का आँगन भी साफ़ है न। हम अपने कुटुम्ब की सेवा करें, पर कुटुम्ब के स्वार्थ की ख़ातिर गाँव को क़ुर्बान न कर दें। गाँव की इज़्ज़त-आबरू बनाये रखने में

ही हमारी मान-प्रतिष्ठा है। लेकिन हम सबको अपनी-अपनी मर्यादायें समझ लेनी चाहिए। जिस दुनिया में हम रहते हैं उसका हमें जो ज्ञान है उससे हमारी सेवा-शक्ति या योग्यता स्वतः ही मर्यादित है। पर इसे मैं सरल से सरल शब्दों में कह दूँ। जितना ख़याल हम अपना रखते हैं, अपने पड़ोसी का उससे ज़्यादा ख़याल रक्खें। अपने आँगन का कूड़ा-कचरा अपने पड़ोस में डाल देना, यह मानवजाति की सेवा नहीं, असेवा है। इसलिए अपने पड़ोसियों की सेवा से ही हमें परमात्मा की सेवा का आरम्भ करना चाहिए।"

भावाल-संन्यासी-केस का फ़ैसला

ढाका में इधर कई वर्षों से भावाल-संन्यासी-केस नाम से प्रसिद्ध एक बड़ा ही सनसनीदार मुक़दमा चल रहा था। इसका विवरण यथासमय हम 'सरस्वती' में छाप चुके हैं। एक संन्यासी का यह दावा था कि वह भावाल का द्वितीय राजकुमार है और उसे उसका राज्य मिलना चाहिए। हाल में इस मुक़दमे का फ़ैसला हो गया है और जज ने अपने फ़ैसले में संन्यासी को राजकुमार घोषित कर दिया है और राज्य में से उसे एक तिहाई हिस्सा दिलवाया है। इस मुक़दमे का संक्षेप विवरण नीचे हम 'प्रताप' से उद्धृत करते हैं—

भावाल-संन्यासी-केस सन् १९३३ के २७ नवम्बर को आरम्भ हुआ था। तब से लगातार रोज़ इस मुक़द्दमे की पेशियाँ होती रहीं। मुद्दई की ओर से १,००० और मुद्दालेह की ओर से ५०० गवाहों ने बयान दिये।

उक्त मुक़द्दमे के मुद्दई ने यह दावा किया था—

"मैं ढाका के भावालराज्य के स्वर्गीय राजा राजेन्द्र-नारायण राय का द्वितीय पुत्र कुमार रामेन्द्रनारायण राय हूँ।

"मैं १९०९ में बीमार रहा करता था। उसी साल आबहवा बदलने के लिए मैं दार्जिलिंग गया। वहाँ मेरी पत्नी रानी विभावती देवी, उसके भाई रायबहादुर सत्येन्द्र-नाथ और राजपरिवार के डाक्टर आशु ने मेरी हत्या का षड्यन्त्र रचा। हत्या करने के इरादे से दवा खिलाने के बहाने मुझे संखिया दे दिया गया। संखिया खा लेने के कारण मैं चेतनाशून्य हो गया। षड्यन्त्रकारियों ने समझा कि मेरी मृत्यु हो गई। इसलिए मेरा शरीर अन्तिम संस्कार के लिए श्मशान ले जाया गया। श्मशान में अचानक तूफ़ान आ गया और ज़ोरों से पानी बरसने लगा। इसके कारण मेरे शरीर के साथ जो लोग श्मशान आये थे वे चिता को जलाये बिना वहाँ से चले गये।

"जिस समय मैं बेहोशी की हालत में चिता पर पड़ा हुआ था, वहाँ पर कुछ नागा संन्यासी आ गये। उन्होंने मेरे ढँके शरीर में स्पन्दन होता देख मुझे चिता से उठाया और इस प्रकार मेरा उद्धार हुआ। मैं इन संन्यासियों के साथ भारत और नैपाल के विभिन्न भागों में १३ वर्ष तक घूमता रहा। संखिया के ज़हर के कारण मैं पागल हो गया था। संन्यासियों ने मेरी चिकित्सा की और १९२२ में मुझे अपने जन्म-स्थान, परिवार आदि का होश आया।"

भावाल-संन्यासी-केस की प्रमुख प्रतिवादिनी (मुद्दालेह) थीं रानी विभावती देवी, जिनका विवाह स्वर्गीय राजा राजेन्द्रनारायण राय के द्वितीय पुत्र कुमार रामेन्द्र-नारायण के साथ हुआ था। रानी विभावती की ओर से यह जवाबदेही की गई कि मुद्दई मेरा पति नहीं है; वह सुन्दरदास नागा नामक एक पञ्जाबी साधु है और जाल करके भावाल-रियासत को प्राप्त करना चाहता है। मेरे पति भावाल के द्वितीय कुमार १९०९ में दार्जिलिंग में मर गये थे और उनके मृत शरीर का विधिवत् अन्तिम संस्कार भी किया गया था।

उक्त मुक़द्दमे के प्रारम्भ से अन्त तक जनता ने इसमें बहुत अधिक दिलचस्पी ली। बंगाल के समाचारपत्रों ने लगातार २॥ वर्ष तक विस्तारपूर्वक इस मुक़द्दमे की कार्यवाही प्रकाशित की।

इस मुक़द्दमे में दो हज़ार से अधिक दस्तावेज़ वग़ैरह पेश किये गये, जिनमें लगभग १०० फ़ोटो थे। जिन १,५०० गवाहों ने वादी अथवा प्रतिवादी की ओर से बयान दिये उनमें सभी श्रेणियों के व्यक्ति थे। भारतीय सिविल सर्विस के सदस्य, बैरिस्टर, डाक्टर, ज़मींदार, व्यापारी, महाजन, मछुए, सईस आदि लोग गवाहों में शामिल थे। यहाँ तक कि कुछ वेश्याओं तक ने गवाही दी थी। मुद्दालेह की ओर

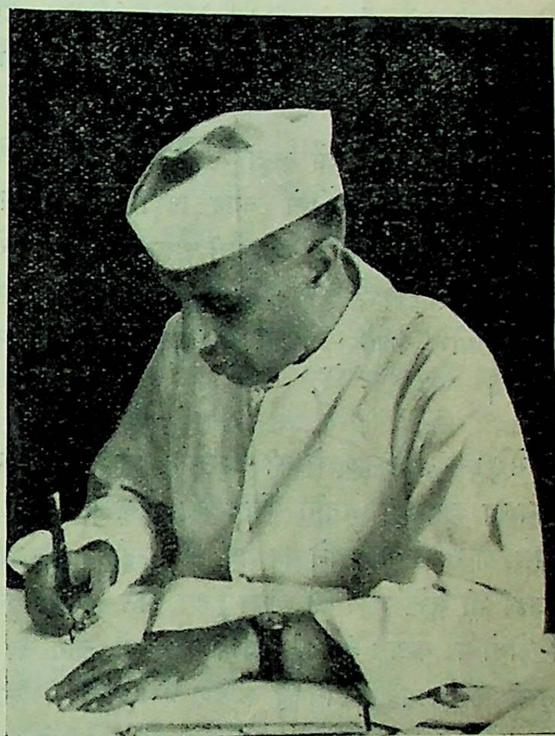
से ढाका के भूतपूर्व कमिश्नर मिस्टर जे० टी० रैन्किन आई० सी० एस० [पेन्शनर] इँग्लेंड से गवाही देने आये थे। गवाही देने के बाद वे अपने इज़हार पर दस्तख़त भी न कर पाये थे कि उनकी मृत्यु हो गई। एक दूसरे गवाह रायसाहब महताब घोष डिप्टीकलक्टर ने गवाही देने के बाद आत्महत्या कर ली। जिस समय इस मुक़द्दमे की सुनवाई हो रही थी, उस समय इसकी कार्यवाही को प्रकाशित करने के लिए ढाका से चार दैनिक समाचार निकाले गये थे। इनमें से एक का नाम 'दैनिक भावाल' था। इस मुक़द्दमे में मुद्दालेह के वकील मिस्टर ए० एन० चौधरी ने १३ फ़रवरी से १ मार्च तक अथवा लगभग पौने दो महीने और मुद्दई की ओर से मिस्टर बी० सी० चटर्जी ने १ अप्रैल से २० मई तक अर्थात् १ महीना २० दिन तक बहस की थी।

विशेषज्ञ जज मिस्टर पन्नालाल ने ५३२ पन्नों के अपने फ़ैसले में लिखा है—"मैंने पूरी शहादत पर अच्छी तरह से ग़ौर किया है। मुद्दई की शिनाख़्त के बारे में सभी श्रेणियों के ईमानदार स्त्री-पुरुषों ने जो प्रत्यक्ष शहादत दी है, मुझे उस पर विश्वास है। किसी जाली व्यक्ति के बारे में ये लोग झूठी गवाही देंगे, यह मुझे असम्भव मालूम होता है। आरम्भ से अन्त तक मुद्दई का व्यवहार सन्देह-रहित रहा है। मुद्दई के साले रायबहादुर सत्येन्द्रनाथ बनर्जी ने इस बात को जानते हुए भी कि मुद्दई वास्तव में मँझला कुमार है, उसका विरोध किया। मुद्दई का वापस आना रायबहादुर के लिए बड़ी विपत्ति थी और इसलिए उन्होंने कुमार की मृत्यु सिद्ध करने के लिए अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी। रायबहादुर के कहने पर ढाका के कलक्टर ने मुद्दई को जाली व्यक्ति क़रार दे दिया था। यदि मुद्दई जाली होता; तो वह इस घोषणा के आगे टिक नहीं सकता था। कलक्टर की इस घोषणा के कारण लोगों की यह धारणा हो गई थी कि मुक़द्दमा वास्तव में मुद्दई और रानी के बीच में नहीं, बल्कि मुद्दई और सरकार के बीच लड़ा जा रहा है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि मुद्दई ने संन्यास की पूरी दीक्षा ली थी और इसलिए वह 'मृतक' के समान है।"

———

पंडित जवाहरलाल नेहरू और कौंसिलों का चुनाव

कांग्रेस ने इस बार कौंसिलों पर क़ब्ज़ा करने का निश्चय कर लिया है और स्वयं राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जिनके बारे में माडरेटों का यह ख़याल था कि वे इस ओर उदासीनता प्रकट करेंगे, व्यापक आन्दोलन आरम्भ कर दिया है। हाल में उन्होंने संयुक्त-प्रान्त के शहरों और गाँवों में दौरा



[पंडित जवाहरलाल नेहरू]

करके कांग्रेस के पक्ष को बहुत प्रबल बना दिया है। यहाँ हम 'हिन्दुस्तान' से उनके एक भाषण के कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

स्वराज्य का अर्थ आप यह न समझें कि जैसे देशी राजे और नवाब हमारे देश में हैं हम वैसा ही राज्य चाहते हैं, और न इसका मतलब यह है कि बड़े बड़े ओहदों पर हमारे लोग नौकर हो जायँ। वर्तमान शासन-व्यवस्था में गवर्नर और वायसराय हो जाने पर भी हमारे लोग कुछ नहीं कर सकते। हमारे देशवासी इन पदों पर आज भी हैं। एक खद्दरधारी सज्जन गवर्नर हैं, गांधी टोपी लगाते

हैं। हमें ऐसा राज्य चाहिए, जिसमें हमारा अधिकार हो, जो लोक-तंत्रवाद पर बना हो और जो हमारा विश्वास कर सके।

आज तो सरकार कांग्रेस से चिढ़ रही है। मैंने सुना है कि आगामी चुनाव में वह उम्मीदवारों के विरोध में अपने उम्मीदवार खड़े कर रही है। सरकार को तो ऐसा करना ही है। हर एक विदेशी सत्ता यही करेगी, लेकिन बेशर्म तो हम हैं, जो सरकार के हाथ की कठपुतली बनते हैं। सरकार को ऐसे उम्मीदवार खड़ा करने दीजिए, परन्तु आप उन देशद्रोहियों को हर्गिज़ वोट न दीजिए। कांग्रेस के उम्मीदवार कौंसिल में जाकर आपको सच्चा मार्ग दिखायेंगे।

हमें आज़ादी की जो लड़ाई लड़नी है वह कौंसिलों के भीतर और बाहर दोनों जगह लड़ी जायगी। आपके ज़िले में भी, मैंने सुना है, सरकारी अफ़सर कांग्रेस-विरोधी उम्मीदवार खड़े कर रहे हैं। आप इसका ठीक-ठीक जवाब दीजिए और केवल कांग्रेस-उम्मीदवारों को ही वोट दीजिए।

× × ×

मेरे इस दौरे से ज़िले की समस्त जनता में एक नया जीवन-सा आगया प्रतीत होता है। मुझे इन लोगों तक कांग्रेस का संदेश पहुँचाने का गर्व है। गाँवों और शहरों में जहाँ भी मुझे जाने का मौक़ा हुआ, मैंने महसूस किया कि लोगों पर कांग्रेस का बहुत प्रभाव है। ये लोग सब यह अनुभव करते मालूम होते हैं कि देश की आज़ादी कांग्रेस के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है और इसलिए उसके झण्डे के नीचे जमा होने में अभिमान का अनुभव करते हैं। जनता कांग्रेस को अपनी संस्था समझती है। यद्यपि इसकी बागडोर आज अनेक बड़े नेताओं के हाथों में है, तथापि इससे यह उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति हर्गिज़ नहीं कही जा सकती। यह तो राष्ट्र की सम्पत्ति है। जनता का फ़र्ज़ है कि वह प्रत्येक गाँव और मुहल्ले में इसकी शाखायें स्थापित करके इसको अपनाये और इसकी नीति के निर्माण में हाथ बँटाये।

——

उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी

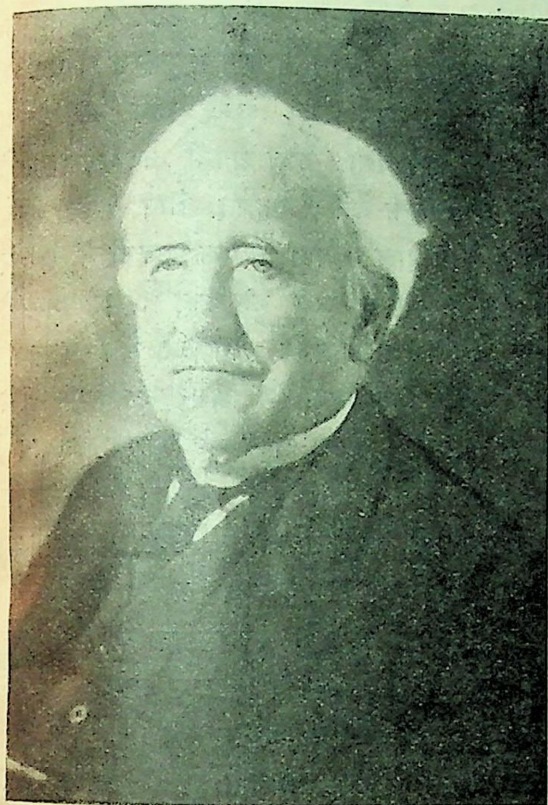
इस वर्ष के आरम्भ में श्रीयुत कृष्णप्रसाद कौल ने 'हिन्दुस्तानी अकेडमी' के वार्षिक अधिवेशन में उपर्युक्त विषय पर एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया था जो अब 'हिन्दुस्तानी' में प्रकाशित हुआ है। उसका एक ज्ञातव्य अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

इस संपूर्ण विवाद का सारांश यह है कि चाहिए तो यह था कि भाषा के प्रश्न पर केवल साहित्यिक दृष्टि से देखा जाता और समय की आवश्यकताओं के ध्यान में रख कर सुधारों के प्रस्तुत करके भाषा की उन्नति का प्रयत्न किया जाता। लेकिन हो यह रहा है कि इस प्रश्न के राजनैतिक झगड़ों में डालकर दलबन्दी का जोश उभारा जाता है, जिससे उर्दू और हिन्दी का विज्ञापन तो अवश्य हो रहा है, लेकिन साहित्यिक भाषा के सुधार और उन्नति में सन्देह है। जहाँ तक सम्मिलित जातीयता का प्रश्न है, यह तो यथार्थ है कि जिन देशों में धर्म, भाषा, वेश-भूषा और खान-पान की एकता प्राप्त है, वहाँ सम्मिलित जातीयता की आकांक्षाओं की पूर्ति में इनसे सहायता मिलती है। लेकिन यह विचार अशुद्ध है कि यह तत्त्व सम्मिलित जातीयता के विचार की पूर्ति के लिए अनिवार्य और आवश्यक है। आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के युग में राजनैतिक व आर्थिक उद्देश व आवश्यकतायें ही वास्तव में जातियों के एक सूत्र में बाँधती हैं। सारे संसार में यही हुआ है और हो रहा है। यही हिंदुस्तान में भी होकर रहेगा। इसके लिए उर्दू या हिन्दी के सारे देश की भाषा निर्धारित करने का विचार न आवश्यक है, न उपयोगी। इससे तो देश की वर्तमान बिगड़ी हुई परिस्थिति में और भी अधिक उलझन उत्पन्न होती है। हिंदू और मुसल्मानों में मेल उत्पन्न करने का इस सम्बन्ध में कोई उपाय हो सकता है तो वह यह है कि हमारे स्कूलों में आरम्भ से ही उर्दू और हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय, और जहाँ तक साहित्यिक भाषा के सुधार और उन्नति का प्रश्न है, उर्दू और हिंदी दोनों को क्लिष्ट बनाने के स्थान पर सरल और जन-साधारण के समझने के योग्य बनाने का प्रयत्न किया जाय।

स्वर्गीय डाक्टर संडर्लैंड

स्वर्गीय डाक्टर संडर्लैंड अमरीका के एक सुप्रसिद्ध लेखक थे। इन्होंने अमरीका और इँग्लैंड

की जनता के सामने सदैव भारत के पक्ष को बड़े ज़ोरदार तर्कों के साथ उपस्थित किया है। दुःख की बात है कि हाल में इनकी मृत्यु हो गई। इनके स्वर्गवास से भारत का एक सच्चा मित्र उठ गया। इनकी मृत्यु से समस्त भारत दुःखी हुआ है, इसमें सन्देह नहीं इनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करने के



[डाक्टर जे० टी० संडलैंड]

लिए बम्बई में एक सार्वजनिक सभा हुई थी। उस में श्रीमती सरोजनी नायडू ने अध्यक्ष के पद से जो भाषण किया है उसमें उन्होंने कहा है—

यदि आप लोगों से अधिक लोगों ने डाक्टर जे० टी० संडलैंड का नाम नहीं सुना है तो इससे डाक्टर संडलैंड की महत्ता, योग्यता और इस देश के प्रति की गई उनकी सेवाओं में कोई अन्तर नहीं आता। सम्भव है कि अधिक लोग उन्हें न जानते हों, पर इस देश में ऐसे हज़ारों आदमी हैं जो डाक्टर संडलैंड के प्रति इस बात के लिए ऋणी हैं कि जब वे अमरीका में डाक्टर संडलैंड के पास गये तब उन्होंने उन लोगों की सहायता की। डाक्टर संडलैंड में भारतीय मामलों में दिलचस्पी स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने उत्पन्न की थी और उसके बाद से अपनी मृत्यु तक डाक्टर संडलैंड ने भारतीय मामलों में अत्यधिक दिलचस्पी ली। मैं १९२८ में जब अमरीका गई थी, डाक्टर संडलैंड से मिली थी। उस समय ६४ वर्ष की अवस्था में भी उनमें बड़ी स्फूर्ति तथा कार्य करने की शक्ति थी। भारतीय मामलों पर लिखी गई उनकी पुस्तक 'इण्डिया इन बांडेज' भारत में आने से रोक दी गई थी। परन्तु यह रोक ही इस बात का प्रमाण है कि उनकी पुस्तक की बातें सच हैं। उनकी यह पुस्तक संसार का एक स्मरणीय ग्रंथ है, परन्तु दुर्भाग्य से वह यहाँ आने से रोक दिया गया है। खेद की बात यह है कि भारतीय जनता यह महसूस नहीं करती कि उस पर बन्धन किस क़दर पींजरे में पैदा होनेवाली चिड़िया के समान हैं, जिसे कि बाहर की आज़ादी का कुछ भी ज्ञान नहीं है और जिसने यह बन्धन अपने माता-पिता से प्राप्त किया है। भारतीय जनता ने भी यह अनुभव नहीं किया कि बन्धन का अर्थ क्या है। परन्तु स्वतन्त्र देश में जन्म लेने-वाले डाक्टर संडलैंड-सदृश मनुष्य ने जिसने स्वतन्त्रता के इतिहास को पढ़ा है, भारत की पराधीनता की लज्जा तथा अपमान को भारतीयों की अपेक्षा अधिक कटुता के साथ अनुभव किया।

भारतीय चाय और पार्लियामेंट के मेम्बर

'इंडियन टी सेस कमेटी' ने 'दी न्यूज़ एण्ड विउज़' नाम का एक अत्यन्त मनोरञ्जक और आकर्षक पर्चा प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। तीसरे पर्चे में कई मनोरञ्जक और ज्ञातव्य बातें हैं, जिनमें एक यह है—

कुछ समय हुए हाउस आफ़ कामन्स की पाकशालाओं की जाँच की गई थी कि उनमें क्या चीज़ें ज़्यादा पकती हैं। मालूम हुआ कि २४ घंटे के विविध समय के भोजनों में चाय सबसे अधिक लोकप्रिय पेय है। वहाँ प्रतिवर्ष ८०,००० से ९०,००० व्यक्तियों को चाय पिलाई जाती है। सबसे अधिक माँग गर्मी की ऋतु में होती है जब पार्लिया-मेंट के मेम्बर अपने मित्रों को चाय पिलाते हैं।



सम्पादकीय नोट

ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य का मेल

योरप में इस समय चारों ओर कूटनीति का जाल बिछा हुआ है। जो राष्ट्र अपने पड़ोसियों से अभी तक मिलजुलकर शान्तिपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे, और किसी से आक्रान्त होने का भय न होने से अपनी सामरिक योजनाओं को अप-टु-डेट रखने में बेपरवाह थे वे भी आज सजग और चिन्तित दिखाई दे रहे हैं। यह बात अब दिन दिन स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही है कि योरप में अब या तो प्रजातंत्र की तूती बोलेगी या निरंकुश-तंत्र का ही महत्त्व बढ़ेगा—इन दो में से एक ही वहाँ रह सकेगा। प्रजातंत्रवाद के अगुआ फ्रांस और रूस हैं। उधर जर्मनी और इटली निरंकुश-तंत्र के समर्थक हैं। और ये दोनों परस्परविरोधी समूह योरप के भिन्न भिन्न छोटे-बड़े राज्यों को अपने अपने पक्ष में करने को तरह तरह की चालें चल रहे हैं।

परन्तु योरप की प्रधान महाशक्ति ग्रेट-ब्रिटेन ने इस गुटबन्दी से अपने को अलग कर लिया है। यही कारण है कि योरप में युद्ध के बादल मँड़रा तो आते हैं, परन्तु बरसने के पहले ही लाचार होकर जहाँ के तहाँ उड़ जाते हैं। तथापि परिस्थिति वहाँ की भीषण हो गई है और ग्रेट-ब्रिटेन उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका यद्यपि फ्रांस और रूस से मेल है, तो भी वह जर्मनी से शत्रुता नहीं मोल लेना चाहता। उधर योरप की गुटबन्दियाँ दृढ़ से दृढ़तर होती जा रही हैं। इसी से वह अब अमरीका के संयुक्त-राज्य से अपना मैत्री-बन्धन और भी मज़बूत कर लेना चाहता है। पिछले महायुद्ध में संयुक्त-राज्य की ही सहायता से विजय प्राप्त हुई थी। इस पाठ को ग्रेट-ब्रिटेन कैसे भूल सकता है? भयावह भविष्य देखकर ही वह संयुक्त-राज्य को अपने पक्ष में करने को विशेष रूप से उत्सुक है। अभी उस दिन लन्दन में स्वाधीनता-दिवस के उत्सव में संयुक्त-राज्य के राजदूत मिस्टर आर० डब्ल्यू० बिन्धम ने अपने भाषण में स्पष्ट रूप से कहा है कि 'अपने देशों की स्वाधीनता की रक्षा हम लोग कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़कर करेंगे'। इससे यही प्रकट होता है कि भीतर ही भीतर इन दोनों राज्यों में घनिष्ठता बढ़ रही है और आश्चर्य नहीं कि अगले महायुद्ध में ब्रिटेन के साथ संयुक्त-राज्य एक बार फिर युद्ध-क्षेत्र में दिखाई दे। परन्तु वहाँ का लोकमत भी ब्रिटेन का साथ देगा, तथा अपनी सरकार के ब्रिटेन की लड़ाई में सहायता देने से सहमत होगा, इसमें सन्देह है। क्योंकि अभी हाल में वहाँ के एक पादड़ी ने अँगरेज़ों की एक सभा में भाषण करते हुए कहा है कि 'हम लोग सांस्कृतिक दृष्टि से एक जाति के लोग नहीं हैं।' वास्तव में वहाँ की विशाल जन-संख्या में अँगरेज़-जाति के लोग कुछ ही फ़ी सदी हैं। संयुक्त-राज्य के गृहयुद्ध के बाद से योरप के अन्य देशों के लोग वहाँ अधिक संख्या में गये हैं, जिससे वहाँ की लोक-संख्या में मध्य, दक्षिण और पूर्व योरप के लोगों की संख्या कहीं अधिक हो गई है। और ये लोग ब्रिटेन के प्रति स्वाभाविक अनुराग क्यों रक्खेंगे? चाहे जो हो, राजनीति में इन बातों का उतना महत्त्व नहीं है। यदि वहाँ की सरकार ब्रिटेन का पक्ष ग्रहण करने में अपने राष्ट्र का हित समझेगी तो अपने मतानुसार कार्य करने का मार्ग वह खुद निकाल लेगी। और यही सब सोच-समझकर ये दोनों प्रजातंत्रवादी देश भविष्य की भयानक परिस्थितियों के कारण एक दूसरे के अपने आप ही निकट आते जा रहे हैं।

चीन—उन्नति की ओर

छिन्न-भिन्न दुर्दशाग्रस्त चीन की परिस्थिति का पूरा पूरा पता सब किसी को नहीं है। पिछले दिनों ऐसा प्रतीत होने लगा था कि दक्षिण-चीनवालों से नानकिंग की राष्ट्रीय सरकार का युद्ध अवश्य होगा। परन्तु दक्षिण-चीन के विद्रोह का आयोजन अपने आप छिन्न-भिन्न ही नहीं हो गया, बरन पहले का स्वतन्त्र दक्षिण-चीन राष्ट्रीय सरकार की अधीनता में भी आ गया है। यह

वास्तव में चीन के सर्वेसर्वा च्यांग-कै-शेक के लिए बड़े गौरव की बात हुई है। दक्षिण-चीन के क्वांगतुंग और क्वांगसी के प्रान्त १९२७ से राष्ट्रीय सरकार से विलग हैं। परन्तु इन प्रान्तों की स्वतन्त्र-सरकार हाल में भंग हो गई है और राष्ट्रीय सरकार के प्रतिनिधि-रूप में वहाँ का शासन-भार जनरल यू हन-मौ ने अपने ऊपर ले लिया है। ये पहले क्वांगतुंग-प्रान्त की प्रथम सेना के सेनापति और प्रान्तीय सेनाओं के प्रधान सेनापति थे। परन्तु अब इन्होंने राष्ट्रीय सरकार की अधीनता स्वीकार कर ली है और यह घोषित किया है कि ये अब राजनीति में भाग न लेकर सैनिक सुधार करेंगे। इस सिलसिले में ये प्रान्त की स्थिति के अनुसार सेना की संख्या कम कर देंगे और इनके इस कार्य को नानकिंग की सरकार मित्रतापूर्ण समझेगी।

दक्षिण-चीन में जो यह अचानक राजनैतिक शान्ति-पूर्ण क्रान्ति हुई है उसके साथ वहाँ का लोकमत है। इस क्रान्ति को सफल बनाने के लिए वहाँ राष्ट्रीय सरकार को सेनायें नहीं भेजनी पड़ी हैं। वहाँ के सेनापतियों ने अपने आप ही विद्रोह-भावना को छोड़कर राष्ट्रीय सरकार की अधीनता स्वीकार की है। राष्ट्रीय सरकार ने पहले के गवर्नर को अपने पद पर बने रहने दिया है, परन्तु शासन-विभाग के महत्त्वपूर्ण पदों पर उसने अपने आदमियों को नियुक्त कर दिया है। इन लोगों ने नानकिंग से जाकर कैंटन में अपना अपना कार्यभार अपने हाथों में ले भी लिया है।

दक्षिण-चीन के राष्ट्रीय सरकार के नियंत्रण में आ जाने से उसके बल तथा प्रतिष्ठा की वृद्धि हुई है और अब यह प्रतीत होता है कि कुछ ही दिनों में मध्य-चीन के वे प्रान्त भी राष्ट्रीय सरकार की अधीनता स्वीकार करने को बाध्य होंगे जो अभी तक बोल्शेविक चीनियों के हाथ में हैं। ऐसा हो जाने पर ही चीन अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र कर अपने राष्ट्र-निर्माण के कार्य में अग्रसर हो सकेगा और तभी वह जापानियों तथा अन्य बलवान् राज्यों की पकड़ से अपने को मुक्त करने में समर्थ हो सकेगा। लक्षणों से प्रतीत होता है कि चीन-सरकार के सूत्रधार इस ओर से उदासीन नहीं हैं और वे बड़ी सावधानी और धैर्य के साथ अपने लक्ष्य की ओर धीरे धीरे अग्रसर हो रहे हैं।

मिस्र और ब्रिटेन की सन्धि

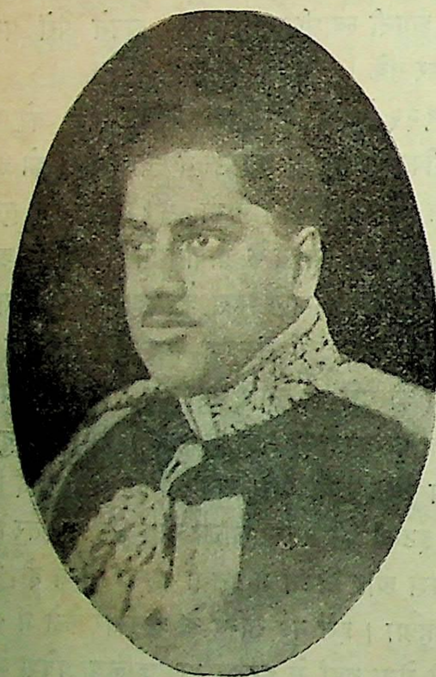
यह प्रसन्नता की बात है कि मिस्र और ग्रेट-ब्रिटेन के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये और मिस्र अब बाक़ायदा एक स्वाधीन राज्य के रूप में अस्तित्व में आ गया। इसके लिए मिस्रवालों ने अब तक जो बलिदान किया है वह अन्त में सार्थक हो गया। कुछ लोगों का कहना है कि इस सन्धिपत्र के लिखे जाने पर भी मिस्र पूर्ण रूप से स्वाधीन राज्य नहीं हो सका है। परन्तु इन लोगों को यह सब कुछ मिस्र की परिस्थिति देखकर ही कहना चाहिए। यदि आज अँगरेज़ लोग अपना डेरा-डंडा उठाकर मिस्र से चले जायँ तो कौन कह सकता है कि कल वही दूसरा अबीसीनिया नहीं बन जायगा। यह कहीं बेहतर है कि मिस्र अँगरेज़ों की सहायता से अपने राष्ट्र का स्वेच्छापूर्वक ऐसा संगठन करने में सफलमनोरथ हो कि अवसर आने पर वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा अपने पैरों पर खड़ा होकर कर सके।

१९२२ में जब अँगरेज़-सरकार ने मिस्र को स्वाधीन राष्ट्र स्वीकार किया था तब उसने चार बातों को अपने ही हाथों में रख छोड़ा था। वे थीं—(१) देश की सुरक्षा की व्यवस्था, (२) साम्राज्य के आवागमन के मार्ग पर अधिकार, (३) बाहरी आक्रमण से मिस्र की रक्षा और (४) सूडान का स्वामित्व। और ये संरक्षण मिस्र के तत्कालीन कर्णधार अँगरेज़ों को देने को तैयार नहीं हुए। अतएव आज तक सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर नहीं हो सके। मिस्र के दुर्भाग्य या सौभाग्य से इटली और अबीसीनिया में लड़ाई छिड़ गई, जिसमें इटली की महत्त्वाकांक्षा स्पष्ट से स्पष्टतर हो गई। यही मिस्र और ब्रिटेन में इतनी जल्दी सन्धि हो जाने का कारण हुआ। इस नई सन्धि के अनुसार कैरो में रहनेवाली अँगरेज़ी सेना वहाँ से हटकर इस्माइलिया प्रदेश में रहेगी। नहर के अंचल में रहनेवाली सेना तथा हवाई सेना की शिक्षा के लिए मिस्र-सरकार समुचित सुविधायें प्रदान करेगी। पूर्वी भूमध्यसागर के नौबल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अस्थायी रूप से अलेक्ज़ेंड्रिया बन्दरगाह का अँगरेज़ सरकार यथेष्ट उपयोग कर सकेगी। मिस्र-सरकार अलेक्ज़ेंड्रिया से नहर-अञ्चल को सेनाओं के आने-जाने की पूरी सुविधायें देगी। सूडान की रक्षा में मिस्र की सेना पहले की ही तरह भाग ले सकेगी। मिस्र अपनी सेना आवश्यकतानुसार बढ़ा

सकेगा और उसे अप-टु-डेट करने में अँगरेज़ विशेषज्ञों की सहायता मिलेगी। युद्धकाल में दोनों राष्ट्र एक-दूसरे की सहायता करेंगे। राष्ट्रसंघ का सदस्य होने तथा अन्य देशों की विशेषाधिकार-सम्बन्धी सन्धियों में परिवर्तन कराने में मिस्र-सरकार की अँगरेज़-सरकार पूरी सहायता करेगी। इस प्रकार इस नये सन्धिपत्र से इन दोनों राष्ट्रों में सौहार्द्र की वृद्धि हुई है। भगवान् करे, मिस्र अपने नये रूप में उन्नति करे और उसके गौरव की वृद्धि हो।

ग्वालियर के महाराज का अभिषेकोत्सव

भारत के देशी राज्यों में ग्वालियर अपनी विशेषता रखता है। स्वर्गीय महाराज माधवराव अपने सुव्यवस्थित शासन-प्रवन्ध से उसे अपने गौरवपूर्ण स्थान पर

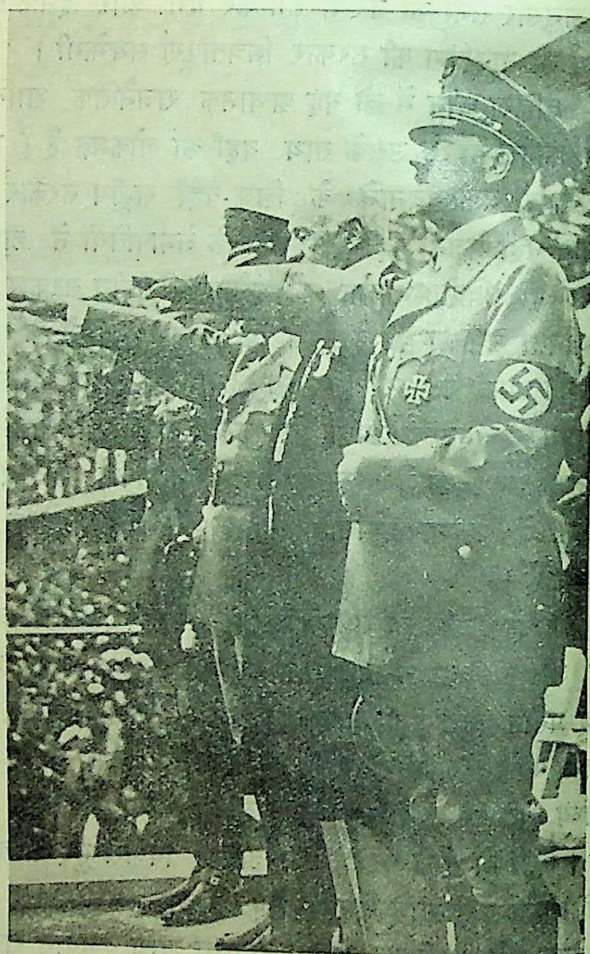


[ग्वालियर-नरेश महाराज जीवाजीराव।]

पहले जैसा ही अचल बनाये रहे। यही नहीं, वे ऐसा उत्तम प्रबन्ध कर गये थे कि उनके बाद भी ग्वालियर-राज्य का शासन-प्रबन्ध उन्हीं के विधानानुसार सफलतापूर्वक हो रहा है। प्रसन्नता की बात है, अब उनके एकमात्र पुत्र महाराज जीवाजीराव वयस्क हो गये हैं और इसी नवम्बर में अपने राज्य का दायित्व अपने ऊपर लेंगे। भगवान् करे, महाराज जीवाजीराव अपने स्वर्गीय पिता के आदर्श को सामने रखकर अपने जीवनपथ पर अग्रसर हों तथा अपने कर्तव्य-पालन में अपने लोकप्रिय स्वर्गीय पिता से भी बाज़ी मार ले जायँ। हमारी परमात्मा से इस अवसर पर यही हार्दिक कामना है।

बर्लिन का ओलिम्पिक टूर्नामेंट

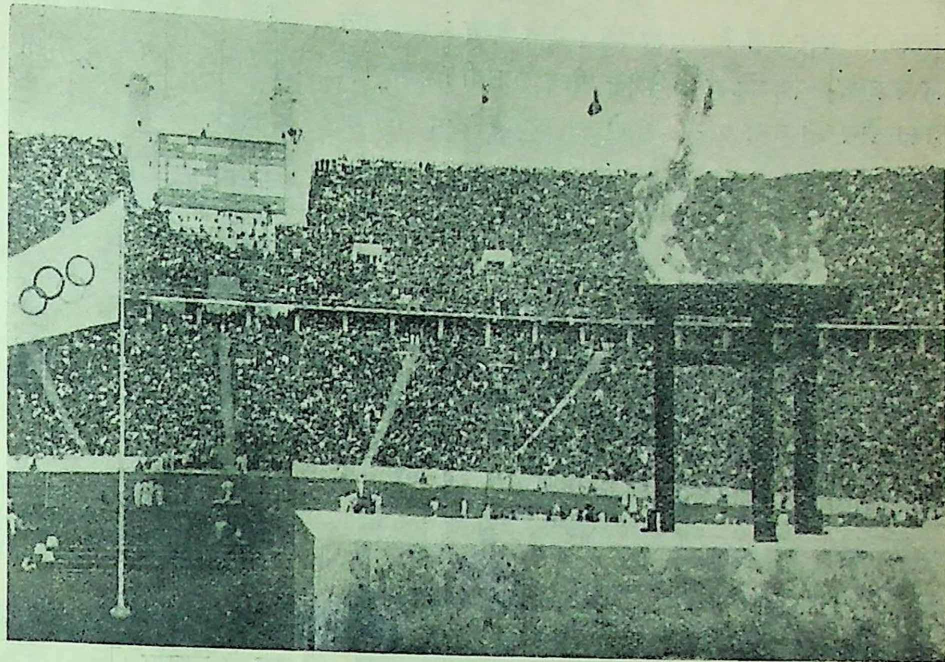
ओलिम्पिक खेलों का अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामेंट इसी अगस्त में बर्लिन में बड़ी धूमधाम के साथ हो गया। जर्मन-सरकार ने इसका बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध किया था, जिससे किसी तरह की अव्यवस्था नहीं होने पाई और लाखों दर्शकों ने



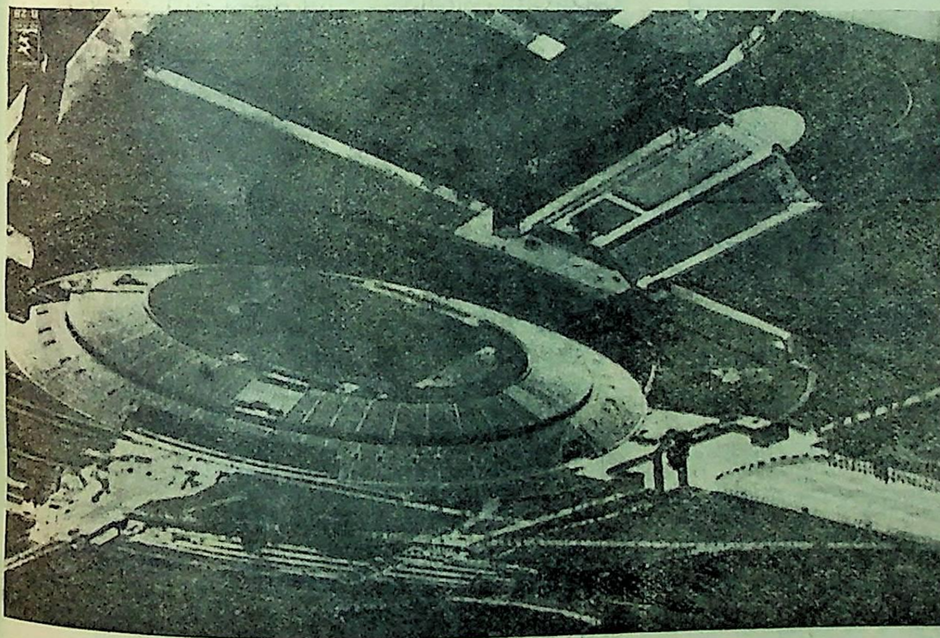
[ओलिम्पिक गेम्स का उद्घाटन-समारोह—सबसे नज़दीक हर हिटलर खड़े हैं।]

खेलों को बड़ी सुविधा के साथ देखा। ये खेल १५ दिन तक बड़ी सफलता के साथ होते रहे। इनमें संसार की ५० से अधिक जातियों ने भाग लिया। हमारे भारत की प्रसिद्ध

हाकी टीम ने इस टूर्नामेंट में भी अपनी जीतों से भारत का सिर विशेष-रूप से ऊँचा किया है। उसने हंगरी की टीम को ५ गोल से, संयुक्त-राज्य की टीम को ७ गोल से, जापान की टीम को ९ गोल से और फ्रांस की टीम को १० गोल से और अन्त में जर्मनी की टीम को ७ गोल से हराया है। उसका खेल आश्चर्यजनक गिना गया है। परन्तु अन्य खेलों में भारतीय लोग अपनी विशेषता नहीं स्थापित कर सके। अगला ओलिम्पिक टूर्नामेंट जापान के तोकिओ नगर में सन् १९४५ में होगा। अतएव भारतीयों को उसके लिए यहाँ की भिन्न भिन्न व्यायाम-शालाओं को अभी से तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। यहाँ कई एक ऐसी व्यायामशालायें हैं जो अपना महत्त्व रखती हैं। उदाहरण के लिए अमरावती के हनूमान-व्यायाम-मण्डल को ही लीजिए। इसने बर्लिन में 'इन्टर्नेशनल स्पोर्ट्स स्टूडेंट कांग्रेस' में अपने जो व्यायाम दिखलाये हैं उन्हें १० हज़ार दर्शकों ने देखा और उनकी वहाँ बड़ी प्रशंसा हुई। तलवार चलाने की हस्तलाघवता के लिए इस मण्डल के दो युवकों की तो बड़ी ही प्रशंसा हुई। इनके खेलों को देखकर मण्डल से इस बात का आग्रह किया गया कि ओलिम्पिक टूर्नामेंट की समाप्ति के दिन वह अपने सारे खेलों का प्रदर्शन करे। उसने अपने खेल तदनुसार

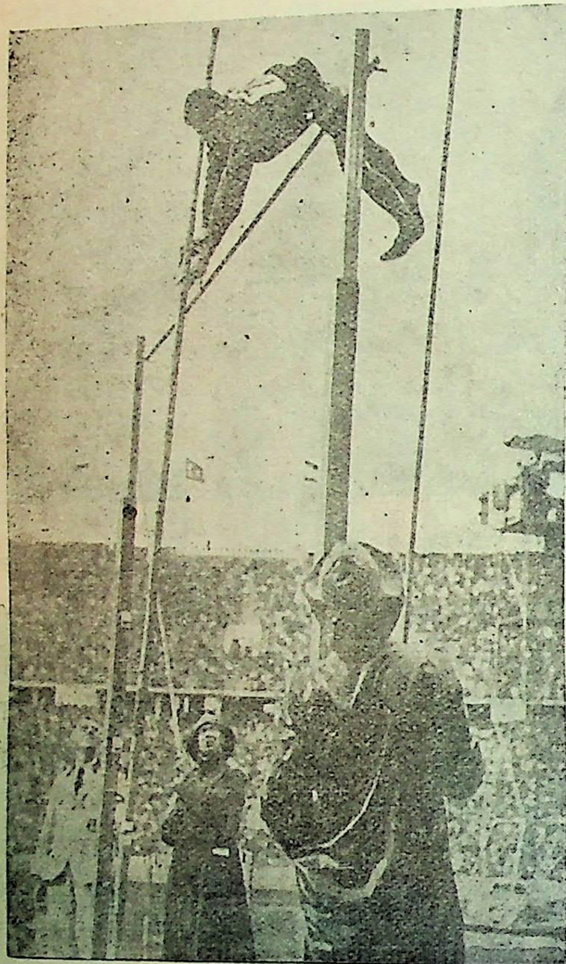


[ओलिम्पिक गेम्स की यज्ञवेदी।]



[ओलिम्पिक गेम्स का स्टेडियन। हवाई जहाज़ से विहङ्गम दृश्य। बीच में पानी-सा नज़र आनेवाला खेलने का मैदान है। चारों ओर सवा लाख आदमियों के बैठने की जगह है।]

दिखलाये और उनकी प्रशंसा हुई। ऐसी दशा में इस बात का क्यों न प्रयत्न किया जाय कि अन्य भारतीय खिलाड़ी हाकी-टीम की तरह अन्य खेलों की प्रतिद्वन्द्विता में भी



[ओलिम्पिक खेलों में हाई जम्प (ऊँची कूद) का एक दृश्य।]

भाग लेकर सफलता प्राप्त करें। आशा है, इस ओर उत्साही लोग आवश्यक ध्यान देंगे। उपर्युक्त टूर्नामेंट के सम्बन्ध के जो चित्र हम यहाँ दे रहे हैं वे हमें श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद बाजोरिया गीता प्रेस, गोरखपुर से मिले हैं। ये उन्होंने 'सरस्वती' के लिए बर्लिन से मँगाये हैं।

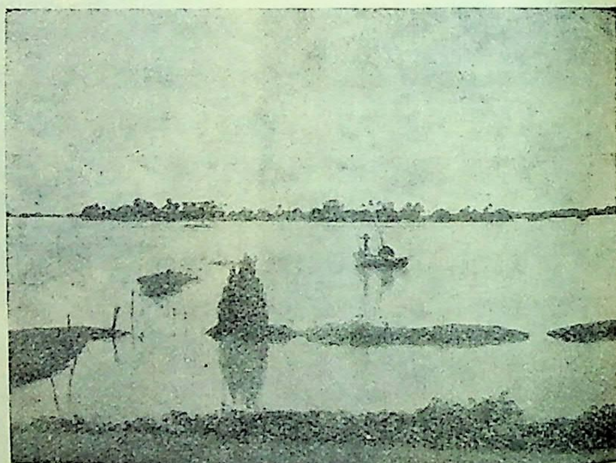
संयुक्त-प्रान्त में जल-वृष्टि से हानि

संयुक्त-प्रान्त की बाढ़ का जो सरकारी विवरण प्रान्तीय गज़ट में छपा है उससे उसकी भयावह व्यापकता का पूरा पता चलता है। इस बार इस प्रान्त में ऐसी भयानक जल-वृष्टि हुई है कि उससे बाढ़ों का जो सिलसिला जून के तीसरे हफ़्ते से शुरू हुआ था वह अभी तक जारी है। अभी हाल में



[कौन कह सकता है यह सुन्दर घर किस क्षण पानी बहा ले जायगा।]

बस्ती ज़िले में फिर बाढ़ आई थी। यों तो इन बाढ़ों से सभी जगह थोड़ी बहुत हानि हुई है, परन्तु उसकी चपेट में गोरखपुर बुरी तरह आ गया है। यहाँ हम गोरखपुर की बाढ़ के कुछ चित्र छाप रहे हैं। ये चित्र हमें श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद बाजोरिया, गीता प्रेस से प्राप्त हुए हैं। उनसे



[पानी के बीच में काली जगहें डूबे हुए मकानों के छप्पर हैं।]

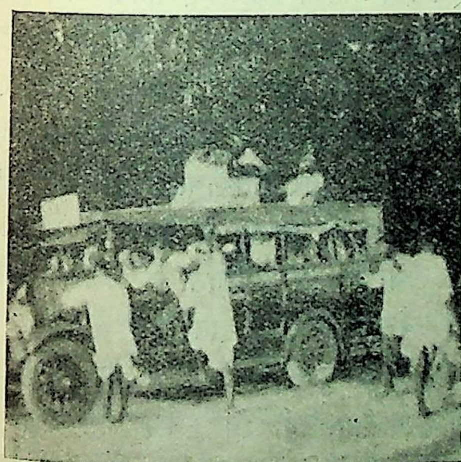
पाठक वहाँ की बाढ़ की भीषणता का बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। परन्तु गोरखपुर आदि बाढ़ों से पीड़ित स्थानों की भीषणता को तो गढ़वाल की हाल की भीषण जलवृष्टि



[एक डूबे घर का बचा हुआ छप्पर, जो पक्षियों का आश्रय बना है ।]

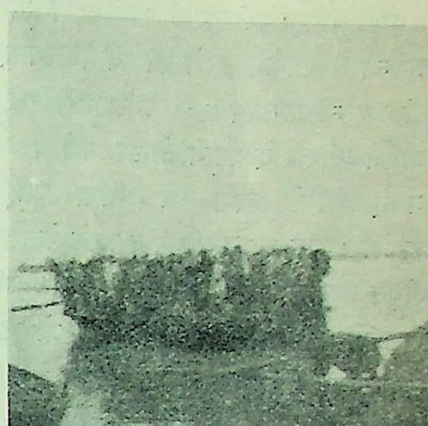


[बाढ़ से घिरे हुए लोग ।]



[बाढ़-पीड़ित लारियों-द्वारा स्टेशन पहुँचाये जा रहे हैं ।]

ने भुला दिया है । यहाँ की महाजलवृष्टि ने एक पहाड़ के कुछ अंश को इस प्रकार ध्वस्त कर दिया कि उसके नीचे



[जलमग्न गाँवों के निवासी नौका-द्वारा बचाये जा रहे हैं ।]

तीन गाँव आ गये और एक समूचा गाँव जड़मूल से बह गया । इस दुर्घटना में कहा जाता है, ४०० आदमी अपने प्राण गँवा बैठे हैं । इधर हाल में बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर और पटना में भी पाँच-पाँच सौ वर्गमील के भूखण्ड जलमग्न हो गये हैं । इस प्रकार इस वर्ष जलवृष्टि के कारण इस प्रान्त में तथा बिहार में त्राहि त्राहि मची हुई है ।

'सिविल सर्विस' की भर्ती

शिमला में असेम्बली की बैठकें इस बार अधिक ज़ोर-शोर के साथ शुरू हुई हैं, यहाँ तक कि सरकार को पहले ही दिन बेढब हार खानी पड़ी है । बात यह हुई कि सरकार 'भारतीय सिविल सर्विस' में अँगरेज़ों को नामज़द करके भर्ती करना चाहती है, क्योंकि वे लोग उसकी परीक्षा में आवश्यक संख्या में पास नहीं हो रहे हैं । अभी तक 'सिविल सर्विस' में प्रतियोगिता-परीक्षा में पास होनेवाले व्यक्ति ही लिये जाते थे । परन्तु अब सरकार १९१९ के इंडिया एक्ट के विपरीत नामज़दगी की पद्धति का प्रचलन करना चाहती है । और यह बात भारतीयों को तर्क-सम्मत नहीं प्रतीत होती । वे प्रतियोगिता-परीक्षा के महत्त्व के एक ज़माने से क़ायल हैं । आज उसका महत्त्व घटते देखकर वे इस बात को कैसे सह सकते हैं ? सरकार की यह विषम प्रणाली कि ५० भारतीय प्रतियोगिता-परीक्षा-द्वारा

भारत में लिये जायँगे और ५० ब्रिटिश ग्रेट-ब्रिटेन में नामज़दगी से पूरे किये जायँगे। यदि दोनों स्थानों में इस भर्ती का माध्यम प्रतियोगिता-परीक्षा ही बनी रहती तो भारतीयों के इस सम्बन्ध में विरोध करने की वैसी आवश्यकता न प्रतीत होती। परन्तु प्रतिवर्ष ५० ब्रिटिश सिविल सर्विस में लिये ही जायँगे और यदि उतने ब्रिटिश परीक्षा में न पास होंगे तो नामज़दगी के द्वारा वह संख्या पूरी कर ली जायगी। इस असंगति का निराकरण करने के लिए कांग्रेस के नेता श्रीयुत सत्यमूर्ति ने असेम्बली के स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। इस अवसर पर जो वाद-विवाद हुआ उसमें सरकार की हार हुई है। देखना है कि सरकार इस सम्बन्ध में लोकमत का कहाँ तक आदर करती है।

———

एक उन्नतिशील महन्त

सम्पन्न मठाधीश तथा महन्त चाहें तो समाज के लिए अधिक उपयोगी ही नहीं सिद्ध हो सकते हैं, किन्तु उसके साथ ही काफ़ी यश का भी अर्जन कर सकते हैं। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण नासिक के बाला जी के मन्दिर के महन्त जी हैं। इन्होंने अपने मन्दिर के वार्षिकोत्सव को नये ढंग से मनाना शुरू किया है। यह उत्सव प्रतिवर्ष आश्विन के कृष्णपक्ष में होता है। अभी तक इस सिलसिले में वहाँ ग़रीबों को भोजन दिया जाया करता था तथा कथा-वार्ता हुआ करती थी। परन्तु मन्दिर के वर्तमान महन्त जी ने इस उत्सव में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करके उसे अधिक लोकोपयोगी बना दिया है। इस वर्ष उन्होंने इस अवसर पर पुरस्कार-प्रतियोगिता जारी करके उसे और भी महत्त्वपूर्ण बनाने का उपक्रम किया है। प्रतियोगिता के विषय इस प्रकार हैं—(१) वैदिक सूक्तों का मुखस्थ पाठ, (२) सूर्य-नमस्कार-व्यायाम, (३) योग-सम्बन्धी आसन, (४) संगीत, (५) गीता और स्तोत्रों का मुखस्थ पाठ, (६) लड़कियों का चौक पूरना, (७) फूलों और धान्यों से चौक पूरना, (८) निबन्ध-रचना (इस वर्ष 'ग्रामोन्नति की योजना')। इन प्रतियोगिताओं में सफल होनेवाले छात्रों को पुरस्कार दिये जायँगे। महन्त जी के प्रबन्ध में इस अवसर पर बाला जी के मन्दिर में एक प्रदर्शनी भी होने लगी है, जिसमें रक्खी जानेवाली उत्कृष्ट कारीगरी की वस्तुओं पर उनके बनानेवालों को पुरस्कार भी दिया जाता है। और यह सब व्यवस्था नगर-वासियों की एक कमिटी करती है, जिसकी नियुक्ति महन्त जी करते हैं। इसके सिवा प्रबन्ध के लिए स्वयं-सेवकों का भी संगठन किया जाता है, जो उत्सव में शान्ति की व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार इस उत्सव को लोकोपयोगी बनाकर बाला जी के महन्त जी वास्तव में एक उपयुक्त कार्य कर रहे हैं। अन्य महन्तों तथा मठाधीशों को चाहिए कि वे भी इन महन्त जी का अनुकरण कर यश के भागी बनें।

———

सूबा हिन्द

कुछ मास हुए डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने सूबा हिन्द पर कवितायें आमंत्रित की थीं और सर्वोत्तम कविता पर ५१) भेंट-स्वरूप देने की घोषणा की थी। इस आमंत्रण के फल-स्वरूप आपको जो कवितायें प्राप्त हुई हैं उनमें से कुछ अच्छी अच्छी छाँटकर आपने अपने वक्तव्य के साथ एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की हैं। आपके वक्तव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है—

"लेखकों में १० संयुक्त-प्रान्त के, ३ बिहार के, ३ राजस्थान तथा मध्यभारत के और २ मध्यप्रान्त के हैं। हिन्दी के किसी भी प्रसिद्ध कवि ने इस विषय पर लेखनी उठाना उचित नहीं समझा। प्रतियोगिता में, विशेषतया इतनी छोटी भेंटवाली प्रतियोगिता में, सम्मिलित होना कदाचित् सम्भ्रान्त कवियों ने अपनी हैसियत के ख़िलाफ़ समझा। भौतिक संसार से सम्बन्ध रखनेवाला विषय भी कदाचित् उनकी प्रतिभा के लिए घातक था। हिन्दी के प्रसिद्ध प्रतिभाशाली कवि भी अपने देश के उत्थान से सम्बन्ध रखनेवाले इस छोटे-से प्रयास में यदि हाथ बँटा सकते तो कितना अच्छा होता। किसी विशेष लेखक की रचना उसके इच्छानुसार प्रतियोगिता से प्रथक रक्खी जा सकती थी। विषय का बन्धन तो अनिवार्य था, किन्तु देश के गान में ऊँची से ऊँची उड़ान के लिए स्थान था, यह प्रस्तुत रचनाओं से सिद्ध होता है।"

वास्तव में यह दुःख की बात है कि हमारे प्रसिद्ध कवियों ने इधर ध्यान नहीं दिया। कदाचित् उन्होंने हिन्दी-भाषियों के एक सुसंगठित प्रान्त की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया है। पर उनके इस उपेक्षा-भाव से डाक्टर साहब के इस सद् प्रयत्न का महत्त्व कम नहीं होगा।

लोकमत उनके पक्ष में क्रमशः प्रबल होता जायगा और एक न एक दिन वे अवश्य सफलता प्राप्त करके आनेवाली पीढ़ी के धन्यवाद के पात्र बनेंगे।

मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय कुर्सियाङ्ग

कोई चार वर्ष हुए कुर्सियाङ्ग में कतिपय मारवाड़ी नवयुवकों ने हिन्दी-प्रचार के उद्देश से एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना की थी। इसका चतुर्थ वार्षिक कार्य्य-विवरण देखने से यह अनुमान किया जा सकता है कि लगन के साथ कोई कार्य्य किया जाय तो उसमें कैसी सफलता मिल सकती है। यह संस्था प्रतिवर्ष अपने वार्षिक अधिवेशन के समय बाहर के भी विद्वानों और हिन्दी-प्रेमियों को बुलाकर उनके व्याख्यान कराती है, जिससे उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इस वर्ष का वार्षिक अधिवेशन बङ्गाल के सर्जन मेजर जेनरल श्री द्वारकाप्रसाद गोयल आई० एम० एस० के सभापतित्व में मनाया गया था और केप्टन एस० सी० मित्र तथा पादरी फ़ादर पी० वान पेन्सवर्ग के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखक श्री सुदर्शन जी और डाक्टर हेमचन्द्र जोशी भी उपस्थित थे और उनके व्याख्यान हुए थे। हमें आशा है, यह संस्था अपने उत्साही अवैतनिक मंत्री श्री लक्ष्मी अग्रवाल की देख-रेख में क्रमशः उन्नति करती जायगी और अपना कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत करती जायगी।

चीन में एक उपयोगी व्यवस्था

राष्ट्र को सबल बनाने का प्रयत्न करना वास्तव में प्रत्येक देश की सरकार का धर्म है और इस धर्म का यथा-शक्ति पालन सभी देशों की सरकारें करती भी हैं। हाल में चीन के क्यांग-सू प्रान्त की सरकार ने यह आदेश किया है कि विवाह होने के पहले प्रत्येक वर-कन्या को अपनी अपनी डाक्टरी करानी होगी और जो लोग निर्बल और रोगी होंगे उनका विवाह नहीं होने दिया जायगा। 'हिन्दी-मिलाप' का कहना है कि यदि यह नियम भारत के हिन्दुओं में लागू कर दिया जाय तो अन्य लाभों के साथ साथ एक यह लाभ भी होगा कि उनमें विधवाओं की संख्या में बड़ी कमी हो जायगी। परन्तु जहाँ अभी बाल-विवाह नहीं बन्द हुआ है और कुलीनों में शादी-ब्याह ने ख़ासे रोज़ी-धन्धे का रूप धारण कर लिया है, वहाँ ऐसे उपयोगी नियमों के जारी होने की कैसे आशा की जा सकती है?



[बाईं ओर से (१) श्रीयुत बी० सी० घोष, (२) कैप्टन एस० सी० मित्र (३) मेजर गोयल (४) सरदार बहादुर दीवान राय (५) श्री गुलाबचन्द्र अग्रवाल (संस्थापक) (६) डाक्टर एच० मुकर्जी सिविल सर्जन।]

व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली

व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली के साथ उसके नियम भी पिछले दो मास से 'सरस्वती' में बराबर छप रहे हैं। फिर भी बहुत-से पाठक जो इस प्रतियोगिता में भाग लेते हैं,

उन पर पूरा ध्यान नहीं देते। दो-तीन सज्जनों ने हमारे पास प्रवेश-शुल्क टिकट के रूप में भेजे हैं, यद्यपि नियमों में यह स्पष्ट लिखा है कि टिकट नहीं लिये जायँगे। नियम के अनुसार कूपन के साथ मनिआर्डर की रसीद भी आनी चाहिए। इसका अर्थ बहुत-से लोगों ने यह लगाया है कि जो रसीद हमारे कार्य्यालय से जायगी उसे वे भेजेंगे। और जब उस रसीद के जाने में देरी होती है तब वे पत्र लिखते हैं कि जल्दी भेजिए, हमारा जवाब रह जाना चाहता है। वास्तव में उन्हें वह रसीद भेजनी चाहिए जो उन्हें डाकघर से मिलती है, क्योंकि उसी से हमारा तात्पर्य्य है। गत मास में हमने लिखा था कि वर्ग नं० १ का उत्तर मिलाने पर यदि किसी को यह मालूम हो कि उन्हें पुरस्कार मिलना चाहिए तो वे हमें १० सितम्बर तक सूचित कर दें। बाद को ऐसे दावों पर ध्यान नहीं दिया जायगा। इसके उत्तर में बहुत-से लोगों ने वर्ग-नं० २ की भी पूर्तियाँ १० सितम्बर के अन्दर ही भेजने की चेष्टा की। कई सज्जनों ने एयर मेल का सहारा लिया और एक उत्साही प्रतियोगी ने तो बनारस से ख़ास तौर से १० सितम्बर को इसी लिए मोटर-बस से अपने ख़ास आदमी-द्वारा पूर्ति भिजवाई। यदि वे नियमों में देख लेते कि पूर्तियाँ भेजने की अन्तिम तिथि २० सितम्बर है तो उन्हें यह दिक़्क़त न उठानी पड़ती और उत्तर सोचने में भी उन्हें सुविधा होती। कुछ लोगों ने कूपन भेजने के बाद उनमें संशोधन करने के लिए पत्र भेजे हैं और कुछ ने अंक-परिचय के बारे में पूछताछ की है। पर नियम के अनुसार दोनों बातें नहीं हो सकतीं। वर्ग भेज चुकने पर जिन्हें संशोधन की आवश्यकता प्रतीत हो उन्हें दूसरी वर्गपूर्ति भेजनी चाहिए। पूर्ति-नं० क्या बला है, यह भी बहुत-से लोग पूछते हैं। यद्यपि वे थोड़ा ध्यान दें तो आसानी से समझ सकते हैं कि वे जितनी पूर्तियाँ भेजें उन सब पर पहली, दूसरी, तीसरी पूर्ति इत्यादि नम्बर डालना आवश्यक है। जो एक पूर्ति भेजें उन्हें पूर्ति-नं० १ लिखना चाहिए, जो दो पूर्तियाँ भेजें उन्हें पहली पर पूर्ति-नं० १ और दूसरी पर पूर्ति-नं० २ लिखना चाहिए। इसी तरह जितनी भी पूर्तियाँ भेजें, उन पर क्रमशः नम्बर होना चाहिए। स्थानीय लोग जो हमारे कार्य्यालय में प्रवेश-शुल्क जमा करते हैं, उन्हें चाहिए कि घर से वर्गपूर्ति के साथ मैनेजर वर्ग-नं० का पता लिफ़ाफ़े पर लिख कर लावें और जो रसीद मिले उसे पूर्ति के साथ लिफ़ाफ़े में बन्द करके तब लिफ़ाफ़ा दें या पहले शुल्क भेजकर रसीद मँगा लें तब दोनों चीज़ें एक साथ भेजें। बहुत-से लोग केवल पूर्तियाँ भेज देते हैं और मनीआर्डर की रसीद उनके साथ नहीं नत्थी करते। ऐसा भेजने से न भेजना अच्छा है, क्योंकि नियम के अनुसार ऐसी पूर्तियों पर विचार हो ही नहीं सकता। पूर्तियाँ सम्पादक के नाम नहीं, प्रबन्धक-वर्ग के पते पर ही आनी चाहिए।

सफ़ाई का ध्यान रखना और भी आवश्यक है। कूपन पर काटकूट नहीं होनी चाहिए और अक्षर साफ़ होने चाहिए। लिफ़ाफ़े पर हिदायत के अनुसार पता भी साफ़ साफ़ लिखना चाहिए और उसकी दूसरी ओर पूर्ति-नं० और अपना नाम लिखना चाहिए। आशा है, इस प्रतियोगिता में दिलचस्पी रखनेवाले पाठक इन बातों पर ध्यान रक्खेंगे।

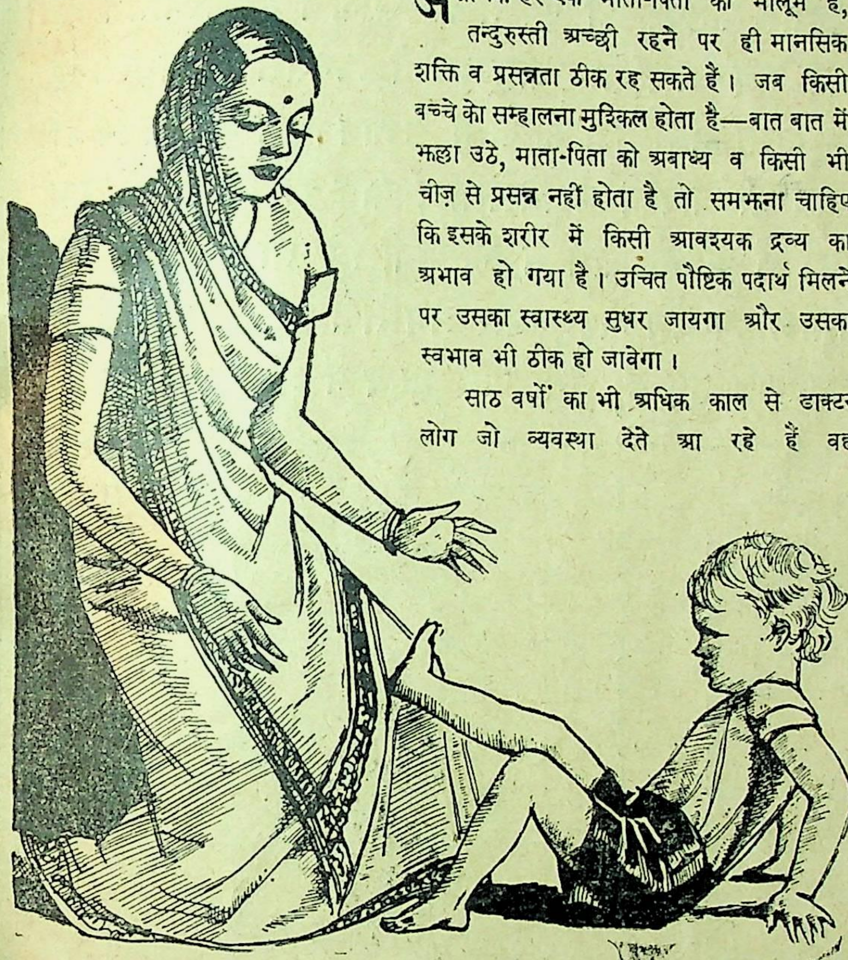
चित्र-परिचय

'सरस्वती' के इस अङ्क में जो दो रङ्गीन चित्र प्रकाशित हो रहे हैं वे दोनों इस प्रान्त के दो ऐसे नवीन कलाकारों की कृतियाँ हैं जिनसे इस दिशा में अभी और बहुत कुछ आशा की जा सकती है। पहला चित्र जो मुखपृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है, नैनी के त्रिवेनी-देशी-शूगर-वर्क्स के श्रीयुत सीताराम अग्रवाल का अङ्कित किया हुआ है। इस चित्र में संसार के अज्ञान और मायामोह का अन्धकारमयी रजनी के रूप में नारी का रूप दिया गया है, जो महात्मा बुद्ध के तेज से भगा जा रहा है। कहना नहीं होगा कि श्री सीताराम जी इस भाव को अङ्कित करने में पूर्ण सफल हुए हैं। दूसरा चित्र 'सरस्वती' के पाठकों की सुपरिचित कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा का अङ्कित किया हुआ है। यह चित्र उन्होंने अपनी एक कविता के भाव पर अङ्कित किया है। वह कविता आपके नव प्रकाशित काव्य-ग्रन्थ 'सांध्य-गीत' में इस चित्र के साथ प्रकाशित हो चुकी है। हिन्दी के लिए यह गौरव की बात है कि उसकी यह श्रेष्ठ कवियित्री अपनी सुन्दर कविता के भावों को आकर्षक रङ्गों में भी व्यक्त करने में सफल हुई है।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

"यह बच्चा बहुत ही प्रसन्न रहा करता था —लेकिन क्या कारण है कि सम्हालना इतना मुश्किल हो गया ?"

कमज़ोर और अनमने बच्चों के लिए डाक्टर लोग यह बहुत ही सरल उपचार बतलाते हैं।



जैसा कि हर एक माता-पिता को मालूम है, तन्दुरुस्ती अच्छी रहने पर ही मानसिक शक्ति व प्रसन्नता ठीक रह सकते हैं। जब किसी बच्चे को सम्हालना मुश्किल होता है—बात बात में झला उठे, माता-पिता को अबाध्य व किसी भी चीज़ से प्रसन्न नहीं होता है तो समझना चाहिए कि इसके शरीर में किसी आवश्यक द्रव्य का अभाव हो गया है। उचित पौष्टिक पदार्थ मिलने पर उसका स्वास्थ्य सुधर जायगा और उसका स्वभाव भी ठीक हो जावेगा।

साठ वर्षों का भी अधिक काल से डाक्टर लोग जो व्यवस्था देते आ रहे हैं वह स्काट का इमलसन के सिवा और कोई चीज़ नहीं है जो कि ऐसी अवस्था को सुधार सके। बिटामिन 'ए' और 'डी' अधिक हैं ऐसा विशुद्ध काड लिवर आइल के अतिरिक्त चूना और फासफ़ोरस, जो कि बाढ़ और हड्डियों की मज़बूती के लिए बहुत आवश्यक हैं, अधिकता से विद्यमान है। एक विशेष सम्मिश्रण क्रिया से स्काट का इमलसन को स्वादिष्ठ और सुपाच्य बनाया गया है। साधारण काड लिवर आइल की अपेक्षा यह तिगुना लाभकारी है।

यह अपने आपमें पूर्ण है

स्काट का इमलसन स्वयं एक पौष्टिक पदार्थ है, गुणकारी बनाने के लिए इसमें चूना या अन्य पदार्थों के सम्मिश्रण की ज़रूरत नहीं पड़ती। यह बड़ी अवस्था के लोगों तथा बच्चों के लिए समान रूप से लाभदायक है। दुर्बलता और शक्ति-क्षीण में स्काट का इमलसन जादू का-सा असर करता है। बीमारी के बाद नष्ट-शक्ति को प्राप्त करने के लिए इसका सेवन अत्यावश्यक है। कोई भी छूत की बीमारी से बचने के लिए खाँसी, ज़ुकाम, इन्फ़्लूएंजा आदि में अद्भुत कार्यकारी स्काट का इमलसन अवश्य सेवन कीजिए।

SCOTT'S
Emulsion
of Pure Cod Liver Oil

माता-पिता के जानने के लिए कुछ आवश्यक बातें

हड्डियाँ बनाने में स्काट का इमलसन मक्खन या ताज़े दूध से ८० गुणा और अंडे से दुगुना गुणकारी है। बाढ़ के लिए—मक्खन से आठ गुणा और केले से सौ गुणा गुणकारी है



शुद्ध कॉड लीवर आइल से बना स्काट का इमलसन

शुद्ध कॉड लिवर आइल का थोक-विक्रेता— कलकत्ता। बम्बई। मद्रास। लाहौर। रंगून। कोलंबो। कानपुर। पटना।

उपन्यास-जगत् के अनमोल रत्न

शरद्ग्रन्थावली के उत्तमोत्तम उपन्यास

हमारे यहाँ से शरद् बाबू के उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद जब से प्रकाशित हुए हैं तब से उपन्यास-पाठकों की एक प्रकार से रुचि ही परिवर्तित हो गई है। अधिकांश पाठक अब केवल शरद् बाबू के ही उपन्यास पढ़ना पसन्द करते हैं क्योंकि इन उपन्यासों में समाज का जैसा सजीव चित्र अंकित किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी आपको न मिलेगा। यदि आपने अभी तक शरद्-ग्रन्थावली के ग्राहकों में अपना नाम न लिखाया हो तो आज ही ॥) प्रवेश-शुल्क भेजकर स्थायी ग्राहक बन जाइए और अब तक इस ग्रन्थावली के जितने भी उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, उन्हें पौने मूल्य में मँगा लीजिए।



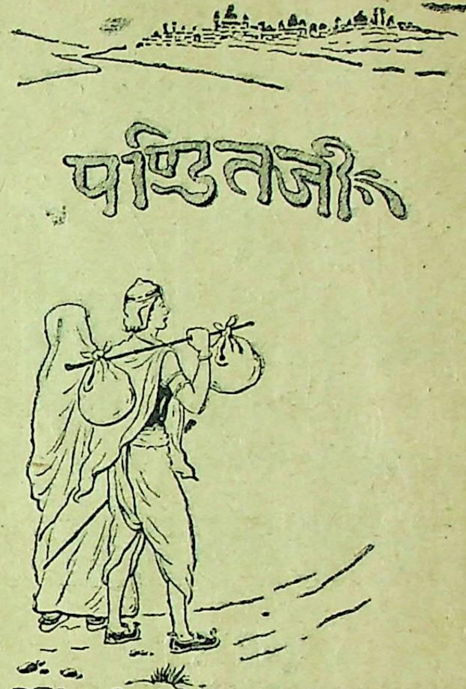
मूल्य ॥|)



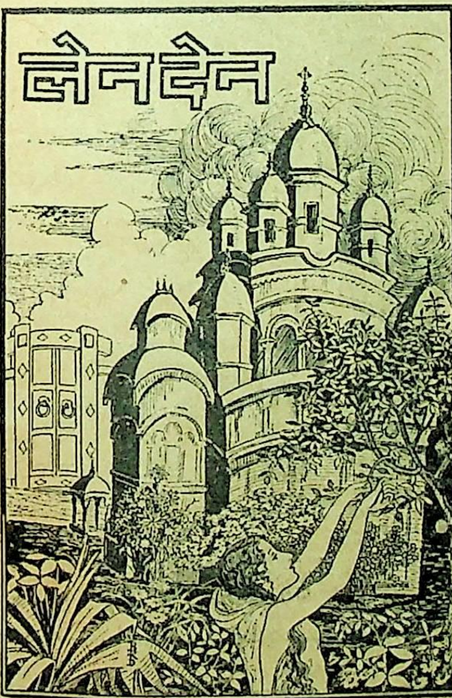
मूल्य १)



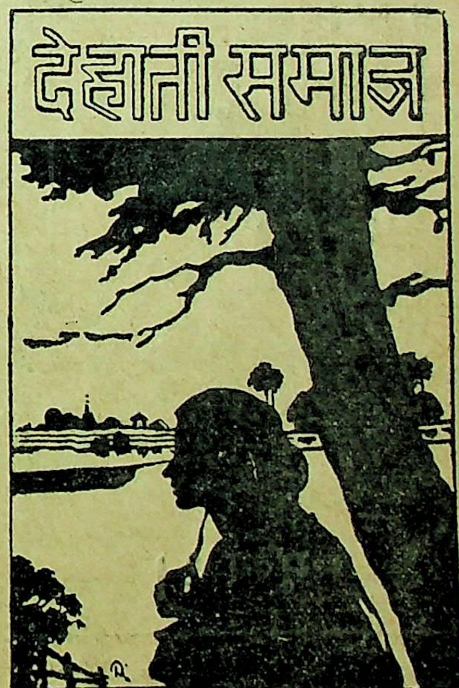
मूल्य १)



मूल्य १॥)



मूल्य २॥)



मूल्य २)



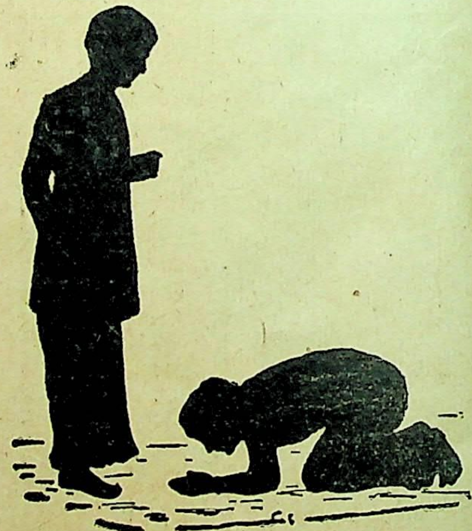
मूल्य १)



मूल्य १)



मूल्य १)



मूल्य २॥)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग

द्विवेदी जी-लिखित

अनुपम पुस्तकें

विदेशी-विद्वान् मूल्य १)

इस पुस्तक में विदेशी विद्वानों के चरित्र हैं। उक्त महापुरुषों की जीवनियां से उनकी जाति-सेवा, व्यवसाय-निपुणता, नूतन धर्म-स्थापना आदि का ख़ासा परिचय मिलता है। और अनेक उपयोगी बातें मालूम होती हैं। पुस्तक प्रत्येक पुरुष के पढ़ने लायक़ है।

किरातार्जुनीय मूल्य २)

यह महाकवि भारवि के सुप्रसिद्ध संस्कृत-काव्य का हिन्दी-रूपान्तर है। द्विवेदी जी महाराज की कृपा से केवल हिन्दी पढ़े-लिखे सज्जन भी इसका रसास्वादन कर सकते हैं। इसमें राजनीति, धर्मनीति आदि कूट कूटकर भरी है।

शिक्षा ३॥)

अपने बालक-बलिकाओं को हम किस तरह सुशिक्षित तथा सदाचारी बना सकते हैं, यह बात इस पुस्तक में विस्तृत रूप से लिखी गई है। इसके मूल-लेखक हैं सुप्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर तथा अनुवादक आचार्य द्विवेदी जी।

जल-चिकित्सा (सचित्र) मूल्य ।~)

जर्मनी के विख्यात जल-चिकित्सक लुई कुने के सिद्धान्त के अनुसार जल से ही सब रोगों की चिकित्सा करने का इसमें वर्णन किया गया है।

कोविद-कीर्तन मूल्य १)

इस पुस्तक में भारत के बारह अर्वाचीन महापुरुषों और विद्वानों का चरित्र, उनकी कृति तथा जीवन-सम्बन्धी अन्य ज्ञातव्य और आवश्यक बातें हैं। भाषा की रोचकता और विशेषता के विषय में इतना ही काफ़ी है कि पुस्तक द्विवेदी जी के हाथ की लिखी है। पुस्तक नवयुवकों के बड़े काम की है।

मेघदूत मूल्य ।~)

यह भी द्विवेदी जी की ही लेखनी का चमत्कार है। कालिदास के 'मेघदूत' का रसास्वादन करना हो तो इस भावार्थ-बोधक गद्य-अनुवाद को अवश्य पढ़िए।

आलोचनाञ्जलि मूल्य १)

इस पुस्तक में द्विवेदी जी के आलोचनात्मक लेखों का संग्रह है। अधिकांश लेखों में संस्कृत-साहित्य के कई प्राचीन और प्रतिष्ठित ग्रन्थों का परिचय दिया गया है। दो-एक लेख इसमें ऐसे भी हैं जो हिन्दी तथा मराठी भाषाओं के आधुनिक साहित्य से सम्बन्ध रखते हैं। पुस्तक की विशेषता इसी से स्पष्ट है कि वह आचार्य की लिखी हुई है।

कुमारसम्भव मूल्य १)

यदि आप संस्कृत पढ़े बिना ही कवि-कुल-गुरु कालिदास की लेखनी का रसास्वादन करना चाहते हैं, और काव्य का आनन्द लूटना चाहते हैं तो इसे अवश्य मँगाइए।

कुमारसम्भवसार मूल्य ।)

कविकुल-गुरु कालिदास के 'कुमारसम्भव' काव्य का यह मनोहर सार है। द्विवेदी जी ने इसे अपनी सरल, सरस, मनोहारिणी और प्रभाव-शालिनी कविता में लिखा है।

हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति मूल्य ।≈)

पुस्तक का विषय उसके नाम से स्पष्ट है। इसमें हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति के विवेचन के अतिरिक्त और भी अनेक भारतीय भाषाओं पर विचार किया गया है।

नाट्य-शास्त्र मूल्य ।)

इसमें रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचना-चातुर्य, वृत्तियाँ, अलङ्कार-लक्षण, यवनिका, वेश-भूषा, दृश्य-काव्य का काल-विभाग आदि नाटक-सम्बन्धी सभी बातों का वर्णन है।

कालिदास की निरंकुशता मूल्य ।≈)

'सरस्वती' पत्रिका के बारहवें भाग में 'कालिदास की निरंकुशता' शीर्षक एक लेखमाला प्रकाशित हुई थी। हिन्दी-प्रेमियों के आग्रह से वह पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गई है।

विक्रमाङ्कदेव-चरित-चर्चा मूल्य ।≈)

विलक्षण कवि-प्रणीत 'विक्रमाङ्कदेव-चरित' काव्य की यह आलोचना है। पुस्तक में विलक्षण की कविता के कुछ नमूने तथा उनका और विक्रमाङ्कदेव का जीवन-चरित भी है।

रघुवंश

यह कालिदास-कृत रघुवंश का गद्यात्मक हिन्दी-अनुवाद है। इसमें महाकवि की प्रतिभा-प्रदीप्त कल्पनाओं और लोकोत्तर आनन्द देनेवाली उक्तियों के गूढ़ रहस्यों को सबके समझने योग्य हिन्दी-भाषा में विशद रूप से व्यक्त किया गया है। ३०० पृष्ठ की सचित्र सुन्दर और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) तीन रुपये मात्र।



मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

RĀJAṬARAÑGIṆĪ

The saga of the kings of Kaśmīr

THE MEDIEVAL MASTERPIECE OF THE
KAŚMĪRI KAVI KALHANA

[Translated from the original Saṁskṛt and entitled 'RIVER OF KINGS' with an Introduction, Notes, Appendices, Index, etc.]

BY

R. S. PANDIT

WITH A FOREWORD BY

JAWAHARLAL NEHRU

ILLUSTRATED EDITION

PRICE Rs. 18/-

PUBLISHERS:

THE INDIAN PRESS, LTD.,
ALLAHABAD, INDIA

डाबर (डाः एस, के, बर्म्मन) लिः

1936

५० वर्षों से अधिक का सुप्रसिद्ध, अतुल्य देशी पेटट दवाओं का बृहद् भारतीय कार्यालय !
विभाग नं० (१८), पोस्टबक्स ५५४, कलकत्ता ।



घर और बाहर का रक्षक !

पुदीन-हरा (Regd.)

(अर्क पुदीना)

यह हरी पत्तियों से बना है । अजीर्ण, वायु, पेट दर्द आदि बादी के लक्षण इससे शीघ्र मिटते हैं ।

बच्चों के अजीर्ण व दूध की उल्टी को दूर करने में इससे बढ़कर दूसरी दवा नहीं है । बाजारू अन्य पुदीने के अर्क से यह कहीं अधिक गुणकारी है ।

मूल्य—बड़ी शीशी ।।।-) तेरह आना । डा० म० ।≶) छोटी शीशी ।।=) दस आना । डा० म० ।≶) नमूने की शीशी =)।। जो केवल एजेण्टों से ही मिल सकती है ।

नोट—दवाएँ सब जगह मिलती हैं । ख़रीदते समय स्टार ट्रेड मार्क और डाबर नाम अवश्य देख लिया करें ।

इलाहाबाद शहर के सोल एजेंट, मेसर्स दुबे ब्रदर्स (चौक)

स्त्री मात्र के अवश्य पढ़ने योग्य

३ पुस्तकें ।

अमेरिकन स्त्री-शिक्षा—अमेरिका देश की स्त्रियाँ अपने नटखट और बुरे चलन के पतियों को कैसे बस में रखती हैं वह सब इसमें बताया गया है । दाम १।) रु०

जापानी स्त्री-शिक्षा—यह पुस्तक जापान में दो हज़ार वर्ष से दहेज़ में दी जाती है । श्वसुराल में जाकर स्त्रियों को कैसे रहना चाहिए यह इसमें बताया है । सभी देशों की स्त्रियों को उपकारी है । कन्या-पाठशालाओं में बाँटने की चीज़ है । दाम सिर्फ़ ।) आना ।

वेदनाहीन प्रसव—वेदनाहीन प्रसव कैसे हो सकता है यही इसमें बताया गया है । क़ीमत ।।।) आना ।

सुशीला और सुशिक्षित स्त्रियों को **बालसुधा** का नमूना मुफ़्त मिलेगा ।

मँगाने का पता—

सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा

मेरे बच्चे का यह हाल क्यों है ?

दुबले पतले अनमने और कमज़ोर बच्चों के लिए डाक्टर लोग यह अचूक दवा बतलाते हैं

जो बच्चे सदा रोते रहते हैं, वे स्वस्थ नहीं होते। डाक्टर लोग इस बात को स्वीकर करते हैं कि बच्चों के चिड़चिड़ापन और बदमिजाजी का कारण उनके शरीर का स्वस्थ न होना ही है। बच्चों के भोजन में कुछ आवश्यक द्रव्यों का अभाव होने से ही उनकी यह दशा होती है।

ऐसे बच्चों की तन्दुरुस्ती ठीक करने के लिए स्काट का इमलसन बहुत दिनों से प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। इसमें केवल विटामिन 'ए' और 'डी' जो कि शरीर के पोषण के लिए अत्यधिक आवश्यक हैं, की ही अधिकता नहीं है, बल्कि चूना और फ़ासफ़ोरस भी इसमें काफ़ी तादाद में वर्तमान है, जो कि शरीर को स्वस्थ, सबल और उन्नत बनाने तथा हड्डियों और मांसपेशियों को दृढ़ करने के लिए बहुत आवश्यक है। स्काट का इमलसन बहुत ही स्वादिष्ट और हलका है, साथ ही यह साधारण काड लिवर आइल की अपेक्षा तिगुना गुणकारी है।

एक उत्तम श्रेणी की बलवर्द्धक औषधि

साधारण काड लिवर आइल या और भी जितने बलवर्द्धक पदार्थ हैं, स्काट का इमलसन उनसे कहीं-बढ़कर है। इसे पूर्णरूप से गुणकारी बनाने के लिए चूना और कोई दूसरी वस्तु मिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। जैसे यह बच्चों के लिए गुणकारी है, वैसे ही बड़ी अवस्था के लोगों के लिए भी लाभदायक है। इसका सेवन करने से किसी प्रकार का भी रोग पास नहीं आने पाता। हर तरह की कमज़ोरी को दूर करने के लिए डाक्टर लोग साठ वर्ष से भी अधिक पहले से 'स्काट का इमलसन' का उपयोग करते आ रहे हैं।

माता पिताओं के लिए यह बड़े काम का है।

स्काट का इमलसन हड्डी बनाता है

यह मक्खन या ताज़े दूध से अस्सी गुना गुणकारी है। यह अंडे से दुगुना गुणकारी है।

बाढ़ के लिए

मक्खन से यह आठगुना गुणकारी है। केला से सौगुना गुणकारी है।

विशुद्ध कॉट लिवर आइल से बना हुआ स्काट का इमलसन

SCOTT'S Emulsion

थोक-विक्रेता—इम्पीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज (इंडिया) लिमिटेड। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर, रंगून, कोलंबो, कानपुर, पटना,

FREE FREE

A QUICK WAY TO BANISH DIABETES

THE GREATEST ANTIDOTE EVER OFFERED TO THE CIVILIZED WORLD TO COMBAT DIABETES

THE MOST ASTONISHING FACTS, ABOUT THE CURE ARE—

NO DIETING NO FASTING NO INJECTION

10,000

Copies of the valuable Booklet describing Diabetes and its treatment will be mailed POST FREE to every sufferer asking for a copy

If you are a sufferer take this quick way to freedom from the tortures of Diabetes. Forget how long you have suffered. Forget the various things you have already tried in vain, forget all you have heard about Diabetes being incurable and decide that you will make one more effort for a positive cure. Send for the Booklet to-day. It will convince you that it is an easy matter to dispel Diabetes from the system. It has never failed.



COUPON

To Venus Research Laboratory
P. B. 587, CALCUTTA

DEPT. ....

Date ....

Please post at once a copy of the Valuable Booklet on Diabetes and its treatment FREE

NAME ....

ADDRESS ....

VENUS RESEARCH LABORATORY

POST BOX 587, CALCUTTA

लेख-सूची

चित्र-सूची



वसिष्ठ की गौ

[चित्रकार—श्रीयुत रामगोपाल विजयवर्गीय

भगवान की

शब्दमय मूर्ति



श्रीमद्भागवत

संसार-सागर पार करने के लिए मनुष्यों को एक ही अवलम्ब

प्रथम अंक प्रकाशित हो गया

दूसरा अंक प्रेस में छप रहा है

लगभग ३ खण्डों या १५ अंकों में समाप्त

पृष्ठ-संख्या १५०० के लगभग

अनेक प्रकार के चित्रों से अलंकृत

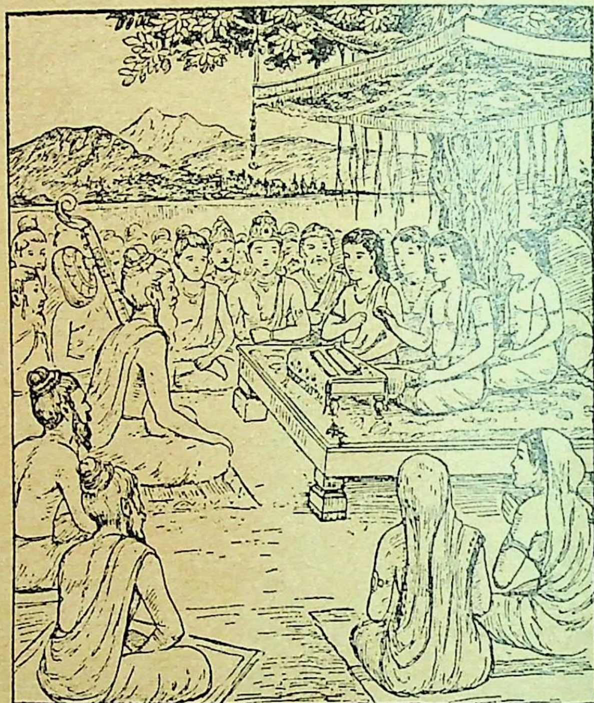
 विशेष बात जानने के लिए पृष्ठ उलट कर देखिए

मैनेजर श्रीमद्भागवत-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

श्रीमद्भागवत के १ पृष्ठ का नमूना



गये। वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग आगे बैठे तथा सबके आगे नारदजी बैठे। कथा सुनने के लिए एक ओर सब ऋषि, एक ओर सब देवता और वेद-उपनिषद् आदि धर्म-शास्त्र बैठे तथा दूसरी ओर स्त्रियों का समुदाय बैठा। नमो नमः, जयजयकार और वाह-वाह करते हुए सब लोग फूल, अक्षत, लावा आदि बरसाने लगे। शङ्ख, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। विमानों पर सवार बहुत से देवता आकाश से कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।



सूतजी कहते हैं कि इस रीति से पूजा हो चुकने पर लोग जब कथा सुनने के लिए चित्त को एकाग्र करके बैठ गये तब सनक आदि ऋषि नारदजी से भागवत के विस्तृत माहात्म्य का वर्णन यों करने लगे—देवर्षिजी, पहले हम श्रीमद्भागवत के पढ़ने और सुनने का माहात्म्य सुनाते हैं। उसके सुनते ही मुक्ति सुलभ हो जाती है। श्रीमद्भागवत की कथा को सदा सुनता-सुनाता रहे; क्योंकि इसके सुन लेने से ही भगवान् हृदय में आ विराजते हैं। इस पुराण में अट्ठारह हज़ार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं। इसमें राजा परीक्षित् और शुकदेवजी का संवाद है। हम वही पुराण आपको सुनाते हैं। जीव तभी तक संसार-चक्र में भटकता रहता है जब तक उसके कानों में भागवत की कथा नहीं पड़ती। भ्रम में डालनेवाले बहुत से शास्त्रों और पुराणों के सुनने से क्या लाभ है? मुक्ति देनेवाला सर्वोत्तम शास्त्र तो भागवत ही है। इसी को सुनना चाहिए। वह घर तीर्थ के तुल्य पवित्र है जिसमें भागवत की कथा नित्य होती है। उसमें रहनेवालों के सारे पाप दूर हो जाते हैं। भागवत की सोलहवीं कला को भी सैकड़ों वाजपेय यज्ञ और हज़ारों अश्वमेध नहीं पहुँचते। हे मुनियो, इस शरीर (और अन्तःकरण) में उसी समय तक पाप रहते हैं जिस समय तक प्राणी श्रीमद्भागवत की कथा नहीं सुनते। गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर और प्रयागराज आदि तीर्थ इस पुराण की बराबरी नहीं कर सकते।

सरस्वती के ग्राहकों के लिए भेंट

श्रीमद्भागवत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत का मूल्य १।) प्रतिअङ्क के हिसाब से १८॥।) के लगभग होगा; परन्तु स्थायी ग्राहकों से १) प्रतिअङ्क के हिसाब से १५) के लगभग लिया जायगा। डाक-ख़र्च ग्राहकों के ही ज़िम्मे रहेगा।

(२) जो सज्जन मनीआर्डर-द्वारा साल भर का मूल्य १२) पेशगी भेज देंगे या पहला अङ्क १२) के वी० पी० से भेजने की आज्ञा देंगे उनसे डाक-ख़र्च न लिया जायगा। किन्तु प्रतिमास रजिस्ट्र-द्वारा प्रतियाँ भेजने के लिए उन्हें ≈) प्रतिअङ्क राजिस्ट्री-ख़र्च देना आवश्यक होगा; क्योंकि साधारण डाक द्वारा भेजी गई प्रतियों के गुम हो जाने का डर रहता है।

(३) पुस्तक की जिल्दबन्दी के सुभीते के लिए बहुत सुन्दर जिल्दें (दफ़्तियाँ) तैयार कराई जायँगी। जो लोग चाहेंगे उनके पास भेज दी जायँगी जिसमें वे सुभीते से, कम दाम पर, बढ़िया जिल्द बँधवा सकेंगे। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ॥।) रहेगा परन्तु स्थायी ग्राहकों से ॥) ही लिया जायगा।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक नम्बर, जो पते की स्लिप के साथ छपा रहता है, और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा या अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय, अपने पुराने और नये दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोचकर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्र-व्यवहार का पता—

मैनेजर श्रीमद्भागवत-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

(इस फ़ार्म को फाड़ लीजिए और खानापुरी करके हमारे पास भेज दीजिए)

श्रीमद्भागवत के स्थायी ग्राहकों के लिए

आर्डर-फ़ार्म

मैनेजर श्रीमद्भागवत-विभाग
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

स्थान.... ....
ता०.... ....१९३

महोदय,

मासिक रूप से प्रकाशित होनेवाले श्रीमद्भागवत का मैं स्थायी ग्राहक होना चाहता हूँ, ग्राहकों में मेरा नाम लिख लीजिए। मैं आपकी इस विषय की नियमावली पढ़ चुका हूँ, और पूरे तौर से मानने के लिए तैयार हूँ।

(१) वर्ष भर का मूल्य १२) रुपये मनीआर्डर-द्वारा भेजता हूँ। / वी० पी० द्वारा पहला अङ्क भेजकर मँगा लीजिए।

(२) हर महीने प्रत्येक अङ्क वी० पी० से भेजते रहिए।

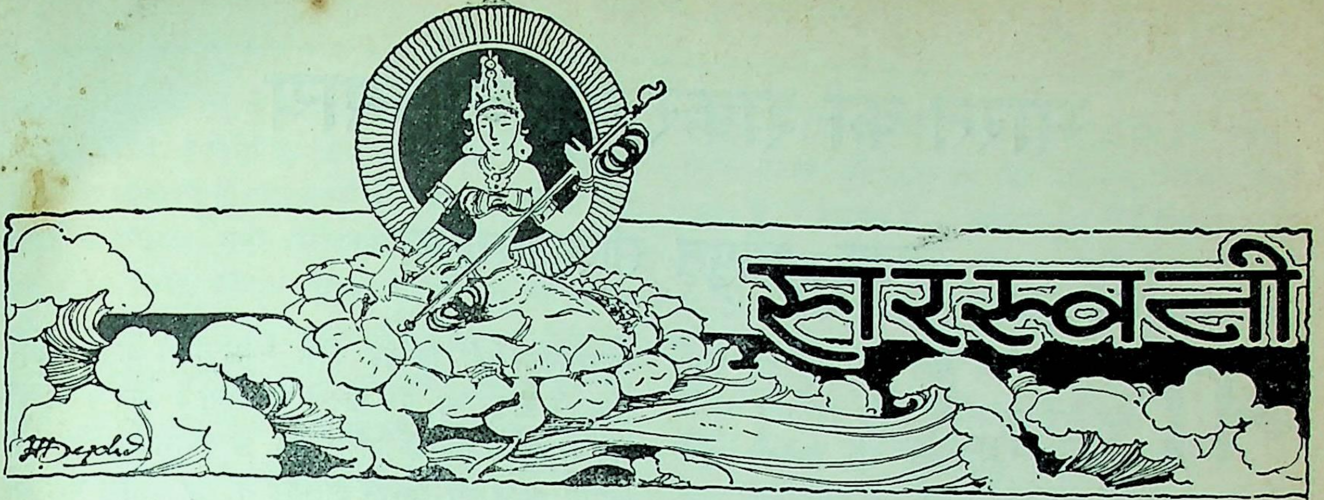
नाम ____________________

पूरा पता ____________________

____

सूचना—(१) और (२) वाक्यों में से जो स्वीकार हो उसके अतिरिक्त दूसरा वाक्य स्याही से काट दीजिए और दूसरी ओर तीन पैसे का टिकट लगाकर डाकख़ाने में छोड़ दीजिए।

यह फ़ार्म भर कर भेजिए



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मई १९३६ } भाग ३७, खंड १ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४३७ { वैशाख १९९३

युग-प्रभात

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

वे डूब गये—सब डूब गये
दुर्दम, उदग्रशिर, अद्रि-शिखर !
स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप में
लो, स्वर्ण-स्वर्ण अब सब भूधर !
    पल में, कोमल पड़, पिघल उठे
    सुन्दर बन, जड़ निर्मम प्रस्थर,
    सब मन्त्र-मुग्ध हो, जड़ित हुए,
    लहरों-से चित्रित लहरों पर !

मानव-जग में गिरि सदृश अड़ीं
गत युग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बन्दी की हैं मानवता को
रच देश-जाति की भित्ति अमर !
    ये डूबेंगी—सब डूबेंगी
    पा नव मानवता का विकाश,
    हँस देगा स्वर्णिम वज्र-लौह
    छू मानव-आत्मा का प्रकाश !

भारत का शक्कर का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

भारतवर्ष को इस बात का प्राकृतिक और जन्म-सिद्ध अधिकार है कि वह सारे पृथ्वी-मण्डल को शक्कर बना कर खिलावे। इस देश में ईख की खेती कोई चार हज़ार बरस से हो रही है। भारत की अधिकांश भूमि ईख की उपज के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। केवल अकेले इस व्यवसाय के विकसित हो जाने पर इस देश में लाखों आदमियों को जीवनपर्यन्त लाभदायक रोज़गार और सुखमय जीवन मिल सकता है और प्रतिवर्ष करोड़ों की सम्पत्ति पैदा हो सकती है।

केवल तीन वर्ष हुए, सरकार ने शक्कर के व्यवसाय को संरक्षण दिया है और वह भी सम्पूर्ण संरक्षण नहीं। फिर भी हम तीन वर्ष के अन्दर ही ७ लाख ८० हज़ार टन शक्कर बनाने लग गये हैं, जिसका मूल्य १५ करोड़ ६० लाख रुपये के क़रीब होता है। इसके अलावा हम कम से कम २७ लाख मन गुड़ प्रतिवर्ष बनाते हैं और ६० लाख मन खड़सारी शक्कर। अगर इस देश की सरकार इस व्यवसाय की उन्नति में उसी उत्साह के साथ दिलचस्पी ले, जिस उत्साह से ब्रिटिश गवर्नमेंट अपने यहाँ के व्यवसायों की उन्नति में दिलचस्पी ले रही है, तो दस वर्ष में हम प्रतिवर्ष १५ लाख टन शक्कर बना सकते हैं और हमारा केवल शक्कर का व्यवसाय ही ३२ करोड़ रुपये का हो सकता है। यही व्यवसाय लाखों भारतीयों को रोज़ी से लगा देगा और इस दरिद्र देश को कुछ सम्पन्न कर देगा।

समाचारपत्रों से मालूम होता है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ब्रिटेन में शक्कर के व्यवसाय की सहायता के लिए क़ानून बना रही है। कृषि-मंत्री मिस्टर इलियट पार्लियामेंट में एक बिल गवर्नमेंट की ओर से पेश कर रहे हैं, जिसका आशय यह है कि इस व्यवसाय के लिए गवर्नमेंट की ओर से जो सहायता अभी तक दी जाती रही है, स्थायी कर दी जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बिल स्वीकृत हो जायगा और शीघ्र ही क़ानून का रूप धारण कर लेगा। नोट करने की बात यह है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने इस बिल का समर्थन करते हुए मिस्टर इलियट ने यह दलील पेश की थी कि इस व्यवसाय से लाखों अँगरेज़ किसानों का पालन-पोषण हो रहा है। अगर गवर्नमेंट ने सहायता बन्द कर दी तो जो आठ लाख किसान इस रोज़गार में लगे हुए हैं, बेकार हो जायँगे। बहुत मुनासिब दलील है और देश-भक्त कृषि-मंत्री मिस्टर इलियट को जैसा सोचना चाहिए वैसा ही उन्होंने सोचा है। प्रजा के रोज़गार का बढ़ाना आज-कल सभी गवर्नमेंटों का परम कर्तव्य हो रहा है।

शक्कर के ब्रिटिश व्यवसाय के बारे में पारसाल एक कमिटी बनी थी—ग्रीन-कमिटी। वह इस नतीजे पर पहुँची थी कि "हमारी यह ज़ोरदार राय है कि ऐसे व्यवसाय पर जिसके बारे में कभी इस बात की सम्भावना नहीं हो सकती कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा, या ऐसी फ़सल के लिए जिसकी उपज गवर्नमेंट की सहायता के बिना, शक्कर का मौजूदा भाव देखते हुए, कोई एक टके को भी लेने को तैयार नहीं होगा, लाखों पौंड प्रतिवर्ष ख़र्च करना कदापि न्याय-संगत नहीं है"।

ब्रिटिश गवर्नमेंट सन् १९२४ से आज तक ५ करोड़ पौंड अर्थात् ६५ करोड़ रुपये सरकारी ख़ज़ाने से इस व्यवसाय को जीवित रखने के लिए ख़र्च कर चुकी है, यद्यपि इस व्यवसाय से आज तक इतना मुनाफ़ा नहीं निकला है।

मिस्टर इलियट और ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अपने शक्कर के व्यवसाय की सहायता का निश्चय ग्रीन-कमिटी की रिपोर्ट की आलोचना के बाद किया है।

ब्रिटिश गवर्नमेंट की यह नीति आश्चर्य-जनक नहीं है। वह तो बहुत दिनों से अपने अनेक व्यवसायों की रक्षा के लिए करोड़ों रुपये ख़र्च कर रही है। जहाज़ बनाने के

व्यवसाय को इस वर्ष भी उसने ३ करोड़ रुपये की सहायता दी है। ब्रिटेन स्वदेशी का सच्चा अनुयायी है। ब्रिटेन में शक्कर के व्यवसाय में स्वावलम्बी होने की, ग्रीन-कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार, कभी सम्भावना नहीं है। यह व्यवसाय ६५ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष आज दस वर्ष से खा रहा है और ज़रा भी तरक्क़ी नहीं कर सका है। इस पर भी ब्रिटिश गवर्नमेंट इसको सहायता देती आई और अब इस सहायता को स्थायी कर रही है। भारत-सरकार को ब्रिटिश गवर्नमेंट की इस नीति का अनुसरण करना चाहिए। भारतवर्ष में शक्कर के व्यवसाय की उन्नति के लिए तो असीम सम्भावनायें हैं।

विश्वसनीय ख़बर है कि शीघ्र ही एक कमिटी बिठाई जानेवाली है, जिसका उद्देश यह होगा कि वह सन् १९३२ के शक्कर-संरक्षण-क़ानून के प्रभाव पर विचार करे और इस बात पर राय ज़ाहिर करे कि इस क़ानून को वापस ले लेना कहाँ तक मुनासिब होगा। सन् १९३२ में जब शक्कर-संरक्षण-क़ानून पास हुआ था, एक हंडरवेट विलायती शक्कर पर (जो डेढ़ मन के क़रीब होता है) गवर्नमेंट ने ७।) टैक्स बाँध दिया था। इस पर २५ प्रतिशत सर चार्ज टैक्स और लगा। विलायती शक्कर पर इस प्रकार एक हंडरवेट पर ९-) का कर लग गया। और इस क़ानून को सन् १९४६ तक जारी रखने का निश्चय किया गया। इस टैक्स की वजह से जावा और अन्य स्थानों की विलायती शक्कर हिन्दुस्तान में महँगी पड़ने लगी और देशी व्यवसाय को पनपने का मौक़ा मिल गया। सन् १९३२ से १९३५ तक अर्थात् केवल तीन वर्ष के अन्दर शक्कर के व्यवसाय ने इस देश में असाधारण उन्नति की। पूँजी जिसे कहा जाता है कि भारतवर्ष में कम लगाई जाती है, बात की बात में उबल पड़ी। २० करोड़ रुपये के क़रीब की पूँजी इस व्यवसाय में फ़ौरन लग गई। युक्त-प्रान्त और बिहार के प्रदेश तो इस क़ानून से बहुत लाभ में रहे। संयुक्त-प्रान्त के खीरी, सीतापुर, गोरखपुर, बस्ती, हमीरपुर इत्यादि ज़िलों के जो अन्तस्थल पहले उजड़े हुए थे, इस संरक्षण के कारण गुलज़ार हो गये। करोड़ों रुपये की सम्पत्ति इन स्थानों में आकार एकत्र हो गई। आस-पास के लाखों किसानों और मज़दूरों को रोज़गार मिल गया। १९३० में इस देश में शक्कर बनाने की कुल ४८ मिलें थीं—५ मदरास में, १ बम्बई में, २ पञ्जाब में, १ ब्रह्मदेश में, १३ बिहार में और २६ युक्तप्रान्त में। १९३४ में ११५ मिलें हो गईं, और १९३५ में १३८। १० मदरास में, ६ बम्बई में, ७ पञ्जाब में, ५ बङ्गाल में, २ ब्रह्मदेश में, ३५ बिहार में और ६५ युक्त-प्रान्त में। १९३१ और १९३५ के बीच मिलों की संख्या में ४०० प्रतिशत की वृद्धि हुई!

इतना हम जानते हैं कि किसानों को शक्कर-संरक्षण-बिल से काफ़ी फ़ायदा हुआ है। सारे भारत में गन्ने की खेती १९२९-३० में २६,७७,००० एकड़ में थी, १९३३-३४ में ३३,४९,००० एकड़ में हो गई। उत्तर-भारत में जहाँ पहले पोस्ता की खेती होती थी और जिसके बन्द कर दिये जाने से किसान बरबाद हो गये हैं, आज गन्ने की खेती भगवान् की कृपा समझी जाती है। रायबरेली के ज़िले में (और क़रीब क़रीब सभी ज़िलों में जहाँ पोस्ता बोया जाता था) पोस्ता के कारण ही लगान की मात्रा असाधारण रूप से बढ़ गई थी और आज तक बढ़ी चली आती है। पहले यह क़ायदा था कि एक किसान १० बीघा खेत लेता था। साधारण रूप से दुमट खेत के लिए जहाँ पानी की सुविधा है, दस बीघे के लिए ७५) रुपये लगान मुनासिब माना जा सकता है। जब पोस्ता की बुआई होती थी, इस १० बीघे के लिए १५०) रुपये दे देना किसान को ज़रा भी नहीं अखरता था, क्योंकि १ बीघा पोस्ता बोकर वह साल में १५० रुपये आसानी से पैदा कर लेता था, और इससे वह अपना लगान अदा कर लेता था और बाक़ी नौ बीघे की खेती की उपज उसके कुटुम्ब के ख़र्च के लिए और तालुक़ेदार और उसके मुलाज़िमों की नज़रों और नज़रानों में ख़र्च होती थी। केवल रायबरेली-ज़िले में सन् १९०३ में २८ हज़ार एकड़ में पोस्ता की खेती होती थी। सन् १९०० में इस ज़िले में ५ हज़ार मन अफ़ीम पैदा हुई थी और इससे १५ लाख रुपये प्रतिवर्ष किसानों को लाभ होता था*। इसी प्रकार अन्य ज़िलों का भी हाल समझा जा सकता है। किन्तु जब इस प्रदेश में

* डिस्ट्रिक्ट गज़टियर सफ़ा ३३।

पोस्ता की खेती रोकी गई, तब लगान घटाने का कोई इन्तज़ाम नहीं किया गया। लगान वही १५०) का १५०) बना रहा। किसानों की आपत्ति का यह श्रीगणेश था। पोस्ता की खेती के बन्द हो जाने से जो घाटा किसान-समुदाय को हुआ है, ईख की खेती से उसकी पूर्ति हो जायगी।

गन्ने की खेती में जहाँ नहर है या जहाँ पानी की सुविधा है, किसान को लगान वग़ैरह सब ख़र्च दे देने के बाद साधारण फ़सल में ६५) रुपये प्रतिबीघा की बचत होती है। दो बीघे की गन्ने की खेती से किसान १० बीघे का लगान दे सकता है। अभी तक गन्ने की बिक्री का गाँवों में इतना अच्छा इन्तज़ाम नहीं है, जितना पोस्ता बेचने का था। उपज में भी अनेक दिक़्क़तें आती हैं। लेकिन ये सब हटाई जा सकती हैं। ज़रूरत इस बात की है कि किसान को इस बात का विश्वास हो जाय कि उसका गन्ना अगले दस वर्ष तक ५ आने या ६ आने मन के हिसाब से बिकता जायगा। इस विश्वास के बाद सारे अवध, बिहार, पञ्जाब और सीमा-प्रान्त में गन्ने की खेती बहुत तेज़ी के साथ बढ़ने लगेगी और उसके साथ ही साथ किसानों की आमदनी भी।

लेकिन कठिनाई क्या है? किसान की दृष्टि से एक कठिनाई तो यह है कि सरकार की ओर से उसे गन्ने की खेती में विशेष सहायता नहीं मिलती। अगर नहर नहीं है तो कुएँ का इन्तज़ाम कोई भी तालुक़ेदार नहीं करता। गवर्नमेंट का कृषि-विभाग आकाश में मँडराता रहता है। उसके प्रयोग ऐसी परिस्थिति में होते हैं जो सिवा प्रयोगशाला के हाते के, इस देश में कहीं भी अन्यत्र नहीं पाये जाते। इसलिए यह विभाग जिन नतीजों पर पहुँचता है या किसानों को जो सलाहें देता है, कभी उपयुक्त साबित नहीं होतीं। लेकिन यह तो दूसरी बात है।

इस समय अंदेशा किसानों को और व्यवसायियों को यह है कि कहीं १९३२ का शक्कर-संरक्षण-क़ानून अवधि के पहले ही वापस न ले लिया जाय। एक ज़ोरदार आन्दोलन चलाया जा रहा है, जिसका उद्देश यह है कि अगर यह क़ानून समय के पहले मन्सूख़ न कराया जा सके तो इसका प्रभाव तो ज़रूर ही नगण्य कर दिया जाय। एक कमिटी जैसा पहले कहा गया है, शीघ्र बिठाई जायगी जो १९३२ के शक्कर-संरक्षण-क़ानून के प्रभावों का अध्ययन करेगी, और यह सलाह देगी कि अगर संरक्षण-क़ानून समय के पहले वापस ले लिया जाय तो कहाँ तक मुनासिब होगा। इस कमिटी का बिठाना ही हम आपत्तिजनक मानते हैं। जब १९३२ के क़ानून के साथ इस बात का साफ़ आश्वासन मिला है कि यह क़ानून १९४६ तक क़ायम रहेगा, कोई वजह नहीं मालूम होती कि कोई कमिटी बिठा कर इस आश्वासन का निरादर किया जाय। हमें शङ्का होती है, क्योंकि १९३२ में दिये हुए संरक्षण में १।–) की कमी सन् १९३४ में हो चुकी है। शक्कर के देशी व्यवसाय पर गवर्नमेंट ने १ अप्रेल सन् १९३४ से १।–) प्रति हंडरवेट चुङ्गी लगा दी है।

ईख हमारी बहुत पुरानी खेती है और गुड़ हमारा बहुत पुराना व्यवसाय है। और गौड़-देश की अगर हम यह परिभाषा करें कि 'वह देश जहाँ गुड़ पैदा होता हो' तो बेजा न होगा। भारत से बढ़ कर गन्ने की उपज के लिए कोई दूसरा स्थान उपयुक्त नहीं। हमारा यह जन्मसिद्ध और ईश्वरदत्त अधिकार है कि हम शक्कर के व्यवसाय में संसार भर में सबसे आगे रहें।

क्या यह आश्चर्य और खेद की बात नहीं है कि वही भारत विदेशी शक्कर ख़रीदे। १९२१-२२ में हमने विदेशों से २७½ करोड़ रुपये की शक्कर ख़रीदी थी, जिसमें से २३½ करोड़ की जावा से आई थी। ५ वर्ष के बाद यह वैदेशिक व्यापार रुपयों की सूरत में कुछ घटा, क्योंकि शक्कर का भाव गिर गया था। हमने १९२६-२७ में १८ करोड़ ८९ लाख रुपये की विदेशी शक्कर ख़रीदी, जिसमें से १४ करोड़ रुपये की जावा से आई थी। सन् १९३०-३१ में हमारी ख़रीद घट कर १० करोड़ और ९६ लाख की रह गई। इसमें ९ करोड़ ८५ लाख की शक्कर जावा की थी। इन अंकों से यह ग़लत आभास हो जाता है कि सन् १९२० और सन् १९३० के अंदर शक्कर का वैदेशिक व्यापार घटा। वास्तव में बात यह है कि दाम तो ज़रूर घटे, लेकिन मात्रा में ज़्यादती हुई थी। सन् १९२०-२१ में इस देश में ७,८२,६६८ टन विदेशी शक्कर आई थी। सन् १९२६-२७

में ९,२२,८६२ टन और सन् १९३०-३१ में १०,०३,१७७ टन आई। संरक्षण-क़ानून के पास होने के बाद विलायती शक्कर का ज़ोर इस देश में ज़रूर कम हुआ। १० लाख ३ हज़ार ११७ टन घटकर १९३२-३३ में ४ लाख १ हज़ार ४४१ टन रह गये और क़ीमत १० करोड़ ९६ लाख रुपये से घट कर ३२-३३ में ३ करोड़ ८० लाख रह गये थे। सन् १९३४ में हमने २ लाख ६० हज़ार टन शक्कर विदेशों से ख़रीदी और सन् १९३५ में २ लाख २० हज़ार टन। अगर शक्कर-संरक्षण क़ायम रहे तो दस बरस के अंदर हम इतनी उन्नति कर सकते हैं कि शक्कर के लिए हम स्वावलंबी हो जायँगे, साथ ही दुनिया की माँग में भी हिस्सा बँटा सकेंगे। अर्थ-शास्त्रज्ञों का विचार है कि हम १९३५-३६ में केवल गन्ने से ८,८७,००० टन और १९३६-३७ में १०,०७,००० टन शक्कर बना लेंगे। हमारी स्वदेशी माँग ९ लाख टन की है। अतएव १ लाख ७ हज़ार टन शक्कर हमारे पास विदेशों को भेजने के लिए बच जायगी।

इस पृथ्वी पर शक्कर बनानेवाले प्रमुख देश चंद ही हैं। भारतवर्ष की दृष्टि से पहला नम्बर जावा का है। यह मलाया-द्वीपों में से एक साधारण द्वीप है और डच लोगों के क़ब्ज़े में है। इसका क्षेत्रफल ५० हज़ार वर्गमील होगा और इसकी आबादी २ करोड़ के क़रीब है। यहाँ की मिलें यों तो डचों की हैं, किन्तु इन मिलों में अनेक अँगरेज़ी पूँजीपतियों का भी काफ़ी हिस्सा है। भारत से इस द्वीप का शक्कर के व्यापार में बहुत बड़ा सम्बन्ध रहा है। जावा के बाद हम मारिशस को ले सकते हैं। यह ब्रिटिश उपनिवेश है और ब्रिटिश भारतीय समुद्र में एक छोटा-सा टापू है। ७२० वर्गमील इसका क्षेत्रफल है और इसकी आबादी पौने चार लाख के क़रीब होगी, जिसमें आधे से ज़्यादा हिन्दुस्तान का कुली-समुदाय शामिल है। हिन्दुस्तान की शक्कर की माँग जावा के बाद मारिशस ही पूरी कर रहा था। सन् १९२०-२१ में इस प्रदेश से सवा दो करोड़ रुपये की शक्कर इस देश में आई थी। लेकिन अब बिलकुल बन्द है। यद्यपि हाँग-काँग, इँग्लेंड, मिस्र, जापान, जर्मनी, और आस्ट्रिया-हंगरी, ये सब देश कुछ न कुछ शक्कर भारतवर्ष में बेचते रहे हैं, तथापि मात्रा साधारण रही है। और अब इनका व्यापार धीरे धीरे मन्द पड़ गया है।

संसार में शक्कर का व्यापार—अब हम थोड़ी देर के लिए संसार भर में शक्कर के व्यवसाय की ओर ध्यान देंगे। हिन्दुस्तान की माँग तो जावा पूरी करता रहा है, लेकिन संसार की शक्कर की माँग योरप और अमरीका के अनेक प्रान्तों-द्वारा होती रही है। इनमें क्यूबा द्वीप का सबसे पहला स्थान है। क्यूबा अमरीका के दक्षिण मेक्सिको की खाड़ी में एक द्वीप है। पहले यह स्पेन के क़ब्ज़े में था। लेकिन इसे अमरीका ने छीन लिया और यहाँ प्रजातंत्र की स्थापना हो गई। इसका क्षेत्रफल ४४ हज़ार वर्गमील है और आबादी ३६ लाख के क़रीब होगी। इसमें ताँबे की बहुत बड़ी खानें हैं, तम्बाकू और क़हवा की उपज ख़ूब है, और शक्कर का तो यह घर ही है। यहाँ का सारा व्यवसाय अमेरिकन पूँजीपतियों के हाथ में है।

संसार की शक्कर की सम्पूर्ण उपज २ करोड़ ७३ लाख टन में से १९३०-३१ में ३१ लाख २२ हज़ार टन केवल क्यूबा ने पैदा की थी। यह जावा और जर्मनी दोनों से अधिक शक्कर पैदा करनेवाला द्वीप है, क्योंकि जावा ने उस वर्ष केवल २८ लाख टन और जर्मनी ने २५ लाख २९ हज़ार टन शक्कर पैदा की थी। क्यूबा की सम्पूर्ण उपज पहले अमरीका जाती है। अमरीकन क़ौम भी हिन्दुस्तानी क़ौम की तरह बहुत मिष्टान्न-प्रिय है और वहाँ प्रतिवर्ष ६५ लाख टन शक्कर खप जाती है। अमरीका के प्रजातन्त्र में क्यूबा की शक्कर २० वीं शताब्दी से ही निष्कर दाख़िल होती आई है।

अन्य देशों से आई हुई शक्कर पर टैक्स लगा दिया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अमरीका को शक्कर के लिए केवल क्यूबा पर निर्भर रहना पड़ता है। अमरीका में गन्ने की शक्कर बनती है और चुक़न्दर की भी। हवाई, पोरटो रिको, और फ़िलपाइन भी अपने अपने यहाँ शक्कर बना कर उसे अमरीका में बेचते हैं।

क्यूबा के बाद जर्मनी का नम्बर है। १९३०-३१ के आँकड़ों के आधार पर संसार के शक्कर बनानेवाले देशों में इसका नम्बर तीसरा था। यहाँ उस वर्ष २५ लाख २९

हज़ार टन शक्कर बनी थी। फिर ज़ेकोस्लोवोकिया का नम्बर है। इसमें ११ लाख २६ हज़ार टन शक्कर बनी थी। इसके बाद पोलेंड का नम्बर है, जहाँ ७ लाख ९२ हज़ार टन शक्कर बनी।

इस स्थल पर १९३१ के शैडबोर्न-समझौते का ज़िक्र कर देना ज़रूरी मालूम होता है। यह शैडबोर्न-समझौता संसार के शक्कर बनानेवाले देशों का आपसी समझौता इस उद्देश से हुआ था कि शक्कर की उपज ज़्यादा न की जाय, जिससे उसका भाव न गिरे। इस समझौते में क्यूबा, पेरू, जावा, जर्मनी, ज़ेकोस्लोवोकिया, पोलेंड आदि देश शामिल थे। इसमें यह तय हुआ था कि पाँच बरस तक एक निश्चित मात्रा से अधिक शक्कर कोई भी देश बाहर न भेजेगा। इनका ख़याल था कि ऐसा करने से शक्कर का भाव ऊँचा हो जायगा और उसके व्यापार में स्फूर्ति आयेगी। लेकिन यह शैडबोर्न-योजना असफल रही।

प्रश्न यह होता है कि शैडबोर्न-समझौता क्यों हुआ? युद्ध के बाद संसार भर के राष्ट्रों को इसका अनुभव हो गया कि स्वदेशी का सिद्धान्त बहुमूल्य सिद्धान्त है। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी आवश्यकता की चीज़ों के लिए पराये देशों पर निर्भर रहना बेहद बेवक़ूफ़ी और ख़तरे की बात है। जर्मनी ने तो अपनी पराजय का मुख्य कारण स्वदेशी के सिद्धान्तों की अवहेलना ही माना है। इसलिए युद्ध के बाद हर एक स्वतन्त्र देश ने विदेशी वस्तुओं पर ज़ोरदार कर लगाकर अपने अपने यहाँ प्रत्येक क़िस्म के व्यवसाय की उन्नति करना शुरू कर दिया। शक्कर की उपज भी सर्वत्र शुरू हो गई। जहाँ गन्ने की शक्कर नहीं बन सकती थी, वहाँ चुक़न्दर की शक्कर बनने लगी। १९१९-२० में संसार भर में चुक़न्दर से केवल ३२ लाख ५४ हज़ार टन शक्कर बनी थी। १९३०-३१ में १ करोड़ १२ लाख ६१ हज़ार टन चुक़न्दर की शक्कर बनी। प्रत्येक शक्कर बनानेवाले देश ने तो अपनी अपनी उपज ख़ूब ही बढ़ा दी। क्यूबा १९१९-२० में ३७ लाख ३० हज़ार टन शक्कर पैदा करता था, पर १९२९-३० में उसकी उपज ४६ लाख ७१ हज़ार टन हो गई। जर्मनी ने १९१९-२० में ७ लाख ३० हज़ार टन शक्कर बनाई थी, पर १९२९-३० में उसकी उपज १९ लाख ३८ हज़ार टन हो गई। ज़ेकोस्लोवोकिया ने उस साल ४ लाख ८३ हज़ार टन शक्कर बनाई थी। १९२९-३० में उसने १० लाख ७ हज़ार टन बनाई। पोलेंड ने अपनी उपज १ लाख ३९ हज़ार से बढ़ाकर ९ लाख १६ हज़ार टन प्रतिवर्ष कर दी।

परिणाम यह हुआ कि १९३१ में ७० लाख टन शक्कर मालगुदामों में जमा हो गई थी, जिसका कोई भी ख़रीदार नहीं मिलता था। क्यूबा में ही १७ लाख ७२ हज़ार टन शक्कर पटी पड़ी थी। शैडबोर्न का समझौता शक्कर के इस स्टाक को कम करने के लिए हुआ था। इस समझौते के अनुसार हस्ताक्षर करनेवाले देशों ने अपने अपने यहाँ शक्कर की उपज कम की और वैदेशिक निर्यात पर नियन्त्रण किया। इन लोगों ने १ करोड़ २५ लाख टन से अपनी उपज घटाकर ६१ लाख टन कर दी। लेकिन इससे इनका मतलब सिद्ध नहीं हुआ। इन्होंने तो अपनी उपज में ६० लाख टन शक्कर कम की, लेकिन संसार के अन्य देशों ने उसकी पूर्ति कर दी। १९२९-३० में २ करोड़ ७३ लाख टन शक्कर दुनिया भर में बनी थी। १९३३-३४ में २ करोड़ ५१ लाख टन बनी। केवल २२ लाख टन की कमी रही। शक्कर बनानेवाले देशों को ६० लाख टन का नुक़सान हुआ। अमरीका और उससे संयुक्त देशों ने अपनी उपज ३५ लाख टन से ५० लाख टन कर दी और ब्रिटिश साम्राज्य की शक्कर की उपज ४६ लाख टन से ७४ लाख टन हो गई। शैडबोर्न-समझौता इस प्रकार मिट्टी में मिल गया।

संसार भर के लोग साल भर में २ करोड़ ६४ लाख टन शक्कर खा जाते हैं। लेकिन स्वदेशी के सिद्धान्त के प्रचार के कारण अब केवल ३० लाख टन शक्कर के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की गुंजाइश रह गई है। २ करोड़ ३४ टन शक्कर भिन्न भिन्न देश अपने अपने यहाँ बना कर स्वयं काम में ले आते हैं।

(३)

भारतवर्ष में शक्कर के व्यवसाय की असाधारण उन्नति का प्रभाव यह हुआ है कि जो जावा अभी तक शक्कर का व्यापार करके मालामाल हो गया था, उसके व्यापार का

नाश हो गया है। "जावा के प्लांटरों के दृष्टिकोण से" एक सज्जन लिखते हैं—"भारत के इस राष्ट्रीय व्यवसाय के अचानक विकास का नाशकारक प्रभाव पड़ा है। इसी विकास के साथ साथ यह भी हुआ है कि जावा की चीनी का बाज़ार भी उखड़ गया है और जापान से उसका निर्यात व्यापार भी मन्द पड़ गया है। जावा के व्यापार पर इसका प्रभाव हम १९२८ और १९३३ के आँकड़ों की तुलना करके देख सकते हैं। इन दोनों सालों के बीच भारत के साथ जावा का शक्कर का निर्यात-व्यापार १० लाख ९० हज़ार टन से घट कर ३ लाख ५२ हज़ार टन रह गया। चीन और हाँग-काँग का उसका शक्कर का व्यापार ५ लाख १९ हज़ार टन से घट कर २ लाख ९२ हज़ार टन रह गया और जापान और फ़ारमोसा को २ लाख ६५ हज़ार टन के बजाय वह १ लाख ८५ हज़ार देने लगा। जावा को अपनी उपज अपने बढ़िया सालों की अपेक्षा षष्ठांश से अधिक घटाने पर विवश होना पड़ा है। व्यवसायी लोग अपनी शक्कर की मिलें जापानियों के हाथ लोहे के भाव पर बेच रहे हैं। चन्द ऐसे भी हैं जिन्होंने इन मिलों को उखाड़ लिया है और जो अब उन्हें हिन्दुस्तान में लाकर चलाना चाहते हैं।"

ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के कृषि-मंत्री मिस्टर इलियेट ने हाल में ही जावा के पूँजीपतियों की प्रेरणा पर एक वक्तव्य दिया है, जिससे हमारा हृदय शंकित हो जाता है। वे कहते हैं कि ब्रिटिश गवर्नमेंट का विश्वास है कि शक्कर की उपज संसार की माँग के मुताबिक होनी चाहिए। इसलिए ब्रिटिश गवर्नमेंट विचार कर रही है कि वह शक्कर का निर्यात करनेवाले उपनिवेशों को यह लिखे कि वे ब्रिटिश गवर्नमेंट के सहयोग से इस बात पर विचार करें कि अगर समझौता की कोई सम्भावना हो तो इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय बात-चीत छेड़ी जाय।

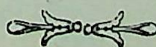
यह कथन है यों तो बहुत उचित दिखता है, लेकिन राजनैतिक शब्दावली का अनुवादक इनका यह अर्थ करेगा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट इस बात का वादा करती है कि वह शक्कर बनानेवाले देशों में चाहे वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर हों या बाहर, समझौता करायेगी। इस समझौते में पहले तो यह तय होगा कि जितनी शक्कर की संसार को ज़रूरत है उससे ज़्यादा न बनाई जाय। फिर यह तय होगा कि कौन देश इस ज़रूरत में से कितना हिस्सा बनावे और बेचे। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत देशों में ख़ास कर भारत में शक्कर के व्यवसाय की उन्नति रुक जायगी और ईख की खेती को धक्का पहुँच जायगा। ज़ाहिर है कि जिन देशों का राजनैतिक प्रभाव है और जो बहुत दिनों से शक्कर बना रहे हैं, इस बँटवारे में ज़्यादा हिस्सा पायेंगे। हमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई भी हिस्सा न दिया जायगा और स्वदेशी बाज़ार में भी जावा आदि देश हमारा हिस्सा बँटा लेंगे। हमारा नवजात व्यवसाय नष्ट हो जायगा। ईख बोकर किसान लोगों को जो लाभ मिल रहा है, नहीं मिलेगा। शैडबोर्न-स्कीम की असफलता की ख़ास वजह—ब्रिटिश साम्राज्य में शक्कर की उपज की ज़्यादती—तो जाती रहेगी, लेकिन इसके साथ साथ हमारी समृद्धि और व्यावसायिक उन्नति भी। बस, यही जावावालों के विकास और हमारे व्यावसायिक अधःपतन का प्रारम्भ होगा। अगर मिस्टर इलियट इस समझौते में सफल रहे तो निस्सन्देह हमें भयंकर नुक़सान पहुँचेगा।

हम यह कहते हैं कि इँग्लेंड कोई भी समझौता किसी से न करे और न कराये। आज उसे* १० लाख टन शक्कर साम्राज्य के बाहर के देशों से ख़रीदनी पड़ती है। पर उन देशों से न लेकर वह दस लाख टन शक्कर भारत से क्यों न ख़रीदे? हम प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का कपड़ा लंकाशायर से ख़रीदते हैं। अगर इँग्लेंड ने हमारे यहाँ से १० लाख टन शक्कर इसके बदले में ख़रीदी तो उचित ही है।

हम तो उस दिन का स्वप्न देख रहे हैं जब केवल शक्कर के ही व्यवसाय में ही नहीं, बल्कि सारे व्यवसायों में भारत स्वावलम्बी होगा।

---

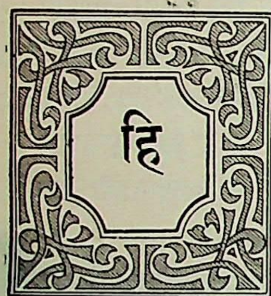
* १९३० में ब्रिटेन ने ५ लाख ४३ हज़ार टन शक्कर साम्राज्य के देशों से ख़रीदी थी और १३ लाख ७३ हज़ार अन्य विदेशों से। १९३४ में ९ लाख ५० हज़ार टन साम्राज्य के प्रदेशों से और १० लाख टन अन्य देशों से।



हिटलरवाद और यहूदी

लेखक, श्रीयुत आर० एस० पंडित

जर्मनी में हिटलर के नाज़ी शासन का ज़ोर इस बुनियाद पर बढ़ा है कि सारी बुराइयों की जड़ जर्मन-यहूदी हैं और उनके दमन से सब बुराइयाँ दूर हो जायँगी। इसी नीति के अनुसार जर्मनी में यहूदी बुरी तरह सताये गये हैं। फिर भी परिस्थिति ज्यों की त्यों है। इस लेख में श्रीयुत आर० एस० पंडित ने यहूदियों की वर्तमान दुर्दशा का सिंहावलोकन करते हुए यह बताया है कि आर्थिक समस्याएँ इस प्रकार अधिक काल तक टाली नहीं जा सकतीं।



हिटलर के हाल के एक भाषण का, इस देश में तीव्र विरोध हुआ है। हिटलर ने अपने उस भाषण में भारतवर्ष के निवासियों के प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया है और कहा है कि वे गोरी जातियों की पराधीनता और उनके औपनिवेशिक शोषण के ही योग्य हैं। इसलिए इस अवसर पर हिटलरवाद, कुलीनता के सम्बन्ध में नाज़ियों के विचार और हिटलर के राष्ट्रीय साम्यवादी दल के उत्पीड़न से अपनी रक्षा करने में असमर्थ जर्मनी की एक अल्पसंख्यक जाति की दुर्दशा का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी होगा।

जर्मनी की जन-संख्या ६ करोड़ के लगभग है। इसमें ५ लाख यहूदी हैं और ये जर्मन यहूदी आज अपनी ही जन्मभूमि में अछूत की भाँति घृणा का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। राज्य की नौकरी से वे हटा दिये गये हैं। यदि वे उदारचेता व्यक्ति हैं तो उनकी सुविधायें छिन गई हैं और उनका व्यवसाय नष्ट कर दिया गया है। वे कलाकार-संघ से निकाल दिये गये हैं। यदि वे हाथ या मस्तिष्क से परिश्रम करनेवाले व्यक्ति हैं तो उन्हें श्रम-केन्द्रों में प्रवेश नहीं मिलता। यदि वे विद्यार्थी हैं तो शिक्षा-संस्थाओं में उनका प्रवेश सर्वथा वर्जित है। यहूदियों के कृषि-सम्बन्धी विद्यालय बन्द कर दिये गये हैं और उन्हें कृषि-कार्य करने की आज्ञा नहीं है। प्राचीन काल में यहूदियों पर जब ईसाइयों ने बड़े बड़े ज़ुल्म किये थे तब भी उन्हें व्यापार करने की आज्ञा थी। परन्तु अब यह क्षेत्र भी जर्मन यहूदियों के लिए पूर्णरूप से खुला नहीं है। शुद्ध रक्त के जर्मनों से यह आशा की जाती है कि वे यहूदियों के साथ शादी-विवाह नहीं करेंगे। शासन-सम्बन्धी क़ानूनों में उस सीमा की परिभाषा दी गई है जहाँ तक यहूदियों को जीविकोपार्जन के लिए जाने की आज्ञा है। हाल में एक क़ानून बना है जिससे यहूदी व्यापारियों को फेरी लगाने की मनाही हो गई है। इससे लगभग ३० हज़ार यहूदी बेकार हो गये हैं। इस विषय में हिटलर की सबसे नवीन घोषणा यह है कि यदि इस शासन-पद्धति का 'संतोषजनक परिणाम' न निकले तो 'यहूदियों का प्रश्न' सर्वथा नाज़ीदल के हाथ में सौंप दिया जाना चाहिए। इसका क्या अर्थ है, यह अनुमान करना कठिन नहीं है।

यदि हम नाज़ी-आन्दोलन के क्रमविकास पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होगा कि इसके नेताओं ने आरम्भ से ही यहूदियों के विरोध पर ज़ोर दिया था और यह विरोध उनकी नीति का एक आवश्यक अङ्ग था। राष्ट्रीय साम्यवादीदल का जो कार्य-क्रम २० फ़रवरी सन् १९३० में स्वीकृत हुआ था उसमें अग्रलिखित सिद्धान्त निश्चित हुआ था—

"राष्ट्र के सदस्यों के अतिरिक्त राज्य का और कोई नागरिक नहीं हो सकता। शुद्ध जर्मन रक्तवालों के अतिरिक्त उनका धर्म चाहे जो हो, और कोई राष्ट्र का सदस्य नहीं हो सकता। इसलिए कोई भी यहूदी राष्ट्र का सदस्य नहीं हो सकता।"

जर्मनयहूदियों ने इस धमकी को गम्भीरता से ग्रहण नहीं किया। जर्मन विधान और जर्मन न्याय में उनका अटल विश्वास था। उनके लिए यह सोचना कठिन था कि १९ वीं शताब्दी के मध्य से जो विधान क्रमशः बने हैं और जिनसे 'घेटो' की प्रथा उठ गई है और उन्हें जर्मन नागरिक के रूप में बराबरी के अधिकार प्राप्त हैं, वे कभी रद कर दिये जायँगे। यहूदी कई पीढ़ियों से जर्मनी में रह रहे हैं और उनमें अधिकांश जर्मनों में घुल-मिल गये हैं। जर्मन न्याय में उनका इतना गहरा विश्वास था कि किशिनीर-प्रोग्रोम के हत्याकाण्ड के दिनों में एक रूसी यहूदी ने क़ैसर विलियम (द्वितीय) को टेलिफ़ोन किया था, क्योंकि उसे उनसे सहायता मिलने की पूरी आशा थी।

३० जनवरी १९३३ से नाज़ी लोग जर्मनी के शासक हो गये। पहले उन्होंने घोषणा की कि यहूदियों के अधिकारों पर एक सिरे से आक्रमण करने का उनका इरादा नहीं है। फ़रवरी १९३३ में "राईशटाग" में आग लगने के बाद गोरिङ्ग ने घोषणा की कि "यदि यहूदियों के व्यवहार राजभक्तिपूर्ण होंगे और वे अपने व्यवसाय में लगे रहेंगे तो उन्हें कोई भय नहीं होगा। परन्तु हम नहीं चाहते कि वे राष्ट्र के कर्णधारों के आसन पर विराजमान हों और उनका वहाँ पहुँचना हमें सह्य नहीं होगा।"

नाज़ी-शासन के प्रथम मास की ये सरकारी घोषणायें शीघ्र व्यर्थ हो गईं, क्योंकि नाज़ी अधिकारियों ने ग़ैर क़ानूनी ढङ्गों से यहूदियों को सार्वजनिक पदों से हटाना आरम्भ कर दिया। यहूदी प्रोफ़ेसर और अध्यापक, यहूदी जज और वकील अपने पदों से कुछ कम या कुछ अधिक बलप्रयोग के द्वारा हटा दिये गये। यहूदी डाक्टरों और दन्तचिकित्सकों के कार्यों में भी व्याघात डाला जाने लगा और उनका रोज़गार नष्ट हो गया। यहूदियों और मार्क्सवादियों को समस्त संघों और संस्थाओं से, यहाँ तक कि शतरञ्ज खेलने और तैरने के क्लबों तक से हटा देने का उपक्रम किया गया और यहूदी सौदागर पीड़ित किये गये।

पहले-पहल अप्रेल १९३३ में यहूदियों के विरुद्ध क़ानून पास हुए। वे वास्तव में उन आर्डिनेंसों के समान थे जिनसे हम भारतवासी ब्रिटिश शासन में सुपरिचित हैं। ख़ैर, जर्मन आर्डिनेन्सों का प्रभाव भयानक था और उन्होंने यहूदियों के विरुद्ध जो ग़ैर क़ानूनी कार्य हो चुके थे उनको भी क़ानूनी ठहरा दिया। उसी महीने में यहूदियों को सिविल सर्विस से हटाने का क़ानून पास हुआ और 'आर्यन पैराग्राफ़' सार्वजनिक नौकरियों के प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो गया और वैज्ञानिक, जज, अध्यापक या डाक्टर के रूप में यहूदियों की योग्यता की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया। राईश की एक सांस्कृतिक सभा के द्वारा यहूदियों का सांस्कृतिक कार्य भी रोक दिया गया।

ऐसी परिस्थिति में लगभग १ लाख यहूदी जर्मनी से भाग गये। परन्तु लगभग ५ लाख फिर भी इस आशा में वहाँ बस रहे कि कदाचित् यह सरकारी दमन शीघ्र ही शान्त हो जायगा। परन्तु ये आशायें निराधार सिद्ध हुईं।

जुलाई १९३५ में नाज़ी-शासन की आर्थिक दुरवस्था के कारण यहूदियों के विरुद्ध और भी भयानक प्रचार आरम्भ हुआ। जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए यहूदियों के ऊपर इलजाम लगाया। गत वर्ष जुलाई में नाज़ियों ने 'पोग्रोम्स' का नाटक रचा। स्ट्रीचर ने यह माँग पेश की कि समस्त यहूदी नपुंसक बना दिये जायँ। जर्मन-वंशीय डाक्टरों की हैसियत से ५०० डाक्टरों ने यह क़ानून बनाने की माँग पेश की कि जो आर्यवंशीय स्त्रियाँ यहूदियों से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ें वे नागरिकता के अधिकार से वञ्चित की जायँ, किसी श्रमिक कैम्प में नज़रबन्द कर दी जायँ और बन्ध्या बना दी जायँ। यहूदी-विरोधी यह आन्दोलन वहाँ विविध स्वरूपों में प्रकट हुआ। उदाहरण के लिए सड़क के किनारे एक भोजनालय के साइनबोर्ड पर यह लिखा देखा गया कि "हम यहूदियों के रक्त को शराब की भाँति पीते हैं।" बवेरिया की एक सड़क पर मोटर चलानेवालों के लिए एक ख़तरनाक मोड़ की सूचना इस प्रकार लगाई गई थी—"सावधान! अत्यन्त ख़तरनाक

मोड़! यहूदी १२० किलोमीटर प्रतिघंटा के हिसाब से जा सकते हैं।"

नाज़ियों ने यहूदियों के मंदिरों और क़ब्रगाहों का अपमान करके और उपासनागृहों को नाज़ी-क्लबों में परिणत करके अपने अस्तित्व का परिचय दिया। बर्लिन के जूडेन केनर यहूदियों के विरुद्ध विष उगलने में स्टीशर के भी आगे है। उसने अगस्त में यह घोषणा की कि "यहूदी-धर्म का किसी को नाम भी नहीं लेना चाहिए, क्योंकि जर्मन-मत के अनुसार यहूदियों की धर्मपुस्तकों में जो सिद्धान्त मिलते हैं वे धर्म नहीं हैं। हमारे कार्यक्रम में इस बात की आवश्यकता है कि यहूदियों के धर्मतत्त्व वर्जित कर दिये जायँ, उनके उपासना-गृह नष्ट कर दिये जायँ और यहूदी-सिद्धान्तों के प्रचारकों को मृत्युदण्ड दिया जाय।" धर्मद्रोही विधानों की इससे अधिक वकालत और कोई क्या करेगा?

१९३५ के पतझड़-काल में नूरेमबर्ग में दक़ियानूसी नाज़ियों की विजय के बाद हिटलर का जो घोषणापत्र पढ़ा गया उसमें यह कहा गया कि राष्ट्रीय साम्यवादी राज्य यहूदियों, मार्क्सवादियों और इनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रजातंत्र-प्रणाली को अपना अभिशापित शत्रु समझता है। इस घोषणापत्र के फलस्वरूप सितम्बर १९३५ में कुछ क़ानून बने जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

नागरिकता के अधिकारों पर रोक—पहले क़ानून के अनुसार वे यहूदी भी जिनके परिवार जर्मनी में शताब्दियों से बसे थे, नागरिकता के अधिकार से वञ्चित कर दिये गये। केवल वे ही व्यक्ति जो शुद्ध जर्मन-जाति से सम्बन्ध रखते हैं और जिन्होंने राईश के प्रति अपनी राजभक्ति का प्रमाण दिया है, नागरिक हो सकते हैं। यहूदी एक विशेष पराधीन स्थिति में डाल दिये गये हैं और वे 'राज्य की सम्पत्ति' माने गये हैं। ऐसी दशा में उन्हें किसी प्रकार का भी राजनैतिक अधिकार नहीं दिया गया है।

चलने फिरने की स्वाधीनता—यह यहूदियों को प्राप्त नहीं है। समस्त जर्मनी में ऐसी सूचनायें जैसे—"कुत्तों और यहूदियों को आने की इजाज़त नहीं है" लगा दी गई हैं और यहूदियों का 'प्रवेश' अजायबघरों, थियेटरों, स्नानगृहों आदि में भी 'निषिद्ध' ठहराया गया है। यह बात शहर और गाँव दोनों जगह एक-सी है। गोरिङ्ग के समाचारपत्र 'एसेनर नेशनल सायटुंग' में उन शहरों, ज़िलों या स्थानों के नाम प्रकाशित किये जाते हैं जिनके बारे में उसे यह पता चलता है कि वे अब यहूदियों से मुक्त हैं।

सम्पत्ति का स्वामित्व—जर्मनी के बहुत-से भागों में यहूदियों को अचल सम्पत्ति का स्वामित्व वर्जित है और वे ऐसी सम्पत्ति किराये पर भी नहीं ले सकते। बायकाट या बलप्रयोग की धमकी के कारण उन्हें अपनी सब प्रकार की सम्पत्ति और व्यापार स्वतः बेच देना पड़ा है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने अपनी सम्पत्ति आर्यों को एक गीत के बदले में दे दी। प्रान्तीय शहरों से जहाँ का जीवन उनके लिए असह्य हो उठा था भागकर बड़े शहरों में जाने पर उन्हें उनमें बसने के अधिकार से भी वञ्चित होना पड़ा!

यहूदी और झण्डा—एक दूसरे क़ानून के अनुसार 'स्वस्तिक' राष्ट्रीय झण्डा बनाया गया है। गोरिङ्ग ने इसे संसार का 'यहूदी-विरोधी' चिह्न बताया है। इस झण्डे का यहूदी प्रदर्शन नहीं कर सकते। वे चाहें तो 'ज़ायोनिस्म' का सफ़ेद और नीला झण्डा उड़ा सकते हैं।

जर्मन क़ानून और सम्मान—एक दूसरा क़ानून यह घोषित करता है कि जर्मन-जाति का स्थायित्व जर्मन-रक्त की शुद्धता पर निर्भर है। इसलिए यह क़ानून निम्नलिखित आदेश उपस्थित करता है—(१) यहूदी और जर्मन या जर्मन-जाति से सम्बन्ध रखनेवाली जाति के बीच विवाह वर्जित है। और इसके लिए सपरिश्रम कारावास के दण्ड का विधान है। जर्मनी से बाहर भी किये गये ऐसे विवाहों के सम्बन्ध में यही क़ानून लागू किया जाता है। (२) ऐसी जातियों में विवाह के बाहर ऐसे सम्बन्ध वर्जित हैं और उनके लिए भी सज़ा या जुर्माना या दोनों की व्यवस्था है। (३) यहूदियों को ४५ वर्ष से कम आयु की जर्मन-स्त्री को नौकर रखने की आज्ञा नहीं है। इस क़ानून का उल्लङ्घन करने पर १ वर्ष की सज़ा या जुर्माना या दोनों दण्ड दिये जाते हैं।

पृथक् निवास—सितम्बर के क़ानूनों के अनुसार यहूदी लड़कों के लिए पृथक् स्कूलों की व्यवस्था की गई है।

दुःखी जर्मन यहूदी को सिर्फ़ एक सुविधा बची है। वह है नाज़ी-सेना में भर्ती होना और कदाचित् एक दिन तृतीय राईश के यश के लिए प्राण देना।

इधर जर्मन-निवासियों पर से हिटलर का जादू अब कुछ कुछ उतरने लगा है। नाज़ियों के लिए अब कोई वैसा उत्साहपूर्ण प्रदर्शन नहीं होता। घटनाओं ने सिद्ध कर दिया है कि यह चिल्लाहट की सारी बुराइयों की जड़ यहूदी हैं, ग़लत है। बहुत-सी जगहों में लोग यहूदियों के प्रति सहानुभूति के साथ बर्ताव भी करने लगे हैं। नाज़ी शासकों को भीषण अर्थसंकट का सामना करना है। इसे वे जातीय संस्कार के द्वारा हल नहीं कर सकते। आर्थिक समस्यायें कैथलिकों और साम्यवादियों के साथ जर्मनी को जिस दिशा की ओर लिये जा रही हैं वे आख़िरकार जर्मन-यहूदियों का ही नहीं, समस्त जर्मन-निवासियों का भाग्य स्थिर कर देंगी।

वह तट

लेखक, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर), बी० ए०, एल-एल० बी०

केवट! मुझको वहाँ न ले चल, कहना मान—न जाऊँगा।
लौटा दे ऐ छली! कभी अब, तेरे साथ न आऊँगा॥
लौटा दे विनती करता हूँ, जो माँगेगा मैं दूँगा।
किन्तु न अब तो कभी भूलकर, उस तट को मैं देखूँगा॥

× × × × ×

उधर लिये ही जाता है तू, मना किये मैं जाता हूँ।
कहता हूँ बस रोक अन्यथा, नौका मैं उलटाता हूँ॥
क्या?—"व्यापार स्वर्ग सम सुन्दर सब चलते हैं उस तट पर,"
नहीं—झूठ है, मुझसे ही सब, कर मलते हैं उस तट पर॥
अभी अभी तो उस तट ही पर, चिता रचाई थी मैंने।
अपनी प्रिय स्वर्गीय आश को, वहाँ जलाई थी मैंने॥

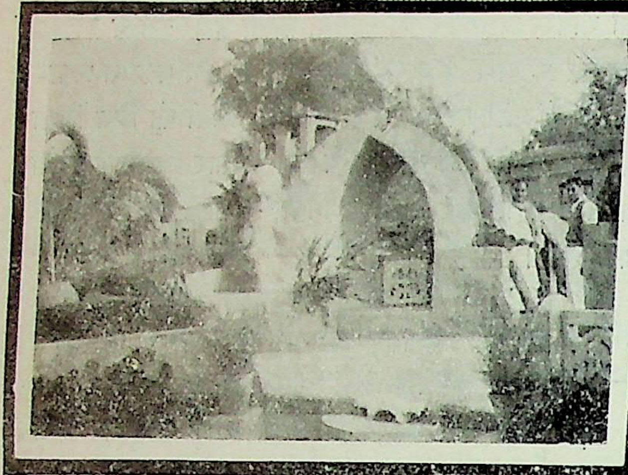
× × × × ×

हाय हाय तू नहीं मानता—वहीं मुझे ले जायेगा।
मुझे दृश्य उस जली चिता का क्या तू फिर दिखलायेगा॥

× × × × ×

डाँड़ मुझे दे और कहीं को, जीवन-नौका खेऊँगा।
यदि असफल होऊँगा इसमें तो नौका उलटा दूँगा॥

शान्तिनिकेतन के अनुभव

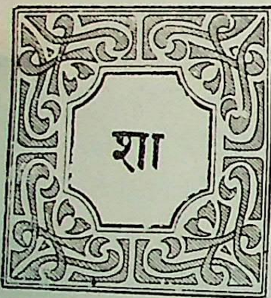


[गुरुदेव की प्रस्तरमूर्ति, जिसे उनकी पुत्रवधू ने बनाया है।]



[शान्तिनिकेतन का एक क्लास।]

लेखक, श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार



शान्तिनिकेतन देखने की उत्सुकता मुझे बरसों से थी, इससे जब विश्व-भारती के हिन्दी-समाज की ओर से मुझे वहाँ आकर एक व्याख्यान देने का निमन्त्रण मिला तब मुझे सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई।

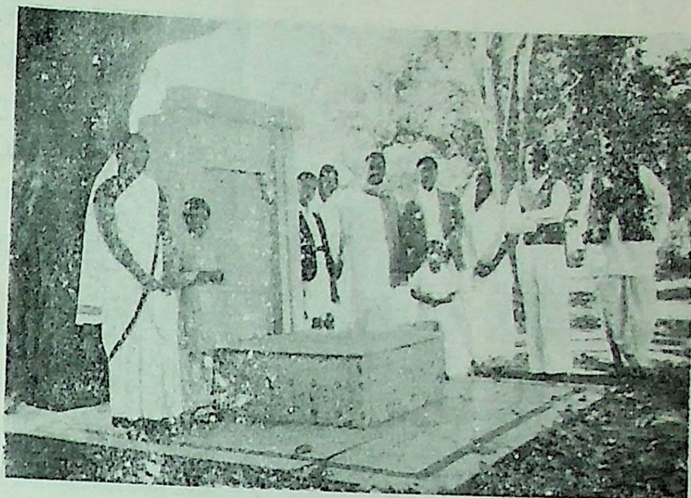
कलकत्ता से एक अच्छी-ख़ासी पार्टी के साथ मैं शान्तिनिकेतन के लिए रवाना हुआ। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीयुत सुदर्शन, श्रीमती सुदर्शन, श्रीयुत मलिक, श्रीमती सत्यवती मलिक, पण्डित सुरेन्द्रनाथ विद्यालङ्कार, श्रीमती कौशल्यादेवी, मौलवी ज़करिया आदि सज्जन इस पार्टी में थे।

बोलपुर स्टेशन से चलकर हमारा कार जब शान्तिनिकेतन पहुँचा तब रात का अन्धकार सभी ओर व्याप्त हो चुका था। अतिथिशाला की छत पर खड़े होकर मैंने देखा। सामने अन्धकार में मग्न घने वृक्षों का एक जङ्गल-सा दिखाई दिया। इन वृक्षों के अन्तरालों में कहीं-कहीं बिजली की बत्तियाँ दिखाई दे जाती थीं। सभी ओर गहरा सन्नाटा था। वातावरण शान्त और स्वच्छ था। जब रात और बढ़ गई तब दूर पर सैकड़ों गीदड़ों के एक साथ चिल्लाने की आवाज़ आई। इस आवाज़ से रात का सन्नाटा मानो और भी अधिक गहरा हो गया। इसी समय कहीं दूर पर सङ्गीत की स्पष्ट-सी ध्वनि भी सुनाई दी। क्रमशः यह ध्वनि अतिथिशाला के निकट आने लगी। मैंने बाहर आकर देखा, समीप की वाटिका में अन्धकारमग्न कुछ मनुष्य-पंक्तियाँ-सी दिखाई दीं। लालटेन के अधूरे प्रकाश में यह टोली गाते-गाते अतिथिशाला के निकट होकर एक ओर को बढ़ी जा रही थी। पूछने पर मालूम हुआ कि यह वैतालिक समारोह है। यह अदृष्टपूर्व और अनोखी-सी चीज़ देखकर शान्तिनिकेतन के सम्बन्ध में हम लोगों की उत्सुकता और भी अधिक बढ़ गई।

सुबह नींद से जागकर सबसे पहले मैं खुली छत पर पहुँचा। सूरज निकलने में अभी देर थी। प्रभात के सभी कुछ नया बना देनेवाले प्रकाश में मैंने देखा कि सामने मौलश्री के घने घने वृक्षों का ख़ासा जङ्गल-सा है। वकुल-वृक्षों की नई-नई कोमल पत्तियाँ ओस से मानो नहाई खड़ी थीं। स्वच्छ वायु के हलके-हलके झोंके इन सैकड़ों-हज़ारों पत्तियों को झोंके दे रहे थे। उस पर प्रभात का दिव्य प्रकाश। यहाँ हिमालय नहीं था, गङ्गा नहीं थी,

फिर भी, थोड़ी देर के लिए, जैसे मुझे जान पड़ा, यहाँ सभी कुछ है।

आश्रम का ख़ाका देखने की इच्छा से हम लोगों ने एक चक्कर लगाया। देखा, पक्के मकान सिर्फ़ चार हैं। गुरुदेव का निवासस्थान (परन्तु आज-कल वे उसमें नहीं रहते) सचमुच एक ख़ासे महल के समान है। अतिथिशाला जिसमें हम लोग ठहराये गये थे, पुस्तकालय और लड़कियों का आश्रम पक्के हैं। इनके अतिरिक्त सभाभवन भी पक्का है। एक मञ्चशाला भी है। शेष सभी मकान फूस का छप्पर या टीन की छतें डालकर बनाये गये हैं। दूर तक, जहाँ तक दृष्टि जाती थी, इसी तरह की कलापूर्ण कुटीरें फैली हुई दिखाई देती हैं। वृक्षों की बहुतायत है, खुले मैदान भी कम नहीं। बजरीवाली छोटी-छोटी सड़कें हैं। यहाँ सभी कुछ स्वच्छ, स्वाधीन और साथ ही साथ सुनियंत्रित भी दिखाई देता है।



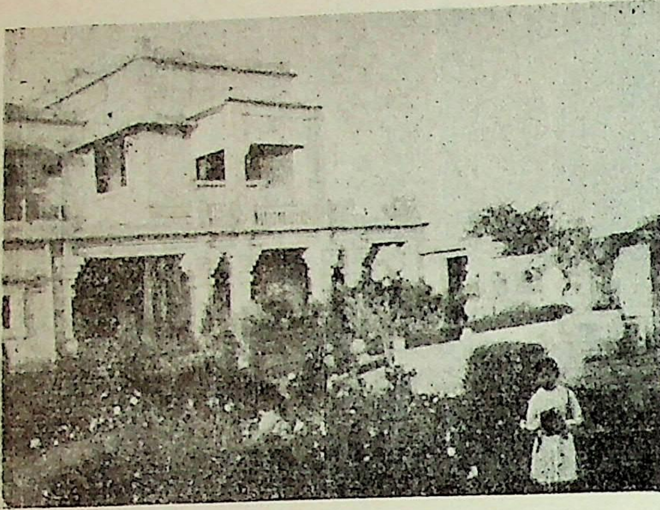
[वह स्थान, जहाँ गुरुदेव के पिता जी ने शान्तिनिकेतन की नींव डाली थी। (सबसे दाहनी ओर श्री चतुर्वेदी जी खड़े हैं।]

सुबह सवा छः बजे निकेतन की सामूहिक प्रार्थना होती है। सब लोग पुस्तकालय के सम्मुख एकत्र होते हैं। पहले दो-एक वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं और उसके बाद बङ्गाली में एक मधुर गीत गाया जाता है। शान्तिनिकेतन के वातावरण में स्वाधीनता की जो भावना सभी जगह ओतप्रोत-सी है उसका परिचय इस प्रातःकालीन प्रार्थना से ही मिल जाता है। प्रायः सभी लड़के और लड़कियाँ इस प्रार्थना में सम्मिलित होती हैं। परन्तु वहाँ खड़े होने के लिए उन लोगों ने क़तारें लगाने का कोई निश्चित नियम नहीं बना रक्खा है। जिसकी जहाँ इच्छा होती है, जा खड़ा होता है। तीन-चार बड़ी-बड़ी और सीधी क़तारें स्वयं ही लग जाती हैं। और उनके अतिरिक्त कम से कम एक दर्जन छोटी-छोटी क़तारें, पुस्तकालय-भवन के सामने, दायें-बायें और आस-पास के वृक्षों के तले छितरा-सी जाती हैं। कहीं पाँच- चार समवयस्क लड़के खड़े हैं, कहीं तीन-चार लड़कियाँ एक लाइन में एकत्र हो गई हैं। फिर भी सभी जगह नियम है, व्यवस्था है, शान्ति है।



[शान्तिनिकेतन के एक क्लास का दृश्य (बाईं ओर किनारे पर श्री सुदर्शन जी बैठे हैं।]

मेरे अब तक के जीवन का आधे से अधिक भाग शान्तिनिकेतन के सदृश एक अन्य विख्यात राष्ट्रीय संस्था में कटा है। प्रबन्ध और स्थिरता की दृष्टि से सम्भवतः काँगड़ी का गुरुकुल भारतवर्ष भर का सर्वश्रेष्ठ ग़ैर सरकारी शिक्षणालय है। गुरुकुल की अपनी प्रथायें और कार्यप्रणाली विकसित हो चुकी हैं। उसकी छाप शायद आवश्यकता से भी अधिक गहरी पड़ चुकी है। गुरुकुल को यह सौभाग्य प्राप्त है कि हिमालय उसके लिए छत्र का काम देता है और

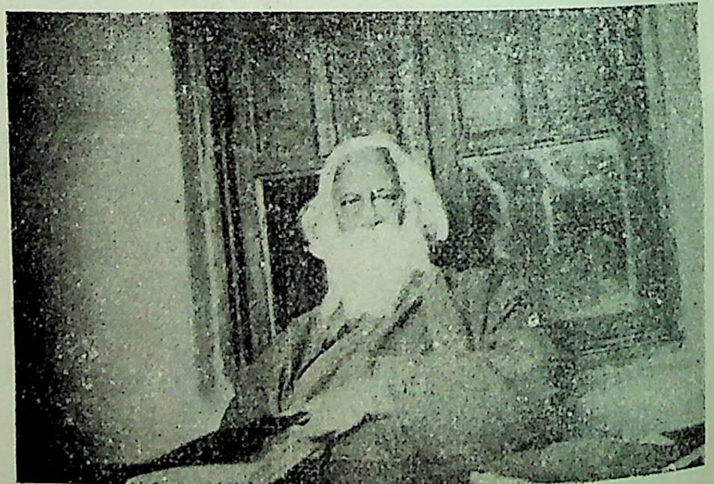


[गुरुदेव के निवास-स्थान का पार्श्व-दृश्य ।]

गङ्गा उसका प्रक्षालन करती है। घने जङ्गल, हरे-भरे मैदान, पहाड़ों की ऊँची चोटियाँ, गङ्गा नदी की स्वच्छन्द और तरङ्गित धारायें—यह सभी कुछ काँगड़ी के गुरुकुल के दैनिक जीवन का भाग है। इधर शान्तिनिकेतन में वैसा प्राकृतिक दृश्य नहीं है। बहुत दूर पर कोई छोटी-सी नदी बहती है, पहाड़ दिखाई नहीं देते; जङ्गल भी नहीं हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के रूप में जो कुछ है वह जैसे प्रयत्नपूर्वक बनाया गया है।

तो भी शान्तिनिकेतन में मुझे एक ऐसी चीज़ दिखाई दी जो गुरुकुल में नहीं थी, और जिसे देखने के लिए मेरा जी बहुत समय से मानो व्याकुल-सा था। वह चीज़ है शिक्षणालय में व्यक्तित्व के स्वाधीन-विकास का अवसर। काँगड़ी का गुरुकुल जैसे सिर्फ़ एक टाइप के व्यक्ति पैदा करने के लिए खोला गया है। प्राचीन स्पार्टा में जैसे सिर्फ़ वीर पुरुषों की ही क़द्र थी, उसी तरह काँगड़ी के गुरुकुल में सिर्फ़ एक ही ढङ्ग के लोगों की प्रतिष्ठा है। बल्कि यह कहने में भी कुछ अत्युक्ति न होगी कि गुरुकुल में किसी व्यक्ति के कुछ ही गुणों के विकास का अवसर मिलता है। वहाँ के जीवन में मानव-हृदय की अनेक कोमल प्रवृत्तियों और अनुभूतियों के लिए कोई स्थान नहीं है; वे वहाँ पूरी अवज्ञा के साथ देखी जाती हैं। यही कारण है कि अनेक व्यक्तियों को गुरुकुल का वातावरण दम घोंटनेवाला प्रतीत-सा होने लगता है। इसी से शान्तिनिकेतन पहुँचकर मैंने जैसे पाया कि यहाँ का वातावरण मानो सचमुच असीम है, खुला है, उसमें चाहे जितनी गहराई से और जिस प्रकार साँस ली जा सकती है।

और सम्भवतः यही शान्तिनिकेतन की सबसे बड़ी विशेषता है। अनेक प्रान्तीय भाषाओं तथा अँगरेज़ी के अतिरिक्त अन्य भी अनेक विदेशी भाषाओं की पढ़ाई का वहाँ प्रबन्ध है। इसके सिवा प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन, इतिहास, साहित्य, उपनिषद्, संस्कृत आदि की उच्च शिक्षा भी वहाँ दी जाती है, साथ ही साथ चित्रकला, संगीत-वाद्य, नृत्यकला और अनेक तरह के धन्धों के सिखाने की भी वहाँ व्यवस्था की गई है। विद्यार्थी चाहे जिस तरह की शिक्षा ग्रहण कर सकता है। महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अतिरिक्त श्री नन्दलाल बोस और श्री क्षितीन्द्रमोहन सेन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त महापुरुष शान्तिनिकेतन में शिक्षक का काम करते हैं। विद्यार्थियों को रहन-सहन आदि के सम्बन्ध में किसी तरह के कठोर नियमों का पालन नहीं करना पड़ता। अनेक दर्शकों को शान्तिनिकेतन के वातावरण की यह स्वाधीनता खटकती है। अध्यापक और विद्यार्थियों में वहाँ मित्रता



[गुरुदेव]

या बड़े भाई और छोटे भाई का-सा सम्बन्ध ही प्रतीत होता है—शासक और शासित का नहीं। इस पर भी शान्तिनिकेतन का वातावरण बहुत उच्च, श्रेष्ठ तथा शिष्ट विचारों से ओत-प्रोत है। परिणाम यह हुआ है कि पूरी स्वाधीनता के रहते हुए भी शान्तिनिकेतन के विद्यार्थी पथभ्रष्ट नहीं होने पाते। उनके सामने ऊँचे और कलापूर्ण आदर्श सदैव विद्यमान रहते हैं।

शान्तिनिकेतन में सहशिक्षा है—छोटी श्रेणियों से लेकर बड़ी श्रेणियों तक। लड़के और लड़कियाँ वहाँ एक साथ पढ़ती-लिखती हैं, एक साथ खाती-पीती हैं और एक-दूसरे की नज़रों के सामने ही खेलती-कूदती हैं। उनके आश्रम पृथक्-पृथक् हैं; परन्तु परस्पर मिलने-जुलने की उन्हें पूर्ण स्वाधीनता है। इस तरह की पूर्ण सहशिक्षा का प्रभाव वहाँ के वातावरण को अधिक संयत, शिष्ट और कलापूर्ण बनाने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो रहा है। भारतवर्ष में सहशिक्षा की सफलता का उदाहरण देने के लिए शान्तिनिकेतन का नाम निस्संकोच होकर पेश किया जा सकता है।

शान्तिनिकेतन की एक और बड़ी ख़ूबी वहाँ के वायुमण्डल का अन्तर्राष्ट्रीय होना है। काँगड़ी के गुरुकुल के समान शान्तिनिकेतन का संचालन भी विशुद्ध भारतीय संस्कृति के वातावरण में हो रहा है। परन्तु वहाँ भारतीय विद्यार्थियों और छात्रों के अतिरिक्त विदेशी अतिथियों और शिक्षकों की भी पर्याप्त संख्या सदैव बनी रहती है। अमरीका, योरप, एशिया तथा आस्ट्रेलिया के अनेक देशों से बहुत-से यात्री आ-आकर इस शिक्षा-केन्द्र में एकत्र होते हैं और निकेतन के वातावरण से लाभ उठाते हैं। इन लोगों की उपस्थिति निकेतन के विचारों को अधिकाधिक उदार बनाने में विशेष सहायता देती है।

कुछ ही समय से वहाँ एक अन्य विभाग का उद्‌घाटन किया गया है। इस विभाग का नाम श्रीनिकेतन है। यहाँ ग्राम-सुधार तथा ग्राम्य व्यवसायों के उद्धार का प्रयत्न किया जा रहा है। हम लोग श्रीनिकेतन देखने भी गये थे। ग्रामीण बालकों को व्यवसायों और धन्धों की शिक्षा देने का जो प्रबन्ध श्रीनिकेतन में है वह सम्पूर्ण देश के लिए अनुकरणीय है। शान्तिनिकेतन के वातावरण को वास्तविकता के कठोर धरातल के निकट लाने में श्रीनिकेतन बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

यह देखकर मुझे सचमुच खेद हुआ कि भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के विद्यार्थी शान्तिनिकेतन में नहीं हैं। पंजाब की सिर्फ़ एक छात्रा है। दिल्ली-राजपूताना आदि का भी कोई विद्यार्थी वहाँ नहीं है। संयुक्त-प्रान्त के विद्यार्थियों की संख्या भी बहुत कम है। सम्पूर्ण युक्तप्रान्त से सिर्फ़ एक ही छात्रा आज-कल वहाँ है। शान्तिनिकेतन के अधिकांश विद्यार्थी बंगाली हैं। उसके बाद गुजरात और बिहार का नम्बर है। दक्षिण-भारत के छात्रों की संख्या भी बहुत कम है। इस दृष्टि से काँगड़ी का गुरुकुल श्रेष्ठ है। भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय उपनिवेशों के विद्यार्थी भी काँगड़ी के गुरुकुल में हैं। और यह तथ्य गुरुकुल के वातावरण को अखिल भारतीय बनाये रखने में बहुत सहायक सिद्ध हो रहा है।

निकेतन के साहित्य-परिषद् के अतिरिक्त वहाँ हिन्दी-समाज और गुजराती-समाज नाम की दो संस्थायें भी हैं। हिन्दी-प्रेमियों के लिए यह प्रसन्नता की बात है कि श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में शान्तिनिकेतन का हिन्दी-समाज विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयत्न से उम्मीद है कि हिन्दी-समाज का अपना पृथक् भवन भी शान्तिनिकेतन में बहुत शीघ्र बन जायगा।

महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर शान्तिनिकेतन की आत्मा के समान हैं। वे वहाँ 'गुरुदेव' कहे जाते हैं। शान्तिनिकेतन के वातावरण को कलापूर्ण बनाये रखने के लिए गुरुदेव की उपस्थिति ही पर्याप्त है। वे भारतवर्ष ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व की एक बहुमूल्य विभूति हैं। हम लोग जब शान्तिनिकेतन पहुँचे तब हमें बताया गया कि वे इन दिनों बहुत थके हुए और क्लान्त-सा हैं। उन्हीं दिनों उन्हें कलकत्ता-विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान देने के लिए जाना पड़ा था। वहीं उनके एक निकट-सम्बन्धी का देहान्त हो जाने से उन्हें भारी मानसिक कष्ट पहुँचा था। फिर कलकत्ता से वापस आते हुए बर्दवान में उन्हें एक

भारी सामूहिक स्वागत का बोझ बरदाश्त करना पड़ा। ७६ बरस की उम्र में ये सब बातें शरीर और मन को बुरी तरह थका देने के लिए पर्याप्त हैं। इसी कारण गुरुदेव ने, केवल कर्तव्य की प्रेरणा से ही, हम लोगों को केवल १५ मिनट का समय दिया था। परन्तु जब हम लोग वहाँ पहुँचे तब यह देखकर हमारे हर्ष की सीमा न रही कि गुरुदेव बहुत ही अच्छे और प्रसन्न मनोभाव में हैं।

श्री एण्ड्रूज़ ने एक बार कहा था कि गुरुदेव एक ऐसे अत्यधिक कोमल वाद्य-यन्त्र के समान हैं जिसे बजाना बड़ा कठिन होता है। परन्तु हम लोगों के सौभाग्य से उस दिन, विशेषकर उस समय, वे इतने अच्छे रूप में थे कि १५ मिनट के बजाय ४५ मिनट तक वे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहानी-साहित्य के सम्बन्ध में हम लोगों से बातचीत करते रहे। अपनी कहानियों के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा वह हम लोगों के लिए बहुत ही शिक्षाप्रद था। गुरुदेव प्रान्तीयता के घोर विरोधी हैं। प्रान्तीयता के भाव दूर करने के लिए उन्होंने कहा कि हम लोगों को साहित्य के द्वारा एक-दूसरे के निकट आना चाहिए। जब तक हम लोग एक-दूसरे को नज़दीक से नहीं पहचानेंगे, यह समस्या दूर न होगी और निकटता से पहचानने का सबसे श्रेष्ठ साधन साहित्य ही हो सकता है। अन्त में जब हम लोगों ने छुट्टी माँगी तब गुरुदेव ने कहा कि समय पर पाबन्दी लगानेवाली बात को आप लोग अधिक गम्भीरतापूर्वक न लिया कीजिए।

इस सम्पूर्ण बातचीत में चतुर्वेदी जी ने गुरुदेव को अनेक बार हँसाया और स्वयं गुरुदेव ने भी अनेक बार हम लोगों को अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने का पूर्ण अवसर दिया। यह भेंट हम लोगों के लिए बहुत शिक्षाप्रद और उपयोगी सिद्ध हुई।

शान्तिनिकेतन की दूसरी विभूति श्री नन्दलाल बोस हैं। कला के अनेक पारखियों की राय में श्री नन्दलाल बोस आज-कल सम्पूर्ण एशिया के सबसे बड़े कलाकार हैं। श्री सुदर्शन जी तथा मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि हम लोग काफ़ी समय तक उनसे भारतीय चित्र-कला के सम्बन्ध में निर्देश ले सके।

बिना अनुमति लिये दर्शक लोग शान्तिनिकेतन के छात्रों और छात्राओं के फ़ोटो नहीं ले सकते। मुझे इस बात की अनुमति प्राप्त हो गई थी, इसके लिए मैं शान्तिनिकेतन के अधिकारियों का अनुगृहीत हूँ। शान्ति-निकेतन की यह यात्रा मेरे लिए सच्चे अर्थों में एक कला के तीर्थ की यात्रा के समान सिद्ध हुई।

गीत

लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पांडेय

मेरा छोटा-सा उर-उपवन।
जिसमें रहता मधुमास सदा,
करते मृदु-भाव विहग कूजन।
कामना कली ले विश्वप्यार,
करती फिरती सौरभ-प्रसार;
जिसकी सुख-सुखमा का प्रतिपल,
भावुक जग करता अभिनन्दन।

श्वासों का मलयानिल बहता,
धीरे से कानों में कहता;
"तुम चिर अनन्त के रूप सुनो—
करते प्राणों के अलि गुञ्जन"।
जब मैं ही जग का आदि-अन्त,
मेरी स्वर्गिक निधियाँ अनन्त;
क्यों आज भूल मैं अपनापन,
विस्मित-सा बैठूँ बन उन्मन।

एक पारिवारिक कहानी

किस ओर ?

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा



आज उनमें फिर वही झगड़ा ज़ोर-शोर के साथ हुआ, जो पाँच वर्ष पहले प्रायः प्रतिदिवस हुआ करता था।

रमा ने समझा था कि वह समय सदा के लिए समाप्त हो गया। और देवनाथ भी यही समझते थे। पर आज दोनों का भ्रम दूर हो गया। वे जिस ओर अपनी जीवन-नौका सम्मिलित रूप से ले जाना चाहते थे, उधर वह नहीं जा सकती, यह अब दोनों को निश्चित रूप से दिखलाई पड़ने लगा।

सन्ध्या हो गई। दोनों में से किसी ने कुछ खाया-पिया नहीं। देवनाथ जी लेखों के पढ़ने और संशोधन करने में ऐसे तल्लीन रहे, मानो फ़ौजी कमांडर-इन-चीफ़ लड़ाई के समय भिन्न भिन्न सेनाओं का निरीक्षण करने और उन्हें ठीक करने में लगा हुआ हो। उधर रमादेवी जी एक जम्पर सीने को ऐसी जम कर बैठीं, मानो किसी सत्याग्रही ने विदेशी माल की दूकान पर धरना दिया हो। पर जब प्रकाश क्षीण हो गया और अन्धकार ने उसका स्थान ले लिया तब इन दोनों के काम अपने आप बन्द हो गये। देवनाथ जी अपने कमरे से निकल आये और रमादेवी अपने कमरे से।

दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। और तुरन्त ही दोनों की ज़बानें फिर तेज़ हो गईं। देवनाथ ने कहा—जम्पर सीने में लगना ही तुम्हारे लिए सब कुछ है। इस विचित्र वस्त्र को पहनकर तुम अपनी दीन-हीन बहनों को चिढ़ाना चाहती हो और समझती यह हो कि ऐसी बात नहीं है। ब्राह्मण-पुत्री होकर भी तुम इस देश के वास्तविक गौरव की ओर जाना लज्जा की बात मानने लगी हो, इससे बढ़कर हमारे पतन का प्रमाण और क्या चाहिए?

रमा ने कहा—लेखों के संशोधन और पठन-पाठन में लगे रहना ही आप सब कुछ समझते हैं। इन लेखों को प्रकाशित करके आप अपने दीन-हीन भाइयों को चिढ़ाना चाहते हैं। ब्राह्मण-पुत्र होकर भी आप इस देश के वास्तविक गौरव को ओर जाना लज्जा की बात मानने लगे हैं। इससे बढ़कर हमारे पतन का प्रमाण और क्या चाहिए?

देवनाथ जी पहले की अपेक्षा तीव्रतर स्वर में बोले—अच्छा, जम्पर सीना और लेखों का संशोधन करना तुम्हें एक-से ही दीखते हैं। धन्य हो!

रमा ने भी कुछ तेज़ी से कहा—जम्पर शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक है। उसे आप एक व्यर्थ वस्तु के समान समझ सकते हैं, मैं नहीं। धन्य तो आप ही हैं!

"लेख व्यर्थ है?"

"क्या जम्पर चिढ़ाने के लिए है?"

"यह जम्पर?"

"यह प्रकाशन?"

"और ये गहने?"

"और यह गद्य-पद्य ग्रन्थसमूह?"

"ये सब तुम्हारे गहनों के समान हैं?"

"मैं व्यर्थ या हानिकारक वस्तुओं को गहनों के समान क्यों मानूँ?"

"तुमने धन का सदुपयोग किया है—उनके गहने और कपड़े लेकर और मैंने उसका दुरुपयोग किया है ये गद्य-पद्य ग्रन्थ प्रकाशित करके, जिनसे न जाने कितने लोगों का मनोरंजन हुआ है और जो न जाने कितने लोगों-द्वारा प्रशंसित हो चुके हैं।"

"प्रशंसित तो ये गहने भी कम नहीं हुए और अनेक गहनों का इनसे मनोरंजन भी हो चुका है। हाँ, इनके देखने में लोगों का इतना अधिक समय नष्ट नहीं हुआ, न इनका उनके मन पर इतना बुरा प्रभाव पड़ सकता है।"

"इन पुस्तकों का बुरा प्रभाव पड़ता है?"

"मैंने तो इन्हें पढ़नेवालों में से किसी को कुछ विशेष काम के योग्य बनते नहीं पाया। यह भी कहा जा सकता है कि वास्तविक कार्य की महत्ता ही वे भूल जाते हैं"

"और इन गहनों से?"

"ये उतने बुरे नहीं हैं।"

"ये दीनता का गौरव सिखाते हैं?"

"प्रकाशन में रुपये लगाने से ही लोगों को किसी गौरव का सिखाना कैसे माना जा सकता है?"

"इनमें जो उच्च सिद्धान्त लिखे हैं—"

"वे व्यर्थ हैं—"

"व्यर्थ?"

"जो लोग स्वयं अपने सिद्धान्तों के अनुसार काम नहीं करते उनकी बातों का किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

"यह तुम जानती हो?"

"जानने के कारण ही तो मैं इनका लिखना-लिखाना व्यर्थ समझती हूँ।"

"यह क्यों?"

"जो काम हम नहीं कर सकते उसे क्यों करें?"

"पर मैं कर सकता हूँ।"

"यह तो पिछले पाँच वर्ष बता रहे हैं!"

"अगले दो वर्ष इसे बतावेंगे। मैं आज घर से जा रहा हूँ।"

× × ×

दूसरे दिन रमा ने अपनी सखी प्रभा के पास जाकर सब बातें सुनाईं।

प्रभा बोली—मैं पंडित देवनाथ जी को जानती हूँ। वे तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जा सकते—कभी नहीं जा सकते। बस, होना यही चाहिए कि तुम दोनों को घर में अपने अपने ढंग पर काम करने की स्वतन्त्रता रहे। तुम उनके लिखने-पढ़ने में लगे रहने से बुरा क्यों मानती हो, जब अब वे तुमसे कुछ भी छेड़-छाड़ नहीं करते हैं?

रमा यह बात सुन थोड़ी देर चुप रही, मानो वह कह रही हो—क्या सचमुच इसका उत्तर देने की आवश्यकता है? क्या नारी-हृदय से प्रभा अभी तक इतनी अधिक अपरिचित है?

पर प्रभा ने फिर पूछा—क्या तुम्हें वह जीवन अधिक रुचिकर जान पड़ता है जब साहित्य-सेवा का यह उच्च भाव पंडित जी के मन में न रहे?

तब वह कुछ झुँझलाहट के स्वर में बोली—मैं तुम्हें इतना अबोध नहीं समझती थी। हमारे जीवन में मिलन की, सेवा की, एकत्व की जो इच्छा है उसकी पूर्णता का क्या यह मार्ग ठीक है? गृहस्थ-जीवन को देखो। तुम्हारे एक बच्चा हो चुका है। क्या फिर भी तुमने यह नहीं समझा कि जीवन का विकास किस तरह होता है? क्या तुम्हारे भाई-बहनें नहीं हैं?

प्रभा ने हँसकर कहा—हैं तो। अच्छा बताओ विकास किस तरह होता है?

परन्तु रमा चुप हो रही।

इसी दिन दोपहर को पंडित देवनाथ जी घर से चले गये।

× × × ×

दो वर्ष बीत गये।

वही सन्ध्याकाल का समय है। रमा आँगन में खड़ी आकाश की ओर देख रही थी। उसे वह दिन याद आ रहा था जब उसमें और देवनाथ जी में अन्तिम बार बात-चीत हुई थी—"अगले दो वर्ष इसे बतावेंगे" उन्होंने कहा था। "वे तो आज समाप्त हो रहे हैं।" उसने मन ही मन सोचा—"वे कहाँ हैं? इन दो वर्षों में उन्होंने क्या क्या किया है? मैंने तो कभी उनका नाम किसी काम के सम्बन्ध में नहीं सुना। समाचार-पत्रों में मैंने उनके लौटने के लिए जो कुछ प्रकाशित करवाया, सब व्यर्थ हुआ। क्या वे अब नहीं लौटेंगे?"

"अवश्य लौटेंगे।" उसने तुरन्त ही ज़ोर से कहा—"आज उन्हें आना चाहिए।" सन्ध्या समाप्त होगई। रात्रि

आगई । रात्रि का भी अन्त हुआ । रमा रात्रि भर सो नहीं सकी । प्रातःकाल उसे झपकी आ गई । एकाएक उसने सुना, कोई बुला रहा है । वही आवाज़ है ! वह जग पड़ी। आवाज़ फिर आई । तब तो यह स्वप्न नहीं ! वह जल्दी से उठकर दरवाज़े के पास गई । किवाड़ा खोल दिया । देखा, देवनाथ जी खड़े हैं और उनके साथ एक वृद्ध सज्जन हैं, जिन्हें वह पहचानती नहीं थी, पर जिनका चित्र उसने जब-तब पत्र-पत्रिकाओं और ग्रन्थों में देखा है ।

वह दरवाज़ा खोल कर पीछे हट गई ।

देवनाथ जी ने भीतर आकर कहा—मध्यमार्ग के आचार्य, मेरे गुरुदेव, मेरे साथ आये हैं । तुम इन्हें अपने सब गहने दे दो और मैं अपनी सब पुस्तकें । इस समय जिस मार्ग पर हमें चलना है वह मैंने देख लिया है । क्या तुम मेरा साथ दोगी ?

रमा कुछ बोली नहीं । चुपचाप उठ कर वह भीतर गई और अपने गहनों का सन्दूक़ लाकर उसने आचार्य के सामने रख दिया ।

अपूर्व गौरव का आनन्द उसके मुख पर स्पष्टतः झलक रहा था ।

× × × × ×

इसी दिन प्रभा रमा के पास आई ।

बातचीत में उसने हँसकर पूछा—क्या पण्डित जी ने अब जीवन-विकास का पथ पा लिया है ? अरे, तभी तुमने क्यों नहीं कहा था कि तुम उनकी पुस्तकों के ढेर में आग लगवा देना चाहती हो ?

रमा भी इस बार हँसकर बोली—तुम अब भी वैसी ही अबोध बनने का स्वाँग करना चाहती हो ! मैं उनके हृदय में शुद्ध अग्नि का प्रकाश चाहती थी और अब मैं उसे देख रही हूँ । इसी के प्रकाश में सच्चा मिलन और सच्ची सेवा दिखाई दे सकती है । मेरा जीवन धन्य होगया ।

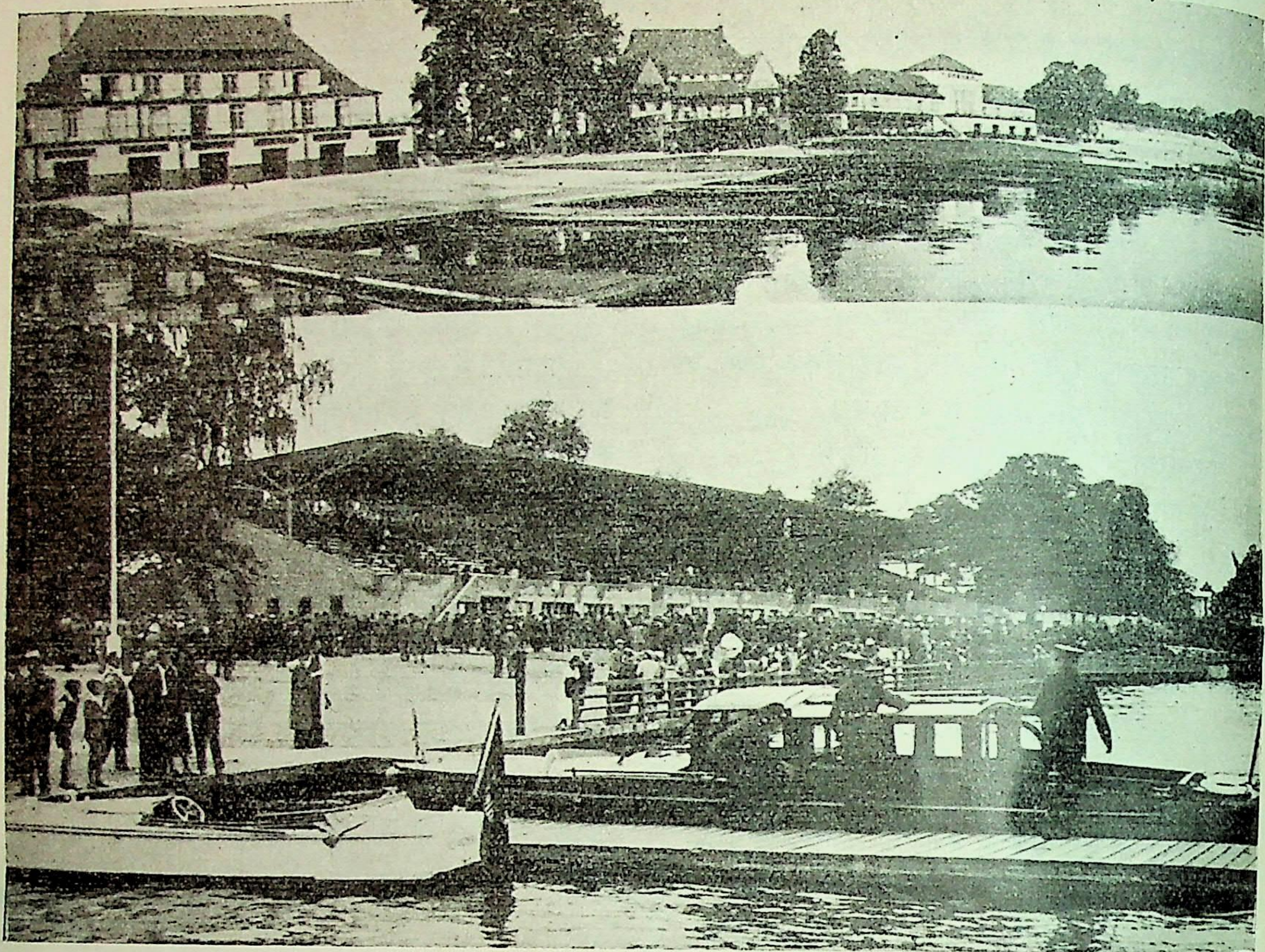
पर सचमुच प्रभा अबोध की भाँति उसकी ओर देखती रह गई । वह कुछ भी समझ न सकी ।

गीत

लेखक, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल

कैसी प्रीति—कैसा प्यार ?
मिल गये दो तार उर के, हिल गया संसार !
एक आते—एक जाते !
एक निज बीती सुनाते !
भावना की इस परिधि में
एक अपने आप गाते !
सरस-जीवन को बनाते एक,—क्षण में क्षार ! कैसी०
एक शासित—दीन—रहते !
एक बन स्वाधीन रहते !
एक परिमित—एक सीमित—
एक सीमा-हीन रहते !
यह कठिन वैषम्य कैसा,—यह जटिल-व्यापार ? कैसी०
एक सुस्मृति छोड़ जाते !
एक हैं मुँह-मोड़ जाते !
प्रिय, सतत चरचा यही है—
एक नाता तोड़ जाते !
एक आवेदन लिये हैं, एक मृदु-मनुहार !
कैसी प्रीति०—





ओलम्पिक खेलों में भाग लेनेवाले जर्मन खिलाड़ी अभ्यास कर रहे हैं

ओलम्पिक खेल

लेखक, श्रीयुत विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्गी'

जर्मनी में इस समय जगत्प्रसिद्ध ओलम्पिक खेलों का आयोजन हो रहा है। ऐसे अवसर पर तरङ्गी जी का यह लेख पाठकों को विशेष रूप से मनोरञ्जक प्रतीत होगा।

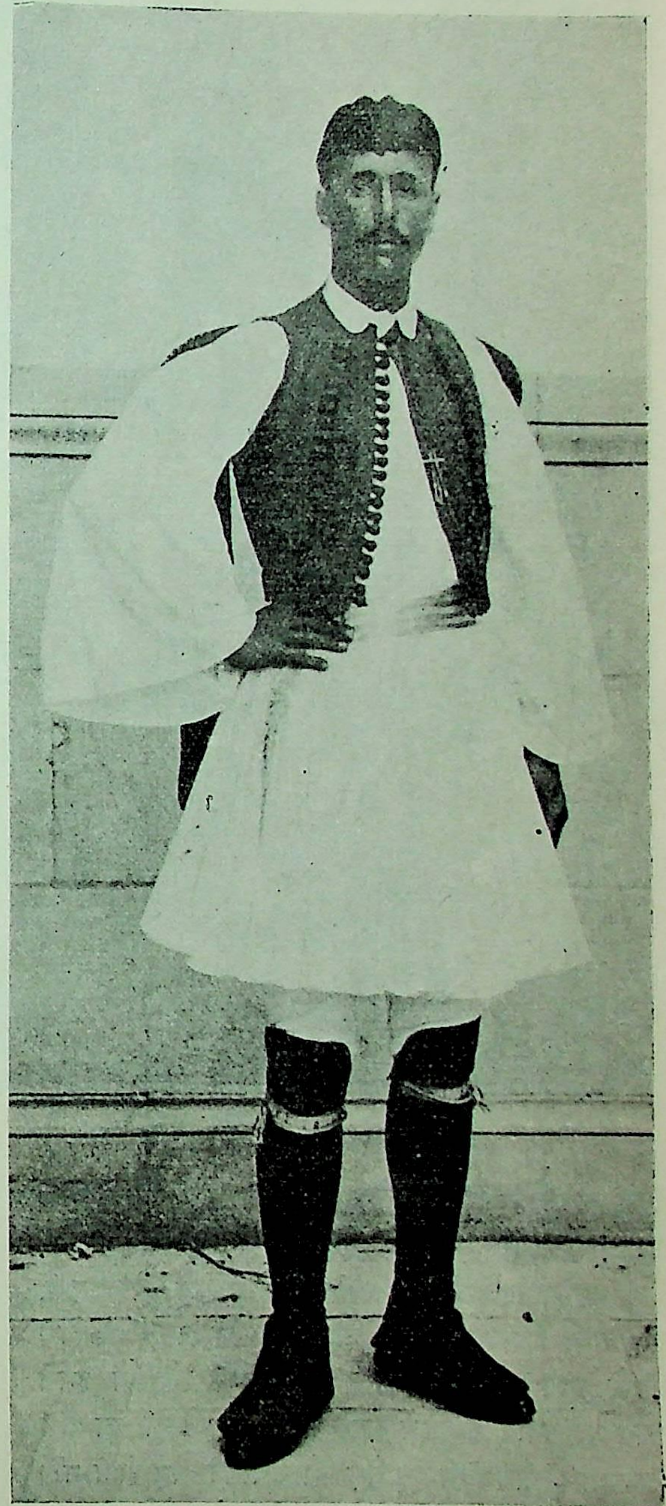
जीवन और जागृति के सिद्धान्तों में खेल-कूद का प्रमुख स्थान रहा है। "वाटरलू की लड़ाई को ईटन कालेज के मैदान में जीतनेवाले" राष्ट्र संसार में अपनी स्वाधीनता और अपने प्रभुत्व के साथ-साथ ऐश्वर्य के हिंडोले में झूलते आ रहे हैं। इस दृष्टिकोण से इतिहास को पढ़ने से पता चलेगा कि विजय की वरमाला के गूँथनेवाले दिन खेल-कूद के ही दिन थे।

सनातन से दुनिया इसी सिद्धान्त पर चली आ रही है। प्रतिस्पर्द्धा के अभाव में राष्ट्र के शारीरिक ह्रास के रोकने का अन्य साधन और कौन है? हमारे पुराण इस

तरह के व्यायाम और धर्म के कौशल की प्रतिस्पर्द्धाओं की गाथाओं से अलंकृत हैं। उसी सिद्धान्त का अन्तर्राष्ट्रीयकरण 'ओलम्पिक गेम्स' के रूप में विकसित हुआ है, जिसमें संसार के सभी देशों के चुने हुए खिलाड़ी आकर अपने कौशल दिखाते एवं अपने तथा अपने देश के शारीरिक विकास के सम्बन्ध में अपने राष्ट्र का सिर ऊँचा करते हैं।

'ओलम्पिक गेम्स' के पीछे उसका अपना एक इतिहास है। सबसे प्रथम ईसा के १३२२ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध ग्रीक योद्धा हैकलीज़ ने अपने विजयोत्सव के समय ग्रीस के योद्धाओं के पराक्रम के कौशल का प्रदर्शन किया था। आज की प्रचलित भाषा में उसे हम एक प्रकार का टूर्नामेन्ट कह सकते हैं। लेकिन इन खेलों का सिलसिलेवार इतिहास सन् ७७६ से प्राप्त होता है। यूनानवालों ने यह टूर्नामेन्ट अपने यहाँ 'ओलम्पिया' में पहले-पहल किया था। ५० वर्ष पहले यह नगर भूगर्भ से खोद निकाला गया है, और इसमें उस टूर्नामेन्ट का विशाल 'स्टेडियम' (बैठने का गोलाकार स्थान) तथा भवन मिले हैं। इनके सिवा खिलाड़ियों के विश्राम के कमरे, प्रबन्धकर्त्ताओं के कमरे और भोजनालय आदि स्थान सब अलग अलग पाये गये हैं। उक्त टूर्नामेन्ट के जन्मदाता इसी ओलम्पिया नगर के नाम पर ही वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय खेलों की प्रतिस्पर्द्धा का नाम 'ओलम्पिक गेम्स' रक्खा गया है।

आज के और प्राचीन काल के ओलम्पिक गेम्स में महान् अन्तर है। उस समय प्रत्येक प्रतिस्पर्द्धा-इच्छुक नौजवान को १० महीने तक एक विशेषज्ञ की अध्यक्षता में व्यायाम करना पड़ता था और घर से सब सम्बन्ध तोड़ देना पड़ता था। इसके बाद खेल शुरू होनेवाला महत्त्वपूर्ण दिन आता था। तब पहले दिन बलिदान तथा धार्मिक कृत्यों के पश्चात् मंगलोत्सव होता था और निर्णायक चुने जाते थे। निर्णायकों को शपथ लेनी पड़ती थी कि वे अन्याय नहीं करेंगे और किसी तरह की रिश्वत भी नहीं लेंगे। इसके बाद समस्त खिलाड़ी उनकी अवस्था तथा प्रबन्ध की सुविधा के अनुसार श्रेणियों में विभक्त कर



[१८९६ के खेलों में भाग लेनेवाला एक प्रतिद्वन्द्वी]



[भाला फेंकने की प्रतिद्वन्द्विता]

उसके गाँव में बड़ी इज़्ज़त होती; उसकी प्रशंसा में कवियों की लेखनी चलती; नागरिक मानपत्र अर्पण करते और सरकार उसे भी कर से बरी कर देती। उन दिनों ऐसे ही ओलम्पिक गेम्स होते थे। स्त्रियों को पहले तो मनाही थी, बाद में वे भी उनमें भाग लेने लगी थीं। उनके भी विजयी होने के प्रमाण मिले हैं। ग्रीक और रोमन दोनों ने इस प्रथा को क़ायम रक्खा, लेकिन ईसा के ३६४ वर्ष पहले ग्रीस के बादशाह थियोडस ने उन्हें बन्द करवा दिया।

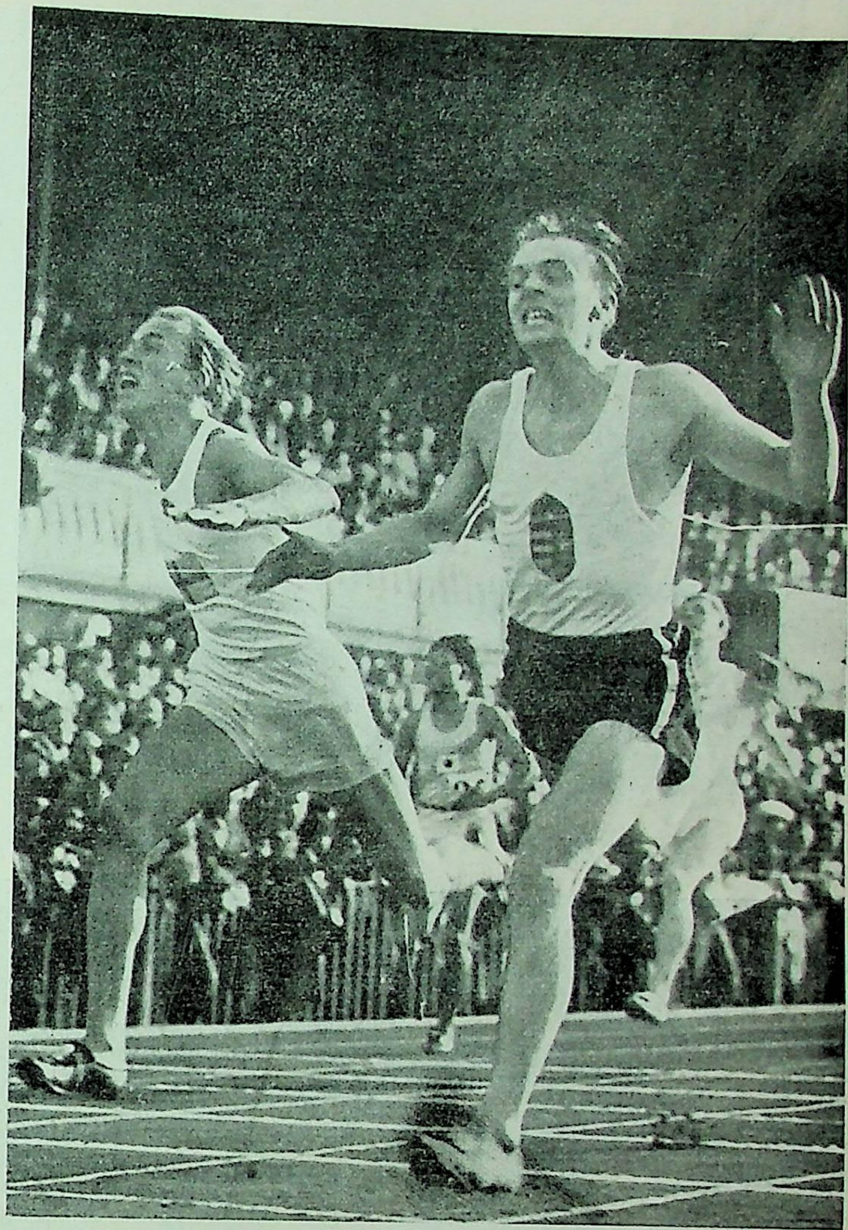
लेकिन इन खेलों की तह में जीवित राष्ट्रों की निशानी का जो मूलतत्त्व छिपा हुआ था उसे इतिहास ऊपर कर ही चुका था। अतएव १९वीं सदी में जब योरप ने भौतिक उन्नति के स्वर्णयुग में चरण रक्खा तब इन खेलों का फिर प्रादुर्भाव हुआ। सन् १८९४ में फ़्रांस के निमंत्रण पर राष्ट्रों के प्रतिनिधि पेरिस में जमा हुए और उन्होंने यह तय किया कि विश्व में शौर्य का पैमाना स्थापित करने के लिए ओलम्पिक गेम्स पुनर्जीवित किये जायँ। इसके फलस्वरूप सबसे पहला अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन १८९६ में यूनान में ही एथेन्स में हुआ। इसमें दौड़ों के सिवा टेनिस, रिवाल्वर से निशाना लगाना, कुश्तियाँ, तैरना आदि नये खेल शामिल किये गये। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण मेराथन-रेस थी। यह दौड़ २६ मील लम्बी थी और उस घटना का सूचक थी जब एथेन्स से २६ मील दूरस्थ मेराथन से वहाँ की यूनानियों की विजय का समाचार एक ही दौड़ में एथेन्स पहुँचाया गया था। इस समय ४५,००० हज़ार दर्शकों के बैठने का स्थान बनाया गया था। सन् १९०० में पेरिस में और सन् १९०५ में सेंटलुई में यह अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामेन्ट किया गया। १९०६ में फिर यही खेल एथेन्स में हुए,

दिये जाते थे। पहले दिन का कार्यक्रम इतने में ही समाप्त हो जाता था।

इसके बाद दूसरे दिन बच्चों के खेल होते और कुश्ती, दौड़ तथा कूद-फाँद आदि की प्रतिस्पर्द्धा बच्चे करते। तीसरे दिन वही खेल जवान करते। लेकिन इनमें सबसे प्रशंसनीय जिरहबख़्तर पहनकर दौड़ने का खेल होता था। चौथे दिन घुड़दौड़ और रथों की दौड़ होती थी। पाँचवें दिन फिर धार्मिक उत्सव होते; और ज़ैतून के ताज़े फूलों की मालायें इनाम में दी जाती थीं। विजयी की

जिनमें सम्राट् सप्तम एडवर्ड दर्शक के रूप में उपस्थित हुए थे। सन् १९०८ में फ्रांको-जर्मन-प्रदर्शनी के अवसर पर यह टूर्नामेन्ट लन्दन में हुआ और तब से नियमानुसार बराबर होता आ रहा है। पिछली बार लास एंजल्स में हुआ था और इस बार बर्लिन में होने जा रहा है।

ओलम्पिक खेलों का प्रबन्ध करना कोई साधारण काम नहीं है। जर्मन-सरकार को इसके लिए अलग एक महकमा ही खोल देना पड़ा है और हज़ारों व्यक्ति दिन-रात उसकी व्यवस्था के काम में लगे रहते हैं। इस वर्ष बर्लिन के खेलों में एक लाख व्यक्तियों के बैठने के लिए स्टेडियम बनाया गया है। पाठक इसकी विशालता का अन्दाज़ एक इस बात से ही कर सकेंगे कि इसकी सबसे पहली सीढ़ी अन्तिम सीढ़ी से १६ गज़ ऊँची है। जिस स्थान पर नावों की दौड़ होगी, उस स्थान पर भी १८ हज़ार के बैठने की शानदार व्यवस्था करना कोई साधारण बात नहीं समझी जानी चाहिए।



[दौड़ की प्रतिद्वन्द्विता]

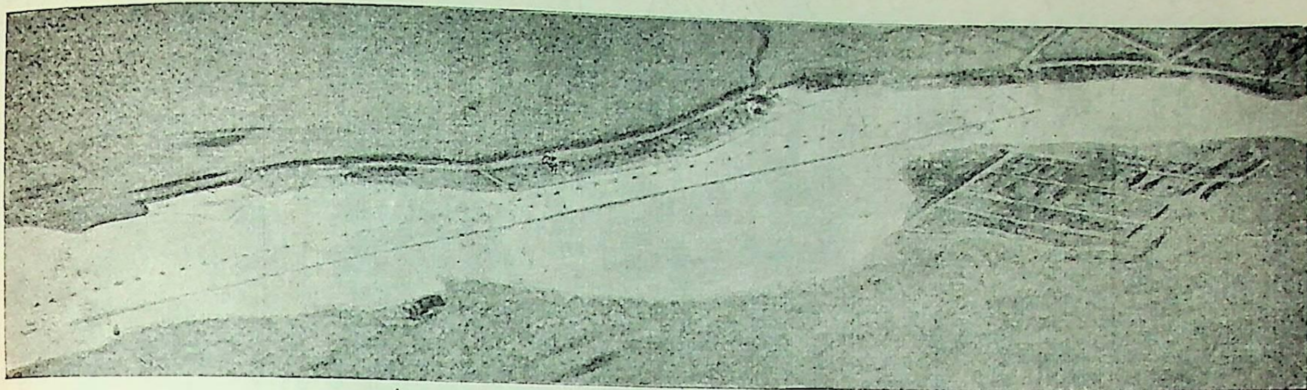
लेकिन इन खेलों के प्रारम्भ होने के समय का उत्सव भी शानदार होगा। प्राचीन यूनान में इन खेलों के समय एक तरह का यज्ञ करके अग्निदेवता की प्रतिष्ठा की जाती थी, बर्लिन में भी यही होगा। प्राचीन ओलम्पिया गाँव से २,००० मील की दूरी पर बर्लिन में आग लाई जायगी और यह आग लाने के लिए सैकड़ों आदमी मुक़र्रर होंगे, जो दौड़ दौड़ कर एक-दूसरे को आग देते जायँगे। इस प्रकार यूनान, बलगेरिया, जूगोस्लाविया, हंगरी, आस्ट्रिया, ज़ेकोस्लोवाकिया आदि देशों से होकर यह आग बर्लिन पहुँचेगी और जहाँ जहाँ से आग लानेवाले गुज़रेंगे, वहाँ वहाँ रास्ते भर उत्सव होंगे, राजधानियों में खेलों के विराट् प्रदर्शन होंगे। २१ जुलाई से शुरू होकर यह २,००० मील की दौड़ बर्लिन में १ अगस्त के दोपहर को समाप्त होगी। इस आग की स्थापना के बाद चांसलर एडाल्फ़ हिटलर इन खेलों का उद्घाटन करेंगे। होनेवाले खेलों की तालिका निम्न है—

मेराथनरेस, जिमनास्टिक, वज़न उठाना, कुश्ती, मुक्केबाज़ी, राइफ़ल से निशाना लगाना, घुड़सवारी, साईक्लिंग, तैरना, नाव खेना, डोंगी-दौड़, फ़ुटबाल, हैंड-बाल, हाकी, पोलो, बास्केटबाल।

ओलम्पिक गेमों की सफलता या असफलता राष्ट्र के

['ओलम्पिया स्टेडियम', बर्लिन]

[तैराकी की प्रतिद्वन्द्विता का स्टेडियम, बर्लिन]



[बर्लिन के समीप ग्रूनौ में नौका-प्रतिद्वन्द्विता का मुख्य स्थान।]

लिए यश या अपयश का कारण बन सकती है, अतएव हर तरफ़ से लोग आकृष्ट किये जा रहे हैं। ओलम्पिक गेमों के दर्शकों को रेलवे का किराया आधा कर दिया गया है। जो निमंत्रण-पत्र भेजा गया है वह कम मनोरञ्जक नहीं। उसमें लिखा है—"जर्मन-देश खेल के प्रेमियों और मेहमानों का हृदय खोलकर स्वागत करने के लिए तत्पर है। आधुनिक ओलम्पिक गेम युवकों का महोत्सव हैं, जिससे राष्ट्रों में मित्रता बढ़ती है और खेलों का आनन्द प्राप्त होता है। जर्मन-देश खेल के सभी प्रेमियों को सहर्ष निमंत्रण दे रहा है।"

क्या हमारे देश के युवक इस निमंत्रण को स्वीकार करेंगे? क्या उस दिन हमारे राष्ट्र का तिरङ्गा झंडा लेकर पचास राष्ट्रों के झंडों के साथ-साथ हमारे देश के युवक भी संसार के सामने उपस्थित होंगे? हम किसकी ओर ताक रहे हैं? हमारा शारीरिक ह्रास कब तक यों ही रहेगा? कब तक हम दुनिया में कमज़ोरों की श्रेणी में रहकर शर्मिन्दा रहेंगे? संसार के सामने योरप के बराबर एक राष्ट्र का—३३ करोड़ की भूमि के प्रतिनिधियों का अभाव किस देश-भक्त को नहीं खटकेगा?

हिन्दुस्तान के युवको, इन प्रश्नों का उत्तर देना तुम्हारा काम है।*

* लेख लिखने के बाद समाचार प्राप्त हुआ है कि हमारे देश से हॉकी की टीम इन खेलों में भाग लेने को जा रही है। —लेखक]

अमर अभिलाषा

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

लिखते लिखते बीत गये युग
यह जीवन-इतिहास—
किन्तु अभी तक हुआ न पूरा
रहा अपूर्ण प्रयास।

अन्तिम शब्द रह गया फिर भी—
इति है आशा-हीन!
इस पल में ही आ जाओ तुम,
—कहीं न मेरे पास!

परदा-तोड़क क्लब

गोविन्दवल्लभ पन्त

परिडत गोविन्द वल्लभ पन्त हिन्दी के एक प्रसिद्ध कलाविद् हैं। कहानी, नाटक और कविता लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। आशा है, आपका यह एकांकी नाटक पाठकों का काफ़ी मनोरंजन करेगा।

चरित्र

१—नारायण—परदा-तोड़क क्लब के मेम्बर बनने के उम्मीदवार

२—चमेली—उनकी स्त्री

३—दीना—उनका चपरासी

४—एक पकौड़ीवाला

[परदा-तोड़क क्लब के सभापति, उनकी स्त्री तथा क्लब के अन्य मेम्बर।]

पहला दृश्य



रायण का मेज़-कुर्सियों से सजा हुआ कमरा। नारायण एक कुर्सी पर बैठे हुए परदा-तोड़क क्लब के मेम्बर बनने के नियम पढ़ रहे हैं। उनके बाईं ओर की दीवार में अंदर जाने का द्वार है। द्वार पर एक परदा पड़ा हुआ है।]

चमेली

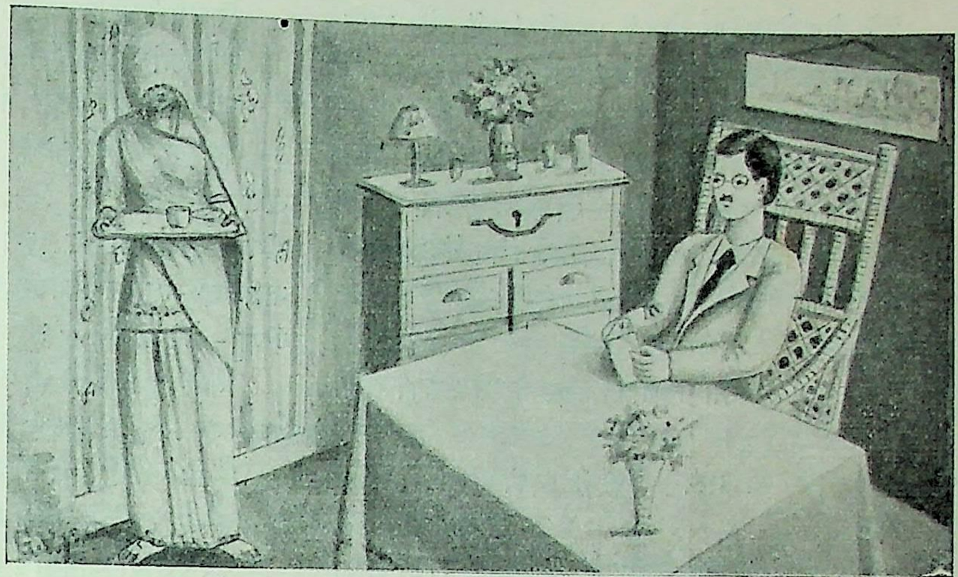
[परदे की राह घूँघट काढ़े हुए आती है और चाय तथा मिठाई मेज़ पर रखती है।]

नारायण—[किताब मेज़ पर पटककर] अफ़सोस! ईश्वर के इस न्याय की बलिहारी! मैं ऐसा अप-टु-डेट जैंटिलमैन और परदे का जानी दुश्मन, मगर मेरी यह स्त्री ऐसी गंदी-गँवार और परदे की भगतिन! [उसका घूँघट उलटता है, स्त्री का काला मुख दिखाई देता है। वह अंदर भागने की कोशिश करती है, पर नारायण उसकी साड़ी पकड़ लेता है।] घर के भीतर पति के समीप कैसा परदा? तुझे शरम नहीं आती?

चमेली—अच्छा साड़ी छोड़िए, घूँघट न काढ़ूँगी। परन्तु आपके साथ उन नकटों के क्लब में न चलूँगी।

नारायण—चुप रहो, ज़बान में लगाम दो। वे नकटे कैसे हैं, जो हिन्दुस्तान के इस सदियों के जमे हुए मैल को धो रहे हैं? नकटी तू है, तभी तो इस काली नाक पर तीन हाथ का घूँघट डाले रहती है। [पुचकार कर] अरी मान जा चम्मो, तू भी मेम्बरिन बनेगी और मैं भी मेम्बर बनूँगा। अच्छी सोसायटी में घूमेगी, बड़े-बड़ों से जान-पहचान होगी, खुली हवा में टहलेगी, क़ब्ज़ और सिर-दर्द की शिकायत दूर हो जायगी; मनचाहा सौदा बाज़ार से ख़रीद लायेगी। नौकरों की बक-बक झक-झक से छुट्टी पा जायगी।

चमेली—ऊँ हूँ। मैं न बनूँगी मेम्बरिन। मैं जहाँ हूँ वहीं अच्छी। आप जाइए और मेम्बर बनिए। मैंने कब आपको मना किया?



[चमेली घूँघट काढ़े आती है ।]

नारायण—लेकिन मैं तेरे बिना मेम्बरिन बने मेम्बर नहीं हो सकता, नहीं हो सकता !

चमेली—क्यों ?

नारायण—क्लब का मुख्य नियम ही ऐसा है। [पुस्तक खोल नियम पढ़ता है] "किसी भी मनुष्य को परदा-तोड़क क्लब का मेम्बर बनने के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने घर की कम-से-कम एक परदेवाली का परदा दूरकर क्लब का मेम्बर बनावे। ऐसा न कर सकने पर किसी भी हालत में कोई पुरुष क्लब का मेम्बर नहीं बनाया जा सकेगा।"

चमेली—तो स्वयं लहँगा और ओढ़नी पहनकर चले जाइए और वहाँ जाकर कहिए, मेरे घर में नाक कटाने के लिए कोई सूर्पनखा नहीं है।

नारायण—अरी तुझे मज़ाक सूझा है। मैं क्लबवालों से वादा कर चुका हूँ कि आज शाम की मीटिंग में मैं अपनी स्त्री के साथ मेम्बर बनूँगा।

चमेली—आपका वादा पत्थर की लकीर थोड़े है। जाकर कह आइए, मैं मेम्बर-वेम्बर नहीं बनना चाहता।

नारायण—अरे ! क्या बात बकती हो ? वादे को पूरा करना जैंटिलमैन की पहली विशेषता है।

चमेली—सच कहिए। लेकिन आप मेरे लिए हार, साड़ी और जंपर लाने को कितने वादे कर चुके हैं ?

नारायण—[मुँह बनाकर सिर खुजलाता है।] अच्छा क्लब में चलो। अगली तनख़्वाह में सबसे पहले तुम्हारी ही फ़रमाइशें पूरी की जायँगी।

चमेली—मैं लाज गँवा कर उस हार के पहनने से बाज़ आई।

नारायण—देख, मुझे बुख़ार चढ़ने लगा है। तू ज़्यादा बक-बक मत कर। घूँघट खोलकर बाहर जाने में तेरी कौनसी इज्ज़त का नीलाम हुआ जा रहा है ? दुनिया की तमाम स्त्रियों को देख, किस तरह सुन्दर प्रकाश और ताज़ा हवा में चल-फिरकर ज़िंदगी का सुख उठाती हैं। क्या उनमें धनी-मानी नहीं हैं ? बड़े-से-बड़े घरों की महिलायें वन, उपवन, बाज़ार और उत्सवों में मुँह खोले घूमती-फिरती हैं।

चमेली—वे मोटरों में जाती हैं। तुम्हारे पास तो एक छकड़ा भी नहीं है।

नारायण—अरी हिन्दुस्तान की अबला ! तुझे सदियों से पुरुष-जाति ने चारदीवारी के अंदर धुँधली रोशनी और बासी हवा में क़ैद कर रक्खा है। तेरे दिमाग़ से ग़ुलामी के ख़याल जा नहीं सकते !...लेकिन मैं तुझे घसीट कर परदे के बाहर लाऊँगा और बताऊँगा कि मर्द और औरत दोनों के हक़ बराबर हैं।

चमेली—लेकिन नहीं, किसी तरह नहीं। चमेली परदा छोड़कर क्लब में !—नहीं, नहीं, मैं इस बात को ज़बान पर भी नहीं ला सकती। सीता जी के समय से जो रीति चली आई है, जो परदा स्त्रियों का आभूषण है, आप

उसे तोड़ देना चाहते हैं। नहीं, नहीं, मैं जाति-बिरादरी में अपनी हँसी नहीं कराऊँगी। मुझे उन लोगों के बीच में रहना है।

नारायण—[दीर्घ श्वास लेकर] ओ–ओ–ओ–फ़–फ़ ! पिता जी ने इस गाँव की गँवारिन का अञ्चल मेरी टाइ से बाँध कर बड़ी भूल की। [एकाएक क्रोध में आ कमर में दोनों हाथ रखकर] तू नहीं चलेगी?

चमेली—नहीं।

नारायण—तुझे चलना पड़ेगा। [सिर पर से उसकी साड़ी खींच लेता है।]

चमेली—जीते जी नहीं। [साड़ी छुड़ा फिर सिर ढँक लेती है।

नारायण—मैं तुझे ज़बर्दस्ती ले जाऊँगा। [फिर साड़ी खींच लेता है।]

चमेली—[दोनों हाथों और घुटनों से मुँह ढँक ज़मीन पर बैठ जाती है।] मैं अपने कुल का धर्म नहीं छोड़ सकती।

नारायण—यह धर्म नहीं है, समाज का बनाया हुआ एक नियम है, जो पुराना पड़ जाने से सड़ गया है। अब ज़रूरत है कि वह बदल दिया जाय।

चमेली—[उसी तरह मुँह छिपाये चुप रहती है।]

नारायण—तू नहीं चलेगी?

चमेली—कह तो दिया, ऊँ हूँ।

नारायण—[तर्जनी दिखाकर] नहीं?

चमेली—नहीं! नहीं! नहीं!

नारायण—तो जा मर! [परदे के अंदर ढकेल देता है।] तू मेरी कोई नहीं, मेरा तुझसे कुछ वास्ता नहीं। तेरी चाय तेरे सिर पर! [परदा उठा चाय का प्याला और मिठाई की तश्तरी भी फेंक देता है।]

[कंधे तक बाल बढ़ाये, तरकारी की डलिया लिये दीना का प्रवेश। वह यह सब कुछ देखकर विस्मय प्रकट करता है।]

चमेली—[अंदर से रोती हुई] ऊँ ऊँ ऊँ

दीना—अरे बाप रे! यह क्या मामला है? [नारायण चौंककर उसकी ओर देखता है।] लीजिए बाबू जी। [तरकारी की डलिया ज़मीन पर रख पैसे लौटाकर] साढ़े चौदह आने गिन लीजिए। तीन पैसे के आलू और तीन की भिंडी लाया हूँ। [दोनों हाथों से कान पकड़कर जीभ काटता है।] बंदा चला।

नारायण—कहाँ चले?

दीना—अपने घर को हुज़ूर!

नारायण—आख़िर कारण?

दीना—मेरे बाप ने मुझसे कह रक्खा है, बेटा, जिस घर में मियाँ-बीबी लड़ते हों उस घर का नमक मत खाना...।

नारायण—[हाथ पकड़ उसे खींचकर] ठहर, ठहर, मूर्ख! मैं फिर भी तेरे रहने को यहाँ जगह बनाये देता हूँ। तेरे लिए बिना नमक की दाल-तरकारी अलग निकालकर रख दी जायगी। तू अपने हाथ से नमक मिला कर खा लेना।

दीना—वाह! क्या बात कही है बाबू जी! दिमाग़ इसे कहते हैं।

नारायण—[घड़ी देखकर] क्लब का वक्त़ हो चला दीना!

दीना—हो गया होगा, बाबू जी!

नारायण—समय आया है कि हिन्दुस्तान की औरतें परदा छोड़कर मर्दों के साथ-साथ काम करें। लेकिन कुछ औरतों के दिमाग़ में ऐसा गोबर भरा हुआ है कि बात ही समझ में नहीं आती। जो कपड़ा सिर ढँकने को मिला था उससे मुँह छिपाने लगीं।

दीना—यानी तवे से कढ़ाई का काम लिया जाने लगा।

नारायण—दीना! परदे में क्या कुछ भी फ़ायदा तुझे दिखाई देता है?

दीना—कुछ भी नहीं सरकार! परदा आँख का होता है। उसे ढँकने के लिए ईश्वर ने ऊपर और नीचे दो परदे दे रक्खे हैं। फिर यह एक घूँघट और—सूद-पर-सूद!—मुझे काटनेवाले जूते की तरह खटकता है।

नारायण—तो क्या किया जाय? जब कोई घूँघटवाली परदा छोड़ने पर राज़ी न हो तो क्या किया जाय दीना?

दीना—तब मर्द ही साड़ी पहनकर घूमने जाय।

नारायण—[ताली बजाकर] यह बात है ! तूने मेरे मतलब की बात नहीं कही है, तो भी मैंने उसमें से अपना मतलब निकाल लिया है। मेरा सवाल हल हो गया, कुंजी मिल गई ! दीना, साड़ी पहन औरत का वेश बनाकर मेरे साथ चलेगा ?

दीना—ठेटर में सरकार !

नारायण—हाँ, तूने तो वर्नाक्यूलर मिडिल पास किया है न ?

दीना—जी सरकार, और मैं अँगरेज़ी में अपना नाम भी लिख सकता हूँ। कहीं मुन्शीगिरी ख़ाली है क्या ?

नारायण—अरे नहीं—[परदा उठा अंदर चला जाता है।]

दीना—[सिर खुजलाकर] कुछ समझ नहीं पड़ता।

नारायण—[एक ट्रंक लेकर वापस आता है।] परदा-तोड़क क्लब में चलेंगे दीना ! वहाँ तुझे यह लेक्चर पढ़ना पड़ेगा। [जेब से लिखा हुआ लेक्चर निकाल दीना को देता है।] ले पढ़ तो। [ट्रंक खोलता है।]

दीना—लाइए, देखिए अभी कैसी रेल चलाता हूँ। [काग़ज़ लेकर पढ़ता है] "प्यारी बहनो और प्यारे भाइयो, आपने परदे के ख़िलाफ़ युद्ध करने के लिए मेहरबानी कर हमें भी अपने—"

नारायण—[ट्रंक के कपड़ों में उलट-पुलट करते हुए] बस, बस, ठीक है। तू बहुत होशियार है दीना ! ले यह साड़ी पहन। [ट्रंक में से साड़ी निकालकर देता है।]

दीना—[ख़ुश होकर पहनता है।] किधर से सरकार !

नारायण—[साड़ी पहनाते हुए] मैं तुझे क्लब में अपनी औरत कहकर ज़ाहिर करूँगा।

दीना—[चौंककर भागता है।] अरे बाप रे ! [अंदर की ओर सङ्केत कर अपने कान मरोड़ता है।]

नारायण—अरे आ इधर, कोई खटका नहीं है। सिंगल डाउन है।

दीना—हु-हुज़ूर, मगर बबुआइन जी का क्या होगा ?

नारायण—अरे चुप-चुप, उस चुड़ैल का नाम न ले।

दीना—बेलन तो खींचकर न मारेंगी ?

नारायण—मूर्ख, डरता है। [दीना का हाथ खींचकर उसकी धोती के ऊपर से साड़ी पहनाता है।] तेरे हाथ लकड़ी के बने हैं क्या ? भाई, देखना बड़ी ख़बरदारी से काम लेना होगा। कहीं भंडा न फूट जाय। बराबर अपने को औरत ही समझते रहना। कुछ आवाज़ भी महीन कर लेना और हाथ-पैर भी स्त्रियों की तरह चलाना। तेरे लंबे बाल भी आज काम आ गये। कुछ छोटे ज़रूर हैं, बॉब्ड समझ लिये जायँगे। वह तो और भी अप-टु-डेट बात है। ले यह जंपर पहन। [जंपर निकाल कर पहनाता है।]

दीना—[स्त्रियों के-से हाव-भाव दिखाता है।] ज़रा आइना तो देख लेने दीजिए।

नारायण—बटन तो लगाने दे। ठहर जा। अभी जल्दी क्या है ? [बटन लगा, कंघी निकाल तीन-चौथाई सिर पर माँग निकाल हेयर-पिन लगाता है।] ले यह चप्पल पहन। [चप्पल देता है।] बस अब इसी वक़्त से तू अपने को औरत समझ।

दीना—[चप्पल पहनकर] अब आइना देख लूँ हुज़ूर !

नारायण—हाँ, आइना भी देख और ज़रा हाव-भाव तथा बोल-चाल का नमूना भी दिखा।

दीना—[घूँघट सँभाल, ठोड़ी पर अनामिका रख आइना देखता है।] मगर एक बात रह गई, और सब ठीक है।

नारायण—[घबराकर] क्या बात रह गई ?

दीना—रङ्ग नहीं आया।

नारायण—रङ्ग नहीं आया ! अफ़सोस ! [गालों पर हाथ रख बैठकर सोचता है।]

दीना—[उछलकर] रङ्ग भी आ गया।

नारायण—[उठकर दीना का हाथ पकड़ता है।] किस तरह ?

दीना—बूट-पालिश की डिबिया !

नारायण—ठीक है। निकाल-निकाल बूट-पालिश। [घड़ी देखता है।] अभी उसके लिए भी वक़्त है।

दीना—[बूट-पालिश की डिबिया और ब्रुश निकालकर] यह लीजिए।

नारायण—दीना ! आज तूने मेरी लाज रख ली।

दीना—सीऽऽट् ! आप ख़ुद भूल गये स्वामी !

नारायण—[कान पकड़कर] भूला, भूला। ठीक कहती हो प्यारी ! [लो आँखें बन्द करो।]

दीना—[अंदर की तरफ़ देखता है।]

नारायण—अरी ! उधर क्या देख रही हो ?

दीना—देखती हूँ, कोई ढेला-पत्थर तो नहीं चला आ रहा है।

नारायण—किसी की ऐसी शक्ति नहीं प्यारी ! लो आँखें बन्द करो।

[दीना आँखें बन्द करता है, सिंहनाथ ब्रश से उसके मुख में पॉलिश लगाता है।]

दीना—अहाहा ! बड़े मज़े की ख़ुशबू आ रही है। ज़रा हलके-हलके हाथों से स्वामी !

नारायण—देख प्यारी, मर्दों के बीच में घबराना मत।

दीना—मैं औरत थोड़े हूँ, जो घबरा जाऊँगी।

नारायण—मार डाला ! मार डाला ! अगर वहाँ यह कह दिया तो बे मौत मरना होगा।

दीना—तौबा, तौबा ! [अपने गाल पर चपत लगाता है।] नहीं स्वामी ! मैं मर्दों से क्यों घबड़ाऊँगी। [उसके हाथ में गाल का पालिश लग जाता है। दीना घबराता है।]

नारायण—कोई हर्ज नहीं, हाथों में भी तो वही रङ्ग चाहिए, [दीना के हाथों में भी पालिश लगा देता है।] लो दोनों हाथों को ख़ूब मलकर बराबर रङ्ग फैला लो।

दीना—[हाथ मलकर] अब ?

नारायण—[रूमाल देकर] लो, इस रूमाल से हाथ पोंछ लो।

दीना—[हाथ पोंछता है।]

नारायण—[लिखा लेक्चर देकर] लो, यह अपना लेक्चर सँभालो।

दीना—लाइए, प्राणनाथ !

नारायण—तो चलें।

दीना—परन्तु एक बार फिर आइना देख लूँ।

नारायण—देख लो।

दीना—[आइना देखकर] अब कुछ कसर नहीं है।

नारायण—[घड़ी देखकर] चलो।

दीना—तैयार हूँ, [ज्यों ही जाना चाहता है, त्यों ही तरकारी की डलिया से उलझकर गिर पड़ता है।]

चमेली—[अंदर से] आक् छी ! आक् छी !!

दीना—[उठकर सँभलता है।] सँभालिए खोपड़ी ! आई ईंट।

नारायण—तुम बहुत डरती हो प्रिये !

दीना—औरत-ज़ात ठहरी न।

नारायण—ठीक है, बिलकुल ठीक है। [चलना चाहता है।]

दीना—[सिंहनाथ का हाथ खींचकर] पर अभी ज़रा देर ठहर जाइए।

नारायण—क्यों ?

दीना—छींक हुई है न !

नारायण—तुम बड़ी अंधविश्वासिनी हो।

दीना—औरत-ज़ात ठहरी न !

नारायण—ठीक है, बिलकुल ठीक है। लेकिन यह छींक पीठ पीछे की है, इसका कोई ख़तरा नहीं।

दीना—ठहर जाइए। हानि क्या है ? बीस तक गिनने के बाद चलेंगे। एक, दो, तीन, चार......[बीस तक गिनता है।]......बीस, चलिए।

[दोनों का बाहर को जाना और चमेली का अन्दर से आना।]

चमेली—परमेश्वर करे यह बात न छिपे, भेद खुल जाय, भण्डा फूट जाय ! [जाना।]

दूसरा दृश्य

[बाज़ार का एक मोड़, कंधे पर खोमचा, बग़ल में तरौना और दाहने हाथ में अँगीठी पर कड़ाही लिये एक पकौड़ीवाले का आना।]

पकौड़ीवाला—चाट-चाट, हाथ चाट, पात चाट। चनेऽऽ चटपटेऽ मसाऽऽलेदार ! खावे तो मज़ा आवे, चक्खे तो याद रक्खे। और पकौड़ी भी उबल रही है। क्या धुआँ आ रहा है !

[नारायण और दीना का आना। भोंपू बजाते हुए एक मोटर का प्रवेश। उससे बचने के लिए नारायण और दीना



[खोमचेवाला]

का एकाएक एक ओर को हटना और पकौड़ीवाले से टकराना। पकौड़ीवाला ज़मीन पर गिरता है। उसके थाल और अँगीठी का बिखर जाना। नारायण का दीना का हाथ खींच लंबे क़दम बढ़ा खिसक जाना। पकौड़ीवाले का लपककर नारायण का हाथ खींच लाना। उन्हीं के साथ दीना का भी आना और उनकी ओर पीठ कर खड़ा रहना।]

नारायण—[क्रुद्ध होकर] क्या बात है ? तुम्हें शरम नहीं आती। नमक-मिर्च सने हुए हाथों से तुमने इस तरह एक जैंटिलमैन का हाथ खींच लिया। तुम्हारे ऊपर इज़्ज़त-हतक़ का दावा हो सकता है।

पकौड़ीवाला—किस दावे के फेर में पड़े हो हज़रत ? यहाँ देखो, तुमने तो मेरा समूचा खोमचा ही उलट डाला। अभी बोहनी भी नहीं की थी। सीधा घर से ही चला आ रहा हूँ। बाबू, तुमने हमारे पेट में छुरा भोंक दिया। रात को कैसे चूल्हा जलेगा, क्या बाल-बच्चे खायँगे ?

नारायण—हाथ छोड़ दो।

पकौड़ीवाला—हाथ नहीं छोड़ूँगा। मैं चिल्ला-चिल्लाकर अभी यहाँ तुम्हारे चारों ओर भीड़ जमा करता हूँ। खोमचे के पैसे रख दो।

नारायण—कहता हूँ, हाथ छोड़ दो। एक शरीफ़ आदमी की बेइज़्ज़ती मत करो, और ख़ास कर उस वक़्त जब उसकी स्त्री उसके साथ है।

पकौड़ीवाला—आँख देखकर रास्ता चलते जनाब !

नारायण—मैं ठीक रास्ते से आ रहा था, तुम्हीं राँग साइड पर थे। इतना लम्बा-चौड़ा थाल कन्धे पर और हाथ में अँगीठी, उस पर कड़ाही—सारी दुनिया को लादे हुए चलते हो। एक भोंपू भी रखकर बजाते चलो कि लोग सावधान हो जायँ। छोड़ो हाथ।

पकौड़ीवाला—कभी नहीं।

दीना—[सामने मुखकर] फेंकिए इसके सिर पर कुछ। यह ऐसे न मानेगा स्वामी !

[पकौड़ीवाला शङ्कित होकर दीना की ओर देखता है।]

नारायण—हाथ छोड़ दो। [दूसरे हाथ से घड़ी निकालकर देखता है।]

पकौड़ीवाला—मेरा पूरे ६ रुपये का खोमचा है। आख़िरी पाई तक वसूल करूँगा।

[पकौड़ीवाला फिर शङ्कित होकर दीना की ओर देखता है। दीना मुख फेर लेता है।]

नारायण—हाथ तो छोड़ गधे ! हाथ से पैसे भी निकालने देगा न ? [झटका देकर हाथ छुड़ा, जेब से पाँच रुपये का नोट निकालकर उसे देता है।] एक रुपया वापस कर।

पकौड़ीवाला—[नोट और उसका वाटर-मार्क देखकर] एक रुपया और टेंट से निकालो। यह तो पाँच रुपये का नोट है।

दीना—एक साथ ही बिक गया, गली-गली फिरने से बचे।

यह क्या कम है ? चलिए स्वामी ! फेंकिए पूरा नोट इसके सिर पर फेंकिए, देर हो रही है।

[दोनों का जाना ।]

पकौड़ीवाला—[ठोड़ी में दाहने हाथ की तर्जनी रख स्त्रियों के स्वर में] देर हो रही है ! [हठात् कुछ याद आते ही उनकी ओर भागता है और दीना का हाथ पकड़कर खींच लाता है। उनके पीछे नारायण भी आता है।] क्यों दोस्त ! आज बहुत दिनों में मिले। उधार खाकर गली-गटरों में मुँह छिपाते फिरते हो ?

नारायण—[हक्का-बक्का होकर] ओ बेईमान ! तुझे हो क्या गया है ? इस तरह पराई औरत का हाथ पकड़ लिया !

पकौड़ीवाला—[सलाम कर] आदाबअर्ज़ है बाबू जी ! यह सब जाकर अंधों से कहिए। यह मुलुवा का बेटा दिनुवा है। इसे देखकर कुछ शक तो पहले ही हो गया था। अगर जाते वक्त इसकी यह छठी उँगली न देख लेता तो इसने मेरी आँखों में धूल झोंक दी थी। इसे इस तरह सजाकर कहाँ ले जा रहे हो बाबू जी ?

नारायण—[मुँह फेरकर दाँतों के नीचे जीभ दबाता है।]

दीना—छोड़, देर हो रही है। एक जगह ठेटर में जाना है। [हाथ छुड़ाने की कोशिश करता है।]

पकौड़ीवाला—पैसे रखते जाओ बच्चू ! अब तुम्हारी बारी है। आज बहुत दिनों में मिले हो। सीधे मुँह से रख दो। मेरे एक रुपया साढ़े सात आने। नहीं तो क़यामत तक नहीं छोड़ूँगा। आज फँसे हो पंजे में।

नारायण—ले यह एक रुपया साढ़े सात आने। [पैसे निकालकर देता है।]

पकौड़ीवाला—[दीना का हाथ छोड़कर पैसे लेता है।] जीते रहो बाबू जी ! पूरे दो साल में वसूल हुए हैं। [पैसे अंटी में रखता है।]

[नारायण दीना का हाथ पकड़ जल्दी से सरक जाता है। पकौड़ीवाला अपना खोमचा समेटकर सजाने लगता है।]

तीसरा दृश्य

[परदा-तोड़क क्लब की मीटिंग। एक मेज़ के चारों ओर क्लब के मेम्बर स्त्री-पुरुष बैठे हुए हैं। क्लब के सभापति खड़े होकर व्याख्यान दे रहे हैं। समीप ही उनकी स्त्री बैठी है।]

सभापति—परमेश्वर को धन्यवाद है। दिन-दिन हमारे साथी बढ़ते ही जा रहे हैं। हर बड़े शहर में परदा-तोड़क क्लब की एक-एक शाखा खुल गई है। औरतों को अपने स्वत्वों की पहचान हो रही है। परदे का घूँघट डालकर उनको दिन में ही उल्लू बनानेवाले लोग मुँह छिपाते नज़र आ रहे हैं।

नारायण—[नेपथ्य में] और किसी तरह इसका घूँघट नोचकर मैं भी आ पहुँचा जनाब !

सभासद्—[उत्सुक होकर उधर देखते हैं।]

[नारायण का दीना का हाथ पकड़े हुए प्रवेश।]

नारायण—लीजिए, ले आया मैं भी इसे पिंजरे के बाहर। बड़ी विनय-प्रार्थना, ख़िदमत-ख़ुशामद और लड़ाई-झगड़े के बाद ले आया।

सभासद्—शाबास ! मिसेज़ और मिस्टर नारायण।

नारायण—[टोपी उतार, सिर झुका, हाथ पीछे कर] थैंक यू।

दीना—[सिर नंगा कर, सिर झुका, हाथ पीछे कर, महीन आवाज़ में] थैंक यू।

सभापति—हमें तुम्हारे-जैसे ही निडर सुधारकों की ज़रूरत है, जो दूसरों को लेक्चर देना छोड़कर अपने घर का परदा फेंक प्रेक्टिकल मिसाल सामने रखते हैं।

सभापति की स्त्री—आइए, अब आपको इन्ट्रोड्यूस करायें।

[सभापति की स्त्री नारायण का हाथ स्त्रियों के हाथों से मिलाती है। सभापति दीना का हाथ पुरुषों से मिलाता है। सब अपनी-अपनी जगहों में बैठते हैं।]

सभापति—[उठकर] आपको परदा-तोड़क क्लब में शामिल करते हुए हमें बेहद ख़ुशी है। आप क्लब की प्रतिज्ञा याद कर आये हैं ?

नारायण—[उठकर] जी हाँ।

सभापति—अच्छी बात है। नियमानुसार तीन बार प्रतिज्ञा कीजिए।

नारायण—मैं धर्म्म और ईश्वर को साक्षी कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपने घर के अन्दर की स्त्रियों का परदा मिटा दूँगा और उन्हें पुरुषों के समान अधिकार लेने दूँगा। [तीन बार कहकर बैठ जाता है।]

सभापति—[दीना से] अब आप भी उठकर तीन बार प्रतिज्ञा कीजिए—मैं किसी वर्ण और जाति के जीवधारी से ऊन, सूत, रेशम, जूट आदि किसी वस्तु का बना हुआ किसी तरह का परदा नहीं करूँगी।

दीना—[उठकर] मैं किसी वर्ण......[रुक जाता है।]

नारायण—अभी जेलख़ाने से निकालकर ला रहा हूँ और आपने एक-दम कंपाउंड सेंटेन्स इनके सिर पर लाद दिया। आधा-आधा कहलवाइए।

सभापति—अच्छी बात है। लेकिन प्रतिज्ञा याद हो जानी चाहिए। कहिए—मैं किसी वर्ण और जाति के जीवधारी से ऊन, सूत, रेशम, जूट आदि......

दीना—मैं किसी वर्ण और जाति के जीवधारी से ऊन, सूत, रेशम जूट आदि......

सभापति—किसी वस्तु का बना हुआ, किसी तरह का परदा नहीं करूँगी।

दीना—किसी वस्तु का बना हुआ, किसी तरह का परदा नहीं करूँगा। [सभासद् ताज्जुब और नारायण क्रोध से उसकी ओर देखते हैं। दीना सँभलता है।] गी, गी, गी, करूँगी, करूँगी, परदा नहीं करूँगी। [अब याद हो गया। दो बार फिर वही वाक्य कहकर बैठ जाता है।]

सभापति—परमेश्वर आप लोगों की मदद करे। आप आँधी और भूचाल की तरह इस नवीन क्रान्ति में काम आवें। मिसेज़ नारायण! क्लब के क़ायदे के अनुसार अब आपको एक छोटा-सा लेक्चर देना होगा।

नारायण—उठो, उठो, शरम किस बात की।

सभापति की स्त्री—स्त्रियों के बराबर दुनिया में और कौन हो सकता है? उठो, इस बात को साबित करो।

दीना—[काग़ज़ निकालकर] मगर आज पहला दिन है। इसलिए मैं घर से लिखकर लाया हूँ। [सभा ताज्जुब और नारायण क्रोध प्रकट करते हैं।] ई, ई, ई, लाई, लाई, लिखकर लाई हूँ।]

सभापति—कोई हर्ज नहीं। उसे ही पढ़िए।

दीना—[उठकर पढ़ता है] प्यारी बहनो और प्यारे भाइयो, आपने परदे के ख़िलाफ़ युद्ध करने के लिए मिहरबानी कर हमें भी अपने झुंड में शामिल किया है। इसलिए हम आपको सैकड़ों धन्यवाद देते हैं। प-र-दा—यह तीन अक्षरों का वह राक्षस है, जिसने औरतों की आज़ादी को छीन लिया है, उनके सुख को कुचल दिया है और उनकी तन्दुरुस्ती को हज़म कर डाला है! मर्द बहुत दिन तक औरतों को क़ैद कर मनमानी कर चुके। अब उनकी पोल खुल गई।

सभासद्—हियर! हियर!!

दीना—पुरुषों की इस ज़्यादती, स्त्रियों की इस बेड़ी और समाज के इस कलङ्क को मिटाने के लिए मैं परदा छोड़कर मैदान में आया [सभासद् फिर शक ज़ाहिर करते हैं।] ई, ई, ई, आई, आई, मैदान में आई हूँ कि इस सड़ी रीति और गले रवाज का गला घोट डालूँ।

सभासद्—हियर! हियर!!

[नेपथ्य में "पकौऽड़ी गरऽऽम!, की आवाज़। नारायण का घबराना, दीना का चुप हो जाना।]

सभापति हाँ, हाँ, कहो, कहो।

दीना—मैं अपनी ऊँची आवाज़ से आसमान और ज़मीन में गूँज पैदा करूँगी कि ऐ भोली-भाली स्त्रियो! इस परदे के जाल को काटकर बाहर आओ और तितलियों की तरह सूरज की सुनहरी किरणों में नाच कर देखो कि मर्दों ने दुनिया का सबसे सुन्दर हिस्सा अपने लिए बचा रक्खा है। अन्त में आप लोगों को जो तन-मन-धन से इस बुराई की जड़ काटने के लिए पेटी कसे बैठे हैं, धन्यवाद देकर बैठता [सभा फिर ताज्जुब करती है।] ती, ती, ती, बैठती, बैठती धन्यवाद देकर बैठती हूँ। [बैठ जाता है।]

सभासद्—[ताली बजाते हैं।]

पकौड़ीवाला—[आकर खोमचा और अँगीठी फ़र्श पर रखता है।] पकौऽड़ी गरऽऽऽम !

सभापति—[साश्चर्य्य] चपरासी ने नहीं रोका। यह यहाँ कौन आ गया ?

पकौड़ीवाला—ख़ता माफ़ हो मालिक ! इस परदा-तोड़क क्लब में कैसी रोक-टोक ! मैं परदे में नहीं बेचता, खुले आम चौराहों पर ! बड़े-बड़े राजा-रईस मेरी पकौड़ियों का मज़ा लेते हैं। एक ख़ास मसाला देता हूँ। किसी के बाप को मालूम नहीं हो सकता। और पकौड़ी भी उबलते हुए तेल में थिरक रही हैं ! वाह क्या बात है ! चक्खे तो याद रक्खे !

[नारायण दीना से मेज़ के नीचे छिपने का इशारा करता है। दीना मेज़ के नीचे सिर करता है।]

सभापति—क्या बकते हो जी ? निकलो यहाँ से।

पकौड़ीवाला—मेरी पकौड़ियों से ज़्यादा आप गरम हो नहीं सकते। किसी के ज़नानख़ाने में थोड़े घुस आया हूँ सरकार ! यह परदा-तोड़क क्लब है परदा-तोड़क क्लब ! पकौऽऽड़ि गरेऽऽम् खावे तो मज़ा आवे।

सभापति—कह दिया, जाओ, यहाँ तुम्हारी पकौड़ियाँ नहीं बिक सकतीं।

पकौड़ीवाला—उसकी किसे फ़िक्र है। [अंटी से एक रुपया निकालता है।] बात यह है हुज़ूर। [रुपये को फ़र्श पर बजाता है।] देखिए सरकार ! है न खोटा ?

सभापति—बहुत हो चुका, उठो किसी सर्राफ़ के पास जाकर इसके खरे-खोटे की जाँच कराओ।

पकौड़ीवाला—मगर उसको भी तो पकड़ ले चलूँ। कम्बख़्त ! बेईमान ! दिनुवाँ मुझे खोटा रुपया दे गया। मैंने कभी उसे कच्ची पकौड़ियाँ नहीं खिलाईं हुज़ूर !

सभापति—कैसे सिड़ी हो ? यहाँ कोई दिनुवाँ नहीं है। उठाओ खोमचा और रास्ता नापो। [उसके निकट जा उसे राह दिखाता है।]

पकौड़ीवाला—वह यहीं है सरकार ! मैं बड़ी दूर से पूछते-पूछते चला आ रहा हूँ। वह यहीं आया है। मेरी पकौड़ी जल नहीं सकती और मैं धोखा खा नहीं सकता। पकौऽऽऽड़ि गरऽऽम ! उसके साथ आधी-आधी मूँछों के चश्मा पहने एक बाबू जी भी थे। उन्होंने रुपया दिया है।

[नारायण भी मुँह छिपाता है।]

सभापति—बहुत मत बको जी, ठोकर मारकर खोमचा लुढ़का दूँगा।

पकौड़ीवाला—कम्बख़्त मुँह में कारिख मल साड़ी पहन मुझे घिस्सा दे गया।

सभापति—[शक कर] हैं कारिख और साड़ी !

पकौड़ीवाला—हाँ हुज़ूर, कहता था ठेटर करने जा रहा हूँ। हो गया ठेटर सरकार !

सभापति—मिसेज़ नारायण ! आप गर्दन नीची किये फ़र्श पर क्या टटोल रही हैं ?

सभापति की स्त्री—और मिस्टर नारायण ! और आप भी झुके हुए किसके जूते का तस्मा खोल रहे हैं ?

नारायण—अजी क्या बताऊँ जनाब ! मेरी फ़ाउण्टेन और इनकी रिस्टवाच गिर पड़े हैं। उन्हीं को खोज रहे हैं।

पकौड़ीवाला—[झुककर देखता है और दीना को पहचान कर उछलता है।] वही है सरकार !

सभापति की स्त्री—बड़ी देर हो गई बहन !

[सभापति चकित हो कुछ विचार करता है। दीना मेज़ के नीचे छिपता है। पकौड़ीवाला जाकर नारायण का हाथ खींचकर मेज़ के बाहर निकालता है।]

पकौड़ीवाला—आदाब बजा लाता हूँ सरकार ! यह रुपया सही सुर में नहीं है, इसे मेहरबानी कर बदल दीजिए।

[दीना मेज़ के नीचे साड़ी, जंपर और चट्टी खोलता है।]

नारायण—[दूसरा रुपया देकर] लो, और चुपचाप सीधे चले जाओ।

पकौड़ीवाला—जीते रहें सरकार। [खोमचा उठाकर] गरऽऽम पकौऽऽड़ि ! पकौऽऽड़ि गरऽऽम !! [जाता है।]

सभापति—मिस्टर नारायण ! कुछ समझ में नहीं आता।

सभापति की स्त्री—बहन, आपकी रिस्टवाच नहीं मिली ?

दीना—[मेज़ के नीचे से] मेरे बाप-दादे में से किसी ने भी रिस्टवाच नहीं पहनी सरकार !

सभासद्—[चौंकते हैं ।]

दीना—[साड़ी, जंपर और चट्टी लिये मेज़ के नीचे से निकलता है और उन्हें नारायण को सौंपता है । सभा चकराती है ।] लीजिए सरकार ! मैंने तो तभी आपसे कह दिया था, मुझे छुट्टी दे दीजिए । यह बहू जी की साड़ी, जंपर और चट्टी सँभालिए । बन्दा चला । जय रामजी की ! मेरे ठेटर में अगर कोई ग़लती हुई हो तो आप सब लोग कहा-सुना माफ़ करेंगे ।

सभापति—अफ़सोस, अफ़सोस, बेहद अफ़सोस !

[सभासद् उठकर नारायण की तरफ़ जाते हैं, नारायण उदास होकर सिर खुजलाता है ।]

सभापति—आप-जैसे पढ़े-लिखे और शरीफ़ लोग ऐसी सफ़ेद झूठ बोलें । शर्म है, शर्म है, चुल्लू-भर पानी में डूब मरने की बात है ।

सभासद्—छि ! छि !! छि !!!

[सारी सभा घृणा की दृष्टि से नारायण की ओर देखती है । नारायण गर्दन नीची कर लेता है । उसके हाथ से साड़ी, जंपर और चट्टी फ़र्श पर गिर जाते हैं ।]

यमुना के प्रति

लेखिका, श्रीमती तारा पांडे

यमुने, तेरे निर्मल जल में
कितनी बार नहाई थी ।
तेरे वक्षःस्थल पर मैंने
दीपक-ज्योति जलाई थी ॥१॥

बैठ नाव पर तेरे उर में
कितनी बार विहार किया ।
देख देखकर बचपन ही से
मैंने तुझको प्यार किया ॥२॥

कोई नहीं जानता है मा,
मेरे उर की करुण कथा ।
तू ही कैसे समझ सकेगी
जीवन की वह मर्म व्यथा ॥३॥

तेरी गोदी में सोये हैं
मेरे माता और पिता ।
तेरे ही समक्ष दोनों को
जला चुकी है, हाय, चिता ॥४॥

फिर भी तू मुझको प्यारी है
सत्य बताती हूँ तुझको ।
एक विनय है, मा अपने में
शीघ्र लीन कर ले मुझको ॥५॥

कला का क्रमिक विकास और यथार्थवाद

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

पण्डित उदयशङ्कर भट्ट सुकवि तथा नाटककार हैं। कला के सम्बन्ध में आपने अपने जो विचार इस लेख में व्यक्त किये हैं, आशा है, उनकी ओर हिन्दी के विचारवानों का ध्यान आकृष्ट होगा।

मनुष्य ने प्रारम्भकाल से जीवन के जिस सबसे बड़े पहलू में विकास पाया है वह उसके व्यक्तित्व का मधुर उपयोग है। उस व्यक्तित्व की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उसने बहुत हाथ-पाँव मारे हैं। कला की अभिव्यक्ति के द्वारा इस विचार को उसने जी-जान से सींचा है। जिसे योगी लोग 'आत्म-सुख' कहते हैं, वेदान्ती जिसे 'आत्म-चिन्तन' कहते हैं, संसार के साहित्य की शिष्टभाषा में हम उसे कला-द्वारा प्राप्त 'आनन्द' कहते हैं। अगर हम इस बात को और स्पष्ट करने के लिए प्रतिदिन होनेवाली विशेष घटना पर विचार करें जो मनुष्य के गर्व या किसी ऐसे ही भाव के साथ घटित हुई है, तो हमें मालूम होगा कि मनुष्य की उस क्रिया में व्यक्तित्व की एक विशेष प्रकार की ध्वनि है। उस क्रिया में उसकी आत्मा का उद्धार है। गोष्ठियाँ बनाकर रहनेवाले आर्यों ने उपनिषद्-काल में उस व्यक्तित्व की बड़ी गहरी उपासना की है। भारत के इस छोर से लेकर उस छोर तक इस लहर ने जहाँ आत्मा के अपने चिन्तन में व्यक्तित्व की मर्यादा को क़ायम रक्खा, वहाँ समाज ने उसे धर्म के नाम पर और तत्कालीन परिस्थितियों ने श्रेष्ठ व्यक्ति की उपासना के बहाने अपनेपन से हटाकर उसका रुख़ राजा की तरफ़ फेर दिया, उसके दृष्टिकोण को थोड़ा-बहुत वीरता, जातीयता की ओर भी कर दिया। दूसरों से अपनी रक्षा करने के विचार ने उनके गोष्ठीतंत्र को राज्यप्रणाली में बदल डाला। और समय पाकर लोग राजा में ईश्वर का अंश समझने लगे। इसका प्रभाव सांसारिक साहित्य पर इतना अधिक पड़ा कि हम अपना सञ्चित व्यक्तित्व भूलकर ईश्वर के प्रतिनिधि राजा की ओर चल पड़े, और वहाँ बढ़ते-बढ़ते अवतार तक पहुँच गये। ठीक इसी तरह हमारे व्यक्तित्व से निकलती हुई कला ने हमारे पीछे चलना शुरू किया और वह भी राजा की गोद में बहुत देर के लिए बैठ गई। यहाँ यह भी कह देना चाहिए कि संस्कृत के दोनों—शब्द और दृश्य काव्य भी कवि की कल्पना-द्वारा राजा तक जाकर ही सीमित रह गये। रघुवंश, कुमार-सम्भव, नैषध आदि काव्य एवं शकुन्तला, मालविकाग्निमित्र, स्वप्नवासवदत्ता आदि नाटक राजाओं के पराक्रम, सौन्दर्य-विलास आदि बातें दिखाने के लिए रह गये।

बल्कि संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों ने तो नायकों का एक नियम भी बना लिया कि नाटक में अमुक-अमुक ढङ्ग के नायक होने चाहिए। और प्रतिनायक ऐसे हों जो उसके सदा प्रतिद्वन्द्वी होने के साथ नायक से अन्त में हार जाने-वाले हों। प्रत्येक नाटककार ने उसके न हारने पर भी उसे अन्त में हरा ही दिया है। इसका कारण केवल नायक को बड़ा दिखाना और उसके पद की रक्षा करना है। प्रतिनायक की कल्पना साहित्य में नायक की परीक्षा और उसके वैभव को और अधिक आकृष्ट कर दिखाने के लिए था। काव्यों में तो प्रतिद्वन्द्वियों की कोई ख़ास ज़रूरत पड़ती ही नहीं है। इसलिए अन्य काव्यों में तो प्रतिनायक का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसी तरह नायिका से प्रतिनायिका को भी सदा हारना ही चाहिए। ऐसा करने और दिखलाने का एक कारण यह भी तो है कि राजा के अलावा उस समय कोई व्यक्ति शायद सम्पन्न भी तो नहीं पाया जाता था। उस समय कला स्वभाव के अनुसार एक प्रकार के विशेष विलास-द्वारा ही प्रकट होने पर उन्नत समझी जाती थी। परन्तु इतना मानना पड़ेगा कि भास और कालिदास के ज़माने तक वह स्वाभाविक ज़रूर थी। उसके बाद जब से लक्षणों पर ज़ोर दिया जाने लगा तब से उसका रूप बहुत कुछ विगड़ गया। परन्तु उस समय की जो सबसे बड़ी बात मालूम होती है वह यह है कला का

यथार्थवाद। यथार्थवाद से मेरा मतलब 'रियलिज़्म' से है। यह ठीक है कि उस समय का 'रियलिज़्म' उन मानों में नहीं था, जिन मानों में आज-कल समझा जाता है। रियलिज़्म के माने यदि बाहरी लीपापोती न होकर वस्तु की गहराई में जाने के भी हैं तो उस समय वैसा 'रियलिज़्म' था। कुमारसम्भव में पार्वती का स्वभाव, सौन्दर्य, उसके हृदय के भावों का क्रमिक उत्थान और पतन जिस ख़ूबी के साथ दिखलाया गया है, बहुत कम महाकवि वैसा वर्णन कर सके हैं। टेम्पेस्टे की नायिका से शकुन्तला की समानता की जा सकती है, परन्तु कुमारसम्भव की पार्वती तो संस्कृत-साहित्य में अद्वितीय है। उसकी समता तो केवल तुलसीदास की सीता से ही हो सकती है। जूलियस सीज़र के ब्रूटस की पत्नी भी कर्तव्यपालन और पतिहित-चिन्तना में अपना सानी नहीं रखती। परन्तु श्मशान में लेटे हुए, समाधि में रस जानेवाले भोले देहाती शिव की प्राप्ति के लिए रानी की लाड़ली बेटी की दिल थर्राने-वाली कठिन तपस्या तो लोकोत्तर है। कालिदास का सब कुछ श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है, पर कुमारसम्भव तो उसकी उत्कृष्टतम कृति है। कला ने उस प्रकार की स्वाभाविकता को लेकर विलास के जो पवित्र प्रासाद देखे हैं वे सब तो अब देख सकना असम्भव है! कला का भी तो एक इतिहास है। उसमें भी तो उठती-बैठती धारायें कभी एक ओर तो कभी दूसरी ओर को बही हैं। उस समय की कला दिलीप की सुदक्षिणा की भोली कोख से निकली और पार्वती के समान बालिका बनकर साहित्य के भावों से खेली और अन्त में मालविका के रूप से उसने विश्व को मुग्ध-सा कर दिया। इतने पर भी कहना ही पड़ेगा कि उस कला ने सर्वसाधारण के जीवन की सादगी को छुआ तक न था। छोटे से छोटे मनुष्य को चित्रित करने में भी कला वैसी ही सुन्दर प्रादुर्भूत हो सकती है, इसका तो स्वप्न देखना भी शायद गुनाह था। एक केवल मृच्छकटिक को छोड़ दीजिए। वह तो एक छोटे-से रूप में अपवाद है। भारतीय साहित्य ने अभी बहुत दिन नहीं हुए प्रजा का मुँह देखा है। उसमें भी संस्कृत ने नहीं, हिन्दी-साहित्य ने। वह राजाओं के जीवन का साहित्य था, अब हमारा जनसाधारण का साहित्य है। शायद यह दृष्टि-बिन्दु पाश्चात्य साहित्य की देन है। हमारे यहाँ का व्यक्तित्व मनुष्य को देवता बनाकर देखने का आदी रहा है। उसने ऋषि, महर्षि, भक्त, साधुओं के देखने में अपनी सफलता समझी, परन्तु उसने मनुष्य के रूप में मनुष्य की नीची श्रेणी में पैठकर देखने की कभी इच्छा नहीं की है। संसार-प्रसिद्ध मिस्टर बर्नार्डशा ने "दी एडवेंचर आफ़ ए ब्लेक गर्ल इन हर सर्च फ़ार गाड" नामक एक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक अफ़्रीका की एक हबशी लड़की के ईसाई हो जाने पर ईश्वर की खोज के विषय में है। इस पुस्तक में हबशी लड़की के द्वारा शा महोदय ने ईश्वर के अस्तित्व, उसकी सचाई, उसके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार के रूढ़िवादों के आधार पर जो कुछ कहलवाया है वह अद्भुत है। एक अपढ़ हबशिन तर्क के आधार पर कहाँ तक पहुँच सकती है, कहाँ तक उसने ईश्वर के सामने मनुष्यता को स्थिर रक्खा है, इन बातों से मनुष्य के साधारण से साधारण जीवन और उसकी कला का ज्ञान होता है। हम बड़े आदमियों में जो विभूति देखते हैं, जो प्रौढ़ता, ऊँचाई, आदि महान् आत्माओं में है, उतनी ही और वैसी ही सचाई नीच कहे जानेवाले मनुष्यों में भी वर्तमान है। क्रूरता में दया के दृश्य दिखाई देते हैं, रसिक हृदय में भी वीरता पाई जाती है। सम्राट् अशोक में जहाँ इतनी हिंसा भरी थी, वहाँ उसके भीतर दया का स्रोत भी उमड़ रहा था। उसे निकलने का सुअवसर ही नहीं मिल रहा था और जब वह निकला तब उसने संसार में दया की अजस्र धारा बहा दी। परन्तु इतने से उसकी वीरता नष्ट हो गई, यह नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः कला का यह रूप रियलिज़्म से उसके मिल जाने पर ही प्रकट हुआ है। इस समय कला का रूप मनुष्य के अन्तर्तम से सम्बद्ध है। परन्तु योरप हमें जो चीज़ दे रहा है वह भी एकान्त निर्दोष नहीं कही जा सकती। मेरा मतलब उस रियलिज़्म से है जिसे योरप अपनी कविताओं और नाटकों के द्वारा प्रकट करता रहा है। गाल्सवर्दी के उपन्यास, किपलिंग की कविताओं तक रियलिज़्म ग़नीमत है, परन्तु शा महोदय का यथार्थवाद तो बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनके नाटकों में दोषों

का स्पष्टीकरण जहाँ कुछ लाभदायक है, वहाँ उससे हानि की भी सम्भावना है। उनके कई नाटकों का लन्दन के लार्ड चेम्बरलेन ने खेलना ही बन्द करा दिया है। शा के मतानुसार यह एक बड़ा भारी अपराध है। वे गुण के साथ समाज के दोष को भी दिखाने के प्रबल पक्षपाती हैं। उन्होंने 'दि रायल कार्ट' नामक नाटक में एक जगह बड़े भर्त्सनापूर्ण शब्दों में सेन्सर की निन्दा की है।

शा महोदय कोई भी चीज़ बाहरी तौर पर दिखाने के आदी नहीं हैं। उनका 'फ़िलेण्डरर' नाटक जिसको ब्रिटिश सरकार ने सेन्सर कर दिया है, एक बग़ीचे में एक कमरे से शुरू होता है। रात के दस बजे का समय है। दो प्रेमी परस्पर आलिङ्गन कर रहे हैं। हम इस रूप को देखकर शायद हिचकिचायें, पर शा को इसमें वास्तविकता की झलक दिखाई देती है। मेरा विचार है, इस प्रकार का 'रियलिज़्म' लाभ के बजाय हानिप्रद अधिक है। आज तीस साल से शा के नाटकों के बाद भी योरप और अमरीका का सदाचार बढ़ने के बजाय घट ही अधिक रहा है।

यह तो एक ग़रीब औरत के सुघड़ शरीर को नङ्गा देख भीतर ही भीतर भड़क उठनेवाली कामाग्नि को दबाकर बाहरी तौर पर उस पर दया करने के भाव के समान है। हम नहीं समझते कि इससे दर्शकों के चित्त दया से पिघल जायँगे या उसके शरीर को देखते रहने के प्यासे बने रहेंगे। मनोविज्ञान तो यह बताता है कि साधारण जन-प्रवाह उस स्त्री को कपड़े मिलने की सुविधा करने के बजाय उसे नङ्गा ही रहने देने का अधिक पक्षपाती होगा। शा का रियलिज़्म भी अपराध को नङ्गा देखने का पक्षपाती है। योरप से पहले शा महोदय के नाटकों का आदर अमरीका में अधिक हुआ है। उसका कारण यह है कि उनके नाटकों पर योरप के बहुत अधिक भागों में सेन्सर लगा दिया गया था। अमरीका में इस प्रकार की बातों पर कोई सेन्सर है ही नहीं। परन्तु उनके नाटकों-द्वारा मनुष्य-समाज को जहाँ चोट लगनी चाहिए उसे उसने मनोविनोद के सहारे बड़े हर्ष के साथ सहा है। इसी लिए मैंने ऊपर कहा है कि इससे उन देशों का आचार ऊपर उठने की जगह गिर रहा है। इतना ज़रूर मानना पड़ेगा कि इससे उनमें चोट के स्थान को देखने की क्षमता ज़रूर आगई है। हमारी कला भी उसी तरफ़ चल रही है, परन्तु उससे हमें लाभ कितना होगा, हमारा आनन्द कितना स्थायी हो सकेगा, यह नहीं कहा जा सकता। मेरा यह दृढ़ विचार है कि हमारी प्राचीन कला ने यदि हमें वर्तमान यथार्थवाद से दूर रक्खा है तो उसने समाज के अंगों पर विशेष आघात नहीं किया। विलासिता केवल राजप्रासादों तक ही रही। जन-साधारण के चरित्र पर उसका कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ा। यह शायद इसलिए कि वह केवल विद्वानों, राजाओं की चीज़ थी। जहाँ तक कला की व्यापकता का सम्बन्ध है, वहाँ हम कला को व्यापक बनाने के पक्षपाती ज़रूर हैं, परन्तु उसके द्वारा हम अपराध को नङ्गा देखने के पक्षपाती नहीं हैं। अपराध सदा अँधेरे में पैदा होता है, उस अपराध और अँधेरे को देखना सभी चाहते हैं। जानना चाहते हैं, परन्तु उस अपराध से बचने के लिए नहीं। उस अपराध को अपराध की कोटि में रखने के लिए जिस साहस की आवश्यकता है वह समाज में नहीं के बराबर है। इसी लिए हमारा यथार्थवाद योरप के यथार्थवाद पर चलकर सच्चा मार्ग नहीं ग्रहण कर सकता। कला का उद्देश स्थायी आनन्द की उपलब्धि है। यदि हमें किसी कला से वैसा आनन्द नहीं मिलता तो हमें कला की कोटि बनानी पड़ेगी। और वह इस प्रकार कि जिस जगह जितना ही स्थायित्व कम होगा, वहाँ कला उतनी ही असमर्थ और अपरिपक्व समझी जायगी। अपराध-प्रदर्शन की कला का उद्देश बर्नार्ड शा के मतानुसार समाज के उन अंगों पर चोट लगाना है जो समाज के आचार, अर्थ आदि के विचार को ऊपर नहीं उठने देते। परन्तु सत्य की अपेक्षा झूठ, भलाई की अपेक्षा बुराई संसार में अधिक है। इस ओर मनुष्य की प्रवृत्ति किसी तरह भी हो, स्वाभाविक है। इसी तरह अपराध-प्रदर्शन के द्वारा नाटककार या कलाकार जहाँ तर्क की चोट मनुष्य के कोमल हृदय पर लगाना चाहता है, वहाँ वे तर्क प्रत्यक्ष अस्थायी आनन्द के कारण बनकर मनुष्य-समाज को नीची कोटि और अस्थायी प्रत्यक्ष आनन्द की ओर ले जायँगे और यथार्थवाद फिर सुधार की ओर न जाकर दुराचार तथा मिथ्याज्ञान का कारण होगा।

एक रोचक सामाजिक कहानी

पवित्र विधान

लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर

(१)



गुन्त पटेल चौपाल में बैठे कन्या के विवाह के सम्बन्ध में लोगों से बातचीत कर रहे थे। बिरजू चौधरी ने कहा—"दादा, लड़का तो बहुत अच्छा मिल गया है। लड़की का भाग्य खुल जायगा। पर ख़र्च कुछ अधिक करना पड़ेगा। भगुन्त पटेल ने पूछा—"तुम किस लड़के के सम्बन्ध में कह रहे हो?"

बिरजू ने उत्तर दिया—"मानकलाल के लड़के को तो जानते ही होंगे। वह ख़ूब पढ़ा-लिखा है। अभी परीक्षा में पास होकर घर आया है। आप कहें तो कल उनसे बातचीत करूँ। पर कुछ देना पड़ेगा। कई जगह उसके ब्याह की बातचीत हो रही है। आप जानते ही हैं कि अच्छे की चाह सभी को रहती है।"

पटेल कुछ सोचने लगे। उन्हें चुप देखकर पुरोहित सीताराम जी बोल उठे—"अच्छा तो है। लोग कन्या का होना बुरा समझते हैं। पर है वह सौभाग्य की बात। कन्यादान के समान दूसरा कोई दान ही नहीं है। सो चाहे किसी से कुछ धर्म्म न भी हो सके। पर यह काम ऐसा है जो आप ही धर्म करा लेता है। धन न किसी के साथ आया है, न जायगा।"

पटेल बोले—"आपका कहना ठीक है। पर लोग द्रव्य-दान को अधिक अच्छा समझते हैं।"

पुरोहित जी ने हँसकर कहा—"कन्या को दिया व्यर्थ नहीं जाता। जो देता है वह आगे पाता है।"

चौधरी जी कहने लगे—"यह तो हुआ। अब यह बतलाइए कि कल मैं उनसे मिलने जाऊँ या नहीं?

पटेल ने रुककर कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा हो।"

पुरोहित जी बोले—"अच्छा मैं स्वयं जाकर उनके मन की थाह लूँगा। फिर जो उचित होगा, किया जायगा।"

(२)

मानकलाल खेती के साथ-साथ बीज का लेन-देन भी करते थे। घर में स्त्री तथा एक पुत्र के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। ख़र्च कम और आमदनी अच्छी थी। इसी से उनके हाथ में चार पैसे हो गये थे। लड़के का नाम रूपचंद था। वह कुशाग्र-बुद्धि था। बी० ए० तक बराबर पढ़ता गया और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

मानकलाल श्रद्धालु एवं धर्म्म-भीरु व्यक्ति थे। कथा-पुराण सुनते रहते थे। प्रति पूर्णिमा को तो सत्यनारायण की कथा कहाते ही थे। उनकी स्त्री चाहती थी कि जहाँ अधिक दहेज़ मिले वहीं पुत्र का विवाह किया जाय। आप भी उससे सहमत थे। जो वृक्ष लगाता है वह फल की भी आशा रखता है। यह बात कुछ अस्वाभाविक नहीं है। संसार के सभी व्यापारों का मूल कारण स्वार्थ है। वे भले ही पारमार्थिक दृष्टि से किये जायँ, पर उनमें प्रकारान्तर से स्वार्थ का अस्तित्व रहता ही है। सच्चा त्याग किसे कहते हैं, यह प्रश्न बहुत कठिन है। रेखागणित के साध्यों पर से उसे हल कर लीजिए। पर कहलायगा कल्पित ही।

रूपचंद अपने कमरे में बैठा गाँव के लड़कों को भूकम्प होने का कारण बतला रहा था। इतने में पुरोहित सीताराम आ पहुँचे। रूपचन्द ने उठकर उनका अभिवादन किया। मानकलाल हाथ जोड़कर खड़े हो गये। पुरोहित

जी ने कहा—"मैं आपसे एकान्त में कुछ बातचीत करना चाहता हूँ।" यह सुनकर मानकलाल उनके साथ दूसरे कमरे में चले गये।

(३)

थोड़ी देर तक खेती-बारी के सम्बन्ध की बातें करके पुरोहित जी ने पूछा—"आपने रूपचन्द के विवाह का कुछ ठीक-ठाक किया या नहीं"? मानकलाल ने उत्तर दिया—"बातचीत तो कई जगहों से आई है। पर अभी तक किसी को पक्का जवाब नहीं दिया गया है।"

पुरोहित—"शुभ कार्य जहाँ तक हो, शीघ्र कर डालना चाहिए।"

मानकलाल—"आप हमारे हित की बात कह रहे हैं।"

पुरोहित—"आप जानते ही होंगे कि भगुन्त पटेल की लड़की विवाह के योग्य हो गई है। वे वर की खोज कर रहे हैं।"

मानकलाल—"जानता हूँ।"

पुरोहित—"वे कुल के भी अच्छे हैं।"

मानकलाल—"अच्छे तो हैं। पर बिलकुल ग़रीब हैं।"

पुरोहित—"इसका क्या अर्थ है?"

मानकलाल—"यही कि जैसा विवाह हम चाहते हैं, वैसा नहीं कर सकते।"

पुरोहित—"आप क्या चाहते हैं?"

मानकलाल—"लड़के की मा का कहना है कि जहाँ ख़ूब दहेज़ मिलेगा, वहीं विवाह करूँगी।"

पुरोहित—"स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी है। उसके परामर्श से कार्य करना उचित ही है। पर आप अपने मन की बात भी तो बतलाइए।"

मानकलाल—"मैं अपने मुँह से कुछ नहीं कह सकता।"

पुरोहित—"तब इसमें स्त्री का ही आग्रह जान पड़ता है। यह आश्चर्य की बात है।"

मानकलाल—(हाथ जोड़कर) "आग्रह कुछ नहीं है। अकेला लड़का है। वह उसकी मा है। उसका दिल दुखाने की इच्छा नहीं होती। बस, इतनी ही बात है।"

पुरोहित—(हँसकर) "अच्छा, जब पूजा करने के लिए आऊँगा तब उनसे इसके विषय में वार्तालाप करूँगा।

(४)

दूसरे दिन पुरोहित जी मानकलाल के यहाँ पूजा करने के लिए गये। जब पूजा समाप्त हो गई तब उन्होंने गृह-स्वामिनी को बुलवाया। वे आकर दूर बैठ गईं। पुरोहित जी ने कहा—"मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। मानना न मानना तुम्हारी इच्छा पर है।"

मानकलाल की स्त्री ने विनीत भाव से कहा—"आपकी आज्ञा न मानने से हमारा भला कैसे हो सकता है?"

पुरोहित जी ने सिर हिला कर कहा—"ठीक है। तब तुम रूपचंद का विवाह भगुन्त पटेल की कन्या के साथ करो। इससे तुम्हारे कुल का गौरव बढ़ेगा। उनका वंश प्रतिष्ठित और निष्कलंक है।"

देवी जी पर मानो वज्र टूट पड़ा। विह्वल दृष्टि से पुरोहित की ओर देखकर बोलीं—"आप हमारे कुल-गुरु हैं। आपकी आज्ञा नहीं टाल सकती। पर दहेज़ अवश्य लूँगी। इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।"

पुरोहित जी ने तीव्र स्वर से कहा—"तुम इतनी सयानी होकर यह कैसी बात कह रही हो? जो कुछ उनसे बन पड़ेगा, अवश्य देंगे। और क्या?"

देवी जी माथा ठोक कर बोलीं—"महाराज, आप जानते हैं कि हम कोई मालगुज़ार या जागीरदार नहीं हैं। धाये धाये के भोजन हैं। पेट काटकर जो थोड़ा-बहुत बचाया था, लड़के के पढ़ाने में लगा दिया है। अब उसी की आशा न करूँ तो किसकी करूँ। यहाँ और बैठा ही कौन है?"

पुरोहित जी ने हाथ हिलाकर कहा—"मैं कब कहता हूँ कि तुम उसकी आशा न करो? वह कमायेगा, तुम्हें खिलायेगा और ख़ूब फले-फूलेगा। भगवान् का दिया तुम्हारे यहाँ सब कुछ है। तुम्हें किस बात की कमी है?"

देवी जी कहने लगीं—"कमी तो नहीं है, पर आशा बुरी होती है। वह करोड़पतियों का भी पीछा नहीं छोड़ती। मेरे यहाँ दूसरा लड़का होता तो यह एक विवाह यों ही कर डालती। अब मेरी यही प्रार्थना है कि आप मेरी

इस लालसा को पूर्ण होने दें। आपकी बात मान भी लूँ तो पहले मुझे ही सन्तोष न होगा, दूसरे जो सुनेंगे वे हम दोनों को मूर्ख समझेंगे और हँसी करेंगे।"

इस विचित्र निष्कर्ष को सुनकर पुरोहित जी मुस्कराने लगे। फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोले—"लोग हँसेंगे या प्रशंसा करेंगे, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। ख़ैर, जैसा उचित समझो, करो।"

(५)

भगुन्त पटेल की स्त्री का नाम सुभद्रा था। उसकी बड़ी बहन इन्दिरा दूसरे गाँव में रहती थी। वह दरिद्र-कन्या थी, पर भाग्य के बल से अच्छे घर में पहुँच गई थी। उसके परिवार के साथ मानकलाल का घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी से वे उसे लड़की की नाईं मानते थे। पर्व-त्योहारों में वह उनके यहाँ आया करती थी। पुरोहित जी के परामर्श से भगुन्त पटेल ने उसे अपने यहाँ बुलवाया। उसके आ जाने पर पुरोहित जी पटेल के यहाँ गये और कहने लगे—"मानकलाल जी अपने लड़के का विवाह कालिन्द्री के साथ करने को तैयार हैं, पर दहेज़ चाहते हैं। तुम्हारा क्या विचार है ?"

इन्दिरा ने सहज भाव से उत्तर दिया—"विचार की बात ही क्या है ? पटेल जी कहें तो मैं अपनी ओर से विवाह कर दूँ। सब झगड़ा मिटा।"

पटेल जी तो कुछ न बोले, पर उनकी स्त्री सुभद्रा जो पास ही बैठी थी, कहने लगी—"बहन, तुम्हारा कहना ठीक है। पर ऐसा करके हम संसार को क्या मुँह दिखलायेंगे। हम ग़रीब हैं, इसी से यह दहेज़ की बात चल रही है। कोई हर्ज नहीं। लड़की का विवाह दूसरी जगह हो जायगा। कन्या किसी की क्वाँरी नहीं बैठी रहती।"

पुरोहित जी ने क़हा—"तब क्या इच्छा है ? नाहीं कर दी जाय ? मैं चाहता था कि ऐसी सुलक्षणा कन्या अच्छे घर में पहुँच जाय, जिसमें वह सुख से रहे और उसे देखकर तुम्हारे नेत्र शीतल हों।"

सुभद्रा अश्रुपूर्ण नेत्रों से पुरोहित की ओर देखकर चुप हो गई। इन्दिरा ने कहा—"विवाह होगा और अवश्य होगा। तुम चिन्ता न करो। एक बार मुझे दादा जी (मानकलाल) से मिल लेने दो। देखूँ मुझ अबला में अधिक शक्ति है या उनके सङ्कल्प में।

इतने में मानकलाल के छोटे भाई हीरालाल आ पहुँचे। पटेल जी ने उन्हें बड़े आदर से बिठलाया। पुरोहित जी ने पूछा—"इस विवाह के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?"

हीरालाल ने उत्तर दिया—"इसका दायित्व मा-बाप पर है, हम पर नहीं। हम लोग क्या राय दे सकते हैं ? और दी भी तो वह किस काम की ?

पुरोहित जी ने हास्य के रूप में कहा—"तुम सब एक ही साँचे में ढले हो। स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?"

हीरालाल तमक उठे। कहने लगे—"पण्डित जी, यह त्याग का पाठ किसे पढ़ा रहे हो ? हम लोग संन्यासी नहीं हैं ? गृहस्थ का अर्थ से घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

इन्दिरा से न रहा गया। वह निकट आकर बोली—"छोटे दादा, तुम हमें दहेज़ का क्यों भय दिखला रहे हो ? यह तो बतलाओ कि वे कितना चाहते हैं ?"

हीरालाल के नेत्र नीचे हो गये। शिथिल स्वर से बोले—"यही हज़ार बारह सौ की बात होगी।"

इन्दिरा के नेत्र लाल हो गये। उसने कम्पित स्वर से कहा—"चलो, मैं देती हूँ बारह सौ।"

हीरालाल वहाँ से धीरे से खिसक गये।

(६)

दूसरे दिन पूर्णिमा थी। पुरोहित जी मानकलाल को सत्यनारायण की कथा सुना रहे थे। इन्दिरा भी एक ओर जाकर बैठ गई। जब कथा समाप्त हो गई तब उसने मानकलाल के निकट जाकर कहा—"दादा, मैं कालिन्द्री का विवाह करना चाहती हूँ। पटेल जी मानते नहीं हैं। इससे आपके पास आई हूँ। दहेज़ में मेरा यह गहना पहले से ले लीजिए और रूपचन्द का विवाह उसके साथ कर दीजिए।"

अंकुश खाये हुए हाथी की नाईं पीछे हटकर मानकलाल ने कहा—"मैं लड़की के धन को विष के समान समझता हूँ।"

इन्दिरा ने मुस्करा कर कहा—"आपकी जैसी लड़की मैं, वैसी ही सुभद्रा। उसका धन लेकर आप क्या करेंगे ?

दादा जी, अपनी कमाई का पैसा काम आता है। उसी से सच्चा सुख मिलता है। भगवान् ने आपको सुयोग्य और विद्वान् पुत्र दिया है। उसे पैसे की क्या कमी है? हज़ार दो हज़ार की बात ही क्या है? उस पर तो लाखों रुपये न्योछावर होते हैं। जिसने कन्या दी वह सब कुछ दे चुका। रही रुपये-पैसे की बात, सो जिसको भगवान् ने माना है वह कन्या को कुछ न कुछ दिये विना नहीं रह सकता। उसे तो जन्म भर देना ही है। इसके लिए किसी पर दबाव डालने की क्या आवश्यकता है?"

मानकलाल का मन एक-दम पलट गया। उन्होंने पुरोहित जी की ओर देखकर कहा—"मैं भगवान् सत्यदेव के आगे प्रतिज्ञा करता हूँ कि रूपचंद का विवाह कालिन्द्री के ही साथ करूँगा और दहेज़ के नाम से एक पैसा न लूँगा।"

देवी जी मुँह छिपा कर अन्दर चली गईं।

पुरोहित ने आशीर्वाद देकर कहा—"परमात्मा के प्रेम-राज्य का पवित्र विधान यही है।"

प्रभाती

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

चहक चहक खग, चहक चहक खग,
जग-जग मग-मग कर कल-कल रव;
यह सौरभ का श्री-प्रपात, गिरि-
निर्झर-सा झरता सुख-उत्सव!
नित-नित अमित-अमित कोलाहल,
क्षण-क्षण, पल-पल, कल-कल, कल-कल;
लो, फूटा हिम-स्नात क्षितिज के
मस्तक पर मरीचि का चन्दन;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
नव-प्रभात का कर अभिनन्दन!
भर-भर चंचु-पुटों में स्वर-सुर;
तरु-तरु डाल-डाल पर उड़-उड़!

रश्मि-दूत तुम प्रथम-प्रात के,
ले आओ जागृत, नव-चेतन;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
नव-विधान का कर आवाहन!

विकच-सुमन-गण नव-नव अभिनव,
निर्जन जनपथ, पल्लव नीरव;

विचर मुक्त, द्रुत निकल नीड से
विजन-विजन में कर आन्दोलन;
चहक चहक खग, चहक चहक खग,
भर जड़-जंगम में सुख-स्पन्दन!

जहाज़ों का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत चतुर्भुज औदीच्य

जहाज़ों को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दुर्भाग्यवश भारत उस महत्त्व की वस्तु से भी वञ्चित है। इस बात को औदीच्यजी ने अपने इस लेख में प्रामाणिक रीति से स्पष्ट किया है।



मय के परिवर्तन के साथ-साथ भारतवासी इस बात को बिलकुल भूल गये हैं कि भारतवासी जहाज़ बनाते थे और यहाँ के बने हुए जहाज़ों में भारत का माल लद-लद कर विदेशों को जाता था। उन दिनों आज-कल के ढाँचे के जहाज़ नहीं बनते थे। उस समय पालों और डाँड़ों के बल से जहाज़ आते-जाते थे। संसार भर में बड़े से बड़ा जहाज़ हज़ार-पाँच सौ टन माल से अधिक नहीं ले जा सकता था।

वर्तमान काल में जहाज़ स्टीम के ज़ोर से चलते हैं। यही कारण है कि बीस बीस हज़ार टन के जहाज़ बनते हैं। युद्ध के जहाज़ों व क्रूज़रों का यहाँ वर्णन नहीं करना है, केवल माल के जहाज़ों के विषय में ही लिखना है। इस समय दुनिया में हज़ारों जहाज़ लाखों टन माल इधर-उधर ले जा रहे हैं। जहाज़ों का व्यवसाय करनेवाले दो-चार जहाज़ बनवाकर ख़ूब धन कमाते हैं। इस रोज़गार में पूँजी बहुत लगती है, परन्तु लाभ भी यथेष्ट होता है। जहाज़ के व्यवसायियों को गत महायुद्ध के समय बड़ा गहरा धक्का लगा था। इसी से इस व्यवसाय में युद्ध से सदा भय करना पड़ता है। योरपीय महायुद्ध में हज़ारों सौदागरी जहाज़ नष्ट हो गये। क्यूनार्ड कम्पनी के दो लाख टन से भी कुछ ऊपर के १५ जहाज़ युद्ध-काल में डुबो दिये गये। ऐंकर लाइन ने कोई ६५,४८८ टन के आठ जहाज़ खो दिये। इसी प्रकार प्रायः सभी कम्पनियों के एक-दो जहाज़ गत महायुद्ध में नष्ट हो गये। इस धक्के का असर जहाज़ी कम्पनियों पर बहुत वर्षों तक बना रहा। गत दस वर्ष से फिर माल के जहाज़ बढ़ने लगे हैं। अमरीका में प्रतिवर्ष २५ से ५० नये जहाज़ बनते हैं तथा योरप में भी प्रतिवर्ष १० से २५ नये जहाज़ बढ़ रहे हैं।

भारत के जहाज़-व्यवसाय का प्राचीन हाल नहीं प्राप्त है। गत डेढ़ सौ वर्ष से कुछ पहले तक भारत में जहाज़ तैयार होते थे, इसका पता लगा है। सन् १९१९ के मार्च में प्रसिद्ध लार्ड जेलिको बम्बई आये थे। बम्बई की म्युनिसिपैल्टी ने उन्हें एक अभिनन्दनपत्र दिया था। इसका जो उत्तर उन्होंने दिया था उसमें भारतीय जहाज़ी कारबार का इस प्रकार वर्णन किया है—

"बम्बई के सरकारी डक हाते में वाडिया-कम्पनी जहाज़ बनाने में प्रसिद्ध थी। उस कम्पनी के मालिक एक पारसी सज्जन जमशेदजी वामनजी वाडिया (१७५४-१८२१) थे। ये उन दिनों जहाज़ बनाने के एक प्रसिद्ध उस्ताद समझे जाते थे। इन्होंने बहुत-से जहाज़ तैयार किये थे। पिछले दिनों में तैयार किये हुए इनके जहाज़ों में से 'गेंजेज़' नाम के ७४ तोपोंवाले युद्ध के जहाज़ को योरपवासी ख़ूब जानते हैं। भारत-सरकार तथा अन्य व्यवसायी लोग वाडिया-कम्पनी से बराबर जहाज़ बनवाते थे। 'मिनडन' जहाज़ जो जमशेदजी की मृत्यु के कुछ सप्ताह पश्चात् (अगस्त सन् १८२१) उनके पुत्र-द्वारा समुद्र पर उतारा गया था, एक बड़ा विख्यात जहाज़ था।

"जमशेदजी के पुत्र नौरोजी वाडिया (१७७४-१८६०) भी जहाज़ बनाने में कुशल पुरुष थे। इन्होंने भी बहुत-से जहाज़ बनाये, जिनमें प्रसिद्ध 'एशिया' को कौन नहीं जानता। 'एशिया' के मालिक एडमिरल कोडरिंगटन थे और यह जहाज़ सन् १८२७ की एक लड़ाई में शामिल हुआ था।"

लार्ड जेलीको के बम्बई आने पर कलकत्ता के 'कैपिटल' के बम्बई-स्थित संवाददाता ने भारतीय जहाज़ी

व्यवसाय के सम्बन्ध में बड़े महत्त्व की बात लिखी थी। उसने लिखा था—

"यदि वाडिया-कम्पनी को सहायता मिलती और इँग्लिश तथा स्काटिश कम्पनियों की प्रतियोगिता से उसकी रक्षा की जाती तो आज बम्बई में जहाज़ बनाने का कारबार अच्छी हालत में होता और सरकार को भी अवसर पर काफ़ी जहाज़ प्राप्त हो सकते। मुझे तो विश्वास नहीं कि एडमिरल जेलिको के आगमन से ब्रिटिश नाविक-विभाग अपना रुख बदल देगा। भारत अपना निज का जंगी बेड़ा तैयार कर लेता, यदि उसे करने दिया जाता।"

श्री ज्ञानाञ्जन नियोगी ने अपने "इंडिया" में मिस्टर टेलर का एक अवतरण उद्धृत किया है। वह यह है—

"भारत की चीज़ें भारत के ही बने हुए जहाज़ों में जब लन्दन-बन्दर में पहुँचीं तब वहाँ के जहाज़-व्यवसायों में सनसनी फैल गई। वे लोग चिल्लाने लगे कि अब उनके रोज़गार का नाश होगा और उनके कुटुम्बों को भूखों मरना पड़ेगा। इसी का परिणाम है कि भारत का जहाज़-व्यवसाय नष्ट हो गया।"

भारतवर्ष के बन्दरों में प्रायः अँगरेज़ी तथा अन्य देशों के ही जहाज़ माल लेकर आते वा जाते हैं, साथ ही विलायत में स्थापित दो-तीन कम्पनियाँ इस देश के समुद्री-तट के माल का इज़ारा लिये हुए हैं। भारत के बन्दरगाह उनके जहाज़ों से भरे हुए हैं। भारत के समस्त बन्दरों में गत सन् १९२६ में ६९,८५,९१२ टन माल जहाज़ों-द्वारा आया और ८०,५०,१५७ टन बाहर गया। सन् १९२७ में ७५,३८,७१५ टन माल आया और ७७,६१,२७४ टन गया। उक्त माल को ढोनेवाले जहाज़ों में ७० फ़ी सदी अँगरेज़ों के और ३० फ़ी सदी अन्य देशवालों के जहाज़ थे।

महायुद्ध के पश्चात् भारत में विदेशी जहाज़ ख़रीद कर माल लाने और ले जाने का व्यापार करनेवाली तीन-चार कम्पनियाँ स्थापित हुईं। किन्तु केवल एक 'सिंधिया स्टीम-नेवीगेशन कम्पनी' के सिवा और कोई नहीं चल सकी। और यह कम्पनी भी अपने दिन काट रही है। यदि उचित सहायता इसे नहीं प्राप्त होगी तो यह भी चल बसेगी। जहाज़ बनाने का व्यवसाय तो एक-दम लोप ही हो गया है। अब तो विदेशों से जहाज़ बनवाकर अथवा पुराने जहाज़ ख़रीदकर व्यवसाय करना भी भारत की कम्पनियों के हाथ से गया।

समुद्री तट का व्यवसाय—किसी देश के एक बन्दर से उसी देश के दूसरे बन्दर को माल पहुँचाने के व्यवसाय को समुद्री तट का व्यवसाय कहते हैं। संसार के नाना देशों से भारत में माल ले आने और ले जाने का रोज़गार तो अँगरेज़ी जहाज़ी कम्पनियाँ कर ही रही हैं। इनके इस व्यवसाय में टाँग अड़ाने का सामर्थ्य अभी भारत में नहीं है, परन्तु भारत के समुद्र-तट के व्यवसाय का भी इज़ारा विदेशी कम्पनियों को दे देना देश की हितहानि करना है। कलकत्ता, मदरास, बम्बई, कराची आदि भारत के बन्दरों का समुद्री तट का यातायात ५० लाख टन वार्षिक के लगभग है। बम्बई के व्यवसायियों ने भारत की बची-खुची जहाज़ी कम्पनियों के लिए यह व्यवसाय 'रक्षित' कराने की इच्छा से सन् १९२८ में एक क़ानून बनवाने को एसेम्बली में एक बिल पेश किया था। इस बिल को लेकर दो-तीन वर्ष तक विलायत में गहरी चिल्लाहट मची रही। अतएव भारत-सरकार ने भी इस बिल को टाले रक्खा और अन्त में यह जहाँ का तहाँ दफ़ना दिया गया। अब यह देखिए कि विलायतवालों के विरोध में कितना सार है।

भारत के समुद्र-तट का व्यापार करनेवाली दो-तीन विलायती कम्पनियाँ हैं। आज बीसों वर्ष से ये कम्पनियाँ अच्छा लाभ कमा रही हैं। इनके मूलधन से भी कहीं अधिक लाभ इन कम्पनियों के हिस्सेदारों में बँट चुका है। इन कम्पनियों की कमाई का पन्द्रह आना भाग विलायत के धनी पूँजीपतियों के पेट में जाता है। श्रमजीवियों से कुछ सम्बन्ध नहीं है। इन कम्पनियों के जहाज़ों में काम करनेवाले प्रायः हिन्दुस्तानी मल्लाह हैं, जिनके वेतन में कम्पनी कितना व्यय करती होगी, इसका अनुमान सहज में ही लग सकता है। यहाँ ब्रिटिश इण्डिया स्टीम-नेवीगेशन कम्पनी के तीन वर्ष के लाभ के आँकड़े दिये जाते हैं। इनसे पाठक ख़ुद वास्तविक अवस्था का अनुमान कर सकते हैं।

सन्	लाभ, पौंड	लाभ, रुपया
१९२६	१,८६,०००	२७,९०,०००
१९२७	२,४०,०००	३६,००,०००
१९२८	२,९६,०००	४४,४०,०००

यदि सरकार भारतीय कम्पनियों को समुद्री तट का व्यवसाय सौंप देती तो सिंधिया-कम्पनी की अच्छी उन्नति हो जाती, साथ ही अन्य कई कम्पनियाँ जो खड़ी की गई थीं और पश्चात् जिनका दीवाला निकल गया, फिर उठ खड़ी होतीं। इस प्रकार भारत के व्यवसायियों के हाथ में आमदनी का एक अच्छा सिलसिला बना रहता।

ग्रेट-ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्र किस प्रकार प्रतिवर्ष जहाज़ तैयार करते हैं, उसका हिसाब यों है। जहाँ ग्रेट-ब्रिटेन ने सन् १९२८ में १४,४५,९२० टन के जहाज़ पानी पर उतारे, वहाँ अन्य सब राष्ट्रों ने उसी साल १२,५३, ३१९ टन के जहाज़ तैयार किये। ब्रिटेन की अकेली क्लाइड-कम्पनी ने ५,७२,००० टन के जहाज़ बनाये। जर्मनी ने ३,७७,००० टन के, हालेंड ने १,७७,००० टन के, डेन्मार्क ने १,३९,००० टन के, स्वीडन ने १,०७,००० टन के, जापान ने १,०४,००० टन के, संयुक्त-राज्य (अमरीका) ने ९२,००० टन के, अर्थात् सब राष्ट्रों ने साढ़े बारह लाख टन के नये जहाज़ बनाये। कुल दुनिया में सन् १९२८ में ६,५१,५९,००० टन के जहाज़ थे। यह सब माल ढोने और यात्री ले जाने के जहाज़ों का हिसाब है।

नावों का व्यवसाय—भारत की नदियों में प्राचीन काल में नाव से माल का आना-जाना बहुत होता था। इस व्यापार को रेलगाड़ी ने नष्ट कर दिया। अब भी भारत में यदि सुदृढ़ नाव-कम्पनियाँ खड़ी हो जायँ तो नदियों-द्वारा फिर से माल आने-जाने लग जाय। बिना अधिक मूलधन की कम्पनियों के रेलवे से प्रतियोगिता में पार पाना कठिन है। माल के भाड़े में रेलवे-कम्पनियों ने जो मनमानी कर रक्खी है वह भी इस प्रतियोगिता में सुधर जा सकती है। कलकत्ता से कानपुर तक पहले गंगा जी-द्वारा माल का बहुत आवागमन होता था। वह फिर से पनप सकता है। अन्य नदियों, खालों तथा नहरों-द्वारा भी बहुत माल आ-जा सकता है। एक छोटे-से स्टीमर-द्वारा कई बड़ी बड़ी नावें खींची जा सकती हैं।

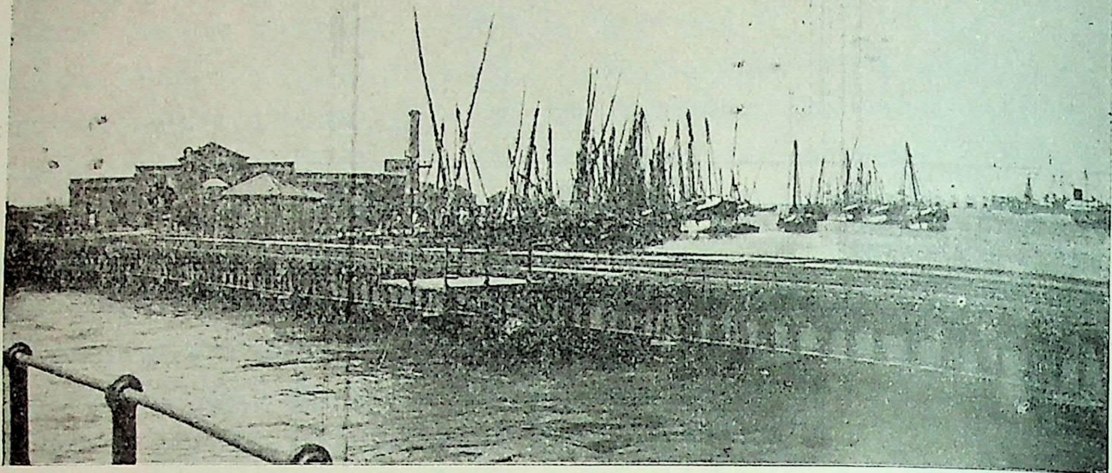
वर्तमान काल में कलकत्ता, बम्बई जैसे बन्दरों में नाव का थोड़ा व्यवसाय चलता है। जहाज़ों से नाव-द्वारा माल किनारे तथा दो-चार मील तक जाता है तथा दूर दूर की मिलों और कारख़ानों से जूट, रुई आदि की गाँठें, गेहूँ और चावल आदि के बोरे नावों-द्वारा जहाज़ों में चढ़ाये जाते हैं। ये नावें २५ टन से १०० टन तक की होती हैं। ये नावें लोहे से मढ़ी होती हैं। इनका भाड़ा पहले तो २०) से ३०) रुपया प्रतिदिन तक था, परन्तु अब १०) से १५) तक है। इनसे दस-बीस मील से माल आता-जाता है। बङ्गाल तथा अन्य प्रान्तों में हज़ार-पाँच सौ मन माल लादने की काठ की नावें भी बहुत हैं।

भारत की नावों, स्टीमरों तथा जहाज़ों की संख्या इस प्रकार है। इसमें स्टीमर तथा जहाज़ों की संख्या बहुत थोड़ी ही समझिए। यह संख्या भारतवर्ष के बन्दरों में काम करनेवाले वाहनों की है।

सन्		संख्या
१८५७	...	३४,२८६
१८९९	...	१२,३०२
१९०१	...	१०,४९७
१९२७	...	८,६४०

देश के राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए। उनके प्रयत्न से इस क्षेत्र में काफ़ी उन्नति हो सकती है और देश का उससे अधिक हित हो सकता है।





[जहाज़ों के ठहरने का 'धक्का या जेट्टी' कराची।]

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०



देश-देशान्तर की यात्रा से मनुष्य का अनुभव और ज्ञान जितना बढ़ता है, उतना पुस्तकों आदि किसी भी दूसरी चीज़ से नहीं बढ़ता। परन्तु हम भारतीयों के लिए विदेश-यात्रा सुलभ नहीं। एक तो हमारी सरकार ही हमें भारत से बाहर पैर रखने नहीं देती—बाहर जाने के लिए पासपोर्ट की ही सैकड़ों पाबन्दियाँ हैं, फिर यदि पासपोर्ट मिल भी जाय तो ख़र्च करने के लिए हमारे पास पैसा नहीं। घोर दरिद्रता के कारण जिस देश की प्रजा भर-पेट अन्न नहीं पाती, जो रुग्ण हो जाने पर दवा-दारू नहीं करा सकती, उसके पास विदेश जाने के लिए पैसा कहाँ ? योरप और अमरीका के छोकरे और छोकरियाँ विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के पूर्व ही संसार के प्रायः सभी बड़े बड़े देशों में भ्रमण कर लेती हैं। एक अँगरेज़ नवयुवक लन्दन से चलता है। फ़्रांस, जर्मनी, तुर्की, रूस, मेसोपोटेमिया, मिस्र, बम्बई, दिल्ली आदि देखता हुआ लाहौर पहुँच जाता है। यहाँ आकर वह गवर्नमेंट-कालेज में इतिहास और भूगोल का प्रधान उपाध्याय बन जाता है। वह भूगोल का विशेषज्ञ माना जाने लगता है। कारण भारतीयों का पृथ्वी के विभिन्न देशों का ज्ञान केवल पुस्तकी होता है, परन्तु उस नवयुवक ने वे सब स्थान अपनी आँखों देखे होते हैं। सुने और देखे में फ़र्क़ होना ज़रूरी है। दूसरे देशों की बात तो दूर रही, हम ख़ुद अपना ही देश नहीं देख पाते। इसका कारण यह नहीं कि हमें यात्रा से प्रेम नहीं, वरन इसका सबसे बड़ा कारण हमारी दरिद्रता है। पचास के लगभग उम्र हो जाने पर भी मैं आज तक समुद्र नहीं देख सका था। पर्वत तो बहुतेरे देखे थे, परन्तु समुद्र देखने की लालसा बराबर बनी हुई थी। इससे पहले यद्यपि मैं सन् १९३२ में कलकत्ता हो आया था, परन्तु वहाँ असीम सागर के दर्शन नहीं हुए थे।

लाहौर से निकटतम बंदर कराची है। मदरास, गोआ, बम्बई, पोर बंदर, कच्छ, माण्डवी, मंगरोल, वेरावल आदि दूसरे बंदर सभी इससे दूर पड़ते हैं। १६ मार्च १९३५ को सवेरे लाहौर से चल कर मैं १७ मार्च को सवेरे कराची पहुँच गया। जात-पाँत-तोड़क मण्डल के प्रधान श्रद्धेय

भाई परमानन्द जी एम० ए०, एम० एल० ए० और मण्डल के महोपदेशक श्री भूमानन्द जी भी साथ थे। उनके साथ यह लंबा सफ़र बड़े आनन्द में कटा। लाहौर से कराची तक का सारा मार्ग बड़ा ख़ुश्क है—कहीं हरियाली का नाम-निशान नहीं। धूल इतनी उड़ती है कि कराची पहुँचते पहुँचते कपड़ों पर दो दो इञ्च मिट्टी बैठ जाती है। सिर, मुँह, नाक, आँख सब धूल से भर जाते हैं। रास्ते में पानी भी बहुत कम मिलता है। मुलतान से आगे लोधराँ स्टेशन पर पराक और समोसे बहुत अच्छे मिलते हैं। वे वहाँ की सौगात हैं। आगे बहावलपुर के मुसलमानी राज्य में रेलवे स्टेशनों के मकान भी मसजिद की शकल के ही बनाये गये हैं। कराची से कुछ पहले बड़ा ही बंजर प्रदेश है। पेड़-पौधों का नाम तक नहीं। छोटे छोटे टीले-से हैं। कराची से थोड़ी दूर इधर मालीर नाम का एक स्टेशन है। वह अच्छी जगह है। वहाँ पहुँचकर ही हरियाली के दर्शन होते हैं। मालीर से ही सब्ज़ी-तरकारी कराची को जाती है। कराची को पीने का पानी भी नल-द्वारा यहीं से जाता है।

कराची में हम समुद्र-तट पर राव बहादुर सेठ शिवरत्न मोहता के विशाल मोहता-पैलेस में ठहरे। मोहता-पैलेस एक बहुत सुन्दर और दर्शनीय भवन है। सारा का सारा पत्थर का बना है। संगमरमर भी ख़ूब लगा है। जो लोग बाहर से कराची देखने आते हैं वे मोहता-भवन भी देखते हैं। वह नगर से कोई चार मील की दूरी पर है। वहाँ से समुद्र केवल एक फ़र्लाङ्ग परे रह जाता है। वहाँ दिन भर सागर-समीर चला करता है। इस कारण, गर्मियों में भी वहाँ गर्मी नहीं मालूम होती।

समुद्र-दर्शन—समुद्र और उसकी लहरों का वर्णन तो बहुत पढ़ा था, उसका मानसिक चित्र भी आँखों के सामने नाचा करता था, परन्तु देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। अब समुद्र को समीप देख वहाँ जाने की उत्सुकता और भी बहुत बढ़ गई। समुद्र देखने के लिए मैं बच्चे के सदृश विह्वल हो उठा। यही जी होता था कि जितनी जल्दी हो सके, मैं सागर-तट पर जाऊँ और जलनाथ के दर्शनों से नेत्रों को तृप्त करूँ। जो लोग समुद्र-तट पर रहते हैं या जिन्हें बार बार समुद्र-यात्रा का मौक़ा मिला करता है, वे मेरी इस उत्सुकता का अनुभव नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति से हम पत्र-व्यवहार-द्वारा परिचित हैं और उसके गुणों पर मोहित होकर उससे मिलने की हमारे मन में प्रबल लालसा उत्पन्न हो चुकी है, उसके निवासस्थान के निकट पहुँच कर हमारे मन की जैसी अवस्था होती है ठीक वैसी ही मेरी हो रही थी। स्नान आदि से निवृत्त होकर जल-पान करने के बाद मैंने पहला काम यह किया कि फ़ौरन समुद्र के किनारे पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने जो कुछ देखा वह अनिर्वचनीय था।

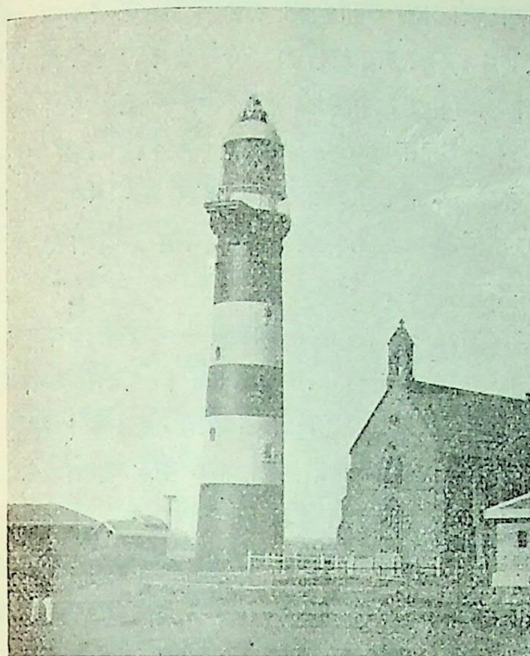
मैंने देखा, मेरे सामने जहाँ तक दृष्टि जाती है, जल ही जल भरा है। इस असीम जलाशय का दूसरा किनारा ही नहीं है, दूर से पानी की भीमकाय तरङ्गमाला बड़ी तेज़ी के साथ स्थल की ओर दौड़ी चली आती है, मानो इसे एक-दम निगल जायगी। शोर इतना था, मानो जलनाथ क्रुद्ध होकर प्रलय किया चाहते हैं। एक लहर दौड़ती हुई आती थी और हमारे पाँवों के निकट आकर वापस लौट जाती थी। उसके जल्दी ही बाद उसी प्रकार दूसरी लहर शोर करती हुई आती थी और पहली लहर से कुछ और आगे तक पहुँच कर लौट जाती थी। पानी के भीतर दूर तक मछुओं ने बल्लियाँ गाड़ कर जाल फैला रक्खे थे। इस समय वे लोग उनमें फँसी हुई मछलियाँ इकट्ठी करके ला रहे थे। समुद्र के किनारे रेत में घोंघे, सीपियाँ और कौड़ियाँ पड़ी थीं। जगह जगह केकड़े दौड़ रहे थे। मैंने यह जन्तु जीवित अवस्था में पहले कभी नहीं देखा था। यहाँ एक और प्रकार का केकड़ा भी हमने देखा। इसके दो मुँह थे। मुँह में दराँती के समान तेज़ दाँत थे। एक मछली पकड़नेवाले लड़के ने हमें बताया कि केकड़े के जबड़े इतने मज़बूत होते हैं कि यदि मनुष्य की उँगली इसके मुँह में आ जाय तो यह एकदम उसे तोड़ डालता है। उस लड़के ने केकड़े को पकड़ कर उसके दोनों मुँह तोड़ डाले और फिर उसे समुद्र में फेंक दिया। मुँह या उसकी दराँतियाँ तोड़ डालने पर भी वह जल-जीव वैसे का वैसा जीता रहा। मुझे तो उसकी लंबी लंबी टाँगों को देखकर घृणा-सी होती थी, परन्तु सागर-तटवासी

लोग उसे ख़ूब मज़े से खाते हैं। उसका मांस-रस बड़ा पौष्टिक माना जाता है। केकड़ों के अतिरिक्त जगह जगह एक विचित्र जन्तु का देहावशेष भी पड़ा हुआ देख पड़ा। इसका आकार ऐसा था, जैसे हलके हरे रङ्ग का पानी का जमा हुआ तोदा पड़ा हो। यह पानी के सदृश ही पारदशक था। चाक़ू से काटने पर फालूदे की तरह कट जाता था। इसमें जन्तु कोई नहीं देख पड़ा। समुद्र की एक बड़ी ख़ूबी यह है कि इतना गन्द और मैल पड़ने पर भी इसका पानी सदा स्वच्छ बना रहता है। कहते हैं, इसमें कोई मृत देह तीन दिन से अधिक देर तक रहने नहीं पाती। यह उसे उठा कर बाहर फेंक देता है। इसके पानी के न सड़ने का कारण शायद इसका नमक है।

रामझरोखा—समुद्र का पूर्णरूप केवल तट पर खड़े रहने से ही नहीं देखा जा सकता। इसके लिए स्थल से दूर खुले समुद्र में जाने की ज़रूरत है। कराची के पास जहाँ आकर जहाज़ खड़े होते हैं उस स्थान का नाम केमारी है। वहाँ सागर को बाँधकर परिमित कर दिया गया है। वहाँ तट से कुछ दूरी पर एक दीवार बनाकर बाँध बाँधा गया है। इस बाँध को 'ब्रेकवॉटर वॉल' कहते हैं। ग्रीष्म और पावस में सागर बहुत क्षुब्ध रहता है। उसमें पर्वत के समान ऊँची ऊँची लहरें उठती हैं। खुले सागर में, तूफ़ान के समय, जहाज़ के डूबने का डर रहता है। इस बाँध से सागर की प्रलयङ्करी लहरें बंदर के भीतर नहीं आने पातीं। वे दीवार के साथ टकराकर पीछे हट जाती हैं। केमारी के पास बँधे हुए समुद्र की मिट्टी निकाल निकाल कर वह गहरा कर दिया गया है, जिससे जहाज़ उसके भीतर प्रवेश कर सकें। इसलिए हम नाव में बैठकर केमारी से दस-बारह मील परे खुले समुद्र का ताण्डवनृत्य देखने 'रामझरोखा' नामक टापू को गये। इसका मुसलमानी नाम 'शम्सपीर' है। यहाँ मीठे पानी का स्रोत है। इसके निकट ही 'सेण्ड स्पिट' नाम का एक और छोटा-सा टापू भी है। यहाँ सागर का निर्बाध और स्वतन्त्र रूप देखने को मिला। यहाँ समुद्र की अनन्त जलराशि उछलकर आकाश को छूना चाहती थी। वह क्रोध से घोर गर्जन करती हुई टापू की ओर दौड़ती थी, परन्तु चट्टान से टकराकर पीछे हट जाती थी। किन्तु एक बड़े आश्चर्य की बात थी। जनाकीर्ण नगरों के कोलाहल से जहाँ मनुष्य का मन अशान्त होने लगता है, वहाँ इस महासागर के निनाद से मन शान्ति-लाभ करता था। मेरी धारणा थी कि अपने चारों ओर निःसीम जलराशि को देखकर मैं भयभीत हो जाऊँगा, परन्तु हुआ इसके बिलकुल विपरीत। सागर के वक्षःस्थल पर विहारकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

मनोरा—केमारी से कोई तीन साढ़े तीन मील के अन्तर पर एक बड़ा सुन्दर टापू है। उसे मनोरा कहते हैं। वहाँ पहुँचाने के लिए नाववाले एक आना लेते हैं। वह टापू कोई एक मील लंबा और कोई पौन मील चौड़ा है। उस पर ख़ूब आबादी है। एक अच्छा ख़ासा नगर बसा है। सड़कें हैं, अस्पताल हैं, डाकघर है, पुलिस की चौकी है और दूकानें हैं। हिन्दुओं का एक सुन्दर मन्दिर भी है। उसमें एक मीठे पानी का कुआँ है। रात्रि-समय जहाज़ों का पथप्रदर्शन करने के लिए वहाँ एक प्रकाश-स्तम्भ है। उस पर फ़ौजी पहरा रहता है। ऊपर जाने के लिए पास लेना पड़ता है। प्रकाश-स्तम्भ में बड़े प्रकाशवर्धक काँच (लेन्ज़) लगे हुए हैं। उनके द्वारा बिजली का प्रकाश समुद्र में मीलों तक पहुँचता है। उसे देखकर जहाज़ चट्टानों के साथ टकराने से बच जाते हैं। वहाँ एक समुद्री क़िला भी है। उसमें गोरी सेना रहती है। किसी को भीतर जाने की आज्ञा नहीं है। वह सारा का सारा पत्थर का बना है। भूगर्भस्थ-सा दीखता है। गोली चलाने के लिए चारों ओर फ़सील में सूराख़ हैं। यदि शत्रु का कोई जहाज़ कराची पर आक्रमण करने की धृष्टता करे तो वहाँ से बम्ब बरसाकर उसका एक-दम संहार किया जा सकता है।

ब्रेकवॉटर वॉल—कराची के बंदर को खुले समुद्र की उद्दाम तरङ्गों से सुरक्षित रखने के लिए यहाँ एक बड़ी दीवार बनाकर बाँध लगाया गया है। इस दीवार के एक ओर—स्थल की ओर—तो समुद्र का पानी एक बड़े सरोवर की भाँति प्रशान्त पड़ा है, परन्तु दूसरी ओर—खुले सागर की ओर—बड़ी बड़ी लहरें उठकर दीवार से टकरा रही हैं। कई बार ग्रीष्म-काल में जब सागर



[प्रकाश-स्तम्भ, कराची]

अधिक लुब्ध होता है, ये लहरें दीवार को फाँदकर दूसरी ओर भी आ गिरती हैं। कई लोग इस बाँध पर सैर करते करते दूर समुद्र में चले जाते हैं। परन्तु ऐसे लोगों को साव-धान करने के लिए वहाँ नोटिस लगा हुआ है कि इस बाँध पर टहलना भयावह है; सागर-तरङ्ग से उठाकर समुद्र में जा पहुँचने का डर है। सुना है, एक मर्तबा दो अँगरेज़ इञ्जी-नियर इस बाँध पर टहलते हुए लहरों की लपेट में आकर समुद्र में डूब मरे थे। सचमुच यहाँ घूमने में भय होता है। आश्चर्य है कि यह दीवार बनाई कैसे गई होगी! मैं भी थोड़ी दूर तक इस पर घूमने गया था। परन्तु लहरों की उच्छृङ्खल लीला देख फ़ौरन वापस आ गया। बाँध के ऊपर समुद्र का मैल और नमक के पपड़े ख़ूब जमे रहते हैं।

बॉय—बंदर के बंद समुद्र में बड़े बड़े लोहे के ढोलों को तैरा कर उन पर बिजली के लैम्प लगाये गये हैं। इन ढोलों को बह जाने से रोकने के लिए इनके साथ लोहे के भारी भारी लंगर या साँकल बाँधकर इनके दूसरे सिरे का काँटा समुद्र की तह में गाड़ा हुआ है। इनको अँगरेज़ी में बॉय कहते हैं। ये रात को नावों और जहाज़ों के लिए सड़क का काम देते हैं।

'धक्का' या जेट्टी—जहाँ पानी उथला हो, वहाँ जहाज़ तट के निकट नहीं आ सकता। उसके रेत में धँस जाने या जलमग्न चटान से टकरा कर टूट जाने का डर रहता है। जिस प्रकार रेलगाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आकर खड़ी होती है, वैसे ही जहाज़ों को ठहराने के लिए भी सागर-तट के निकट समुद्र में से मिट्टी निकाल कर पानी को गहरा बनाना होता है। वहीं आकर जहाज़ ठहरते हैं। उस स्थान को (डाक) 'धक्का' कहते हैं। प्लेटफ़ार्म की तरह धक्के के भी एक, दो, तीन, चार नम्बर होते हैं। कोई जहाज़ किसी नम्बर पर खड़ा होता है, कोई किसी पर। जब जहाज़ 'धक्के' पर आकर खड़ा हो जाता है तब किनारे पर लगे हुए बड़े बड़े 'क्रेनों' के द्वारा जहाज़ की पेंदी में से माल उठा कर किनारे पर रक्खा जाता है। यह भी एक विचित्र दृश्य होता है।

कराची की सफ़ाई—कराची में मैंने एक विशेषता पाई। यहाँ के घरों, गलियों और बाज़ारों जैसी सफ़ाई शायद भारत के किसी दूसरे नगर में न मिलेगी। यहाँ के घर एक विशेष ढंग के बने हैं। एक बड़े विशाल भवन में दो-तीन मंज़िलें रहती हैं। प्रत्येक मंज़िल में पाँच-पाँच छः-छः घर रहते हैं। लोहे या लकड़ी का एक बड़ा ज़ीना ऊपर जाने के लिए होता है। प्रत्येक घर अपने आपमें पूर्ण है—उसमें टट्टी, स्नानागार और रसोई रहती है। टट्टियाँ सब फ़लश सिस्टम की ग़र्क टट्टियाँ हैं। पाख़ाने के ऊपर पानी का भरा हुआ एक छोटा-सा लोहे का कुण्ड रहता है। उसके खींचते ही कुण्ड में से गड़गड़ करता हुआ पानी बड़े ज़ोर से उतरता है और सारा मल-मूत्र बहा ले जाता है। पाख़ाना एक-दम साफ़ हो जाता है। भंगी को बुलाकर साफ़ कराने की ज़रूरत नहीं रहती। कराची में गली-बाज़ार में कूड़ा-करकट फेंकने की कड़ी मनाही है। फेंकनेवाले को दण्ड मिलता है। इसलिए घरवाले घर का सारा कचरा किसी टीन के कनस्तर में फेंकते जाते हैं या मकान के किसी एक कोने में उसका ढेर लगा देते हैं। भंगी आकर उसे उठा ले जाता है।

मुझे कई परिवारों में जाने का मौक़ा मिला। मैंने देखा, जो पंजाबी बहनें पंजाब में रहती हुई घर की स्वच्छता पर कुछ भी ध्यान नहीं देतीं, जिनके घरों में कचरा, जूठे बर्तन और मैले कपड़े जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े रहते हैं, उनके घर भी यहाँ बड़े साफ़-सुथरे थे। कचरे का कहीं नाम-निशान तक न था। प्रत्येक वस्तु क़रीने से अपने उचित स्थान पर धरी थी। यहाँ की सफ़ाई का एक विशेष कारण भी है। किराया महँगा होने से मकान छोटे छोटे हैं। इसलिए छोटे मकान में यदि प्रत्येक वस्तु क़रीने से न रक्खी जाय तो गुज़र नहीं हो सकती। मकान इतने मँहगे हैं कि बड़ा मकान लेने का सामर्थ्य न रहने से अधिकांश लोगों के पास तो सोने के लिए कोई खाट ही नहीं। सारा परिवार फ़र्श पर लेटता है। सफ़ाई का दूसरा कारण यहाँ धूल का न होना है। लाहौर आदि दूसरे नगरों में तो धूल उड़ उड़कर ही मकानों को भर देती है; जब तक दो वक्त झाड़ू न लगाई जाय, घर साफ़ नहीं रह सकता। परन्तु कराची में ऐसी बात नहीं। समुद्र की गीली वायु धूल नहीं होने देती। फिर यहाँ के अधिकांश मकानों में टाइल तथा संगमरमर के सुन्दर फ़र्श लगे हैं। कपड़े से पोंछ देने से ही वे साफ़ हो जाते हैं। तीसरे, म्यूनिसिपेलिटी की ओर से भी घरों की सफ़ाई पर विशेष ज़ोर दिया जाता है।

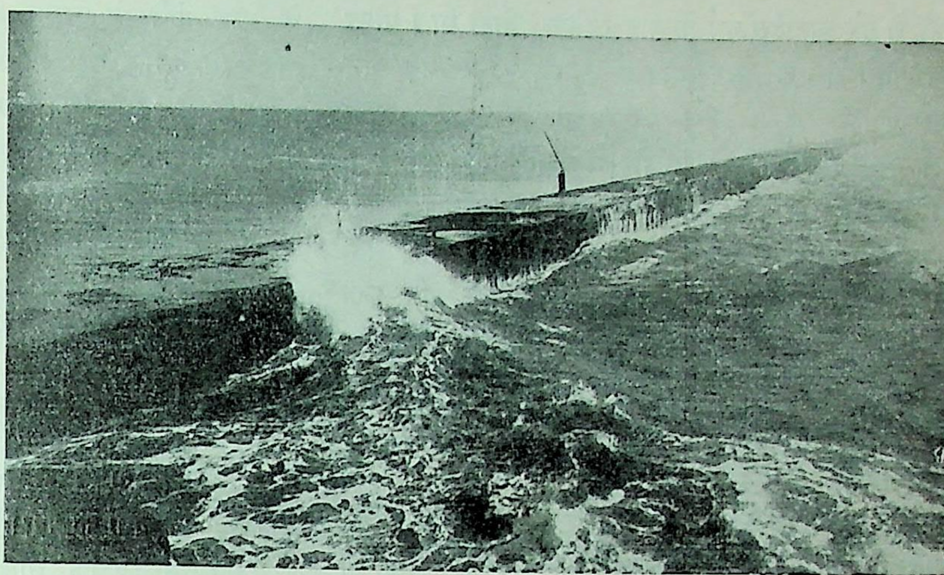
कराची की इन बिल्डिङ्गों में सभी जातियों के लोग मिलकर रहते हैं। एक घर हिन्दू का है, दूसरा ईसाई का, तीसरा पारसी का, चौथा यहूदी का और पाँचवाँ मुसलमान का। सभी के बच्चे मिलकर कम्पाउण्ड (आँगन) में खेलते हैं। यहाँ उतना छूतछात का विचार नहीं है। मुझे एक गुजराती गृहस्थ के यहाँ जाने का संयोग हुआ। उनका घर क्या था, पीतल के बर्तनों की एक प्रदर्शनी थी। एक कमरे में कुछ उँचाई पर चारों ओर दीवार में लकड़ी का एक छज्जा-सा लगाकर उस पर पीतल के चमकते हुए बर्तन ख़ूब क़रीने के साथ सजा कर धरे थे। वह कमरा उन्होंने हमें विशेष रूप से दिखाया। सुना है, दक्षिण में इस प्रकार घर में बर्तनों को सजाकर रखने का रवाज ही है। ये बर्तन केवल सजावट के लिए ही रहते हैं, खाने-पीने के लिए इनका उपयोग बहुत कम होता है।

कराची नगर सफ़ाई की दृष्टि से भारत में एक आदर्श नगर है। इसका श्रेय यहाँ के भूतपूर्व मेयर श्रीयुत जमशेद मेहता को है। ये लगातार कई बरस तक यहाँ के मेयर रहे हैं। मुझे भी इनसे मिलने का मौक़ा मिला था। ये एक पारसी सज्जन हैं, बाल-ब्रह्मचारी हैं। सुना है, थियासोफ़िस्ट विचार के हैं। बड़े मिलनसार, दानी और परोपकार-परायण हैं।

मेमन, खोजे और बोहरे—कराची, बन्दर होने के कारण, एक सर्वदेशीय नगर है। इसमें सभी राष्ट्रों, सभी धर्मों और सभी प्रान्तों के लोग रहते हैं। कराची में पंजाबियों, सिंधियों, मारवाड़ियों, यू० पी० वालों के अतिरिक्त मराठों, गुजरातियों और कच्छियों की भी बहुत बड़ी संख्या है। गुजराती लोग बड़े व्यापारी हैं और कराची व्यापार की एक बड़ी मण्डी है। यहाँ यहूदी, पारसी, मेमन, खोजे, बोहरे, घाटी और मकरानी लोग भी काफ़ी हैं। रामबाग़ गाड़ीख़ाना में मेमनों का अपना बाग़ है। खारादर पर खोजों की बस्ती है, और डेनिस-हाल के निकट बोहरे रहते हैं। ये तीनों जातियाँ हिन्दुओं से मुसलमान हुई हैं। मेमन लोग कच्छ के रहनेवाले हैं। ये लोग प्रायः मैले रहते हैं। इनकी स्त्रियाँ पंजाबी स्त्रियों के सदृश घुटनों के नीचे तक जम्पर पहनती हैं। इसे 'अब्बा' कहते हैं। नीचे शोख़ रङ्ग की सिलवार और सिर पर रङ्गीन चूनरी होती है। चूनरी पर तिलाई का काम किया होता है। चूनरी के नीचे सिर के ऊपर रेशमी कपड़े का एक तिकोना टुकड़ा बँधा रहता है। यह तिकोना टुकड़ा तारकशी के बेल-बूटों से मढ़ा होता है।

खोजे लोग लुवाणों से मुसलमान हुए हैं। ये असली रहनेवाले काठियावाड़ के हैं। गुजराती हिन्दुओं की तरह इनके पुरुष धोती और स्त्रियाँ साड़ी पहनती हैं। स्त्रियाँ माथे पर बिन्दी लगाती हैं। विवाह के समय पहले गणपति-पूजा की जाती है। चौके-बासन में भी ये लोग हिन्दुओं के सदृश ही सफ़ाई रखते हैं। इनके दो दल हैं—एक आग़ाख़ानी और दूसरे मसीदिए (?)। आग़ाख़ानियों की संख्या बहुत अधिक है। ये लोग नमाज़ नहीं पढ़ते, मसीदिए (?) नमाज़ पढ़ते हैं। आग़ाख़ानिये आग़ाख़ाँ को

ईश्वर का अवतार मान कर पूजते हैं। शकल से इनकी स्त्रियाँ बिलकुल हिन्दू जान पड़ती हैं। इनके पुरुषों के नाम रामजी भाई, श्याम जी भाई तथा करीम भाई, और स्त्रियों के नाम हीराबाई, मोतीबाई तथा माणिकबाई आदि होते हैं।



[समुद्र का बाँध या ब्रेकवाटर वाल]

वोहरे औदीच्य ब्राह्मणों से मुसलमान हुए हैं। ये गुजरात के रहनेवाले हैं। इनकी स्त्रियाँ साड़ी और लड़कियाँ रङ्गीन रेशमी घाँघरे पहनती हैं। नाक में मोती की नथुनी होती है। इनके पुरुष लम्बे कोट, खुला पाजामा और सिर पर तिलाई पगड़ी पहनते हैं। इनके धर्म में हुक्क़ा और सिगरेट पीने की कड़ी मनाही है। आपस के लड़ाई-झगड़ों का निपटारा अपने धर्माचार्य 'मियाँ साहब' से करा लेते हैं, इसके लिए कचहरी में नहीं जाते। ये लोग हज़रत अली को बहुत मानते हैं।

ये तीनों नव-मुस्लिम जातियाँ बड़ी व्यापारी हैं। कराची में इनकी बड़ी बड़ी बिल्डिंगें हैं, ख़ूब व्यापार चलता है और ये लोग बड़े अमीर हैं। मकरानी लोग मकरान (फ़ारस) के निवासी हैं। ये लोग बड़े मज़बूत होते हैं। जहाज़ों से माल उतारते हैं। इनका काम मज़दूरी है। एक आदमी दो मनुष्यों जितना बोझ उठा लेता है।

कराची के हिन्दुओं में छूत-छात और जात-पाँत का भाव बहुत कम है। इस्लाम से उन्होंने एक अच्छी बात ज़रूर सीखी है। वे सब इकट्ठे हुक्क़ा पी लेते हैं। हुक्क़ा पीने के लिए उन्हें, दूसरे प्रान्त के हिन्दुओं की तरह, 'ब्राह्मण का हुक्क़ा है या नाई का ?' पूछने की ज़रूरत नहीं। एक बहुत बड़ा हुक्क़ा रक्खा रहता है। हिन्दू-मात्र उसकी बाँस की नली को मुँह से लगाकर पी सकता है। मेरे मित्र श्री भूमानन्द जी ने उनकी परीक्षा करने के भाव से ही उनके हुक्के से दो कश पी कर देखा।

सिंध में हिन्दुओं की दो जातियाँ या प्रकार हैं। एक को आमिल कहते हैं और दूसरी को भाईबन्द। आमिल लोग प्रायः सरकारी नौकरी करते हैं। इनमें शिक्षा का अच्छा प्रचार है। इनकी स्त्रियाँ पायजामा पहनती और सिर पर सुफ़ेद चद्दर ओढ़ती हैं। इनकी नाक में दो तीन मोतियोंवाली सोने की बाली रहती है। इनका केन्द्र हैदराबाद है। भाईबन्द व्यापारी लोग हैं। इनका केन्द्र सक्खर-शिकारपुर है। इनकी स्त्रियाँ लहँगा पहनती और सिर पर दुपट्टा ओढ़ती हैं। इनकी नाक में एक बहुत बड़ी नथुनी होती है। परन्तु अब पढ़ी-लिखी हिन्दू लड़कियों की पोशाक सब कहीं साड़ी होती जा रही है। कराची में मैंने अनेक युवतियाँ साड़ी पहने देखीं।

सिंधी लोग मांस बहुत खाते हैं। इनका डील-डौल भी अच्छा होता है। परन्तु ये बड़े मिलनसार और मृदु-प्रकृति होते हैं। व्यापार में इनकी बुद्धि ख़ूब चलती है। पृथ्वी के दूर दूर भागों में ये लोग पहुँचे हुए हैं। मुझे एक सिंधी सज्जन ऐसा मिला जो बचपन में घर से भाग कर मध्य-एशिया के अन्तर्गत ख़ुतन में चला गया था और

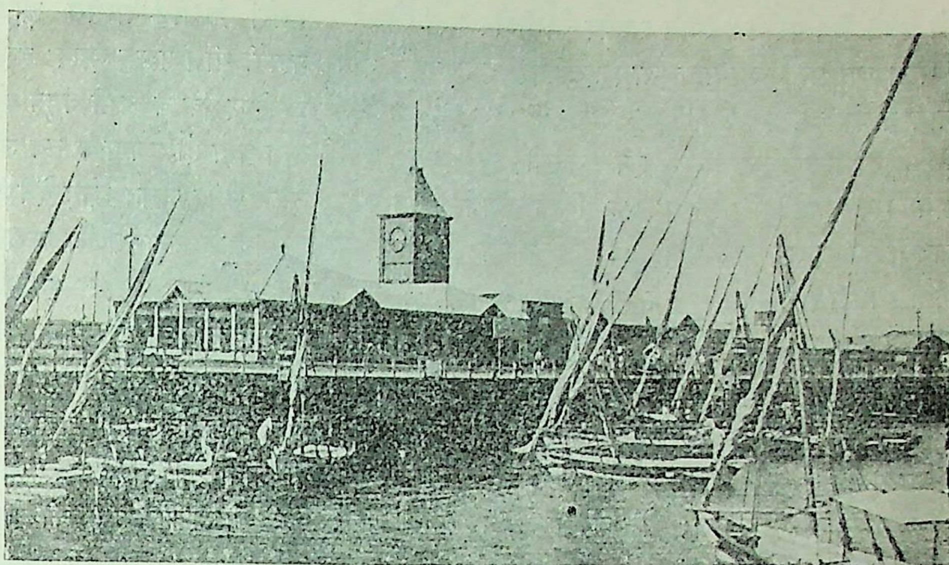
वहाँ से पूरे अट्ठाईस वर्ष के बाद स्वदेश लौटा था। परन्तु इन लोगों में एक बड़ा दोष है। इनके घर बड़े गंदे रहते हैं।

कराची-मार्केट—कराची में बड़े बड़े आढ़तियों की दूकानें हैं। ये लोग व्यापारियों का माल बेचकर अपनी आढ़त ले लेते हैं। तोरिया, कपास, सरसों, गेहूँ, जौ, सन, अलसी, ऊन, खाल, सोना, चाँदी आदि सभी चीज़ों का क्रय-विक्रय यहाँ होता है। जहाँ इनकी मंडी है, वहाँ सवेरे ही दलाल लोग इकट्ठे हो जाते हैं। मार्केट के खुलने और बन्द होने की सूचना एक घंटी बजाकर दी जाती है। मार्केट में एक अजीब दृश्य होता है। सैकड़ों आदमी जमा होते हैं। कोई कहता है, मैंने इतने सौ मन कपास ली और कोई कहता है, मैंने दी; कोई कहता है दो सौ बोरी तोरिया लिया और कोई कहता है, मैंने दिया। सौदे को पक्का करने के लिए लेनेवाला देनेवाले की छाती पर ज़ोर ज़ोर से हाथ मारते हुए कहता है—लिया, लिया, लिया और देनेवाला लेनेवाले की छाती पर उसी प्रकार हाथ मारकर कहता है—दिया, दिया, दिया। साथ साथ मुंशी लोग सौदों को लिखते जाते हैं। सब मनुष्यों के एक साथ बोलने से मार्केट में इतना कोलाहल उठता है कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती। यह शोर सवेरे सूर्योदय से आरम्भ होकर साँझ को सूर्यास्त तक बराबर बना रहता है। आढ़तियों के फ़ोन मार्केट से उनके दफ़्तरों में लगे हुए हैं। दलाल लोग मार्केट से फ़ोन-द्वारा आढ़तियों को पूछ पूछकर व्यापारियों का माल बेचते जाते हैं। लाखों रुपये का सौदा एक दिन में हो जाता है। मार्केट खुलते समय और मार्केट बन्द होते समय वस्तुओं के जो भाव होते हैं उनकी सूचना चिट्ठियों, सर्कूलरों और तारों-द्वारा आढ़तिये लोग अपने व्यापारियों को देते रहते हैं। अच्छे अच्छे दैनिक पत्रों में भी मार्केट के भाव छप जाते हैं। मैंने जब तक कराची का यह मार्केट नहीं देखा था, 'खुला इतने रुपये, बन्द इतने रुपये, और गोशा इतने रुपये' इत्यादि व्यापारिक परिभाषाओं को नहीं समझ सकता था। यहाँ आकर मालूम हुआ कि 'खुला' से तात्पर्य मार्केट के खुलते समय के भाव से है, 'बन्द' का तात्पर्य मार्केट के बन्द होने के समय के भाव से, और 'गोशा' से तात्पर्य गोशा नाम की जापानी कम्पनी की ख़रीदारी के भाव से है। भारत का लगभग सारा निर्यात और आयात बम्बई और कराची इन दो बन्दरों से ही होता है। इसलिए भारत के सारे व्यापारी अपना माल यहाँ ही भेजते हैं।

इस मार्केट के अतिरिक्त एक और मार्केट भी है। इसमें तनिक अधिक प्रतिष्ठित व्यापारी और आढ़तिये जाते हैं। इसका नाम 'टपाल' है। 'टपाल' गुजराती-भाषा में डाक-घर को कहते हैं। जहाँ यह मण्डी लगती है, वहाँ पहले डाक-घर था। इसलिए इस जगह का नाम ही टपाल पड़ गया है। यहाँ अच्छे सुसभ्य लोग जाते हैं और दूसरे मार्केट जैसा कानों को बहरा कर देनेवाला शोर नहीं उठता।

मत समझिए कि मार्केट में माल तैयार पड़ा होता है। बिलकुल नहीं। माल तो देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में होता है, परन्तु सौदा यहाँ हो जाता है। अनेक बार तो माल-वाल कुछ भी नहीं होता। न कोई कुछ देता है और न लेता है, केवल सट्टेबाज़ी में ही राव से रङ्क और रङ्क से राव हो जाते हैं।

बंसगार्डेन और अजायबघर—कराची-कारपोरेशन ने ठौर-ठौर पर बच्चों के खेलने के लिए छोटे-छोटे बग़ीचे बनवा रक्खे हैं। उनमें उनके झूलने और खसकने के लिए लकड़ी के आड़े तख़्ते और दूसरे खेल भी हैं। लोगों के स्वास्थ्य पर इन बग़ीचों का बड़ा हितकर प्रभाव पड़ता है। इनके अतिरिक्त लोगों के घूमने के लिए भी कई बाग़ हैं। एक बाग़ का नाम बंस-गार्डेन है। यह अच्छा रमणीक स्थान है। लोगों के बैठने के लिए घास के फ़र्श हैं। कई प्रकार के छायादार पेड़-पौधे हैं। इसी में कराची का अजायबघर है। अजायबघर देखने की चीज़ है। इसके द्वार के बाहर दोनों ओर ह्वेल मछली का एक एक जबड़ा रक्खा हुआ है। कुछ वर्ष हुए यह ह्वेल किसी प्रकार बहती हुई कराची के सागर-तट पर आ गई थी। एक एक जबड़ा साढ़े चौदह फ़ुट लम्बा है। अजायबघर के भीतर इस भीमकाय जन्तु का सारा पंजर धरा है। इसके मेरुदण्ड के छल्ले, पसलियाँ और दूसरी हड्डियाँ सब सुरक्षित रक्खी हुई हैं।



[केमारी में नावों के ठहरने का बंदर, कराची]

इसके अतिरिक्त संसार की भिन्न-भिन्न जातियों के मनुष्यों की मिट्टी की मूर्त्तियाँ, घोड़े और मनुष्य का हड्डी का ढाँचा, गर्भ में बच्चे की अवस्था के सभी नमूने, नाना प्रकार के साँप, अंडे, विविध प्रकार के जल-जन्तु, संसार की विभिन्न जातियों का शिर-परिच्छद और सागर से प्राप्त होनेवाले विचित्र प्रकार के नाना पदार्थ यहाँ देखने को मिलते हैं। यहाँ समुद्री नमक का एक ऐसा सुन्दर जमाव-सा रक्खा है जो देखने में रुई का सफ़ेद तोदा मालूम देता है। बंस-गार्डेन में लोग सवेरे-साँझ घूमने आते हैं।

गाँधीगार्डेन और चिड़ियाघर—टहलने के लिए दूसरा बाग़ यहाँ गाँधीवाटिका है। यह बहुत अच्छी जगह है। नारियल के पेड़ लगे हैं। सैर के लिए सड़कें भी साफ़-सुथरी हैं। यहाँ मैंने एक ताज़ा नारियल पिया। जो लोग समुद्रतट से दूर रहते हैं, उन्हें न नारियल का पेड़ देखना और न नारियल का पानी पीना नसीब होता है। टटके तोड़े हुए नारियल का पानी बड़ा स्वादिष्ठ होता है। नारियल की तीन अवस्थायें होती हैं। पहली अवस्था में इसमें केवल पानी रहता है। फिर कुछ अधिक पक जाने पर उस पानी की मलाई बन जाती है। मलाई के कुछ और अधिक पक जाने से वह गरी बन जाती है। कुछ लोग पानी पीना पसन्द करते हैं, कुछ मलाई चाटते हैं और कुछ गरी खाते हैं। मेरे लिए टटका नारियल का पानी एक अनोखी चीज़ था।

गाँधीवाटिका में एक चिड़िया-घर भी है। इसमें सिंह, भेड़िया, हिरण, बत्तख़ आदि जन्तु तो वही थे जो लाहौर, लखनऊ आदि के चिड़िया-घरों में होते हैं, परन्तु दो बड़े समुद्री कछुवों का जोड़ा ऐसा था जो मेरे लिए नई चीज़ था। इतने बड़े कछुए मैंने पहले कभी नहीं देखे थे। एक कछुए की लम्बाई दो फ़ुट से कुछ ऊपर ही होगी।

गर्म पानी के झरने—जूनामार्केट के आगे मछली-मार्केट है। वहाँ से मग्गापीर या मगरपीर १३ मील है। 'बस' जाती है। साढ़े चार आने किराया लगता है। ३१ मार्च १९३५ को सवेरे मैं और श्री भूमानन्द जी वहाँ गये। सारा रास्ता शुष्क पथरीले प्रदेश में से होकर जाता है। कोई पौन घंटे में 'बस' वहाँ जा पहुँची। मग्गा-पीर से कुछ आगे गर्म पानी के दो झरने हैं। फोड़े-फुंसी, दाद और खुजली के रोगी उनमें जाकर स्नान करते हैं। कहते हैं, दो-चार बार नहाने से आराम हो जाता है। परन्तु मुझे तो वहाँ नहाने का साहस नहीं हुआ। बहुत-से रोगी नहा रहे थे। वहाँ नहाने से रोग दूर होने के बजाय छूत से रोग के हो जाने का ही डर था। हाँ, उन झरनों से कुछ दूर पर एक तीसरा झरना भी है। वहाँ किसी पारसी महाशय ने एक स्नानागार बना रक्खा है। उसका नाम 'मामाबाथ' है। वह बन्द है। वहाँ सब कोई मुफ़्त में नहीं नहा सकता। नहाने के लिए कदाचित् चार आने

देने पड़ते हैं। पर उस समय उसका चैाकीदार वहाँ मौजूद न था। द्वार पर ताला पड़ा था। इसलिए हम वहाँ भी स्नान न कर सके।

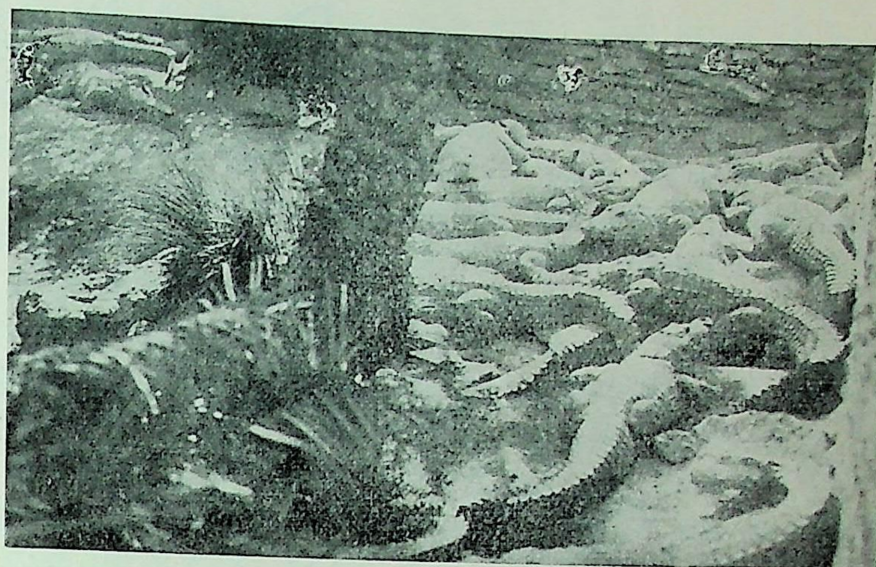
हीरानन्दकुष्टश्राश्रम—इन झरनों से कुछ दूर आगे एक कुष्ट-आश्रम है। यह किसी दयावान् सेठ की भूतदया का सुफल है। यहाँ ७० के क़रीब रोगी थे। स्त्रियाँ भी थीं। वे रोगी अपना सब काम आप करते थे। पूछने पर मालूम हुआ कि बिलकुल आराम तो किसी को नहीं होता, परन्तु पीड़ा बेशक बहुत कुछ कम हो जाती है। इन गलित-अङ्ग महादुखी मनुष्यों को देखकर बड़ी दया आती थी।

मगरपीर—यहाँ से लौट कर हम 'मग्गापीर' पर आये। यहाँ एक बड़ा जूहड़ है। इसमें पानी तो नहीं के बराबर है, हाँ, कीचड़ काफ़ी है। एक ओर कुछ पेड़ भी हैं। जूहड़ के इर्दगिर्द कोई छः फ़ुट ऊँची दीवार है। जूहड़ में तीस के लगभग मगरमच्छ हैं। वे बिलकुल निश्चेष्ट पड़े हैं। न हिलते हैं, न डुलते हैं। पता नहीं लगता, जीते हैं या मरे। इनमें सबसे पुराना मगर कोई ४० वर्ष का है। जूहड़ से कुछ परे एक टीले पर एक क़ब्र है। इसे मग्गापीर कहते हैं। लोग यहाँ मन्नतें मानते हैं और मांस का चढ़ावा चढ़ाते हैं। यह मांस जूहड़ के मगरों को खिलाया जाता है। कई निर्दय लोग तो जीता बकरा ही जूहड़ में फेंक देते हैं। मगर उसे अपने विकराल जबड़ों में पकड़ लेते हैं। वह छूटने का यत्न करता है और चिल्लाता है। उसकी मर्मान्तक वेदना को देखकर ये पीर-भक्त प्रसन्न होते हैं। जिस समय इन मगरों को मांस डाला जाता है, तभी इनमें कुछ चेष्टा देख पड़ती है। तभी ये हिलते-डुलते हैं। दूसरा कोई मनुष्य तो इन मगरों के निकट जाने का साहस नहीं कर सकता, परन्तु यहाँ एक विशेष मनुष्य है जो इनके पास जाता है और छड़ी से इनकी थूथनी पर हलकी-सी चोट करता है। तब ये अपना तीक्ष्ण दाँतों से भरा हुआ लंबा जबड़ा खोल देते हैं। यहाँ अड़ोस-पड़ोस में कोई नदी भी नहीं। आश्चर्य है कि यहाँ ये मगर कैसे आ गये! इस जूहड़ से थोड़ी दूर पर एक और पोखरा है। इसमें काफ़ी पानी है। इसमें मगरों के तीस-चालीस छोटे-छोटे बच्चे हैं। इसमें भैंसें नहाती थीं। परन्तु मगर इन्हें कुछ नहीं कहते थे। शायद इसलिए कि वे अभी बहुत छोटे थे। सुना है कि जब कोई बच्चा बड़ा हो जाता है तब उसे यहाँ से उठा कर बड़े जूहड़ में ले जाकर छोड़ देते हैं। इन मगरों के कारण यहाँ की क़ब्र के मजावरों को अच्छी आमदनी हो जाती है।

कार्बन पेपर का कारख़ाना—कराची में एक कार्बन पेपर बनाने का कारख़ाना थोड़े समय से खुला है। इसके मैनेजर महोदय ने बड़ी कृपा से हमें इसकी सारी मशीनरी और क्रिया दिखाई। भारत में सारा कार्बन पेपर विदेश से ही आता है। शायद भारत में एक-मात्र यही कारख़ाना है। पहले तो सरकार से इसको प्रोत्साहन नहीं मिला, परन्तु अब कुछ काल से वह भी इसका बनाया कार्बन पेपर ख़रीदने लगी है। निज़ाम का हैदराबाद और दूसरी कई रियासतों के भी आर्डर आये हुए थे। यहाँ की मशीनें बड़ी सूक्ष्म हैं। बटर पेपर झिल्ली-सा बारीक़ होता है। मशीन उस पर एक समान स्याही लगाती है। वह मशीन के अन्दर ही सूखता है। स्याही ठीक लगी है या नहीं, इसकी जाँच करने के लिए यहाँ एक बहुत सूक्ष्म तराज़ू है। वह कोरे काग़ज़ और स्याही लगे हुए काग़ज़ के तौल का अन्तर बता देती है। काग़ज़ के शीटों की गिनती भी मशीन ही करती है। उनकी तह भी वही लगाती है और शीटों को एक ही साईज़ के टुकड़े में काट कर डिब्बों में बंद भी वही करती है। एक मशीन ऐसी है, जिसमें एक ओर तरल स्याही डाल दी जाती है और दूसरी ओर वह ठोस रूप में निकल आती है। कार्बन पेपर को गर्म और ठंडा करने के लिए एक विशेष मशीन है। उसमें गर्म और ठंडे सिलिण्डर हैं। काग़ज़ को उनमें से होकर जाना पड़ता है। यहाँ गत्ते और टीन के डिब्बे भी बनते हैं। सारा डिब्बा एक ही मशीन नहीं बनाती। एक एक भाग को बनाने के लिए अलग अलग मशीनें हैं। फिर उन सब भागों को मशीन-द्वारा जोड़ देने से डिब्बा तैयार हो जाता है। यहाँ दफ़्तरी काम के लिए फ़ीते भी बनाये जाते हैं।

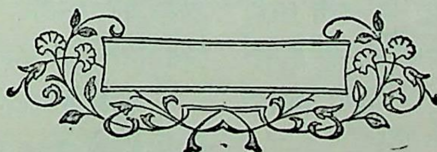
फ़ीर-हॉल—कराची में और देखने योग्य चीज़ें फ़ीर-हाल, बोल्टन-मार्केट, हिन्दी-साहित्य-भवन, सेवा-

सदन, जयसिंहानी का अकबर-आश्रम, हरिजन-शिल्प-विद्यालय, केमारी और डेनिस हाल हैं। फ़ीर-हाल नगर से बाहर एक सुन्दर स्थान है। यहाँ सार्वजनिक पुस्तकालय है। हाल के चारों ओर पार्क अर्थात् नगरोद्यान है। इसमें फ़व्वारे लगे हैं। महाराजा और महारानी की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ ऊँचे चबूतरों पर खड़ी हैं, जनता के विश्राम करने के लिए बेंचें लगी हैं। जगह साफ़-सुथरी है। सवेरे लोग इधर हवा खाने आते हैं।


[मग्गापीर, कराची]

यद्यपि सिंध की भाषा सिंधी है, जो अरबी अक्षरों में लिखी जाती है, परन्तु कराची में दूसरे प्रान्तों के लोगों की इतनी बहुतायत है कि यहाँ मराठी, गुजराती और हिन्दी के भी अलग अलग स्कूल हैं। मराठी और गुजराती भाषाओं के तो यहाँ पत्र भी निकलते हैं। शायद पाठकों को मालूम ही होगा कि भारत में बसनेवाले यहूदियों की मातृ-भाषा मराठी और पारसियों की गुजराती है। यहाँ हिन्दी-भाषियों की भी कमी नहीं। यहाँ का हिन्दी-साहित्य-भवन बड़ी उपयोगी संस्था है। इसके वाचनालय में पुस्तकों का बड़ा सुन्दर संग्रह है। पत्र-पत्रिकायें भी ख़ूब आती हैं।

कराची से लाहौर लौटते समय मैंने सौग़ात के तौर पर यहाँ से आसू हलवाई की दूकान का सोहनहलुआ, दो सुन्दर बड़ी बड़ी चितकबरी कौड़ियाँ, कोकम, कोकम का तेल और सीकाकाई ख़रीदा, क्योंकि ये चीज़ें लाहौर में नहीं मिलतीं। कोकम इमली की तरह का एक खट्टा फल होता है। गुजराती और मराठे लोग इसे दाल में डालते हैं। कोकम का तेल सफ़ेद रंग की ठोस चीज़ होती है। मरोड़ की बीमारी में गर्म करके थोड़ा-सा पिला देने से रोगी को आराम हो जाता है। सीकाकाई बबूल की फली जैसी होती है। इसको पानी में भिगो कर स्त्रियाँ केश धोती हैं। इससे बाल ख़ूब निखरते और बढ़ते हैं। सोहन-हलुआ वैसे तो कराची में बहुत लोग बनाते हैं, परन्तु आसू की दूकान इसके लिए विशेषरूप से प्रसिद्ध है। आसू मर चुका है, अब उसके उत्तराधिकारी दूकान चलाते हैं। मुझे तो आसू के हलुए और दूसरी दूकानों के हलुए में कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ा। सोहनहलुआ एक अच्छी स्वादिष्ठ मिठाई है। कहते हैं, दो मास पड़ा रहने पर भी यह ख़राब नहीं होता। जैसे बंगालियों का रस-गुल्ला मशहूर है, वैसे ही सिंधियों का सोहनहलुआ मशहूर है।



अज्ञात दिशा की ओर

सिनेमा हाउस से निकल कर अहीन्द्र और निर्मल मिसेज़ बोस की ओर चले। रास्ते में अहीन्द्र ने निर्मल को मिसेज़ बोस की रहन-सहन और उनके आचरण एवं सौन्दर्य्य का परिचय दिया। अहीन्द्र के कवित्वमय वर्णन से निर्मल और भी आकर्षित हुआ। वह मिसेज़ बोस तथा उनकी कन्या रेखा से मिलने के लिए बहुत ही उत्कण्ठित हो उठा और एक टैक्सी पर बैठ कर अहीन्द्र के साथ चला।

अनुवादक—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

दूसरा परिच्छेद
शुभ सूचना

टैक्सी आकर बालीगंज में एक सजे हुए घर के द्वार पर खड़ी हो गई। फाटक के सामने बादाम का एक बहुत बड़ा पेड़ था। उसी के बग़ल में एक मोटर और खड़ा था। फाटक के भीतर एक छोटा-सा चक्राकार बग़ीचा था। उस बग़ीचे की परिक्रमा करती हुई एक सड़क चली गई थी, जो अपने दो हाथ निकालकर गाड़ी खड़ी करनेवाले बरामदे से मिल गई थी। सड़क पर लाल बजरी बिछी थी। बग़ीचे में कुछ कुर्सियाँ और तिपाइयाँ पड़ी थीं। एक झाड़ में ५ बल्ब लगे थे, जो बहुत ही आकर्षक और नयनाभिराम थे। उन पाँचों में से एक बल्ब में बिजली की बत्ती जल रही थी। एक कुर्सी पर एक रमणी विराजमान थी, जो 'ऊँचे ख़याल' के लोगों के फ़ैशन की साड़ी पहने थी। उसके पैरों में मुलायम और बढ़िया स्लीपर पड़े हुए थे। उसके पास दो-चार पुरुष बैठे हुए थे, जो वेश-भूषा से बहुत शौकीन जान पड़ते थे। उन सबने उसी स्त्री को घेरकर भौंरे के समान स्तवगान सा छेड़ रक्खा था। वही स्त्री मिसेज़ बोस के नाम से परिचित थी। उसका शायद सरयू, सरस्वती या इसी तरह का कोई और नाम था। उसके उस नाम से किसी का कोई मतलब था नहीं, इसलिए वह स्मृति के किसी अतीत लोक में अदृश्य होगया था।

फाटक के बाहर ही अहीन्द्र टैक्सी से उतर गया। टैक्सीवाले को भाड़ा देकर उसने निर्मल से कहा—देखते हो न, एक मोटर खड़ा है। चाहे तुम किसी समय भी आओ। यहाँ कोई न कोई मोटर या गाड़ी ज़रूर खड़ी मिलेगी। अच्छा, तुम्हारा परिचय मैं दूँगा प्रिंस कह कर। केवल निर्मल चौधरी कहने से उतना ज़ोर न बँधेगा। तुम्हें मैं कहूँगा प्रिंस चौधरी। ठीक है न?

निर्मल ने हँस कर कहा—नहीं, नहीं, प्रिंस-फ्रिंस कहने की क्या ज़रूरत है? केवल सीधा सीधा परिचय दे देना ही क्या अच्छा न होगा?

अहीन्द्र ने कहा—अजी नहीं। इससे काम न चलेगा। तुम समझते नहीं हो। यहाँ मेरा क्या परिचय है, जानते हो? यहाँ मुझे सब लोग कहते हैं हताशगंज के ज़मींदार अहीन्द्र सिंगी। यह परिचय मैंने बनाया नहीं। यहीं एक दिन मिसेज़ बोस ने मुझसे पूछा कि आप किस गंज के ज़मींदार हैं। मैंने उत्तर दिया कि मैं ज़मींदार नहीं हूँ। परन्तु उन्हें विश्वास नहीं पड़ा। वे बतलाने के लिए मुझसे बार बार आग्रह करने लगीं। अन्त में तंग आकर मुझे कहना ही पड़ा कि मैं हताशगंज का ज़मींदार हूँ। यह कहने से मेरा कोई हानि-लाभ नहीं है, परन्तु मिसेज़ बोस जब मेरे सम्बन्ध में समझ गईं कि यह ज़मींदार है तब उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। इससे मैं तुम्हें आरम्भ से ही प्रिंस बनाकर ले चल रहा हूँ। समझे?

निर्मल ने कहा—मैं तो केवल एक रात का मेहमान हूँ भाई। मेरे ऊपर उपाधि का भार लादने की कौन-सी ऐसी आवश्यकता है? तुम यहाँ जम गये हो, इससे तुम्हें

स्वभावतः ज़मींदारी लेनी ही पड़ी। मेरा मामला तो ऐसा है नहीं!

अहीन्द्र ने कहा—ऐसा न कहने से तुम्हें प्रतिकूल अवस्था में पड़ना पड़ेगा। यहाँ जो लोग आते हैं वे या तो किसी राजा के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं या कुमार बहादुर हैं। यदि यह सब नहीं हैं तो बैरिस्टर या आनरेरी मजिस्ट्रेट ही हैं। इन सब रईसों के दल में जाकर तुम एक अभागे की तरह बैठोगे? यह नहीं हो सकता।

निर्मल ने कहा—अच्छी बात है। इस सम्बन्ध में अधिक विवाद करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हें जो पसंद हो वही करना।

फाटक बन्द था। उसे खोलकर अहीन्द्र और निर्मल भीतर घुसे। बग़ीचे में जाकर जैसे ही उन दोनों ने 'लान' पर पैर रक्खा, मिसेज़ बोस ने उनकी अभ्यर्थना करके कहा—आइए मिस्टर सिनहा।

अहीन्द्र ने कहा—ये मेरे मित्र प्रिंस चौधरी हैं...और ये ही मिसेज़ बोस हैं।

मिसेज़ बोस के पास जितने भी पुरुष बैठे थे वे सब चकित होकर निर्मल की ओर ताकने लगे। कुर्सी छोड़कर मिसेज़ बोस उठ खड़ी हुई और हाथ बढ़ाकर कहा—कहाँ के प्रिंस?

अहीन्द्र ने कहा—कोचभूम के। यह जगह कूचविहार से ज़रा और उस तरफ़ है।

निर्मल बड़ी कठिनाई से अपनी हँसी रोक सका। उसने चुपके से अहीन्द्र को एक बार चुटकी काटकर बहुत ही मृदु स्वर से कहा—बदमाश नहीं तो।

मिसेज़ बोस ने दोनों से बैठने को कहा। अहीन्द्र और निर्मल के बैठ जाने पर मिसेज़ बोस ने कहा—देखिए, मिस्टर सिनहा, ये जो रतनबाबू हैं, मुझसे एक अभिनय करने को कह रहे हैं। या लोग इम्पायर या ग्लोब-थियेटर-हाल भाड़े पर लेना चाहते हैं। इनकी इच्छा है कि शकुन्तला के कुछ प्राचीन काल के दृश्य दिखलाये जायँ। इनका यह भी कहना है कि मुझे इस काम के लिए रेखा को उधार देना होगा। वह शकुन्तला बनेगी। यह सुनकर मेरी तो हँसी ही नहीं रोके रुकती। यह ज़रा-सी लड़की भला कभी शकुन्तला-सी लगेगी? इसके सिवा मैं उसे तो इस तरह छोड़ नहीं सकती हूँ। परन्तु यह हो सकता है कि यदि वे लोग सचमुच कुछ करना चाहें तो मैं स्वयं यथा-साध्य चेष्टा करूँ।

अहीन्द्र इस इशारे का मतलब समझ गया। उसने कहा—यह तो बिलकुल ठीक बात है। रेखा भला कहीं शकुन्तला-सी जान पड़ेगी? इससे तो अच्छा होगा कि आप स्वयं शकुन्तला बनें। आप यदि सहमत हों तो मैं अभिनय के लिए आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध करूँ। मेरे ये जो मित्र प्रिंस हैं, एक कुशल चित्रकार हैं। सजावट आदि का भार ये ले सकते हैं।

रतन बाबू तथा उनके एक मित्र ने यह बात छेड़ी थी। उन दोनों को तो अब मुँह तक खोलने का साहस न हुआ। उन्होंने सोचा कि अहीन्द्र ने तो बड़ी गहरी चाल चली है, इससे पार पाना कठिन है। इसके होते हुए तो यहाँ किसी प्रकार की आशा ही न करनी चाहिए।

वे लोग तो रेखा को शकुन्तला बनाने के लिए इतना उत्सुक थे नहीं! वे रेखा को केवल इसलिए खींचना चाहते थे कि उसे यदि किसी प्रकार रंगभूमि में ले आ सकते तो रेखा की मा के हाथ कुछ रिज़र्व सीटें बिक जातीं।

अहीन्द्र की बात सुनकर मिसेज़ बोस ने कहा—यह बड़ा सुन्दर विचार है। सचमुच मिस्टर सिनहा, कीजिए न प्रबन्ध। मेरी भी बड़ी इच्छा है। देखो न, यहाँ कितनी मंडलियाँ समय समय पर आती रहती हैं। ये सब सिविल लाइन में किराये पर कोई थिएटर हाल लेकर धन और यश दोनों ही अर्जित कर लेती हैं। कोई ऐसी बात तो नहीं जान पड़ती कि प्रयत्न करने पर हम लोग इस मामले में सफल न हो सकेंगे। अहीन्द्र से यह कह चुकने के बाद मिसेज़ बोस ने निर्मल की ओर ताक कर कहा—आपकी क्या धारणा है प्रिंस? यदि इस तरह का आयोजन किया जाय तो आपको भी अपने दल में सम्मिलित कर लेना क्या हम लोगों के लिए सम्भव होगा?

निर्मल ने बहुत ही स्वाभाविक और उल्लासमय स्वर में कहा—अवश्य।

रतन बाबू का चेहरा उतर गया। उन्होंने सोचा—न, अब आशा नहीं है।

अहीन्द्र ने उन लोगों की ओर एक बार वक्र दृष्टि से देखकर कहा—अच्छी बात है, मैं कल ही पैकर कम्पनी से एक अच्छी-सी जिल्द बँधी हुई कापी ख़रीद लाऊँगा और उसमें शकुन्तला का पूरा ख़ाका तैयार करूँगा। आप बनेंगी शकुन्तला तो अनसूया और प्रियंवदा कौन बनेगा? इन दोनों का प्रबन्ध भी आप ही को कर लेना होगा। परन्तु सुषमा और सुन्दरता में उन्हें शकुन्तला के अनुकूल सहचरी होना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि रेखा को भरत का पार्ट दिया जाय। भरत के वेश में वह बहुत ही सुन्दर जान पड़ेगी। कमल की तरह मुलायम और आकर्षक उसका मुँह है। घुँघराले बालों की छोटी छोटी और चमकीली लटें मस्तक पर झूल रही हैं। सजधज के साथ जिस समय वह रंगभूमि में आवेगी, जान पड़ेगा कि सचमुच कोई भारतीय राजकुमार आगया है, और वह वन में विचरण कर रहा है। अभिनय तो है। मैं उसे उसका सारा पार्ट सिखा दूँगा। प्रिंस से भी बहुत कुछ सहायता मिल जायगी। परन्तु एक बात है। भला दुष्यन्त कौन बनेगा? दुष्यन्त का ठीक हो जाने पर कण्व मुनि और उनके दो शिष्य रह जायँगे। एक विदूषक भी तो चाहिए! इन सबका भी प्रबन्ध करना होगा।

एक बार निर्मल की ओर कटाक्षपात करके मिसेज़ बोस ने कहा—क्या प्रिंस दुष्यन्त बनने पर सहमत हैं? आप सचमुच बड़े सुन्दर दिखेंगे। इसके अतिरिक्त प्रिंस राजा बनेंगे! हा हा हा—कितना अच्छा होगा यह! आपकी क्या राय है मिस्टर सिनहा?

अहीन्द्र ने कहा—इसमें भी क्या कुछ पूछने की बात है? प्रिंस राजा बनेंगे, ऐसी बात होती ही और किस मण्डली में है।

"इसी लिए तो मैं कह रही हूँ" यह कह कर मिसेज़ बोस फिर हँसने लगीं। उनकी हँसी रुक भी न पाई थी कि एक परम रूपवती तरुणी अपने सौन्दर्य्य की छटा से उस स्थान को देदीप्यमान करती हुई 'लान' पर आकर खड़ी हो गई। श्रावण के घने काले मेघ के समान उसके केश झूल रहे थे। वह रमणी क्या थी, बिजली की शिखा थी। निर्मल चकितभाव से उसकी ओर ताकने लगा। आकाश की ज्योत्स्ना रमणी की मूर्ति धारण करके मानो भूमण्डल पर उतर आई है और 'लान' पर खड़ी है। उसके मुख-मण्डल पर केवल सुन्दरता की बिजली दौड़ रही थी।

निर्मल की विह्वल दृष्टि की ओर ताक कर मिसेज़ बोस ने कहा—यह मेरी लड़की रेखा है। देखिए तो प्रिंस, भला शकुन्तला बनने पर यह शोभित होगी?

निर्मल न जाने कैसे स्वप्नाभिभूत-सा हो उठा था। वह सोचने लगा—शकुन्तला! यही तो शकुन्तला है! इसी को देखकर तो कालिदास ने लिखा है—

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु

रेखा ने पूछा—शकुन्तला क्या?

मिसेज़ बोस ने उत्तर दिया—कुछ नहीं। तुम बैठो न। आज ये कौन आये हैं, जानती हो? ये हैं प्रिंस चौधरी। ये कोचभूम के प्रिंस हैं। चलो, इन्हें ज़रा-सा गाना सुनाना होगा।

अहीन्द्र की ओर देखकर रेखा ने कहा—किन्तु आपसे मेरी खुट्टी है। आपने मुझसे क्या वादा किया था? आपने कहा था न कि तुम्हें बायस्कोप दिखलाने ले चलूँगा?

अहीन्द्र ने कहा—मिसेज़ बोस ने ही तो कहला भेजा था कि रेखा की तबीयत अच्छी नहीं है।

रेखा ने कहा—मा शायद मेरी अपेक्षा मेरी तबीयत का हाल अधिक जानती हैं।

मन ही मन ज़रा-सा दुःखी होकर अहीन्द्र ने कहा—अच्छा, तो इसके लिए चिन्ता करने की कौन-सी बात है? आज नहीं तो किसी और दिन सही। कहो तो कल ही जगह रिज़र्व कराऊँ।

मिसेज़ बोस ने कुछ कर्कश स्वर से पुकारा—रेखा! रेखा ने कहा—क्या?

मिसेज़ बोस ने कहा—किसी चीज़ के लिए इस तरह उद्विग्न नहीं होना चाहिए। प्रिंस की तुमने ज़रा-सी

आवभगत भी न की। यही तुमने सीखा है? चलो, ज़रा दो-एक गाने तो गाओ।

मिसेज़ बोस उठने की चेष्टा कर रही थीं, इतने में रतन ने कहा—आप उठ रही हैं? परन्तु आपसे तो मुझे कुछ बातें करनी थीं। बहुत ज़रूरी बातें हैं। यदि ज़रा-सा समय निकाल कर सुन लेतीं!

अहीन्द्र ने कहा—अच्छा, मैं प्रिंस को लेकर रेखा के साथ-साथ चलता हूँ। आप ज़रा देर के बाद ही आइएगा।

"अच्छी बात है।" कह कर मिसेज़ बोस बैठ गईं। रेखा अहीन्द्र और निर्मल को लेकर कमरे में गई।

कमरा ख़ूब सजा हुआ था। बहुत अच्छे अच्छे कोच और कुर्सियाँ रक्खी थीं। एक कोने में एक पियानो रक्खा था। रेखा पियानो के पास जाकर बैठी। उसने एकाएक उसके नीरव हृदय पर आघात करके एक स्वर जाग्रत कर दिया। उसके हाव-भाव में ऐसी स्वाभाविक चञ्चलता थी कि निर्मल मुग्ध हो गया।

रेखा के सम्बन्ध में उसने अनुभव किया, मानो यह वन का एक पक्षी है। संसार में यह किसी से कोई मतलब नहीं रखती। इसे न तो किसी नियम या क़ानून की चिन्ता है और न यह किसी प्रकार के शिष्टाचार का ही पालन करने की ओर ध्यान देती है। जिस तरह इसका स्वर इतना तेज़ और महीन है, वैसी ही तेज़ी के साथ एक निमेषमात्र में यह मेरे हृदय तक पहुँच गई और उस पर अधिकार कर लिया।

अहीन्द्र ने ज़ोर से निर्मल का हाथ दबाया। उसके कान के पास मुँह ले जाकर उसने कहा—कहो, है न सुन्दरी।

निर्मल ने कहा—भाई, इसकी सुन्दरता के सम्बन्ध में क्या कहना है?

अहीन्द्र ने कहा—प्रेम में तो नहीं पड़ गये हो? प्रथम दर्शन में ही यह हाल है?

कुछ लज्जित होकर निर्मल ने कहा—दुत!

ठीक उसी समय उनकी ओर मुँह करके रेखा ने कहा—किस तरह का गीत गाऊँ? बतलाइए तो।

अहीन्द्र ने कहा—वही गीत गाओ न जिसमें पास आकर बैठने की बात है। वह बड़ा सुन्दर गीत है।

कटाक्ष में एक चञ्चल हँसी मिश्रित करके रेखा ने तुरन्त ही मुँह फेर लिया और वह गाने लगी। गीत के प्रारम्भिक अंश का भाव इस प्रकार था—

वह जब पास आकर बैठा था तब भी तू नहीं जागी। हे हतभागिनी, तुझे कौन-सी नींद घेरे हुए थी।

क्षण ही भर में उस कमरे की एक एक ईंट से वही सुर निकलने लगा। निर्मल की बाह्य चेतना लुप्त हो गई। उसके मन में यही बात आती, तू तो हतभागिनी नहीं है भाई। भाग्यहीन वह है जो तुम्हारे जागने की प्रतीक्षा में बैठा न रह कर यों ही बेवक़ूफ़ की तरह चला गया है। यह हँसी गान और प्रकाश! मनोरञ्जन के इस प्रकार के साधन वर्तमान रहने पर भी ऐसी अतृप्ति! निर्मल का चित्त निराशा से पूर्ण हो गया।

इस सब निरर्थक भावुकता तथा शब्द-जाल के सम्बन्ध में विचार करके बुद्धि को क्लेश देने से लाभ ही क्या है? इससे तो कहीं बढ़कर है इसकी लावण्यमय यौवन-श्री और पुष्प के समान कोमलबाहुलता...। यह तो पात्र है चुपचाप गले से लगाने की, उपभोग करने की! इस सम्बन्ध में किन्तु-परन्तु करना या युक्ति-तर्क ढूँढ़ना व्यर्थ है। अनुमति के लिए मुँह ताकते रहने की भी आवश्यकता नहीं है। नारी का रूप और उसका यौवन तो केवल पुरुष के भोग के ही लिए है। इस काम में यदि सफल न हो सका तो क्या आवश्यकता है निरर्थक एक एक शब्द और एक एक भाव सजा कर बेवक़ूफ़ की तरह कविता लिखने की।

रेखा की कण्ठलहरी क्रमशः एक के बाद दूसरा स्वर बदलने लगी। उसके साथ ही साथ निर्मल के हृदय में अतृप्ति की अग्नि भी धधक उठी। इतने में ही मिसेज़ बोस भी आ पहुँचीं। निर्मल की ओर ताक कर उन्होंने कहा—क्षमा कीजिएगा प्रिंस, मुझे आने में देरी हो गई। उन लोगों ने तो नाक में दम कर रक्खा था। आप लोग आगये। तब सोचा कि शायद अब इन लोगों से पिंड छूट जायगा, तो भी छुटकारा न मिला। उन लोगों का आग्रह तो देखिए। मुझसे कह रहे हैं कि हमारे साथ अभिनय करने के लिए अपनी लड़की को भेज दो।

गाना बन्द करके रेखा ने कहा—अभिनय करने कौन जायगा मा ?

मिसेज़ बोस ने कहा—कोई भी हो। तुम्हें क्या करना है ? तुम हर एक बात में टाँग न अड़ाया करो रेखा। तुम गा रही हो तो अपना गाओ न।

एक गीत और गा चुकने के बाद रेखा उठ खड़ी हुई। उसने कहा—बस, अधिक आनन्द भी अच्छा नहीं है। ठीक है न अहीन्द्र बाबू ? आप कहते हैं कि गाना सुनने से मुझे बड़ा आनन्द आता है, इसी से कह रही हूँ।

अहीन्द्र मुग्ध दृष्टि से रेखा की ओर ताक रहा था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया, वह हँसने भर लगा।

रेखा एक सोफ़े पर बैठ गई। मिसेज़ बोस ने कहा—अच्छा, तो यह बताइए कि जो असल बात थी उसके सम्बन्ध में क्या हुआ ? कहीं घूमने चलने की बात थी न ? कर्सियांग या दारजिलिङ्ग ? इस तरफ़ चलना चाहो तो पुरी, उस तरफ़ तो आगरा, दिल्ली......

रेखा ने हँसकर कहा—मक्का, मदीना, नानकिन, कैन्टन।

मा ने कर्कश स्वर से पुकारा—रेखा !

रेखा ने कहा—तुम्हारी बात ही ऐसी थी। तुम तो एक-दम भूगोल की आवृत्ति करने लगीं। यदि चलना ही है तो कोई स्थान निश्चित कर लो। सवेरे कश्मीर चलने को कह रही थीं न ?

मा ने कहा—कश्मीर बहुत दूर है। वहाँ चलना असम्भव है। बड़ा ख़र्च पड़ेगा। उतनी दूर चलने की ज़रूरत नहीं है। यहीं आस-पास कलकत्ते के बाहर कहीं चला जाय तो ठीक है।

रेखा ने कहा—तो चलिए अहीन्द्र बाबू, बरानगर या डायमंड हार्बर चलें। यह बात कहकर वह निर्मल की ओर ताकने लगी। निर्मल की दोनों ही आँखें उस समय भी मुग्ध भाव से उसी की ओर लगी थीं। वे उसकी रूप-माधुरी का अशेष भाव से पान कर रही थीं।

इस सम्बन्ध में बड़ी देर तक तर्क-वितर्क होता रहा। अन्त में बात तय हो गई। सोदपुर में निर्मल का एक बग़ीचा है, उसमें एक बँगला है। वह गङ्गा जी के ठीक कगार पर ही है। वहीं चलकर दो-एक सप्ताह व्यतीत किया जाय।

मिसेज़ बोस ने कहा—किन्तु प्रिन्स, आपको भी चलना चाहिए। केवल चलने से ही काम न चलेगा। वहाँ दस-पाँच दिन रहें। सब लोग एक साथ ही मिल-जुल कर रहें, तभी तो आनन्द आवेगा। ठीक है न ?

एक धीमी साँस लेकर निर्मल ने कहा—इसमें कौन-सी बात है ? यही सही।

मिसेज़ बोस ने कहा—तो यह बात पक्की रही। है न ?

निर्मल ने कहा—पक्की ही है।

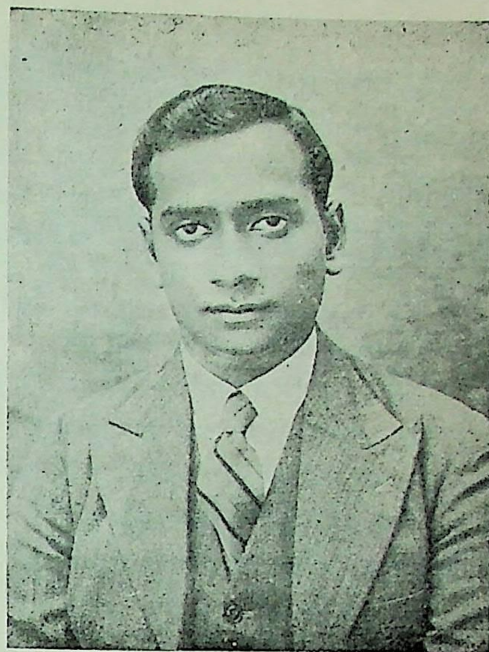
बात जब पक्की हो गई तब रेखा झटपट उठी और अहीन्द्र जिस कोच पर बैठा था, उसी के हत्थे पर जाकर बैठ गई। अहीन्द्र के दोनों हाथ ज़ोर से पकड़कर रेखा ने बड़े आग्रह का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—किन्तु आपको बहुत-सी किताबें ले चलनी होंगी। काव्य, उपन्यास, नाटक आदि सब तरह की किताबें ले चलिएगा। ले चलिएगा न? यदि न ले चल सकेंगे तो मैं आपको पागल कर दूँगी।

अहीन्द्र ने रेखा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसी तरह मुग्धभाव से उसकी ओर ताक कर उसने कहा—अच्छी बात है।

निर्मल सभी की ओर ध्यानपूर्वक देख रहा था। उसने मन ही मन कहा—वाह, अहीन्द्र ने कैसा जमा रक्खा है ! परन्तु रेखा भी निरी भोली ही है। लुटपन में खेलने-कूदने के समय उसमें जो चञ्चलता थी वह आज भी बनी है, उसका मन आज भी उससे आगे नहीं बढ़ सका, मानो वह हिंडोले पर लेटी हुई अपने ही आनन्द में मग्न है। उसकी इच्छा के अनुकूल चलना क्या सम्भव है ? न, यह तो हँसी की बात है।

निर्मल के मन में रेखा के प्रति एक अवज्ञा का भाव जाग्रत हो उठा। उसके बाद ही उसने मिसेज़ बोस की ओर देखा। वह सोचने लगा, अवस्था कुछ अधिक हो गई है ! परन्तु इससे क्या ? इतनी अधिक अवस्था हो जाने पर भी अपनी सुन्दरता को पकड़कर बाँध रखने के लिए वह कितनी चेष्टा, कितना प्रयत्न करती है। इस समय भी इस रूप को स्थायी रखने का उसे इतना मोह है।

कवि और छवि



लेखक, श्रीयुत बालकृष्ण राव

श्रीयुत बालकृष्ण राव 'लीडर' के प्रसिद्ध सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि जी के योग्य पुत्र हैं। तेलगू-भाषा-भाषी होते हुए भी इनका हिन्दी से विशेष अनुराग ही नहीं है, किन्तु ये हिन्दी के एक होनहार कवि भी हैं। इनकी जो कविता यहाँ छपी है वह एक उत्कृष्ट रचना है। आशा है, इससे कविताप्रेमियों का यथेष्ट मनोरञ्जन होगा।

विजन विपिन था, नीरव खग-मृग, निश्चल तरु थे;
तैर रहे थे मेघ व्योम में मन्थर गति से।
कलिका के कम्पित, सस्मित, सुरभित अधरों को
मन्द पवन पल्लव-शय्या पर चूम रहा था।

अरुण नयन थे अति, प्राची के, तरुण भानु था;
करुण, कान्तिहत, क्षीण प्रभा थी राकापति की।
विमल सरोवर के जल पर, शत-शत रवि-किरणें
खेल रही थीं, द्रवित स्वर्ण-सा उसे बनाकर।

वहीं, सरोवर के तट पर ही, था अशोक-तरु—
पल्लव-दल से लदी एक शाखा झुक झुककर
अपना ही प्रतिबिम्ब प्रेम से देख रही थी।

नव-जागृति की ज्योति लिये, किरणें द्रुत गति से,
किसलय, पल्लव, शाखा के आवरण हटाकर,
प्रकृति देवि के तरु-मन्दिर के अन्तःपुर में
सजनि, कर रही थीं प्रवेश कम्पित चरणों से।

छन छनकर, मृदु ज्योति लिये, ज्वाला को तजकर,
किरणें बढ़ीं समुत्सुक, तम की छटा देखने;
पर उनकी पद-ध्वनि सुनते ही, भय से कातर
तम विलीन हो गया शून्य में तीव्र वेग से,—
केवल कुछ पद-चिह्न रह गये छाया बनकर।

विजय-गर्व से तरु के चारों ओर फैलकर
किरणों ने भर दिया प्रकाश विमल, कण कण में;
दीप्त हो उठा निखिल वनान्तर मृदु आभा से;
चमक उठा शुचि शिलाखण्ड नव धवल ज्योति से,—
तरुतल के सन्निकट तमावृत जो रक्खा था।

निविड़ निशा के अन्धगर्भ से स्वयं निकलकर,
चिर-अमूर्त सौन्दर्य-राशि मानो अनन्त की,
किसी अलौकिक अभिलाषा से प्रेरित होकर—
झट सीमित, जीवित, सदेह बनने को मानो —
व्याप्त हो गई शिलाखण्ड में सहसा आकर।

विस्मित नयनों से वन के खग-मृग ने देखा,
वन-देवी ही स्वयं विमल प्रस्तर-प्रतिमा बन—
मानो अपने प्रजावर्ग को दर्शन देने—
इस प्राचीन अशोक-वृक्ष के नीचे आकर,
कण-कण से अपना विस्तृत वैभव समेटकर
खड़ी हो गई बालारुण की स्निग्ध ज्योति में।

पुलकित होकर मन्द पवन ने चँवर डुलाया;
विहग वन्दना करने लगे मधुर कलरव कर;
भक्ति, प्रेम के भावों से भर, तरु ने झुक कर
चरणों पर बिखेर दी अञ्जलि पल्लवदल की।

किरणों ने मोहित हो प्रतिमा के अंगों को
अपने अद्‌भुत स्पर्शों से भर दिया कान्ति से।
स्वयं सजाकर लगीं देखने जब वे सुख से,
सुध-बुध खोकर तब सहसा प्रेमातिरेक से
लगीं चूमने प्रतिमा के शीतल अधरों को;
दीप्त हो उठे तब, सहसा वे मधुर हास से॥

वहीं निकट ही शिल्पकार भी स्वयं खड़ा था;
काँप रहे थे चरण, किन्तु अपलक नयनों से
देख रहा था वह अपने श्रम के प्रसाद को।

वह कवि था, प्रेमी था सुमनों का, विहगों का;
प्रकृति उपास्य देवि थी उसकी, वन मन्दिर था।
पवन उसे शुचि स्नेह-स्पर्श से शीतल करता;
भरकर मन में सुरभि-सुधा की मादक धारा,
सरस सुमन सुख से अचेत सा कर देते थे।
भर आते थे नयन, भक्ति से, कृतज्ञता से॥

पर ये अद्‌भुत भाव हृदय में ही रह रहकर
कर देते थे विकल कल्पनाओं से कवि को;
पल पल पर बनते-मिटते रहते थे सपने॥

इन असंख्य आकांक्षाओं की अद्‌भुत धारा
उमड़ पड़ी बस कवि के मन से अवसर पाकर;
गूँज उठा वन, सुना स्तब्ध होकर खग-मृग ने,
कवि कहता था "वनदेवी! मैं जब तक तेरी
बना न लूँ अपने हाथों से प्रस्तर-प्रतिमा,
पवन स्पर्श कर सके न मुझको, सुमन सूखकर
बदल जायँ काँटों में, मेरे दृष्टिपात से।
विहग मूक हो जायें जब मैं वन में आऊँ;
पशु मेरी पद-ध्वनि सुनकर भय से छिप जावें॥"

तब से अथक परिश्रम करके कवि निशिवासर
पूर्ण कर सका था सन्ध्या को अपनी कविता;
उसी समय आगई निशा आतुर चरणों से।

पीछे हटा, पूर्ण कर जब कवि उसे देखने,
देखा रजनी ने तब तक चुपके से आकर,
तम के अञ्चल में प्रतिमा को छिपा लिया था।

विकल प्रतीक्षा में प्रभात की, तारे गिनकर,
खड़े खड़े ही कवि ने सारी रात बिता दी;—
अब खग-मृग के साथ स्वयं अपनी ही कृति को
कवि आश्चर्य-भरे नयनों से देख रहा था।
काँप रहे थे चरण; अधर भी काँप रहे थे;
काँप रही थीं कोमल किसलय-दल सी पलकें;
बिखरे, काले केश, पवन के आघातों से,
दूर्वा-दल से लहर लहरकर काँप रहे थे।
जाने कब तक इसी भाँति कवि वहाँ खड़ा था;—
विहग और पशु भी स्थिर होकर रहे देखते॥

अधिक वेग से काँप उठा सहसा कवि का तन;
आगे बढ़ा सवेग एक पग, किन्तु ठिठककर
खड़ा रह गया; काँप उठे तरु अविदित भय से।

चमक उठा सहसा कवि का मुख तीव्र ज्योति से;
"देवि! देवि!" की ध्वनि से सहसा गूँज उठा वन
कवि अचेत हो गिरा वहीं प्रतिमा के पद पर—
नयन बन्द थे, बद्ध प्रणति-अञ्जलि में कर थे॥

× × ×

एकत्रित हो मेघ छा गये तरु-शिखरों पर;
सूर्य वेग से मध्य गगन पर चढ़ आया था॥

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथा समय प्रकाशित होंगे।]

१—**हस्तसञ्जीवनम्** (टीका-सहित संस्कृत)—संशोधक और प्रकाशक, श्रीयुत गणेशदत्त ज्योतिषी, पियरी कलाँ, काशी हैं।

२—**काकली**—रचयिता, पं० जानकीवल्लभ ललित-ललाम शास्त्री, साहित्याचार्य्य, प्रकाशक, साहित्य-निकुञ्जम्, मैगरा, (गया) हैं और मूल्य ।=) है।

३—**हिन्दू विधवा या सती गौरव** (उपन्यास)—लेखक, श्री के० सी० चटर्जी, प्रकाशक, आदर्श प्रेस, केसरगंज, अजमेर हैं और मूल्य १) है।

४—**बाइसवीं सदी**—लेखक, श्री राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, हैं और मूल्य १) है।

५—**नर-भक्षी बकासुर या बाल-विवाह**—अनुवादक, डा० धनीराम प्रेम, एम० आर० सी० एस०, प्रकाशक, रतन-पब्लिशिंग-हाउस, बम्बई नं० १४ है और मूल्य ॥) है।

६-८—हिन्दी-भवन, लाहौर की प्रकाशित तीन पुस्तकें

(१) **मीरा पदावली** (पद्य)—सम्पादिका, श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव, हिन्दीप्रभाकर, और मूल्य १) है।

(२) **पंखुड़ियाँ**—लेखक, श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०, और मूल्य १) है।

(३) **सदाचार शिष्टाचार और स्वास्थ्य**—लेखक, श्री माईदयाल जैन, बी० ए०, बी० टी०, और मूल्य ।=) है।

९-१४—श्री बुद्धदेव विद्यालङ्कार-द्वारा लिखित, गुरुदत्त-भवन, लाहौर से प्रकाशित ६ पुस्तकें

(१) **शतपथ, एक पथ**—मूल्य ।) है।

(२) **स्वर्ग**—मूल्य ।=) है।

(३) **सोम**।

(४) **अथ ब्रह्मयज्ञः**—मूल्य ।=) है।

(५) **अथ मरुत्सूक्तम्**—मूल्य ।) है।

(६) **शतपथ ब्राह्मण का भाष्य**—मूल्य १ है।

१५—**सदुपदेशसंग्रह**—संकलयिता, श्री रामनारायण मिश्र, प्रकाशक, साहित्य-सागर-कार्यालय, सुइथाकलाँ, जौनपुर हैं और मूल्य ।=) है।

१६-२०—श्री संपतलाल लूणावत लिखित, श्री सम्भवनाथ जैन पुस्तकालय, ठि० निहाल धर्मशाला, सरदारपुरा, फलोदी (मारवाड़) से प्रकाशित ५ पुस्तकें

(१) **महासुन्दरी**—मूल्य ॥) है।

(२) **धर्म-दृढ़ सती सुलसा**—मूल्य ।) है।

(३) **महासती मृगावती**—मूल्य ≶) है।

(४) **संक्षिप्त पद्यमय महावीर-जीवन**—मूल्य)॥। है।

(५) **श्री जैन-नित्य-स्मरण-माला**—मूल्य -) है।

२१—**प्रवासियों की सद्भावना**—सम्पादक, प्रकाशक, श्री रामचन्द्र शर्मा कीर्तन-विशारद, मंडावर (बिजनौर) यू० पी० और मूल्य 'सदुपयोग' है।

२२—**विद्यार्थी-सहचर**—लेखक, श्री जगतनारायण, बी० एस-सी०, प्रकाशक, डायमण्ड जुबिली, थियोसोफिकल पब्लिशिङ्ग हाउस पटना हैं और मूल्य =)॥ है।

२३—**तरंगिणी की कुछ तरंगें**—लेखक, श्री किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक, विकास प्रिंटिंग वर्क्स, अम्बाला रोड, सहारनपुर हैं।

२४—**सरल हिन्दी संध्या**—सम्पादक, पं० गंगाराम ऊबाना 'विशारद' मंत्री, संध्या-प्रचारिणी सभा, नसीराबाद (राजस्थान) हैं और मूल्य)॥ है।

२५—**आदर्श चरित्र-संग्रह** (गुजराती)—प्रकाशक,

सस्ता-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद और मूल्य १।।।) है।

२६—रामायणनी-रत्नप्रभा गुजराती—लेखक, श्री रतीलाल, हरिजीवनदास पटेल, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद और मूल्य 'सदाचार' है।

२७—श्रेय श्रीमद्भागवतांक—सम्पादक, आचार्य्य श्री बालकृष्ण गोस्वामी, श्री इन्द्र ब्रह्मचारी, प्रकाशक, श्री वृन्दावन भजनाश्रम हैं और इस अंक का मूल्य १।।≤) है।

२८—श्री काशी विद्यापीठ पञ्चाङ्ग १९८६ से ९१ तक—प्रकाशक, श्री वीरबलसिंह पीठस्थविर, काशी, विद्यापीठ, है।

१—श्री सिद्ध-हेमचन्द्र-व्याकरणम् (संस्कृत)—ग्रन्थकार कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य, प्रकाशक—श्री सेठ आनन्द जी कल्याण जी, ज़वेरीवाद, अहमदाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ६२३ और मूल्य साढ़े चार रुपया है।

विक्रम की १२ वीं शताब्दी में चालुक्य-वंशी महाराज सिद्धराज जयसिंह ने मालव-नरेश यशोवर्मा को जीतकर बड़ी धूमधाम से अपनी राजधानी पाटण नामक नगर में प्रवेश किया था। विजयश्री से गौरवान्वित महाराज सिद्धराज जयसिंह के लौटने पर नगरवासियों तथा तत्कालीन अनेक विद्वानों ने विजय-प्रशस्तियों-द्वारा उनका स्वागत किया था। इन विद्वानों में प्रमुख थे परम विद्वान् जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी। अपनी कीर्ति को चिरस्थायी बनाने की लालसा से महाराज सिद्धराज ने श्री हेमचन्द्राचार्य से एक नूतन व्याकरण की रचना के लिए प्रार्थना की। तदनुसार आचार्य ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की और अपने संरक्षक महाराज तथा अपने नाम के अनुसार ही ग्रन्थ का नाम 'सिद्ध-हेमचन्द्र-व्याकरण' रक्खा।

इस ग्रन्थ की रचना पूर्ववर्ती प्रचलित अनेक व्याकरणों के आधार पर की गई है। इसमें प्रथम सात अध्यायों में संस्कृत-भाषा के व्याकरण तथा अष्टम अध्याय में प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची, तथा अपभ्रंश नामक छः भाषाओं के व्याकरणों का सन्निवेश करके यह ग्रन्थ सर्वांगपूर्ण बनाया गया है।

समालोच्य पुस्तक में केवल संस्कृत व्याकरणात्मक सात अध्यायों को ही स्थान दिया गया है। प्राकृत भाषाओं का व्याकरण-भाग, अष्टम अध्याय, अन्य लोगों के द्वारा सुसम्पादित तथा मुद्रित एवं सुलभ होने के कारण इस पुस्तक में सन्निविष्ट नहीं किया गया है।

इस ग्रन्थ का सम्पादन श्रीयुत मुनि हिमांशु विजय न्याय-काव्य-तीर्थ ने सुचारु रूप में तथा परिश्रम से किया है। भूमिका में ग्रन्थकार तथा उनकी अन्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त अकारादि क्रम से सूत्रों की सूची, पाठभेद, विशिष्ट शब्द-कोश आदि, परिशिष्ट तथा सूत्रों पर श्री हेमचन्द्राचार्यकृत 'लघुवृत्ति' नामक सरल टीका एवं संपादककृत 'बाल-टिप्पणम्' नामक उपयोगी टिप्पणियों का समावेश करके पुस्तक को विद्यार्थियों एवं व्याकरणज्ञों के लिए उपयोगी तथा सर्वाङ्गपूर्ण बना दिया है। पुस्तक की छपाई शुद्ध तथा सुन्दर है। भूमिका में "उज्जयिनी-ग्रन्थभाण्डागारत आगत पुस्तकेष्वन्यतमं भोजेन राज्ञा कृतं 'सरस्वतीकण्ठाभरणं' व्याकरणम् (?) एकदा सिद्धराजो ददर्श" इत्यादि लेख में 'सरस्वतीकण्ठाभरणम्' नामक भोजकृत ग्रन्थ को व्याकरण का ग्रन्थ बतलाया गया है, जो ठीक नहीं है। उक्त ग्रन्थ अलंकार का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है—व्याकरण का नहीं। हाँ, भोजकृत 'शब्दानुशासनम्' नामक व्याकरण-ग्रन्थ का उल्लेख अवश्य संस्कृत के सुविख्यात सूचीपत्र 'Catalogus Catalogarum' में मिलता है। संभव है, राजा सिद्धराज ने भोज के व्याकरण को देखकर ही नूतन व्याकरण की रचना करने के लिए जैनाचार्य को कहा हो। प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन इतने परिश्रम तथा सुचारुरूप से किया गया है कि परीक्षार्थी विद्यार्थियों तथा विद्वानों के लिए यह परम संग्रहणीय हो गया है। संस्कृत-पुस्कालयों में भी इसकी एक एक प्रति का संग्रह होना वाञ्छनीय है। प्रकाशक तथा सम्पादक दोनों ही ग्रन्थ के ऐसे सुन्दर संस्करण को जनता के लिए सुलभ कर देने के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

२—प्रियप्रवास की समालोचना तथा टीका—लेखक, साहित्यरत्न बाबू केदारनाथ गुप्त बी० ए० तथा

पंडित लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी हैं, प्रकाशक, विश्व-विद्यालय-परीक्षा—बुकडिपो, पानदरीबा, इलाहाबाद हैं। मूल्य ।=) है।

'प्रियप्रवास' कविवर पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय जी का एक महाकाव्य है। यह ग्रन्थ संस्कृत के वर्णिक वृत्तों तथा संस्कृत-बहुल खड़ी बोली में लिखा होने के कारण हिन्दी की विभिन्न परीक्षाओं में बैठनेवाले विद्यार्थियों के लिए कठिन है। इसी बात को ध्यान में रख कर उक्त लेखकों ने इस पुस्तक की रचना की है। इसमें ग्रन्थकार का सामान्य परिचय तथा 'प्रियप्रवास' की विशद और विवेचनात्मक समालोचना की गई है, जिससे ग्रन्थ की विशेषताओं, त्रुटियों और चरित्र एवं प्रकृति-चित्रण-सम्बन्धी अनेक बातों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अन्त में संस्कृत के कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं। यह पुस्तक विद्यार्थियों तथा परीक्षार्थियों के काम की है।

३—**शरीर और व्यायाम**—लेखक पंडित गणेशदत्त शर्मा गौड़, प्रकाशक, चाँद-प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक, इलाहाबाद हैं। मूल्य २) है।

गत कुछ वर्षों से जनता का, विशेषकर विद्यार्थी-समाज का ध्यान शरीर-रक्षा एवं व्यायाम की ओर गया है। देश के लिए यह शुभ लक्षण है। व्यायाम-द्वारा शरीर को पुष्ट और जीवनोपयोगी बनाने के लिए अँगरेज़ी तथा हिन्दी में विभिन्न पद्धतियों की श्रेष्ठता को प्रमाणित करनेवाले अनेक ग्रन्थ निकल रहे हैं। कभी कभी तो इन ग्रन्थों में व्यायाम-विशेषज्ञों-द्वारा वर्णित इन पद्धतियों में इतना पारस्परिक विरोध पाया जाता है कि बेचारे नूतन व्यायाम-शिक्षार्थी के लिए यह निर्णय करना कि वह किस पद्धति को ग्रहण करे, कठिन हो जाता है। भोजन के समान व्यायाम भी प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति, शरीर-गठन तथा दैनिक जीवन के अनुसार ही निर्धारित होना चाहिए। इस निर्णय के लिए दूसरों के अध्ययन की अपेक्षा उनके अनुभव ही अधिक उत्तम मार्ग-दर्शक तथा उपयोगी हो सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भी एक ऐसे व्यायामज्ञ-द्वारा लिखी गई है, जो व्यायाम के स्वयं प्रेमी हैं। इसमें लेखक ने शरीर के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रचना का तथा उनके कार्यों, उपयोगों और विभिन्न शक्तियों का प्राच्य और पाश्चात्य शरीर-विज्ञान के आधार पर विशद वर्णन किया है।

शरीर के विभिन्न अङ्गों को आरोग्य और सशक्त रखने के लिए हमें क्या करना चाहिए तथा क्या न करना चाहिए, यह भी संक्षेप में इसमें समझाया गया है। लेखक ने अपने ही देश की परीक्षित तथा प्रामाणिक हठ-योगासन-पद्धति को ग्रन्थ में स्थान देकर इसे उत्तम बना दिया है। इन आसनों तथा मुद्राओं को किस प्रकार किस क्रम से करना चाहिए तथा इनके करने से शरीर के किस-किस अवयव पर क्या क्या प्रभाव पड़ता है, इत्यादि बातें लेखक ने विस्तार से तथा चित्रों-द्वारा स्पष्टरूप से समझा दी हैं। भाषा सरल तथा शैली रोचक है। व्यायाम के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी है।

४—**गुप्त-गायन**—लेखक, मास्टर विश्वनाथ गुप्त, प्रकाशक, गुप्ता संगीतालय, ३९।१।१, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता हैं। मूल्य ।=) है।

यह पुस्तक चलते तर्ज़ पर लिखे गये थियेट्रिकल गानों का संग्रहमात्र है। जिन नाटकों में ये गाने गाये गये हैं उनका नाम प्रत्येक गान के साथ दे दिया गया है। अन्त में कुछ भजनों की 'स्वर-लिपि' दे दी गई है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर गानों के साथ-साथ नाना वस्तुओं के विज्ञापन भी छपे हैं। इस प्रकार गानों और विज्ञापनों का यह सूचीपत्र थियेट्रिकल गानों के शौक़ीनों के लिए विशेष रोचक हो सकता है।

५—**बुद्ध-वाणी**—लेखक, श्रीयुत वियोगीहरि, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली हैं। मूल्य १।=) है।

भगवान् बुद्ध की अमर शिक्षाओं ने विश्व में जिस प्रकार उनके समय में धर्म-जिज्ञासुओं और आत्म-चिन्तक व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट किया और शान्ति प्रदान की थी, उसी प्रकार आज भी वे शिक्षायें अशान्त विश्व को अपनी ओर खींच रही हैं। लेखक ने धम्मपद, सुत्तनिपात, बुद्ध-चर्य्या, मज्झिमनिकाय आदि बौद्धग्रन्थों के स्वाध्याय के समय हृदय को प्रिय लगनेवाले जिन

कल्याणकर उपदेशों और वाणियों का संग्रह किया था, प्रस्तुत पुस्तक उसी का परिणाम है। इसके पाठ से आत्म-जिज्ञासु तथा धर्म-पिपासु जन अनेक शिक्षायें तथा आत्म-चिन्तन-सम्बन्धी निर्देश पा सकते हैं। सरल और सुन्दर भाषा में लिखी इस पुस्तक के पाठ से बौद्ध-साहित्य के अध्ययन के लिए स्फूर्ति प्राप्त होती है। पुस्तक उपादेय और संग्रहणीय है।

६—**वीरपाठावली**—लेखक, श्रीयुत कामताप्रसाद जैन, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, कापड़ियाभवन, सूरत हैं। मूल्य ।।।) है।

इस पुस्तक में लेखक ने सत्रह कहानियों तथा लेखों को संकलित किया है। जैन बालकों को धर्मवीर बनाने और उनमें वीरभाव का संचार करने के उद्देश से यह संग्रह किया गया है।

कहानियाँ रोचक तथा जैन-धर्म के प्रवर्त्तकों और जैन-आचार्यों के महत्त्व को प्रकट करनेवाली हैं। इस पुस्तक के पाठ से जैनेतर सज्जन भी अनेक ऐसी बातों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं जो जैन-धर्म के महत्त्व-प्रदर्शन के लिए जैन-ग्रन्थों में वर्णित हैं। राजा दशरथ का जैन-धर्मावलम्बी होना, सीता की मन्दोदरी के गर्भ से उत्पत्ति आदि अनोखी बातें इसके उदाहरण हैं। लेखक ने जैन होने के कारण अपनी टिप्पणी में भगवान् राम को भी जैन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है तथा केवल 'श्रमण' शब्द के आधार पर वाल्मीकीय रामायण में जैन-धर्म का पाया जाना लिखा है, जो उनके धार्मिक पक्षपात का ही सूचक है, ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य के अनुसन्धान करने की प्रवृत्ति का नहीं।

पुस्तक की भाषा सरल तथा सुबोध है, परन्तु 'योग माड़कर', 'स्वीकारता दे दी' आदि प्रयोग कानों को खटकते हैं।

७—**संकीर्त्तन-सुधा**—प्रकाशक, संकीर्त्तन-कार्यालय, मेरठ हैं। मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में भगवन्नाम-संकीर्त्तन के लिए उपयोगी पदों, चरणों तथा भजनों का संग्रह किया गया है। संग्रह करने में संग्रहकर्त्ता ने जनता की सुरुचि और कुरुचि का ध्यान नहीं रक्खा है। जहाँ एक ओर सूर, मीरा आदि के उच्च कोटि के भक्ति-रस-पूर्ण पदों का संग्रह है, वहाँ दूसरी ओर 'होली' और लिलहारी-लीला के बाज़ारू निकृष्ट पदों को भी इसमें स्थान दिया गया है। भक्ति तथा सात्विक भावों के प्रचार की दृष्टि से ऐसा करना हम अवाञ्छनीय समझते हैं। काग़ज़ और छपाई साधारण हैं।

८—**बुन्देल-वैभव पहला भाग**—(काव्य ग्रन्थ)—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर द्विवेदी, प्रकाशक, 'बुन्देल-वैभव', टीकमगढ़ हैं। पृष्ठ-संख्या २६५ और मूल्य ३) है।

इस ग्रन्थ में बुन्देलखण्ड के हिन्दी के ४० कवियों का संक्षिप्त परिचय तथा उदाहरण के रूप में उनके पद्यों का संकलन किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भिक ११२ पृष्ठों में प्राक्कथन, भूमिका, हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय, आदि का वर्णन हुआ है। जिसका अधिकांश ऐसे ग्रन्थ के अनुरूप नहीं है।

कवियों की जाति, उत्पत्तिस्थान आदि विषयों में मत-भेद होना स्वाभाविक है, किन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि लेखक ने इस पुस्तक को लिख कर एक प्रशंनीय और अनुकरणीय कार्य किया है। हिन्दी-साहित्य के कितने सुकवियों तथा ग्रन्थकारों की कृतियाँ और नाम केवल हमारी निन्दनीय अकर्मण्यता और साहित्यिक उपेक्षा से विलुप्त हुए जा रहे हैं, तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के ग्रन्थों की खोज तथा उसके आचार-विचार, एवं इतिहास पर प्रकाश डालनेवाले ग्राम्य-गीत, कहावत आदि अलिखित जन-साहित्य के संग्रह का कितना काम अभी तक अधूरा और उपेक्षित पड़ा है। हमें आशा है कि श्रीयुत द्विवेदी जी की भाँति अन्य साहित्यिक अपने अपने क्षेत्र में साहित्यिक खोज और संग्रह की स्फूर्ति इस पुस्तक से प्राप्त करेंगे।

पुस्तक सुन्दर काग़ज़ और आकार में छापी गई है। आशा है, 'बुन्देल-वैभव' के अन्य भाग भी शीघ्र शीघ्र प्रकाशित होंगे।

९—**प्रेम-दर्शन**— संपादक, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १७९ और मूल्य ।-) है।

परम भागवत देवर्षि नारद-कृत भक्ति-सूत्र आध्यात्मिक-साहित्य की विशेष विभूति हैं। उन्हीं सूत्रों की श्रीयुत पोद्दार जी ने हिन्दी में सरल तथा सुबोध हिन्दी-व्याख्या लिखी है। सूत्रों के भावों को विशद और स्पष्ट रूप से हृदयंगम कराने के लिए लेखक ने श्रीमद्भागवत, रामायण, सूरसागर तथा उपनिषद् के विषयोपयोगी उद्धरण देकर ग्रन्थ को और भी उपयोगी बना दिया है। पुस्तक ३ सुन्दर चित्रों से शोभित, शुद्ध और स्वच्छ छापी गई है। आध्यात्मिक साहित्य के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक मनन करने योग्य है।

१०—दि स्टोरी आफ़ नोबुल प्राइज़ विनर्स इन लिटरेचर (अँगरेज़ी)—लेखक, श्रीयुत ए० के० सेन, प्रकाशक, ईस्टर्न पब्लिशर्स, इलाहाबाद हैं। मूल्य २॥) है।

इसमें विश्व-साहित्य के 'नोवेल-प्राइज़' प्राप्त साहित्यिक महारथियों का संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त तथा उनकी पुस्तकों की तालिका दी गई है। इस पुस्तक को लेखक ने 'कलकत्ता रिव्यू,' 'पायोनियर' आदि अनेक पत्रिकाओं, विश्वकोश, तथा अन्य साधनों की सहायता से लिखा है।

पुस्तक के प्रारम्भ में 'नोवेल-प्राइज़' के प्रतिष्ठाता श्री अल्फ्रेड नोवेल का जीवन-वृत्तान्त, पुरस्कार के देने के समय की विधि, नोवेल-प्राइज़ के लिए प्रार्थना-पत्र देने के नियम आदि साधारणतया अनेक ज्ञातव्य बातों के समावेश होने के कारण इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। प्रत्येक पुरस्कार-प्राप्त लेखक को जिन गुणों से पुरस्कार दिया गया है उनका पता उन निर्णयों के द्वारा जो इस पुस्तक में ज्यों-के-त्यों उद्धृत कर दिये हैं, स्पष्ट रूप से लग जाता है। विश्व-साहित्य के इन महारथियों तथा इनकी कृतियों का परिचय प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। लेखक ने पुस्तक के उद्धरणों तथा अपनी मनोरंजक शैली-द्वारा ज्ञातव्य विषयों को सुचारु क्रम में सजाने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

११—धर्म और जातीयता—लेखक, श्रीयुत योगिराज अरविन्द घोष, अनुवादक श्री देवनारायण द्विवेदी हैं। पता—हिन्दी पुस्तकालय, बनारस सीटी है। मूल्य १) है।

महामनीषी श्री अरविन्द के विचार-पूर्ण प्रौढ़ निबन्धों का हिन्दी-अनुवाद करके लेखक ने हिन्दी-भाषाभाषियों के लिए उन्हें इस पुतक के रूप में सुलभ कर दिया है। गीता, उपनिषद्, पुराण, साकार-निराकार, हमारी आशा, प्राच्य और पाश्चात्य, तथा भारतीय चित्रविद्या नामक निबन्धों की ओर हम हिन्दी-पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। धर्म और जातीयता पर इतने प्रौढ़ और विचारोत्तेजक निबन्धों को पढ़कर अपने देश की सभ्यता, कला तथा संस्कृति के प्रति आपके हृदय में आदर तथा श्रद्धा के भाव उत्पन्न होंगे। अनुवादक महोदय अनुवाद-कार्य में पर्याप्त सफल हुए हैं। जहाँ किन्हीं पदों का उपयुक्त भाषान्तर नहीं हो पाया है, वहाँ ज्यों के त्यों अँगरेज़ी पदों को रखकर उचित ही किया है। मूल भावों की इससे रक्षा ही हुई है। प्रत्येक भारतीय को, विशेषकर नवयुवकों को इन निबन्धों का मनन करना चाहिए। पुस्तक उपयोगी तथा प्रचुर प्रचार के योग्य है।

१२—वेदान्त वा आत्म-विचार—लेखक, राजा बलदेवदास बिरला, प्रकाशक, ज्ञानमण्डल-यंत्रालय, काशी हैं।

इस पुस्तक के प्रणेता राजा साहब ने व्यासकृत वेदान्त सूत्रों पर प्रचलित भाष्यकारों के मार्ग का अनुसरण न करके उनका स्वतंत्र रूप से जो मनन और स्वाध्याय किया है उसी का परिणाम यह ग्रन्थ है। सूत्रों के 'शास्त्र,' 'वेद' आदि शब्दों के प्रसिद्ध अर्थों को छोड़कर व्युत्पत्ति-निमित्तक अर्थों-द्वारा उन पदों को अपने विचारानुकूल बना लिया है। 'शास्त्र' का अर्थ 'श्रुति' या ऋग्वेदादि न करके 'शास्यते ज्ञायते एभिः' इस व्युत्पत्ति के द्वारा मन-सहित पाँच इन्द्रियों को 'शास्त्र' माना है। 'वेद' का अर्थ भी वह ज्ञान किया गया है जो अनुभव से अपने हृदय में उत्पन्न होता है। श्री शंकराचार्य ने उपनिषदों में आये हुए 'प्राण,' 'आकाश' आदि पदों को ब्रह्मपरक सिद्ध करने के लिए भी सूत्रों का व्याख्यान किया है। परन्तु श्रीयुत बिरला जी ने सूत्रों के अपनी स्वतंत्र उद्भावना से जो अर्थ किये हैं उनसे प्रतिपाद्य वस्तु की पुनरुक्ति हो जाती है। यद्यपि वेदान्त के सिद्धान्त से लेखक के विचारों का समन्वय किया जा सकता है, तथापि वेदान्त-सूत्रों के

स्वारस्य और पूर्ववर्त्ती भाष्यकारों की प्रणाली की रक्षा के स्थान पर लेखक के अर्थों में खींचातानी की झलक दीख पड़ती है।

सूत्रों पर स्वतंत्र बुद्धि से विचार करके लेखक ने अपनी मौलिकता और साहस का परिचय दिया है। प्रथम चार सूत्रों पर जिस प्रकार सूत्रों को रखकर उन पर स्वतंत्र व्याख्या की गई है, यदि वैसी ही सम्पूर्ण सूत्रों पर की जाती तो अधिक उत्तम होता। किन्तु ऐसा न करके लेखक ने अन्य अधिकरणों पर अपने विचार प्रकट किये हैं, प्रत्येक सूत्र की व्याख्या नहीं की है। इससे पूर्ववर्ती सूत्र से परवर्ती सूत्र का क्या सम्बन्ध है, तथा परवर्ती सूत्रों की क्या आवश्यकता है, आदि ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश नहीं पड़ता।

लेखक की भाषा सरल और शैली प्रसाद-गुण-पूर्ण है। वेदान्त-सिद्धान्त की अनेक बातों का तथा लेखक के स्वतंत्र चिन्तन से उत्पन्न अनेक मनन-योग्य गवेषणाओं का आनन्द शास्त्र-रसिक लोग इससे उठावेंगे। पुस्तक के अन्त में मूल वेदान्त-सूत्र तथा प्रातः एवं सायंकाल के मंत्रों के दे देने से ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ गई है।

१३—सोम-सरोवर—लेखक, श्रीयुत चमूपति एम० ए०, प्रकाशक, हिन्दी-भवन-प्रेस, लाहौर हैं। मूल्य १।) है।

कांगड़ी के गुरुकुल-विश्वविद्यालय ने कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुण्य-स्मृति के लिए 'श्रद्धानन्द-स्मारक-निधि' की स्थापना की है। प्रतिवर्ष दस या अधिक रुपये देकर कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य बन सकता है। इन सदस्यों को 'स्वाध्याय-मंजरी' नामक ग्रन्थमाला के ग्रन्थ बिना मूल्य भेंट किये जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उक्त ग्रन्थमाला का छठा फूल है।

सामवेद के तृतीय 'पवमान-पर्व' का देवता पवमान सोम है। इसी पर्व का गंभीर मनन और विशद परिशीलन करके लेखक ने इस ग्रन्थ की रचना की है। सोम एक वनस्पति है। सोम का रस ऋषि लोग यज्ञों में पीते थे। किन्तु वेदों में, विशेष करके सामवेद के इस पर्व में लेखक ने 'सोम' पद से जो अर्थ लिया है वह एक वनस्पति के रस से सर्वथा भिन्न है।

वेद-मंत्रों में प्रयुक्त विभिन्न विशेषणों का 'सोम' पद से समन्वय करने पर लेखक का अर्थ न केवल उचित तथा स्वाभाविक ही प्रतीत होता है, अपितु इससे 'वेद' की उस अलौकिक वर्णनशैली, उसके उन विचित्र विशेषणों और अलंकारों के प्रयोग-द्वारा एक दुर्लभ ज्ञान को प्रकट करने की सर्वतोमुखी शक्ति का तथा उसके उस सौन्दर्य का भी आभास मिलता है जिनके कारण 'वेदों' का इतना गौरव और भारतीय तत्त्ववेत्ताओं में इतनी महिमा है। अभी हाल में मार्च के 'कलकत्ता रिव्यू' में महामनीषी श्रीयुत अरविन्द घोष ने अपने 'भारतीय साहित्य का महत्त्व' नामक निबन्ध में वेद-मंत्रों के पदों और अलंकारों को ज्यों का त्यों रखकर जिस प्रकार की वेदार्थ करने की प्रणाली पर ज़ोर दिया है उसका व्यावहारिक बहुत कुछ स्वरूप हमें इस पुस्तक में मिला है।

लेखक ने प्रमाणित किया है कि पर्यालोच्य मंत्रों में 'सोम' का अर्थ वह 'रस' या वह 'दशा' है जो सब द्वेषों को नाश करनेवाली, महान् बन्धुत्व की प्रेरणा करनेवाली तथा अपनी पवित्रता से हिंसाओं तथा कृपणताओं को दूर करनेवाली है। ऋतम्भरा प्रज्ञा-प्राप्त ब्रह्मनिष्ठ योगी को भी 'सोम' कहा गया है। पुस्तक में अद्भुत, वीर और शान्त तरंगों में मन में चुभनेवाले शीर्षकों को रख कर लेखक ने अपने काव्यमय हृदय से वेद के कवित्व पर अच्छा प्रकाश डाला है।

प्रत्येक वेद-रसिक पुरुष को इस पुस्तक के पढ़ने से एक आनन्दमय स्फूर्त्ति का अनुभव होगा। वेद-विद्या के केन्द्र गुरुकुल विश्वविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता की यह पुस्तक सर्वथा उनके गौरव के अनुरूप हुई है। जनता में तथा वेद-रसिक विद्वानों में हम इसका प्रचुर प्रचार चाहते हैं।

१४-१५—अजिताश्रम, आरा की दो पुस्तकें—

(१) **देवेन्द्र-चरित**—लेखक, श्रीयुत अजितप्रसाद एम० ए०, एल-एल० बी० हैं। मूल्य ।।=) है।

इस पुस्तक में स्वर्गीय श्रीयुत कुमार देवेन्द्रप्रसाद जी जैन की संक्षिप्त जीवनी है। इसके पढ़ने से श्रीयुत देवेन्द्र जी की उच्च मनस्विता और उनकी कार्यशीलता तथा अटूट लगन का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है।

देवेन्द्र जी के व्यक्तित्व के संस्पर्श में आकर ही अनेक अजैन विद्वानों का ध्यान जैन-धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। पुस्तक प्रकाशन, जैन-धर्म की शिक्षा और प्रचार के लिए श्री जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा, की स्थापना तथा वंगीय सार्वधर्म-परिषद् के शानदार आयोजन आदि अनेक कार्यों-द्वारा श्री देवेन्द्र की अपूर्व शक्तियों का आभास मिलता है। इस पुस्तक के पाठ से जैन-अजैन सभी नवयुवक श्री देवेन्द्र जी की समाज-सेवा और धर्म-सेवा के भावों से अनुप्राणित होकर कार्यशील बन सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल, सुन्दर और उत्साहजनक है।

(२) **अजिताश्रम पाठावली** (भाग १)—प्रकाशक श्रीयुत अभिनन्दनप्रसाद जिन्दल हैं। मूल्य ।=) है।

इस पुस्तक में जैन-चैत्यों में पूजन के समय काम आनेवाले स्तोत्रों तथा पूजा-विधि के मंत्रों वा श्लोकों का संग्रह है। अन्त में हिन्दी के स्तोत्र तथा जैनोपयोगी भक्ति-पूर्ण पद भी संग्रहीत हैं। पुस्तक शुद्ध और सुन्दर छपी है और जैन-धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी है।

१६—**जैन तत्त्व-कलिका-विकास**—लेखक, श्री जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम जी, प्रकाशक, श्री मेहरचन्द लक्ष्मणदास अध्यक्ष, संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या ३०८ और मूल्य २) है।

प्रस्तुत ग्रन्थ नौ कलिकाओं में विभक्त है इसमें जैन-धर्म तथा उसके सिद्धान्तों का विशद वर्णन किया गया है। इससे ग्रन्थकर्त्ता के गम्भीर मनन तथा जैन-धर्म के आकर ग्रन्थों पर उनके विस्तृत अधिकार का पूरा पता लग जाता है। इसके पाठ से जैन तथा अजैन सभी थोड़े ही प्रयत्न से जैन-सिद्धान्तों तथा जैनमन्तव्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। तीर्थंकर, गुरु, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि का स्वरूप, ग्रामधर्म, राष्ट्रधर्म, पाखण्डधर्म, कुलधर्म आदि की विशद व्याख्या तथा गृहस्थ-धर्म, लोकनिरूपण, और मोक्ष का स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपायों का सुन्दर विवेचन इस पुस्तक में ग्रन्थकर्त्ता ने किया है। स्थान स्थान पर जैन-ग्रन्थों के मूल उद्धरण देकर विषय को प्रामाणिक कोटि का बना दिया है। मोक्ष-विषयक अष्टमी कलिका में 'ध्यान' का विवेचन योग-मार्ग से सम्बन्ध रखता है।

इस पुस्तक में कई एक विषय विशेष मनोरंजक हैं। उदाहरण के रूप में—कुलवधुओं की रक्षा के ये चार उपाय बतलाये गये हैं—(१) गृहकर्म विनियोग, (२) परिमितोऽर्थसंयोग, (३) अस्वातन्त्र्यम्, (४) तथा सदा च मातृतुल्य स्त्रीलोकेन (घर की बड़ी बूढ़ी मान्य स्त्रियों से) अविरोधन। इसी प्रकार अन्य बहुमूल्य बातें ग्रन्थ में हैं। पुस्तक की भाषा सुबोध तथा सुन्दर है और गेट अप भी उत्तम है। जैनधर्म से अनुराग रखनेवाले तथा जैनधर्म के जिज्ञासु महानुभावों को इस ग्रन्थ का संग्रह करना चाहिए।

१७—**कर्त्तव्य-शिक्षण**—लेखक तथा प्रकाशक,—पंडित विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज, अनुभत-योगमाला आफ़िस, बरालोकपुर, इटावा हैं। मूल्य ॥।) है।

लेखक ने इस पुस्तक में प्राचीन स्मृति-ग्रन्थों के आधार पर राजा-प्रजा के कर्त्तव्य, विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए विभिन्न दण्ड, राजकार्योपयोगी नाना विभागों का संगठन तथा उनके अधिकारियों के कर्त्तव्य, बालशिक्षण, स्वामी-सेवक-कर्त्तव्य, आचार और आश्रम-धर्म तथा खाद्या-खाद्य का वर्णन किया है। इस पुस्तक के पढ़ने से संस्कृत से अनभिज्ञ हिन्दी-भाषाभाषी सज्जन स्मृतियों के विभिन्न कालीन मन्तव्यों और तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक, अवस्था को बहुत कुछ जान सकते हैं।

पुस्तक में कहीं कहीं उद्धरणों के नीचे ग्रन्थों का नाम नहीं दिया गया है। इससे किस स्मृति का यह मत है, यह नहीं ज्ञात होता। पृष्ठ १०४ पर इसी प्रकार एक श्लोक का उद्धरण देकर ३० वर्ष के पुरुष को १२ वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष के पुरुष को आठ वर्ष की कन्या से विवाह करने के विधान की पुष्टि की गई है। वैद्यराज जी को उचित था कि इस प्रकार के वचनों की जैसे—

"पञ्चविंशे ततो वर्षे, पुमान् नारी तु षोडशे" आदि वैद्यक शास्त्रसंमत वचनों की स्वतंत्र तथा युक्तिसंगत विवेचना करते। आठ वर्ष और बारह वर्ष की कन्याओं का क्रमशः २४ वर्ष के पुरुषों अथवा ३० वर्ष के पुरुषों से सम्बन्ध केवल स्मृति की दो पंक्तियों के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसी प्रकार दण्डविधान के विषय में भी अनेक बातें विवादग्रस्त हैं।

पुस्तक की छपाई साधारण है। स्मृति के विभिन्न मतों को हिन्दी में पढ़ने की इच्छा रखनेवाले पाठकों के लिए पुस्तक उपयोगी हो सकती है।

१८—कृष्णाकुमारी (कविता)—लेखक, श्रीयुत अम्बिकादत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, साहित्य-सागर-कार्यालय, सुइथाकलाँ, जौनपुर हैं। मूल्य ।।) है।

इस पुस्तक में लेखक ने उदयपुर के महाराना भीमसिंह की पुत्री श्री कृष्णाकुमारी के आत्मोत्सर्ग का पद्यों में वर्णन किया है। कविता साधारण है, पर घटना के मर्मस्पर्शिनी होने के कारण पुस्तक पढ़ने में मन लगता है। कन्याओं के प्रति समाज की उपेक्षा और अन्याय की ओर लेखक ने संकेत करके समाज के उद्बोधन की चेष्टा की है।

१९—राष्ट्रालोकः (संस्कृत)—लेखक, श्री मदमृतवाग्भवाचार्य, प्रकाशक, पंडित हरिभानुदत्त शास्त्री, अध्यक्ष, मातृभाषाप्रचारक ग्रन्थमाला विद्यालय, खूँकौड़ियाँ, अमृतसर हैं। मूल्य ≡) है।

संस्कृत के अनुष्टुप् छन्दों में लिखा यह छोटा-सा ग्रन्थ अपने ढंग का अनूठा है। राष्ट्र का लक्षण, कैसा राष्ट्र सुखी तथा कैसा दुःखी होता है, राष्ट्रसेवकों को क्या करना चाहिए एवं राष्ट्र की उन्नति और स्वाधीनता की भावना को उत्पन्न करनेवाले विषयों का इसमें समावेश हुआ है। इसमें राष्ट्र का लक्षण यह किया गया है कि 'समान संस्कृतिवाले निवासियों की पितृभूमि का नाम राष्ट्र है।' राष्ट्र की शिक्षा, शासन तथा अन्य तत्सम्बन्धी अनेक बातों पर विचारपूर्वक इस पुस्तक में आलोचना की गई है। संस्कृतज्ञ विद्वानों को इसका मनन करना चाहिए। देशभक्ति और राष्ट्र-दृष्टि से इस ग्रन्थ का प्रचार होना चाहिए। पुस्तक सुन्दर और उपादेय है।

२०—सन्ध्या-सुधासार—प्रकाशक, श्रीयुत कुँवर राधाकृष्ण तोषनीवाल, हिन्दी-उपासनामन्दिर, अजमेर हैं। मूल्य =) है।

इसमें आर्यसामाजिक सन्ध्या के मन्त्रों का सरल हिन्दी में अर्थ, प्रार्थना के भजन तथा प्रारम्भ में सन्ध्या की उपयोगिता के विषय में छोटा-सा प्राक्कथन दिया गया है। प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य कम होना चाहिए था। ट्रैक्ट के रूप में बाँटने के लिए पुस्तक अच्छी है।

२१—उद्योत—प्रकाशक, श्रीयुत रघुनाथ गणेश नावलेकर, बी० ए०, रिटायर्ड हेड मास्टर, हाईस्कूल, सागर (सी० पी०) हैं। मूल्य =) है।

इसकी रचना सनातनधर्म की रक्षा तथा अछूतोद्धार की वर्तमान कार्यप्रणाली तथा उसके प्रतिष्ठाता तथा कार्यकर्ताओं का विरोध करने के लिए हुई है। लेखक की भाषा बड़ी अस्तव्यस्त तथा वाक्य-रचना बेढंगी है। विरामचिह्नों का उपयोग भी यथा-स्थल नहीं किया गया है। अछूतोद्धार के नेता महात्मा गान्धी तथा उनके अनुयायी कटुशब्दों में कोसे गये हैं। संस्कृत के जो उद्धरण दिये गये हैं वे भी अशुद्ध छपे हैं। अपने वर्तमान रूप में तो पुस्तक सर्वथा रद्दी है। इसका पता निम्न उद्धरण से लग जायगा।

"यह सारा प्रपंच ईश्वर का विराट् स्वरूप है ऐसा हमारी श्रेष्ठतम् माता जो श्रुति इसका उपदेश सिरसामान्य करके हे मित्रगणो! नमनपूर्वक विचार स्वरूपी उपहार आपके आगे हम रखते हैं उसका सप्रेम व सकौतुक स्वीकार करें"......आदि।

२२—सभा का खेल (पद्य)—लेखिका, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान हैं। मूल्य ।) है। पता—उद्योगमन्दिर, जबलपुर।

यह पुस्तक बाल-विनोद-माला का प्रथम पुष्प है। प्रकाशक महोदय ने लब्धप्रतिष्ठ कवियित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान-द्वारा लिखित 'पतंग', 'सभा का खेल', 'अजय की पाठशाला', आदि शीर्षकों में बालोपयोगी सुन्दर कवितायें इस पुस्तक में रक्खी हैं। निःसन्देह पुस्तक बालकों के मनोविनोद का एक अच्छा साधन है। पुस्तक में 'बाँसुरीवाला' नामक कविता का १६ वाँ पद्य हमें कुछ खटक रहा है। पद्य इस प्रकार है—

काम बिगड़ता देख कृष्ण ने
गीता उन्हें सुनाई थी।
यों भाई के हाथों भाई
की हत्या सिखलाई थी॥

इस पद्य को पढ़कर कोमलमति बालकों के हृदय में धर्म-संस्थापक कृष्ण की कैसी मूर्ति उदय होगी, सहृदय पाठक ज़रा इस पर विचार करें। कम-से-कम हमें तो इस पद्य का ध्वनिगम्य अर्थ अच्छा नहीं लगा। हाँ, लेखिका यदि कृष्ण को धर्म-संस्थापक न मानती हों और उनके द्वारा कराये गये धर्मयज्ञरूपी 'युद्ध' को केवल 'स्वार्थ' के लिए कराया गया 'हत्या-काण्ड' समझती हों तो दूसरी बात है। केवल इस स्थल को छोड़ कर बाक़ी सम्पूर्ण पुस्तक सुन्दर, सरस और बालकों का मनोरञ्जन करनेवाली है।

२३—**पद्य-पुष्प**—लेखक, श्रीयुत कुमार उदयरत्न-सिंह प्रकाशक, बाबू रामानुग्रह नारायणसिंह, मीरगञ्ज, गया हैं। मूल्य =) है।

"प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे नवयुवक की रचनाओं का संग्रह है जो अवस्था में 'बच्चा' भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। लेखक में प्रतिभा है, आवश्यकता है उसके संस्कृत होकर पनपने की।" भूमिका में लिखित 'वियोगी' जी के उपर्युक्त शब्दों से हम पूर्णतया सहमत हैं। कवि की आयु की ओर जो संकेत ऊपर किया गया है उसे दृष्टि में रखकर हम निःसंकोच कह सकते हैं कि कविताओं में हमें एक प्रतिभा-सम्पन्न उदीयमान कवि के दर्शन होते हैं। कवि-कर्म में 'निपुणता' और काव्यज्ञों के शिक्षानुसार 'अभ्यास' की उतनी ही आवश्यकता है जितनी प्रतिभा की। हमें विश्वास है कि कवि महोदय निकटभविष्य में निर्दोष तथा सरस काव्य-कुसुमों से मातृ-भाषा का पूजन करेंगे। तब तक सहृदय पाठक इस 'पद्य-पुष्प' का उचित आदर कर कवि को उत्साहित करेंगे।

—कैलाशचन्द्र, एम० ए०

२४—**भारत के स्त्री-रत्न (तीसरा भाग)**—लेखक, श्री मुकुटबिहारी वर्मा, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या ३१८ और मूल्य १।) है।

वर्मा जी ने इस पुस्तक में जैन-बौद्धकालीन आदर्श महिलाओं की क्रमशः ११ और २१ कहानियों का संग्रह किया है। इनके पढ़ने से स्त्रियों में अपने चरित्रगठन की पूर्णता आसानी से आ सकती है। वे अपना आचरण सुधार कर आदर्श-पद प्राप्त कर सकती हैं, किन्तु कहानियों का सम्बन्ध धार्मिक होने के कारण उन्हें जैन-धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रियाँ पूर्ण रीति से अपना सकती हैं, अन्य धर्मावलम्बी नहीं। दूसरी बात जो खटकनेवाली है वह यह कि पाठक को चार-पाँच कहानियों के पढ़ने के बाद यह मालूम होने लगता है कि सभी कहानियाँ कपोलकल्पित हैं, और वे केवल धर्म-प्रचारार्थ ही संग्रहीत की गई हैं। भाषा सरल है।

२५—**सफल जीवन**—लेखक, श्री छबिनाथ पाण्डेय, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, विद्या-मन्दिर, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या २५६ और मूल्य १॥) है।

पाण्डेय जी ने इस पुस्तक को सुन्दर गद्य में नवयुवकों के लिए लिखा है, उनकी सुविधा के लिए इसके १७ परिच्छेद करके एक एक बात को ऐसे ढङ्ग से उपमाओं के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है कि कोई भी युवक केवल एक बार के पढ़ने से सब बातें भली भाँति समझ सकता है और भविष्य की कठिनाई से अपने को बचा सकता है। नवयुवकों को कार्य-क्षेत्र में आने के आरम्भ से लेकर अन्त तक जिन बुराइयों से बचते रहने पर उन्हें सफलता मिलती है उनका इस पुस्तक में पूर्ण विवेचन किया गया है। पुस्तक का मुख्य उद्देश है कि नवयुवक अपने जीवन को तभी सफल कर सकते हैं जब उनको अपनी रुचि के अनुकूल कार्य करने को मिल जाय और उनके दिल में जो कल्पनायें उठें उनके सफल बनाने का वे सतत प्रयत्न करते रहें; कभी निरुत्साह न हों। तभी वे सफलता प्राप्त कर सकते हैं। युवकों को अपने सहारे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए, साधन उनको स्वयं मिल जायगा। जो दूसरों के भरोसे बैठे रहकर उन्नति की आशा करते हैं वे कभी भी अपने कार्य में सफलता नहीं पाते। पुस्तक की भाषा साहित्यिक होने पर भी सरल और सुबोध है। नवयुवकों की उलझन इसके पढ़ने से कम हो सकती है, इससे यह उनके बड़े काम की है।

२६—**घर की राह**—लेखक, श्री इन्द्र बसावड़ा, बी० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या २३० और मूल्य १।) है।

यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें एक हरिजन अनाथ बालक और बालिका के जीवन का वर्णन किया गया है। लेखक ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि "किसी भी मनुष्य से कोई भी धर्म ज़बर्दस्ती नहीं स्वीकार कराया जा सकता। हाँ, यदि वह स्वयं किसी धर्म को मानना चाहे तो बात अलग है। मनुष्य चाहे जितना भी सुख की दशा में रहे उसे अपने बचपन के साथी और अपनी मातृ-भूमि कभी नहीं भूल सकती। प्रत्येक मनुष्य को अपनी रुचि के अनुसार कार्य तलाशना चाहिए, इसी में उसकी सफलता का महत्त्व है"। इन्हीं बातों पर इसमें विशेष ज़ोर दिया गया है। इसकी कथा का सारांश यह है—

ढूंढ़ा उर्फ़ मुन्नू हरिजन बालक है। उसकी जाति-पाँति का पता नहीं है। फिर भी लोग उसे अछूत समझते हैं। वह गाँव के अस्पताल के पास लेटा मिलता है। वहाँ पर लड़कों की एक टोली खेलने जाती है और मुन्नू को मारती है। मुन्नू रोते रोते भागता है। उसके रोने की आवाज़ डाक्टर साहब सुनते हैं और लड़कों को कुछ सज़ा देकर वे अपनी पत्नी की इच्छा न रहने पर भी मुन्नू को अपने घर में रख लेते हैं। मुन्नू उनके बच्चों के साथ हिल-मिल जाता है। उसकी पढ़ाई का भी प्रबन्ध होता है, किन्तु उसका जी पढ़ने में नहीं लगता है। डाक्टर की लड़की और मुन्नू में विशेष प्रेम हो जाता है, जिसका शायद बुरा परिणाम सोचकर उसके मा-बाप का मुन्नू के प्रति खिंचाव हो जाता है। अन्त में इसी का बढ़ाव होने से मुन्नू को अधिक ग्लानि होती है और वह वहाँ से निकल भागता है। अब उसकी अवस्था काफ़ी बड़ी हो गई थी। रास्ते में उसे धर्माचारियों के ढोंग के भी नमूने देखने को मिलते हैं। वह भूख के मारे एक काछी के यहाँ केवल पेट पर काम करना चाहता है, पर उसे अपने को हरिजन बता देने पर वहाँ से निकलना पड़ता है। घूमते घूमते वह एक स्टेशन पर जाकर गाड़ी में बैठ जाता है, पर वहाँ से भी उसे टिकटचेकर धक्के देकर निकाल देता है। यही स्टेशन उसकी संगिनी मुन्नी का मिलना स्थल है। रात भर दोनों एक साथ निर्जन वन में फटे बिस्तर पर शयन करते हैं। सुबह मुन्नू से पहले उठकर मुन्नी भिक्षा के लिए जाती है, किन्तु अचानक मोटर से उसे सख़्त चोट लगती है और ईसाई-अस्पताल में लाई जाती है। मुन्नू सोकर उठने पर मुन्नी की जुदाई और भूख से बीमार पड़ जाता है और एक गंदी गली से उठाकर वह भी उसी अस्पताल में लाया जाता है। यहाँ स्वस्थ होने पर उसकी पढ़ाई आदि का उचित प्रबन्ध होता है और वह थोड़े ही दिन में उत्तम चित्रकार हो जाता है। मुन्नी का यहाँ उससे परिचय होता है। यहाँ पर दोनों के नाम आदि ईसाई ढङ्ग पर रहते हैं। किन्तु जब यहाँ के अधिष्ठाता इनको ईसाई बनाने का निश्चय करते हैं तब ये दोनों अलग-अलग वहाँ से भाग जाते हैं। मुन्नू अपनी पढ़ाई एक बड़े आर्ट-कालेज के प्रिंसिपल से मिलकर किसी तरह अपनी मेहनत से चलाना चाहता है, किन्तु कठिनता पड़ने पर उसे हरिजनों की मीटिंग में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। यहाँ मंत्री महोदय की विशेष कृपा से उसे पढ़ने में काफ़ी सहायता मिलती है। थोड़े समय में वह ऐसा सुन्दर चित्र बनाता है कि उसे २,०००) इनाम मिलते हैं। एक दिन मंत्री महोदय के साथ हरिजन-आश्रम में जाने पर उसकी मुन्नी से मुलाकात हो जाती है और कुछ समय तक दोनों साथ रहकर फिर अपनी जन्म-भूमि में आते हैं। सभी प्राचीन स्थलों का स्मरण उन्हें आने लगता है। बड़ी खोज के बाद वे बालपन के अपने पुराने साथियों को पाते हैं और उनसे मिलकर असीम आनन्द का अनुभव करते हैं। घर की राह की यही कथा है।

पुस्तक की सारी बातें समयानुकूल हैं, किन्तु इसमें खटकनेवाली बात केवल इतनी है कि जिन डाक्टर और सभा के मंत्री ने एक हरिजन बालक के प्रोत्साहन का काफ़ी ध्यान रक्खा उनके चरित्र को भी लेखक ने कलुषित साबित करने का प्रयत्न किया है! यदि उसे विशुद्ध रहने दिया जाता तो पुस्तक की उपयोगिता घटती नहीं, वरन बढ़ती। भाषा सरल और वर्णन रोचक है।

२७-२८—चाँद प्रेस, इलाहाबाद, की दो पुस्तकें।

(१) साहित्य का सपूत—लेखक, श्री जी० पी०

श्रीवास्तव, बी० ए० एल-एल० बी०, प्रकाशक, चाँद-प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या १६८ और मूल्य १॥) है।

श्रीवास्तव जी हास्य-रस के प्रसिद्ध नाटककार हैं। उनका यह नाटक तीन अंकों में विभक्त है। इसके मुख्य पात्र साहित्यानन्द जी, उनकी स्त्री सरला और लड़की चपला है। प्रतिद्वन्द्वी पात्रों में संसारीनाथ, यदुनाथ और रमाकान्त मुख्य हैं। संसारीनाथ और चपला का गुप्त प्रेम है और वे आपस में शादी भी करना चाहते हैं, किन्तु साहित्यानन्द को संसारीनाथ से घृणा है, इसलिए यह कार्य अधिक कठिन जान पड़ता है। यदुनाथ और रमाकान्त संसारीनाथ की सहायता करते हैं। साहित्यानन्द जी को साहित्य से प्रेम तो नहीं है, पर वे सम्पादक बनने के लिए कठिन से कठिन शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए पत्र भी निकालते हैं, जिसमें स्त्री के साथ सहानुभूति दिखलाने का विज्ञापन देते हैं। संसारीनाथ अपना नाम बदलकर एक स्त्री के नाम से उस पत्र में अपना लेख छपवाता है। इस पर सम्पादक जी उसकी तरफ़ विशेष आकर्षित होकर पत्र लिखते हैं। अपने मित्रों की सलाह से वह सम्पादक जी को भेंट करने के लिए चिट्ठी लिखता है कि हरे रङ्ग का टीका लगाकर अमुक बाग़ में आओ। ठीक समय पर वे जाते हैं। तब संसारीनाथ भी वही टीका लगाकर वहाँ जाकर टहलता है और उसे उसके मित्र और स्त्री के पिता आकर आदर के साथ लिवा जाते हैं और मशहूर कर देते हैं कि संसारीनाथ सम्पादक है। उसके साथ उस स्त्री की शादी होने की तैयारी होती। इससे साहित्यानन्द को और भी जलन होती है। सरला को यह मालूम हो जाता है कि चपला और संसारीनाथ में प्रेम है और वह अपने पति से संसारीनाथ के साथ उसकी शादी करने को कहती है। वे इसलिए शादी करने को तैयार हो जाते हैं कि संसारीनाथ की शादी हो जाने पर उनकी शादी बिना किसी अड़चन के उस स्त्री के साथ हो जायगी। अतः चपला और संसारीनाथ की शादी हो जाती है। साहित्यानन्द की भी गुप्त रूप से शादी उनके इच्छानुसार स्त्री को देखकर होने की तैयारी होती है। वे अपने अपने नौकर को बनावटी स्त्री के रूप में देख बड़े प्रसन्न होते हैं, पर उनकी परीक्षा में वह बनावटी स्त्री अपनी दासी से उनके मुख में कारिख पुतवाती है और उनकी स्त्री के आने पर सारा भेद खुल जाता है। सब इस तरह साहित्यानन्द जी की हँसी उड़ाते हैं।

इस नाटक में आदि से अन्त तक हास्य-रस भरा पड़ा है। भाषा भी बड़ी मनोरंजक है। स्टेज पर खेलने में इससे दर्शकों को और भी मनोविनोद हो सकता है। यह एक सुन्दर रचना है। इसके अंक लगभग बराबर ही हैं, जिससे पाठकों को कुछ अरुचि पैदा हो सकती है। यदि अंकों की संख्या बढ़ाकर अधिक कर दी जाती तो अधिक उपयुक्त होता।

(२) **देवी जोन**—लेखक, श्री धनीराम जी प्रेम हैं। पृष्ठ-संख्या १७० और मूल्य १॥) है।

प्राचीन काल में अँगरेज़ों ने फ्रांस को पराजित कर उसके अधिकांश भूभाग पर अधिकार कर लिया था। उस समय एक देहाती बालिका ने आकर राष्ट्र की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था और युद्ध में अँगरेज़ों को हराकर अपने पराभूत राष्ट्र में नवजीवन का संचार किया था। इस पुस्तक में उसी देवी जोन का चरित वर्णित है और अन्त में उपसंहार की रचना करके लेखक ने उसके सम्बन्ध की सारी बातें और भी स्पष्ट कर दी हैं।

इस पुस्तक से देश-प्रेम की शिक्षा मिलती है और परस्पर झगड़े का जो परिणाम होता है उसका भी पूरा परिचय मिल जाता है। भाषा सरल तथा मुहावरेदार है।

२९—**सुहाग की डिबिया**—लेखक, श्री तारादत्त उप्रेती, प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या १८६ और मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में उप्रेती जी की लिखी नौ कहानियों का संग्रह है। पहली कहानी का नाम 'सुहाग की डिबिया' होने के कारण ही शायद इस पुस्तक का यह नाम रक्खा गया है। तीन कहानियाँ सचित्र और छः सादी हैं। कहानियों का विषय सामाजिक है। सभी कहानियों में सुशिक्षित युवती पात्रियाँ होने के कारण इनमें और भी उत्तमता आ गई है। इस पुस्तक की सभी कहानियों में वस्तु-वैचित्र्य

नहीं है, किसी किसी कहानी के उद्देश का अनुमान पाठक को आरम्भ से ही लग जाता है। तो भी कुछ कहानियाँ उत्तम कही जा सकती हैं। सभी कहानियों की भाषा सरल, सुपाठ्य और सुबोध है।

इसमें 'सुन्दरी' नामक एक कहानी है। इसके मुख्य पात्र पंडित सदानन्द दुबे हैं। इनकी ज्येष्ठ पत्नी की एक-मात्र पुत्री सुन्दरी है। उसकी विमाता का नाम बसंती है। सुन्दरी को उसकी विमाता कोसा करती है। सुन्दरी अपने पिता के घर में अधिक पढ़-लिख नहीं पाती, किन्तु सुयोग्य वकील पति की सहधर्मिणी का सौभाग्य प्राप्त होने पर वह पढ़ने-लिखने में काफ़ी उन्नति कर लेती है। किन्तु ईश्वर को उसका यह सौभाग्य नहीं रुचा। वह दो साल के बाद विधवा हो जाती है। अब उसके सास, श्वशुर सभी उसकी आलोचना कर कर अपने दिल का गुबार निकालने लगे। उसके पिता को जब इस बात का पता चला तब उन्होंने उसे अपने घर बुला लिया। सुन्दरी की अब ईश्वर-भक्ति की ओर विशेष रुचि हो गई थी। पिता के घर में उसकी इस भक्ति में कोई बाधा तो न थी, पर विमाता की उसके प्रति कुढ़न अवश्य थी। उसने पतिदेव को समझा-बुझा कर इस बात पर राज़ी कर लिया कि सुन्दरी का दूसरा विवाह कर दिया जाय। सुन्दरी को अपनी विमाता के इस प्रस्ताव से बड़ी ग्लानि हुई और वह ग्लानि के मारे बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। उसकी ऐसी दशा को अधिक देर तक उसकी विमाता न देख सकी और वह बहुत डर गई, यहाँ तक कि उसे ज्वर आ गया। और उसकी हालत बहुत ख़तरनाक हो गई। इस अवसर पर सुन्दरी ने बड़ी भक्ति के साथ उसकी सेवा करके उसको फिर से स्वस्थ किया। अब वह अपना वैर-भाव छोड़ उसे देवी की तरह मानने लगी।

इसी प्रकार इस पुस्तक की अधिकांश कहानियों में उच्च भावों की प्रधानता है। —गंगासिंह

३०—**डाबर पञ्चाङ्ग**—यह डाक्टर एस० के० बर्म्मन कलकत्ता का सुन्दर पञ्चाङ्ग है। यह पञ्चाङ्ग प्रतिवर्ष बड़े सज-धज से प्रकाशित होता है और बिना मूल्य वितरित किया जाता है। इसमें ग्रह, उपग्रह, राशिफल, वर्षफल इत्यादि सभी बातें दर्ज रहती हैं; इसके अतिरिक्त विविध और अत्युपयोगी देशी ओषधियों आदि का भी वर्णन रहने से प्रत्येक प्राणी लाभ उठा सकता है। ऐसे उपयोगी पञ्चाङ्ग के अधिकाधिक प्रचार से जन-समाज का लाभ ही है।

३१—**'शान्ति' का सती अङ्क**—सञ्चालिका, श्रीमती, शान्तिदेवी, सम्पादक, श्रीजगदीशप्रसाद माथुर 'दीपक', प्रकाशक, श्रीवासुदेव वर्मा, शान्ति-कार्य्यालय, लाहौर हैं। वार्षिक मूल्य २) है और इस अङ्क का मूल्य ।=) है।

इस अङ्क में भारतीय सती स्त्रियों के उच्च आदर्श पर भली-भाँति प्रकाश डाला गया है। इसके पढ़ने से आज भी हमारी भारतीय बहनों के सामने पुराने उच्च आदर्श नाचने लगेंगे और वे अपनी प्राचीन बहनों की तरह आज भी भारतीयों को उच्च कार्य की ओर आगे बढ़ने में सहायता कर सकेंगी। इसके सिवा इस अंक में जिन कुरीतियों के कारण आज हमारी बहनों को दुख सहना पड़ता है उन पर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है। पढ़ी-लिखी बहनों को कम से कम इस अङ्क का अवश्य संग्रह करना चाहिए।

३२—**दीपक**—सम्पादक, श्रीतेगारामजी 'विशारद' सैयद क़ासिम अली 'साहित्यालंकार', प्रकाशक, साहित्य-सदन अबोहर (पंजाब) हैं।

इस मासिक पत्र का वार्षिक मूल्य २) और एक अङ्क का मूल्य ≥) है। इस पत्र का मुख्य उद्देश ग्रामीण किसानों के सम्बन्ध की भिन्न-भिन्न बातों को प्रकाश में लाना है। इस अंक में उन पर काफ़ी विचार किया गया है। यदि इस पत्र का प्रकाशन इसी भाँति होता रहा तो इससे किसानों की बहुत सेवा हो सकेगी। किसानों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

३३—**स्वास्थ्य**—सम्पादक, श्री भो० गो० कौशिक वैद्य, प्रकाशक, बा० सूरजभान गुप्त, सुन्दर, शृङ्गार-इलेक्ट्रिक प्रेस, मथुरा है और भारत के लिए वार्षिक मूल्य २) तथा एक प्रति का मूल्य ≥) है। यह नया नया निकला है। यह स्वास्थ्य-सम्बन्धी एक उपयोगी पत्र है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी लेखों के अतिरिक्त इसमें साहित्य के अन्य मनोरञ्जक विषयों के भी लेख रहते हैं। पत्र उपयोगी है।

३४—शिशु का विशेषांक—सम्पादक, श्री पंडित सुदर्शनाचार्य, बी० ए० और श्रीरामपदार्थ शिक्षार्थी, प्रकाशक, श्री सत्यवान आचार्य, शिशु-प्रेस, प्रयाग हैं। वार्षिक मूल्य २) और इस अंक का ।।) है।

'शिशु' बच्चों का पुराना पत्र है। पहले की भाँति यह अब भी सज-धज के साथ निकल रहा है। इसका यह जनवरी का अंक विशेषांक है। इस अंक में कुल १०३ पृष्ठ हैं। इसमें बालोपयोगी १२ कवितायें तथा २५ लेख और कहानियाँ हैं। यह अंक चित्रों से भी भरपूर है। इससे बालकों का भली भाँति मनोरंजन हो सकता है और उनको बहुत-सी नई बातें मालूम हो सकती हैं। उन्हें इसे एक बार ज़रूर पढ़ना चाहिए।

३५—'प्रताप' का कांग्रेस अंक—सम्पादक, श्री हरिशंकर विद्यार्थी, प्रकाशक, श्री युगलकिशोरसिंह, प्रताप प्रेस, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १०० और इस अंक का मूल्य ।) है।

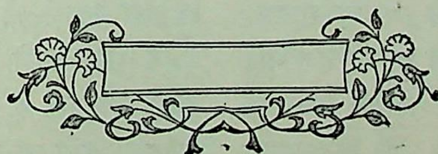
मुख पृष्ठ पर राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल जी का रंगीन चित्र है। इस अंक में ६ कवितायें, ४ कहानियाँ और २२ लेख हैं। इसके सिवा इस अंक में १०० चित्रों से अधिक लीडरों के चित्र दिये गये हैं। सारे अंक में कांग्रेस के सम्बन्ध की ही चीज़ें छापी गई हैं। श्रीयुत बालकृष्ण शर्मा, प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार, श्रीयुत श्रीप्रकाश एम० एल० ए० आदि सुलेखकों के सुन्दर विचारों का उत्तम संग्रह किया गया है। सम्पादक महोदय के इस परिश्रम का लाभ जनता को अवश्य उठाना चाहिए। इस अंक के पाठ से उसे कांग्रेस की अनेक नई बातें मालूम हो जायँगी।

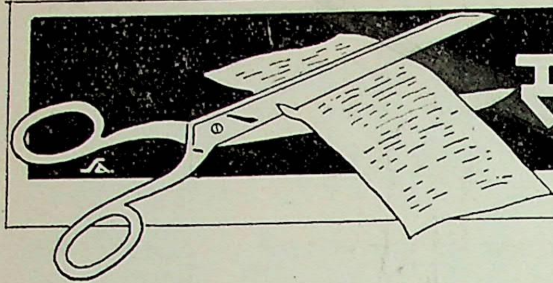
३६—प्रभात का बेकारी अंक—सम्पादक, श्री वसिष्ठनारायण वर्मा, प्रकाशक, श्री चन्द्रशेखरप्रसाद, प्रभात प्रेस, चौक, बलिया हैं। पृष्ठ-संख्या १०२ और इस अंक का मूल्य ।=) है।

इस अंक में कुल मिलाकर १४ चित्र हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि के शुभ सन्देश भी इस अंक में छापे गये हैं। इसके सभी लेख तथा कविताएँ बेकारी की समस्या से सम्बन्ध रखती हैं और उसके दूर करने का कुछ-न-कुछ उपाय बतलाती हैं। श्री पं० रामअनन्त पांडेय, श्री सीतलासहाय, पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी, पं० परशुराम चतुर्वेदी एम० ए०, एल-एल० बी० और बाबा राघवदास आदि प्रतिष्ठित लेखकों के लेखों का सुन्दर समावेश किया गया है। हमारे ग़रीब और बेकारों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

३७—नटखट का नटखट अंक—सम्पादक, श्री मदनमोहन अग्रवाल और श्री नरेन्द्र मालवीय, प्रकाशक, इन्द्र प्रिंटिंग वर्क्स, अलमोड़ा, यू० पी० है। पृष्ठ-संख्या १४४ और वार्षिक मूल्य ३) है।

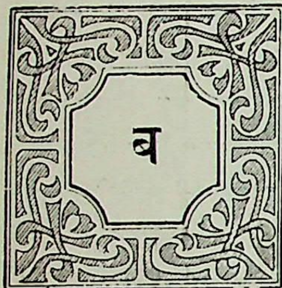
यह नाना प्रकार के चित्रों द्वारा सजाया गया है। इसमें सभी प्रतिभाशाली लेखकों के लेख छापे गये हैं। प्रायः सभी लेखकों ने अपने लेखों में अपने बचपन की किसी-न-किसी बात की चर्चा सुन्दर ढंग से की है। बच्चों का ही नहीं, प्रौढ़ों का भी इस अंक से मनोविनोद हो सकता है। इस सुन्दर अंक के निकालने के लिए सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं।





सामयिक साहित्य

शिक्षा और बेकारी



बलिया से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक 'प्रभात' ने हाल में ही अपना एक 'बेकारी अङ्क' प्रकाशित किया है। इसमें बेकारी की समस्या पर विचार करने के लिए यथेष्ट सामग्री एकत्र की गई है। उसके इस अङ्क में उपर्युक्त शीर्षक में काशी के दार्शनिक विद्वान् बाबू भगवानदास, एम० एल० ए०, का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका एक अंश इस प्रकार है—

विद्यार्थियों को विद्या कैसी सिखाई जाय, यह मसला हम लोग तय नहीं कर पाये हैं। 'अर्थ-विद्या'—जीविकोपार्जन का भी प्रबन्ध हो और जीविका का भी उद्धार हो, ऐसी शिक्षा होनी चाहिए। माता बड़ी आशा और उत्साह से शैशव काल में बच्चे की रक्षा करती है। पिता भी उत्साह के साथ २०—२१ वर्ष की उम्र तक उसे पढ़ने के कार्य में लगाता है, पर स्कूल या कालेज से वापस आने पर रोज़गार की कोई सूरत नहीं मिलती। चारों ओर निराशा दिखलाई पड़ती है। आये दिन अख़बारों में ख़बर पढ़ने को मिलती है—बेरोज़गारी से ऊबकर अमुक नवयुवक रेल से कट कर मर गया, अमुक ज़हर खाकर मर गया, किसी ने फाँसी लगाकर आत्महत्या की इत्यादि। बेरोज़गारी की विकट समस्या उपस्थित है। परन्तु शासक-वर्ग उदासीन है। शासक-वर्ग के बिना यह समस्या हल नहीं होने की। पाश्चात्य देशों में इस समस्या को हल करने का विचार होता है और उसके लिए उपाय भी किया जाता है, पर यहाँ वह बात नहीं है। मनुस्मृति के पहले ही अध्याय में शिक्षा, दूसरे में गार्हस्थ्य जीवन और तीसरे में शासन का वर्णन है। शिक्षा कैसी होनी चाहिए, यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि समाज में उचित स्थान पाकर मनुष्य जीविकोपार्जन कर सके। आज-कल शिक्षा के उद्देश दो ही रह गये हैं एक 'लर्नेड प्रोफ़ेशन' (शिक्षित पेशा) और दूसरा क्लर्की (मुहर्रिरी)। रोज़गार की उपेक्षा की जाती है। सिर को ही बढ़ाने की फ़िक्र की जाती है, बाक़ी जिस्म सूखता जा रहा है—ऐसी हालत में ईश्वर ही रक्षा करे।

रोज़गार का कोई उपाय नहीं सूझता—आये दिन डकैतियों का समाचार पढ़ने में आता है। अब शासक-वर्ग भी वास्तविक रूप पहचानने लगा है कि इसका मूल कारण आर्थिक कठिनाई के सिवा दूसरा नहीं है।

योरप में व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में किया जाने लगा है। रूस और जापान दो देश 'एजुकेशन एण्ड इकोनामिक आरगेनाइज़ेशन' (शिक्षा और आर्थिक प्रबन्ध का संग्रथन) ठीक ठीक कर पाये हैं। हर दूसरे तीसरे वर्ष वे बच्चों की जाँच करते हैं और उनकी प्रवृत्ति के अनुसार उन्हें शिक्षा दी जाती है। जापान में ११ हज़ार से ऊपर 'एग्रिकल्चर स्कूल' (कृषि-विद्यालय) हैं, जहाँ लड़कों को कृषि-सम्बन्धी उपयोगी शिक्षा दी जाती है। जापान एक छोटा-सा टापू है, वहाँ की यह हालत है। रूस में भी कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। रूस इस बात के लिए मशहूर है कि वहाँ बेकारी की समस्या नहीं है। यहाँ की यह हालत है कि काम करने के लिए मज़दूर नहीं मिलते। रूस में यद्यपि कई दोष हैं, पर दण्ड-शक्ति या शिक्षा-शक्ति से वही जगत्गुरु होने जा रहा है।

———

सिन्ध अब हिन्द कब ?

प्रयाग-विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्रोफ़ेसर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा बहुत दिनों से इस बात का आन्दोलन कर रहे हैं कि उत्तर-भारत के हिन्दी-भाषाभाषियों के प्रान्त का नाम 'सूबा हिन्द' रक्खा जाय। 'लखनऊ'-कांग्रेस के अवसर पर 'प्रताप' का जो काग्रेस-अङ्क निकला है उसमें आपने उपर्युक्त शीर्षक लेख में अपने उक्त विचार पर फिर ज़ोर दिया है। आपके लेख का कुछ आवश्यक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

इस सप्ताह समाचार-पत्रों में सिन्ध का स्वतन्त्र प्रान्त बन जाने का समाचार पढ़कर सहसा ख़याल आया कि आख़िर वह दिन कब आयेगा जब हिन्द का भी ठीक प्रान्त बन सकेगा। सम्भव है, बहुत-से पाठक हिन्द-प्रान्त का अर्थ न समझे हों। मेरा तात्पर्य हिन्दी-भाषी प्रदेश के ठीक नामकरण तथा सीमा-विभाग से है।

अँगरेज़ी शासन-काल में भी भारत की जातीय भूमियाँ या स्वाभाविक प्रान्तों का मुस्लिम कालीन इतिहास फिर से दोहराया गया। हमारे नये शासकों ने जिस क्रम से भारत के भिन्न-भिन्न भागों को अपने क़ब्ज़े में किया, वैसे ही अपने सुविधानुसार वे ब्रिटिश प्रान्तों का निर्माण करते गये। इन प्रान्तों के बनाने में देश के स्वाभाविक विभागों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की गई। प्रारम्भ में ब्रिटिश भारत—बंगाल, बंबई और मदरास के नामों से तीन प्रेसीडेंसियों में विभक्त कर दिया गया था। यह अस्वाभाविक विभाग बहुत दिनों तक नहीं चल सका। सबसे पहले बंगाल प्रेसीडेंसी में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई और धीरे धीरे इस एक प्रेसीडेन्सी के स्थान पर आसाम, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, बिहार-उड़ीसा के अधिक स्वाभाविक प्रान्त बनाने पड़े। अन्तिम प्रान्त (उड़ीसा) तो इसी सप्ताह बना है। बंबई प्रेसीडेंसी में सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक की चार जाति भूमियाँ सम्मिलित हैं। इनमें सिन्ध अब उड़ीसा के साथ-साथ पृथक् प्रांत होगया है। गुजरात, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के स्वतन्त्र प्रांतों के रूप में विभक्त होने में अभी कुछ समय लगेगा, यद्यपि इनमें से प्रत्येक अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और गौरव-पूर्ण इतिहास पर गर्व करने लगा है। तीसरी मदरास प्रेसीडेंसी अभी तक ज्यों की त्यों चली जा रही है। इस प्रेसीडेंसी में आन्ध्र, तामिल और मलय इन तीन जातीय भूमियों की चोटियाँ बँधी हुई हैं। तेलगू बोलनेवाले आन्ध्र लोगों में अपना स्वतन्त्र प्रांत बनाने का आन्दोलन दिन दिन ज़ोर पकड़ रहा है और वह समय दूर नहीं है जब आन्ध्र ब्रिटिश भारत में स्वतन्त्र प्रांत बन जायगा और इस तरह से ब्रिटिश भारत के अन्तिम अस्वाभाविक प्रांत मदरास प्रेसीडेंसी का भी स्वाभाविक रूप ग्रहण करने के लिए टूटना प्रारम्भ हो जायगा। प्रारम्भिक काल में ही ब्रिटिश भारत का सबसे अधिक स्वाभाविक प्रांत पंजाब रहा है। और मध्यप्रांत सबसे अधिक अस्वाभाविक। मध्यप्रांत मराठों और हिंदियों का जुड़वाँ प्रांत है। संक्षेप में हम यह पाते हैं कि ब्रिटिश भारत का प्रांतीय विभाग धीरे धीरे स्वाभाविक प्रादेशिक विभाग की ओर विकसित हो रहा है।

भारतवर्ष में जातीय भूमि अथवा स्वाभाविक प्रांतीय विभाग की दृष्टि से यदि सबसे अधिक दुर्गति है तो वह हिन्दी-भाषी प्रदेश की है। बंगाल, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, उड़ीसा, तामिल आदि प्रत्येक प्रांत का एक स्वाभाविक नाम है। प्रत्येक प्रदेश की जनता अपने प्रांतीय व्यक्तित्व को अनुभव करती है तथा प्रत्येक प्रांत में कुछ प्रांतीय नेता हैं जो प्रांत के हित-अनहित की ओर ध्यान देते हैं। हिन्दी-प्रदेश का न तो अभी कोई ठीक नाम है, न प्रांतीय विभाग की स्वाभाविक सीमायें निर्धारित हो सकी हैं और न हिन्दी-प्रदेश के अपने नेता ही हैं—अखिल भारतवर्षीय नेता पैदा करने में यह प्रदेश अवश्य सबसे अधिक उपजाऊ है। किन्तु अब वह समय आगया है जब हिन्दुओं को अपना घर भी सँभालना चाहिए। हिन्दुओं का मुख्य केन्द्र संयुक्त-प्रांत है अतः इस आन्दोलन का प्रारंभ यहाँ से ही होना चाहिए। इस सम्बन्ध में नीचे लिखे दो प्रस्ताव मैं हिन्दी-जनता के सामने रखना चाहता हूँ, एक नाम के सम्बन्ध में और दूसरा प्रांतीय सीमाओं के सम्बन्ध में।

प्रांतीय कांग्रेस सभा ने संयुक्त-प्रांत का नाम 'हिन्द' रख

दिया है। यह नाम अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि इससे प्रांत, निवासी तथा भाषा तीनों के नाम सार्थक ढंग से बन जाते हैं—प्रांत हिन्द, निवासी हिन्दी, भाषा हिन्दी—जैसे बंगाल बंगाली, पंजाब पंजाबी, गुजरात गुजराती, सिंध सिंधी आदि कि जोड़ियाँ बनती हैं। प्रांत के इस नाम में मुसलमानों को भी आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि वास्तव में यह नाम उन्हीं का दिया हुआ है। भारतवर्ष से भ्रम होने का तर्क भी उचित नहीं है, क्योंकि समस्त देश के लिए भारत अथवा हिन्दुस्तान नाम चल रहा है। हिन्दुस्तान और हिन्द के अर्थ धीरे-धीरे स्पष्ट रीति से पृथक् हो जायँगे। संयुक्त-प्रांत के हिन्द नाम को अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस सभा से शीघ्र-शीघ्र स्वीकृत करवा लेना चाहिए और समस्त हिन्दी-पत्रों को संयुक्त-प्रांत के स्थान पर हिन्द नाम का ही प्रयोग करना चाहिए। साथ ही इस बात का आन्दोलन भी प्रांत में होना चाहिए कि ब्रिटिश सरकार भी संयुक्त-प्रांत के नाम के इस परिवर्तन को स्वीकार करले। इस तरह हिन्दियों की मूल जातीय भूमि के अस्तित्व की उचित नींव पड़ सकेगी।

दूसरी समस्या हिन्द-प्रान्त की सीमाओं के सम्बन्ध में होगी। बंगालियों ने अपने प्रान्त की स्वाभाविक सीमाओं में लौट-पौट न होने देने के लिए जी-जान से कोशिश की थी और उसमें उन्हें सफलता भी हुई, क्योंकि उनकी माँगें उचित थीं। भारत की प्रत्येक जातीय भूमि का विभाग स्वाभाविक ढंग से है और यह ठीक ही है। मेरी समझ में विहार और राजस्थान इन दो हिन्दी-भाषी प्रान्तों को इनके वर्तमान रूप में ही स्वतन्त्र प्रान्त रहने देना चाहिए, क्योंकि इनके पीछे ऐतिहासिक तथा शासन-सम्बन्धी सुविधायें कारण-स्वरूप हैं। हिन्द या संयुक्त-प्रान्त की सीमायें अवश्य कुछ अस्वाभाविक है। दिल्ली को स्वतन्त्र हिन्दी प्रान्त रखना अनुचित, अस्वाभाविक तथा अहितकर है। दिल्ली तथा पंजाब के अम्बाला, रोहतक, हिसार आदि के हिन्दी-भाषी ज़िले हिन्द प्रान्त में लौट आने चाहिए। हिन्दुस्तानी मध्यप्रान्त का स्वतंत्र अस्तित्व रखने के पीछे भी कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता। वास्तव में महाकोशल हिंद का ही एक भाग है। कांग्रेस महासभा को ब्रिटिश शासकों-द्वारा किये गये अस्वाभाविक प्रांतीय विभागों को आँख मींच कर नहीं मानना चाहिए। मध्य-भारत के देशी राज्यों में से इन्दौर को राजस्थान में डाल देना चाहिए तथा ग्वालियर, पन्ना, रीवा आदिको हिन्द में। कुछ लोग कहेंगे कि यह हिंद प्रांत बहुत बड़ा हो जायगा। किंतु यदि प्रांतीय स्वाभाविक एकता के कारण ३० लाख के सिन्ध के बराबर में सवा चार करोड़ का बंगाल प्रांत माना जा सकता है तो ६ करोड़ के हिंद प्रांत को भी ज़िन्दा रहने का अधिकार होना चाहिए। प्रबन्ध के सुभीते की दृष्टि से हम अपने प्रांत को महाकोशल, बघेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, अवध, काशी, व्रज, सर हिंद आदि उप विभागों में विभक्त कर सकते हैं। लेकिन यह तो हमारी घरेलू समस्या है। अन्य प्रांतों को इसमें दख़ल देने का कोई अधिकार नहीं है।

वास्तव में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का कर्तव्य है कि अपनी जातीय भूमि के उचित नामकरण तथा सीमा-विभाग के प्रश्न को हाथ में लें और तब तक चैन से न बैठें जब तक इसमें सफलता न हो जाय। आसाम और विहार को तो बंगाल ने अपनी मुक्ति के साथ ही मुक्त कर दिया था। उड़ीसा और सिन्ध दस-बारह वर्ष के निरन्तर आन्दोलन के बाद स्वतन्त्र होने में सफल हो सके हैं। आन्ध्र, तामिल, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा गुजरात अपने घरों को ठीक करने में व्यस्त हैं। किंतु हिंदियों की दीर्घ निद्रा अभी तक नहीं टूटी है। सिन्ध अब, हिन्द कब?

जवाहर के जौहर

पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, एम० एल० ए० ने 'सैनिक' के 'जवाहर-अङ्क' में 'जवाहर के जौहर' शीर्षक एक लेख लिखा है। इससे पंडित जवाहरलाल नेहरू के राष्ट्रीय कार्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। लेख का कुछ अंश इस प्रकार है—

"पण्डित जवाहरलाल नेहरू का सबसे बड़ा जौहर तो यही है कि मोतीलाल के यहाँ जन्म लेकर और आनन्द-भवन में पलकर भी वे दीनों और सम्पन्नों के संग्राम की जलती हुई ज्वाला में कूद पड़े। कौन कहता है कि जवाहर का यह त्याग गौतम बुद्ध के त्याग से बढ़कर नहीं है?

उन दिनों के राजाओं को भी वे सुख नसीब नहीं थे जो आज-कल बीच के दर्जे के लोगों को हासिल हैं, फिर स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू के सुख-भोग तो आज-कल के राजाओं के सुख-भोगों से कहीं अधिक बढ़े-चढ़े थे। ऐसे सुखों में पले हुए जवाहर ने न सिर्फ़ वनों में तप करने के ही कष्ट सहे, परन्तु संयुक्त-प्रान्त की जेलों के नारकीय जीवन को भी हँसते हुए भोगा! गौतम बुद्ध ने अपनी रानी को भी छोड़ा, परन्तु जवाहर की—जवाहर की नहीं भारतीय जन-मन की रानी कमला पति के साथ जेल गई, और अन्त में सात समुद्र पार दूसरे देश में, समस्त देश को शोक-सागर में डुबोती हुई स्वर्ग को सिधारी! इस वज्राघात को सहकर भी जवाहर हवाई जहाज़ में उड़कर हिन्दुस्तान में आया और यहाँ आते ही अविचल योगी की भाँति कर्त्तव्य-कर्म में इस तरह जुट गया, मानो कुछ हुआ ही न हो। गीता के अर्जुन ने कृष्ण से पूछा था, स्थित-प्रज्ञ और समाधिस्थ योगी की भाषा क्या है? वह कैसे बोलता है? कैसे बैठता है? चलता कैसे है? भगवान् ने इन प्रश्नों का उत्तर गीता के अठारह श्लोकों में दे पाया। परन्तु आज यदि कोई जिज्ञासु यही प्रश्न करे तो हम उससे कह सकते हैं कि जो भाषा जवाहर की है, जैसे वह बोलता, बैठता, और चलता है वही समाधिस्थ-स्थितप्रज्ञ योगी की समझो। गौतम बुद्ध ने मनुष्य के दुःख दूर करने के लिए समस्त सांसारिक सुखों को तिलांजलि दी थी। जवाहरलाल ने भी मनुष्य-मात्र को, समस्त मनुष्य-जाति के जीवन को सुखमय बनाने के लिए ही संकटमय तथा कंटकाकीर्ण रास्ते में क़दम रक्खा है। दोनों के जीवन में ही नहीं, दोनों के जीवनोद्देश में भी बहुत कुछ समता है।

हमारे मनो-मन्दिर में गांधी और जवाहर की जो प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं उनमें हम भिन्नता कम और समता अधिक पाते हैं। दोनों ही भारत की, सजीव, सजग, जाग्रत और स्वाभिमानी तथा स्वदेशाभिमानी भारत की महत्त्वाकांक्षाओं की प्रत्यक्ष प्रतिमायें हैं! और दोनों ही भारतीय संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट आदर्श! यही कारण है कि जहाँ दोनों के अन्ध अनुयायी दोनों को एक-दूसरे के विरोधी के रूप में देखते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि एक ही गुरु के दो मूर्ख चेले, गुरु जी ही के दो पैरों को मेरा-तेरा कह कर लड़ते थे, वहाँ हम दोनों में कोई वैपरीत्य नहीं पाते! यही कारण है कि अभी तक दोनों में कर्म-विरोध का आभास तक नहीं दिखाई दिया, बल्कि दोनों में सुन्दर सङ्गीतमय सामञ्जस्य और सहयोग रहा है। दोनों में जो कुछ भिन्नता है भी वह इतनी अधिक भी नहीं कि उसकी स्पष्ट रूप-रेखा निश्चित की जा सके। सङ्केत के लिए, सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि दोनों में अधिक से-अधिक अन्तर, महर्षि और राजर्षि का, आध्यात्मिक और आधिभौतिक का, अन्तर है। गांधी ब्रह्मर्षि हैं तो जवाहर राजर्षि! गांधी आध्यात्मिक अधिक हैं और जवाहर आधिभौतिक!

हम यह मानते हैं कि साम्यवाद की पाश्चात्य विचारावली के अनुसार गांधीवाद और साम्यवाद में अनेक बातों में भारी विरोध भी है। गांधी मशीनवाद और उद्योगवाद का विरोधी है और पाश्चात्य साम्यवाद उसका पक्षपाती! परन्तु हमारा कहना यह है कि हम नाम और रूप की इस माया को प्रधानता देने को तैयार नहीं हैं। हम असली तत्त्व को प्रधान और नाम तथा रूप को गौण समझते हैं। आख़िर, शब्दों का मूल्य ही क्या है? सार तत्त्व के सामने केवल शब्द निःस्सार है। तत्त्व बात तो यह है कि गांधी भी मनुष्य-समाज में सत्ता और सम्पत्ति के वैषम्य को, उनकी बुराइयों को मिटाना चाहता है। जवाहरलाल का साम्यवाद गांधीवाद के आध्यात्मिक साम्यवाद में व्यावहारिक साम्यवाद का प्रवेश कराना चाहता है। जवाहरलाल का साम्यवाद पार्थिव है, भौतिक है, व्यावहारिक है। यह ठीक ही कहा जाता है कि जवाहरलाल जी की विचारावली (Ideology) समाजवादी है, लेकिन उनके साधन गांधीवादी। व्यवहार में जवाहरलाल भी सत्य और अहिंसा में उतना ही अमल करते हैं जितना महात्मा गांधी।

जवाहरलाल में अपने प्रकार का एक विचित्र तेज है। रूप और रंग, चाल और चितवन में वह आत्मत्याग की प्रत्यक्ष जलती हुई जाज्वल्यमान ज्योति-सा दिखाई

देता है, उसकी गति, उसकी ध्वनि को सिंह से उपमा देना ग़लत है। वह तो मोटर के सर्वोत्तम एञ्जिन की तरह सदैव शक्ति से परिपूरित, परन्तु संयमित रहता है। लेकिन न तो वह कमाल-पाशा की तरह भूरा भेड़िया है, न हिटलर और मुसोलिनी की तरह सत्ताप्रिय! बाहर और भीतर वह भारतीय संस्कृति की सुन्दर प्रतिमूर्ति है। लक्ष्मण की-सी वीरोचित और युवकोचित आतुरता के साथ-साथ उसमें राम की-सी धीरोचित गम्भीरता भी है।

ये सब बातें एक ही दिशा की ओर संकेत करती हैं और वह यह कि जवाहर का दूसरा सबसे बड़ा जौहर यह है कि वह गांधी के आध्यात्मिक साम्यवाद का भौतिक साम्यवाद से सामञ्जस्य स्थापित कर रहा है और इतने सुचारु ढंग से कि दोनों का राग कभी बेसुरा नहीं होता।

——

परलोक का वर्णन

'जयाजी प्रताप' में इँग्लेंड के एक प्रसिद्ध लेखक श्री डेनिस ब्रेडले ने मृत्यु के बाद की परलोक से भेजी हुई कुछ बातें प्रकाशित हुई हैं। 'सरस्वती' के पाठकों के मनोरञ्जन के लिए हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं—

अपनी मृत्यु के पहले श्री डेनिस ब्रेडले ने अपने कुटुम्बियों से वादा किया था कि देहावसान के पश्चात् मैं परलोक की कुछ बातें बताऊँगा। उनकी अचानक मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उनके पुत्र के सामने एक माध्यम—द्वारा डेनिस ब्रेडले ने कुछ प्रश्नों के उत्तर दिये, जो विलायत के एक प्रसिद्ध पत्र में प्रकाशित हुए हैं। उनके पुत्र श्री पेट्रिक ब्रेडले को विश्वास है कि ये उनके मृत पिता ने ही भेजे हैं।

मरने के कितने समय पश्चात् तुम (मिस्टर ब्रेडले) वहाँ पहुँच गये जहाँ तुम अब हो?

मरने से पहले मुझे यहाँ की झलक दीख पड़ी थी। जब मेरे प्राण निकल रहे थे तब मैं यहाँ आ गया था। तुम्हें याद होगा जब मैंने कहा था—यह बड़ा आश्चर्यजनक है और मैं मर गया था। उस समय मुझे इस विचित्र संसार का दृश्य दीख पड़ा था।

उस संसार का दृश्य कैसा है और वह कैसा लगता है? क्या तुम शब्दों में बयान कर सकते हो?

शब्दों में बयान करना तो आसान नहीं, किन्तु यहाँ के अनुभव ऐसे हैं जिनका मुक़ाबिला संसारी जीवन नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ समय का तो प्रश्न ही नहीं, जगह विना सीमा के मालूम होती है।

क्या वहाँ पर रात और दिन होते हैं?

जिस इरादे से तुम पूछते हो वैसे नहीं होते। यहाँ सदा दिन अथवा प्रकाश रहता है, किन्तु कुछ अन्धेरे हिस्से भी हैं, जहाँ कोई जाना चाहे तो जा सकता है।

जाना चाहे? इससे तुम्हारा क्या आशय है? तुम कितनी तेज़ी से चल सकते हो?

यहाँ विचार से चलना होता है। कहीं जाने का विचार करो और तुम वहाँ पर हो। फ़ासला और समय कोई बाधा नहीं डाल सकते। यदि कोई आत्मा संसार में आकर भारतवर्ष देखना चाहे तो एक मिनट में देख सकता है और दूसरे मिनट में लन्दन पहुँच सकता है।

क्या आत्मायें चलती-फिरती नज़र आती हैं? अगर आती हैं तो क्या वे वायु पर चलती हैं या और किसी चीज़ पर?

मनुष्य और आत्मा में यह अन्तर है कि आत्मा स्वतन्त्र है और मनुष्य एक आत्मा है जो कि शरीर के कारावास में बन्द है, अतः यहाँ पर हम कोई शारीरिक गतिविधि (Physical movements) नहीं प्रकट करते, क्योंकि कोई शरीर ही नहीं है। अगर संसार में कोई समुद्र को लाँघना चाहे तो उसकी आत्मा उसके शरीर के साथ ही जायगी। लेकिन यहाँ आत्मा को आज़ादी है, किसी समुद्र के पार जाने का विचार करना ही वहाँ पहुँचना है।

मुझे यह सब बातें सुनकर ईर्ष्या होती है। अच्छा, जब तुम अपने नये संसार में पहुँचे तब क्या किया?

मैंने इंतज़ार किया। जब कोई संसार में जन्म लेता है, शनैः शनैः वह संसार की गति से परिचित होता जाता है। और उसके गूढ़ रहस्यों को समझने लगता है। किन्तु यहाँ आकर मनुष्य को संसार से बिलकुल अलग प्रत्येक

बात का अनुभव पहले से ही जान पड़ता है। स्फूर्ति और नवीनता उसे स्थान-स्थान पर जान पड़ती है।

तब तुमने क्या किया ?

मुझे मेरे मित्रों ने पहचान लिया। सबसे प्रथम मुझे मेरी बहन मिली जो मेरी बड़ी सहायक हो गई है।

लेकिन तुम्हारे नये संसार में लाखों आत्मायें होंगी जो कि शताब्दियों से वहाँ जमा होती होंगी। तब वहाँ अपने परिचितों को किस प्रकार तुम पहचान लेते हो ?

जो आत्मायें संसार में एक-दूसरे को जानती थीं वे तुरन्त एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो जाती हैं। यह एक बड़ी विचित्र बात है, जो शब्दों में बताई नहीं जा सकती। मैं अपनी माता से मिल चुका हूँ और सर आर्थर केनन डायल और कोनफ्यूशश से भी। कोनफ्यूशश जो पुराने ज़माने के फ़िलासफ़र थे, एक खाकी रंग का साधुओं का-सा वस्त्र धारण किये थे।

क्या आपने यह पता लगाया है कि उन मनुष्यों की आत्मायें जो कि आत्महत्या कर लेते हैं, आप लोगों में मिल जाती हैं और क्या वे वहाँ पर ख़ुश रहती हैं ?

दुनिया के बाहर एक काला हवाई कुर्रा है और इन आत्माओं को जब तक कि ये अपनी दुनिया में रहने का वक्त पूरा नहीं कर लेतीं, यहाँ पर ही रहना पड़ता है।

क्या वहाँ पर कुछ राजनैतिक तरीक़े भी काम में लाये जाते हैं जैसे कि दुनिया में हैं ?

हाँ, यहाँ पर राजनैतिक सभायें हैं जो यहाँ का सारा इन्तज़ाम करती हैं। यहाँ हमेशा अमन-चैन ही रहता है, क्योंकि यहाँ कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। यहाँ किसी को कोई दुःख नहीं है। यहाँ पुराने ज़माने की गूढ़ बातों को सिखाने के लिए एक बड़ा हाल है।

गूढ़ बातों को सिखाने के लिए हाल है ?

यहाँ बड़े बड़े हाल हैं, जहाँ सब प्रकार की विद्याओं पर प्रकाश डाला जाता है। समस्त आविष्कार जिनसे किं दुनिया में सनसनी फैल जाती है, यहाँ की आत्माओं को पहले से ही मालूम हो जाते हैं। यहाँ कुछ लेबोरेटरियाँ भी हैं, जहाँ आत्मायें पृथ्वी पर फैलनेवाले रोगों के इलाज का पता लगाने की कोशिश करती हैं।

क्या आत्मायें दुनिया के आदमियों से वार्तालाप करने से ख़ुश होती हैं और क्या वे हमारी मदद करने की कोशिश करती हैं ?

ज़रूर, उन्हें पृथ्वी के आदमियों से बातचीत करने में अच्छा मालूम होता है और वे उनकी मदद भी करती हैं। मनुष्यों ने ही अपने नास्तिक विश्वासों की वजह से आत्माओं से बातचीत करने के रास्ते बंद कर दिये हैं। एक वक्त ऐसा आवेगा जब आत्माओं से बातचीत करना इतना आसान हो जायगा जैसा कि वायरलेस पर बात करना।

क्या वहाँ किसी क़िस्म का संगीत भी है और अगर है तो वहाँ से आता हुआ मालूम होता है ?

संगीत जो मैंने अभी तक सुना है, मालूम होता है बहुत-से क़िस्म के बाजों से निकलता है। पर मैंने अभी तक कोई बाजा देखा नहीं है, मगर मैं इसका पता लगाऊँगा और तुमको फिर बताऊँगा।

ये सब बताने के बाद ब्राडले की आत्मा ने अपने पुत्र से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की और उन्होंने अपने पुत्र से बहुत-सी ख़ानगी बातों पर वार्तालाप किया और अन्तिम विदा ली।

कौन अधिक समय तक जीता है—पशु-पक्षी या मनुष्य ?

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक डाक्टर हेमचन्द्र जोशी और उनके भाई श्री इलाचन्द्र जोशी ने 'कलकत्ते' से 'विश्ववाणी' नाम की एक सुन्दर साप्ताहिक पत्रिका निकाली है। यह पत्रिका कई महीने से निकल रही है और अपने ढंग की एक है। इसके हाल के अंक में एक लेख पशु-पक्षी तथा मनुष्य की आयु का तुलनात्मक विवरण दिया गया है। उसका एक मनोरञ्जक अंश यह है—

बड़े आश्चर्य की बात है कि मानव-प्राणी अपने ज्ञान-विज्ञान के मद से ऐसा इतराया हुआ है कि अन्य प्राणियों को अत्यन्त तुच्छता की दृष्टि से देखता है, पर अभी तक

अपने स्वास्थ्य की उन्नति तथा दीर्घायु के सम्बन्ध में तनिक भी पशु-पक्षियों से आगे नहीं बढ़ा है। पशु-पक्षियों की बात तो दूर रही, छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े भी बहुधा मनुष्य की अपेक्षा दीर्घकाल तक जीवित रहते पाये गये हैं। एक अत्यन्त तुच्छ-जाति के क्षुद्र समुद्री कीड़े को ६०-७० और कभी-कभी १०० वर्ष तक जीवित रहते देखा गया है। हेम्बर्ग के एक वैज्ञानिक ने इस कीड़े को पानी से भरे हुए शीशे के एक बर्तन में ५० वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रक्खा था।

मछलियाँ दीर्घ काल तक जीवित रहती हैं। बाम मछली ६० वर्ष तक जीवित रहती है। सामन मछली १०० साल से भी अधिक समय तक ज़िन्दा रह सकती है। 'पाइक' जाति की मछली की आयु २०० वर्ष से अधिक होती है। इस जाति की एक मछली के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह २६७ वर्ष तक जीवित रही थी। पेरिस के एक तालाब की एक विशेष जाति की मछलियों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे सैकड़ों वर्षों से ज़िन्दा हैं।

मेंढक ३०-४० वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। घड़ियालों की आयु भी दीर्घ होती है। पेरिस के एक अजायब-घर में कुछ घड़ियाल ऐसे हैं जिनकी अवस्था ७० वर्ष के क़रीब हो चुकी है, अभी तक उनमें बुढ़ापे का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। कछुओं की आयु घड़ियालों से भी लम्बी होती है। २०० वर्ष तक इनमें बुढ़ापा नहीं आता। कलकत्ते की पशुशाला में दो कछुए ऐसे हैं जिनकी आयु १०० वर्ष के क़रीब पहुँच चुकी है।

कछुओं के दीर्घ जीवन का एक कारण यह बताया जाता है कि उनके दिल की धड़कन बहुत धीमी होती है। पर यह कुछ ज़रूरी नहीं है। क्योंकि चिड़ियों के हृदय की धड़कन बहुत तेज़ होती है, तथापि उनकी आयु काफ़ी लम्बी होती है। तोतों के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि यदि किसी अप्राकृतिक कारण से उनकी मृत्यु न हुई तो वे ८० या १०० वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। हंस के सम्बन्ध में यह योरपीय कहावत प्रसिद्ध है कि वह तीन सौ वर्ष तक जीवित रहता है। यद्यपि इस कहावत की प्रामाणिकता के कोई वास्तविक उदाहरण अभी तक नहीं पाये गये हैं, तथापि यह निश्चित है कि हंस की उम्र काफ़ी बड़ी होती है। कौवे ७० या ८० वर्ष तक ज़िन्दा रहते हैं। गिद्धों को १०० से अधिक की आयु को पहुँचते देखा गया है। वियेना के प्राचीन शाही बाग़ में एक गिद्ध ११८ वर्ष की आयु में मरा था। एक बाज़ के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह १६२ वर्ष तक जिया था।

ब्रिटिश साम्राज्य की साम्राज्ञी कौन होगी ?

सम्राट् अष्टम एडवर्ड शादी करेंगे या आजीवन कुँवारे रहेंगे ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर आज-कल इँग्लेंड के समाचार-पत्रों में खूब लिखा-पढ़ी हो रही है। विदेशी पत्रों के आधार पर 'नव-युग' में इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

राजा एडवर्ड अष्टम अविवाहित दशा में राजगद्दी पर बैठे हैं। द्वितीय विलियम, प्रथम हेनरी, तृतीय हेनरी, द्वितीय रिचार्ड, पंचम हेनरी, सप्तम हेनरी, छठा एडवर्ड, एलिज़ाबेथ, प्रथम चार्ल्स, तृतीय जार्ज तथा वर्तमान सम्राट् की दादी विक्टोरिया ये सब अविवाहित ही राजगद्दी पर बैठे थे।

इन सबमें से केवल विलियम छठा एडवर्ड तथा एलिज़ाबेथ अन्त तक अविवाहित ही रहे थे।

विवाह के नियम

यदि वर्तमान राजा विवाह करना चाहें तो उन्हें १७७२ के राजवंश के विवाह के नियमानुसार ही विवाह करना पड़ेगा। तृतीय जार्ज-द्वारा बनाये हुए इस नियम का आशय यह था कि उत्तराधिकारी के अधिकारों पर भविष्य में कोई अनिष्ट न होने पावे।

इस नियमानुसार राज-कुटुम्ब के सभ्य २५ वर्ष की वय से पहले तथा राजा की अनुमति के बिना शादी नहीं कर सकते।

सम्राट् के अलावा अन्य सब राज-कुटुम्ब के लोगों की शादी की आज्ञा पार्लियामेंट से मिलनी चाहिए। इस प्रकार शादी की सूचना प्रिवी कौंसिल को मिलनी चाहिए

तथा कोई भी राजवंशी सभ्य प्रिवी कौंसिल की ग्रेट सील में सम्राट् के हस्ताक्षर के बिना शादी नहीं कर सकता।

सम्राट् रोमन केथोलिक से शादी नहीं कर सकता, यदि कर ले तो उसको राजगद्दी छोड़नी पड़ेगी।

रूढ़ि के अनुसार सम्राट् को किसी राजवंशी स्त्री के साथ शादी करनी चाहिए। परन्तु विवाह के नियमों में इस बात पर कोई प्रतिबंध नहीं है। शायद इस पर प्रतिबन्ध न लगाने का कारण प्रजाकीय भावना की उत्तेजना के लिए किया हो।

सम्राट् की इच्छा हो तो वह सामान्य कुलोत्पन्न किसी कुमारिका से भी शादी कर सकता है। अष्टम हेनरी ने चार ग्राम स्त्रियों के साथ शादी की थी। तृतीय रिचार्ड ने वीर वीकनी ग्रान के साथ शादी की थी। चतुर्थ एडवर्ड ने विधवा एलिज़ाबेथ वुडबोल के साथ शादी की थी।

रानी विक्टोरिया ने अलबर्ट के साथ शादी की थी। शादी की इच्छा रानी विक्टोरिया की तरफ़ से प्रकट की गई थी। जब प्रिवी कौंसिल को सूचना देने का समय आया उस समय एक मित्र ने कहा, 'आप लोग घबराइए नहीं।' उत्तर में रानी विक्टोरिया ने कहा—अलबर्ट के सामने शादी का प्रस्ताव रखने का कार्य रहस्य-पूर्ण है।

जाननेवाले लोग जानते हैं कि यदि सम्राट् एडवर्ड को शादी करनी होती तो कभी कर चुके होते। तथापि अनेक तर्क-वितर्क हो रहे हैं। ऐसी कितनी राजकुमारियाँ हैं जो इँग्लेंड की भावी रानी बन सकती हैं।

हालेंड की प्रिन्सेस जुली आना इस लिस्ट में नहीं आ सकती, क्योंकि वे डच राजगद्दी की उत्तराधिकारिणी हैं, अतः उनके पति को उनके साथ ही रहना पड़ेगा।

इसके बाद ग्रीस की तीन राजकुमारियाँ हैं। सुन्दर इरीन कैन्टना डचेस की किसी दूर के रिश्ते से बहन लगती है। रूमानिया की महारानी की वह बहन लगती है। इसकी उमर ३१ वर्ष की है। इसके सुनहरी बाल हैं तथा आँखें भूरी हैं। फ़िलिप डी लाजनों ने इसका चित्र खींचा था। इसका कंठ मधुर है। यह बहुत-सी भाषायें जानती है।

१९३२ में जब इरीन अपने भाई ग्रीस के वर्तमान राजा के साथ स्काटलेंड में राजा से मिलने गई थी तब इसने अपनी बहन के साथ ब्रिटेन में थर्ड क्लास में सफ़र किया था।

इरीन की छोटी बहन केथेराइन की उमर २३ वर्ष की है। उसने ब्रोम्लीनी के एक गवर्नेस की देख-रेख में शिक्षा ग्रहण की है। राजकुमारी मरीना के विवाह-प्रसंग पर इरीन तथा केथेराइन मरीना की सखियों की हैसियत से गई थीं।

इन दोनों बहनों के साथ उस प्रसंग पर ग्रीस के राजा जार्ज की २७ वर्ष की पुत्री युजेनीआ भी उपस्थित थी। चार वर्ष पहले सम्राट् एडवर्ड उसको डेन्मार्क में मिले थे। उसके बालों का रंग काला है। उसकी आँखें भी काली हैं। उसको खेल-कूद का बड़ा भारी शौक है।

इसके उपरांत २३ वर्ष की रशिया की ग्रांड डचेस कीरा है। वह रशिया के बेताज-बादशाह ज़ार ड्यूक सीरीम की पुत्री है।

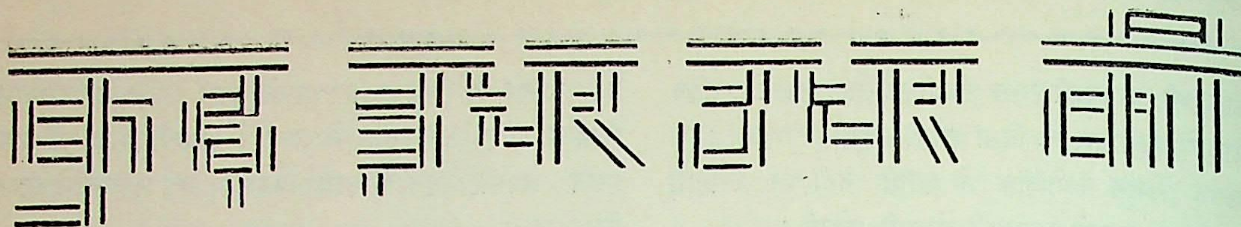
नाज़ुक कीरा का जीवन अभी तक दुःखमय गुज़रा है। रशिया की क्रांति के समय इसको भागना पड़ा था। स्पेन के राजकुमार से उसका प्रेम था, ऐसा कहा जाता है। यह अच्छी गायिका है। इसने काफ़ी सफ़र किया है।

उपयुक्त उमर की स्केन्डेनेविया की एक ही राजकुमारी अविवाहित है। इसका नाम एलेकज़ांडरीन है। इसकी उमर २१ वर्ष की है। डेन्मार्क के राजा क्रिश्चियन की भतीजी है। इसके बाद केवल एक ही राजकुमारी शेष रहती है जो ब्रंसविक लुम्बर्ग की फ्रेडरीका है। इसकी उमर २० वर्ष की है। यह क़ैसर की पौत्री है। यह रानी विक्टोरिया की प्रपौत्री भी होती है।

सम्राट् एडवर्ड अष्टम के लिए इतनी राजकुमारियाँ हैं।

यदि सम्राट् एडवर्ड प्रेम में फँस कर अपनी प्रजा को रानी दें तो इससे ब्रिटिश प्रजा अत्यन्त ख़ुश होगी।

देखें! सम्राट् कब अपनी प्रजा की उत्कट इच्छा पूर्ण करते हैं।



गत १५ अप्रेल को अयोध्या में अखिल भारतीय वैष्णव-धर्म-महामण्डल की एक विशेष परिषद् श्री रामचरणदास महाराज की अध्यक्षता में हुई। इस परिषद् में लगभग ५,००० वैष्णव सम्मिलित हुए थे, जिनमें सैकड़ों महन्त और साधु थे। इस परिषद् में सबसे अधिक ज़ोर अस्पृश्यता-निवारण पर दिया गया। इस सम्बन्ध में महन्तों ने तो और अधिक उत्साह दिखाया, यहाँ तक कि उन्होंने अपने मंदिरों को हरिजनों के लिए खोल देने की घोषणा कर दी है। वैष्णव-धर्म-महामण्डल के इस कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

× × × ×

बहुत-से लोगों को यह शिकायत है कि हिन्दुस्तान से धार्मिकता का भाव उठता जा रहा है। इसका एक-मात्र कारण यह है कि हमारे धर्म के बाह्य आचार हमारे देश और समाज की नवीन प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं हैं। यदि हम उनको नवीन रूप दे दें तो वे फिर सजीव और आकर्षक हो उठें। अयोध्या के वैष्णवों ने इसका एक नमूना हमारे सामने उपस्थित किया है। वास्तव में साधु और महन्त समाज के नेता रहे हैं। उन्हें तो सुधारों की ओर सबसे पहले क़दम बढ़ाना चाहिए।

× × × ×

अस्पृश्यता-निवारण का इतना देशव्यापी आन्दोलन होते हुए भी कहीं कहीं हरिजनों पर अमानुषिक अत्याचार हो ही जाते हैं। उदाहरण के लिए जयपुर-रियासत की निज़ामाबाद-तहसील के चखारा नामक गाँव में उन्हें घी खाते देखकर उच्च जातीय हिन्दू भड़क उठे। हरिजनों को घी खाते देखना वे सहन नहीं कर सके। क़िस्सा यों है कि कुछ हरिजन गंगास्नान के बाद सहभोज में खाने बैठे और उन्हें घी भी दिया गया। सवर्णों ने उन्हें घी खाने से रोका और जब वे न माने तब उनका भोजन छीन लिया और उन्हें पीटना शुरू किया। यह एक नये प्रकार की धार्मिक माँग है, जो पहले-पहल सुनने में आई है।

× × × ×

ऐसी ही वे भी धार्मिक माँगें हैं जिनको लेकर कुछ नामधारी सनातनी ज़मीन-आसमान एक किये दे रहे हैं। कहते हैं, इन सनातनियों के एक दल ने स्वामी लालनाथ के नेतृत्व में लखनऊ के कांग्रेस-पंडाल पर गत १३ अप्रेल को धावा बोला था। उनकी माँग शायद यह थी कि कांग्रेस यह घोषणा कर दे कि वह धार्मिक मामलों में न पड़ेगी। पंडित जवाहरलाल नेहरू को जब इसकी सूचना मिली तब वे मुस्कराते हुए बोले—"कुछ सनातनी इस पंडाल पर क़ब्ज़ा करने आ रहे हैं, ठीक वैसे ही जैसे मुसोलिनी ने रोम पर किया था।" पर उपस्थित लोग इन सनातनियों की प्रतीक्षा ही करते रह गये।

× × × ×

बाद को मालूम हुआ कि सनातनी पहले दिन स्वामी लालनाथ के नेतृत्व में और दूसरे दिन उनके चेलों के नेतृत्व में कांग्रेस-पंडाल तक गये थे और उस द्वार से उसके अन्दर घुसने की कोशिश की जिधर से स्त्रियाँ जाती थीं। शायद इन्होंने सोचा हो कि वालंटियर उन्हें भी स्त्री समझेंगे और छोड़ देंगे या शायद यह सोचा हो कि वहाँ महिला-स्वयंसेविकायें होंगी और उन्हें बलपूर्वक द्वार से हटा देना आसान होगा। पर जब वे उन स्वयंसेविकाओं को हटा नहीं सके तब द्वार पर लेट गये। उसी समय किसी ने कहा कि यहाँ जो वालंटियर आ गये हैं उनमें कुछ हरिजन भी हैं। बेचारे सनातनी यह सुनते ही भाग खड़े हुए कि ये हरिजन उन्हें छू न लें। धर्म की मर्यादा का क्या सुन्दर स्वरूप दिखाया। कहते हैं, चलते-चलाते इन सनातनियों

ने स्वयं-सेविकाओं के डंडे छीनने की कोशिश की और कहा कि स्त्री को हथियार नहीं बाँधना चाहिए। पर भीड़ को जब उत्तेजित होते देखा तब अपनी इस हरकत से बाज़ आये और चुपचाप वहाँ से चले भी गये। अब सोचने की बात यह है कि ऐसे आदमियों के हाथ में धर्म कब तक और कैसे सुरक्षित रह सकता है।

× × × ×

'प्रताप' के कांग्रेस-अङ्क में हिन्दी के एक परमप्रतापी लेखक ने उर्दू-साहित्य की प्रगति पर एक ज़ोरदार लेख लिखा है और बताया है कि इस समय उर्दू में जो जाग्रति और कर्म-परायणता है वह कहीं देखने को नहीं मिलती। इस सिलसिले में हिन्दी की आपने बड़ी निन्दा की है और लेख को निम्नलिखित सुन्दर शब्दों से समाप्त किया है—"और यहाँ हिन्दी संसार में गाली-गलौज, छिद्रान्वेषण और ईर्षा-द्वेष का राज है। यहाँ अभी तक यही हो रहा है कि अमुक लेखक ने अमुक का लेख चुरा लिया, अमुक सम्पादक निन्दनीय है। जो विद्वान् हैं, जिनमें प्रतिभा और प्रकाश है, वे हिन्दी की बात नहीं पूछते। खोखले दिमाग़वालों के हाथों में पड़ा हुआ हिन्दी-साहित्य प्रकाश और ताज़ा हवा न पाकर पीला और निर्जीव हुआ जा रहा है।"

अब प्रश्न यह है कि क्या इस लेख के लेखक ने जो बातें कही हैं वे व्यक्तिगत अनुभव पर अवलम्बित हैं। यदि व्यक्तिगत अनुभव पर लेखक ने यह सब लिखा है तो हमें लेख के साथ सहानुभूति है। यदि लेखक महोदय उन विद्वानों और प्रतिभावानों की एक सूची दे देते जो हिन्दी की बात नहीं पूछते तो उत्तम होता।

× × × ×

गांधी, टैगोर, जवाहरलाल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, मुंशी कन्हैयालाल आदि की गिनती शायद विद्वानों में भी की जायगी और प्रतिभावानों में भी। पर ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि ये लोग हिन्दी की बात नहीं पूछते। टैगोर अपने विश्वभारती में हिन्दी के लेखकों को बुला बुलाकर उनके व्याख्यान सुनते हैं। गांधी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आज-कल सभापति हैं। जवाहरलाल हिन्दी की पत्रिकाओं में लेख लिख रहे हैं। बाबू राजेन्द्रप्रसाद हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति होने जा रहे हैं। श्रीयुत मुन्शी कन्हैयालाल हिन्दी में एक मासिक पत्र निकाल रहे हैं। क्या यह हिन्दी की बात पूछना नहीं हुआ? क्या बात किसी और तरह पूछी जाती है? पर 'प्रताप' के इस प्रतापी लेखक को तो शायद यह सिद्ध करना है कि हिन्दीवालों का दिमाग़ खोखला है। धन्य है!

× × × ×

लाहौर के श्री बनारसीदास गोपाल ने पंजाब-विश्व-विद्यालय के एक प्रश्न-पत्र की ग़लत हिन्दी के सम्बन्ध में 'हिन्दी-मिलाप' में एक मनोरंजक पत्र छपवाया है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"इस वर्ष पञ्जाब-यूनिवर्सिटी की अङ्गरेज़ी पेपर बी के अनुवाद के हिन्दी का जो "पीस" आया है वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

"श्रीमाण जी हम अब जब तक जीयेंगे आपका साथ देंगे। व आपके विरोधियों को अपनी वैरी मानेंगे ४'

"ऐसा प्रतीत होता है कि परीक्षक महोदय ने किसी उर्दू-पुस्तक से एक पाठ निकाल कर अपनी सुपुत्री को दे दिया कि बेटी ज़रा इसका हिन्दी अनुवाद तो कर दो। यह नहीं सोचा कि बेटी गुनगुना कर बोलती है। 'देंगें' और 'मानेंगें' शब्दों में 'गे' के ऊपर जो अनुस्वार लगा है वह उस लड़की के नासिका-दोष का परिणाम है।

"आश्चर्य तो इस बात पर है कि जब हिंदी नहीं आती तो अनुवाद के लिए हिंदी पाठ देने का साहस ही क्यों किया जाता है। परीक्षार्थियों का क्या हाल होगा यह पाठकगण स्वयं ही विचार लें। अन्त में यूनिवर्सिटी के अधिकारिवर्ग से सविनय प्रार्थना है कि इस अवतरण पर किसी विद्वान् की सम्मति लेकर विद्यार्थियों को अन्याय से बचायें।"

लेखक की शिकायत उचित ही है।

पाठकों के पत्र

विरोधाभास

आज-कल की हिन्दी की कविताओं में विरोधाभास बहुत मिलता है। इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि आज-कल के कवि अलङ्कार-शास्त्र का अध्ययन नहीं करते। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण 'सरस्वती' के ही गताङ्क में प्रकाशित श्री युत प्रो० मनोरञ्जन एम० ए० की परिवर्तनशीर्षक कविता है। आपने एक सूची उन चीज़ों की तैयार की है जो आपके 'सूने से नभ में' आती हैं। इनमें बादल, बिजली, सूरज, चन्दा, उषा, अँधेरा, उजाला, तारे, दिन-रात सभी आ गये हैं। अब पता नहीं अभी और कौन-सी चीज़ बाक़ी है जिसके बग़ैर आपका नभ सूना है। इसी को कहते हैं विरोधाभास। आशा है, प्रोफ़ेसर साहब इधर ध्यान देंगे और आइन्दा पाठकों को इस प्रकार बेवक़ूफ़ बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे।

—भालचन्द्रशर्मा, कान्ती

भारतीय ग्रामीण ऋणसमस्या

इस बार अप्रैल की 'सरस्वती' में भारतीय ग्रामीण ऋणसमस्या शीर्षक एक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ है। कृपया विद्वान् लेखक को मेरी ओर से बधाई दीजिए। वास्तव में ग्रामीणों के उद्धार का इसके सिवा कि वे शीघ्र ऋण-मुक्त कर दिये जायँ और कोई तरीक़ा नहीं है। चाहे यह ऋण सरकार अपने ऊपर ले ले, चाहे इसके भुगतान का कुछ ऐसा प्रबन्ध करे कि ग्रामीणों को यह अखरने न पावे। आशा है, इस सम्बन्ध में और भी विद्वान् लोग अपने विचार प्रकट करेंगे।

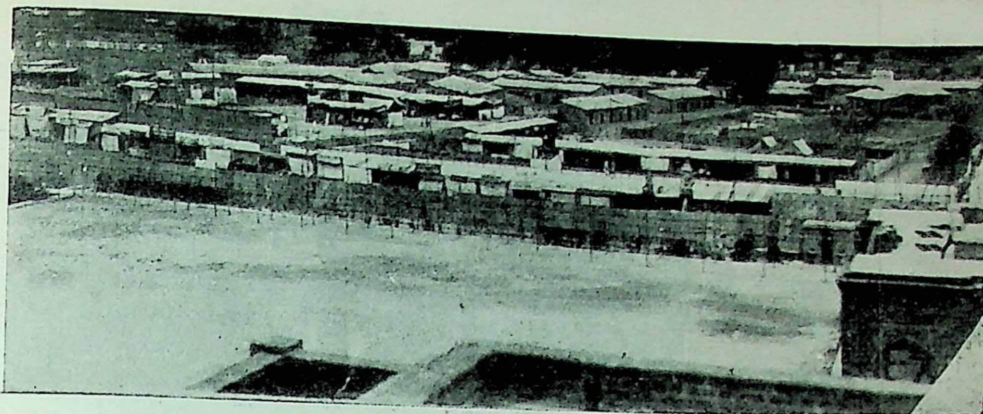
—गोपीचन्द श्रीवास्तव, लस्का

भूल-सुधार

इस वर्ष के मार्च महीने की 'सरस्वती' में कुमारी शान्तिदेवी का हाल प्रामाणिक रूप में प्रकाशित हुआ था—जिसमें चौबे जी की पत्नी लुगदीदेवी के स्वर्गवास की तिथि ४ अक्टूबर सन् १९२५ और देहलीवाली शांतिदेवी की जन्मतिथि ११ दिसम्बर सन् १९२५ बतलाई गई थी। अप्रेल मास की 'सरस्वती' में चौमू के श्री हनुमान शर्मा ने कुछ शास्त्र तथा आयुर्वेद आदि के प्रमाण देते हुए इस विषय में सन्देह प्रकट किया है। सम्भवतः उनका यह सन्देह सत्य होता। किन्तु जब मैंने मालूम किया तब ज्ञात हुआ कि चौबे जी की पत्नी का देहावसान तो कार्तिक कृष्ण २ संवत् १९८२ तदनुसार ता० ४ अक्टूबर सन् १९२५ को सुबह १०-१०॥ बजे हो गया था। किन्तु शांतिदेवी का जन्म मार्गशीर्ष सुदी ७ शनिवार ता० ११ दिसम्बर सन् १९२६ को दोपहर के १ बज कर ४० मिनट पर हुआ था, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मार्च की 'सरस्वती' में सन् १९२६ के स्थान पर १९२५ प्रकाशित हो गया है, जिससे १ वर्ष का अंतर आता है। यह एकमात्र प्रेस की भूल है। लुगदीदेवी की मृत्यु और शांतिदेवी के जन्म में १ वर्ष और लगभग ५० दिन का अंतर है, न कि पैंसठ दिन का।

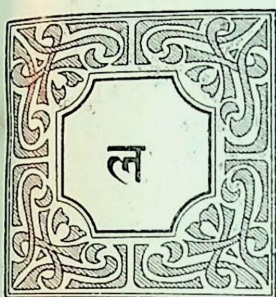
—रामस्वरूप गर्ग, अजमेर

लखनऊ की कांग्रेस



[आकाश से लिया गया मोतीनगर का एक चित्र]

लेखक, श्रीनाथसिंह



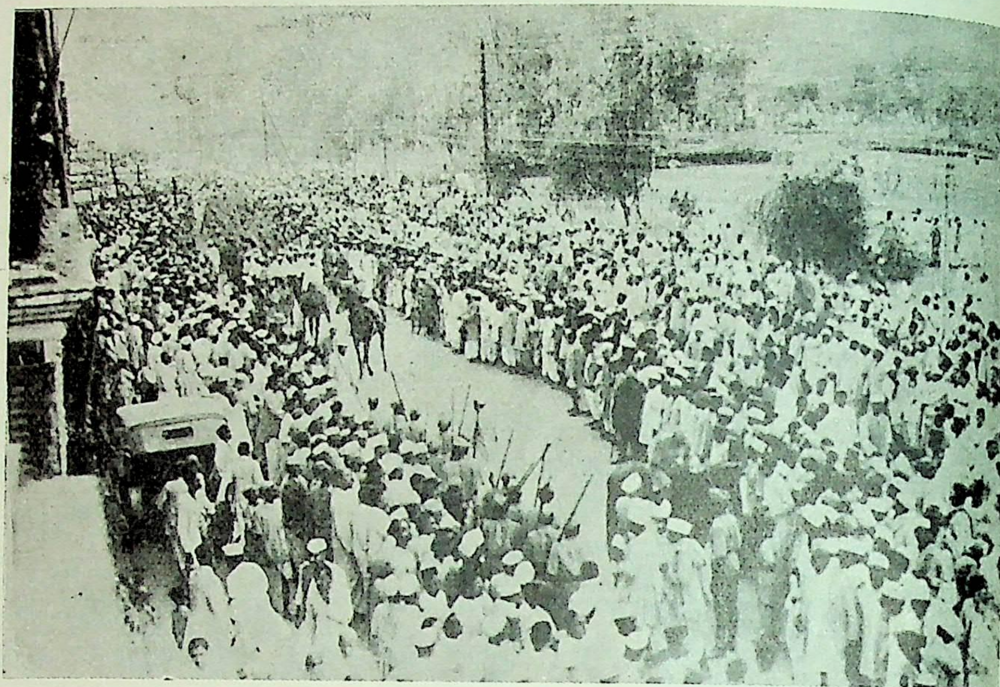
खनऊ के कांग्रेसमैनों की आपसी फूट के कारण बहुत-से लोगों की यह धारणा हो चली थी कि इस बार लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन होना असम्भव है। बहुत-से लोग अन्यत्र कांग्रेस करने की बात भी सोचने लगे थे। अकेले लखनऊ के ऊपर ज़िम्मेदारी होती तो वहाँ कांग्रेस का अधिवेशन होना वास्तव में सर्वथा असम्भव हो जाता, पर यह प्रश्न था संयुक्त-प्रान्त के सम्मान का, क्योंकि इसी प्रान्त ने लखनऊ में कांग्रेस को आमंत्रित किया था। इसलिए इस प्रान्त के कांग्रेसी नेताओं ने लखनऊवालों के पारस्परिक मतभेद को अपने प्रभाव से दबाने का प्रयत्न किया और जो कुछ समय बच रहा था उसके भीतर उन्होंने इस महोत्सव की व्यवस्था की।

प्रान्तीय नेताओं के प्रयत्न से बनी हुई नवीन स्वागत-समिति ने थोड़े समय में जो कुछ कर दिखाया उसके लिए उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। लखनऊ-स्टेशन के पास ही दूर तक फैली हुई बेकार ऊँची-नीची कुछ भूमि और कुछ खेत थे। लखनऊ की दृष्टि से वह सबसे ख़राब ज़मीन कही जा सकती है। पर जल्दी में और कोई चुनाव न कर सकने के कारण स्वागत-समिति ने उसी से संतोष किया और देखते ही देखते उसे एक परम आकर्षक और प्रकाशमान बस्ती के रूप में परिणत कर दिया, जिसका नाम उसने स्वर्गीय राष्ट्रनेता पंडित मोतीलाल नेहरू के नाम पर 'मोती-नगर' रक्खा। यहाँ चौड़े रास्ते निकाले गये, बिजली और टेलीफ़ोन के तार लगाये गये, पानी के नल बिछाये गये, प्रतिनिधियों और दर्शकों के लिए निवास-स्थान बनाये गये और आराम और सुविधा के सब आवश्यक साधनों की भी सुविधा की गई।

परन्तु लखनऊवालों का पारस्परिक वैमनस्य इस सुन्दर मोती-नगर में गर्द, आँधी और धूप के रूप में प्रकट हुआ, जिससे आगन्तुकों को बेहद कष्ट का सामना करना पड़ा। पानी का यथेष्ट प्रबन्ध था। नलों में दिन भर पानी आता था और रास्तों में पानी की बैलगाड़ियों-द्वारा बराबर पानी का छिड़काव होता रहता था, फिर भी भूमि इतनी प्यासी थी और धूप इतनी तेज़ थी कि गर्द दबाई नहीं जा सकी और वह अन्त तक लोगों को परेशान करती रही।

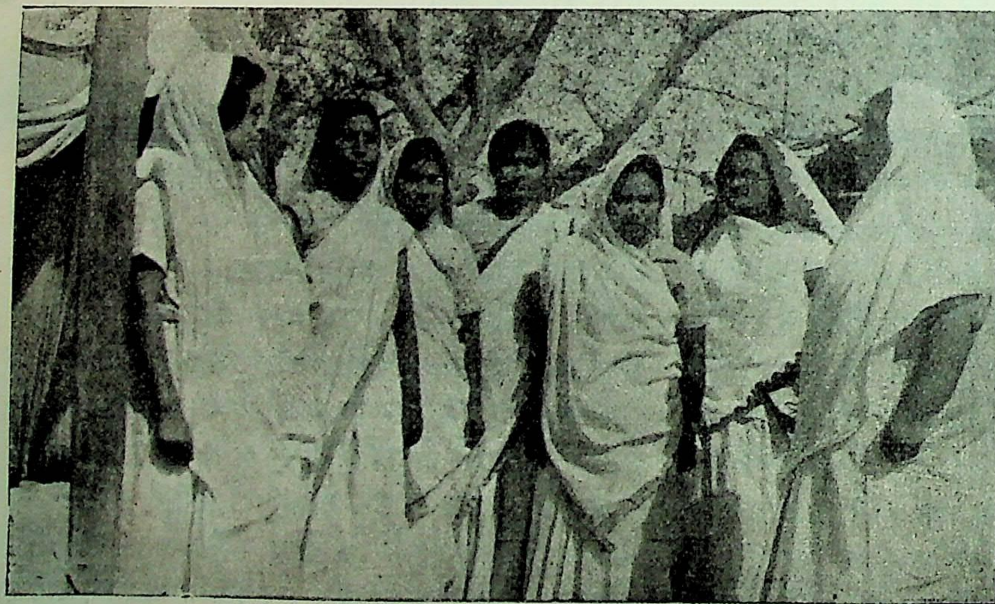
कराची में जिस स्थान पर कांग्रेस हुई थी वह स्थान लखनऊ के इस स्थान से भी अधिक शुष्क था, पर वहाँ की स्वागत-समिति ने स्थान स्थान पर हरी घास और फ़ौवारे लगाकर उसे परम रमणीक बना दिया था। लखनऊ में भी यह सब किया जा सकता था, पर कदाचित् इसके लिए समय नहीं था। ढूँढ़ने से भी कहीं हरियाली न मिलती थी। कुछ गिनती के गमले मुख्य पंडाल और प्रदर्शनी के बीच में स्थापित पंडित मोतीलाल नेहरू की मूर्ति के चारों तरफ़ रक्खे थे और उनके पीछे एक बीमा-कम्पनी ने अपना विज्ञापन करने के उद्देश से एक फ़ौवारा लगवा दिया था। लखनऊ के उस गर्द-गुब्बार के बीच में यही दो वस्तुएँ आँखों को शीतलता प्रदान करने के लिए यथेष्ट समझी गई थीं। लखनऊ अपनी हरियाली और बाग़-बग़ीचों के लिए प्रसिद्ध है, पर मोतीनगर में मानो ये सब चीज़ें वर्जित थीं।

प्रदर्शनी की बाहरी दीवार पर ग्राम-धन्धों का परिचय देनेवाली तसवीरों की क़तार की क़तार अङ्कित की गई थी, पर वे भी मटमैले रंग की थीं और उस स्थान के रेगिस्तानी रूप देने में सहायक हो रही थीं। इस प्रकार देखने से ही नहीं, दिन की गर्मी और रात की ठंडक का अनुभव करने से भी वह स्थान मरु-भूमि-सा प्रतीत होता था। पर उसके भीतर जो चहल-पहलमय जीवन आरम्भ हुआ था वह उतना ही सरस और आकर्षक था इसलिए लोग यह अभाव तुरन्त भूल जाते थे। तो भी लोगों का कहना है कि यदि लखनऊवालों का आपसी वैमनस्य इस गहराई तक न पहुँच जाता तो मोतीनगर की कुछ और ही शान होती।



[लखनऊ शहर में राष्ट्रपति के स्वागत में निकाले गये जलूस का एक दृश्य। कहते हैं यह जलूस अभूतपूर्व था।]

धूप के कारण दिन में मोतीनगर में प्रायः सन्नाटा-सा छाया रहता था। ग्राम-उद्योग-प्रदर्शनी सवेरे-शाम खुलती थी और अधिकतर दूकानें भी दिन में बन्द रहती थीं। पर ज्यों-ज्यों धूप मंद पड़ने लगती थी, चहल-पहल बढ़ने लगती थी और शाम होते ही चारों तरफ़ बिखरी हुई बिजली की अगणित बत्तियाँ चमचमा उठती थीं, जिससे वह स्थान



[कुछ प्रमुख स्वयं-सेविकाएँ।]



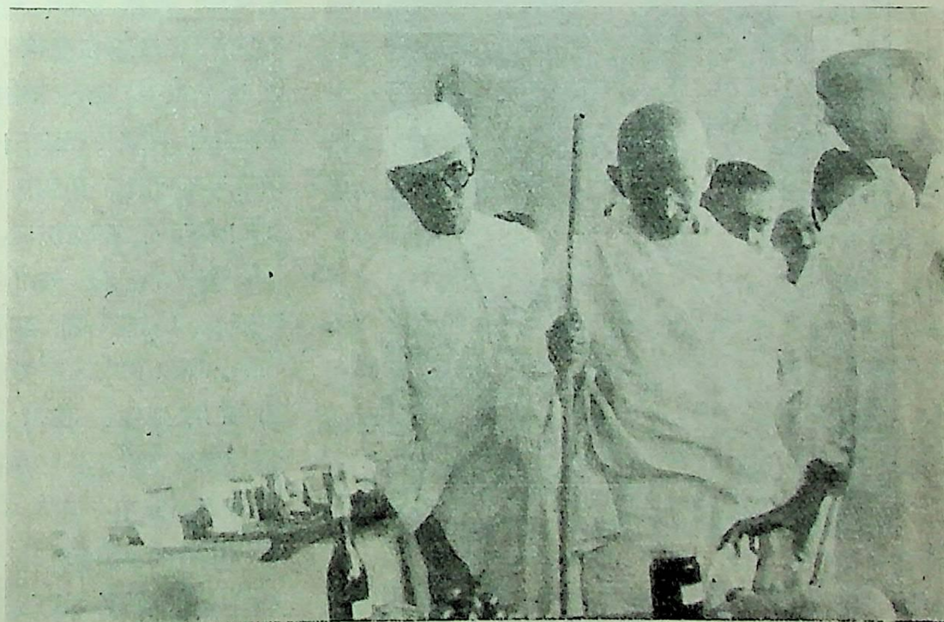
[ज़नाना पार्क लखनऊ में स्वयंसेविकाओं की क़वायद। प्रधान नेत्री श्रीमती सोफ़िया खाँ दाहिनी ओर खड़ी हैं।]

चीज़ें लाकर यहाँ प्रदर्शित की गई थीं। पहले यहाँ कैसे महीन सूती कपड़े बनते थे, इसके भी कुछ नमूने खादी-विभाग में रक्खे गये थे। प्रदर्शनी में स्वदेशी वस्तुओं की बहुत-सी दूकानों के अलावा एक विशाल पंडाल भी था, जिसमें किसी-न-किसी का भाषण, या नृत्य या कविसम्मेलन या मुशायरा हुआ करता था। इस सिलसिले में भी बहुत-से लोग प्रदर्शनी में पहुँच जाते थे।

सचमुच मोतियों का नगर बन जाता था। उस समय लखनऊ के निवासियों का भी मोतीनगर में रेला होता था और इतनी भीड़ होती थी कि राह चलना मुश्किल हो जाता था। यह भीड़ प्रायः १२ बजे रात तक रहती थी और कुछ दूकानें तो दो बजे रात तक खुली रहती थीं।

ग्राम-उद्योग-प्रदर्शनी में प्रवेश चार आने के टिकट पर होता था। तो भी प्रदर्शनी के अन्दर बेहद भीड़ होती थी। इस प्रदर्शनी का उद्देश यह दिखाना था कि भारत के ग्रामों में अभी कहाँ कौन-से उद्योग-धंधे बाक़ी हैं और जब भारत में ग्रामीण जनता स्वावलम्बी थी तब उसकी क्या स्थिति थी। इसके लिए भारत के गाँवों में बनी हुई बहुत-सी

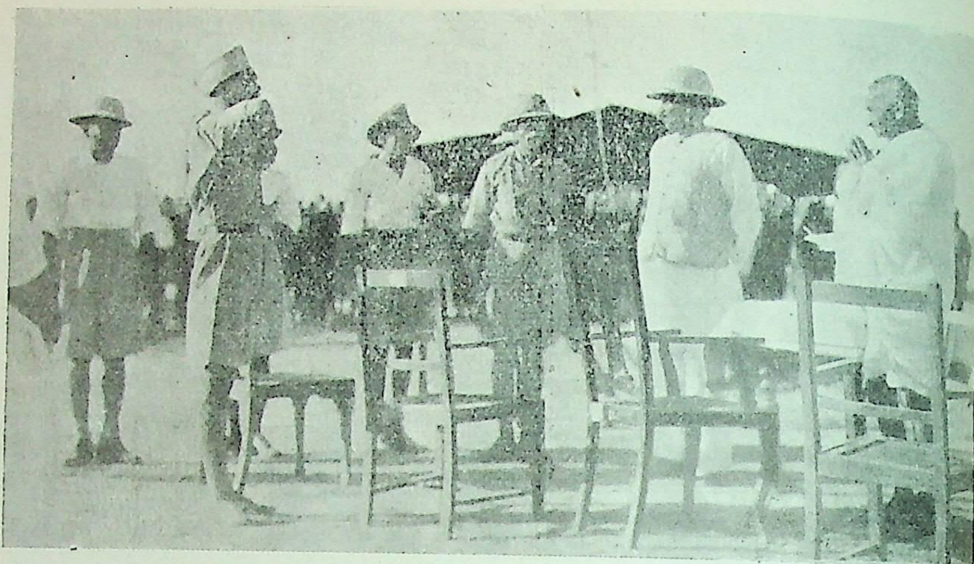
कांग्रेस का महत्त्व एक राष्ट्रीय मेला लगाने में ही नहीं है। उसकी सफलता या असफलता उन राजनैतिक विचारों और निर्णयों पर निर्भर है जो ऐसे अवसरों पर राष्ट्र के नेता जनता के सामने रखते हैं। लखनऊ-कांग्रेस पर



[ग्रामोद्योग प्रदर्शनी में महात्मा गांधी।]

हमें इस दृष्टि से भी विचार करना है।

यों तो सदा की भाँति इस वर्ष भी कांग्रेस ने बहुत-से उपयोगी प्रस्ताव पास किये हैं, पर मुख्य प्रस्ताव जिससे कांग्रेस के कार्य-क्रम में बहुत कुछ परिवर्तन होने की सम्भावना है, यह था कि कांग्रेस देश पर जो नवीन शासन-विधान लादा गया है उसको विफल बनाने के लिए क्या करे; वह कौंसिलों में जाय या न जाय, नवीन शासन-विधान में पद स्वीकार करे या न करे। कांग्रेस की कार्य्य-समिति में इस



[सेनापति श्री सम्पूर्णानन्द जी स्वयं-सेवक दल के पदाधिकारियों का महात्मा गांधी से परिचय करा रहे हैं।]



[राष्ट्रपति अपनी कुटी के द्वार पर। यह चित्र डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने खास तौर से 'सरस्वती' के लिए खींचा था।]

प्रश्न को लेकर घंटों वाद-विवाद हुआ। अन्त में कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव इस आशय का पास किया कि कांग्रेस इस अधिवेशन में अभी कोई विचार न करे। इसे अभी छोड़ दिया जाय और समय आने पर जैसा उचित हो, किया जाय। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस किसी बन्धन में अभी से नहीं पड़ जाना चाहती। वह परिस्थिति के अनुसार कार्य करेगी। वह समय पड़ने पर कौंसिलों में जाकर मंत्रिपद स्वीकार भी कर सकती है और नहीं भी कर सकती। इस प्रस्ताव को लेकर विषय-निर्वाचिनी-समिति में और खुले अधिवेशन में भी बड़ी बहस रही। अन्त में यह प्रस्ताव दोनों जगहों से पास हो गया।

इससे यह तो अभी नहीं कहा जा सकता कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस का क्या रुख़ होगा, पर इस प्रश्न को लेकर विषय-निर्वाचिनी-समिति और खुले अधिवेशन में जो भाषण हुए हैं उनसे उन प्रवृत्तियों का हम अनुमान कर सकते हैं जो इस समय देश में काम कर रही हैं। विषय-निर्वाचिनी-समिति में इस प्रश्न पर सबसे पहले मदरास के श्री सत्यमूर्ति बोले। श्री सत्यमूर्ति अच्छे वक्ता हैं। श्रोता को अपने साथ ले जाना वे जानते हैं। उनकी सम्मति यह है कि कांग्रेस कौंसिलों में जाय और पद

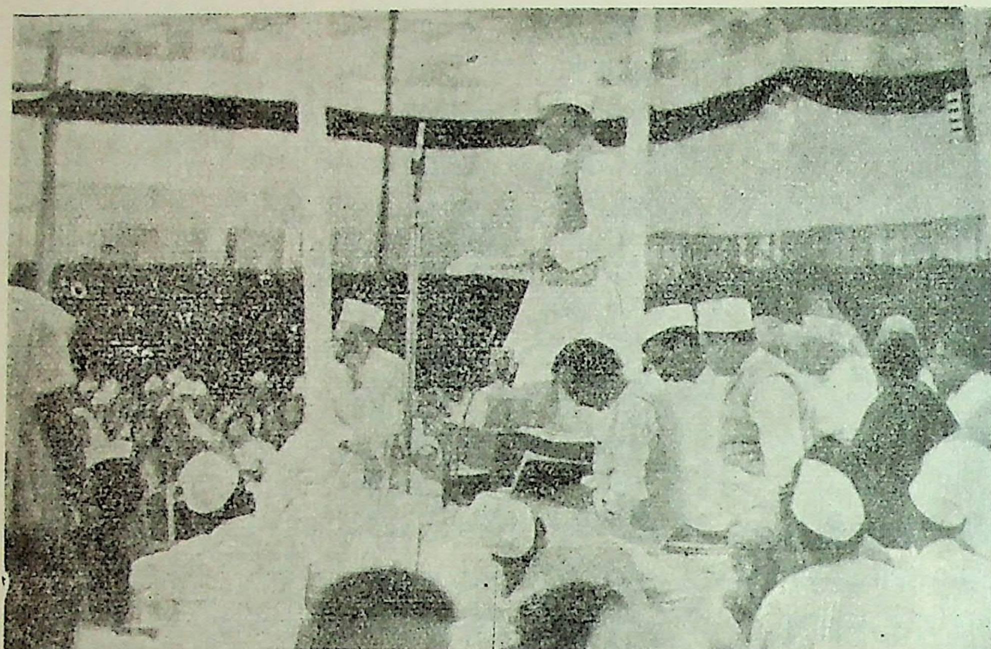
स्वीकार करे। इस बात को उन्होंने बड़े ही ज़ोरदार और तर्कपूर्ण शब्दों में विषय-निर्वाचिनी-समिति के सामने रक्खा। उन्होंने यह कहा कि यदि कांग्रेस की आज्ञा मुझे मिनिस्टर बनने के लिए मिल गई और मैं मिनिस्टर बन गया तो मैं स्कूलों में राष्ट्रीय गानों का प्रचार करूँगा, उनकी इमारतों पर राष्ट्रीय झंडे उड़वाऊँगा, जो पाठ्यक्रम तैयार होंगे उनमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण होगा। आपने यह भी इशारा किया कि यदि कांग्रेस ने पद न स्वीकार किया तो हाँ-हुज़ूर लोग उस पद का दुरुपयोग करेंगे और राष्ट्रीयता के बदले हमारे बालकों में गुलामी का भाव भरेंगे जिसका परिणाम यह होगा कि हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को हमारी सन्तति आगे न बढ़ा सकेगी। श्री शंकरदेव ने सत्यमूर्ति का समर्थन किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि पद अवश्य ग्रहण करना चाहिए, उसके बिना उद्धार असम्भव है।

इन दो वक्ताओं ने विहार के स्वामी सहजानन्द को उत्तेजित कर दिया। स्वामी जी जब बोलने को खड़े हुए तब क्रोध से उनके होंठ फड़फड़ा रहे थे। गुस्से में स्वामी जी ने कांग्रेसमैनों को बहुत कुछ बुरा-भला कहा और कहा कि वे पानी की भाँति बराबर नीचे की ओर गिरते जा रहे हैं। उनसे अधिक ईमानदार तो माडरेट हैं। स्वामी जी ने इस प्रस्ताव को गंदगी से भरा घोषित किया। डाक्टर सत्यपाल ने स्वामी जी के रोष पर थोड़ा ठंडा जल-सा छिड़कते हुए कहा कि श्री सत्यमूर्ति ने हमारे सामने जो सुनहरी तसवीर रक्खी है उस पर मेरा विश्वास नहीं है, पर यह ज़रूर है कि पद-ग्रहण की नीति स्वीकार करके हम उन लोगों का जो सब तरह से हमें नुक़्सान पहुँचाते हैं और हमें बरबाद कर देना चाहते हैं, मुक़ाबिला कर सकते हैं और यह भी एक बड़ी ख़िदमत है।

बंगाल के श्री पी० सी० घोष ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि यह रवैया ठीक नहीं है। गत १५ वर्षों से कांग्रेस चक्कर खा रही है। वह असहयोग करती है। उससे ऊबती है तो कौंसिल में जाती है। कौंसिल से ऊबती है तो फिर असहयोग करती है। इस प्रकार हम कब तक अपनी शक्ति को बरबाद करते रहेंगे। श्री रविशङ्कर शुक्ल ने कहा कि इस प्रस्ताव को जो पद स्वीकार करने के पक्ष में हैं वे भी और जो नहीं हैं वे भी स्वीकार कर सकते हैं, क्योंकि इस प्रस्ताव से आप न कुछ स्वीकार ही करते हैं न अस्वीकार ही। इस निर्णय को अनुकूल परिस्थिति के लिए टालते हैं और फिर जब कार्य-समिति के सदस्य जिनमें महात्मा गांधी, जवाहरलाल आदि नेता हैं, यह कहते हैं कि इसे हमारे ऊपर छोड़ दो, हम समय आने पर निर्णय कर लेंगे तब हमें उनका विश्वास करना चाहिए और इसे आँख मूँद कर पास कर देना चाहिए।

कांग्रेस के सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू अब तक मौन थे। उनकी व्यक्तिगत सम्मति क्या है यह जानने के लिए लोग उत्सुक थे। श्री रविशङ्कर शुक्ल के वक्तव्य से लोगों ने अनुमान किया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू भी कार्य-समिति से सहमत हैं, इसलिए पंडित जी ने इस सम्बन्ध में जनता का भ्रम दूर कर देना आवश्यक समझा। आपने इस अवसर पर जो कुछ कहा उसका सारांश यह है—"श्री रविशङ्कर ने मेरा भी ज़िक्र किया है। इससे मेरे कान खड़े हो गये हैं। मैं एक ख़ास और अजीब हालत में हूँ। मैं कल अपनी राय अपने भाषण में व्यक्त करूँगा, पर मुझे मुनासिब नहीं मालूम होता कि मैं चुप रहूँ और आप शक करें। पर आप यह न समझिए कि मैं आप पर कोई प्रभाव डालना चाहता हूँ। मैं अपने दिल को हलका करना चाहता हूँ। विवाद असल में सिद्धान्तों पर होना चाहिए। पदों को आप स्वीकार करें या नहीं। इस बहस में यह बात छिपी है कि आप अगर उसको लेना चाहते हैं तो आप मानो उस तरफ़ से अपना मुँह मोड़ते हैं, जिधर कांग्रेस पिछले १५ वर्षों से रही है। यह मेरी राय है। पर हमारे आपके सामने एक फ़र्ज़ है। वह यह कि हम कांग्रेस की ताक़त बनाये रहें, उसमें फूट न करें, क्योंकि हमारे दुश्मन बड़े बेरहम हैं। मेरी कोशिश यह रहेगी कि सब विचार के कांग्रेसमैन मिलकर एक साथ काम करें।"

श्री सुरेशचन्द्र बनर्जी और श्री विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी इस प्रस्ताव के विरोध में बोले। पर श्री विश्वनाथम ने कहा कि पद-ग्रहण करना भी एक क्रान्तिकारी



[कांग्रेस-विषय-निर्वाचिनी समिति का एक दृश्य। पंडित जवाहरलाल नेहरू भाषण कर रहे हैं। बाबू राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज़, आचार्य कृपलानी, जयरामदास दौलतराम, श्रीमती सरोजनी नायडू आदि नेता मंच पर विराजमान हैं।]

सैयद रज़ाअली ने कहा कि नये विधान में पद स्वीकार करने के लिए जो लोग लालायित हैं वे इस विधान को मौजूदा विधान से भी बुरा बता चुके हैं। और मज़ा यह देखिए कि उसी बुराई में फँसने जा रहे हैं।

प्रस्ताव के विरोधियों में से बहुतों ने कहा था कि कांग्रेस देश को भ्रम में क्यों रक्खे, उसे जो कुछ निर्णय करना हो अभी क्यों न कर दे। इसका उत्तर श्री गोविन्दवल्लभ पंत और मौलाना अबुल-कलाम आज़ाद ने दिया।

काम है, क्योंकि इस नीति का अवलम्बन करके हम न तो कार्य करेंगे, न सरकार को कुछ करने देंगे। डाक्टर ख़ाँ ने कहा कि हम तो सिपाही हैं। दोनों दल मिलकर जो फ़ैसला कर दें वह हम मानने को तैयार हैं। काशी-विद्यापीठ के आचार्य नरेन्द्रदेव अस्वस्थ थे। पर आपने मानो यह अनुभव किया कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा तो भारी अनर्थ होगा। इसलिए आप अस्वस्थ होते हुए भी विषय-निर्वाचिनी-समिति में पधारे और खड़े न हो सकने पर बैठे ही बैठे बोले—"इस प्रस्ताव को स्वीकार करके आप अपने साथ सारे देश को ग़ुलामी के गड्ढे में डाल देंगे।" इसके बाद टी० प्रकाशन और श्री कृपलानी के भाषण हुए। कृपलानी जी ने कहा—"क्रान्तिकारी कौंसिलों में जाकर और आफ़िस लेकर भी क्रान्तिकारी बना रह सकता है। क्रान्तिकारी कार्यक्रम के लिए कौंसिलों में जाना ही नहीं पद-ग्रहण करना भी आवश्यक है। मुख्य बात तो वह शक्ति है जो आप किसी भी कार्य-क्रम में लगा सकते हैं।"

पंत जी का भाषण तर्कपूर्ण था। आपके कहने का सारांश यह था कि अभी वक्त नहीं आया कि हम इसी वक्त कोई फ़ैसला कर दें। मौलाना अबुलकलाम ने कहा कि—"हम अपने हथियार दुश्मन को क्यों दिखा दें कि वह सावधान हो जाय।" इसका उत्तर पट्टाभि सीतारमैया ने दिया। ये महाशय कार्य-समिति के एक अच्छे विद्वान् सदस्य हैं और इनका भाषण भी प्रभावशाली होता है। कार्य-समिति के सिर्फ़ यही एक ऐसे सदस्य थे जिन्होंने कार्य-समिति के प्रस्ताव का विरोध किया था। आपने कहा कि मौलाना ने कहा है कि अपना हथियार न दिखाओ, मानों हमारे हथियार छिपे हुए हैं—मानो हमारा सब काम खुल्लम-खुल्ला नहीं है। श्री सत्यमूर्ति की बात का जवाब देते हुए आपने कहा कि आप स्कूलों में राष्ट्रीय झंडे नहीं लगा सकते। स्कूल इन्स्पेक्टर आपकी आज्ञा नहीं मानेंगे, डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन आपकी बात नहीं सुनेंगे। आप एक विचार रखते हैं। आपके विचार के पीछे एक भावना काम कर रही है। उसकी रक्षा होनी चाहिए।

प्रस्ताव के विरोध में बोलनेवालों में पट्टाभि सीतारमैया का भाषण सबसे प्रभावशाली रहा और क्षण भर को ऐसा जान पड़ा जैसे उन्होंने अब तक के सारे किये-कराये पर पानी फेर दिया हो।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने श्री पट्टाभि सीतारमैया के इस वक्तव्य पर आपत्ति की। आपने कहा कि मैं इसको किसी हालत में अच्छा नहीं समझता कि जो कार्य-समिति का सदस्य हो वह उसके प्रस्ताव के ख़िलाफ़ कुछ बोले। कार्य-समिति की नीयत पर हमला करना मुनासिब नहीं है। परन्तु सभापति ने यह कहकर कि यह तो पैर में बेड़ी डालना हुआ, इस प्रश्न को टाल दिया। बिहार के बाबू मथुराप्रसाद ने कहा कि कौंसिल एक मशीन है। हमें इस मशीन को अपने क़ाबू में करना चाहिए और श्री कृष्णवल्लभसहाय ने कहा—"शब्दाडम्बर व्यर्थ है। जो करना हो साफ़ साफ़ कीजिए। पद स्वीकार कीजिए और उसके द्वारा जो हो सके रचनात्मक कार्य कीजिए।" विरोध में बोलनेवालों में श्री पटवर्धन भी थे। आपने कहा कि हम छः महीने और क्यों निद्रा में पड़े रहें। जो प्रस्ताव के पक्ष में बोले हैं वे सब आफ़िस लेने में विश्वास करते हैं।



[महात्मा गांधी, बाबू श्रीप्रकाश जी, सेठ जमनालाल बजाज़ और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद। कांग्रेस के खुले अधिवेशन में वन्दे मातरम् गान के समय खड़े होने पर।]

इस प्रस्ताव के कई एक संशोधन पेश हुए थे और उनके सम्बन्ध में भी भाषण हुए थे। अन्त में बाबू राजेन्द्र-प्रसाद ने सबको उत्तर देते हुए विवाद को समाप्त किया। आपने कहा—"मैं कल से और पहले से सुन रहा हूँ कि कार्य-समिति ने जो प्रस्ताव रक्खा है उसमें वही अर्थ नहीं है, बल्कि उसके दिल में चोर है और वह आपको वक्त पर धोखा दे सकती है। इस तरह हमें एक दूसरे की नीयत पर शक नहीं करना चाहिए। हम वही फ़ैसला करेंगे जो मुल्क के लिए सबसे अच्छा होगा।"

मत लिये जाने पर सब संशोधन एक एक करके गिर गये और मूल प्रस्ताव पास हुआ।

विषय-निर्वाचिनी-समिति के बाद कांग्रेस के खुले अधिवेशन में भी इस प्रस्ताव पर लगभग ५ घंटे तक बहस हुई, जिसमें ऊपर जिनका ज़िक्र आ चुका है उनके अतिरिक्त सरदार शार्दूलसिंह, श्री सम्पूर्णानन्द, महामना मालवीय जी, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि नेता बोले। शार्दूलसिंह ने कहा—"कांग्रेसवादी कौंसिलों में जाकर भूखी और नंगी जनता की समस्या हल नहीं कर सकते।" महामना मालवीय जी ने साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध पर ज़ोर दिया और कहा कि "कांग्रेस ने गत ५० वर्षों के अन्दर अनिवार्य शिक्षा और कृषि-विस्तार आदि से सम्बन्ध रखनेवाली माँगें पेश कीं। आज इन माँगों की बात हमें नहीं सुनाई पड़ती, केवल झण्डा फहराने की बात सुनाई पड़ती है।" सरदार पटेल ने सखेद मालवीय जी के भाषण का विरोध किया और कहा कि "जिस समय गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की स्वीकृति दी थी उस समय मालवीय जी ने

२० हज़ार स्वयंसेवक देने को कहा था पर वे स्वयंसेवक नहीं आये।" ख़ैर, भारी वादविवाद के बाद यह प्रस्ताव खुले अधिवेशन में भी पास हो गया।

यह विवाद बहुत लम्बा था। इसको यहाँ पूरा नहीं दिया जा सकता, पर ऊपर हमने संक्षेप में जो कुछ दिया है उससे कांग्रेस के अन्दर काम करनेवाली प्रवृत्तियों का पाठकों को परिचय मिल सकता है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, आचार्य कृपलानी आदि नेता उस दल के हैं जो अब तक अपरिवर्तनवादी दल के नाम से विख्यात रहा है। कौंसिलों पर क़ब्ज़ा करने के लिए जब स्वराज्य-पार्टी का निर्माण हो रहा था तब इनमें से अधिकांश ने उसका तीव्र विरोध किया था। इससे कम-से-कम इतना तो स्पष्ट ही है कि ये लोग भी स्वराजियों की भाँति कौंसिलों में जाना आवश्यक समझ रहे हैं और बहुत सम्भव है कि वक्त पड़ने पर ये कौंसिलों में जायँ और पद भी ग्रहण करें। इसमें सन्देह नहीं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू पद-ग्रहण की नीति के विरुद्ध हैं, पर उनके भाषण से यह स्पष्ट है कि वे कांग्रेस में फूट नहीं चाहते और वही करेंगे जिसमें सब विचार के लोग कांग्रेस में रह सकें। यह कार्य जितना कठिन है, उतना ही परिस्थिति को देखते हुए आवश्यक है, और यदि पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस की शक्ति को बिखरने से बचा सकेंगे तो यह उनकी सबसे बड़ी सफलता होगी।

लखनऊ की विषय-निर्वाचिनी-समिति का पण्डाल अब तक के उसके लिए बनाये गये पण्डालों से बहुत बड़ा था, और वह ख़ूब भर भी जाता था। पण्डाल अन्दर से बिलकुल सादा था। कांग्रेस के झण्डे का परिचय देनेवाली हरे, सफ़ेद और पीले रंग की एक लम्बी पट्टी उसके ऊपरी हिस्सों में दीवार के चारों तरफ़ लटकाई गई थी। नीचे चटाइयाँ बिछी थीं और उन पर दरियाँ पड़ी थीं। बीच में एक विशाल चबूतरा था जिस पर सभापति और कार्य-समिति के सदस्य तथा अन्य सम्मानित सदस्य बैठते थे। इनमें दिखाई पड़नेवालों में कुछ नाम ये हैं—पंडित जवाहरलाल नेहरू, बाबू राजेन्द्र-प्रसाद, महामना मालवीय जी, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री गंगाधरराव देशपांडे, श्री जयरामदास दौलतराम, डाक्टर अनसारी, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री भूलाभाई देसाई, श्री जमनालाल बजाज़, कवीश्वर शार्दूलसिंह, मिस्टर और मिसेज़ मुंशी, लाला दुनीचन्द, डाक्टर महमूद, श्री नरीमैन, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद।

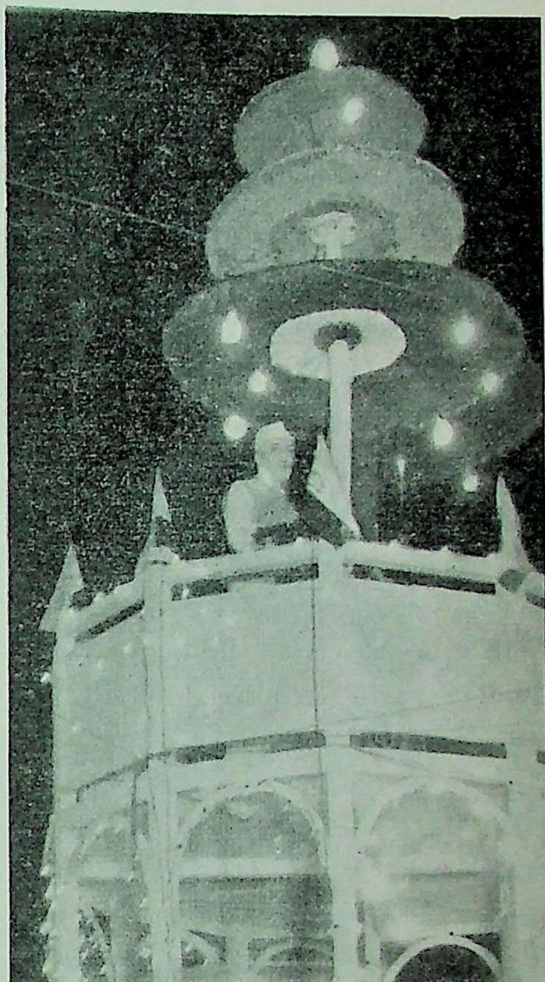
लाउड स्पीकरों का प्रबन्ध बड़ा सुन्दर था। इससे एक एक बात साफ़ साफ़ सुनाई पड़ती थी। विषय-निर्वाचिनी-समिति में उपस्थित लोगों को पानी पिलाने की बड़ी सुन्दर व्यवस्था थी। केशरिया वस्त्र धारण किये हुई स्वयं-सेविकायें लकड़ी के केसों में एक साथ आठ आठ गिलास लेकर चारों ओर पानी पहुँचाती थीं। यह प्रबन्ध लखीमपुर की जल-शाला की ओर से था। यह जलशाला उस शहर के कतिपय उत्साही नागरिकों ने क़ायम की है और उनका कहना है कि यह बड़ी सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। गर्द और धूप से बचने के लिए यह पण्डाल चारों ओर से वस्त्र और टाट से मढ़ दिया गया था, तो भी कभी कभी तेज़ हवा के झोंके इसे झकझोर देते थे और अन्दर धूल का एक हलका-सा बादल छा जाता था।

मुख्य पण्डाल बहुत बड़ा और खुला बनाया गया था। उसमें ५० हज़ार से ऊपर आदमियों के बैठने की व्यवस्था की गई थी। द्वार अत्यन्त सुन्दर बनाये गये थे और उन पर राष्ट्रीय चित्र अङ्कित थे। रात को इन द्वारों पर बड़ी सुन्दर रोशनी होती थी। द्वार से भीतर प्रवेश करने पर वृत्ताकार एक चौड़ा मार्ग मिलता था यह पण्डाल के चारों ओर गया था। इससे मोटरें अन्दर तक चली जाती थीं। यह पण्डाल बाहर एक टीन की दीवार से घिरा था। अन्दर कपड़े की दीवार का एक घेरा और था। टिकटों की जाँच-पड़ताल कई स्थानों पर होती थी। यह पण्डाल बिजली की रोशनी से जगमगाता रहता था और स्थान स्थान पर लाउड स्पीकर लगे थे। वक्ताओं के लिए बीच में एक सुन्दर मञ्च तैयार किया गया था, जिसमें हरे, सफ़ेद और पीले वस्त्रों की छतरियाँ एक के ऊपर दूसरी बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से लगाई गई थीं। इसी पर खड़े होकर वक्ता लोग बोलते थे। और प्रायः इसी पर बैठकर पंडित जवाहरलाल नेहरू सभा का संचालन करते थे।

पहले दिन का कार्य-क्रम वन्दे मातरम् के मनोहर गायन के साथ आरम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष बाबू श्रीप्रकाश जी ने अपने भाषण में आगन्तुकों का स्वागत किया और कहा—"कांग्रेस के इतिहास में शायद एक ही दो बार पहले ऐसा मौक़ा पड़ा होगा जब स्वागत-कमिटी का सदर ख़ुद उस शहर का नहीं रहा जहाँ कांग्रेस का जलसा हुआ। स्वागत-कमिटी का सदर और स्वयंसेवक-दल का मुखिया बनारस यानी काशी के तीर्थस्थान से शायद इस वास्ते लाये गये हैं कि यह कहा जा सके कि गो हमारा इन्तज़ाम उन लोगों के लायक़ नहीं है जो राजाओं और नवाबों की मेहमानदारी करते रहे हैं लेकिन उनके लायक़ हो सकता है जो तीर्थयात्रियों के ही मेज़बान रहे हैं।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू का भाषण बहुत लम्बा था, पर आपने उसे आदि से अन्त तक धैर्य के साथ पढ़ा और उपस्थित जन उसी धैर्य के साथ उसे सुनने में तल्लीन रहे। पंडित जी ने अपने भाषण में इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतवर्ष की समस्या संसार की समस्या का एक अङ्ग है और उससे पृथक् कर वह नहीं सुलझाई जा सकती। आपने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि संसार की समस्या और उसके साथ साथ भारत की भी एकमात्र समाजवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार करने से हल हो सकती है। कौंसिलों में जाकर उन्हें बे-काम बना देने की नीति का आपने समर्थन किया पर पद-ग्रहण को आपने साम्राज्यशाही के कलपुर्ज़ों के साथ शिरकत करना बतलाया। आपके भाषण का एक महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है—

हम देखते हैं कि आज-कल की दुनिया में दो बड़े बड़े गरोह हैं। एक तरफ़ साम्राज्यवाद और फ़ासिस्टवाद और दूसरी तरफ़ समाजवाद और राष्ट्रवाद। कहीं कहीं ये एक-दूसरे से कुछ मिलते-से मालूम होते हैं और उनको एकदम अलग करना मुश्किल है, क्योंकि फ़ासिस्टवाद के और साम्राज्यवाद के देशों में आपस का विरोध है और पराधीन देशों का राष्ट्रवाद कभी कभी थोड़ा-सा फ़ासिस्टवाद का रूप ले लेता है। लेकिन असल फ़र्क़ तो इन दोनों गरोहों में है, और अगर हम इसे याद रक्खें तो दुनिया की हालत और उसमें अपना स्थान समझने में हमें आसानी होगी।



[कांग्रेस के खुले अधिवेशन में राष्ट्रपति अपना लिखित भाषण पढ़ रहे हैं। यह चित्र रात को लिया गया था।]

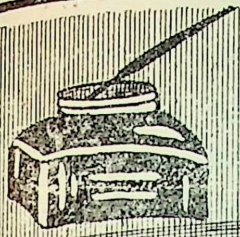
हम लोग जो आज़ाद हिन्दुस्तान के लिए कोशिश कर रहे हैं, कहाँ हैं? ज़ाहिर है कि हम दुनिया की आगे बढ़नेवाली उन ताक़तों के साथ हैं जो साम्राज्यवाद और फ़ासिस्टवाद के ख़िलाफ़ खड़ी हैं। हमको भारत में एक साम्राज्यवाद का यानी अँगरेज़ी साम्राज्यवाद का ख़ास मुक़ाबिला करना है। यह सबसे पुराना है और आज की दुनिया में सबसे ज़्यादा फैला हुआ है। पर ताक़तवर होते हुए भी वह दुनिया के साम्राज्यवाद का केवल एक अङ्ग है। और यही हिन्दुस्तान की पूरी आज़ादी और उसका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य से तोड़ने के लिए आख़िरी दलील है। भारत के राष्ट्रवाद में, भारत की आज़ादी में

और ब्रिटिश साम्राज्यवाद में मेल की कोई गुंजाइश नहीं है। और अगर हम इस साम्राज्यवाद के फंदे में फँसे रहेंगे तो हमारा नाम और हमारी हैसियत चाहे जो रहे और ऊपर ऊपर चाहे जितनी राजनीतिक ताक़त हमें मिल जाय, दर असल हम बँधे ही रह जायँगे, पीछे घसीटनेवाली ताक़तों से हमारा सम्बन्ध बना रहेगा और पूँजीवाद का माली स्वार्थ हमें दबाता रहेगा, आम जनता की बरबादी इसी तरह जारी रहेगी और हमारा कोई ज़रूरी सामाजिक मसला हल न हो पायेगा। सच्ची राजनैतिक आज़ादी भी हमें कभी न मिल सकेगी, और बड़ी बड़ी सामाजिक तबदीलियाँ तो हम कर ही न सकेंगे।

ज्यों-ज्यों यह बड़ी जंग दुनिया में फैली है, हमने देखा कि पूँजीवाद और साम्राज्यवादी देश गिरते जाते हैं और अपने को बचाने की कोशिश में सब ऐसी ताक़तों को जो कि पीछे ले जानेवाली हैं, उनको संघटित कर रह हैं, फ़ासिस्टवाद के नाम से या नाज़ीवाद या जो 'राष्ट्रवादी' हुकूमतें कहलाती हैं। हिन्दुस्तान में भी कुछ वर्षों से हम यही ढंग देख रहे हैं और ज्यों ज्यों हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ा है उतनी ही हमारे साम्राज्यवादी हुक्कामों ने हमारे संघटन को तोड़ने की कोशिश की है और अपने झंडे के नीचे देश को पीछे ले जानेवाली ताक़तों को इकट्ठा किया है। गोलमेज़ कान्फ़रेन्स ऐसी ही कोशिश थी। उनसे हमारे हाकिमों को कुछ मदद ज़रूर मिली। हमें भी उनसे एक फ़ायदा हुआ कि उन्होंने साफ़ साफ़ दिखा दिया कि देश में साम्राज्यवाद की तरफ़ कौन लोग हैं और उसके ख़िलाफ़ कौन हैं। अफ़सोस यह है कि हमने इस सबक़ से पूरा फ़ायदा नहीं उठाया। और हमको अब भी यह ख़्याल है कि हम इन साम्राज्यवादी गरोहों में से कुछ को हिन्दुस्तान की आज़ादी के हक़ में और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ कर सकेंगे।

दूसरे दिन की कार्य्यवाही आरम्भ करते समय पंडित जी ने जलियाँवाला बाग़ की रोमाञ्चकारी घटना का ज़िक्र किया। यह घटना उसी तारीख़ को उसी समय घटी थी। पंडित जी ने उपस्थित जनता से खड़े होकर मृतकों की स्मृति में २ मिनट की ख़ामोशी की प्रार्थना की। पंडित जी की आज्ञा पाते ही ५० हज़ार से ऊपर की भीड़ तुरन्त ख़ामोश हो गई और सब लोग खड़े हो गये। उस समय इतनी ख़ामोशी छा गई थी कि पण्डाल के बाहर बहुत दूर पर एक कुएँ में डोल गिरने का शब्द पण्डाल में साफ़ साफ़ सुनाई पड़ रहा था। जो लोग विलायत से लौट कर आते हैं वे वहाँ के जनसमूहों की नियमबद्धता की बड़ी प्रशंसा करते हैं, परन्तु संगठित जन-समूह भारतवर्ष में भी चमत्कार दिखा सकते हैं। यह दो मिनट की ख़ामोशी इसका एक उत्तम उदाहरण था। दूसरे दिन का अधिवेशन दो बजे रात तक होता रहा और वह महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ जिसका कि हम ऊपर ज़िक्र कर आये हैं।

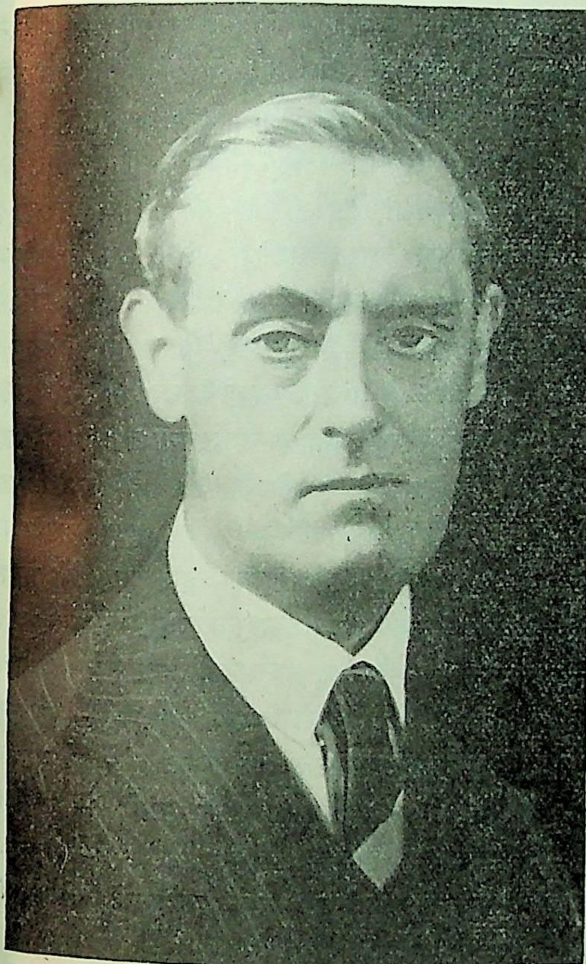
कांग्रेस के इस अधिवेशन में दो बातें स्पष्ट थीं। पहली तो यह कि सब विचार के कांग्रेसमैनों में समझौते की—मिलकर काम करने की—प्रवृत्ति थी। यह कदाचित् इसलिए कि लोगों ने यह अनुभव कर लिया है कि कांग्रेस को प्रभावशाली बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें फूट न हो और उसकी शक्तियाँ बिखरने न पावें। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें किसी महान् व्यक्ति ने अपना प्रभाव डालकर किसी निर्णय को अपने इच्छानुसार स्वीकृत करवाने की चेष्टा नहीं की। महात्मा गांधी विषय-समिति में तो एक बार भी नहीं आये और खुले अधिवेशन में यद्यपि वे एक दिन उपस्थित थे, पर कुछ बोले नहीं। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट करते हुए यह स्पष्ट कह दिया था कि यह किसी पर प्रभाव डालने के लिए नहीं, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मैं कह रहा हूँ। किसी ओर से कोई ज़िद नहीं थी। अल्प मतवाले कांग्रेस छोड़ने की धमकी न देकर उलटा उसमें अपना सुरक्षित स्थान बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। इस प्रकार इस कांग्रेस ने वास्तव में वे निर्णय किये जो एक आदर्श प्रजातन्त्रात्मक संघ में हो सकते हैं और सभापति ने जिस उदारता और दूरदर्शिता के साथ नई कार्य-समिति का चुनाव किया है उससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस वर्ष सारे देश पर कांग्रेस का व्यापक प्रभाव पड़ेगा और वह उन कठिनाइयों का सामना करने में समर्थ होगी जो उसके सामने खड़ी हैं।



सम्पादकीय नोट

भारत के नये वायसराय

भारत के नये वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने अपने गौरव-पूर्ण पद का कार्यभार १८ अप्रेल को दिल्ली में ले लिया। नया शासन-विधान आपके ही समय में कार्य में परिणत होगा। आप भारत के लिए नये नहीं हैं।



[लार्ड लिनलिथगो]



[लेडी लिनलिथगो]

पिछले शाही कृषि-कमीशन के अध्यक्ष के रूप में आप भारत आ चुके हैं और उसके निवासियों के सबसे बड़े अंश का आवश्यक परिचय भी प्राप्त कर चुके हैं। अतएव आशा है कि कम से कम किसानों के हित के सम्बन्ध में आपके समय में कोई महत्त्व का कार्य अवश्य होगा। विलायत में किसानों के एक संघ में भाषण करते हुए आपने कहा भी है कि अगले पाँच वर्षों में वे भारतीय किसानों की भलाई का कोई स्थायी कार्य कर सकेंगे। परन्तु नये शासन-विधान के निर्माण में भी आप का पूरा हाथ रहा है। उसकी रचना के लिए पार्लियामेंट की जो ज्वाइंट सेलेक्ट कमिटी बैठी थी उसके आपही अध्यक्ष थे। अतएव उस

विधान की सारी बारीकियों से आप भले प्रकार परिचित हैं। और अब जब उक्त विधान कार्य-रूप में परिणत होगा तब इस अवसर पर आप वायसराय-पद का भार ग्रहण करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध होंगे। जिन प्रतिबन्धों को भारतीय राजनीतिज्ञ सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और जिन्हें सरकारी राजनीतिज्ञ भारत के हित में बताते हैं उनकी इस गुत्थी को सुलझाने के लिए आपसे अधिक कार्यक्षम दूसरा व्यक्ति और कौन हो सकता है ? ऐसी दशा में आपका वायसराय-पद के लिए निर्वाचित होना सभी दृष्टियों से उपयुक्त प्रतीत होता है। भगवान् करे, आपके शासनकाल में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की प्रतिज्ञायें सार्थक हों तथा भारत आत्मशासन का सम्यक् अधिकार प्राप्त करे।

———

महायुद्ध की समस्या

जर्मनी ने लोकार्नो की सन्धि को भंग करके योरप के सन्धि-बन्धनों को शिथिल कर दिया है। सन्धि-पत्रों के विपरीत राइनलेंड में अपनी सेना भेजकर उसने प्रकट कर दिया है कि महायुद्ध के विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्रों को अब अधिक समय तक दबाये नहीं रख सकते। फलतः आस्ट्रिया ने भी घोषित कर दिया है कि वह भी अपनी सेना की संख्या में वृद्धि करेगा और सेंट जर्मन के सन्धिपत्र की कम से कम इस सम्बन्ध में उपेक्षा करेगा। तब तुर्की का डार्डेनेलीज़ की जल-प्रणाली में मोर्चाबन्दी की माँग करना सर्वथा उचित ही माना जायगा। इस प्रकार पिछले महायुद्ध के ये पराजित प्रमुख राष्ट्र आत्मरक्षा की दुहाई देकर महायुद्ध के बाद की गई सन्धियों को भंग करने को यत्नवान् हो रहे हैं। अवस्था से यही प्रकट होता है कि महायुद्ध के विजयी राष्ट्रों में पहले का सा ऐक्य नहीं रहा, अन्यथा इन राष्ट्रों को इस प्रकार की बातें करने का साहस न होता। यद्यपि यह निष्कर्ष अधिकांश में ठीक है, तथापि यह भी है कि महायुद्ध के विजयी राष्ट्र कम से कम इस समय ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहते कि योरप में युद्ध छिड़ जाय। और उन राष्ट्रों में ग्रेटब्रिटेन जब तक अपनी सम्मति नहीं देगा तब तक योरप में युद्ध नहीं होगा। परन्तु वह तो मानो शान्ति भङ्ग न होने देने की शपथ ले चुका है। यही एक ऐसा शुभ लक्षण है, जिससे संसार ऐसी अशान्त अवस्था में भी शान्ति का उपभोग कर रहा है। परन्तु योरप की वर्तमान अनिश्चित अवस्था को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रेटब्रिटेन अपने प्रयत्न में सफल होगा। इस समय योरप के राजनीतिज्ञों के आगे इटली-अबीसीनिया और जर्मनी-फ्रांस के प्रश्न उपस्थित हैं और वे इन दोनों प्रश्नों के हल करने में टाल-मटूल की नीति से काम ले रहे हैं। आश्चर्य नहीं है कि वे इस समय अपने प्रयत्न में सफल हो जायँ, परन्तु इन प्रश्नों से सम्बन्धित राष्ट्रों पर उनके इस व्यवहार का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा और भविष्य के भयावह विग्रह का यही कारण होगा। परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उन लोगों ने ढील देकर इन दोनों प्रश्नों को इस समय महत्त्वहीन अवश्य बना दिया है।

इसी तरह एशिया के सुदूर भाग में जापान और रूस के संघर्ष की जो चर्चा छिड़ी हुई है वह भी शुष्क चर्चा ही रहेगी। रूस युद्ध का विरोधी है और जापान को भी अँगरेज़ों और संयुक्त-राज्य का डर है। इसके सिवा जापानियों में स्वयं ऐक्य का अभाव हो गया है, जो जापान की सेना के पिछले विद्रोह से भले प्रकार सिद्ध हो जाता है। फिर जापान में जो नया मंत्रिमण्डल बना है वह उतना बलवान् भी नहीं है। सरकारी शासक-मण्डली से वहाँ के सभी प्रमुख राजनीतिज्ञ तथा सैनिक अलग हो गये हैं या अलग कर दिये गये हैं। ऐसी दशा में इच्छा होते हुए भी जापान रूस से इस समय कदापि युद्ध नहीं करेगा। निस्सन्देह योरप की अपेक्षा एशिया के उस अञ्चल में युद्ध छिड़ जाने की अधिक सम्भावना है। परन्तु जापान की वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि जापान-रूस का युद्ध होगा। इस समय युद्ध के ख़तरे की ऐसी ही शिथिल अवस्था है और कूटनीतिज्ञ उसे अपने भरसक कम से कम अभी कुछ समय तक प्रबल नहीं होने देंगे। उनकी इसी में भलाई है भी।

———

मुसलमानी राज्यों का संगठन

तुर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और ईराक के मुसलमानी राज्यों में समझौता हो गया है और ये चारों देश

एक-दूसरे के मित्र हो गये हैं। परन्तु इन राज्यों के संघ में अरब शामिल नहीं हुआ है, तथापि वह पीछे भी नहीं है। अभी हाल में नेज्द के सुलतान ने ईराक से अलग समझौता किया है और इसमें यमन भी शामिल हो गया है। इस प्रकार अरब के तीन राज्यों का एक अलग संघ क़ायम हुआ है। आश्चर्य नहीं कि आगे चलकर ये दोनों संघ मिल जायँ। परन्तु अभी इसकी आशा कम है। इसका एक कारण यह है कि अभी अरब के दो बड़े-बड़े भाग स्वाधीन नहीं हैं। फिर उन पर योरप के प्रबल राष्ट्रों का काफ़ी दबाव भी है। उनके अरब में कई तरह के हित तथा स्वार्थ हैं, जिनके कारण वे अरब के राज्यों को अपने चंगुल से बाहर नहीं हो जाने देना चाहते। इसमें सन्देह नहीं है कि अरब पहले की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्राप्त कर गया है, परन्तु उसमें अभी ठोसपन का अभाव है। तथापि उनमें जो विलक्षण जाग्रति हुई है वह आशाजनक है और वह दिन दूर नहीं है जब हम अरब के राज्यों को अपने सहधर्मी दूसरे राज्यों की मित्र-मण्डली में समवेत पायेंगे। योरपीय महायुद्ध के फल-स्वरूप जहाँ मुसलमानी राज्यों में से तुर्की का साम्राज्य भंग हो गया है, वहाँ उसके स्थान में जो नये राज्य अस्तित्व में आये हैं उनमें तथा उनमें भी जो अब तक अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त थे, राष्ट्रीयता की एक ऐसी लहर दौड़ गई है कि उनमें नव-जीवन का सञ्चार हो गया है। यही कारण है कि उन सबकी आज अति शीघ्रता से काया पलट रही है और वे अधिक साधन-सम्पन्न, सजीव तथा शक्तिशाली राष्ट्र बनने का उपक्रम कर रहे हैं। एशिया के एक बड़े अंश का यह जागरण एशिया के भविष्यत् गौरव का ही सूचक है।

इटली और अबीसीनिया

इटली और अबीसीनिया का भीषण संग्राम अभी तक जारी है। इटली अपने हवाई जहाज़ों की गोलाबारी से अबीसीनिया के रक्षित एवं अरक्षित नगरों को ध्वंस करने में लगा हुआ ही था कि पिछले दिनों से उसने ज़हरीली गैसों का भी प्रयोग करना शुरू कर दिया है। फलतः अबीसीनिया की सेनाओं के पैर उखड़ गये हैं और वे उत्तर तथा दक्षिण दोनों युद्ध-क्षेत्रों में बुरी तरह हारे हैं।

परन्तु इतने पर भी अबीसीनिया की फ़ौजें शत्रु का सामना करने से विमुख नहीं हो रही हैं, बरन दृढ़ता से उसका मुक़ाबिला बराबर किये जा रही हैं। वास्तव में यह हाथी-मेढ़े की लड़ाई हो रही है। आश्चर्य है कि मेढ़ा अभी तक डटा हुआ है। इटली जैसा आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सज्जित प्रबल राष्ट्र अभी तक अबीसीनिया को पूर्णरूप से पददलित नहीं कर सका है। निःसन्देह अबीसीनिया के निवासी असाधारण योद्धा हैं और उन्होंने पिछले दिनों युद्ध-क्षेत्र में अपने शौर्य और वीर्य का महत्त्वपूर्ण परिचय दिया है। उन्हें अपनी स्वाधीनता का अभिमान है। और इस सारी अवस्था का श्रेय उनके सम्राट् हेल सेलासी को है, जिन्होंने अपने राष्ट्र के इस महान् संकटकाल में अपरिमित साहस और अप्रतिम बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। आज सारे संसार की सहानुभूति को अपने पक्ष में करके उन्होंने जिस धैर्य के साथ शत्रु के आक्रमणों का अब तक वारण किया है उससे उनके गौरव की वृद्धि हुई है। परन्तु अब अबीसीनिया की सेनायें इटली के हवाई हमलों और ज़हरीली गैस के आगे नहीं ठहर रही हैं और दिन दिन यह प्रकट होता जा रहा है कि अबीसीनिया को इटली अब निगल जायगा। लोगों को यह झूठी आशा थी कि राष्ट्रसंघ के बीच में पड़ जाने से संसार के इस प्राचीन स्वतन्त्र राष्ट्र की रक्षा हो जायगी। परन्तु अब जर्मनी और फ़्रांस की समस्या ने इस बात को भी स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्र-संघ अबीसीनिया की रक्षा नहीं कर सकेगा। अब तो उसकी अभिमन्यु की-सी दशा है और वह उसी तरह शत्रु का दृढ़ता से मुक़ाबिला भी कर रहा है। यदि उसके सौभाग्य से कोई अघटघटना घट गई तो उसकी रक्षा हो जायगी, अन्यथा उसकी स्वतंत्रता का विनाश प्रत्यक्ष है।

लखनऊ की कांग्रेस

लखनऊ में ४९ वीं कांग्रेस का अधिवेशन सफलता-पूर्वक हो गया। सफलतापूर्वक इसलिए कि कांग्रेस में फूट नहीं होने पाई और अपने-अपने मतभेदों को रखते हुए

कांग्रेस के कार्यकर्ता एकतापूर्वक राष्ट्र के उद्धार का कार्य करने के सन्नद्ध हैं। इसका सारा श्रेय जहाँ महात्मा गान्धी के है, वहाँ पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कम नहीं है, जिन्होंने कांग्रेस के संकटकाल में अपना मतभेद भुलाकर कांग्रेस की एकता बनाये रखने का घोर प्रत्यन किया है। यह सन्तोष की बात है कि कांग्रेस के नेताओं ने कांग्रेस की वर्तमान शिथिलता से निराश न होकर उसके संगठन के पुनः दृढ़ करने की ओर ही ध्यान दिया है, न कि किसी-ऐसे कार्यक्रम के उपस्थित करने का प्रयत्न किया है, जिससे देश में पहले की ही भाँति कांग्रेस की शक्ति का फिर प्रदर्शन होता। अब जब सरकार नये सुधारों को कार्य में परिणत करने जा रही है तब कांग्रेस के सूत्रधारों का यही कर्तव्य है कि सुधारों के अनुसार परिवर्तित अवस्था को भले प्रकार अध्ययन करके वे अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए नई कार्यप्रणाली का निश्चय करें। ऐसी दशा में हम सन्तोष के साथ कह सकते हैं कि लखनऊ में जो कुछ हुआ है वह सब बुद्धिमत्ता का ही कार्य माना जायगा। मिस्र में भी ऐसा ही हो चुका है। जब वहाँ की सरकार ने वहाँ के राष्ट्रीय वफ़द-दल का दमन कर उसे परास्त कर दिया था तब वफ़द-दल के नेताओं ने अपना आन्दोलन स्थगित करके उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते हुए अपने अपने काम में लग गये थे। और जब पिछले दिनों उन्हें उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया तब उससे उन्होंने भरपूर लाभ उठाया और आज उनकी ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से संधि की मित्रतापूर्ण बातचीत हो रही है। ऐसी दशा में कांग्रेस की वर्तमान संयमपूर्ण गम्भीर नीति उसकी सुबुद्धि और दृढ़ मनोवृत्ति का ही परिचायक है। फिर उसके सूत्रधार मिस्रियों की तरह एक-दम चुप भी बैठ नहीं रहना चाहते। तब निराश होने का कोई कारण नहीं है, और सो भी उस दशा में जब कांग्रेस के प्रमुख सूत्रधार युवक भारत के जागरूक प्रतिनिधि स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरू हैं।

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

सर एस० राधाकृष्णन भारत के उन तीन-चार मनीषियों में हैं जिन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से संसार के चकित किया है। हाल में इनकी नियुक्ति प्रसिद्ध आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर के रूप में हुई है। अभी तक ये आन्ध्र-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे।

इनका जन्म ५ नवम्बर १९८८ के हुआ था। इन्होंने वेलोर के वोर्टी-कालेज और मदरास के प्रेसीडेंसी-कालेज में शिक्षा पाई है। १९११ में ये मदरास के प्रेसीडेंसी-कालेज में फ़िलासोफ़ी के असिस्टेंट प्रोफ़ेसर बनाये गये। १९१६ तक इस पद पर बड़ी योग्यता से काम किया। फलतः ये प्रोफ़ेसर बना दिये गये और दो वर्ष तक उस पद का कार्य सम्पादन किया। १९१८ में ये मैसूर-विश्वविद्यालय में बुला लिये गये और वहाँ १९२१ तक फ़िलासफ़ी के प्रोफ़ेसर रहे। इसके बाद ये कलकत्ता-विश्वविद्यालय में आ गये और यहाँ दस वर्ष तक फ़िलासफ़ी की प्रोफ़ेसरी की। इसके बाद ये १९३१ में आन्ध्र-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर हो गये। अब इस वर्ष इनकी नियुक्ति आक्सफ़ोर्ड में हुई है।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय में काम करते समय इन्होंने भारतीय दर्शन-शास्त्र पर अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा था। इन्होंने अपना यह ग्रन्थ १९२३ में लिखा था और उसकी बदौलत ये संसार में दर्शन-शास्त्र के प्रामाणिक विद्वान् ही नहीं माने गये, किन्तु बाहर के विद्या-केन्द्रों से भाषण करने के लिए इनको सादर आमंत्रण मिलने लगा। १९२६-२७ में ये आक्सफ़ोर्ड के मैंचेस्टर-कालेज में 'अपटन लेकचरर' बनाये गये। इसके साथ ही १९२६ में शिकागो-विश्वविद्यालय में हैस्केल-लेकचरर नियुक्त हुए। १९२९ में धर्म पर इन्हें मैनचेस्टर में हिबर्ट लेकचर देने पड़े। १९२७ में इन्होंने इँग्लेंड और योरप की यात्रा की और जगह जगह फ़िलासफ़ी के विषय पर अनेक भाषण किये। १९२९-३० में ये फिर आक्सफ़ोर्ड बुलाये गये और वहाँ तुलनामूलक धर्म पर भाषण किये। और अब फिर वहाँ विशेष सम्मान के साथ जा रहे हैं।

ये दर्शन और धर्म-विज्ञान के विलक्षण पण्डित हैं। ये जैसे प्रवीण लेखक हैं, वैसे ही प्रगल्भ वक्ता भी हैं। सरकार ने इन्हें सन् १९३१ में 'सर' की उपाधि देकर इनका सम्मान बढ़ाया। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में

इनका लिखा हुआ भारतीय दर्शन पर निबन्ध छापा गया है। यही एक भारतीय विद्वान् हैं, जिनका लेख उस ग्रन्थ में स्थान प्राप्त कर सका है। वास्तव में ये दर्शन-शास्त्र के जगत्प्रसिद्ध पण्डित हैं और इन्होंने अपने इस व्यक्तित्व से अपनी जन्मभूमि भारत का मस्तक ऊँचा किया है। इनका पूरा नाम सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन है और ये आन्ध्र-देशवासी हैं।

बेकारी की समस्या

बेकारी की बीमारी से संसार के बड़े बड़े सम्पन्न राष्ट्र तक पीड़ित हैं। महायुद्ध के बाद से सारा सभ्य संसार इस महाव्याधि से ग्रस्त है। परन्तु संसार के क्षमतावान् राष्ट्रों ने उसकी उपेक्षा नहीं की और उसके उन्मूलन के काम में बराबर यत्नवान् रहे, और यद्यपि उन्हें अपने प्रयत्न में पूर्ण सफलता नहीं मिली, तथापि वे उसका ज़ोर बहुत कुछ कम कर सकने में अवश्य सफल-मनोरथ हुए हैं। अब रहे संसार के असमर्थ तथा साधनरहित राष्ट्र, सो उनकी दशा एक-दम अस्तव्यस्त हो गई है और वे बेकारी की मार से त्राहि त्राहि कर रहे हैं। इन्हीं में हमारे भारत की भी गिनती है। यहाँ बेकारी ने देशव्यापी होकर उसकी दशा को पूर्ण रूप से दयनीय बना दिया है।

बेकारी की भीषणता को देखकर सबसे पहले बंगाल की प्रान्तीय सरकार ने चिन्ता प्रकट की थी और सन् १९२३ में उसकी जाँच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की थी। यथासमय उसकी रिपोर्ट निकली, पर बेकारी दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। उसके बाद सन् १९३४ में संयुक्त-प्रान्त में 'शिक्षितों की बेकारी' की जाँच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई। और यदि इसके अध्यक्ष सर तेजबहादुर सप्रू न बनाये जाते तो बहुत सम्भव था कि बंगाल की ही तरह यहाँ भी इसकी रिपोर्ट की वही हालत होती। परन्तु उनके ज़ोर देने से प्रान्तिक सरकार ने स्टाम्प की ड्यूटी बढ़ाकर तीन लाख रुपये साल में बेकारी दूर करने में ख़र्च करने का वचन दे दिया है। जहाँ कुछ नहीं था, वहाँ यही ग़नीमत है।

परन्तु क्या इस नाम-मात्र की व्यवस्था से यह महाव्याधि टस-से-मस हो सकेगी? विशेषज्ञों का कहना है कि इस संकट से देश की रक्षा करने के लिए सरकार को विशेष रूप से कोई विशेष सुधार करना होगा और वह मुख्य सुधार यह है कि सरकार यहाँ के किसानों की स्थिति दृढ़ कर दे एवं घरेलू उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दे। ख़ाली शिक्षितों की बेकारी दूर करने या शिक्षा-प्रणाली में विशेष परिवर्तन करने से काम नहीं चलेगा। यह भी ठीक नहीं है कि बेकारी की जगह जगह जाँच करने में ही समय गँवाया जाय। जैसी स्थिति है उसको देखते तो आवश्यकता इस बात की है कि सरकार जल्दी से जल्दी कोई देशव्यापी प्रयत्न करे, जिससे यहाँ के बेकारों को कम-से कम सहारा तो मिले और वे इस बात का विश्वास तो करें कि उनकी रक्षा के लिए उपयोगी प्रबन्ध किया जा रहा है। जाँच-कमिटियों की जाँचों तथा कौंसिलों के वाद-विवाद से यह समस्या नहीं हल होगी।

सम्मेलन का संग्रहालय-भवन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जो संग्रहालय-भवन इलाहाबाद में बनकर अभी हाल में तैयार हो चुका था उसका उद्घाटन-कार्य महात्मा गान्धी के द्वारा ५ अप्रेल को हो गया। इस विशाल भवन को अस्तित्व में लाने का सारा श्रेय सम्मेलन के प्राण श्रीयुत पुरुषोत्तमदास जी टण्डन को है। इसके निर्माण में छब्बीस हज़ार रुपये लगे हैं। यह भवन सम्मेलन के अनुरूप ही निर्मित हुआ है। और जैसा कि टंडन जी का विचार है, जब इसका 'संग्रह' भी अस्तित्व में आ जायगा तब यह हिन्दी की एक सर्व-श्रेष्ठ आदर्श संस्था के रूप में परिणत होगा। परन्तु यह काम एक आदमी का नहीं है। सभी हिन्दी-प्रेमियों को इसके भाण्डार को भरने के लिए आगे आना चाहिए। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'सत्यनारायण-कुटीर' का निर्माण करके दूसरे लोगों के लिए पथ-प्रदर्शन का काम पहले से ही कर दिया है। आशा है, हिन्दी के प्रेमी इस संग्रहालय को दुर्लभ सामग्री से पूर्ण कर इसे राष्ट्र-भाषा के गौरव के उपयुक्त बनाने के कार्य में अग्रसर होंगे।

फ़ीजी के भारतीयों में शिक्षा-प्रचार

भारतीय उपनिवेशों में स्वार्थत्यागी कार्यकर्ताओं की कितनी आवश्यकता है, इसका पता निम्न विवरण से भले प्रकार लग जाता है। यह विवरण हमें फ़ीजी के एक प्रवासी शिक्षाप्रेमी ने लिखकर भेजा है।

फ़ीजी-द्वीप के प्रवासी भारतीयों में शिक्षा के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा देनेवाले ऐसे अध्यापकों की भी उसी प्रकार उन्हें आवश्यकता है जो यहाँ आयें और देश तथा राष्ट्र-भाषा के गौरव को सम्मुख रखकर शिक्षा-प्रचार के कार्य-क्रम को पूर्णरूप से अग्रसर करें ताकि घोर अन्धकार में पड़े रहनेवाले प्रवासी भारतीयों के बालकों-बालिकाओं का भविष्य समुज्ज्वल और प्रकाश-पूर्ण हो जाय।

निस्सन्देह फ़ीजी के भारतीय इस आवश्यकता का अनुभव वर्षों से कर रहे थे। सन् १९२७ से कई भारतीय नेताओं तथा उपदेशकों का फ़ीजी में आगमन भी हुआ। १९२७ के आगत महानुभावों में काँगड़ी के गुरुकुल-विश्वविद्यालय के स्नातक प्रोफ़ेसर अमीचन्द्र जी विद्यालंकार भी एक थे।

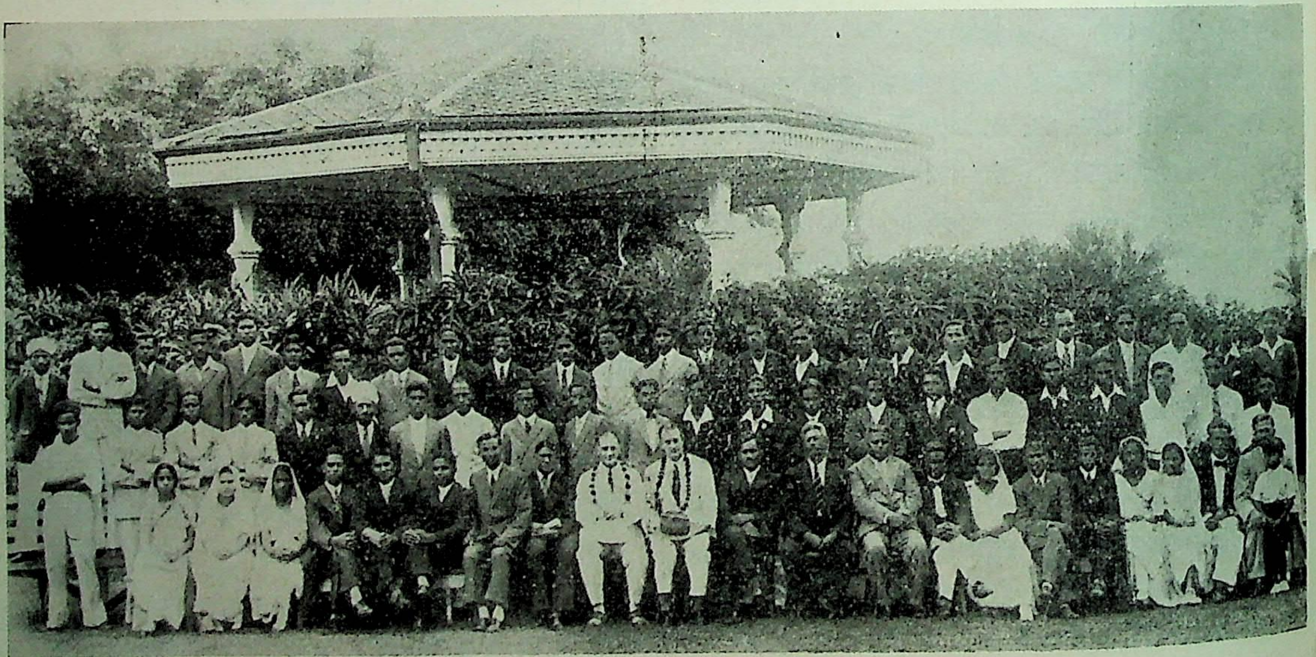
जब ये गुरुकुल-इन्द्रप्रस्थ के मुख्याधिष्ठाता का कार्य कर रहे थे, इनसे तथा श्रद्धेय पण्डित तोताराम सनाढ्य से फ़ीजी आने के लिए लिखा-पढ़ी हो रही थी। फ़ीजी आने के प्रश्न ने ही इनको इन्द्रप्रस्थ का गुरुकुल छोड़ने को बाध्य किया।

पण्डित जी ने फ़ीजी आना तो स्वीकार कर लिया, परन्तु आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने अपना विचार निश्चित करने में विलम्ब कर दिया।

अन्त में १९२९ के दिसम्बर में वे सूवा (फ़ीजी की राजधानी) में आ गये और वहाँ के पंडित गोपेन्द्रनारायण जी 'पथिक' को भारत वापस चले जाने से ये वहाँ गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता नियुक्त हुए और लगभग तीन साल तक यही वहाँ के अधिष्ठाता रहे।

फ़ीजी का गुरुकुल अब एक आदर्श संस्था हो गया है। उसमें कई विभागों की स्थापना हुई है और बोर्डिङ्ग-हाउस का उत्तम प्रबन्ध भी हो गया है।

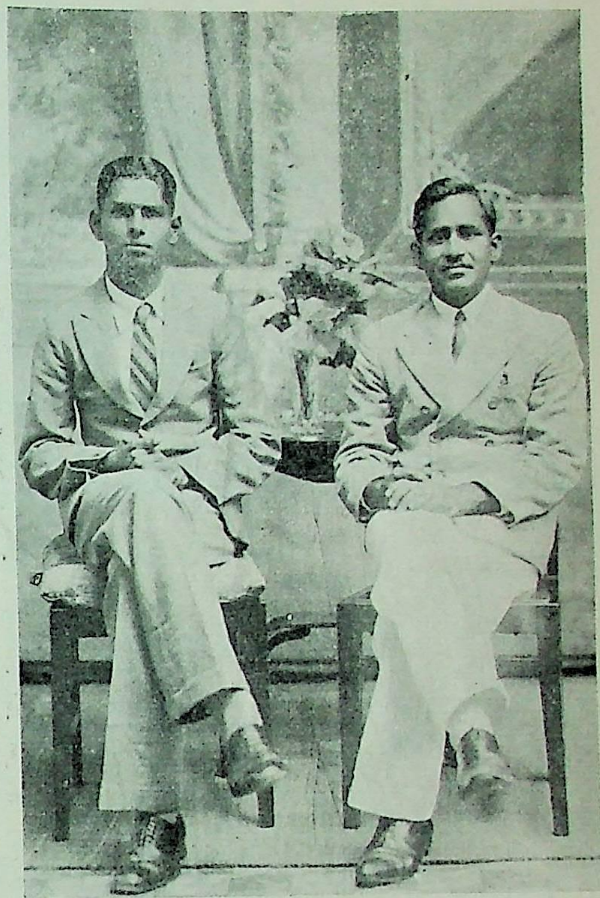
सन् १९३१ में जब सूवा-आर्य-समाज समाबूला (जिस स्थान पर सन् १९०४ में आर्य-समाज की स्थापना हुई थी) में विशाल आर्यमन्दिर बनकर तैयार हुआ तब श्रीमती



[फ़ीजी-टीचर्स-यूनियन का १९३४ के अधिवेशन के समय का चित्र]

आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने 'कन्या-महाविद्यालय' की स्थापना के कार्य को स्थगित कर इसी मन्दिर में आर्य-कन्या-पाठशाला की नींव डाली और प्रोफ़ेसर अमीचन्द जी को उसका मुख्य अध्यापक नियुक्त किया। यह वह समय था जब सूवा राजधानी में भी भारतीय कन्याओं के लिए एक भी स्कूल नहीं था। परन्तु पण्डित जी तथा उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती सर्वावतीदेवी के अथक प्रयत्न से उक्त पाठशाला थोड़े ही समय में एक अप-टु-डेट स्कूल हो गया। कन्याओं की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और इस समय १५० कन्यायें उक्त विद्यालय में विद्याध्ययन कर रही हैं।

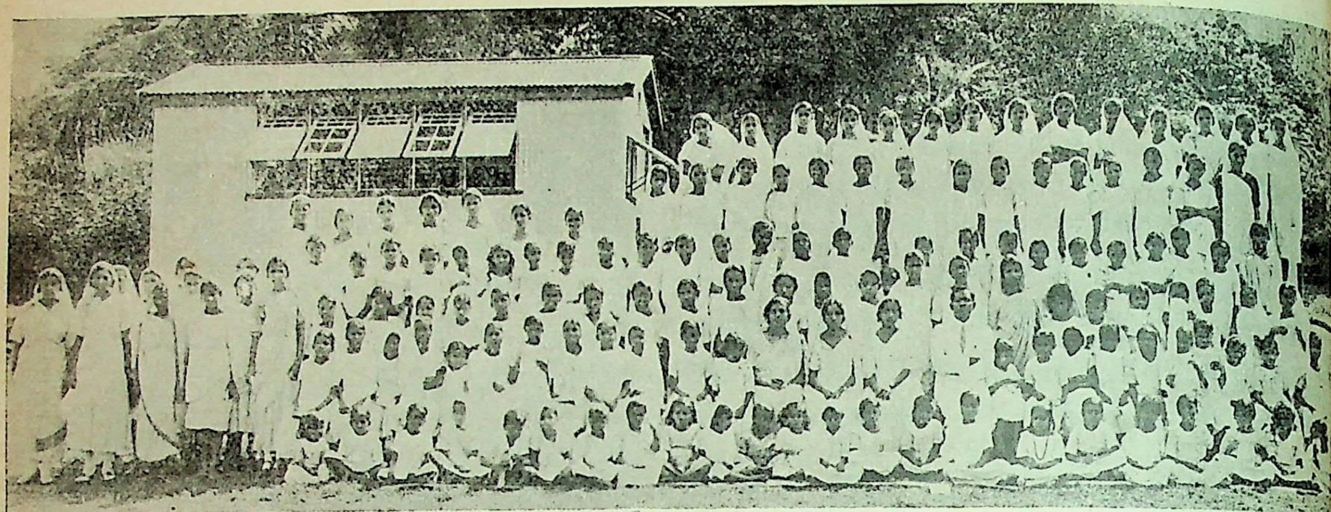
फ़ीजी के सब कन्या-स्कूलों से आर्य-कन्या-पाठशाला में लड़कियों की संख्या अधिक है। भारतीय कन्याओं के लिए यह पाठशाला सदैव उल्लेखनीय तथा फ़ीजी के अर्वाचीन इतिहास में जगमगाती रहेगी। सन् १९३२ में आर्य-कन्या-पाठशाला के वार्षिक पारितोषिक-वितरणोत्सव के अवसर पर फ़ीजी के वर्तमान गवर्नर महोदय सर फ़्लेचर ने भाषण देते हुए इस पाठशाला के कार्य की उत्तमता के सम्बन्ध में प्रसन्नता प्रकट की थी। इस पाठशाला में कन्याओं को हस्त-कार्य, गृहप्रबन्ध तथा सिलाई आदि की शिक्षा पर बहुत ज़ोर दिया जाता है।



[बाईं ओर से फ़ीजी के प्रसिद्ध समाजसेवक श्रीयुत शंकर-प्रताप और प्रोफ़ेसर अमीचन्द]



आर्य-कन्या-पाठशाला की उच्च कक्षा। बीच में श्रीमती गोपालन और भूतपूर्व सहायक अध्यापिका श्रीमती कुन्दनसिंह बैठी हैं।



[आर्य-कन्या-पाठशाला की कन्यायें और अध्यापक-अध्यापिकायें]

पण्डित जी के सूवा राजधानी में आ जाने से केवल पाठशाला के ही कार्य की उन्नति नहीं हुई है, बल्कि सामाजिक प्रचार, नवयुवकों का संगठन और अन्य संस्थाओं के कार्यों की भी पर्याप्त उन्नति हुई है।

पण्डित जी की धर्मपत्नी श्रीमती सर्वावतीदेवी अपना अमूल्य समय कन्याओं की उन्नति में व्यतीत करती हैं और जो लोग अपनी कन्याओं को पढ़ाना उचित नहीं समझते थे वे भी अब इनकी प्रेरणा से अपनी कन्याओं को बड़े हर्ष के साथ पढ़ने को स्कूल में भेज रहे हैं। सन् १९३१ में यहाँ सनातन-धर्म-सभा के दो प्रचारक आये थे, जिससे आर्य-समाज और सनातन-धर्म में संघर्ष छिड़ गया था। दोनों पण्डितों ने यहाँ आकर आर्य-समाज पर बौछार करना प्रारम्भ कर दिया था। जब मामला अधिक बढ़ता हुआ दृष्टिगोचर होने लगा तब आर्य-समाज को बाध्य होकर शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा। अन्त में लेखबद्ध शास्त्रार्थ निश्चित हुआ और आर्यसमाज के एक पत्र ने जिसका उत्तर वे लोग नहीं दे सके, शान्ति स्थापित कर दिया। इसका भी श्रेय इन्हीं पण्डित जी को मिला।

पण्डित जी सन् १९२८ में 'टीचर्स एसोसिएशन' के प्रधान नियुक्त हुए थे, जिससे एसोसिएशन के अध्यापकों में पर्याप्त जागृति उत्पन्न हो गई है, और अन्त में सन् १९३० में फ़ीजी भर के लिए 'फ़ीजी टीचर्स यूनियन' नामक संस्था स्थापित की गई। यह पण्डित जी के ही उद्योग का फल है। सन् १९३३ से ये इस संस्था के प्रधान हैं। इन वर्षों के भीतर पण्डित जी ने फ़ीजी के अध्यापकों में नव जीवन का संचार कर दिया है। पण्डित जी हिन्दी-साहित्य के प्रचार के लिए काफ़ी प्रयत्न करते रहते हैं। और अब यहाँ के भारतीय नवयुवक हिन्दी-साहित्य की ओर अधिक संख्या में ध्यान देने लग गये हैं।

यदि भारत के पण्डित जी जैसे उत्साही विद्वान् भारतीय उपनिवेशों में जायँ तो वे अपने तथा प्रवासी भारतीयों दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.

माधव मिश्र-निबन्ध-माला

प्रथम भाग

अर्थात्

हिन्दी के अभ्युदय-काल के प्रतिभाशाली और साहित्य-मर्मज्ञ लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवप्रसाद मिश्र के निबन्धों का संग्रह।

सम्पादक

साहित्यभूषण चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, एम० आर० ए० एस०

तथा

श्री झाबरमल्ल जी

पण्डित माधवप्रसाद मिश्र हिन्दी के उन इने गिने प्रतिभाशाली विद्वान् लेखकों में थे, जिनके द्वारा हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ा है। प्रौढ़ता और सरसता के साथ साथ ओज और आकर्षकता उनकी रचना की प्रधान विलक्षणता थी। यह पुस्तक उन्हीं मिश्र जी के भिन्न भिन्न विषय के लेखों का संग्रह है। इसमें पुण्य पुरुषों की जीवनियाँ, भिन्न भिन्न त्योहारों और स्थानों के वर्णन तथा खोजपूर्ण पुरातत्त्व-सम्बन्धी लेखों के अतिरिक्त साहित्य, राजनीति, एवं सामयिक विषयों के रोचक और विद्वत्तापूर्ण लेख संगृहीत किये गये हैं। हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढंग की बेजोड़ है।

मूल्य २॥) दो रुपये आठ आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

१—फ़ोटोग्राफ़ी मूल्य ७)
प्रयाग-विश्वविद्यालय के अध्यापक डाक्टर गोरखप्रसाद ने इस पुस्तक में फ़ोटोग्राफ़ी के सम्बन्ध की सभी उपयोगी बातें संग्रहीत कर दी हैं। इसकी सहायता से आप घर बैठे फ़ोटोग्राफ़र बन सकते हैं।

२—भू-प्रदक्षिण मूल्य ५)
पुस्तक क्या है, बहुत ही मनोरञ्जनकारी सखा तथा ज्ञान-विज्ञान की बातें सिखलानेवाला परम प्रवीण गुरु है। इसे पढ़कर आप घर बैठे संसार का हाल जान सकते हैं।

३—दुःखी भारत मूल्य ५)
मिस मेयो नामक अमेरिकन महिला ने 'मदर इंडिया' नामक पुस्तक के द्वारा भारतवासियों के चरित्र पर कलंक की कालिमा लगाने का जो दुःसाहस किया था, उसी का लाला लाजपतराय ने इस पुस्तक में मुँहतोड़ जवाब दिया है।

४—दयानन्द-दिग्विजय मूल्य ४)
इस २१ सर्ग के महाकाव्य में आर्य्य-समाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द के जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है। प्रत्येक संस्कृत-श्लोक के नीचे उसकी विस्तृत हिन्दी-टीका दी हुई है।

५—योरप-यात्रा में छः मास मूल्य ३)
इसे पढ़कर आप योरप की सभ्यता, वहाँ के भिन्न भिन्न देशों की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्था और मुख्य-मुख्य स्थानों का हाल घर बैठे जान सकेंगे।

६—सोहागरात मूल्य ४)
स्त्री-जीवन की पूर्णता के लिए जिन-जिन बातों का जानना आवश्यक है, उन सभी का इसमें समावेश किया गया है।

७—तुलनात्मक भाषा-शास्त्र अथवा भाषा-विज्ञान मूल्य २॥=)
गवर्नमेंट संस्कृत-कालेज, बनारस के रजिस्ट्रार डाक्टर मंगलदेव शास्त्री की यह पुस्तक अपने विषय की अद्वितीय है।

८—विद्यापति ठाकुर की पदावली मूल्य २)
मैथिल-कोकिल विद्यापति ठाकुर की सरस और सुमधुर रचनाओं का यह सबसे सुन्दर संग्रह है।

९—अशोक की धर्मलिपियाँ मूल्य ३)
इस पुस्तक में सम्राट् अशोक की धार्मिक आज्ञायें संग्रहीत की गई हैं।

१०—राधाकृष्ण-ग्रन्थावली मूल्य ३)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास की विभिन्न प्रकार की रचनाओं का यह अनुपम संग्रह है।

११—अकबरी दरबार मूल्य (पहला भाग) २॥)
इसमें मुग़ल बादशाह अकबर की विस्तृत जीवनी के साथ ही भारत की उस समय की सामाजिक, राजनैतिक और साम्पत्तिक अवस्था तथा उसके अमीरों और दरबारियों आदि का विशद वर्णन किया गया है।

१२—अकबरी दरबार (दूसरा भाग) मूल्य ३॥)
इसमें अकबर के प्रसिद्ध दरबारियों के सम्बन्ध की प्रायः सभी मुख्य मुख्य घटनाओं का वर्णन किया गया है। पुस्तक क्या है अकबर-कालीन भारत का सजीव चित्र है।

१३—भारतेन्दुनाटकावली मूल्य ३॥)
इस पुस्तक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समस्त नाटकों का संग्रह किया गया है और आरम्भ में बहुत ही विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी दी हुई है।

१४—ध्रुपद-स्वर-लिपि मूल्य ४)
काशी-निवासी श्री हरिनारायण मुकर्जी की यह रचना बहुत ही प्रामाणिक है। प्रत्येक संगीत-प्रेमी को इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

———

साहित्यिक पुस्तकें

१—हिन्दी-भाषा और साहित्य मूल्य ६)
रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० की अमर लेखनी से लिखा हुआ हिन्दी-भाषा और साहित्य का बहुत ही प्रामाणिक इतिहास है।

२—हिन्दी-साहित्य का इतिहास मूल्य ४।।)
हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ समालोचक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने इस पुस्तक में हिन्दी-साहित्य का बहुत ही विवेचनापूर्ण इतिहास लिखा है।

३—कोशोत्सव स्मारक संग्रह मूल्य ५)
यह पुस्तक हिन्दी-शब्दसागर की निर्विघ्न समाप्ति के अवसर पर रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास को समर्पित की गई है।

४—हिन्दी-गद्यशैली का विकास मूल्य २)
पण्डित जगन्नाथ शर्मा, एम० ए० ने इस पुस्तक में हिन्दी-गद्य के विकास का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है।

५—रूपक-रहस्य मूल्य २)
इस पुस्तक के लेखक हैं रायबहादुर श्यामसुन्दर-दास, बी० ए० तथा डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, डी० लिट०। इसमें नाट्यशास्त्र का विशद विवेचन किया गया है।

६—हिन्दी-रस-गंगाधर मूल्य ३।।)
यह संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ के ग्रन्थ का हिन्दी-रूपान्तर है।

७—गद्यकुसुमावली मूल्य २)
रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० के साहित्यिक लेखों का संग्रह।

८—आलोचनाञ्जलि मूल्य १)
इस पुस्तक में साहित्य-महारथी पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत के कई प्राचीन और प्रतिष्ठित ग्रन्थों का परिचय दिया है।

९—आलोचनादर्श मूल्य १।।)
इस पुस्तक के लेखक हैं पण्डित रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०। इसमें आलोचना-कला का मार्मिक और शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

१०—साहित्य-प्रकाश मूल्य १।)
यह पुस्तक भी रसाल जी की ही लिखी है। इसमें साहित्यिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है।

११—साहित्य-समीक्षा मूल्य ।।)
इस पुस्तक में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए० के साहित्यिक तथा समालोचनात्मक लेखों का संग्रह किया गया है।

१२—विनोद-वैचित्र्य मूल्य १।)
पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० के लिखे हुए साहित्यिक, दार्शनिक तथा वर्णनात्मक लेखों का संग्रह। इसमें दो महान् व्यक्तियों का जीवन-चरित भी संगृहीत किया गया है।

जीवन-चरित

१—विद्यासागर मूल्य ३)
प्रातःस्मरणीय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का यह विस्तृत और प्रामाणिक जीवन-चरित है। पुस्तक में १५ चित्र भी हैं।

२—भक्तचरितावली मूल्य २।।)
इस पुस्तक में जगद्‌गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्य आदि १७ भक्तों तथा महात्माओं का परिचय दिया गया है। पुस्तक सजिल्द और सचित्र है।

३—गोस्वामी तुलसीदास मूल्य १।)
हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक तथा हिन्दी-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट इतिहास-लेखक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का लिखा हुआ गोस्वामी जी का यह जीवन-चरित बहुत ही उपयोगी और प्रामाणिक है।

४—भीष्म-पितामह मूल्य १।)
परम धर्मनिष्ठ तथा दृढ़निश्चयी राजर्षि भीष्म-पितामह का यह जीवन-चरित बहुत ही रोचक तथा सजीव भाषा में लिखा गया है।

५—६—महादेव गोविन्द रानाडे मूल्य १।)
रानाडे जी के जीवन-चरित का मनन करके तथा उनके अनुसार आचरण करके मनुष्य अपने जीवन को देवताओं का-सा बना सकता है।

न्यायमूर्ति रानाडे जी का एक दूसरा भी जीवन-चरित हमारे यहाँ से प्रकाशित हुआ है, जो गुजराती की एक बहुत ही खोजपूर्ण पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इसकी पृष्ठ-संख्या पौने चार सौ से ऊपर है। मूल्य १॥)

७—नेपोलियन बोनापार्ट मूल्य १।)
महावीर नेपोलियन का जीवन-चरित पढ़कर कायर मनुष्य के भी रोम रोम में स्फूर्ति आ जाती है।

८—गुरु गोविन्दसिंह मूल्य १।)
गुरु गोविन्दसिंह की धर्मबलि और वीरता का वर्णन तथा धर्म-रक्षा के लिए उनके पुत्रों के प्राण-त्याग का हाल पढ़कर शरीर में रोमाञ्च हो आता है।

संस्कृत-ग्रन्थों के बालकोपयोगी हिन्दी-संस्करण

१—बाल-हितोपदेश मूल्य ।॥)
मनोरञ्जक तथा रोचक कहानियों के द्वारा बालक-बालिकाओं को व्यावहारिक ज्ञान सिखलाने के लिए इससे बढ़कर कोई भी उत्तम पुस्तक नहीं है।

२—बाल-पञ्चतन्त्र मूल्य ।॥=)
इसमें भी नीति-सम्बन्धी कहानियाँ संग्रहीत की गई हैं। पुस्तक क्या है, ज्ञान का भाण्डार है।

३—बाल-भोजप्रबन्ध मूल्य ।॥=)
राजा भोज के दरबार में विद्वानों का किस प्रकार आदर हुआ करता था, इसी सम्बन्ध के इस पुस्तक में कई रोचक और शिक्षाप्रद आख्यान संग्रहीत किये गये हैं।

४—बाल-रघुवंश मूल्य ॥)
यह महाकवि कालिदास के रघुवंश का सारांश है। सारी पुस्तक बहुत ही सरल और रोचक भाषा में लिखी गई है। साथ ही कथा का भी कोई अंश नहीं छूटने पाया।

५—बाल-कालिदास मूल्य ।=)
कालिदास के भिन्न भिन्न ग्रन्थों में जितनी भी उपदेशप्रद सूक्तियाँ आई हैं, वे सभी संग्रहीत कर दी गई हैं। ऊपर मूल श्लोक हैं और नीचे हिन्दी-अनुवाद।

विद्यार्थियों के उपयोग की कुछ पुस्तकें

१—बाल-निबन्ध-माला मूल्य ।॥=)
इस पुस्तक में भिन्न भिन्न शिक्षाप्रद तथा उपयोगी विषयों पर लिखे गये ३५ निबन्धों का संग्रह है, साथ ही निबन्ध लिखने की रीति भी बतलाई गई है।

२—बाल-स्वास्थ्य-रक्षा मूल्य ।॥=)
किस प्रकार के भोजन-वस्त्र और आचरण से मनुष्य सुखी और आरोग्य रह सकता है, यह बात इस पुस्तक में विस्तारपूर्वक बतलाई गई है।

३—बाल-सद्बोध मूल्य ।।)
इस पुस्तक के द्वारा बालकों को तरह तरह की मनोरञ्जक पौराणिक कहानियों की सहायता से धर्म और सदाचार की गूढ़ से गूढ़ बातें सिखलाने का प्रयत्न किया गया है।

४—शरीर और शरीर-रक्षा मूल्य ।।)
इस पुस्तक में शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों का विवरण तथा उनकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है। शरीर के ढाँचे को भली भाँति समझाने के लिए कई चित्र भी दिये गये हैं।

५—आरोग्य-विधान मूल्य ।-)
इस पुस्तक में स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रायः सभी बातें बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई हैं।

६—बाल-हिन्दी-व्याकरण मूल्य ।।)
हिन्दी का व्याकरण जानने तथा शुद्ध शुद्ध हिन्दी लिखना सीखने के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

७—पृथिवी की परिक्रमा मूल्य ।=)
इस पुस्तक में पृथिवी के भिन्न भिन्न देशों के मुख्य मुख्य स्थानों का रोचक वर्णन बड़ी ही मनोरञ्जक भाषा में लिखा गया है। आर्ट पेपर पर छपे हुए कई पूरे पृष्ठ के चित्र भी हैं।

८—बच्चों की बातें मूल्य ।)
पुस्तक क्या है, ज्ञान का ख़ज़ाना है। गुजराती में तो इसकी बीसों हज़ार प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

९—बही-खाता मूल्य ।≡)
हिसाब-किताब रखने का नये से नया तरीक़ा।

बालकों के लिए उपदेश-सम्बन्धी पुस्तकें

१—बाल-गीता मूल्य ।।।)
इस पुस्तक में गीता के अठारहों अध्यायों का सारांश सरल भाषा में लिखा गया है।

२—बाल-दुर्गा मूल्य ।।=)
यह दुर्गा-सप्तशती के तेरहों अध्यायों का सारांश है।

३—बाल-गीतावली मूल्य ।।=)
भगवद्गीता के अतिरिक्त और भी कई गीतायें हैं और सभी एक से एक बढ़कर हैं। उनमें से छाँट कर नौ गीतायें इसमें संगृहीत की गई हैं।

४—बाल-स्मृतिमाला मूल्य ।।=)
भिन्न भिन्न ऋषियों ने मनुष्य को संयम और सदाचार के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए जो नियम बनाये हैं, वे स्मृतियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस पुस्तक में उन्हीं अठारह स्मृतियों का सारांश दिया गया है।

५—बाल-नीति-माला मूल्य ।।=)
यह संस्कृत के प्रामाणिक नीति-ग्रन्थों का सारांश है। इसे पढ़कर तथा इसमें लिखी हुई बातों का मनन करके बच्चे नीतिमान् और चतुर बन सकते हैं।

६—बालोपदेश मूल्य ।=)
इसमें ऐसी ऐसी शिक्षायें संगृहीत की गई हैं, जो केवल बालक-बालिकाओं के ही लिए नहीं, बल्कि बड़ों-बूढ़ों के लिए भी लाभदायक हैं।

७—बाल-मनुस्मृति मूल्य ।=)
मनुस्मृति के चुने हुए श्लोकों का सारांश।

८—बाल-शिक्षा मूल्य ≡)
यह कविता-पुस्तक है। इसमें बालकों के कण्ठस्थ करने योग्य सुपाठ्य और उपदेश-प्रद पद्य संगृहीत किये गये हैं।

मिलने का पता—

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमाला की पुस्तकें

(स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलती हैं)

	मूल्य
(१) (२) स्वराज्य का सरकारी मसविदा-पृष्ठ ५८७, दोनों भागों का ...	।।।=)
(३) अब्राहम लिंकन	।।)
(४) प्राचीन भारत (अप्राप्य) ...	३।।।=)
(५) इटली के विधायक महात्मागण ...	२।)
(६) यूरोप के प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारक	१।।=)
(७) बिहारी की सतसई (अप्राप्य) ...	२)
(८) बनारस के व्यवसायी ...	।।=)
(९) गृहशिल्प	।।)
(१०) वैज्ञानिक अद्वैतवाद ...	१।।।=)
(११) जापान की राजनीतिक प्रगति ...	३।।=)
(१२) रूस का पुनर्जन्म	।।।=)
(१३) रोम-साम्राज्य	२।।)
(१४) खाद का उपयोग	१)
(१५) सारनाथ का इतिहास ...	१।।)
(१६) ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास मूल्य सजिल्द १।-), अजिल्द	१-)
(१७) राजनीतिशास्त्र ...	२।=)
(१८) राष्ट्रीय आय-व्यय-शास्त्र ...	३।)
(१९) अँगरेज़ जाति का इतिहास ...	२।।)
(२०) भारतवर्ष का इतिहास ...	२।।।)
(२१) अशोक के धर्मलेख (प्रथम भाग)	२।।।)
(२२) पृथ्वीप्रदक्षिणा कमीशन काटकर	१३=)
(२३) अन्तर्राष्ट्रीय विधान—पृष्ठ-संख्या ५००	३।)

	मूल्य
(२४) पश्चिमी योरप का इतिहास (प्रथम भाग)	२।।।)
(२५) मीरक़ासिम	१।।।)
(२६) अफलातून की सामाजिक व्यवस्था	१।=)
(२७) हिन्दू भारत का उत्कर्ष (अर्थात् राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास)	३।।)
(२८) A Short History of England Price 12 Annas.	
(२९) हिन्दीशब्दसंग्रह	४)
(३०) पश्चिमी योरप (दूसरा भाग) सजिल्द	२।)
(३१) इब्नबतूता की भारत-यात्रा ...	२)
,, ,, सजिल्द ...	२।=)
(३२) भारत का सरकारी ऋण ... दोनों भाग	१।=)
(३३) कल्याणमार्ग का पथिक ...	१।।)
(३४) गणेशशङ्कर विद्यार्थी जी की जीवनी—१।।), सजिल्द	२)
(३५) विक्रमांकदेवचरितम् (संस्कृत) ...	१।।)
(३६) तैरने की कला (सचित्र) ...	।≡)
(३७) अभिधर्मकोशः	५)
(३८) बुद्धचर्या	५)
(३९) ग्रीस और रोम के महापुरुष ...	३।।।)
(४०) साम्राज्यवाद	२।।)

दूकान—चौक, काशी

ज्ञानमंडल पुस्तक भण्डार कार्यालय कबीरचौरा, बनारस सिटी

अध्यापकों के उपयोग की

कुछ अनुपम पुस्तकें

१—मनोविज्ञान और शिक्षा-शास्त्र ... १।।)

वर्तमान युग में मनोविज्ञान ने शिक्षा-प्रणाली पर क्या प्रभाव डाला है, सफल अध्यापक बनने के लिए मनोविज्ञान का ज्ञाता होना कितना आवश्यक है और मनोविज्ञान के नियमों के अनुसार बालकों की मानसिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करके गूढ़ से गूढ़ विषय भी किस प्रकार उन्हें आसानी से हृदयङ्गम कराये जा सकते हैं, इन सब बातों का इसमें विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया है।

इस पुस्तक का भी उर्दू संस्करण

علم النفس اور تعلیم

इलमुन् नफ़्स और तालीम

नाम से प्रकाशित हो गया है।

अनुवादक हैं—

वहादुलहसन बी० ए०, एल-टी०

असिस्टेंट इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल, फ़ैज़ाबाद

२—शिक्षण-कला ... १।।)

स्कूलों, विशेषतः प्राइमरी और मिडिल स्कूलों में पढ़ाये जानेवाले सभी विषयों की सरल से सरल पाठ-विधि बतलाई गई है। इस पुस्तक के दोनों ही लेखक रायसाहब श्री सूर्य्यभूषणलाल बी० ए०, एल-टी० और श्री यदुवीरप्रसाद बी० ए०, बी० टी० ने बिहार के नार्मल और ट्रेनिंग क्लासों में सफल अध्यापक के रूप में अनुभव प्राप्त करके यह पुस्तक लिखी है।

३—अरिथमेटिक शिक्षा-प्रणाली ... ।।।)

शिक्षा-शास्त्र-सम्बन्धी उत्तम से उत्तम ग्रन्थों का मन्थन करके तथा सफल अध्यापक के रूप में ट्रेनिंग कालेजों में स्वयं अनुभव करके लेखकद्वय, श्रीयुत कुमारचन्द्र भट्टाचार्य्य, एम० एस-सी०, एल-टी० और पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल एम० ए०, एल-टी० ने नार्मल तथा ट्रेनिंग के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी है।

इसका उर्दू-संस्करण भी इसी मूल्य में मिलता है।

४—संक्षिप्त हिन्दी-व्याकरण ... ।।।=)

पण्डित कामताप्रसाद गुरु हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण हैं। इन्होंने काशी-नागरी-प्रचारिणी के तत्त्वावधान में हिन्दी का एक बहुत ही विस्तृत और प्रामाणिक व्याकरण लिखा है। उसका यह संक्षिप्त संस्करण नार्मल तथा ट्रनिङ्ग के विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसमें व्याकरण-सम्बन्धी एक भी आवश्यक बात नहीं छूटने पाई है।

५—अनुपम नियम ... =)

खेल-कूद में बालकों को किस प्रकार हिन्दी पढ़ाई जा सकती है, इस बात को इलाहाबाद के नार्मल स्कूल के हेडमास्टर मु० सूरजनारायण माथुर ने इस पुस्तक में विद्वत्तापूर्ण ढंग से लिखा है।

मिलने का पता—

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

शिक्षा-विधान-परिचय

इस पुस्तक के सम्पादक हैं प्रान्तीय शिक्षाविभाग के अनुभवी कार्य्यकर्त्ता

पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, एल० टी०

प्राइमरी तथा सेकंडरी स्कूलों में पढ़ाये जानेवाले सभी विषयों की पाठ्य-प्रणाली के सम्बन्ध में अधिकारी विद्वानों के विचार इसमें संगृहीत किये गये हैं। पुस्तक भर में तेरह लेख हैं और सभी लेख विषय के विशेषज्ञ-द्वारा लिखाये गये हैं।

मूल्य २।)

इसका उर्दू अनुवाद भी

تعارف طریقہ تعلیم

तारुफ़ तरीक़ा तालीम

के नाम से हो गया है।

अनुवादक

ख़ाँ साहब मौलवी अलीअहमद जाफ़री साहब, बी० ए०, एल० टी०

डिप्टी इन्स्पेक्टर मदारिस जिला अलीगढ़

हैं। इससे पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि अनुवाद कितना प्रामाणिक और सुन्दर है।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

RĀJAṬARAÑGIṆĪ

The saga of the kings of Kaśmīr

THE MEDIEVAL MASTERPIECE OF THE
KAŚMĪRI KAVI KALHANA

[*Translated from the original Saṁskṛt and entitled 'RIVER OF KINGS' with an Introduction, Notes, Appendices, Index, etc.*]

BY

R. S. PANDIT

WITH A FOREWORD BY

JAWAHARLAL NEHRU

ILLUSTRATED EDITION

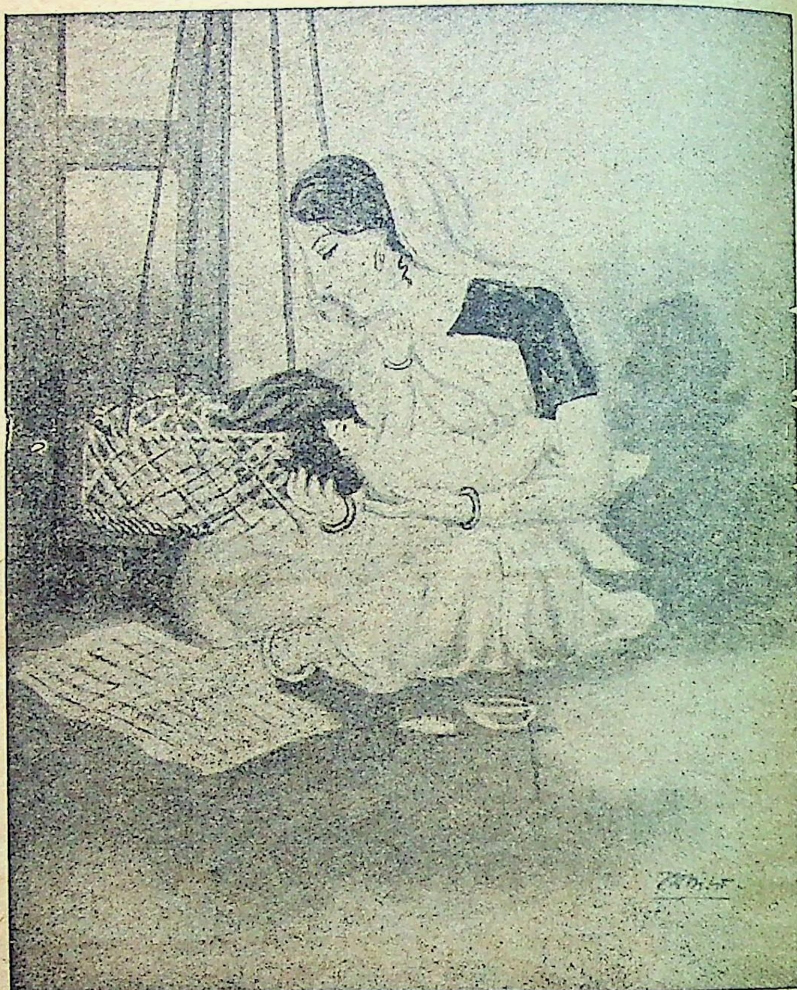
PRICE Rs. 18/-

PUBLISHERS :

THE INDIAN PRESS, LTD.,
ALLAHABAD, INDIA

शिशु-पालन

सचित्र पुस्तक का मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।



आज-कल हमारे देश की गर्भिणी स्त्रियों तथा नवजात शिशुओं की स्वास्थ्य-विज्ञान न जानने के कारण बड़ी दुर्दशा होती है। बहुत-से शिशु प्रायः सदा रोगी रहते हैं, बहुत-से बड़े होने पर भी आजन्म कृश और रोगी बने रहते हैं और बहुत-से तो बड़े होने ही नहीं पाते। जन्म लेने के थोड़े ही दिनों के बाद नाना प्रकार के कष्ट भोग कर मर जाते हैं। इन्हीं सब बातों का विचार करके यह पुस्तक तैयार की गई है। इसे दो अनुभवी तथा विदुषी महिलाओं ने सभी श्रेणी की महिलाओं की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को ध्यान में रख कर यह पुस्तक लिखी है। इसमें लिखी हुई बातों का अध्ययन करके मातायें गर्भाधान के बाद अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकेंगी, साथ ही प्रसव के बाद अपनी सन्तान का भी समुचित रूप से पालन करके उसे मनुष्य बना सकेंगी।

धर्म-कर्म-रहस्य

इस पुस्तक में धर्म-कर्म-सम्बन्धी बातों का बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा का प्राक्कथन है। पुस्तक अपने विषय की अत्युत्तम है। मूल्य ॥।) बारह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

कवितावली

टीकाकार

[रायबहादुर पं० चम्पाराम मिश्र, बी० ए०, एम० ए०, एस० बी०]

यह टीका साधारण जनता और विद्यार्थी दोनों के काम की है। इसमें स्थान स्थान पर कथायें भी अधिक दी गई हैं। भूमिका में गोस्वामी जी की जीवनी पर तो नया प्रकाश डाला ही गया है, साथ ही कवितावली में उनकी जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें मिल सकी हैं, उनकी आलोचना की गई है।

इस टीका की प्रशंसा करते हुए आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

मुझे तो आपका किया हुआ अर्थ और लिखने की शैली बहुत पसन्द आई। आपका यह संस्करण कवितावली के अन्य सभी संस्करणों से श्रेष्ठ है। भूमिका तो अनेक ज्ञातव्य बातों से परिपूर्ण है।

इसी प्रकार लाहौर के एक सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित उदयशङ्कर भट्ट शास्त्री, काव्यतीर्थ ने लिखा है—

ऐसी सुन्दर, सरल, एवं विद्वत्ता-पूर्ण टीका मैंने नहीं पढ़ी।

मूल्य केवल १।।।) एक रुपया बारह आने।

दयानन्द

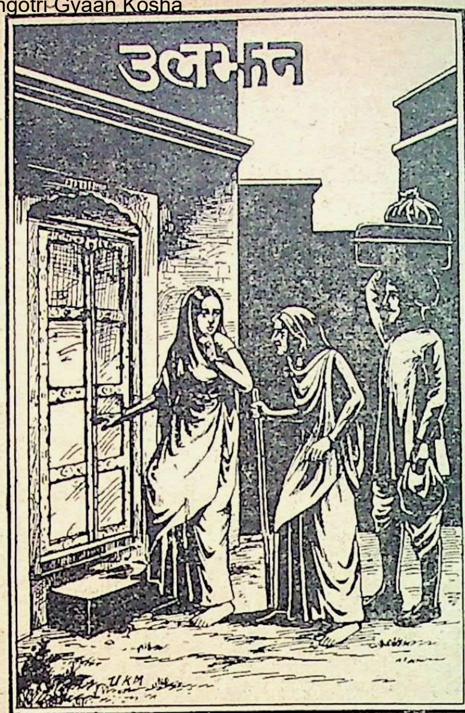
[लेखक, श्रीयुत सन्तराम बी० ए०]

यों तो आर्य्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द के छोटे बड़े अनेक जीवन-चरित निकल चुके हैं, पर एक ऐसी पुस्तक की बड़ी कमी थी, जिसे पढ़कर दस-बारह वर्ष के लड़कों और लड़कियों में स्वामी जी के काम और जीवन के प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हो, साथ ही सरल और रोचक भी हो। इसी कमी को पूरी करने के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें स्वामी जी के जीवन की घटनायें बहुत ही सरल भाषा में बड़े मनोहर ढंग से लिखी गई हैं, साथ ही संक्षेप में आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों का भी वर्णन कर दिया गया है। पुस्तक में आठ चित्र हैं। बढ़िया कागज़ पर सुन्दर टाइपों में छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।।।) बारह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

लेखक, श्रीनाथसिंह

मूल्य २) दो रुपये



उलझन बिलकुल नये ढङ्ग का उपन्यास है। इसके द्वारा प्रणय और वैवाहिक समस्या की गुत्थी बड़े मजेदार ढङ्ग से सुलझाई गई है। सारी पुस्तक इतनी मनोरञ्जक शैली में लिखी गई है कि इसे आदि से अन्त तक पढ़े बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। इस पुस्तक की उत्तमता के सम्बन्ध में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल एम० ए० ने लिखा है—

माननीय ठाकुर साहब,

मुझे आपकी "उलझन" पढ़ने का हाल ही में सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसे पढ़कर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। अभी तक मेरा विचार था कि हिन्दी में पाश्चात्य देशों की रचनाओं से टक्कर लेनेवाला, कोई भी उपन्यास नहीं है। लेकिन "उलझन" पढ़ने के बाद मेरा यह विचार बिलकुल बदल गया। हिन्दी-साहित्य की इस सेवा के लिए मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ।

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल



यह आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी-कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा की चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। प्रत्येक कविता में संगीत का बहुत ही सुन्दर प्रवाह है। लेखिका ने हृदय के अमूर्त भावों को भी नव नव उपमाओं एवं रूपकों-द्वारा बड़ी सुघरता से एक एक सजीव रूप प्रदान किया है। इस पुस्तक के लिए सम्मेलन ने इस वर्ष का ५००) रुपये का सेकसरिया पुरस्कार श्रीमती वर्मा जी को प्रदान किया है। मूल्य १) एक रुपया।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ६।।) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य ।।=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८।।।), छः महीने का ४।=) और प्रतिसंख्या का ।।।-) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद," के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंजूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

सरस्वती के विज्ञापन-छपाई के रेट

कवर का दूसरा पृष्ठ	... ...	४५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	... ...	४५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	... ...	८०)	,,
पाठ्य विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ		३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम		१८)	,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ		३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम		१८)	,,
कवर के तीसरे पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ		३५)	,,
,, ,, ,, एक कालम		१८)	,,
रङ्गीन चित्र से पहलेवाला पृष्ठ	...	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम		१८)	,,

साधारण नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	...	३०)	प्रतिमास
½ ,, या १ ,, ,,	...	१६)	,,
¼ ,, या ½ ,, ,,	...	६)	,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,,	...	५)	,,

१—"सरस्वती" में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते, अतः कुरुचि-पूर्ण विज्ञापन न भेजिए।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है, औरों को नहीं।

३—छपाई का रेट जो ऊपर दिया है यह अकाट्य (FINAL) है। इसके लिए लिखा-पढ़ी करना व्यर्थ है।

४—जितने समय तक के लिए कन्ट्रैक्ट किया गया है, उतने समय तक विज्ञापन छपाना होगा। विज्ञापन न छपाने पर भी उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा।

पत्र-व्यवहार करने का पता—

मैनेजर, विज्ञापन-विभाग

वह जानती हैं कि उन्हें क्या चाहिए



ज्यों ही वे गली की मोड़ पर आते हैं, केतली चूल्हे पर चढ़ जाती है और जितनी देर में वे दरवाज़ा खोलते हैं, केतली का पानी खौलने लगता है और कुछ ही मिनिटों में भारतीय चाय का एक प्याला उनके लिए तैयार हो जाता है। विवाहित जीवन में यह थोड़ा-सा ख़याल का काम कैसा प्रभेद पैदा कर देता है। दिन भर की थकान के बाद अब न तो कहा-सुनी होती है; न चिड़चिड़ापन। उनका चाय का प्याला तुरन्त उनकी मानसिक उत्तेजना हटा देता है और वे अपने घर में तरोताज़ा और प्रसन्न रहते हैं। काम करने के बाद आज से ही अपने पति को यह "प्रेम का प्याला" पिलाना आरम्भ कीजिए। वे इसके लिए आपको आशीर्वाद देंगे।

*** चाय तैयार करने का तरीक़ा**—ताज़ा पानी खौलाइए। साफ़ बर्तन ज़रा गर्म कर लीजिए। उसमें प्रत्येक के लिए एक तथा एक चम्मच अधिक बढ़िया भारतीय चाय रखिए। पानी खौल जाते ही चाय पर ढाल दीजिए। पाँच मिनिटों तक चाय को सीझने दीजिए; इसके बाद प्यालों में ढालकर दूध और चीनी मिलाइए।



एकमात्र पारिवारिक पेय—भारतीय चाय

I. K. 29



चिड़चिड़े व कमज़ोर बच्चे

डोंगरे

का

बालामृत

पीने से

तन्दुरुस्त

ताक़तवर,

पुष्ट व

आनन्दी बनते हैं।

शीशी असली

देखकर ख़रीदना चाहिए।

इलाहाबाद एजंट :—

बलदेवप्रसाद अनन्तुलाल, चौक

दर्पण

(श्रीयुत सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०)

इस पुस्तक में योरप के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखकों की दस चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। कहानियाँ सभी एक से एक बढ़कर हैं और ये सभी संसार की सर्व-श्रेष्ठ कहानियों में स्थान पाने के योग्य हैं। अनुवाद की सुन्दरता के सम्बन्ध में वर्म्मा जी का नाम ही पर्य्याप्त है। मूल्य १)।

मैनेजर (बुकडिपो),
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

Wanted orders by a specialist in Portrait Painting, Book-Illustration, Bromide Enlargement (Finished in English style), Lantern slide reproduction, etc., etc. Charges specially moderate as quoted below:—

Bromide Enlargement.

Size.		Black and white or Sepia per dozen.	Water-colour per half-dozen.
8½″ × 6½″	...	Rs. 35	Rs. 30
10″ × 12″	...	Rs. 65	Rs. 60
15″ × 12″	...	Rs. 75	Rs. 70
17″ × 23″	...	Rs. 180	Rs. 180

Single copy may be had at a slightly higher rate. Price in cash. Postage charge extra. Trial solicited. For details, please apply to:—

S. N. SAHA, ARTIST & PHOTOGRAPHER.
7 Beli Road, New Katra, Allahabad.

कलैंडर और नियमावली मुफ्त

आज ही मंगवायें

१२५ लिबास सीखकर अपनी सूटिंग शाप खोल लें।
इस विद्या की संसार में हर जगह जरूरत है।

हर लिबास की कटाई विद्या पर अद्वितीय पुस्तकें, सब परिवार, पाठशालायें और दर्ज़ी आज ही मंगवायें

इण्डियन टेलरिंग कालेज होशियारपुर (पंजाब)

सबके लिए

शक्ति और स्फूर्ति से भरपूर

स्वादिष्ट

झंडु द्राक्षासव

विशेषकर स्त्रियों के लिए

विना विलम्ब सेवन कीजिए

तन्दुरुस्ती और ताक़त से भरपूर

प्रदरादि रोगों की
अक्सीर दवा

झंडु अशोकारिष्ट

स्त्रियों की निर्बलता में स्थायी प्रभाव डालनेवाला
—हर एक घर में रहना चाहिए—

(जूड़ी ज्वर)
मलेरिया का महान् शत्रु

झंडु मलेरिया मिक्श्चर

सेवन करके
मलेरिया की जड़ को
नेस्त-नाबूद कर दीजिए

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि० पो० बो० नं० ५५१३—बम्बई नं० १४

इलाहाबाद के चीफ़ एजेन्ट—एल० एम० धोलकिया एण्ड ब्रादर्स, ४६ जान्स्टनगंज।
बिलासपुर के एजेन्ट—कविराज रवीन्द्रनाथ वैद्यशास्त्री।
दिल्ली और यू० पी० के सोल एजेन्ट—कान्तिलाल आर० परीख, चाँदनी चौक।
कानपुर के एजेन्ट—मोहनलाल आर० परीख, ३६।३५ मेस्टन रोड।
पंजाब के एजेन्ट—बेनीलाल जी भट्ट, नीलागमबाद, लाहौर।

५,०००) रु० नक़द इनाम लो

'भारतीय शहर' प्रतियोगिता

इस प्रतियोगिता में भारतवर्ष के ५ प्रसिद्ध शहर रक्खे गये हैं उनको पूरा करो व उपरियुक्त इनाम की बड़ी रक़म कमावो।

१	म — —
२	— — र
३	म — रा
४	— — ला
५	— — पुर

रु० २५०० सही उत्तर पर

रु० १५०० एक ग़लती उत्तर पर

रु० ५०० उन दस मनुष्यों को जिनके उत्तर सबसे पहले आवेंगे।

रु० ५०० उन दस मनुष्यों को जिनके उत्तर-पत्र सबसे अधिक आवेंगे।

नियमः—(१) प्रत्येक उत्तर के साथ प्रवेश-फ़ीस १) भेजिए। आप सादे काग़ज़ पर चाहे जितने उत्तर भेज सकते हैं परन्तु प्रत्येक उत्तर के साथ १) आने से ही स्वीकृत होगा। ३ उत्तर एक साथ भेजने पर आपको केवल २) ही भेजना होगा। (२) सही उत्तर वही माना जावेगा जो कि मैनेजर के उत्तर से मिलेगा। सही उत्तर लिफ़ाफ़े में बन्द करके 'माय मेरा भ्रीन आफ इण्डिया' के पास सुरक्षित रखा है। (३) मैनेजर का निर्णय क़ानूनी तरीक़े सर्वमान्य होगा। (४) उत्तर भेजने की आख़िरी तारीख़ २० सितम्बर १९३६ है और नतीजा १० दिन बाद निकलेगा। नतीजे के लिए डेढ़ आने के टिकिट भेजो। स्थानीय उत्तर व प्रवेश-फ़ीस वग़ैरह केवल डाक-द्वारा ही स्वीकृत होंगे। इनाम एकत्रित होने के अनुसार दिया जावेगा।

मेनेजर—दी रीनो काम्पीटीसन मोरसली गली इन्दौर सीटी।

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाईड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४० रागों के आरोह, अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०४ प्रसिद्ध गायनों के स्वरतालयुक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी-सहित, द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ-संख्या २००, क़ीमत १।।) रुपया, डाक-ख़र्च।=) विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

गोपाल सखाराम एण्ड कम्पनी

भाटिया महाजन बाड़ी के सामने ३९७-९९

कालबादेवी रोड, बंबई नं० २

५००) रुपया इनाम

महात्मा-प्रदत्त श्वेत कुष्ठ (सफ़ेदी) की अद्भुत वनौषधि। तीन दिन में पूर्ण आरोग्य। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापनदाताओं की दवा कर थक गये हैं, तो इसे लगावें, लगाकर आरोग्य हों, यदि बेफ़ायदा साबित करें तो हमसे ५००) नक़द इनाम लें। जिन्हें विश्वास न हो –) का टिकट मँगाकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें, मूल्य २)

वैद्यराज अखिल किशोरराय

नं० ११३ पो० कतरी सराय (गया)

कलकत्ते में हमारे एजेंट—

इंडियन पब्लिशिङ्ग हाउस २२/१ कार्नवालिस स्ट्रीट

सब एजेन्ट—ठाकुर अयोध्यासिंह

विशाल भारत बुकडिपो १६५/२ हरीसन रोड से हमारे यहाँ की पुस्तकें ख़रीदिए और 'सरस्वती' और 'बाल-सखा' के ग्राहक बनिए।

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग



शरीर का सौन्दर्य चर्म के दो पर्तों के नीचे है

शरीर के चर्म के नीचेवाली पर्त पर जो छोटी-छोटी तैल-ग्रन्थियाँ होती हैं, उनकी चिकनाहट जाती रहने पर वह पर्त सिकुड़ने लगती है और शरीर पर शिकन और झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। लेकिन चर्म के ऊपरवाली पर्त की चिकनाहट दूर हो जाने पर रूखापन आ जाता है। इसलिए चर्म की दोनों पर्तों को ठीक रखने के लिए आपको अलग अलग ढङ्ग के उपचार की ज़रूरत है।

शिकन और झुर्रियों को रोकिए—रात को पांड का कोल्ड क्रीम लगा लीजिए। शरीर में प्रविष्ट होकर यह चर्म के नीचेवाली पर्त पर की मांस-ग्रन्थियों की चिकनाहट तथा मांसपेशियों और स्नायुओं को सुरक्षित रक्खेगा। यह रोमकूपों को भी साफ़ रक्खेगा जिससे मसे नष्ट हो जायँ।

चर्म के रूखेपन को दूर कीजिए—चर्म के ऊपरवाली पर्त के लिए पांड के वेनिशिंग क्रीम की ज़रूरत है। पांड का कोल्ड क्रीम लगाने के बाद चेहरे, गर्दन, बाँह और हाथों में पांड का वेनिशिंग क्रीम लगाइए और रात भर उसे यों ही लगा रहने दीजिए। सवेरे आपके शरीर का चर्म बहुत मुलायम, चिकना और आकर्षक रहेगा।

मुफ़्त मँगाइए—यह कूपन भेजकर पांड के दोनों क्रीम और अभी हाल के तैयार किये हुए फेस पाउडर का नमूना मुफ़्त मँगाइए। नच्युराल......रोज़ क्रीम......ब्रुनेट
(इन तीनों में से एक पर निशान लगाइए)

डाज एंड सीमूर लि०,
३, विटेट रोड, बम्बई

नाम ....
पता..............................
.... No. S. 5

गुप्त मंत्र १००) इनाम

जिस काम को आप लाखों रुपये ख़र्च कर नहीं कर सकते हैं, उसे इस मन्त्र से सिर्फ़ ७ बार जप कर ही कर सकते हैं, किसी कष्ट या साधना की जरूरत नहीं, यह मंत्र सिद्ध कर भेजा जाता है। आप जिसे चाहते हैं, चाहे वह कैसी ही कठोरहृदया या अभिमानिनी क्यों न हो, इसके जपने के साथ आपसे मिलने के लिए लालायित होगी और सदा वह आपके साथ रहना पसन्द करेगी। यह मंत्र वशीकरण है। इस मंत्र से भाग्योदय होता है। नौकरी जल्द मिलती है, नौकरीवालों को तरक़्क़ी मिलती है। मामले-मुक़दमे में व लाटरी में जीत होती है। व्यापार में लाभ व परीक्षा में पास होता है, बेफ़ायदा साबित करने पर १००) इनाम। डाक-ख़र्च-सहित २।≈)।

पता—सिद्ध-मंत्र-आश्रम
नं० १७ कतरी सराय (गया)।

बालकों के उपयोग की चार पुस्तकें

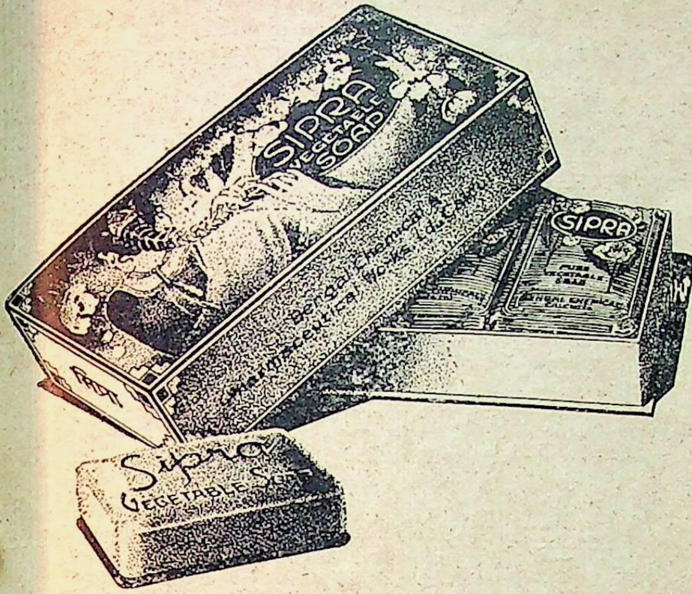
१—**युधिष्ठिर**—यह धर्मराज युधिष्ठिर का वृत्तान्त है। इस छोटी-सी पुस्तक में महाभारत की सारी कथा का सारांश आ गया है। मूल्य।≈) छः आने।

२—**प्रह्लाद**—भगवान् पर अटल विश्वास रख कर बालक प्रह्लाद ने हँसते हँसते पिता के लोमहर्षण अत्याचार सहकर किस प्रकार अन्याय पर विजय प्राप्त की, यही वृत्तान्त इस पुस्तक में लिखा है। मूल्य।) चार आने।

३—**वाल्मीकि**—राम-नाम के प्रभाव से वाल्मीकि किस प्रकार डाकू से इतने बड़े महर्षि हो गये, यह कथा पढ़कर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। मूल्य।) चार आने।

४—**बाल-रामायण**—रामायण के सातों काण्डों की कथा का सारांश है। प्रत्येक बालक-बालिका के हाथ में यह पुस्तक अवश्य होनी चाहिए। मूल्य।|≈) दस आने।

BENGAL CHEMICAL :: CALCUTTA



सिप्रा

स्नान व प्रसाधन के लिए
वनस्पति का बना साबुन

*
* *

पशुओं की चर्बी से सर्वथा मुक्त

* *
*

स्निग्ध और मनोहर गन्धयुक्त

बेङ्गल केमिकल ऐंड फ़ार्मेस्युटिकल वर्क्स, लिमिटेड, कलकत्ता

बोरिक और टेकिल के सीधा मँगानेवाले—दि रिगुलर होमिओ फारमेसी

THE Regular HOMŒOPHARMACY

ताज़ी और शुद्ध
ओषधियाँ
पाँच पैसा प्रतिड्राम

कालरा या फामली बाक्स जिसमें ओषधियों की २४, ३०, ४८, ६० और १०४ शीशियाँ होती हैं, हिन्दी में एक अत्यन्त उपयोगी गाइड और ड्रापकंडक्टर के साथ। मूल्य ३।), ४), ५॥), ७) और ११।) क्रमशः।

बायोकेमिक रेमीडीज़, ग्लोब्यूल्स, शूगर आफ़ मिल्क, ट्यूब फायल्स, बुक्स, बेलवट काक्स कार्ड बोड केस, इत्यादि सस्ते से सस्ते दर पर।

एस० एन० राय एंड को०, ८५-ए० क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

स्वप्न-वासवदत्ता

(महाकवि भासरचित संस्कृत-नाटक का अनुवाद)
अनुवादक, श्रीयुत सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०

भास संस्कृत के बहुत प्राचीन तथा नामी कवियों में हैं। उनकी रचनाओं की छाप कालिदास जैसे सर्वश्रेष्ठ कवि तक की रचनाओं में पाई जाती है। फिर भला ऐसे महाकवि की रचना की उत्तमता में सन्देह का स्थान ही कहाँ है। अनुवाद भी बहुत ही रोचक, सरल और प्रामाणिक है। मूल्य केवल ॥≈) दस आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

उपन्यास-जगत् के अनमोल रत्न

शरद्-ग्रन्थावली

के

उत्तमोत्तम उपन्यास

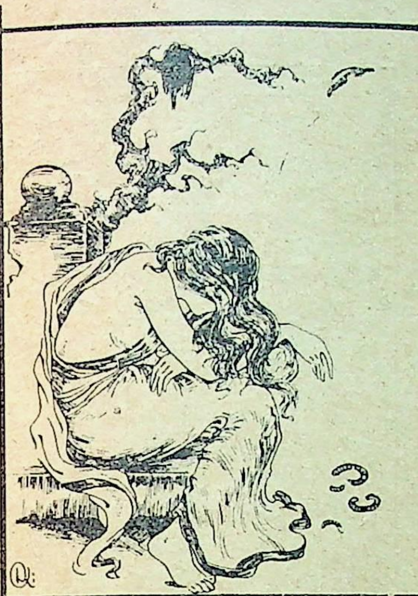
हमारे यहाँ से शरद् बाबू के उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद जब से प्रकाशित हुए हैं तब से उपन्यास-पाठकों की एक प्रकार से रुचि ही परिवर्तित हो गई है। अधिकांश पाठक अब केवल शरद् बाबू के ही उपन्यास पढ़ना पसन्द करते हैं क्योंकि इन उपन्यासों में समाज का जैसा सजीव चित्र अंकित किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी आपको न मिलेगा। यदि आपने अभी तक शरद्-ग्रन्थावली के ग्राहकों में अपना नाम न लिखाया हो तो आज ही ॥) प्रवेश-शुल्क भेजकर स्थायी ग्राहक बन जाइए और अब तक इस ग्रन्थावली के जितने भी उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, उन्हें पौने मूल्य में मँगा लीजिए।



पण्डितजी



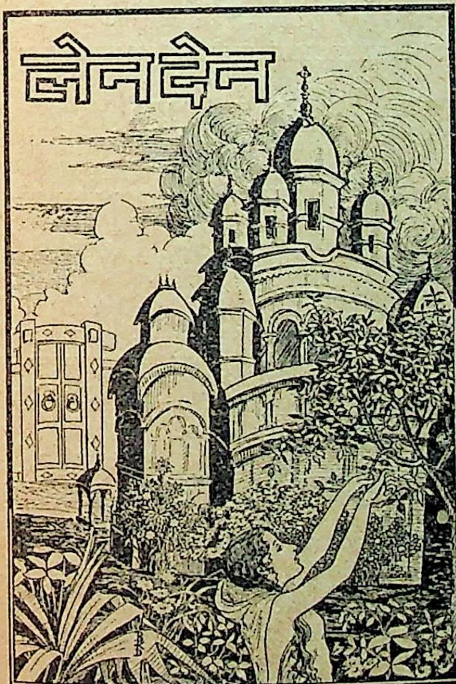
मूल्य १॥)



मूल्य १)



मूल्य १)



मूल्य २॥)



मूल्य २)

सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ६।।) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य ।।=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८।।।), छः महीने का ४।=) और प्रतिसंख्या का ।।।-) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिखकर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद," के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक या अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

...की जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

सरस्वती के विज्ञापन-छपाई के रेट

कवर का दूसरा पृष्ठ	४५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	४५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	८०)	,,
पाठ्य विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के तीसरे पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
रङ्गीन चित्र से पहलेवाला पृष्ठ ...	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,

साधारण नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई ...	३०)	प्रतिमास
½ ,, या १ ,, ,, ...	१६)	,,
¼ ,, या ½ ,, ,, ...	९)	,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,, ...	५)	,,

१—"सरस्वती" में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते, अतः कुरुचि-पूर्ण विज्ञापन न भेजिए।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है, औरों को नहीं।

३—छपाई का रेट जो ऊपर दिया है यह अकाट्य (FINAL) है। इसके लिए लिखा-पढ़ी करना व्यर्थ है।

४—जितने समय तक के लिए कन्ट्रैक्ट किया गया है, उतने समय तक विज्ञापन छपाना होगा। विज्ञापन न छपाने पर भी उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा।

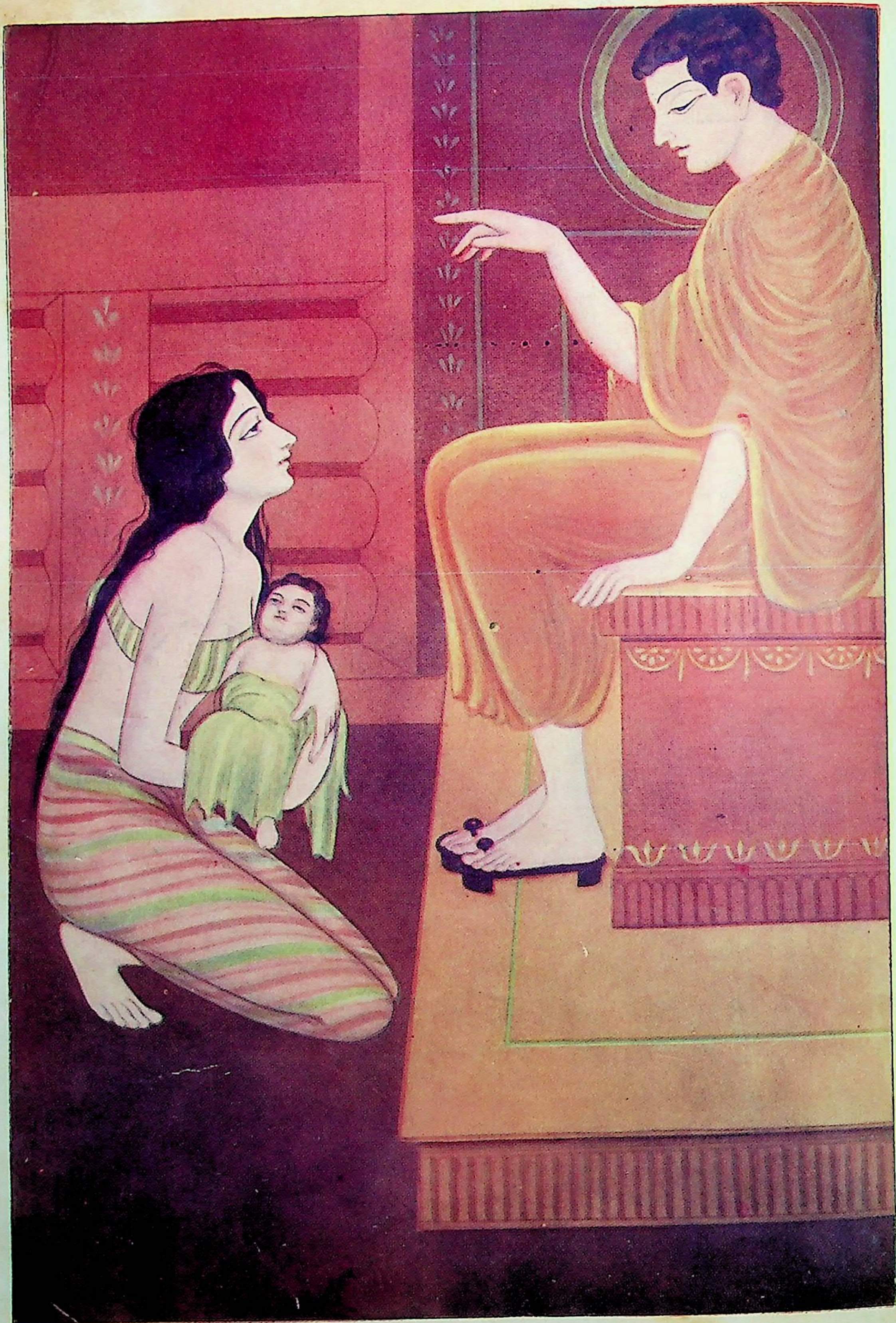
पत्र-व्यवहार करने का पता—

मैनेजर, विज्ञापन-विभाग

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

लेख-सूची

चित्र-सूची



बुद्ध और गौतमी

[चित्रकार, श्रीयुत वाणीकान्त दास



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

अगस्त १९३६ } भाग ३७, खंड २ संख्या २, पूर्ण संख्या ४४० { श्रावण १९९३

मेरे मन घन आज घिरे हैं!

लेखक, श्रीयुत रामनाथ 'सुमन'

मेरे मन घन आज घिरे हैं।

इनमें विद्युत्-सी मत चमको,
हँसो नहीं, रोने दो हमको।
अब भी कसक कलेजे में है, अब भी वे सब घाव हरे हैं।
मेरे मन घन आज घिरे हैं।

तम से प्राण लपेट लिये हैं,
जग के दीप समेट लिये हैं।
अब जीवन-नभ की ऐ चंदा,
मत उग मेरे नैन सिये हैं।
प्राणों के लाले छालों में जलते मौन प्रवाह भरे हैं।
मेरे मन घन आज घिरे हैं।

तुम भूली, जग-माया भूली,
अब तुम आई तो वह जागी।
इतना ही क्या अरे न बस था,
जो तुम चली जलाने आगी।
कोयल, कहाँ पराग रहा, अब जीवन के पत्ते बिखरे हैं।
मेरे मन घन आज घिरे हैं।

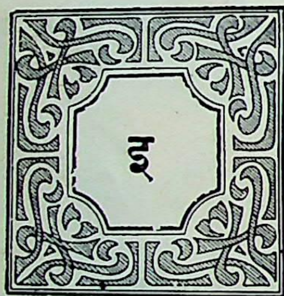
मैं बेहोशी में जीता हूँ,
अपने में तुमको पीता हूँ।
चुप, न कहीं मेरा मन कह दे,
मैं प्यासा हूँ, मैं रीता हूँ।
विकल न होना, जगत्-दृष्टि से अपने जीवन-सत्य परे हैं।
मेरे मन घन आज घिरे हैं।

अबीसीनिया के पराभव की कथा

लेखक, श्रीनाथसिंह



[अबीसीनिया के सम्राट् किंग डेविड होटल में काग़ज़ी लड़ाई के द्वारा अपना खोया हुआ राज्य वापस पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी पुत्री इस कार्य्य में उनकी सहायक है।]

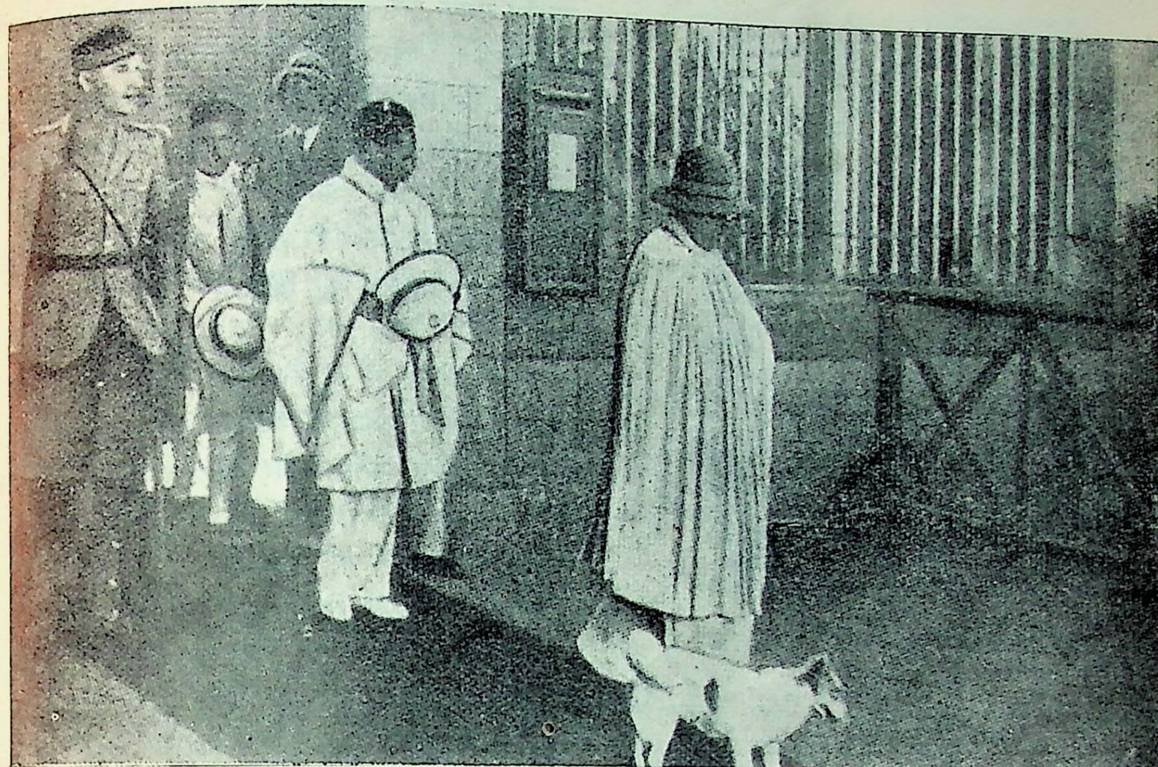


टली के हवाई जहाज़ों ने अडोवा पर ३ आक्टोबर सन् १९३५ को बम गिराये थे। उस दिन सम्राट् हेल सेलासी के पास एक छोटे क़द का अबीसीनियन बैठा थे। यह व्यक्ति लड़ाई के दिनों में सम्राट् के पास बराबर रहा और जब वे युद्ध में हार जाने से भागे तब भी यह उनके साथ रहा। यरूसलम के एक होटल में इस व्यक्ति ने विलायत के 'संडे एक्सप्रेस' नामक प्रसिद्ध पत्र के विशेष प्रतिनिधि श्रीयुत ओ० डी० गैलेघर से अबीसीनिया के संकट की सारी दर्दनाक कहानी कही। श्रीयुत गैलेघर भी अबीसीनिया में सम्राट् के पास रहते थे और उन्हीं के साथ यरूसलम आये थे। इन्होंने उस कहानी को अपने शब्दों में लिखकर 'संडे एक्सप्रेस' में हाल में छपाया है। इन्होंने अबीसीनिया का बहुत कुछ हाल अपनी आँखों से देखा है, इसलिए इनके वर्णन में बड़ी सजीवता आ गई है। वह कहानी इस प्रकार है जिसका सारांश हम यहाँ 'लीडर' से दे रहे हैं—

आदिस अबाबा में ख़लबली मची हुई थी। अबीसीनिया के रणबाँकुरे इटली से मोरचा लेने के लिए अपनी ताल ठोंक रहे थे। १८९६ में अबीसीनियनों ने अडोवा में इटली की फ़ौजों को बकरों के झुंड की तरह काट डाला था। वह कहानी उनकी ज़बान पर थी। उस युद्ध का विजेता बूढ़ा रास मुलगट्टा अभी जीवित था। बूढ़े शेर की तरह वह फिर माँद से निकला। उसके साथ निकले उसके एक लाख मौत से न डरनेवाले जवान। उनके हाथ में १८९२ की बनी बन्दूकें थीं और उसी समय के पुराने कारतूस थे। मुलगट्टा ने इस सेना की सम्राट् हेल-सेलासी के महल के सामने क़वायद कराई और उनसे युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिए बिदा माँगी।

सम्राट् के पास बहुत-से समाचार-पत्रों के संवाददाता खड़े थे। रास मुलगट्टा ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से उन्हें देखते हुए सम्राट् से पूछा—

"ये गोरड़े कौन हैं? इनका यहाँ क्या काम है? मेनलिक इन्हें अपने पास कभी खड़ा नहीं होने देता था। मैं बूढ़ा हुआ। युद्ध में जाने की मेरी उम्र नहीं है। पर मैं इन कुत्तों को एक बार चबा चुका हूँ। मैं इनको फिर चबा



[अबीसीनिया के सम्राट् यरूसलम में आने के समय। आगे आगे सम्राज्ञी हैं और उनके पुत्र पीछे हैं।]

लूँगा। मेनलिक के समय में मैं जवान था। अब वह बल नहीं रहा। मैं इस बार जीता नहीं लौटूँगा...।"

बूढ़े सेनापति की यह भविष्यवाणी सच निकली। वह सचमुच युद्ध-क्षेत्र से नहीं लौटा और उसके गिरते ही अबीसीनियनों के पैर उखड़ गये।

सम्राट् ने सलाह दी थी कि तुम आगे आगे रहना और इसके उत्तर में इस बूढ़े ने कहा था—"हाँ, हाँ, मेनलिक ख़च्चर पर चलते थे। मैं भी ऐसा ही करूँगा।" एक महीने में वह अपने मोरचे पर पहुँच गया। अब उसे जल्दबाज़ी करने की ज़रूरत नहीं थी।

युद्ध-क्षेत्र में पहुँचते ही उसने रौद्र रूप धारण किया, भीषण मारकाट शुरू कर दी। वह स्वयं शैतान का अवतार बन गया। देश की स्वाधीनता और अपने एक वादे के सिवा उसके लिए कोई वस्तु पवित्र नहीं थी।

राजनीतिज्ञ हेल सेलासी ने अनुभव किया कि क़ैदियों और घायलों का निर्दयतापूर्वक वध करने से इटालियनों को संसार की सहानुभूति प्राप्त करने का एक बहाना मिल जायगा, इसलिए उन्होंने मुलगट्टा से ऐसे वध के रोकने का वचन ले लिया था। मुलगट्टा ने युद्धमंत्री की हैसियत से आज्ञा निकाल दी कि जो अबीसीनियन योद्धा घायल या क़ैदी शत्रु का अङ्गच्छेद करेगा उसे प्राणदण्ड मिलेगा। मुलगट्टा अपने इस वादे पर तब भी क़ायम रहा जब इटालियनों ने गैस का प्रयोग आरम्भ किया। बाद को अन्य अबीसीनियन सरदारों ने सम्राट् की भर्त्सना की और इस नीति को उनकी कमज़ोरी बताया। उन्होंने कहा कि सम्राट् स्त्री की भाँति कायर हैं, क्योंकि बिना निर्दयतापूर्वक वध के शत्रु के आदमियों का आगे बढ़ने का साहस कम नहीं होगा।

परन्तु मुलगट्टा अपने वादे पर क़ायम रहा, यद्यपि हेल सेलासी की यह कमज़ोरी उसने मेनलिक में नहीं देखी थी और इसके लिए उसे बराबर दुःख रहा।

इसी बीच में वर्षा आरम्भ हो गई। ठंड और नमी से वह बूढ़ा युद्ध-मंत्री अपनी रक्षा न कर सका। उसे निमोनिया हो गया। उसे एक डाक्टर की ज़रूरत पड़ी। गोरों से घृणा करनेवाले को क्या गोरे डाक्टर से इलाज कराना पड़ेगा?......।



[नरव्याघ्र रास सेयूम ।]

हेडकार्टर को एक डाक्टर भेजने के लिए सूचना दी गई। परन्तु वहाँ से कोई डाक्टर न आ सका। इन जङ्गली फ़ौजों में सिर्फ़ एक ही गोरा डाक्टर घुसने का साहस कर सकता था और वह उस समय उत्तरी-पश्चिमी मोरचे पर था। इसलिए मुलगट्टा का इलाज देशी डाक्टरों ने शुरू किया। वह अच्छा हो गया, पर उसमें वह बल न आया जो पहले था।

इसी बीच में उसके पुत्र को गोली लगी और मुलगट्टा को एक बार फिर गोरे डाक्टर की माँग करनी पड़ी। इस बार एक गोरा डाक्टर पहुँचा। वह आयरिश था। नाम था कैप्टन मेरिअस ब्रोफ़िल। यह डाक्टर मुलगट्टा की सेनाओं के साथ ही आया था। इसने खाई के पीछे अस्पताल खोल रक्खा था और उसमें युद्ध-क्षेत्र के घायलों को ले जाकर रखता था।

रास मुलगट्टा का मरणोन्मुख पुत्र एक गुफा में लाया गया, जिसमें कैप्टन ब्रोफ़िल का सफ़री बिस्तर था। उसी बिस्तर पर वह लिटा दिया गया। बूढ़ा पिता पास ही एक संदूक़ पर बैठ गया। कैप्टन ब्रोफ़िल ने उस नवयुवक की चिकित्सा की, पर वे उसकी जान न बचा सके।

बूढ़ा मुलगट्टा अपने पुत्र की मृत्यु पर रो पड़ा। मोमबत्तियों के कम्पित प्रकाश में कैप्टन ब्रोफ़िल ने यह करुण दृश्य देखा। इसे वे कभी भुला नहीं सकेंगे......। उन्होंने उसके पुत्र की लाश एक पानी से भरे चहबच्चे में दफ़ना दी। और मुलगट्टा ने अपना युद्ध जारी रक्खा। उसे फिर निमोनिया हो गया। उसने फिर अपनी चिकित्सा कराई और लड़ना शुरू किया। अन्त में उसके सीने पर गोली लगी और वह अपने सख़्त बिस्तर पर अन्तिम बार लेटा। उसे तीव्र ज्वर हो आया और उसने बेहोशी की हालत में इटालियनों को अभिशाप देते हुए प्राण-त्याग किया।

उत्तरी मोरचे पर जो फ़ौजें बिखरी हुई थीं उनको एक में आबद्ध कर रखनेवाला यह सूत्र टूट गया।......और योद्धा लोग बिना नेता के हो गये। इस महान् सेना को टुकड़ियों में बिखर जाने से बचाने के लिए तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता थी।

सम्राट् ने अपना निर्णय सुना दिया। उन्होंने आज्ञा दी कि रास सेयूम और रास कसा उन एक लाख लड़ाकुओं की सेना को आधा आधा बाँट लें। यह विचित्र जोड़ा था।

रास सेयूम ऊँचा, तगड़ा, उत्साही और राबिनहुड की भाँति था। उसका जन्म इरीट्रिया की सीमा पर टाइगर-प्रान्त में हुआ था। इस प्रान्त के लोग समझदार, हाज़िर-जवाब और स्वाभिमानी होते हैं।

और रास कसा? अडोवा के प्रथम युद्ध का विजेता और एक बूढ़ा आदमी। हेल सेलासी की भाँति उसका भी जन्म शोआ में हुआ था। अबीसीनिया के प्रायः सभी शासक अब तक इसी प्रान्त में जन्म लेते आ रहे हैं।

अपने युवा-काल में वह एक सुन्दर योद्धा था और अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। परन्तु अब वह बूढ़ा हो गया था और कोई निर्णय करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहता था।

सेयूम और कसा—उत्तरी मोरचे के सेनापति। पहला साहसी और कार्यशील, दूसरा सावधान और दीर्घजीवन से थका हुआ। यह अजीब जोड़ा था। इन्हीं के हाथ में आक्रमणकारियों को रोक रखने का कार्य सौंपा गया था।......

युद्ध में जो मरते थे उन्हें दफ़नाने के लिए क़ब्रें खोदने का समय नहीं था। परन्तु वे यों पड़े भी नहीं रहने दिये जा सकते थे। वे मृतक चाहे अबीसीनियन हों, चाहे

इटालियन, रास सेयूम और रास कसा दोनों की सेनाओं के लिए ख़तरनाक थे। उनसे कुओं का पानी ख़राब हो रहा था और फ़ौज के पास हज़ारों की तादाद में गिद्ध और गीदड़ आदि जमा हो रहे थे। इसलिए इटालियनों की भाँति अबीसीनियनों ने भी युद्ध के मुर्दों को जलाना शुरू किया। दिन को बड़ी बड़ी चितायें बनाई जातीं और उन पर दस-दस, बारह-बारह मुर्दे एक साथ जला दिये जाते। दिन को इन चिताओं से धुँआ उठकर ऊपर छाये हुए बादलों तक पहुँच जाता।

इन सब दृश्यों से रास सेयूम चंचल हो उठा। शत्रु के सामने से पीछे हटते हटते वह थक गया था और उसके सिपाही भी थक चले थे। उसे यह डर नहीं था कि सैनिक विद्रोही हो जायँगे या उसका साथ छोड़ देंगे। उसने उनसे बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। जो कुछ भी वे माँगते थे, वह उन्हें सब देता था।

युद्ध में जो भी लूट का माल मिलता वह सब अपने सैनिकों में बाँट देता। इतना ही नहीं, अपनी निजी सम्पत्ति भी उसने अपने सैनिकों को दे दी। जो कुछ भी उसके पास था उसके सैनिकों का हो गया।

स्वर्गगत रास मुलगट्टा के पीछे चलनेवाले लड़ाकू योद्धाओं में से जो सेयूम के हिस्से में पड़े थे वे इस बात से प्रसन्न थे कि उन्हें रास कसा के हिस्से में नहीं पड़ना पड़ा। ऐसा कोई सैनिक नहीं था जो रास सेयूम की आज्ञा पाने पर अपने सगे भाई तक का ख़ून न कर बैठता। वह अत्यन्त ही प्यारा सेनापति था।

एक दिन यह नरकेसरी अपने स्थान पर किसी को सेना-संचालन का कार्य सौंप कर एक ख़च्चर पर सवार हुआ और अपने छः सैनिकों से भी ऐसा ही करने के लिए कहा। इस प्रकार सवार होकर सेयूम कसा के कैम्प में उससे मिलने गया।

सेयूम को पहचान कर कसा के आदमियों ने प्रसन्नता-पूर्वक उसका स्वागत किया। उसकी उदारता की कहानियाँ वे पहले ही सुन चुके थे। पर सेयूम ने अबीसीनिया के चाँदी के भारी सिक्के उनमें नहीं बाँटे। अपने इस कार्य से वह अपने सहयोगी कसा को दुःखी नहीं करना चाहता था।

कसा के कैम्प में सेयूम ने अबीसीनिया की बढ़िया तेज़ शराब का पान किया। यह शराब शहद से बनाई



[रास कसा।]

जाती है। अवसर पाते ही सेयूम ने कसा से अपने आने का उद्देश कहा। उसने कहा—"हम इन पर्वतों में तब तक क्यों छिपे रहें जब तक इटालियन यहाँ आ न जायँ? और तब फिर हम पीछे हटें और किसी दूसरे पहाड़ में छिपकर उनकी प्रतीक्षा करें। हम क्यों न लड़ें?"

सावधान कसा ने अपना सिर हिलाया। उसने कहा—"यह बुद्धिमानी का कार्य नहीं होगा। पीछे हटते चलो। यही अच्छा है। शत्रु को और भी विकट पहाड़ियों में आ जाने दो। और जब सम्राट् आज्ञा दें, सम्पूर्ण ताक़त से उन पर टूट पड़ो और उन्हें १८९६ की तरह काट डालो।"

वे बातें करते रहे। सेयूम आगे बढ़ने पर ज़ोर देता, कसा पीछे हटने पर। सेयूम को क्रोध आ गया। पेट्रोल के जो पीपे मेज़ का काम दे रहे थे उन पर वह हाथ पटकने लगा। उसने बड़े ज़ोर से चिल्लाकर कहा—"तब तो वे बिना लड़े ही हमारे देश पर अधिकार कर लेंगे।" यह आवाज़ कैम्प के बाहर तक गई और नौकरों ने भी सुना कि क्या बहस हो रही है।

सेयूम ने अपनी बात पर इतना ज़ोर दिया कि उसने कसा को अन्त में अपने पक्ष में कर लिया और यह राय ठहरी कि एक ख़ास स्थान पर दोनों दो तरफ़ से हमला करें। उस रात सेयूम की ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। वह ख़ुश ख़ुश अपने कैम्प को लौट गया और उसके छहों साथी यह गीत गाते हुए उसके साथ गये—

रास सेयूम तेरी धूम,
दुश्मन तुझसे काँपें थर थर।
तू सरदार तू नरव्याघ,
तू माँ की सकता रक्षा कर ॥
ओ महान! सेयूम महान,
बैल-सदृश है तेरी छाती।
तेज़ी हिरनों की है तुझमें,
आँख गिद्ध की सी मदमाती।
धन्य टाइगर-राज सेयूम।
मची हुई है तेरी धूम ॥

सेयूम ने एक सहभोज की रात मनाने की घोषणा की। पशु और बकरे बिना कल की चिन्ता के मार डाले गये। उसके आदमियों ने भर पेट कच्चा मांस खाया। अबीसीनिया में यही सबसे बड़ा और स्वादिष्ठ खाद्य समझा जाता है। सबके साथ बैठकर सेयूम ने भी खाया। उस समय पर्वतों में कैसा उत्साह छाया रहा होगा!

दो दिन पश्चात् अबीसीनियनों ने धावा बोल दिया। अत्यन्त चतुरता के साथ रास कसा और नरव्याघ्र सेयूम दोनों ने अपने आदमियों को आगे बढ़ाया। एक पूर्व की ओर बढ़ा, दूसरा पश्चिम की ओर।

उत्तर की ओर एक ख़ास स्थान पर दोनों ने मिलना तय किया था। एक दूसरे का पता देने के लिए दोनों ओर हरकारे दौड़ रहे थे। जब दोनों की फ़ौजें एक ख़ास स्थान पर पहुँच गईं, यद्यपि उनके बीच में मीलों का फ़ासला हो गया था, तब मुड़ने का हुक्म दिया गया।........धीरे धीरे पर अत्यन्त सावधानी के साथ मानवनिर्मित ये दोनों काले पंजे एक दूसरे के क़रीब आने लगे और उनके बीच में एक पतले लोहे के तार की तरह मनुष्यों की एक क़तार आगई। यह इटालियनों का एडवान्स कालम (हरौल सेनादल) था।...

नरव्याघ्र सेयूम ने एक पर्वत की चोटी पर अपना अड्डा जमाया और उसके ठीक सामने दूसरे पर्वत की चोटी पर उसका साथी सावधान कसा अपने अनुयायियों के साथ जा बैठा।

सेयूम ने अपने आदमियों को इकट्ठा किया। उन्हें समझाया कि उनको किस प्रकार इटालियनों के आवागमन के मार्ग को जो नीचे गहरी घाटी में बन रहा है, तोड़ना है। इटालियनों को पता नहीं था कि ऊपर पर्वत की चोटी पर क्या हो रहा है। उनके प्रति सेयूम ने अपने साथियों को मूक घृणा से पागल कर दिया था, परन्तु वह उन्हें अपने क़ाबू में भी किये था। आक्रमणकारियों का क़त्लेआम करने के लिए ऐसा करना आवश्यक भी था।

सेयूम अन्तिम तैयारी कर चुका था। परन्तु सामने के पर्वत पर डटी कसा की सेना से उसे कोई इशारा न मिला। सेयूम प्रतीक्षा में बैठा रहा........बैठा रहा........और बैठा रहा। अन्त में वह अधिक प्रतीक्षा न कर सका। उसने एक चमत्कार दिखाया जो ऐतिहासिक कहा जायगा। स्तब्ध निशा में जब वर्षा ने पर्वतों को तर कर दिया था, वह कुछ चुने हुए आदमियों को लेकर घाटी में उतर गया। चुपचाप दबे पावों वह घाटी में पड़ी इटालियन लाइनों के पार निकल गया। उसका यह कार्य इस बात का सूचक था कि उसके और कसा के पूर्व-निश्चय के अनुसार कार्य करने से क्या सफलता मिल सकती है।

सामने के पर्वत पर चढ़ने में उसका दम फूल गया। वर्षा से तर चट्टानों पर फिसलता और घासों में उलझता हुआ वह कसा के कैम्प में जा पहुँचा। कसा के जिन पहरेदारों ने अँधेरे में आने के कारण उसे रोका उनको चुपके से एक ओर हटाकर वह सीधा कसा के पास गया। क्रोधावेश में उसने कसा से जितने भी प्रश्न किये, सबका कसा ने एक ही उत्तर दिया। वह यह कि बिना सम्राट् की सलाह के मैं ऐसे साहसपूर्ण कार्य में हाथ नहीं डाल सकता।

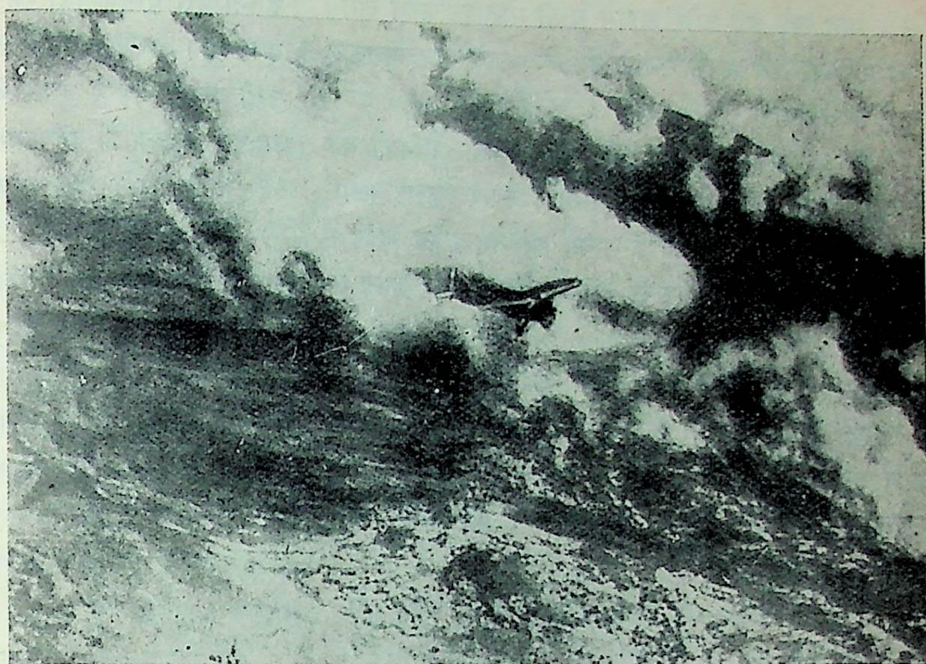
सेयूम ने गरज कर कहा—परन्तु सम्राट् डेसी में हैं और हम यहाँ हैं। सब कुछ हमारे हाथ में है।

तो भी कसा टस से मस न हुआ। सम्राट् की स्वीकृति उसके लिए आवश्यक थी।

अधीर होकर सेयूम वहाँ से चल पड़ा। कुछ दिनों के बाद वह अपने सैनिकों को लेकर अकेले दम हमला बोलने के लिए उस स्थान को छोड़कर किसी उपयुक्त स्थान और अवसर की खोज में निकल पड़ा।

पाँच दिन रास कसा अपने पर्वत पर बैठा इटालियन फ़ौजों का घाटी से होकर मकाले में जमा होना देखता रहा। और इस समय में उसने किया क्या? वह एक पादरी से धार्मिक वाद-विवाद करता रहा।

यह कोरी कथा नहीं है। ध्रुव सत्य है। नरव्याघ्र सेयूम के चले जाने पर कसा केवल अपने आदमियों की सहायता से मेकाले पर पीछे से हमला नहीं कर सकता था। इटालियन मकाले से निकल पड़े, शाही मार्ग से डेसी पहुँचे और बाद को आदिस अबाबा पहुँच गये। उन्हें विजय मिली।



[उत्तरी मोरचे पर गैस गिरानेवाला एक इटालियन हवाई जहाज़ जिसके आगे अबीसीनियनों की सारी शक्ति बेकार सिद्ध हुई।]

आज रास कसा जुडा के पराजित सिंह के साथ इँग्लेंड में है। उसके दुःख का ठिकाना नहीं है। हेल सेलासी के दल के अन्य लोग उससे घृणा करते हैं। उसके उत्तर- दायित्व की ठोस भावना की, जिसने उसे नरव्याघ्र सेयूम की युद्ध करने की माँग को स्वीकार करने से वञ्चित रक्खा, वे क़द्र नहीं करते। वे नहीं जानते कि रास कसा उन इने- गिने सेनानायकों में है जिसने डेसी के हेडक्वार्टर से सहयोग बनाये रखने का प्रयत्न किया था।

सम्राट् के हृदय में इस बुड्ढे आदमी के प्रति असीम श्रद्धा है। परन्तु वे स्वयं युद्ध के अच्छे संचालक नहीं हैं, केवल उसके विद्यार्थी ही हैं। मेरा ख़याल है, सम्राट् इस सावधान सरदार को सदैव अपने साथ रक्खेंगे।

सम्राट् का कहना है कि इटली ने गैस के बल पर युद्ध में विजय पाई है। यह बात बहुत अंशों में सत्य है। वर्षा क़रीब आ रही थी। उसके आगे इटली की यंत्रविद्या का चलना सम्भव नहीं था। संसार में यह चर्चा थी कि वर्षा शुरू होते ही इटली को लेने के देने पड़ जायँगे।

इसलिए मुसोलिनी ने वर्षा शुरू होने से पहले ही अबीसीनिया में गैस बिखेर दी। अबीसीनियन योद्धा इसके आगे बेकाम हो गये। उनका दम घुटने लगा। वे भागे और अत्यन्त पीड़ा से छटपटा कर मरने लगे। जो योद्धा गैस से बचे थे उन्होंने अपने साथियों को इस प्रकार मरते देखा तब उनके भी छक्के छूट गये।

अडोवा की विजय का पुराना घमंड काफ़ूर हो गया। प्रत्येक अबीसीनियन भयत्रस्त होकर एक दूसरे से पूछने लगा—यह गैस क्या वस्तु है?

एक सेना के बाद दूसरी आगे बढ़ी और इस तरह वाष्परूपी विष ने पहले की ही भाँति उसको भी सुला दिया। इक्के-दुक्के लोग रात में छिपकर भागने लगे। कतिपय सेनाओं का ढाँचा-मात्र शेष रह गया।

सम्राट् ने ये सब बातें सुनीं। उन्होंने निश्चय किया कि ऐसे अवसर पर युद्ध-क्षेत्र में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। अपने मंत्रियों को साथ लेकर वे तत्काल युद्धक्षेत्र में पहुँच गये।

वे एक ख़च्चर पर सवार हुए और परम्परा के अनुसार अपने राजसी ठाट-बाट के साथ आगे बढ़े। उन्हें देखकर उनके आदमियों में एक बार फिर जोश उमड़ आया।

परन्तु इटली के हवाई जहाज़ों ने आसमान से तरल गैस उँड़ेलना जारी रक्खा और अबीसीनियनों को अपनी अवस्था पहले से भी अधिक असमर्थ प्रतीत हुई। घबराहट

में वे भाग खड़े हुए और आपस में ही मारकाट करने लगे। गैस के भय से वे अपने सेनापतियों के साथ विश्वासघात तक करने लगे।

हेल सेलासी ने युद्धक्षेत्र से भयत्रस्त सैनिकों का भागना रोकने के लिए विशेष सेनायें तैयार कराई और उनको सड़कों और कारवाँ के मार्गों पर तैनात कर दिया। उन्हें यह आदेश दिया गया था कि किसी को वापस न जाने दो। आज्ञा के शब्द ये थे—"भागनेवाले कुत्तों को गोली मार दो। उनकी बन्दूकें और रुपये तुम्हारे हैं।"

सैकड़ों कायर जो गैस के भय से भागते थे, इस प्रकार मार डाले जाते थे। अन्त में उत्तर में अबीसीनियनों की पंक्ति टूट गई और सम्राट् के पास पीछे हटने के सिवा और कोई चारा न रह गया।

कोरम के उत्तर कहीं एक जगह उन्होंने नई पंक्ति बनाने की चेष्टा की, पर गैस के आगे उनका वश न चला। उनके कुछ देशवासियों ने विद्रोह कर अनजान में सम्राट् और उनके साथियों पर आक्रमण कर दिया। एक विद्रोही की गोली सम्राट् के बग़ल में खड़े एक मुसाहिब को लगी।

सम्राट् को वहाँ से भागने के लिए विवश होना पड़ा। उनके अन्तरंग सहयोगियों की यह सलाह ठहरी कि वे कम-से-कम आदमी लेकर वापस जायँ ताकि जल्दी से आदिस अबाबा पहुँच जायँ और उन्हें कोई पहचान भी न सके। इसलिए वे अपने कुछ आदमियों के साथ आदिस अबाबा को भागे। आदिस अबाबा में पहुँच कर उनका उद्देश नई सेनायें खड़ी करना था।

जब वे उन लाइनों पर पहुँचे जो उन्होंने भागनेवालों को रोकने के लिए खड़ी की थीं तब उन्हें हुक्म मिला—"वापस जाओ और लड़ो।"

उन्होंने उत्तर दिया—"मैं तुम्हारा सम्राट् हूँ। आदिस अबाबा जा रहा हूँ।"

बड़ी मुश्किल से उन्हें आगे बढ़ने की आज्ञा मिली। इस प्रकार मार्ग में वे चार बार रोके गये। इस यात्रा में उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। ठंड, नमी, चिन्ता आदि के कारण उनका एक फेफड़ा ख़राब हो गया।

कष्टों का यहीं अन्त न था। उन्हें एक ऐसी घाटी से गुज़रना पड़ा जो गैस से भरी थी। इसका उन पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि अब तक उनका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है। परन्तु उनमें आश्चर्यजनक इच्छा-शक्ति है। उसी के बल पर वे दुःख झेलते हुए आगे बढ़ते गये और आदिस अबाबा में पहुँचकर अपनी पत्नी सम्राज्ञी से मिले।

जो सेनापति और मंत्री एकत्र हो सकते थे उन्हें तुरन्त ही उन्होंने एकत्र किया और राजधानी की रक्षा के उपाय सोचने लगे। राजमहल में यह सभा बैठी और इसमें उस छोटे क़द के दाढ़ीवाले शासक ने एक जोशीला भाषण किया। उन्होंने राजधानी ख़ाली करके पश्चिमी हिस्से में जिसका इटालियनों को पता नहीं था, मोरचा बनाने की बात कही। सम्राट्-सहित सेनापति और गवर्नर सब २५ व्यक्ति उस समय वहाँ उपस्थित थे और सम्राट् का ख़याल था कि सब उनकी बात मानेंगे। परन्तु उनकी इस अन्तिम आशा पर पानी फिर गया।

कई सेनापतियों ने कहा—"इस युद्ध को जारी रखने से क्या फ़ायदा? यह तो हम सबका अन्त कर देगा।"

औरों ने भी कहा—"इस युद्ध से क्या फ़ायदा?"

सम्राट् ने कहा—"यह कि इटली की दासता की अपेक्षा लड़कर मर जाना अच्छा है। यदि हमारी स्वाधीनता ही छिन गई तो फिर बाक़ी क्या बचा? हम लड़ते लड़ते क्यों न मर जायँ?"

सभा पर इस कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे सब बूढ़े लोग थे। युद्ध से परेशान थे! सम्राट् ने उन पर कटु व्यङ्ग्य किये, पर वे ज़रा भी न डिगे। वोट लिये गये। जो लड़कर मर जाना चाहते थे उन्होंने सम्राट् के साथ हाथ उठाया, जो नहीं लड़ना चाहते थे उन्होंने रास कसा का साथ दिया। कसा के पक्ष में २१ वोट थे।

तब प्रथम बार सम्राट् ने यह अनुभव किया कि अब अन्त आ गया है। केवल तीन सेनानायक उनके साथ मृत्यु के द्वार तक जाने के लिए तैयार थे।

वह सभा जिसका हेल सेलासी ने सम्राट् के रूप में अन्तिम बार नेतृत्व किया, भङ्ग हो गई। वे सम्राज्ञी से मिले और उनसे सारी बातें कहीं।

उनके लिए अब भी यह सम्भव था कि वे एक छोटी सेना इकट्ठी करके युद्ध जारी रखते। पर उनके लिए यह आत्मघात सिद्ध होता, क्योंकि शत्रु के हाथ में बन्दी होना वे कदापि पसन्द न करते।

इस मामले पर विचार करके उन्होंने देश छोड़ देने का निश्चय किया ताकि वे अपना स्वास्थ्य सुधारें और राष्ट्रसंघ के द्वारा युद्ध जारी रक्खें।

आज वे इँग्लेंड में सहायता की खोज में भटक रहे हैं। परन्तु उनके अमरीकन सलाहकार ने जिसे वे बीमार की अवस्था में यरूसलम में छोड़ गये हैं, श्री गैलेघर से कहा – "मुझे तो अब यह सब व्यर्थ जान पड़ता है।"

राष्ट्रसंघ की बैठक में उन्होंने स्वयं उपस्थित होकर अत्यन्त दुःखद शब्दों में इटली के अमानुषिक कार्यों का वर्णन किया है और संघ की एक निर्बल सदस्य के प्रति इस उपेक्षाभाव की कटु आलोचना की है। पर कौन सुनेगा? जान पड़ता है—"जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावत जैसे आदिकाल में सत्य थी, वैसे ही सभ्यता के इस युग में भी वह सत्य ही सिद्ध होगी।

फूल से

लेखक, श्रीयुत चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा 'विद्यार्थी'

फूल! यह क्षण भर का जीवन है।
इस अनंत संसृति का सचमुच नाशवान कण-कण है।

[१]

मधुप-वृन्द तुझ पर मँडराते,
रस पीते गुन-गुन हैं गाते;
अठखेली करते इतराते,
फूला नहीं समाता तू है, हँसता मन-ही-मन है।

[२]

है कमनीय कलेवर तेरा,
यौवन का है सरस सवेरा,
किन्तु याद रख कहना मेरा,
इठलाता जिस पर है, वह तो केवल मन का धन है।

[३]

तुझे देख उत्साह मनाते,
तेरे निकट दौड़कर आते,
धूल भरा भी तुझे उठाते,
देख तुझे खिल जाता पल में सबका हृद-उपवन है।

[४]

मस्तक पर हैं तुझे चढ़ाते,
कुछ क्षण को सम्मान बढ़ाते,
आँखों में तसवीर मढ़ाते,
बस इस पर ही तू इतराता कैसा भोलापन है!

[५]

जहाँ फूल! तू कुम्हलायेगा,
कौन पास तेरे आयेगा?
यह यौवन क्या रह पायेगा?
भू-लुण्ठित होने ही वाला, तेरा सुन्दर तन है।

[६]

प्रेम तुझे ये करनेवाले,
झूम झूम कर मरनेवाले,
भाव अकल्पित भरनेवाले,
त्याग तुझे देंगे पल भर में, चञ्चल इनका मन है।
फूल! यह क्षण भर का जीवन है।



एक ज्योतिषी ने उसे कुलच्छनी घोषित किया था पर वह कुल-लक्ष्मी बन गई। कैसे? यह कहानी पढ़िए।

खेमा

लेखक, श्रीयुत गँवार, एम० ए०, डी० लिट्०

(१)



के मार्च की बात है। अपने अनुसन्धान के सम्बन्ध में मुझे आज-कल की बोलियों पर कुछ सामग्री इकट्ठी करनी थी। इस काम के लिए मैंने नेपाल की तराई का भी भ्रमण किया था। जाड़े के दिनों में नेपाल से उतरकर बहुत-से पहाड़ी तराई में अपनी वस्तुओं का आदान-प्रदान करने के लिए आ जाते हैं। इनसे व्यापार करने के लिए संयुक्त-प्रान्त के उत्तरी ज़िलों के बहुत-से व्यापारी तराई में मंडियाँ बनाकर इनसे कम्बल, घी, मसाले आदि मोल लेते हैं और परिवर्तन में सोना, चाँदी, ज़ेवर, तम्बाकू आदि पदार्थ बेच देते हैं। इस प्रकार की गोला-मंडी नाम की एक मंडी बहराइच-ज़िले के छोर पर नेपाल-प्रदेश के अन्तर्गत है। यह स्थान कतर्नियाघाट-स्टेशन से कोई छः-सात मील की दूरी पर है। कुछ जंगल, कुछ ऊसर ज़मीन, जहाँ-तहाँ थार लोगों की छोटी छोटी बस्तियाँ। इस जाति के रहन-सहन की भी विचित्र कथा है, सो कभी पीछे बताऊँगा, आज तो दूसरी ही बात कहनी है।

गोलामंडी में पिता जी की सोने-चाँदी की एक दूकान है। मैं वहीं जाकर ठहरा। रात्रि को विश्राम कर सवेरे नित्य-कर्म से निवृत्त होने के लिए नदी-तट पर चला गया। निर्मल जल, शुद्ध वायु, एकान्त की निस्तब्धता मनोमोहक थी। मुझे छायावादियों के 'नीरव गान' और 'मूक आह्वान' का आभास हुआ, यद्यपि सुशिक्षित होने (कम-से-कम अपने को समझने) पर भी मैं उनकी कविता का अर्थ नहीं निकाल पाता।

नदी-तट से लौटा तब देखा, दूकानें खुल चुकी हैं। बनियावृत्तिवालों का विश्वास है कि 'ग्राहक और मौत का ठिकाना नहीं, न जाने कब आ जाय'। इसी कारण शायद वे सवेरे से ही दूकान खोलकर बैठ जाते हैं कि कहीं आगन्तुक भटक न जाय। यदि यही व्यापारी 'मौत' के आगमन के लिए भी इतने ही सजग रहते तो शायद हम लोगों को घी के साथ चर्बी, दूध के साथ पानी और दस गज़ के जोड़े के स्थान पर साढ़े नौ गज़ का धोती का जोड़ा न मिला करता।

(२)

दूकान पर लौटकर देखा, कई पहाड़ी मुनीम जी से सौदा कर रहे हैं। कोई तम्बाकू ले रहा था, कोई ज़ेवर, एक अशर्फ़ी का मोल कर रहा था। मुनीम जी का प्रायः सम्पूर्ण ध्यान अशर्फ़ी माँगनेवाले पहाड़ी पर था। इतनी देर में एक भिखारिन भीख माँगने आई। फटे-पुराने चीथड़े पहने, नववयस्क—कोई सत्रह-अठारह वर्ष की, गोरी-चिट्टी थी। मुनीम जी यदि भावुक साहित्यिक होते तो अशर्फ़ीवाले पहाड़ी को छोड़कर उनकी दृष्टि उस नव-वयस्का पर जाती, पर वे तो थे व्यापारी, निन्नानवे के फेरवाले। भिखारिन को दुतकारने लगे, अच्छी झाड़-फिट-कार बताई। भरसक उसे टालने का उद्योग किया, पर वह बिना कुछ लिये कब हिलनेवाली थी! मुनीम जी ने ३०) से चलकर २३।।) में उस पहाड़ी के हाथ अशर्फ़ी बेची और नौकरों ने तम्बाकू आदि। सब चले गये। रह गई वह भिखारिन पहाड़िन। मुनीम जी अब उस पर और

उबल पड़े—'यह कुलच्छनी कहाँ से आ मरी'। 'सवेरे सवेरे अशगुन करने आई'। 'भाग यहाँ से'। 'कोई है नहीं रे, इसके दो डंडे लगाकर निकालता नहीं'। मेरे कहने पर उसे एक पैसा दिया गया और वह खिलखिलाती हुई चल दी। इतनी भर्त्सना और इतना अपमान सहकर भिखारी ही खिलखिलाकर हँस सकता है या अपने प्रियतम की फिटकार पर उर्दू-कवि।

(३)

भिखारिन के चले जाने पर मैंने मुनीम जी से कहा कि आपने बेकार उस ग़रीब दुखिया को इतना डाँटा-डपटा। वे बोले—"भैया, तुम क्या जानो? यह कानी बड़ी कुलच्छनी है। जिस दूकान पर सवेरे पहुँच जाती है उसकी दिन भर की बिक्री पट हो जाती है। आज ही देखो। डेढ़ रुपये का नुक़सान कर गई। २५) की अशर्फ़ी २३॥) में बेचनी पड़ी।" तब सोना सस्ता था, भारत से अरबों रुपये का ढुलकर विलायत नहीं पहुँच पाया था। २१), २२) की अशर्फ़ी २३॥) में बेचकर भी मुनीम जी को सन्तोष न था। पर उनसे वाद-विवाद करना व्यर्थ ही नहीं, अशिष्ट भी होता। उनकी आयु पिता जी का कारबार करते बीती थी। हम लोग उनको अपना वृद्ध मानते थे। मैं चुप होकर उस भिखारिन की बात बड़ी देर तक सोचता रहा—तो वह कानी भी है। दीन दुखिया है ही। परमेश्वर ने उसको कानी क्यों कर दिया? कोढ़ में खाज।

तीसरे पहर में फिर नदी-तट पर गया। देखा, वही भिखारिन नदी से चुल्लू भर भरकर पानी पी रही है और बीच बीच में अपना कोई पहाड़ी गाना भी गाती जाती है। प्रसन्न थी। मैंने नौकर से उसे पास बुलवाया, उससे उसका हाल चाल पूछा। उसने टूटी-फूटी हिन्दी में अपनी कहानी बहुत पोटने-पाटने पर इस प्रकार सुनाई—

"मेरे माता पिता बहुत ग़रीब थे। मैं उनकी प्रथम सन्तति हुई। गाँव के ज्योतिषी ने जन्म के ग्रह देखकर बताया कि यह लड़की बड़ी अभागिन है, इससे मा-बाप को दुख ही दुख होना है। इतने पर भी उन दोनों ने पाल-पोस कर मुझे बड़ा किया। न तो मा-बाप की ग़रीबी का बोझ हलका हुआ और न उनके कोई और सन्तान ही हुई। जब मैं तेरह-चौदह वर्ष की हुई तब पड़ोस के गाँव में मेरी सगाई हो गई। अभाग्यवश सगाई होने के एक मास के भीतर ही उस लड़के का देहान्त हो गया। माता-पिता को बहुत दुःख हुआ। दो साल पूर्व वे मुझे लेकर यहाँ आये। यहाँ के एक धनी मदेशिया (मध्यदेश—संयुक्तप्रान्त का मैदान) ज़मींदार की दृष्टि मुझ पर पड़ी। पिता जी से दो सौ पर सौदा हुआ। मैं उनके कोठार पहुँचाई गई। परन्तु मेरे दुर्भाग्य ने मुझे वहाँ भी नहीं छोड़ा। जिस रोज़ मैं पहुँची उसके दूसरे ही दिन ज़मींदार को साँप ने काट खाया और वे चल बसे। उनकी ब्याहता रानियों का और उनकी दासियों का कोप मुझ पर फट पड़ा। मुझे जो अमानुषिक यातना दी गई उसका वर्णन करने से क्या लाभ? एक आँख भी उसी के अर्पण हुई। निकाली जाकर किसी प्रकार मैं लौटकर यहाँ आई। मेरे माता-पिता घर चले गये थे। मैं भी पीछे पीछे पहुँची। मुझे देखकर और हाल सुनकर वे बहुत रोये। पर मुझको घर पर रखने को राज़ी नहीं हुए। बोले—"दान में दी हुई और फिर बेची हुई कन्या को कैसे वापस ले लें? यह बेईमानी न हो सकेगी"। वहाँ से चलकर मैं जाड़ों में यहाँ आ जाती हूँ, गर्मियों में फिर पहाड़। आकाश और पृथ्वी ही मेरे आश्रय-दाता हैं। मेरे घर पर मेरा एक छोटा भाई है। उसे देखकर माता-पिता प्रसन्न हैं। कहते हैं कि खेमा न जाती तो हमें यह कहाँ से प्राप्त होता।

"यहाँ का हर आदमी मेरा पूरा हाल जानता है। इसीलिए सब मुझसे घृणा करते हैं। पर मुझे खाने-पीने का कष्ट नहीं है। मैं सुख से हूँ।"

(४)

बेचारी खेमा थी रूढ़ियों का शिकार। मेरे मन में उथल-पुथल मची, इसका जीवन कैसे सँभले। मैंने उससे पूछा—"तू भीख माँगना छोड़कर गृहस्थ-जीवन में आना चाहती है?" वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—"नहीं। अभी तो कानी ही हूँ, अन्धी नहीं होना चाहती।" बहुत समझाने-बुझाने पर उस मेरे सद्भाव में उसको विश्वास हुआ। मैंने उसे सहायता का वचन देकर बिदा किया। गोलामंडी से चलने के पूर्व मैंने मुनीम जी से कह दिया कि मैं घर पहुँचकर उस कानी के बारे में पत्र लिखूँगा। वैसी कार्रवाई कीजिएगा।

घर आकर मैंने आचार्य........, संचालक, कन्या-आश्रम......को पत्र लिखा। उनका उत्तर समवेदनापूर्ण

था। खेमा को मैंने उनके आश्रम में पहुँचा दिया। वहाँ वह आराम से पढ़ने लगी। वही खेमा अनुकूल परिस्थिति पाकर दमक उठी।

१९३० के दिसम्बर में पटना में ओरियंटल कान्फ़रेंस थी। वहाँ मुझसे पञ्जाब के कई प्रोफ़ेसरों से मुलाक़ात हुई। एक से मैंने खेमा की रामकहानी कही। उनको भी समवेदना हुई। लौट कर उन्होंने मुझको लिखा कि खेमा का फ़ोटो भिजवा दीजिए। आचार्य जी को मैंने लिख दिया कि खेमा की आँख बनवा दी जाय और फिर फ़ोटो उतरवा कर भेज दिया जाय।

खेमा अब अमृतसर के एक सिक्ख ठेकेदार की धर्मपत्नी है। ठेकेदार साहब को उसके सम्पूर्ण वृत्तान्त से पूर्ण परिचय है। दोनों सुख से हैं। अभी पिछले जाड़ों में मैं लाहौर गया था तब एक दिन को उनके पास भी ठहरा था। खेमा और उसके पति ने बड़ी ख़ातिर की। उनका छोटा बालक लाहनसिंह बड़ा प्यारा मालूम हुआ। चलते समय मैंने खेमा को आशीर्वाद दिया। वह बोली नहीं, पर उसकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। उन आँसुओं में मुझे अपरिमित कृतज्ञता दिखाई पड़ी।

तब

लेखक, श्रीयुत रामदुलारे गुप्त

शरद-ऋतु हो, सुधाधर हो
मेघ-छादित यामिनी हो
स्तब्ध वसुधा, स्तब्ध अम्बर,
शान्ति चिर-अधिवासिनी हो

रश्मियाँ भू पर न आवें
अभ्रपट पर बिछ रहें वे;
हो न तम, न प्रकाश ही हो
एक द्युति आभासिनी हो

बादलों से कान्ति छन-छन
कुसुम-रज-सम उड़ रही हो
मुकुल सोते आँख मूँदे
प्रकृति स्वप्न-विलासिनी हो

नींद का अञ्चल न हो,
दिन-जागरण का हो न रव,
सुप्ति-जागृति की दशा
इस हृदय की अधिकारिणी हो

दूर, जनपद-रोर-अविदित-
लता-निर्मित-कुञ्ज-मधुवन—
में धड़कती याचना हो,
मुखर-तट-स्रोतस्विनी हो

तब,—परी-सी उतर धीरे
सहज-सुषमा में छिपी-सी
मानिनी, नभ-वासिनी, आना
प्रिये, चिर-स्वामिनी हो

लोक-सेवकों में शिष्टता का अभाव

हमारे देश में सरकारी, अर्द्ध सरकारी और सार्वजनिक कर्मचारी जनसाधारण के प्रति प्रायः असभ्य व्यवहार करते रहते हैं। इस लेख में श्रीयुत संतराम जी ने कुछ ऐसे असभ्य व्यवहारों के उदाहरण दिये हैं और उनका प्रतिकार कैसे किया जा सकता है, यह भी बताया है। वास्तव में यह एक ऐसी बुराई है जिसको दूर करने के लिए हम सबको प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०



कोई जाति कितनी सभ्य और कितनी उन्नत है, इसका पता उस देश के सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और सार्वजनिक कर्मचारियों के जनता के प्रति व्यवहार से बहुत अच्छी तरह लग सकता है। इस कसौटी पर परखने से हमें आज का भारत बहुत ही गिरा हुआ देख पड़ता है। आप कचहरी जाइए, अस्पताल जाइए, पुलिस की चौकी जाइए, वहाँ के अरदली, चपरासी, कान्स्टेबल, मुंशी और बाबू आपसे इस प्रकार व्यवहार करेंगे और आप पर इस प्रकार धौंस जमायँगे, मानो आप उनके क्रीत दास हैं। आप उनसे सम्मानपूर्वक 'जी' कहकर बात करेंगे और वे 'तू'-'तू' करेंगे। भूल जाना तो दूर, इन लोगों को इस बात का कभी ज्ञान कराया ही नहीं गया कि तुम जनता के सेवक हो, जनता अपनी जेब से तुम्हें वेतन देती है और उसके प्रति शिष्टता का व्यवहार करना तुम्हारा कर्तव्य है। खेद है कि जनता इनके दुर्व्यवहार का प्रतिवाद न करके उसे चुपचाप सहन कर लेती है। इससे इनकी अशिष्टता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, और इनके उदाहरण से सारे देश के पारस्परिक व्यवहार का आदर्श गिरता जा रहा है। रेलवे बुकिङ्ग-आफ़िस पर जाकर बाबू से टिकट माँगिए, वह आपसे ऐसे बात करेगा मानो आप उसके नौकर हैं। थाने में अपनी किसी चोरी की रिपोर्ट लिखाने जाइए, कोतवाल आपको ऐसे धमकायगा, मानो आप दस नंबर के बदमाश हैं। डाकघर में मनीआर्डर कराने जाइए, डाक-बाबू आपके साथ ऐसी ला-परवाही से पेश आयगा, मानो वह आप पर कोई बहुत बड़ा उपकार कर रहा है। इतना ही नहीं, यह अशिष्टता का रोग यहाँ तक बढ़ गया है कि बैङ्कों में, दफ़्तरों में, बड़ी कोठियों में कर्मचारी लोग जनता के साथ रूखा व्यवहार करते हुए अपने व्यापार को हानि पहुँचने तक का ख़याल नहीं रखता है। मैं समझता हूँ, देशहितैषी लोगों का यह कर्तव्य है कि वे इस बढ़ती हुई अशिष्टता को रोकने का प्रयत्न करें, और ऐसे गुस्ताख़ सरकारी, अर्द्ध-सरकारी या निजी नौकरों के अशिष्टता-पूर्ण व्यवहार को देखते ही उनको चेतावनी दें, जिससे उन्हें अपनी भूल का कुछ अनुभव हो। इन कर्मचारियों को इस बात का ज्ञान ही नहीं कि जनता को उनसे सौजन्यपूर्ण व्यवहार की माँग करने का अधिकार है।

एक मर्तबा की बात है, मैं होशियारपुर से फ़ीरोज़पुर को जा रहा था। जब गाड़ी कपूर्थला पहुँची तब एक ग़रीब मीरासी अपने आठ-नौ वर्ष के लड़के के साथ गाड़ी में आ कर बैठा। जब गाड़ी चली तब रास्ते में एक टिकट चेक करनेवाला बाबू आकर टिकट देखने लगा। मीरासी के पास डेढ़ टिकट था और नियमानुसार चाहिए भी उतना ही था। परन्तु उसे ग़रीब एवं सीधा-सादा देखकर बाबू उसे तंग करने लगा। वह ऐसे अपमानजनक ढंग से उससे बातें करता था कि पास बैठे दूसरे मुसाफ़िरों को भी बहुत बुरा लगता था। परन्तु उसे किसी ने डाँटने का साहस नहीं किया। थोड़ी देर के बाद वह चला गया, परन्तु मेरे मन में बड़ा दुःख हुआ कि मैं उस बाबू की अशिष्टता देखकर क्यों चुप बैठा रहा। मुझे उससे इस प्रकार कहना चाहिए था—"रेलवे-विभाग ने आपको मुसाफ़िरों के टिकट

देखने का अधिकार दिया है, उनका अपमान करने का नहीं। आप जैसे कर्मचारियों के अशिष्ट व्यवहार से तंग आकर ही लोग रेल को छोड़कर मोटरलारियों में सफ़र करने लगे हैं। इसी से रेलवे को घाटा पड़ रहा है। यदि रेलवे के अधिकारी आपको इस प्रकार मुसाफ़िरों के साथ दुर्व्यवहार करते देख लें तो वे आपको शाबासी नहीं देंगे।" जब लाखों मनुष्य बेकार फिर रहे हैं तब ऐसी कम योग्यता के व्यक्ति को रखने की कोई आवश्यकता नहीं। अशिष्टता से बढ़कर और कोई अयोग्यता नहीं। रेल-गाड़ी में सफ़र करनेवाले मुसाफ़िरों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे रेलवे के कर्मचारियों से शिष्टता और सौजन्य की माँग करें।

एक मर्तबा मैं होशियारपुर के स्टेशन पर लाहौर का टिकट ख़रीद रहा था। बुकिङ्ग-क्लार्क ने बड़ी बुरी तरह से मेरे नोट को फेंकते हुए कहा—"हटो, भाँज नहीं है। भाँज ले आओ, तब टिकट मिलेगा।" मैंने उसकी इस अशिष्टता पर उसे डाँटकर कहा—"भाँज रखना आपका कर्तव्य है; नोट भुनाने के लिए अब मैं दो मील नगर में नहीं जाऊँगा; आपको टिकट देना पड़ेगा।" मेरे इतना कहते ही टिकट भी मिल गया और भाँज भी निकल आया।

लोक-सेवकों में सबसे अधिक सौजन्य का अभाव पुलिस में देखने में आता है। चौराहों पर खड़े सिपाही जिस लहज़े और जिस भाषा में टाँगेवालों, बाईसिकल-सवारों और मोटरकारवालों को सम्बोधन करते हैं वह सुनने लायक़ होता है। गाली और कड़वे शब्दों के बिना उनके मुख से और कुछ निकलता ही नहीं। अशिक्षित होना या छः घंटे से ड्यूटी पर खड़े होना उनके इस अशिष्ट व्यवहार के लिए कोई बहाना नहीं हो सकता। एक सज्जन एक मर्तबा आवागमन के एक बहुत साधारण से नियम का पालन न कर सके। वे सड़क पर पड़ी हुई लकीर के कुछ परे ही ठहराने के बजाय मोटर को भूल से लकीर के ऊपर ले आये। इस पर पुलिस का सिपाही अपशब्द बोलता हुआ उन पर बरस पड़ा और चालान करने के लिए उनका नाम-धाम पूछने लगा। तब उस सज्जन ने उससे कहा—"मेरा चालान तो पीछे कीजिए; पहले ज़रा मेरे साथ इस मोटर में बैठ जाइए। हम इकट्ठे आपके सर्जेंट के पास चलते हैं। मुझे विश्वास है, जिस भाषा का, जिस स्वर में आपने मेरे लिए प्रयोग किया है उसे आपके मुख से दुबारा सुनकर वह बहुत प्रसन्न होगा।" बस, फिर क्या था, सिपाही के होश ठिकाने आ गये। प्रत्येक सिपाही को पता रहना चाहिए कि सरकारी वर्दी पहन लेने से उसे नगर-निवासियों के साथ अशिष्टता का व्यवहार करने का अधिकार नहीं मिल जाता। वह हमें गिरफ़्तार कर सकता है, चालान कर सकता है, परन्तु हमें गाली देने या हमारा अपमान करने का अधिकार क़ानून उसे बिलकुल नहीं देता। इसलिए आपके उसे दबा देने पर उसे प्रायः दब जाना पड़ेगा।

पुलिसमेन के शब्द प्रायः बड़े कठोर होते हैं। जब वह टाँगेवाले को कुछ कहता है तब तो वे इतने गंदे होते हैं कि उन्हें लिखा नहीं जा सकता। उसका बोलने का ढंग, उसकी भाव-भङ्गी, उसका स्वर और उसकी शब्दावली सब कुछ ऐसा होता है जिससे वह निर्दय क़ानून की एक साक्षात् मूर्ति दीखने लगता है। उसके चेहरे से ऐसा टपकने लगता है, मानो नागरिक ने उसका अपना व्यक्तिगत या सारी पुलिस का ही भारी अपमान किया हो। वह हमें ऐसा अनुभव कराना चाहता है, मानो हम सदा अपने सारे जीवन में झूठे, कपटी, दस नम्बर के बदमाश और आत्मसम्मान-हीन प्राणी रहे हैं और आगे भी वैसे ही रहेंगे। पुलिस का सिपाही चाहता है कि जिस नागरिक से कोई हलका-सा भी अपराध हुआ है वह अपने मन में समझे, "मैं महामूर्ख हूँ, आप ठीक ही मेरा चालान कर रहे हैं, मैं ऐसा फिर कभी नहीं करूँगा। मुझ जैसे गधे के साथ ऐसा सज्जनोचित व्यवहार करने के लिए आप मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।"

सन् १९३४ की होली की बात है। कुछ गुण्डों ने मेरी दूकान का कटहरा तोड़ डाला और दूकानदार का साइनबोर्ड जला दिया, क्योंकि उसने उनको मदिरापान के लिए पैसे नहीं दिये थे। उन लोगों को डाँट-डपट कराने के उद्देश से मैं पुरानी अनारकली (लाहौर) के थाने में रिपोर्ट लिखाने गया। मेरे साथ अमरीका से लौटे हुए मेरे एक मित्र भी थे। कोतवाल साहब मेज़-कुर्सी लगाये, कुलह बाँधे और मूँछों को ताव दिये बैठे थे। हमने जाकर रिपोर्ट लिखने को कहा। उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। हम आध घंटा खड़े रहे, पर उनके मुँह से इतना भी न निकला कि बैठ जाइए, मैं ठहर कर रिपोर्ट लिखता हूँ। तब हमने दुबारा बड़े विनय के साथ उनसे रिपोर्ट लिखने की प्रार्थना

की। इस पर आप कड़ककर बोले —"मैं तुम्हें ग्यारह बरस के लिए जेल में भेजवा दूँगा। व्यर्थ में झूँठी रिपोर्ट करने चले आते हैं।" मैंने कहा -"आपने अभी हमारी रिपोर्ट तो सुनी ही नहीं, झूठी पहले ही कहने लग गये हैं।" तब तो आप और भी बिगड़ कर बोले -"मेरा सिर न खाओ; मुझे और भी काम हैं।" इस पर मेरे मित्र ने उनसे अँगरेज़ी में कहा—"आपको इस प्रकार बिगड़कर बात करने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि आप रिपोर्ट लिखाना नहीं चाहते तो न लिखिए।" अब कोतवाल साहब का पारा कुछ नीचे उतरा और वे बोले—"अच्छा, जाइए; मुंशी को रिपोर्ट लिखा दीजिए।" तब हम मुंशी के पास गये। वह भी टाल-मटोल करने लगा। कोई एक घंटा प्रतीक्षा करके हम तंग आ गये। तब हमने उसे कुछ ज़ोर से कहा—"लिखना हो तो लिखो, नहीं तो साफ़ जवाब दो।" इस पर वह बड़े अविनीत भाव से बोला—"तुम बड़े जल्दी करनेवाले आ गये हो। यहाँ तो लोग रिपोर्ट लिखाने के लिए चार चार घंटे बैठे रहते हैं।" हमने कहा—"चार घंटे बैठनेवाले कोई दूसरे होंगे; हम तो जाते हैं।" इतना कहकर हम थाने से चले आये। घर आकर मैंने अँगरेज़ी में रिपोर्ट लिखकर आदमी के हाथ कोतवाली में भेज दी। कोतवाल ने चुपचाप दर्ज करके उसकी नक़ल उर्दू में मेरे पास भेज दी।

इसी प्रकार गत वर्ष, सुना है, लाहौर-हाईकोर्ट के एक जज महोदय के यहाँ चोरी हो गई। वे सवेरे साधारण कपड़ों में ही उसकी रिपोर्ट लिखाने पुलिस चौकी में गये। परन्तु चौकी के मुंशी ने उन्हें डाँटकर कहा,—"जा, उधर जा के बैठ जा। अभी सूर्य निकला नहीं, यह पहले ही आ गया है, जैसे हमें और कोई काम ही नहीं।" जज साहब कोई एक घंटा खड़े रहे, परन्तु मुंशी ने उनकी बात तक न पूछी। तब उन्होंने फिर उससे रिपोर्ट लिखने को कहा। परन्तु वह फिर उसी अविनीत भाव से कड़ककर उन्हें धमकाने लगा। इतने में मुंशी का अफ़सर आ गया। मुंशी से उसने पूछा —"क्या बात है"? मुंशी ने कहा—"जी क्या बतायें? ये लोग बहुत तंग करते हैं। अभी सवेरा नहीं हुआ, यह पहले ही आ मरा है। इससे कहा है कि ज़रा ठहर, रिपोर्ट लिख लेते हैं, परन्तु यह दम ही नहीं लेने देता। जल्दी करो, जल्दी करो, कह रहा है।" इस पर मुंशी का अफ़सर जज साहब से बोला—"हम लोग तुम्हारे बाप के नौकर हैं, जो सवेरे सवेरे ही यहाँ दौड़े चले आते हो। ज़रा ठहर जाओ, रिपोर्ट लिखे लेते हैं।" जज साहब चुप रह गये। कुछ देर बाद उन्होंने फिर मुंशी के अफ़सर से रिपोर्ट लिखने को कहा। इस पर वह बड़ा उपकार जतलाता हुआ बड़े अविनीत भाव से बोला "लिखाओ। क्या लिखाते हो? बार बार कहने पर भी तुम टलनेवाले थोड़े ही हो।" अब जज साहब रिपोर्ट लिखाने लगे। मुंशी ने पूछा—"तुम्हारा नाम?" जज साहब ने बता दिया। "बाप का नाम?" जज साहब ने वह भी बता दिया और मुंशी ने लिख लिया। फिर उसने पूछा—"क्या काम करते हो?" जज साहब ने कहा—"हाईकोर्ट में जज हूँ।" बस इतना सुनते ही मुंशी और उसके अफ़सर के होश उड़ गये। दोनों ने जज साहब के पाँव पकड़ लिये कि हमें क्षमा कीजिए; हमें जीवन-दान दीजिए; हमसे भारी भूल हुई। पर अब क्या हो सकता था? सुना है, इस घटना का पता बड़े पुलिस-अफ़सरों को लगने पर वे दोनों मौक़ूफ़ कर दिये गये।

एक ओर तो हमारी पुलिस का यह बर्ताव है, दूसरी ओर इँग्लैंड की पुलिस इतनी अच्छी और इतनी शिष्ट है कि प्रवासी भारतवासी उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। मेरे एक मित्र हाल में ब्रिटिश पूर्वी अफ़्रीका से छः मास की छुट्टी पर भारत आये हैं। उन्होंने मुझे सुनाया कि एक मर्तबा उनके यहाँ अफ़्रीका में चोरी हो गई। वे कोतवाली में रिपोर्ट लिखाने गये। कोतवाल अँगरेज़ था। वह उस समय किसी काम में निरत था। उसने मेरे मित्र से कहा कि आप कुर्सी पर बैठ जाइए, मैं थोड़ी देर में रिपोर्ट दर्ज करता हूँ; आपको कुछ देर ठहरना पड़ेगा, इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। मेरे मित्र ने कहा—"कोई बात नहीं। आप अपना काम कर लीजिए, मैं खड़ा हूँ।" वे कुर्सी पर बैठने के बजाय खड़े ही रहे, क्योंकि उन्हें भारत की पुलिस का अनुभव था। इस पर वह अँगरेज़ फिर बोला—"भारत की बात दूसरी है; यह भारत नहीं। आप आराम से कुर्सी पर बैठिए, मैं अभी रिपोर्ट लिखता हूँ।" उस पुलिस-अफ़सर के इस सज्जनोचित व्यवहार का उन पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा।

भारतीय पुलिस के दुर्व्यवहार का एक स्पष्ट परि-

णाम तो यह हुआ है कि जनता का इसके साथ बिलकुल असहयोग-सा रहता है। सच्चे मामलों के लिए भी पुलिस के झूठे गवाह बनाने पड़ते हैं। इसलिए गवर्नरों के इसकी प्रशंसा के पुल बाँधते रहने पर भी पुलिस दिन पर दिन अधिक बदनाम होती जा रही है। हाईकोर्ट के जज तक इसको अपने फ़ैसलों में अविश्वास्य लिखने लगे हैं। इसलिए यह परम आवश्यक जान पड़ता है कि सरकार पुलिस को जनता के प्रति शिष्टता और सौजन्य का व्यवहार करने का कड़ा आदेश करे और यह बात उसको हृदयंगम करा दे कि "तुम जनता के सेवक हो। जनता टैक्स के रूप में तुम्हें वेतन देती है ताकि तुम क़ानून की पाबन्दी कराओ। तुम क़ानून को तोड़नेवालों को ज़रूर गिरफ़्तार करो, इससे तुम्हें कोई नहीं रोकता। परन्तु याद रक्खो, तुम्हारा जनता के साथ जो सेवक और स्वामी का सम्बन्ध है उसमें कोई ऐसी बात नहीं जो तुम्हें नागरिकों का अपमान करने का अधिकार देती हो।"

हमारे देश में शिष्टता का अभाव स्थान स्थान पर अखरता है। मुझे लज्जा से कहना पड़ता है कि पंजाब इस विषय में सबसे बुरा है। लाहौर के दो बैंकों का मुझे अनुभव है। वहाँ सेविंग्स अकाऊँट के काऊँटर पर मुझे ऐसे क्लार्क मिलते हैं जो ग्राहक के प्रश्न का उत्तर देने में भी अपनी कसरवफसी समझते हैं। ग्राहक सामने खड़ा नम्रतापूर्वक कोई बात पूछता है; बाबू साहब उसकी बात को सुनकर भी अनसुनी कर रहे हैं। फिर पन्द्रह-बीस मिनट के बाद यदि एक बार ज़रा उत्तर देने की कृपा भी करते हैं तो ऐसे कड़े शब्दों में धमकाते हुए कि सुनकर तबीयत एकदम तिलमिला उठती है। कहते हैं—"हमारे पास ऐसी बातों के लिए समय नहीं है। हम बेकार नहीं बैठे हैं। फिर कभी फ़ुर्सत के वक्त आओ। हमें केवल तुम्हारा ही काम नहीं; और भी ग्राहकों की बात सुननी है।" दो-एक बार तो मैंने इनको ग्राहकों से लड़ते तक पाया है। जहाँ शिष्टता के दो शब्द कह देने से ग्राहक सन्तुष्ट हो सकता है, वहाँ ये बाबू कठोर और अविनीत शब्द बोलकर व्यर्थ में झगड़े को बढ़ा देते हैं। कई बार मन में आया है कि इनसे कहूँ—"मित्रो, यह बैङ्क इसके डायरेक्टरों ने बड़े परिश्रम से खड़ा किया है। उनका उद्देश जहाँ आप धन कमाना है, वहाँ जनता को भी लाभ पहुँचाना है। आप लोग अपने अशिष्ट व्यवहार से बैङ्क को जनता में अप्रिय बना रहे हैं। आपके कारण न केवल जनता को दुःख होता है, बरन बैङ्क की आर्थिक हानि भी होती है। यदि आप ऐसा रूखा और अशिष्ट व्यवहार दुबारा करेंगे तो मुझे अधिकारियों के पास आपकी शिकायत करनी पड़ेगी।"

यदि कुछ साहसी सज्जन उचित ढङ्ग से शिकायत करें तो यह अशिष्टता बहुत कुछ बंद हो सकती है। शिकायत के शब्द जितने थोड़े हों, उतना ही अच्छा है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अशिष्टता का व्यवहार करनेवाले, कांस्टेबल, क्लार्क, मुंशी, अर्दली, बाबू या टिकट-चेकर को यह याद दिलाना है कि हमने तुम्हारी अशिष्टता को बहुत बुरा माना है और भविष्य में हम इसे चुपचाप सहन नहीं करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि वह व्यक्ति न केवल आपके साथ, बरन दूसरों के साथ भी अधिक शिष्टता का व्यवहार करने लगेगा।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। जो भला कर्मचारी अपने दूसरे अक्खड़ साथियों की अपेक्षा अधिक शिष्टता का व्यवहार करे उसकी प्रशंसा करने में भी हमें नहीं चूकना चाहिए। उसके मालिक को उसके सौजन्य की प्रशंसा लिखकर उसका उत्साह बढ़ाना चाहिए। लाहौर के सेन्ट्रल बैङ्क में एक पारसी कर्मचारी का शान्त स्वभाव और मिष्टभाषण देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने सब लोगों के सामने वहीं उसके इन गुणों की प्रशंसा की। इससे वह तो प्रसन्न हुआ ही, साथ ही दूसरे अक्खड़ कर्मचारियों के भी कान हो गये।

शिष्टता सब सद्गुणों की महारानी नहीं तो कम से कम यह उनकी परम सहायक अवश्य है। यह समाज-रूपी मशीन में तेल का काम देती है। यह एक ऐसा बहुमूल्य सद्गुण है जो जितना भी बढ़ाया जाय, अच्छा है। यदि दूसरा मनुष्य हमारे साथ अपने आप शिष्टता का व्यवहार करे तो यह बड़ी ख़ुशी की बात है, परन्तु यदि वह शिष्टता दिखाने में कंजूस हो तो हमें उसे इसके लिए विवश करने में भी कोई हानि नहीं।

व्यत्यस्त रेखा-शब्द-पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

व्यत्यस्त रेखा-शब्द-पहेली इस मास की सरस्वती में पृष्ठ १३६ के सामने दी गई है। हिन्दी में यह पहेली प्रथम बार प्रकाशित हो रही है और हमने आयोजन किया है कि सरस्वती में यह प्रतिमास प्रकाशित हो।

इस प्रकार की पहेली अर्थात् क्रासवर्ड पज़ल का पाश्चात्य देशों में बड़ा प्रचार है। वहाँ समय बिताने का यह सर्वोत्तम विनोद माना जाता है। फिर इसमें जी ही बहलता हो सो बात नहीं इससे बुद्धि का भी विकास होता है। कितने ही नये नये शब्दों की जानकारी होती है और साहित्य से प्रेम पैदा होता है।

इँग्लेंड अमरीका आदि देशों में इस प्रिय दिल-बहलाव के द्वारा लोग अपने शब्द-भाण्डार ही नहीं बढ़ाते बल्कि हज़ारों रुपये भी प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ इन पहेलियों पर हज़ारों के पारितोषिक दिये जाते हैं।

इस बुद्धिवर्द्धक और अर्थप्रदायक विनोद से हमारे हिन्दी के पाठक क्यों वञ्चित रहें यही सोचकर हमने इस पुरस्कार की सरस्वती में व्यवस्था की है। इसके नियम आदि सब पहेली के साथ छपे हैं। यह पहेली किस प्रकार हल करनी चाहिए यह बात नियम (२) में अच्छी तरह समझा दी गई है। अंक नम्बर १ से बायें को दाहिने लिखा जाने वाला शब्द सरस्वती है। यह वर्ग में लिख दिया गया है। इसी तरह ऊपर से नीचे और बाएँ से दाहिने सब शब्दों को लिखना है। थोड़ा समय इसमें लगाने से आप देखेंगे कि आपको कितना आनन्द आता है। फिर इस दिल-बहलाव के साथ आप ३००) या २००) का पुरस्कार भी प्राप्त कर सकते हैं। इस पुरस्कार की व्यवस्था हमने ख़ास तौर से सरस्वती के पाठकों के लिए की है। हमें आशा है पाठक इससे लाभ उठावेंगे।

बाल-शब्दसागर

'शब्दसागर' हिन्दी का बहुत बड़ा कोष है; अधिक मूल्य होने के कारण उसे सर्वसाधारण, विशेषतः विद्यार्थी, नहीं ले सकते। इस आवश्यकता पर दृष्टि रखकर ही काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए० ने इस बाल-शब्दसागर का सम्पादन किया है। यह ठीक है कि इसमें मूल शब्दसागर की भाँति, किसी शब्द के पर्यायवाची शब्दों और मुहाविरों तथा उदाहरणों आदि का विस्तार नहीं है; परन्तु आवश्यक शब्दों का सन्निवेश यथायोग्य रहने दिया गया है। यह कोष विशेषतः स्कूल के विद्यार्थियों के लिए बनाया गया है; फिर भी अपनी व्यावहारिक उपयोगिता के कारण यह सभी के काम में आ सकता है। इसकी शब्द-संख्या ३५,००० के लगभग है। इसका आकार भी ऐसा है कि इसको लाने ले जाने में कोई कठिनाई नहीं। हिन्दी में यह अपने ढङ्ग का बिलकुल नया कोष है। ८०० से अधिक पृष्ठों की, सुन्दर, सजिल्द पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ दो रुपये। डाक-महसूल अलग।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
इलाहाबाद

व्यत्यस्त रेखा-शब्द-पहेली में जो शब्द आये हैं वे सब इस बाल-शब्दसागर में मिलेंगे।



[लेखक अपने तंबू के बाहर—तिब्बत में]



[लीपू-लेक दर्रा का एक दृश्य]



[बियांस घाटी की एक स्त्री]

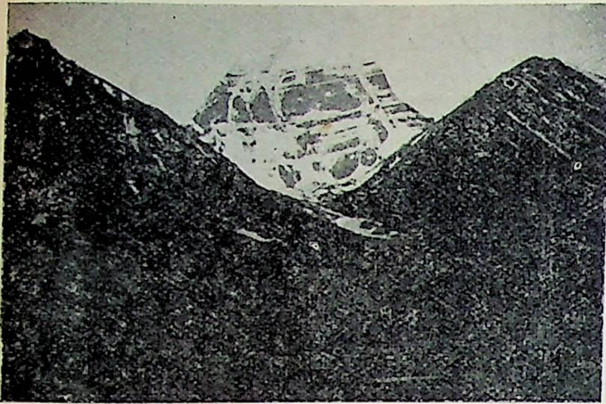
हमारी कैलास-यात्रा

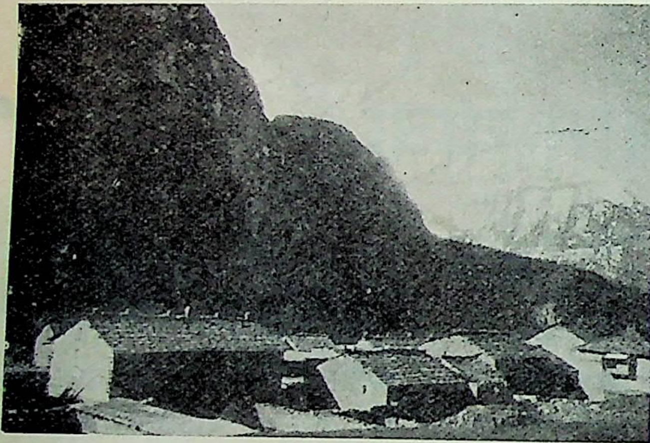
लेखक, श्रीयुत सी० बी० कपूर, एम० ए०, एल-एल० बी०

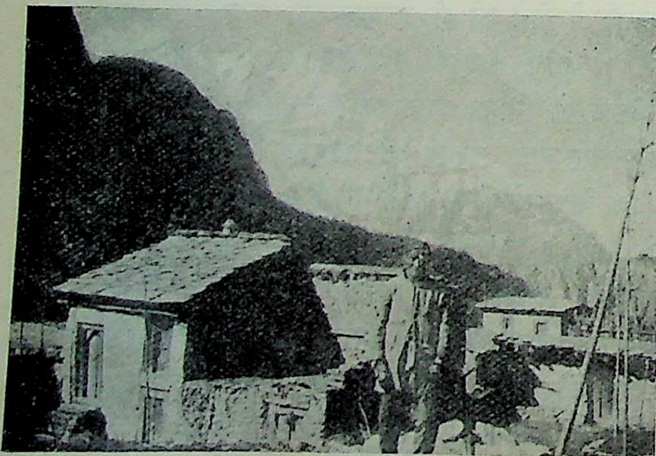
इस लेख के लेखक महोदय उत्साही पंजाबी नवयुवक हैं और यात्रा से बड़ा शौक़ रखते हैं। हाल ही में आपने कैलास की यात्रा की है उसका वर्णन आपने इस लेख में किया है। इस यात्रा के बाद आप काबुल होकर ख़ुश्की के मार्ग से योरप जाने की तैयारी कर रहे हैं। आपकी वह यात्रा भी मनोरञ्जक होगी और समय पर सरस्वती के पाठकों को पढ़ने को मिलेगी। इस लेख के सब चित्र भी आप ही के खींचे हुए हैं।



कैलास-पर्वत भारत में नहीं, उसके बाहर पश्चिमी तिब्बत में है। यात्री लोग अलमोड़ा होकर वहाँ जाते हैं, जहाँ से वह कोई २४० मील के फ़ासले पर है। यह हिन्दुओं और तिब्बत के लोगों का भी एक बहुत प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। हिन्दू इसको शिव जी का वास-स्थान मानते हैं। इसकी यात्रा सब यात्राओं से कठिन है। हिन्दुस्तान के निवासियों को यात्रा के वास्ते तिब्बत जाने में तिब्बत की सरकार से कोई रोक-टोक नहीं है और न किसी पासपोर्ट आदि के लेने की ही आवश्यकता पड़ती है। इस यात्रा में भारतीय यात्रियों को हिमालय के ऊँचे पर्वतों की दीवार को नाँघकर उस पार तिब्बत में जाना पड़ता है, इसलिए जून, जुलाई और अगस्त, ये ही तीन महीने इस यात्रा के वास्ते अच्छे माने गये हैं। इन महीनों में हिमालय के पर्वतों पर की बर्फ़ आधी से अधिक गल जाती है, अतएव हिमालय के पर्वतों के उस पार जाना बहुत कुछ साध्य हो जाता है। दूसरे तिब्बत का भी मौसम कुछ बदल जाता और कुछ गर्म हो जाता है। साथ ही इन्हीं महीनों में तिब्बत के दो स्थानों (तकलाकोट और गियानिमा) में बहुत बड़ी मंडियाँ लगती हैं, जिनमें हिन्दुस्तान, चीन और


[कैलास पर्वत डीर्डाफ-गुम्पा से ।]


[गर्बियांग —ब्रिटिश राज्य का अन्तिम स्थान है ।]


[गर्बियांग ।]

नेपाल के व्यापारी बड़ी दूर से आकर व्यापार के लिए इकट्ठा होते हैं। इन दिनों इन दोनों मंडियों में हज़ारों की संख्या में तम्बू लग जाते हैं। इस प्रकार आने-जाने से मार्ग खुल जाते हैं और अनभ्यस्त यात्रियों को भी बहुत कुछ सुविधा हो जाती है।

कई कारणों से मुझे और मेरे एक मित्र को कैलास-यात्रा मई-जून के महीनों में ही करनी पड़ी।

अलमोड़ा से तिब्बत जाने के वास्ते दो रास्ते हैं। एक रास्ता बियांस की घाटी से होकर लिपूलेक दर्रा से और दूसरा जुहारघाटी से होकर किंगरी-बिंगरी के तीन ऊँचे दर्रों से होकर गया है। लिपूलेक को पार कर जाना कुछ आसान है, इसलिए सब यात्री इसी रास्ते से जाते हैं। इस रास्ते से जाने से तिब्बत में तकलाकोट की मंडी मिलती है और किंगरी-बिंगरीवाले रास्ते से जाने से गियानिया की मंडी से होकर जाना पड़ता है। हम लोग जाते समय लिपूलेक के दर्रे से गये और वापसी के समय किंगरी-बिंगरी के दर्रों से होकर आये।

हमारी कैलास-यात्रा अलमोड़ा से शुरू हुई। काठगुदाम तक हम रेलवे से आये और वहाँ से अलमोड़ा मोटर-बस से गये। काठगुदाम से अलमोड़ा तक मोटर-मार्ग लुक का बना हुआ है और अति सुन्दर छोटी छोटी पहाड़ियों से होकर जाता है। रास्ते में सबसे बड़ा स्थान रानीखेत है। यह एक फ़ौजी स्थान है।

अलमोड़ा संयुक्त-प्रान्त का एक प्रधान पहाड़ी स्थान है। यहाँ सब प्रकार की वस्तुएँ मिल जाती हैं। यहाँ के सरकारी डाक बँगला में स्वीज़र्लेंड के भूतत्त्वविद्या के पण्डित डाक्टर हाइन ठहरे हुए थे। उनसे हमारी मुलाक़ात हुई। वे यह सुनकर कि हम तिब्बत जा रहे हैं, बहुत ख़ुश हुए और कुछ हैरान भी हुए कि हम हिन्दुस्तानी होकर ऐसा विचार और दिल रखते हैं। हमने रात का खाना उनके पास खाया। वे इस बात पर कि हमको कोई पासपोर्ट आदि नहीं लेना पड़ता ईर्ष्या करते थे, क्योंकि उनको हाल में ही तिब्बत जाने की आज्ञा नहीं मिली थी और वे वहाँ जाने के बड़े इच्छुक थे।

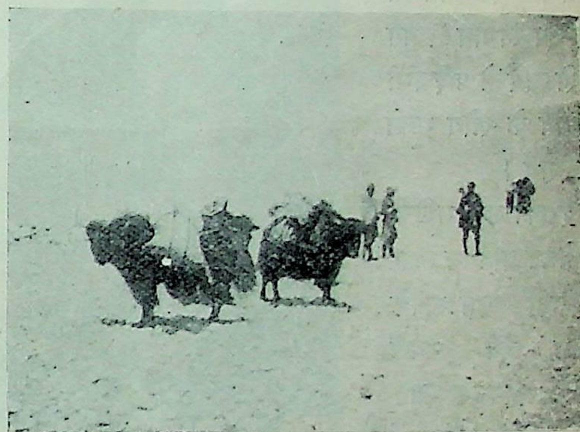
यात्रा की आख़िरी तैयारी हमने अलमोड़ा में की। यहाँ से हम २८ अप्रेल १९३५ के प्रातःकाल कुछ थोड़ा खा-पीकर पहले पड़ाव दालचीना की ओर चल दिये।

मेरे मित्र ने, मैंने और हमारे रसोइये ने कोई १५ सेर के लगभग बोझा लिया था, पर हमारे अलमोड़ा के २ कुली ३० सेर से भी अधिक बोझा लाद कर चले थे। अलमोड़ा की 'कुली-एजेन्सी' से कुली सस्ते और मज़बूत मिल जाते हैं और चोरी-चारी का भी भय नहीं रहता।

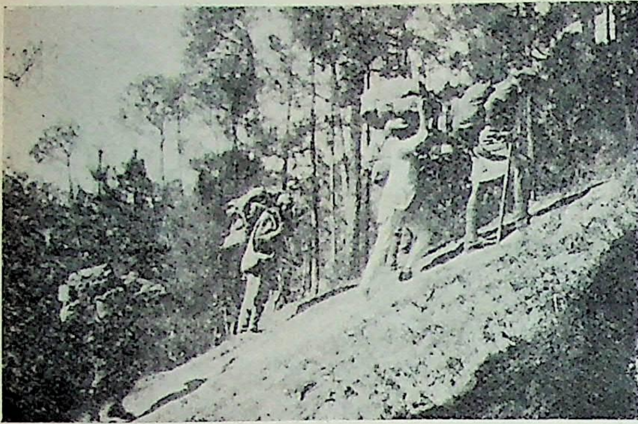
अलमोड़ा से गर्बियांग तक अच्छी सड़क बनी हुई है और कोई १४ दिन का रास्ता है। यात्रियों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। यहाँ तक थोड़ा-बहुत खाने-पीने का सामान प्रत्येक पड़ाव में मिल जाता है। गर्बियांग ब्रिटिश राज्य के अलमोड़ा-ज़िले का कैलास-मार्ग पर अन्तिम डाकख़ाना और बसा हुआ स्थान है।

खेला तक जो यात्रा का प्रथम भाग है, सभी प्रकार का थोड़ा-बहुत व्यापार होता है। परन्तु इस मार्ग में बहुत बार ऊँचे-नीचे चढ़ना उतरना पड़ता है। इस मार्ग पर सबसे गरम और नीचे बुलवाकोट और दारचुला के पड़ाव हैं। इनकी उँचाई कुल २,५०० और ३,१०० फ़ुट है। ये दोनों स्थान बड़े खुले मैदान में गोरीगंगा के तट पर हैं। इस भाग के निवासी पहाड़ी राजपूत कहे जानेवाले कुमायूँ के लोग हैं। इस स्थान से आगे गर्बियांग तक बियांग का इलाक़ा है। इस भाग के रहनेवालों को भोटिया कहते हैं। ये लोग मंगोल-जाति के हैं, और तिब्बत से आये हुए जान पड़ते हैं। परन्तु अब इनमें तिब्बतियों की कोई बात नहीं है। ये उन लोगों से हज़ार दर्जे साफ़ रहते और सुन्दर होते हैं। हिन्दी बोलते हैं और कट्टर हिन्दू हैं। सर्दियों में ये अपने घर-बार छोड़कर अपने बाल-बच्चों और पशुओं को लेकर नीचे गर्म स्थान दारचुला में आ जाते हैं। अप्रेल-मई में ये फिर अपने अपने घरों को लौट जाते हैं। हमको इनके दल के दल ऊपर जाते रास्ते में मिले। इनकी स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक काम करती हैं। जब पुरुष व्यापार के लिए तिब्बत चले जाते हैं तब वे खेती और पशु-पालन का काम अपनी स्त्रियों के सुपुर्द कर जाते हैं। हिन्दुस्तान को तिब्बत से जो व्यापार होता है वह सब इन लोगों के हाथ में है, जिसको इनसे कोई भी नहीं छीन सकता। ये हर साल यहाँ से सत्तू, आटा, चावल और कपड़ा तिब्बत ले जाते हैं और वहाँ से नमक, ऊन


[तिब्बती आदमी और बच्चे। वहाँ लामा लोगों के सिवा सब सिर पर स्त्रियों की तरह बाल रखते हैं।]


[तिब्बती बैल वा "याक"।]


[गर्बियांग का एक कुटुम्ब।]



[हमारी मंडली एक ऊँचे मार्ग पर।]

निर्माण में हज़ारों रुपया ख़र्च हुआ होगा। इस मार्ग के बनाने के लिए मैसूर के महाराज ने जो स्वयं एक बार कैलास के दर्शन कर गये हैं, चालीस हज़ार रुपये का दान किया था। इस भयानक मार्ग पर अधिक सावधानी से चलना पड़ता है। प्रतिवर्ष अनेक पशु गिरकर गोरीगंगा में बह जाते हैं। इस भयानक मार्ग का वर्णन करना भी कठिन है। इस नदी के उस पार नेपाल का राज्य है। यह मार्ग इसी नदी के किनारे किनारे गया है। कई जगह सीधे खड़े ऊँचे पर्वतों से बड़े बड़े पत्थरों के गिरने के कारण मार्गावरोध हो जाने से हमें नेपाल की हद से होकर आगे चलना पड़ा था।

और सुहागा लाते हैं। यदि ये एक वर्ष भी यह सब सामान तिब्बत न ले जायँ तो पश्चिमी तिब्बत के लोग भूखों मर जायँ।

हमको उन भूटिया लोगों का प्रतिवर्ष ऊपर से आना जाना उनके जीवन की सबसे अधिक कष्टप्रद बात जान पड़ती थी। ये भूटिया बहुत सुन्दर और प्रियदर्शन होते हैं। और ये अधिक ग़रीब भी नहीं हैं। स्थान स्थान पर हमारी इन लोगों से बहुत देर तक बातें होती रहती थीं और ख़ूब हास-परिहास भी होता था। हमें ये लोग बहुत प्यारे लगते थे।



[हमारी मंडली लीपू दर्रा पार करने की तैयारी कर रही है।]

गर्बियांग दस हज़ार फ़ुट की उँचाई पर मैदान में है और बहुत सुन्दर स्थान है। यहाँ हमने कुली बदल दिये और ३ तिब्बती भूटिया (ये कुली लीपूलेक दर्रा—१७,७०० फ़ुट उँचाई के मार्ग से परिचित थे) लेकर गर्बियांग से आगे बढ़े। इस स्थान से आगे न कोई दूकान है और न ठहरने के लिए

बुलवाकोट से जो चढ़ाई आरम्भ होती है वह गर्बियांग में ही जाकर समाप्त होती है। यहाँ से मार्ग कुछ कठिन हो जाता है और कहीं कहीं तो इतना छोटा हो जाता है कि उसकी चौड़ाई एक फ़ुट से भी कम हो जाती है। यहीं से असली हिमालय के पर्वत मिलते हैं, जिनकी उँचाई ही देखकर हृदय में भय का सञ्चार हो जाता है। इन कठोर सीधे खड़े पर्वतों को काट काटकर बहुत कठिनता से मार्ग बनाया गया है। इसके



[तकलाकोट से १४ मील पर रोमगांग में हमारे तम्बू।]

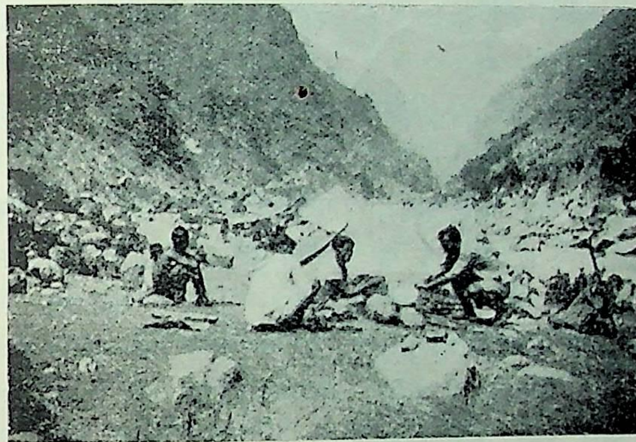
कोई मकान मिलता है। लकड़ी भी हमें मिलनी कठिन हो गई।

हमने लीपूलेक का दर्रा सूर्य निकलने से पहले ही पार कर लिया, क्योंकि इन दिनों अभी उस पर अधिक बर्फ़ होने के कारण सूर्य की गर्मी से उसके पिघलने का भय था।

गर्बियांग पहुँच कर हमने दो दिन तक विश्राम किया। यहाँ से आगे का मार्ग तो उतना ख़राब नहीं है, परन्तु विकट सर्दी का अवश्य सामना करना पड़ता है। खाने की सामग्री सब यहीं से साथ ले जानी पड़ती है और 'काला-पानी' के पड़ाव से एक दिन के लिए लकड़ी भी साथ ले जानी पड़ती है। लीपू दर्रा को पार करने के लिए मज़बूत जूते, गरम जुर्राब, मुँह ढँकने-वाली गरम टोपी, गरम ऊनी पाजामा और कोट की आवश्यकता पड़ती है। यदि हो सके तो एक काला ऐनक भी रखना अच्छा है, क्योंकि बर्फ़ पर सूर्य की बहुत चमक होने से आँखों में कुछ पीड़ा-सी हो जाने का भय हो सकता है। जो लोग पहली बार इतनी उँचाई पर जाते हैं उनको प्रायः सिर-दर्द भी हो जाता है। परन्तु इसका भय नहीं करना चाहिए। यह सब स्वयं नीची उँचाई में जाने से ठीक हो जाता है। यात्री दर्रा को जितना ही जल्दी सूर्य निकलने से पहले पार करें, उतना ही अच्छा है। इससे पाँवों के बर्फ़ में धँसने का भय नहीं रहता है।



[एक तिब्बती कैलास की परिक्रमा लेट लेटकर, कर रहा है।]



[गोरीगंगा के तट पर हमारा खाना पकाना।]

[डुकर गुम्पा से मानसरोवर का दृश्य।]

लीपू दर्रा की चोटी पर पहुँच कर हमने कोई १५ मिनट तक आराम किया था। यहाँ चारों ओर दूर दूर तक बर्फ़ ही बर्फ़ दिखाई पड़ती थी। यहाँ बड़े बड़े विचार मेरे मन में आये। यह मेरा विचार है कि इतनी उँचाई पर जाने से हम सिर्फ़ अपने शरीर को ही नहीं उँचा उठाते हैं, बल्कि अपनी आत्मा को भी उच्च बनाते हैं। बड़ी कठिन और ऊँची चढ़ाई पर चढ़ने के बाद चोटी पर पहुँचने की जो ख़ुशी एक मनुष्य को होती है उसका वर्णन करना असम्भव है।

गर्बियांग से यह दर्रा कोई १८ मील की दूरी पर है। यहाँ अधिक सर्दी के कारण शरीर को ख़ूब ढाँप कर



[ठुकर गुम्पा के लामा लोग ।]

चलना पड़ता है। दर्रा से ७ मील चलकर हम तकलाकोट पहुँचे। यहाँ कुछ दुकानें और मकान भी बने हुए हैं। सबसे ऊँचे स्थान पर एक बौद्ध-मठ है, जिसमें बौद्ध पुजारी (लामा) और कुछ बौद्ध भिक्षु रहते हैं। इस मठ के साथ 'जोम्पन' डिप्टी कमिश्नर का मकान भी है। यहाँ के सब निवासी हमारे पहुँचने पर हमारे तम्बू के नज़दीक आकर इकट्ठे हो गये। किसी के हाथ में माला और 'मनी' थी, कोई 'जोंता' सीता था और कोई ऊन बुनता था। सबके वस्त्र और शरीर बहुत अधिक मैले और गन्दे थे। छोटे छोटे बालकों की तरह वे हमारी प्रत्येक वस्तु को हाथ लगा लगाकर देखते थे।

यहाँ चाँदी का सिक्का चलता है, जिसे 'टंका' कहते हैं। इसका मूल्य दो आने के बराबर है, आधा टंका भी चलता है। हमारा रुपया तो चल जाता है, परन्तु नोट या छोटे सिक्के—दुअन्नी, चौअन्नी आदि नहीं चलते। नेपाली और चीनी सिक्के भी चलते हैं।

हमें तिब्बती लोग व्यापार में बड़े सच्चे प्रतीत हुए। वे वस्तु का जो मोल बतायेंगे, फिर उससे कम कभी न लेंगे।

तकलाकोट से हमने एक 'याक' (तिब्बती बैल) किराये पर लेकर उस पर दो कुलियों का बोझ लादकर ३ दिन में मानसरोवर झील के तट पर पहुँच कर ठुकर नाम के गुम्पा (मन्दिर) के नज़दीक अपना तम्बू लगा दिया। तिब्बत की सब झीलों में मानसरोवर ही सबसे बड़ी है। हमारे यहाँ और तिब्बत के धर्म-ग्रन्थों में भी यह झील पवित्र मानी गई है। संसार में इस झील का जल सबसे अधिक स्वच्छ तथा मीठा माना गया है। यह झील समुद्र-तल से १५,००० फ़ुट की उँचाई पर है। यह तिब्बत के समतल मैदान में फैली हुई है, यहाँ से कैलास का दर्शन भी होता है। कैलास का हिमधवल शरीर बहुत ही मनोहर दीख पड़ता है। यहाँ हम सबने झील में स्नान भी किया। परन्तु उसका जल अत्यधिक शीतल था।

इस झील के चारों ओर सात-आठ गुम्पा (बौद्ध-मठ) हैं। उनमें से एक ठुकर-गुम्पा का हमने भीतर जाकर दर्शन किया। तिब्बती मन्दिरों में हमें जूते कहीं भी उतारने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यहाँ के लोग भगवान् बुद्ध की पूजा करते हैं। परन्तु हिन्दू देवताओं की प्रतिमायें भी इस मठ में विद्यमान थीं, जिनकी पूजा भी की जाती है। यहाँ बहुत पुरानी हस्तलिखित पुस्तकें भी ख़ूब सजा कर रक्खी हुई हैं। एक कोने में एक लामा कुछ पढ़ रहा था और प्रत्येक पंक्ति के अंत में अपने दायें हाथ से ढोल बजा देता था।

मानसरोवर के तट को छोड़कर हमारा दल आगे बढ़ा। यहाँ से चलकर हम राक्षस-ताल (रावण-ह्रद) पर पहुँचे। यह भी एक विशाल झील है। इससे आगे पटखा का प्रसिद्ध मैदान है। दूर दूर तक मैदान ही मैदान दिखाई देता है। पटखा का पड़ाव उसके बहुत नज़दीक पहुँचने पर ही दिखाई पड़ता है। यहाँ कुल दो ही मिट्टी के मकान हैं, जिनमें से एक तहसीलदार का है। यहाँ भी एक भारी मंडी लगती है। उन दिनों यहाँ सैकड़ों तम्बू लग जाते हैं। यह पड़ाव 'लद्दाक-ल्हासा' के मार्ग पर है और यहाँ से ल्हासा को डाक बदलती है।

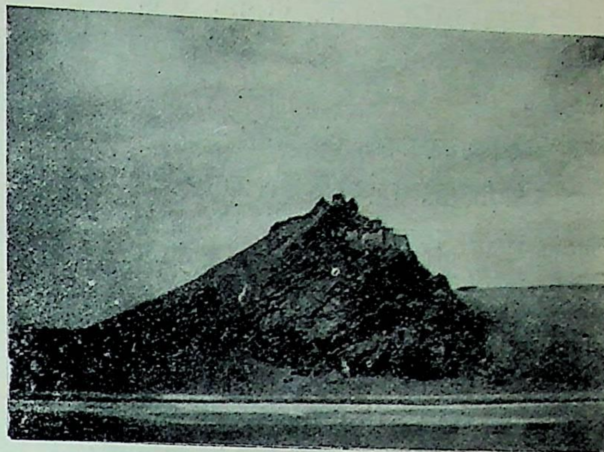
तिब्बत का देश 'उच्च समभूमि' है, जो बहुत बड़ी है और जिसकी कम-से-कम उँचाई १४,००० फ़ुट है। हिमालय के ऊँचे पर्वतों के द्वारा यह देश हिन्दुस्तान से अलग हो गया है। यह एक सूखी मरुभूमि जैसा देश जान पड़ता है। इसके अधिक ऊँचा होने के कारण इस देश में न कोई वृक्ष हैं और न यहाँ खेती ही होती है।

यहाँ के लोग बहुत अधिक गन्दे होते हैं। इसका कारण अधिक शीतलता है। ये लोग अपनी गुज़र-बसर भेड़-बकरियों पर करते हैं। चाय, सत्तू और घी-दूध पर ही इन्हें अपना जीवन-यापन करना पड़ता है। फल, सब्ज़ी आदि इन्हें कभी देखने तक को नहीं मिलती। याक और बकरी का गोबर लकड़ी का काम दे जाता है। हमारी भोजन-सामग्री का अंत हो जाने पर हमको भी कुछ दिन चाय-सत्तू पर ही गुज़र करनी पड़ी। पर इनसे तृप्ति नहीं होती थी, सिर्फ़ पेट भरने का काम होता था। ऐसे अवसर पर कई बार अपने प्यारे देश को जल्द लौटने की इच्छा हुई थी और अपने यहाँ के जब फलों, मेवों आदि की याद आती तब मुँह में पानी भर आता था।

जितने दिन हम तिब्बत में रहे, वहाँ के लोगों की ही ख़ूराक पर गुज़र किया। दिन और रात सत्तू और नमकीन चाय पर निर्वाह करते करते हम तंग आ गये थे। अपने भारत के मीठे और नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन हमें स्वप्न में याद आते थे। अपने यहाँ की हरी-भरी खेतियाँ और बाग़-बग़ीचे जब याद आते थे तब हमारा मन उस समय ख़ुशी से उमड़ उठता था। किसी प्रकार से उड़कर वहाँ पहुँच जायँ और उनको देखकर अपना मन प्रसन्न करें, यही हृदय में प्रायः इच्छा होती थी। तिब्बत में रहते हुए हमें भारत एक सचमुच सोने की चिड़िया और स्वर्ग के समान प्रतीत होता था। वहाँ के सूखे मैदान बड़े भयानक दिखाई पड़ते थे।

तिब्बत में हमने बकरी मारने का एक नया ही ढंग देखा। ये झटका आदि कुछ नहीं करते। बकरी का गला घोंट कर उसे दो मिनट में ही मार डालते हैं। इससे बकरी का ख़ून बाहर नहीं जाने पाता। उसके ख़ून को वे लोग बड़े शौक़ से पीते हैं।

बटखा के मैदान में जंगली घोड़े पाये जाते हैं। यहाँ से कैलास का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। इसके आगे तारचिन का पड़ाव मिलता है। यह पड़ाव बटखा से भी दिखाई देता है और मैदान के अंत में है। तकलाकोट से दूसरा बड़ा पड़ाव तारचिन का ही है। यहाँ कोई २० के लगभग मकान भी बने हुए हैं। यहाँ से कैलास की परिक्रमा प्रारम्भ होती है। कैलास की



[कैलास के एक पार्श्व-पर्वत का दृश्य।]

परिक्रमा का मार्ग अनुमानतः लगभग २८ मील है। इसके परिक्रमा-मार्ग में चार प्रसिद्ध बौद्ध-मठ बने हुए हैं। पहला गुम्पा तारचिन में है।

हमने अपना बहुत-सा सामान मठ में रख दिया और एक दिन की भोजन-सामग्री साथ लेकर यहाँ से परिक्रमा आरम्भ कर दी। रात को डिंडींफू-गुम्पा में जो तारचिन से ११-मील पर है, जाकर विश्राम किया। इस स्थान से कैलास-दर्शन पूर्ण रूप से होता है। यहाँ हमारी पश्चिमी तिब्बत के सूबेदार (गोरपन) से भेंट हुई। वे भी कैलास की परिक्रमा कर रहे थे। हमें इन्होंने तिब्बती चाय पिलाई। वे दूसरे तिब्बतियों से अधिक साफ़ और सुन्दर थे। उन्होंने हमसे महात्मा गांधी के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें पूछीं।

कैलास के चारों ओर से चार महानदियाँ निकलती हैं। इनमें से दो नदियाँ तिब्बती हैं और दो भारत में प्रवेश करती हैं और वे सिंध और सतलज हैं। चारों ओर से यह परमोज्ज्वल, श्वेताम्बरधारी, आकाशस्पर्शी, प्राकृतिक महामन्दिर, श्यामरूप, कालवर्ण, विशाल पर्वत-शिखरों से सुरक्षित है। वास्तव में कैलास आस-पास की पर्वत-श्रेणियों के बीच कोयले की खान में सुन्दर हीरे के समान देदीप्यमान है। कैलास एक ईश्वरीय शिव-मन्दिर है।

यह धवल महाचल अपने निम्न भाग में चौकोर है। इस चौकोर भाग के ऊपर मन्दिर के समान दूसरा गोलाकार शिखिर स्थापित है। इसके महासौन्दर्य की देदीप्यमान ज्योति से नेत्र झिलमिला जाते हैं। इसके मनोहर दृश्य का

वर्णन करना कठिन है। यह तो नेत्रों से ही देखने की वस्तु है। कैलास-शिखर की उँचाई लगभग २२,८०० फ़ुट है।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम डीर्डाफ-गुम्पा से चल दिये। यहाँ से चढ़ाई प्रारम्भ होती है और मार्ग में कई स्थानों पर बर्फ़ पर चलना पड़ता है। इस दर्रे को दोलमा-दर्रा कहते हैं और इसकी उँचाई कोई १८,६०० फ़ुट के लगभग है। इसकी चोटी पर पहुँचने से पहले गौरीकुंड की झील मिलती है। प्रातःकाल की सूर्य-रश्मियों ने यहाँ अपूर्व ही दृश्य उपस्थित कर रक्खा था। एक किनारे पर इसका जल हिम से नहीं ढँका था। कई यात्री यहाँ भी स्नान करते हैं। यहाँ हमें कई तिब्बती और हिन्दू यात्री मिले। कुछ तिब्बती तो कैलास-परिक्रमा लेट लेट कर कर रहे थे। तिब्बत में कैलास का बहुत अधिक माहात्म्य है।

गौरीकुंड से जुमतिलफ़ू-गुम्पा तक बहुत सीधी उतराई है। यहाँ हमने कुछ अन्न-जल ग्रहण किया और सायंकाल से पहले दारचिन पहुँच गये। इस दिन हमारी भूख और थकावट का वर्णन करना कठिन है। सारी रात दारचिन में हिम-वर्षा होती रही।

लौटते समय हमारा विचार दूसरे मार्ग से होकर जाने का हो गया और दारचिन से तीसरे दिन हम गियानिमा मंडी में पहुँच गये। यहाँ अभी मंडी लगने में कुछ देर थी। परन्तु कई स्थानों पर हमको गड़रियों के तम्बू मिले, जिनसे हमें दूध, दही, मक्खन आदि मिल जाते थे। इस मार्ग में हम जब तक तिब्बत की सीमा में रहे, दो भय प्रतिपल बने रहते थे। वे थे शीत और डकैत। वायु की तीव्रता हमारे लिए बड़ी कष्टदायक थी। उसकी ठंड बिच्छू के समान पीड़ा पहुँचानेवाली प्रतीत होती थी। शरीर को भले प्रकार ढँक कर चलना पड़ता था। और डाकुओं का तो हर समय भय रहता है। ये लोग बड़े ख़ूनी हत्यारे होते हैं। तिब्बती सरकार इनके पकड़ने का कोई यत्न नहीं करती। इसलिए बिना किसी बन्दूक़-पिस्तौल के यात्रा करने में कम मज़ा है। हमारे पास कोई हथियार नहीं था। परन्तु हमारे नौकर लाठियों पर कपड़े लपेटकर उनको झूठ-मूठ बन्दूक़ों का रूप देकर अपने कन्धों पर रखकर चलते थे। एक-दो बार इन डाकुओं से हमारी भेंट हुई, पर हम उनसे बच गये।

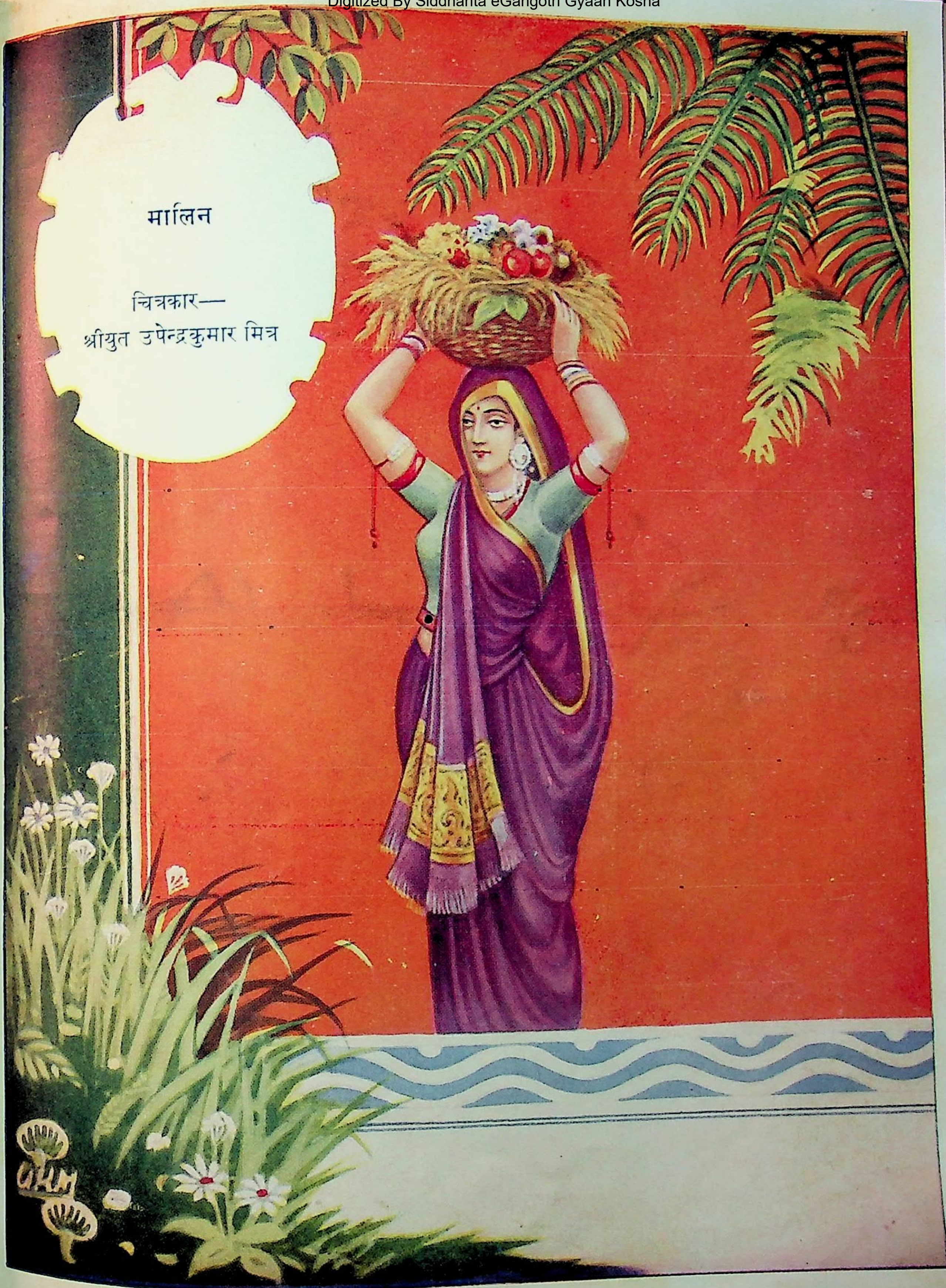
हमारे पाश्चात्य रहन-सहन ने भी हमारी बड़ी सहायता की। वहाँ के लोग पाश्चात्य पहनावे से बहुत डरते हैं।

मानसरोवर के शांत तट पर, गुसल गुम्पा से कोई तीन मील पर हम विश्राम कर रहे थे और सिवा हमारे तम्बू के वहाँ और किसी का भी तम्बू नहीं था। हमारे देखते ही देखते हमें वहाँ अस्त्र-शस्त्र से सज्जित सुन्दर वेषधारी सैनिकों के समान एक दल आता दिखाई दिया। हमारे पथ-प्रदर्शक ने हमें सचेत कर दिया। वे लोग उन्हीं व्यक्तियों पर आक्रमण करते हैं जो थोड़ी संख्या में होते हैं या जिनमें उनसे बदला लेने और उन्हें भगा देने का साहस कम प्रतीत होता है। उन लोगों के लम्बे नेज़े और सिर के भयानक खुले बाल देखकर वास्तव में हम डर गये थे। परन्तु हमारे नवयुवक दिल को और हमारी झूठी-मूठी बन्दूक़ों को देखकर वे लोग पैंतरा बदल गये और हमसे कोई छेड़-छाड़ न की, और थोड़ी देर की बात-चीत के बाद वहाँ से चले गये।

तिब्बत में पुलों के न होने के कारण हमें दो-तीन बड़ी बड़ी नदियों के बीच में से जाना पड़ा। और गियानिमा मंडी से तीसरे दिन हम छितिचुन पहुँच गये। यह स्थान किंगरी-बिंगरी के तीन दर्रों के नीचे है। यहाँ से हम दो गड़रियों की सहायता से तीनों दर्रे पारकर ८ जून को ब्रिटिश राज्य में आगये और ढंग नामक पड़ाव की धर्मशाला में विश्राम किया।

उक्त तीनों दर्रे जैसा कि हमको लोगों ने बतलाया था, बहुत ही कठिन और भयंकर हैं। परन्तु हमने जीवन और मृत्यु को एक ओर करके बड़ी हिम्मत से इन तीनों दर्रों को पार किया। यह मार्ग वर्ष भर में कुल जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीनों में ही खुला रहता है।

इस दर्रे से १२ दिन में हम मिलम और बागेश्वर से होते हुए अल्मोड़ा पहुँच गये। यहाँ पहुँचने पर यात्रा लगभग ६०० मील की हो गई थी।



मालिन

चित्रकार—
श्रीयुत उपेन्द्रकुमार मित्र

हास्यरस की एक कहानी

साइकिल की सवारी

लेखक, श्रीयुत सुदर्शन

(१)

भगवान् ही जानता है कि जब मैं किसी को साइकिल की सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूँ तब मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है! सोचता हूँ, भगवान् ने ये दोनों विद्यायें भी ख़ूब बनाई हैं। एक से समय बचता है, दूसरी से समय कटता है। मगर तमाशा देखिए, हमारे प्रारब्ध में कलियुग की ये दोनों विद्यायें नहीं लिखी गईं। न साइकिल चला सकते हैं, न बाजा बजा सकते हैं। पता नहीं, कब से यह धारणा हमारे मन में बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं, मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते।

शायद १९३२ की बात है कि बैठे बैठे ख़याल आया, चलो साइकिल चलाना सीखलें। और इसकी शुरूआत यों हुई कि हमारे लड़के ने चुपचुपाते में यह विद्या सीख ली, और हमारे सामने से सवार होकर निकलने लगा। अब आपसे क्या कहें कि लज्जा और घृणा के कैसे कैसे ख़याल मेरे मन में उठे। सोचा, भई, क्या हमीं ज़माने भर में फिसड्डी रह गये हैं। सारी दुनिया चलाती है; ज़रा ज़रा से लड़के चलाते हैं; मूर्ख और गँवार चलाते हैं। हम तो परमात्मा की कृपा से फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आख़िर इसमें मुश्किल क्या है? कूद-कर चढ़ गये और तावड़-तोड़ पाँव मारने लगे। और जब देखा कि कोई राह में खड़ा है तब टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोध-पूर्ण आँखों से उसकी तरफ़ देखते हुए निकल गये। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहे के घोड़े की सवारी का! अब ऐसा मालूम हुआ कि हम "बे-फ़ज़ूल" ही मरे जाते थे। कुछ ही दिनों में सीख लेंगे। बस, महा-राज! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाय, परवा नहीं।

दूसरे दिन हमने अपने फटे-पुराने कपड़े तलाश किये, और उन्हें ले जाकर श्रीमती जी के सामने पटक दिया कि इनकी ज़रा मरम्मत तो कर दो।

श्रीमती जी ने हमारी तरफ़ अचरज-भरी दृष्टि से देखा और कहा—"इन कपड़ों में अब जान ही कहाँ है, जो मरम्मत करूँ। ये तो फेंक दिये थे। आप कहाँ से उठा लाये? वहीं जाकर डाल आइए।"

हमने मुस्कराकर श्रीमती जी की तरफ़ देखा। इसका मतलब यह था कि तुम्हें क्या मालूम, हमारे क्या क्या इरादे हैं! मुँह से कहा—"तुम हर समय बहस न किया करो। आख़िर मैं इन्हें ढूँढ़-ढाँढ़ कर लाया हूँ तो ऐसे ही तो नहीं उठा लाया। कृपा करके इनकी मरम्मत कर डालो जल्दी से!

मगर श्रीमती बोलीं—"पहले बताओ, इनका क्या बनेगा?

हम चाहते थे, घर में किसी को कानों-कान ख़बर न हो, और हम साइकिल-सवार बन जायँ। और इसके बाद जब इस विद्या के पंडित हो जायँ तब एक दिन जहाँगीर के मक़बरे को जाने का निश्चय करें। घरवालों को ताँगे में बिठा दें, और कहें, तुम चलो, हम दूसरे ताँगे में आते हैं। और जब वे चले जायँ तब साइकिल पर सवार होकर उनको रास्ते में जा लें। हमें साइकिल पर सवार देखकर उन लोगों की क्या हालत होगी! हैरान हो जायँगे; दंग रह जायँगे; आँखें मल-मल कर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं है! परन्तु हम गर्दन टेढ़ी करके दूसरी तरफ़ देखने लग जायँगे, जैसे हमें कुछ मालूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिए साधारण बात है।

मगर श्रीमती जी ने कहा—"पहले बताओ, इनका क्या बनेगा?" झक मारकर बताना पड़ा कि रोज़-रोज़ ताँगे का ख़र्च मारे डालता है। साइकिल चलाना सीखेंगे।

श्रीमती जी ने बच्चे को सुलाते हुए हमारी तरफ़ देखा और मुस्करा कर बोलीं—"मुझे तो आशा नहीं कि आपसे यह बेल मड़ये चढ़ सके। ख़ैर यत्न कर देखिए। मगर इन कपड़ों का क्या बनेगा?"

हमने ज़रा रोब से कहा—आख़िर बाइसिकिल से एक-

दो बार गिरेंगे या नहीं ? और गिरने से कपड़े फटेंगे या नहीं ? जो मूर्ख हैं वे नये कपड़ों का नुक़सान कर बैठते हैं। जो बुद्धिमान् हैं वे पुराने कपड़ों से काम चलाते हैं।"

मालूम होता है, हमारी इस युक्ति का जवाब हमारी स्त्री के पास कोई न था, क्योंकि उन्होंने उसी समय मशीन मँगवाकर उन कपड़ों की मरम्मत शुरू कर दी।

इधर हमने बाज़ार जाकर ज़ैम्बक के दो डिब्बे ख़रीद लिये कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद बाहर जाकर एक खुला मैदान तलाश किया, ताकि दूसरे दिन से साइकिल-सवारी का काम शुरू किया जा सके।

(२)

अब यह सवाल हमारे सामने था कि अपना उस्ताद किसे बनावें। पहले तो यह सोचा कि बिना उस्ताद के सीखो। हमारे लड़के ने क्या किसी की शागिर्दी की थी। कहता था, मैंने तो ऐसे ही सीख लिया। एक बार गिरा, दो बार गिरा, तीसरी बार गिरने की नौबत ही नहीं आई। मगर फिर सोचा कि वह लड़का है, हम तो लड़के नहीं हैं। आदमी जो काम सीखना चाहे, क़ायदे से सीखे; नहीं तो नुक़सान उठाता है। इसलिए यह तो निश्चय कर लिया कि किसी को उस्ताद बनावें। मगर यह निश्चय न कर सके कि किसे बनावें। इसी उधेड़-बुन में बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गये और बोले—"क्यों भाई, हो जाय एक बाज़ी शतरंज की। ज़रा आवाज़ दो लड़के को। शतरंज और मुहरे उठा लावे।"

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया "नहीं साहब! आज तो जी नहीं चाहता।"

तिवारी ने अपने घुटे हुए सिर से टोपी उतारकर हाथ में ले ली और सिर पर हाथ फेरकर बोले—"हम तो इतनी दूर से चलकर आये हैं कि एक-दो बाज़ियाँ खेलेंगे, तुमने कह दिया, जी नहीं चाहता।"

"यदि जी न चाहे तो कोई क्या करे?"

यह कहते कहते हमारा गला भर आया। तिवारी जी का दिल पसीज गया। हमारे पास बैठकर बोले—"अरे भाई, मामला क्या है? स्त्री से झगड़ा तो नहीं हो गया?"

हमने कहा—"तिवारी भैया, क्या कहें? सोचा था, लाओ, साइकिल की सवारी ही सीख लें। मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता जो हमारी सहायता करे। बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख़याल में।"

तिवारी जी ने हमारी तरफ़ बेबसी की आँखों से ऐसा देखा, मानो हमको कोई ख़ज़ाना मिल रहा है, और वे ख़ाली हाथ रहे जाते हैं। बोले—"मेरी मानो तो यह रोग न पालो। अब इस आयु में साइकिल पर चढ़ोगे? और फिर यह भी कोई सवारियों में सवारी है कि डंडे पर उकड़ूँ बैठे हैं, और पाँव चला रहे हैं। अजी लानत भेजो इस ख़याल पर, और आओ एक बाज़ी खेलो। कहने लगे, साइकिल चलाना सीखेंगे। क्या ताँगे टूट गये हैं?"

मगर हमने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। साफ़ समझ गये कि तिवारी ईर्ष्या की आग में फुका जाता है। मुँह फुलाकर हमने कहा—"भई तिवारी, हम तो ज़रूर सीखेंगे। कोई आदमी बताओ।"

"आदमी तो ऐसा है एक। मगर वह मुफ़्त नहीं सिखायेगा। फ़ीस लेगा। दे सकोगे?"

"कितने दिन में सिखा देगा?"

"यही दस-बारह दिन में!"

"और फ़ीस क्या लेगा हमसे?"

"औरों से पचीस लेता है। तुमसे बीस ले लेगा हमारी ख़ातिर!"

हमने सोचा—दस दिन में सिखायेगा, और बीस रुपये फ़ीस लेगा। दस दिन—बीस रुपये। बीस रुपये—दस दिन। अर्थात् दो रुपये रोज़ाना, अर्थात् साठ रुपये महीना, और वह भी एक-दो घंटे के लिए। ऐसी तीन-चार ड्यूटियाँ मिल जायँ तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया। हमने तिवारी जी से तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ, मगर जी में ख़ुश हो रहे थे कि साइकिल चलाना आ जाय तो एक ट्रेनिङ्ग स्कूल खोल दें, और तीन-चार सौ रुपया मासिक कमाने लगें।

इधर तिवारी जी मामला तय करने गये, उधर हमने यह शुभ समाचार जाकर श्रीमती जी को सुना दिया कि कुछ दिनों के बाद हम एक ऐसा स्कूल खोलनेवाले हैं जिससे तीन-चार सौ रुपया महीना की आमदनी होगी।

श्रीमती जी बोलीं—"तुम्हारी इतनी आयु हो गई, मगर यह मुआ ओछापन न गया। पहले आप तो सीख

लो, फिर स्कूल खोल लेना। मैं तो समझती हूँ कि तुम सीख ही न सकोगे; दूसरों के सिखाना तो दूर की बात है।

हमने बिगड़ कर कहा—"यह तुममें बड़ी बुरी आदत है कि हर काम में टोक देती हो। हमसे बड़े बड़े सीख रहे हैं तो हम क्यों न सीख सकेंगे? और पहले तो शायद सीखते, शायद न सीखते, मगर अब जब तुमने टोका है तब ज़रूर सीखेंगे। तुम भी क्या कहोगी!"

श्रीमती बोलीं—"मैं तो चाहती हूँ, तुम हवाई जहाज़ चलाओ; यह बाईसिकिल क्या चीज़ है? पर तुम्हारे स्वभाव से डर लगता है। एक बार गिरोगे तो देख लेना, बाईसिकिल वहीं फेंक-फाँक कर चले आओगे।" फिर धीरे से यह भी कह दिया—"भगवान् किसी के स्त्री न बनाये। बात करना भी पाप हो गया—अब हम हर काम में टोकनेवाले होगये। हमें क्या पड़ी है? सीखो, न सीखो। सीखोगे, अपने लिए; न सीखोगे, अपने लिए। हमें क्या मतलब?"

इतने में तिवारी जी ने बाहर से आवाज़ दी। हमने जाकर देखा, उस्ताद साहब खड़े हैं। भद्दी-सी शक्ल-सूरत, मोटी गर्दन, गले में काला तागा, मैली धोती, पाँव में कसूरी जूता, जो पहलवान लोग पहनते हैं, छोटी छोटी आँखें। पहले तो मन में आया, कह दें, हमें यह उस्ताद पसन्द नहीं। पर फिर सोचा, हमें साइकिल सीखना है, हमें इनकी शक्ल-सूरत से क्या काम। यह सोचकर हमने शरीफ़ विद्यार्थियों के समान श्रद्धा से हाथ बाँधकर प्रणाम किया, और चुपचाप खड़े हो गये।

तिवारी जी—"यह तो बीस पर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से मनाया है। पर पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।"

हम—"अरे भई, हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है, मगर फिर भी भले आदमियों से ख़ाली तो नहीं है। यह बीस रुपया तो चीज़ ही क्या है? हम अपना धर्म लाखों के लिए भी न गँवावें। बस, एक बार हमें साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें, हम इनकी क्या क्या सेवा करते हैं।"

मगर उस्ताद साहब नहीं माने, बोले—"फ़ीस पहले लेंगे।"

हम—"और यदि आपने नहीं सिखाया तो—"

उस्ताद—"नहीं सिखाया तो फ़ीस लौटा देंगे।"

हम—"और यदि फ़ीस नहीं लौटाई तो—"

उस्ताद—"अब इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं, मगर इतना कह सकता हूँ कि ऐसी बेईमानियाँ मुझे बदनाम न कर देंगी।"

इस पर तिवारी जी ने कहा—"अरे साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहर में रहना हराम कर दूँ, बाज़ार में निकलना बन्द कर दूँ। फ़ीस लेकर भाग जाना कोई हँसी-खेल है?"

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है तब हमने फ़ीस के रुपये लाकर उस्ताद की भेंट कर दिये और कहा—"उस्ताद, कल सवेरे सवेरे ही आ जाना। हम तैयार रहेंगे। हमने इस काम के लिए कपड़े भी बनवा लिये हैं। और अगर गिर पड़े तो घाव पर लगाने के लिए ज़ैम्बक भी ख़रीद लिया है। और हाँ, हमारे पड़ोस में जो मिस्त्री रहता है उससे साइकिल भी माँग ली है। आप सवेरे ही चले आवें तो हरि का नाम लेकर शुरू कर दें।

तिवारी जी और उस्ताद ने हमें हर तरह से तसल्ली दी, और चले गये। इतने में हमें याद आया कि एक बात कहनी भूल गये। नंगे पाँव भागे, और उन्हें बाज़ार में जा लिया। वे हैरान थे। हमने हाँफते हाँफते कहा—"उस्ताद, हम शहर के पास नहीं सीखेंगे, लारेंस-बाग़ में जो मैदान है, वहाँ सीखेंगे। वहाँ एक तो भूमि नर्म है, चोट कम लगती है। दूसरे वहाँ कोई देखता नहीं है।

(३)

अब रात के आराम की नींद कहाँ? बार बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। सोते थे तो साइकिल के सपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकिल से गिरकर ज़ख़्मी हो गये हैं, अस्पताल में अँगरेज़ हमारा आपरेशन कर रहा है और हमारी स्त्री रो रोकर कह रही है कि मैं विधवा हो गई। दूसरी बार देखा कि हम ज़मीन पर खड़े हैं, और हमारी साइकिल आसमान पर चल रही है। फिर ऐसा मालूम हुआ कि हमारे उस्ताद ने हमें गोद में उठाकर उछाल दिया। दूसरे क्षण में देखा तब हम साइकिल पर सवार हैं, साइकिल आपसे आप हवा में चल रही है और लोग हमारी तरफ़ आँखें फाड़ फाड़कर देख रहे हैं। एकाएक एक देवता ने आकर हमारे कंधे पर हाथ रख दिया, और

हम ज़मीन पर गिर पड़े। तब हमारी आँख खुल गई—देखा, यह सब सपना था। हम चारपाई पर हैं, और हमारी स्त्री हमारा कंधा हिला हिलाकर जगा रही है।

उठकर देखा। दिन निकल आया था। जल्दी से जाकर वे पुराने कपड़े पहन लिये, ज़ैम्बक का डिब्बा हाथ में ले लिया और नौकर को भेजकर मिस्त्री साहब से साइकिल मँगवा ली। इसी समय उस्ताद साहब भी आ गये और हम भगवान् का नाम लेकर लारेंस-बाग़ की ओर चले। लेकिन अभी घर से निकले ही थे कि बिल्ली रस्ता काट गई, और एक लड़के ने छींक दिया। क्या कहें, हमें कैसा क्रोध आया उस नामुराद बिल्ली पर और उस शैतान लड़के पर। मगर क्या करते? दाँत पीसकर रह गये! एक बार फिर भगवान् का पावन नाम लिया, और आगे बढ़े। पर बाज़ार में पहुँच कर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ़ देखता है, मुस्कराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है! सहसा हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहट में पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिये हैं, और लोग इसी पर हँस रहे हैं। सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े।

हमने उस्ताद से माफ़ी माँगी, और घर लौट आये। अर्थात् हमारा पहला दिन मुफ़्त में गया।

दूसरे दिन निकले। हमारे घर के पास जो लाला साहब रहते हैं वे सामने आ गये और मुस्करा कर बोले—"कहिए, कहाँ जा रहे हैं?"

ये लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी हैं, लेकिन इनकी एक आदत बहुत बुरी है। जिससे मिलते हैं उसी से पूछते हैं, कहाँ चले। कई बार समझाया कि जब कोई काम पर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाय तो वह काम कभी नहीं होता और जिसका काम बिगड़ जाता है वह 'कहाँ' पूछनेवाले को गालियाँ देता है। मगर लाला साहब पर ज़रा असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचने का कितना यत्न किया, किस किस तरफ़ मुँह मोड़ा, मगर उनकी 'कहाँ' की तोप से कौन बच सकता है। महात्मा जी ने सामने आकर गोला दाग़ ही तो दिया।

हमने जल-भुन कर जवाब दिया—"नरक को जा रहे हैं। आप भी चलेंगे क्या?"

लाला साहब—"अरे! मैंने तो पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं।"

हम—"और मैंने प्रार्थना की है कि नरक को जा रहे हैं। दो आदमियों की जगह ख़ाली है। अगर आप न पूछते तो आपका क्या बिगड़ जाता— दुनिया में कौन-सी कमी रह जाती?"

लाला—"भगवान् जानता है, मुझे मालूम न था कि आप किसी काम के लिए जा रहे हैं!"

हम—"मानो हम बेकार घूमा करते हैं।"

लाला—"अजी जनाब! आप भी क्या बातें करते हैं! मैं आपकी शान में ऐसी गुस्ताख़ी कर सकता हूँ? मेरा मतलब यह था—"

हम—"कि इनसे 'कहाँ' न पूछा तो प्रलय हो जायगा। ज़रा सोचिए, आपसे कितनी बार हमने निवेदन किया है कि हमें इस 'कहाँ' से डर लगता है। मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता। आज ही साइकिल चलाना सीखने जा रहे थे। यह देखिए, पुराने कपड़े और ज़ैम्बक का डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकिल, लेकिन इस 'कहाँ' ने आज का दिन भी ख़राब कर दिया। आपने तो मुस्कराकर पूछ लिया—कहाँ, हमारा दो रुपये का नुक़सान हो गया।"

उधर उस्ताद साहब ने साइकिल की घंटी बजाकर हमें अपने पास बुलाया और बोले—"मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ। आप ज़रा साइकिल को थामिए।"

लाला साहब ने यह अवसर पाया तब प्राण लेकर भाग निकले, वर्ना हम उनसे उस दिन काग़ज़ लिखा लेते कि अब फिर किसी से 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

(४)

उस्ताद साहब लस्सी पीने लगे तब हमने साइकिल के पुर्ज़ों की ऊपर-नीचे से परीक्षा शुरू कर दी, और लाला जी से जो बद-मज़गी हो गई थी उसे मिटाने के लिए मुँह में गुनगुनाने लगे—

भगवान् ने सैकल भी अजब चीज़ बनाई!

फिर कुछ जी में आया तब उसका हैंडल पकड़कर ज़रा चलने लगे। मगर दो ही क़दम गये होंगे कि ऐसा मालूम हुआ, जैसे साइकिल हमारे सीने पर चढ़ी आती है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि यह सब लाला जी के 'कहाँ' का प्रभाव है, वर्ना बेजान साइकिल में यह

साहस कहाँ कि हमारे जैसे पुरुष-सिंह पर धावा बोल दे। इस समय हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न था कि क्या करना चाहिए। युद्ध-क्षेत्र में डटे रहें या हट जायँ? सोच-विचार के बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहे का घोड़ा और फिर लाला जी का 'कहाँ' इसके साथ! इनके सामने हम क्या चीज़ हैं? बड़े बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। इसलिए हमने साइकिल छोड़ दी, और भगोड़े सिपाही बन कर मुड़ गये। पर दूसरे क्षण में साइकिल अपने पूरे ज़ोर से हमारे पाँव पर गिर गई और हमारी राम-दुहाई बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँजने लगी। उस्ताद जी लस्सी छोड़कर दौड़ आये और दयावान् लोग भी जमा हो गये। सबने मिल-मिलाकर हमारा पाँव साइकिल से निकाला। भगवान् के एक भक्त ने ज़ैम्बक का डिब्बा भी उठाकर हमारे हाथ में दे दिया। दूसरे ने हमारी बग़लों में हाथ डालकर हमें सँभाला और सहानुभूति से पूछा—"चोट तो नहीं आई? ज़रा दो-चार क़दम चलिए। नहीं लहू जम जायगा।"

हम बेशर्मों के समान खड़े हो गये, और हमने अपने शरीर का सारा भार पाँव पर डाल कर देखा कि पाँव ज़ोर खाता है या नहीं। उस्ताद ने साइकिल को अच्छी तरह देख कर कहा—"यह तो टूट गई, बनवानी पड़ेगी।"

और यह हम पहले से ही जानते थे। यह लाला जी के ख़ूनी 'कहाँ' की तासीर थी। इस तरह दूसरे दिन हम और हमारी साइकिल अपने घर से थोड़ी दूरी पर ज़ख़्मी हो गये। हम लँगड़ाते हुए घर लौट आये, साइकिल को ठोंक पीट कर ठीक करने के लिए मिस्त्री की दूकान पर भेज दिया।

मगर हमारे वीर हृदय का साहस और धीरज देखिए—अब भी मैदान में डटे रहे। कई बार गिरे, कई बार शहीद हुए, घुटने तुड़वाये, कपड़े फड़वाये, पर क्या मजाल, जो जी छूट जाय। आठ-नौ दिन में साइकिल चलाना सीख गये। लेकिन अभी तक उस पर चढ़ना नहीं आता था। कोई परोपकारी पुरुष सहारा देकर चढ़ा देता तो फिर लिये चले जाते थे। हमारे आनन्द की कोई सीमा न थी। सोचते थे, मार लिया मैदान हमने! दो-चार दिन में पूरे मास्टर बन जायँगे, इसके बाद प्रोफ़ेसर और इसके बाद प्रिंसिपल—फिर ट्रेनिंग कालेज, और तीन-चार सौ रुपया मासिक। तिवारी जी देखेंगे, और ईर्ष्या से जलेंगे।

उस दिन उस्ताद ने हमें साइकिल पर चढ़ा दिया और सड़क पर छोड़ दिया कि लिये जाओ; अब तुम सीख गयें।

अब हम साइकिल चला रहे थे, और दिल ही दिल फूले न समाते थे कि आख़िर हमने सिंहगढ़ को जीत ही लिया। मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गज़ के फ़ासिले पर भी होता तो हम गला फाड़ फाड़-कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब! ज़रा बाईं तरफ़ हट जाइएगा। हम नये सवार हैं, और साइकिल हमारे बस में नहीं है। दूर फ़ासिले पर कोई गाड़ी दिखाई देती, और हमारे प्राण सूख जाते। कभी कभी ऐसा ख़याल आता कि यह गाड़ी सिर्फ़ हमें अपनी लपेट में लेने के लिए आ रही है। उस समय हमारे मन की जो दशा होती उसे हमारा परमेश्वर ही जानता। जब गाड़ी निकल जाती तब कहीं जाकर हमारी जान में जान आती।

सहसा सामने से तिवारी जी आते दिखाई दिये। हमने उन्हें भी दूर से ही अल्टीमेटम दे दिया कि ओ तिवारी! बाईं तरफ़ हो जाओ, वर्ना साइकिल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे। तुमसे बड़ा मूज़ी और कौन मिलेगा?

तिवारी जी ने अपनी छोटी छोटी आँखों से हमारी तरफ़ देखा और मुस्कराकर कहा—"ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।"

हमने एक बार हैंडल की तरफ़, दूसरी बार तिवारी की तरफ़ देखकर जवाब दिया—इस समय कैसे बात सुन सकते हैं? देखते नहीं हो, साइकिल पर सवार हैं। कहने लगे, एक बात सुनते जाओ।

"अरे भाई! साइकिल चला रहे हैं, साइकिल!"

तिवारी—"तो क्या जो साइकिल चलाते हैं वे किसी की बात नहीं सुनते? बड़ी ज़रूरी बात है। ज़रा उतर आओ।"

हमने लड़खड़ाते हुए साइकिल को सँभालते हुए जवाब दिया—"उतर आये तो फिर चढ़ायेगा कौन? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा।"

तिवारी जी चिल्लाते ही रह गये, हम आगे निकल गये। इस समय हमें उनकी बेबसी पर जो मज़ा आया उसे क्या बयान करें! जी चाहता था, एक बार लौटकर उनका मुँह फिर देख आवें।

इतने में सामने से एक ताँगा आता नज़र आया। हमने उसे भी दूर से ही डाँट दिया—"बाईं तरफ़ भाई! अभी नया चलाना सीखा है।"

ताँगा बाईं तरफ़ हो गया। हम अपने रास्ते चले जा रहे थे। एकाएक पता नहीं, घोड़ा भड़क उठा या ताँगेवाले को शरारत सूझी, जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया। हमारे हाथ-पाँव फूल गये। ज़रा-सा हैंडल घुमा देते तो हम दूसरी तरफ़ निकल जाते। मगर बुरा समय आता है तब बुद्धि पहले भ्रष्ट होती है। उस समय हमें ख़याल ही न आया कि हैंडल घुमाया भी जा सकता है। उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि विधाता ने हमारी साइकिल के लिए वही रास्ता नियत कर दिया है जिस पर ताँगा आ रहा था।

क्षण भर में हमारे जीवन की सारी घटनायें हमारी आँखों में फिर गईं, और दूसरे क्षण में हम और हमारी साइकिल दोनों ताँगे के नीचे थे।

जब हम होश में आये तब हम अपने घर में थे, और हमारी देह पर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं। हमें होश में देखकर श्रीमती जी ने कहा – "क्यों? अब क्या हाल है? मैं कहती न थी, साइकिल चलानी न सीखो। उस समय तो किसी की सुनते ही न थे।"

हमने सोचा, लाओ सारा इल्ज़ाम तिवारी जी पर लगा दें, और आप साफ़ बच जायँ। बोले—"यह सब तिवारी जी की शरारत है।"

श्रीमती जी ने मुस्कराकर जवाब दिया—"यह तो तुम उसको चकमा दो जो कुछ जानता न हो। उस ताँगे पर मैं ही तो बाल-बच्चों को लेकर घूमने निकली थी कि चलो सैर भी कर आयेंगे, तुम्हें साइकिल चलाते भी देख आयेंगे।"

मैंने निरुत्तर होकर आँखें बन्द कर लीं।

उस दिन के बाद फिर कभी हमने साइकिल को हाथ नहीं लगाया।

देखा

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

इस रंगमंच पर कितनों, को आते-जाते देखा।
फूटी तक़दीरें देखीं, जीवन भर गाते देखा॥
हँसते हँसते जो आये, आँसू बरसाते देखा।
दानी को अपना सूना, अञ्चल फैलाते देखा॥
यौवन की मादक हाला, तन्मय मन पीते देखा।
लेकिन उनकी भी मधुमय, प्याली को रीते देखा॥
उठ उठकर फिर फिर मैंने, गिरनेवालों को देखा।
गिरने के बदले हँस हँस, मरनेवालों को देखा॥

देखा जलनेवालों को, ठंडी विभूति बन जाते।
प्रेमी-मन की विह्वलता, आँसू में आ छन जाते॥
शिशु का भोलापन देखा, अभिमान अमित यौवन का।
सौन्दर्य-सिन्धु में देखा, बहता बेड़ा जीवन का॥
चिर-तृप्ति अनोखी देखी, सन्तुष्ट जनों का जीवन।
देखी अतृप्ति की ज्वाला, तीखी तृष्णा की तड़पन॥
बन बन लाखों को सहसा, निरुपाय बिगड़ते देखा।
भूले-भटकों को फिर से, निज राह पकड़ते देखा॥

देखी सबकी इच्छायें, सबके जीवन की माया।
आश्चर्य कभी अपने को, पर देख नहीं मैं पाया॥

युद्ध से पहले और अब

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार



र्मनी का भाग्य-विधाता हर हिटलर समय-असमय योरप और संसार को याद दिलाता रहता है कि जब तक उसको उसके उपनिवेश वापस नहीं मिल जायँगे तब तक योरप और विश्व में शान्ति नहीं हो सकती। इससे सहसा यह जानने की इच्छा होती है कि जर्मनी अपने छीने गये उपनिवेशों को क्यों वापस माँगता है, वे कहाँ हैं और इस समय उनकी क्या स्थिति है।

आज से २२ साल पहले जर्मनी का साम्राज्य एशिया, अफ्रीका और प्रशान्त महासागर के द्वीपों में फैला हुआ था। इनका क्षेत्रफल १०,००,००० वर्गमील होता था। मगर इन उपनिवेशों में जर्मन लोगों की आबादी २५ हज़ार से ज़्यादा कभी नहीं हुई। पिछले १८ सालों में बहुत-से जर्मन इनको छोड़कर चले गये हैं।

चीन में 'क्या-चाऊ' किसी समय समृद्धि की ओर तेज़ी से बढ़ रहा था। वहाँ स्कूल खुले हुए थे। जर्मन-विश्वविद्यालय की स्थापना की भी चर्चा थी। प्रतिभाशाली और बुद्धिमान् जर्मन-युवक सुदूर पूर्व के इस प्रदेश में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और सुमधुर कल्पनाओं को पूर्ण-रूप देने की इच्छा रखते थे।

१९१४ के बाद इसे जापान ने विजयी के रूप में ले लिया। मगर बाद में उसने इसे चीन को लौटा दिया। जर्मन लोगों का यहाँ केवल १५ साल राज्य रहा और यह उस प्रदेश के इतिहास में फ़ुटनोट के समान है। जर्मनी के प्रशान्त महासागर में कुछ द्वीप थे। राष्ट्र-संघ ने ये द्वीप जापान को प्रदान किये थे। वे उसी के अधिकार में हैं और वह न जर्मनी को, न राष्ट्र-संघ को ही लौटाने को तैयार है। सामरिक दृष्टि से ये द्वीप जापान के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

उक्त द्वीपों के सिवा प्रशान्त महासागर में जर्मनी का महत्त्वपूर्ण देश न्यू गायना में 'कैसर विलियमलैण्ड' था। यह देश समृद्ध था, पर अनुन्नत और अविकसित था। बर्लिन से बहुत दूर होने के कारण इस पर भले प्रकार शासन भी नहीं हो सकता था। पर जब से आस्ट्रेलिया के शासनादेश (मैण्डेट) में आया तब से इसकी उन्नति तेज़ी से होनी शुरू हुई। १९२४ में विदेशियों की संख्या यहाँ २६२ थी। अब ५,४५३ है, जिसमें ३,०२६ ब्रिटिश और ४०४ जर्मन हैं।

समोआ के जर्मन-उपनिवेश में, जो अब राष्ट्र-संघ की ओर से न्यूज़ीलैंड को दिया गया है, ३०० से अधिक जर्मन कभी नहीं हुए।

विशाल जर्मन-उपनिवेश-साम्राज्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका और टंगानिका है। स्कट्स बोथा-द्वारा विजय करने के समय इन प्रदेशों में जर्मन लोगों की आबादी क्रमशः १२,००० और ४,००० थी।

दक्षिण-पश्चिम-अफ्रीका राष्ट्र-संघ की ओर से दक्षिण-अफ्रीका की यूनियन गवर्नमेंट को मिला। ३,४८९ व्यक्तियों को अपनी राष्ट्रीयता चुनने का अधिकार दिया गया। इनमें से ३,२६१ ने ब्रिटिश राष्ट्रीयता को स्वीकार कर लिया। उस समय से इसकी आबादी बढ़कर ३२,००० हो गई है। 'यूनियन' से लोग यहाँ बसने के लिए आ रहे हैं। रेलवे लाइन बिछ गई है। धारा-सभा की स्थापना भी हो गई है।

दक्षिण-अफ्रीका की यूनियन-सरकार इसको उन्नत और विकसित करने की भरसक कोशिश कर रही है। इसने न केवल पूँजी ही लगाई है, किन्तु कठिनाई के समय इस प्रदेश का घाटा भी सहा है।

टंगानिका का शासन सीधे ब्रिटिश सरकार के हाथों में है। ब्रिटिश सिण्डीकेट तथा अन्य अँगरेज़ों की विशाल पूँजी के अलावा सार्वजनिक कामों व रेलवे लाइनों के विस्तार में ८०,००,००० पौंड ब्रिटिश सरकार के लगे हैं।

टंगानिका, केनिया और युगाण्डा को एक में मिलाकर इन संयुक्त-प्रदेशों का शासन एक सूबा में करने की तजवीज़ बहुत दिनों से चल रही है। इन प्रदेशों के अँगरेज़ चाहते

हैं कि दक्षिण के समान पूर्व में भी यूनियन गवर्नमेंट क़ायम हो जाय। मगर भारतीय इस प्रस्ताव का विरोध करते आये हैं, क्योंकि केनिया के गोरों का बर्ताव उन्हें विश्वास दिलाता है कि वे भविष्य में उनके प्राप्त अधिकारों को भी छीन न लें।

टंगानिका अपना ख़र्च निकालकर हर साल ब्रिटिश सरकार को बचत दे रहा है। युद्ध के पहले से अब वहाँ योरपीयों की आबादी दुगुनी हो गई है और इस समय ८,२१७ है।

कैमेरून और शेगोलैण्ड में १९१४ में जर्मनों की आबादी २,००० के लगभग थी। इसका अधिकांश फ्रांस को दे दिया गया है। फ्रेंच-पश्चिम-अफ़्रीका की समृद्धि बढ़ाने में यह प्रदेश महत्त्वपूर्ण भाग ले रहा है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि अँगरेज़ लोग जर्मन-उपनिवेशों को किसी भी हालत में जर्मनी को नहीं लौटावेंगे। प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन ने इस बात को कामंस सभा में स्पष्ट भी कर दिया है कि इँग्लेंड प्राप्त जर्मन-उपनिवेशों को किसी भी हालत में लौटाने को तैयार नहीं है। इसका कारण उपर्युक्त वर्णन के पढ़ने से स्पष्ट हो गया होगा।

इसका यह अर्थ है कि जर्मनी अपने खोये हुए प्रदेशों को पाने और नये प्रदेशों को पाने के यत्न में लड़ाई की तैयारी बराबर करता रहेगा।

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पाँडे

मेरा मन उन्मन रहता क्यों ?
प्रिय को उर में धारण कर फिर—
सूनापन अनुभव करता क्यों ?
मेरा मन उन्मन रहता क्यों ?

झिलमिल से तारक-दीपों में
जब उलझे हों प्राण व्यथा से—
आँसू के छोटे जीवन-सी—
प्रिय तेरी यह आकुलता क्यों ?

जग की निर्मल ज्वालाओं से
छार छार है मेरा जीवन—
औरों के दुख को लेकर अब
यह भीषण क्रन्दन करता क्यों ?

मिथ्या है व्यवहार जगत का
सत्य एक आधार बना अब—
इन्द्र-धनुष के रंगों सी यह—
क्षण भर की झूठी ममता क्यों।

गायक की मुखरित वीणा जब
गाती है मृदु-राग निरन्तर—
अपने उर की व्याकुलता को
उस वीणा में तू भरता क्यों ?

जीवन का चिर-अमर सत्य जो—
पाना था पा लिया प्रेम में
अपने में ही देख उसे रे—
इधर-उधर भ्रम में फिरता क्यों।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

[CROSSWORD PUZZLE IN HINDI]

५००) पारितोषिक रूप में

३००) शुद्ध पूर्तियों पर २००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) नीचे जो वर्ग दिया गया है उसकी सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति होने पर ३००) का पारितोषिक दिया जायगा। वर्ग-पूर्तियाँ एक से अधिक शुद्ध होंगी तो उन पूर्ति करने-वालों में ३००) का पारितोषिक बराबर बराबर बाँट दिया जायगा। इसी प्रकार २००) का पारितोषिक उन पूर्ति करनेवालों में बाँटा जायगा जो न्यूनतम अशुद्धियाँ करेंगे। वर्ग-निर्माता ने वर्ग की शुद्ध-पूर्ति लिखकर एक लिफ़ाफ़े में बन्द कर दी है और उस पर मोहर लगाकर रख दी है। उनकी यह 'शुद्ध-पूर्ति' ही निर्णय का आधार होगी। उत्तर-स्वरूप में जो कोष्ठ-पूर्तियाँ इस शुद्ध-पूर्ति से अक्षरशः मिलती होंगी, वही सम्पूर्णतया शुद्ध मानी जायँगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (■) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए, जिससे उनके पढ़ने में किसी प्रकार की शङ्का अथवा द्विविधा न हो। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए प्रत्येक वर्ग-पूर्ति के लिए ।।) फ़ीस देनी होगी, जो मनीआर्डर से आनी चाहिए। फ़ीस कार्यालय में नक़द भी जमा की जा सकती है। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। मनी-आर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग नम्बर १, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर पूर्ति करनेवालों के नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए और उसकी नियत फ़ीस अर्थात् ।।) प्रति वर्गपूर्ति के हिसाब से भेजनी चाहिए। इस प्रतियोगता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी।

(७) जो वर्ग-पूर्ति कार्यालय में २० अगस्त तक नहीं पहुँचेगी वह जाँच में नहीं शामिल की जायगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता को जाँच कर सकें।

(८) १ नम्बर वर्ग के समस्त शब्द 'संक्षिप्त-हिन्दी-शब्दसागर' अथवा 'बाल-शब्दसागर' नाम के कोषों में मिल सकते हैं।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—विद्या देनेवाली
३—कुसमय
६—यह कार्य दृष्टि रखने से अच्छा होता है
७—गहना
८—सिद्धि के दाता
१०—इसकी आवाज़ युद्ध का पता देती है
१२—अग्नि से बहुधा वस्तुएँ ऐसी हो जाती हैं
१३—मास
१४—अन्दाज़
१७—आकाश
१९—लोहे से बनती है
२०—अक्सर सिर के ऊपर रहता है
२२—भिक्षुक
२४—ज्योतिषशास्त्र का एक अंग
२५—व्यापार को लाभदायक है
२६—धनी मनुष्यों का, बहुत आश्चर्यजनक होता है
२७—जितना छोटा उतना ही निर्भय
३०—यह अचर है
३१—समुद्र में यह वस्तु सदैव पाई जाती है
३२—बहादुरी
३३—यदि सच्चे हों तो सबके प्रिय होते हैं

ऊपर से नीचे

१—बहुत पढ़े लोग ऐसे अब कम होते हैं
२—लड़ता ख़ूब है
३—अपमान
४—उलझ जाय तो जल्दी न सुलझे
५—सारथी
९—इससे प्रकाश भी होता है
११—चलना
१४—अकाल में इसका दुख असहनीय होता है
१५—हट
१६—श्री रामचन्द्रजी के भाई
१८—डरावनी
२१—समय का भाग
२३—राज्य की आमदनी इससे होती है
२४—लाल रंग का
२७—बहुधा पेड़ों पर छाये रहते हैं
२८—एक गोपी का नाम
२९—पानी से सम्बन्ध रखता है
३०—इसकी संख्या पहले से अब कम है

ग	र	म्य	नी		अ		व		र
			त		ना			न	
ल	म्बो					ग			वा
					र			मा	
	ट	क				न			
ना			क्र		ग		ग्रा		
		र					न		र
			न		श्रां				
		ना				लि			ड़
ल		र		श्री		ना		न	

ग	र	म्य	नी		अ		व		र
			त		ना			न	
ल	म्बो					ग			वा
					र			मा	
	ट	क				न			
ना			क्र		ग		ग्रा		
		र					न		र
			न		श्रां				
		ना				लि			ड़
ल		र		श्री		ना		न	

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग-पूर्ति की नक़ल यहाँ कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नम्बर १ फ़ीस ।।)

१ स	र	स्व	२ ती	■	३ अ		व	४	५ र
	■	■	६ त		ना	■	■	७ न	
८ ल	म्बो	९		■	१०	११ ग		■	वा
■	■		■	१२	र		■	१३ मा	
१४	१५ ट	क	१६	■	■	१७ न	१८	■	■
१९ ना		■	२० छ	२१	रा	■	२२ या		२३
	■	२४ र			■	■	२५ न		र
■	२६		न	■	२७ बा	२८		■	■
२९	■	ना	■	■		लि	■	३०	ड़
३१ ल		र	■	३२ बी		ता	■	३३ न	

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

वर्ग नम्बर १ फ़ीस ।।)

१ स	र	स्व	२ ती	■	३ अ		व	४	५ र
	■	■	६ त		ना	■	■	७ न	
८ ल	म्बो	९		■	१०	११ ग		■	वा
■	■		■	१२	र		■	१३ मा	
१४	१५ ट	क	१६	■	■	१७ न	१८	■	■
१९ ना		■	२० छ	२१	रा	■	२२ या		२३
	■	२४ र			■	■	२५ न		र
■	२६		न	■	२७ बा	२८		■	■
२९	■	ना	■	■		लि	■	३०	ड़
३१ ल		र	■	३२ बी		ता	■	३३ न	

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

इन वर्गों की पूर्तियाँ लिफ़ाफ़े में भेजिए पर ।।) फ़ीस प्रत्येक अवस्था में मनिआर्डर से आना चाहिए। और रसीद पूर्तियों के साथ। और किसी रूप में फ़ीस स्वीकार न की जायगी।

मैनेजर वर्ग नं० १

इंडियन प्रेस,

इलाहाबाद

बाल-शब्द-सागर

(सम्पादक रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०)

यह कोष एक प्रकार से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ एवं सुबृहत् कोष 'शब्द-सागर' का बालकोपयोगी संस्करण है। मूल शब्द-सागर की भाँति इसमें किसी शब्द के पर्यायवाची शब्दों, मुहाविरों तथा उदाहरणों की अधिकता तो नहीं है, किन्तु आवश्यक शब्दों का सन्निवेश ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। यह कोष केवल विद्यार्थियों के ही नहीं, बल्कि अपनी व्यावहारिक उपयोगिता के कारण सभी के काम का है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) दो रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग



संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर

जो लोग शब्दसागर जैसा सुविस्तृत और बहुमूल्य ग्रन्थ खरीदने में असमर्थ हैं, उनकी सुविधा के लिए उसका यह संक्षिप्त संस्करण है। इसमें शब्दसागर की प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण विशेषतायें सुरक्षित रखने की चेष्टा की गई है। मूल्य ४) चार रुपये।

भारतीय ग्रामों में स्वास्थ्य और सफ़ाई

लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सकसेना एम० ए०, एम० काम०

हमारे ग्रामों में स्वास्थ्य और सफ़ाई का समुचित प्रबन्ध न होने से वहाँ के निवासियों का नाना प्रकार के रोगों से जो भीषण संहार हो रहा है वह एक जानी हुई बात है। इस लेख में लेखक महोदय ने उस सबका वर्णन करते हुए बंगाल के अनुकरण पर एक योजना बताई है जिसके कार्य में परिणत हो जाने पर बहुत अधिक लोक-कल्याण हो सकता है।



धारणतः हम भारतवासियों की यह एक धारणा बन गई है कि हमारे गाँवों में मनुष्यों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। गाँवों में रोग और महामारी बहुत कम होते हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्यों को खुली हवा तथा सूर्य का प्रकाश यथेष्ट मिलता है। किन्तु वस्तु-स्थिति इससे नितान्त भिन्न है। वर्षा के उपरान्त तनिक गाँवों में जाने का कष्ट उठाइए तो आपको जो दृश्य देखने को मिलेगा वह अत्यन्त दुखदायी होगा। आपको सर्वत्र जूड़ी और बुख़ार फैला हुआ दिखाई देगा। किसी भी ग्रामीण से आप पूछ लीजिए। अवश्य ही वह उन दिनों कुछ दिनों के लिए रोगग्रस्त होता है। बंगाल-आसाम में तो मानो ये दिन प्रलय के होते हैं। धान की फ़सल खड़ी रहती है, किन्तु काटनेवाले नहीं जुड़ते। मलेरिया का ऐसा भीषण प्रकोप होता है कि गाँव के गाँव ही उसके कारण शैया पकड़ लेते हैं। केवल साधारण ज्वर का ही गाँवों में आधिक्य हो, यह बात नहीं है। प्लेग, हैज़ा, हुकवार्म, चेचक, काला आज़ार तथा अन्य प्रकार के भीषण रोगों का प्रकोप गाँवों में कुछ कम नहीं होता। बात यह है कि हम शिक्षितवर्ग के लोगों का गाँवों से ऐसा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है कि हम गाँवों की वास्तविक परिस्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। हम केवल कल्पना के द्वारा गाँवों के विषय में अपनी धारणा बना लेते हैं। गाँवों में जब बीमारियाँ फैलती हैं तब नगर-निवासियों तथा सरकारी कर्मचारियों का ध्यान भी उधर आकर्षित नहीं होता। गमनागमन के साधनों का अभाव, गाँवों के विषय में हमारे समाचार-पत्रों का मौन-धारण, चिकित्सा के साधनों का गाँवों में नितान्त अभाव तथा ग्रामीणों का अशिक्षित होने के कारण अपनी कष्ट-कहानी को अपने तक ही रखने की आदत ही उपर्युक्त भ्रम के फैलने का मुख्य कारण है। यदि आज ग्रामीण संगठित होते, उनके पास भी पत्र और प्लैटफ़ार्म होते तो सरकार, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और नगरनिवासी शिक्षित जन-समुदाय गाँवों के स्वास्थ्य की ओर से इतना उदासीन कदापि न रह सकते।

इस सम्बन्ध में आल इंडिया मेडिकल कान्फ़रेंस का वह प्रस्ताव जो उक्त सम्मेलन ने १९२४ और १९२६ में पास किया था, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और हमारे ग्रामों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्या पर पूरा प्रकाश डालता है। १९२४ और १९२६ में अखिल भारतवर्षीय मेडिकल रिसर्च वर्कर्स ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया था—

"इस सम्मेलन का विश्वास है कि उन रोगों से जो दूर किये जा सकते हैं, प्रतिवर्ष देश में पचास या साठ लाख मृत्युएँ होती हैं। ऐसे रोके जा सकनेवाले रोगों से भारतवर्ष में प्रत्येक मनुष्य वर्ष में दो या तीन सप्ताह के लिए काम करने के अयोग्य हो जाता है, यही नहीं, उसकी कार्य-क्षमता भी बीस प्रतिशत घट जाती है। भारतवर्ष में उत्पन्न हुए बच्चों में से केवल पचास प्रतिशत ही कमाने योग्य हो पाते हैं जब कि थोड़ा-सा प्रयत्न करने से उनकी संख्या ८० से ९० प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। इस सम्मेलन का विश्वास है कि ये आँकड़े किसी प्रकार भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हैं, फिर भी भूल हो जाने की सम्भावना का ध्यान रखते हुए हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इन रोके जा सकनेवाले रोगों-द्वारा होनेवाली जीवन तथा कार्यक्षमता की हानि के कारण भारतवर्ष को प्रतिवर्ष कई अरब रुपये की हानि उठानी

पड़ती है। इस भयंकर आर्थिक हानि के अतिरिक्त प्रतिवर्ष लाखों स्त्री-पुरुषों को घोर कष्ट भी उठाना पड़ता है।

"इस सम्मेलन का विश्वास है कि इस भयंकर जनशक्ति की हानि अपेक्षाकृत थोड़े से व्यय से रोकी जा सकती है। सम्मेलन की राय में यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है, जिसका सुधार होना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि भारत की निर्धनता का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण रोके जा सकनेवाले रोगों-द्वारा होनेवाली कार्य-क्षमता की हानि ही है, अतएव धन की कमी इस आवश्यक सुधार के मार्ग में बाधक नहीं होनी चाहिए।"

ध्यान रहे ऊपर दिया हुआ प्रस्ताव साधारण डाक्टरों की सभा का नहीं है। भारत के जो प्रमुख डाक्टर चिकित्सा-विषयक अनुसन्धान कर रहे हैं उनके सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पास किया है। इससे हमारे ग्रामों में स्वास्थ्य और सफ़ाई की समस्या की गुरुता स्पष्ट समझ में आ जाती है।

किसी किसी प्रान्त में कुछ भयंकर रोगों ने स्थायी रूप से अड्डा जमा लिया है, जो प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में ग्रामीणों को मृत्यु के कराल गाल में पहुँचा देते हैं, और असहाय ग्रामीण इसको दैवी कोप समझकर चुपचाप सहन करते रहते हैं। वे समझते हैं कि इनका कोई उपचार ही नहीं है। क्रमशः वे पूर्णतः भाग्यवादी बन गये हैं। यह सब कुछ होते हुए भी हमारे गाँवों में चिकित्सा का कोई भी प्रबन्ध नहीं है, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के पास इस आवश्यक कार्य के लिए पैसा नहीं है, सरकार इस ओर से उदासीन है, क्योंकि ग्रामीणों में अपने अधिकारों की जानकारी उत्पन्न नहीं हुई है और वे आन्दोलन नहीं कर सकते।

अब तनिक ग्रामों की सफ़ाई के विषय में सुनिए। गाँवों में जाकर देखिए तो गन्दगी सर्वत्र पाइएगा। यदि किसी रास्ते पर आप जा रहे हों, हवा में दुर्गन्ध आने लगे, मक्खियाँ अधिक उड़ती हुई दिखलाई दें, तो समझ लेना चाहिए कि गाँव समीप आ गया है। और आगे बढ़िए। कूड़ा और गन्दगी के ढेर दिखलाई दें अथवा ताल या तलैया मिले जिसका जल दूषित हो गया हो, जिसके चारों ओर मल पड़ा हो, तो समझ लेना चाहिए कि हम गाँव की सीमा पर हैं। बस्ती के अन्दर ठीक ठीक रास्ते नहीं होते, सारे गाँव में धूल और मक्खियों का बाहुल्य होता है। वर्षा के दिनों में तो गाँव का रास्ता दलदल बन जाता है, और जाड़े-गरमी में इतनी धूल होती है कि गाड़ियों के निकलते तथा गाँव के पशुओं के एक साथ चलते समय सारा ग्राम धूल से ढँक जाता है। घरों में नालियाँ न होने के कारण घरों का गन्दा पानी वायु को दूषित करता रहता है।

भारतीय ग्रामों में अधिकांश घरों में शौचगृह नहीं होते। गाँव के स्त्री-पुरुष खेतों में खुले मैदान में अथवा ताल के किनारे शौच को जाते हैं। इसका यह फल होता है कि तालाब का पानी जो अंग को साफ़ करने के काम में भी लाया जाता है, अत्यन्त गन्दा तथा दूषित हो जाता है। उसी जल को गाँव के ढोर पीते हैं, जिस के फल-स्वरूप ढोरों में पेट और मुँह की बीमारियाँ फैलती हैं। खेतों और मैदान में शौच जाने की प्रथा से भी स्वास्थ्य को भयंकर हानि पहुँचती है। अधिकांश ग्रामीण जूता नहीं पहनते, और जो जूता पहनते भी हैं वे गाँव में चलते-फिरते समय तथा खेतों में काम करते समय तो जूता कभी नहीं पहनते हैं। नंगे पैर चलने से मल पैरों के सम्पर्क में आता है, जिसमें एक प्रकार का कीटाणु उत्पन्न हो जाता है, जिसे हुकवार्म कहते हैं। भारतीय ग्रामों में हुकवार्म-रोग की अधिकता इसी कारण है। यह रोग कीटाणु के पैरों-द्वारा मनुष्य-शरीर में प्रवेश कर जाने पर होता है, जिसके फलस्वरूप रोगी को ज्वर हो आता है। मल के सूख जाने पर वह मिट्टी के कणों के साथ मिल कर हवा के साथ उड़ता है, कुओं और तालाबों के जल में, स्त्री-पुरुष, बच्चों और पशुओं की आँखों में तथा भोजन-सामग्री में पड़कर उन्हें ख़राब करता है।

ग्रामों में जगह जगह ग्रामीण गोबर तथा कूड़े के ढेर लगाकर खाद तैयार करते हैं। बरसात में इसके कारण बड़ी गंदगी फैलती है। मक्खियों के तो ये उद्गमस्थान होते हैं। मक्खियाँ उस गंदगी पर बैठ कर उसे अपने परों तथा पैरों के द्वारा ले जाती हैं और पशुओं तथा बच्चों की आँखों और भोजन-सामग्री पर बैठकर उस गंदगी को वहीं छोड़ देती हैं। इन्हीं कारणों से ग्राम-निवासियों और विशेषकर बच्चों की आँखें अधिकतर ख़राब दिखाई देती

हैं। ग्रामीण अपने मकान बनाने के लिए तथा वर्षा के उपरान्त प्रतिवर्ष मकानों की मरम्मत करने के लिए गाँव के समीप से ही मिट्टी खोद लेते हैं। इसका फल यह होता कि गाँव के चारों ओर तालाब-तलैयाँ अथवा छोटे छोटे गड़हे बन जाते हैं। वर्षा का जल इनमें भर जाता है। यही नहीं, बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों की समस्या ने भी हमारे गाँव में उग्र रूप धारण कर लिया है। इसके कारण बहुत-सी अनावश्यक मेड़ें पानी के प्राकृतिक बहाव में बाधक होती हैं। रेलों, नहरों और सड़कों के बनाने में भी ऐसी भयंकर भूल हो गई है कि उनके कारण भी भिन्न भिन्न प्रान्तों में पानी का प्राकृतिक बहाव रुक गया है। इसका यह फल होता है कि वर्षा के उपरान्त ग्रामों में भीषण मलेरिया-ज्वर फैलता है। मलेरिया का कीटाणु रुके हुए पानी में उत्पन्न होता है, अतएव जब तक गाँव के आस-पास के गड़हे और तालाब भर न दिये जायँ अथवा रुके हुए पानी की समस्या हल न की जाय तब तक मलेरिया से पिंड नहीं छूट सकता। ऊपर लिखे कारणों तथा चिकित्सा के साधनों के अभाव से बहुत-से भयंकर रोग स्थायी रूप से भारतीय ग्रामों में जम गये हैं।

अब प्रश्न यह है कि गाँवों के स्वास्थ्य तथा सफ़ाई की समस्या कैसे हल की जा सकती है। इसके अतिरिक्त ग्रामों में बच्चे उत्पन्न करने का कार्य अधिकतर नीच जाति की अशिक्षित गंदी दाइयाँ करती हैं, इससे भी माता तथा बच्चे के स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है। इस सम्बन्ध में जो अवैज्ञानिक तथा अस्वास्थ्यकर रस्में प्रचलित हो गई हैं उनके कारण जो भयंकर क्षति देश को पहुँच रही है वह भी अकथनीय है। अधिकतर मातायें तथा बच्चे मर जाते हैं। माताओं के स्वास्थ्य में स्थायी रूप से कोई ख़राबी आ जाती है और बच्चों के स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

प्रान्तीय सरकारों के पास इस कार्य के लिए पैसा नहीं है। नवीन शासन-विधान का भयंकर आर्थिक बोझ प्रान्तों की रीढ़ तोड़ देगा, अतएव यह आशा करना कि हमारी प्रान्तीय सरकारें यह कार्य पूर्णरूप से कर सकेंगी, स्वप्न-तुल्य है, अतः हमें यह देखना है कि हमारे सार्वजनिक कार्य-कर्ता तथा ग्रामवासी स्वयं अपनी दशा को किस प्रकार सुधार सकते हैं।

बंगाल की ऐंटी मलेरिया समितियाँ—इस दिशा में बंगाल के अन्तर्गत एक सफल प्रयोग हुआ है। बंगाल में मलेरिया-ज्वर का भीषण प्रकोप होता है। वहाँ प्रति वर्ष बहुत बड़ी संख्या में मनुष्य मरते हैं और कहीं तो मलेरिया के कारण गाँव के गाँव उजड़ गये हैं। अभी तक विशेषज्ञों की सम्मति थी कि मलेरिया के कीटाणु रुके हुए पानी में उत्पन्न होकर अपने जन्मस्थान से आठ मील तक जा सकते हैं। सरकार का विश्वास है कि मलेरिया के रोकने में अत्यधिक व्यय होगा, साथ ही जनता का यह विश्वास था कि यह रोग तभी रोका जा सकता है जब कोई बड़ी योजना तैयार की जाय। इसी कारण ग्रामीण इस विषय में हताश हो चुके थे।

किन्तु डाक्टर गोपालचन्द्र चटर्जी ने अनुसंधान करके यह पता लगाया कि मलेरिया का कीटाणु अपने जन्मस्थान से आध मील से अधिक दूर नहीं जा सकता और सरकारी विशेषज्ञों का मत भ्रमपूर्ण है। यह खोज कर चुकने के उपरान्त उन्होंने प्रान्त में इस रोग से युद्ध करने के अभिप्राय से ऐन्टी मलेरिया सहकारी समितियों की स्थापना की। प्रान्त भर में इस आन्दोलन का संचालन करने के लिए उन्होंने एक सेन्ट्रल को-आपरेटिव ऐन्टी मलेरिया सोसायटी लिमिटेड भी स्थापित की। क्रमशः ग्राम-समितियों की संख्या बढ़ती गई और आज बंगाल में लगभग ७०० ऐन्टी मलेरिया समितियाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

ग्राम-समितियाँ अपने अपने गाँवों में मलेरिया तथा अन्य रोगों के रोकने का उपाय करती हैं। समितियों के सदस्यों को चार आने से लेकर एक रुपया मासिक चन्दा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टर को कुछ मासिक वेतन देकर रखती है, जो सदस्यों के घरों पर बिना फ़ीस लिये जाता है और रोगियों की चिकित्सा करता है। प्रान्तीय सरकार इन समितियों को सेन्ट्रल सोसायटी के द्वारा कुछ आर्थिक सहायता भी देती है। इन समितियों ने बहुत-से अस्पताल तथा स्कूल खोल रक्खे हैं। कुछ अस्पताल तो ऐसे हैं जो सर्व-साधारण को दवा देते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो केवल समिति के सदस्यों को ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्र में कुछ समितियाँ स्थापित हो जाती हैं तब उनकी देख-भाल करने के लिए ग्रूप-समिति स्थापित

कर दी जाती है। कहीं ग्रूप-समिति ही चिकित्सक रखती है, जो उस क्षेत्र की समितियों के सदस्यों की चिकित्सा करता है और जब मलेरिया, चेचक, काला आज़ार, हैज़ा अथवा प्लेग का प्रकोप बढ़ता है तब वह उसके रोकने का उपाय करता है।

ग्राम-समितियाँ वर्षा से पूर्व गाँव के समीपवर्ती सब गड्ढों, खाइयों तथा पोखरों को भर देती हैं। नाले और नालियाँ ठीक कर दी जाती हैं, ताकि कहीं पानी रुक न सके। खेतों के बहाव भी ठीक कर दिये जाते हैं। फिर भी वर्षा में यदि कहीं पानी रुक जाता है तो वहाँ समिति मिट्टी का तेल छुड़वाती है, जिससे मलेरिया के कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें। समिति प्रत्येक सदस्य को एक छपी हुई पुस्तिका देती है, जिसमें वह प्रति सप्ताह यह लिखता है कि उसके घर के लोग कितने दिनों के लिए बीमार पड़े। इन पुस्तकों के द्वारा गाँव में मलेरिया घट रहा है या नहीं, यह मालूम हो जाता है।

लेखक की योजना—भारतवर्ष में रोके जा सकनेवाले रोगों के कारण मनुष्य-जीवन तथा कार्य-शक्ति का जो भयंकर नाश हो रहा है, यह सहकारी स्वास्थ्य-समितियाँ स्थापित करके रोका जा सकता है। प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य-रक्षक-समिति की स्थापना की जाय। गाँववालों को समिति के लाभ समझाकर वे उसके सदस्य बना लिये जायँ। प्रयत्न यह होना चाहिए कि गाँव के प्रत्येक घर का एक व्यक्ति सदस्य बने। प्रत्येक सदस्य को चार आना मासिक चंदा देना होगा। जो लोग बहुत निर्धन हों और चार आना मासिक चन्दा न दे सकें उनसे चंदा न लिया जाय, चंदे के बदले में वे सदस्य समिति का महीने में एक दिन कार्य कर दिया करें। यदि कोई सदस्य चाहे तो अपना चंदा अनाज के रूप में भी दे सकता है। किन्तु चन्दा देनेवाले तथा काम करनेवाले सदस्यों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। सब प्रकार के सदस्यों के अधिकार एक ही हों।

सब सदस्यों की एक साधारण सभा हो। प्रत्येक सदस्य को केवल एक ही वोट देने का अधिकार हो। प्रयत्न यह किया जाय कि प्रत्येक सदस्य समिति के कार्य में भाग ले। साधारण सभा प्रतिवर्ष बजट पास करे तथा समिति का वार्षिक प्रोग्राम निर्धारित करे। साधारण सभा अपने वार्षिक अधिवेशन में पाँच सदस्यों की एक पंचायत, उसका सरपंच, दो मंत्री, एक कोषाध्यक्ष का भी निर्वाचन करे। दोनों मन्त्री समिति के कार्य को आपस में बाँट लें। जो सदस्य चन्दा न दें उनसे मन्त्री समिति का निम्नलिखित काम करवावे—गाँव के समीपवर्ती सब गड्ढों को पाटना, नालों तथा खेतों के बहाव को ठीक करना, वर्षा समाप्त हो जाने पर जहाँ जहाँ पानी रुक जाय वहाँ वहाँ मिट्टी का तेल छुड़वाना, औषधालय में काम करवाना तथा समय पड़ने पर उनको समिति के कार्य से अन्य स्थानों पर भेजना इत्यादि।

समिति चिकित्सक की सलाह से कुछ ओषधियों का संग्रह करे, जो साधारण रोगों में काम आसकें। बहुत-सी ओषधियाँ तो ग्राम के समीपवर्ती स्थानों में ही मिल जायँगी। चिकित्सक की सलाह से वे सब ओषधियाँ एकत्र कर ली जायँ। चिकित्सक को जहाँ तक हो सके, गाँव में उत्पन्न होनेवाली ओषधियों का ही उपयोग करना चाहिए। यही नहीं, चिकित्सक मन्त्री को उन ओषधियों की जानकारी भी करा दे। ओषधियों को बाँटने का काम दूसरे मन्त्री के हाथ में रहे। समिति गाँव के आवश्यकतानुसार गाँव से कुछ दूरी पर थोड़े-से गड्ढे खुदवावे। ये गड्ढे ६ या ७ फ़ुट गहरे हों, उनके चारों ओर अरहर की आड़ खड़ी कर दी जाय तथा गड्ढे के मुँह पर लकड़ी के दो तख़्ते रख दिये जायँ। यही गाँव के शौचगृह हों। इनसे दो लाभ होंगे—एक तो गाँव में सफ़ाई रह सकेगी, दूसरे अभद्रता भी न होगी। गाँववालों को मैदान में शौच जाने की हानियाँ बताकर वे इन 'पिट-लैट्रिन्स' में शौच जाने को बाध्य किये जायँ। कुछ शौच-गृह स्त्रियों के लिए पृथक् कर दिये जायँ।

समिति एक मेहतर नौकर रक्खे, जो गाँव का कूड़ा इनमें डाल दिया करे और गाँव की गलियों को साफ़ रक्खे। सदस्य अपने घरों को स्वयं साफ़ करते ही हैं, वे अपने घर के बाहर की भूमि को भी साफ़ रक्खें। उन्हें गड्ढों में खाद बनाने के लाभ समझाये जायँ और गड्ढों में खाद तैयार करने को उत्साहित किये जायँ। प्रत्येक किसान दो गड्ढे तैयार करे—एक में से जब खाद निकाली जाय तब दूसरे में गोबर तथा कूड़ा भरा जाय। किसान प्रति दिन गोबर, भूसा-चारा जो पशुओं के पास बच रहता है, गड्ढों में डाल दिया करे। इससे दो लाभ होंगे। एक

तो गंदगी दूर होगी, दूसरे उत्तम खाद तैयार होगी। समिति शौचगृहों में तैयार की हुई खाद को बेच दे।

समीपवर्ती चार-पाँच गाँवों की समितियाँ मिलकर एक सामूहिक समिति बनावें। प्रत्येक ग्राम-समिति उसमें अपने प्रतिनिधि भेजे। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा एक शिक्षित दाई नियुक्त करे। इन कर्मचारियों को निजी प्रैक्टिस की आज्ञा नहीं होनी चाहिए। नर्स का यह कार्य हो कि वह बड़ी समिति से संबंधित गाँवों में बच्चा जनाने का काम करे। समिति प्रत्येक सदस्य से बच्चा जनाने की फ़ीस आठ आने ले। जो लोग समिति के सदस्य न हों उनसे एक रुपया फ़ीस ली जाय। चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और प्रतिदिन दो गाँवों में जाकर वहाँ जो भी बीमार हों उन्हें देखे और दवा दे। प्रत्येक गाँव में तीसरे दिन डाक्टर जाया करे। इस बीच में समिति का मन्त्री वह दवा जो चिकित्सक बतला जाय, रोगियों को देता रहे। यदि किसी रोगी को देखने के लिए चिकित्सक को उसके घर जाना पड़े तो उस सदस्य से समिति दो आना फ़ीस ले और जो सदस्य न हों उनसे फ़ीस दुगुनी ली जाय और दवा मुफ़्त न दी जाय।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा, वरन रोगों से बचने का उपाय बतलाना भी उसका कर्तव्य होगा। सप्ताह में एक दिन प्रत्येक गाँव में चिकित्सक व्याख्यान देकर बतलावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। इसी प्रकार समिति की नर्स गाँवों के छोटे बच्चों तथा उनकी माताओं और गर्भवती स्त्रियों का निरीक्षण करे और उनको बच्चों के लालन-पालन करने तथा गर्भवती स्त्रियों को किस प्रकार रहना चाहिए, इसकी शिक्षा दे। जब कभी समीपवर्ती स्थान में मेला अथवा बाज़ार लगे तब बड़ी समिति के पदाधिकारियों को वहाँ विशेषकर स्वास्थ्य-संबंधी प्रचार करना चाहिए।

ये सामूहिक समितियाँ मिलकर तहसील-समिति का संगठन करें। तहसील-समितियों का कार्य केवल ग्राम-समितियों की देख-भाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी प्रचार करना तथा ज़िले के स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों से लिखा-पढ़ी करके जब कभी उस तहसील के किसी भाग में बीमारी फैल रही हो, उसे रुकवाने का प्रयत्न करना होगा। बड़ी समितियों तथा ग्राम-समितियों के प्रतिनिधि तहसील-समिति में जायँगे। इस प्रकार संगठन हो जाने से ज़िले के मेडिकल अफ़सर तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारियों को गाँवों में बीमारी फैलने के समय सफलतापूर्वक चेतावनी दी जा सकती है और उनसे सहायता मिल सकती है।

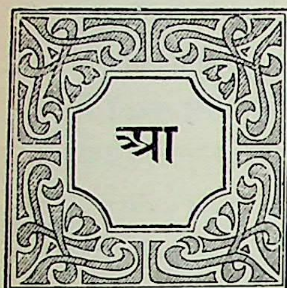
प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय स्वास्थ्य-रक्षक समिति का संगठन होना चाहिए, जो ग्रामों में कार्य करने के लिए दाइयों तथा चिकित्सकों को शिक्षा दे, आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करे तथा प्रचार-कार्य करने के लिए साहित्य प्रकाशित करे। प्रान्तीय समिति को उन दाइयों में से जो इस समय गाँवों में कार्य करती हैं, साफ़, चतुर तथा कम आयुवाली दाइयों को छाँट लेना चाहिए और उन्हें छात्र-वृत्ति देकर दाई के कार्य की वैज्ञानिक शिक्षा दिलवाकर अपने अपने गाँवों में भेज देना चाहिए। सामूहिक समितियाँ इन्हीं दाइयों को नौकर रक्खें। चिकित्सक भी ऐसे होने चाहिए जो ग्रामीण हों और गाँवों में रहना पसंद करें। आरम्भ में तो भिन्न भिन्न आयुर्वेदिक विद्यालयों से निकले हुए युवक छाँट लिये जायँ तथा उन्हें कुछ दिनों तक आवश्यक शिक्षा देकर गाँवों में भेज दे। इसके उपरान्त गाँवों में रहनेवाले अथवा जो गाँवों में रहना पसंद करें उन शिक्षित नवयुवकों को प्रान्तीय समिति एक आयुर्वेदिक विद्यालय स्थापित करके गाँवों के लिए उपयोगी चिकित्सक तैयार करे।

प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय समिति को आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता दे सकती है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड चिकित्सकों का आधा वेतन देकर आन्दोलन की सहायता कर सकते हैं। इस प्रकार यदि संगठित ढंग पर सहकारिता आन्दोलन का उपयोग स्वास्थ्य-रक्षा-आन्दोलन के लिए किया जाय तो ग्रामों में स्वास्थ्य-रक्षा की समस्या हल हो सकती है। प्रान्तीय संस्था एक पत्रिका प्रकाशित करे, ट्रैक्ट छपवावे, चित्र तथा फ़िल्म तैयार करावे तथा मैजिक लैन्टर्न के लिए स्लाइड तैयार कराकर गाँवों में भेजे।

उपन्यास

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

उपन्यास भी रेल और हवाई जहाज आदि की तरह आधुनिक सभ्यता का एक आवश्यक अङ्ग है। और इन्हीं वस्तुओं की तरह इसका भी एक मनोरञ्जक इतिहास है। जिसका इस लेख में कुँवर साहब ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से परिचय दिया है।



धुनिक दृष्टि से उपन्यास साहित्य है और साहित्य उपन्यास है। यदि उपन्यास को शब्दों की टकसाल भी कहें तो भी ठीक होगा। इसी से यह मालूम होता है कि उपन्यास के पात्रों की तरह शब्द भी अपना काम करके हटते जाते हैं और उनका स्थान दूसरे लेते जाते हैं। यहीं शब्द अपने नये रंग और रूप में दिखलाई देते हैं और यहीं उनके सामर्थ्य का पता चलता है। यहाँ यह भी पता चलता है कि कितने दिनों तक किस शब्द ने साहित्य-संसार का मनोरञ्जन किया और बाज़े बेचारे—'हसरत है उन गुंचों पर जो बे-खिले मुरझा गये'। इससे भाषा की स्थिति-स्थापकता का पता चलता है। एक अँगरेज़ विद्वान् का कहना है कि यदि गूढ़ विषय की ही पुस्तकें सदैव पढ़ी जायँ तो मस्तिष्क की नूतनता और प्रफुल्लता जाती रहती है और इस वजह से उपन्यासों का पढ़ना आवश्यक है। बहुत ऐसे भी हैं जिनकी राय उपन्यासों के ख़िलाफ़ है। एक यह बात भी है कि काल्पनिक घटनाओं का वर्णन अत्यन्त मनोहर होता है—"धूल की तरह सूखी सत्यता" आनन्ददायिनी नहीं मालूम होती है। बस, वही भेद है जो स्वकीया और परकीया में है—एक में सीधा-सादा प्रेम और दूसरे में हाव-भाव की पूर्ण छटा। क्या यह सुनना पसन्द आयेगा—'प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान' या 'सबहीं सो प्यारे प्रान प्रानन से प्यारे पति पति हूँ से प्यारे बृजपति आज आवैंगे।' अस्तु, उपन्यासों से सभी तरह के मनुष्यों की सेवा होती है। किसी को ट्रेन के सफ़र में इसकी ज़रूरत होती है, किसी को बग़ैर इसके नींद नहीं आती। किसी को बग़ैर इसके शौचगृह में जाना बेकार होता है, किसी को सिवा इसके और किसी विषय की पुस्तक हाथ में लेना नहीं पसन्द है। साहित्य का और कौन अङ्ग है जिसका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से हो। उन लोगों की संख्या बेशक कम है जो उपन्यास केवल इस उद्देश से पढ़ते हैं कि भाषा के नित्यप्रति के परिवर्तनों से परिचित रहें।

उपन्यास लिखने की प्रथा अपने देश की पुरानी नहीं है। सच तो यह है कि किसी भी प्राचीन भाषा में इसकी प्रथा नहीं थी। संस्कृत, अरबी और फ़ारसी—किसी में पुराने उपन्यास शायद नहीं मिलेंगे। प्राचीन समय के लेखक उपन्यास लिखना समय का अपव्यय समझते थे। तब शायद दिल बहलाने या समय का 'वध' करने की इतनी आवश्यकता नहीं थी और न शायद भाषा में इतनी जल्दी जल्दी परिवर्तन ही होते होंगे। ख़ैर, कुछ भी हो, उपन्यास लिखने की प्रथा उस समय नहीं थी। पुरानी बात जाने दीजिए। अभी तीस-पैंतीस बरस पहले अपने यहाँ उपन्यास पढ़ने का इतना शौक़ नहीं था।

उपन्यास का अर्थ हिन्दी-विश्वकोष में यह लिखा है—"उपकथा, सुनने और पढ़नेवाले का दिल ख़ुश करने के लिए बनाकर लिखा हुआ क़िस्सा"। उपन्यास का अनुवाद अँगरेज़ी में 'नावेल' होगा। यह शब्द १४६० से अँगरेज़ी-भाषा में प्रयुक्त हुआ है। १६०० तक इस शब्द का प्रयोग केवल कभी कभी होता था। लैटिन-भाषा में इसे 'नोवेलस' कहते हैं, जो उस भाषा के 'नोवस' शब्द से बना है, जिसका अर्थ नवीन है। १६१६ में अँगरेज़ी-भाषा में नावेल शब्द का अर्थ नवीन, तरुण, ताज़ा, विरल था। १७२७ में इसका अर्थ 'अभिनव उत्पत्ति' था। ख़बरों के अर्थों में भी इसका प्रयोग हुआ है। जिन अर्थों में नावेल (उपन्यास) का आज-कल प्रयोग होता है उसका यह अर्थ १६४३ में उसे प्राप्त हुआ। इस तरह की एक और गद्य-रचना का नाम 'फ़िक्शन' है। इसका अर्थ है—"बनाना, आविष्कार करना, कोई वस्तु जो कल्पित की गई हो; आविष्कृत वर्णन या बधान, ख़ास कर नावेल"। स्थूल दृष्टि से नावेल और फ़िक्शन में अन्तर नहीं है, और जो अन्तर है वह बहुत सूक्ष्म है। नावेल की कथा यथार्थता और कल्पना, दोनों पर या दोनों में से

किसी एक पर अवलम्बित हो सकती है, पर फ़िक्शन में कोरी कल्पना होती है। नावेल का अर्थ 'नया' है और फ़िक्शन के अर्थ 'कल्पना और बनावटी' हैं। बस, यही अन्तर दोनों में है। प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक डिकेंस ने अपना जीवन-चरित नावेल के ढंग पर लिखा था, जिसका नाम 'डेविड कापरफ़ील्ड' है। वह उपन्यास कहलाता है, फ़िक्शन नहीं। उन्होंने एक यथार्थता का नये ढंग से वर्णन किया है और जो कुछ वर्णन किया है वह कोरी कल्पना नहीं है।

अब ज़रा यह देखना है कि अँगरेज़ विद्वान् अपनी भाषा के नावेलों के विषय में क्या कहते हैं। १८७१ में उनके यहाँ के एक लेखक ने लिखा था कि इँग्लेंड को आधुनिक नावेलों का जन्मस्थान होने का उचित मान अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। अँगरेज़ी-भाषावाले उसे उपन्यास कहते हैं जिसका क़िस्सा बहुत छोटा न हो, चाहे वह इतिहास की दृष्टि से सत्य हो या न हो। अपने यहाँ भी जब 'क़िस्सा' का लाक्षणिक भाव में प्रयोग होता है तब उसके अर्थ उस वर्णन के हो जाते हैं जो लम्बा-चौड़ा हो और जिसमें यथार्थता पर पूर्ण ध्यान न दिया गया हो। यह कहावत हो गई है कि 'ये क़िस्सेवाली बातें हैं' या वह 'एक क़िस्सा है' या 'यह क़िस्सा काहे ख़त्म होगा'। अँगरेज़ी-भाषा के उपन्यासों में पहले व्यंग्य का अच्छा प्रयोग होता था। बहुत तो यह कहते हैं कि उपन्यास के द्वारा ही व्यंग्य का ठीक प्रयोग हो सकता है, परन्तु किसी उपन्यास में केवल उसी व्यंग्य का प्रयोग उचित समझा जाता था जिसका उद्देश धार्मिक या राजनैतिक सुधार हो। यदि व्यंग्य का पुराना इतिहास देखा जाय तो मालूम होगा कि सुधार ही सदैव व्यंग्य का उद्देश रहा है। उपन्यास का केवल उद्देश यह है कि लोगों का मनोरञ्जन प्राकृतिक दृश्यों के पूर्ण वर्णन से हो। १८वीं शताब्दी तक साहित्य-क्षेत्र में उपन्यास का कोई स्थान नहीं था। इसकी उन्नति इतनी शीघ्र और आश्चर्य-जनक हुई है कि १९वीं शताब्दी में साहित्य का यह प्रमुख अङ्ग समझा जाने लगा। शायद यही हाल सभी देशों का है। जहाँ उपन्यास लिखने और पढ़ने की प्रथा अभी कुछ दिन पहले नहीं थी, वहाँ भी अब वह धूम है कि किसी किताब बेचनेवाले की दूकान में सिवा उपन्यासों के और पुस्तकें बहुत कम दिखलाई देती हैं। मुझे वे दिन याद हैं जब अपनी हिन्दी में क़िस्सों की इनीगिनी चार-छः किताबें थीं—जैसे, क़िस्सा हातिमताई, सिंहासनबत्तीसी, वैतालपचीसी, गुलबकावली, इत्यादि। फिर 'छबीली भठियारी' और 'साढ़े तीन यार' ऐसी पुस्तकें बाज़ार में आईं और ख़ूब बिकीं। पहले अर्द्ध-शिक्षित घरों में किष्किन्धाकाण्ड की बड़ी क़द्र थी। उनके विश्वासानुसार केवल इसी काण्ड के पढ़ने से पुण्य होता था या यही काण्ड रामायण भर में पढ़ने के योग्य था। वर्षाऋतु में लोग देहात में आल्हा पढ़ते थे। अब उपन्यास का अखण्ड राज्य है। अब न कहीं आल्हा दिखलाई देता है और न किष्किंधाकाण्ड। उनके पास भी जो 'राम' को 'रम' लिखते हैं, दो-एक उपन्यास होंगे, जो स्वार्थ की सजीवमूर्ति हैं उन्हें भी उपन्यास पढ़ने का अवसर मिल जाता है, और उनको भी जो और किसी पुस्तक से कोसों दूर भागते हैं। मैं प्रायः अपने मित्रों से पूछा करता हूँ कि वे किस तरह उपन्यास पढ़ते हैं। कुछ का तो यह कहना है कि उन्हें केवल क़िस्से से मतलब है। उनको इससे कुछ मतलब नहीं है कि भाषा कैसी है, वार्तालाप कैसा है, पात्रों में स्वाभाविकता है या बनावट, दृश्य प्राकृतिक हैं या नहीं—वे जैसे अँगरेज़ी की एक कहावत है "प्रवाह के साथ बहते हैं।" कुछ अवश्य ऐसे हैं जिनका ध्यान किसी दृश्य के वर्णन पर तो नहीं, परन्तु भाषा, वार्तालाप और विशेषतः यौगिक वाक्यों पर रहता है, और कुछ ऐसे भी हैं जो केवल वार्तालाप ही पढ़ते हैं और क़िस्सा समझने में अनुमान से काम लेते हैं। परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है जो आद्योपान्त बिना एक शब्द छोड़े पढ़ते हैं। कुछ ऐसे हैं जो उपन्यास बन्द करते ही भूल जाते हैं कि उसमें क्या लिखा था और महीने दो महीने के बाद उसी उपन्यास को उसी चाव से पढ़ सकते हैं। उनकी संख्या अधिक है, जो एक दफ़े एक उपन्यास को पढ़कर फिर कभी उसे नहीं पढ़ पाते हैं, क्योंकि उन्हें क़िस्सा इतना याद रहता है कि प्रतीक्षा जाती रहती है, जो मनोरंजन का मुख्य कारण है। बहुतों को उपन्यास के नाम से चाहे पूरा क़िस्सा न याद आये, पर उसकी बाह्य रेखायें याद आ जाती हैं। मेरे एक मित्र उपन्यास पढ़ते पढ़ते सो गये। लैम्प सिरहाने जलता रहा। आपने उसी उपन्यास का एक भयावह दृश्य स्वप्न में

देखा। हाथ-पैर फेंके होंगे, जिससे लैम्प गिर गया। कुशल हुआ कि वह गिरकर बुझ गया, नहीं तो आप स्वयं एक भयानक प्राकृतिक दृश्य बन जाते। बस, आप दूसरे ही दिन उस उपन्यास की प्रशंसा में लम्बे-चौड़े गीत गाने लगे कि इतना अधिक उन पर प्रभाव पड़ा कि स्वप्न में भी वही दृश्य देखे थे। ऐसे भी हैं जो उपन्यासों की सफलता ऐसे प्रभावों से जाँचते हैं। स्वर्गीय बाबू देवकीनन्दन के चन्द्रकान्ता उपन्यास ने अपनी हिन्दी-भाषा की बड़ी सेवा की है। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ कि चन्द्रकान्ता ने बहुतों को हिन्दी पढ़ा दी।

पहले दफ़े ऐसे लिखे हुए क़िस्सों को वाल्टर ने नावेल कहा था। यह भी कहा जाता है कि एलेक्ज़ेंडर के सामने से ही उपन्यासों की प्रथा की नींव पड़ने लगी थी। सन् ईसवी की दो शताब्दियों के पहले अरिस्टाइड्स ने छः भागों में अपनी एक पुस्तक लिखी थी, और वहीं से आधुनिक उपन्यासों की जड़ जमती है। छठी शताब्दी में लॉगस ने जो ग्रीस देश का रहनेवाला कहा जाता है, एक भोगात्मक देहाती क़िस्सा लिखा था, जो उपन्यास कहा जा सकता है। लैटिन-भाषा में एप्यूलियस का 'गोल्डन एस' उपन्यास ग्रीस की एक पुस्तक का अनुवाद है। यदि पेटरोनियस की पुस्तक 'सटापरिकन' को अद्भुत घटना कह कर टाल न दें तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रोमवालों को यह कला अच्छी तरह मालूम थी कि रहन-सहन के तरीक़ों का उपन्यास में व्यंग्यपूर्वक कैसे वर्णन किया जा सकता है। उसके और उपन्यास इससे भी अच्छे थे, यद्यपि आदि प्रत्येक वस्तु की बेडौल होती है।

इटली में पुराने क़िस्सों का एक संग्रह है (१०० में से केवल ६६ प्राप्त हुए हैं)। वह १३ वीं शताब्दी के अन्त में लिखा गया था और तभी से समस्त योरप में उस तरह के साहित्य का प्रचार हुआ। यह पता नहीं है कि उन क़िस्सों का लेखक कौन है। सब क़िस्से एक ढंग के नहीं हैं—किसी का विषय पौराणिक है, किसी का धार्मिक, किसी में वीर कविता है और किसी में अपवादक। इटली के प्रथम उपन्यास-लेखक की पहली पुस्तक १६४० में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद ने फिलोकोपो नाम की पुस्तक लिखी गई और उसके ९ वर्षों के बाद 'डिकैमूरन'। डिकैमूरन का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। इसमें छोटे छोटे क़िस्से उपन्यास के ढंग से लिखे हुए हैं। इस पुस्तक का शिष्ट समाज में बहुत आदर नहीं है, क्योंकि भाषा की सभ्यता पर बहुत ध्यान नहीं रक्खा गया है। लड़कों के हाथ में देने योग्य यह पुस्तक नहीं है। दक्षिण-इटली का पहला उपन्यास-लेखक जिसके उपन्यासों का बहुत बड़ा प्रभाव समस्त योरप पर पड़ा था, टुमैस्को गार्डेटो था। उसने किसी का अनुकरण नहीं किया, उसने जो कुछ लिखा है वह उसी का है। उसका 'नावोलीनो' नामक उपन्यास १४७६ में नेपिल्स में प्रकाशित हुआ था। यह पाँच भागों में विभाजित है और प्रत्येक भाग में दस क़िस्से हैं। पहले शायद छोटे क़िस्से उपन्यास के ढंग पर लिखने की प्रथा थी। फिर क़िस्से लिखने की प्रथा बढ़ी और थोड़े दिनों तक कोई महत्त्वपूर्ण उपन्यास नहीं लिखा गया। १८ वीं शताब्दी के अन्त में जो उपन्यास निकले जिनमें लेखन-कला पर अच्छा ध्यान दिया गया था, उनकी बड़ी प्रशंसा है। १९वीं शताब्दी के चतुर्थ भाग में इटली में प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक पैदा हुए।

फ्रांस पर इटली के उपन्यासों का प्रभाव १४५० तक कुछ नहीं पड़ा। सबसे पहले ऐंटोवाइन डिलासेल ने बुकेशियो के ढंग पर उपन्यास लिखा। थोड़े दिनों तक उपन्यास का प्रचार फ्रांस में नहीं हो पाया, क्योंकि यह वही समय था जब जनता की रुचि छोटी कहानियों की तरफ़ थी। १५५० तक गद्य में स्वतंत्रता से क़िस्से लिखने की प्रथा नहीं थी। उस भाषा में बहुत अच्छे क़िस्से लिखनेवाले हो गये हैं, परन्तु उनके लिखे हुए क़िस्सों से उपन्यास की कला को कोई बड़ी सहायता नहीं मिली। कोई पचास साल बाद १६१० में एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसे उपन्यास लिखने की ओर प्रथम उद्योग कह सकते हैं। यद्यपि इसमें अनर्थक और असंगत बातें हैं, तथापि लेखक के कला-कौशल का पता चलता है। इसमें अच्छी तरह से लोगों के चरित्रों का चित्र खींचा गया है। उसके बाद और भी अच्छे अच्छे लेखक हुए, जिनकी रचनाओं से उपन्यास-कला को संवर्धित होने में बड़ी सहायता मिली। परन्तु ये सब तैयारियाँ भर हो रही थीं। वास्तव में प्राचीन समय का सबसे बड़ा उपन्यास-लेखक मार्गरेट डिलावर्जिनी हुआ है। उसने अपने देश में क्या, अन्य देशों में भी ख्याति प्राप्त की।

मैडमिजिल डिलाफ़ेटी योरप की प्रथम गद्य-लेखिका हुई है, जिसने जहाँ तक सम्भव था, प्रकृति से अपना पूरा वास्ता रक्खा और उस समय के सभ्य पुरुषों के तरीक़ों और वार्तालापों का पूरा नक़्शा खींचा। वाल्टेर का दूसरा रंग था। उसके उपन्यासों में व्यंग्य की अधिकता होती थी। रूसो ने भी उपन्यास लिखे हैं। उसका यह उद्देश था कि जनता के मनोरञ्जन के साथ साथ ऊँचे विचार भी उसके मस्तिष्क में पहुँच जायँ।

१८३० के मध्य से वह समय आया जब बिलकुल काल्पनिक उपन्यास लिखे जाने लगे। एलेक्ज़ेंडर ड्यूमा फ्रांस का प्रसिद्ध लेखक हुआ और उसके पात्र सब साहसी होते थे। जार्ज सैन्ड के काल्पनिक उपन्यासों की भी बड़ी प्रशंसा है। उसके बाद बाल्ज़क ने जीवन की तसवीर अपने उपन्यास में ऐसी खींची कि सजीवता आ गई। उसका यह उद्देश था कि उपन्यास में मानव-समाज का पक्षपात-रहित चित्र होना चाहिए, और इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता मिली। गुस्टावा फ़्लैवर्ट भी उस देश का बड़ा उपन्यास-लेखक हुआ है और उसके उपन्यास मैडम ववारी का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। उपन्यास अच्छा है। १८७१ में ज़ोला ने ख्याति प्राप्त की और १८८० में मुपासाँ ने। मुपासाँ के क़रीब क़रीब सब उपन्यासों का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। इसकी रचनाओं का अनुवाद हो जाने से अँगरेज़ी-साहित्य का बड़ा लाभ हुआ है।

यदि लेटिन के क़िस्सों के अनुवाद पर ध्यान न दिया जाय तो इँग्लेंड में उपन्यास लिखने की प्रथा का प्रारम्भ १४७० से होता है। पहला पद्य-उपन्यास-लेखक उस देश का सर टामस मेलोर हुआ है। उसका पहला उपन्यास 'लि मार्टीडि आर्थर' समाप्त होने के १५ वर्ष बाद १४८५ में प्रकाशित हुआ था। उसका भी लिखने का ढंग अपना था। उसकी बड़ी प्रशंसा यह है कि रूपकमय लेखन-कला से उसने अपना सरोकार नहीं रक्खा और एक सजीव शैली का आविष्कार किया, जो मनोभावों को प्रकट करने में समर्थ थी। परन्तु इन सब गुणों के होते हुए भी उसमें आधुनिक उपन्यासों का ढाँचा नहीं था। उसके बाद इस ओर बड़ा उद्योग हुआ और प्रत्येक लेखक ने इस कला के विकास में बड़ी सहायता की। किसी ने पुराना ढंग रक्खा और किसी ने बिलकुल नये ढंग से काम लिया। डेनियल डिफ़ो को इस ओर बड़ी सफलता प्राप्त हुई—विशेषतः उसके राबिंसन क्रूसो ने उसका नाम अमर कर दिया है, यद्यपि उसका क़िस्सा वर्णनात्मक है। १७६६ में आलिवर गोल्डस्मिथ (प्रसिद्ध कविता 'डिज़र्टेड विलेज' के रचयिता) ने एक नावेल लिखा। इसका नाम है 'दि विकार आफ़ दि वेकफ़ील्ड'। इसकी गणना अँगरेज़ी के उच्च कोटि के साहित्य में है। 'डिज़र्टेड विलेज' और इस उपन्यास ने गोल्डस्मिथ का नाम साहित्य-संसार में अमर कर दिया। जेन आस्टिन का उपन्यास 'सेंस एण्ड सेंस्वेलिटी' १८११ में प्रकाशित हुआ था और सर वाल्टर स्काट का 'वेवरली' १८१४ में। चार्ल्स डिकेंस ने सब पुराने रास्ते छोड़ दिये और अपना रास्ता अलग निकाला और उसी पर चलकर जो सफलता उसे प्राप्त हुई उसका स्वप्न बहुतों ने देखा होगा, पर उसका सम्पादन बहुत थोड़ों ने कर पाया होगा। स्थानाभाव के कारण बहुत बड़े उपन्यास-लेखकों के नाम छूट गये हैं, जैसे थैकरे इत्यादि। उपन्यासों के इतिहास पर प्रोफ़ेसर जार्ज सेंटसबरी ने बड़ी योग्यता से एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम 'दि इँग्लिश नावेल्स' है। मुझे इस पुस्तक से भी इस लेख के लिखने में बड़ी सहायता मिली है। पुस्तक अध्ययन करने के योग्य है।

अमरीका का और देशों की अपेक्षा साहित्य नया है। राज्य-परिवर्तन के पहले अमरीका में नावेल नहीं लिखे जाते थे, क्योंकि साहित्य की इस उपशाखा की उस समय वहाँ माँग नहीं थी। यह नितान्त स्वाभाविक है कि जिसका साथ ज़्यादा होगा, बहुत कुछ उसी का ढंग आ जायगा। पहले अमरीका के उपन्यासों का ढंग वही था जो अँगरेज़ी उपन्यासों का। वहाँ के लिखनेवाले ह्यूम, सुइफ़ और फ़ील्डिंग के पथ के पथिक थे। १८०० से वहाँ उपन्यास लिखने की प्रथा चली, और किसी किसी ने डेनियल डिफ़ो का अनुकरण किया। वहाँ के लेखकों में जेम्स फ़ेनीमोर कूपर का बड़ा नाम है। शायद उसमें ईश्वर-प्रदत्त शक्ति थी। अमरीका के उपन्यासों में अभी तक यथार्थता के भावों की मात्रा अधिक नहीं है। अब वहाँ भी नये ढंग के उपन्यास लिखे जा रहे हैं। पुरानी कमी अब पूरी हो रही है।

स्पेन में १५वीं शताब्दी से गद्य में वर्णनात्मक लेख

लिखने प्रारम्भ हुए। पहले वीर पुरुषों का चरित उन लेखों का विषय होता था। वहाँ भी शनैः शनैः उपन्यास की लेखन-कला का विकास हुआ और वहाँ की जनता की रुचि के अनुसार उपन्यास लिखे जाने लगे। जर्मनी में उपन्यास लिखना देर में प्रारम्भ हुआ। वहाँ के प्रथम उपन्यास-लेखक का समय १६२५ कहा जाता है। वहाँ के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक का नाम गेटे है। वह सब कुछ लिख सकता था और जो कुछ लिखा वह उस देश के साहित्य का प्रमुख अंग हो गया। पहले जर्मनी के उपन्यास-लेखक कवि कहला सकते थे, क्योंकि वे उसी ढंग पर गद्य भी लिखते थे। १९वीं शताब्दी में वहाँ कोई बड़ा उपन्यास-लेखक नहीं हुआ है।

योरप के मध्य और पूर्वीय देशों में केवल रूस में उपन्यास-लेखकों ने पहले से ही अपना नया रास्ता निकाला था, परन्तु १९वीं शताब्दी में प्रायः वहाँ के भी लेखक सर वाल्टर स्काट का ही अनुकरण करते थे। यह हाल १८३४ तक रहा जब तक गोगोल ने पुराने तरीक़ों का पूर्ण बहिष्कार नहीं कर दिया। तब से वहाँ के उपन्यासों में यथार्थता होने लगी, परन्तु कल्पना का अभाव रहा है। टाल्सटाय स्वयं एक श्रेष्ठ उपन्यास-लेखक थे और उनके समय से जो उपन्यास लिखे जाने लगे वे योरप के १९ वीं शताब्दी के अच्छे उपन्यासों में समझे जाते हैं।

चीन में १३ वीं शताब्दी से उपन्यासों का पता चलता है, परन्तु यह पता नहीं चलता कि यह प्रथा वहाँ कहाँ से पहुँची थी। उस समय के जो उपन्यास मिलते हैं उनमें स्वभावतः पुरानापन है। उनमें लड़ाइयों और मुसाफ़िरों के साहस का वर्णन है। १७ वीं शताब्दी में जो उपन्यास वहाँ लिखा गया था वह वास्तव में उपन्यास था। यह भी पता नहीं चलता है कि यह किसका लिखा हुआ है।

जापान में गद्य लिखने की प्रथा का पता १० वीं शताब्दी से चलता है, परन्तु सबसे प्रथम उपन्यास लिखनेवाली उस देश की एक स्त्री हुई है। उसका नाम मुरासकी नोशिकीबू है। उसने अपना उपन्यास १००० में समाप्त किया था। संसार का यही प्रथम उपन्यास कहलाता है। यद्यपि उसके बाद उपन्यास लिखने की प्रथा उस देश में वैसी प्रचलित नहीं हुई जैसा कि और देशों में, तथापि अब वहाँ भी अच्छे लिखनेवाले हैं।

नवीन रहस्य!

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

नहीं मिला मेरा प्रियतम कवि!
नभ के दिव्य सितारों में।
देखा नहीं कभी उस मुख को,
मुक्ता के इन हारों में॥
खोजा हरित, सौम्य उपवन की,
सुन्दर, पुलकित कलियों में।
ऊषा के शीतल पत्तों पर,
तुहिन-विन्दु की "फलियों" में॥
तप्त कपोलों पर आँसू की,
बूँदें भी देखीं गिरती।
बुद् बुद् की मंजुल अवली को,
निर्झर से झरझर झरती॥

श्रावण की वर्षा का गौरव,
भली भाँति मैंने गाया।
किन्तु कहीं भी उस स्वरूप का,
दर्शन, ज्ञान नहीं पाया॥
गया अन्त में एक खेत पर,
जहाँ कृषक करता था श्रम।
ज्यों ही देखे बिन्दु भाल पर,
दूर हुआ मेरा सब भ्रम॥
स्वेद-कणों में प्रियतम की कवि!
मुझको सुखमय झलक मिली।
इस रहस्य की प्रखर ज्योति से,
मेरी जीवन-कली खिली॥

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण और क़ानून

लेखक, श्रीयुत दत्तात्रेय वाबले, एम० ए०, एल-एल० बी०

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण रोकने के लिए क़ानून से क्या मदद मिल सकती है। यह इस लेख में लेखक महोदय ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से दिखाया है और संक्षेप में कुछ ऐसे क़ानूनों का भी परिचय दिया है।

अपने गत लेख में हमने गुंडों-द्वारा भगाई जानेवाली हिन्दू-स्त्रियों की विषम समस्या का विश्लेषण करते हुए यह बताने की चेष्टा की थी कि हिन्दू-समाज की अनेक कुप्रथाओं व अंध-विश्वासों तथा हमारी निर्बलताओं व आत्म-सम्मान की कमी आदि स्वयं अपने ही अनेक दोष हमारे इस जातीय कलंक के मुख्य कारण हैं। जब तक हम इनका निराकरण नहीं करते तब तक हम अपने जातीय सम्मान की पूर्णतः रक्षा नहीं कर सकेंगे। किन्तु हिन्दू-समाज के पुनःसंगठन होने तक इस प्रकार की लज्जा-जनक घटनाओं के निराकरण करने के लिए अन्य सामयिक उपायों की उपेक्षा करना बुद्धिमत्ता नहीं है। इस प्रकार का एक महत्त्वपूर्ण उपाय क़ानून की सहायता लेना है। वर्त्तमान लेख-द्वारा हम सर्वसाधारण का ध्यान भारत के भिन्न भिन्न क़ानूनों में पाये जानेवाले उन मुख्य साधनों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं जिनके द्वारा इस प्रकार की दुःखद घटनाओं को बहुत कुछ कम किया जा सकता है। इनका अवलंबन करके जहाँ पुलिस व न्यायालयों के द्वारा गुंडों को उचित दंड दिलाया जा सकता है, वहाँ उनके चंगुल में फँसी हुई अभागिनी स्त्रियों की भी रक्षा की जा सकती है। स्वयं स्त्रियों को भी अपने सम्मान की रक्षा के लिए क़ानून में अनेक अधिकार प्राप्त हैं, जिनसे अनभिज्ञ होने के कारण हमारी असहाय देवियाँ अन्याय व अत्याचार का शिकार बन जाती हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि अपनी मूर्खता-पूर्ण व आत्मघातक मनोवृत्ति के कारण हिन्दू ऐसे अवसरों पर क़ानून व सरकार की सहायता लेना अपनी बेइज़्ज़ती व बदनामी समझते हैं। रोगी होने में उन्हें लज्जा का अनुभव नहीं होता, किन्तु उसका उपचार करने में उन्हें अपमान का अनुभव होता है। अपनी बहन-बेटियों का अपहरण जिस कायरता व नपुंसकता का द्योतक है उसका अनुभव तक करने की जिनमें क्षमता न हो उनका उसके निराकरण करने में लज्जा का अनुभव करना कितना उपहासास्पद है यह कहने की आवश्यकता नहीं है। हमारी ये पीड़ित बहनें विधर्मियों व विजातियों के चंगुल में फँसकर न केवल हमारी बेइज़्ज़ती व आत्मगौरव-विहीनता को चिरस्थायी ही करती हैं, अपितु गुंडे-बदमाशों को हमारी ओर से निर्भय बनाकर, अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू-स्त्रियों को भगाने व अपमानित करने के लिए उत्साहित होने का कारण बनती हैं।

किन्तु उपर्युक्त दूषित मनोवृत्ति के होने पर भी हमारा यह विचार है कि वास्तविक क़ानूनी उपायों से अनभिज्ञ होना भी हमारे सामाजिक कार्यकर्ताओं, पीड़ित स्त्रियों व उनके सम्बन्धियों की किंकर्तव्य-विमूढ़ता का एक कारण है। इन उपायों को जानने से एक और लाभ यह होगा कि हम इस विषयक वर्त्तमान क़ानूनों को अधिक उपयोगी बनाने तथा उनमें आवश्यक वृद्धि करने के लिए प्रेरणा व आन्दोलन कर सकेंगे। पूने की हिन्दू-महासभा के स्वागताध्यक्ष श्रीयुत केलकर ने अपने भाषण में धर्मपरिवर्तन के सम्बन्ध में इसी प्रकार के क़ानूनी संरक्षण की आवश्यकता का निर्देश किया है।

हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण व अपमानित होने की समस्या से सम्बन्ध रखनेवाले उपयोगी विधानों मुख्यतः तीन क़ानूनों में प्राप्त होते हैं, अर्थात् भारतीय दंड-विधान, ज़ाब्ता फ़ौजदारी व गार्जियन एंड वार्ड्स एक्ट। इन तीनों पर हम क्रमशः उनकी उपयोगी धाराओं-सहित विचार करेंगे।

भारतीय दंड-विधान—भारतीय दंड-विधान में जो अधिकार जनता को प्राप्त हैं उन्हें हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम वे जिनका उपयोग करके गुंडों-द्वारा अपमानित व पीड़ित की जानेवाली देवियाँ अपनी

रक्षा कर सकती हैं। दूसरे वे जिनका उपयोग करके सामाजिक कार्यकर्त्ता, सम्बन्धी व अभिभावक गुंडों को उचित दंड दिलाकर इस प्रकार की स्त्रियों को वापिस पा सकते हैं व उनकी रक्षा कर सकते हैं।

प्रत्येक सभ्य देश की क़ानून-व्यवस्था का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि आत्मरक्षा के लिए किया गया कोई भी अपराध दंडनीय नहीं है। हमारे देश में भी दंड-विधान की धारा '९६' के द्वारा इस सर्वमान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। आत्म-रक्षा का अधिकार केवल शरीर व सम्पत्ति तक ही सीमित नहीं है। अपितु उसमें स्त्री-जाति के सम्मान व सतीत्व-रक्षा का पवित्र अधिकार भी सम्मिलित है। अपने इस अधिकार की रक्षा में यदि उन्हें किसी आततायी का प्राणान्त करने की भी आवश्यकता पड़े तो क़ानून इस प्रकार की हत्या के लिए उन्हें कोई दंड नहीं देता। भारतीय दंड-विधान (१) की धारा १०० में स्पष्ट कहा गया है कि यदि कोई (क) व्यभिचार करने की इच्छा से, (ख) अस्वाभाविक वासना की पूर्ति के लिए अथवा (ग) ज़बर्दस्ती या बहकाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की इच्छा से किसी स्त्री या लड़की पर आक्रमण करे तो ऐसी अवस्था में यदि अपने रक्षार्थ आक्रमणकारी को जान से भी मारना अनिवार्य हो तो ऐसा करना क्षन्तव्य है। इसी प्रकार हत्या-सम्बन्धी धारा ३०० में भी उपर्युक्त प्रकार की हत्या 'हत्या' नहीं मानी गई। यदि भारतीय स्त्रियों में पर्याप्त साहस व उचित आत्म-सम्मान हो तो क़ानून इससे अधिक उन्हें क्या अधिकार दे सकता है। आर्य-ललनाओं ने अपने सम्मान व सतीत्व की रक्षा का जो उच्च आदर्श रक्खा है भारतीय इतिहास का प्रत्येक पाठक भले प्रकार जानता है। यदि हमारी बहनें अपने पास उपयुक्त साधन रखकर आक्रमणकारियों का मुक़ाबला करने लगें तो उन्हें अपमानित करने का दुःसाहस कौन कर सकता है? इस प्रकार के गुंडों में स्वभावतः ही नैतिक साहस का अभाव होता है, अतः यदि हमारी रमणियाँ ज़रा भी साहस से काम लेने लगें तो उनके तेज के सम्मुख ये कापुरुष कभी ठहर नहीं सकेंगे, उनके प्राणान्त की आवश्यकता का प्रश्न ही दूर है।

भारतीय दंड-विधान की दूसरे प्रकार की धाराओं से इन अभागी स्त्रियों के अभिभावक आदि लाभ उठा सकते हैं। बहुधा लोग यह समझते हैं कि स्वेच्छा से ले जाई गई स्त्रियों के लिए कुछ नहीं किया जा सकता, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। प्रथम तो ऐसी स्त्रियों की इच्छा बहुधा प्रभावित व क्षणिक होती है, दूसरे उनकी वास्तविक इच्छा क्या है, यह हम तब तक नहीं जान पाते जब तक उन्हें स्वतन्त्रता-पूर्वक उसे प्रकाशित करने का अवसर प्राप्त न हो। इस विषय में पुलिस आदि पर विश्वास करना कठिन है, नाबालिग़ अर्थात् १६ और यहाँ तक कि १८ वर्ष की आयु तक इच्छा का प्रश्न ही नहीं है। और बहुधा यही उमर होती है जब लड़कियाँ भगाई जाती हैं, अतः अदालत की सहायता से उनके सम्बन्धी उन्हें ज़बर्दस्ती वापिस ला सकते हैं। १६ या १८ वर्ष से अधिक होने पर इच्छा का प्रश्न विचारणीय है। और यदि यह इच्छा 'स्वतन्त्र' व अन्तिम हो तो उसमें हमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे अवसरों पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में बाधा डालने का प्रयत्न अनुचित है। किन्तु अनुभव यह बताता है कि इस प्रकार की घटनायें सौ में चार-पाँच से अधिक नहीं होतीं। अन्य अवसरों पर ऐसी घटनायें स्वेच्छा से नहीं होतीं, प्रयत्न करने पर इस प्रकार की बहनें पतन के मार्ग से बचाई जा सकती हैं। और कम-से-कम जिन दुष्टों के कारण उनका सम्मान व धर्म संकट में पड़ा उन्हें तो उचित दंड अवश्य ही दिलाया जा सकता है। जिसका नैतिक प्रभाव अन्य लोगों पर भी पड़े बिना न रहेगा। इस विषय में दंड-विधान की निम्नलिखित धाराओं से सहायता ली जा सकती है—

(१) सार्वजनिक स्थानों में स्त्रियों के सम्मुख, गंदे व अश्लील शब्दों अथवा व्यवहारों के द्वारा उन्हें अपमानित करने का यत्न करनेवालों को धारा २९४ के अनुसार तीन मास तक का कारावास व जुर्माना हो सकता है। इतना ही नहीं धारा ५०९ के अनुसार स्त्री-सुलभ भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए कहा गया शब्द आवाज़कशी, इशारा और किसी प्रकार का प्रदर्शन तक दंडनीय है। इसी प्रकार स्त्रियों के एकान्त की अवहेलना करना भी जुर्म है।

(२) बल का प्रयोग करके अथवा बल-प्रयोग की धमकी देकर किसी स्त्री की लज्जा या भावना पर आघात करने की इच्छा से उसे स्पर्श आदि करने के लिए

धारा ३५४ के अनुसार दो वर्ष तक की सज़ा हो सकती है।

(३) यदि कोई व्यक्ति किसी देवी को जिसकी आयु १६ वर्ष से कम हो अथवा जिसका दिमाग़ ठीक न हो वह चाहे किसी भी उम्र की क्यों न हो, बिना उसके सम्बन्धी या अभिभावक की आज्ञा से कहीं ले जाय अथवा किसी स्त्री को चाहे वह किसी उम्र की क्यों न हो बिना उसकी इच्छा के ब्रिटिश भारत से बाहर (रियासतों आदि में भी) ले जाय तो उसे दंड-विधान की ३६३ धारा के अनुसार सात वर्ष तक की सज़ा हो सकती है।

(४) इसी प्रकार किसी स्त्री को चाहे वह बालिग़ हो या नाबालिग़, इस उद्देश से ले जाया जाय कि उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी से विवाह करने या अनुचित सम्बन्ध रखने के लिए विवश किया जाय या विवश होना पड़े तो ऐसे व्यक्ति के लिए ३६६ धारा में १० वर्ष तक के कारागार व जुर्माने का विधान है।

(५) यदि कोई व्यक्ति स्वयं या अन्य किसी के साथ अनुचित सम्बन्ध रखने के उद्देश से १८ वर्ष से कम आयु की किसी लड़की को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने या अन्य कोई कार्य करने के लिए फुसलावे, चाहे वह किसी भी उपाय से क्यों न हो तो उसे दंड-विधान की धारा ३६६ ए० के अनुसार १० वर्ष की सज़ा व जुर्माना हो सकता है।

(६) सन् १९१० में स्त्रियों के बढ़ते हुए व्यापार को बंद करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन हुआ था। उसकी पूर्ति के लिए हमारे दंड-विधान में भी धारा ३६६ बी का समावेश किया गया है, जिसके अनुसार व्यभिचार आदि अनैतिक उद्देश से अन्य देशों व रियासतों से २१ वर्ष से न्यून आयुवाली स्त्री को लानेवाले के लिए १० वर्ष के लिए जेल हो सकती है।

(७) धारा ३६७ में किसी स्त्री को दासत्व या अनुचित उद्देश से भगानेवाले के लिए भी १० वर्ष की सज़ा का विधान है।

(८) इसी प्रकार १८ वर्ष से कम उम्र की लड़की को व्यभिचार, वेश्यावृत्ति आदि के लिए बेचने, किराये आदि पर देने पर भी ३७२ धारा के अनुसार दस वर्ष की क़ैद हो सकती है। और जो व्यक्ति इस प्रकार किसी लड़की को ख़रीदे या ले उसे भी धारा ३७७ के अनुसार इसी दंड का भागी होना होगा।

भारतीय दंड-विधान में विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए भी इस प्रकार के अपराधों के विरुद्ध अनेक अधिकार प्राप्त हैं। जो 'हिन्दू-ला' सरकार-द्वारा स्वीकृत व हिन्दुओं के लिए माननीय है, उसके अनुसार विवाह एक संस्कार है, जो यावत् जीवन नहीं टूट सकता। हमारे यहाँ तलाक़ की प्रथा न होने के कारण हिन्दू स्त्री या हिन्दू पति किसी प्रकार भी एक-दूसरे से अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकता। ईसाई, मुसलमान आदि होकर हिन्दू-धर्म का त्याग करने पर भी हिन्दू स्त्री इस बन्धन से छुटकारा नहीं पा सकती। कुछ मतभेद होने पर भी हिन्दू-विवाह का चिरस्थायी होना सर्वसम्मत है, अतः विवाहित सधवा हिन्दू स्त्री का अन्य किसी के साथ विवाह करना, दंड-विधान की धारा ४९४ के अनुसार दंडनीय है और जो व्यक्ति धोखा आदि नाजायज़ तरीक़े से ऐसा विवाह करे उसे भी धारा ४९६ दंडनीय समझती है।

(९) उपर्युक्त प्रकार से विवाह न करने पर भी जो किसी विवाहित के साथ बिना उसके पति की मर्ज़ी के अनुचित सम्बन्ध रक्खे उसके लिए धारा ४९७ में ५ वर्ष की सज़ा का विधान है।

(१०) स्त्री-अपहरण के सम्बन्ध में सबसे अधिक उपयोगी व प्रसिद्ध धारा ४९८ है। इसके द्वारा उन गुण्डों को पर्याप्त दंड दिलाया जा सकता है जो विवाहित स्त्रियों को भगा कर या बहका कर ले जाते हैं अथवा जो उन्हें छुपा या बंद करके रखते हैं। उनसे अनुचित सम्बन्ध की इच्छा से उपर्युक्त प्रकार के किसी भी कार्य को करने पर दो वर्ष तक की सज़ा हो सकती है। इस धारा में स्त्री की उम्र व यहाँ तक कि उसकी इच्छा से भी कोई अन्तर नहीं होता।

अपराधी को दंड दिलाने के उद्देश से नियोजित भारतीय दंड-विधान की उपर्युक्त धाराओं के अतिरिक्त अपहृत स्त्रियों व लड़कियों को वापस पाने के लिए ज़ाब्ता फ़ौजदारी की निम्नांकित धाराओं से सहायता ली जा सकती है—

(११) दंड-प्रणाली की धारा १०० के अनुसार किसी भी फ़र्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट को यह अधिकार है कि यदि उसे

यह मालूम हो या बताया जाय कि किसी व्यक्ति को चाहे पुरुष हो या स्त्री, कहीं बंद करके रक्खा गया है या अनुचित तौर पर छिपाया गया है तो वह उसे ढूँढ़ कर अपने सम्मुख उपस्थित करने के लिए तलाशी या 'सर्च वारंट' निकाल कर उसे स्वतंत्र कर दे अथवा उसके सम्बन्धियों आदि के सिपुर्द कर दे।

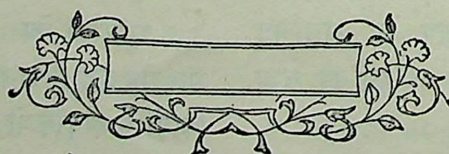
(१२) धारा ५५२ में एक और उपयोगी साधन है। इस धारा के अन्तर्गत डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट आदि अनुचित कार्य के लिए भगाई गई या बंद की गई किसी स्त्री अथवा १६ वर्ष से कम उम्र की लड़की को स्वतन्त्र करने या उसके पति, माता-पिता, या अन्य अभिभावकों के सिपुर्द करने की आज्ञा दे सकता है।

उपर्युक्त दोनों धाराओं को कार्यान्वित करने के लिए अदालत पुलिस आदि की सहायता लेकर आवश्यक हो तो बल प्रयोग भी कर सकती है।

(१३) बहुधा यह देखा जाता है कि हिन्दू पति बहुविवाह, मनोमालिन्य, आदि के कारण अपनी स्त्रियों की अवहेलना करते हैं व उन्हें घर से निकाल कर या घर में भी उनकी आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हैं, और परिणाम-स्वरूप अपने विवाह आदि के लिए उन्हें दुर्जनों के चंगुल में फँसना पड़ता है। ऐसी परित्यक्ता स्त्रियों के लिए ज़ाब्ता फ़ौजदारी की ४८८ धारा अत्यंत उपयोगी है। इसके द्वारा पति को स्त्री के भरण-पोषण के लिए १००) मासिक तक देने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

दंड-विधान व दंड-प्रणाली के अतिरिक्त गार्जियन एंड वार्ड्स एक्ट की धारा २५ भी इस विषय में महत्त्वपूर्ण है। अपहृत हिन्दू-स्त्रियों के सम्बन्ध में बालिग़ या नाबालिग़ का प्रश्न बहुधा उठता है। ऐसे अवसरों पर यदि म्युनिसिपल दफ़्तर आदि में जन्म-तिथि न मिले या अन्य कोई पक्का सबूत न हो तो बड़ी कठिनता होती है। दुर्भाग्य से बहुधा माता-पिता की उपेक्षा से ठीक ठीक आयु के गवाह देना कठिन हो जाता है। इस विषय में डाक्टरों के प्रमाण-पत्र उपयोगी हो सकते हैं, किन्तु उनका आश्रय लेकर कभी कभी अपराधी भी बच जाते हैं। डाक्टर का प्रमाण-पत्र अनुमान-मात्र है, अतः केवल उसी से सन्तुष्ट होकर हमें अदालत में गये बिना निराश न होना चाहिए। दंड-विधान व दंड-प्रणाली के साधनों का यथोचित उपयोग करने के लिए भी आयु का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। उपर्युक्त धारा २५ के अनुसार १८ वर्ष तक की आयु तक लड़की या लड़के अपने माता-पिता व अन्य सम्बन्धियों के पास रहने के लिए विवश किये जा सकते हैं अथवा किसी सार्वजनिक संस्था में रक्खे जा सकते हैं।

अपहरण की गई हिन्दू-स्त्रियों की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में सहायता करने तथा अपराधियों को दंड दिलवाकर इस लज्जाजनक प्रवृत्ति को रोकने के लिए ऊपर जिन क़ानूनी उपायों का संक्षेप में वर्णन किया गया है वे केवल रुग्ण हो जाने पर ओषधि व उपचार करने के समान है, किन्तु बुद्धिमान् व दूरदर्शी लोगों का यह काम कि वे ऐसा प्रयत्न करें कि दुबारा वह रोग न होने पावे, तभी हो सकता है जब हम रोग के मूल कारणों को दूर करें। हिन्दू-स्त्री-अपहरण की समस्या का उचित प्रतीकार तभी हो सकता है जब हम जर्जर हिन्दू-समाज में से उन सब अन्धविश्वासों, मूर्खताओं व अत्याचार-मूलक सामाजिक प्रथाओं को निर्मूल कर दें जिनके कारण ऐसी घटनायें सम्भव होती हैं। पुलिस व अदालत की सहायता पर कायरों के समान निर्भर रहने से हम कभी अपनी रक्षा न कर सकेंगे। संसार में निर्बलों की सहायता सरकार तो क्या, ईश्वर भी नहीं करता।



अज्ञात दिशा की ओर

मिसेज़ घोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौन्दर्य्य उनकी एकमात्र पुत्री रेखा में उमड़ता आ रहा था। अपने को हताशगञ्ज का ज़मींदार कहकर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने अपने मित्र निर्मल 'चौधरी' का इनसे परिचय कराया और उसके सम्बन्ध में बतलाया कि ये कोचभूम के प्रिंस हैं। इधर मिसेज़ घोस तथा निर्मल परस्पर एक दूसरे की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गये, किन्तु अहीन्द्र की आसक्ति रेखा पर ही अधिक थी। एक बार वे लोग कलकत्ता छोड़कर देहात में गंगा जी के तट पर एक बँगले में कुछ समय बिताने के लिए गये। वहाँ भ्रमण के समय एकान्त पाकर अहीन्द्र ने रेखा से प्रणय निवेदन किया, किन्तु रेखा ने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। बाद को रेखा के जी में आया कि अहीन्द्र यदि इस प्रकार मेरे प्रेम में अधीर हो रहा है तो मैं उसके साथ विवाह करके क्यों न उसके जीवन को सुखी बनाऊँ। परन्तु अहीन्द्र उसके साथ विवाह करने पर सहमत नहीं था, वह उसके साथ गुप्त रूप से ही प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहता था। इससे रेखा को बड़ी विरक्ति हुई।

अनुवादक—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

सातवाँ परिच्छेद

बाहर का विश्व



पहर भर रेखा अशान्ति का ही अनुभव करती रही। वह कभी एक किताब खोलती और उसके पन्ने उलटने लगती, बाद को उसे मूँद कर रख देती, और दूसरी किताब उठाती। किन्तु उसमें भी उसका जी न लगता, उलट-पलट कर वह उसे भी रख देती। उसका मन किसी प्रकार भी स्थिर न हो पाता। चारों दिशाओं से कर्मचक्र का एक घरघर शब्द, विभिन्न प्रकार का बड़े ज़ोर का कोलाहल हवा के साथ मिल कर बहता हुआ आ रहा था। इधर रेखा को ऐसा लगता था कि चारों ओर मानो प्रकृति के प्राणों का स्पन्दन बन्द हो गया है, पेड़-पौधे भी मानो आज सब जमकर पत्थर हो उठे हैं।

उसके हृदय को मानों कोई ज़ोर से दबा कर पकड़े हुए था। बँगले से मिला हुआ एक छोटा-सा बग़ीचा था। रेखा उठ कर उस बग़ीचे में गई। तीन-चार बार बग़ीचे में घूम-फिरकर वह फाटक के पास आई और वहीं खड़ी होगई। सामने एक रास्ता था। उसके दोनों बग़ल छाया के लिए वृक्ष लगे हुए थे। वे वृक्ष दोनों ही ओर से शाखायें फैला कर सारे रास्ते को ढँके हुए थे। रास्ते के एक किनारे पर फूस की एक झोपड़ी थी। उसके आगे बाँस का कोठ था। उस कोठ के पास एक छोटा-सा पानी का गड्ढा था। चहारदीवारी से घिरे बग़ीचे का बाहरी प्रदेश ऐसा मनोमुग्धकारी वेश धारण करके उसे पुकार रहा था, कि वह मुग्ध होकर आवेश में आगई और दबे पाँव से चल चल कर वह रास्ते में आई। बाद को वह सीधे रास्ते से चलने लगी। मस्तक के ऊपर वृक्षों की डालियों पर चिड़ियाँ महोत्सव मना रही थीं। उनकी विचित्र रागिणी से इस तरह की पुलक झर झर कर गिर रही थी कि उसके स्पर्श से रेखा का तप्त हृदय शीतल हो उठा। रास्ते से चल कर ज़रा दूर आगे बढ़ने के बाद उसने देखा कि उस रास्ते से एक पतली-सी गली निकल कर एक ओर को चली गई है। वह गली क्या थी, मानो बड़े रास्ते का एक हाथ था और रक्त मांस के सूख जाने के कारण वह यों ही शीर्ण भाव से फैला हुआ था। रेखा ने बड़े रास्ते को छोड़ दिया। वह पूर्ववत् उद्विग्न भाव से उस पगडंडी से ही होकर चली।

पगडंडी के दोनों बग़ल पुराने मकानों के खंडहर थे, बग़ीचे थे, झाड़ियाँ थीं, जंगल थे, पानी के गड्ढे थे और तालाब थे। ये सब बहुत ही बेतर्तीब से इधर-उधर बिखरे थे, फिर भी उनका वैचित्र्य देखकर रेखा का हृदय शीतल हो गया। चलते चलते कभी वह ठमक कर खड़ी हो जाती और लुभाये हुए नेत्रों की दृष्टि उठाकर चारों ओर देख लेती। बाद को मन्थर-गति से फिर चलना आरम्भ करती।

इसी प्रकार चलते चलते एक स्थान पर जाकर एकाएक रेखा की दृष्टि और गति रुक-सी गई।

पगडंडी के बग़ल नाकदमन के बेड़े से घिरे हुए एक ग्राम के पास एक छोटा सा पोखरा था। उसी पोखरे के पास बैठी हुई एक देहाती स्त्री बर्तन मल रही था। रेखा खड़ी होकर उसे देखने लगी। उस छोटे काम में लगी होने पर भी उस तरुणी के मुख और नेत्रों में ऐसे आनन्द की दीप्ति प्रज्वलित हो रही थी कि देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता था। रेखा बड़ी देर तक खड़ी रही तब कहीं उसकी ओर तरुणी की दृष्टि गई, चारों आँखों का मिलन हुआ। माथे पर का घूँघट और भी खींचकर तरुणी पहले की ही तरह बर्तन मलती रही। रेखा के मन में आया कि वह जाकर उससे बातचीत करे। लेकिन वह जाय किस बहाने से उसके पास!......

मन अधीर हो उठा। रेखा पोखरे के पास गई। वह उस तरुणी के बिलकुल समीप जाकर खड़ी होगई। धूप के मारे जलती हुई हवा के कारण पोखरे से एक तरह की बहुत तेज़ कीचड़ की गन्ध आ रही थी, किन्तु उस ओर तरुणी का ध्यान तक न था। रेखा चुपचाप खड़ी रही। तरुणी बर्तन धोने का काम समाप्त कर चुकी। तब वह धुले हुए बर्तन लेकर घर की ओर चली। अब रेखा से न रहा गया। उसने अपने आप ही उसके साथ बातचीत शुरू की। उसने तरुणी से कहा—क्या तुम मुझसे मेल करोगी बहन? तुमसे बातचीत करने के लिए ही मैं यहाँ आई हूँ।......

तरुणी अवाक् हो गई। चकित भाव से चारों ओर ताक कर उसने मस्तक का घूँघट और भी खींच लिया। बर्तन का बोझा लिये हुए स्थिर होकर खड़ी भर रही। संसार भर की लज्जा उस समय उसे घेरे हुए थी, परन्तु उस लज्जा के बीच उसकी स्वच्छन्द भाव-भंगी कहीं ज़रा भी दबने नहीं पाई।

बर्तनों का बोझ यों ही हाथ में लिये उसे निष्पन्द भाव से खड़ी देखकर रेखा ने हँस कर कहा—इसी तरह खड़ी रहोगी? मुझे देखकर क्यों लज्जित हो रही हो? मैं तो पुरुष नहीं हूँ भाई!...चलो, घर चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

तरुणी ने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप आगे की ओर चल पड़ी। रेखा ने भी उसका अनुसरण किया।

एक ख़ूब लिपे पुते और झकझकाते हुए आँगन में जाकर तरुणी खड़ी हो गई। आँगन के चारों ओर मिट्टी के ऊँचे चबूतरे थे और उन्हीं चबूतरों पर घास-फूस से छाये हुए कमरे बने थे।

आँगन के बीच में ईंट से बना हुआ एक ऊँचा-सा तुलसी का चबूतरा था। चारों ओर ऐसी स्निग्ध शान्ति थी कि रेखा का बाक़ायदा सजा-सजाया हुआ विलास-कुञ्ज भी उसके सामने मात था। इतनी शान्ति तो उसे उस विलास-भवन में दुर्लभ थी। रेखा आँगन में ही खड़ी रही।

चबूतरे के एक किनारे पर बर्तन रख कर तरुणी घर के भीतर घुसी। ज़रा देर बाद ही वह फिर बाहर निकल आई। इस बार वह अकेली ही भीतर से नहीं निकली, साथ में वह एक प्रौढ़ा को भी लिये आई। बाहर आते ही प्रौढ़ा ने एक बार रेखा की ओर देखा और हँसकर वह कहने लगी—आओ बिटिया, आओ ..।...

रेखा ने घूम कर देखा। वह तरुणी प्रौढ़ा के पीछे खड़ी हुई घूँघट की ओट से उसी की ओर ताक रही थी। उसकी दृष्टि में इतना अधिक कौतूहल था कि उसके पलक तक नहीं हिल रहे थे। कैसी सरल एवं मधुर अभ्यर्थना का भाव देदीप्यमान हो रहा था उसके उन दोनों नेत्रों में!

प्रौढ़ा ने चबूतरे पर एक चटाई बिछा दी। चटाई बिछा कर उसने कहा—आओ बिटिया...

रेखा ने कहा—आइए, इस आँगन में ही न बैठें।

प्रौढ़ा ने कहा—बहुत अच्छा, आँगन में ही सही। चटाई उठाकर वह आँगन में आई और रेखा के पास ही बिछा दी।

अपने जूते खोल कर रेखा ने रख दिये। वह चटाई पर बैठ गई।......

प्रौढ़ा और तरुणी उसे ध्यानपूर्वक देखने लगीं। इन सबके जीवन-यात्रा की यह सहज और सरल धारा देखकर और उसके साथ अपनी जीवन-धारा की कृत्रिमता की तुलना करके रेखा कुण्ठित हो रही थी! ब्लाउस, बाडीज़, जूता, मोज़ा, पिन-ब्रूच का यह कृत्रिम बन्धन! यह सब एक साड़ी के घेरे के सामने क्षण भर के लिए लज्जित हो उठे। प्रौढ़ा और तरुणी रेखा का जूता-मोज़ा तथा वेश-भूषा देखकर विस्मय से अवाक् हो उठे थे, यह बात तो उनके मुख-मण्डल का भाव देखकर ही रेखा भली भाँति समझ

गई थी। वह मानो कहीं की एक जन्तु-विशेष थी, जो उन लोगों की सरलता में दख़ल देने के लिए कहीं से आकर कूद पड़ी थी।

बाद को बातचीत शुरू हुई। तरुणी प्रौढ़ा की पुत्रवधू है। पुत्र कलकत्ते में नौकरी करता है। रोज़ खा-पीकर दफ़्तर जाता और साँझ को घर लौटता है। प्रौढ़ा का स्वामी जूट की मिल में काम करता है। वे दोनों पिता-पुत्र मिल-कर जो कुछ उपार्जन करते हैं उसी से उनकी छोटी-सी गृहस्थी चलती है। इस निर्धन-परिवार की आवश्यकतायें भी तो परिमित ही हैं। नौकरी के सिवा तालाब में मछलियाँ मिल जाती हैं, बग़ीचे में कुछ तरकारियाँ मिल जाती हैं। उनको किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है।

रेखा ने एक लम्बी साँस ली। कितनी नाम-मात्र की आय से कितनी सरलता के साथ इनका जीवन व्यतीत हो रहा है! कोई आडम्बर नहीं, कोई विचित्रता नहीं, साथ ही किसी प्रकार का दुःख भी नहीं है। इस तरह जीवन व्यतीत करनेवाले कितने लोग हैं!

रेखा ने कहा—आपकी बहू से मुलाक़ात करने आई हूँ। अभी निरी लड़की तो है! पोखरे में बर्तन मल रही थी। देखा......

प्रौढ़ा ने कहा—बड़ी अच्छी बहू है! पूरी लक्ष्मी है! मुझे कुछ करने नहीं देती। कितना कहती हूँ कि तुम्हारा अभी लड़कपन है, तुम इतना क्यों हैरान होती हो, लेकिन वह सुनती ही नहीं। वह स्वयं रसोई बनाती है, चौका-बर्तन करती है, कपड़े धोती है, झाड़ू-बुहारू करती है!... हम लोग ग़रीब आदमी हैं, नौकर-चाकर रखने का सामर्थ्य तो है नहीं! ग़रीब का तो अपने हाथ-पैर का ही सहारा होता है बेटी। लेकिन हमारी लक्ष्मी बहू इस सब के लिए कुछ ख़याल नहीं करती। यह कभी बाप के यहाँ भी नहीं जाती। सोचती है कि कहीं हमारी सास को कष्ट न हो। बड़े भाग्य से यह बहू मिली है।

प्रौढ़ा ने कहा—तुम दोनों एक अवस्था की हो। बैठ कर मज़े में ग़पशप करो। मैं तब तक चलती हूँ, एक बार चौपायों को देख आऊँ। एक बार फिर उन्हें चारा देना होगा न!

प्रौढ़ा चली गई। तब रेखा ने तरुणी की ओर दृष्टि फेरी। तरुणी का शरीर उस समय भी संसार भर की लज्जा से अभिभूत था। वह चुपचाप खड़ी थी। रेखा ने उठकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—बैठो न भाई! मैं तुमसे मुलाक़ात करने आई हूँ।...

तरुणी बैठ गई। उसका हृदय धकधक कर रहा था। रेखा ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

मुग्ध एवं विस्मयपूर्ण दृष्टि से रेखा की ओर ताक कर उसने कहा—चुन्नी।

रेखा ने कहा—कैसा सुन्दर नाम है! तुम्हें फबता भी ख़ूब है।!

बाद को बहुत-सी बातें हुईं। चुन्नी के पिता का घर उस पार है। उसके दो भाई और एक बहन है। वही उन सबमें बड़ी है। बाप साग-तरकारी बेचकर अपना ख़र्च चलाता है।...उसका पति उसे बहुत ही प्यार करता है। उसके लिए वह तरह तरह की चीज़ें लाया करता है। पिछले साल पूजा के समय उसने उसके लिए ढाका की साड़ी, कमीज़ और जाकेट ख़रीद दिया था। स्वामी जब दफ़्तर जाता है तब चुन्नी खिड़की के रास्ते निकल कर तालाब के किनारे बैठी बैठी बर्तन मला करती है और जब तक उसकी दृष्टि पड़ती है तब तक वह स्वामी की ही ओर ताकती रहती है। यह बात कहते कहते चुन्नी मानो लज्जा से गड़ी जा रही थी।...तो भी इतने सुख की बात, मन के इस गुह्यातिगुह्य आनन्द की वार्ता, स्वयं अपनी इच्छा से आई हुई इस संगिनी से कहना वह नहीं भूली। दो दंड में ही रेखा को हृदय के अत्यन्त समीप पाकर चुन्नी इस तरह घुल घुल कर उससे बातें करने लगी, मानो वह कितने दिन की उसकी सहचरी है। रेखा मानों छुटपन की ही उसकी गुड़िया खेलने की प्रधान सहचरी है।

चुन्नी के इस साधारण जीवन के छोटे छोटे सुखों का वृत्तान्त सुनते सुनते रेखा का हृदय आनन्द से ओत प्रोत हो उठा। परन्तु एक गुप्त वेदना उसके अन्तःकरण के किसी कोने में मानो काँटे की तरह चुभ कर उसे व्यथित कर रही थी। रेखा के मन में यही बात आती कि यदि मैं विलास-ऐश्वर्य से परिपूर्ण अपना यह कृत्रिम जीवन त्याग कर इसी तरह का सरल एवं स्वाभाविक जीवन व्यतीत कर पाती...इस साधारण से सुख को ही अपना एक मात्र आधार समझ कर हृदय में धारण कर पाती... तो आज की यह अत्यधिक अशान्ति, यह असह्य अतृप्ति

हृदय में लेकर उसे इस तरह छटपटा कर मरना न पड़ता। रेखा ने एक लम्बी साँस ली।

रेखा की ओर ताक कर चुन्नी ने कहा--अपने पति का हाल तो तुमने नहीं बतलाया भाई !......

"पति !" रेखा का हृदय धक से हो गया। हृदय की आह को दबा कर उसने कहा--मेरा तो विवाह हुआ नहीं है।...

"विवाह नहीं हुआ है ?" बहुत ही चकित भाव से चुन्नी ने रेखा की ओर देखा। रेखा उसके मन का भाव ताड़ गई। उसने कहा--मैं पढ़ती-लिखती हूँ।

उसकी बात समाप्त भी नहीं हुई कि चुन्नी ने कहा--तुम लोगों के यहाँ इतनी अवस्था में भी विवाह नहीं होता ? मेरा जब विवाह हुआ था तब मैं सात वर्ष की... कहते कहते चुन्नी एकाएक लज्जित होकर रुक गई। विवाह के दिन से लेकर आज तक उसके जीवन के जितने भी दिन व्यतीत हुए हैं उन सबके एक एक क्षण भी स्मृति ऐसे विचित्र रंग में मन में उदित हो आई कि उसकी दीप्ति से और सब अदृश्य हो गया।

रेखा ने कहा--हम लोग ब्राह्म नहीं हैं। शायद तुम अपने मन में यही समझ रही होगी।...यह नहीं है...परन्तु पढ़ना-लिखना होता है तो विवाह विलम्ब से किया जाता है।

बाद को इधर उधर की और भी बहुत-सी बातें हुईं। बातचीत करते करते दिन कहाँ का कहाँ चला गया। धूप बहुत ही कम हो गई।

समय अधिक व्यतीत होते देखकर रेखा ने कहा--अब तो आज्ञा दो भाई, आज चलती हूँ। कल फिर आऊँगी। अब रोज़ रोज़ आया करूँगी। भगा तो नहीं दोगी ?

मस्तक हिलाकर तरुणी ने सूचित किया—नहीं। प्रौढ़ा ने आकर कहा—नहीं भाई, यह तो ठीक नहीं है। तुम कुछ खाये बिना ही चली जाओगी ? ऐसा तो मैं कभी नहीं होने दूँगी। परन्तु तुम्हें खाने को ही क्या दूँ ? मुझ ग़रीब के यहाँ कौन-सी ऐसी है, चीज़जिसे तुम खा सकोगी ?

रेखा ने हँसकर कहा—आप अपनी चुन्नी को क्या खाने को देती हैं ?

प्रौढ़ा ने कहा—वह मूढ़ी (लाई) खाती है। कभी खीरा के साथ, कभी गरी के साथ।

रेखा ने कहा—मुझे भी वही दीजिए। वह तो बड़ी अच्छी चीज़ है।

प्रौढ़ा प्रसन्न होकर लाई लेने के लिए भीतर गई। चुन्नी अवाक् हो गई। इतने बड़े आदमी की लड़की है, पुरुषों की तरह जूता मोज़ा पहनती है,......वह लाई खायगी।

प्रौढ़ा ने लाई लाकर दी। रेखा ने ख़ूब जी भरकर खाया। खा चुकने के बाद उसने कहा इतना उत्तम आहार मुझे और कभी नहीं मिला। आपके यहाँ मैं कल फिर आऊँगी। कल मेरा लाई खाने का निमन्त्रण रहा। बाद को प्रौढ़ा और चुन्नी दोनों से विदा लेकर रेखा घर की ओर लौटी।

× × × ×

वही बनावटी ठाट-बाट था। तरह तरह के निरर्थक बन्धनों का अन्त नहीं था। माँ ने आकर कहा—चाय पीओगी ?
और ज़रा-सा सैंडविच दे जाने को न कह दूँ ?

रेखा ने गम्भीर होकर कहा—नहीं।

मा अवाक् हो गई। लड़की को सैंडविच से अरुचि हो गई ? सैंडविच मिल जाने पर तो रेखा और किसी चीज़ की इच्छा ही नहीं करती ! मा ने कहा—तो क्या तू इसी तरह उपवास करेगी ?

रेखा ने कहा—उपवास तो कर नहीं रही हूँ। एक जगह खा आई हूँ।

मा अवाक् हो गई। उसने कहा—तू भला खाने कहाँ गई थी और खाया ही क्या ? ज़रा बतलाओ तो !

रेखा ने कहा—मैं घूमने के लिए निकली थी। एकाएक एक ग़रीब के घर पहुँच गई। उसके यहाँ माँग कर लाई खा आई हूँ, खीरा और गरी के साथ......

"लाई !" मा मानो आकाश पर से गिर पड़ी।

विस्मय से उसकी दोनों आँखें विस्फारित हो उठीं।

रेखा ने कहा—हाँ लाई ! और यह लाई खाकर मैं इस प्रकार तृप्त हुई हूँ, इसे खाकर मैं इस प्रकार सुखी हुई हूँ कि तुम्हारा प्लेट में सजाया हुआ ग्रेवी कटलेट या सैंडविच पुडिंग खाकर कभी इस प्रकार सुख का अनुभव नहीं कर सकी हूँ।

इस समय रेखा बहुत ही आवेश में आगई थी। यह

प्रसंग उपस्थित हो जाने पर अपने लोगों की कृत्रिम जीवन-धारा की इन कृत्रिम प्रथाओं के सम्बन्ध में बहुत-सी कटु बातें कहने के लिए उसका मन भी अधीर हो उठा। किन्तु बड़े प्रयत्न से उसने अपने मन को रोक लिया। यहाँ पर मन की सारी बातें प्रकट करने का काम ही क्या था? कोई फल या लाभ तो होने को था नहीं।

मा ने कहा—शायद तुम दोपहर को ही निकल गई थीं। मैं समझती थी कि तुम सो रही हो। तुम्हारा शरीर ख़राब है।

रेखा ने कहा—शरीर नहीं ख़राब है मा। मन ख़राब है। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।

मा उस समय भी वैसे ही विस्मित भाव से रेखा की ओर ताक रही थी।

रेखा ने कहा—मेरे मन में कौन कौन-सी बातें आ रही हैं, जानती हो?

मा ने कहा—कौन-सी बातें?

रेखा ने कहा—यह सब लेस के पर्दों के बन्धन तोड़ कर फेंक दूँ। यह मेज़-कुर्सी हटा दूँ। यह मोटर, यह वेश-भूषा, सब छोड़-छाड़ कर दूर दिगन्त के पार किसी मैदान में भाग जाऊँ।...वहाँ साफ़-सुथरी पोशाक और बनी-ठनी बातों के फेर में मन पर किसी प्रकार का आघात न सहना पड़ेगा।...मन की सच्ची बात को छिपा कर किसी की लुपड़ी-चुपड़ी बातें भी न सुननी पड़ेंगी।

मा ने कहा—तू कहीं पागल तो नहीं हो गई है? यह सब क्या बक रही है?

रेखा ने कहा—क्या बक रही हूँ, यह मैं स्वयं भी नहीं समझ पाती हूँ। मेरे मन में बड़े ज़ोर का तूफ़ान मचा हुआ है। इस समय केवल यही इच्छा हो रही है कि इस तूफ़ान में सब कुछ टूट कर चूर चूर हो जाय।

मा का आश्चर्य भंग हो गया। उसके स्थान पर भय ने अड्डा जमाया। वह सोचने लगी कि रेखा यह सब क्या कह रही है। इन सब बातों का मतलब? रेखा के पास आकर मा ने धीर स्वर से कहा—समझ गई हूँ बेटी। मुझसे जो कहती रही हो, वही न? मिस्टर सिनहा के प्रेम में पड़ गई हो तुम?

रेखा आग की तरह जल उठी। तीव्र प्रतिवाद के स्वर में उसने कहा—नहीं। झूठी बात है। मैं किसी के प्रेम में नहीं पड़ी हूँ। किसी दिन पड़ना भी नहीं चाहती हूँ। ये जितने पुरुष हैं, सब पाखंडी हैं, स्वार्थी हैं। अपने सुख को ही ये सब कामना की एक-मात्र वस्तु समझते हैं। ये लोग समझते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों के मनोविनोद की सामग्री हैं। पुरुष की इच्छा से ही वे चलेंगी-फिरेंगी, पुरुष की इच्छा से ही सारे काम-काज करेंगी। ये सब बातें कहते कहते चुन्नी की वह मधुर मूर्ति उसके सामने उदित हो आई। वह सोचने लगी कि उसके मुख-मण्डल पर कैसी तृप्ति, कैसे स्वाभाविक आनन्द की रेखा वर्तमान थी। ढाके की एक साड़ी और एक क़मीज़ जाकेट मिल जाने पर ही वह किस प्रकार आनन्दित हो उठी थी! आनन्दित क्यों न हो उठती? उसके जीवन के आगे पीछे कितना प्रेम चन्द्रमा की किरणों के समान बहुत मधुर एवं उज्ज्वल प्रकाश फैलाये हुए था।

आठवाँ परिच्छेद

सावन का मेघ

रात्रि के अन्धकार ने जब समस्त भूमण्डल पर अपनी काले रंग की चादर फैला दी—तब रेखा खिड़की के पास जाकर बैठी। चारों दिशायें उसे ख़ूब जकड़ कर पकड़े हुए थीं, इससे उसका दम घुटने लगा था। उसका मन दुश्चिन्ता के भार से कातर एवं व्यथित हो रहा था। उसके नेत्रों से जल की धारा भी प्रबल वेग से बह रही थी।

इतने दिनों तक तरुण जीवन की कितनी ही आकांक्षायें उसके हृदय में जाग्रत हो रही थीं। कितने प्रकार के सुखों का स्वप्न वह देखा करती थी। परन्तु आज एकाएक जो यह दुश्चिन्ता, यह दुर्भावना आकर उसके यौवन-काल की सारी आशाओं का अन्त करने पर उद्यत हो गई है यह किसका अभिशाप है, किसके दुष्कर्म का फल है। इस अवस्था में इस प्रकार की दुश्चिन्ता की तो कोई कल्पना तक नहीं कर सकता! मन का भार हलका करने की उसकी कितनी इच्छा थी, लेकिन वह हलका होता नहीं था। किसका भय, किस प्रकार का संशय आज इस तरह उसके जीवन को चूर्ण-विचूर्ण किये दे रहा है! दो दिन पहले जिस स्वाभाविक और बहुत ही स्वच्छन्दतापूर्ण आनन्द की धारा में उसका जीवन तैरता जा रहा था वह स्वच्छ धारा आज एकाएक सूख गई और उसका जीवन लुढ़कता हुआ

प्रचण्ड मरुभूमि में जा पड़ा है! वह आनन्द की चमक और हँसी की लहर आज कहाँ गई? तरुण वय में जो आलोक-शिखा हृदय को इस प्रकार उज्ज्वल कर रखती है वह भी तो बुझ चुकी है। उस दिन जब चन्द्रमा की अमृतमय किरणों की सुधाधारा से सारी पृथिवी ओतप्रोत थी, अदम्य सुख से हृदय उच्छ्वसित हो उठा था, वही समय था जब कि अहीन्द्र ने अधीर भाव से रेखा से अपनी प्रणय-याचना की थी। कैसे व्याकुलतामय स्वर में उसने रेखा के कान के पास मुँह ले जाकर कहा था कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हें चाहता हूँ। उसके उस प्रणय-निवेदन ने सुख-स्वप्न की मधुर रागिणी की तरह पर-हृदय को मादकता से परिपूर्ण कर दिया था! उस समय रेखा को ऐसा लगा था, मानो मैं उपन्यास की कोई नायिका हूँ, यौवन की महिमा के गौरव से राजकुमारी के समान ही ऐश्वर्यशालिनी हूँ और अहीन्द्र मेरा राजकुमार नायक है। कल्पना के विभिन्न प्रकार के रंगों ने इस जीवन को ऐसे अनुपम रंग से रँग दिया था, किन्तु उसी में तो उसकी दूकानदारी की बात थी। दायित्व नहीं, बन्धन नहीं, केवल एक व्यवसाय, एक दूकानदारी का आयोजन था। इस आयोजन ने ही काले रंग की मसी के प्रलेप के समान ही उस रंग को काला कर दिया। इस कठोर बात के आघात से वह सुख-स्वप्न की रागिणी विच्छिन्न होकर न जाने कहाँ अदृश्य हो गई? यह बात उसने क्यों कही? उसने कितनी ही पुस्तकें पढ़ी हैं। किसी भी पुस्तक में तो ऐसा नायक नहीं मिला, जिसने इस तरह की कठोर बात कह कर नायिका के हृदय पर पत्थर की-सी चोट पहुँचाई हो।... सभी पुस्तकों में तो यह प्रणय-निवेदन विवाह के मङ्गल-शङ्ख से ध्वनित हुआ है, विचित्र कुसुम की प्रगाढ़ सुगन्धि से चारों दिशायें व्याप्त हो उठी थीं...इस विवाह में आपत्ति क्या है?

रेखा मन ही मन सोचने लगी कि मैं पढ़ना-लिखना जानती हूँ, गाना-बजाना जानती हूँ, किसी भी युवक के जीवन को सुखी बनाने में, किसी भी तरुण जीवन की लालसाओं को पूर्ण करने में मैं सर्वथा समर्थ हूँ। मेरा सुमधुर संग पाकर कोई भी सुन्दर युवा धन्य हो सकता है। मेरी बातचीत, मेरी कण्ठ-लहरी...! अहीन्द्र भी तो उसकी भूरि भूरि प्रशंसा कर चुका है! तो फिर...!

बार बार सोच कर भी रेखा यह निश्चय न कर सकी कि विवाह करने में अहीन्द्र को आपत्ति क्यों है? तो क्या वह इसलिए पीछा खींच रहा है कि आगे चल कर उसे मेरे भी व्यय का भार वहन करना पड़ेगा? भार वहन करने का तो अर्थ है रुपये-पैसे ख़र्च करना, वस्त्र-आभूषण का प्रबन्ध करना तथा अन्यान्य प्रकार की विलास की सामग्रियाँ एकत्र करना। परन्तु इन सब वस्तुओं की तो रेखा को कोई कामना है नहीं! दायित्व नहीं, केवल प्रेम...! यह तो मिट्टी के बिना ही पृथ्वी से कोई संसर्ग न रख कर अन्तरिक्ष में प्रासाद तैयार करने के समान ही असम्भव जान पड़ता है! आधार के बिना तो कोई वस्तु नहीं खड़ी की जा सकती! वृक्ष और लतायें भूमि पर उगती हैं और भूमि में जड़ जमाती हैं, तभी वे बड़ी हो पाती हैं, और फल-फूल कर अपने को सुसज्जित करने में समर्थ हो पाती हैं। उसी मिट्टी, उसी भूमि का संसर्ग यदि छूट जाय तो इन वृक्षों और लताओं की दुर्दशा की सीमा न रहे। प्रेम यदि दायित्व को हो ख़ूब ज़ोर से न पकड़े रहा तो वह प्रेम ही कैसा? जब लेना हो तो देने के लिए भी तो तैयार रहना चाहिए!... तो?

इस बात ने रेखा के आजन्म के संस्कार के मूल पर बड़े ज़ोर से आघात किया था। इसी से तो उस दिन बाण की चोट खाये हुए मृग के समान अहीन्द्र के पास से हट कर वह भाग गई थी।...विवाह नहीं, विवाह का बन्धन नहीं, दोनों ही आदमी मुक्त रहेंगे, स्वाधीन रहेंगे, केवल प्रेम का ही खेल खेलेंगे...यह तो बहुत ही तीव्र, बहुत ही कठिन परिहास है।

इस बात का मतलब? उसके माथे का रक्त ज़ोर से प्रवाहित हो उठा। नारी क्या केवल पुरुष के भोग-विलास की ही सामग्री है? क्या वह पुरुष के हाथ का खिलौना ही भर है, कि जब उसकी इच्छा होगी, उसे लेकर खेलेगा, बाद को तबीयत ऊबते ही उसे फेंक कर चला जायगा। इतना बड़ा अपमान! नारी-जाति के लिए इससे बढ़ कर लज्जा की बात और क्या हो सकती है? वह सुख-दुख की संगिनी नहीं है, मित्र नहीं है...वह केवल मोह जाग्रत करने का, भोगस्पृहा को उत्तेजित करने का साधन भर है। काम-काज के भार से जिस समय क्लान्त हो उस समय नारी अपना हृदय चीर कर उसमें से झरी हुई यौवन-सुरा

का उसे पान करावे, जिससे उसकी सारी क्लान्ति दूर हो जाय। इसका अर्थ तो यह हुआ कि पुरुष के ही लिए उसका जीना है, हँसना है, रोना है,...सभी कुछ है। और जो इस रस को सदा सुरक्षित रखती आवे उसकी ओर तुम ज़रा-सा दृष्टि फेर कर देखो भी न! उसके लिए तुम्हारा जीना नहीं है, हँसना-रोना भी नहीं है!... वाह! यह कैसा अच्छा विधान है!

मा ने आकर पुकारा—रेखा!...

रेखा ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपने स्वप्न में वह इस तरह मग्न थी कि मा की पुकार उसके कान तक नहीं पहुँची।

रेखा के कन्धे पर हाथ रख कर मा ने कहा—चुपचाप अकेले बैठी बैठी क्या कर रही हो? आओ न, ज़रा-सा दो-एक गाने तो गाओ...मुझे गाना सुनने की बड़ी इच्छा हो रही है।

मा के स्पर्श से रेखा चौंक-सी पड़ी। बाद को उसने मा की ओर देखा। मा को गाना सुनने की इच्छा हो रही है, ठीक बात है। इससे तुम्हें गाना ही पड़ेगा। तुम केवल दूसरों की तृप्ति के लिए ही हाथ-पैर हिलाओ, चलो-फिरो, काम-काज करो। अहीन्द्र आकर अपना शौक़ पूरा करने के लिए दो दण्ड लोट पड़ेगा, इधर-उधर की बातें बनावेगा, उसके लिए भी अपने को तैयार रक्खो। इस समय मा को गाना सुनने की इच्छा हुई है, इससे गाने लग पड़ो। यह तो बड़े मज़े का जीवन है!

रेखा का समस्त अन्तःकरण गरज उठा। विद्रोह के सुर से हृदय भर उठा। नहीं, नहीं, तुम्हारी क्षणिक तृप्ति के लिए अपने आपको भूलकर वह अब तुम लोगों का मन न बहलाती फिरेगी! रेखा ने कहा—इस समय गाने को जी नहीं चाहता है मा।...मुझे तुम ज़रा देर तक अकेले में ही रहने दो।

मा चुपचाप खड़ी रही। रेखा ने मा की ओर देखा। मा ने कहा—क्या कर रही हो अकेली?

रेखा ने कहा—जो भी करती होऊँ, अकेले में ही मुझे अच्छा लगता है......

मा चली गई। मा को रेखा ध्यानपूर्वक देखने लगी। मा का इस तरह का ठाट, उसका इस तरह का शृङ्गार रेखा की दृष्टि में आज बहुत ही गर्हित जान पड़ने लगा... मा विधवा हैं,—तो भी वे इस तरह का ठाट क्यों बनाती हैं? यह तो उसके स्वर्गीय पिता की स्मृति के प्रति घोर अवज्ञा है! आज यह पहला दिन था जब मा का इस तरह का ठाट, इस तरह का बनाव-शृंगार रेखा को बहुत ही बुरा, बहुत ही बेतुका मालूम पड़ा। क्यों इस तरह की सजावट वे करती हैं?

एकाएक उसी क्षण एक निर्मम संशय रेखा के वक्ष-स्थल में छुरी के समान धँस गया! उसने क्या इन्हीं की गोद में जन्म ग्रहण किया है! यह विलास-आडम्बर—जिससे वह दूर भागना चाहती है, उसके प्रति मा की एक दुधमुँहे बच्चे की तरह की अन्ध ममता है।...

रेखा का शरीर थर्रा उठा! कौन जानता है यदि वह छुटपन में ही माता-पिता को खो बैठी हो, और ये लोग उसे अनाथिनी के रूप में पड़ी पाकर उठा लाये हों! इस तरह की भी तो बहुत-सी कहानियाँ वह पढ़ चुकी है! ... यदि किसी दुर्भागिनी के गर्भ में ही उसका जन्म हुआ हो...यदि इस मा ने ही......

एक हीन संशय से उसका हृदय अत्यन्त ही आन्दोलित हो उठा। पुस्तकों में पढ़ी हुई, बायस्कोप में देखी हुई, सैकड़ों ही नहीं, बल्कि हज़ारों कहानियाँ आज मानो सजीव मूर्ति धारण करके उसकी दृष्टि के समक्ष जाग्रत हो उठीं। यदि ऐसा हो ...? तो क्या इसी लिए अहीन्द्र विवाह करने पर सहमत नहीं है...? इसी लिए क्या ये लोग उसकी मा के पास रोज़ रोज़ आकर इस तरह भीड़ लगाये रहते हैं? तो क्या इसी लिए साहस करके......रेखा का चित्त बहुत ही दुःखी हुआ। मारे अवसाद के, मारे लज्जा के वह धरती में गड़ी-सी जा रही थी। ऐसी दशा में उपाय...? किन्तु उसे यही बात कौन बतला देगा कि वह कौन है, कहाँ से आई है? आगे चलकर उसकी क्या दशा होगी? रेखा के मन में इसी प्रकार तरह तरह की शङ्कायें उदित हो रही थीं। एकाएक उसे ऐसा मालूम पड़ने लगा कि इस सुविशाल भूमण्डल में मानो वह नितान्त ही असहाय है। दुनिया में तमाम आदमी ही आदमी भरे हैं, परन्तु उससे क्या? उसका तो एक भी साथी नहीं है! उसकी दृष्टि में तो पृथ्वी ही सूनी है। उसका अपना कोई नहीं है, जो उससे वास्तविक स्नेह कर सके, उसके प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट कर सके। रेखा के

नेत्रों से सावन की धारा के समान टप टप आँसू गिरने लगे।

एकाएक एक शब्द ने उसे सचेत कर दिया। वह उठकर खिड़की के पास खड़ी हो गई। उसने देखा कि एक मोटर आकर खड़ा हुआ है। अहीन्द्र और निर्मल लौट कर आये हैं और उसकी मा बड़े आदर के साथ उनकी अभ्यर्थना करने के लिए दौड़ी जा रही है! अहीन्द्र......उसका हृदय काँप उठा। पता नहीं कि वह आकर फिर कौन कौन-सी बातें कहेगा? रेखा ने निश्चय कर लिया कि वह कुछ भी कहे, आज उससे यह प्रश्न अवश्य ही करूँगी कि मेरे साथ विवाह करने में उसे आपत्ति क्यों है। मैं कौन हूँ, जो अहीन्द्र को इस तरह मेरा अपमान करने का साहस हो रहा है।

उन सबकी ग़पशप और हँसी-ठट्ठा में योग न देकर रेखा एक कोने में ही पड़ी रही। उस ग़पशप और हँसी-ठट्ठा के बीच में उसे बार बार यह जान पड़ता कि इस अर्थहीन बात के साथ उसके हृदय का योग कहीं भी नहीं है। इतनी बड़ी पृथ्वी में वह अकेली है, बिलकुल अकेली है, उसको सहारा देनेवाला, उसका साथी संगी कोई नहीं है।...... केवल उस ग़रीब के कुटीर में उस छोटी बहू के संग ने ही उसके शून्य जीवन की एक दिशा को कैसे प्रकाश के उच्छ्वास, कैसे गन्ध और वर्ण से परिपूर्ण कर दिया था! भाग्य की ही बात थी जो उस दिन ज़रा देर के लिए उसका संग रेखा पा गई थी, नहीं तो इतनी बड़ी शून्यता लेकर उसके लिए जीवित रहना तो बहुत ही कष्टकर हो जाता, एक बहुत बड़ा जंजाल हो जाता!...

तो भी अधीर प्रतीक्षा के साथ वह अवसर खोजने लगी। अहीन्द्र से आज वह एक बार पूछेगी ही...... उसके अपने चारों ओर जो जटिल समस्या इस तरह तिमिर वाष्प से घनीभूत होकर बढ़ उठी है, उस समस्या की मीमांसा तो उसे करनी ही पड़ेगी! छाती मज़बूत करके वह पूछेगी...उसकी मीमांसा जितनी भी कठिन हो,...उसके लिए वह तैयार होगी ही, भला-बुरा सहने के लिए वह छाती ठोंककर खड़ी होगी। सत्य की अपेक्षा तो यह संशय उसके हृदय को और भी अधिक व्यथित करता है। इन लोगों के सामने विचलित होकर अपना अपमान वह किसी तरह भी न होने देगी।

रेखा ने अलग से आहार कर लिया। बाद को भोजन आदि से निवृत्त होने पर वह बग़ीचे के एक कोने में चली गई। वहाँ एक बेंच पड़ा था। वह उसी बेंच पर बैठकर अलस दृष्टि से वृक्षों और लताओं की हरियाली देखने लगी। वह इस तरह निस्तब्ध भाव से बैठी थी, मानो उसके बिलकुल चेतना ही नहीं है।

एकाएक अहीन्द्र के कण्ठ-स्वर से उसकी निस्तब्धता भंग हो गई। अहीन्द्र ने पुकारा—रेखा...

शून्य अलस मन एक ज़रा-सी हिल्लोल से चकित हो उठा। रेखा ने केवल गर्दन घुमाकर अहीन्द्र की ओर देखा।

अहीन्द्र ने कहा—तुम बहुत उदास मालूम पड़ रही हो रेखा!

रेखा ने कहा—हाँ।

अहीन्द्र ने कहा—कुछ पीड़ा तो नहीं कर रहा है?

रेखा ने कहा—नहीं।

उत्तर बहुत छोटा था। किन्तु उसके साथ ही तूफ़ान के समान एक बहुत ही लम्बी साँस ठेलकर निकल आई।

अहीन्द्र ने रेखा की ओर देखा। एक प्रकार की वेदना से उसका हृदय भी धक से हो उठा।...बेंच के हत्थे पर रेखा का सुन्दर हाथ...! अहीन्द्र ने वह हाथ अपने हाथ में ले लिया और स्नेहपूर्वक उसे पकड़ा और दबा कर उसने कहा मेरी बात से तुम्हें कष्ट मिला है रेखा...?

अहीन्द्र की ओर एकबारगी दोनों ही नेत्रों की दृष्टि डालकर रेखा मुहूर्त भर स्थिर होकर बैठी रही। बाद को उसने कहा—आपसे एक बात पूछूँगी।...ठीक ठीक उत्तर दीजिएगा न?

अहीन्द्र ने कहा—दूँगा।

रेखा ने कहा—आपने जो मुझे मित्र के रूप में स्वीकार किया है यह क्या मुँह की कोरी बात है, केवल...? या सचमुच ही आप मेरे मित्र...?

अहीन्द्र ने कहा—यह सन्देह क्यों कर रही हो रेखा? मैं तुम्हारा मित्र ही हूँ।

रेखा ने कहा—यदि ऐसी बात है तो आप मुझे सच सच जवाब दीजिएगा। समझ रखिए कि आपके इस जवाब के ही ऊपर मेरा भविष्य निर्भर है!

अहीन्द्र ने कहा—कहो...

रेखा ने कहा—यदि वह सत्य बहुत ही कठोर हो, निर्मम हो, कुत्सित भी हो तो भी उसे मिथ्या की आड़ में छिपाने की कोशिश तो न कीजिएगा ?

अहीन्द्र ने कहा—नहीं, मैं सच्ची ही बात कहूँगा।

रेखा ने कहा—ये भला, ये मिस्टर बोस कौन थे ?—जिन्हें मैं अपना पिता समझती हूँ ? क्या उन्होंने मेरी मा के साथ सचमुच ही विवाह किया था...या यों ही ... ?

अहीन्द्र ज़रा-सा कुण्ठित हो गया। उसने मुँह नीचा कर लिया।

रेखा ने कहा—नहीं, बतलाइए, इसमें कुण्ठित होने की कोई बात नहीं है। आप कह चुके हैं कि मैं सचसच बतलाऊँगा।

अहीन्द्र ने पूछा—यह बात जानने की क्या आवश्यकता है रेखा ?

रेखा ने कहा—आवश्यकता है।

अहीन्द्र ने कहा—तो सच्ची ही बात सुनोगी...?... अहीन्द्र ने एक लम्बी साँस ली। आह भर कर उसने रेखा की ओर देखा। रेखा के दोनों ही नेत्रपल्लव आँसुओं से भीगे हुए थे। विषाद के मारे चेहरा उतर गया था। वह दीन भाव से बैठी हुई थी।...अहीन्द्र ने कहा—मिस्टर बोस एक नामी बैरिस्टर थे।...

रेखा ने अधीर उच्छ्वास से कहा—वह परिचय मैं नहीं चाहती हूँ। क़ानूनी सलाह के लिए मैं लालायित नहीं हूँ।

रेखा का उस समय का कण्ठस्वर सुनकर अहीन्द्र चौंक उठा। वह फिर कहने लगा—तुम्हारी मा के साथ... उनका विवाह...नहीं हुआ था...।

रेखा का सारा शरीर थर थर काँप उठा। अहीन्द्र के कण्ठ स्वर ने मानो उसे वज्रपात की गर्जना के समान चौंका दिया। मुहूर्त भर के लिए मानो वह अपनी चेतना खो बैठी। आँखों के सामने का उजाला प्रकृति की श्यामवर्ण की शोभा, सभी कुछ निमेषमात्र में स्याही के गाढ़े प्रलेप के समान मसीमय हो उठा। ज़ोर करके उसने अपने इस भाव का संवरण किया। तब वह फिर बोली...तो... तो...? रेखा की आँखों के कोरों में आँसू डबडबा आये।

अहीन्द्र ने कहा—तुम्हारी मा थीं उनके एक पड़ोसी की विधवा पुत्री...बोस के साथ उनका प्रगाढ़-प्रेम हो गया।...बोस ने उन्हें लाकर अपनी गृहलक्ष्मी के आसन पर बैठाया !...बोस उस समय विपत्नीक थे !

रेखा चुप बैठी रही। उसमें जितनी भर चेतना थी उस सबका निमेषमात्र में हरण करके मानो किसी ने उसे एक गाढ़ पत्थर की मूर्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया था।...उसकी खोपड़ी इस तरह भन्ना रही थी, दिमाग़ में इस तरह का चक्कर आ रहा था ! कभी कभी तो जान पड़ता, मानों घूमते घूमते चक्कर का वेग न सह सकने के कारण फट कर इसी दम चूर चूर हो जायगा !...

कई क्षण तक चुप रहने के बाद रेखा ने कहा—मेरी मा जब बोस के साथ चली आई हैं तब मेरा जन्म हुआ है...या मैं पहले ही पैदा हो चुकी थी ?

"बाद को।...तुम बोस की ही पुत्री हो... !"

"हूँ !" रेखा और कुछ नहीं बोली।

अहीन्द्र ने कहा—इस विषय को समाज चाहे कितनी ही गर्हित दृष्टि से क्यों न देखे, किन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं तो इसे वैसा देखता नहीं हूँ...

"यह तो आपके हृदय की असीम उदारता है।"

अहीन्द्र ने रेखा की ओर देखा। बाद को उसने कहा—तुम्हारी मा तथा मिस्टर बोस ने परस्पर एक-दूसरे के साथ विवाह अवश्य नहीं किया था, किन्तु मिस्टर बोस जब तक जीवित रहे तब तक वे तुम्हारी मा को ऐसे प्रगाढ़ प्रेम के बन्धन से आबद्ध किये हुए थे कि उस प्रेम का कण-मात्र प्राप्त कर सकने पर कितनी ही विवाहिता स्त्रियाँ अपने आपको धन्य मान सकती हैं।... तुम लोगों की स्वच्छन्दता के लिए हर तरह की निन्दा से तुम्हें पृथक् रखने के लिए बोस ने अपने पुराने बन्धु-बान्धवों, आत्मीय-स्वजनों तथा समाज आदि का परित्याग कर दिया था। और अपने इस त्याग के लिए एक दिन भी उन्होंने पश्चात्ताप नहीं किया था।

रेखा ने कहा—यह उनकी असीम कृपा थी मिस्टर सिंह ! अपनी सौन्दर्य-पिपासा को अबाध रूप से निवृत्त करने के लिए अपने चारों ओर इस निरापद दुर्ग का निर्माण करके वे बैठे थे, यह भी उनकी अत्यधिक उदारता का द्योतक है !...परन्तु मेरे जीवन को वे कैसी काजल

की कोठरी में डाल गये हैं !...हानि क्या है ? आख़िर मैं स्त्री ही हूँ न ?

इस बात से अहीन्द्र ज़रा-सा सहम गया। उसने कहा—क्यों आक्षेप कर रही हो रेखा ?...

"क्यों कर रही हूँ ?...कातर एवं निराशामयी दृष्टि से रेखा ने अहीन्द्र की ओर देखा। वह कहने लगी—आप क्या समझ सकेंगे मेरे हृदय की वेदना को !...फिर,... आप बतला सकते हैं...आज मेरा स्थान कहाँ है ? परिचय ही क्या है ?

अहीन्द्र ने कहा—मनुष्य का परिचय मनुष्य स्वयं है। जन्म का इतिहास या पिता-पितामह की नामावली ही तो मनुष्य का वास्तविक परिचय नहीं है रेखा !

रेखा ने कहा—नहीं है ? अच्छा, तो आप तो मुझसे प्रेम करते हैं। उस दिन कम-से कम यही बात आप मुझसे कह रहे थे और आप मुझे इस पर विश्वास करने को भी कह रहे थे।... सच कहती हूँ न ?

अहीन्द्र ने कहा—इस बात का भी तुम्हें विश्वास दिलाना होगा, रेखा ?...मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, सचमुच प्रेम करता हूँ...इस समय भी। तुम विश्वास करो।...

रेखा ने अहीन्द्र की ओर देखा। वह कहने लगी—प्रेम करते हैं !......क्या आप मेरे साथ विवाह कर सकते हैं ?

अहीन्द्र ने कहा—विवाह ही क्या प्रेम का एकमात्र निदर्शन है रेखा ?...हमारा और तुम्हारा यह प्रेम ऐसा सबल, ऐसा दृढ़ नहीं है कि वह संसार के समस्त बन्धनों को तुच्छ करके अपने को सार्थक, चरितार्थ कर सके !...

रेखा ने कहा—आप पुरुष हैं, इसी से यह बात कहने में आप समर्थ हो सके हैं।...नारी प्रेम के लिए सब कुछ परित्याग कर सकती है, अपना अस्तित्व पर्य्यन्त !...किन्तु मैं अपनी आँख से जो कुछ देखती हूँ...रेखा चुप हो गई।

"क्या देखती हो रेखा ?"

रेखा ने अहीन्द्र की ओर घूम कर देखा, देखकर कहा—बड़ी भयङ्कर विवशता !...इसके अतिरिक्त किसी दिन यदि मेरे भी सन्तान हो गई, और संयोगवश वह सन्तान कन्या ही हुई...तो यही यातना उसे भी भोगनी पड़ेगी, जो यातना मैं भोग रही हूँ !...इस इतने बड़े समाज में उसका अपना कहीं ठिकाना न होगा, कोई आश्रय न होगा !...इसी तरह सबको छोड़कर एकान्त में उसे रहना पड़ेगा ! हृदय की वेदना छिपाये रहकर, यह तुच्छ प्रमोद-हँसी की लीला लेकर...। नहीं, नहीं, नहीं...और कोई यह सब लेकर अपने जीवन को सार्थक समझ सकता है, किन्तु मैं तो ऐसा नहीं समझ सकती। विश्व के इस आनन्द-मेला में योगदान करने के अधिकार से वञ्चित होकर...इस तरह...? कभी नहीं। आप यह बात कह सकते हैं, क्योंकि आप पुरुष हैं।...प्रमोद -पिपासित पुरुष हैं ! आज अन्ध-मोह में एक दुर्बल नारी को वश में करके उसके द्वारा इच्छानुकूल आनन्द का उपभोग करेंगे, जिससे आपकी पिपासा की निवृत्ति होगी, और आपकी उस पिपासा का मूल्य देगी नारी, अपनी लज्जा, मान-मर्य्यादा, एवं समस्त नारीत्व को ही पीस कर चूर्ण करके! नहीं...मिस्टर सिंह, मैं अकेली ही रहूँगी...बड़े सुख से रहूँगी !...जिस प्रेम में कोई दायित्व नहीं है, उसे मैं न वहन कर सकूँगी ! अपनी इस दुर्भागिनी माँ को मैं देख तो रही हूँ ...! इतनी बड़ी लज्जा को धारण करके...किस तरह इस प्रमोद, इस हँसी-ठट्ठा के पीछे आज दिन भी ऐसे व्याकुल भाव से दौड़ती हैं कि उसे सोचकर मैं अवाक् हो जाती हूँ।...

अहीन्द्र ने कहा—तुम चाहे मुझे कितनी ही दूरी पर क्यों न खदेड़ दो रेखा, किन्तु समझ रक्खो कि उस दशा में भी मैं तुमसे प्रेम करता रहूँगा और चिर दिन तक करता रहूँगा।...किन्तु समाज में यदि रहना है तो उसके नियमों की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। मैं जानता हूँ कि तुम निर्मल हो, तुम निष्पाप हो, तुम पवित्र हो।...

रेखा ने विरक्तिपूर्ण स्वर से कहा—रहने दीजिए, आज इस तरह की स्तववाणी सुनाने से काम न चलेगा ! आप मुझसे प्रेम करते हैं ? मालूम है आपको प्रेम का मतलब ? इस प्रेम के लिए क्या आप कुछ त्याग कर सकते हैं ? नहीं।...समाज...? उसे भी आप नहीं त्याग सकते ?

अहीन्द्र ने कहा इससे तुम्हें भी लज्जा में पड़ना पड़ेगा रेखा।...दस आदमी कहेंगे,...मैं वह सब समझता हूँ। और समझता हूँ, इसी लिए तुम्हें इतनी घोर कुत्सा के मध्य में खींचकर नहीं ले जाना चाहता हूँ।...पृथ्वी के कर्कश कोलाहल से अपने इस प्रेम को मैं दूर रखना चाहता हूँ।

रेखा ने कुछ कहा नहीं। उसके दोनों नेत्रों में आँसू डबडबा आये।

कुछ समय तक स्तब्ध रहने के बाद अहीन्द्र ने कहा—तो हम लोगों का यह प्रेम...?

रेखा ने कहा—मुझे क्षमा कीजिएगा, मैं उसे नहीं परिपूर्ण कर सकूँगी।...प्रेम की ओर मेरा झुकाव है भी नहीं!...ओह...कैसा यह दुर्भाग्य है!...रेखा उच्छ्वसित आवेग से रो पड़ी।

अहीन्द्र ने पुकारा—रेखा...

रेखा ने कहा—इसकी अपेक्षा तो यदि मैं ग़रीब माता-पिता की ही गोद में जन्म लिये होती, एक टूटे हुए झोपड़े में भी! यह विलास, यह ऐश्वर्य तो मैं कभी चाहती नहीं हूँ। इसके लिए मैं न तो कभी भिखारिणी थी और न आज ही हूँ।

संध्या और उषा

लेखक, श्रीयुत कमलकुमार शर्मा

संध्या और उषा—दो बहनें। सूर्योदय की किरणों ने जब प्रथम प्रथम पृथ्वी का स्पर्श किया तब दोनों का जन्म हुआ। वे दोनों हँसती-खेलती अपने दिवस व्यतीत कर रही थीं। पहाड़ की मृदुल घास पर सोतीं, चमेली के फूल इकट्ठा करतीं और झरने का संगीत सुनती थीं। इस प्रकार उनके दिन बड़ी हँसी-ख़ुशी में कट रहे थे। जगत् में और भी कुछ है, वे यह नहीं जानती थीं और न जानने को उत्सुक थीं। वे यह नहीं चाहती थीं कि कोई दूसरा उनके बीच आकर खड़ा हो। वे अपने में ही तन्मय थीं। हर रोज़ की तरह उस दिन भी वे एक पर्वत पर बैठी हुई माला गूँथने में तल्लीन थीं। पास ही एक झरना अपना संगीत सुनाता हुआ किसी अपरिचित देश की ओर आगे बढ़ रहा था। सहसा उनके सामने आई एक दिव्य पुरुष की मूर्ति—एक ज्योतिर्मय पुरुष। उसने कहा—तुम दोनों में से क्या एक मुझे अपनी माला पहना देगी? दोनों बहनों ने यह सुना। उल्लास और उत्साह के साथ एक-स्वर से कह उठीं—हाँ, अवश्य गले में माला डाल देंगी। फिर अपनी अपनी माला लेकर उसे पहनाने को आगे बढ़ीं। नहीं नहीं, दोनों नहीं, कोई एक। दोनों बहनें ठिठककर खड़ी हो गईं। माला कौन पहनाये? फिर परस्पर एक-दूसरे की ओर देखा, साथ साथ एक दफ़े उन्होंने ज्योतिर्मय पुरुष की ओर भी देखा। लज्जा से आँखें नीचे झुक गईं। यही उनकी प्रथम अनुभूति हुई। अब वे भागीं—दोनों दो भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर दौड़ीं।

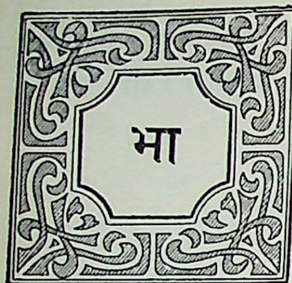
वहीं से उनके लुकने-छिपने का खेल प्रारम्भ हुआ। तब से आज तक वह खेल चला ही आ रहा है, ख़त्म होने ही नहीं पाता। संध्या प्रकट होती है जब दिन का कोलाहल शान्त होने को आता है। शांत, सौम्य चक्षुओं से वह उस दिव्य पुरुष को खोजती है। जब खोजते खोजते थक जाती है तब निराश होकर अंधकार में मिल जाती है। उसके हाथ की माला ज्यों की त्यों उसके हाथ में ही रह जाती है।

और उषा आती है जब रात्रि कट जाती है। निर्जन पृथ्वी आँखें फाड़ फाड़कर आशा, उमंग, उत्साह और उल्लास से वह उस दिव्य पुरुष को चारों ओर खोजती है। निराश होकर दिन की प्रखर रोशनी में अपने को मिला देती है।

ऐसे ही दिन व्यतीत हो जाता और रात्रि अपनी काली चादर ओढ़े आती है। रात बीत जाती है, दिन निकल आता है। यही चक्र चला करता है। लेकिन मिलन किसी का नहीं हो पाता है—शायद हो भी न।

भारत में कोयले का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय



रत में कोयले की खानें ज़्यादातर बङ्गाल और बिहार में हैं। सिगरेनी (हैदराबाद) और मध्यप्रान्त में भी कुछ खानें हैं, लेकिन उनमें अधिक कोयला नहीं निकलता है। १९३२ में दो करोड़ टन कोयला यहाँ की खानों से निकला। उसमें से एक करोड़ १८ लाख टन बिहार की खानों से और ५७ लाख टन बङ्गाल की खानों से निकला। मध्य-प्रान्त की खानों से उस वर्ष ११ लाख टन कोयला निकला था। बाक़ी आसाम, बिलोचिस्तान, मध्य-भारत, हैदराबाद, पञ्जाब और राजपूताना के आँकड़े ७२ हज़ार टन और १८ हज़ार टन के बीच में ही रह जाते हैं। इसके मुक़ाबिले १९३० में केवल बिहार की खानों से १ करोड़ ५० लाख टन कोयला निकला था और बङ्गाल की खानों से ६३ लाख टन। पिछले वर्ष जितना कोयला निकला उसको यदि रुपये के रूप में प्रकट करें तो यह कहना पड़ेगा कि १९३२ में ६ करोड़ ८० लाख रुपये का कुल कोयला निकला था। उसमें से ३ करोड़ ३२ लाख रुपये का माल बिहार का था, और १ करोड़ ६२ लाख रुपये का बङ्गाल का और १९२९ में ९ करोड़ २६ लाख रुपये के माल में से ५ करोड़ ५२ लाख रुपये का बिहार का और २ करोड़ ५० लाख रुपये का बङ्गाल का। बिहार के कोयले का ५ करोड़ ५२ लाख रुपये से गिरकर ३ करोड़ ३२ लाख रुपये तक पहुँच जाना, और बङ्गाल के कोयले का २ करोड़ ५० लाख से घट कर १ करोड़ ६२ लाख रुपये तक आ जाना क्रमशः ४० और ३३ प्रतिशत की कमी का सूचक है।

भारत में कोयले का व्यवसाय ख़ूब चल सकता है। प्राकृतिक सुविधायें हमारे लिए अनेक हैं, लेकिन हमें विदेशी कोयले से ज़ोरदार मुक़ाबिला करना पड़ता है। विलायती कोयले पर गवर्नमेंट ने केवल १० आने फ़ी टन चुङ्गी लगा रक्खी है। इस व्यवसाय को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं। अनेक कठिनाइयों का ज़रूर सामना है। ब्रिटेन ही ज़्यादातर इस देश में अपना कोयला बेचता है। वहाँ की ब्रिटिश गवर्नमेंट अपने देश के कोयले की विदेशी बिक्री बढ़ाने के लिए अनेक कृत्रिम उपायों का प्रयोग करती है और बहुत काफ़ी राजकीय सहायता देती है।

इस संघर्ष के मुक़ाबिले के लिए राजकीय सहायता का अभाव होते हुए भी कोयले के भारतीय व्यवसाय में लागत के कम करने का ज़ोरदार प्रयत्न हो रहा है। १९३२ में फ़ी टन लागत ३।=) एक पाई थी, १९३३ में यह घटकर ३=)॥ रह गई है। लेकिन इस प्रयत्न और किफ़ायत पर भी हिन्दुस्तान में विलायती कोयले की बिक्री की मात्रा में ६० प्रतिशत और क़ीमत में ४२ प्रतिशत वृद्धि हुई है।

भारत के कोयले का व्यवसाय यद्यपि २० वर्ष पहले की अपेक्षा अब बहुत उन्नत है, तो भी जैसा ऊपर दिखाया गया है पिछले वर्ष के आँकड़े बताते हैं कि वह अब नीचे जा रहा है। १९३० में भारतीय कोयले की सालाना उपज २,३८,०३,०४८ टन थी, अब अर्थात् १९३३-३४ में १,९७,८९,१६३ टन है, अर्थात् मात्रा में क़रीब १४ फ़ी सदी की कमी हो गई है। १९३० की उपज की क़ीमत ९,२६,२५,२२३) आँकी गई थी और १९३३-३४ की उपज ६,११,८६,०८३) थी। अर्थात् दामों में क़रीब ३३ प्रतिशत की कमी हो गई है। योरपीय महायुद्ध के समय इस व्यवसाय को अन्य व्यवसायों के समान प्रोत्साहन तो मिला ही था, लेकिन मई १९२६ की ब्रिटेन की कोयले की हड़ताल ने इस व्यवसाय पर विशेष अच्छा असर डाला था। इस हड़ताल के कारण ब्रिटेन के कोयले का हिन्दुस्तान में आना तथा अन्य स्थानों को भी जाना असम्भव हो गया था। हिन्दुस्तानी व्यवसाय ने इस समय अवसर से फ़ायदा उठाकर अपनी स्थिति बेहतर कर ली और अपनी उपज ख़ूब बढ़ा ली।

मिस्टर जे० कोटमैन 'इण्डियाइन' १९२७-२८ में पृष्ठ २०० में लिखते हैं—

इँग्लेंड के कोयले की हड़ताल कुछ हद तक इस बात के लिए ज़िम्मेदार कही जा सकती है कि यहाँ के (हिन्दुस्तान के) कच्चे माल का विदेशों में जाना कम हो गया,

लेकिन कोयला बेचनेवाले अन्य देशों के समान हिन्दुस्तान का कोयले का निर्यात-व्यापार हड़ताल के ज़माने में स्थायी रूप से बढ़ गया और जिन चन्द बाज़ारों को हिन्दुस्तान के व्यवसाय ने उस समय पा लिया उन्हें आज तक अपने ही क़ब्ज़े में रख छोड़ा है। लेकिन १९३३-३४ की वार्षिक रिपोर्ट यह है कि विदेशी कोयले का आयात पिछले साल की अपेक्षा मात्रा में ६० प्रतिशत और क़ीमत के ४२ प्रतिशत बढ़ा है।

कोयले का विदेशी व्यापार

नीचे का नक़शा भारत में विदेशी कोयले के आयात का है।

	कोयला	+	कोक	=	टन में जोड़ कोयला
१९२७-२८	२,६३,०००		११,०००	=	२,७४,०००
१९३१-३२	५६,०००		१२,०००	=	६८,०००
१९३२-३३	३५,०००		१२,६००	=	४७,६००
१९३३-३४	५६,०००		×	=	५६,०००

१९२१ में १५,०१,१८७ टन विदेशी कोयला हिन्दुस्तान में आया था।

नीचे के आँकड़े भारत में विदेशी कोयले का आयात प्रकट करते हैं।

	कोयला	+	कोक	=	नक़द कुल जोड़
१९२७-२८	५८ लाख		४½ लाख	=	६२½ लाख
१९३१-३२	११ लाख		१२ हज़ार	=	११ लाख १२ हज़ार
१९३२-३३	६ लाख		१२ हज़ार	=	६ लाख १२ हज़ार
१९३३-३४	९ लाख		×	=	×

नोट—१९२१ में ५,८५,०५,०००) का विलायती कोयला इस देश में आया था। लेकिन अगर हम १९२७ के आँकड़ों से ही तुलना करें तो १९३२-३३ में यह व्यापार दशांश रह गया था।

भारतीय बाज़ार में विदेशी कोयला के बेचनेवाले कारख़ाने ज़्यादातर अँगरेज़ी हैं। ब्रिटेन और ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत देश ही हिन्दुस्तान में ज़्यादातर कोयला* और कोक बेचते रहे हैं। १९२१-२२ में ६ करोड़ के कोयले के व्यापार में ५ करोड़ का व्यापार ग्रेटब्रिटेन का और ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत देशों का था।

१९३०-३१ में ३५ लाख के व्यापार में ३३ लाख का व्यापार इन्हीं देशों का अर्थात् ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-अफ़्रीका का था। १९३२-३३ में ६ लाख के व्यापार में ३ लाख का व्यापार ब्रिटेन का, २ लाख का दक्षिणी अफ़्रीका का और १ लाख का आस्ट्रेलिया का था।

ब्रिटेन का यह व्यापार, इस देश में उत्तरोत्तर कम होता गया—जैसा निम्नलिखित नक़शे से ज़ाहिर होता है :—

ब्रिटेन का हिस्सा रुपये में

	कोयला	+	कोक	=	जोड़
१९२१-२२	×		×		२,९८,४२,०००
१९२५-२६	×		×		३०,८७,०००
१९३०-३१	×		×		६,३६,०००
१९३१-३२	५,००,०००	+	६२,०००	=	५,६२,०००
१९३३-३४	३०,००,०००	+			×

१९१३ का अर्थात् युद्ध के पहले का औसत प्रतिवर्ष ४१,३३,०००) था।

इस हिसाब से १९३१ में ब्रिटिश व्यापार १९२१ की अपेक्षा घटकर रुपये में =) हो गया है।

* इस लेख में कोयला और कोक के बजाय हम केवल एक शब्द कोयला ही इस्तेमाल करेंगे। पाठकगण दोनों समझें।

ब्रिटिश कोयले का व्यापार केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, सारे संसार में कम पड़ गया है।

दिसावर के बाज़ार हाथ में रखने की ब्रिटेन ने पूरी पूरी कोशिश की। निर्यात-व्यापार के कृत्रिम साधनों से राजनैतिक सहायता दी। घर के बाज़ार में इसी उद्देश से कोयले का भाव बढ़ा दिया। फिर भी सफलता नहीं हुई। स्थिति की विचित्रता यह है कि ग्रेट ब्रिटेन स्वयं अब पहले से कम कोयला इस्तेमाल करता है; अर्थात् स्वदेशी बाज़ार में भी उसके कोयले की माँग घट गई है। १९३१ में १८,३८,००,००० टन ब्रिटिश कोयला ब्रिटेन में बिका था और १९३४ में केवल १६,१५,००,००० लाख टन। पहले ४ करोड़ टन कोयला ब्रिटिश कुटुम्बों में इस्तेमाल होता था, लेकिन अब अँगरेज़ गृहणियाँ गैस और बिजली इस्तेमाल करती हैं। निर्यात-व्यापार में कमी का कारण यह है कि बाहर के मुल्क ब्रिटेन का कोयला नहीं ख़रीदते। ब्रिटिश जहाज़ भी कम चलते हैं। अब इँग्लेंड अपने कोयले का ७५ प्रतिशत स्वयं इस्तेमाल करता है। १९१३ में ९,८३,००,००० टन कोयला इँग्लेंड ने विदेशों में बेचा था। १९३३ में यह मात्रा घटकर ५,६६,००,००० टन रह गई थी और १९३४ में ५,७०,००,००० टन। १९१३ की ब्रिटिश कोयले की कुल पैदावार २८,२१,००,००० टन थी। १९३३ में यह उपज केवल २०,५०,००,००० टन रह गई थी और १९३४ में २१,८५,००,००० टन। १९२८ में इस व्यवसाय से ब्रिटेन में ९,५२,००० आदमी रोज़ी कमाते थे। १९३४ में केवल ७,९८,००० आदमी इससे अपनी जीविका कमा रहे थे।

१९१३ की अपेक्षा १९३३ में इस व्यवसाय की उपज में २८ प्रतिशत की कमी आगई थी और १९३४ में २४ प्रतिशत की।

ब्रिटिश क़ौम का उद्योग

ब्रिटिश क़ौम हिन्दुस्तानियों के समान क़िस्मत पर रोनेवाली नहीं है। अपने व्यवसायों में इतना भयङ्कर आकस्मिक पतन देखते हुए भी वह निराश नहीं हुई। कोयले के व्यवसाय को फिर उन्नत करने से लिए वह बहुत ज़ोर के साथ प्रयत्नशील है। ब्रिटिश कोयले के व्यवसाय के सामने मुख्य समस्या यह है कि पिछले चन्द बरसों से ब्रिटिश कोयले की माँग कम पड़ गई है। युद्ध के बाद से जर्मनी, बेलजियम, रूस, फ़्रांस आदि देशों ने अपने अपने यहाँ कोयला पैदा करना शुरू कर दिया है और ब्रिटिश कोयला उन देशों में जाकर महँगा पड़ता है। अब माँग बढ़ाने का तरीक़ा यह है कि उपज का ख़र्च कम किया जाय, जिससे माल सस्ता पड़े और भाव घटे। ख़र्च कम करने के लिए चन्द विशेषज्ञों की राय में यह ज़रूरी मालूम होता है कि जितनी खानें इस समय अलग अलग काम कर रही हैं उन सबका कारबार संयुक्त रूप से चलाया जाय और कोयला निकालने में वैज्ञानिक साधन विशेष रूप से काम में लाये जायँ। इस प्रकार काम करने से विशेषज्ञों का मत है कि ब्रिटिश कोयला कम परते में पड़ेगा और वैदेशिक लाग-डाँट का मुक़ाबिला कर सकेगा। ब्रिटिश राष्ट्र इस प्रयोग के लिए तत्पर है।

१४ मई १९३६ के 'टाइम्स' में प्रकाशित हुआ है—"गवर्नमेंट कोयले के व्यवसाय का संगठन नये ढंग से करना चाहती है। बोर्ड आफ़ ट्रेड और कोल माईन कमीशन को पूरा अधिकार होगा कि वह कोयले की खानों को उनके मालिकों से छीनकर संयुक्त रूप से चलावे।" खानों के मालिकों को उज़्रदारी करने का हक़ होगा और वे बोर्ड आफ़ ट्रेड के सामने अपील कर सकेंगे। अगर बोर्ड आफ़ ट्रेड को यह यक़ीन हो जायगा कि संयुक्त करने की योजना कोयले की उपज और बिक्री की दृष्टि से राष्ट्र के लिए हितकर है तो बोर्ड इस हुक्म का मसविदा पार्लियामेंट के पास भेजेगा। अगर २१ दिन के अन्दर पार्लियामेंट ने इस हुक्म को रद न कर दिया तो इसके मुताबिक़ अमलदरामद शुरू हो जायगी। पहले तो पुनःसंगठन ही होगा, अर्थात् चन्द कोयले की खानें मिला दी जायँगी और एक कम्पनी बन जायगी जो इनका संयुक्त रूप से प्रबन्ध करेगी। लेकिन खानों के मालिकों को पुनःसंगठन के होने के पहले इस बात का अधिकार होगा कि अगर वे सब लोग स्वेच्छा से अपनी खानों का संयुक्तरूप से प्रबन्ध करने के लिए तैयार हो जायँ तो कम्पनी के बनाने की आवश्यकता न रहेगी। अगर मालिकों ने स्वेच्छा से खानों का मिलाना पसन्द नहीं किया तो गवर्नमेंट की ओर से प्रबन्ध की शर्तें तय कर दी जायँगी।

युद्ध और ब्रिटिश व्यवसाय

दुनिया इस बात को मानती है कि योरपीय महायुद्ध

में अँगरेज़ लोग विजयी रहे। लेकिन यह धारणा केवल अंशतः ही सही है। राजनैतिक दृष्टिकोण से यह बात कुछ हद तक सच मानी जा सकती है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से तो बिलकुल ग़लत है। वास्तव में योरपीय महायुद्ध ने ब्रिटिश क़ौम के व्यावसायिक प्रभुत्व को भयङ्कर धक्का पहुँचाया है। इस युद्ध के बाद से ऐसी राजनैतिक और व्यावसायिक शक्तियाँ स्वतंत्र रूपसे काम करने लग गई हैं कि क़रीब क़रीब सभी ब्रिटिश व्यवसायों की जड़ें हिल गई हैं, और ख़ास ख़ास ब्रिटिश व्यवसायों को तो इतना ज़ोरदार धक्का पहुँचा है कि अब शायद वे कभी अपना पुराना गौरव नहीं पा सकेंगे। एक अँगरेज़ अर्थशास्त्रज्ञ लिखते हैं—

"१० वर्ष पहले की अपेक्षा ब्रिटिश खान-व्यवसाय में काम करनेवालों की संख्या आज क़रीब क़रीब आधी रह गई है। लोहा, जहाज़ और जहाज़ी इंजीनियरी के व्यवसाय में आज की अपेक्षा १९२३ में दुगुने आदमी काम करते थे। कारबार की सबसे ज़्यादा कमी उन व्यवसायों में आई है जिन्हें 'वज़नी व्यवसाय' कहते हैं, जैसे कोयला, लोहा, फ़ौलाद, जहाज़ इत्यादि का व्यवसाय। इन व्यवसायों का असाधारण रूप से पतन हुआ है। सिक्के की क़ीमत में तबदीली का लिहाज़ रखते हुए भी हमारा निर्यात अर्थात् वैदेशिक व्यापार युद्ध के पूर्व की अपेक्षा आज आधे से ज़्यादा नहीं। रुई, ऊन, लोहा, फ़ौलाद और जहाज़-निर्माण आदि पुराने और मुख्य ब्रिटिश व्यवसायों में ही सबसे ज़्यादा ह्रास हुआ है। व्यवसाय में लगी हुई ब्रिटिश जनता का तृतीय भाग पहले वैदेशिक बाज़ार की माँग पूरी करने में लगा रहता था, आज केवल पञ्चमांश इस कार्य में लगा है। पहले हमारी सम्पूर्ण उपज का तृतीयांश विदेशों में बिकता था, आज केवल पञ्चमांश बिकता है।" (जान हिलटन; ३१-१-३४ के लिसनर में)

युद्ध के पहले ब्रिटेन भारतवर्ष में प्रतिवर्ष औसतन ५१,१३,६०,०००) की कपड़े की चीज़ें बेचता था। इस देश में ब्रिटिश लोहे और फ़ौलाद की सालाना औसत-बिक्री १२,९०,८७,०००) की थी और ४१,३३,००,०००) का कोयला और कोक तथा २९,९२,०००) की चमड़े की चीज़ें बिकती थीं। युद्ध के बाद जब इस देश में स्वदेशी कपड़े की मिलें काफ़ी खुल गईं, ताता-से लोहे के कारख़ाने क़ायम हो गये, कोयले की खानें बिहार और बङ्गाल में चलने लगीं, हमारा स्वदेशी व्यवसाय पनपा और ब्रिटेन के इन मालों की बिक्री देश में बहुत कम हो गई। १९३२-३३ में ब्रिटिश कपड़े की बिक्री केवल १५,३७,४३,०००) की थी, लोहे की ४,९३,५३,०००) की, चमड़े की ३०,१४,०००) के और कोयले और कोक की केवल ३,९४,०००) की। इसका मतलब यह हुआ कि ब्रिटेन में बने हुए कपड़े, लोहे और चमड़े की बिक्री इस देश में रुपये में केवल ।~) रह गई, और कोयले की बिक्री रुपये में केवल ६ पैसे।

हमारा प्वाइंट निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है। व्यापार के हाई कमिश्नर १९३२-३३ की अपनी वार्षिक रिपोर्ट में लिखते हैं—

"यह नोट करने की बात है कि १९१३-१४ में मिल का बना हुआ जितना कपड़ा हिन्दुस्तान में इस्तेमाल हुआ, ७५ प्रतिशत विदेशों से आया था और २५ प्रतिशत हिन्दुस्तानी मिलों का था। इसके मुक़ाबिले में १९३१-३२ में मिल का जितना कपड़ा हिन्दुस्तान में खपा, उसमें से ८० फ़ी सदी हिन्दुस्तानी मिलों का था और २० प्रतिशत विलायती। इस २० प्रतिशत में ब्रिटिश कपड़ा आधे से ज़्यादा नहीं था, अर्थात् ब्रिटेन ने भारत की माँग में केवल दशांश ही पूरा किया।"

युद्ध के पहले भारतवर्ष की कपड़े की मिलों की औसत सालाना उपज १,१६,४३,००,००० गज़ थी। १९३२-३३ में ३,१६,९९,००० गज़ हो गई थी, अर्थात् क़रीब क़रीब तिगुनी।

संरक्षण

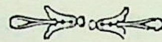
हिन्दुस्तानी व्यवसायों के इतिहास के अध्ययन से एक बात अकाट्यरूप से निष्पन्न होती है। वह यह कि जब जब पश्चिमीय विदेशों पर व्यावसायिक आपत्ति आई—चाहे उसका कारण युद्ध हो या घरेलू व्यावसायिक कुसंगठन, हिन्दुस्तान को फ़ायदा हो गया। हमारे समस्त व्यवसायों को उत्तेजना तभी मिली जब योरपीय राष्ट्र सङ्कट में पड़े। अगर योरपीय महायुद्ध न हुआ होता और विलायती चीज़ों का हिन्दुस्तान में आना कृत्रिम रूप से बन्द न हो गया होता तो शायद भारत के राष्ट्रीय दल और शासकदल में आज तक यह वाद-विवाद चलता ही रहता कि भारत के लिए संरक्षण कल्याणकर है या स्वतन्त्र व्यापार।

(ईश्वर न करे) आज अगर योरप में महायुद्ध छिड़ जाय तो वह संरक्षण जिसके लिए भारत का राष्ट्रीय दल व्यवस्थापक सभा में जी तोड़कर कोशिश कर रहा है (और नहीं पा रहा है), हमें आप ही आप बिना माँगे मिल जायगा और भारतीय व्यवसायों को विशेष उत्तेजना मिल जायगी। हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि भारतीयों को आज से ही योरप में युद्ध छिड़ने के लिए ईश-प्रार्थना आरम्भ कर देनी चाहिए। हमने केवल स्थिति की दुर्भाग्यपूर्ण विचित्रता दिखाई है।

हमारा कर्तव्य

कोयले का व्यवसाय अनेक दृष्टियों से हमारा एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है। इसमें इस समय ५० करोड़ के क़रीब पूँजी लगी है और २० लाख आदमी अपनी जीविका कमाते हैं। प्रयत्न यह होना चाहिए कि इस व्यवसाय में हिन्दुस्तानी पूँजी और लगे और उपज तथा बिक्री बढ़े। इस वस्तु के लिए विदेशों पर हम क्यों आश्रित रहें? भारतीय कोयला विदेशों में बेचा जाय और भारत में सम्पत्ति की वृद्धि का कारण हो।

आवश्यकता इस समय यह है कि आगामी व्यावसायिक सभाओं में राष्ट्रीय विचार के व्यावसायिक लोग अधिक से अधिक संख्या में जायँ, जिनका मुख्य उद्देश यह हो कि भारतीय व्यवसायों को हर प्रकार से राजकीय संरक्षण दिलाया जाय। राष्ट्रीय दल का एक हिस्सा साम्यवाद की चर्चा ज़रूर करता है, लेकिन व्यावसायियों को पूर्ण विश्वास रखना चाहिए कि विदेशी व्यवसाय के मुक़ाबिले में राष्ट्रीय दल स्वदेशी व्यवसाय की बराबर मदद करेगा।



तिकड़मी तमस्सुक

लेखक, श्रीयुत गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

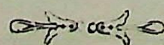
कितने तिकड़मबाज़, सीधे सुजनों को ठगें।
मानो कलि-महराज, मूर्तिमान छलहित फिरें॥
ऐसी घटना एक, लिखी सत्य 'गाङ्गेय' ने।
रख कुछ हास्य-विवेक, पढ़ें समुद सहृदय सुधी॥

मन्कि बाबू नादिहन्द राय वल्द फ़ज़ीहत राय, क़ौम हड़पूपन्थी, पेशा चलतापुर्ज़ा, साकिन मौज़े सत्यानाशपुर, परगने हरामपुर, ज़िला चौपटाबाद का हूँ। मैंने अपनी बड़ी हाजत रफ़ा करने यानी ऐशो-आराम से ज़िन्दगी बसर करने के लिए महाजन बाबू सिद्धू राय वल्द बदवक्त राय, मौज़े मुलाहिज़ापुर, परगने सूदपुर, ज़िला अहमकनगर से ५००) पाँच सौ रुपये क़र्ज़ लिये हैं। बाद सलाह-मशवरे के चण्डाल-चौकड़ी साथ, मैं इकरार करता हूँ कि इस रुपये का फ़ी सदी सूद गाली-गलौज, धक्कम-धक्का, जूती-पैजार, माह ब माह ता ज़िन्दगी अदा करता जाऊँगा। अगर किसी महीने सूद नहीं दे सका तो दूने लट्ठम-लट्ठ के ज़रिये दरसूद भी अदा कर दूँगा। अगर ऐसा न करूँ तो महाजन मज़कूर को अख़्तियार होगा कि बज़रिये नालिश कुछ और भी अपना रुपया फूँक कर मेरी भागेभूत की लँगोटी में लगी धूल की कूलः-मनकूलः जायदाद से अपना कुल मूल-सूद, पाई-पाई, हब्बा-हब्बा, वसूल कर लेवें। इसमें मुझे व मेरे बच्चों को और मेरी बीबी के बच्चों को भी कोई उज्र नहीं है और न आइन्दा होगा। इसलिए यह तमस्सुक लिख दिया कि बाद लड़ाई-झगड़े के मामला पेश होने पर शहद लगाकर चाटने के काम आये। और रुपये देने की 'सनक' की 'सनद' रहे।

दस्तख़त—बाबू नादिहन्द राय
पाँच सौ रुपये सदा के वास्ते लिए
सो सही बक़लम ख़ुद

तारीख़—मौजमारी, महीना—मालउड़ाऊ, साल—गालबजाऊ।

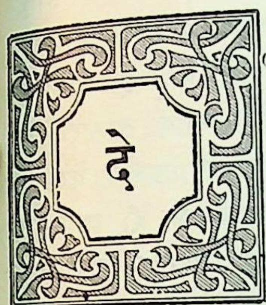
गवाह—ढपोलसंख, वल्द गपोड़संख, क़ौम—ख़ुशामदी, पेशा—गप-शप, गड़बड़-सड़बड़, मौज़े अलहदीपुर, परगने—चटोरपुर, ज़िला—खिसकन्ताबाद।



वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति और बेकारी

लेखक, श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०, एल एल० बी०

सर तेजबहादुर सप्रू ने जो अति परिश्रम में अपनी प्रसिद्ध बेकारी की रिपोर्ट प्रकाशित की है उसका महत्त्व सरकार तथा देश के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विशेषज्ञ सभी स्वीकार करते हैं। उसकी विशेषता के सम्बन्ध में बाबू सीतलासहाय का एक लेख हम यथासमय प्रकाशित कर चुके हैं। अब यह उसी विषय का दूसरा लेख है। रिपोर्ट में इन प्रान्तों की शिक्षा-प्रणाली का जो महत्त्व-पूर्ण विवेचन किया गया है श्री यादवेन्दु जी ने उसी का इसमें क्रमपूर्वक वर्णन किया है।



श में बढ़ती हुई शिक्षितों की बेकारी ने यह सिद्ध कर दिया है कि बेकारी की भीषणता का एक मौलिक कारण शिक्षा-प्रणाली के दोष हैं। प्रचलित शिक्षा-पद्धति इस युग के लिए सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है; इसलिए देश के प्रमुख शिक्षा-विज्ञों की एक-स्वर से यही माँग है कि शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया जाय।

शिक्षा का यथार्थ में उद्देश क्या है? शिक्षा मानव की मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास कर उसे किसी देश का आदर्श नागरिक बनाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नागरिक को अपना जीवन व्यावहारिक रूप से, व्यष्टि और समष्टि के लिए उपयोगी बनाना अनिवार्य है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि नागरिक जीवन के सुधार व विनाश में अर्थ-प्रणाली का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए बेकारी की समस्या को सुलझाने के लिए यह आवश्यक है कि देश के लिए ऐसी आर्थिक योजना निर्माण की जाय जिससे अर्थ का सम-विभाजन किया जा सके और देश के प्रत्येक नागरिक को अपने जीवन के विकास के लिए समान सुविधायें और सहायता राज्य और समाज की ओर से मिल सकें।

जितना आर्थिक योजना का बेकारी के प्रश्न से घनिष्ठ सम्बन्ध है, उससे कहीं अधिक सम्बन्ध शिक्षा की पद्धति से है।

'यू० पी० बेकारी-कमिटी' ने बेकारी को दूर करने के लिए स्पष्ट शब्दों में रिपोर्ट में अनेक स्थानों पर इस बात पर अधिक ज़ोर दिया है कि शिक्षा जीवनोपयोगी बनाई जाय। युवकों-युवतियों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे अपने जीवन में उसका उपयोग कर उसे अधिक उच्च, विकसित और सुखप्रद बना सकें। दूसरे देशों में शिक्षा और रोज़गारी में निकट सम्बन्ध स्थापित कर उसे अधिक जीवनोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु भारत में इस बेकारी के प्रश्न और शिक्षा-प्रणाली का सम्यक् रीति से अध्ययन ही नहीं किया गया। आज से दो वर्ष पूर्व विश्वविद्यालय-परिषद् में भाषण करते हुए लार्ड विलिङ्गडन ने भी कहा था—

"विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से यह हृदय-विदारक है कि बहुत-से नवयुवक जिन्होंने सफलतापूर्वक शिक्षा-सोपान पर पदार्पण करके उच्च पदवियाँ और सम्मान प्राप्त किये हैं, अनेक आपदायें और दुःख उठाने पर भी अपने जीवनोपार्जन के साधन प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। यह निःसन्देह शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के हाथों में है कि वे शिक्षा-योजना का इस प्रकार निर्माण करें कि विद्यार्थियों की मनोवृत्ति अपनी शिक्षा और योग्यता के अनुकूल व्यवसायों को ग्रहण करने की ओर हो जाय।"

यू० पी० बेकारी-कमिटी ने एक सूचना प्रकाशित कर शिक्षित बेकार नवयुवकों से विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। ऐसा विश्वास है कि सभी नवयुवकों ने अपने सम्बन्ध में कमिटी को विवरण भेजने का प्रयत्न नहीं किया। इतने पर भी ३,१११ शिक्षित युवकों ने अपनी बेकारी के विषय में सूचनायें भेजीं। इनमें से २६ एम० ए० और एम० एस-सी०, १३१ बी० ए०, बी० एस-सी०, ४९ इन्टर्मीडियेट, ९४९ हाईस्कूलपरीक्षोत्तीर्ण, १,६४३

वर्नाक्यूलर-परीक्षा पास, ५३ टेक्निकल प्रमाण-पत्र-प्राप्त युवक और २६० ओरिएंटल डिप्लोमा-प्राप्त युवक हैं। इन सब युवकों ने १९२८ से १९३४ के पाँच वर्षों की अवधि में अपनी परीक्षायें पास की हैं।

इन पदवियों को प्राप्त करने में कितना धन व्यय होता है, इसका विचार करने पर शिक्षा की व्यर्थता और भयङ्करता अधिक उग्ररूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। जो छात्र केवल विश्वविद्यालयों में संयुक्त-प्रान्त में पढ़ते हैं उनकी संख्या निर्धारित की जाय तो १०,००० से कम नहीं होगी। सर तेजबहादुर सप्रू की सम्मति में एक नवयुवक विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने में ५०) मासिक व्यय करता है। इस प्रकार एक वर्ष में ६०,००,००० रुपये प्रति-वर्ष इन छात्रों पर व्यय होते हैं। विगत पाँच वर्षों में इन १० हज़ार नवयुवकों के माता-पिताओं ने प्रायः ३ करोड़ रुपये इनकी शिक्षा पर ख़र्च किये! और परिणाम में क्या मिला? जीवन-विघातिनी बेकारी। मिस्टर हाकिन्स के कथनानुसार ऐसे अनेक ग्रेजुएट हैं जिन्होंने विवश होकर पुलिस में कान्स्टेबुल की नौकरी स्वीकार की। कुछ चपरासी भी बन गये हैं। ऐसे भी ग्रेजुएट नवयुवक हैं जो गलियों में दूध बेच कर अपने पापी पेट की ज्वाला शान्त करते हैं। अभी उस दिन की बात है, एक आई० सी० एस० आफ़िसर ने सर तेजबहादुर सप्रू से कहा कि मेरे पास कालेज का तृतीय वर्ष का एक छात्र आया और कहने लगा—"कृपया मुझे कोई नौकरी दीजिए।" उत्तर मिला—"मेरे आफ़िस में क्लर्की की कोई जगह ख़ाली नहीं है।" अब आप देखिए प्रार्थी ने क्या उत्तर दिया—"क्या चपरासी की नौकरी के लिए भी मुझे स्थान न मिलेगा?" सौभाग्य से उस बी० ए० के छात्र को चपरासी की नौकरी मिल गई।

क्या इस स्थिति से यह प्रकट नहीं होता कि समाज को प्रचलित शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है? यह शिक्षा व्यक्ति, समाज और शासन इन तीनों के लिए सर्वथा अनुपयोगी और व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है। इसलिए शिक्षितों की बेकारी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि जहाँ शिक्षा-प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन किये जायँ, वहाँ साथ-साथ विद्यार्थियों और उनके संरक्षकों, अभिभावकों तथा सरकार इन तीनों के दृष्टिकोण और नीति में घोर परिवर्तन भी वाञ्छनीय है।

बेकारी-कमिटी की रिपोर्ट में शिक्षा-प्रणाली में सुधार के सम्बन्ध में यथेष्ट विचार किया गया है। उसको तीन विभागों में विभाजित कर १ प्राथमिक, २ माध्यमिक और ३ विश्वविद्यालय की शिक्षा पर अलग अलग विचार किया गया है, इसके अतिरिक्त औद्योगिक, व्यावसायिक और 'टेक्निकल' शिक्षा पर भी। यहाँ हम उन विभागों के अनुसार प्रत्येक का अलग अलग उल्लेख करते हैं—

प्राथमिक शिक्षा

संयुक्त-प्रान्त में सन् १९२६ में एक क़ानून स्वीकृत किया गया था, जिसके अनुसार ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। इस क़ानून की धारा ३ के अनुसार ज़िला-बोर्ड प्रान्तीय सरकार से यह प्रार्थना कर सकता है कि ज़िले में या उसके किसी एक भाग में लड़कों की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। इस प्रार्थना पर विचार कर सरकार यह घोषणा प्रकाशित कर सकती है कि अमुक ज़िले या उसके किसी भाग में लड़कों को अनिवार्य शिक्षा दी जाय। परन्तु सरकार उसी अवस्था में यह घोषणा कर सकती है जब उसे यह विश्वास हो जाय कि बोर्ड के आधे सदस्यों ने अनिवार्य शिक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किया है और सरकार को यह विश्वास है कि बोर्ड इसका समुचित एवं सन्तोषप्रद प्रबन्ध कर सकता है।

यू० पी० में सन् १९१९ में इसी प्रकार का एक क़ानून पास हुआ, जिसके अनुसार म्यूनिस्पल बोर्ड की सीमा के अन्तर्गत लड़कों को अनिवार्य शिक्षा दी जा सकती है।

इस समय ८५ म्यूनिस्पल बोर्डों में से केवल ३६ बोर्ड ही ऐसे हैं जिन्होंने अपने नगर में या उसके किसी एक भाग में लड़कों के लिए अनिवार्य शिक्षा प्रचलित की है और ४८ ज़िला-बोर्डों में से केवल २५ बोर्ड ही ऐसे हैं जिनके अन्तर्गत ग्रामों में लड़कों की शिक्षा अनिवार्य है। सन् १९३३-३४ में संयुक्त-प्रान्त में प्राइमरी स्कूलों* की कुल संख्या १९,२१४ और उनमें पढ़नेवाले लड़कों की ११,६७,२६५ थी।

प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर श्री एच० आर० हेरप साहब ने प्राथमिक शिक्षा की उन्नति के प्रश्न पर जो

* इन स्कूलों में सरकारी, ज़िला बोर्ड, म्यूनिस्पल बोर्ड तथा सहायता प्राप्त एवं सहायता से वंचित सभी स्कूल सम्मिलित हैं।

प्रकाश डाला है उससे वस्तुस्थिति का पता लग जाता है। आपका कथन है—

"इन प्रान्तों में शिक्षोन्नति के मार्ग में पर्याप्त फंड का अभाव ही मुख्य कारण है। मेरी अनुमति में प्रायः १८ लाख लड़के और ३० लाख लड़कियाँ ६ से ११ वर्ष की हैं, जिनके शिक्षा के लिए किसी भी प्रकार का प्रबन्ध नहीं है। मेरा यह भी विचार है कि यह अशिक्षित जन-समूह मनुष्य-संख्या के प्रतिव्यक्ति की औसतन सम्पति की अभिवृद्धि में सबसे बड़ा नहीं तो एक महान् बाधा है। प्राथमिक शिक्षा की यह आवश्यकता सबसे महान् आवश्यकता है। इस दिशा में अधिक उन्नति के लिए इस समय फंड नहीं मिल सकता।"

प्राइमरी शिक्षा के सम्बन्ध में बेकारी-कमेटी ने जो प्रस्ताव प्रस्तुत किये हैं वे बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं।

१—यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का ध्येय निरक्षरता का नाश करना है, तथापि उसका प्रमुख उद्देश लड़कों को इस योग्य बना देना है कि वे श्रेष्ठ किसान और ग्रामीण जातियों के अधिक उपयोगी सहायक बन सकें। इस समय जिस प्रकार की प्राइमरी शिक्षा का प्रचलन है उसमें दो बड़े दोष हैं। पहला यह कि यह शिक्षा ग्रामीण आवश्यकताओं को दृष्टिकोण में रख कर नहीं दी जाती, दूसरा यह कि इन स्कूलों में पढ़नेवाले लड़कों की आयु-अवधि बहुत कम है।

२—इसलिए कमिटी यह सिफ़ारिश करती है कि प्राइमरी शिक्षा ग्रामोपयोगी बनाई जाय। आज-कल के क़ानून के अनुसार ११ वर्ष तक की आयु के लड़कों को अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। परन्तु यह आयु कम है, इसलिए इसे बढ़ाकर १३ वर्ष की अवधि कर दी जाय। यदि आयु अवधि बढ़ा दी गई तो इससे प्राथमिक शिक्षा बहुत कुशल हो जायगी और बहुत-से अध्यापकों को नौकरी भी मिल सकेगी।

३—कमिटी की यह दृढ़ सिफ़ारिश है कि समस्त प्रान्त में प्राइमरी और युवक-शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। ऐसा किये बिना आर्थिक संकट दूर नहीं हो सकता। रेडियो और ब्राड-कास्टिङ्ग का उपयोग प्राइमरी शिक्षोन्नति में कहाँ तक समुचित साधन बन सकता है, इस पर भी विचार करना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा का क़ानून सन् १९२१ में स्वीकृत किया गया था। इसी के अनुसार इन प्रान्तों में इन्टर्मीडियेट और हाईस्कूल की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम और परीक्षाओं का प्रबन्ध इन्टर्मीडियेट बोर्ड के अधीन है।

केवल चार श्रेणियों की शिक्षा के लिए शिक्षा-विभाग उत्तरदायी है। वे हैं—हिन्दी-मिडिल, अँगरेज़ी-मिडिल, हाई-स्कूल-परीक्षा, और इन्टर्मीडियेट। संयुक्त-प्रान्त में केवल ७४८ वर्नाक्यूलर-मिडिल-स्कूल हैं। इनका प्रबन्ध म्यूनिस्पल और ज़िला-बोर्डों के द्वारा होता है। ६४७ स्कूलों का प्रबन्ध ज़िला-बोर्डों, ३१ स्कूलों का प्रबन्ध म्यूनिस्पल बोर्डों के द्वारा होता है। वर्नाक्यूलर-फ़ाइनल-परीक्षा में अब ३५,००० परीक्षार्थी बैठते हैं, जिनमें से ६० % प्रतिशत पास होते हैं। मिडिल-स्कूल के प्रति लड़के का ख़र्च २१) मासिक पड़ता है। फ़ीस ।=) आना प्रति मास है।

अँगरेज़ी मिडिल स्कूलों की संख्या १०१ है। ये स्कूल किसी परीक्षा के लिए नहीं पढ़ाते, प्रत्युत हाईस्कूल परीक्षा के कोर्स की तैयारी करते हैं। इनमें १२,००० छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं।

२०३ हाईस्कूल संयुक्त-प्रान्त में हैं। ४८ स्कूलों का सरकार-द्वारा, ४ स्कूलों का म्युनिस्पल-बोर्ड-द्वारा, १४८ का सरकारी सहायता-प्राप्त सार्वजनिक संस्थाओं-द्वारा तथा ३ स्कूलों का रजिस्टर्ड संस्थाओं-द्वारा (जिन्हें सरकारी सहायता नहीं मिलती) संचालन होता है। इनमें ८४,००० छात्र पढ़ते हैं। हाई-स्कूल-परीक्षा में १४,००० छात्र सम्मिलित हुए, जिनमें से ८,००० पास हो गये।

इस प्रान्त में ३४ इन्टर्मीडियेट कालेज हैं। इनमें ८ सरकारी, २४ सहायता-प्राप्त तथा २ सहायता-रहित हैं। इनमें ६,००० छात्र हैं। ५,००० छात्र इन्टर्मीडियेट-परीक्षा में सम्मिलित होते हैं। ३,००० पास हो जाते हैं।

अध्यापकों के शिक्षण के लिए ६ संस्थायें हैं। ३ कालेज ग्रेजुएटों को शिक्षण देते हैं। इन कालेजों की पदवी एल० टी० या बी० टी० है। ३ स्कूलों में हाई-स्कूल-परीक्षोत्तीर्ण छात्र शिक्षण प्राप्त करते हैं। इन्हें सी० टी० की पदवी मिलती है।

इस प्रकार रिपोर्ट में शिक्षा-प्रणाली का दिग्दर्शन कराकर उसके सम्बन्ध में कमिटी ने निम्नलिखित सिफ़ारिशें की हैं—

(१) हाईस्कूल-परीक्षा के लिए दो प्रकार के सार्टीफ़िकेट होने चाहिए। एक प्रमाणपत्र-द्वारा यह प्रमाणित हो कि माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम समाप्त कर लिया है और परीक्षोत्तीर्ण छात्र औद्योगिक, व्यापारिक तथा कृषि-स्कूलों में प्रविष्ट होने के योग्य है। दूसरे प्रमाण-पत्र-द्वारा यह प्रमाणित होना चाहिए कि परीक्षोत्तीर्ण छात्र आर्ट (कला) या सायंस (विज्ञान) के इन्टर्मी-डियेट कालेज में भर्ती होने के योग्य हैं।

(२) इन्टर्मीडियेट का पाठ्यक्रम, यदि हाई स्कूल का पाठ्य-क्रम १ वर्ष कम कर दिया जाय, ३ वर्ष का कर देना चाहिए। इन्टर्मीडियेट का पाठ्यक्रम चार प्रकार का होना चाहिए—(१) औद्योगिक, (२) व्यापारिक, (३) कृषि, (४) कला और विज्ञान।

(३) कमिटी की यह सम्मति है कि इन्टर्मीडियेट पाठ्य-क्रम में विविध विषयों की क्रियात्मक शिक्षा सम्मिलित की जानी चाहिए।

(४) ऐसी संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए जो लड़कों को उनके भावी जीवनोपार्जन-सम्बन्धी व्यवसायों के सम्बन्ध में परामर्श दें।

औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा

सन् १९०७ की नैनीताल-कान्फ़रेंस के बाद सरकार ने इस प्रान्त में औद्योगिक शिक्षा की ओर कुछ ध्यान दिया है। सन् १९१० में केवल ४ सरकारी संस्थायें थीं जिनमें उद्योग-धन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध था। इस समय कानपुर के हरकोर्ट-बटलर-इन्स्टीट्यूट के अतिरिक्त २४ सरकारी स्कूल हैं, जिनमें उद्योग-शिक्षा दी जाती है। ४६ संस्थायें ऐसी हैं जिन्हें सरकारी सहायता मिलती है। ९,३८,००० रुपये प्रतिवर्ष औद्योगिक शिक्षा पर व्यय किये जाते हैं।

इस सम्बन्ध में बेकारी-कमिटी ने जो जाँच-पड़ताल की और उससे जो निष्कर्ष निर्धारित किये हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) संयुक्त-प्रान्त में औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा की सबसे अधिक आवश्यकता है।

(२) खरेघाट-कमिटी ने जो सिफ़ारिशें की हैं उनसे बेकारी-कमिटी पूर्णतया सहमत है—

(१) औद्योगिक शिक्षण के लिए पर्याप्त सुविधायें दी जायँ।

(२) साधारण स्कूलों में जो औद्योगिक शिक्षा दी जाय वह ऐसी होनी चाहिए जिससे छात्रों में औद्योगिक बुद्धि का आविर्भाव प्रारम्भिक अवस्था में हो जाय।

(३) ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे फ़र्म, कारख़ाने आदि में छात्र उचित फ़ीस देकर शिक्षण प्राप्त कर सकें।

(४) कारीगरों के लड़कों की शिक्षा के लिए प्राथमिक औद्योगिक स्कूल स्थापित किये जायँ।

(३) औद्योगिक शिक्षा का पुनर्संगठन और पुनर्निर्माण इस प्रकार से किया जाय जिससे छात्रों को अधिक सुवि-धायें और योग्यता प्राप्त हो सके।

(४) कमिटी की सम्मति में नवीन औद्योगिक और व्याव-सायिक स्कूलों की स्थापना ही पर्याप्त नहीं है और न वर्तमान स्कूलों का पुनर्संगठन ही यथेष्ट हो सकता है। जब तक ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं किया जायगा जिससे टेक्निकल स्कूलों से निकले हुए छात्र नये धन्धों के कार्यों में लग न जायँ तब तक बेकारी की समस्या हल नहीं हो सकती। यदि इन स्कूलों की उपज की ठीक प्रकार से सन्तोषप्रद खपत नहीं हुई तो सरकार और समाज के सामने नवीन कठिनाइयाँ प्रस्तुत हो जायँगी।

(५) प्रान्त के कतिपय भागों में व्यवसाय-पथप्रदर्शक अधि-कारियों की नियुक्ति उद्योग-विभाग-द्वारा की जानी चाहिए। इस अधिकारी-वर्ग में उद्योग-शिक्षकों तथा विविध उद्योगों के प्रतिनिधियों की नियुक्ति होनी चाहिए। इन अधिकारियों को केवल मात्र औद्योगिक शिक्षा को ही प्रोत्साहन न देना चाहिए, प्रत्युत स्थानीय तथा आस-पास की शिक्षा-संस्थाओं और उद्योगों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। यही नहीं, इन स्कूलों से निकले छात्रों को इन उद्योगों में रोज़गारी प्राप्त कराने में सहायता देनी चाहिए।

(६) सरकार के उद्योग-विभाग को इस संबंध में आवश्यक सूचनाओं को प्रकाशित कर उद्योगों में दिलचस्पी रखनेवाली जनता का हितसाधन करना चाहिए।

विश्व विद्यालय की शिक्षा

इन प्रान्तों में पाँच विश्व-विद्यालय हैं—आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, हिन्दू-यूनीवर्सिटी बनारस, मुसलिम-यूनीवर्सिटी अलीगढ़। सन् १९३३-३४ में ७,८६७ छात्र इन विश्व-विद्यालयों में शिक्षा पा रहे थे। संयुक्त-प्रान्त की जन-संख्या ४,८४,०८,७६३ है। सन् १९३२ में विश्व-विद्यालयों में १०,६८७ छात्र थे। सन् १९३२-३३ में १,३९७ छात्रों ने 'आर्ट' और 'सायंस' में पदवियाँ प्राप्त कीं। इन छात्रों या स्नातकों में क़ानून या मेडिकल या इंजीनियरिङ्ग के स्नातक सम्मिलित नहीं हैं। इस प्रकार यूनीवर्सिटियों के छात्रों का जन-संख्या से अनुपात १:४५३५ का है और स्नातकों का जन-संख्या से अनुपात है १:३४८०९। अर्थात् ३४,८०९ व्यक्तियों में १ ग्रेजुएट है। इन आँकड़ों का अध्ययन करने के बाद हम इस परिणाम पर कदापि नहीं पहुँचते कि जन-संख्या की दृष्टि से ग्रेजुएटों की संख्या बहुत अधिक है। परन्तु बेकारी की समस्या तो इन आँकड़ों से कूतना उचित नहीं। वास्तव में प्रश्न तो यह है कि यूनीवर्सिटी की डिग्री प्राप्त करने के बाद ये ग्रेजुएट जीविकोपार्जन में कहाँ तक समर्थ होते हैं। बेकारी की भीषणता का अनुभव इसी विचार-सरणि-द्वारा हो सकता है। यूनीवर्सिटी की फ़ीस बढ़ा दी जाय, इस प्रश्न पर कमिटी के सदस्यों में मतभेद है। कमिटी ने इस विषय में अधिक विस्तार से जाँच नहीं की है; अतः कोई सिफ़ारिश करना भी संभव नहीं।

विश्व-विद्यालय की शिक्षा के सम्बन्ध में प्रयाग-विश्व-विद्यालय के वायस चान्सलर पंडित इक़बाल नारायण गुर्टू ने अपने वक्तव्य में कुछ ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक बातें लिखी हैं। हम संक्षेप में उन्हें यहाँ देते हैं—

"जर्मन-विश्व-विद्यालयों में सन् १९२४ में ६०,००० छात्र थे। सन् १९३० में १ लाख तक संख्या हो गई। ऐसा अनुमान किया जाता है कि विगत ७५ वर्षों में जहाँ अमरीका की जन-संख्या तिगुनी हो गई, वहाँ यूनीवर्सिटियों में छात्रों की संख्या १४ गुनी अधिक हो गई। पिछले २० वर्षों में अमरीका के विशाल विश्व-विद्यालयों की अतिशय वृद्धि हुई है। फ़्रांस के विश्व-विद्यालयों की भी यही दशा है। जर्मन-विश्वविद्यालयों के छात्रों का जन-संख्या से अनुपात १:६९०, स्काटलेंड के विश्वविद्यालयों के छात्रों का जन-संख्या से अनुपात १:४५५ तथा संयुक्त-राष्ट्र (अमरीका) के छात्रों और जन-संख्या का अनुपात १:१२५ का है।"

बेकारी कमिटी की यह दृढ़ सम्मति है कि विश्वविद्यालयों में छात्रों की संख्या में न्यूनता करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उच्च शिक्षा अधिक क़ीमती बना दी जायँ अथवा मनमाने ढंग से कम छात्र भर्ती किये जायँ। ये दोनों ही ढंग किसी भी दशा में सन्तोषप्रद फल नहीं प्रदान कर सकते।

(१) कमिटी इस परिणाम पर पहुँची है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है।

(२) विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रों की संख्या में न्यूनता करने के लिए स्वेच्छापूर्वक कम भर्ती करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कमिटी की (१) माध्यमिक शिक्षा-संबन्धी, (२) टेक्निकल व औद्योगिक शिक्षा-सम्बन्धी तथा (३) निम्नस्थ सरकारी नौकरी के लिए आयु-अवधि कम कर देने के सम्बन्ध में सिफ़ारिशें कार्यान्वित की गईं तो विश्वविद्यालयों में प्रवेश के इच्छुक छात्रों की संख्या स्वतः कम हो जायगी।

(३) यूनीवर्सिटी में छात्रों का प्रवेश करते समय बड़ी सावधानी और सख़्ती से काम लेना चाहिए। जिन छात्रों ने इन्टर्मीडिएट या हाईस्कूल की परीक्षा तृतीय श्रेणी में पास की हो उनको भर्ती करना अनिवार्य न माना जाय। यदि तृतीय श्रेणी किसी अनिवार्य कारण अथवा रोग अथवा स्वास्थ्यहीनता के कारण मिली हो तो उस पर विचार कर छात्र ले लिया जाय।

(४) कमिटी केवल ज्ञान के लिए शिक्षा प्राप्त करने की प्रवृत्ति को बुरा नहीं समझती। परन्तु वैज्ञानिक और व्यावसायिक शिक्षा पर ही अधिक ज़ोर दिया जाय।

(५) विश्वविद्यालयों के विज्ञान-विभाग में, धनाभाव के कारण, एक परिमित सीमा तक ही कार्य होता है। प्रयाग, बनारस और अलीगढ़ की यूनीवर्सिटियों में

कुछ उद्योग-वेत्ताओं ने उद्योग-सम्बन्धी समस्यायें जाँच और परीक्षा के लिए भेजी हैं। विज्ञान-विभागों के परीक्षण-कार्य और उद्योगों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। उद्योगों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर 'रिसर्च' की जानी चाहिए। इस कार्य से देश के आर्थिक विकास में बहुत सुधार हो सकता है। कमिटी की यह राय है कि यूनीवर्सिटी के विज्ञान-विभाग को जो धन-सम्बन्धी सहायता सरकार-द्वारा की जाय तब उसका एक निश्चित भाग उद्योग-सम्बंधी रिसर्च के लिए सुरक्षित रख दिया जाय। उसके लिए यूनीवर्सिटी की 'सीनेट' या 'कोर्ट' में विविध उद्योगों के हितों का प्रतिनिधित्व अतीव आवश्यक है।

(६) सब विश्वविद्यालयों को परस्पर मिलकर एक समान स्टेंडर्ड का निश्चय कर लेना चाहिए, जिससे परस्पर प्रतिस्पर्द्धा न होने पावे।

(७) एक परामर्शदायिनी समिति का निर्माण किया जाय, जो शिक्षा-मंत्रि-मंडल को विश्वविद्यालयों में 'रिसर्च' के प्रोत्साहन के निमित्त आर्थिक सहायता के सम्बन्ध में परामर्श दे और उस समिति में धन्धे, व्यवसाय, व्यापार, उद्योग तथा कृषि के प्रतिनिधि भी हों।

(८) ब्रिटेन में भारतीय छात्र अपनी शिक्षा के निमित्त ९७½ लाख रुपये प्रतिवर्ष व्यय करते हैं। २५०० विद्यार्थी ब्रिटेन में शिक्षा पाते हैं। लन्दन के श्री सुवर्ण एस० सिंह का कथन है कि बहुत कम विद्यार्थी ऐसे हैं जो ज्ञानोपार्जन के हेतु इँग्लेंड जाते हैं अथवा अपने विषय में पांडित्य या प्रवीणता प्राप्त करने की इच्छा से जाते हैं। अधिकांश विद्यार्थी वहाँ 'डिग्री' प्राप्त करने की लालसा से जाते हैं, जिससे भारत के बाज़ार में उनका मूल्य अधिक हो जाय। लन्दन तथा दूसरे शहरों के पी० एच० डी० अथवा डी० एस० सी० नौकरियाँ प्राप्त करने में विफल रहते हैं।

अतः विदेशों में उन्हीं विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने जाना चाहिए जिनका विद्यार्थी-जीवन भारत में बहुत ही शानदार रहा हो। जो वास्तव में ज्ञान प्राप्त कर अपने देश में उसका प्रकाश करने के लिए लालायित हों वही विदेशों में जाकर अपना धन व्यय करें। कमिटी की यह राय है कि यदि ९७½ लाख रुपये भारतीय विश्व-विद्यालयों की शिक्षा के सुधार में व्यय किये जायँ तो स्थिति में बहुत सुधार हो सकता है।

संरक्षकों एवं छात्रों को व्यवसायों के सम्बन्ध में परामर्श

विदेशों में शिक्षितों की बेकारी ने मनोवैज्ञानिकों का ध्यान एक बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित किया है। छात्रों और उनके अभिभावकों को परामर्श देने की आवश्यकता का अनुभव बड़े बड़े विद्वान् मनोवैज्ञानिकों को होने लगा है। जब छात्र स्कूल में पढ़ने के लिए जाता है तब माता-पिता के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी मनोविज्ञान के प्रोफ़ेसर से अपने पुत्र की मानसिक परीक्षा कराकर यह निश्चय करे कि वह अपने भावी जीवन में किस व्यवसाय को ग्रहण करने की योग्यता रखता है। क्या उसकी मानसिक शक्तियाँ इस योग्य हैं कि वे विश्वविद्यालय की शिक्षा को ग्रहण कर सकेंगी? क्या उसका मानसिक विकास कला के क्षेत्र में चमत्कार दिखला सकेगा? क्या उसका मस्तिष्क विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के योग्य है? क्या उसका मस्तिष्क उद्योग-धन्धे, व्यवसाय, व्यापार अथवा कृषि आदि को भली भाँति विकसित करने में कुछ सहायक बन सकता है? इन और ऐसे ही अनेक प्रश्नों पर विचार कर माता-पिता व उसके पुत्र को परामर्श प्राप्त करना चाहिए।

स्कूलों के मुख्याध्यापकों को चाहिए कि वे प्रारम्भ से अपने छात्रों की मानसिक शक्तियों का अध्ययन करें। ऐसा करने से वे उनके माता-पिताओं को सच्ची और हितप्रद सलाह दे सकेंगे।

यदि हमारे स्कूलों में वर्तमान मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के अध्ययन में कुशल तथा प्रवीण अध्यापक न मिलें तो इँग्लेंड से इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक बुला लिये जायँ और वे हमारे स्कूलों के अध्यापकों को शिक्षण दें।

विविध विश्वविद्यालयों में शिक्षा-मनोविज्ञान तथा परीक्षणात्मक मनोविज्ञान-सम्बन्धी खोज के लिए यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिए।

उपसंहार

सरकार की नीति

(१)

विगत मार्च २ व ३ सन् १९३६ को लखनऊ में

संयुक्त प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में यू० पी० बेकारी कमेटी की रिपोर्ट पर जो वाद-विवाद, बहस और भाषण हुए उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि सरकार और समाज दोनों ही बेकारी की भीषणता को स्वीकार करते हैं।

परन्तु सरकार बेकारी को एक 'सबसे अधिक गम्भीर समस्या' स्वीकार करती हुई भी उसके निवारण के लिए कोई कारगर और कुशल साधन काम में लाने को तैयार नहीं है।

बेकारी-कमिटी की रिपोर्ट में जो सिफ़ारिशें की गई हैं वे कई भागों में विभाजित की जा सकती हैं।

(१) कतिपय सिफ़ारिशें ऐसी हैं जो उसी समय मनोवाञ्छित फल प्रदान कर सकती हैं जब शिक्षित युवकों, उनके अभिभावकों और माता-पिताओं की मनोवृत्ति में मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाय। शिक्षित नवयुवकों को डाक्टरी, वकालत आदि जैसे व्यवसायों के पीछे पागल न हो जाना चाहिए, सरकारी नौकरियों को अपना अन्तिम ध्येय न बनाना चाहिए, इनके अतिरिक्त और अनेक व्यवसाय और अर्थोत्पादक धन्धे हैं जो कम सम्माननीय और कम लाभदायक नहीं हैं।

(२) रिपोर्ट में ऐसी भी अनेक सिफ़ारिशें है जो केवल भारत-सरकार-द्वारा ही कार्यरूप में परिणत की जा सकती हैं। मुद्रानीति, विनिमय, आयात-निर्यात-कर आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनका नियमन भारत-सरकार के हाथों में है। प्रान्तीय सरकार इनके सम्बन्ध में भारत-सरकार से सिफ़ारिश कर सकती है।

(३) तीसरी प्रकार की सिफ़ारिशें वे हैं जिन्हें प्रान्तीय सरकार कार्य-रूप में परिणत कर सकती है। प्रान्तीय सरकार-द्वारा कार्यान्वित होने योग्य इन सिफ़ारिशों में से कुछ ऐसी हैं जिनके लिए नवीन व्यय की आवश्यकता नहीं है। उदाहरणार्थ, शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए जो सिफ़ारिशें की गई हैं उनके लिए धन की आवश्यकता नहीं है। प्रान्तीय सरकार को इन और ऐसी सिफ़ारिशों को कार्यरूप में लाने के लिए शीघ्र प्रयास करना चाहिए। बहुत समय तक इनकी परीक्षा में समय लगाना व्यर्थ के लिए एक लँगड़ा बहाना ढूँढ़ना है। शिक्षा-सचिव तथा उनके अधीनस्थ अफ़सरों का यह कर्तव्य है कि वे शिक्षा-सम्बन्धी ऐसी सिफ़ारिशों को चुन लें और उन्हें शीघ्र ही काम में लाने का प्रयत्न करें।

कुछ सिफ़ारिशें ऐसी हैं जिनको कार्यान्वित करने के निमित्त नवीन आय की आवश्यकता है।

अस्तु, यदि सरकार बेकारी को दूर करना चाहती है तो उसे बड़ी लगन और उत्साह से इस बुराई को दूर करने में सभी उचित उपायों का प्रयोग करना चाहिए।

समाज का कर्त्तव्य

(२)

बेकारी-कमिटी की रिपोर्ट पर भाषण करते हुए यू० पी० कौंसिल में सर तेजबहादुर सप्रू ने कहा है--"मैं यह कहता हूँ कि यह समस्या ऐसी है जिसका समाधान किसी राष्ट्रीय या विदेशी सरकार के द्वारा उस समय तक सम्भव नहीं है जब तक सरकार और भारतीय समाज अति अधिक सहयोग से इसका समाधान न करें। हमें अपना दृष्टि-कोण बिलकुल बदल देना होगा।"

इन शब्दों में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि बेकारी को दूर करने का सारा दायित्व केवल मात्र सरकार पर ही नहीं है, समाज भी इसके लिए उत्तरदायी है। सप्रू साहब ने आगे कहा है—

"अगर मैं ६० वर्ष का न होता; परन्तु २० वर्ष का होता और मुझे यह मालूम होता कि समाज ने जिसका मैं एक सदस्य हूँ और सरकार ने जिसकी मैं एक प्रजा हूँ, मेरे लिए यह असम्भव कर दिया है कि मैं सज्जनोचित जीविकोपार्जन से इतना प्राप्त कर सकूँ कि मुझे दिन में दो बार भोजन मिल जाय, तो क्यों मेरी विचारधारा वैसी न होती जैसी कि आज-कल के नवयुवकों की है। इसलिए मैं कहता हूँ कि इस राजनैतिक असन्तोष, इस सरकार-विरोधी आन्दोलन का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है जो आज पदों को सुशोभित किये हुए हैं, जो इस कौंसिल में सम्मिलित हैं, जिन्होंने अपने नवयुवकों के प्रति अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की है। यह समय इस मामले में आन्दोलन करने का है; अन्यथा हम उस बाढ़ में बह जायँगे, जो मुझे स्पष्ट दिखलायी देती है, जिससे यह प्रान्त जलमग्न हो जायगा यदि इस युग के प्रौढ़ व्यक्ति उन समस्याओं में कोई दिलचस्पी न लेंगे जिनका सम्बन्ध नवयुवकों से है।"

पाठकों के पत्र

ठाकुर गोपालशरणसिंह

इस मास (जुलाई) की 'सरस्वती' में ठाकुर गोपालशरणसिंह की जो सुन्दर कविता प्रकाशित हुई है उसके लिए मैं 'सरस्वती' के एक पाठक की हैसियत से उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कहाँ जायँ, किसको सुनावें दुःख-गाथा निज,
कौन सुनता है दुःखियों की त्रिभुवन में॥

ठाकुर साहब ने इन पंक्तियों में जो बात कही है उसे अबीसीनिया के पराजित सम्राट् हेल सिलासी ने योरप के सभ्य राष्ट्रों के सामने अपनी सहायता की विफल अपील के द्वारा साकार रूप दे दिया है। मेरा ख़याल है कि ये पंक्तियाँ उस दुःखी सम्राट् के पास भेजी जायँ तो उन्हें बहुत कुछ सान्त्वना मिल सकती है। कविता का एक उद्देश दुःखी हृदय को शान्ति प्रदान करना भी है और इस दृष्टि से ठाकुर साहब की यह कविता अनुपम है।

—भालचन्द्र शर्मा, कानपुर

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण

हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के सम्बन्ध में श्रीयुत दत्तात्रय बाबले का लेख अधिकांश पाठकों ने पढ़ा होगा। लेखक महोदय ने इसके बहुत-से कारण बताये हैं। वे सब ठीक हो सकते हैं। पर मेरी राय में इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दू-स्त्री को आर्थिक स्वाधीनता नहीं है। पिता की जायदाद में लड़की का कोई हक़ नहीं और विधवा होने पर पति की जायदाद में भी उसे कुछ नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में जब तक उपयुक्त क़ानून नहीं बनेंगे तथा स्त्रियों को आर्थिक स्वाधीनता प्रदान करने के और भी उपाय नहीं सोचे जायँगे तब तक हिन्दू-स्त्रियों का विधर्मियों के हाथ में जाना रुक नहीं सकेगा।

—रामनारायण खत्री, दिल्ली

नोट—इस सम्बन्ध में हमें एक पत्र श्री लक्ष्मीनारायणसिंह (बाँक) का भी प्राप्त हुआ है। आप लिखते हैं—"इस विषय में अभी और भी बातें विचारणीय हैं। क्या कोई महानुभाव इस पर व्यापक दृष्टि डालकर हिन्दू-जनता का उपकार करेंगे?"

काँटों की इच्छा

इस मास (जून) की 'सरस्वती' में मैंने कण्टक शीर्षक कविता बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी। कवि ने लिखा है कि फूल इसलिए तोड़े जाते हैं कि उनकी मालायें बनाई जायँ और किसी विजयी के उर में डाली जायँ। पर यदि काँटों के जिह्वा होती तो वे फूल तोड़नेवालों से चिल्ला कर कहते कि मुझे भी ले चलो और उस विजयी के गले में डालो। शायद इस इच्छा से कि फूलों को मलिन करनेवाले उस विजयी के उर में चुभ कर वे उसे समुचित दंड दे सकें। पर काँटों की यह इच्छा कविता से स्पष्ट नहीं होती। क्या कवि महोदय उसे स्पष्ट करने की कृपा करेंगे।

—एक कविता-प्रेमी।

बधाई

मुझे उपन्यास और कहानियों से अत्यधिक प्रेम है। इधर 'सरस्वती' में कई सुन्दर कहानियाँ निकली हैं और एक मज़ेदार धारावाहिक उपन्यास भी छपने लगा है। इस सबके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। अन्य पत्रों में मुझे कतिपय नामी लेखकों की कहानियाँ पढ़ने को मिली हैं, पर अधिकांश में उनके नाम के सिवा मुझे उनमें कोई रस नहीं मिला। यह हर्ष की बात है कि आप इन नामों के पीछे नहीं पड़ते और चुनकर अच्छी ही कहानी छापते हैं। उदाहरण के लिए मैंने श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का कहीं नाम भी न सुना था, पर उनकी 'उदयअस्त' कहानी 'सरस्वती' में पढ़ी तब तबीयत ख़ुश हो गई। श्री दुर्गादास भास्कर और श्री मोहनलाल नेहरू की भी मैंने कहानी-लेखक के रूप में बहुत प्रशंसा नहीं सुनी, पर उनकी भी कहानियाँ ग़ज़ब की होती हैं। मेरा तो खयाल है कि हिन्दी में अच्छी कहानियों का अभाव नहीं है। अभाव है अच्छे समालोचकों का, जो अच्छी कहानियों को जनता के सामने लावें।

—रामनगीनासिंह, जयपुर-राज्य

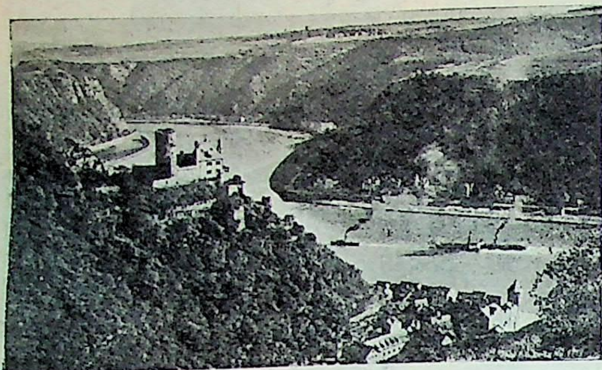


जर्मनी का प्रसिद्ध नगर म्युनिच और अन्य नगर

लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष

लिपज़िग में मेरे मित्र बाबू बनवारीलाल ने, योरपीय कारख़ानों के भ्रमण से थक जाने के कारण, लन्दन जाने की इच्छा प्रकट की। हमने उनको रोकने की चेष्टा की पर हमें सफलता नहीं मिली। लगभग एक महीने के इस नीरस साथ के लिए उन्होंने हमें बहुत कुछ बुरा भला कहा। वे योरपीय शहरों का नागरिक जीवन देखने आये थे और हमारे कार्य्य-क्रम से स्वभावतः ऊब गये थे। इसलिए एक दिन हमने उन्हें लिपज़िग स्टेशन पर पेरिस और कैले जानेवाली पश्चिम की गाड़ी से रवाना किया। जर्मनी में हमारा कार्य्य-क्रम लम्बा था। हमें कुछ और औद्योगिक केन्द्र देखने थे, विशेष कर म्युनिच और राइनलैंड जिसका कि जर्मनी को बड़ा गर्व है। लिपज़िग के होटल ने, जहाँ हम ठहरे थे, हमारा कार्य्य-क्रम बनाने में बड़ी सहायता की। परन्तु निश्चित दिन को हम रवाना न हो सके क्योंकि श्रीयुत दास गुप्त के एक मित्र ने हमें गेटे क्लब में ख़ास तौर से आमंत्रित किया। यह प्रबुद्ध जर्मन विद्वान् के एक नमूना थे, पोशाक की ओर से बिलकुल लापरवाह परन्तु प्रथम श्रेणी के कवि। इनका भाषा-सम्बन्धी ज्ञान भी आश्चर्य्यजनक था। ये विशुद्ध उच्चारण के साथ अँगरेज़ी बोल सकते थे। औसत दर्जे के जर्मनों के लिए, जो सरलता से अपने स्वर पर क़ाबू नहीं पा सकते यह एक चमत्कार ही था।

लिपज़िग का गेटे क्लब जर्मन विद्वानों का बड़ा ही प्रिय आश्रय-स्थल है। यह क्लब वास्तव में एक बहुत बड़े और अत्यन्त पुराने मकान के नीचे के भाग में एक विश्राम-गृह है। यहाँ गेटे प्रायः आया करते थे और वर्तमान संतति से उनकी स्मृति का सांनिध्य स्थापित करने के लिए उनके समय की बहुत सी कुर्सियाँ आदि सुरक्षित रक्खी गई हैं। यहाँ बहुत-से प्रसिद्ध व्यक्तियों ने हमारा स्वागत किया और एक घंटे तक हमने अपने देश के महान् संस्कृत के कवियों के सम्बन्ध में बातें कीं। अतिथियों में कई एक प्राच्य-विद् भी थे। उनका प्राच्य साहित्य का इतना अध्ययन था कि उन्होंने हमें चकित कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से अधिकांश प्राच्य दर्शन का मर्म नहीं समझते थे। तथापि उन्हें इस विषय का यथेष्ट ज्ञान था। हमारे महान् कवि रवीन्द्रनाथ जर्मनी के साहित्यिक मनुष्यों में बहुत विख्यात हैं। उनकी बहुत सी पुस्तकें जर्मन-भाषा में अनूदित हो गई हैं। महात्मा गांधी भी बहुत विख्यात हैं।

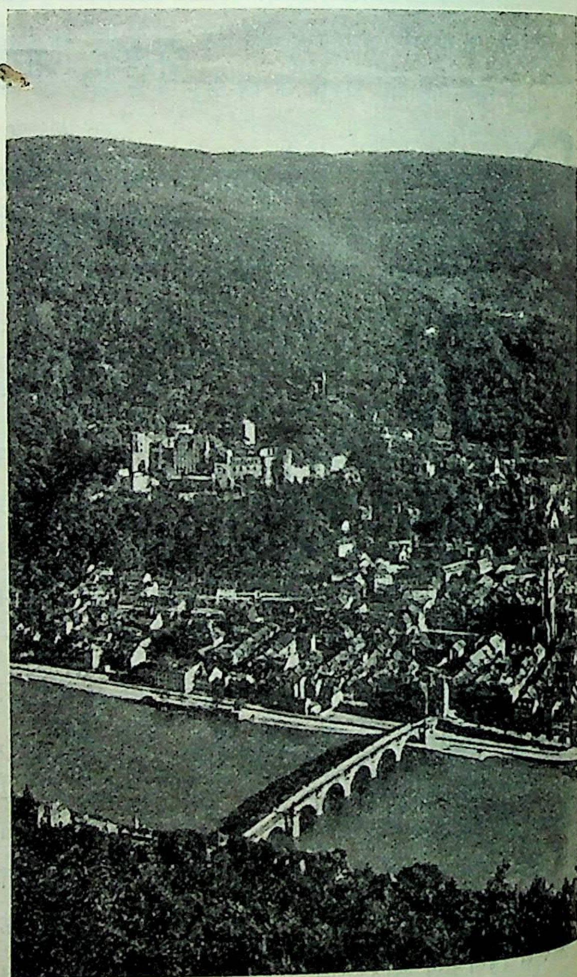


[राइनलैंड का एक दृश्य ।]

पर कांग्रेस से उनके अलग हो जाने से उनकी प्रसिद्धि कुछ कम हो गई है। एक प्रसिद्ध प्रकाशक ने मुझसे गीताञ्जलि की बिक्री के बारे में पूछा। मैंने टाल जाने की कोशिश की क्योंकि भारतवर्ष में पुस्तकों की इतनी कम बिक्री है कि उनका ज़िक्र न करना ही अच्छा है। केवल जर्मन-भाषा में गीताञ्जलि की ५०,००० प्रतियाँ बिक चुकी हैं और लगभग १० योरपीय भाषाओं में वह प्रकाशित हो चुकी है। लिपज़िग में मैंने यह अनुभव किया कि यदि हमारी आर्थिक स्थिति सुधर जाय और लोगों के लिए पुस्तकावलोकन विलास की वस्तु न रह कर आवश्यकता और संस्कृति का एक अङ्ग बन जाय तो भारतवर्ष में भी पुस्तक-प्रकाशन का कार्य्य बहुत अच्छा हो सकता है। आपको यह सुनकर आश्चर्य्य होगा कि वहाँ कुछ लोक-प्रिय पुस्तकों की १० लाख से अधिक प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। और वहाँ के पत्र पत्रिकाओं की तो कुछ बात ही न पूछिए। सम्पूर्ण जर्मनी में प्रत्येक व्यक्ति उन्हें पढ़ता है। अकेले लिपज़िग नगर में दो लाख से अधिक मनुष्य पुस्तक-प्रकाशन-कार्य्य और इससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायों में लगे हैं।

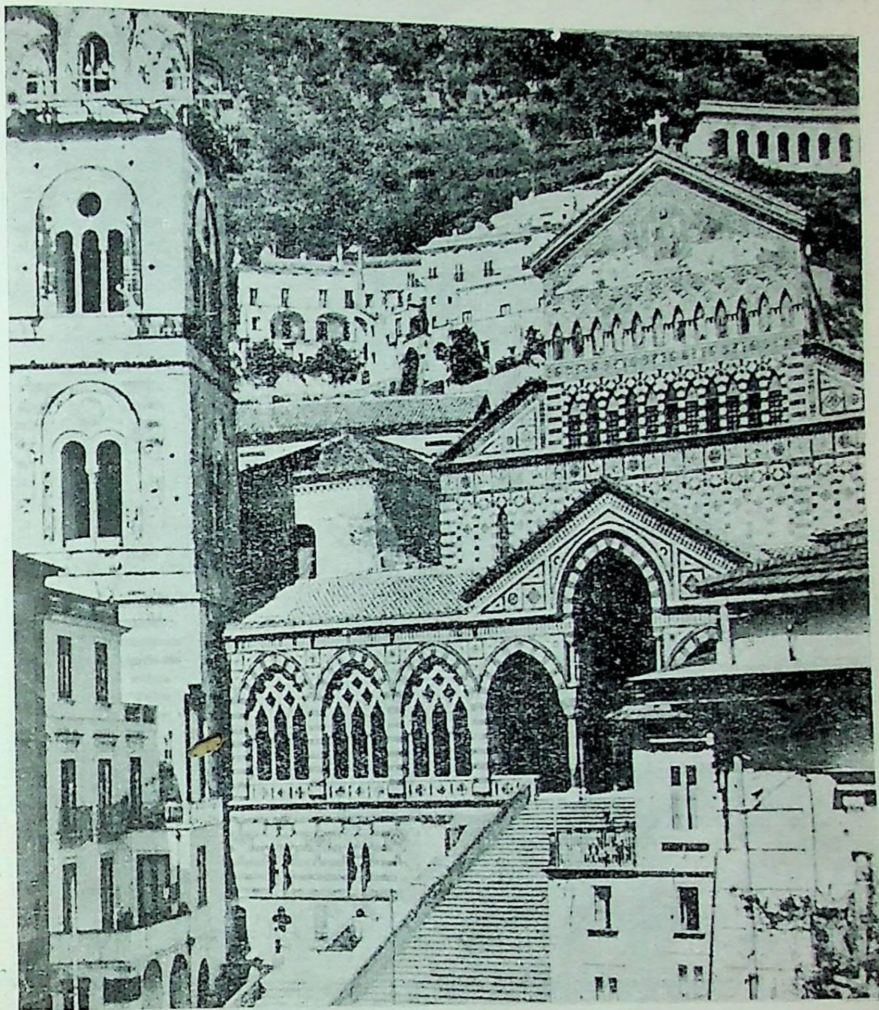
लिपज़िग अपनी वसन्तकालीन प्रदर्शनी के लिए प्रसिद्ध है। उस समय यहाँ योरप के समस्त भागों से लगभग २५ हज़ार यात्री जमा होते हैं। ये नवीन आविष्कार और टेकनिकल उद्योगों की विभिन्न शाखाओं की उन्नति देखने आते हैं। अमरीका, आस्ट्रेलिया, और दक्षिणी अमरीका की रियासतों से बड़े बड़े ख़रीदार यहाँ प्रतिवर्ष आते हैं। यहाँ के बड़े बड़े कारबारियों से माल भेजने के लिए लम्बे चौड़े-इक़रारनामे करते हैं। मुद्रण-व्यवसाय-सम्बन्धी तो इस नगर में योरप की सबसे बड़ी प्रदर्शनी लगती है।

एक दिन प्रातःकाल जब मैं होटल से बाहर आ रहा था, मेरी एक नवयुवक बङ्गाली विद्यार्थी से भेंट हुई। यह विद्यार्थी मेरे कलकत्ते के एक मित्र के दामाद थे और स्थानीय विश्वविद्यालय में वनस्पतिशास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। इन्हें यह समाचार मिला था कि मैं लिपज़िग में हूँ इसलिए ये मुझसे मिलने आये थे। ये दो दिन मुझे खेल और सन्ध्या के लोकप्रिय विश्राम-स्थान दिखाने ले गये। सम्पूर्ण महाद्वीप में ग्रीष्मकाल का जनता इतना आनन्द लेती है कि ऊपर से देखने से यह नहीं जान पड़ता कि यह देश अर्थ-संकट से पीड़ित है। सन्ध्या-समय सर्वत्र उपवनों और स्नान के केन्द्रों में प्रमुदित जन-समूह देख पड़ता है

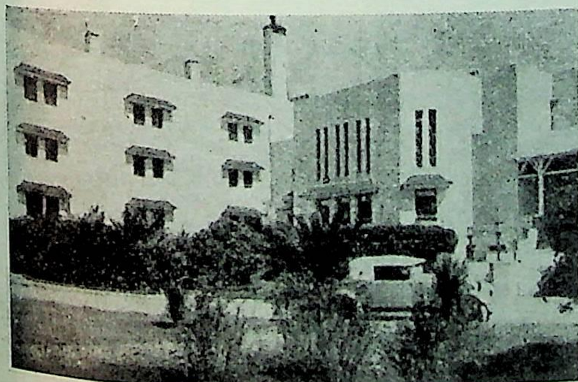


[पहाड़ के ऊपर से हाइडेलबर्ग शहर का एक दृश्य ।]

नवयुवक लोग टेनिस खेलते हुए नज़र आते हैं। मज़दूर स्त्रियाँ भी खुले मैदानों में खेल का आनन्द लेती हुई देख पड़ती हैं। सम्पूर्ण वायुमंडल ही आमोद-प्रमोद से पूर्ण प्रतीत होता है। कहीं किसी महामारी का नाम नहीं, बड़े बूढ़े तक टहलने के लिए निकलते हैं और प्रति-संध्या को उपवनों के शीतल समीर का आनन्द लेते हैं। पाइन के वृक्ष पंखा-सा झल कर इस बलवर्द्धक वायु की वृद्धि करते हैं और विश्रामगृह प्रमुदित युवकों और युवतियों से पूर्ण दिखाई पड़ते हैं। एक दिन जब मैं अपने नवयुवक मित्र के साथ एक बाग़ में घूम रहा था, स्थानीय विश्वविद्यालय-छात्राओं का एक दल हमारी ओर आकृष्ट हो गया। वे हमारे देश के सम्बन्ध में हमसे प्रश्न करने लगीं। उन्हें हमारे देश का अत्यल्प ज्ञान था। उनका ख़याल था कि हमारा देश धन-धान्य से पूर्ण है और उसमें बहुत ही धनी मनुष्य



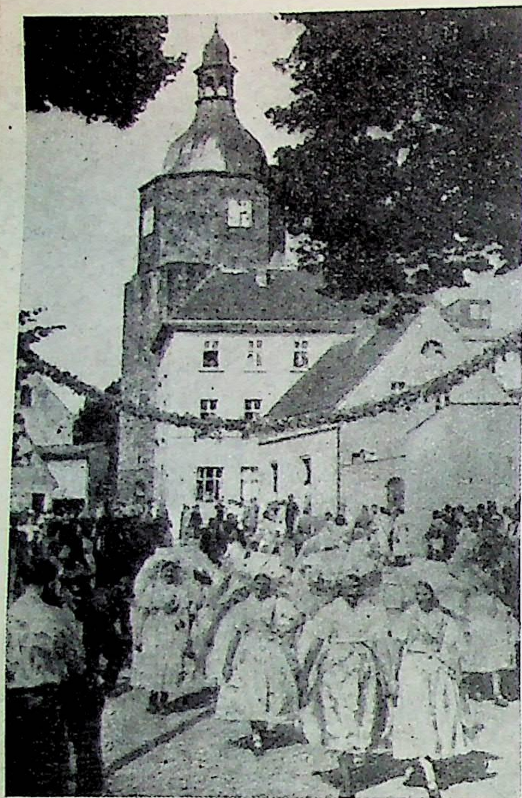
[११ वीं शताब्दी की एक इमारत।]

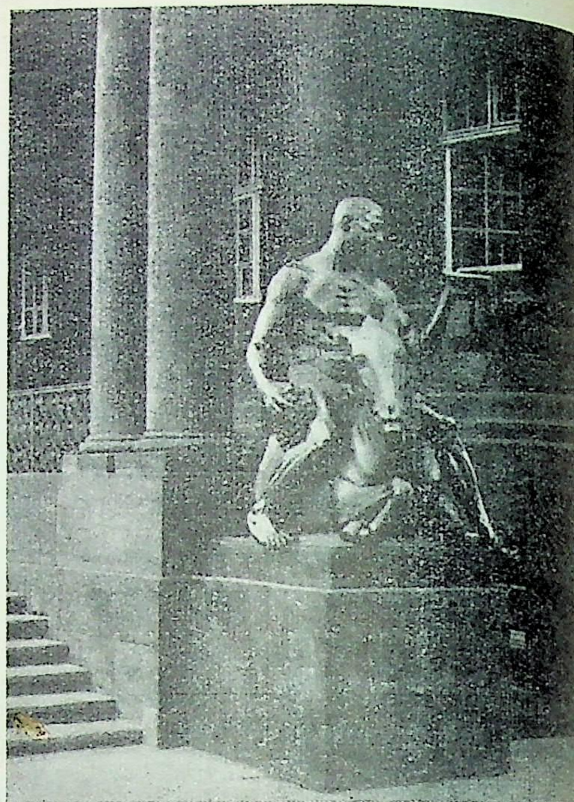


[होटल जिसका मार्ग मैं भूल गया था।]

निवास करते हैं। योरप के लोगों में हमारी आर्थिक दशा के बारे में यह ग़लतफ़हमी इसलिए है कि हमारे कुछ राजा और रईस जो इस महाद्वीप की यात्रा करते हैं, होटलों और विश्राम-गृहों में अपार धन लुटाते हैं। प्रत्येक भारतीय जो साफ़ा बाँधता है, अपार धन का स्वामी समझा जाता है। प्रत्येक भारतीय बड़ा धनी माना जाता है।

हाइल्डेलबर्ग जर्मन के एक शहर में मुद्रण-यंत्र बनानेवाले एक कारख़ाने में मुझे थोड़ा-सा काम था। इसलिए एक दिन सुबह के सुहावने समय में एक्सप्रेस ट्रेन से इस नगर की लम्बी यात्रा के लिए रवाना हो गया। यह मार्ग अधिकांश में राइनलैंड होकर गया था। राइन जर्मनी की महानदी है और एक अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश से होकर


[मेले में किसान स्त्रियाँ ।]


[राइन के तट पर संगमरमर की मूर्ति ।]

बहती है। इस नदी के दोनों किनारों पर बहुत-से बड़े बड़े औद्योगिक नगर स्थित हैं। औद्योगिक जर्मनी के लिए यह नदी एक बड़े जलमार्ग का भी काम देती है। नदी के दोनों किनारों पर अंगूर के सुन्दर बाग़ हैं और इन्हीं स्थानों में प्रसिद्ध जर्मन अंगूरी शराब के मुख्य कारख़ाने हैं। ऐसे एक स्थान पर हमने संगमरमर की एक सुन्दर मूर्ति घोड़े की पीठ पर देखी। इसके एक हाथ में अंगूर और दूसरे में प्याला था।

६ घंटे की यात्रा के बाद सन्ध्या-समय मैं हाइल्डेलबर्ग पहुँचा। मैंने वहाँ के कारख़ाने को अपने आने के सम्बन्ध में पहले ही सूचित कर दिया था इसलिए उनका एक आदमी मुझसे स्टेशन पर मिलने आया। उसने उसी समय मुझे स्टेशन के सामने एक होटल में ठहराया। वहाँ मैंने दूसरे दिन प्रातःकाल तक आराम किया। सारे जर्मनी में ख़ास ख़ास होटलों में अँगरेज़ी बोली जाती है। इससे यात्रियों को बड़ी सुविधा होती है। नहीं तो भोजन और अन्य सुविधाओं के सम्बन्ध में यात्रियों को होटल के कर्मचारियों से कहने में बड़ी कठिनाई होती। इस होटल का प्रधान अभ्यर्थनाकारी भारत में पाँच वर्ष रह चुका था इसलिए उसे एक भारतीय को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी सुविधाओं की ओर उसने ख़ास तौर से ध्यान दिया। लम्बी यात्रा के बाद मैं थक गया था इसलिए उसने मेरे लिए गर्म पानी से स्नान करने की व्यवस्था कर दी। दिन में बहुत अधिक गर्मी थी इसलिए इस स्नान से मुझे बहुत

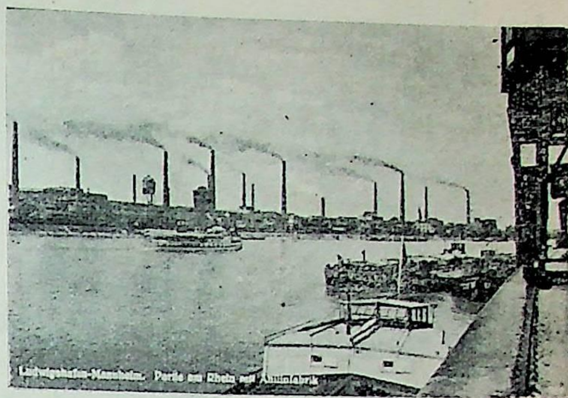

[म्युनिच शहर का एक दृश्य।]

आराम मिला। उसी दिन सन्ध्या को होटल के विश्राम-गृह में स्थानीय साहित्यिक क्लब की एक बड़ी बैठक हुई। ३० के लगभग व्यक्ति उपस्थित थे। वे सब ४० वर्ष से ऊपर थे और साहित्यिक प्रतीत होते थे। सभापति महोदय जो स्थानीय विश्वविद्यालय के प्रधान थे बहुत ही लोकप्रिय व्यक्ति प्रतीत होते थे। बहुत-सी स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं।

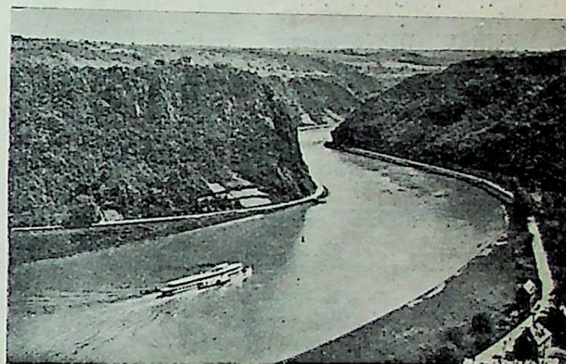
सबेरे जल-पान के बाद, जिस कारख़ाने में मुझे कुछ काम था, मैं उसमें ले जाया गया। मैंने उनका कारख़ाना भी देखा। दोपहर के भोजन के पहले मैंने अपना काम समाप्त कर दिया। उसके पश्चात् कारख़ाने के डाइरेक्टर ने नगर से तीन मील एक पहाड़ी पर एक शान्तिमय सराय में अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। यह अत्यन्त सुन्दर स्थान था जहाँ से नीचे के छोटे नगर का सम्पूर्ण सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। हाइल्डेलबर्ग का विश्वविद्यालय बहुत प्रसिद्ध है और इँगलेंड और अमरीका के विद्यार्थी प्रतिवर्ष यहाँ आते रहते हैं। भोजन के पश्चात् डाइरेक्टर महोदय मुझे हाइल्डेलबर्ग का प्राचीन 'कैसिल' दिखाने ले गये। यह 'कैसिल' पहाड़ी की चोटी पर एक सुन्दर स्थान में स्थित है। यह प्राचीन स्मृति-चिह्न बहुत अच्छी तरह सुरक्षित है और इसे देखकर यात्रीगण मध्य-काल के वैभव का अनुमान कर सकते हैं। इस छोटे नगर में प्रतिवर्ष हज़ारों यात्री आते हैं और पर्वत के छायादार वृक्षों के नीचे शान्तिपूर्वक कई दिवस व्यतीत करते हैं।

हाइल्डेलबर्ग में दो दिन ठहरने के पश्चात् मैं अपने मित्र श्रीयुत दास गुप्ता से मानहाईम नगर में जा मिला। यह एक बड़ा व्यापारिक नगर है। राइन नदी नगर के बीच से बहती है और उसके दोनों किनारों पर बड़े बड़े कारख़ाने हैं। नगर के निकट कुछ प्राकृतिक स्नानागार बने हैं। यहाँ गठिया आदि से पीड़ित लोग ग्रीष्मकाल में प्रायः स्नान करने आते हैं। यहाँ ११वीं शताब्दी की कई कारुकार्यमय इमारतें अभी तक मौजूद हैं।

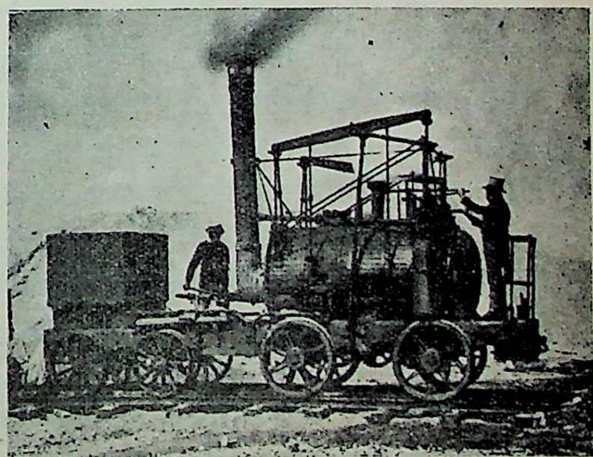
मेरा काम केवल दो घंटे का था और मैं अपने मित्र का साथ नहीं दे सकता था क्योंकि वे एक फ़र्म के साथ व्यस्त थे। इसलिए मैं स्वयं बाहर घूमने निकला। जर्मन एक शब्द भी नहीं बोल सकता था इसलिए कुछ घंटों इधर-उधर घूमने के बाद घर लौटते समय मैं राह भूल गया। बड़ी कठिनाई के बाद मैं एक टैक्सी ड्राइवर से कठिनाई



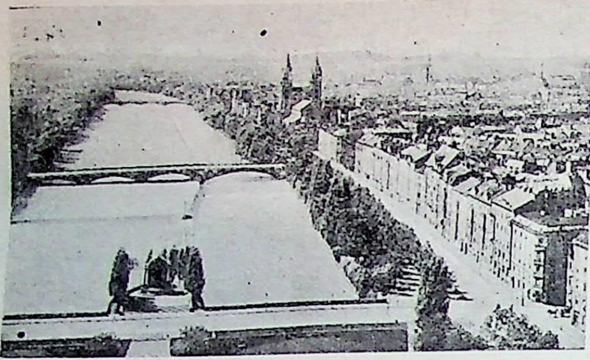
[राइन के किनारे कारख़ानों का एक दृश्य।]



[राइन के जलमार्ग का एक दृश्य।]

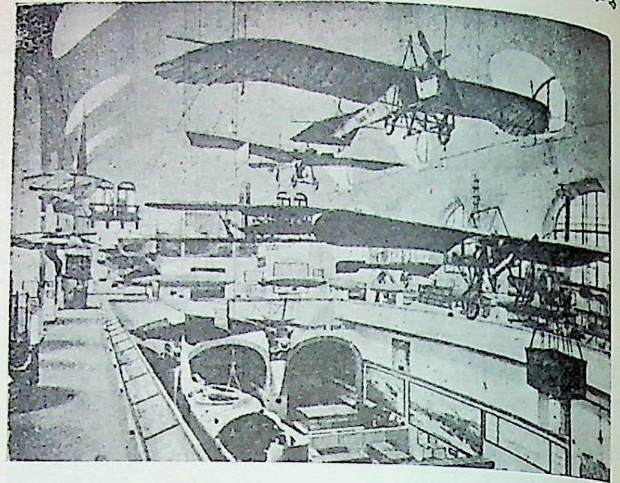


[१८१३ में बना जर्मनी का पहला रेल का इंजिन जो म्युज़ियम में अभी तक रक्खा है।]


[नहर के किनारे म्युनिच का प्रसिद्ध म्युज़ियम ।]

समझ सका कि मुझे कहाँ जाना है। वह तुरन्त मुझे स्टेशन ले गया। चूँकि यह होटल शहर का एक प्रसिद्ध होटल था और उसकी बनावट अतीव आधुनिक तरीक़े की थी। इसलिए मोटरवाला जल्दी मेरा गन्तव्य स्थान समझ गया। होटल इस स्टेशन के प्रधान-द्वार के ठीक सामने था। श्रीयुत दास गुप्त मेरे आसरे में बहुत चिन्तित हो रहे थे और सोचते थे कि मैं कहाँ चला गया। होटल के पोर्टर ने कहा कि मैं सड़कों का एक मानचित्र अँगरेज़ी में आसानी से प्राप्त कर सकता था। ख़ैर, बहुत थक जाने के कारण हमने जल्दी खाना खाया और म्युनिच की लम्बी यात्रा के लिए रेल पर सवार हुए। यह आयतन और प्रसिद्धि में जर्मनी का तीसरा शहर है और शिक्षा का एक विख्यात केन्द्र है।

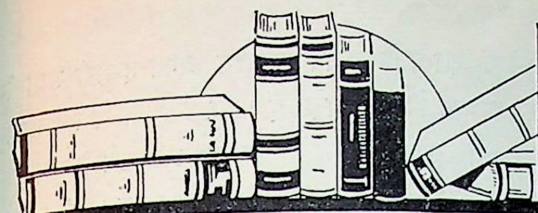
वर्ष के इस विशेष अवसर पर म्युनिच में 'आक्टोबर मेला' की धूम मची थी। यह एक प्रकार से आस-पास के ज़िलों के किसानों का मेला था जो खलिहान उठ जाने के बाद शहर में दिल बहलाने आते हैं। किसान-स्त्रियाँ अपनी देशी पोशाक से स्थान को बड़ा मनोमोहक बना देती हैं। नगर में ख़ूब भीड़ थी, और कई जगह भटकने के बाद हमें एक दूसरे दर्जे के होटल में मुश्किल से एक कमरा मिला। उत्सव प्रतिदिन आधी रात तक होते रहते हैं। म्युनिच 'मदिरा' के व्यवसाय का एक बहुत बड़ा केन्द्र है। बड़े बड़े ख़ेमों में जिनमें दो दो हज़ार मौज मनानेवाले जमा होते हैं, गिलासों से नहीं बल्कि बड़े बड़े शीशे के लोटों से शराब पीते हैं और सब चिन्तायें छोड़ हँसते, परिहास करते और नाचते हैं, देखने ही लायक़ होता है। कभी कभी इतनी अधिक भीड़ होती है कि बीस क़दम


[म्युज़ियम में हवाई जहाज़-सम्बन्धी क्रमविकास का एक विभाग ।]

जाने में आधा घंटा से अधिक लग जाता है। रात को हम यह मेला देखने गये और दो घंटे बाद वापस आ गये।

म्युनिच को अपने संसार के सर्वश्रेष्ठ 'टेकनिकल म्युज़ियम' के लिए गर्व है। ज्योतिष, पदार्थविज्ञान, रसायन, यंत्र-निर्माण, आवागमन, और टेकनिकल विभाग के सैकड़ों अन्य विषयों की प्रदर्शनी वस्तुएँ यहाँ इकट्ठी की गई हैं। राष्ट्र की देशभक्ति का यह एक स्मरणीय उदाहरण है। हज़ारों आदमियों—विद्वान्, इंजीनियर, कलाकार, व्यापारी और संस्था ने सेवा या धन के रूप में इसके लिए स्वेच्छापूर्वक त्याग किये हैं। प्रदर्शनी की इमारत ९ एकड़ भूमि में है और उसको घूम कर देखने में लगभग ९ मील चलना पड़ता है। इस संग्रहालय का उद्देश ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाभाविक और पारिभाषिक विज्ञान का क्रम-विकास इस प्रकार बतलाना है कि वह सर्वसाधारण की समझ में आ जाय। इसके पुस्तकालय में विज्ञान और टेकनोलाजी पर २ लाख प्राचीन और नवीन पुस्तकें संगृहीत हैं।

दो विभाग देखने में हमें तीन घंटे से अधिक मिले। शिक्षा की दृष्टि से यह संग्रहालय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ प्रतिदिन अपने अध्यापकों के साथ हज़ारों विद्यार्थी यहाँ आते हैं और अध्यापकगण उन्हें यह बतलाते हैं कि साइंस की क्रमोन्नति कैसे हुई। यहाँ शताब्दियों से मनुष्य की इस श्रम-साध्य उन्नति का क्रमविकास देखकर नवयुवकों के हृदय में बड़ा उत्साह पैदा होता है।



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१-२—**ज्ञानमण्डल, काशी, की २ पुस्तकें**—

(१) **हिन्दी-शब्द-संग्रह**—सम्पादक, श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव और श्रीराजवल्लभसहाय, प्रकाशक, ज्ञान-मण्डल पुस्तक-भण्डार, काशी हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) तथा सादी का ३।।) है।

(२) **ट्राटस्की की जीवनी**—अनुवादक, श्री रामदास गौड़, एम० ए० और श्रीराजवल्लभसहाय हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) तथा सादी का १।।=) है।

३—**प्रभावती** (उपन्यास)—लेखक, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रकाशक, सरस्वती-पुस्तक-भण्डार, आर्य-नगर, लखनऊ हैं और मूल्य २) है।

४—**सौन्दर्य-विज्ञान**—लेखक, श्री हरिवंशसिंह शास्त्री, प्रकाशक, श्री काशी-विद्यापीठ, बनारस छावनी हैं। मूल्य ।।।) है।

५—**उर्दू-हिन्दी-कोष**—सम्पादक, एम० वि० जम्बुनाथन, एम० ए०, बी० एस-सी०, प्रकाशक, एम० वि० शेषाद्रि एण्ड कम्पनी, बलेपेट, बंगलौर सिटी हैं। मूल्य १) है।

६—**तरंगिणी** (कविता)—रचयिता, पंडित किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री, प्रकाशक, सुन्दर-साहित्य-सदन, हरिद्वार हैं। सादी का मूल्य १।।) तथा जिल्दवाली का २) है।

७—**वाटिका-तत्त्व-प्रकाश**—लेखक व प्रकाशक, मुंशी रघुनाथमल राय, रिटायर्ड असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट, रेवन्यू डिपार्टमेंट, जोधपुर हैं। मूल्य १।।) है।

८—**पतितोद्धारक-जैन-धर्म**—लेखक, बाबू कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, प्रकाशक, श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया, गांधीचौक, सूरत हैं। मूल्य १।) है।

९-११—**काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक, बनारस सिटी, की तीन पुस्तकें**—

(१) **कांग्रेस का इतिहास**—लेखक, कांग्रेस के नेतागण और विद्वान् हैं। मूल्य १) है।

(२) **फ़ासिज़्म**—लेखक, श्री रघुनाथसिंह, एम० ए० एल-एल० बी० हैं। मूल्य १) है।

(३) **साम्यवाद का बिगुल**—लेखक, श्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्रीप्रकाश, श्रीजयप्रकाश नारायण, सेठ दामोदरस्वरूप, और श्री गोविन्दसहाय बी० काम० हैं। मूल्य १) है।

१२—**अखिल मनुष्य-जाति** वंश की दृष्टि से हिन्दू है—लेखक, महर्षि शिवव्रतलाल, एम० ए०, अनुवादक दीवान वंशधारीलाल, प्रकाशक, संत-कार्यालय, प्रयाग और मूल्य ।।।) है।

१३—**अन्तर्नाद** (कविता)—लेखक व प्रकाशक, चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा, अध्यापक, श्री अहल्याबाई-हाई स्कूल, खरगोन (होल्कर राज्य) हैं और मूल्य ।।) है।

१४—**मकरन्द** (कविता)—लेखक, श्री मधुकुमार, प्रकाशक, श्री जी० पी० कुलश्रेष्ठ, सोरों, एटा हैं। मूल्य ।=) है।

१५—**व्रत-संगीत** (प्रथम भाग)—लेखक श्री व्रतानन्द संन्यासी, आचार्य्य मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल, चित्तौड़ हैं और मूल्य =)।। है।

१६—**रँगरेज की लड़की** (एकांकी-नाटिका)—लेखक व प्रकाशक श्री अक्षयवट त्रिपाठी, तुलसी-मन्दिर, भदैनी-काशी हैं और मूल्य ।) है।

१७—**श्री हरि-संकीर्तन-माला**—लेखक संग्रहकर्त्ता व प्रकाशक, श्री बदरीलाल अग्रवाल, एरनपुरा, अजमेर हैं।

१८—**दैवी नाव** (प्रथम खण्ड)—संपादक, पंडित महानन्द जी, सिद्धान्तालंकार, प्रकाशक, वैदिक साहित्य-मंडल, अलीगढ़ हैं। मूल्य -) है।

१९—**ओ३म् संकीर्त्तन**—लेखक, श्री स्वामी व्रतानन्द, प्रकाशक, वैदिक-साहित्य-प्रचारिणी सभा, देहली हैं और मूल्य)।। है।

२०—**झाबुआ में कौन्सिल शासन**—प्रकाशक

श्री कन्हैयालाल दौलतराम वैद्य, प्रधान मंत्री, झाबुआ-राज्य-प्रजा-परिषद, १३९, मीडोज़ स्ट्रीट, फ़ोर्ट बम्बई हैं।

२१—मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय और निःशुल्क वाचनालय, कर्सियांग का चतुर्थ-वार्षिक कार्य-विवरण—प्रकाशक, श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, "हिन्दी रत्न", मंत्री, मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय, करसियांग हैं।

१—**हस्त-सञ्जीवनम्**—मूल लेखक श्रीयुत मेघ-विजय गणि, प्रकाशक, श्री गणेशदत्त ज्योतिषी, पियरी-कलाँ, काशी हैं। मूल्य—नहीं लिखा है।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय सामुद्रिक शास्त्र (हस्त-रेखा-विज्ञान) का एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ है। इसके रचयिता जैनाचार्य श्रीयुत मेघविजय गणक हैं। श्रीयुत गणेशदत्त जी पाठक ने इस पुस्तक का सम्पादन दो प्रतियों के आधार पर किया है एवं विषय को स्पष्ट करने के लिए संस्कृत टीका तथा हिन्दी में अर्थ भी दे दिये हैं। हस्त-रेखाओं के द्वारा नष्ट जन्मपत्र का उद्धार, व्यापार में लाभ-हानि-विचार, आयुनिर्णय, तिलविचार आदि अनेक ज्ञातव्य विषय बड़े ऊहापोह के साथ ग्रन्थकार ने अपने इस ग्रन्थ में लिखे हैं। सम्पादक महोदय ने हस्त चित्र तथा कुण्ड-लियाँ देकर पुस्तक को परम उपयोगी बना दिया है। अन्त में उन्होंने पाश्चात्य पद्धति के अनुसार सामुद्रिक शास्त्र का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया है। हिन्दी-भाषा में सभी श्लोकों की विशद व्याख्या नहीं की गई है जिससे केवल हिन्दीज्ञ महानुभावों के लिए पुस्तक अनेक स्थानों पर बोधगम्य नहीं हो सकती। हाथ के बत्तीस लक्षणों के चित्र भी अस्पष्ट तथा अनुपयोगी ही-से हैं, क्योंकि जैसे लक्षणों के चित्र दिये गये हैं वे वास्तविक जगत् में नहीं मिलते। उन संकेतोंवाले हाथों के वास्तविक चित्र देने से तथा हिन्दी व्याख्या को और अधिक विस्तृत तथा स्पष्ट करके लिखने से पुस्तक असंस्कृतज्ञ सर्वसाधारण लोगों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

पाश्चात्य तथा भारतीय सामुद्रिक विज्ञान में, विशेषतया रेखाओं के निर्णय में बड़ा भेद दीखता है। इसका भी स्पष्टीकरण यदि किया जाता तो बड़ा अच्छा होता। पुस्तक का सम्पादन बड़े परिश्रम से किया गया है। भारतीय सामुद्रिक शास्त्र के अनेक प्राचीन ग्रन्थ हमारी उदासीनता और अज्ञान से लुके पड़े हैं। पाठक जी ने इस ग्रन्थ का उद्धार और सम्पादन करके वस्तुतः इस उपेक्षित शास्त्र की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है। क्या ही उत्तम हो यदि पाठक जी इस शास्त्र के अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थों को भी प्रकाशित करके इस उपयोगी शास्त्र की रक्षा करें। सामु-द्रिक शास्त्र का यह ग्रन्थ सर्वथा संग्रहणीय है।

२—**सती शान्तिदेवी**—लेखक, डाक्टर बालमुकुन्द चतुर्वेदी, प्रकाशक, पंडित मदनमोहन चतुर्वेदी, बंगाली-घाट, मथुरा हैं। मूल्य ।) है।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दू-धर्म में सर्वमान्य है। किन्तु अन्य कितने ही धर्मों में पुनर्जन्म स्वीकार नहीं किया जाता। शान्तिदेवी नामक बालिका ने अपने पूर्वजन्म की अनेक बातें और परलोक-सम्बन्धी कई तथ्यों को विश्वस-नीय तथा प्रामाणिक पुरुषों के सामने प्रकट करके तथा अपने पूर्वजन्म के पति, देवर, श्वशुर, और पुत्र आदि सम्बन्धियों को पहचान कर पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सत्यता को प्रमाणित कर दिया है। इस पुस्तक में लेखक ने शान्तिदेवी की इन्हीं सब बातों तथा मनोरंजक घटनाओं का सरल भाषा में क्रम-वार संकलन किया है। मुख-पृष्ठ पर बालिका का चित्र तथा पुस्तक में उसके पूर्वजन्म के पुत्र, पति, देवर और श्वशुर महोदयों के चित्र दिये गये हैं। शान्तिदेवी के पूर्वजन्म के पति पंडित केदारनाथ चतुर्वेदी ने पुस्तक में वर्णित सभी बातों के सत्य होने का साक्ष्य दिया है। पुस्तक के पिछले भाग में कुछ तुकबन्दियाँ और भजन भी जोड़ दिये गये हैं। पुस्तक यदि और अधिक वैज्ञानिक ढंग पर लिखी जाती तो उत्तम होता। पुनर्जन्म की इस जीती-जागती साक्षी कुमारी शान्तिदेवी की चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन तथा लोकरंजन दोनों ही के लिए उपयोग हो सकता है। पुस्तक उपादेय है।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री

३—**सदाचार, शिष्टाचार और स्वास्थ्य**—लेखक, श्री भाई दयाल जैन, बी० ए०, बी० टी०, प्रकाशक, हिन्दी-भवन, हास्पिटल रोड, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या ७२ और मूल्य ।=) है।

यह पुस्तक अपने नाम के अनुसार तीन परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में सदाचार-सम्बन्धी बातें

का विवरण दिया गया है। दूसरे परिच्छेद में विद्यालय, खेल के मैदान, भोजन करते समय तथा अन्य अवसरों पर जिस प्रकार शिष्टतापूर्ण आचरण मनुष्य के लिए उपयोगी हो सकता है उसका विवेचन किया गया है। तीसरे परिच्छेद में स्वास्थ्य-सुधार पर प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक जन-साधारण के लिए विशेष उपयोगी है। इसको पढ़कर बालक, युवा और वृद्ध सभी अपने आचरण और स्वास्थ्य का भली भाँति सुधार कर सकते हैं और समाज की बुराइयों को दूर करने में भी समर्थ हो सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल, सुपाठ्य और छपाई सुन्दर है।

४-५—श्रीसम्पतलाल जी लूणावत की दो पुस्तकें—

(१) **महासती मृगावती**—लेखक महोदय ने २२ पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तक में कौशाम्बी की रानी मृगावती के 'दिव्य' चरित का चित्रण किया है। इसके पढ़ने से प्राचीन भारतीय युवतियों के गौरव और सम्मान का परिचय मिलता है, इसके साथ ही प्राचीन भारतीय चित्रकारी की निपुणता का भी। मृगावती का चरित भारतीय नारियों के लिए आदर्श कहा जा सकता है। यह पुस्तक जैन-धर्म से विशेष सम्बन्ध रखती है, तथापि स्त्रियों के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक है। भाषा भी सरल और सुबोध है। छपाई भी सुन्दर है। कई स्थलों पर आवश्यकतानुसार मृगावती के चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल ≡) है।

(२) **महासती सुन्दरी**—८४ पृष्ठों की इस पुस्तक में महासती सुन्दरी के चरित्र का वर्णन किया गया है। इसने जिस प्रकार अपने उद्धार के साथ अपने सारे कुटुम्ब के कल्याण का ध्यान रक्खा है, वह वास्तव में भारतीय स्त्रियों के लिए आदर्श है। इसका आचरण अनेक आपत्तियों के आने पर भी पवित्र बना रहा। लेखक महोदय ने इसे पंडिताऊ ढंग से लिखने का प्रयत्न किया है, जिससे पढ़ते समय पाठकों का चित्त ऊबने-सा लगता है। इसमें जैन-धर्म के सिद्धान्तों का भी बीच बीच में निरूपण किया गया है, जो पुस्तक को धार्मिक बना देता है। तो भी पुस्तक स्त्रियों के लिए उपयोगी है और इसे पढ़कर वे अपने आचरण को भली-भाँति सँभाल सकती हैं। इसकी घटना को पढ़कर पाठक के हृदय में महासती सुन्दरी के प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। इसमें भी कई मौक़ों पर सुन्दर चित्रों का समावेश भी किया गया है। मूल्य केवल ॥) है। दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—श्रीसम्पतलाल लूणावत, निहाल धर्मशाला, सरदारपुरा, फलोदी (मारवाड़

६—आरोग्य और आनन्दमय जीवन बनाने के उपाय—लेखक, व प्रकाशक, श्रीशिवदत्त शर्मा, उपयोगी ग्रन्थभण्डार, उज्जैन हैं। पृष्ठ-संख्या ६८ और मूल्य।=) है।

शर्मा जी ने इस छोटी-सी पुस्तक में मानव-जीवन के सुखी बनाने के विषय पर पूर्ण रीति से प्रकाश डाला है। उन्होंने स्वयं अपनी शारीरिक कमज़ोरियाँ—जिन नियमों के बल पर सुधारी हैं उन्हीं का इसमें अधिकतर विवेचन किया है। उनका कथन है कि 'अच्छा खाना और ख़ूब मेहनत करना यही आरोग्यता का मूल मंत्र है'। इस पुस्तक में कसरत करने के ढंगों, प्रातःकाल उठने के फ़ायदों, शारीरिक बीमारियों के दूर करने के उपायों, शारीरिक सफ़ाई तथा अनेक प्रकार के आसनों आदि पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। इन सबका अभ्यास हो जाने पर मनुष्य अपने शरीर को बलिष्ठ और परिश्रमी तथा अपना जीवन सुखमय बना सकता है। मानव-जीवन-सुधार की दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी है। इसकी भाषा सरल और मुहावरेदार है, विषय रोचक तथा सुपाठ्य है। अपने जीवन को सुखी रखने के इच्छुकों को इसे एक बार ज़रूर पढ़ना चाहिए।

—गंगासिंह

७—भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत नानालाल चमनलाल मेहता, आई० सी० एस०, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, हैं। इसका मूल्य ६) है।

इस पुस्तक के रचयिता श्रीमान् मेहताजी भारतीय चित्रकला के मार्मिक विद्वान् हैं। उन्होंने भारतीय चित्रकला पर अँगरेज़ी में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उनकी यह हिन्दी-रचना उससे स्वतन्त्र है। इसमें उन्होंने बाबर के समय से लेकर १८५० तक की भारतीय चित्रकला तथा तत्कालीन चित्रकारों तथा उनके आश्रयदाताओं का विशद वर्णन किया है। उन्होंने भारतीय चित्रकला-सम्बन्धी प्राचीन साहित्य का प्रारम्भ में वर्णन करते हुए यह भी बताया है कि मुसलमानों के आगमन के पहले यहाँ इस कला का कहाँ तक विकास हो चुका था। यह पुस्तक ६ प्रकरणों में विभक्त है। पहले प्रकरण में संस्कृत साहित्यगत चित्रकला-

सम्बन्धी प्रकरणों या स्वतन्त्र पुस्तकों का परिचय देते हुए बताया गया है कि यहाँ इस कला ने कहाँ तक शास्त्रीय रूप ग्रहण कर लिया था। दूसरे प्रकरण में 'प्राचीन चित्र-परम्परा' के शीर्षक में भारतीय चित्रकला के इतिहास तथा उस पर पड़नेवाले भिन्न भिन्न प्रभावों की विवेचना की गई है। तीसरे प्रकरण में इस्लामी सभ्यता और चित्रालेखन का वर्णन किया गया है। इसके बाद मुग़लों के समय की चित्रकला पर प्रकाश डाला गया है। तदुपरान्त दो प्रकरणों में हिन्दू चित्रकला और उसके प्रान्तीय उपभेदों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस पुस्तक में भारतीय चित्र-कला के इतिहास का बड़े अच्छे ढंग से दिग्दर्शन कराया गया है। इसमें उन्होंने मुग़लकाल तथा उसके बाद के जिन चित्रकारों का वर्णन किया है उनमें से अनेक के चित्रों के नमूने मे भी पुस्तकान्त में दे दिये हैं। ऐसे चित्रों की संख्या ४२ है, जिनमें १० चित्र रंगीन भी हैं। इन चित्रों के दे देने से पुस्तक और भी अधिक उपयोगी हो गई है। हिन्दी में यह अपने विषय की कदाचित् पहली पुस्तक है, इसके साथ ही यह प्रामाणिक भी है। चित्रकला के प्रेमियों को इस पुस्तक का अवश्य संग्रह करना चाहिए।

८—कर्तव्य-शिक्षण (हिन्दू-ला)—लेखक व प्रकाशक, 'चिकित्सक-चूड़ामणि पंडित विश्वेश्वरदयालु जी वैद्यराज', सम्पादक अनुभूतयोगमाला, बरालोकपुर, इटावा हैं। पृष्ठ-संख्या १४६ और मूल्य ।॥) है।

चिकित्सक-चूड़ामणि जी ने इस पुस्तक की रचना विशेष उद्देश से की है। उनका कहना है कि इस समय देश में जो अशान्ति फैली हुई है उसका कारण 'वास्तविक शिक्षा' का अभाव है। अतएव शान्ति की स्थापना के उद्देश से उन्होंने यह पुस्तक लिखी है। उनकी सभ्यसमाज से यह भी प्रार्थना है कि वे 'ऐसी पुस्तकों को शिक्षा-कोर्सों में नियुक्त करें'। उनकी यह भी राय है कि हमें 'गवर्नमेंट से प्रार्थना करके प्राचीन रीति के अनुसार न्याय करने के लिए बाध्य करना चाहिए'। और वह प्राचीन रीति नीति क्या है, वह सब उन्होंने अपने इस 'हिन्दू-ला' में लिख दी है। उनके इस हिन्दू-ला में जो दण्ड-विधान है उसका एक नमूना 'चोरों को हाथी के पैरों के नीच कुचलवा देना' है। लेखक महोदय नई सभ्यता के यहाँ तक विरोधी हैं कि वे 'विज्ञान' को भी त्याज्य समझते हैं। वे स्त्रियों को भी समानता का अधिकार नहीं देना चाहते। ऐसे ही मनोभावों की प्रेरणा से उन्होंने अपने इस 'हिन्दू-ला' में हिन्दू-धर्मशास्त्र के आधार पर सदाचार और न्याय-विधान का अति संक्षेप में निरूपण किया है, परन्तु इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि उनका यह 'कर्तव्य-शिक्षण' किस किस स्मृति का सारांश है। यदि ऐसा कर देते तो कम से कम प्राचीनतावादी इसे एक प्रामाणिक पुस्तक समझकर इसका संग्रह तो करते। पुस्तक अच्छी नहीं छपी है। काग़ज़ भी अच्छा नहीं लगाया गया है।

९—स्तोत्र-रत्नावली—श्रद्धालु हिन्दुओं में संस्कृत के स्तोत्रों का बहुत अधिक प्रचार है। ऐसे लोग अपने इष्टदेव के स्तव आदि का पूजाकाल में अवश्य पाठ करते हैं। परन्तु उनमें से कितने ही संस्कृत के न जानने से उन स्तोत्रों का अर्थ नहीं समझ पाते। प्रसन्नता की बात है, गोरखपुर के गीताप्रेस ने यह स्तोत्र-रत्नावली हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशित की है। इसमें विनय के ५, शिव के ६, देवी के ६, विष्णु के ७, राम के ७, कृष्ण के १३, भिन्न भिन्न देवों के १० स्तोत्र और ९ प्रकीर्ण-स्तोत्र संकलित किये गये हैं। इनमें प्रायः सभी स्तोत्रों का भक्त लोगों में प्रचार है। अब इनके हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशित हो जाने से इनकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। स्तोत्र-प्रेमियों को इस संग्रह से लाभ उठाना चाहिए। इसका मूल्य केवल ॥) है। इसमें (विष्णु, शिव, राम और कृष्ण के) ४ रङ्गीन चित्र भी दिये गये हैं। छपाई अच्छी और काग़ज़ साधारण है।

१०-११—श्रीयुत महेशचंद्रप्रसाद, एम० ए०, की दो पुस्तकें—

(१) प्रबोधचन्द्रोदय नाटक—यह संस्कृत का एक प्रसिद्ध नाटक है। इसकी रचना श्रीकृष्ण मिश्र ने की है। ये चन्देल-नरेश महाराज कीर्तिवर्मा के आश्रय में रहते थे। जब उन्होंने चेदि-नरेश परमपराक्रमी महाराज कर्णदेव को पराजित कर अपने राज्य को स्वतन्त्र किया था, कदाचित् उसकी स्मृति में ११ वीं सदी के अन्त में इस नाटक की रचना हुई थी। इस नाटक में ६ अंक हैं। यह एक अध्यात्म-विषयक नाटक है। इसमें दिखाया गया है कि महामोह प्रबल होकर विवेक को देश से निकाल देता है, पर अन्त में विवेक

की जीत होती है। इसमें अनीश्वरवाद के विचारों का ख़ासा उपमर्दन होने से इसके उत्तर में 'ज्ञानसूर्योदय' नाम के संस्कृत-नाटक की रचना श्रीवादिचन्द्र सूरि ने की थी। इससे भी इस नाटक के महत्त्व का प्रमाण मिलता है। इसके पहले तीन अंकों में तत्कालीन समाज के दोषों का दिग्दर्शन कराया गया है। परन्तु अनुवादक महोदय ने इसके तीसरे अंक में देश में एकता की तूती बोलते देख कर 'कुछ उलट फेर' कर दिया है, जिससे मूल के उक्त दोष-दिग्दर्शन का रस जाता रहा। तथापि इस उलट-फेर से नाटक की विशेषता में अन्तर नहीं आने पाया है। अनुवादक महोदय ने इसके अनुवाद में काफ़ी परिश्रम किया है और इसके संस्कृत के पद्यों का भी उन्होंने भिन्न भिन्न छन्दों में ही अनुवाद किया है। प्राचीन साहित्य-प्रेमियों को इस महत्त्वपूर्ण नाटक का संग्रह करना चाहिए। इसका मूल्य ||) है। छपाई-काग़ज़ भी सुन्दर है।

(२) **जातकमाला**—यह भी संस्कृत की एक प्राचीन रचना है। इसके प्रणेता आर्यशूर हैं। ये ईसा की दूसरी सदी में मौजूद थे। जातकों में बुद्धदेव के पूर्वजन्म की कथाओं का वर्णन रहता है। ये सभी कथायें उपदेशपरक होती हैं। इस जातकमाला में भी वही सब बातें लिखी गई हैं। अनुवादक महोदय ने इस 'माला' में ३४ जातकों में से १० जातकों का अनुवाद संकलित किया है। उनका यह अनुवाद भी गद्यपद्यमय है, पद्य व्रजभाषा में विभिन्न छन्दों में हैं। बौद्ध-साहित्य के प्रेमियों को यह पुस्तक अधिक रुचिकर प्रतीत होगी। पृष्ठ-संख्या ८४ और मूल्य |||) है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—श्री महेशचन्द्रप्रसाद एम० ए०, देवाश्रम, आरा (ई० आई० आर०)

१२—**चारु चयन**—यह मुंशी माधवराम की रचनाओं का संग्रह है। मुंशी जी का जन्म कोई अढ़ाई सौ वर्ष हुए, मारवाड़ के मेड़ता में हुआ था। वे हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के पण्डित थे। उन्होंने प्रसिद्ध वृन्द कवि से कविता-रचना की शिक्षा पाई थी। वे जोधपुर-राज्य की ओर से दिल्ली के शाही दरबार में नियुक्त थे। ऐसे ही उच्च पद पर रहते समय उन पर जोधपुर-नरेश का कोप हुआ और वे जेल में डाल दिये गये, जहाँ वे २ वर्ष तक क़ैद रहे। अपने इसी बन्दी-जीवन में उक्त मुंशी जी ने 'शक्तिभक्ति-प्रकाश' नामक काव्य की रचना की, जिसमें उन्होंने देवी के सम्बन्ध में अपनी भक्ति-भावना का काव्योचित ढङ्ग से चित्रण किया है। दुख की बात है, उनकी वह भव्य रचना आज उपलब्ध नहीं है, उसके केवल १४० पद्य प्राप्त हैं, जिन्हें चौमू के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी पण्डित हनूमान जी शर्मा ने ८ प्रकरणों में विभक्त कर 'चारु चयन' के नाम से प्रकाशित किया है। प्रत्येक प्रकरण में स्थल स्थल पर शर्मा जी ने मुंशी जी के पद्यगत भावों की व्याख्या कर दी है, जिससे पद्यों का आशय समझने में पूरी सहायता मिलती है। देवी के भक्तों को इस 'चारु चयन' का अवश्य संग्रह करना चाहिए। चौमूँ के श्रीमान् ठाकुराँ देवीसिंह जी की आज्ञा से यह विना मूल्य के वितरणार्थ ही छपवाया गया है। पण्डित हनूमान शर्मा, चौमूँ, जयपुर को लिखने से यह प्राप्त होता है।

१३—**इन्स्टालमेंट**—लेखक श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा, प्रकाशक, लीडर-प्रेस, प्रयाग, है। पृष्ठ-संख्या १९० और मूल्य १) है।

कविवर श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा हिन्दी के क्षेत्र में पर्याप्त रूप से परिचित हैं। कविता की तरह वे कहानी-लेखन में भी सिद्धहस्त हैं। इस संग्रह में उनकी १५ कहानियाँ दी गई हैं। इसकी सभी कहानियाँ मानव-जीवन की कठिन समस्याओं के सुलझाने का भरसक प्रयत्न करती हैं। कुछ कहानियों में राष्ट्रीय भावनाओं और राष्ट्र के कार्यकर्ताओं की मनोवृत्ति पर भी सुन्दर ढङ्ग से विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त गृहस्थ-जीवन तथा सामाजिक कुरीतियों और व्यर्थ के ढोंगों पर भी काफ़ी प्रकाश कई कहानियों द्वारा डाला गया है। कहानियों की भाषा बहुत ही सरल और नागरिक बोल-चाल की होते हुए भी साहित्यिक है। इन कहानियों में हमें 'उत्तरदायित्व' शीर्षक कहानी सबसे उत्तम जान पड़ती है। वास्तव में इसमें मानवीय मनोविकारों का बहुत अच्छा विश्लेषण किया गया है। कहानियों के पाठकों को वर्मा जी के इस संग्रह का अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

१४—**अनुराग**—(सचित्र मासिक पत्र) संपादक, श्री भगवतप्रसाद 'सनातन', प्रकाशक, 'अनुराग' कार्यालय, बुढ़ाना दरवाज़ा, मेरठ हैं। पृष्ठ-संख्या ५०, वार्षिक मूल्य ३) तथा एक प्रति का मूल्य |) है। इस समय इसका ५ वाँ अंक हमारे सामने है। इस अंक में ३ कहानियाँ,

२ कवितायें और ९ लेख हैं। इस पत्र के प्रकाशन का मुख्य उद्देश नागरिक शिक्षा का प्रचार करना है। इसकी ओर यह बड़ी सतर्कता से अग्रसर हो रहा है। इस अंक में भी शिक्षा-विषयक कई लेख प्रकाशित हुए हैं। पत्र सुन्दर तथा भाषा सरल और सुपाठ्य है।

१५--**अच्छे भैया (बच्चों का पत्र)**—संपादक, श्री रामपदार्थ शिक्षार्थी और श्री रामकिशोर अग्रवाल, प्रकाशक इंडियन बुक एजेन्सी, ८३ नं० कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, इलाहाबाद हैं। वार्षिक मूल्य १।) और एक प्रति का मूल्य -)॥ है। यह बच्चों के लिए निकला है और सचित्र है। इसके लेखों आदि की भाषा सरल होती है। छपाई भी सुन्दर है। छोटे बच्चों के लिए उपयोगी है।

१६--**कल्याण का भक्तांक**--'कल्याण' का 'भक्तांक' दूसरी बार छापकर प्रकाशित किया गया है। इस दूसरे सस्करण में पुराने चित्र बदलकर नये सुन्दर चित्र लगाये गये हैं। छपाई आदि भी पहले से सुन्दर है। पर दाम वही १॥) रक्खा गया है। इस भक्तांक में ७७ लेख हैं। जिनमें अधिकांश में भक्तों का चरित वर्णित है। इनके सिवा २१ कवितायें हैं। ५५ चित्रों में २३ रंगीन चित्र हैं।

१७—**मिथिला-मिहिर**—मिथिला-मिहिर मैथिली भाषा का एक पुराना साप्ताहिक है। यह २९ वर्ष से दरभंगा-नरेश की संरक्षता में दरभंगा से निकल रहा है। इस समय इसके सम्पादक साहित्याचार्य पण्डित सुरेन्द्र झा 'सुमन' हैं। हाल में इसका विशेषांक पुस्तक रूप में निकला है। यह विशेषांक 'मिथिलांक' है। यह दो खंडों में विभक्त है। हिन्दी-खंड में ५० से ऊपर हिन्दी के लेख और कवितायें हैं तथा मैथिली-खंड में ४० के लगभग मैथिली के लेख और कवितायें हैं, अधिकांश लेख अधिकारी विद्वानों के लिखे हुए हैं। इसके पढ़ने से मिथिला की प्राचीन तथा आधुनिक संस्कृत का बहुत कुछ परिचय मिल जाता है। मैथिलों को तो इसका अवश्य ही संग्रह करना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १९१ + ९९ = २९० और मूल्य २) है।

१८—**श्रेय का 'श्रीमद्भागवतांक'**—वृन्दावन के 'भजनाश्रम' से गत दो वर्ष से 'श्रेय' नाम का निम्बार्क-सम्प्रदाय का एक धर्म-सम्बन्धी मासिक पत्र निकल रहा है। इसके सम्पादक आचार्य श्री बाल-कृष्ण गोस्वामी तथा श्री इन्द्र ब्रह्मचारी हैं। इसमें कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी पांडित्य-पूर्ण लेख निकलते हैं। अपने तीसरे वर्ष के प्रवेश पर इसका यह विशेषांक निकला है। इसमें १०६ लेख हैं। इसके अधिकांश लेखों के द्वारा श्रीमद्भागवत के रहस्यों का उद्घाटन किया गया है तथा उनके महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। इसमें ३२ चित्र भी दिये गये हैं, जिनमें ७ रंगीन हैं। पृष्ठ-संख्या ३८० और मूल्य १॥=) है। कृष्णभक्तों को तथा श्रीमद्भागवतपुराण के प्रेमियों को इस अंक से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

१९—**मेरी अबीसीनिया-यात्रा**—लेखक पंडित कन्हैयालाल आर्योपदेशक आर्य्य विद्यासभा काशी। पृष्ठ-संख्या ७२, मूल्य ॥)

लेखक महोदय ने आर्य्यसमाज के प्रचार के सिलसिले में विदेशों की बहुत यात्रा की है। इटली और अबीसीनिया का युद्ध आरम्भ होने से पहले आप अबीसीनिया गये थे। प्रस्तुत पुस्तक में आपने अबीसीनिया, उसका पूर्व इतिहास, उसकी वर्तमान अवस्था आदि बातों का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। अबीसीनिया के रास्ते में जो देश आये हैं उनका भी आपने वर्णन किया है। अबीसीनिया में बहुत-से हिन्दुस्तानी बस गये हैं। उनसे भी आपको मिलने का अवसर मिला है। आपने उनकी स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। पुस्तक सामयिक है।



जाग्रत नारियाँ



नवविधान और महिलायें

भारत के नवीन शासन-विधान में महिलाओं का भी एक स्थान होगा। उसके अनुसार देश के शासन को सुन्दर बनाने में वे भी बहुत कुछ योग दे सकेंगी। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी देवियाँ अपने इस उत्तरदायित्व को समझें। गत ११ जुलाई को बम्बई में महिलाओं की एक सभा हुई थी। उसमें भाषण करते हुए पंडित हृदयनाथ कुँजरू ने कहा है—

यदि आप लोगों को अधिकार प्राप्त हुए हैं तो आप पर उत्तरदायित्व का भार भी आया है। नये विधान के अन्तर्गत ६० लाख स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिला है और जब आप अपना वोट देने जायँ तो आप योग्य उम्मीदवार को ही—चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री—अपना वोट दें, जो आपके अधिकारों के लिए लड़े। महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए स्वयं महिलाओं ने ही बहुत काम किया है। आप अपनी तुलना पाश्चात्य देशों में रहनेवाली अपनी बहनों से कीजिए। आप अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन कीजिए और उन पर डटी रहिए। अपने घरों में अपना प्रभाव व्यापक बनाइए और अपने बच्चों का विवाह कम आयु में मत कीजिए।

आशा है, कुँजरू जी की बातों पर स्त्रियाँ समुचित ध्यान देंगी।

इँग्लेंड में भारतीय छात्रायें

पाठकों को पता होगा कि श्रीमती दत्त की अध्यक्षता में भारतीय छात्राओं का एक जत्था योरप का पर्य्यटन कर रहा है। जब ये छात्रायें बम्बई में जहाज़ पर सवार हुई थीं तब हमने उनका चित्र 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था और उनकी यात्रा की सफलता की आशा प्रकट की थी। हमें प्रसन्नता है कि भारतीय छात्राओं की यह यात्रा ख़ूब सफल रही और उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी बहुत-से अनुभव हुए। भारत के हाई कमिश्नर सर फ़ीरोज़ख़ाँ नून ने इंडिया आफ़िस में इनका स्वागत करते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं, जिनका सारांश यह है—

"इँग्लेंड में मुझे सबसे अधिक खेद यहाँवालों में भारत के प्रति अज्ञान को देखकर होता है। शायद इसमें हमारी ही ग़लती है और अब हमीं को इसे सुधारना भी चाहिए। भारत से आनेवाले अपने देश की सेवा ब्रिटेन को अपनी उस प्राचीन सभ्यता का परिचय देकर कर सकते हैं जिसका हमें अभिमान है। आप इँग्लेंड और योरप के लोगों से ख़ूब मिलिए और उनमें जो भी अच्छी बातें हों उन्हें अपने में लाने का प्रयत्न करिए। इस तरह हमारी सभ्यता और संस्कृत का कोष दिनों दिन बढ़ता ही जायगा। ब्रिटेन के लोगों को प्रभावित करने का सर्वोत्तम उपाय अपने सदाचरण का उदाहरण उनके आगे पेश करना है।"

प्रत्येक भारतीय स्त्री को जिसे योरप की यात्रा करने का अवसर मिले, सर फ़ीरोज़ के इस सदुपदेश का ध्यान रखना चाहिए। वास्तव में यही एक तरीक़ा है जिससे हम भारतीय विदेशियों को प्रभावित कर सकते हैं।

लाहौर की एक घटना

गत ९ जुलाई को स्कूल बन्द होने पर लड़कियाँ अपने घरों को जा रही थीं। मार्ग में एक सिख युवक ने एक लड़की को ज़ोर से कन्धे से धक्का दे दिया। उस लड़की ने अपने आपको गिरने से बचाकर तुरन्त एक मुक्का उस युवक की पीठ पर मारा। साथवाली लड़की ने फ़ुर्ती से अपने पाँव का जूता उतार कर उसकी पीठ पर रसीद किया। अभी पीछे की दो लड़कियाँ बढ़कर अपनी बहनों का अनुकरण करने ही लगी थीं कि वह युवक भागकर बाज़ार में चला गया। दूसरे दिन उन लड़कियों को स्कूल के मैनेजर साहब ने एक एक रुपया इनाम दिया।

लाहौर की इन छात्राओं की हम प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार की घटनायें ऐसे ही प्रतीकार से रुक सकती हैं।



["हेमप्रभा गुप्ता ला० कन्हैयालाल बैङ्कर की कन्या ने पञ्जाब यूनीवर्सिटी की सन् १९३६ की मैट्रीक्युलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। समस्त कन्याओं के मध्य में प्रथम पद प्राप्त किया है। यह कन्या देवसमाज गर्ल्स हाई स्कूल फ़ीरोज़पुर की ओर से परीक्षा में प्रविष्ट हुई थी।"]



[कुमारी सावित्री देवी अग्रवाल। बाबू रामकुमार-लाल जी की पुत्री हैं और "बिहारी बंगाली गर्ल्स स्कूल" की प्रथम छात्रा हैं जो कि डबल प्रमोशन पाकर इन्टर-मिडिएड में आई हैं।]



[हार्डिङ्ग कालेज की डाक्टर मिस काशीबाई नौरंज बी० ए०, एल० एम-एस० और डाक्टर मिस सुलोचना श्रीखंडे एम० बी० बी० एस० हाल ही में चिकित्सा-शास्त्र की उच्च शिक्षा प्राप्त करने विलायत गई हैं।]

चित्र-संग्रह



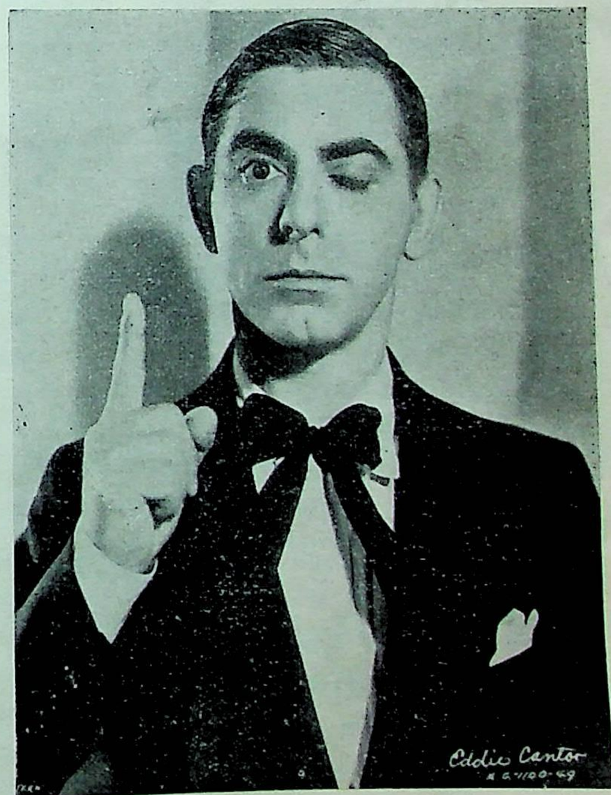
पंडित फ़तेहचन्द्र जिन्होंने गत मास में इँग्लेंड में हुए 'सर्व-धर्म-सम्मेलन' में भाग लिया था।



आदिस अबाबा में 'मुहम्मद अली स्टोर्स' नामक दूकान के संचालकगण। अब भारत आ गये हैं। पिछले अबी-सीनिया-युद्ध में इन लोगों की भी बड़ी क्षति हुई है।



मा और बेटा—'लिटिल लार्ड फ़ांटलेरस' नामक चित्र-पट का एक दृश्य।



प्रसिद्ध अभिनेता एडी कैंटर—'स्ट्राइक पिंक' नामक चित्रपट में।

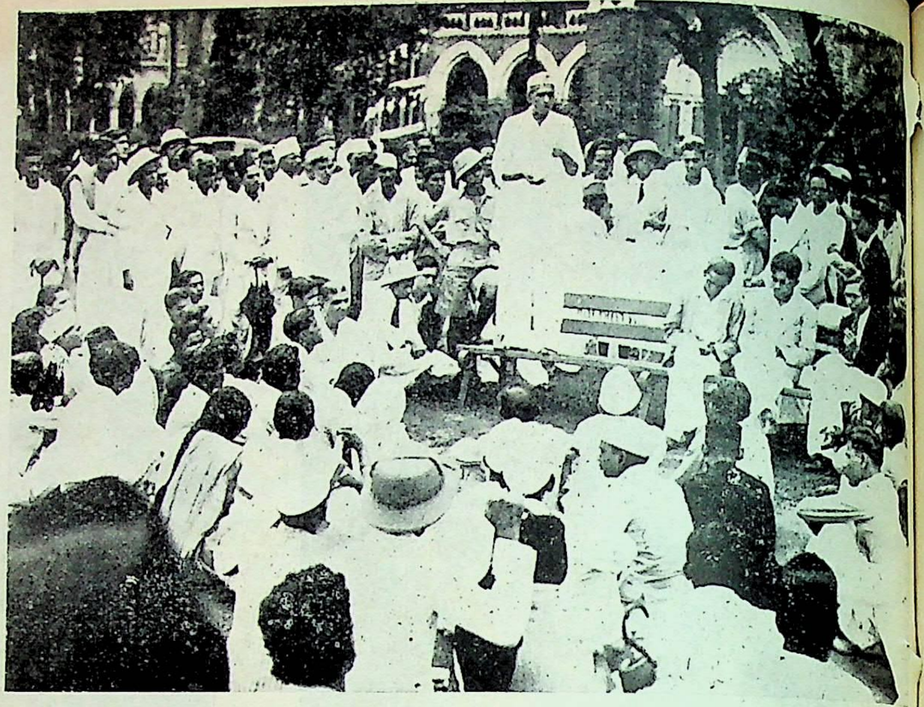
卐

卐 卐

इस वर्ष बम्बई-विश्वविद्यालय में मैट्रिक की परीक्षा में बहुत अधिक विद्यार्थी फ़ेल हुए हैं। इसके विरोध में विद्यार्थियों ने वहाँ बड़ी बड़ी सभायें कीं जिनमें का एक दृश्य यह है।

卐 卐

卐





卐

पिछले दिनों विश्राम-लाभ के लिए महात्मा गांधी मैसूर के नन्दीपर्वत पर गये थे। यह चित्र पर्वत से उतरते समय का है। श्रीमती ब्रजलाल नेहरू, श्रीमती कस्तूर बाई, काका कालेलकर और सरदार पटेल भी उनके साथ हैं।

卐





सिडनी (आस्ट्रेलिया) में हाल में एक 'कैटिल ट्रैपिंग शो' हुआ था। उस प्रतियोगिता में भाग लेनेवाली एक युवती।

卐

卐 卐







ओलिम्पिक खेल (बर्लिन) में भाग लेने के लिए जानेवाली भारतीय हाकी-टीम के सदस्य।





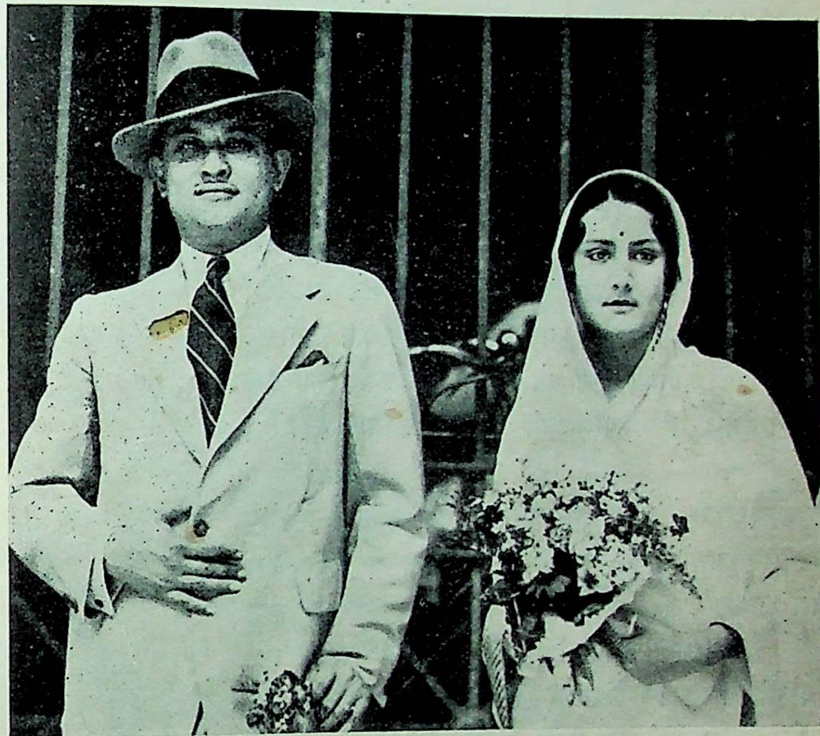


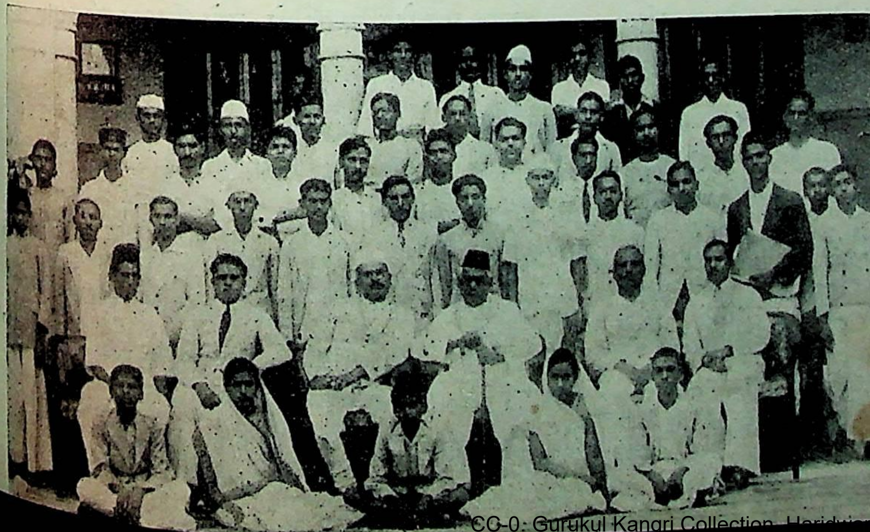


त्रिपुरा (बङ्गाल) के हिज़ हाइनेस महाराज साहब और महारानी साहबा। आप लोग हाल में विलायत गये हैं। महाराज ने वहाँ एक हिन्दू-मन्दिर बनवाया है।









प्रयाग के फलोत्पादक संघ ने हाल में फलों को सुरक्षित रखने के तरीक़े बताने की एक कक्षा खोली थी। उसमें सफल हुए प्रथम विद्यार्थियों का जत्था, जिन्हें श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने प्रमाण-पत्र दिये। चिन्तामणि जी की दाहनी ओर संघ के सभापति श्री कैलाशनाथ काटजू हैं।

कुछ इधर उधर की

हमारे देश के जो लोग इँग्लेंड की सैर करके आते हैं वे उसे स्वर्ग बताते हैं। पर एक इटालियन पत्रकार जो आजकल इँग्लेंड से अपने देश के एक पत्र को समाचार भेज रहा है, उस देश की दूसरी ही तस्वीर पेश करने में लगा हुआ है। उसका कहना है कि अँगरेज़ों के समान असभ्य क़ाम संसार में शायद ही दूसरी हो। अँगरेज़ों के रसोईघरों की गन्दगी वह वर्णन से बाहर बताता है। उसका कहना है कि जहाँ अँगरेज़ लोग बैठकर खाना खाते हैं, वहाँ इतनी बदबू होती है कि बिना नाक पर रूमाल बाँधे उधर से कोई निकल नहीं सकता। उसकी समझ में इँग्लेंड एक ऐसा देश है जहाँ का आसमान ख़ाकी है, जहाँ रात-दिन कारख़ानों का धुवाँ प्रत्येक वस्तु को काला करता रहता है, जहाँ सफ़ेद भेड़ भी जाय तो काली हो जाय। वह देश उसकी समझ में सभ्य मनुष्यों के रहने लायक़ नहीं है।

× × ×

पाश्चात्य देशों में समाचार-पत्रों का संपादन ऐसे ही दृष्टि-कोण से होता है। अपने विरोधी का वे सदैव भद्दा चित्र अंकित करते हैं। इसके जवाब में इँग्लेंडवाले क्या कहते हैं, ज़रा उसका भी नमूना देखिए। एक अँगरेज़ी पत्र में छपा है—"जेनरेल बोडोलियो गैस के ज़ोर से अबीसीनिया फ़तह करके लौटे हैं। मुसोलिनी की प्रसन्नता की सीमा नहीं है। वह दौड़ कर जेनरल बुडोलियो को अपनी बाहों में भर लेता है और बार बार उनका मुँह चूमता है। पर बजाय प्रसन्नता प्रकट करने के जेनरल बोडोलियो उदास हो जाते हैं और मुँह फेर लेते हैं। भेंट के बाद ही एक आदमी जेनरल से पूछता है—आप बीमार-से दिखते हैं। क्या अबीसीनियनों पर आपने जो गैस चलाई थी उसका कुछ असर आप पर भी पड़ा है? बोडोलियो उसे धीरे से जवाब देता है—जी नहीं, मुसोलिनी ने लहसुन खा रक्खा है। उसके मुँह से ऐसी दुर्गन्धि निकलती है कि उसके क़रीब खड़ा भी नहीं हुआ जाता।"

× × × ×



अपने तन के जानि कै, जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन मन नैन नितंब को, बड़ो इजाफा कीन॥

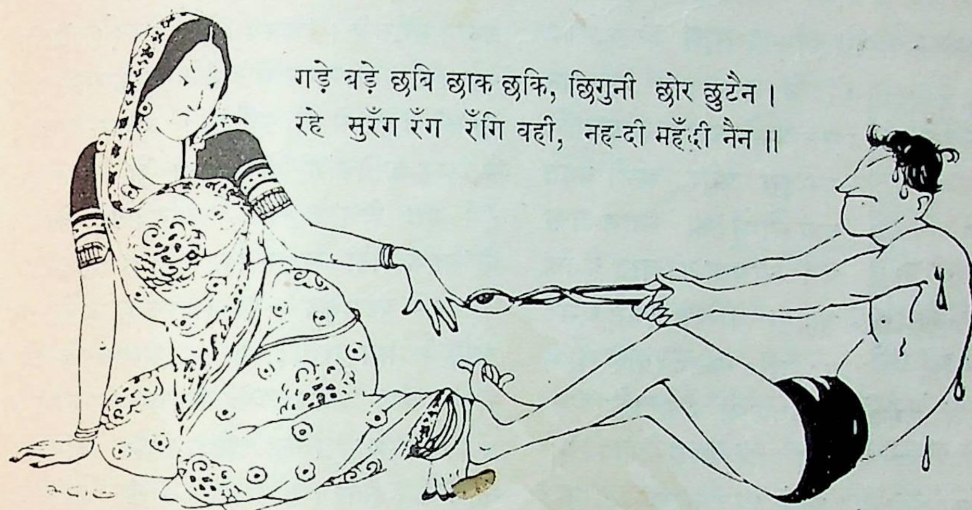
× × × ×

वायना के एक समाचार-पत्र में एक विचित्र विज्ञापन प्रकाशित हुआ है। वह इस प्रकार है—"जिनके बच्चे नहीं हैं वे दम्पती मेरा बच्चा जो अभी गर्भ में है, ख़रीद कर मा-बाप बनने का शौक़ पूरा कर सकते हैं। बच्चे के मा-बाप बहुत स्वस्थ और सुन्दर हैं और वह भी स्वस्थ और सुन्दर ही पैदा होगा। मूल्य ५,००० शिलिङ्ग।" रूटर का कहना है कि अभी तक इस विज्ञापन के उत्तर में कोई माँग नहीं आई है।

× × × ×

श्री केदारनाथ जी के बिहारी के दोहों पर कुछ व्यङ्ग्य चित्र यहाँ और प्रकाशित किये जाते हैं। दूसरे चित्र के भाव पर ज़रा ग़ौर कीजिए। नायिका की छिगुनी के मेहँदी से रँगे हुए नाख़ून की नोक पर नायक की आँखें जम गई हैं। वे किसी तरह नहीं हटतीं। चित्र में देखिए ऐसे नेत्रों की बदौलत बेचारे नायक की मुसीबत। पहले चित्र का भाव स्पष्ट है। तीसरे चित्र में आँसुओं-द्वारा ढाये गये प्रलय का दृश्य है। जिन दोहों पर ये चित्र बनाये गये हैं उनके साथ ये यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं।

× × × ×



गड़े बड़े छवि छाक छकि, छिगुनी छोर छुटैन।
रहे सुरँग रँग रँगि वही, नह-दी महँदी नैन॥



लोपे कोपे इन्द्र लों, रोपे प्रलय अकाल।
गिरधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल॥

सामयिक साहित्य

अवध के ज़िलों के नाम



स्थानों के नामों का अध्ययन एक मनोरञ्जक विषय है। पर इस ओर अभी बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। प्रसन्नता की बात है कि डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट० (पेरिस), ने 'हिन्दुस्तानी' में उपर्युक्त शीर्षक से एक छोटा-सा निबन्ध प्रकाशित कराकर इस ओर अन्य लेखकों का ध्यान आकर्षित किया है। यहाँ हम उनका उक्त लेख उद्धृत करते हैं—

अपने देश में स्थानों के नामों का अभी तक अध्ययन नहीं किया गया है। अनेक नामों के सम्बन्ध में जनश्रुतियाँ और किंवदंतियाँ मिलती हैं किन्तु इनका भी कोई संग्रह अभी तक मौजूद नहीं है। अवध के ज़िलों के नामों का यह अध्ययन केवल दिग्दर्शन कराने के निमित्त है। इसकी अधिकांश सामग्री का मूलाधार गज़ेटियर की जिल्दें हैं। नामों के पीछे छिपे हुए इतिहास की खोज न करके केवल नामों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित मतों का निर्देश इस सम्बन्ध में किया गया है।

अवध का उपप्रांत १२ ज़िलों में विभक्त है। यह ज़िलों का विभाग १८५६ ईसवी में अवध पर अँगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो जाने के बाद हुआ था, यद्यपि इसका मूलाधार मुस्लिमकालीन विभाग था, जो इससे बहुत मिलता-जुलता था। लेकिन इससे यह तात्पर्य नहीं है कि इन ज़िलों के नगरों का निर्माण भी अँगरेज़ी काल में हुआ। इन १२ नगरों में से प्रत्येक १८५६ के पहले मौजूद था। यह अवश्य है कि इनमें से अनेक नगर ज़िले के मुख्य नगर-स्वरूप चुने जाने के बाद विशेष समृद्धि प्राप्त कर सके। लखनऊ और फ़ैज़ाबाद मुस्लिम काल में ही अवध के प्रधान नगर थे। अवध के इन १२ ज़िलों के नामों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में नीचे अकारादि क्रम से उपलब्ध सामग्री संक्षेप में दी गई है। कुछ की व्युत्पत्ति तो स्पष्ट है किन्तु अधिकांश के सम्बन्ध में संदेह बाक़ी रह जाता है। इस क्षेत्र के भावी कार्यकर्ताओं को यह अपूर्णता प्रोत्साहक होनी चाहिए।

१—बहरायच—ऐतिहासिक दृष्टि से यह नाम 'भर' जाति के नाम पर पड़ा था। 'आयच' प्रत्यय की व्युत्पत्ति अस्पष्ट है। जनश्रुति के अनुसार इस नगर का मूल नाम 'ब्रह्मायच' था, किन्तु इतिहास तथा ध्वनिविज्ञान से इसकी पुष्टि नहीं होती।

२—बाराबंकी—इस नाम में 'बारा' सर्व-सम्मति से बारह का विकृत रूप माना जाता है। 'बंकी' अंश 'बाँके' अथवा 'बनकी' (छोटा बन) अर्थवाला समझा जाता है। अर्थात् १२ बाँके या १२ छोटे-छोटे बन। इन १२ बाँकों के सम्बन्ध में एक किंवदंती प्रसिद्ध है, जो गज़ेटियर में विस्तार से वर्णित है। इस नाम का 'भरों के बन' अर्थ से सम्बन्ध जोड़ना बहुत संतोषजनक नहीं होगा।

३—फ़ैज़ाबाद स्पष्ट ही फ़ारसी तत्सम नाम है। इस नगर के प्राचीन भाग का अयोध्या नाम अभी तक मिट नहीं सका है।

४—गोंडा नाम की व्युत्पत्ति 'गोंठ' या पशुओं के व्रज से मानी जाती है, क्योंकि इस स्थान पर एक हिन्दू राजा की 'गोंठ' प्रारंभ में थी।

५—हरदोई नाम प्रसिद्ध साधु 'हरदेव' के नाम पर पड़ा, ऐसी एक किंवदंती है। 'हरदेव' उपनाम एक जागीरदार का भी बतलाया जाता है, जिनका मुख्य नाम हरनकस था।

६—खेरी नाम की कोई व्युत्पत्ति पुस्तकों में नहीं मिलती है। छोटे खेरे से इस नगर का नाम पड़ सकता है। अवधी के विशेषज्ञ और खेरी के रहनेवाले डाक्टर बाबूराम

सक्सेना के अनुसार इसका सम्बन्ध 'ल्वीर' शब्द से होना चाहिए।

७—लखनऊ—यह आश्चर्य की बात है कि अवध की राजधानी के नाम की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। नाम का पूर्वार्द्ध लखन, लक्ष्मण का विकृत रूप है, किन्तु एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार एक प्रसिद्ध भवननिर्माता लिखना के नाम पर नगर का नाम पड़ा है। 'वती' का 'अऊ' होना ध्वनिविज्ञान के अनुसार सम्भव नहीं है।

८—प्रतापगढ़ राजा प्रतापसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस नाम की व्युत्पत्ति असंदिग्ध है।

९—रायबरेली—जनश्रुति के अनुसार यह नगर भरों ने बसाया था और इसका नाम प्रारंभ में भरौली या बरौली था जो बिगड़ कर बाद को बरैली या बरेली हो गया। राय अंश एक निकटवर्ती गाँव राहि का विकृत रूप बतलाया जाता है जो बरेली नाम की अन्य बस्तियों से पृथक् करने के लिए इस नाम के साथ जोड़ दिया गया है। क्योंकि यह नगर बहुत दिनों कायस्थ ज़मीदारों के हाथ में रहा था इसलिए यह रायबरेली कहलाने लगा, ऐसा एक दूसरा मत भी इस सम्बन्ध में है।

१०—सीतापुर नाम की व्युत्पत्ति स्पष्ट ही है।

११—सुल्तानपुर नाम सुल्तान अलाउद्दीन ग़ोरी के समय में पड़ा था। इस बस्ती का प्राचीन नाम कुशपुर बतलाया जाता है।

१२—उन्नाव—राजा उनवंत के नाम पर पड़ा, ऐसा प्रसिद्ध है, किन्तु ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से यह व्युत्पत्ति संदिग्ध मालूम होती है।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से कुछ रोचक निष्कर्ष निकलते हैं—

(क) किसी भी नाम पर अँगरेज़ी प्रभाव नहीं मिलता। स्थानों के नामों पर अँगरेज़ी प्रभाव अभी कम पड़ा है।

(ख) फ़ैज़ाबाद स्पष्ट ही मुसलमानी नाम है और सुल्तानपुर आधा नर आधा मृगराज है। इस तरह की प्रवृत्ति नामों के सम्बन्ध में बराबर पाई जाती है।

(ग) सीतापुर विशुद्ध संस्कृत नाम है। प्रतापगढ़, हरदोई और लखनऊ में भी संस्कृत मूल रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

(घ) अन्य नामों—बहराइच, बाराबंकी, गोंडा, खेरी, रायबरेली और उन्नाव—की व्युत्पत्ति बहुत स्पष्ट नहीं है। बहराइच, बरेली और बराबंकी नाम भरों के नाम पर पड़े थे ऐसा माना जाता है, गोंडा और खेरी नाम इन स्थानों की प्रकृति पर पड़े। उन्नाव नाम के सम्बन्ध में संदेह ऊपर प्रकट किया जा चुका है।

वास्तव में अवध के ज़िलों के इन १२ नामों में से अधिकांश की व्युत्पत्ति अभी संदिग्ध है और इनकी विशेष खोज होने की आवश्यकता है। इन नामों के पीछे कितना इतिहास छिपा पड़ा है, यह तो पृथक् ही विषय है।

पत्र-लेखन-कला

पत्र लिखना भी एक कला है। सच्चे हृदय से लिखे गये पत्र का पानेवाले पर प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने रोमाँ रोलाँ और टाल्सटाय के पत्र-व्यवहार का ज़िक्र करते हुए 'विशाल भारत' में एक लेख लिखा है और हिन्दी के लेखकों को इस सम्बन्ध में सत्परामर्श भी दिये हैं। आपके लेख का आरम्भिक अंश इस प्रकार है—

सन् १८८७—

२१ वर्ष का एक फ़रासीसी युवक पेरिस की एक मामूली गली में अपने छोटे-से कमरे में बैठा हुआ है। वह कला और गान-विद्या का प्रेमी है। अभी हाल में ही टाल्सटाय की पुस्तक "What is to be done ?" (हमारा कर्तव्य क्या है ?) छपी है। इस पुस्तक में टाल्सटाय ने कला-सम्बन्धी प्रचलित विचारों पर काफ़ी ज़ोरदार आक्षेप किये हैं। इस पुस्तक को पढ़कर उस युवक की मानसिक स्थिति डावाँडोल हो गई, क्योंकि अब तक वह टाल्सटाय को अपना आदर्श मानता रहा है। उसने मन में सोचा कि चलो, टाल्सटाय को एक चिट्ठी ही लिख दूँ, वह महान् लेखक मेरे जैसे मामूली युवक के पत्र का उत्तर तो भला क्यों देने लगा। उसने टाल्सटाय को एक पत्र भेज दिया, जिसमें उसने अपनी शंकायें लिखी थीं, और कुछ दिनों तक उत्तर की प्रतीक्षा भी की, फिर इस बात को भूल ही गया। कुछ सप्ताह इसी प्रकार बीत गये। एक दिन शाम के वक्त वह अपने कमरे को लौटा, तो क्या देखता है कि फ़रासीसी भाषा में एक लम्बी चिट्ठी कहीं से आई है।

उसको खोलने पर मालूम हुआ कि यह तो टाल्सटाय का पत्र है ! यह पत्र ३८ पृष्ठ का था, या यों कहिए कि एक छोटा-सा ट्रेक्ट ही था। उस अपरिचित साधारण युवक को टाल्सटाय ने 'प्रिय बन्धु' लिखा था। पत्र के प्रारम्भिक शब्द थे —"तुम्हारी पहली चिट्ठी मुझे मिली। उससे मेरा हृदय द्रवित हो गया। पढ़ते-पढ़ते आँखों में आँसू आ गये।" इसके बाद टाल्सटाय ने अपने कला-सम्बन्धी विचार उस पत्र में प्रकट किये थे —"दुनिया में वही चीज़ क़ीमती है, जो मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को दृढ़ करे, जो उनमें भ्रातृभाव स्थापित करे, और सच्चा कलाकार वही है, जो अपने सिद्धान्तों तथा विश्वासों के लिए त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार हो। सच्चे पेशे की पहली शर्त कला का प्रेम नहीं, बल्कि मानव-जाति से प्रेम है। जिनके हृदय में मनुष्य-जाति के प्रति प्रेम है, वे ही कभी कलाकार की हैसियत से उपयोगी कार्य करने की आशा कर सकते हैं।" टाल्सटाय के विस्तृत पत्र का सारांश यही था।

इस पत्र ने उस युवक के हृदय पर बड़ा भारी प्रभाव डाला। सबसे महत्त्वपूर्ण बात उसे यह जँची कि इस विश्व-विख्यात महापुरुष ने मेरे जैसे एक अपरिचित युवक को इतनी लम्बी और सहृदयतापूर्ण चिट्ठी भेजी है। और तब से उस युवक ने यह निश्चित कर लिया कि यदि कोई आदमी अपने संकट के समय में अन्तरात्मा से कोई पत्र भेजेगा तो मैं अवश्य ही उसका उत्तर दूँगा, क्योंकि संकटग्रस्त मनुष्य की सेवा ही कलाकार का सर्वोत्तम गुण है।

इस घटना को आज ४९ वर्ष होने आये। इन ४९ वर्षों में उस युवक ने जो आज रोमाँ रोलाँ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हो चुका है, हज़ारों ही चिट्ठियाँ लिखी हैं और सहस्रों ही व्यक्तियों के लिए पथप्रदर्शक का काम किया है। टाल्सटाय की उस एक चिट्ठी ने जो बीज बोया था वह आज वटवृक्ष के रूप में लहलहा रहा है। रोमाँ रोलाँ के लिखे हुए हज़ारों ही पत्र जो साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, संसार के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के पास सुरक्षित हैं। जिस दिन टाल्सटाय ने उस पत्र के लिखने में अपने समय के कुछ घंटे व्यय किये थे, उन्होंने स्वप्न में भी यह ख़याल न किया होगा कि आगे चलकर मेरा यह पत्र इतना सफल होगा।

इस घटना से पत्र-लेखन-कला का महत्त्व प्रकट होता है। क्या ही अच्छा हो, यदि हम लोग—ख़ास तौर से हिन्दी-लेखक और सम्पादक—इस बात को हृदयंगम कर लें। पत्र-लेखन-कला पर अधिक लिखने के पहले एक बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है, वह यह कि जो आदमी वज़ात ख़ुद अच्छा नहीं है, वह अच्छा पत्र-लेखक हर्गिज़ नहीं बन सकता। कृत्रिम ढंग से लिखे हुए पत्रों की पोल बड़ी आसानी से खुल जाती है। जिस तरह कोई कुशल व्यापारी रुपये को हाथ में लेते ही खरे और खोटे सिक्के की पहचान कर लेता है, उसी तरह किसी सुसंस्कृत आदमी के लिए स्वाभाविक और बनावटी पत्रों में भेद करना कोई मुश्किल बात नहीं है। इसके सिवा बने हुए पत्र काग़ज़ी नाव की तरह हैं, जो चल नहीं सकते। काठ की हाँड़ी की तरह केवल एक बार आप उनसे काम ले सकते हैं। अच्छा पत्र-लेखक बनना अत्यन्त कठिन है। अन्य क्षेत्रों में तो आपको थोड़े से आदमियों का मुक़ाबला करना पड़ता है; पर यह क्षेत्र तो ऐसा है जिसमें दुनिया आपकी प्रतिद्वन्द्विता के लिए खड़ी है, क्योंकि चिट्ठियाँ तो लाखों-करोड़ों ही आदमी नित्यप्रति लिखा करते हैं।

दक्षिण भारत में छुआछूत

अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष सेठ घनश्यामदास बिड़ला हाल में अपना दौरा समाप्त करके लौटे हैं। दक्षिण-भारत में छुआछूत की वर्तमान स्थिति के बारे में उन्होंने एक वक्तव्य समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराया है। उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

मुझे यह दिखाई दिया कि हरिजन-सेवक-संघ के पिछले साढ़े तीन वर्षों के कार्यों से हरिजनों और सवर्णों के दृष्टिकोण पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। दक्षिण-भारत में छुआछूत बहुत भीषण रूप से है, पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ट्रावन्कोर ने पिछले कुल वर्षों में इस दिशा में बहुत उन्नति की है और अब वहाँ छुआछूत दक्षिण-भारत में प्रचलित छुआछूत को देखते हुए बहुत ही थोड़ी रह गई है। सभी सड़कें प्रत्येक हिन्दू के लिए खुली हैं। राज-दरबार के उत्सवों में हरिजनों को सम्मिलित होने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

कोचिन-राज्य में केवल मन्दिर-प्रवेश पर ही प्रतिबन्ध नहीं है, बल्कि मन्दिरों के तालाबों, कुओं पर भी प्रतिबन्ध है, और साथ ही मन्दिरोंवाली सड़कों तथा कुछ ख़ास स्कूलों में भी हरिजनों के लिए रोक लगी हुई है। परन्तु मैसोर में तो इससे भी अधिक रोक हरिजनों पर है। वे मैसोर के किसी उत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते। मैं दरबार के महाराज से जो कि बड़े सहानुभूतिपूर्ण शासक हैं, मिला था और उनसे तथा दीवान से इस सम्बन्ध में बातें की थीं और मुझे आशा है कि थोड़े ही समय में हरिजनों के विरुद्ध कोई भेदभाव नहीं रह जायगा, ख़ास कर राज-महल के कार्यों में।

परन्तु प्रधान प्रश्न मन्दिर-प्रवेश का है जो समस्त भारत में समान रूप से है। एक बार हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश होने की सुविधा प्राप्त होने पर केवल मन्दिरों की सड़कों, कुओं, तालाबों का प्रश्न ही स्वतः हल न हो जायगा, बल्कि ऊँच और नीच का समस्त दृष्टिकोण ही बदल जायगा, जिसके कारण छुआछूत जारी है। इसलिए मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न ने ठीक ही बहुत विकट रूप धारण कर लिया है, विशेषतः ट्रावन्कोर में। ट्रावन्कोर और आस-पास के देशी राज्यों के सवर्ण हिन्दुओं को यह भय हो रहा है कि यदि मन्दिरों में शीघ्र ही हरिजनों को जाने की सुविधा नहीं प्राप्त होती तो यह ख़तरा है कि हरिजन लोग बहुत बड़ी संख्या में अन्य धर्म ग्रहण कर लेंगे। सौभाग्य से केरल में और विशेषतः ट्रावन्कोर में बहुत-से सवर्ण हिन्दुओं की बहुत ज़ोरदार सम्मति मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में है। ५० हज़ार सवर्ण हिन्दुओं के हस्ताक्षर से एक आवेदन-पत्र मैसोर के महाराज के समक्ष उपस्थित करने को तैयार किया गया है। पिछले कुछ महीनों से ट्रावन्कोर में एक ज़ोरदार आन्दोलन मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में चल रहा है। महाराज ट्रावन्कोर और राजमाता बहुत उदार और उन्नत विचार के हैं। ट्रावन्कोर में रहते समय मुझे उन लोगों से दो बार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने उनको सब मामला समझाया और मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्हें सवर्ण हिन्दुओं की इस इच्छा के प्रति बड़ी सहानुभूति है कि हरिजन मन्दिरों में स्वतन्त्र रूप से प्रविष्ट किये जायँ। इसमें निस्सन्देह कुछ कठिनाइयाँ भी हैं, पर मुझे यह विश्वास करने का कारण है कि ये कठिनाइयाँ हल हो जायँगी और बिना अनुचित विलम्ब के नतीजे सन्तोष-जनक निकलेंगे। मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में ट्रावन्कोर-राज्य-द्वारा नेतृत्व करने से, जो हिन्दू-धर्म के इतिहास में युगनिर्माणकारी दिवस होगा, मुझे आशा है कि आस-पास के अन्य देशी राज्य भी उनका अनुसरण करेंगे। यद्यपि मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न हल होने पर छुआ-छूत क़ानूनी रूप से वर्जित हो जायगी, पर इसका अर्थ यह नहीं होगा कि समस्त समाज से छुआछूत दूर हो गई। यह बात सुधारकों के प्रयत्न पर निर्भर रहेगी। इस प्रकार हमारे सामने बहुत बड़ा कार्य करने को है और वह वास्तव में तब शुरू होगा, जब मन्दिर हरिजनों के लिए खुल जायँगे।

सरकार और आयुर्वेद

आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति भारतीयों के स्वास्थ्य के अनुकूल है और अल्प-व्ययसाध्य भी है। दुःख की बात है कि सरकार से इसे उतना प्रोत्साहन नहीं मिला जितना कि मिलना चाहिए। आयुर्वेद-सम्मेलनों में इसकी शिकायत बराबर सुनने में आती है। हाल में जो बंगाल प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन हुआ था उसके सभापति महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन ने अपने भाषण में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

गत २५ वर्षों से आयुर्वेद तथा आयुर्वेदिक पद्धति-द्वारा चिकित्सा की सरकार से स्वीकृति के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। फल-स्वरूप मदरास, युक्त-प्रान्त तथा बिहार में स्वीकृति मिल गई है और आयुर्वेद कालेज तथा अस्पताल सरकार-द्वारा खोले गये हैं, परन्तु बंगाल में आयुर्वेदिक संस्थायें सरकारी सहायता से वंचित हैं तथा प्रान्त में आयुर्वेदिक पद्धति की स्वीकृति नहीं हुई है। अन्य प्रान्तों के लोग शक्ति भर सरकार की सहायता पाने की कोशिश करते रहे हैं, परन्तु इस प्रान्त में उनके भाइयों का विरोध हो रहा है।

यदि हम दृढ़ निश्चयी होकर उसे अपने पूर्व गौरवयुक्त पद पर आसीन कराने का प्रयत्न नहीं करते तो आयुर्वेद का भविष्य अंधकारमय है। यदि बंगाल में बुद्धिमान् लोग।

इधर अपना ध्यान आकर्षित नहीं करते तो थोड़े से कविराजों के त्याग के बल पर यह कार्य दुःसाध्य से सुसाध्य नहीं किया जा सकता। आयुर्वेद-शास्त्र की निधियाँ धीरे-धीरे इस देश से निकल रही हैं। अर्धशिक्षित तथा अपूर्ण शिक्षित कविराजों की संख्या में वृद्धि हो रही है। अतः संभावना इस बात की है कि इस प्राचीन तथा स्वदेशी पद्धति से लोगों की सहानुभूति हट जायगी। व्यापक सहानुभूति एवम् विश्वासपूर्ण सहयोग से ही, यह बुराई दूर होगी। अतः मैं बहुत ही विनम्रतापूर्वक आप सबसे प्रार्थना करता हूँ कि आप एक होकर इस ध्येय की प्राप्ति में आगे बढ़ें।

देशी चिकित्सा-प्रणाली

'प्रताप' अपने एक सम्पादकीय नोट में लिखता है—

बम्बई के सुप्रसिद्ध डाक्टर जीवराज मेहता ने ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली की आलोचना करते हुए कहा है कि इससे ग़रीब लोगों को अधिक लाभ नहीं पहुँचता, क्योंकि ऐलोपैथिक दवाइयाँ बहुत महँगी पड़ती हैं। इस सम्बन्ध में डाक्टर मेहता ने आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सा-प्रणाली की प्रशंसा करते हुए यह भी कहा है कि वैद्य और हकीम ऐसी दवाइयाँ बताते हैं जिन्हें ग़रीब लोग आसानी से ख़रीद सकते हैं। डाक्टर मेहता ने यह सलाह दी है कि मेडिकल कालेजों में अगर छात्रों को ऐलोपैथिक के साथ-ही-साथ आयुर्वेद और यूनानी की भी शिक्षा दी जाय तो चिकित्सा-विज्ञान की उन्नति के साथ-ही-साथ यह भी लाभ हो कि डाक्टर लोग ग़रीबों के लिए सस्ती और उपयोगी घरेलू दवाओं के नुसख़े लिखना जान जायँ। डाक्टर मेहता भारत के सर्वश्रेष्ठ ऐलोपैथिक डाक्टरों में से एक हैं। उनकी सम्मति के अधिकार-पूर्ण होने के सम्बन्ध में सन्देह करने की कोई गुञ्जाइश नहीं है। डाक्टर मेहता ने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे कर्नल बकले ऐसे व्यक्तियों के कथन का थोथापन ज़ाहिर हो जाता है, जो देशी चिकित्सा-प्रणाली की निन्दा करने में नहीं हिचकते।

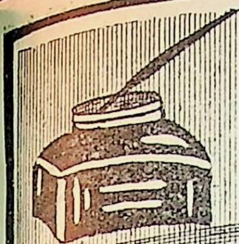
श्री मैथिलीशरण गुप्त का सन्देश

कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी ५० वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया है—

मेरे मित्रों ने मेरी सेवाओं की जो प्रशंसा की है उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। उनकी कृपा से मेरा हृदय अभिभूत हो गया है। मुझे अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए शब्द नहीं मिल रहे हैं। मैं तो केवल भगवती सरस्वती के मन्दिर का विनम्र पुजारी हूँ। मैंने अपनी ही भावनाओं के अनुसार सरस्वती देवी की पुनीत वेदी पर अपनी भेंटें समर्पित की हैं। मैंने कभी महान् बनने की आकांक्षा नहीं की। मैं अपने मित्रों को विश्वास दिलाता हूँ कि जो कुछ भी मुझे थोड़ी-बहुत सफलता मिली है उसके अभिमान से मैं कभी आत्म-विस्मृत नहीं हुआ हूँ।

मातृभाषा हिन्दी का भाण्डार इस समय साहित्य के ग्रन्थ-रत्नों से भरा हुआ है। हिन्दी-साहित्य के इस पुनरुज्जीवन-काल से यद्यपि संयोगवश ही मेरे अपर्याप्त प्रयत्नों का सम्बन्ध हो गया है, फिर भी मुझे इससे असीम सन्तोष ही होता है। हिन्दी आज उन सभी गुणों से अलङ्कृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषा की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है। आशा और उत्कर्ष से भरे हुए मैं हिन्दी के भविष्य का इस समय अस्पष्ट दर्शन कर रहा हूँ।

अपनी इस ५० वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में मैं विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि सूर, तुलसी और कबीर की यह भाषा एक बार फिर पीड़ित और संघर्षण-रत मानवता को शाश्वत शान्ति और सौख्य का सन्देश दे।



सम्पादकीय नोट

योरप का भयंकर भविष्य



राष्ट्र-संघ की बैठक में स्वयं उपस्थित होकर उस दिन अबीसीनिया के सम्राट् ने बड़ा महत्त्व-पूर्ण भाषण किया है। उनके भाषण से प्रकट होता है कि उनके साथ न्याय भी नहीं किया गया है। उन्होंने न्याय के नाम पर बड़ी गम्भीरता के साथ न्याय किये जाने तथा मदद पाने के लिए राष्ट्र-संघ से अपील की। परन्तु राष्ट्र-संघ ने उनकी करुण अपील का कोई समुचित उत्तर देना तो अलग रहा, उसने अब इटली के विरुद्ध लगाई गई आर्थिक दण्ड-व्यवस्था को भी उठा लेने तक की घोषणा कर दी है। यह सच है कि उसने अबीसीनिया पर इटली का अधिकार नहीं स्वीकार किया है। परन्तु इससे क्या बनता-बिगड़ता है? उसने मंचूरिया पर भी तो जापान का अधिकार अभी तक नहीं स्वीकार किया है। परन्तु यह बात कौन नहीं जानता कि आज मंचूरिया चीन का नहीं है, किन्तु जापान के क़ब्ज़े में है। सो वही हाल अबीसीनिया का भी है। इन एक तरह की दो घटनाओं से संसार के सभी छोटे-भइये स्वाधीन राज्य विशेष रूप से चिन्तित हो उठे हैं। यहाँ तक स्वीज़लैंड जैसा परम शान्तिप्रिय राज्य जिसके पास कोई स्थायी सेना भी नहीं है, आज आत्मरक्षा की सामरिक व्यवस्था करने के लिए लाखों रुपये ख़र्च कर रहा है। और यही वह अवस्था है जिसको आज योरप के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ अपने हाथ में नहीं कर पा रहे हैं। योरप के कुछ राज्य अपनी अवस्था को उन्नतोन्मुख समझकर अपना तदनुसार प्रभाव भी बढ़ाना चाहते हैं और उनकी इस लालसा को योरप की प्रमुख शक्तियाँ भयावह समझ रही हैं। ऐसे ही असन्तोष और अविश्वास के फेर में पड़ा हुआ योरप सीधा मार्ग नहीं पा रहा है, इसके विपरीत वह अधिकाधिक चक्कर में पड़ता जा रहा है। अबीसीनिया के झमेले से अपने को लज्जाजनक ढङ्ग से मुक्तकर उसने राइनलेंड के जर्मनप्रवेश की समस्या के हल करने का प्रयत्न आरम्भ ही किया था कि दरे दानियाल और डेंज़िग के सवाल उठ खड़े हुए। दरे दानियाल के प्रश्न के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए मुसोलिनी ने भी इस बात का संकेत किया है कि पिछले दिसम्बर में भूमध्य-सागर के तटवर्ती देशों ने सहायता का जो आश्वासन ग्रेट ब्रिटेन को दिया था उसके रहते तथा रूस के जहाज़ों के भूमध्यसागर में प्रवेश करने का अधिकार पाते देखकर वह अब अपने जहाज़ी बेड़े को बढ़ावेगा। डेंज़िग को वहाँ के जर्मन नाज़ी नाज़ी जर्मनी के हवाले कर देना चाहते हैं और उनका यह काम संधि के विपरीत होता है। इस प्रकार योरप के राजनीतिज्ञों की कठि-नाइयाँ घटने के स्थान में बढ़ती ही जा रही हैं। ऐसी दशा में ब्रिटेन और फ़्रांस के सूत्रधार जिस धैर्य के साथ स्थिति को सँभालने का यत्न कर रहे हैं, यद्यपि उसके लिए आज वे अपने अपने देश में निन्दा के पात्र बन रहे हैं, तो भी वे निस्सन्देह प्रशंसार्ह हैं, क्योंकि उनके संयम के कारण संसार-व्यापी महायुद्ध का ज्वालामुखी कम से कम उभड़ने तो नहीं पा रहा है। परन्तु यह अवस्था अब अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती, क्योंकि संयम और शील की भी सीमा है। यदि ब्रिटेन तथा फ़्रांस बराबर दबाये ही जाते रहेंगे और उनके स्वार्थों पर भी बराबर चोट पर चोट पहुँचाई जाती रहेगी तो वही कहाँ तक समाई करेंगे? आख़िर उन्हें म्यान से तलवार निकालनी ही पड़ेगी और तब जो देवासुर-संग्राम होगा उसमें योरप की सारी सभ्यता तथा संस्कृति धूल में मिल जायगी। दुःख की बात है, वह दिन अधिकाधिक निकट आता दिखाई दे रहा है।

मुसोलिनी की कूटनीति

जर्मनी और आस्ट्रिया का जो महत्त्वपूर्ण समझौता (जिसमें इटली भी शामिल है), इसी जुलाई के पहले पखवारे में हुआ है उसने योरप के महायुद्ध के बाद के सारे सम-

भौतों को एक प्रकार से महत्त्वहीन बना दिया है। इस नये समझौते ने जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया और हंगरी को एक सुदृढ़ दल में संगठित कर दिया है। महायुद्ध के पहले भी इनका यह दल क़ायम था, परन्तु युद्ध-काल में इस दल से इटली अलग हो गया था। अब वह इस दल में खुद फिर शामिल ही नहीं हुआ है, किन्तु उसी के प्रयत्न से यह दल फिर नये सिरे से अस्तित्व में आया है। और यह काम करके इटली के मुसोलिनी ने यह प्रमाणित किया है कि मेकियावेली की जन्मभूमि का पानी आज भी वैसा ही चोखा बना हुआ है।

इस नये कूटनीति के पैतरे से सबसे अधिक महत्त्व की यह बात हुई है कि लोकार्नो और स्ट्रेसा की सन्धियों का सारा महत्त्व जाता रहा और पश्चिमी योरप से पूर्वी तथा दक्षिणी योरप के छोटे-बड़े राज्य बहुत दूर जा पड़े हैं। यही नहीं, फ़्रांस ने रूस से जो नई सन्धि की है उसका भी उत्तर इस समझौते से हो जाता है।

अब रही बात युद्ध की, सो उसके लिए अभी कोई तैयार नहीं है। यद्यपि फ़्रांस की योरप के कई राज्यों से घनिष्ठ मित्रता है, तो भी वह ब्रिटेन को अपने साथ रक्खे बिना कोई साहस-पूर्ण कार्य करने को तैयार नहीं होता। और ब्रिटेन तो ऐसा कोई काम करने को आज तैयार ही नहीं है। वह तो अभी तक विश्वशान्ति और निश्शस्त्रीकरण के ही फेर में पड़ा हुआ था। परन्तु अब जब अबीसीनिया के मामले में उसको बार बार मुँह की खानी पड़ी तब उसकी भी आँखें खुली हैं।

अबीसीनिया के ही प्रश्न के सम्बन्ध में ब्रिटेन के वैदेशिक मंत्री को पदत्याग तक करना पड़ा। यही क्यों, उसकी प्रेरणा से इटली के विरुद्ध जो आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये थे उन्हें भी अबीसीनिया के हार जाने पर उठा लेना पड़ा है तथा इटली का विरोध-भाव देखकर उसने भूमध्य सागर में जो सामरिक आयोजन किया था उसे तक भङ्ग कर देना पड़ा है तथा इटली का आक्रमण होने पर फ़्रांस, तुर्की आदि से सक्रिय सहायता के जो वचन उसने लिये थे उन सबसे भी उन राष्ट्रों ने अपने आपको शीघ्र ही मुक्त कर लिया है। और यह सब ब्रिटेन को करना पड़ा है इटली का रोष देखकर। ग्रेट ब्रिटेन जैसे संसार के प्रमुख शक्तिशाली राष्ट्र के लिए यह स्थिति गौरव-वर्द्धक नहीं हुई। अतएव अब वह अपनी चौमुखी सामरिक तैयारी में संलग्न हुआ है।

उधर फ़्रांस और जर्मनी की बड़े महत्त्व की राजनैतिक भिड़न्त हो रही है। फ़्रांस उसे राजनैतिक दाँव-पेंचों से परास्त करना चाहता है, पर जर्मनी उसके फन्दों में नहीं फँसना चाहता। वह अपने को काफ़ी बलवान् समझता है और अपने उपयुक्त मर्यादा और प्रतिष्ठा की माँग कर रहा है। राइनलेंड में सेना भेजकर उसने संसार को बता दिया है कि जर्मनी अब पहले जैसा ही स्वाभिमानी राष्ट्र हो गया है और अब वह ऐसी कोई भी बात करने या सुनने को तैयार नहीं है जिससे उसकी हेठी होती हो। इन दोनों राष्ट्रों में इस समय ऐसा ही संघर्ष है। फ़्रांस को साहस नहीं होता कि वह जर्मन को सन्धियों के भंग करने का दण्ड दे। जर्मनी अब ऐसा ही शक्ति-सम्पन्न है। नहीं तो पोयाँकारे के समय में एक बार इसी फ़्रांस ने राइनलेंड में अपनी सेनायें भेज दी थीं और जब तत्कालीन जर्मन-सरकार ने उसकी शर्तें मान लीं तब कहीं फ़्रांस की सेनायें वहाँ से महीनों बाद वापस बुलाई गई थीं। परन्तु न फ़्रांस में अब पोआँकारे हैं, न जर्मनी में उनके समय की निर्बल सरकार है। इसी से जर्मनी के उग्ररूप दिखलाने पर आज फ़्रांस क़ानूनी बातचीत करना ही श्रेयस्कर समझता है।

और अब जब मुसोलिनी की कूटनीति ने जर्मनी के पक्ष को अधिक प्रबल बना दिया है तब फ़्रांस के भी कान खड़े हो गये हैं और वह भी ब्रिटेन की भाँति विक्षुब्ध हो उठा है। वास्तव में इस समय मुसोलिनी के 'डंडावाद' की जीत हुई है। देखना है कि वह भविष्य में अपने इस मैदान में कब तक ठहर सकता है।

मियाँ सर फ़ज़लहुसेन का देहावसान

पंजाब के मियाँ सर फ़ज़लेहुसेन का इसी जुलाई के पहले सप्ताह में स्वर्गवास हो गया। अभी अभी वे पंजाब के एक बार फिर शिक्षा-सचिव बनाये गये थे और अगला चुनाव लड़ने के लिए पंजाब में अपने 'यूनियनिस्ट दल' का वे नये सिरे से सङ्गठन करने में बड़ी मुस्तैदी से संलग्न थे। वे ठोस कार्य करनेवाले लोकनेताओं में से थे। उन्होंने आजीवन मुसलमानों की सेवा की है और उनके हित के लिए सरकार से मिलकर मुसलमानों के स्वत्वों को सदा के

लिए स्पष्ट करवा लिया है। द्वैधशासन-प्रणाली को सफल बनाने में उन्होंने सरकार की पूरी सहायता की। उन्होंने प्रान्तीय सरकार एवं केन्द्रीय सरकार के मंत्रिमण्डलों में बड़ी शान के साथ १५ वर्ष तक अपने उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। आज मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का जो इतना अधिक ज़ोर है उसको इस स्थिति तक पहुँचाने में सर फ़ज़लेहुसेन का कम हाथ नहीं रहा है। ऐसे ज़बर्दस्त कार्यकर्ता के उठ जाने से मुसलमानों की वास्तव में अपार क्षति हुई है और सो भी ठीक उस समय जब नये शासनविधान के अनुसार नया चुनाव होने जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं, वे एक बड़े बुद्धिमान्, कार्यदक्ष और अध्यवसायी नररत्न थे और अपने दृष्टिकोण से उन्होंने तन-मन से मुसलमान-जाति की अपरिमित सेवा की है।

वे वास्तव में मुसलमानों के एक बड़े ज़बर्दस्त नेता थे। मुस्लिम-लीग के संस्थापकों में भी वे एक थे। पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी का भी उन्हीं ने संगठन किया था। मुसलमानों में उनके प्रयत्नों से शिक्षा का अच्छा प्रचार हुआ है। उन्होंने १५ वर्ष तक उच्च से उच्च पदों पर रहकर अपनी जाति की तथा सरकार की भलाई की। पंजाब में ५५ फ़ी सदी के हिस्साबाँट की नींव उन्हीं ने रक्खी थी। वे १९२१ से सम्प्रदायवाद के पक्के समर्थक हो गये थे।

उनका जन्म सन् १८७७ में बटाला में हुआ था। वे लड़कपन से ही तीक्ष्णबुद्धि और अध्यवसायी थे। स्कूल और कालेज की शिक्षा समाप्त कर उन्होंने विलायत में क़ानून का अध्ययन किया और बैरिस्टर हो गये। स्वदेश लौटकर वे स्यालकोट में प्रैक्टिस करने लगे। बाद को लाहौर चले आये और पंजाब-हाईकोर्ट में बैरिस्टरी करने लगे।

१९०७ में वे इस्लामिया-कालेज में प्रोफ़ेसर नियुक्त किये गये। कुछ समय तक वे उसके प्रिंसिपल भी रहे। पंजाब-विश्वविद्यालय के सन् १९०९ से १९२० तक फेलो और १९१२ से १९२१ तक उसके सिंडीकेट के सदस्य भी रहे।

उनका राजनीति में प्रत्यक्ष प्रवेश सन् १९१६ से हुआ है जब वे पंजाब की प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ़रेंस के सभापति चुने गये थे और उन्होंने उन दिनों कांग्रेस का पूरा साथ दिया था। १९२० से १९३० तक वे पंजाब की व्यवस्थापक सभा के तीन बार सदस्य चुने गये। उन्हें पंजाब की प्रान्तीय सरकार ने १९२१ में शिक्षा-मंत्री का पद दिया। इसके बाद १९२६ में वे सरकारी दल के नेता बनाये गये।

सन् १९२७ में वे राष्ट्र-संघ के प्रतिनिधि बनाकर जेनेवा भेजे गये। १९३२ में जो प्रतिनिधि-मण्डल यहाँ से दक्षिण-अफ़्रीका को भेजा गया था उसके एक सदस्य वे भी थे। वहाँ से लौटने पर वे गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्य बनाये गये। इसके सदस्य पहले भी दो बार अस्थायी रूप के वे हो चुके थे। अभी हाल में उन्हें पंजाब के शिक्षा-मन्त्री का पद फिर दिया गया था और लोगों को आशा थी कि नये शासन-विधान के कार्य में परिणत होने पर पंजाब-सरकार के वही प्रधान मंत्री बनेंगे। परन्तु ईश्वर को यह मंज़ूर नहीं था और उनकी मृत्यु हो गई। निस्सन्देह उनकी मृत्यु से मुसलमान-जाति का एक बहुत बड़ा नेता उठ गया है।

अमरीका का स्वर्णगढ़

गत ५ वर्ष से भारत का सोना विदेशों को ढोया चला जा रहा है और अभी उसका क्रम बन्द नहीं हुआ है। आज भी प्रतिसप्ताह ५० लाख रुपये के मूल्य का सोना बाहर भेजा जाता है। पिछले ५ वर्षों में भारत से कम-से-कम २,७५,००,००,००० रुपये का सोना बाहर भेजा जा चुका है। इस प्रकार भारत अपने स्वर्ण-भाण्डार से रिक्त-सा होता जा रहा है। उधर संसार के शक्तिशाली राष्ट्र अपने अपने स्वर्ण-भाण्डार बढ़ाते जा रहे हैं। यहाँ तक कि उनमें से फ़्रांस और संयुक्त-राज्य को अपने स्वर्ण-भाण्डारों को सुरक्षित रखने के लिए आधुनिक ढंग के अभिनव सुदृढ़ भवन निर्माण करने पड़े हैं। फ़्रांस का सोना तो पेरिस में ज़मीन के नीचे बनाये गये एक सुदृढ़ और सो भी अति गुप्त भवन में रक्खा गया है। यदि पेरिस एक बार शत्रु के अधिकार में चला भी जाय तो भी उस ख़ज़ाने के रक्षक शत्रुओं से अपनी और अपने ख़ज़ाने की रक्षा २ महीने तक सफलतापूर्वक कर सकते हैं। फ़्रांस की तरह अमरीका के संयुक्त-राज्य ने भी अपने स्वर्ण-भाण्डार की रक्षा की व्यवस्था अभिनव ढंग से की है, जिसका विवरण 'आज' में इस प्रकार दिया गया है—

यह क़िला पहाड़ियों से घिरे एक स्थान में केन्टकी में बन रहा है जो सामरिक दृष्टि से भी उपयुक्त है। इसकी रक्षा के लिए घोड़सवार, तोपख़ाना और पलटन के दस्ते रहेंगे। चोरों की युक्तियाँ न चलने देने के लिए प्रत्येक ज्ञात वैज्ञानिक उपाय का उपयोग किया गया है। आग लगने या भूकम्प होने पर सारे दुर्ग को जलमय कर देने का भी उपाय किया गया है।

अमरीका का आधे से अधिक सोना, जिसकी मालियत ६ अरब डालर के लगभग होगी, इस क़िले में रक्खा जायगा। इस विशाल स्वर्णराशि को न्यूयार्क और फिलाडेल्फिया के वर्तमान तहख़ानों से निकाल कर वहाँ तक ले जाने के लिए जो बन्दोबस्त किया जानेवाला है वह भी एक बेजोड़ बात होगी। ४० या ५० स्पेशल जंगी (आर्मर्ड) ट्रेनें इस स्वर्णराशि को केन्टकी पहुँचावेंगी। उनकी रवानगी गुप्त रक्खी जायगी। लाइन पर फ़ौजी सिपाहियों का पहरा रहेगा। हर एक ट्रेन में सम्भवतः ५ बड़े डिब्बे रहेंगे और एक एक डिब्बे में कोई १ हज़ार पाँसे अर्थात् २८० लाख डालर का सोना रहेगा।

यह दुर्ग देखने में मध्यकाल की गढ़ियों जैसा लगता है। इसका घेरा १०० फ़ुट मुरब्बा है। चारों कोनों पर बीच में लोहे के छड़ देकर सीमेंट से बनाई हुई चार इमारतें होंगी, जिनमें सम्भवतः तोपें रक्खी जायँगी। बाहरी इमारत के बीच में एक भीतरी इमारत होगी। उसमें खिड़कियाँ नहीं हैं और सारी इमारत एक चट्टान-सी मालूम होती है, जिसके भीतर प्रवेश करना असम्भव है।

क़िले के चारों ओर घोड़सवार दस्ते का पहरा रहेगा जिसके पास मेशीनगन आदि समयोचित युद्ध-सामग्री होगी।

एक ये देश हैं जहाँ स्वर्ण का संग्रह इतनी लगन के साथ किया जा रहा है, एक हमारा देश है जहाँ सोने को बाहर अधिक-से-अधिक मात्रा में भेजते रहना ही लाभदायक समझा जा रहा है।

मैक्ज़िम गोर्की का स्वर्गवास

रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री मैक्ज़िम गोर्की की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय ये ६८ वर्ष के थे। ये संसार-प्रसिद्ध लेखक थे। इनकी रचनाओं से रूस की कायापलट हो गई है। हिन्दी में इनके 'मदर' नामक उपन्यास का अनुवाद हो चुका है। आधुनिक रूस की रचना में इन्होंने अपनी रचनाओं से पूरी सहायता की है। रूसियों ने भी इनका अपने राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ लेखक के रूप में समुचित रूप से सम्मान किया है। इनका प्रारम्भ का जीवन कैसा था, इसका वर्णन इन्होंने बहुत थोड़े शब्दों में खुद ही किया है। इन्होंने लिखा है—"१८७८ में मैंने एक जूता बनानेवाले की अपरेंटसी की। १८७९ में मैं एक डिज़ाइन बनानेवाले का अपरेंटिस हो गया। १८८३ में मैं एक माल लादनेवाले जहाज़ में टहलुआ हो गया। १८८३ में मैंने एक रोटी बनानेवाले की नौकरी की। १८८४ में मैं पोस्टर लगाने का काम करने लगा। १८८५ में रोटी बनाने का कारबार खुद उठाया। १८८६ में घुमक्कड़ गवैयों की एक मण्डली में गवैये का काम किया। १८८७ में मैंने फेरी में सेब बेचे। १८८८ में मैंने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। १८९० में एक वकील के दफ़्तर में नक़ल-नवीस हो गया। १८९१ में मैंने एक छोर से दूसरे छोर तक रूस की पैदल यात्रा की। १८९२ में मैं रेलवे के एक वर्कशाप में मज़दूरी करने लगा। उसी वर्ष मैंने अपनी पहली कहानी छपाई।"

गोर्की ने अपनी पहली कहानी २४ वर्ष की अवस्था में लिखी थी, फिर उनकी क़लम ऐसी उठी कि उनके मरते दम तक बराबर चलती ही रही। यहाँ तक कि उसने उन्हें अमर बना दिया। अपने राजनैतिक विचारों के कारण वे १९०५ में जेल में डाल दिये गये। १९०६ में वे संयुक्त-राज्य (अमरीका) गये। इस यात्रा के अनुभवों का उन्होंने अपने उपन्यासों में विशेष रूप से वर्णन किया है। इसके कई वर्ष बाद वे रूस में राजनैतिक आन्दोलन करने लगे। १९१७ के विप्लव के समय ये पेट्रोग्राड के एक पत्र के सम्पादक थे। प्रारम्भ में उन्होंने बोलशेविकों का विरोध किया, परन्तु बाद को उसके समर्थक हो गये। उन्होंने कई राजनैतिक नाटक भी लिखे हैं। गोर्की के इस संक्षिप्त परिचय से उनकी शक्ति और प्रतिभा का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। ऐसे साहित्यकार के निधन से रूस की ही नहीं, सारे संसार की भारी क्षति हुई है।

सर गणेशदत्तसिंह का शिक्षा-प्रेम और डलमिया जी की उदारता

बिहार की प्रान्तीय सरकार के मंत्री सर गणेशदत्तसिंह की उदारता का परिचय समय समय पर बराबर मिलता रहा है। वे अपने प्रान्त के निर्धन विद्यार्थियों के लिए सदा मुक्तहस्त रहे हैं और उनकी सहायता करने की उत्कट कामना कभी कम होती नहीं दिखाई देती है। इधर उन्होंने ऐसी कुछ योजनाओं पर विशेषज्ञों से विचार-विनिमय किया था कि प्रान्त के असमर्थ तथा योग्य विद्यार्थियों की कैसे सहायता की जाय ताकि वे इच्छित शिक्षा प्राप्त कर सकें। परन्तु खेद की बात है कि कोई कारगर योजना नहीं बन सकी। तो भी वे निराश नहीं हुए, और इस प्रकार के परोपकार के कार्य में वे बराबर लगे ही रहते हैं। हाल में उन्होंने अपने प्रान्त के सेठ जयदयाल डलमिया को इस कार्य में मदद देने के लिए खड़ा किया है। उन्होंने शिक्षा-विभाग के द्वारा इस बात का पहले पता लगाया कि स्कूल-कालेजों में ऐसे कितने लड़के हैं जिनको सहायता की ज़रूरत है। उन्हें ऐसे २६ लड़के बताये गये और यह भी कि उनके लिए सात हज़ार रुपये की ज़रूरत होगी। यह रक़म उन्होंने डलमिया जी से माँगी जो उन्हें तत्काल मिल गई। तब उन्होंने उसकी माँग सरकार से की। उसने भी उनके अनुरोध पर सात हज़ार रुपये की मंज़ूरी दे दी। इस पर उन्होंने सेठ जी के रुपये वापस कर दिये और सरकार से प्राप्त धन से २६ छात्रों में से २३ छात्रों की सहायता की व्यवस्था कर दी।

परन्तु उनकी इस प्रवृत्ति का उक्त सेठ जी पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा उन्होंने भी सर गणेशदत्तसिंह की प्रेरणा से एक ट्रस्ट क़ायम कर दिया है। इस ट्रस्ट से उन्हें दो हज़ार रुपया प्रतिमास दो वर्ष तक मिलेगा। इस धन से वे बिहार-प्रान्त के असमर्थ छात्रों की सहायता और दो वर्ष तक करेंगे। इस प्रकार सर गणेशदत्तसिंह अपने प्रान्त में शिक्षा-प्रचार का अत्यधिक और सो भी बड़ी सावधानी के साथ प्रयत्न कर रहे हैं। उनका यह प्रयत्न एक आदर्श प्रयत्न है। यदि अन्य प्रान्तों के भी मंत्री उनका अनुकरण करें तो वे भी उन्हीं की भाँति लोक का कल्याण कर कीर्ति के भागी हों।

डाकुओं के उन्मूलन का एक नया प्रयत्न

सशस्त्र डाकुओं से निःशस्त्र जनता अपनी रक्षा कदापि नहीं कर सकती है और न वह मौक़े पर पुलिस से ही आवश्यक सहायता पा सकती है। फल यह होता है कि डाकू आते हैं और जिसे चाहते हैं उसे मारपीटकर लूट ले जाते हैं, और सारा गाँव यह सब दृश्य चुपचाप बैठा देखता रहता है। यदि किसी गाँव के कुछ साहसी पुरुष डाकुओं का मुक़ाबिला करने को आगे भी आते हैं तो बुरी तरह मार खा जाते हैं। कदाचित् ही वे उन्हें मार भगाने में समर्थ होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि सरकार डाकुओं का नाम-निशान मिटा देने का विशेष प्रयत्न एक ज़माने से करती चली आ रही है, परन्तु रक्तबीज की तरह ये बार-बार उत्पन्न होते ही जा रहे हैं और इनके अत्याचारों से संयुक्त-प्रांत और पंजाब के लोगों का जान-माल कभी ख़तरे से ख़ाली नहीं रहता। इस सम्बन्ध में हमने सरकार को बार बार सलाह दी है कि वह उन भूभागों में जहाँ डाके बहुत अधिक पड़ते रहते हैं, विश्वसनीय सद्गृहस्थों को गोली-बारूद तथा बन्दूक़ रखने की आज्ञा दे दे ताकि वे पुलिस की अनुपस्थिति में डाकुओं से अपनी तथा अपने ग्रामवासियों की रक्षा कर सकें। प्रसन्नता की बात है कि पंजाब की सरकार को यह बात सूझ गई है और वह डकैतियों के रोकने के लिए वैसी ही एक योजना का प्रयोग भी करने जा रही है। उसने फ़िरोज़पुर के उन गाँवों में लोगों को अस्त्र शस्त्र रखने की आज्ञा दे दी है जहाँ डाकों की धूम मची रहती है। इस ज़िले के जिन स्थानों में डाकू-चोर छिपे रहते हैं, वहाँ के कई एक गाँवों के कोई सौ आदमियों को शस्त्र देने की उसने व्यवस्था की है। जिनके पास लाइसेंस होंगे उन्हें सरकार गोली-बारूद मुफ़्त देगी, पर वह उन पर समुचित नियंत्रण रक्खेगी। जिन गाँवों में किसी के पास लाइसेंस नहीं होगा, वहाँ विश्वास-योग्य व्यक्तियों को सरकार अपने पास से शस्त्रास्त्र देगी। मुफ़्त की गोली-बारूद इसी शर्त पर उन्हें दी जायगी कि वे डाकुओं के विरुद्ध सरकार को मदद देने को सदा तैयार रहें। क्या ही अच्छा होता यदि पंजाब की सरकार की इस योजना का अनुकरण हमारे प्रान्त में भी होता। इसमें सन्देह नहीं है कि यह योजना सोलहो आने सफल होगी। डाकुओं के बढ़े-चढ़े हौसले इसी लिए हैं कि अपने

शिकार की निर्बलता को वे जानते हैं और अब जब वे जान जायँगे कि उनके शिकार अपनी रक्षा कर लेंगे तब उनको भी डाका डालने का एकाएक साहस नहीं होगा।

नया निर्वाचन और कांग्रेस

नये शासन-विधान के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जो नया निर्वाचन होगा वह अब तक के सभी ऐसे निर्वाचनों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। पहली बात तो यही है कि इस निर्वाचन में देश की एक बहुत बड़ी संख्या भाग लेगी। यह ठीक है कि मतदाताओं का एक बड़ा अंश अपने इस अधिकार के मूल्य या महत्त्व से अवगत भी नहीं है, तथापि वोट देनेवाले बहुत बड़ी संख्या में वोट देंगे और इस संख्या का संगठन करना वास्तव में एक बड़ा काम होगा। इस बार के चुनाव में जान पड़ता है कि वोट प्राप्त करने के लिए घोर परिश्रम उन लोगों को भी करना पड़ेगा जो अभी तक अपने समर्थकों के संगठित दल की सहायता से प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं की सदस्यता को अपनी बपौती-सा बनाये हुए थे। बात यह है कि अब निर्वाचक-मण्डल का क्षेत्र पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है और जो लोग अभी तक अपने कुछ समर्थकों की सहायता से ही अपने सदस्य चुन लिये जाने के लिए पर्याप्त समझते थे उनको अपने समर्थक-दलों को छोड़कर जनता के समूह की सहायता लेनी पड़ेगी। फिर यह भी एक बात हुई है कि लखनऊ-कांग्रेस ने भी इस बार के चुनाव में पूरा पूरा भाग लेने का निश्चय किया है। कांग्रेस का एक दल दो बार पहले भी असेम्बली और प्रान्तिक कौंसिलों के चुनाव लड़ चुका है, परन्तु उन अवसरों पर कांग्रेस ने नहीं, उसके एक दल-मात्र ने ही चुनाव में भाग लिया था। परन्तु इस बार तो स्वयं कांग्रेस ही चुनाव लड़ने जा रही है। पिछले दिनों वर्धा में उसकी कार्य-समिति की एक बैठक हुई थी। उसने इस कार्य का सम्पादन करने के लिए एक कमिटी की नियुक्ति कर दी है, जिसके सभापति सरदार वल्लभ भाई पटेल और मंत्री बाबू राजेन्द्रप्रसाद तथा पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त बनाये गये हैं। यह समिति सारे देश के चुनाव का सञ्चालन करेगी। इसका दफ़्तर बम्बई में रहेगा। इस सिलसिले में सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उससे प्रकट होता है कि कांग्रेस बड़े आयोजन के साथ इस बार का चुनाव लड़ेगी और कदाचित् वह अपने मुस्लिम, अछूत आदि उम्मेदवार भी खड़ा करेगी। यदि वह इतने व्यापक रूप के साथ चुनाव-संग्राम में शामिल होगी तो इसमें सन्देह नहीं है कि उसे आशातीत सफलता प्राप्त होगी।

यह सच है कि कांग्रेस के उम्मेदवारों का कम विरोध नहीं होगा। यह भी जान पड़ता है कि उसके मुसलमान, सिक्ख, व्यावसायिक तथा भूस्वामी उम्मेदवारों को जीत जाने की उतनी आशा नहीं है। मुसलमानों आदि का बहुत दृढ़ संगठन बहुत पहले से हो चुका है। जो कुछ जीत होगी ग़ैर मुस्लिम क्षेत्रों में ही होगी, क्योंकि ग़ैर मुस्लिम दलों का एक तो उन क्षेत्रों की जनता पर उतना प्रभाव नहीं है, दूसरे उनका कोई सुदृढ़ संगठन भी नहीं है। परन्तु यह स्पष्ट है कि कांग्रेस भी सरलता से नहीं जीत जायगी। इसके लिए उसे घोर परिश्रम करना पड़ेगा। इधर सरदार पटेल ने अपने वक्तव्य में इस बात की घोषणा की है कि गाँव गाँव कांग्रेस की स्थापना होगी, जिससे वोटरों से कांग्रेस का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो जाय। इस प्रकार कांग्रेस चुनाव-संग्राम में ठोस कार्य करने के लिए अपना देशव्यापी संगठन करने का उपक्रम कर रही है। ऐसे भारी आयोजन के आगे मुसलमान, सिक्ख और कुछ कुछ अछूत-निर्वाचक-मण्डलों को छोड़कर सर्वत्र कांग्रेस के उम्मेदवारों की ही जीत होगी। लक्षण और परिस्थिति भी ऐसी ही है।

संसार की दो गुप्त संस्थायें

संयुक्त-राज्य और जापान संसार के ६ प्रमुख महाशक्तिशाली राष्ट्रों में गिने जाते हैं। संयुक्त-राज्य में प्रजातंत्र और जापान में पार्लियामेंटरी राजतंत्र के अनुसार शासन होता है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि इन दोनों राज्यों में एक ऐसी संस्था का अस्तित्व है जो समय समय पर क़ानून और व्यवस्था को उठाकर एक ओर रख देती है और सार्वजनिक बातों में मनमाने ढङ्ग से हस्तक्षेप कर गुज़रती है। संयुक्त-राज्य में ऐसी एक संस्था का नाम क्रू-क्लक्स-क्लान था। और अब उसके स्थान में 'ब्लैक लीजन' नामक संस्था अस्तित्व में आ गई है।

यह एक गुप्त संस्था है और इसके सदस्य सशस्त्र रहते हैं। इसका उद्देश कैथोलिकों, यहूदियों और हबशियों के प्रति घृणा रखना तथा उनका नाम-निशान मिटा देना है। और अपने उद्देशों की पूर्ति करने के लिए उसके सदस्यों को सेनापति की आज्ञा पर नर-हत्या तक करने को तैयार रहना पड़ता है। इस संस्था की सदस्य-संख्या बहुत बढ़ी-बढ़ी है। मिचिगन-रियासत में वे १,३५,००० हैं। इनके सिवा ६० लाख सदस्य और हैं, जो सारे संयुक्त-राज्य में इधर-उधर बिखरे हुए हैं। इस संस्था का एक यह भी उद्देश है कि संयुक्त-राज्य में तानाशाही की स्थापना की जाय। इस संस्था के अस्तित्व का पता वहाँ की सरकार को है। यह कैसे कैसे अत्याचार करती है, वह सब उसे ब्योरेवार मालूम है। वह इसका उन्मूलन करना चाहती है, परन्तु कुछ कर नहीं पाती। इसका संगठन गुप्त ही रक्खा जाता है। इसके सदस्य इसका रहस्य न खोलने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध रहते हैं और जो व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग करता है वह तुरन्त मार डाला जाता है। [illegible]के सदस्य आजीवन होते हैं। ये लोग उग्र राष्ट्रीयतावाद का प्रचार करते हैं। इन लोगों की शक्ति बहुत बढ़ गई है। वहाँ के निरपेक्ष नागरिक जब इनके हाथों में पड़ जाते हैं तब उनकी बड़ी दुर्गति की जाती है।

जापान की गुप्त संस्था संयुक्त-राज्य की उक्त संस्था से भी अधिक शक्ति-सम्पन्न है। उसके नेता महामहिमशाली तोयामा की उम्र इस समय ८० वर्ष के लगभग होगी। उनके नेतृत्व में इसका बल इतना अधिक बढ़ गया है कि उसकी बातें वहाँ की सरकार को भी मंज़ूर करनी पड़ती हैं। उस संस्था का एकमात्र उद्देश यह है कि जापान के साम्राज्य की वृद्धि हो और जो लोक-नेता उसके मार्ग में बाधा डालें वे तत्काल साफ़ कर दिये जायँ।

सो संयुक्त-राज्य और जापान के शासन-चक्र इन गुप्त संस्थाओं के भय से प्रभावित रहते हैं और जब इन महा-शक्तिशाली देशों का यह हाल है तब अन्य देशों में कहाँ कहाँ क्या क्या लोगों पर बीत रही है, इसका कोई ठिकाना नहीं। प्रजातंत्र और साम्यवाद की बातें ऐसी परिस्थिति में कोरी गप्पें ही प्रतीत होती हैं।

साहित्य की रचना

हिन्दी में नूतन साहित्य-रचना की आज कैसी अवस्था है, उसकी ओर हमारे समालोचकों का उतना ध्यान नहीं रहता है जितना व्यक्तिवाद के प्रचार की ओर। हिन्दी के इस उन्नत युग में यह अवस्था कहाँ तक लोकहितकर सिद्ध हो रही है, यह तो हम नहीं जान सकते, पर इतना ज़रूर जानते हैं कि इस मनोवृत्ति से साहित्य का परिष्कार नहीं हो रहा है। व्यक्तिवाद साहित्य-क्षेत्र में इधर कुछ समय से इतना अधिक प्राधान्य प्राप्त कर गया है कि बड़े-से-बड़े साहित्यकार तक उसके फेर में पड़ गये हैं, और उनकी इस प्रवृत्ति ने वास्तविक साहित्य की रचना की वृद्धि को रोक दिया है और उसके स्थान में ग्राम्य व्यञ्जना का प्रमाद बढ़ा दिया है। उन्हें इस बात की परवा नहीं है कि साहित्य राष्ट्र की बौद्धिक संस्कृति का प्रतिरूप है, और यदि वह ग़लत मार्ग ग्रहण करेगा तो उससे राष्ट्र का अपभ्रंश होगा। व्यक्तिवाद के प्रचारक हमारे ये अभिनव आलोचक तथा लेखक इस बात की ज़रा भी परवा नहीं कर रहे हैं कि वे अपने नवयुवकों के आगे उपयुक्त आदर्श नहीं उपस्थित कर रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि सभी तरह की पुस्तकें पढ़ी-लिखी जा रही हैं और लोगों के सामने साहित्य का कोई स्टैंडर्ड नहीं रह गया है। हममें अब सुरुचि का अभाव हो गया है और हम व्यक्तिवादपरक कुटिल आलोचनाओं में ही वास्तविक सरसता का आनन्द प्राप्त करते हैं। तभी तो ऐसे लेखकों और आलोचकों का इस समय ज़ोर बढ़ गया है—तभी तो महत्त्वपूर्ण साहित्य-रचना का दिन-प्रति-दिन ह्रास सा होता जा रहा है। वास्तव में साहित्यकार जनता का गुरु है और यदि वही अपनी रुचि को इतना गिरा देंगे तो इसका एक भयंकर परिणाम यह होगा कि वे अपने साथ और भी बहुतों को ले डूबेंगे। यह कितने खेद की बात है कि जहाँ हमें यह चाहिए कि हम अन्य प्रान्तीय भाषाओं की प्रगति को देखते हुए अपने साहित्य-निर्माण-कार्य को अधिकाधिक उन्नतोन्मुख बनाये रक्खें, जहाँ हमें उनके साहित्यकारों तथा उनकी उत्कृष्ट रचनाओं की चर्चा करके अपने नवयुवकों की प्रतिभा को उत्तेजन देना चाहिए ताकि वे भी देशकाल के अनुरूप राष्ट्र-भाषा के भाण्डार को अधिकाधिक अलंकृत करने में समर्थ हो सकें, वहाँ वे उनके लिए 'कुल्हिया और

बुलबुल' का ग्राम्य आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। ऐसी दशा में साहित्य के अभ्युदय की बात कैसे सम्पन्न हो सकती है? हिन्दी के प्रगल्भ और तीक्ष्ण आलोचक अपनी इस मनोवृत्ति की ओर यदि ध्यान देने की कृपा करेंगे और अपनी प्रवृत्ति को संयमित करने की ओर सावधान होंगे तो निस्सन्देह अपने इस काम से हिन्दी का अपार हित करने में समर्थ होंगे। क्या ही अच्छा होता यदि हमारे साहित्य के ये प्रहरी कुछ समय के लिए अवकाश ग्रहण कर लेते।

योरप के कुछ बे-घर-बार के लोग

योरपीय महायुद्ध में नरसंहार और धन-विनाश ही नहीं हुआ है, किन्तु उसके कारण योरप का अधिकांश छिन्न-भिन्न भी हो गया है। यही कारण है कि वहाँ के कई देशों में अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ है। आस्ट्रिया आदि पराजित राज्यों के जो भाग आज दूसरे देशों में शामिल कर लिये गये हैं उनके निवासी भिन्न जाति के होने के कारण उस देश की प्रधान जाति के अन्तर्भुक्त कैसे हो सकते हैं? इन्हीं लोगों की अल्प संख्या उन देशों में इस समय राजनीति का विकट प्रश्न बन बैठी है और इसमें सन्देह नहीं है कि योरप की वर्तमान अव्यवस्था का एक कारण यह प्रश्न भी है और यह प्रश्न भी भविष्यद् योरपीय महायुद्ध का एक कारण होगा। परन्तु इस समस्या का एक भीषण रूप उस प्रार्थना-पत्र से प्रकट होता है जो मध्य-योरप के एक बड़े समूह की ओर से राष्ट्र-संघ के समक्ष उपस्थित किया जाने-वाला है। उसमें इस बात की शिकायत की जायगी कि मध्य-योरप में लोगों की एक ऐसी बड़ी संख्या अस्तित्व में आ गई है जिसका अब अपना कोई देश नहीं है, इसलिए उन्हें ऐसा कोई भूभाग या टापू मिलना चाहिए जहाँ जाकर वे बस जायँ और उसे अपना देश मान लें। यह कथा उस महान् देश की है जहाँ के निवासी संसार के अन्य लोगों को सभ्यता की शिक्षा देने का अपना नैसर्गिक अधिकार मानते हैं। यह वास्तव में एक आश्चर्य की बात है कि उन्हीं के भाई-बन्धु आज इस तरह विताड़ित हैं कि वे योरप के किसी भी भाग को अपना 'स्वदेश' नहीं कह सकते।

बे-घर-बार के उक्त समूह की जन-संख्या दो लाख बीस हज़ार है। इस संख्या में स्त्री, पुरुष और बाल-बच्चों सबकी संख्या है। इनके तीन प्रतिनिधि हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट से पैदल चल चुके हैं और वे जेनावा जाकर राष्ट्र-संघ के दफ़्तर में अपना प्रार्थनापत्र देंगे। उनके पास एक पैसा नहीं है। वे पहले पुराने आस्ट्रिया-हंगेरी की प्रजा थे। उनमें एक प्रतिनिधि देवा में शिक्षक था। अब वह रूमानिया की प्रजा है। दूसरा उजवीडेड में मज़दूर था। अब जुगोस्लाविया की प्रजा है। तीसरा ब्राटिस्लावा में क्लर्क था। अब जेचेस्लोवेकिया की प्रजा है। अपने सम्बन्ध में विश्वास न करा सकने के कारण ऐसे अज्ञात-कुल-शील लोग उधर के देशों से पकड़ पकड़कर देश की सीमा के बाहर कर दिये जाते हैं। और इस प्रकार वे जहाँ जाते हैं वहाँ से निकाल बाहर किये जाते हैं। यहाँ तक कि ऐसे देश-बहिष्कृतों की संख्या लाखों तक पहुँच गई है। अस्तु एक रात को उक्त तीनों व्यक्ति जुगोस्लेविया और ह[illegible] की सीमा पर मिले और राष्ट्र-संघ को प्रार्थना-पत्र देने के लिए अपने जैसे देश-बहिष्कृतों के हस्ताक्षर संग्रह करने की एक योजना बनाई। तीन वर्ष के भीतर उन्होंने ६,००० हस्ताक्षर लिये हैं। उनके पास इस बात के प्रामाणिक आँकड़े हैं कि मध्य और पूर्व योरप में २,२०,००० ऐसे लोग हैं जो किसी भी देश के नहीं हैं। देखना है कि राष्ट्र-संघ के कर्णधार अपने इन सभ्य भाइयों का कैसे उद्धार करते हैं।

सम्राट् एडवर्ड

यह दुःख की बात है कि सम्राट् अष्टम एडवर्ड के ऊपर गत १६ जुलाई को जब वे फ़ौजी जुलूस के साथ हाइड पार्क से लौट रहे थे, एक आदमी ने पिस्तौल चलाने की दुष्ट चेष्टा की। परन्तु उसका प्रयत्न तुरन्त विफल कर दिया गया और वह पकड़ा गया। सम्राट् अष्टम एडवर्ड विलायत में और विलायत से बाहर भी इतने लोकप्रिय हैं कि उन पर कोई आक्रमण करेगा, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। कहते हैं कि आक्रमणकारी ने अपने बयान में कहा है कि उसका उद्देश हत्या नहीं, केवल विरोध-प्रदर्शन था। इस घटना से सम्राट् की लोकप्रियता का और भी एक प्रमाण मिला है। यदि पुलिस न बचाती तो भीड़

शायद उस आदमी को उत्तेजना में क़त्ल कर डालती। उस दिन इँग्लेंड में ही नहीं, सारे संसार में यही चर्चा रही और सब ओर से समवेदना और बधाई के तार ढोते ढोते डाकघरवाले परेशान हो गये।

ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी घटना इधर ५० वर्ष बाद घटी है। सम्राज्ञी विक्टोरिया पर पाँच बार ऐसे आक्रमण हुए थे, पर वे पाँचों विफल गये थे। और आक्रमण करनेवाले प्रत्येक बार पकड़े गये थे और उन्हें सज़ायें दी गई थीं। पर कहते हैं, महारानी विक्टोरिया इतनी उदार थीं कि उन्होंने प्राण-दंड किसी को नहीं देने दिया और दो-एक को तो उन्होंने अपने ख़र्च से आस्ट्रेलिया भेजवाया था। सम्राट् सप्तम एडवर्ड पर भी एक बार एक युवक ने जब वे प्रिन्स आफ़ वेल्स थे, आक्रमण किया था, पर उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँची। सम्राट् पंचम जार्ज पर कभी कोई आक्रमण नहीं हुआ था। हमें विश्वास है कि इस प्रकार की यह अन्तिम घटना है और हमें प्रसन्नता है कि सम्राट् इससे बाल बाल बच गये।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त उन कवियों में हैं जिन्होंने हिन्दी का मुखोज्ज्वल किया है। उनकी साहित्यिक सेवायें कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। उनकी 'भारत-भारती' का प्रवेश गाँव गाँव में हो गया है और उनका 'साकेत' एक



[बाबू मैथिलीशरण गुप्त]

ऐसा काव्य है जो किसी भी उत्तम काव्य की समकक्षता में रक्खा जा सकता है। पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी ने गत २१ जुलाई को मनाई जानेवाली उनकी ५० वीं वर्षगाँठ के अवसर पर स्थानीय सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए यह ठीक ही कहा है क जब तक हिन्दी रहेगी तब तक 'साकेत' रहेगा और जब तक 'साकेत' रहेगा तब तक गुप्त जी का नाम अमर रहेगा। इस शुभ अवसर पर हम भी गुप्त जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे ताकि वे हिन्दी की और भी श्रीवृद्धि करते रहें।

डा० अम्बेडकर का दोषारोपण

महात्मा गांधी हरिजन में लिखते हैं—

वेद, उपनिषद्, स्मृतियाँ और रामायण तथा महाभारत-सहित सारे पुराण हिन्दुओं के शास्त्र हैं। लेकिन यह ऐसी सूची नहीं है जिसमें कोई घटा-बढ़ी ही न हो सकती हो। हर एक युग और शताब्दी तक ने इसमें वृद्धि की है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि छपी हुई या हस्तलिखित मिलनेवाली हर एक चीज़ शास्त्र नहीं है। उदाहरण के लिए, स्मृतियों में बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें ब्रह्मवाक्य हर्गिज़ नहीं माना जा सकता। इस प्रकार स्मृतियों से डा० अम्बेडकर ने जो बहुत-से उद्धरण दिये हैं उन्हें प्रामाण्य नहीं माना जा सकता। यथार्थतः जो शास्त्र कहे जाते हैं उनका सम्बन्ध मूलतत्त्वों से ही हो सकता है और वे उसी हृदय को अपील कर सकते हैं, जिसके ज्ञान-नेत्र खुल गये हों। ऐसी किसी बात को ब्रह्मवाक्य नहीं माना जा सकता जिसकी तर्क-बुद्धि-द्वारा परीक्षा न हो सके या आध्यात्मिक रूप में जिसका अनुभव न किया जा सकता हो। और फिर, शास्त्रों का परिष्कृत संस्करण आपके पास हो तो भी आपको उनकी व्याख्या की ज़रूरत तो पड़ेगी ही।

वर्ण और आश्रम का जात-पाँत से कोई सम्बन्ध नहीं है। वर्ण-व्यवस्था से तो हमें यही शिक्षा मिलती है कि हममें से हर एक को अपने कदीमी काम-धंधे के द्वारा अपनी जीविका कमानी चाहिए। यह हमारे अधिकारों को नहीं बल्कि कर्त्तव्यों को स्पष्ट करती है। इसमें तो आवश्यक रूप से उन्हीं काम-धन्धों का उल्लेख है जो हमें केवल मानव-हित की ओर ही ले जाते हैं। इसका यह भी अभिप्राय है कि कोई काम-धन्धा न तो बहुत नीच है और न कोई बहुत ऊँचा। सभी अच्छे जायज़

और दर्जे में बिलकुल समान हैं। आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाले ब्राह्मण से लेकर मैला उठानेवाले भंगी तक के सब काम समान हैं और ईश्वर के सामने उन सभी का समान महत्त्व है—और, ऐसा मालूम पड़ता है कि, एक समय ऐसा था जब मनुष्यों को उन सबका समान ही प्रतिफल मिलता था। दोनों को अपने गुज़ारे भर के लिए मिलने का हक़ था, उससे अधिक नहीं। और गाँवों में तो वस्तुतः अभी भी इस सुन्दर नियम-प्रवृत्ति की थोड़ी बहुत धुँधली-सी रेखायें नज़र आती हैं। ६०० की आबादी के गाँव में रहते हुए, मुझे यह नहीं मालूम पड़ता कि मुख्तलिफ़ काम धन्धे करनेवालों की—यहाँ तक कि ब्राह्मणों की भी—कमाई में परस्पर कोई भेद हो। यह भी मैं देखता हूँ कि गिरावट के इन दिनों में भी ऐसे सच्चे ब्राह्मण मौजूद हैं जो स्वेच्छापूर्वक उनको दी जानेवाली भिक्षा पर निर्वाह करते हुए उनके पास जो आध्यात्मिक निधि है उसे उदारतापूर्वक दूसरों को प्रदान कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्था का उसके उस हास्यजनक विकृत चित्र से निर्णय करना ग़लत और अनुचित है, जो कि हमें उन लोगों के जीवन में मिलता है, जो दावा तो यह करते हैं कि हम अमुक वर्ण के हैं किन्तु उसके एकमात्र प्रवर्त्तक नियम का खुले तौर पर भंग कर रहे हैं। वर्णव्यवस्था में ऐसी कोई बात है ही नहीं जिससे अस्पृश्यता को आधार मिलता हो। हिन्दू-धर्म का तो सार इसमें है कि वह सत्य को ही एकमात्र ईश्वर मानता है और अहिंसा को उसने मानव-जाति के लिए अटल नियम के रूप में साहस के साथ स्वीकार किया है।

अपने योग्यतापूर्ण भाषण में विद्वान् डाक्टर ने अपने मामले को ज़रूरत से ज़्यादा सिद्ध किया है। लेकिन जिस धर्म में चैतन्य, ज्ञानदेव, तुकाराम, तिरुवल्लुवर, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानन्द तथा अन्य बहुत-से ऐसे लोग हुए जिनके नाम आसानी से लिये जा सकते हैं, क्या, जैसा डा० अम्बेडकर के भाषण में सिद्ध किया गया है उसमें कोई अच्छाइयाँ बिलकुल हैं ही नहीं? किसी धर्म का निर्णय उसके सबसे बुरे नमूनों से नहीं बल्कि उसकी सर्वोत्तम कृतियों से ही किया जा सकता है। क्योंकि उसे और एकमात्र उसे ही ऐसा स्टैण्डर्ड माना जा सकता है जिससे आगे न जा सकें तो भी उस तक पहुँचने की तो हम आकांक्षा करें ही।

चित्र-परिचय

सरस्वती के इस अङ्क में जो रङ्गीन चित्र प्रकाशित किये गये हैं उनमें पहला बुद्ध और गौतमी का है। गौतमी एक विधवा नारी थी। उसकी अन्तिम आशा उसका शिशु था, जिसकी मृत्यु से वह अधीर हो उठी थी। भगवान् बुद्ध से उसने कहा—"मेरे पुत्र को जीवित करो, चाहे जैसे हो।" बुद्ध ने उससे कहा—"अच्छा। पर पहले मुझे उस घर से एक मुट्ठी भस्म ले आओ जिसमें कभी कोई मृत्यु न हुई हो।" गौतमी सर्वत्र खोज आई, पर उसे ऐसा घर न मिला और उसे ज्ञान हुआ कि मृत्यु से सभी पीड़ित होते हैं। दूसरों के दुःख सुनकर उसे अपना कष्ट भूल गया। उसने बु[illegible] इस ज्ञान-प्रदान के लिए धन्यवाद दिया। यही भाव इस चित्र में श्री वाणीकान्त दास ने अङ्कित किया है।

दूसरा चित्र मालिन का है। इसके चित्रकार श्री उपेन्द्रकुमार मित्र हैं। आज कृषक-युवतियाँ अपने खेतों और बाग़ों से ख़ाली हाथ और मलिनमुख लौटती हैं। पर क्या कभी ऐसा समय आ सकता है जब ये युवतियाँ प्रकृति का उपहार लेकर प्रसन्न-वदन घर को लौटें जैसा कि किसी समय में लौटती थीं? अपने उसी स्वप्न को इस चित्र में चित्रकार ने अङ्कित करने का प्रयत्न किया है।

भूल-सुधार

'सरस्वती' के गताङ्क में श्री सीतलासहाय जी के 'शीशे के व्यवसाय' शीर्षक लेख में 'बड़गड़' और 'लोहगरा' का नैनीताल के निकट होना छप गया है। वास्तव में नैनी होना चाहिए। ये स्थान नैनी (इलाहाबाद) के पास हैं। पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.

वह हमेशा रोता रहता है
उसको क्या शिकायत होगी ?

कमज़ोर उदास और अनमने बच्चों को यह दवा देने की डाक्टर लोग सलाह दिया करते हैं।



जो बच्चे बहुधा उदास और अनमने रहते हैं, साथ ही बात बात में चिड़चिड़ा कर रो पड़ते हैं, उसका कारण यही है कि भोजन के कुछ बहुत ही आवश्यक तत्त्व उन्हें नहीं मिलते। यदि उनका वह अभाव दूर कर दिया जाय तो उनका बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य फिर लौट आवे और वे हृष्ट-पुष्ट हो जायँ।

इस काम के लिए डाक्टर लोग **स्काट के इमलसन** से बढ़कर कोई दूसरी दवा नहीं खोज सके हैं। बच्चों की कमज़ोरी दूर करने में यह दवा साठ वर्ष से भी पहले से प्रसिद्धि प्राप्त करती आ रही है। इसमें केवल विशुद्ध कॉड लिवर आइल ही नहीं रहता, जिसमें कि विटामिन 'ए' और 'डी' अधिक मात्रा में होते हैं, बल्कि चूना और फास्फोरस भी काफ़ी तादाद में होता है, जो कि बच्चों के शरीर को पुष्ट करने और उसे बढ़ाने के लिए बहुत ज़रूरी है। **स्काट का इमलसन** ऐसी तरकीब से बनाया जाता है कि पीने में यह स्वादिष्ठ और हलका होता है। साधारण कॉड लिवर आइल से यह तिगुना गुणकारी है।

एक अचूक दवा

जिन गुणों के कारण **स्काट का इमलसन** बच्चों के लिए लाभदायक है, उनसे अधिक अवस्थावालों को भी शरीर को बलवान् बनाने में बड़ी सहायता मिलती है। साधारण कॉड लिवर आइल या विटामिन 'डी' पहुँचानेवाली दूसरी दवाइयाँ तभी काफ़ी लाभ पहुँचाती हैं, जब कि उनके साथ में चूना या उनका गुण बढ़ानेवाली दूसरी वस्तुओं का संयोग हो। परन्तु स्काट के इमलसन में कोई दूसरी वस्तु मिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। साधारण कमज़ोरी को दूर करने, बीमारी के कारण बिगड़े हुए स्वास्थ्य को सुधारने या सर्दी, खाँसी, इन्फ्लूएंजा वग़ैरह से बचते रहने के लिए डाक्टर लोग और हज़ारों ही भुक्त-भोगी स्काट के इमलसन का सेवन करने की सलाह देते हैं।

माता-पिताओं के लिए यह बड़े काम का है।

स्काट का इमलसन हड्डी बनाता है

यह मक्खन या ताज़े दूध से अस्सी गुना गुणकारी है। यह अंडे से दुगुना गुणकारी है।

बाढ़ के लिए

मक्खन से यह आठगुना गुणकारी है। केला से सौगुना गुणकारी है।



SCOTT'S Emulsion

शुद्ध कॉड लिवर आइल से बना

स्काट का इमलसन

of Pure Cod liver Oil

थोक-विक्रेता—इम्पीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज (इंडिया) लिमिटेड।

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर, रंगून, कोलंबो, कानपुर, पटना, अहमदाबाद, कोचीन, कालीकट, विज़गापट्टन, कराची, अमृतसर।

कवितावली

टीकाकार

[रायबहादुर पं० चम्पाराम मिश्र, बी० ए०, एम० ए०, एस० बी०]

यह टीका साधारण जनता और विद्यार्थी दोनों के काम की है। इसमें स्थान स्थान पर कथायें भी अधिक दी गई हैं। भूमिका में गोस्वामी जी की जीवनी पर तो नया प्रकाश डाला ही गया है, साथ ही कवितावली में उनकी जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें मिल सकी हैं, उनकी आलोचना की गई है।

इस टीका की प्रशंसा करते हुए आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

मुझे तो आपका किया हुआ अर्थ और लिखने की शैली बहुत पसन्द आई। आपका यह संस्करण कवितावली के अन्य सभी संस्करणों से श्रेष्ठ है। भूमिका तो अनेक ज्ञातव्य बातों से परिपूर्ण है।

इसी प्रकार लाहौर के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित उदयशङ्कर भट्ट शास्त्री, काव्यतीर्थ ने लिखा है—

ऐसी सुन्दर, सरल, एवं विद्वत्ता-पूर्ण टीका मैंने नहीं पढ़ी।

मूल्य केवल १॥।) एक रुपया बारह आने।

दयानन्द

[लेखक, श्रीयुत सन्तराम बी० ए०]

यों तो आर्य्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द के छोटे बड़े अनेक जीवन-चरित निकल चुके हैं, पर एक ऐसी पुस्तक की बड़ी कमी थी, जिसे पढ़कर दस-बारह वर्ष के लड़कों और लड़कियों में स्वामी जी के काम और जीवन के प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हो, साथ ही सरल और रोचक भी हो। इसी कमी को पूरी करने के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें स्वामी जी के जीवन की घटनायें बहुत ही सरल भाषा में बड़े मनोहर ढंग से लिखी गई हैं, साथ ही संक्षेप में आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों का भी वर्णन कर दिया गया है। पुस्तक में आठ चित्र हैं। बढ़िया कागज़ पर सुन्दर टाइपों में छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥।) बारह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

माधव मिश्र-निबन्ध-माला

प्रथम भाग

अर्थात्

हिन्दी के अभ्युदय-काल के प्रतिभाशाली और साहित्य-मर्मज्ञ लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवप्रसाद मिश्र के निबन्धों का संग्रह।

सम्पादक

साहित्यभूषण चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, एम० आर० ए० एस०

तथा

श्री [illegible]रमल्ल जी

पण्डित माधवप्रसाद मिश्र हिन्दी के उन इने गिने प्रतिभाशाली विद्वान् लेखकों में थे, जिनके द्वारा हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ा है। प्रौढ़ता और सरसता के साथ साथ ओज और आकर्षकता उनकी रचना की प्रधान विलक्षणता थी। यह पुस्तक उन्हीं मिश्र जी के भिन्न भिन्न विषय के लेखों का संग्रह है। इसमें पुण्य पुरुषों की जीवनियाँ, भिन्न भिन्न त्योहारों और स्थानों के वर्णन तथा खोजपूर्ण पुरातत्त्व-सम्बन्धी लेखों के अतिरिक्त साहित्य, राजनीति, एवं सामयिक विषयों के रोचक और विद्वत्तापूर्ण लेख संगृहीत किये गये हैं। हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढंग की बेजोड़ है।

मूल्य २॥) दो रुपये आठ आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड,

इलाहाबाद

RĀJAṬARAÑGIṆĪ

The saga of the kings of Kaśmīr

THE MEDIEVAL MASTERPIECE OF THE
KAŚMĪRI KAVI KALHANA

[Translated from the original Saṁskṛt and entitled 'RIVER OF KINGS' with an Introduction, Notes, Appendices, Index, etc.]

BY

R. S. PANDIT

WITH A FOREWORD BY

JAWAHARLAL NEHRU

ILLUSTRATED EDITION

PRICE Rs. 18/-

PUBLISHERS:

THE INDIAN PRESS, LTD.,
ALLAHABAD, INDIA

शिक्षाविधान-परिचय

इस पुस्तक के सम्पादक हैं प्रान्तीय शिक्षाविभाग के अनुभवी कार्य्यकर्त्ता

पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, एल० टी०

प्राइमरी तथा सेकंडरी स्कूलों में पढ़ाये जानेवाले सभी विषयों की पाठ्य-प्रणाली के सम्बन्ध में अधिकारी विद्वानों के विचार इसमें संगृहीत किये गये हैं। पुस्तक भर में तेरह लेख हैं और सभी लेख विषय के विशेषज्ञ-द्वारा लिखाये गये हैं।

मूल्य २)

इसका उर्दू अनुवाद भी

تعارف طریقۂ تعلیم

तारुफ़ तरीक़ा तालीम

के नाम से हो गया है।

अनुवादक

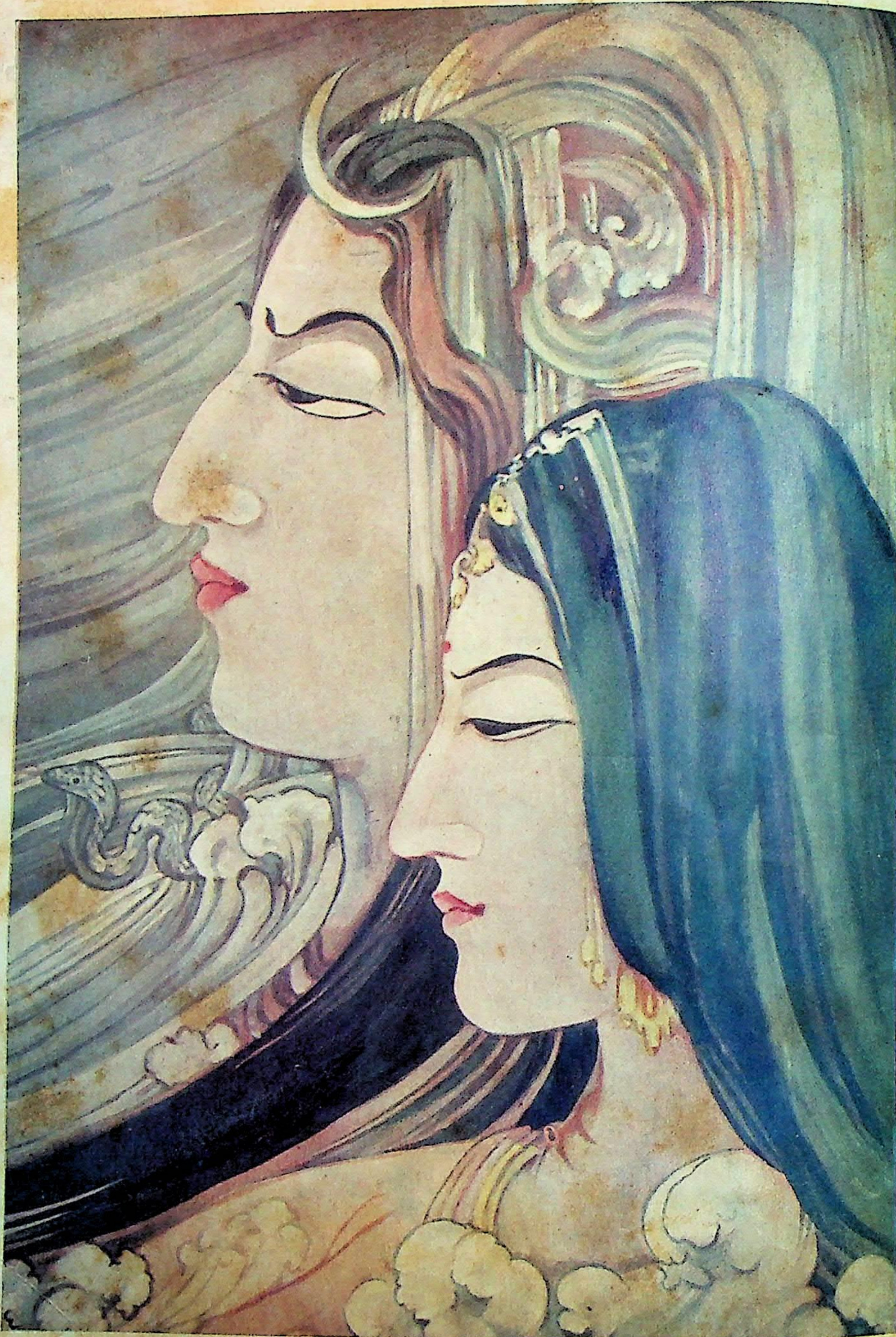
ख़ाँ साहब मौलवी अलीअहमद जाफ़री साहब, बी० ए०, एल० टी०

डिप्टी इन्स्पेक्टर मदारिस जिला अलीगढ़

हैं। इससे पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि अनुवाद कितना प्रामाणिक और सुन्दर है।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

८३२



शिव-पार्वती

[प्रोफेसर अमरनाथ झा के सौजन्य से प्राप्त



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

फ़रवरी १९३६ } भाग ३७, खंड १
संख्या २, पूर्ण संख्या ४३४ { माघ १९९२

गीत

लेखक, श्रीयुत निराला

अस्ताचल रवि, जल छलछल-छवि,
स्तब्ध विश्व-कवि-जीवन उन्मन;
मन्द पवन बहती सुधि रह रह,
परिमल की कह कथा पुरातन।
दूर नदी पर नौका सुन्दर,
दीखी मृदुतर बहती ज्यों स्वर,
वहाँ स्नेह की प्रतनु देह की,
बिना गेह की बैठी नूतन।
ऊपर शोभित मेघ छत्र सित,
नीचे अमित नील जल दोलित;
ध्यान-नयन-मन चिन्त्य प्राण-धन;
किया शेष रवि ने कर-अर्पण।

नये विधान का

लेखक, श्रीयुत मीतलासहाय





कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे देश में नये विधान के स्वागत के लिए ज़ोरदार तैयारियाँ हो रही हैं। प्रत्येक राजनैतिक दल प्रान्तीय असेम्बली में और कौंसिल आफ़ स्टेट में जाने का प्रबन्ध कर रहा है। यहाँ तक कि कांग्रेस ने भी नये सुधारों में हिस्सा लेने का निश्चय कर लिया है और उसके सदस्यों में एक दल ऐसा भी है जो नये विधान के अन्तर्गत सरकारी पदों को भी स्वीकार करने को तैयार दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में यह उचित है कि हम नये विधान का वास्तविक रूप जान लें।

इँग्लिस्तान के पत्रों में और दुनिया के सामने कुछ लोग इस बात की काफ़ी चर्चा कर रहे हैं कि नये विधान के ज़रिये भारतवासियों को एक ऐसी शासन-प्रणाली प्रदान की गई है जिसमें प्रजातन्त्र का बहुत ज़्यादा अंश है। कुछ लोगों ने तो नये विधान-द्वारा दी हुई प्रान्तीय शासन-प्रणाली को प्रान्तीय 'स्वराज' का भी नाम दे दिया है। इस बात की विशेष आशा नहीं है कि भारतवासी नये विधान के सम्बन्ध में कभी कोई अच्छी राय क़ायम करेंगे, क्योंकि इस देश के किसी भी राजनैतिक दल ने आज तक उसकी प्रशंसा नहीं की है। कांग्रेस-दल, राष्ट्रीय दल, उदार-दल—सभों ने एक-स्वर से उसकी निन्दा ही की है। कांग्रेस की ओर से, पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीय जी की ओर से, पंडित हृदयनाथ कुँजरू और मिस्टर सी० वाई० चिन्तामणि की ओर से उसके सम्बन्ध में समय समय पर जो विचार प्रकट होते रहे हैं वे इस ग़लतफ़हमी के दूर करने के लिए काफ़ी हैं कि नये विधान में कोई अद्भुत बात पैदा की गई है या उसमें प्रजातन्त्र का बहुत ज़्यादा अंश है। तथापि पत्रकार की हैसियत से इस बात को सप्रमाण पुष्ट करने की आवश्यकता है कि नये विधान में प्रजातन्त्र की वैसी कोई अद्भुत बात नहीं है।

नये विधान के अनुसार सम्राट् की ओर से गवर्नर-जनरल और प्रान्तों के गवर्नरों को आदेश-पत्र दिये गये हैं। अँगरेज़ी में इनका नाम 'इंस्ट्रूमेंट आफ़ इन्स्ट्रक्शन' है और ये नये विधान के क़ानून पर हावी होंगे। इन आदेश-पत्रों का मसविदा भी गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट के साथ प्रकाशित कर दिया गया है। इन आदेश-पत्रों को पढ़ने से नये विधान का वास्तविक रूप हमारे सामने आ जाता है। आदेश-पत्र दो हैं। एक तो गवर्नर-जनरल के लिए है और दूसरा प्रान्तों के गवर्नरों के लिए।

गवर्नर-जनरल के आदेश-पत्र को पूरा-पूरा इस स्थान पर उपस्थित करना आवश्यक नहीं है। हम यहाँ केवल आदेश नं० १० का अनुवाद देते हैं—

वास्तविक रूप

"यह हमारी आज्ञा और इच्छा है कि संघ-सरकार की आर्थिक स्थिति और साख सुरक्षित रखना हमारे गवर्नर-जनरल की 'खास* ज़िम्मेदारी' होगी और इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए हमारे गवर्नर-जनरल के लिए यह आवश्यक है कि वह इस बात का ठीक तौर से इन्तज़ाम रक्खे कि संघ-सरकार के बजट और क़र्ज़ की नीति इस तरह की न हो जाय जिससे उसकी राय में हिन्दुस्तान दुनिया के आर्थिक बाज़ार में अपनी हैसियत खो बैठे या जिससे फ़ेडरेशन को अपनी आर्थिक ज़िम्मेदारियों को पूरी करने में अड़चन पड़े।"

नये विधान में सम्राट् की ओर से गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को बहुत-से विशेषाधिकार दिये गये हैं। इन अधिकारों के होते हुए उसमें प्रजातन्त्रात्मक शासन नाम-मात्र को रह जाता है। इस लेख में बाबू सीतलासहाय ने नये विधान के इसी पहलू पर विचार किया है और देश के विविध राजनैतिक दलवालों से पूछा है कि इस विधान की बंदिशों में रह कर वे अपने उद्देश्य में किस हद तक सफल होंगे?

गवर्नर की यह 'खास ज़िम्मेदारी' है कि संघ-सरकार की आर्थिक स्थिति सुरक्षित रक्खे। इसलिए आर्थिक विषय के किसी भी क़ानून को जो प्रजापक्ष से पास होगा, गवर्नर-जनरल को इस विचार पर रोक देने का अख़्तियार रहेगा कि उसकी राय में उससे हिन्दुस्तान की आर्थिक साख के नष्ट होने की सम्भावना है। इतना ही नहीं, आदेश नं० १४ देखिए। उसमें लिखा है—

"हमारे गवर्नर-जनरल को यह अपनी खास ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए कि इँगलेंड के बने हुए माल के खिलाफ़ हिन्दुस्तान में कोई ऐसा क़ानून न बन सके जिससे उस माल पर इतना टैक्स लग जाय या उस पर ऐसी कड़ी बन्दिश कर दी जाय जिससे और माल के मुक़ाबिले में उसका पलरा नीचा हो जाय या उसका बिकना असम्भव हो जाय।

"हमारे गवर्नर-जनरल को चाहिए कि अगर उसकी गवर्नमेंट या फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा इँगलेंड से या दूसरे देशों से कुछ व्यापारिक समझौते और टैरिफ़* कर के

* नये विधान में दो-चार शब्द ऐसे हैं जिनको प्रारम्भ से ही समझ लेना हमारे लिए लाभदायक रहेगा। 'विशेष ज़िम्मेदारी' उनमें से पहला शब्द है। इसका अर्थ यह होता है कि जिस विषय में गवर्नर या गवर्नर-जनरल की विशेष ज़िम्मेदारी है उस विषय में वह कौंसिल की राय या अपने मन्त्रियों की राय लिये बिना ही जो चाहे कर सकता है। इसी सिलसिले में दो और शब्द हैं—'इन हिज़ डिस्क्रीशन' अर्थात् अपने मजाज़ से और 'आन हिज़ इन्डिवीडुअल जजमेंट' अर्थात् अपनी राय के अनुसार। इन दो शब्दों का प्रयोग नये विधान में ख़ूब हुआ है। गवर्नर और गवर्नर-जनरल बहुत-सी बातें अपने 'मजाज़' से कर सकते हैं और बहुत-सी बातें अपने 'मिज़ाज' से, अर्थात् अपनी राय से। जिन बातों में उन्हें इस प्रकार की छूट मिली है उन बातों में वे बिना अपने मंत्रियों या अपनी व्यवस्थापक सभा से पूछे शासन कर सकेंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें उन बातों में निरंकुशता हासिल होगी। नये विधान में यह साफ़ कह दिया गया है कि जिन बातों में गवर्नर या गवर्नर-जनरल को अपने 'मजाज़' से या 'मिज़ाज से काम करने का हक़ है उन बातों में वे भारत-सचिव के अधीन होंगे।

* टैरिफ़-कर उस चुंगी का नाम है जो विदेश से आये हुए माल पर देश में आते समय लगाया जाता है।

सम्बन्ध में पारस्परिक रियायतों का मुआहिदा कर रही है और इस तरह अपनी आर्थिक और व्यापारिक नीति का निर्माण कर रही है तो वह हस्तक्षेप न करे। लेकिन अगर वह देखे कि उसकी गवर्नमेंट या व्यवस्थापक सभा की नीति से भारतवर्ष की इतनी आर्थिक भलाई नहीं है जितनी यह बात है कि इँग्लेंड के व्यापार को व्यापारिक प्रतिबन्धों से नुक़सान पहुँचाया जाय तो उसे टैरिफ़-कर-सम्बन्धी नीति के निर्माण में और समझौते की बात-चीत में हस्तक्षेप करना चाहिए। और हम उसे हुक्म देते हैं और ताक़ीद करते हैं कि अगर प्रत्यक्ष पक्षपात किया जा रहा है (जैसे यदि इँग्लेंड से आये माल पर दूसरे देशों की अपेक्षा ज़्यादा कर लगाया जाता है या और देशों की अपेक्षा इँग्लेंड के माल को भारतवर्ष में आने से ही रोका जाता है) या अप्रत्यक्ष पक्षपात किया जा रहा है (जैसे, भिन्न-भिन्न माल के ऊपर भिन्न-भिन्न कर लगाया जाता है) तो हमारे गवर्नर-जनरल की यह ख़ास ज़िम्मेदारी है कि ऐसे कर और प्रतिबन्धों को न लगने दे। वह उन क़ानूनों को भी रद कर दे जो ज़ाहिरा तो पक्षपात-पूर्ण नहीं हैं, लेकिन वास्तव में उनका प्रभाव वही पड़ेगा जो पक्षपात-पूर्ण क़ानूनों का।"

यह आदेश कितना अधिक व्यापक है और इसका राष्ट्रीय आर्थिक नीति पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह अपने आप स्पष्ट है।

सच तो यह है कि नये विधान में गवर्नर-जनरल को और (गवर्नरों को भी) इतने अधिकार दे दिये गये हैं कि जो कुछ नाममात्र की प्रजातन्त्रता नये विधान में है वह भी उनसे ख़त्म हो जाती है। भारतीय जनता जिन बातों में सुधार करने का प्रयास बरसों से कर रही है और जिस अर्थ-नीति का प्रतिपादन राष्ट्रीय दल बहुत दिनों से करता आया है उन सब बातों में नये विधान के अनुसार भारतवर्ष के प्रतिनिधि सम्पूर्ण रूप से गवर्नर-जनरल, भारत-सचिव और ब्रिटिश शासक-मण्डली के अधीन रहेंगे। और देखिए। आदेश नं० २७ में लिखा है—

"हमारे गवर्नर-जनरल का कर्तव्य है कि वे हमारे नाम पर किसी ऐसे क़ानून के मसविदे को स्वीकार न करें, बल्कि उसे हमारे हुक्म के लिए हमारे पास भेज दें—

(१) जिसकी दफ़ायें ब्रिटिश भारत पर लागू होनेवाले पार्लियामेंट के किसी भी क़ानून की दफ़ाओं के ख़िलाफ़ हैं या उनको मनसूख़ करती हैं।

(२) जो किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा ने पास करके उनके पास विचार के लिए भेजा है और जिससे बन्दोबस्त इस्तमरारी में फ़र्क़ आता है।

(३) जिसके बारे में उनको यह शक हो कि उससे आदेश नं० १४ में बयान किया हुआ व्यापारिक पक्षपात होता है।"

फ़ौज के बारे में यह आदेश है—

"यह हमारी आज्ञा है कि गवर्नर-जनरल फ़ौज का ख़र्च अपने मजाज़ से कर सकता है, लेकिन संघ-सरकार के ख़ज़ाने के मुहकमे को इस ख़र्च के सम्बन्ध में बराबर परिचित रखने का उचित प्रबन्ध कर लेना चाहिए। फ़ौज के ख़र्च का तख़मीना बनाने के पहले और उसे फ़ेडरल व्यवस्थापक सभा के सामने रखने के पहले अर्थ-सचिव और अर्थ-विभाग की सलाह ले लेनी चाहिए (आदेश नं० १९)।"

"यह हमारी आज्ञा और इच्छा है कि फ़ौजी मुहकमे के प्रबन्ध के मामले में हमारे गवर्नर-जनरल को चाहिए कि वे कमांडर-इन-चीफ़ की राय ऐसे मामलों में ले लें जिन मामलों में कमांडर-इन-चीफ़ के कर्तव्य का प्रश्न है और अगर कमांडर-इन-चीफ़ कहें तो हमारे भारत-सचिव के पास उनकी राय भेजकर पत्र-व्यवहार कर लें (आदेश नं० १८)।"

मुसलमान, हिन्दू और हरिजनों के स्वत्व-सम्बन्धी झगड़ों के फ़ैसला करने की विशेष ज़िम्मेदारी गवर्नर-जनरल की है। आदेश नं० ११ देखिए—

"हमारे गवर्नर-जनरल को यह अपनी ख़ास ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए कि वह अल्पसंख्यक लोगों के मुनासिब स्वत्वों की रक्षा करे और इस बात का प्रबन्ध करे कि उन जातीय या धार्मिक सम्प्रदायों के लोगों पर जिनको फ़ेडरल व्यवस्थापक सभा में ख़ास प्रतिनिधित्व मिला है या उन वर्गों पर जो अपनी संख्या की कमी के कारण या शिक्षा या सम्पत्ति के अभाव की वजह से या किसी दूसरे

कारणों से फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा में संयुक्त राजनैतिक चेष्टा से अपने स्वत्वों की रक्षा नहीं कर सकते, उन पर कोई ज़ुल्म न हो और न बेपरवाही हो और न ज़ुल्म तथा बेपरवाही से डरने के कोई कारण पैदा हों।

"हमारे गवर्नर-जनरल को यह अपनी ख़ास ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए कि हमारी नौकरियों में वे अनेक सम्प्रदायों को मुनासिब हिस्सा दें। उनका कर्तव्य है कि इस मामले में इस आदेश-पत्र के निकलने के पहले जो नीति चल रही थी उसी का अवलम्बन करें। लेकिन अगर पूर्ण रूप से उन्हें इस बात का विश्वास हो जाय कि सार्वजनिक हित के लिए या उन सम्प्रदायों की भलाई की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस नीति में परिवर्तन किया जाय तो वे परिवर्तन कर सकते हैं।"

संघ-सरकार की व्यवस्थापक सभा निम्नलिखित विषयों पर बिना पहले गवर्नर-जनरल की मंज़ूरी लिये कोई क़ानून नहीं बना सकती।

नये विधान की १०८ वीं दफ़ा में लिखा है—"जब तक गवर्नर-जनरल अपने मजाज़ से स्वीकृति देना उचित नहीं समझते तब तक न तो फ़ेडरेल असेम्बली में और न कौंसिल आफ़ स्टेट में कोई ऐसा बिल या संशोधन पेश हो सकता है जो—

(क) पार्लियामेंट के किसी ऐसे क़ानून के जो ब्रिटिश भारत पर लागू है, ख़िलाफ़ हो या उसका संशोधन करता हो या उसको मंसूख़ करता हो।

(ख) गवर्नर-जनरल के द्वारा या गवर्नर के द्वारा बनाये हुए किसी क़ानून या उनकी क़लम से निकाले हुए किसी भी आर्डिनेंस के ख़िलाफ़ हो, उसका संशोधन करता हो या उसे मंसूख़ करता हो।

(ग) जिन बातों में वर्तमान विधानानुसार गवर्नर-जनरल को अपने मजाज़ से या मिज़ाज से शासन करने का अख़्तियार हासिल है उन पर हस्तक्षेप करता हो।

(घ) पुलिस से सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी क़ानून पर हस्तक्षेप करता हो, उसका संशोधन करता हो या उसे मंसूख़ करता हो।

(च) किसी भी फ़ौजदारी की अदालती कार्रवाई पर असर रखता हो, जिस कार्रवाई में योरपीय ब्रिटिश रियाया का सम्बन्ध है।

(छ) जो भारत से बाहर रहनेवाले लोगों पर भारत के रहनेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक टैक्स बाँधता हो या जिन कम्पनियों का ब्रिटिश भारत में प्रबन्ध या संचालन नहीं होता है उन पर भारत की कम्पनियों की अपेक्षा अधिक कर बाँधता हो।

फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा को या प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा को इस बात का अख़्तियार नहीं है कि वह—

(१) ऐसा क़ानून बना ले जिसका भारत के सम्बन्ध में या भारतवर्ष के किसी भी भाग के सम्बन्ध में पार्लियामेंट के क़ानून बनाने के हक़ पर हस्तक्षेप होता हो।

(२) या ऐसा क़ानून बना ले जिसका सम्राट् पर या सम्राट के कुटुम्ब पर या उनके उत्तराधिकार पर या भारतवर्ष में या उसके किसी भाग में सम्राट् के आधिपत्य पर प्रभाव पड़ता हो या ब्रिटिश क़ौम के क़ानून पर, फ़ौजी क़ानून पर, हवाई सेना के क़ानून पर 'नेवल डिसिप्लिन ऐक्ट' पर कोई असर पड़ता हो।

(३) या कोई ऐसा क़ानून बना ले जिसका नये विधान की धाराओं पर या प्रिवी कौंसिल के आर्डर या भारत-सचिव के बनाये हुए या गवर्नर-जनरल या गवर्नर-द्वारा अपने क़लम से या अपनी स्वेच्छा से बनाये हुए किसी क़ायदे पर असर पड़ता हो।

(४) या जो सम्राट् के उस विशेषाधिकार पर प्रभाव डाले जो किसी अदालत के फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपील की इजाज़त देने के सम्बन्ध में उन्हें हासिल है (११०)।"

फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभाओं में टैक्स-सम्बन्धी कोई बिल इस प्रकार का नहीं पेश हो सकता जिससे प्रान्तों को दिलचस्पी हो (१४१)।

फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभायें किसी भी ऐसे बिल पर विचार नहीं कर सकतीं जिससे टैक्स लगता हो या बढ़ता हो, क़र्ज़ लेने या उसकी मात्रा निर्धारित करने के सम्बन्ध में हो या जो किसी ख़र्च को फ़ेडरेल सरकार के ख़ज़ाने से बतौर ख़र्च स्वीकृति दिलाता हो, जब तक गवर्नर-जनरल ने उस बिल को पेश करने की स्वीकृति न दी हो।

गवर्नर-जनरल को यह भी अख़्तियार है कि अपनी क़लम से अर्थात् बिना किसी से पूछे क़ानून बना डाले। ऐसे क़ानून 'गवर्नरजनरल्स ऐक्ट' कहलायेंगे। गवर्नर-जनरल आर्डिनेंस भी बना सकते हैं और गवर्नर-जनरल 'घोषणा' करके विधान के द्वारा दिये हुए प्रजातंत्र के सम्पूर्ण अधिकारों को अपने हाथ में ले सकते हैं।

गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार—

किसी भी समय जब फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा की परिषद् न हो रही हो, यदि गवर्नर-जनरल को इस बात का यक़ीन हो जाय कि ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है कि उनके लिए यह ज़रूरी है कि वे कुछ कार्रवाई फ़ौरन करें तो उन्हें अख़्तियार है कि जिस क़िस्म का आर्डिनेंस वे आवश्यक समझें, निकाल दें। इस आर्डिनेंस का वही महत्त्व होगा जो व्यवस्थापक सभा-द्वारा किसी भी क़ानून का होता है। लेकिन शर्त यह है कि यह आर्डिनेन्स फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा के सामने ६ महीने के अन्दर पेश करा के पास करा लिया जाय। अन्यथा यह ६ महीने के बाद मंसूख़ समझा जायगा (४२)।

अगर किसी भी समय (चाहे व्यवस्थापक सभाओं की परिषद् हो रही हो या न हो रही हो) गवर्नर-जनरल को यह विश्वास हो जाय कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि वे अपने कर्तव्य का पालन करने के हित में या उन ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए जिन पर उन्हें स्वेच्छा से या विशेषाधिकार से अमल करने का हक़ है, कोई कार्रवाई करें तो वे जिस प्रकार का आर्डिनेंस चाहें, जारी कर सकते हैं। (४३) इस धारा के अनुसार जो आर्डिनेंस जारी किया जायगा वह ६ महीने तक जारी रहेगा, लेकिन ६ महीने के बाद फिर ६ महीने तक के लिए बढ़ाया जा सकता है। लेकिन ऐसी स्थिति में आर्डिनेंस की नक़ल भारत-सचिव के पास भेजी जायगी और हाउस आफ़ लार्ड्स और हाउस आफ़ कामन्स के सामने पेश की जायगी।

आर्डिनेंस निकालने के अलावा गवर्नर-जनरल को यह भी अख़्तियार है कि बिना व्यवस्थापक सभा की मंज़ूरी के क़ानून बना दें। ये क़ानून 'गवर्नर-जनरल के क़ानून' के नाम से प्रसिद्ध होंगे (४४)।

अगर गवर्नर-जनरल को यह विश्वास हो जाय कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि फ़ेडरेशन की गवर्नमेंट को इस विधान के अनुसार चलाना असम्भव हो गया है तो उनको अख़्तियार है कि वे एक 'घोषणा' अपनी ओर से जारी करें और जो अख़्तियार संघ-सरकार की व्यवस्थापक सभा को प्राप्त हैं या किसी भी शासन-मण्डली को प्राप्त हैं, सबके सब उन संस्थाओं से लेकर अपने हाथ में कर लें (४५)। दफ़ा ४५ के अनुसार विशेष स्थिति में गवर्नर-जनरल संघ-सरकार में प्रजा को प्राप्त अधिकारों का अपहरण करके अपनी इच्छा से शासन कर सकेंगे। यह 'घोषणा' तुरन्त भारत सचिव के पास भेजी जायगी, जो उसे पार्लियामेंट के सामने रख देंगे। यह 'घोषणा' दूसरी घोषणा से संशोधित हो सकेगी। पार्लियामेंट को अधिकार है कि अपने प्रस्ताव-द्वारा इस घोषणा को जब तक चाहे क़ायम रक्खे। अगर कभी ऐसा हो जाय कि हिन्दुस्तान का शासन घोषणा-द्वारा ही तीन वर्ष तक बराबर करना पड़े तो तीन बरस के बाद घोषणा मंसूख़ समझी जायगी और पार्लियामेंट भारतवर्ष के शासन का काम स्वयं करेगी। नये विधान में फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा को यह भी हक़ नहीं है कि इस देश के व्यवसाय, व्यापार आदि की रक्षा और उन्नति के लिए जिस प्रकार का क़ानून चाहे, बना ले। गवर्नर-जनरल की यह ख़ास ज़िम्मेदारी है कि वे अपने अख़्तियार से तमाम ऐसे क़ानूनों को रद कर दें जिनसे ब्रिटिश या बर्मा के बने हुए माल पर विषम व्यवहार होता हो। फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा में कोई भी क़ानून ऐसा नहीं बनाया जा सकता जिससे ब्रिटिश व्यापार को नुक़सान पहुँचे। ब्रिटिश कम्पनियों के लिए और ब्रिटिश व्यापार तथा व्यापारियों के लिए न तो फ़ेडरेल व्यवस्थापक सभा और न प्रान्तीय व्यवस्थापक सभायें ऐसा क़ानून बना सकती हैं जिससे उन्हें नुक़सान पहुँचता हो। कोई क़ानून जिससे किसी अँगरेज़ का हिन्दुस्तान में आना, व्यापार करना, जायदाद हासिल करना या नौकरी करना या कोई पेशा करना रुकता हो, नाजायज समझा जायगा (१११)। भारत में रजिस्ट्री की हुई कम्पनियों के साथ इँग्लेंड में

रजिस्ट्री की हुई कम्पनियों की अपेक्षा कोई रियायत नहीं दी जा सकती (११२)।

व्यवसाय की उन्नति के लिए अगर कोई रियायत भारत की कोई सरकार भारतीय कम्पनियों को देगी तो उसी प्रकार की रियायत उसे ब्रिटिश कम्पनी को भी देनी होगी (११६)।

प्रान्त के गवर्नरों को जो आदेश पत्र मिला है वह भी क़रीब क़रीब गवर्नर-जनरल के आदेश-पत्र के समान ही है। गवर्नर का आदेश नं० १८ वही है जो गवर्नर-जनरल का आदेश नं० २७ है। गवर्नर का आदेश नं० १० वही है जो गवर्नर जनरल का आदेश नं० ११ है। इसी प्रकार जितनी विशेष ज़िम्मेदारियाँ गवर्नर-जनरल को हैं, गवर्नरों को भी प्राप्त हैं।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में बिना गवर्नर-जनरल की मंज़ूरी के कोई ऐसा क़ानून पेश ही नहीं किया जा सकता जो—

(क) पार्लियामेंट के किसी ऐसे क़ानून के जो ब्रिटिश भारत पर लागू है, खिलाफ़ हो या उसका संशोधन करता हो या उसको मंसूख़ करता हो।

(ख) गवर्नर-जनरल के द्वारा या गवर्नर के द्वारा बनाये हुए किसी क़ानून या उनकी क़लम से निकाले हुए किसी भी आर्डिनेंस के खिलाफ़ हो, उसका संशोधन करता हो या उसे मंसूख़ करता हो।

(ग) जिन बातों में वर्तमान विधानानुसार गवर्नर-जनरल को अपने 'मजाज' से या 'मिज़ाज' से शासन करने का अख़्तियार हासिल है उन पर हस्तक्षेप करता हो।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में बिना उस प्रान्त के गवर्नर की मंज़ूरी के कोई क़ानून पेश नहीं हो सकता जो—

(१) गवर्नर के क़ानून को या उसके द्वारा निकाले हुए किसी आर्डिनेंस के खिलाफ़ हो, उसका संशोधन करता हो या उसे रद करता हो।

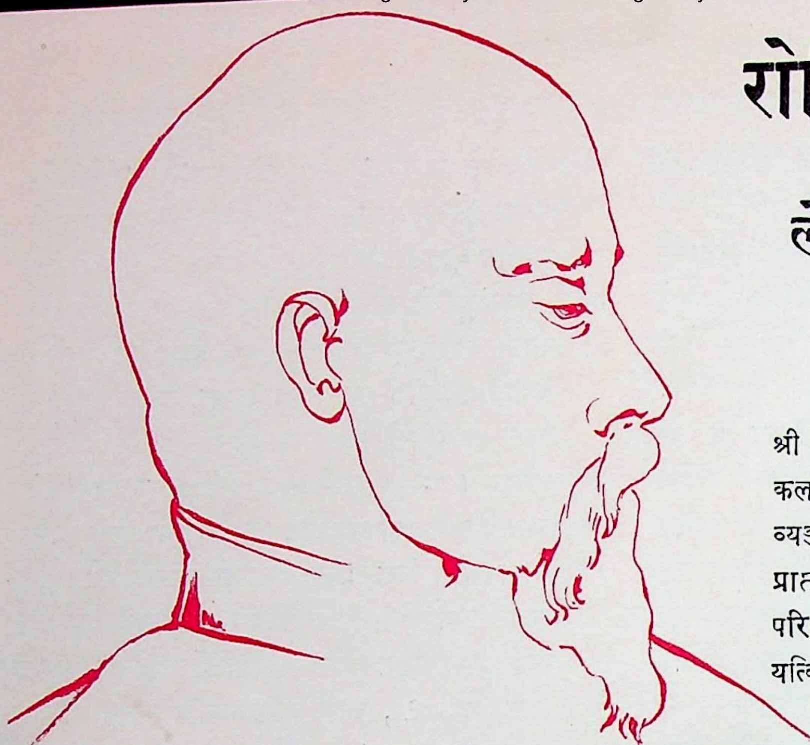
(२) पुलिस से सम्बन्ध रखनेवाले किसी क़ानून पर हस्तक्षेप करता हो, उसका संशोधन करता हो या उसे मंसूख़ करता हो। जिस प्रकार गवर्नर-जनरल को उसी प्रकार गवर्नर को भी अख़्तियार हासिल हैं कि जब चाहें अपने अख़्तियार से आर्डिनेंस बना सकते हैं (दफ़ा ८८-८९), अपने अख़्तियार से क़ानून भी बना सकते हैं (दफ़ा ९०) और 'घोषणा' भी निकाल सकते हैं (९३)।

प्रश्न यह है कि नये विधान में जब इतनी बन्दिशें हैं तब फिर राष्ट्रीय दल उसके अनुसार देश की सेवा किस प्रकार करेगा। जो लोग नये विधान को स्वीकार करने को तैयार हो रहे हैं उनका भी यह कर्तव्य है कि वे इसकी खूबियों को प्रकट करें। इसी प्रकार जो कांग्रेसमैन सरकारी पदग्रहण करने की बात सोच रहे हैं उनको भी यह बताना चाहिए कि उनका क्या उद्देश है और नये विधान की बन्दिशों में रहकर वे अपने उद्देशों में किस हद तक सफल होंगे।

अपराध

लेखक, श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी'

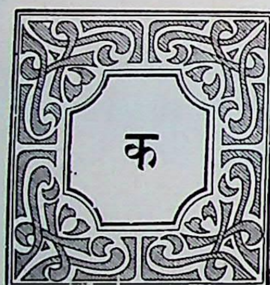
स्नेहमयी मा, निज प्राणों के,
मधुर नीड में मुझको पाला।
पर उड़ चला हुआ मैं जिस दिन
थोड़ा-सा भी उड़नेवाला॥
गगन लाल था सकल विहग-दल,
उड़ते थे अंबर की ओर।
मैं कैसे रुकता मेरे भी,
पङ्ख कर उठे थे कुछ ज़ोर॥
इतना-सा अपराध तुम्हारो,
आँखों को किसलिए न भाया।
द्वार बन्द कर लिया, कहो क्यों,
संध्या को जब मैं घर आया॥



रोरिक की चित्रकला

लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र टंडन, एम० ए०

श्री निकोलस रोरिक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार हैं। उन्होंने चित्राङ्कण में अपनी व्यञ्जनात्मक भावना में अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। ऐसे ही सिद्ध कलाकार का संक्षिप्त परिचय तथा उसकी महत्त्वपूर्ण कला का यत्किञ्चित् दिग्दर्शन लेखक महोदय ने अपने लेख में कराया है।



लाकार निकोलस रोरिक की प्रतिभा बहुमुखी है। वे न केवल एक जगद्विख्यात चित्रकार हैं, बरन एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक, पुरातत्त्व-विद्, अन्वेषक, दार्शनिक और कवि भी हैं। हमें उनकी कृतियों में पूर्व की गहन कल्पना का, तथा पाश्चात्य की दृढ़ कार्य-शीलता का अपूर्व और सुंदर संयोग मिलता है।

कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रोरिक के चित्रों को देखकर उन्हें लिखा था—"आपके चित्रों ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला है। उनके द्वारा मुझे एक ऐसी बात का अनुभव हुआ जो कि स्पष्ट है, परन्तु जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए बार-बार खोजने की आवश्यकता है, अर्थात् सत्य असीम है। आपके चित्र स्पष्ट हैं, फिर भी उनका वर्णन शब्दों की सीमा में नहीं आ सकता। आपकी कला महान् है, इसी हेतु वह अपनी स्वतंत्रता के लिए सतर्क है।"

निकोलस रोरिक का जन्म सन् १८७४ ईसवी में, १० अक्तूबर को, रूस के प्रसिद्ध नगर सेंट पीटर्सबर्ग में हुआ था। उनके पिता एक सुविख्यात बैरिस्टर थे। दस वर्ष की अवस्था से ही बालक रोरिक की चित्राङ्कण में अभिरुचि थी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था



को प्राप्त करते करते उन्होंने इस कार्य में अच्छा अभ्यास कर लिया था। वे कला-विषयक लेख तथा चित्र सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भेजने लगे थे और ये लेख तथा चित्र प्रकाशित भी होते थे। पिता की इच्छा थी कि वे क़ानून की शिक्षा प्राप्त करके उनके कार्य में सहायता दें। इस शिक्षा के लिए वे सेंट पीटर्सबर्ग की यूनिवर्सिटी में भरती भी हुए। यहाँ उन्होंने क़ानून का अच्छा अनुशीलन किया, परन्तु उन्हें कला से विशेष प्रेम था। अतएव वे वहीं की 'एकेडेमी आव् फ़ाइन आर्ट्स' में प्रविष्ट होकर चित्र-कला सीखते रहे और यहाँ से भी यथा-समय स्नातक-पद प्राप्त किया। इस एकेडेमी में रोरिक ने ऐसी प्रतिभा दिखाई कि एक वर्ष में उन्होंने तीन दर्जे पास कर लिये। कुछ दिनों तक उन्होंने पेरिस में भी चित्रकला सीखी। सन् १८९६ से सन् १९१६ तक वे अपने देश में ललित-कला तथा पुरातत्त्व से सम्बद्ध अनेक संस्थाओं के सभापति अथवा उत्साही कार्य-कर्ता रहे। इस बीच वे चित्राङ्कण के अतिरिक्त कतिपय कला-सम्बन्धी पत्रों का सम्पादन भी करते रहे और राजकीय पुरातत्त्व-समिति के तत्त्वावधान में अध्यापक भी रहे। इन्हीं वर्षों में उन्होंने अपने चित्राङ्कण में उस विशेष शैली का विकास किया जिसे हम उनके नाम के साथ सम्बद्ध करते हैं और जिसके थोड़े ही वर्षों में योरप में अनेक अनुयायी या नक़ल करनेवाले हो गये।

रूसी राज्यक्रांति से कुछ समय पूर्व रोरिक फ़िनलेंड चले गये थे। राज्यक्रांति के अनन्तर सोवियट सरकार ने उन्हें ललित-कलाओं के मंत्री का पद देने का प्रस्ताव किया, परन्तु इसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया और वे रूस न लौटे। उनका विशाल कला-सम्बन्धी संग्रह सोवियट सरकार-द्वारा ज़ब्त कर लिया गया। फ़िनलेंड से वे स्वीडेन और डेनमार्क गये और रूस से बाहर ही घूमते तथा चित्र-कला का प्रदर्शन करते रहे। सन् १९२० में वे लंदन में थे और यहाँ पर भी उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शिनी की। जहाँ जहाँ वे गये, उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ी तथा उनकी विशेष शैली का सम्मान हुआ।

सन् १९२० में रोरिक महोदय का कार्यक्षेत्र योरप से अमरीका में परिवर्तित हुआ। इस वर्ष उनको शिकागो नगर की एक प्रसिद्ध कला-संस्था की ओर से अमरीका आकर अपनी चित्रकला का प्रदर्शन करने का निमन्त्रण मिला। इस अवसर से लाभ उठाकर उन्होंने यूनाइटेड स्टेट्स के लगभग चालीस प्रमुख नगरों में अपने चित्रपटों का प्रदर्शन किया तथा उन पर व्याख्यान भी दिये। अमरीका में रोरिक के प्रशंसकों तथा अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ी। सन् १९२३ में वहाँ के कुछ मित्रों ने तथा संस्थाओं ने मिलकर प्रसिद्ध रोरिक-म्यूज़ियम की स्थापना की। रोरिक-म्यूज़ियम तथा यूनाइटेड स्टेट्स की सरकार की ओर से प्रायः बारह वर्षों से रोरिक मध्य-एशिया में अन्वेषण का कार्य भी कर रहे हैं और भारत की सीमा में, पञ्जाब की सुरम्य कुलू-घाटी में, नग्गर नामक स्थान पर उनकी एक संस्था भी स्थापित हो गई है, जहाँ से इस अन्वेषण का कार्य चलता रहता है। इस संस्था का नाम "उरुस्वती हिमालयन रिसर्च इन्स्टीट्यूट" है और यह अमरीका के रोरिक-म्यूज़ियम की एक शाखा है।

सन् १९२४ से लेकर आज तक रोरिक महोदय हिंदुस्तान, छोटा तिब्बत, काराकोरम, चीनी तुर्किस्तान, तिब्बत, मंगोलिया आदि देशों की कई बार यात्रा कर चुके हैं और इस बीच में न केवल उन्होंने वैज्ञानिक अध्ययन की प्रचुर सामग्री ही प्राप्त की है, वरन इन प्रदेशों की संस्कृति तथा जीवन से सम्बन्ध रखने-वाले हज़ारों चित्रपट भी तैयार किये हैं। चित्रकला को वे एक सार्वलौकिक भाषा सदा बताते रहे हैं, और इस भाषा-द्वारा वे पूर्व तथा पाश्चात्य की विभिन्न संस्कृतियों में संपर्क स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं।

रोरिक महोदय का मुख्य कार्य कला के ही क्षेत्र में रहा है। यह बात कही गई है कि "विज्ञान के क्षेत्र में जो स्थान आइन्स्टाइन को तथा उद्योग के क्षेत्र में फ़ोर्ड को प्राप्त है, वही स्थान कला के क्षेत्र में रोरिक को प्राप्त है।" रोरिक की कला का मूल्य आँकने का कार्य सहज नहीं है। कारण यह है कि इस क्षेत्र में भी इस दीर्घ काल में, रोरिक की रचनात्मक प्रतिभा इतने विविध रूपों में और इतने बाहुल्य के साथ प्रकट हुई है और उनके संबंध में साहित्य इतना प्रचुर है और अनेक भाषाओं तथा देशों में फैला हुआ है कि हम केवल कुछ अंशों की झलक पा सकते हैं तथा उनका परिचय दे सकते हैं। रोरिक ने अपने जीवन में लगभग साढ़े तीन हज़ार चित्र अंकित किये हैं, जो पचीस से अधिक देशों में, सैकड़ों निजी तथा सार्वजनिक संग्रहों में फैले हुए हैं। हज़ार से अधिक चित्रपट तो केवल न्यूयार्क के रोरिक-म्यूज़ियम में ही एकत्र हैं। इसके अतिरिक्त उनके चित्रों के निर्माण-काल में भी एक-दूसरे के बीच महान् अंतर है। सारांश यह कि समष्टि रूप से रोरिक के चित्रों का अध्ययन करना आज अत्यंत कठिन है।



[शान्ति की जननी।]

फिर भी ऐसी कला के पारखी जिन्होंने रोरिक के समस्त चित्रों का अवलोकन तथा अध्ययन किया है, इस बात में सहमत हैं कि रोरिक महोदय का स्थान न केवल रूसी चित्रकला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है, वरन संसार के चित्रकला के इतिहास में।

रोरिक महोदय की जन्मभूमि रूस अवश्य है और उनका शिक्षण भी अधिकांश वहीं हुआ है, परन्तु उनकी चित्रकला किसी रूसी चित्र-परंपरा के अंतर्गत नहीं आती। मौलिकता उनके चित्रों की महान् विशेषता है। वे अपनी विशेष शैली जिसे 'रोरिक-शैली' कहते हैं, के निर्माता हैं। और यह शैली उनके गहन चिंतन तथा विस्तृत अध्ययन का परिणाम है।

स्पेन के प्रसिद्ध चित्रकार ज़ुलोआगा ने इन चित्रों की मौलिकता के अतिरिक्त उनकी सार्वलौकिकता तथा भविष्य पर प्रभाव का भी अनुभव किया है। वे लिखते हैं—"महान् कलाकार! हमें इस बात का प्रमाण मिल रहा है कि रूस से एक बड़ी शक्ति संसार में अवतरित हो रही है। मैं उसका



[ज्योति अन्धकार पर विजय प्राप्त करती है।]

अनुमान नहीं करता, उसका वर्णन नहीं कर सकता, लेकिन वह यहाँ है अवश्य।" स्पेन के प्रसिद्ध चित्रकार के ही भावों का उद्‌गार अपने अनुपम ढंग से कविवर रवीन्द्रनाथ ने भी किया है। दोनों ही रोरिक की कृतियों से प्रभावित हैं तथा दोनों ही उन्हें वर्णन के बंधन में लाने में संकोच प्रदर्शित करते हैं।

रोरिक की सार्वलौकिकता का रहस्य कदाचित् उनकी आध्यात्मिकता में है। एक आलोचक ने लिखा है—"जहाँ कुछ कला-प्रेमियों में, रोरिक के चित्र, अपने रंगों की व्यवस्था तथा आकृतियों के कारण श्रद्धा उत्पन्न करते हैं, वहाँ औरों के लिए वे आंतरिक चिंतन के आधार-स्वरूप बन जाते हैं।"

रंगों के सजावट के विषय में विशेष नहीं कहना है। रोरिक रंगों के जादूगर कहे गये हैं। रोरिक के चित्रपटों को देखनेवाले ही उनके चमत्कार का यथार्थ रूप में अनुभव कर सकते हैं। चीन देश के कलाकारों ने उनका स्वागत करते हुए कहा था—"आप शब्द और छाया के चित्रण का सामर्थ्य रखते हैं।" अन्य समालोचकों का कहना है कि रोरिक के चित्रों में हमें एक चतुर्थ-परिमाण के गुण मिलते हैं। यह प्रभाव रोरिक महोदय निस्संदेह अपने विस्तृत शिल्प-ज्ञान तथा रंगों को चमत्कारिक व्यवस्था-द्वारा ही उत्पन्न कर सके हैं।

रोरिक के चित्रों के विषय में एक प्रमुख बात यह है कि उनमें एक प्रकार से भविष्यवाणी की गई है। ऐसे चित्रों में हम उनके ज्ञान, मनन और पारदर्शिता का निरूपण कर सकेंगे। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि आज-कल रोरिक किन चित्रों का अंकण कर रहे हैं। उनका कहना है कि रोरिक के चित्रों में भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं के संकेत मिलते हैं। रोरिक के विषय में जो साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें इस बात का कई स्थलों पर वर्णन आया है। कहा जाता है कि सन् १९१३ तथा १९१४ में रोरिक महोदय ने जो चित्र अंकित किये थे उनमें जगद्‌व्यापी महायुद्ध की भविष्यवाणी थी। रोरिक के कुछ



[पवित्र मेषपाल।]

भक्तों ने तो १८९७ से लेकर १९३२ तक की उनकी रचनाओं में से शीर्षक लेकर यह बताया है कि उन चित्रों में हमें आगे आनेवाली घटनाओं के लाक्षणिक संकेत मिलते रहे हैं। इधर 'सैक्टा प्रोटेक्ट्रिक्स' तथा हिमालय के कुछ चित्रों को देखते हुए यह बताया गया है कि हमें उनमें कलाकार की उस मनोवेदना की सूचना मिलती है जो किसी महान् लोक-संकट के भय से उनमें उत्पन्न हुई है। इस संकट के निवारण के लिए ही कलाकार ने अपने प्रसिद्ध शांति-पैक्ट तथा पताका की आयोजना की है।



[मैत्रेय।]

रोरिक ने अधिकांश लाक्षणिक चित्रों का अंकण किया है। उनके द्वारा हमें 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के प्राचीन पाठ की पुनः शिक्षा मिलती है। यदि इन चित्रों से हमें भावी महान् संकट की सूचना मिलती है तो साथ ही साथ आश्वासन भी प्राप्त होता है। हम यह समझ पाते हैं कि संकट, समय की विशालता का ध्यान रखते हुए क्षणिक है. और भविष्य संस्कृति के लिए सुरक्षित है।

हमारे लिए यह बड़े हर्ष का विषय है कि इस प्रान्त में—बनारस तथा इलाहाबाद में दो ऐसे 'हाल' खुल गये हैं जिनमें रोरिक महोदय की मौलिक कृतियाँ सुरक्षित तथा प्रदर्शित हैं। ये 'हाल' न्यूयार्क के प्रसिद्ध रोरिक-म्यूज़ियम की शाखायें हैं। बनारस में श्रीयुत राय कृष्णदास जी के उद्योग से यह हाल भारत-कला-भवन के अंतर्गत है और इलाहाबाद में श्रीयुत व्रजमोहन व्यास जी के उद्योग के परिणाम-स्वरूप म्यूनिसिपल-म्यूज़ियम में है। बनारस में बारह तथा इलाहाबाद में तेरह, इस प्रकार कुल मिलाकर पचीस चित्र हमारे प्रान्त में हैं। इन दोनों स्थानों के चित्रपटों को देखकर हम प्रसिद्ध कलाकार की शैली से परिचय प्राप्त कर सकते हैं और किंचित् अंश में उनकी सार्वलौकिक प्रतिभा का भी अनुमान कर सकते हैं।

बनारस-कला-भवन के चित्रों में 'नेता का भाग्य-नक्षत्र', 'दाता बुद्ध', 'श्री भगवान्', 'चरक', 'कल्कि-अवतार', 'त्रिरत्न', 'मैत्रेय' तथा हिमालय और तिब्बत के कुछ विशाल दृश्य हैं। 'नेता का भाग्य-नक्षत्र' मध्य-रात्रि की गंभीरता तथा नीलिमा प्रदर्शित करता है। समस्त वातावरण एक गहरी निद्रा में जान पड़ता है। एक होनहार यशस्वी बालक, जिसका हमें केवल छायांश दिखाई पड़ रहा है, आकाश में अपने ज्योतिर्मान भाग्य-नक्षत्र का एक-टक अवलोकन कर रहा है। 'दाता बुद्ध' नीलिम-धूमिल सूर्यास्त के रंगों में चित्रित है। इसमें भगवान बुद्ध के एक यात्री से भेंट करने की कथा चित्रित है। 'श्रीभगवान्' में भगवान् 'ओ३म्' का चिह्न लेकर

हिम-शिखर से उतर कर त्रस्त संसार में अवतरित होते हैं। 'कल्कि-अवतार'-शीर्षक चित्र में कलाकार हिमांचल के ऊपर जाज्वल्य बादल-दल के भीतर से उठते हुए अवतार की बहुत गहरे रङ्गों में कल्पना करता है। 'चरक' प्रसिद्ध आयुर्वेदिक भिषक् हैं। हिमालय के पर्वत-प्रदेश में जड़ी-बूटियों की खोज करते हुए दिखाये गये हैं। 'मैत्रेय'-शीर्षक चित्र में ऋषि पश्चिमी तिब्बत अर्थात् लाहुल में साधना में लीन दिखाये गये हैं। 'त्रिरत्न' गहरे ताम्र रंग में अंकित है। इसमें एक घायल हिरन की एक ऋषि की रक्षा में आने की कथा चित्रित है।

इलाहाबाद के चित्रों में भी हिमालय-चित्रण की प्रधानता है। अधिकांश चित्रों के शीर्षक इस प्रकार हैं --'पवित्र मेषपाल' 'शंबला-संदेश', 'ज्योति अंधकार पर विजय प्राप्त करती है', 'अर्हत', 'व्यास-कुंड', 'गूगा चौहान और नरसिंह', 'मैत्रेय' तथा 'वह जो मार्ग प्रदर्शित करती है।'

'पवित्र मेषपाल' में स्लैव-जातीय परंपरा के लेल का चित्रण है। इस लेल में और हमारे श्री कृष्ण में जो सादृश्य है वह ध्यान देने योग्य है। लेल के दो चर कृष्ण की गोपियों के स्थान पर हैं। गायों के स्थान पर हम भेड़ें पावेंगे, परन्तु मुद्रा बिलकुल श्री कृष्ण-सी है। 'ज्योति अंधकार पर विजय प्राप्त करती है' नामक चित्र में एक पुराना विषय ग्रहण किया गया है, अर्थात् ज्योति और अंधकार का द्वंद्व। इसमें ज्योति की आत्मा का साकार नेता अंधकार-रूपी दानव का दमन करता है। चित्र में गहरा रक्तवर्ण संघर्ष का वातावरण उपस्थित करता है। यह चित्र लाक्षणिक है। 'अर्हत' भी एक लाक्षणिक चित्र है, परन्तु इसमें संघर्ष व्यतीत हो चुका है। अर्हत पर्वत की शिला पर आसीन एक महत्कल्पना में लीन है। दानव इसमें भी उपस्थित है, परन्तु अर्हत प्रशांत है। वह जानता है कि दानव में उसकी शांति भंग करने का सामर्थ्य नहीं है। 'व्यासकुंड' महाभारत के संकलनकर्ता की तपस्यास्थली में स्थित है।



[वह जो मार्ग प्रदर्शित करती है।]

'गूगा चौहान और नरसिंह' कुलू-घाटी की दंत-कथाओं को लेकर चित्रित है। 'मैत्रेय' कलाकार की कल्पना का एक प्रिय पात्र है। अति शीत के कारण हिमावृत पहाड़ी मार्गों पर भविष्य के स्वामी मैत्रेय की विशाल प्रतिमा निदर्शित है। 'वह जो मार्ग प्रदर्शित करती है' एक ऐसी देवी की कल्पना है जो यात्रियों को हिम-शिखरों पर मार्ग प्रदर्शित करती तथा प्रोत्साहन देती है।

इन सभी चित्रों में हिमालय की विशालता के साथ साथ एक उसी के समान महान् खोज तथा उद्योग की कामना अंतर्हित जान पड़ती है।

यह निस्संदेह यथार्थ ही कहा गया है कि आज तक संसार के किसी चित्रकार ने हिमालय का चित्रण इतनी पटुता, इतनी गहन दृष्टि तथा इतनी विशेषता के साथ नहीं किया है। जब हम इतने विस्तृत भूखंड के बहु-संख्यक चित्रों का अवलोकन करते हैं तब हमारे भीतर मानो हिमांचल की आत्मा प्रवेश करने लगती है। रोरिक ने एक स्थल पर लिखा है—"उच्च शिखरों पर गुफाओं में ऋषि निवास करते हैं। यहाँ से नदियों का उद्गम होता है। यहाँ अनंतकाल से हिम अपनी धवलता की रक्षा कर रहा है...... अपनी कठिनाइयों के कारण ही पर्वत-पथ हमें आकृष्ट करते हैं। यहाँ अघटित बात घटित होती है। यहाँ मनुष्यों के विचार परंतन के चिंतन में लगते हैं।" कलाकार के इन शब्दों में हिमालय के गिरि-शृंगों से अपनी महती प्रेरणा प्राप्त करने का रहस्य निहित है।

कला का आदर्श रोरिक के लिए बहुत उच्च है। वे एक स्थल पर लिखते हैं-"कला-द्वारा हम प्रार्थना करते हैं। कला में हमारा सम्मिलन होता है। अब हम इन शब्दों को हिमावृत पर्वत-शिखरों से नहीं दुहराते, बरन नगर के कोलाहल के बीच। और सत्य के मार्ग का अनुशीलन करते हुए हम भविष्य का अभिनंदन करते हैं।"

जिन लोगों ने कलाकार की कृतियों से तथा जीवन से कुछ भी परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया है वे इसे स्वीकार करेंगे कि रोरिक ने अपने उपर्युक्त शब्दों का सत्यता और निष्ठा के साथ अपने जीवन में भी पालन किया है।

अभिमान

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

कहते हो क्या कि—तुम जानते नहीं हो मुझे,
ऐसे अपरिचित न किञ्चित भी ध्यान है ?
भ्रम ही था व्यर्थ—मृगजल ही था—सोचता था—
—तुमसे तो मेरी भी कभी की पहचान है ॥
परिचय ? अब वह दे न सकता हूँ प्रिय !
इतना ही कुछ अवशेष मेरा मान है।
तुम हो महान तो महान के अतिथि रहो—
मुझको भी निज लघुता का अभिमान है ॥



मोतीलाल नेहरू

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

इस लेख का पूर्वार्द्ध जनवरी के विशेषाङ्क में छप चुका है। उसी की भाँति इस भाग में भी स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू के जीवन की वे निजी और छोटी छोटी बातें बताई गई हैं जो आज तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुईं और जो उनके महान् व्यक्तित्व को स्पष्ट करती हैं। वादे के अनुसार हम यहाँ कुछ अप्राप्य चित्र भी प्रकाशित कर रहे हैं। इन चित्रों में कुछ हमें स्वयं पंडित मोहनलाल नेहरू से और कुछ स्वर्गीय पंडित जी की बड़ी पुत्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित से प्राप्त हुए हैं।

(७)

भाई के मरने के समय दो कठिनाइयाँ उनके सामने उपस्थित हुईं। हाईकोर्ट में सर जान एज चीफ़ जस्टिस थे। वे बड़े खरे आदमी थे, किन्तु मिजाज़ बड़ा शक्की था। जिस किसी पर, हिन्दुस्तानी हो या अँगरेज़ हो, उन्हें शक हो जाता कि वह दलाली देता है तो वे उसके पीछे पड़ जाते। तब या तो उसे अपने तरीक़े बदलने पड़ते या हाईकोर्ट के काम से हाथ धोना पड़ता। वे अँगरेज़ थे और यह नहीं जानते थे कि हिन्दुस्तानी मुवक्किल अभी तक एक आदमी के मरने पर उसके छोटे भाई या लड़के से ही अपना काम कराना ज़्यादा पसंद करता है, अगर वह उस काम के करने के योग्य हो। उन्होंने सोचा कि नन्दलाल के कुल मुक़द्दमों में एक युवक जूनियर जो केवल ४ वर्ष से वकालत कर रहा है, वकील कैसे हो सकता है जब तक कोई बेजा कारवाई न की हो? यह सोचकर वे मोतीलाल पर शक करने लगे। उन्हें यह मालूम न था कि अगर कोई वकील ऐसा है जिसने एक पैसा दलाली कभी नहीं दी तो वह यह नौजवान है।



[मोतीलाल (भाइयों और उनके बचों सहित १८७६)]
(खड़े बाईं ओर से—मोतीलाल, बंसीधर, नंदलाल। संभवतः हाथ में छड़ी लिये हुए इस लेख के लेखक महोदय पंडित मोहनलाल नेहरू हैं)



[विलायत में]
(सम्राट् के दरबार में जाने की पोशाक में)

नंदलाल के मित्रों में एक अँगरेज़ भी थे। उनका नाम वाल्टर काल्विन था और इन्हें पीछे से 'सर' की उपाधि भी मिली थी। सर जान एज ने अपना शक इनसे कहा और इन्होंने हिन्दुस्तानी मुवक्किलों का दस्तूर उन्हें बताया जिससे उनका शक दूर हो गया। यह सच है कि अगर काल्विन चाहते तो मोतीलाल को नुक़सान पहुँचा सकते थे, चाहे वह थोड़े ही दिन को होता, मगर न तो उन्हें कोई ज़रूरत थी और न यही खबर थी कि वह दिन बहुत तेज़ी से आ रहा है जब यह नौजवान वकील कुल वकील-बैरिस्टरों से बढ़ जायगा और वे स्वंय भी उससे द्वेष करने लगेंगे। सर जान पर मोतीलाल की तेज़ी और लियाक़त का तो असर था ही और अब उनकी ईमानदारी पर भी पूरा भरोसा हो गया। काल्विन साहब से भी मोतीलाल की दोस्ती बनी रही।

दूसरी दिक़्क़त मोतीलाल की स्वयं ही खड़ी की हुई थी। कालेज के पढ़ने के ज़माने में वे किसी बात पर अयोध्यानाथ से नाराज़ हो गये थे, यद्यपि ये उनके बड़े भाई के मित्र और उनके बुज़ुर्ग थे और उन्हें लड़कों की तरह मानते आये थे। पर जब वे किसी से नाराज़ हो जाते थे तब फिर ऊँच-नीच नहीं देखा करते थे। एक नाटक उन्होंने लिखा, जिसमें अयोध्यानाथ का बहुत मज़ाक़ उड़ाया और उसे किताब के रूप में छपवाकर मित्रों में बाँटा। इस किताब की खबर ज्यों ही नंदलाल को मिली, उन्होंने जितनी किताबें बची थीं, जलवा दीं और जो बाँटी गई थीं वापस मँगाकर नष्ट कर दीं। बड़े भाई के आज्ञानुसार मोतीलाल ने अयोध्यानाथ से क्षमा-प्रार्थना भी की, किंतु वे आसानी से किसी को क्षमा नहीं करते थे। नंदलाल की मृत्यु पर अयोध्यानाथ की नाराज़गी की खबर मुवक्किलों तक को हो गई और नये वकील को शायद कुछ हानि भी पहुँची हो। कोई मामूली लियाक़त का वकील होता तो वह उस नाराज़गी के होते हुए पनप न सकता, किंतु मोतीलाल इस धक्के को सह गये। स्वयं अयोध्यानाथ इस बात को मानते थे कि ग़ैर मामूली क़ाबिलियत इस युवक ने पाई है। नंदलाल की मृत्यु के बाद उनके मामा से अयोध्यानाथ ने कहा कि "मैं जानता हूँ कि वह बहुत जल्दी बड़े वकीलों में हो जायगा। ऐसी हालत में मेरा सहायता करना उसकी एक

तरह नेकनामी को रोकना है"। वास्तव में यह सच भी था। भाई के मरने के पाँच बरस के बाद ही वे हाईकोर्ट के ऊँची श्रेणी के वकीलों में गिने जाते थे और सुन्दरलाल के साथ साथ ही एडवोकेट बनाये गये जब, आज की तरह, एडवोकेट हर शख़्स नहीं हो सकता था। हाईकोर्ट को अधिकार था कि जिस वकील को चाहे उसे एडवोकेट की पदवी दे, और उसने पहले ही दफ़े इस अधिकार का उपयोग किया था।

(८)

वकालत के पहले या उसके बीच में मोतीलाल कभी 'किताब के कीड़े' न थे। फिर भी उनकी अँगरेज़ी की लियाक़त के सब अँगरेज़ जज तक क़ायल थे। अगर वे कोई ग़लती भी कर देते तो हाकिम लोग डिक्शनरी देखे बग़ैर उनकी ग़लती मानते ही न थे। एक दफ़ा सर ज़ान स्टैनली, चीफ़ जस्टिस, के सामने एक अँगरेज़ी शब्द का ग़लत उच्चारण उनके मुँह से निकल गया। जज लोग आपस में सलाह करने लगे। थोड़ी देर के बाद वेब्सटर्स डिक्शनरी आई और इधर-उधर उलट-पुलट कर उन्होंने कहा "वेल पंडित, तुमने इस शब्द को इस तरह उच्चारण किया है। क्या वह ठीक है?" उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की, क्योंकि वह मुँह से निकल गया था। तब सर जान स्टैनली कहने लगे कि हमें तुम्हारे कहने से भ्रम हो गया था कि शायद हमारी ही ग़लती हो।

इसके बीसों बरस पहले जब राजा अजीतसिंह ने उनसे एक दरख़्वास्त गवर्नर जनरल के एजेंट के नाम लिखवाई थी तब उसने उसे पढ़कर पूछा कि यह किस अँगरेज़ की लिखी है। उसने बहुत मुश्किल से माना था कि एक हिन्दुस्तानी वकील ने लिखी है। अब तो शायद हज़ारों हिन्दुस्तानी अच्छी शुद्ध अँगरेज़ी लिखनेवाले मिल जायँगे, किन्तु उस समय यह मामूली बात न थी।

वकालत के दौरान में भी वे लॉ रिपोर्ट लेते तो सब थे, मगर पढ़ते बहुत कम थे। सिर्फ़ जब किसी मुक़दमे की तैयारी में उनकी ज़रूरत होती तो पढ़ते। वे कहा करते थे कि "अच्छे वकील के वास्ते यह ज़रूरी नहीं है कि वह नज़ीरों को जानता हो। वही अच्छा वकील है जो क़ानून



[फ़्राक कोट और टोप हैट में विलायत में पहली बार]

को तुरंत ढूँढ़ निकाल सकता हो।" जब कभी किसी ख़ास तरह की नज़ीर की ज़रूरत होती तब उसे ढूँढ़ निकालने में उन्हें देर नहीं लगती थी।



[मोतीलाल नेहरू (खड़े दाहनी तरफ) मित्रों-सहित]

तक बैठकर उस मुक़द्दमे को तैयार किया। दिन भर तो कचहरी से फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। बही-खातों का मुक़द्दमा था। कई रोज़ बहस करके उसे जीता। मुक़द्दमे की दुनिया में बड़ा नाम पाया और जजों ने भी बहुत प्रशंसा की। इसके बाद वकालत नित्य बढ़ती गई। मगर कोई भी मुक़द्दमा हो, उसकी तैयारी वे पूरी तरह करते। छोटे-बड़े का ख़याल न था।

यह ख़ाली शुरू वकालत में ही मुवक्किलों पर रंग जमाने की तरकीब न थी। वकालत छोड़ने के समय भी ऐसा ही एक मुक़द्दमा उनके हाथ में था, जिसमें प्रश्न यह था कि किसी ख़ास स्त्री को तीस बरस पहले बच्चा पैदा हुआ था या नहीं। इस मुक़द्दमे की तैयारी के वास्ते कुछ दाइयों के हुनर जानने की आवश्यकता थी और दोनों तरफ़ से गवाही देनेवाले डाक्टर लोग उपस्थित थे। पचासों किताबें इस विषय पर उन्होंने पढ़ डालीं और इस विद्या को भी वे उतना ही जान गये जितना डाक्टर या दाइयाँ किताबों-द्वारा जान सकती थीं।

वकालत छोड़कर कांग्रेस का काम उठाया। इस काम में भी वही दिलचस्पी उन्होंने ली जो वकालत के कामों में लिया करते थे। सुबह नहा-धोकर अपने घर के बरामदे में बैठ जाते और दोपहर को थोड़ी देर आराम करने के सिवा दम लेना नहीं जानते थे। पंजाबवाले मार्शल ला के अत्याचारों की तहक़ीक़ात कांग्रेस ने उनके सुपुर्द की। वे ऐसे काम की दिक़्क़तों को जानते थे। फिर भी सहर्ष यह सेवा अपने ऊपर ले ली। कितने ही युवक उनकी सहायता को साथ थे। सुबह आठ बजे नहा-धोकर वे काम पर बैठ जाते और फिर ४ बजे शाम तक सिवा भोजन करने के समय के कुर्सी नहीं छोड़ते थे। चा-पानी के बाद कुछ देर

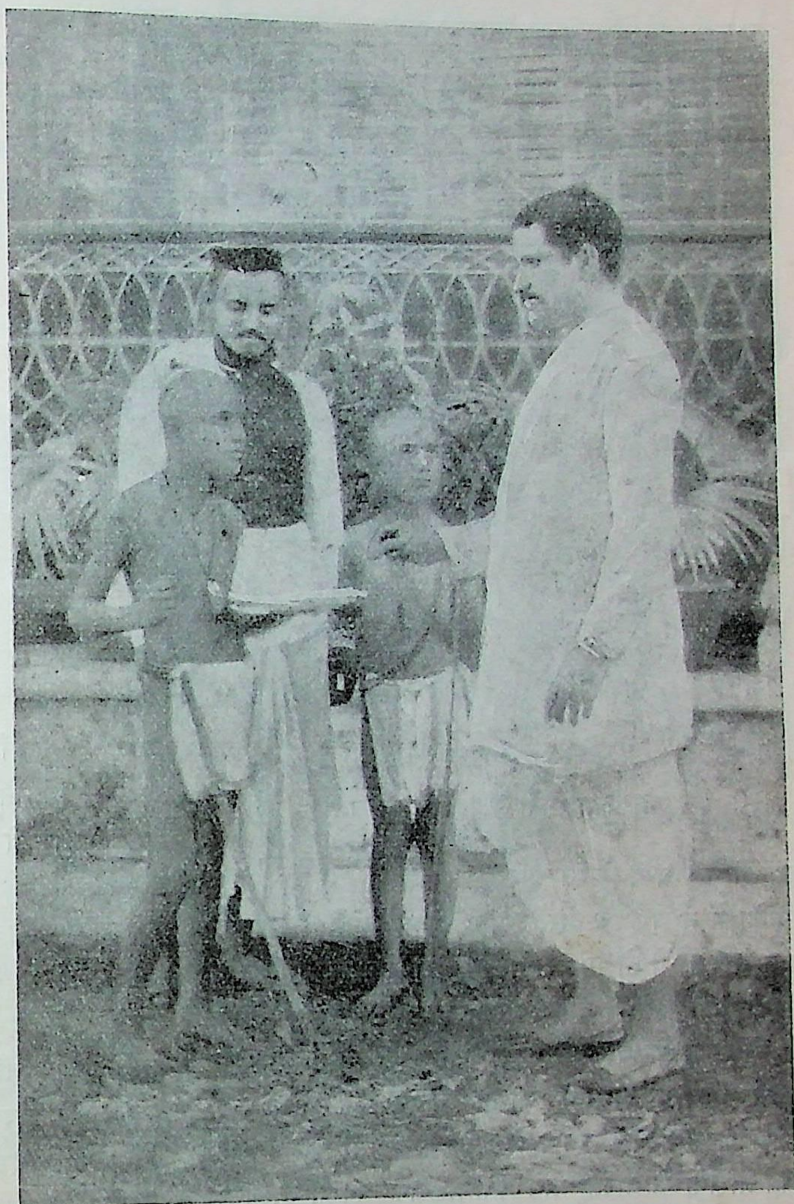
उनकी कामयाबी केवल क़िस्मत का खेल नहीं था। काम करने में रात और दिन का उन्होंने कभी ख़याल नहीं किया। काम है तो क्या रात क्या दिन उनके वास्ते एक है। शुरू वकालत में एक मुक़द्दमे में उनके साथ काल्विन भी वकील थे। उन्होंने मुक़द्दमे को हारू बताकर कह दिया कि वे बहस न करेंगे। मोतीलाल ने कई रातों तीन बजे

आराम करते और फिर झुटपुटा होते ही शहर के दौरे को जाते। ज़माना बड़ा ख़राब था, जनता डरी हुई थी। कितने ही आदमी डर के कारण घरों से नहीं निकलते थे। उनसे वे अँधेरे में जाकर घरों पर मिलते और उनके दुखों को सुनते और उन्हें कांग्रेस की तरफ़ से दिलासा और बढ़ावा देते।

काम वे कितना भी करें, मगर बीच-बीच में हँसी-ठट्ठा ज़रूर करते जाते थे। उनके मित्रों, उनके मुवक्किलों या अन्य मिलनेवालों में उनका ज़ोरों का 'क़हक़हा' लगाना बहुत मशहूर था और अब तक कितनों ही के कानों में गूँज रहा है।

(६)

दुनिया में सदैव उलट-फेर होता रहा है। जो बात आज प्रचलित है वह कल बदली जायगी और अपना समय पूरा होने पर उसमें भी कुछ परिवर्तन होगा। मगर परिवर्तन करनेवाले आदमी ही होते हैं। छुआ-छूत का दौर-दौरा हमारे अभागे देश में बहुत पुराना हो गया है। भगवान् बुद्ध, स्वामी दयानंद, गुरु नानक इत्यादि प्रयत्न कर चुके और गांधीजी अब कर रहे हैं। जब कोई चीज़ पुरानी हो जाती है तब हम उसमें कोई ऐब ही नहीं देखते। जब ग़ुलामी की रस्म प्रचलित थी तब आदमियों को मोल लेना या बेचना बुरा नहीं समझा जाता था। अब भी विवाह-संस्कार के पहले लड़कीवालों को दबाने या उन्हें नीचा दिखाने में कोई बुराई नहीं मानी जाती है। और अधिकतर उनसे कसकर वर का मोल लिया जाता है। फिर भी कुछ लोग ऐसे पैदा हो जाते हैं जिन्हें बुरी रस्मों में बुराई दिखने लगती



[भतीजों के जनेऊ में मोतीलाल भिक्षा दे रहे हैं—सन् १८६३]

है। वे सुधारक इस मानी में चाहे न हों कि उसके विरुद्ध लेक्चरबाज़ी करते फिरें, मगर उसे बदलने की अपने भरसक चेष्टा करते हैं। मोतीलाल उन्हीं आदमियों में एक थे।

अपने लड़कपन से ही उन्हें छुआ-छूत का आचार-विचार न था। कश्मीरी ब्राह्मण ठंडे मुल्कों के रहनेवालों में थे और अपने तरीक़े और अपनी रस्में वे साथ लेकर यहाँ



[मोतीलाल नेहरू पत्नी-सहित सन् १८८३]

में भी वे अगुआ थे। ज़बान से तो लोग पहले भी कहते आये थे और अब तक कहते जा रहे हैं कि खाने से धर्म नहीं जाता, किन्तु मोतीलाल ने उसे करके दिखाया। सुधार की पहली सीढ़ी तो ज़बान से कहना ही है, दूसरी सीढ़ी कर दिखाना है।

देखा गया है कि बिरादरी के झगड़े तब ज़ोर पकड़ते हैं जब घर से विरोध शुरू हो। यहाँ घर में विरोध न था। इतना ही नहीं, उनके बड़े उनकी इस हरकत से परिचित थे और उनकी माता तक ने कभी रोक-टोक नहीं की। हाँ, इतना उनसे अवश्य वादा करा लिया था कि उनके मरने पर विधिपूर्वक क्रिया-कर्म करेंगे और इस वादे को उन्होंने पूरा भी किया, यद्यपि वे क्रिया-कर्म में ज़ाहिरा विश्वास नहीं रखते थे।

बहुत दिनों तक बिरादरी की कुछ बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ जो मोतीलाल को अपने लड़कों-सा मानती थीं, इस बात की कोशिश करती रहीं कि वे इस 'अधर्म' के रास्ते को छोड़ दें, मगर

आ ही नहीं बसे, बरन उन्हें क़ायम भी रक्खा। ठंडे मुल्कों में ब्राह्मण के वास्ते मांस खाना कोई ग़ैरमामूली बात नहीं। यों तो मांस खाने का ब्राह्मण को गर्म मुल्कों में भी कहीं निषेध देखने में नहीं आया। महाभारत में तो लिखा है कि बड़े बड़े ऋषियों के वास्ते मांस पकाया जाता था और अगस्त्य जी तो आदमी के ही मांस को हज़म कर गये थे। रवाज ने आज-कल गर्म देशों में कहीं कहीं ब्राह्मण के वास्ते मांस खाना रोक रक्खा है, मगर ठंडे मुल्कों में आम तौर पर अब भी जारी है। मोतीलाल का खानदान मांसभक्षी था और वे भी मांस खाते थे, किन्तु वे खानदान से इस बात में निराले थे कि कच्ची रसोई किसी की भी छुई हुई हो, खा लेते थे और कभी इस बात के छिपाने की कोशिश नहीं की कि वे होटलों में खाते-पीते हैं। उनके बड़े भाई देखी को अनदेखी कर देते थे, क्योंकि वे स्वयं कट्टर-पन्थियों में न थे, तथापि खुद इस तरह होटल आदि में न खाते थे। छुआ-छूत तोड़नेवालों

घर में किसी बड़े-बूढ़े ने रोक-टोक करने की कोशिश तक न की। नन्दलाल के स्वर्गवास हो जाने के बाद भी नंदरानी ने कभी उनकी इस बात का विरोध नहीं किया। स्वयं वे मरते दम तक पुराने दस्तूरों पर डटी रहीं, परन्तु कहा यही करती थीं कि खाने-पीने से 'धर्म जा ही नहीं सकता'। वे अपढ़ गँवार नहीं थीं—पढ़ी-लिखी विदुषी थीं और पति के देहांत के बाद ही बहुत कुछ पढ़ा था। हाँ, अँगरेज़ी की शिक्षा उन्होंने बिलकुल नहीं पाई थी।

एक समय ऐसी घटना हो गई जिससे कश्मीरी बिरादरी में हलचल मच गई। यद्यपि वह कोई ऐसी बात नहीं थी जिसकी वजह से दो पार्टियाँ बनतीं, फिर भी कुछ फ़िसादी लोग खड़े हो गये और मक्खी को मल-मलकर भैंसा बना दिया। हर जगह ऐसे फ़िसादी मौजूद होते हैं। इस छोटी-सी बिरादरी में भी हैं। एक युवक जिनका नाम बिशननरायन दर था, विलायत पढ़ने की ग़रज़ से घर से चले गये। बस मानो आसमान टूट पड़ा।

कुछ बेकार किन्तु मालदार लोगों ने धर्म का झंडा फहरा दिया और 'धर्म-संकट में' की दोहाई देने लगे। उनके वास्ते इससे अधिक पाप का कोई काम ही नहीं हो सकता था कि कोई हिन्दू जहाज़ पर चढ़कर विदेश जाय, क्योंकि वहाँ ग़ैर मज़हब के लोगों के हाथ का छुआ खाना पड़ता है। अपने देश में ऐसे खाने-पीनेवालों की भी संख्या काफ़ी बड़ी हो चुकी थी, मगर दूसरों पर तो ज़ाहिर नहीं थी! उन्होंने बिशननरायन को धर्मच्युत समझ-कर उनके घर भर को बिरादरी से ख़ारिज कर दिया। हिन्दुओं ने सिवा ख़ारिज करने के अपने में मिलाना तो सीखा ही नहीं है। आर्य-समाज का ज़ोर कुछ भी न था। सौभाग्य से कुछ नवयुवकों ने उनका साथ दिया और दो पार्टियाँ बन गईं। मगर उस नई पार्टी ने भी बिशन-नरायन से प्रायश्चित्त कराया।

मोतीलाल नई पार्टी में सम्मिलित हुए और उनके बड़े भाई वंशीधर पुरानी में, जिसमें वे उस वक्त तक रहे जब तक ख़ुद विलायत-यात्रा को नहीं गये। आपस का यह झगड़ा बहुत दिन नहीं चला। शुरू में गरमा-गरमी काफ़ी रही। मोतीलाल जब एक बात ठान लेते तब किसी की परवा न करके उसे अपने ढंग पर पूरा करते। जो लड़कपन में अपने से बड़े लड़कों से भिड़ सकता हो, जो आगे चलकर बड़ी ताक़तवर गवर्नमेंट से टक्कर ले सकता हो, उसके वास्ते बिरादरी से ख़ारिज होने में कब डर था? इस नई पार्टी के लीडरों में से वे भी एक थे। उन्होंने यह तय किया कि नई पार्टी का कोई स्त्री या पुरुष, लड़का या लड़की पुरानी पार्टीवाले का छुआ पानी तक न पिये, यद्यपि चमार-पासी के हाथ का खाने-पीने में उसे संकोच न हो। इस बायकाट के कारण तसफ़िया जल्दी हो गया, क्योंकि इसकी वजह से बेटी माँ से अलग होने लगी और ऐसा बहुत दिन तक नहीं हो सकता था।



[मोतीलाल के पिता गंगाधर]

यह झगड़ा पूरी तरह तय भी न हो पाया था कि मोती-लाल स्वयं पत्नी और बच्चों के सहित योरप-यात्रा को चले गये। वहाँ से लौटने पर उनसे नई पार्टी के लीडरों ने कहा कि प्रायश्चित्त कर लें। उन्होंने साफ़ इनकार किया। कारण यह बताया कि "प्राय-श्चित्त तो भूल-चूक होने पर किया जाता है। जो बात मैंने की वह ठीक समझ कर की और आगे भी करूँगा"। इस इनकार पर सनसनी फैल गई और तीसरी पार्टी स्थापित हो गई। मगर छोटी-सी बिरादरी में पार्टीबन्दी चल नहीं सकती थी, शादी-ब्याह तो आपस में ही करने थे। उस वक्त तक अंतर्जातीय विवाह का किसी को खयाल तक पैदा नहीं हुआ था। ये तीनों पार्टियाँ आहिस्ता आहिस्ता फिर मिलकर एक हो गईं।

दूसरी बात जिससे उन्होंने बिरादरीवालों को नाराज़ किया, पर्दे को तोड़ना था। यों तो कश्मीरी स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं, किन्तु आपस में पर्दा न था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कोई भी कश्मीरी पुरुष बिरादरीवाले के घर में चला जा सकता था और उसी तरह स्त्रियों से बात-चीत कर सकता था, जैसे अपनी माँ-बहन या बेटी से। इतना ही नहीं। अगर किसी घर का एक नौकर, चाहे वह मुसलमान ही क्यों न हो, उस घर की स्त्रियों के सामने जाता हो और उनसे बात-चीत कर सकता हो तो वह किसी दूसरे कश्मीरी घर में भी बुला लिया जाता था। घूँघट काढ़ना तो उन स्त्रियों ने सीखा ही न था। कश्मीरी स्त्रियाँ पुरुषों से बात-चीत कर सकती थीं। यहाँ तक कि कभी ग़ैर कश्मीरी से साक्षात् हो जाता और उन्हें मालूम न होता कि वह कश्मीरी नहीं है तो उससे भी बेतकल्लुफ़ बात-चीत कर लेती थीं। मोतीलाल ने उन्हें बाहर सैर कराने ले जाना शुरू किया। पहले रात को, फिर दिन को भी जब कभी फ़ुर्सत होती, हवा खिलाने ले जाते। यह रवाज के ख़िलाफ़ था और बहुत से बुज़ुर्ग नाराज़ हो गये। जो कोई भी रवाज के ख़िलाफ़ बात करेगा वह नक्कू है ही। किन्तु युवकगण जो चाहे उनके कड़े स्वभाव से उनसे नाराज़ रहते हों, उनकी नक़ल करने में ही गौरव समझते थे।

इसका एक बहुत ही दिलचस्प उदाहरण सुनिए। जहाँ मोतीलाल के और पचासों शौक़ थे, वहाँ गरमी में बहुत ही ठंडा पानी पीने का भी शौक़ था। पैसे की कमी न थी, नौकर बहुत ज़्यादा बर्फ़ गिलास में डालकर पानी लाता। पानी बर्फ़-सा ठंडा हो जाने पर भी उसमें बहुधा बर्फ़ बच रहती। वे उसे उगालदान में उलट देते। एक दफ़े एक नये ग्रेजुएट जो उनसे बातें कर रहे थे, बर्फ़ को फेंकते देखकर समझे कि यही लेटेस्ट फ़ैशन है। शाम को उन्होंने कटरे के बाज़ार में लेमोनेड की एक बोतल खोलवाई और बर्फ़ डलवा कर बिना उसके ठंडे होने का इन्तज़ार किये पी गये और जो बर्फ़ बची उसे नाली में फेंक दिया। एक मित्र वहीं खड़े थे। उनके पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि "लेटेस्ट फ़ैशन यही है"। मित्र महोदय मोतीलाल के रोज़ के मिलनेवालों में थे। वे हँसकर चुप हो गये।



नंदरानी

समाज से वे सदैव ही टक्कर लेते रहे और देर-सवेर जीत उन्हीं की होती। जब तक समाज उनकी एक बात को ग्रहण करता, वे दूसरा क़दम ले चुके होते। यहाँ तक कि अपनी वृद्धावस्था में उन्होंने सबसे बड़ी टक्कर यह ले डाली कि ग़ैर कश्मीरी घर में अपनी प्रिय पुत्री का विवाह कर दिया। उनके एक मित्र भी पहले ऐसा कर चुके थे। अभी तक समाज इस बड़े परिवर्तन को पूरी तरह ग्रहण करने को तैयार नहीं हुआ है। अतएव ऐसा होते देखकर वह चका-चौंध रह गया है। मगर रास्ता खुल गया है और ख़ुशी या नाराज़गी से समाज इस कड़वे घूँट को निगल रहा है।



[खेतड़ी के दीवान नंदलाल]

(१०)

नंदलाल के साथ ही मोतीलाल भी इलाहाबाद शहर की एक गली में रहते थे। वह मुहल्ला अब तोड़ा जा चुका है और उस मकान की जगह जिसमें उनका लड़कपन कटा था, अब मुहम्मदअली-पार्क बना हुआ है और उसमें मोटरें घूमा करती हैं। मगर वह घर जिसमें नंदलाल का पहले दफ़्तर था और देहान्त भी हुआ था, अभी तक क़ायम है। उसी दफ़्तरवाले मकान में मोतीलाल १८९२ तक रहे। सन् १८८७ और १८९२ के बीच में वकालती दुनिया में उन्होंने बहुत बड़ा यश पा लिया था। काम हाथ में बहुत होने पर भी वे कचहरी से लौटकर उसी दफ़्तरवाले घर की छत पर पतंग भी अक्सर उड़ाया करते थे। शाम को हिन्दुस्तानियों के क्लब में जाते; वहाँ टेनिस बिलयर्ड के खेल में कुछ देर दिल बहलाया करते।

सन् १८९२ में उन्होंने शहर की गली से उठकर सिविल लाइन्स में बँगले में रहने का विचार किया। उस समय इलाहाबाद में बँगलों में हिन्दुस्तानी इने-गिने ही रहा करते थे। अयोध्यानाथ भी कुछ वर्ष पहले एक बँगले में उठकर गये थे, मगर थोड़े ही दिन पीछे फिर शहर में वापस आ गये थे। इस वजह से मित्रों ने बँगले में उठ जाने की सलाह नहीं दी। उनका ख़याल था कि शहर से दूर मुवक्किलों को जाने में दिक्क़त होगी और वकालत में कमी हो जायगी। मगर मोतीलाल ने इसकी परवा न की, क्योंकि वे किसी दिक्क़त का सामना करने से नहीं डरते थे। सिविल स्टेशन में उठ जाने से वकालत को कोई हानि नहीं पहुँची, बरन वह रोज़ बढ़ती ही गई।

सिविल लाइन में चले जाने पर पतंग का शौक़ छूट गया, क्योंकि चारों तरफ़ पूरे या आधे अँगरेज़ रहते थे। अपना क्लब क़रीब था, वहाँ बिलियर्ड खेलने जाया करते, मगर घर में ही टेनिस का प्रबंध कर लिया। मकान का हाता बहुत बड़ा था। टेनिस खेलने बहुधा मित्रगण वहीं आने लगे। और आते क्यों न? क्लब में चंदे के गेंदों से खेलना होता था। यहाँ मुफ़्त के ही गेंद मिलते थे। और ऊपर से मज़ा यह भी था कि सोडा-लेमोनेड, चाय-पानी सबका प्रबंध क्लब से अच्छा था, दस्तख़त भी नहीं करने पड़ते थे और न महीने के ख़त्म होने पर बिल आने का ही डर था।

उस ज़माने में आज-कल जो बाइसिकलें प्रचलित हैं, नई नई चली थीं। पहले वे ठोस टायर की होती थीं। फिर न्यूमेटिक टायर्स निकले। बाईसिकल पर चढ़ने का शौक़ यहाँ आकर पैदा हुआ। यद्यपि बाइसिकल पर चढ़ना सिखानेवाले की ज़रूरत नहीं होती और इस बात को वे जानते थे, फिर भी एक अँगरेज़ उन्हें सिखाने के वास्ते रक्खा गया और कितने ही मित्रों ने उन्हीं के साथ बाइसिकल पर चढ़ना सीखा। गाड़ी-घोड़े घर में मौजूद थे, मगर वे शाम को सैर करने बाईसिकल पर ही जाते। स्वर्गीय सुन्दरलाल और उनके छोटे भाई बलदेवराम दवे भी बहुधा बाइसिकल पर ही सैर को उनके साथ निकला करते। मगर यह शौक़ बहुत दिन क़ायम न रहा। मोटरकार निकल आई

और इलाहाबाद में सबसे पहली मोटरकार उन्होंने मँगाई। उसका शौक़ पैदा होते ही बेचारी बाइसिकल कूड़े में जा पड़ी। मोटरों की मँहगाई का खयाल भी दिमाग़ में न घुसा। बाइसिकलें भी सस्ती न थीं। आजकल की तरह पच्चीस या पचास रुपये में कोई बाइसिकल नहीं मिलती थी। अच्छी बाइसिकल के वास्ते ४ या ५ सौ देने पड़ते थें, मगर उनके वास्ते वह कूड़े के समान हो गई। शौक़ जाता रहा था। यह नहीं था कि उनके पास पैसा बहुत जमा हो गया था, मगर वे जमा करने की फ़िक्र ही नहीं करते थे। उनका उसूल शायद यह था कि 'जमा किया तो दूसरे का, खर्चा तो अपना'।



[पिता-पुत्र (सन् १९१३ में)]

इतना ही न था कि वे पैसा अपने ऊपर या अपने कुटुंब पर खर्च करते, मित्रों पर भी उसी खुले हाथ से खरचते थे जैसा अपने ऊपर। उनके मित्र बहुत थे, जैसे शायद हर पैसेवाले के होते हैं, मगर तीन सज्जन उनके गहरे मित्रों में थे। ये लोग रोज़ शाम को अपने कामों से .फ़ुर्सत पाकर उनके घर पर आ बैठते और शायद ही कोई दिन ऐसा होता जब नौ बजे रात के पहले वे घर जाते हों और अधिकतर तो ११ बजे जाते थे।

मोतीलाल के पास वकालत का काम बहुत था और वे टेनिस खेलने के बाद साढ़े आठ या नौ बजे रात तक मुवक्किलों से घिरे रहते। इस बीच में ये तीनों मित्र उनके ख़ास कमरे में बैठकर ह्विस्की पिया करते और एक बोतल तो ज़रूर ही ख़र्च हो जाती। उन्हें .खुद भी पीने की आदत थी, मगर वे खाने के पहले एक या दो पेग पिया करते थे। मित्रों के रोज़ एक या .ज्यादा बोतलें साफ़ कर देने पर उनके माथे पर कभी बल तक न आता, बल्कि नौ बजे के बाद भी वे उन्हें भोजन खिलाने के वास्ते बहुधा रोक लिया करते थे।

अँगरेज़ी तर्ज़ के रहन-सहन का, खान-पान का उन्हें शौक़ था, मगर पुराने तरीक़े भी पूरी तरह नहीं छोड़ देना चाहते थे। नतीजा यह था कि उनके घर में दोनों तरह का इन्तज़ाम रहा करता था। एक तरफ़ ब्राह्मण रसोंइया रसोई बनाता तो दूसरी तरफ़ खानसामा अँगरेज़ी तरह के खाने पकाता। आये दिन वे मित्रों को खिलाते रहते। अँगरेज़ों को पार्टी देने का भी काफ़ी शौक़ था और आज तक उनकी वे पार्टियाँ मशहूर हैं जिनमें अँगरेज़ बैरिस्टरों या हाकिमों और उनकी आड़ में हिन्दुस्तानी वकील-बैरिस्टरों इत्यादि ने हज़ारों रुपये की शैंमपेन पी डाली।

पहले-पहले अँगरेज़ों को पार्टी देने का शौक़ उन्हें जब पैदा हुआ जब वे भारद्वाज पर अपना मकान ख़रीद कर उसमें रहने लगे थे। उन्होंने अपने अँगरेज़ मित्रों से इस बात की चर्चा की तब उन्होंने कहा कि हमारा दस्तूर है कि जब तक हम पर 'काल' न करो, हम दावत मंज़ूर नहीं कर सकते। उस ज़माने में ३ बजे तीसरे पहर 'काल' करने का क़ायदा था। वही उन्हें बताया गया। उसे सही मानकर वे दोपहर की गरमी में अँगरेज़ों के घर कार्ड छोड़ते फिरे। मगर जब कार्ड दावत के गये तब उन्हीं लोगों ने अपने उन मित्रों के वास्ते जिनको उन्होंने 'काल' नहीं किया था, ख़त लिखकर कार्ड मँगाये। उसी दफ़े नहीं, बरन हर एक अगली दावत में लगभग पाँच सौ कार्ड अँगरेज़ों को जाया करते थे। हिन्दुस्तानी मित्र भी बुलाये जाते और कट्टर पंथियों के वास्ते देशी मिठाई का इन्तज़ाम भी होता था। जिन अँगरेज़ मित्रों से ज़्यादा परिचय था वे देशी मिठाई भी माँग लेते। पहली ही दावत के बाद वे जान गये थे कि अँगरेज़ के खिलाने के वास्ते इस बात की ज़रूरत नहीं कि वे 'काल' किये जायँ।

आज-कल इलाहाबाद में अँगरेज़ बहुत कम हैं, मगर जितने भी हैं उन्हें पार्टियाँ मिलती ही रहती हैं। मगर अँगरेज़ी क़िस्म की पार्टियाँ तो अब बहुत ज़्यादा प्रचलित हैं। क़ायदा यह हो गया है कि किसी ठेकेदार को ठेका दे दिया और स्याह या सफ़ेद होना उसी पर छोड़ दिया। मगर उनका यह क़ायदा न था। वे कुल इन्तज़ाम अपनी ही निगरानी में कराते। यहाँ तक कि जब कभी वे डिनर देते तो मेज़ पर फूल सजाने तक का बंदोबस्त ख़ुद ही करते। उन्होंने खाने और खिलाने का शौक़ अपनी माता से तरके में पाया था।

(११)

हिन्दू रवाज के अनुसार जो कोई भी छुआछूत को हिन्दू-धर्म का एक मुख्य अंग न माने, जो होटलों में कुजाति या विधर्मियों के हाथ का छुआ खाना-पीना खा पी ले, जिसे शराब तक पीने में संकोच न हो, जो देवी-देवताओं की उपासना न करे, जो गंगास्नान में कोई महत्त्व न माने, वह हिन्दू है ही नहीं। कम से कम मोतीलाल के ज़माने में यही रवाज था। एक उदाहरण लीजिए। एक कश्मीरी पंडित उसी ज़माने में थे, जिन्होंने किसी ग़लती से एक मुसलमान का छुआ भोजन कर लिया था। यह उनके वास्ते ऐसी घटना थी जिससे वे अपने तईं ख़ुद भ्रष्ट समझने लगे थे। इस घटना के बाद उन्होंने अपने ही घर में बर्तन-भाँडा तक नहीं छुआ और खाने के समय वे अपनी थाली डेवढ़ी पर रख देते थे, जिसमें घर की कोई स्त्री और कभी कभी उन्हीं की पत्नी खाना दूर से परोस देती थी। उनकी स्त्री भी उन्हें विधर्मी समझती और मरते दम तक समझती रही। इसके थोड़े ही दिनों के अन्दर और उनके जीते-जी न केवल मोतीलाल बरन और कितने ही सज्जन छुआछूत को तोड़ बैठे, मगर उन्होंने अपना वही दस्तूर रक्खा। आदत तो बड़ी ज़बर्दस्त चीज़ है।

जब आप कोई नई बात करें तो पहले लोग मज़ाक उड़ाते हैं, किन्तु हलके हलके वही करने लगते हैं। जब मोतीलाल को कुजातियों के हाथ का छुआ खाते देखते तो हज़ारों ही उँगलियाँ उनके तरफ़ उठतीं। कुछ दिनों में लोग वही बात छिपकर करने लगे और अब खुले-ख़ज़ाने लाखों आदमी वैसा करते हैं। मगर उस वक़्त अँगरेज़ तक उन्हें बेधर्म समझते थे। एक मुक़द्दमे में मोतीलाल जज बरकिट के सामने बहस कर रहे थे। किसी नाम पर उसने कहा कि ब्राह्मण के नाम में 'लाल' शब्द नहीं होता। इस पर इन्होंने उदाहरण के वास्ते 'सुन्दरलाल

और अपना' नाम बताया और कहा कि हम ब्राह्मण हैं। वह हँसकर बोला "Ah! you are an instance in point!"

लोग उन्हें रवाज के अनुसार चाहे जो भी कहते हों मगर वे अगर किसी धर्म को मानते थे तो हिन्दू-धर्म को चाहे इस बात को वे ख़ुद स्वीकार न करते हों। ख़ुद वे हिन्दू-धर्म की कितनी ही बुराई करें, मगर दूसरों के सामने उसके गुण ही बताते थे। एक दफ़े योरप-यात्रा में एक बड़े पादड़ी से जहाज़ पर भेंट हो गई। उसने यह देखकर कि एक हिन्दू सबके हाथ का छुआ खाता-पीता है और फिर भी ईसाई नहीं है, ईसाई-मत की बड़ाई करनी शुरू कर दी। उसने कहा कि "देखो, हिन्दू लाखों देवताओं को पूजते हैं और ऐसे गँवार हैं कि पत्थर की भयानक मूर्तियाँ बनाते हैं और उनके सामने हाथ जोड़ते हैं"।

इन्होंने उत्तर में कहा कि हिन्दू वास्तव में एक ही परमेश्वर को मानते हैं और उसी की उपासना करते हैं, परन्तु सब ही तो समझदार नहीं हो सकते। इस वास्ते हिन्दू ऋषियों ने इन मूर्खों के वास्ते मूर्तियाँ बनवा दी हैं और उन्हें तरह तरह की शकलें दी हैं। उनमें कुछ भयानक भी बनाई हैं और पाप-मार्ग पर चलनेवालों से कहा है कि तुम्हारे वास्ते परमेश्वर भयानक मूर्तियों की तरह भयानक हो जायगा।

कुछ देर बहस के बाद वह कहने लगा कि "हाँ यह हो सकता है। इस पहलू पर मैंने विचार नहीं किया था।"

अपनी माता के मरने पर क्रिया-कर्म विधि-पूर्वक उन्होंने किया। यह कहा जा सकता है कि वे श्रद्धा बग़ैर भी ऐसा कर सकते थे, क्योंकि उनकी माता की यह आख़िर चाहना थी। मगर यदि उन्हें इसमें बिलकुल श्रद्धा न थी तो अपने मरते समय उन्होंने अपना क्रियाकर्म करने की मनाई क्यों न कर दी। वे जानते थे कि यह उनकी आख़िरी बीमारी है, जिससे वे अच्छे न होंगे, मगर एक दफ़े भी अपने क्रिया-कर्म की रोक-थाम के बारे में एक शब्द भी न बोले। इतना ही नहीं, लेखक के सामने की बात है कि एक मित्र ने जिसकी उन्हें बड़ी क़द्र थी, पूछा कि आपको गायत्री याद है, उन्होंने कहा, हाँ और सुना दी।

अपने पुत्र जवाहरलाल का जनेऊ बड़ी धूमधाम से किया। उस जनेऊ में और फिर उनके और उनकी छोटी बहन के विवाह के समय सारे ही संस्कार शास्त्र के अनुसार किये गये। अगर श्रद्धा नहीं थी तो क्यों इसमें परिवर्तन नहीं किया? जिस आदमी को इतनी हिम्मत हो कि रहन-सहन, खान-पान में रस्म-रिवाज तोड़ सके उसके वास्ते यह नहीं कहा जा सकता कि उसने दुनिया से डरकर कोई भी बात की हो। अपनी पुत्री का विवाह तक उन्होंने जाति के बाहर किया, किन्तु उसमें भी शास्त्र के अनुसार सब संस्कार किये।

जो भी हो! कम-से-कम देखनेवाला यह कह सकता है कि उन्हें हिन्दू-धर्म में पूरा विश्वास था। यह सच है कि वे उस धर्म की अधिकांश बातों को ढोंग बताते थे जैसी कि वे वास्तव में हैं भी।

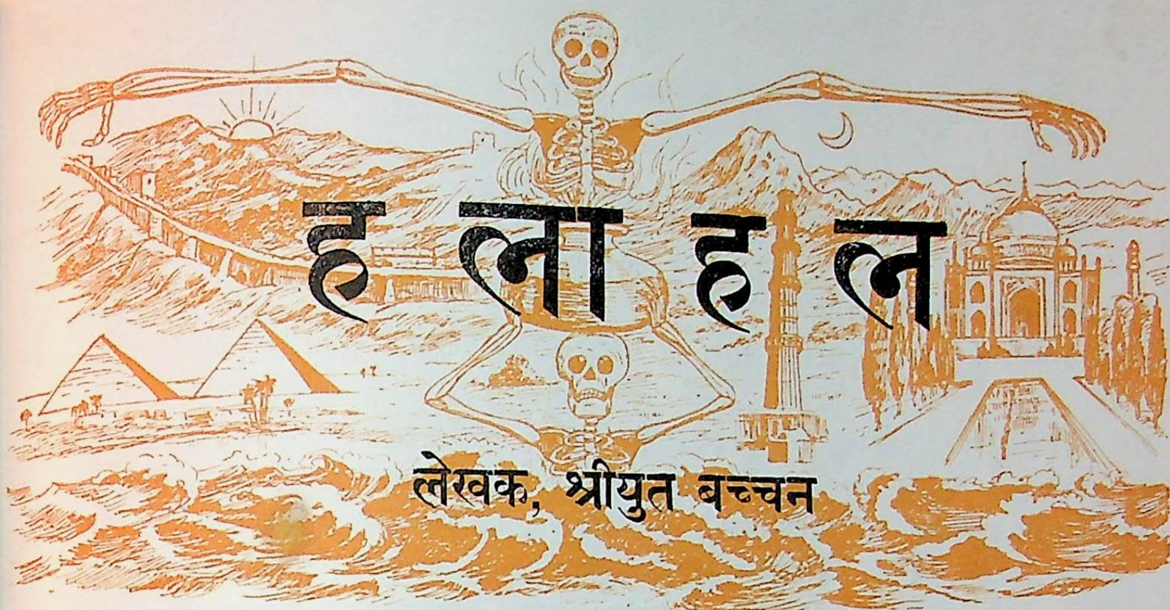
[आगामी अंक में समाप्य

मधु-वात

लेखक, श्रीयुत 'सूर्य'

विहग-बाला-सी, री! गतिमान्।
व्यर्थ कर 'अथ', 'इति'-का पट तान!
स्मरण-पट कर धूमिल- अज्ञान!
'आज'-को, कल कर देती हो म्लान!
वायु! क्यों बहती हो सुनसान!
कहाँ जाती हो बन महमान!

तुहिन-कण-सी बिखराती प्रात!
अश्रु-दल पल ढलकाती गात!
जीर्ण तरु की क्षणभङ्गुर-सी पात!
लहर-सी लोल! स्वयं अज्ञात!
समय के पंख लगा 'दिन-रात'!
कहाँ उड़ जाती हो 'मधु-वात'!



(१)

जगत-घट को विष से कर पूर्ण किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उसके मुख पर, नारि ! तुम्हारे अधरों का मधु-सार।
नहीं तो कब का देता तोड़ पुरुष विष-घट यह ठोकर मार,
इसी मधु का लेने को स्वाद, हलाहल पी जाता संसार !

(२)

विजय करके सारा संसार न जिनको हो सकता था सब्र,
न करवट लेने की भी एक जगह उनको देती है क़ब्र !
वही भुजदंड सके जो तोड़ गढ़ों की गर्वीली दीवाल,
न सकते पतली, छोटी, क्षीण शिला अपने ऊपर से टाल !

(३)

कहाँ है अब नृप औरँगज़ेब ? कहाँ उसकी नंगी तलवार ?
कहाँ अब उसका क्रोध कराल, कँपा जो देता था संसार !
एक मिट्टी-पत्थर की क़ब्र ढक रही उसका आज शरीर,
बता करती उसका उपहास बंद है इसमें 'आलमगीर'*।

(४)

किसी ने बनवाया भी ताज किसी की यदि रखने को याद,
न क्या हो जायेगा वह जीर्ण, न क्या हो जायेगा बर्बाद !
ताज का एक-एक पाषाण कहा करता दिन-रात पुकार—
मुझे खा जायेगी दिन एक इसी यमुना की भूखी धार !

---

* आलमगीर औरंगज़ेब का दूसरा नाम था। शाब्दिक अर्थ आलमगीर का है दुनिया भर को पकड़नेवाला।

(५)

एक दिन दृढ़ चीनी दीवार गिरेगी गिर कर होगी क्षार !
धरा-लुंठित होगी दिन एक कुतुब की नभचुंबी मीनार !
धँसेंगी मरु में मिश्र-समाधि, किसी दिन कुटिया तनिक विचार,
अर्थ क्या रखता गिरना सोच मचाना तेरा हाहाकार !

(६)

एक दिन काल प्रबल के हाथ हिमाचल के धर स्कंध विशाल,
एक झटके में नस-नस तोड़ धरा पर धम से देंगे डाल !
रजत का उसका मुकुट विराट बनेगा रज के कण का ग्रास !
लिखा जाते मानव सम्राट् शिलाओं पर अपना इतिहास !

(७)

एक दिन हंस-कमल-युत दीर्घ सरोवर होंगे जल से हीन !
करेंगी 'प्यास-प्यास' दिन एक जगत की नदियाँ होकर दीन !
एक दिन काल-अग्नि-शर चंड सोख लेंगे सागर गंभीर !
कौन-सी गिनती में, नादान ! तुम्हारी आँखों का यह नीर !

(८)

एक दिन बुझ जायेगा सूर्य प्रकाशित जिससे सब संसार !
एक दिन बुझ जायेगा चाँद निशा का सुंदरतम श्रृंगार !
एक दिन बुझ जायेंगे दीप गगन के सब, खद्योत, विचार,
अर्थ क्या रखता बुझना सोच मचाना तेरा हाहाकार !

(९)

एक दिन चिर-विनाश की श्वास फूँक देगी सब वेद-पुराण !
फूँक देगी पावन इंजील ! भस्म कर देगी पूत कुरान !
राख होंगे, सब, कवि सम्राट् ! तुम्हारे गौरव-काव्य-किरीट !
हमारी तुकबंदी के हेतु बहुत होंगे लघु-लघु कृमि कीट !

(१०)

प्रतिक्षण देख हमारा नाश अधर पर अमरों के मुस्कान,
अमरता का करती अभिमान मर्त्य के स्वप्नों की संतान !
तुम्हारी सत्ता ही क्या, देव ! मुझे कहना कुछ और महान,
न रह जायेगा जिस दिन भक्त नहीं रह पायेगा भगवान !

(११)

उठाने में होंगे असमर्थ लेखनी जिस दिन कवि-कर-क्षीण,
उसी दिन होगी शत-शत खंड गिरे ! गिर तेरे कर की बीन !
कल्पना-कवि-रवि-रश्मि-प्रकाश पड़ेगा जग में जिस क्षण मंद,
उसी क्षण तेरे नीरज-नेत्र कमल-वन-चारिणि ! होंगे बंद !

(१२)

मिटा ज्यों-ही रजनी-पति चन्द्र अमित हिम-किरणों का आगार,
जहाँ सूखी शिव-सिर-आसीन सदा-शीतल सुरसरि की धार,
गरल बदला लेने के हेतु करेगा तैयारी तत्काल,
उफन उर से ऊपर की ओर विदारेगा शंकर का भाल !

(१३)

इधर है मरुथल-शून्य अनादि उधर है लय-मरुदेश अनंत,
बसा है इन दोनों के बीच एक लघु कण पर सृष्टि-वसंत !
एक लघु क्षण ले कोकिल कूक, चतुर्दिक आँधी के आसार,
एक लघु कंपन भर की देर, मरुस्थल होता एकाकार !

(१४)

'अचल' ! रे 'अचल' नहीं, गिरि-शैल, 'अचल' है चलने का व्यापार,
मिला जिसको है 'अचला' नाम, रही है ढो जीवन का भार !
नहीं अक्षय अक्षय-वट वृक्ष, एक अक्षय है क्षय निःशेष।
'अमर' ! ओ 'अमर' नहीं सुर-देव, अमर है मरने का संदेश !

(१५)

सभी जब हो जायेगा नष्ट, मरेगा भूखों काल महान !
दैव एकाकीपन से ऊब तजेगा आत्मघात कर प्राण !
शून्य में उठ-उठ नीरव नाद करेगा प्राप्त अनंत विकास—
प्रलय, लय, नाश ! प्रलय-लय-नाश ! प्रलय, लय, नाश ! प्रलय-लय-नाश !

'मधुशाला' के समान मैं 'हलाहल' पर भी चतुष्पदियों में एक 'तुकबंदी' लिख रहा हूँ। पूरी रचना में सम्भवतः सौ-सवा सौ से ऊपर पद रहेंगे। अब तक रचे हुए पदों में से कुछ चुनकर 'सरस्वती' के लिए भेज रहा हूँ। यहाँ लिये गये सभी पद अक्रम हैं। पूर्ण रचना पुस्तक-रूप में यथासमय प्रकाशित की जायगी।

—बच्चन

शेक्सपियर की जन्म-भूमि



लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

शेक्सपियर का जन्मस्थान अँगरेज़ी के साहित्यिकों और साहित्यप्रेमियों के लिए तीर्थ हो रहा है। अँगरेज़ी-साहित्य से विशेष अनुराग होने के कारण हमारे इस लेख के लेखक महोदय भी इँग्लेंड की यात्रा करने पर शेक्सपियर की जन्म-भूमि बिना देखे न रह सके। इस लेख में आपने अपने उसी आनन्ददायक अनुभव का वर्णन किया है।



स्ट्रेटफ़ोर्ड-आन-एवन को देखने की मुझे बहुत दिनों से लालसा थी। आख़िरकार दो मित्रों को जिनके पास मोटर थे, वहाँ चलने के लिए राजी किया और हम लोग एक दिन सुबह शेक्सपियर की जन्म-भूमि की ओर चल दिये। लन्दन से स्ट्रेटफ़ोर्ड लगभग ९० मील है। लेकिन इँग्लेंड में बहुत अच्छी सड़कें होने के कारण मोटर में यात्रा करना बहुत सुहावना लगता है, और फिर चारों ओर की प्रकृति और गाँव तो सचमुच बहुत ही सुन्दर थे। घास के ऊँचे-नीचे मैदान जिन पर जगह जगह हरे हरे वृक्ष शोभायमान थे, बड़े चित्ताकर्षक प्रतीत हुए। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो प्रकृति ने स्वयं चारों ओर अपना सुन्दर बाग़ लगाया है। मार्ग में बहुत-से गाँव पड़े, जिनमें यात्रियों के लिए सब प्रकार की सुविधायें थीं।

लगभग तीन घण्टे में हम लोग स्ट्रेटफ़ोर्ड पहुँचे। सबसे पहले तो पेट-पूजा करने की सूझी। पास के ही एक केफ़े में गये और सबने अपनी भूख शान्त की। लेकिन बिल देखने पर बड़ा क्रोध आया। यहाँ तो लन्दन से भी दुगुना दाम ले लिया! स्ट्रेटफ़ोर्ड में यात्रियों की भरमार रहती है, इसलिए लोगों को अधिक से अधिक दाम लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता।

अपना अपना बिल चुकाकर हम लोग शहर घूमने निकले। सबसे पहले शेक्सपियर की मूर्ति के दर्शन किये। यह सड़क के किनारे एक पार्क में है। दो साल हुए, यह मूर्ति इस स्थान पर स्थापित की गई थी। इसके पास ही शेक्सपियर के नाटकों के चार मुख्य पात्रों की भी मूर्तियाँ हैं। कुछ ही दूर पर एवन नदी बहती है। मैं कुछ देर तक इस प्रतिमा को ग़ौर से देखता रहा, और मेरे मन में कई विचार आये। मनुष्य अपनी स्मृति को स्थायी बनाने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के यत्न करते हैं। शाहजहाँ ने अपनी प्रेयसी की यादगार के लिए कितना सुन्दर ताजमहल बनवाया! मिस्र-देश के प्राचीन बादशाहों ने अपनी स्मृति स्थायी करने के लिए विशाल पिरामिड बनवाये। लेकिन ये कब तक क़ायम रहेंगे? शेक्सपियर की मूर्ति भी चिरस्थायी नहीं है। किन्तु क्या उसका नाम मिट सकता है? साहित्य और कला के प्रति मनुष्यों का कैसा आदरणीय भाव है, यह विचार कर मुझे बहुत आनन्द हुआ।

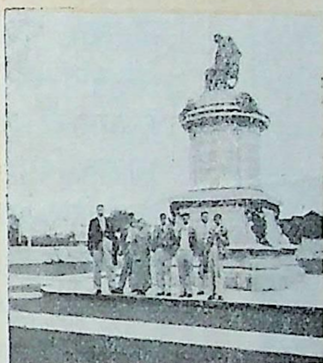
शहर में कुछ दूर चलकर हम लोग शेक्सपियर के जन्मस्थान पर पहुँचे। टिकट लेकर अन्दर गये और इस प्राचीन घर की पुरानी चीज़ें देखने लगे। इस बड़े मकान के दाहने भाग में शेक्सपियर के



(१) शेक्सपियर का जन्मस्थान



(२) एनहेथवे का कुटीर



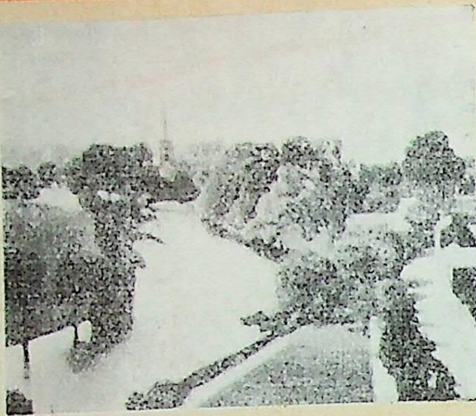


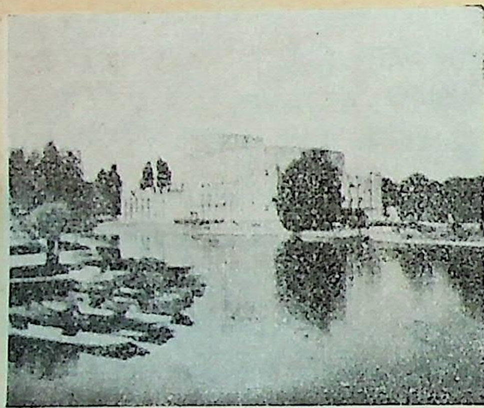
(३) शेक्सपियर की मूर्ति के पास लेखक की पार्टी

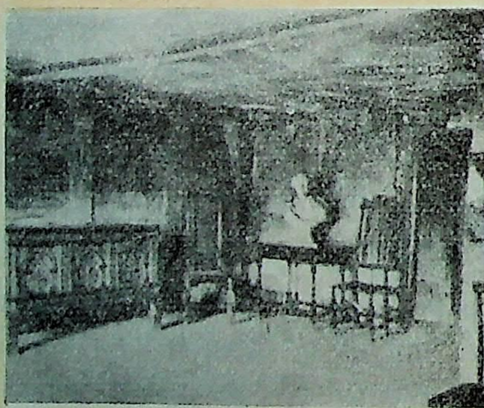
(४) ट्रिनिटी गिर्जा जिसमें शेक्सपियर की क़ब्र है।

माता-पिता रहते थे। उसके सम्बन्ध में बहुत-से काग़ज़ और किताबें रक्खी हुई थीं। उन सबको ग़ौर से देखने और पढ़ने का तो समय नहीं था, किन्तु कमरे का वातावरण बहुत ही विचित्र था। मकान के बाईं ओर ऊपर वह कमरा है, जहाँ शेक्सपियर का जन्म हुआ था। उसमें इन महान् कवि और नाट्यकार की एक मूर्ति रक्खी हुई है। इस कमरे में मैं कुछ देर तक खड़ा रहा। "क्या सचमुच इसी छोटे से कमरे में इतना प्रसिद्ध साहित्यिक पैदा हुआ था?" मैंने सोचा। मैं मूर्ख की भाँति सोचने लगा कि शायद इस कमरे में कुछ देर रहने से मुझमें भी शेक्सपियर का कुछ चमत्कार आ जाय। लेकिन अधिक समय तक वहाँ खड़े रहने से तो लोग मुझे पागल ही समझते। चुपचाप बाहर निकलकर पीछे के सुन्दर बाग़ में चला गया। कुछ देर बाद और मित्र भी आ गये और हम सब लोग न्यू प्लेस म्यूज़ियम और नेश के घर की ओर चल दिये।

यहाँ भी टिकट लेना पड़ा। हर जगह जेब से दाम निकालना बुरा लगने लगा। लेकिन यह स्थान बिना देखे ही वापस जाना तो मूर्खता थी। शेक्सपियर की नातिन ने टामस नेश से विवाह किया था और इस मकान में बहुत दिनों तक रही थी। इस मकान के कुछ भाग चार सौ वर्ष पुराने







(१) एवन नदी के तट का दृश्य।
(२) शेक्सपियर मेमोरियल थियेटर।
(३) इस कमरे में शेक्सपियर ने जन्म लिया था।

हैं। इसमें एँग्लो-सेक्सन-काल की पुरानी चीज़ें रक्खी हुई हैं। शेक्सपियर के नाटकों के कुछ अभिनेताओं, विशेष कर गैरिक-सम्बन्धी चित्र भी यहाँ रक्खे हुए हैं। इस मकान के पीछे शेक्सपियर का भी मकान था, जिसकी अब केवल नींव ही रह गई है। कहा जाता है कि शेक्सपियर की मृत्यु के बाद इस मकान में एक पादरी रहता था। जब बहुत-से लोग कवि की स्मृति के लिए उस मकान को देखने आते तब उस पादरी को बड़ा बुरा लगता। जिस मनुष्य के नाटक बाइबिल के बजाय पढ़े जाने लगे थे उसकी यादगार बनाये रखना पादरी महोदय के लिए पाप था। इसलिए एक दिन क्रोध में आकर उन्होंने शेक्सपियर के पुराने घर को गिरवा दिया। हमारे गाइड ने ही यह बात बतलाई, और अन्त में मुस्कराकर बोला—"भाग्य से वह पादरी कुछ समय बाद शहर से निकाल दिया गया। नहीं तो शायद वह उस मकान के ये चिह्न भी न रहने देता।" उस मकान में शराब का तहख़ाना और एक कुआँ अब भी बना हुआ है। उस कमरे की नींव जिसमें शेक्सपियर ने अपना अन्तिम नाटक 'टेम्पेस्ट' लिखा था, अभी तक ठीक बनी हुई है। घर के पास एक शहतूत का पेड़ है। कहा जाता है कि इस वृक्ष के पूर्वज को शेक्सपियर ने स्वयं लगाया था। मकान के एक ओर दो सुन्दर बाग़ हैं, जहाँ यह महान् कवि और नाट्यकार किसी समय टहला करता था। पास ही वह पुराना 'ग्रामर-स्कूल' जिसमें शेक्सपियर ने बचपन में शिक्षा पाई थी, अभी तक चला जा रहा है। स्कूल के बाहर का हिस्सा लकड़ी का बना हुआ है, जो अब बहुत पुरानी पड़ गई है। शेक्सपियर को तो शायद इस स्कूल में पढ़ना पसन्द नहीं था, लेकिन स्कूल के आज-कल के विद्यार्थी सचमुच अपने को बड़ा भाग्यवान् समझते होंगे।

इसके पश्चात् हम लोग ट्रिनिटी-चर्च देखने गये, जहाँ शेक्सपियर और उसके कुनबे की समाधियाँ हैं—उसकी और उसकी स्त्री, लड़की, दामाद और

टामस नेश की। शेक्सपियर की क़ब्र के पास ही दीवार पर कवि की एक स्मारक मूर्ति बनी हुई है। इसी गिर्जे में शेक्सपियर को बपतिसमा दिया गया था, और वह पुराना रजिस्टर अभी तक रक्खा हुआ है। शेक्सपियर की क़ब्र के ऊपर पत्थर पर चार लाइन की एक कविता लिखी हुई है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—'हे मित्र, यीसू के नाम पर इसके अन्दर की मिट्टी को न खोदो। जो इन पत्थरों को न छुएगा उसको आशीर्वाद मिले; और जो मेरी हड्डियों को हटावेगा उसको शाप मिले।" शेक्सपियर को नहीं ज्ञात था कि इन पंक्तियों की आवश्यकता न होगी। जब तक संसार जीवित है तब तक उसका नाम रहेगा और जब तक जगत् में सभ्य लोग रहेंगे तब तक उसकी क़ब्र की भी रक्षा की जायगी। ट्रिनिटी-चर्च एवन नदी के किनारे एक बहुत ही सुहावने स्थान पर बना हुआ है। इस गिर्जे के कुछ भाग बारहवीं शताब्दी के हैं। शेक्सपियर के कारण इस गिर्जे का भी नाम अमर होगया है।

शेक्सपियर के जन्म-स्थान से लगभग एक मील की दूरी पर एक कुटीर है, जिसमें कवि की स्त्री एन हेथवे बहुत दिनों तक रही थी। यह कुटीर एलिज़ाबेथ के काल की है और फूस से पटी हुई है। इसके सामने एक बहुत सुन्दर बाग़ है। कुटीर के अन्दर जो कुछ सामान रक्खा हुआ है, सब उसी काल का है। हमारे गाइड ने भिन्न भिन्न कमरों में ले जाकर सब चीज़ें दिखलाईं। हेथवे का रसोंईखाना, सोने का कमरा, हेथवे के पिता का कमरा, मेहमानों के लिए पृथक् कमरा इत्यादि देखकर बड़ी ख़ुशी हुई। ओढ़ने-बिछाने के पुराने कपड़े, रसोंई के बर्तन, मेज़, कुर्सी अभी तक रक्खे हुए हैं। लेकिन सबसे रोचक यहाँ वह बेंच भी अभी तक रक्खी हुई है जिस पर शेक्सपियर और हेथवे साथ बैठकर आमोद-प्रमोद किया करते थे। जब गाइड ने उसके बारे में हम सबको बतलाया तब सब लोग मुस्कराने लगे। शेक्सपियर भी साधारण मनुष्यों की भाँति किसी समय हेथवे के लिए पागल रहता था। हेथवे उससे सात साल बड़ी थी, लेकिन प्रेम के आगे उम्र क्या है? कहा जाता है कि यह प्रेम बहुत दिनों तक नहीं चला, और इसी लिए शेक्सपियर स्ट्रेटफ़ोर्ड छोड़कर लन्दन चला गया। बेचारी एन हेथवे का जीवन तो शायद दुःख में ही कटा होगा, किन्तु यदि शेक्सपियर से विवाह न किया होता तो उसको कौन जानता? लेकिन उसको क्या मालूम था कि उसका पति इतना महान् पुरुष हो जायगा। शेक्सपियर स्वयं भी अपने गौरव को न समझ सका होगा। वह यह कभी न सोच सका होगा कि उसकी मृत्यु के बाद हज़ारों किताबें उसके सम्बन्ध में लिखी जायँगी, और वह संसार का एक मुख्य नाट्यकार और कवि माना जायगा। यदि शेक्सपियर जीवित होकर फिर अपने बारे में सुने तो सचमुच उसके आश्चर्य और ख़ुशी का ठिकाना न रहेगा। उसकी कला के सम्बन्ध में लिखी हुई हज़ारों पुस्तकों को पढ़ना और समझना शायद उसके लिए भी कठिन होगा।

एवन नदी के किनारे शेक्सपियर-मेमोरियल-थियेटर की सुन्दर इमारत है, जिसमें अप्रैल से सितम्बर तक भिन्न भिन्न नाटक खेले जाते हैं। पहला थियेटर उन्नीसवीं शताब्दी (सन् १८७९) में बनाया गया था, लेकिन सन् १९२६ में आग लग जाने के कारण वह नष्ट होगया। इस नवीन थियेटर-गृह में लगभग १,१०० व्यक्तियों के बैठने का प्रबन्ध है। स्टेज बहुत अच्छा बना हुआ है और हज़ारों पोशाकें काम में लाई जाती हैं। शेक्सपियर के नाटकों के सर्वोत्तम अभिनय के लिए यह थियेटर संसार भर में प्रसिद्ध है। खेद है, हम लोग समयाभाव से कोई अभिनय न देख सके।

इसी थियेटर-घर के पास शेक्सपियर-मेमोरियल-लायब्रेरी और पिक्चर-गेलरी भी हैं। पुस्तकालय में शेक्सपियर-सम्बन्धी पुस्तकों का सबसे अच्छा संग्रह है। यहाँ हज़ारों किताबें एकत्र हैं। तो भी दिन

पर दिन इन किताबों की संख्या बढ़ती ही जाती है। शायद ही कोई ऐसा सप्ताह होता होगा जब किसी न किसी देश में शेक्सपियर के सम्बन्ध में कोई नवीन पुस्तक न छपती हो। शेक्सपियर के नाटकों के बहुत पुराने संस्करण भी इस पुस्तकालय में रक्खे हुए हैं। पिक्चर गेलरी में बहुत-सी पुरानी तसवीरें एकत्र हैं। गेरिक, केम्बिल, सिडन्स इत्यादि शेक्सपियर के नाटकों के बहुत-से अभिनेताओं के चित्र यहाँ टँगे हुए हैं।

स्ट्रेटफ़ोर्ड से तीन मील की दूरी पर शेक्सपियर की मा मेरी आर्डिन का पुराना घर है। विवाह होने के पहले वह उसी में रहा करती थी। इस मकान में सोलहवीं शताब्दी का बहुत-सा सामान सुरक्षित रक्खा हुआ है। उस काल के खेती के पुराने औज़ार भी यहाँ रक्खे गये हैं। स्ट्रेटफ़ोर्ड में हार्वर्ड-यूनिवर्सिटी के संस्थापक जान हार्वर्ड की मा का भी पुराना मकान बना हुआ है। यह भी महारानी एलिज़ाबेथ के काल का ही है।

स्ट्रेटफ़ोर्ड एक छोटा किन्तु सुन्दर शहर है। यद्यपि इसका इतिहास बहुत पुराना है, तो भी बहुत-से मकान नये ढंग के बने हुए हैं। पहले यह एक छोटा-सा गाँव था। लेकिन यात्रियों की भरमार के कारण अब यहाँ बहुत-से होटल बन गये हैं और आबादी भी बढ़ गई है। होटलों में भी 'शेक्सपियर-होटल' सबसे पुराना है। यद्यपि इसमें आधुनिक समय के सब आरामों की व्यवस्था है, तो भी इसकी बनावट ट्यूडर-काल की है। भूत और वर्तमान काल का यह मिश्रण सचमुच विचित्र है।

स्ट्रेटफ़ोर्ड के चारों ओर का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुहावना है। शाम को हम लोग शहर के बाहर उत्तर की ओर गये। इसी ओर प्रसिद्ध अर्डन का जंगल है। शेक्सपियर के 'एज़ यू लाइक इट' नामक नाटक में इस जंगल का वर्णन मिलता है। उसको देखकर मेरे मन में बहुत-से विचार उठने लगे। अगर समय होता तो उसमें कुछ देर घूमने का प्रयत्न करता। लेकिन अँधेरा हो चला था और रात में लन्दन वापस पहुँचना था, इसलिए मोटर में बैठकर हम सब लोग स्ट्रेटफ़ोर्ड से लगभग सात बजे चल दिये।

अँगरेज़ लोग धन एकत्र करने में किसी से पीछे नहीं रहना चाहते। लेकिन ये लोग अपने साहित्य और कला के सेवकों का उचित सम्मान करना भी नहीं भूले हैं। यदि भारत में भी हम लोग इस ओर अधिक ध्यान दें तो कितना अच्छा हो?

आओगे ?

लेखक, श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय

देव, क्या सचमुच आओगे ?
तृषित, थकित इन नयनों को क्या छवि दिखलाओगे ?
बन करके विराट मत आना, कहाँ समाओगे ?
चेतन-कण बन आओगे, उर में बस जाओगे ॥
बन आँधी, तूफ़ान न आना, दीप बुझा दोगे !
आओगे बन साँस हृदय की, मुझे जिलाओगे ॥
प्रखर सूर्य-से आओगे तो उर झुलसा दोगे !
प्रेम-ज्योति शीतल बन आओ हिय हुलसाओगे ॥
स्वामी बनकर मत आओ तुम मुझे डराओगे।
प्रेमी बनकर आओगे तो जय पा जाओगे ॥
देव, क्या सचमुच आओगे ?

मुसलमानों की न्याय-प्रणाली

लेखक, श्रीयुत जागेश्वरनाथ वर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०

मुसलमानों के शासनकाल में भारतवर्ष में कोई निश्चित न्याय-प्रणाली न थी। न्याय बहुत कुछ बादशाहों की व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर था। पर इस बात के उदाहरण मिलते हैं कि कुछ बादशाहों ने यह अनुभव किया कि भारतवर्ष पर 'शरअ मुहम्मदी' के अनुसार शासन करना कठिन है। इसलिए उन्होंने उसमें कुछ परिवर्तन किया और वे सफल हुए। पर जो ऐसा नहीं कर सके और एक ही लाठी से सबको हाँकने की चेष्टा की वे असफल ही नहीं हुए मुसलिम साम्राज्य के विध्वंस के भी कारण हुए। इसी बात को इस लेख में लेखक महोदय ने ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ सिद्ध किया है।



सलमान भारत में अपना निज का शासन-विधान और नवीन दंड-प्रथा अपने साथ लेकर आये। प्रत्यक्ष है कि आक्रमणकारियों को विजातीय शासितों से कोई सहानुभूति नहीं हो सकती, अतएव उस मार-काट के युग में जो क़ासिम के प्रथम आक्रमण से लेकर ग़ोरी की अंतिम चढ़ाई तक विस्तीर्ण है, दलित भारतवासियों के सम्बन्ध में न्याय किये जाने की चिन्ता के बजाय यदि विजयी मुसलमानों को उन पर नित्य नये अत्याचार करने की ही धुन रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। तो भी इस बीच में कोई कोई मुसलमान शासक ऐसा भी हुआ है जिसने अपनी 'शरअ' के अनुसार न्याय करने की चेष्टा करके लोगों को मनमानी कार्यवाही करने से रोका है। किन्तु 'शरअ मुहम्मदी' के प्रयोग से भी ग़ैर मुसलिम जातियों के साथ न्याय के बजाय उलटा अन्याय ही हुआ।

जान पड़ता है कि हिन्दू-जनता महमूद ग़ज़नवी के न्याय से संतुष्ट थी। इसी लिए अब तक उसकी न्याय-प्रियता के विषय में कितनी ही कहावतें उत्तरी भारत में प्रचलित हैं। किन्तु उसके स्थायी रूप से देश में न टिकने के कारण उसकी नीति का भारतीय मुसलमानों की न्याय-प्रणाली पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सका।

मुसलमान शासकों में ऐसे कितने ही नौ मुसलिम मिलेंगे जो किसी-न-किसी कारण हिन्दू से मुसलमान होने पर विवश हुए हों। ऐसे लोगों ने हिन्दू-धर्म-शास्त्रों का थोड़ा-बहुत ज्ञान होने के कारण समय समय पर उसका सदुपयोग करने की चेष्टा अवश्य की और इसका नवीन न्याय-पद्धति पर गहरा प्रभाव भी पड़ा। और तो मुग़लों तक ने वह बात नहीं सोची जो अँगरेज़ों को प्रारम्भ से ही सूझ गई। वास्तव में मुसलमान-साम्राज्य के विध्वंस का एक कारण यह भी है कि उन्होंने विभिन्न प्रकृति की जातियों को एक ही लाठी से हाँकने की भूल की।

डाक्टर फ़रमिंगर की राय में मुग़लों की न्याय-प्रणाली के विषय में विश्वस्तरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसके बारे में विद्वानों में भारी मतभेद दिखाई देता है। यह कठिनाई उस समय और भी बढ़ जाती है जब हम मुसलमानों के भारत में आने के समय की पूर्ण स्थिति की खोज करने बैठते हैं।

'मुसलमानों के शासनकाल में भारत' (इंडिया अंडर मोहम्मेडन रूल) के सुप्रसिद्ध लेखक रुई (Rui) का कहना है कि इस विषय की पड़ताल करने के समुचित साधन उपलब्ध नहीं हैं। जिन हस्तगत

साधनों से इस मामले पर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ता है वे ये हैं—

१—तोज़क या शासकों का स्ववृत्तान्त, जैसे तैमूर, बाबर और जहाँगीर की रचनायें या उनके कुटुम्बियों अथवा नौकरों-द्वारा लिखे और लिखाये गये वृत्तान्त, जैसे आईन अकबरी या गुलबदन बेगम और जौहर इत्यादि के वर्णन।

२—समकालीन विदेशी इतिहासलेखकों की कृतियाँ जो अरबी और फ़ारसी भाषाओं से इलियट और डौसन-द्वारा अनूदित होकर अँगरेज़ी में आई।

३—डच, इटालियन, फ्रांसीसी, अँगरेज़ और अरब—मनक्की, सर टामस रो और फ़्रैन्सिसको पिल्ज़ैरेट जैसे यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्त।

४—शाही फ़र्मान, फ़तवे, मुहरें, फ़ैसले और क़ानून इत्यादि।

उक्त साधनों से जो कुछ ज्ञात होता है उस पर भी आँख मूँद कर विश्वास नहीं किया जा सकता। बहुत-सी रचनायें तो घटनाओं का सच्चा वर्णन होने के बजाय काल्पनिक गाथाओं से भरी पड़ी हैं और उनसे पग पग पर पक्षपात तथा अंधविश्वास टपका पड़ता है। होल्डन ने अपनी 'भारत के मुग़ल सम्राट्' नामक अँगरेज़ी पुस्तक में तैमूर की आत्म-कथा (तोज़क) को 'झूठा वृत्तान्त' लिखा है।

इलियट और डौसन की राय में भारतीय इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थों में बहुत कम सत्य है। अतएव मुसलमानों के क़ानूनों से भारतवासियों को जो क्षति पहुँची है उसका ठीक ठीक अनुमान करना भी सम्भव नहीं है। मनक्की का विवरण तो एक-दम गपोड़ ही समझा जाता है। यदि उस समय का क़ानून धारा-रूप में मुद्रित होता तो खोद-विनोद का यह दुर्गम मार्ग बहुत कुछ सुगम हो जाता। किन्तु शासन-प्रणाली की स्थानीय तथा सामयिक विभिन्नता (जो अधिकतर शासक की न्याय-प्रियता या अन्धे पक्षपात पर निर्भर होती थी) के कारण कदाचित् ऐसा नहीं हो सका।

सर टामस रो का कथन है कि "मुसलमानों का कोई क़ानून स्थायीरूप से लागू नहीं है। शासकों और कभी कभी अन्य राजकर्मचारियों के ही निर्णय के अनुसार दण्ड इत्यादि दिया जाता है। इन फ़ैसलों की अपील तो आज तक सुनी ही नहीं गई। एक ही तरह के दो मामलों में दो प्रकार के निर्णयों के कई कई उदाहरण भारत के मुसलमान शासकों को छोड़ कर किसी दूसरी जगह मिलना कठिन है।

"बादशाह दीवानी और फ़ौजदारी आदि के सारे अभियोगों को ध्यानपूर्वक सुनकर अपने इच्छानुसार उनका निपटारा करता है। कभी कभी अपराधी हाथियों से रौंदवाकर मरवा दिये जाते हैं। ख़ूनी हाथियों को दंडित के ख़ून में लथपथ देखकर बादशाहों का बड़ा मनोरञ्जन होता है।

"शाही फ़र्मान (राजाज्ञा)-द्वारा मुसलमान गवर्नर प्रान्तों के स्वामी नियत होते हैं। गवर्नर अधिकतर स्वेच्छाचारी तथा स्वार्थी देखे गये हैं। प्रजा के जान-माल के सम्बन्ध में उनकी इच्छा ही उनका क़ानून समझना चाहिए। वे जब चाहें उस पर हाथ साफ़ कर सकते और करते रहते हैं। इन अत्याचारों की या तो सुलतान को सूचना ही नहीं मिलती या वह इस विषय में जान-बूझकर हस्तक्षेप नहीं करना चाहता"।

फ़्रांसिसको ने जहाँगीर के आगरे के दरबार में क़ाज़ियों के पास क़ानून की किताबें देखकर लिखा है—"ये पोथियाँ केवल दिखाने के लिए रक्खी गई हैं। उनके आदेशानुसार चलने की चिन्ता किसी को नहीं है"। पिल्ज़ैरेट ने अपने 'जहाँगीर' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "शासन-विधान एक-दम मनमौजी है।...क़ानून-सम्बन्धी जो इनी-गिनी रचनायें देखी जाती हैं उनमें क़ुरान, हनफ़ी, शाफ़ई, मलिकी और अन्य मुसलमान मुजतहिदों तथा धर्मशास्त्रज्ञों की तफ़सीरें और आलोचनायें उल्लेखनीय हैं।" इस्लामी शरअ की आलोचना करते हुए इसी लेखक ने लिखा है कि "इन क़ानूनों में न्याय से अधिक बदले का भाव छिपा हुआ है।"

'फ़तवये आलमगीरी' वास्तव में एक ऐसी पुस्तक ज़रूर है, जो देश के क़ानून का संग्रह कही जा सकती है। 'मुग़ल-शासन-प्रबन्ध' के प्रसिद्ध लेखक सरकार के कथनानुसार औरंगज़ेब ने दो लाख रुपया ख़र्च करके मुसलमान धर्म्मशास्त्रज्ञों से 'फ़तवये आलमगीरी' लिखाई थी। 'फ़तवये आलमगीरी' उस न्याय-प्रथा का वास्तविक रूप नहीं है जो मुग़लों के शासनकाल में यहाँ प्रचलित थी, बल्कि उस न्याय-प्रथा को बहुत कुछ भ्रष्ट करके ऐसे नियम बनाये गये हैं जिनका औरङ्गज़ेब के दृष्टि-कोण से हर मुसलमान बादशाह को व्यवहार करना चाहिए।

मुसलमानों के राज्य में क़ानून-पेशा वकील नहीं होते थे। कदाचित् इसलिए क़ानून भी नियम-बद्ध न हो सका और खोद-विनोद का कार्य्य नियमित रूप से किये जाने की व्यवस्था न की जा सकी। मालूम होता है कि उन दिनों मुक़द्दमे की उचित पैरवी नहीं की जाती थी। साधारणतया क़ानून के फेर में पड़ जाना सर्वनाश का लक्षण समझा जाता था। फिर भी यह सत्य है कि न्याय जो कम से कम मुसलमानों को तो दुर्लभ न था, आज-कल की तरह इतना महँगा न बिकता था।

डाक्टर बेनीप्रसाद ने अपने 'जहाँगीर' नामक ग्रंथ में मुग़लों के युग में वकीलों के अभाव से संतुष्ट होकर लिखा है कि "हर्ष का विषय है कि उन दिनों ऐसे लोग भारत में न थे जो अपनी रोटियों के मोह में अपनी आत्मा, अपना मस्तिष्क और अपना ज्ञान इधर-उधर बेचते फिरते थे। और दूसरों का ख़ून चूस-चूसकर सारे देश और समाज को सर्वनाश के घाट उतार देते थे"। इस विवरण से भी मुसलमानों के शासन-विधान और न्याय-प्रणाली पर धुँधला सा प्रकाश पड़ता है।

यदि उस समय की संसार की प्रगति और भारतवर्ष की स्थिति को सामने रखकर मुस्लिम न्याय-प्रणाली का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि सिंध में मुसलमानों के युग में जो प्रथायें प्रचलित थीं वे दो महान् जातियों के सम्पर्क और उनके अपने पुराने रवाजों के संयोग का ही स्वाभाविक परिणाम थीं। यह मेल-जोल वास्तव में इतना गहरा था कि अब पारस्परिक भेद-भाव का पहचानना भी किसी तरह सम्भव नहीं है। सिंधवासी और नवागन्तुकों के मिलाप से धीरे धीरे प्राचीन पद्धति तथा नवविधान एक दूसरे के इतने निकट आ गये कि उनकी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी कोई बाधा उपस्थित होने की सम्भावना ही न रही।

पहले-पहल मुसलमान भी अँगरेज़ों की ही तरह भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थिर करने के लिए यहाँ आये। इसी लिए उन्हें सिंधवासियों को प्रसन्न रखने की आवश्यकता हुई। मुसलमानों के इस अनुभव का उनकी न्याय-प्रणाली पर कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ना अनिवार्य था।

सिंध पर अरबों आदि के जितने आक्रमण हुए उनका लक्ष्य मुसलिम साम्राज्य का निर्माण न था। यह भाव तो केवल उसी समय उदित हुआ जब मुहम्मद ने इस्लाम फैलाया। इस प्रकार का पहला आक्रमण मुहम्मद बिन क़ासिम ने किया और लोगों को भयभीत करके इस्लाम फैलाने की चेष्टा की। उसने सिंध-निवासियों पर जज़िया लगाया, किन्तु तलवार के ज़ोर से भारत में बहुत दिनों तक रसूल के क़ानून और क़ुरान के फ़र्मानों का सिक्का न चल सका। एलद्रीसी के 'नविश्त उलमुश्ताक़' से पता चलता है कि "क़ासिम ने बाध्य होकर मालगुज़ारी वसूल करने के लिए बहुत-से ब्राह्मणों को बिना ज़मानत लिये ही नौकर रक्खा। इससे उसका ख़लीफ़ा और स्वामी बहुत प्रसन्न हुआ। हज्जाज से उसके नाम जो पत्र आया उसमें लिखा था—'सर्वसाधारण की नीति का अनुसरण करने के लिए उत्साहित करने से राज्य की पुष्टि होगी और अशान्ति तथा विरोध का भय नष्ट हो जायगा'......।"

'जामय उलहिकायत' में यूफ़ी ने लिखा है कि "नौशेरवाँ ने अपने एक सरदार को आदेश दिया

था—'भारतीय प्रजा के लिए उचित है कि वह अपनी परिपाटी का ही अनुकरण करे, इसलिए भारतीय शास्त्रों को ठुकरा कर नये क़ानून लागू करने की मूर्खता न की जाय'।" इसका परिणाम यह हुआ कि सिंधवासियों के पुराने रवाजों में कोई विशेष परिवर्तन न हो सका। और प्राचीन ग्राम्य स्थिति पूर्ववत् बनी रही। किन्तु नागरिक जनता बराबर मुल्लाओं के फ़तवों की कड़ाई झेलती रही।

इलियट और डौसन का कहना है कि "सिंध में जहाँ की अधिकांश जनता अपने सनातन-धर्म की अनुयायी थी, अदालतें नहीं थीं। पीड़ित और सताई गई प्रजा की कुछ दाद-फ़रयाद न हो सकती थी। हर सरदार जो किञ्चित् भी स्वतंत्र था, मौत तक की सज़ा दे सकता था। अमीर-उमरा भी मृत्युदंड देने के अधिकारी थे। इस अधिकारी-वर्ग में से कोई क़ाज़ी-द्वारा न्याय किया करते थे, जो क़ुरान और शरअ के अनुसार विचार-विमर्श करने को विवश था। क़ाज़ी धनादि के लोभ में अपनी आत्मा को बेंच डालने में किञ्चित् भी संकोच न करते थे।

"अमीर राज्य-सम्बन्धी अपराधों का मनमाना दंड दिया करते थे। जायदाद, विरासत तथा उत्तराधिकार आदि के झगड़े-बखेड़े हिन्दू अपनी पञ्चायतों में आप तय किया करते थे। साधारणतया जाति से बहिष्कृत किये जाने का डर ही हिन्दुओं का रक्षक था। अन्यथा इस्लामी अदालतें तो हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का ही साधन थीं। हिन्दू अपराधियों को इन अदालतों से इस्लाम स्वीकार कर लेने पर बड़े दण्डों से छुटकारा मिल सकता था।

"हिन्दुओं का घोड़ों पर चढ़ना अदालतों-द्वारा वर्जित था। हाँ, मुसलमानों की-सी दाढ़ी और उन्हीं का-सा वेश-भूषा होने पर घोड़े की सवारी का कोई निषेध न था। हिन्दुओं के धार्मिक जलसे और जलूस क़ानून के विरुद्ध समझे जाते थे। उन्हें बाजा तक बजाने की आज्ञा न थी।"

उक्त वर्णन के अनुसार डाक्टर बर्निस की धारणा है कि कदाचित् मुसलमानों के अनुचित व्यवहार के ही कारण हिन्दुओं को उनसे कोई सहानुभूति न थी और होती भी कैसे जब कि उन्हें अपने शासकों से न्याय की कोई आशा न थी। किन्तु बर्निस की यह राय अखण्ड सत्य नहीं कही जा सकती। अँगरेज़ भारत में मुग़लों के ही समय में आये और उन्होंने उस समय देश की जो हालत देखी उसी के अनुसार अन्य मुसलमानों की शासन-पद्धति का अनुमान करके इस विषय में अपना मत प्रकट किया। किन्तु उन्होंने यह भुला दिया कि जो मुसलमान सिंध से होकर भारत में प्रविष्ट हुए वे अरब थे और अपने साथ अपना नया विधान भी अरब से ही लाये थे। उन पर उस समय तक यूनानियों का कोई प्रभाव न पड़ सका था। अरबों की न्याय-प्रियता में कोई संदेह न था। मुग़लों में यह बात न थी। वे न तो अरबों की तरह उदार थे और न उनकी तरह सुशिक्षित और न्यायप्रिय थे।

अरबों को समय समय पर बग़दाद के ख़लीफ़ा से सहायता मिलती रहती थी, ख़लीफ़ा की आज्ञायें बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और विद्वानों के मनन-चिन्तन का परिणाम होती थीं, इसी लिए उनकी और मुग़लों की न्याय-प्रणाली में आकाश-पाताल का अन्तर था। भारत में आने से पहले वे क़ाबुल और क़न्धार में लड़ते-भिड़ते और लूट-मार करते रहते थे। किन्तु अरबों का उनके आक्रमण से बहुत पहले भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थिर हो चुका था। अरब सत्य की खोज में तत्पर रहते थे। जहाँ तक बन पड़ता वे अन्य जातियों के अधिकारों पर कुठाराघात न होने देते और अपने क्षमतानुसार उनकी रक्षा करने की चेष्टा करते।

क़ासिम के विषय में लिखा है कि "ब्राह्मणवाद के प्रबन्ध के लिए उसने ओवरसियर और अन्य कर्मचारी नियत किये और माल-जायदाद आदि के सारे अधिकार चार व्यापारियों को सौंप दिये।" इससे सिद्ध है कि क़ासिम और उसके उत्तराधिकारियों

के शासनकाल में सिन्ध का जो हाल था वह मुग़लों के समय में अदृष्ट था।

जब मुग़लों ने अपने राज्य को विस्तृत किया तब देश की स्थिति एक-दम बदल गई। अकबर और जहाँगीर ने आरम्भ में अलाउद्दीन का ही अनुसरण किया। मुग़ल उत्तर-पश्चिम से जो शासन-विधान और न्याय-आदर्श अपने साथ लाये वह उतना उन्नत न था जितना सिन्ध के अरब शासकों का था। उन्होंने तुर्कों, अरबों और ईरानियों से जो कुछ थोड़ा-बहुत राजनैतिक ज्ञान प्राप्त किया था वह उन्हें कार्य-क्षेत्र में सफल बनाने के लिए पर्याप्त न था। इसी से उनकी सत्ता दृढ़ होने के बजाय दिन दिन गिरती ही गई। यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि—"तुर्की विजेता मिस्र और ईराक़ से नया शासन-विधान अपने साथ लेकर भारत में आये। इसका एक कारण यह था कि वे भारतवर्ष को पहचानने में असमर्थ थे और उससे कुछ सीख सकने की योग्यता तथा रुचि न होने के कारण जो कुछ देखते आये थे उसी पर चलने के लिए विवश थे।"

'फ़तवये आलमगीरी' के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उन दिनों भारत में जो क़ानून प्रचलित थे उनसे हिन्दुओं के साथ कितना अन्याय होता था। मुग़ल न्यायाधीश सदा .कुरान को सामने रखकर विचार किया करते थे। किन्तु जो क़ानून एक विशेष प्रकृति और चरित्र के समाज के लिए बनाये गये हों वे अन्य जातियों के लिए किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं और वह भी उस समय जब वे बहुत पहले से अपने धर्मशास्त्रों का अवलम्बन करती चली आ रही हों। मुसलमानों के भरसक प्रयत्न करने पर भी .कुरान का यथोचित सम्मान न हो सका।

बाबर और उसके उत्तराधिकारियों ने अनुभव किया कि भारत पर 'शरअ मुहम्मदी'-द्वारा शासन करना केवल कठिन ही नहीं, हानिकारक भी है। अतः उन्होंने इस विषय में लोकमत बदलने की कुछ-न-कुछ चेष्टा अवश्य की। डाक्टर होल्डन का मत है कि अकबर ने अच्छी तरह समझ लिया था कि हिन्दुओं को .कुरान के सूत्र में बाँधे रखना मुसलमानों के वश की बात नहीं है। इसी लिए उसने उन्हें अपनाने का प्रयत्न किया। जहाँगीर ने भी स्वीकार किया है कि अकबर ने मूर्तियों को अपवित्र करने का निषेध कर दिया था। जहाँगीर के प्रश्न करने पर अकबर ने उत्तर दिया था कि—"यदि मैं ऐसा न करूँ तो इसका मतलब यह होगा कि मैं देश की पाँच हिस्सा आबादी को मुट्ठी भर लोगों की प्रसन्नता के लिए मौत के घाट उतार दूँ।"

बाबर के आगमन पर इस्किंन ने लिखा है कि "उत्तरीय भारत ने अपनी सनातन रीतियों को कभी नहीं छोड़ा और उनका सारा कारबार बहुत-सी बाधाओं की उपस्थिति में भी उसी क्रमानुसार चलता रहा। अन्त में हार कर विदेशी शासकों को भी यही उचित दिखाई दिया कि जनता अपने पुराने नियमों का पालन करने में वहाँ तक स्वतंत्र कर दी जाय जहाँ तक .कुरान की अवज्ञा या दूसरे शब्दों में शाही क़ानून का अपमान होने की सम्भावना न हो।" फिर भी अकबर की नीति से इस्लामी क़ानून में भारी परिवर्तन होता गया और हिन्दू संतुष्ट होकर धीरे धीरे पिछले संकटों को भूलने लगे। किन्तु यह सुख-स्वप्न शीघ्र ही भंग होकर नूरजहाँ के चरणों में गिर पड़ा। औरङ्गज़ेब के आते-आते जज़िया और .कुरान अर्थात् 'फ़तवये आलमगीरी' का ज़माना लाया गया और उनके साथ साथ मुसलमानी साम्राज्य का भी विध्वंस हो गया। देश में अराजकता राज्य करने लगी। अब जो मुसलमान नाममात्र के बादशाह थे वे दूसरों के हाथों के खिलौना थे और महलों तक में उनकी आज्ञा पर कान देनेवाले दिखाई न देते थे।

—

जीवन-तरु

लेखक, प्रोफ़ेसर मनोरञ्जन, एम० ए०

मेरे जीवन-तरु की डाली।
कितनी कोमल, कितनी सुन्दर,
कितनी मनमोहक है आली ॥
जीवन मदिरा पी झूम रही,
स्वच्छन्द हवा में घूम रही ॥
कुछ हँसती सी कुछ मस्ती से।
डाली डाली को चूम रही ॥
कुछ झुक झुक कर, कुछ उझक उझक
है नाच रही हो मतवाली ॥
मेरे जीवन-तरु की डाली ॥
मस्ती से लचक लचक डोली,
झुक कर अस्फुट स्वर से बोली,
जागो आली, मधु-ऋतु आया
मधुवन में है कोकिल बोली ॥
वह देखो, वन की सखियों में
जागी नवकुसुमों की लाली।
मेरे जीवन-तरु की डाली ॥
कुछ सकुची-सी आ गई कली,
घिर आई मधुपों की अवली,
धीरे से अवगुंठन सरका
मृदु मन्द सुरभि ले वायु चली ॥
खुलकर इसको खिल लेने दे,
मत तोड़, अरे निष्ठुर माली।
मेरे जीवन-तरु की डाली ॥
यह आप स्वयं झड़ जायेगी,
गिर कर भू पर पड़ जायेगी,
फिर बात न पूछेगा मधुकर,
आँधी भी धूल उड़ायेगी ॥
इसकी जग में परवाह किसे,
सब नाचेंगे दे दे ताली।
मेरे जीवन-तरु की डाली ॥

ताण्डव

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

नाच, नाच मेरे प्रलयङ्कर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर !

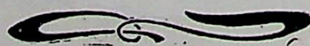
नाच, नाच उत्थान-पतन पर,
अन्तर की धड़कन, धड़कन पर,
जीवन के प्रति कोमल क्षण पर,
नाच ज़रा तू शिवशंकर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर !

जन्म-मरण का निर्मम फेरा,
सुख-दुख चिड़िया रैन-बसेरा,
देखा तुझे जिधर मुँह फेरा—
नाच रहा है कण कण पर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर !

छलक पड़ी करुणा की धारा,
डूबा धीरज कूल-किनारा,
बहा ज्ञानगरिमा गुण सारा,
बचा अशेष शेष रहकर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर !

जाग, जाग भूखों की ज्वाला,
जग पीड़ा पी बन मतवाला,
आज शम्भु उगलेंगे हाला,
बनो हृदय, प्याला सुन्दर,
महारुद्र, हे विश्वम्भर !

हँसी-रुदन की ताल-ताल पर,
थिरक रहा है विश्व निरन्तर,
बजता डमरू घोर-भयङ्कर,
गूँज रहा है 'बम बम, हर हर'
महारुद्र, हे विश्वम्भर !
नाच, नाच मेरे प्रलयङ्कर !





जाग्रत नारियाँ

काश कि मैं पुरुष होती !

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०



आज-कल नारी-स्वातंत्र्य का युग है। जिधर देखो, स्त्रियाँ बड़े झपाटे के साथ आगे बढ़ रही हैं। वे डाक्टर बन रही हैं, इंजीनियर बन रही हैं, वकील बन रही हैं, असेम्बली और प्रान्तिक कौंसिलों के मेम्बर बन रही हैं। इतना ही नहीं सरकारी नौकरियों में भी दिन पर दिन उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। योरप में तो उन्होंने पुरुषों का क़ाफ़िया तंग कर दिया है। बेचारे बेकार फिरने लगे हैं। भारतवासियों ने स्त्रियों को ऊँचा चढ़ाने में योरप को भी मात कर दिया है। आज तक न योरप और न अमरीका के ही किसी देश ने अपनी राष्ट्रीय महासभा की सभानेत्री किसी स्त्री को चुना है। परन्तु हमारी कांग्रेस ने श्रीमती सरोजिनी नायडू को राष्ट्र-नेत्री का पद प्रदान कर इस कसर को भी पूरा कर दिया है। इस पर भी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ, विशेषकर धनाढ्य घरों की फ़ैशनेबल स्त्रियाँ, कहती सुनाई देती हैं—काश कि मैं पुरुष होती ! पुरुष-जाति से सम्बन्ध रखने के कारण मैं अपनी स्थिति को ख़ूब समझता हूँ। इसलिए मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि ये देवियाँ भूल कर रही हैं। किसी स्त्री की, विशेषत: किसी सम्पन्न घराने की पढ़ी-लिखी स्त्री की, बात का खंडन करना, न केवल एक भारी सामाजिक भूल है, बरन एक ऐसे खेल में जिसे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक अच्छी तरह से खेल सकती हैं, एक भयावह चाल चलना है। कोई अनाड़ी गँवार पुरुष ही कह सकता है कि यह इन देवियों की भूल है।

परन्तु मैं समझता हूँ, इतना कहने में कोई हर्ज नहीं कि स्त्री होने के कारण इन देवियों को जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं, उन्हीं के कारण ये यह इच्छा—काश कि हम कुछ और होतीं—प्रकट कर सकती हैं। यदि कोई पुरुष कहता, काश कि मैं स्त्री होता तो फ़ौरन, उसकी हँसी उड़ाकर या उसकी निन्दा करके, वह दबा दिया जाता। यदि कहीं वह सार्वजनिक कार्यकर्ता होता तो जहाँ भी वह जाता उसके पीछे लोग तालियाँ पीटते। यदि वह राजनीतिज्ञ होता तो लोग उसे स्त्रैण समझते।

पुरुष बनने की इच्छा रखनेवाली स्त्रियाँ प्राय: कहा करती हैं—हम पुरुष होतीं तो संसार को स्वर्ग



किन्तु आज तक किसी स्त्री ने अपनी गोद में स्त्रियों का सबसे सुखप्रद भार लिये हुए कभी यह नहीं कहा—"काश कि मैं पुरुष होती।"

बना देतीं, हम संसार की सारी ख़राबियों को एकदम ठीक कर देतीं। वे आश्चर्य करती हैं कि पुरुषों को इतने अवसर प्राप्त होते हुए भी वे ये काम क्यों नहीं करते! उनके रास्ते में उनका स्त्री होना ही एक भारी रुकावट है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह निकलता है कि यदि सभी स्त्रियाँ किसी प्रकार पुरुष बन जायँ तो कल ही इस संसार के सभी झगड़े-झमेले और दुःख-दारिद्र्य दूर हो जायँगे। तब इटली अबीसीनिया का गला नहीं घोंटेगा, जापान मंचूरिया को नहीं हड़प करेगा, हिन्दू-मुस्लिम फ़िसाद नहीं होंगे, कोई मनुष्य भूखा नहीं मरेगा, ब्राह्मण अछूत से घृणा नहीं करेगा, और टैक्सों से प्रजा का कचूमर नहीं निकलेगा। सारे संसार में समता और बन्धुता एकदम फैल जायगी।

इस प्रकार स्त्रियों की पुरुष होने की आकांक्षा वास्तव में पुरुषों की और उनकी कार्य-पद्धति की एक कड़ी समालोचना है। राजनैतिक क्षेत्र को छोड़कर तनिक गृहस्थी के क्षेत्र में आइए। तब स्त्रियों के इन शब्दों का अर्थ यह निकलता है—

"यदि मैं पुरुष होती तो मैं लकड़ी फाड़ती, कोयले तोड़ती, मोटर का तेल बदलती, सीढ़ी पर चढ़कर दीवार पर चित्र लगाती, फूलों के गमलों को पानी देती।"

"काश कि मैं कहीं पुरुष होती! बेचारी निर्बल स्त्री इस संसार में क्या कर सकती है? लकड़ी फाड़ने और कोयले तोड़ने से मेरे सुन्दर रँगे हुए

नाखून ख़राब हो जाते हैं। सीढ़ी पर चढ़कर चित्र लटकाने के पहले मुझे फ़्राक बदलना पड़ता है ताकि कहीं कपड़े ख़राब न हो जायँ। मैं गमलों को पानी तो दे सकती हूँ, परन्तु क्या आप मेरे पास खड़े होकर मुझे ऐसा करने देंगे? काश कि मैं पुरुष होती"!

पुरुष अपने कपड़े उतारकर ये सब काम कर लेता है। जब वह काम कर चुकता है तब उसे बड़े ज़ोर से अनुभव कराया जाता है कि कोई भी स्त्री यह काम उसकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह कर सकती है, यदि उसके मार्ग में उसका स्त्री होना रुकावट न हो।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि स्त्री प्रायः वह सब काम कर सकती है जो पुरुष कर सकता है। वह लोहार का हथौड़ा चला सकती है, ऊँचे मचान पर बैठकर दीवार बना सकती है, लकड़ी के बड़े बड़े गट्ठे उठाकर ला सकती है। जो स्त्री मल्लयुद्ध में पुरुषों को पछाड़ सकती है, जो इँग्लेंड की जल-प्रणाली (चैनल) को तैरकर पार कर सकती है, जो इँग्लेंड से आस्ट्रेलिया तक हवाई जहाज में दौड़ लगा सकती है, उसके सामने ये काम क्या हैं? परन्तु बात तो यह है कि किसी भी स्त्री को ये काम करने नहीं पड़ते। जब कोई स्त्री करती है तब यह एक शोशा खड़ा हो जाता है। उसके चित्र समाचार-पत्रों में छपते हैं। वह प्रसिद्ध हो जाती है। जो पत्र-प्रतिनिधि उससे मिलने जाते हैं उनसे वह कहती है—"काश कि मैं पुरुष होती!"

ये शब्द मुँह से निकालना स्त्री का एक बहुमूल्य विशेषाधिकार है। मैंने अपने जीवन में कभी किसी पुरुष को कहते नहीं सुना—"काश कि मैं स्त्री होता"! समाज के नियम उसे ऐसा कहने से रोकते हैं।

परन्तु स्त्रियाँ, जो पुरुषों की स्वतन्त्रता का डाह करती हैं, ऐसे नियमों के अधीन नहीं हैं। वे चाहे जितना भी पुरुषोचित आचरण कर सकती हैं। उनको सब कोई यही कहता है कि देखिए, ये कितनी चतुर हैं। यदि मैं स्त्री होता, और किसी लोकोत्तर



[पूना की श्रीमती ताराबाई कालूराम राव उरुनकर जिनके सभानेतृत्व में बँगलौर में अखिलभारतीय भवसार-क्षत्रिय-महिला-सम्मेलन हुआ।]

क्रिया से पुरुषों की प्रकृति, उनका स्वभाव, उनकी रुचि, उनका झुकाव, उनका कष्ट और उनकी निर्बलता के विषय में उतना कुछ जान सकता जितना कि मैं अब जानता हूँ तो मैं सचमुच बड़े मज़े से जीवन व्यतीत कर सकता।

इस ज्ञान के बिना भी मैं जहाँ जाता, लोगों से सम्मान करा सकता, ट्राम में या बस में उनको उठवाकर अपने लिए जगह ख़ाली करा सकता, मोटर में बैठते समय उनसे खिड़की खुलवा सकता। लोग मेरी विद्यमानता में कभी एक दूसरे को अपशब्द न कहते, कभी जोश में आकर हाथा-पाई न करते। मेरे एक बार चेतावनी देने से ही वे शान्त हो जाते। प्रत्येक स्त्री को, चाहे वह नवयुवती हो और चाहे वृद्धा, चाहे रूपवती हो और चाहे कुरूपा, चाहे धनवान् हो और चाहे निर्धन, ये विशेषाधिकार प्राप्त हैं।

जब कोई पुरुष स्त्री के साथ होता है तब उसे सब



[श्रीमती धर्मशीला लाल एम० ए० (लंदन), बार-ऐट-ला, सुपुत्री श्री० काशीप्रसाद जी जायसवाल ।]

काम करने पड़ते हैं। अपने कर्तव्य का पालन करने के बाद उसे इनाम क्या मिलता है ?—स्त्री एक विशेष ढंग से उसकी ओर कृपा-कटाक्ष करती है। उसका स्पष्ट आशय यह होता है—एक बलिष्ठ पुरुष होना बड़ी शान की बात है।

मैं एक स्वाभाविक और भावप्रधान प्रकृति का पुरुष हूँ। पौष-माघ की ठंड में जब मैं किसी स्त्री को सवेरे तड़के उठकर छाछ बिलोते, गोबर थापते, चरखा कातते या जेठ-आषाढ़ की दोपहरिया में रोटी बनाते देखता हूँ तब मेरे हृदय में हूल-सी उठने लगती है। मुझे ख़याल आता है कि बेचारी स्त्रियों से ये काम नहीं लिये जाने चाहिए। परन्तु ये स्त्रियाँ वे नहीं जो कहती हैं—"काश कि मैं पुरुष होती !" मैं यह बात प्रायः उन्हीं स्त्रियों के मुख से सुनता हूँ जिनको पुरुष न होने के कारण ही सब सुख और भोग-विलास प्राप्त हैं।

वे पुरुषों की स्वतन्त्रता के बारे में बातें तो बहुत करती हैं, परन्तु वस्तुतः अपने पतियों और भाइयों की तुलना में वे पवन के समान स्वतन्त्र हैं। वे रोज़ सिनेमा देखती हैं, ब्रिज खेलती हैं, मोटरों में सैर करती हैं, क्लबों में बैठकर गपशप लगाती हैं और उनके पतियों की कमाई का अधिकांश उन्हीं के हाथ से ख़र्च होता है।

छः में से पाँच दूकानें उन्हीं के उपयोग की वस्तुओं से भरी रहती हैं। उन्हीं को प्रसन्न करने और फुसलाने के लिए दूकानों की खिड़कियाँ सजाई जाती हैं। बुक-स्टाल और पुस्तकों की दूकानें उन्हीं के काम की पत्रिकाओं और पुस्तकों से भरी रहती हैं। उनकी मनभाती कहानियाँ वे होती हैं जिनमें पुरुषों की ख़ूब गत बनाई गई होती है।

मैं इससे इनकार नहीं करता कि स्त्री होना भी उनके लिए एक काम है और इसके लिए उन्हें घोर श्रम करना पड़ता है। जब मैं ट्राम या बस में बैठता हूँ (यद्यपि बहुधा खड़ा ही रहना पड़ता है) या अनारकली के जनाकीर्ण बाज़ार में से होकर निकलता हूँ तब मैं देखता हूँ कि इन देवियों ने अपने केशकलाप को, अपने कपोलों को, अपनी पलकों को और अपने होंठों को सजाने में कई घंटे कड़ी मेहनत की होगी। मैं नहीं कहता कि यह समय और श्रम वे व्यर्थ गँवाती हैं, क्योंकि उनके दर्शन से मुझे एक विशेष सौन्दर्य-सुख प्राप्त होता है।

परन्तु जब वे कहती हैं कि हमें पुरुषों की स्वतन्त्रता, उनके दायित्व, उनके बल और उनके दूसरे लाभों को देखकर ईर्ष्या पैदा होती है तब मुझे क्षमा माँगते हुए कहना पड़ता है, उनको पता ही नहीं कि वे सुखी कब होती हैं। किन्तु आज तक किसी भी स्त्री ने अपनी गोद में स्त्रियों का सबसे भारी, सबसे सुखप्रद, सबसे हलका, और सबसे अधिक आनन्द-दायक भार—बच्चा—लिये हुए कभी यह नहीं कहा—"काश कि मैं पुरुष होती !"

———

चिट्ठी-पत्री

डाक्टर भगवान्दास और जात-पाँत

हाल में ही जात-पाँत के प्रश्न पर 'जात-पाँत-तोड़क मंडल' के प्रधान मंत्री श्रीयुत सन्तराम बी० ए० और डाक्टर भगवानदास में एक महत्त्वपूर्ण पत्रव्यवहार हुआ है अतएव उसे हम यहाँ श्रीयुत सन्तराम जी की अनुमति से प्रकाशित करते हैं।

जात-पाँत तोड़क मंडल, लाहौर
११-१-३६

पूज्यवर,

यद्यपि आपने अपने पहले पत्र में भी डा० अम्बेदकर के नाम लिखी अपनी चिट्ठी का उल्लेख किया था, परन्तु तब वह ट्रिब्यून में छपी न थी। इसलिए मैं उसके सम्बन्ध में कुछ न लिख सका था। अब कल, १० जनवरी के अंक में वह प्रकाशित हुई है। मैंने उसे बड़े ध्यान से पढ़ा है। आपने बहुत अच्छा लिखा है, विशेषतः आपका भाव बहुत सहानुभूतिपूर्ण है। मैं नहीं जानता, डा० अम्बेदकर की क्या राय होगी और वे आपको क्या उत्तर देंगे, परन्तु, मुझे क्षमा कीजिए, आपकी योजना मुझे करणीय नहीं जान पड़ती, आदर्श रूप में वह बेशक ठीक हो। यदि अछूत लोग अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहने भी लग जायँ, तो उनको कोई द्विज ब्राह्मण या क्षत्रिय मान नहीं लेगा। शुद्ध हुए अछूतों का नाम पंजाबी आर्य-समाजियों ने महाशय, भक्त, और आर्य रक्खा, परन्तु ये शब्द भी अछूत के पर्यायवाची ही बन गये, अछूतपन को कुछ कम नहीं कर सके। यही हाल 'हरिजन' शब्द का है। कोई जन्मना ब्राह्मण या जन्मना क्षत्रिय इन गुण-कर्म के ब्राह्मण-क्षत्रियों के साथ रोटी-बेटी या समता-बन्धुता का व्यवहार करने को तैयार नहीं होगा। फिर एक मुश्किल यह है कि यदि अछूत लोग अपने को ब्राह्मण-क्षत्रिय कहते हुए किसी सवर्ण हिन्दू के होटल में भोजन करते पकड़ लिये जायँगे तो उन पर धोका देने का अपराध लगाकर उनको दण्डित और साथ ही अपमानित भी होना पड़ेगा। सच पूछिए तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र शब्द के साथ जो उच्चता और नीचता का भाव चिपका हुआ है। वह दूर नहीं हो सकता। इन शब्दों को नष्ट कर डालने से ही हिन्दू-समाज का परित्राण सम्भव हो सकता है।

डा० अम्बेदकर को आपकी योजना पर चलने को कहने के बजाय उचित यह है कि आप द्विजों को कहें कि ब्राह्मणों में जो बनियों का काम करते हैं वे अपने को बनिया कहें और बनियों के साथ ही बेटी-व्यवहार करें। इसी प्रकार बनियों में जो कर्म से शूद्र हैं वे अपने को शूद्र कहें और शूद्रों के साथ ही बेटी-व्यवहार करें। यही सवर्ण-विवाह होगा। जब आपकी योजना द्विजों में चल जायगी तो अछूत इसे अपने आप ग्रहण कर लेंगे। यदि आप इसे द्विजों में प्रचलित नहीं करा सकते, तो अछूतों को उसे स्वीकार करने की सलाह देना उनको एक ऐसी दलदल में ढकेलना है जिससे वे कभी निकल ही न सकेंगे। आर्य-समाज ५० वर्ष से गुण-कर्म-स्वभाव की वर्ण-व्यवस्था की डफली पीट रहा है। पर क्या इस लंबे काल में वह एक भी जन्मना ब्राह्मण या क्षत्रिय को शूद्र बना सका? वैसे कथन-मात्र के लिए किसी संस्कृतज्ञ जन्मना शूद्र को पण्डित या ब्राह्मण कह देना कुछ भी अर्थ नहीं रखता, जब तक कि सामाजिक रूप से उसे ब्राह्मण लोग अपने में नहीं मिलाते। आपको याद होगा, कुछ वर्ष हुए, काशी के 'आज' ने आपको ब्राह्मण लिख दिया था। इस पर 'ब्राह्मण-समाचार' बहुत बिगड़ा था और उसने आपको 'ब्राह्मण' बनने की आकांक्षा छोड़कर 'वैश्य' ही बना रहने का उपदेश दिया था। तब आपने अपने गुण, कर्म और स्वभाव की पड़ताल का विफल प्रयत्न करने के बाद लिखा था कि मैं निश्चय नहीं कर सकता कि मेरा वर्ण क्या है। जब आप जैसे विद्वान्

अपने गुण-कर्म-स्वभाव की पड़ताल करके अपने वर्ण का ठीक ठीक निश्चय करने में असमर्थ हैं, तो बताइए साधारण अल्प शिक्षित या अशिक्षित हिन्दू, और विशेषतः अछूत लोग, अपने वर्णों का निश्चय कैसे कर सकेंगे ? मेरी राय में भारत की महाव्याधि को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है वर्ण-व्यवस्था का विध्वंस। इस समय गुण-कर्म की वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करना दूसरे शब्दों में जन्मना वर्ण-व्यवस्था को बनाये रखने में सहायता देता है। गुण-कर्म-स्वभाव को तोलने की तराज़ू न किसी के पास है और न कोई द्विज इसे मानने के लिए तैयार है। किसी जन्मना ब्राह्मण या वैश्य को जिसे आप कर्मणा शूद्र समझते हैं, क्रियात्मक रूप से अपने को शूद्र मानने पर आप कभी राज़ी नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में यही अच्छा है कि मौक़े की महत्ता को समझते हुए आप जन्मना और कर्मणा के झगड़े को छोड़कर इस वर्ण-व्यवस्था की गन्दगी को एकदम नष्ट कर डालने का यत्न कीजिए। यह गन्दगी साफ़ हो जाने के बाद फिर गुणी के सच्चे गुणों की क़द्र अपने आप होने लगेगी। आपका—सन्तराम

विश्राम, चुनार
१६-१-३६

नमस्कार,

आपका पत्र, ता० ११-१-३६ का मिला—

आपकी शंका ठीक है कि मेरी योजना, आदर्श होकर भी 'करणीय' अर्थात् व्यवहार्य नहीं होगी। पर क्या आपका केवल निषेधात्मक, अतः अन्-आदर्श, 'जात-पाँत-तोड़क' आयोजन, कुछ भी व्यवहार्य हो रहा है ? यदि हाँ, तो मैं भी उसी पर ज़ोर दूँगा। यदि नहीं, तो 'अन्-आदर्श और अव्यवहार्य' से 'आदर्श और अव्यवहार्य' अच्छा है।

अम्बेदकर जी की चिट्ठी में मैंने 'विकल्प' रूप से यह भी लिख दिया है कि यदि 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय', आदि शब्दों को अब बिलकुल ही रूढ़ियों के कारण भ्रष्ट समझो तो दूसरे शब्दों का प्रयोग करो।

अपने को 'ब्राह्मण' आदि 'ऊँची' जाति माननेवाले लोग 'बनिया' आदि कहने में अधिक संकोच करेंगे। इसलिए (यद्यपि उनसे भी कह रहा ही हूँ—यह तो आपको विदित होना चाहिए) 'छोटी' 'जाति' कहलानेवालों से अधिक आशा रखता हूँ कि वे अपने को 'ऊँची' जाति के नाम से पुकारने में कम संकोच करेंगे। 'रोटी-बेटी' का सवाल 'कर्मणा वर्णः' के साथ कम उठता है। जब तक स्त्रियाँ 'जीविका' न कमावें, तब तक उनका 'वर्ण' तो जो पति का 'वर्ण' हो वही हो जायगा। 'कर्म' का अर्थ यहाँ 'जीविका कर्म' है—इस पर आप ध्यान दें। अम्बेदकर जी की चिट्ठी में इसको स्पष्ट लिखा है। 'स्वभाव, गुण, कर्म' तौलने की तराज़ू की ज़रूरत 'जीविका कर्म में लगाने से पहले अध्यापकों को चाहिए (vocational guidance के लिए)। जब 'जीविकोपार्जन' में लग गया तब उसी से उसके वर्ण का निर्णय हो गया। जैसे Dr. So & So, Professor So & So, Captain So & So, Farmer So & So. (शर्मा, वर्मा आदि)।

यदि 'अछूत' लोग, आपस का अछूतपन छोड़कर, घोषणा कर दें कि आज से हमने 'कर्मणा वर्णः' का सिद्धान्त स्वीकार किया, और इसी पर अपना 'वर्ण' नाम रक्खेंगे, तो फिर किसी को यह कहने का अवसर या धार्ष्ट्य नहीं हो सकेगा कि ये धोखा दे रहे हैं। आपकी शंकाओं के इन समाधानोंपर ध्यान दीजिएगा—

शुभचिंतक—भगवान्दास

× × ×

श्रद्धेय बाबू जी,

आपने 'जात-पाँत-तोड़क आयोजन को केवल निषेधात्मक, अतः अन्-आदर्श' लिखकर पूछा है कि क्या यह कुछ भी व्यवहार्य हो रहा है। उत्तर में निवेदन है कि यह आयोजन अन्-आदर्श नहीं। इसका उद्देश्य जन्ममूलक ऊँच-नीच के भाव को दूर करके हिन्दू-समाज में समता और बन्धुता लाना है। इसमें हमें सफलता भी हो रही है। हम सैकड़ों अन्तर्वर्णीय विवाह करा चुके हैं।

विनीत—सन्तराम

बिहारी के विषय में मत-भिन्नता

लेखक, पण्डित कामताप्रसाद गुरु



बिहारी का नाम क्या था ? वे ऊँचे दर्जे के कवि थे या नहीं ? उनके अश्लील दोहे उनके संग्रहों में रक्खे जायँ या नहीं और उनके दोहों का क्रम क्या हो आदि प्रश्न अभी तक हल नहीं हुए हैं। इस लेख में हिन्दी के वयोवृद्ध लेखक पंडित कामताप्रसाद गुरु ने इन्हीं सब प्रश्नों पर विचार करने के लिए संक्षिप्त पर महत्त्वपूर्ण सामग्री उपस्थित की है।



बिहारी हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि हैं। वृद्ध साहित्यज्ञ और तरुण रसज्ञ से लेकर साधारण विद्यार्थी तक उनके नाम और काव्य से थोड़े-बहुत परिचित हैं। इतना ही नहीं, अनेक विदेशी विद्वान् भी इस कवि और इसकी कविता से न्यूनाधिक परिचय रखते हैं। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक है कि भिन्न-भिन्न प्रकृति, प्रवृत्ति और रुचि के अनुसार बिहारी के विषय में लोग भिन्न-भिन्न मतवाले हों।

सबसे पहले कवि के नाम ही के विषय में मत-भिन्नता है। यह विरोध विशेषतया 'बिहारी-रत्नाकर' में पाया जाता है। जो 'बिहारी-सतसई' पर सबसे पिछली टीका है और दूसरी टीकाओं की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। रत्नाकर जी ने इनका नाम 'बिहारीदास' लिखा है। इस पुस्तक में जो चित्र छपा है उसके नीचे 'महाकवि श्रीबिहारीदास' लिखा गया है; पर राय बहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास के 'हिन्दी-भाषा और साहित्य' में जो 'बिहारी-रत्नाकर' से चार वर्ष पीछे प्रकाशित हुआ है उसी चित्र के नीचे (४५४ वें पृष्ठ के पश्चात्) 'बिहारीलाल' नाम छापा गया है। श्रीयुत दुलारेलाल भार्गव ने 'बिहारी-रत्नाकर' में जो सम्पादकीय निवेदन लिखा है उसमें उन्होंने टीकाकार का अनुकरणकर (११ वें पृष्ठ पर) कवि का नाम 'बिहारीदास' ही लिखा है—"सर्वप्रथम सुपरिचित, सहृदय सुकवि बिहारीदास की सुप्रसिद्ध सतसई का सुन्दर, सटीक और संशोधित संस्करण ही साहित्य-संसार की सेवा में समुपस्थित किया जाता है*"; पर आठ बरस पीछे (सं० १९९१ में) प्रकाशित की गई 'दुलारे-दोहावली' में प्रायः सर्वत्र 'बिहारीलाल' नाम का प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं, 'बिहारी-रत्नाकर' में जो पत्र-व्यवहार

* इस गद्यावतरण में (कदाचित् संगति-दोष से) आई हुई अनुप्रास-छटा दर्शनीय है।

छपा है उसमें भी 'बिहारीलाल' नाम आया है। ऐसी दशा में बहुमत 'बिहारीलाल' नाम ही के पक्ष में है। स्वयं कवि ने 'सतसई' में श्लेष-रूप से 'बिहारीलाल' नाम का उल्लेख किया है—

"इहिं बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल"।

'बिहारी-दास' नाम के आधार-भूत कुछ दोहे पाये जाते हैं, जिनमें से दो का उल्लेख 'बिहारी-रत्नाकर' में और शेष का अन्य टीकाओं में है। वे दोहे किसी अन्य कवियों के लिखे जान पड़ते हैं, क्योंकि उनमें बिहारीलाल की व्यक्ति-गत प्रशंसा अथवा परिस्थिति का वर्णन और साधारण पद्य-रचना है। उन दोहों से दूसरे (अप्रचलित) नाम की सिद्धि कठिनाई से होती है। वे दोहे ये हैं—

(१) सुचि-सिँगार में बूड़िकै भयो बिहारी-दास।
जग में फिरत उदास अब सुकवि बिहारीदास॥

(२) किये सात सौ दोहरा सुकवि बिहारी-दास।
बिनहिं अनुक्रम ये भये महि-मंडल सुप्रकास॥

(३) कविता सों मन हटि गयो, लग्यो कान्ह सों ध्यान।
लाल-बिहारी ह्वै गये दास-बिहारी मान॥

(४) ब्रज-भाषा बरनी कविन बहु विधि बुद्धि-विलास।
सबकी भूषन सतसई रची बिहारीदास॥*

दूसरा मत-भेद बिहारी के 'महाकवि' कहे जाने के सम्बन्ध में है। नवम्बर १९३५ की 'वीणा' के शब्दों में "हिन्दी में हर एक बात बड़ी सरलता से मिल जाती है। साधना और तपस्या तो हिन्दीवालों के लिए आवश्यक ही नहीं। आचार्य और सम्राट् तो हिन्दी में नित्य पैदा होते हैं। उसके लिए न तो कोई विशेष कसौटी है और न कोई विशेष योग्यता की ही ज़रूरत समझी जाती है। हिन्दी के कितने ही लोग उस समय से सम्राट् हैं जब उन्हें शुद्ध हिन्दी लिखने का भी ज्ञान नहीं था"! स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्म्मा ने अनेक उदाहरण देकर और युक्तियों का प्रयोग करके बिहारी को 'महाकवि' सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया है। दूसरे टीकाकारों और समालोचकों ने बिहारी की कविता में जो दोष बताये हैं उनका भी उन्होंने परिहार कर दिया है और यहाँ तक कर दिया है कि "सतसई में किसे कहें कि यह सूक्ति है और यह साधारण उक्ति है! इस खाँड़ की रोटी को जिधर से तोड़िए, उधर से ही मीठी है। इस जौहरी की दूकान में सब ही अपूर्व रत्न हैं, बानगी में किसे पेश करें"! मिश्र-बन्धुओं ने उन्हें महाकवियों में तो स्थान दिया है; पर उनको 'काइयाँ' बताया है। श्रीयुत रमाशंकर-प्रसाद के 'संक्षिप्त बिहारी' में डाक्टर बेनीप्रसाद ने जो प्राक्कथन लिखा है उसमें वे कहते हैं कि "कई वर्तमान लेखकों ने बिहारी को हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में रक्खा है, पर यह अन्य कवियों के साथ अन्याय है, कविता पर बलात्कार है। बिहारी का क्षेत्र इतना संकुचित है, विचारों का इतना दौर्बल्य है, उसकी स्वाभाविक प्रतिभा कृत्रिम नियमों के नीचे ऐसी दब गई है कि वह साहित्य में इतना ऊँचा स्थान नहीं पा सकता"। प्रायः इसी से मिलती-जुलती सम्मति राय बहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास की है जो अपने 'हिन्दी-भाषा और साहित्य' में लिखते हैं कि "बिहारी उस श्रेणी के समीक्षकों में सबसे अधिक प्रिय हैं जो अलग-अलग दोहों की कारीगरी पर मुग्ध होते और बात की करामात पसन्द करते हैं। सौन्दर्य और प्रेम के सुन्दरतम चित्र बिहारी ने खींचे हैं; पर अलंकरण की ओर उनकी प्रवृत्ति सबसे अधिक थी। उनकी कविता आवश्यकता से अधिक नपी-तुली हो जाने के कारण सर्वत्र स्वाभाविकता-समन्वित नहीं है। बिहारी ने घाट-बाट देखने में जितना परिश्रम उठाया होगा, उतना वे यदि हृदय की टोह में करते तो हिन्दी-कविता उन्हें पाकर अधिक सौभाग्य-शालिनी होती।"

* स्व० पं० पद्मसिंह शर्म्मा ने इस दोहे को 'विलास' के बदले 'विसाल' और 'दास' के स्थान में 'लाल' करके अपनी 'बिहारी की सतसई' में छापा है, अर्थात् 'बिहारी-दास' का 'बिहारीलाल' किया है।

ऊपर हिन्दुस्तानियों (हिन्दी-भाषियों) की सम्मतियाँ दी गई हैं। अब एक मुसलमान सज्जन की सम्मति दी जाती है, जिनका शुभ नाम डाक्टर जाफ़र हसन है। आप हैदराबाद 'दकन' के उसमानिया-विश्वविद्यालय में अध्यापक और हिन्दी-ज्ञाता हैं। आपने अपनी 'मुन्तख़बात-हिन्दी-कलाम' नामक उर्दू-पुस्तक में पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा की तरह बिहारी के एक दोहे* की तुलना मिर्ज़ा ग़ालिब और शेख़ सादी के शैरों से करके बिहारी के दोहे को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। डाक्टर साहब अपनी भाषा में लिखते हैं कि "अब ग़ौर फ़र्माइए कि मिर्ज़ा ग़ालिब के शैर में माशूक़ के आने से मुँह पर रौनक़ आ जाती है और सादी के शैर में माशूक़ के आने से ग़मे-दिल काफ़ूर हो जाता है, मगर बिहारी के दोहे में महज़ माशूक़ के आने की ख़ुश-ख़बरी से आशिक की हालत बदल जाने का यक़ीन है। मेरे नज़दीक तो शाइर ने नाज़ुक-ख़याली की हद कर दी! इसके अलावा बिहारी ने जिन हिन्दी-महावरात को नज़्म किया है—जिस बंदिश की सफ़ाई और शौकत-अलफ़ाज़ से काम लिया है, इसका ज़िक्र करना ही फ़िज़ूल है।"

अब हिन्दी के अँगरेज़ विद्वानों की राय सुनिए। डाक्टर ग्रियर्सन साहब जिन्होंने लल्लूजी लाल की 'लाल-चंद्रिका' नामक टीका का एक संस्करण निकाला है, एक जगह लिखते हैं कि "मैंने बिहारी के दोहों का अनुवाद अँगरेज़ी में करने का प्रयत्न किया; पर मुझे मालूम हुआ कि मूल का आधा रस मार्ग ही में बह जाता है।" डाक्टर साहब का मत है कि "काव्य-कला के सम्बन्ध में सबसे प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक बिहारीलाल चौबे हैं।" विलायती विश्व-कोष के नवें संस्करण में स्वर्गीय जे० टी० प्लाट्स महोदय ने (जो हिन्दुस्तानी-कोष और व्याकरण के रचयिता हैं) बिहारीलाल के विषय में लिखा है कि "बिहारीलाल सतसई की रचना के कारण प्रसिद्ध हैं। यह सात सौ दोहों का संग्रह हिन्दी-काव्य-कला का बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है, यद्यपि इसमें वर्णनात्मक और सरल रचना-शैली नहीं है। वैष्णव-धर्म-गत कृष्णो-पासना की प्रेरणा से इन दोहों की सृष्टि हुई है, जो राधा और दूसरी गोपियों तथा उनके वल्लभ के बीच प्रणय-संवाद के समान हैं।"

ये सब सम्मतियाँ बिहारी और उनकी कविता के प्रायः अनुकूल हैं; परन्तु काशी के पादरी ग्रीव्ज़ साहब ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के संक्षिप्त इतिहास' में* इस विषय पर बहुत ही प्रतिकूल मत प्रकट किया है, जिसका खंडन-मण्डन करना हिन्दी के प्रत्येक उत्तरदायी समालोचक का कर्त्तव्य होना चाहिए। पादरी साहब लिखते हैं कि "निस्संदेह बिहारी में अनेक चुने हुए सुन्दर शब्दों को सुडौलपन से दोहे में जमाने की विलक्षण योग्यता थी, पर प्रश्न यह है कि क्या इतने ही से कोई लेखक कवि हो सकता है? यदि बिहारीलाल के पास सचमुच में कुछ कहने को होता, यदि वे अपने हृदय का उतना प्रदर्शन करते जितना उन्होंने मस्तिष्क का किया है, तो वे महाकवि हो जाते। जो हो, उनके ७०० वा ७२६ दोहे बड़ी चतुराई की पद्य-रचना के उदाहरण हैं; परन्तु जब उन सबको जोड़ते हैं, तब वे ग्रंथकार को महाकवि बनाने में असमर्थ पाये जाते हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक कह सकते हैं कि यह लेखक कवि ही नहीं है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो केवल ढाँचा बना सकते हैं; पर पूरा चित्र नहीं उतार सकते। ऐसे लोग केवल कला-कुशल कहला सकते हैं; उनकी गणना बड़े चित्रकारों में नहीं हो सकती। जो लोग बिहारी के लिए ऐसी पदवी का दावा करते हैं उन्हें इस दृष्टान्त पर विचार करना चाहिए। दूसरा दुर्भाग्य यह है कि कई एक दोहे ऐसे तुच्छ विषयों

* जो वाके तन की दसा देख्यो चाहत आप।
तो बलि नेकु विलोकिए चलि औचक चुपचाप॥

* A Sketch of Hindi Literature.

पर हैं कि यदि उन पर कविता न की जाती तो संसार की कोई हानि न होती। फिर कुछ विषय तो ऐसे हैं कि उन पर ध्यान न देना ही अच्छा था। सारांश यह है कि बिहारीलाल ने हिन्दी-साहित्य को न ऊपर उठाया है और न आगे बढ़ाया है।"

तीसरी मत-भिन्नता बिहारी की कविता के विषयों से सम्बन्ध रखती है। पादरी ग्रीव्ज़ के मतानुसार बिहारी के ७२६ दोहों में से लगभग ६०० दोहों में स्त्री-पुरुषों के कामुक सम्बन्ध, स्त्रियों की शारीरिक सुन्दरता, श्रीकृष्ण के रूप की मनोहरता और इसी प्रकार के दूसरे विषयों का वर्णन है। शेष १०० दोहों में ज्ञान, भक्ति और नीति के प्रायः वैसे ही उपदेश हैं जैसे और कवियों ने लिखे हैं। इन कामुक और अश्लील विषयों का समर्थन करते हुए पंडित पद्मसिंह शर्मा लिखते हैं कि "जो बात जैसी है, कवि उसका वैसा वर्णन करने के लिए विवश है। शृङ्गार की सामग्री—तत्सम्बन्धी नाना प्रकार के दृश्य जब जगत् में प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं, तब कवि उनकी ओर से आँखें कैसे बन्द कर लें? तद्विषयक वर्णन क्यों न करें? फिर कवि ही ऐसा करते हों, केवल वे ही इस 'असभ्याभिधान' अपराध के अपराधी हों, यह बात भी नहीं। राजशेखर कहते हैं कि इस प्रकार का वर्णन जिसे तुम असभ्य और अश्लील कहते हो, श्रुतियों और शास्त्रों में भी तो पाया जाता है।" इधर 'संक्षिप्त बिहारी' के लेखक ने जिन्होंने अपनी यह पुस्तक महाविद्यालयों के लिए लिखी है, उसमें प्रेम और विरह के सैकड़ों दोहों का संग्रह किया है, तो भी आपकी शिकायत है कि "स्थान-स्थान पर इनके दोहों में ऐसी बातें आ जाती हैं जिनका स्पष्ट रूप से वर्णन करने में बड़ी हिचकिचाहट होती है। कहीं-कहीं ऐसे पद लिखे हैं जो अविवाहित पाठकों के लिए दुर्बोध्य हैं। कतिपय दोहों का पठन करना बालक-बालिकाओं के लिए असामयिक हो जाता है, जिससे उनके आचार-विचार पर अस्पृहणीय प्रभाव पड़ने की अधिक आशंका रहती है। प्रेमिका-सम्बन्धी बातें इतनी स्पष्टता से दिखलाई गई हैं कि उनका पढ़ना अनेक पाठकों को हानिकारक हो सकता है"।

सतसई के विषयों के सम्बन्ध में दो-तीन सुधार तो बहुत ही आवश्यक हैं। एक तो इस पुस्तक के अगले संस्करणों में वे दोहे* छोड़ दिये जायँ जो अश्लीलता की पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं और जिन्हें इस लेख में लिखना भी अश्लील समझा जायगा। दूसरे टीकाकार अन्य अश्लील दोहों का अर्थ न लिखें। तीसरे स्त्री-विद्यार्थियों के लिए (कालेजों में) अश्लील दोहे न नियत किये जायँ। इसके सिवा परीक्षक लोग विद्यार्थियों से नायिका-भेदवाले दोहों का विवरण, व्याख्या, अर्थ आदि न पूछें।

चौथा मत-भेद सतसई के शब्दों के शुद्ध रूपों के विषय में है। बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इन शब्दों का रूप, व्याकरण की दृष्टि से, निश्चित करने में बड़ा परिश्रम किया है; पर ये सब रूप जयपुर तथा उदयपुर में प्राप्त हुई प्रतियों के हैं, जहाँ व्रजभाषा नहीं बोली जाती। फिर जो एकता उन्होंने स्थापित की है वह सर्वत्र नहीं पाई जाती। उदाहरणार्थ ये दोहे देखिए—

१—आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घस्यौ खरो पूस-दिन-मानु॥
२—रनित-भृङ्ग-घंटावली झरित दान मधु-नीरु।
मंद-मंद आवतु चल्यौ कुंजर-कुंज समीरु॥

इन दोहों में एक जगह 'आवत' और दूसरी जगह 'आवतु' है। इसी प्रकार 'मान' का तो 'मानु' हो गया; पर 'दान' का 'दान' ही रहा। अब पहले दोहे के शब्द-रूपान्तर को पंडित पद्मसिंह शर्मा और लाला भगवानदीन के पाठों से मिलाइए—

आवत जात न जानिये, तजि तेजहिं सियरान।
घर हि जमाई लौं घस्यौ खरौ पूस दिन मान॥
—पं० पद्मसिंह शर्मा

* लाला भगवानदीन की 'बिहारी-बोधिनी' के क्रमानुसार ३३१—३४६ नम्बरवाले।

आवत जात न जानिये तेजहिं तजि सियरान।
घरहिं जँवाई लौं घर्यौ खरो पूस दिन मान॥
—लाला भगवानदीन

यहाँ इस बात का निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है कि कौन-सा रूप शुद्ध है और क्यों, पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि पिछले दोनों दोहों में सम्पादन-कला की कुदृष्टि से सामासिक शब्द (संयोजक चिह्न-द्वारा) मिलाकर नहीं छापे गये।

पाँचवीं मत-भिन्नता दोहों की संख्या के सम्बन्ध में है। अभी तक टीकाकारों ने इन दोहों की पूर्ण संख्या ७२५ वा ७२६ मानी है, जिसमें से लगभग १०-१२ दोहे संदिग्ध होने के कारण किसी-किसी पुस्तक में 'अधिक दोहे' के नाम से परिशिष्ट के रूप में छापे गये हैं। इन अधिक दोहों की संख्या बढ़कर 'बिहारी-रत्नाकर' में १४३ हो गई है! कहीं-कहीं ऐसा भी हुआ है कि जिन दोहों को एक टीकाकार ने बिहारी-कृत माना है उन्हें दूसरे ने क्षेपक समझ लिया है। जिस दोहे में 'बिहारीलाल' के बदले 'बिहारीदास' नाम आया है उसमें तो 'सात-सौ दोहरा' की स्पष्ट सूचना है।

सतसई के दोहों के क्रम के सम्बन्ध में भी मत-भेद है; पर इस विवाद के निर्णय में विशेष कठिनाई नहीं है। पाठक लोग बहुधा उसी क्रम को पसंद करते हैं जिसमें उन्हें किसी विषय को खोजने तथा उसका प्रसंग और अर्थ समझने में सरलता होती है। मेरी समझ में 'बिहारी-बोधिनी' का विषयानुसारी क्रम सबसे अच्छा है। इस पुस्तक में विषय-सूची के साथ प्रत्येक दोहे की प्रथम पंक्ति की अनुक्रमणिका अकारादि क्रम से दी गई है और शब्द-कोश में प्रत्येक शब्द के साथ उसके दोहे का अंक भी दे दिया गया है। सुसम्पादित ग्रंथ में विषय को बोध-गम्य कराने के लिए बहुधा अनेक प्रकार की सूचियाँ और अनुक्रमणिकायें दी जाती हैं।

उपर्युक्त मत-भेदों के कारण यह आवश्यक प्रतीत होता है कि बिहारी के भावी टीकाकार उनकी सतसई का एक ऐसा निर्दोष और सटीक संस्करण प्रकाशित करावें जिस पर, अधिकांश में, कोई किसी प्रकार का आक्षेप न कर सके और जिसमें बिहारी की भारती दुर्व्याख्या के विष से मूर्छित न हो।

आशा है कि बिहारी के वर्तमान पाठक, टीकाकार और प्रकाशक इस विषय पर विचार करने की कृपा करेंगे।

सागर-लहरीं

लेखक, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झरझर झरतीं, सागर-लहरीं।
क्या यह हैं सुखपूर्ण उमङ्गें?
सागर की उन्मत्त तरङ्गें?
या हैं ये आतपमय स्वासें,
आहें निधि के व्यथित हृदय की?
अश्रु-हासमय क्रीडा करतीं,
अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झरझर झरतीं सागर-लहरीं।

होगीं हर्षित हृदय-तरङ्गें,
निज प्रेयसि प्रति प्रेम-उमङ्गें,
आह-पूर्ण प्रेमी की क्रीडा,
प्रेयसि! देखो सागर-तट पर!

जग को प्रेम-गान से भरतीं
अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल,
झरझर झरतीं सागर-लहरीं।

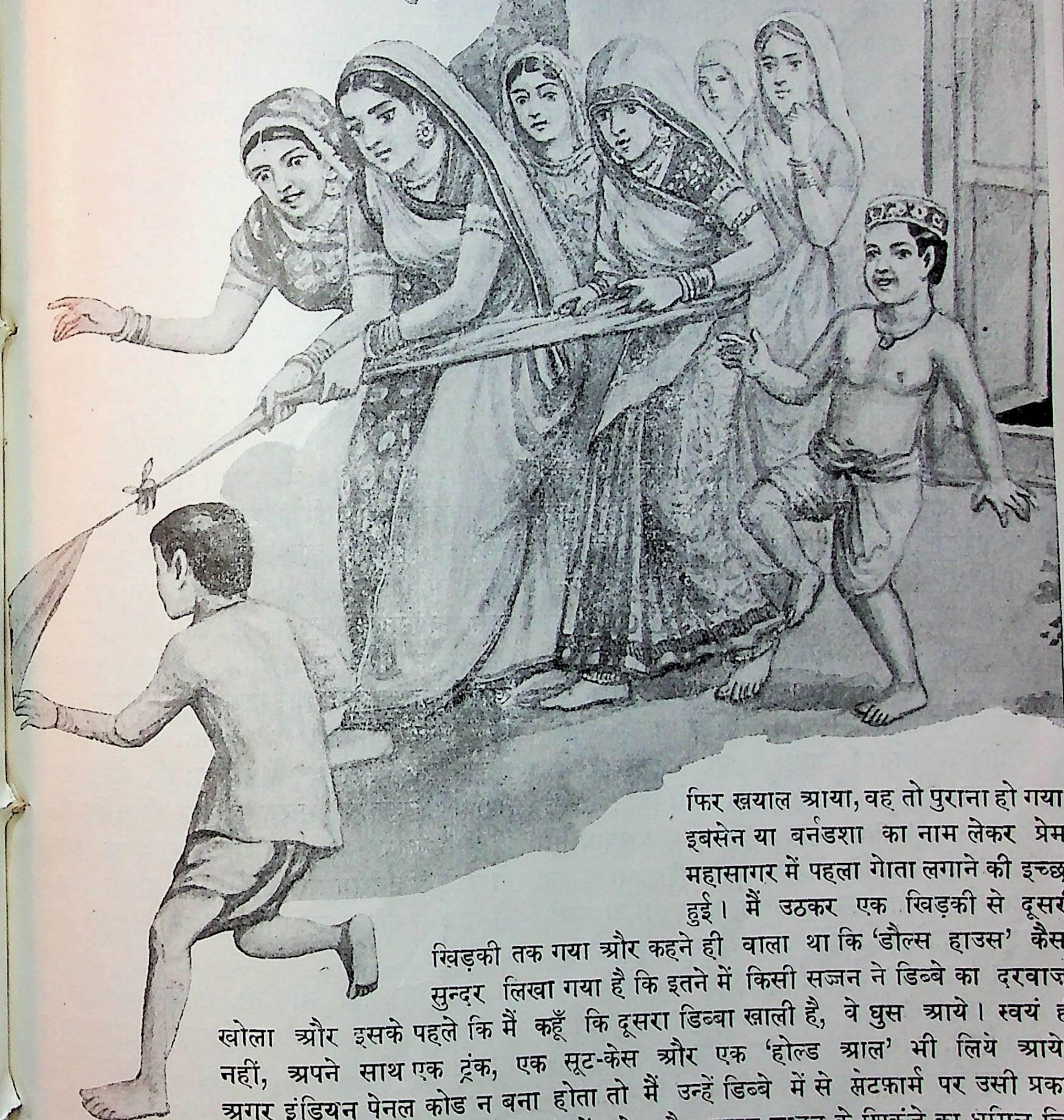
कहिए भेंट हुई ?

लेखक, श्रीयुत कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम० ए०, एल-टी०

ज्यों ज्यों बनारस छावनी का स्टेशन नज़दीक आता जाता था, मेरे हृदय की वही अवस्था हो रही थी जो ब्राह्मण-भोजन का समय निकट होने के समय निमंत्रित ब्राह्मण की होती है। वह कैसी होगी, कर में कितनी कोमलता होगी, नयन कमल-से होंगे कि नरगिस-से, बाल कितने फ़ुट लम्बे होंगे, लंक में कितनी लचक होगी—फ्रेंच कमानी-सी कि अमेरिकन, इसी उधेड़-बुन में मैं तल्लीन था। जब बरेली से हम लोग चले तब और लोग तो दूसरी गाड़ी में बैठे, पर हम और वह इंटरक्लास में। जब हम लोग सवार हुए, डिब्बा ख़ाली था। मैंने सोचा बाज़ी मार ली है। बनारस तक ख़ूब बातें होंगी। अभी सोच ही रहा था कि कैसे आरम्भ करूँगा। पहले सोचा कि बिहारी का एक दोहा कहकर हिन्दी-साहित्य के उद्भट विद्वान् होने की सूचना देते हुए परिचय आरम्भ करूँगा। फिर सोचा, कहीं वह यह न समझ ले कि बड़ा कुरुचिपूर्ण मनुष्य है। सम्भव है, हिन्दी-नवरत्न पढ़ा हो। तब तो और भी कठिनाई होगी। पहला ही अनुभव कटु हुआ तो सारी ज़िन्दगी कुनैन की पुड़िया हो जायगी। सोचा कि शेक्सपियर से आरम्भ करूँ।



"ख़ैरियत यह हुई कि किसी के ऊपर नहीं गिरा"



फिर ख़याल आया, वह तो पुराना हो गया। इबसेन या बर्नडशा का नाम लेकर प्रेम-महासागर में पहला गोता लगाने की इच्छा हुई। मैं उठकर एक खिड़की से दूसरी खिड़की तक गया और कहने ही वाला था कि 'डौल्स हाउस' कैसा सुन्दर लिखा गया है कि इतने में किसी सज्जन ने डिब्बे का दरवाज़ा खोला और इसके पहले कि मैं कहूँ कि दूसरा डिब्बा ख़ाली है, वे घुस आये। स्वयं ही नहीं, अपने साथ एक ट्रंक, एक सूट-केस और एक 'होल्ड आल' भी लिये आये। अगर इंडियन पेनल कोड न बना होता तो मैं उन्हें डिब्बे में से सेटफ़ार्म पर उसी प्रकार फेंक देता, जैसे अंजन धुआँ भक् से फेंक देता है। परन्तु क़ानून के शिकंजे का धूमिल चित्र मेरी चश्मा-युक्त आँखों के सामने आगया और मैं मन में गालियों का पहाड़ा पढ़ते हुए बैठ गया। गाड़ी चल पड़ी।

ठंडी हवा लगने से क्रोध का पारा कुछ नीचे गिरा और राबर्ट ब्रूस की भाँति मैंने एक बार हिम्मत की और पूछा, 'महाशय, आप कहाँ तशरीफ़ ले जायँगे ?'

'मैं बनारस जाऊँगा'—हँसते हुए आनेवाले महाशय ने उत्तर दिया।

सारा उत्साह बासी भात के समान ठंडा हो गया। मैंने अपनी क़िस्मत ठोंकी। मुँह तो उस दिन मैंने सवेरे आइने में अपना ही देखा था, क्योंकि सब कार्यों से पहले मैंने नये ब्लेड से दाढ़ी बनाई थी। अब लोग समझ सकते हैं कि मेरी क्या हालत हुई होगी। बनारस का स्टेशन निकट आने पर मेरी जान में थोड़ी जान आई। अब तो घर पहुँचना ही था, और प्रथम सम्मेलन का स्वप्न देखने लगा। मेरे लिए असेम्बली अथवा कौंसिल आफ़ स्टेट का चुनाव अथवा वाइसरीगल लाज का डिनर सब वही था।

ज्यों ही गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर लगी, मैं उसका हाथ पकड़कर गाड़ी से उतारने ही वाला था कि और डिब्बों से बराती लोग आ गये। चलिए, यह भी नसीब में न था। क्रोध तो अवश्य आया, परन्तु अब घर आ ही रहा था। दो-चार घण्टों की बात थी, फिर तो बातों का सिलसिला चेरापूँजी की बरसात की भाँति आरम्भ ही होगा। स्टेशन पर एक सेकंड भी ठहरना मुझे उतना ही ख़राब मालूम होता था जितना किसी के घर भोजन करने के पश्चात् ठहरना; और वहाँ तो लोगों को, मालूम होता था, घर ही नहीं जाना है। असबाब ही सहेजने में सारा दिन समाप्त होना चाहता था। एक आदमी एक बार एक ट्रंक गिन जाता था तो दूसरे साहब आते थे, कहते थे, 'क्यों रामू, सब ट्रंक गिन डाले? एकतीस हैं न? वह चाकोलेट कलरवाला ट्रंक नहीं दिखाई देता। गुलाबपाश वग़ैरह उसी में हैं। देखो, मैं गिनता हूँ'। मेरा विश्वास दृढ़ हो रहा था कि गिनने की यह क्रिया-प्रक्रिया यदि जारी रही तो हम लोगों को स्टेशन से लौटने का समय उसी वक़्त आयेगा जब फिर ब्रिटिश पार्लियामेंट भारतीय शासन-पद्धति को दोहराने के लिए तैयार होगी। मैंने एक बहाना सोचा। मैंने कहा, मेरे सिर में चक्कर आ रहा है, और मालूम नहीं, कैसी तबीयत हो रही है। मैं गाड़ी पर तब घर चलूँ। मुँह भी मैंने ऐसा बनाया कि मालूम होता था कि अब गिरा। और किसी को तो कोई आपत्ति थी नहीं। मेरी श्रीमती महोदया दाई के साथ दूसरी ओर मुँह किये खड़ी थीं, मानो स्टेशन का इंस्पेक्शन करने के लिए डी० टी० एस० ने उन्हें भेजा है। मैं चलने को तैयार हुआ कि एक बूढ़े महानुभाव मेरे सामने आये और बोले—'सब जगह लड़कपन अच्छा नहीं होता। आख़िर यह गौना है, कोई खिलवाड़ नहीं है। आप पहले कैसे चले जायँगे? कुछ तो हिन्दू-धर्म की रक्षा करो। अँगरेज़ी पढ़ने से सब तो चौपट हो ही गया।'

मेरे शरीर में वेस्यूवियस ज्वाला-मुखी के समान आग धधकने लगी। मैंने बहुत सँभाल कर कहा—'मेरे सिर में बड़े ज़ोरों का चक्कर आ रहा है। मैं अधर्म क्या कर रहा हूँ? कहिए तो मैं दो-चार महीने तक स्टेशन में ही बैठा रहूँ।' बूढ़े सज्जन ने कहा—'मेरे पास लवणभास्कर चूर्ण है, खा लो। सिर का चक्कर पेट की ख़राबी से आता होगा। ससुराल में अंड-बंड खाया होगा। मेरी दाल गली नहीं—गलना तो दूर रहा, गरम भी नहीं हुई। यह तो मैं जानता ही था कि घर जल्दी या देर में पहुँचूँगा ही, परंतु मालूम नहीं क्यों उत्सुकता भारत के ऋण की भाँति बढ़ती ही चली जा रही थी। तो भी सारा प्रबंध करने में दो घण्टे के लगभग लग गये। मुझे मालूम हुआ कि दो साल से कम न लगे होंगे। किसी किसी प्रकार घर पहुँचे।

घर पर बड़ी भीड़ थी, मानो कांग्रेस का कोई अधिवेशन मेरे ही घर पर होनेवाला है। बड़े आदर-सत्कार से मेरी श्रीमती जी गाड़ी से उतारी गईं। घूँघट तो ट्रेन पर भी था, परंतु स्टेशन से घर तक आने में, मालूम होता है, गंगा की सन् १६ की

बाढ़ की भाँति बढ़ गया था। और इतना बढ़ गया था कि यदि रात में देखा जाता तो हाथी नहीं तो हाथी के बच्चे की सूँड का भ्रम तो अवश्य ही हो जाता। उन्हें देखने के लिए चारों ओर से निगाहों का 'फ़ोकस' पड़ने लगा, जैसे 'ज़ू' से कोई विचित्र जंतु भाग आया हो। मुझे तो कोई पूछता भी नहीं था। लोग पहचानते थे या नहीं, इसका भी कुछ मुझे संदेह होने लगा।

रेल पर श्रीमती जी लाल गठरी-सी प्रतीत होती थीं, परंतु घर में इस समय तो कुछ अजीब रंग था। यद्यपि दृष्टिकूट कविता की भाँति आवरण-युक्त उन्हें मैं देख नहीं सका, परन्तु गाड़ी से उतरते समय मैंने यह देख लिया कि उनकी दाहनी कलाई में सोने की एक घड़ी है। दाहनी कलाई में घड़ी का होना बिलकुल 'अप-टु-डेट' होने का चिह्न है। ज्यारजेट की साड़ी पर खद्दर की घूँघट-युक्त चादर, पैर में कड़ा और छड़ा, उस पर पूना का चप्पल, कलाई में कड़ा और आठ-आठ चूड़ियाँ, उस पर रिस्टवाच, पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों के अनुपमेय सम्मेलन की छटा दिखा रही थी। मुझे यह देखकर बड़ी आशा हुई कि लीग आफ़ नेशन्स के विशिष्ट आशीर्वाद से विभिन्न मानव-जातियों की संस्कृति का यदि ऐसा ही मिलाप रहा तो आगे युद्ध होने की सम्भावना नहीं है।

जिस द्वार से हम लोगों को घर में प्रवेश करना था, वहाँ स्त्रियों की बड़ी भीड़ थी, जिसमें पाँच साल की बालिका से लेकर साठ साल की वृद्धा तक सभी प्रकार के 'माडल' थे। द्वार पर पैर रखते ही एक वृद्धा ने मेरी स्त्री के कोमल कपाल के चारों ओर एक बृहदाकार मूसल घुमाना आरम्भ किया। पूछने पर बाद को पता चला कि भारतीय संस्कृति की रक्षा के निमित्त यह 'कपाल-क्रिया' की जाती है। हिन्दी में इसको 'परछन' कहते हैं। मैंने इस पर बहुत विचार किया। अँगरेज़ी विवाहों में गिर्जाघर से निकलने पर वर-वधू पर स्लीपरों की कोमल वर्षा की जाती है। मेरी समझ में दोनों का अभिप्राय एक ही है। भावी जीवन में घर की मालकिन जिस वस्तु का उपयोग करें उसी की यह शिक्षा होती है। भेद केवल वस्तु का है—विलायत में स्लीपर, भारत में मूसल। एक महामहोपाध्याय जी से भी मैंने इस विषय पर प्रश्न किया था। उन्होंने अनेक पुराण, गृह्य-सूत्र और महाभाष्य से मनोहर संगीतमय उद्धरण सुनाते हुए कहा कि इसका अभिप्राय यह है कि जीवन में उन्हें अब गार्हस्थ्य-धर्म धारण करना है। मैं तो समझता हूँ कि धर्मराज युधिष्ठिर और महाराज विक्रमादित्य के ज़माने में सम्भवतः यह बात ठीक रही हो। परन्तु अब समय बदल गया है। यदि 'परछन' का अभिप्राय भावी जीवन की ही ओर संकेत करना है तब तो आज-कल किसी सुन्दर उपन्यास और किसी बढ़िया फ़िल्म से 'परछन' होनी चाहिए, क्योंकि बीसवीं शताब्दी में गृहस्थी में उपन्यास पढ़ने और सिनेमा देखने से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य मुझे नहीं सूझ पड़ा।

परछन के पुनीत प्रकरण के पश्चात् पाँवड़े पर मंद-मंद गति के साथ श्रीमती जी अपने पद-पद्मों का परिचालन करने लगीं। मैं पीछे पीछे उसी प्रकार चल रहा था, जैसे दिल्ली-दरबार में वाइसराइन महोदया के गाउन का पुच्छला हाथों में उठाये हुए भारतीय नरेशों के राजकुमार चला करते हैं। भेद इतना ही था कि मुझे हाथ में उठाने के लिए कोई वस्तु न थी। मेरा महत्त्व भी उस समय कुछ नहीं था; लोग मेरी ओर देख भी नहीं रहे थे, यद्यपि मेरी शेरवानी उनकी साड़ी से थोड़ी ही कम क़ीमत की रही होगी। घर के भीतर प्रवेश करने पर हम लोगों को लोग एक कमरे में ले गये, जिसे साहित्यिक भाषा में देवताओं का घर कहते हैं। यह घर देखकर आप कह सकते हैं कि हमारे हिन्दुओं के देवता बिना साँस लिये जी सकते हैं, क्योंकि इस कोठरी में 'वेंटिलेशन' के लिए कहीं पिन के बराबर भी छेद नहीं था। यदि विज्ञान का कोई प्रयोग 'वैकुअम' में करना हो तो यह कोठरी

काम में लाई जा सकती थी और अँधेरी तो इतनी थी कि विना दरवाज़ा बन्द किये कोई फ़ोटोग्राफ़र इससे डार्क-रूम का काम ले सकता था। वहाँ क्या क्या हुआ, मैं नहीं कह सकता। जो कुछ हुआ उसे लोग पूजा के नाम से पुकारते थे। मैंने जिसने स्वास्थ्य-विज्ञान पर योरप के बड़े बड़े धुरन्धर विद्वानों की पोथियाँ पढ़ डाली थीं, ज़रा भी एतराज़ नहीं किया कि यह कमरा किसी मनुष्य के रहने योग्य है कि नहीं, देवता भले ही रहें। भारतीय रस्म-रवाज का टोना इस प्रकार मेरे ऊपर असर कर गया था कि मैं अकर्मण्य हो गया था। किसी प्रकार ज्यों ही पता चला कि पूजा-रूपी नाटक का ड्रापसीन गिरा, मुझमें कुछ चेतनता आई और मैं जल्दी से खड़ा होकर भागा, परन्तु तुरन्त ही एक झटका लगा, मानो डी० सी० करेंट का झटका लगा हो। उस समय मुझे पता चला कि मेरी शेरवानी किसी ने श्रीमती जी की चादर से बाँध रक्खी है और उसका कुछ भाग मेरे साथ खिंच आया है और सम्भवतः क़ुल खिंच आता यदि वहाँ की उपस्थित महिलाओं ने चादर पकड़ न ली होती। मैं उस झटके को सँभाल नहीं सका और उसी भाँति गिर पड़ा जैसे विहार के भूकंप में जमालपुर का स्टेशन। ख़ैरियत यह हुई कि किसी के ऊपर नहीं गिरा, नहीं तो बड़ा दुख होता। मेरा गिरना क्या था, मानो हँसी की रेलगाड़ी का लाइनक्लियर था। चारों ओर से अट्टहास की सदा गूँज पड़ी। मैं किसी प्रकार उठा, गाँठ खोली और बाहर भागा। लोग चिल्लाते ही रह गये कि 'सुनिए, सुनिए।' मैंने बाहर बैठक में आकर दम लिया और कपड़े उतार कर फेंके तब कहीं जान में जान आई।

पुरानी सभ्यता के लोग घड़ियाँ गिनते थे; मैं घड़ियाँ देखने लगा। मेरे घर में तीन घड़ियाँ थीं। बारी बारी से प्रत्येक घड़ी देखता था। घड़ियों ने तेज न चलने के लिए सत्याग्रह कर लिया था। भोजनोपरान्त मैं चारपाई पर ढुलक गया इस विचार से कि नींद आ जायगी तो शाम तो हो ही जायगी, क्योंकि सोने में मैं कुंभकर्ण का संक्षिप्त संस्करण हूँ। परन्तु उस दिन नींद ने पूर्ण असहयोग कर रक्खा था। मुझे एक यह भी चिन्ता हुई कि इस समय नींद न आने से कहीं रात में नींद न आ जाय। मैं इसी विचार-वीथी में टहल रहा था कि कोई बेवक़ूफ़ पंडित जी को बुला लाया। पंडित जी हमारे पुरोहित थे। उनके पितामह हमारे पितामह के पुरोहित थे। यह परम्परा उस समय से चली आ रही थी जब से उनके लकड़दादा के लकड़दादा मेरे लकड़दादा के लकड़दादा के साथ तैमूर के हमले के समय दिल्ली से भागे थे।

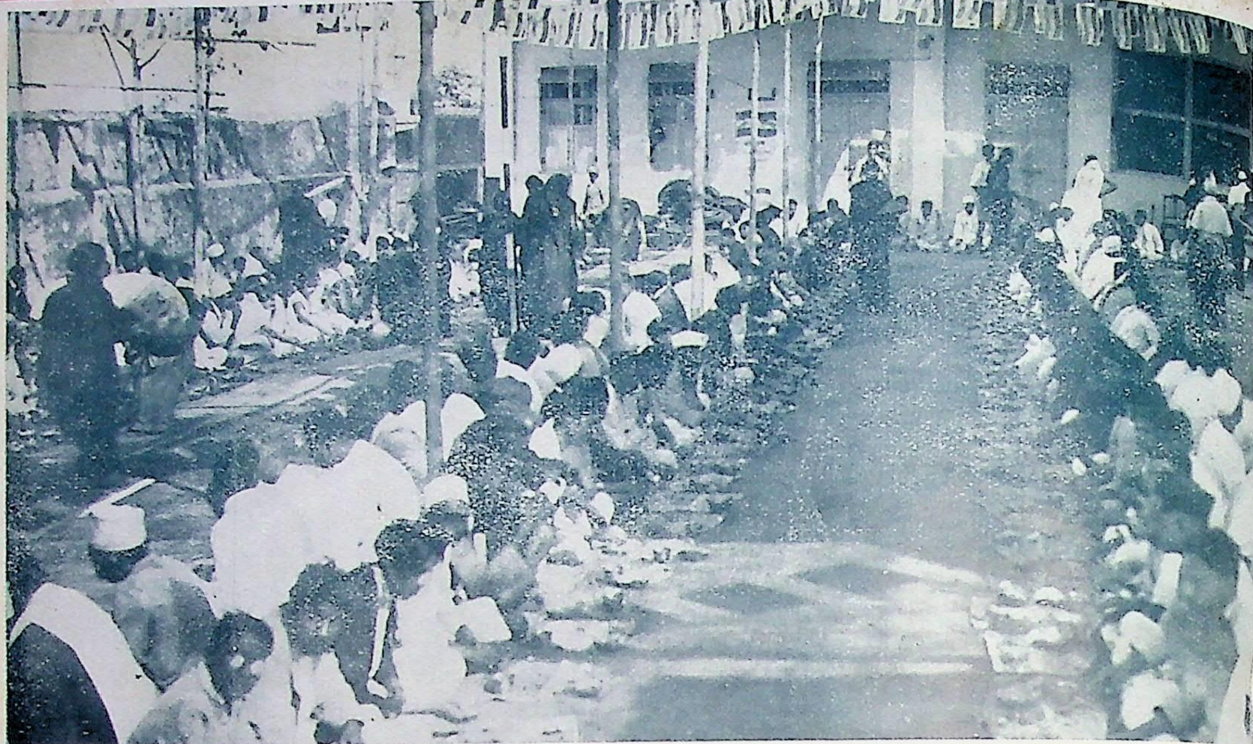
पण्डित जी ने पत्रा निकाला और कुछ गिनकर यह बतलाया कि मंगलवार को गङ्गा जी का पूजन करने का शुभ मुहूर्त्त है। उस दिन ग्यारह बजे से एक बजे तक गङ्गा जी का पूजन हो सकता है। बनारस में रहनेवालों का यह दस्तूर है कि पहले-पहल जब वधू घर आती है तब गङ्गा जी का पूजन होता है। दुर्भाग्य से उस समय मैं भी बनारस में ही रहने लगा था। शुक्रवार को हम लोग घर लौटे थे, फिर शनिवार, रविवार, सोमवार, चार दिन की तपस्या करनी थी। क्योंकि हमारे कुल का नियम था कि जब तक गङ्गा का पूजन न हो जाय तब तक वर वधू से भेंट नहीं कर सकता। मैं पंडित से कुछ कह भी नहीं सकता था। कोई और अवसर होता अथवा वहाँ पर गुरुजन लोग उपस्थित न होते तो पंडित जी के हाथ में धीरे से एक अठन्नी रखता और शुक्रवार की सन्ध्या को ही मुहूर्त और शुभ घड़ी निकल आती, क्योंकि कचहरी के अहलकारों और पंडितों के हाथ में चाँदी का टुकड़ा रख देने से अनहोनी बात भी हो सकती है।

मैं बी० ए० में पढ़ता था, देश पर जान देने के लिए कई बार कालेज में बोल भी चुका था, अपने व्याख्यानों में यह भी कह चुका था कि वीर और निर्भीक बनना चाहिए। कालेज में जब कभी



सम्राट् एडवर्ड (अष्टम)

स्वर्गीय सम्राट् जार्ज के दिवंगत होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रिन्स आफ़ वेल्स ने सम्राट् एडवर्ड 'अष्टम' के नाम से ब्रिटिश साम्राज्य का शासन-दण्ड ग्रहण किया है। आपका वय इस समय ४२ वर्ष है और युवराज के रूप में आपने अपने विस्तृत साम्राज्य के भिन्न-भिन्न देशों और टापुओं का भ्रमण कर उनका अनुभव तथा अपनी नाना जाति की प्रजाओं का हार्दिक प्रेम प्राप्त किया है। आप भी अपने पिता की भाँति न्यायपरायण, उदार तथा मिलनसार हैं!



कांग्रेस-प्रीति-भोज (बम्बई) का एक दृश्य। इस भोज में सब वर्णों और जातियों के लोग शामिल हुए थे। पहली कांग्रेस बम्बई में हुई थी, इसलिए वहाँ उसकी जयंती भी ख़ूब धूम-धाम से मनाई गई।



इस प्रीति-भोज में कांग्रेस के नेताओं और हरिजनों ने एक साथ बैठकर भोजन किया। इस चित्र में श्रीमती सरोजनी नायडू और श्रीयुत नरीमैन दिखाई दे रहे हैं।



हिन्दू-महासभा (पूना) के वार्षिकोत्सव में सभापति के आसन पर महामना मालवीय जी और मंच पर बैठे हुए अन्य नेता।



हिन्दू-महासभा के स्वागताध्यक्ष श्रीयुत एन० सी० केलकर अपना स्वागत-भाषण पढ़ रहे हैं।



कुमारी एम० ई० ओल्डफ़ील्ड। आप चित्रकला निपुण एक अँगरेज़ महिला हैं। आपने हाल में हिन्दू-धर्म ग्रहण किया है।



हाल में बड़ौदा में महाराज बड़ौदा की हीरक जयंती मनाई गई थी। इसमें हिज़ एक्सेलेंसी लार्ड विलिङ्गडन भी सम्मिलित हुए थे। चित्र में वे महाराज से बातें कर रहे हैं।



हीरक जुबली के उपलक्ष्य में किये गये एक सैनिक प्रदर्शन के समय महाराज की ओर से महाराजकुमार प्रतापसिंह गायकवाड़ सैनिकों की सलामी ले रहे हैं।

जर्मनी में हाल में एक विशाल सभा-भवन निर्मित हुआ है, जिसमें ३०,००० आदमी बैठ सकते हैं। यह दृश्य उसके हाल के एक अंश का उस समय का है जब इस भवन में हर हिटलर का भाषण हुआ था।

अधिकारियों का विरोध करना होता था तब मैं सबसे आगे रहता था। हिम्मत का हाल यह था कि रात में चाहे पुलिस का पुरखा भी चौमुहानी पर खड़ा हो मैं बिना लैंप की साइकिल फर्र-फर्र उड़ाये चला जाता था, और अँगरेज़ों के सामने तो मैं ऐसा अकड़ कर चलता था जैसे कानवोकेशन में नये ग्रेजुएट चलते हैं। परन्तु सारी वीरता, सम्पूर्ण निर्भीकता और सब हिम्मत मालूम नहीं कहाँ गंजी खोपड़ी के बाल की भाँति उड़ गई। हज़ार हज़ार आदमियों की भरी सभाओं में मैं विरोध करने के लिए तैयार, परन्तु वहाँ एक बूढ़े पंडित, पिता, चाचा और मामा का विरोध करने के लिए मेरा हृदय तैयार न हुआ और मेरी जीभ पर मालूम होता था कोकीन रगड़ दी गई है।

उस समय तो मैं कुछ न बोला, परन्तु जब पंडित चले गये तब मुझमें चेतना-शक्ति जागृत हुई और घर में मैं स्त्रियों में जाकर बिगड़ने लगा। बहुत-से लोगों की हिम्मत घर के बाहर खुलती है, बहुत-से लोगों की घर के भीतर। मैंने कहा, तुम लोगों को कुछ समझ तो है नहीं। मैं जाऊँगा गङ्गा का पूजन करने! इन सब ख़ुराफ़ात में मैं नहीं पड़ता। तुम लोगों का पढ़ना-न-पढ़ना एक-सा है। मैं पढ़-लिख कर ऐसे अंध-विश्वास में योग नहीं दे सकता। तुम लोग जाकर पूजा करो।

मैंने सोचा इस बात से चारों ओर सन्नाटा छा जायगा, किन्तु फल विपरीत हुआ। अल्पवयस्का ललनायें मेरी बात सुनकर हँसने लगीं। एक ने कहा-'आप अपना रिफ़ार्म कालेज के लिए रहने दीजिए, यहाँ तो वही करना होगा जो हम लोग कहेंगी। इस शरारत का क्या उत्तर हो सकता था? मैं बहुत झुँझलाया और बड़े रोब से पैर पटकता हुआ बाहर चला आया। मेरे आने के समय फिर खिलखिलाहट की आवाज़ मेरे कानों में आई।

अब मेरी अवस्था वही थी जो नेपोलियन की सेंट हेलेना में हुई होगी। घर भर ने मेरे विरोध में युद्ध की घोषणा कर दी थी और मैं सहायकहीन था। लीग आफ़ नेशन्स के नियमों में कोई भी धारा इस विवाद की नहीं थी नहीं तो मैं वहीं अपील करता। एकाएक मेरे मन में ऐसी बात बैठी कि मैंने सोच लिया कि इन लोगों के भी कान काटूँगा। मैंने सोच लिया कि मैं किसी न किसी भाँति आज ही रात में भेंट कर लूँगा, इनकी पूजा होती रहेगी।

मेरे विवाह को एक साल समाप्त हो चुके थे, परन्तु कभी बीच में अपनी सौभाग्यवती श्रीमती से मिलने की इतनी उत्कंठा नहीं हुई थी। आज जब उन्हें घर पधारे एक दिन भी नहीं बीता था, क्यों कवियों के शब्दों में अभिलाषा इतनी तीव्र हो उठी, अरमान इतने जाग गये, हृदय की तंत्री झंकृत हो उठी, कलेजे में 'कौलिक' होगया, फेफड़ा फड़फड़ाने लगा? सन्ध्या होते होते मैंने तरकीब ढूँढ़ निकाली।

मेरा एक छोटा-सा छः साल का भतीजा था। उसे मैं सदा मिठाई और 'लेमनड्राप' खिलाया करता था। अपने पिता से अधिक वह मुझे मानता था। मैंने सोचा कि इससे काम सध जायगा। मैंने उसे बुलाकर कहा—"कल्लू, मैंने तुम्हारे लिए चाकोलेट मँगवाया है। लोगे? वह मुझसे लिपट गया और बोला—'कहाँ है, कहाँ है, दीजिए, लाइए'।

मैंने कहा—'तुम्हारी जो नई चाची आई हैं, जानते हो।'

कल्लू ने कहा—'हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ, वही जो आज दोपहर को आई हैं, गूँगी हैं।'

'गूँगी हैं, सो कैसे' ? मैंने घबराकर पूछा।

'सब लोग हँसते हैं, बोलते हैं, वे चुपचाप बैठी हैं।' कल्लू बोला।

मैंने हँस दिया, और कहा—'अच्छा हाँ, ठीक है। ज़रा भीतर जाकर देख आओ कि उनके सोने की चारपाई किस कमरे में बिछी है।'

कल्लू दौड़ा हुआ गया और दस मिनट में मुसकराता हुआ मेरे पास आकर उसने कहा—'वह जो ऊपर अम्मावाला कमरा है, उसी के बग़ल की

कोठरी में उनके सोने के लिए ठीक हुआ है। जिस कमरे का बयान कल्लू ने किया उस कमरे में कभी कोई सोता नहीं था। यों ही ख़ाली पड़ा रहता था। मैंने सोचा, शायद शीघ्रता में और कोई स्थान न ठीक हुआ हो। अस्तु। मैंने सोचा, मेरा मतलब तो निकल ही गया। अब चाहे गंगा जी की पूजा मंगलवार को हो या छः महीने बाद। मैं आज उस मुखमण्डल को देखनेवाला था जिसके बारे में कवि-कुल-कुमुद-कलाधर, कविता-कुञ्ज-कोकिल, कविता-कश्मीर-केसर कालिदास ने लिखा है—

'कमलिनी मलिना दिवसात्यये,
शशिकला विकला क्षणदाक्षये।
इति विधिविदधे रमणीमुखम्,
भवति विज्ञतमः क्रमशो जनः॥'

और जिस मुख की उपमा के लिए, यदि मैं कवि होता तो नूरजहाँ, और रंभा और इंद्र के अखाड़े की सभी अप्सराओं को ढूँढ़ लाता, इस प्रसन्नता और आनन्द में मैं इतना तल्लीन हो गया, मानो समाधि में श्री अरविंद के बाद मैं ही हूँ।

दस बजे होंगे, सारे घर में सन्नाटे के संसार का साम्राज्य था। मालूम पड़ता था, छोटे-बड़े, नौकर-चाकर सभी ने अफ़ीम की चुसकी ली है। मैं दबे पाँव उठा। बिल्ली भी चूहे की ताक में इस शांति से न चलती होगी और भारत-सरकार की सी० आइ० डी० भी इतने चुपके से न चलते होंगे। आँगन में आया। एक बिजली का बल्ब मेरे प्रयास पर मानो मुसकरा रहा था। सीढ़ी पर चढ़ा, कभी कभी पीछे फिरकर देख लेता था कि कोई मेरे पीछे आ तो नहीं रहा है। हृदय के स्पन्दन की गति पाँच सौ प्रति मिनट रही होगी। आँखों में एक विचित्र नशा, हृदय में उल्लास, पाँव में शांति, हाथ में बढ़िया गुलाब की रूह से तर किया हुआ रूमाल, शरीर पर सिल्क का कुर्ता, यह मेरी उस समय की अवस्था थी। सीढ़ी भी पार हो गई। जिस समय मैं आँगन के पार हुआ, मैंने समझा एन्ट्रेंस पास किया, सीढ़ी पार करने में एम० ए० पास होने का भास हुआ। बस अब डिगरी मिलने में थोड़ी ही कसर रह गई थी।

अपनी भाभी के कमरे की ओर मैंने देखा भी नहीं। उसके बग़ल के कमरे की ओर जिसे कल्लू ने बताया था, मैं बढ़ा। उसका दरवाज़ा बन्द था और मंद-मंद प्रकाश छनकर आता हुआ मालूम हो रहा था। मैं थोड़ी देर तक रुका रहा। किसी ओर से किसी प्रकार का शब्द न सुनाई दिया। मेरी सफलता निश्चित थी। मैं अपने को वैसा ही समझ रहा था, जैसा जयद्रथ को मार डालने पर अर्जुन ने समझा होगा। मैंने समझा, दिन भर की थकावट के कारण निद्रारूपी भंग-भवानी ने अपना प्रभाव दिखा दिया है। मैंने धीरे से दो बार अपनी उँगली से दीवार पर खटखट किया। उसी समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई ज़ोर से हँसा हो। यदि मेरे कान कुछ बड़े होते तो वे तुरन्त खड़े हो जाते। मैं कुछ घबरा-सा गया, यद्यपि मैं चोरी करने नहीं जा रहा था, न मैकबेथ की भाँति ख़ून करने जा रहा था। जा रहा था अपनी नियमपूर्वक सनातन धर्मानुसार पंडितों के मंत्रों-द्वारा अभिषिक्त स्त्री से भेंट करने। परन्तु मालूम नहीं क्यों एक बार घबराया। चारों ओर देखने पर मैंने समझा कि मैं संदेहालंकार और भ्रमालंकार का निरूपण कर रहा हूँ। फिर मैंने दरवाज़ा खटखटाया, कोई आवाज़ नहीं; फिर खटखटाया, कोई आवाज़ नहीं। मैंने सोचा कि नींद गहरी है। ज़ोर से मैं खटखटा भी नहीं सकता था। मैंने धीरे से किवाड़ दबाये। किवाड़ बन्द नहीं थे, मुर्दे की आँख की तरह खुल गये। एक सेकंड मैं रुका, फिर भीतर मैंने प्रवेश किया।

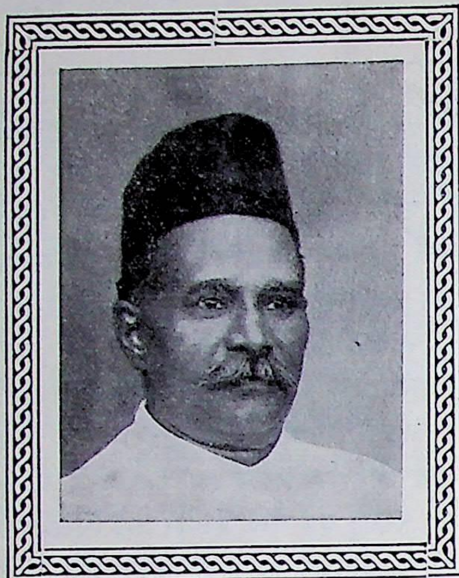
सबसे पहले मैंने किवाड़ चिपका देना अपना कर्त्तव्य समझा। फिर कमरे में मैंने निगाह फेरी। वहाँ क्या देखता हूँ कि छत पर से एक बिजली का बल्ब त्रिशंकु की भाँति लटका हुआ है। एक चारपाई बिछी हुई है, जिस पर बड़ी साफ़ चादर पड़ी हुई है। परन्तु उस कमरे में मेरे सिवा और एक चूहे के सिवा

जो मुझे देखते ही बिल्ली का भ्रम करके भाग गया, और कोई नहीं था। मैंने समझा, संभवतः दरवाज़ा खटखटाने और किवाड़ खुलने के कारण वह शायद छिप गई हो। मैंने प्रत्येक कोने का 'शर्लाक होम्स' की भाँति निरीक्षण किया, छत की ओर भी एक बार देख लिया। मुझे संदेह हुआ, हो न हो चारपाई के नीचे हों। वहाँ भी देखा, परन्तु निराकार ब्रह्म की भाँति दर्शन न हुआ। सब तैयारी वहाँ सोने की तो है। कल्लू ने ग़लती तो की न होगी। यही बात समझ में आई कि वह अभी कमरे में आई न होंगी। लौट जाना और फिर आना तो एवरेस्ट पहाड़ की चढ़ाई थी। निश्चय मैंने यह किया कि यहीं लेटूँ, जब उनकी आहट मिलेगी, चुपके से कोने में दबक रहूँगा। अभी सवा दस बजे थे। चारपाई पर मैं लेट गया। दो मिनट भी न लेटा हूँगा कि भनन भनन के शब्द मेरे कान में पड़े और शीघ्र ही मशक महाराजाधिराज ने मेरी कोमल नासिका पर अपना कठोर कृपाण चला ही दिया। अभी मैं इसे सहला ही रहा था कि कान पर, कपोल पर, कलाई पर, कमर पर, कंठ पर, कुहनी पर ताबड़-तोड़ हमले होने लगे। फिर तो क्या देखता हूँ कि छोटे मच्छड़, मोटे मच्छड़, लम्बे-नाटे, काले-गोरे, मलेरिया के, फ़ाइलेरिया के चारों वर्णों और चारों आश्रमों के मच्छड़ जिनकी वह कोठरी 'कोलोनी' मालूम पड़ती थी, मेरे ऊपर टूट पड़े। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि चीन पर जापान का हमला इतना ज़बर्दस्त न हुआ होगा। हाथ दो ही हैं हमारे और मच्छड़ इतने! कैसे रक्षा होती? अब मैंने समझा कि भगवान् ने चालाकी से अपने लिए और अपनी पत्नियों के लिए चार हाथ क्यों रक्खे हैं? क्षीरसागर में मच्छड़ों की बड़ी ज़बर्दस्त पलटन होगी। कभी मुँह पर, कभी पीठ पर तो कभी कान पर तो कभी जाँघ पर मेरे हाथ ऐसे चलने लगे, मानो रणभूमि में मैं तलवार भाँज रहा हूँ। जाँघ का ख़ून मच्छड़ों को मालूम होता है, विशेष रुचिकर होता है, वहाँ उन्होंने अड्डा बना लिया।

इधर मच्छड़ों ने बेचैन कर रक्खा था, उधर उनकी प्रतीक्षा की बेकली थी। इतने में किसी के पैरों की आहट मिली और जान में जान आई कि इतने बलिदान के बाद मनोरथ तो सफल हुआ। मैं साँस लेकर आँख मूँद कर सोने का बहाना करने लगा। क्या सुनता हूँ कि बाहर से किसी ने कुंडी बंद कर दी। अब मुझे कुछ कुछ मालूम होने लगा कि किसी ने मेरे साथ गहरा मज़ाक़ किया है। फिर मैंने सोचा कि शायद कोई खिलवाड़ कर रहा हो। क्रोध तो बहुत आया, परन्तु वह वैसा ही था जैसे पिंजड़े के सिंह का सर्कस के मैनेजर के ऊपर होता है। अब मुझे मच्छड़ों के डंक और घड़ी की सुई की चाल गिनने के अतिरिक्त कुछ नहीं करना था। मैं रात भर सोया कि जागा कि मर के उठा, कह नहीं सकता। आश्चर्य यही है कि रात बीत गई। पाँच बजे मैं खाट से उठा। किवाड़ बंद थे। शरीर में मालूम पड़ा, रक्त है ही नहीं। कहाँ गया? यदि उस समय कोई डाक्टर देखता तो बता सकता। मेरी समझ में उसका ब्योरा इस प्रकार है—

मच्छड़ों ने चूसा	१½ पौंड
वियोग-व्यथा से जल गया	३ पौंड
बंद कमरे में सोने से ख़राब हो गया	१ पौंड
मानसिक व्यथा से नष्ट हो गया	२ पौंड
फुटकर	½ पौंड

अब मैंने सोचा कि क्या करूँ। एक प्रकार से जेल में था। और जेल में तो सी क्लास में भी भोजन तो मिलता ही है। यहाँ उसकी भी गुंजाइश नहीं थी और मैं बड़े तड़के 'टोस्ट' खाने का आदी था। इधर भूख के मारे पेट में अँतड़ियाँ जिमनास्टिक कर रही थीं, उधर यह सोच था कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे। इतने में किवाड़ किसी ने खोला और मेरी भाभी साहबा मुसकराती हुई कमरे में दाखिल हुई और बोलीं—'कहिए भेंट हुई, क्या क्या बातें हुईं, रात कैसे कटी?'



बहुविवाह-प्रथा

लेखक, ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा हिन्दी के पुराने लेखकों में हैं। शुरू शुरू में जब 'अभ्युदय' निकला था तब आप भी उसके सम्पादकों में थे। आपने झाँसी की रानी का एक प्रामाणिक जीवनचरित्र भी लिखा है। इस लेख में आपने बहुविवाह-प्रथा के कारण हिन्दू परिवार की विषम स्थिति पर विचार किया है और यह सम्मति प्रकट की है कि या तो हम इस प्रथा को बन्द कर दें या स्त्रियों को भी इसका अधिकार दें।



न्दू-धर्म को छोड़कर अन्य सभी धर्मों में विवाह एक सामाजिक रीति है। हिन्दू-धर्म में विवाह उन सोलह संस्कारों में से एक है जिनका जन्म से मरण तक मनुष्य-जाति में होना आवश्यक है। अतएव जिस प्रकार अन्य संस्कार एक ही बार होते हैं, उसी प्रकार यह संस्कार भी धर्मानुसार एक ही बार होना चाहिए। परन्तु बहुधा देखने में आता है कि हिन्दू लोग भी अपना यह संस्कार दो-तीन बार कर डालते हैं और इस कार्य को अपनी प्राचीन व्यवस्था तथा अपने आर्य-धर्म के प्रतिकूल भी नहीं समझते।

बहुविवाह की यह प्रथा हिन्दू-धर्म में ही नहीं प्रचलित है, मुसलमानी धर्म में भी इसका प्रचार है। मुसलमानों के धर्म-ग्रंथ उनको ऐसा करने की इजाज़त देते हैं, परन्तु हिन्दू-धर्म-शास्त्र ऐसा करने की प्राय: इजाज़त नहीं देता। हिन्दू-धर्म में विवाह एक आवश्यक संस्कार है, जिसका उद्देश केवल सन्तानोत्पत्ति बताया गया है। भोग-विलास के लिए विवाह करना शास्त्रकारों ने अनुचित ही नहीं, निन्दनीय भी ठहराया है। इसी कारण केवल ऋतुमती होने के पश्चात् ही स्त्री-पुरुष का संयोग होने का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है। विवाह-सम्बन्धी जितने मंत्र वेदों में पाये जाते हैं, और जिन्हें विवाह संस्कार के समय पति पत्नी प्रतिज्ञा-रूप में पढ़ते हैं, उन सबों का प्राय: यही अर्थ है कि हम दोनों आजीवन परस्पर प्रेमपूर्वक रहकर एक-दूसरे का आदर करते हुए उत्तम धार्मिक, कार्य-कुशल, वीर, साहसी तथा विद्वान् सन्तान उत्पन्न करके पितृ-ऋण चुकावेंगे। केवल हिन्दू-धर्म को छोड़कर और किसी धर्म में विवाह का इतना ऊँचा आदर्श लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टियों से नहीं रक्खा गया है।

मुसलमानी धर्म में बहुविवाह की भी इजाज़त है और विवाह-विच्छेद की भी इजाज़त है। हिन्दू-

धर्म में न बहुविवाह की इजाज़त है और न विवाह-विच्छेद की व्यवस्था है। एक पुरुष को एक ही पत्नी करनी चाहिए और एक स्त्री को एक ही पति करना चाहिए। यही हिन्दू-शास्त्रों का आदेश है। एक-पत्नीव्रत तथा पातिव्रत-धर्म की महिमा का ही उल्लेख हिन्दू-धर्मशास्त्रों में पाया जाता है। अतएव हिन्दू-धर्म में विवाह-बन्धन केवल सामाजिक प्रथा नहीं समझी गई है, वरन उसे धार्मिक रूप दिया गया है। मुसलमानी तथा ईसाई धर्मों में विवाह केवल सामाजिक प्रथा ही मानी गई है और इसी कारण उनमें बहुविवाह तथा विवाह-विच्छेद दोनों की इजाज़त दी गई है।

मुसलमानी धर्म में तो पत्नी-त्याग करने से पहले भी दूसरा विवाह करने की इजाज़त है, यहाँ तक कि एक पत्नी के होते हुए और कई सन्तानों के रहते हुए भी दूसरे चार विवाह तक करने की इजाज़त है, परन्तु ईसाई-धर्म में एक पत्नी का त्याग हुए बिना दूसरी पत्नी नहीं की जा सकती। ईसाइयों में दूसरी पत्नी करने के लिए पहली पत्नी का त्याग अनिवार्य है।

परन्तु विचारणीय बात यह है कि जिस समाज का उच्च ध्येय एक-पत्नीव्रत और पातिव्रत रहा हो उसमें इस कलुषित प्रथा का प्रचार क्यों और कैसे हुआ? हिन्दुओं में भी यह बुरी प्रथा कोई नवीन नहीं है, बहुत प्राचीन काल से इसका प्रचार है। त्रेता-युग में राजा दशरथ के तीन स्त्रियाँ थीं। रामायण, महाभारत और पुराणों में राजाओं को छोड़कर ऋषियों तक के बहु-पत्नियाँ होना पाया जाता है। हिन्दू-समाज ने धर्म-मर्यादा क़ायम रखने के लिए बहुत प्रयत्न किया और यदि कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि यह धर्म अपनी इसी मर्यादा-रक्षा के कारण अब तक जीवित है। ऐसे पवित्र धर्म में बहुविवाह का विधान कहाँ से आ गया, यह समझ में नहीं आता। मनुष्य के सोलह संस्कारों में जब विवाह भी एक संस्कार है तब क्या बहुविवाह-प्रथा से इस संस्कार की मर्यादा भंग नहीं होती?

हिन्दू-धर्म में विवाह-संस्कार का उद्देश ही केवल सन्तानोत्पत्ति बतलाया गया है और इसका मुख्य कारण पितृ-ऋण चुकाना समझा जाता है, अतएव यह अनुमान करना कुछ कठिन नहीं मालूम होता है कि एक पत्नी-द्वारा सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना नष्ट होने पर ऋषियों ने आपद्धर्म के रूप में दूसरे विवाह की इजाज़त दी होगी और इसी उद्देश को आगे रखकर बहुविवाह का सूत्रपात हुआ होगा। परन्तु एक बार आज्ञा मिल जाने पर सुखोपभोग की आकांक्षापूर्ति के लिए भी पुरुषों ने इसका उपयोग किया और शुद्ध धार्मिक कार्यों के लिए दी हुई ऋषियों की आज्ञा का दुरुपयोग होने लगा। काम-वासना-तृप्ति के लिए निन्दनीय बहुपत्नी-प्रथा ने हिन्दू-धर्म की मर्यादा को घटाया और समाज में उच्छृङ्खलता का भाव उत्पन्न किया। बहुविवाह-प्रथा कोई सनातन-धर्म न था, आपद्धर्म था। इसका उपयोग ऐसे कठिन समय में ही करने की शास्त्रकारों ने आज्ञा दी थी जब पितृ-ऋण चुकाने के लिए संतान की आवश्यकता समझी जाय, अन्यथा यह प्रथा अत्यन्त वर्जित समझी जाना चाहिए।

पुरुष बहुपत्नियाँ कर सकते हैं, क्योंकि उद्देश ही पितृ-ऋण चुकाना विवाह का फल बताया गया है। परंतु क्या स्त्रियाँ भी ऐसा कर सकती हैं? क्या शास्त्रों में स्त्रियों को भी बहुविवाह अर्थात् बहुपति करने की आज्ञा दी गई है? क्या एक पति की मौजूदगी में दूसरे पति का होना हिंदू-धर्म के अनुकूल है या नहीं और ऐसा काम करने के लिए कोई विधान शास्त्रों में पाया जाता है या नहीं? द्रौपदी के पाँच पति थे, यह बात सभी जानते हैं। उसका विवाह-संस्कार भी शास्त्रानुकूल हुआ था, यह भी कहा जाता है। अतएव शास्त्रों में ऐसा विधान अवश्य होना चाहिए। परंतु ऐसा विधान कहीं नहीं मिलता। विधान चाहे मिले या न मिले, पुराणों में

ऐसे उदाहरण अलबत्ता बहुत-से पाये जाते हैं कि उस समय एक स्त्री के अनेक पति होते थे। महाभारत में जटिला नामक स्त्री के सात ऋषि पतियों के होने का उल्लेख है। भागवत में कंडु नामक मुनि की कन्या ने प्रचेत नामक पुरुष की पत्नी होकर उसके दस भाइयों से व्यवहार रक्खा। जाबाल ऋषि का उदाहरण भी इसी प्रकार का है। मत्स्य-पुराण में उशीज मुनि के भाई बृहस्पति की भी एक ऐसी ही कथा मिलती है, जिससे प्रकट होता है कि स्त्री भी परपुरुष को अंगीकार कर सकती थी।

उपर्युक्त दृष्टान्तों से इस बात का पता तो चलता है कि इस प्रकार की प्रथा तो प्राचीन काल में प्रचलित थी और यह प्रथा निन्दनीय नहीं समझी जाती थी और न इस प्रथा के सम्बन्ध से उत्पन्न हुई सन्तान समाज में घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। इतना ही नहीं, इस पर धर्म की छाप लग जाने से इस प्रकार का व्यवहार धर्मानुमोदित माना जाता था।

सन्तानोत्पत्ति करना ही स्त्री-पुरुष के संयोग का मुख्य उद्देश था और इसी उद्देश-पूर्त्ति के लिए इसकी लोग प्रायः इच्छा करते थे। स्त्रियाँ भी पुत्र-कामना के हेतु पर-पुरुषों से सहवास करके सन्तान उत्पन्न करती थीं और यह नियोग-प्रथा कहलाती थी। नियोग से उत्पन्न सन्तान औरस पुत्र के ही समान समाज में उच्च स्थान पाती थी। परन्तु ज्यों ज्यों कामवासना के विचारों की वृद्धि होकर मनुष्यों के भावों में परिवर्तन होने लगा—उच्च ध्येय से मनुष्य च्युत हुआ, ऋषियों ने इस प्रथा को वर्जित कर दिया। यदि मनुष्य-स्वभाव में उच्छृङ्खलता के भाव की जागृति न होती, पवित्रता तथा धर्म-भाव का प्राबल्य बना रहता, तो यह प्रथा निन्दनीय न समझी जाकर त्याज्य न मानी जाती। जब वर्तमान काल में विवाह का वह उच्च आदर्श न रह गया तब एक स्त्री के बहुपति होने अथवा नियोग-प्रथा के प्रचार से समाज की क्या गति होती, यह तो भगवान् ही जाने। विवाह की धर्म-मर्यादा टूट जाने पर भी पुरुषों ने तो अपने लिए बहुपत्नी-प्रथा बनाये रक्खी, परन्तु स्त्रियों के लिए बहुपति-प्रथा को रोक दिया। इसे पुरुषों का स्त्रियों पर अत्याचार कहना चाहिए या नहीं, इस बात पर विज्ञ पाठक ही विचार कर सकते हैं। विवाह-प्रथा का प्रारम्भ ही केवल सन्तानोत्पत्ति के विचार से हुआ था, अतएव सन्तान के अभाव में जहाँ पुरुषों को दूसरी पत्नी करने की आपद्धर्म समझकर इजाज़त दी गई, वहीं स्त्री को ऐसे अवसर पर ऐसी इजाज़त देने में क्यों आपत्ति की जानी चाहिए, यह समझ में नहीं आता। यदि यह प्रथा दूषित है तो दोनों के लिए इसका समान व्यवहार क्यों न हो? धर्म-शास्त्र की सूक्ष्म गति का आडम्बर रचनेवाले लोग चाहे इन सदाचारों की निन्दा करें, परन्तु संसार के प्रवाह को रोकना उनके लिए तभी सम्भव होगा जब स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान मर्यादा का संगठन किया जायगा। अब वह समय नहीं रहा है कि केवल शास्त्र का नाम लेकर लोग धर्मात्मा बनाये जा सकें। धर्म धर्म चिल्लाने से अब कल्याण की आशा नहीं है। या तो बहुविवाह की प्रथा को धर्मानुसार स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए त्याज्य समझना होगा या दोनों को इस विषय में समान अधिकार प्रदान करना होगा। समाज के कल्याण के हितार्थ पुरुषों से भी इस प्रथा का बन्द होना ही श्रेयस्कर है। ऐसा होने से स्त्री-समाज के संतोष का कारण होगा और पुरुषों में संयम की वृद्धि होकर इहलोक तथा परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति होगी। धर्म-मर्यादा की रक्षा भी हो सकेगी। स्त्रियों में वर्तमान काल में उच्छृङ्खलता का जो भाव बढ़ रहा है और जिसके कारण समाज में बहुत-कुछ व्याकुलता उत्पन्न हो गई है उसमें भी कमी होकर देश का कल्याण होगा। जिस प्रकार ऋषियों ने स्त्रियों में बहुपति-प्रथा को बन्द करके धर्म और समाज को उस समय नष्ट होने से बचा लिया था, उसी प्रकार वर्तमान समय के धर्माचार्यों का भी कर्तव्य है कि वे पुरुषों से भी इस प्रथा

को उठाकर भविष्य के लिए हिन्दू-समाज की रक्षा करें। नहीं तो स्त्रियाँ भी पुरुषों को भोग-विलास का आनन्द लेते हुए देखकर अपने लिए भी कोई ऐसा रास्ता निकालेंगी जो हिन्दू-समाज को अधिक नीचे ले जायगा और ऋषियों के तपोबल से जो मर्यादा स्थापित हुई है वह नष्ट-भ्रष्ट होकर हिन्दुओं का और भी पतन होगा।

इसी के साथ यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि जो लोग हिन्दू-समाज में बहुविवाह-प्रथा को बन्द करना नहीं चाहते—इसके लिए कोई आन्दोलन नहीं करते और चाहते यह हैं कि हिन्दू-समाज में पत्नी-त्याग-प्रथा का प्रचार हो, वे ग़लती करते हैं, क्योंकि इसका प्रचार होने से जहाँ पुरुषों के एकपत्नी-व्रत का लोप होकर हिन्दू-समाज की प्राचीन पवित्रता नष्ट हो गई है, वहाँ अब इस प्रथा के प्रचार से पातिव्रत की रही-सही पवित्रता भी नष्ट हो जायगी। पवित्रता नष्ट हो जाने के अलावा देखना यह भी तो है कि जिन जातियों में अर्थात् मुसलमानों तथा ईसाइयों में यह प्रथा प्रचलित है उनकी क्या दशा है। क्या उस समाज के लोग इस प्रथा के प्रचार से सुखी हैं? जहाँ तक देखा जाता है इन दोनों धर्मों में भी पत्नी-त्याग-प्रथा का स्त्री-समाज पर बड़ा भयंकर परिणाम हुआ है। जो गृह सुख के आगार होना चाहिए वे बहु-विवाह-प्रथा के कारण नरक-धाम बन गये हैं। इस निन्दनीय प्रथा के कारण अनेक गृहों में नित्यप्रति कलहाग्नि धधका करती है। योरप तथा अमरीका की ओर निगाह उठाकर देखिए। वहाँ इस प्रथा का प्रचार होने से वहाँ के लोगों का कौटुम्बिक जीवन अत्यन्त कष्टमय हो रहा है। पति-पत्नी-त्याग-सम्बन्धी काम वहाँ इतना बढ़ गया है कि इस काम के लिए अलग अदालतें क़ायम करना पड़ी हैं। थोड़ा-सा भी मनोमालिन्य होने पर झट सम्बन्ध-विच्छेद की दरख़्वास्तें अदालत में पेश हो जाती हैं। एक दूसरे को समझने, प्रेम बढ़ाने तथा सहनशीलता से काम लेने का प्रयत्न ही नहीं होता। उन देशों में स्त्री-पुरुषों में अविश्वास के कारण सच्चे प्रेम का सदा अभाव रहता है। सांसारिक वासनाओं की तृप्ति के अभाव में और सुख-कामनाओं के साधनों की कमी होने पर स्त्रियों में उदासीनता का भाव उत्पन्न होकर प्रेम में कमी होने लगती है और यही कमी आगे चलकर विकारों का कारण बनकर विवाह-विच्छेद की सामग्री जुटाती है।

मृत्यु

लेखक, श्रीयुत मदनमोहन मिहिर

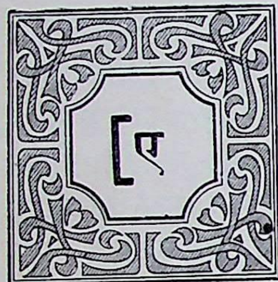
मृत्यु लिये जाती है मुझको
जीवन-पथ की ओर।
मिलता है न विराम एक पल
पथ का ओर-न-छोर॥

नित्य नये आते हैं सम्मुख
जटिल चढ़ाव-उतार।
पड़ती कितनी रात राह में
होते कितने भोर॥

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक नाटक

नर्त्तकी की पूजा

अनुवादक, श्रीयुत व्योहार राजेन्द्रसिंह


[एक बार भगवान् बुद्ध ने मगधराज बिम्बसार के प्रासादोद्यान में स्थित अशोक-वृक्ष के नीचे अपना आसन लगाया था और धर्म का उपदेश किया था। उस पवित्र स्थान पर भगवान् के उपासक भक्त राजा ने एक वेदिका बनवा दी थी। उसने अपने प्रासाद की राजकुमारियों को यह आज्ञा दी थी कि प्रत्येक संध्या को वे अपनी भक्ति-पुष्पाञ्जलि भगवान् के चरणों में अर्पित किया करें।

बाद में महाराज बिम्बसार अपने पुत्र अजातशत्रु को राज्यलोलुप समझकर स्वेच्छा से उसे राज्य देकर आप नगर के बाहर निवास करने लगे।

महारानी लोकेश्वरी भी पहले धर्म की उपासिका थीं, किन्तु अपने पति के राज्य-त्याग के अनन्तर अपने पुत्र चित्र के गृहत्याग के दुःख से भीतर ही भीतर जलती रहती थीं और बुद्धानुशासन (धम्म) के विरुद्ध हो गई थीं।]

विष्कम्भक

(बौद्ध-भिक्षु उपासी गाता हुआ प्रवेश करता है।)

उपासी—कौन है ? उपासक ! भिक्षा—भगवान् बुद्ध के नाम पर भिक्षा मिले।

(प्रासाद की नर्त्तकी श्रीमती प्रवेश करती है और प्रणाम करती है। भिक्षु आशीर्वाद देता है।)

उपासी—तुम कौन हो ?

श्रीमती—देव, प्रासाद की नर्त्तकी आपकी चरण-सेवा में उपस्थित है।

उपासी—क्या नगर भर में केवल तुम्हीं एक जागती हो ?

श्रीमती—राजकुमारियाँ अभी शयन में ही हैं।

उपासी—मैं भगवान् के नाम पर भिक्षा-याचना करने आया हूँ।

श्रीमती—देव, मुझे आज्ञा दीजिए, मैं कुमारियों को बुला लाऊँ।

उपासी - किन्तु मेरी भिक्षा तो तुम्हीं से है।

श्रीमती—हा हन्त ! देव, मैं एक अभागिनी नारी हूँ। मेरी दी हुई भिक्षा भगवान् के लिए एकत्र की हुई भिक्षा के बीच लजित होगी। आज्ञा दीजिए, मैं आपके भिक्षा-पात्र में क्या डालूँ ?

उपासी—अपनी सर्वोत्तम वस्तु।

श्रीमती—मैं नहीं जानती कि मेरे पास सबसे बढ़कर क्या है ?

उपासी—किन्तु भगवान् की अनुकम्पा तुम्हारे सिर पर अवतरित हुई है—वे सब जानते हैं।

श्रीमती—मेरे पास जो कुछ भी है उसे भगवान् स्वीकार करने की कृपा करें—पूजनीय देव, आपका यही आशीर्वाद हो।

उपासी—वे अवश्य ग्रहण करेंगे। वे तुम्हारे पत्रपुष्प को उसी प्रकार स्वीकार करेंगे, जिस प्रकार ऋतुनायक वसन्त पुष्पित कानन में आत्म-समर्पण को जाग्रत करते हैं। तुम्हारा समय आ पहुँचा है—यही मेरा संदेश है। तुम सचमुच धन्य हो—भाग्यशालिनी हो!

श्रीमती - मैं अपने समय की प्रतीक्षा करती हूँ। (प्रणाम करती है।)

(दोनों का प्रस्थान—उनके पीछे राजकुमारियों का प्रवेश।)

कुमारियाँ—(प्रस्थान की दिशा में देखकर) देव, इस प्रकार मत जाइए। हम लोगों की भी अञ्जलि स्वीकार कीजिए।

(एक दूसरे से) कितने लज्जा की बात है ! वे चले गये।

रत्ना—वासवि, इतनी चिन्ता क्यों ? भिक्षुकों की कमी नहीं है—कमी भिक्षा देनेवालों की है !

नन्दा—नहीं रत्ना, भिक्षा ग्रहण करने के योग्य पात्र के पाने के लिए बहुत पुण्य अर्जन करना पड़ता है। (सबका प्रस्थान)

प्रथम दृश्य

स्थान—महारानी का उद्यान।

(राजमाता लोकेश्वरी और भिक्षुणी उत्पला प्रवेश करती हैं)

रानी—महाराज बिम्बसार अब भी मेरा स्मरण करते हैं ?

भिक्षुणी—हाँ, मैंने ऐसा ही सुना है।

रानी—आज वे अशोक के नीचे की वेदिका पर भेंट चढ़ायेंगे। क्या इसी कारण वे मुझे याद कर रहे हैं ?

भिक्षुणी—अहा ! आज वसन्त की पूर्णिमा है।

रानी—पर आज पूजा किसकी की जायगी ?

भिक्षुणी—तुम तो सब जानती हो। जानती नहीं कि आज की रात को भगवान् बुद्ध का जन्मोत्सव मनाया जाता है ?

रानी—जाओ, महाराज से कह दो कि मेरी सब पूजा समाप्त हो गई। दूसरे उनकी वेदिका पर चाहे पुष्पाञ्जलि चढ़ावें या दीपावली अर्पण करें, मैंने तो अपना सारा संसार खाली कर दिया है !

भिक्षुणी—महारानी ये कैसे उन्मत्त वचन हैं ?

रानी—उन लोगों ने मेरे प्यारे चित्र को बहका लिया है। तुम्हारे राजकुमार को—मेरे इकलौते बेटे को बहका ले गये। वह भिक्षु-पात्र लिये दर दर मारा मारा फिरता है। क्या वे अब भी मुझसे पूजा पाने की आशा करते हैं ? बेलि को जड़ से काटकर क्या वे उससे पुष्पों की अभिलाषा करते हैं ?

भिक्षुणी—आपने उसका त्याग किया है, किन्तु उसे खोया नहीं है। पहले आप उसे अपने बाहुपाश में रखती थीं, आज उसे सारे विश्व में प्राप्त करती हैं !

रानी—बड़ी भली आईं ! तुम्हारे कोई लड़का है ?

भिक्षुणी—नहीं।

रानी—क्या कभी रहा है ?

भिक्षुणी—मैं बाल-विधवा हूँ।

रानी—तब चुप रहो। जिसे तुम कभी नहीं समझ सकतीं उसकी चर्चा मुँह पर मत लाओ।

भिक्षुणी—महारानी, सबसे पहले तुम्हीं ने उस सच्चे धर्म का अपने महलों में स्वागत किया था। फिर आज यह तुम कैसी—

रानी—आह ! सो अभी तक उस बात की याद है ! मैं समझी थी कि तुम्हारे स्वामी इसे भूल गये होंगे। प्रति दिन मैं धर्मभिक्षु रुचि से शास्त्रानुवचन सुनकर मुँह में दाना डालती थी। उपवास तोड़ने के पहले सौ भिक्षुओं को भोजन दिया जाता था। प्रतिवर्ष वर्षा के अंत में मैं संघ के प्रत्येक भिक्षु को नये परिधान से भूषित करती थी। भगवान् बुद्ध के प्रतियोगी देवदत्त के उपदेशों से जब लोगों का चित्त चलायमान हो गया था, मैं ही अकेली अपनी श्रद्धा-भक्ति में अटल रही और मैंने ही भगवान् को अशोक-वृक्ष के नीचे उपदेश करने के लिए अपने उद्यान में आमंत्रित किया था। किन्तु हाय निर्दय और कृतघ्न जन ! क्या मेरी सेवा का यही पुरस्कार है ? विष ! जिन स्त्रियों ने ईर्ष्याग्नि से जलकर मुझ पर विष का प्रयोग किया था उनको क्या दण्ड मिला ? कुछ नहीं ! उनकी सन्तान आज भी जागीरों के सम्मान का उपभोग कर रही है।

भिक्षुणी—महारानी, संसार के साधारण मानदण्ड से सत्य के मूल्य को मत तोलिए। क्या सूर्य-किरणों और स्वर्ण-तारों की एक-सी क़ीमत है ?

रानी—जब कुमार अजातशत्रु ने अपना राज्य देवदत्त को समर्पण किया था, मैं हँसती थी। मैं कितनी मूर्खा थी ! मैंने कहा था कि ये भ्रम में भूले हुए मनुष्य जिस तरणी से समुद्र पार करना चाहते हैं वह नीचे से फटी हुई है !

देवदत्त की जादू की शक्ति से अजातशत्रु अपने पिता के जीते-जी ही राज्य प्राप्त करना चाहता था। और मैं अपने श्रद्धा-विश्वास में मदमत्त होकर समझती

थी कि मेरे पति की गुणगरिमा कुमार की इस अपावन अभिलाषा को चूर चूर कर देगी। मुझमें ऐसा दृढ़ विश्वास था तभी तो मैंने शाक्यसिंह को—भगवान् बुद्ध को अपने पति को आशीर्वचन देने के लिए महलों में बुलवाया था। किन्तु अंत में किसकी जीत हुई ?

भिक्षुणी - क्यों तुम्हारी जीत हुई। बाहरी दुनिया को पाने के लिए भीतरी विजय को मत फेंक देना।

रानी—मेरी जीत हुई ?

भिक्षुणी – हाँ, सचमुच तुम्हारी जीत हुई। क्योंकि जिन महाराज बिम्बिसार ने अजातशत्रु के लिए पार्थिव सिंहासन को सिद्ध किया उन्होंने एक दूसरे सिंहासन को प्राप्त कर लिया !

रानी—सिंहासन पा लिया ? भ्रम है—क्षत्रिय राजा के लिए यह सब माया-भरी चिन्ता है।

मेरी दशा पर विचार करो आज मैं क्या हूँ ? अपने पति के जीते-जी विधवा हूँ, पुत्रवती होते हुए भी बाँझ हूँ; अपने महलों में ही प्रवासिनी हूँ। सचमुच यह सब माया नहीं है ! जो तुम्हारे धर्म का पालन नहीं करते उनकी दृष्टि में क्या मैं गिर नहीं गई हूँ ? जाओ, यह सब अपने गुरु से कह दो—उस वज्रात्मा* से कह दो ! अब वे कहाँ गये ? अपने उपेक्षकों पर अब वे वज्र प्रहार क्यों नहीं करते ?

भिक्षुणी--इन सब बातों में क्या तथ्य है ? तुम तो एक बीते हुए स्वप्न की बातें कर रही हो। हँसी उड़ानेवालों को भर पेट हँस लेने दो !

रानी—यह स्वप्न हो सकता है, पर जिस स्वप्न को मैं प्यार करती हूँ, यह वह स्वप्न नहीं है। तुझ पर मँडरानेवाले स्वप्न हैं—धन, पुत्र, राज्य और सम्मान के स्वप्न। जाओ ये सब बातें उन नारियों से जाकर कहो जो अपना सिर इतना ऊपर उठाये हुए हैं ! क्या वे अपने स्वप्नों के आनन्द में मग्न नहीं रहतीं ? उनसे कहो कि अपनी अपनी भेंट लेकर - पूजा के लिए आवें।

* वज्रात्मा बुद्ध भगवान का एक नाम है।

भिक्षुणी—तब मुझे जाने दीजिए।

रानी—स्वस्ति ! पर याद रखना कि वे सब मूर्खा नहीं हैं, यद्यपि मैं थी। उनकी कुछ हानि होने की नहीं, क्योंकि वे बुद्ध में श्रद्धा-विश्वास नहीं रखतीं—शाक्यसिंह की करुणा ने उन्हें स्पर्श नहीं किया है, इसलिए वे सुरक्षित हैं—सचमुच वे सुरक्षित हैं। क्यों ! चुप क्यों ? क्या सहनशीलता का बहाना बना रही हो ?

भिक्षुणी - मैं कहूँ तो कहूँ क्या ? मुझे भय है, मेरा चित्त अभी तक क्रोध से मुक्त नहीं हुआ है।

रानी तो भी तुम्हारी जितनी क्षमाधारा है वह सब मुझ जैसी के लिए है। यह चुप्पी की धृष्टता असहनीय है, मेरे पास से चली जाओ !

(उत्पला जाना चाहती है, पर रानी उसे बुला लेती है।)

रानी--सुनो भिक्षुणी ! मेरे पुत्र चित्र ने कोई नया नाम धारण कर लिया है। क्या तुम उसे जानती हो ?

भिक्षुणी—हाँ।

रानी—(अपने आप) अपनी मा के रक्खे हुए नाम को वह अपवित्र समझता है। कितने सहज में वह उसे उतार फेंकता है !

भिक्षुणी – महारानी ! अगर आप चाहें तो मैं उसे आपके पास ला सकती हूँ।

रानी—अगर मैं चाहूँ ! ओह ! मेरे लिए यह मरण है कि मैं जिसने उसे जन्म देकर इस संसार में उत्पन्न किया है, तुमसे कहूँ कि तू उसे मेरे पास ले आ !

भिक्षुणी—तो मैं जाऊँ न ?

रानी—ज़रा ठहरो। कभी कभी तुम उससे मिलती हो ?

भिक्षुणी—हाँ, क्यों नहीं।

रानी— अच्छा, केवल एक बार अगर वह स्वयं किन्तु नहीं—कुछ परवा नहीं।

भिक्षुणी—मैं उससे कह दूँगी। शायद तब तुम्हें उसके दर्शन हो जायँ।

रानी—शायद ! शायद ! जब मैंने उसे अपने जीवन के रक्त से पोषित किया था तब कोई 'शायद' नहीं था ! माता के ऋण का अधिकार अब इस लड़खड़ाते

हुए छोटे से 'शायद' के रूप में बाक़ी रह गया है ! और यही उनका 'धर्म' है ?

(मल्लिका का प्रवेश)

मल्लिका—महारानी !

रानी– क्या अजातशत्रु का कोई समाचार मिला ?

मल्लिका –हाँ, वे देवदत्त को बुलाने गये हैं। त्रिपिटक (बौद्ध-धर्म) के धर्म का नाम-निशान भी वे अपने राज्य में न रहने देंगे !

रानी--कायर कहीं का ! राजा होकर राज्य करने से डरता है ! बुद्ध के अनुशासन में कितनी थोड़ी शक्ति है, इसका प्रमाण स्वयं मेरा ही जीवन है। किन्तु उस ज़रा सी शक्ति का विरोध करने के लिए वह देवदत्त-सरीखे नीच की सहायता लेना चाहता है। अकेले उसका विरोध करने की हिम्मत उसमें नहीं है।

मल्लिका—जिनके पास जितना ही अधिक रहता है वे उतने ही अधिक डरपोंक होते हैं। वे इस राज्य के अधिपति हैं, अतः चाहते हैं कि दूसरे राज्यों के साथ सुलह करके रहें। जब समझते हैं कि बौद्ध-भिक्षुओं को मैंने बहुत अधिक दे डाला तब वे देवदत्त के अनुयायियों को और भी अधिक देना चाहते हैं।

रानी—मेरा भाग्य अब बिलकुल अहिंसक हो गया है। कुछ बाक़ी न रहने के कारण मुझे अब उस कायरता की ज़रूरत नहीं रह गई है जो असत्य को अपना साथी बनाती है।

मल्लिका—महारानी, आप तो आज उस भिक्षुणी के समान बातें करती हैं। वह कहती है कि हमारे राज्य की महारानी धन्या और भाग्यशालिनी हैं, क्योंकि वे भगवान् बुद्ध की दया से माया-जाल में बद्ध करनेवाले सब बंधनों से मुक्त हो गई हैं।

रानी—इन निरर्थक युक्तियों से मुझे और भी अधिक दुःख होता है। अगर तुम्हारी इच्छा है तो कोरे सत्य को लेकर उसी में मस्त होओ, किन्तु मुझे मेरा वही बन्धन लौटा दो जो मुझे पृथ्वी से बद्ध रखता है। तब मैं एक बार फिर उसी अशोक-वृक्ष के नीचे दीपावली प्रज्वलित करूँगी; एक बार फिर सैकड़ों भिक्षुओं को भोजन मिलेगा; और उनके मंत्र—प्रत्येक मन्त्र —मेरे महलों में नित्य गूँजेंगे। किन्तु यदि यह नहीं हो सकता तो देवदत्त को आने दो।

वह सच्चा है या झूठा - मैं इसकी परवा नहीं करती—मैं ऊपर से जाकर देखती हूँ कि उनमें से कोई दिखता है या नहीं।

(सब जाते हैं।)

वीणा लिये हुए नर्त्तकी श्रीमती का प्रवेश। घास पर कालीन बिछाकर वह अपनी चेलियों को बुलाती है।)

श्रीमती—अब समय आ गया है। आओ (बैठकर गाती हैं)

(ग्रामवासिका मालती का प्रवेश)

मालती—क्या तुम्हीं श्रीमती हो ?

श्रीमती—हाँ, मुझसे तुझे क्या काम है ?

मालती – लोगों ने मुझसे कहा है कि तुमसे मैं गाना सीख सकती हूँ।

श्रीमती—क्या मैंने तुझे महलों में पहले कभी देखा है ?

मालती—मैं अभी अपना गाँव छोड़कर आ रही हूँ। मेरा नाम मालती है।

श्रीमती—बेटी ! तुम यहाँ क्यों आई हो ? क्या तुम्हारे लिए जीवन भाररूप हो रहा था ? वहाँ तुम वेदी के फूल के समान थीं और देवता तुमसे प्रसन्न थे, किन्तु यहाँ तुम विलासिता के उद्यान की कली के समान होगी और चुड़ैलें तुम्हें हँसेंगी। क्या तुम गीत सीखने आई हो ? क्या तुम्हारी आशाओं का इतने में ही अन्त है ?

मालती—क्या सच सच बताऊँ ? मेरी आशायें बहुत लम्बी-चौड़ी हैं, किन्तु मैं उन्हें मुँह पर लाने की हिम्मत नहीं कर सकती।

श्रीमती—हाँ, मैं समझी—शायद किसी दिन तुम रानी बन जाने की इच्छा रखती होगी ! अगर तुम्हारे पूर्व-जन्म के पाप काफ़ी हैं तो तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी। जब वन-विहंगम सोने के पींजरे से शोभित हो जाता है तब अवश्य ही उसके पंखों पर चुड़ैल

का निवास रहता है। अब भी अपने जंगल को वापस चली जाओ, अभी समय है।

मालती—बहन, मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।

श्रीमती—हार के बदले साँकल क्यों चाहती हो अभागिनी?

मालती—तुम मुझ पर अन्याय कर रही हो, मुझे अपना मतलब समझाने दो। एक बार भगवान् बुद्ध इस उद्यान में पधारे थे और मैंने सुना है एक पेड़ के नीचे बैठे थे। उसी जगह महाराज ने एक मंदिर भी बनवा दिया है।

श्रीमती—सच है।

मालती—लोग कहते हैं कि रोज़ शाम को राजकुमारियाँ आकर अपनी भक्ति-पुष्पाञ्जलि वहाँ चढ़ाती हैं। मेरे इतने भाग्य कहाँ कि मैं भेंट चढ़ा सकूँ—पर क्या मैं वेदिका को झाड़-बुहार कर साफ़ भी नहीं कर सकती? यही आशा है, जो मुझे गायन सीखने के लिए यहाँ तक लाई है।

श्रीमती—आओ बहन, मुझे बहुत आनन्द हुआ। कुमारियों के पूजा-प्रदीप रोशनी की अपेक्षा धुआँ ही अधिक देते हैं—वे तुम्हारे पावन स्पर्श के लिए प्रस्तुत हैं। पर तुमने ये बातें कैसे सोचीं?

मालती—बहन, मैं तुम्हें कैसे बताऊँ? हवा में आग के समान एक आवाज़ आ रही है। कल ही मेरे भाई ने उसे सुना था। वह १८ वर्ष का भी न होगा। मैंने उसका हाथ पकड़कर पूछा—"मेरे प्यारे भैया, तुम कहाँ जाते हो"? "उसने कहा—"उसी की खोज में"।

श्रीमती—आज समुद्र ने प्रत्येक नदी की तरंगों को निमन्त्रण दिया है। आकाश में पूर्ण चन्द्र भी प्रकाशित है। (मालती का हाथ पकड़कर यह क्या है? तुम्हारी अँगुली में यह मुँदरी कैसी है? क्या स्वर्ग के फूल ने अपने को माटीमोल बेच दिया है?

मालती—मुझे पूरी कथा बताने दो। तब तुम समझोगी।

श्रीमती—मैंने बहुत कुछ सहा है, इसलिए समझने की शक्ति आ गई है।

मालती—हम लोग ग़रीब थे और वह धनी था। मैं दूर से चुपचाप अपनी चुपकी को पारकर उसे देखा करती थी। एक दिन वह ख़ुद हमारे घर पर आया और कहा कि मैं इसे प्यार करता हूँ। मेरे पिता ने कहा—"मालती भाग्यवती है। जब सब तैयारी हो गई, वह हमारे द्वार पर आया—वर के भेष में नहीं, किन्तु एक भिक्षु के कपड़े पहने हुए। वह मुझसे बोला—"अगर कभी हम लोग मिलेंगे तो यहीं नहीं किन्तु स्वाधीनता के पथ पर मिलेंगे।" बहन, मुझे माफ़ करो। मेरी आँखें आँसुओं से भरी हुई हैं, क्योंकि मेरा जी कच्चा है।

श्रीमती—बहन, डरो मत। अपने आँसुओं को खुलकर बहने दो। वे तुम्हारी स्वाधीनता के मार्ग की धूल को धो डालेंगे।

मालती—मैंने नमस्कार कर उससे कहा—"मेरा बंधन अभी बहुत मज़बूत है। मुझे अपने वचन दी हुई अँगूठी दो। जब वह अँगूठी मेरी अँगुली से भगवान् की वेदी पर गिरेगी तब हम दोनों स्वाधीनता के पथ पर मिलेंगे।

श्रीमती—ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो अपना भवन बना कर आज तोड़ रही हैं। ऐसी नारियाँ भी बहुत हैं जो भिक्षुणी की अलफ़ी पहनकर पथ की भिखारिणी बन गई हैं। पथ की पुकार से या पथिक से? कौन जाने? कितनी बार मैंने अपनी अंजुलि जोड़कर अपने सच्चे हृदय और पूरी आत्मा से प्रार्थना की है—"हे महापुरुष! आप ही तो महान् हो! इस प्रकार निश्चल मत रहो। आपने ही नारियों की अश्रुधारा के बाँध को तोड़ दिया है; अब आप ही उन्हें शान्ति-सुधा का पान कराइए।"

(एक तरफ़ देखकर—ये तो राजकुमारियाँ आ रही हैं)

वासवि—(प्रवेश कर) यह लड़की कौन है? भला मैं देखूँ तो सही! अपने सिर पर इतने जूटे का कैसा पहाड़-सा उठा रक्खा है। बाल-जाल में कानों के ऊपर जवा-कुसुम खोंस रक्खा है।

देखो तो नन्दा, देखो तो जूटे में आकण्ड पुष्पों की माला कैसी लपेट रक्खी है। क्या वह रत्न बीजों की माला है? श्रीमती, यह आई है कहाँ से?

श्रीमती—अपने गाँव से आई है। मालती नाम है।

रत्ना—तुम्हारे उपदेशों से स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करने की इच्छा से ?

श्रीमती—गाँव की लड़कियों को इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं है कुमारी! स्वर्गीय चिह्न उनके शरीर पर बिना गहनों के कलुषित या धूलि-धूसरित हुए बने रहते हैं।

रत्ना—तुम्हारे उपदेशों से स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करने की अपेक्षा मैं उनसे वञ्चित रह जाना ही अच्छा समझी हूँ।

नन्दा—अजिता, रत्ना इस प्रकार हमेशा श्री को क्यों तंग करती रहती है? श्रीमती कभी उपदेश नहीं देतीं—

वासवि—किन्तु उसकी चुप्पी में ही उपदेश का सारा संसार भरा हुआ है। उसका मुसकुराना तो देखो! क्या यही एक बड़ा भारी उपदेश नहीं है ?

रत्ना—बहुत ठीक! अगर दूसरे शब्दों में कहा जाय तो वह इस प्रकार होगा—

"अक्रोधेन जिने क्रोधं तर्के सुस्मितया जिने ॥

वासवि—श्रीमती, तुम अपने आपको इन आक्षेपों से नहीं बचातीं। अपना समर्थन क्यों नहीं करतीं? लोगों को क्रोधित करना उन्हें उन्नति करने की अपेक्षा अधिक दयालुता का काम है।

श्रीमती—यदि मैं सचमुच हृदय से अच्छी होती तो ऊपर से बुरी दिखने का प्रयत्न करती। चन्द्रमा अपनी चाँदनी पर पर्दा डाले तो उसे शोभा देता है, किन्तु अगर अँधेरी रात अपने को बादलों से ढँके तो कैसा हो ?

अर्जिता—देखो वह गाँव की लड़की आश्चर्य से चुप है। वह मन में सोचती होगी कि महल की लड़कियाँ जी में मीठी होने की अपेक्षा तीखी अधिक हैं। (मालती से) तुम्हारा नाम क्या है? मैं भूल गई।

मालती—मालती।

अर्जिता—अच्छा बताओ तुम अभी मन में क्या सोच रही थीं ?

मालती—मैं तुम्हारे कड़े शब्दों पर दुःखित हो रही थी, क्योंकि मैं अपनी बहन (श्रीमती को बताकर) को प्यार करने आई हूँ।

अर्जिता—जिनको हम प्यार करते हैं उन्हें हँसी हँसी में दुःख पहुँचा देते हैं। महल के जीवन का यह एक नियम है। इसे गाँठ में बाँध रक्खो।

नन्दा—मालती, तुम और कुछ कहना चाहती थीं। मैं यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि तुम हम लोगों के बारे में क्या सोचती हो ?

मालती—मैं कभी नहीं सोचती! मैं सिर्फ़ यह कहना चाहती थी कि "क्या तुम्हारी बातें ही इतनी मधुर हैं कि तुम संगीत का समय बातों में ही खो देती हो ?"

(कुमारियाँ हँसती हैं)

वासवि—मैं ऐसा कभी नहीं करती। कभी नहीं। अपने व्याकरणाचार्य को बुलाना चाहिए। उनके लिए एक नया....... मिल गया।

रत्ना—कभी नहीं वासवि! राजमुकुट की मणि!

वासवि—कभी नहीं रत्नावली! मनोमोहक सुंदर चंद्र!

नये शब्दों का कितना भण्डार चाहिए!

मालती—(श्रीमती से) क्या वे मुझसे नाराज़ हो गईं?

नन्दा—मालती डरो मत। जब आकाश ओले बरसाता है तब उसे फूलों से नाराज़ नहीं समझना चाहिए। ये तो उसके प्यार करने के तरीक़े हैं।

श्रीमती—(जाती है)

वासवि—तेरे नेत्रों में नीर क्यों भर आया मालती ?

इस गाने से तू क्या समझी ?

मालती—मेरी बहन ने पुकार सुन ली है।

वासवि—कौन-सी पुकार? किसकी पुकार ?

मालती—वही पुकार जिसने मेरे भाई को भिखारी बना दिया। वही पुकार जिसे मेरे......(हिचकती है)

वासवि—मेरा क्या ?

श्रीमती—चुप मालती! आगे मत कहो। अपने आँसू पोंछ डालो। यह रोने की जगह नहीं है।

वासवि—उसे तुमने क्यों रोक दिया श्रीमती? क्या तुम

समझती हो कि हम लोग केवल हँसना ही जानते हैं ?

भद्रा—हम जानती हैं कि ऐसी भी उच्च भावनायें हैं जहाँ हँसी पहुँच ही नहीं सकती।

मालती—क्या तुम लोगों ने वे शब्द सुने हैं जो आज वायु में ध्वनित हो रहे हैं ?

नन्दा—नहीं! प्रभात की प्रथम किरण पद्म की पँखड़ियों को खोलती है—महलों की दीवालों को नहीं।

(रानी लोकेश्वरी का प्रवेश—कुमारियाँ उठकर प्रणाम करती हैं)।

रानी—अब मैं और अधिक सहन नहीं कर सकती। क्या तुम सड़कों से आती हुई आवाज़ों को नहीं सुनतीं ?
"नमो बुद्धाय लोकगुरवे।" ओह !
यह मेरे हृदय को दहला देता है। (कान मूँदकर)
इसे आज ही, अभी, इसी समय बन्द होना चाहिए।

मालती—शान्त हों महारानी।

रानी—मैं अपनी ईर्ष्या को किस तरह शान्त करूँ ? क्या मंत्र या श्लोक उसे शान्त कर सकता है ?—
"नमो परमशान्ताय, परमकारुणिकाय !"
इन मंत्रों से मुझे क्या होगा ? नहीं "नमो
क्रोधमूर्त्यै वज्ररूपाय महाकाल्यै नमः॥ नमो
संहारकार्यै।"
केवल रक्त-प्लावन और अग्निदाह से ही शान्ति आवेगी। नहीं तो पुत्र मा की गोद से खींच लिया जायगा—राना अपने राजसिंहासन से सूखे पत्ते के समान झड़ पड़ेगा! (कुमारियों से) तुम सब यहाँ क्या कर रही हो ?

रत्ना—(हँसकर) हम लोग निर्वाण की प्रतीक्षा कर रही हैं—हम अपने पाप-पूर्ण हृदयों को पवित्र कर धीरे धीरे अपने गुरु श्रीमती के दर्शित पथ का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रही हैं।

वासवि—ओह! बहुत बनो मत!

रानी—क्या ? नर्त्तकी तुम्हारी गुरु है ? सचमुच यह धर्म इन्हीं बातों की ओर ले जा रहा है। जो महापतित है वही निर्वाण का संदेश लेकर आवेंगे। तो श्रीमती क्या साधुनी हो गई ? जब भगवान् बुद्ध हमारे उद्यान में पधारे थे, सभी उनके दर्शन करना चाहते थे। मुझे इस लड़की पर दया आ गई और मैंने इसे भी बुला लिया। मगर इस अभागिनी ने इनकार कर दिया। किन्तु अब लोग कहते हैं कि जब भिक्षु उपासी आता है तब राजघराने की कुमारियों को छोड़कर इस नर्त्तकी के हाथ से भिक्षा ग्रहण करता है! ओह! मूर्ख लड़कियो! अभी तुम लोग उस धर्म को स्वीकार करने को तैयार हो जो राज्यासनों को धूलि के बराबर मिलाना चाहता है, जिसमें राजा एक तरफ़ रह जाते हैं और भिक्षु धृष्टता कर घुस आते हैं। और यही तुम्हारे लिए सच्चा धर्म है! वाह री आत्मघातको! (श्रीमती) क्यों री नर्त्तकी! दीक्षा के समय तूने उपासी से कौन सा पवित्र मंत्र सुना है ? अब तुझे उसे उच्चारण करने की भी हिम्मत न पड़ेगी—तेरी अपवित्र जीभ अब चुप्पी धारण कर लेगी।

श्रीमती—(मंत्र कहती है) नमो बुद्धाय—शिक्ष
नमो धर्माय—रक्ष
नमो संघाय—परमश्रेष्ठाय

रानी—(उसी को कहती है) नमो बुद्धाय शिक्ष मित्र।
बस। बस। बहुत हो गया।

श्रीमती—(जारी रखती है) हे भगवान्, जो मुझ मित्र-हीन पर परम दयालु हो!
(स)—

(दासी का प्रवेश)

दासी—महारानी, कुमार चित्र अपनी माता के दर्शन करने पधारे हैं।

रानी—कौन कहता है कि यह धर्म झूठा है ? पवित्र मंत्रों के उच्चारण के साथ ही साथ सब पाप दूर हो गया! ओ श्रद्धाहीन पुरुष! एक बार तुम मेरी दुर्दशा पर हँसते थे, किन्तु अब देखो कि मेरे दयालु प्रभु ने कैसी करुणा-धारा प्रवाहित की है ? उससे पाषाण भी गल जाते हैं! मेरी बात सुनो! मैं एक बार फिर कहती हूँ कि मैं अपने पुत्र को फिर से पाऊँगी—

फिर से सिंहासन पाऊँगी। एक बार फिर मैं उनके घमण्ड को चूर करूँगी जिन्होंने मेरे प्रभु को अपमानित और धूलि-धूसरित किया है।

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धर्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।
दासी के साथ प्रस्थान)

रत्ना—अब किस ओर हवा बहती है मल्लिका!

मल्लिका—आज आकाश क्षुब्ध झंझावात से पूरित है। क्या कोई जानता है कि वे कहाँ से आती हैं या वे कहाँ जायँगी या वे मनुष्यों को किस प्रकार उड़ाती फिरती हैं?

रत्ना—अन्त में कुमार चित्र लौट ही आये।

म—देखो अन्त में क्या होता है।

मल्लिका—(श्रीमती से) क्या यह सच है बहन कि जिस दिन भगवान् उद्यान में पधारे थे उस दिन तुम उनके दर्शनों को नहीं गई?

श्रीमती—हाँ, सच है। अपने आपको उनके सम्मुख खड़ा करना एक भेंट उपस्थित करने के समान है। मैं अपवित्र थी—मेरी बलि तैयार नहीं थी।

मल्लिका—कितने दुःख की बात है बहन!

श्रीमती—बिना पूरी तैयारी के उनके समीप जाना व्यर्थ है। केवल चर्म-चक्षुओं से उनके दर्शन करना असली दर्शन करना नहीं है। और केवल कर्णों से उनके उपदेश सुनना यथार्थ श्रवण नहीं है।

रत्ना—ओहो! यह तो हम लोगों पर आक्षेप है। उदारता का ज़रा-सा झोका चलने पर ही इस नर्त्तकी की सभ्यता का पर्दा उड़ जाता है।

श्रीमती—बनावटी-दिखावटी सभ्यता के मेरे दिन चले गये। मैं तुम्हारी प्रशंसा में झूठ से काम नहीं लेना चाहती। मैं स्पष्ट रूप से कहती हूँ कि तुम लोगों ने भगवान् के सम्यक् दर्शन नहीं किये हैं—
तुम्हारे चर्म-चक्षुओं ने ही उनके बाह्य रूप को देखा है।

रत्ना—वासवि, भद्रे, तुम एक नर्त्तकी की इतनी धृष्टता कैसे सहन कर सकी हो?

वासवि—अगर हम बाहर सत्य के प्रकाश का सामना नहीं कर सकते तो हमें भीतर असत्य के अन्धकार में रहना पड़ेगा।

श्रीमती—फिर से मंत्रोच्चारण करो। और मेरे हृदय-स्थित कंटकों को अपनी तीव्रता खोने दो—

श्रीमती—नमो बुद्धाय शिक्षयित्रे।
नमो धर्माय रक्षयित्रे।
नमो संघाय सर्वश्रेष्ठाय॥

नन्दा—हम लोग भगवान् के दर्शन करने बाहर गये थे, किन्तु इसने अपने हृदय के अन्तस्तल में उनके सम्यक् दर्शन किये हैं।

रत्ना—नर्त्तकी, क्या नम्रता तुझसे बिलकुल ही दूर भाग गई है? क्या तू इसका विरोध न करेगी?

श्रीमती—मैं क्यों करने चली कुमारी? अगर वे मेरे हृदय-पथ पर अपने पाद-पद्म रखते हैं तो महिमा उन्हीं की है, मेरी नहीं।

वासवि—बस, बहुत हुआ। बातों पर बातें होती हैं। जाओ,

(नेपथ्य से शब्द आते हैं)

नमो त्रिपिटकाय—नमो बुद्धाय।
नमो महाप्राणाय—नमो महाकारुणिकाय!

(भिक्षुकिनी उत्पला का प्रवेश)

कुमारिकायें—(प्रणाम करके) देवी के चरणों में प्रणाम है।

(भिक्षुकिनी आशीष देती है)

भिक्षुकिनी—श्रीमती!

श्रीमती—जो आज्ञा देवि!

भिक्षुकिनी—आज हमारे भगवान् का जन्म-दिवस है। आज वसन्त की पूर्णिमा है और आज अशोक-वृक्ष के नीचे भगवान् के आसन पर भेंट चढ़ाने का काम श्रीमती के ज़िम्मे होगा।

रत्ना—मैंने ठीक ठीक नहीं सुना! तुम्हारा मतलब किस श्रीमती से है?

भिक्षुकिनी—इन्हीं श्रीमती से जो यहाँ हैं।

रत्ना—यह महल की नाचनेवाली!

भिक्षुकिनी—हाँ, यही नर्त्तकी !

रत्ना—क्या बड़ों ने तुम्हें यह आज्ञा दी है ?

भिक्षुकिनी—हाँ, उन्हीं की आज्ञा है।

रत्ना—वे कौन कौन हैं ? ज़रा उनके नाम तो सुनूँ।

भिक्षुकिनी—उपासी उनमें से एक है।

रत्ना—जाति का नाई ?

भिक्षुकिनी—सुनन्दा दूसरा है।

रत्ना—ग्वाले का लड़का ?

भिक्षुकिनी—अह ! कुमारी, उन सबकी ही एक ही जाति है। क्या तुम उनकी उपाधियाँ नहीं जानतीं ?

रत्ना—बिलकुल नहीं ! शायद वही नर्त्तकी जानती है। वे सब उसी की जाति के होंगे। इसी से उनकी परस्पर सहानुभूति है !

भिक्षुकिनी—ऐसी ही बात है। हमारे पूजनीय पिता बिम्बिसार आज हम लोगों की पूजा में सम्मिलित होने के लिए अपना आश्रय छोड़ रहे हैं। मैं उनका स्वागत करने को जा रही हूँ—

अ—तुम कहाँ जा रही हो श्रीमती ?

श्रीमती—अशोकतले की वेदिका का प्रक्षालन करने।

मालती—मदद देने के लिए मुझे भी साथ ले चलो बहन !

नन्दा—मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

अ—मैं भी शायद आ जाऊँ।

वासवि—मैं भी दर्शन करने को उत्सुक हूँ।

रत्ना—कितना सुन्दर है ! श्रीमती पूजा करेंगी और तुम उसकी भक्त चेलियाँ उसको पंखा झलना।

वासवि—और तुम यहीं बैठी बैठी हम सब पर शापों की वर्षा करना। मगर कुछ हर्ज नहीं। इससे अशोक-वृक्ष में आग तो लग ही न जायगी और न श्रीमती की ही शान्ति भंग होगी।

(रत्ना और मल्लिका के सिवा सबका प्रस्थान)

रत्ना—यह नहीं चल सकता। नहीं चल सकता—यह सब प्रकृति के विरुद्ध है। मल्लिका, मैं पुरुष क्यों न हुई ? इन अलंकारों को धिक्कार है ! आह ! यदि इनके बदले मैं तलवार लिये होती तो बतलाती। और तुम मल्लिका ! तुम क्यों कुछ नहीं बोलीं ? क्या नर्त्तकी की दासी बनने की तुम्हारी उत्कट इच्छा है ?

मल्लिका—अगर चाहूँ तो भी नहीं बन सकती। वह मुझे अच्छी तरह जानती है।

रत्ना—मैं नहीं समझ सकती कि तुम इस प्रकार चुपचाप क्यों सहन करती हो ? सहनशीलता तो असहायों और गँवारों का हथियार है न कि राजकुलोत्पन्न पुरुषों का।

मल्लिका—गणना का समय निकट आ रहा है तब मैं अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहती।

रत्ना—क्या तुम्हें निश्चय है ?

मल्लिका—हाँ, बिलकुल निश्चय।

(—अगर गुप्त बात हो तो मुझसे छिपाओ। मैं केवल यह जानना चाहती हूँ कि क्या हम राजकुमारियाँ होकर केवल हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी और वह नर्त्तकी होकर संध्या की उपासना करेगी ?

मल्लिका—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। इतना तो मैं तुम्हें वचन देती हूँ।

रत्ना—राजमहल की अधिष्ठात्री देवी तुम्हारे वचनों को सत्य करें !

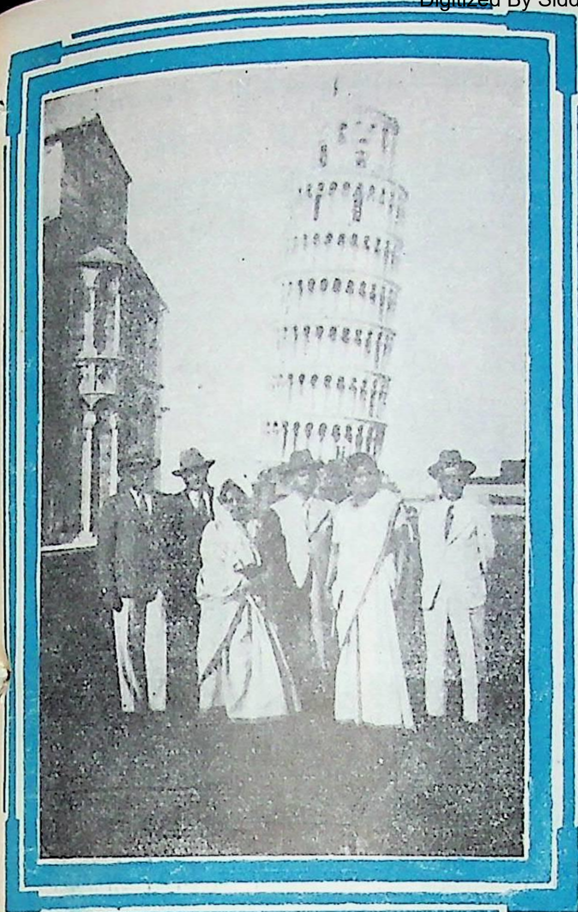
गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पाँडे

कौन-सी अनुभूति है यह ?
मृदुल-सा कुछ, स्वप्न-सा आया न जाने पास क्या,
आलोक-सा, कुछ तिमिर-सा छाया न जाने आज क्या,
स्वर्ग-लोक विभूति है यह !
कौन-सी अनुभूति है यह !

जन्म का सुख है कि या यह मृत्यु का उल्लास आया।
प्रलय को भर अंक में नव सृष्टि का आभास आया।

प्रकृति की चिर-रीति है यह !
कौन-सी अनुभूति है यह !



[पीसा की मीनार के निकट लेखक की पार्टी]
(बाईं ओर से—श्रीयुत बनवारीलाल, श्रीयुत चटर्जी, श्रीमती चटर्जी, लेखक, कुमारी बस्तिस्ता और श्रीयुत द्रू)

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

५—फ़्लोरेंस वेनिस वायना और बुडापेस्ट से होकर

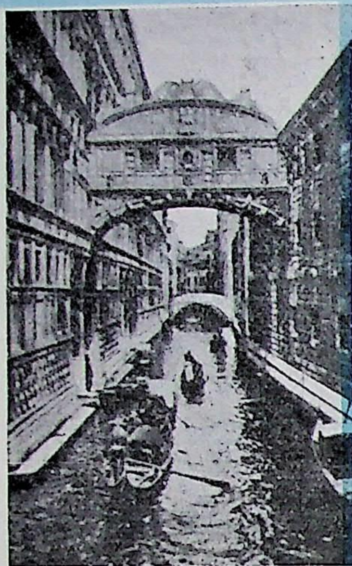
लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष



रोम के बाद हम फ़्लोरेंस के लिए रवाना हुए। यह शहर अपनी चित्रशालाओं के लिए प्रसिद्ध है। हम उत्तर की ओर जा रहे थे और प्राकृतिक दृश्य का परिवर्तन हमें स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। दक्षिणी इटली में धूप तेज़ होती है और खेती भी अधिक होती है। वर्ष के इस भाग में वहाँ उष्णता-प्रधान देशों में पाई जानेवाली अनेक धान्यों की खेती होती है। परन्तु यहाँ हरियाली कम दिखाई पड़ती है।

फ़्लोरेंस हम उपयुक्त समय पर दिन में पहुँचे। रोम में हमारे गाइड ने फ़्लोरेंस की एक यात्री-संस्था को तार दे दिया था। हमारे पहुँचते ही उसने शीघ्र ही हमारे ठहरने की व्यवस्था करनी आरम्भ कर दी। नगर के केन्द्र में हम एक अच्छे होटल में आराम के साथ ठहराये गये। तीसरे पहर के चाय-पानी के पश्चात् हम गाइड के साथ शहर घूमने निकले। मार्ग में हमें इटली के अमर कवि दान्ते का घर मिला। हमें वह विशेष स्थान दिखाया गया जहाँ दान्ते बिआट्रिस पर प्रेम-मुग्ध हुआ था। ये दोनों स्थान संरक्षित हैं। फ़्लोरेंस का गिर्जा इटालियन शिल्प-कला का एक अच्छा नमूना है। इसका निर्माण गाथिक शैली पर हुआ है और प्रवेश-द्वार पर ख़ूब बारीक़ कारीगरी है। ऐसी कारीगरी कोलेन (जर्मनी) के गिर्जा के सिवा और कदाचित् ही कहीं देखने को मिली। फ़्लोरेंस में उसके गर्व करने योग्य वैसी विशाल इमारतें नहीं हैं।

रात में ख़ूब आराम करने के बाद सवेरे हम वहाँ की प्रसिद्ध चित्रशालायें देखने को निकले। वहाँ


"आहों का पुल"


डेला सैलूट का गिर्जा


सेंट मार्को का गिर्जा और बेल-टावर

दो चित्रशालायें हैं और उनको अच्छी तरह से देखने के लिए साधारण तौर पर दो दिन लगते हैं। इन दोनों चित्रशालाओं ने शताब्दियों से योरप और अमरीका के हज़ारों चित्रकारों को आकर्षित कर रक्खा है। हमने वहाँ कई विद्यार्थियों को जिनमें पुरुष और स्त्री दोनों थे, प्रसिद्ध कलाविदों के चित्रों की प्रतिलिपि तैयार करने में व्यस्त देखा। उनमें बहुत-से अपनी इन प्रतिलिपियों को दर्शकों के हाथ बेचते हैं और इस प्रकार अपना जीविकोपार्जन करते हैं। एक वयस्क महिला-द्वारा अङ्कित 'टिटियन' की एक प्रतिलिपि ने हमें विशेषरूप से आकर्षित किया। मूल और प्रतिलिपि में वास्तविक अन्तर क्या है, यह जानना कठिन था। चटर्जी साहब तो उससे इतने प्रभावित और मुग्ध हुए कि उन्होंने उस महिला को २ पौंड उपहार-स्वरूप दिये।

उन चित्रशालाओं में बहुत-से धुरन्धर चित्रकारों की कृतियाँ हैं। उन सबका विस्तृत वर्णन हम यहाँ नहीं करेंगे, क्योंकि उससे पाठक ऊब जायँगे। अमर चित्रकार रैफ़ेल के तीन प्रसिद्ध चित्र यहाँ रक्खे गये हैं। मेरे पास शब्द नहीं हैं कि मैं बताऊँ कि वे कितने अद्भुत हैं। मडोना और शिशु नामक प्रसिद्ध चित्र को जो प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक रूप में अङ्कित किया गया है, हम देखते ही दङ्ग रह गये। वह इतना सजीव, इतना सुन्दर और इतना नवीन प्रतीत हुआ कि वह हमारे मानस-पट पर सदा के लिए अङ्कित हो गया और उसे अपने जीवन में हम कभी नहीं भुला सकेंगे। अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो जानेवाले महान रैफ़ेल के लिए इस महान् स्थान में एक विशेष स्थान अलग कर दिया गया है। यहाँ की अन्य कृतियाँ भी जो यद्यपि इतनी प्रसिद्ध नहीं हैं, ध्यान देने योग्य हैं। यह संग्रह इटालियन चित्रकारों तक ही परिमित नहीं है, बहुत-से डच, जर्मन, फ्रेंच और इँग्लिश चित्र भी इसमें रक्खे गये हैं। उस समय कुछ चित्र एक विशेष प्रदर्शन के लिए

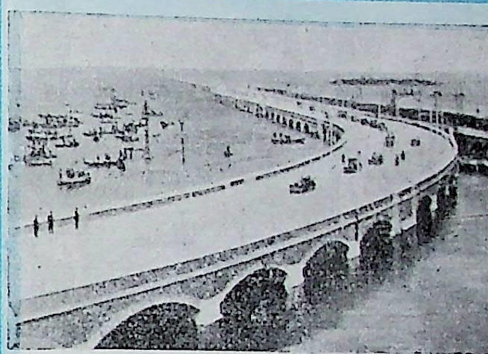
पेरिस भेज दिये गये थे अतएव उन्हें हम नहीं देख सके।

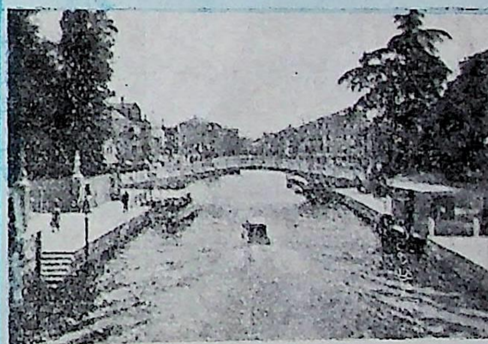
इस चित्रशाला में इटालियन तक्षण-कला का एक ख़ास विभाग है। महान् मूर्तिकार माइकल एंजिलों और ल्योनार्डो की सांस्कृतिक कला के बहुत ही सुन्दर नमूने यहाँ मौजूद हैं। यह संग्रहालय इतना बड़ा है कि इसमें प्रत्येक काल और प्रत्येक शैली के उन कलाविदों की कृतियों के यथेष्ट नमूने भरे पड़े हैं जिनका नाम इटली में ही नहीं, तमाम योरप में घर-घर लिया जाता है।

दूसरे दिन हम मोटर-कोच से विसा का झुका हुआ मीनार देखने गये। हमारी पार्टी में दस व्यक्ति थे और हममें से कोई भी उस आश्चर्य-जनक और रहस्य-पूर्ण मीनार को देखने से वञ्चित नहीं रहना चाहता था, क्योंकि वह संसार के सात आश्चर्यों में से एक है। निस्सन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण इमारत है और गणित के विद्यार्थियों के लिए अध्ययन की एक मनोरञ्जक वस्तु है। इटली के गाँवों से होकर जाने से हमारी यह यात्रा बड़ी मनोरम रही। सामने करारा पहाड़ी की चोटी दिखाई पड़ रही थी, जहाँ से करारा का संगमरमर समस्त संसार में भेजा जाता है।

दूसरे दिन हमने फ्लोरेंस छोड़ दिया। हमारा लक्ष्य मिलन से होकर वेनिस जाना था। मिस्टर अब्दुल्ला हमारे साथ नहीं जा सके। वे हमें वहीं छोड़कर लंदन के लिए रवाना हो गये। मिलन में हम एक दिन रहे और बहुत देख नहीं सके, क्योंकि यह व्यापारिक नगर है और गिर्जाघर के सिवा यात्रियों के दिलचस्पी की कोई वस्तु यहाँ नहीं है। मिलन का गिर्जाघर अपनी आन्तरिक सजावट और मोसाइक चित्रकारी के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। मिलन का स्टेशन कदाचित् योरप में सबसे अच्छा है। सम्पूर्ण गिर्जाघर करारा के संगमरमर का बना है और इसमें कारिंथियन बनावट के ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ लगे हुए हैं। इसे बने अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं।







[डोज का महल, लैंगून के पार नया पुल, वेनिस की एक नहर।]

मिलन इटली का व्यापारिक नगर है और इटली की बहुत-सी मुख्य मुख्य व्यावसायिक संस्थायें इस नगर के बाह्य भाग में स्थित हैं। मुख्य बाजार बहुत सुन्दर है और कलापूर्ण ढङ्ग से बसाया गया है।



[आस्ट्रिया की कृषक युवतियाँ अपनी देशी पोशाक में।]

या दफ़्तर दोनों सरकारी और व्यावसायिक सब शनिवार को एक बजे बन्द हो जाते हैं। तब शहरों के रहनेवाले लगभग ८० प्रतिशत लोग यदि वे बीमार या दो वर्ष से कम आयु के बच्चे नहीं हैं, बाग़ों में या स्नान की जगहों में ग्रीष्म-काल की चमकीली धूप का आनन्द लेने को झुंड के झुंड निकल जाते हैं। स्थल की ओर से जाने में वेनिस का बाह्य भाग ज़रा मनहूस-सा दिखाई पड़ता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि एड्रियाटिक सागर में यह मुख्य बन्दरों में से एक है। वेनिस हम लगभग ३ बजे दिन को पहुँचे और पहुँचते ही हमारे सामने होटल के एजंटों का एक झुंड आया। परन्तु कोई गड़बड़ नहीं हुआ। वे दो क़तारों में खड़े हो गये थे और उस अवस्था में आप अपने मन का होटल बख़ूबी पसन्द कर सकते हैं। हम स्टेशन के क़रीब ही एक होटल में ठहराये गये, और यात्रियों के लिए यही सुविधाजनक भी होता है। इससे टैक्सी और कुलियों के भारी ख़र्च में किफ़ायत भी होती है। होटल बहुत अच्छा नहीं था, परन्तु कम हवादार कमरे के कारण जो असुविधायें हुई थीं उनकी बहुत कुछ

इसके बाद हमने वेनिस की यात्रा की। मार्ग लम्बा और थकानेवाला था। मार्ग में हमें बहुत-सी झीलें मिलीं, जिनके किनारे पर सुन्दर बँगले बने हुए हैं। स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। शनिवार का दिन था, इसलिए बहुत-से लोग अपने 'वीक-एन्ड' की छुट्टी मनाने निकल पड़े थे। गाड़ी भरी थी और हर स्टेशन पर और भी भरती जा रही थी। इस छुट्टी का योरोपीयों के जीवन में एक विशेष स्थान है। चाहे कारख़ाने हों, चाहे स्कूल



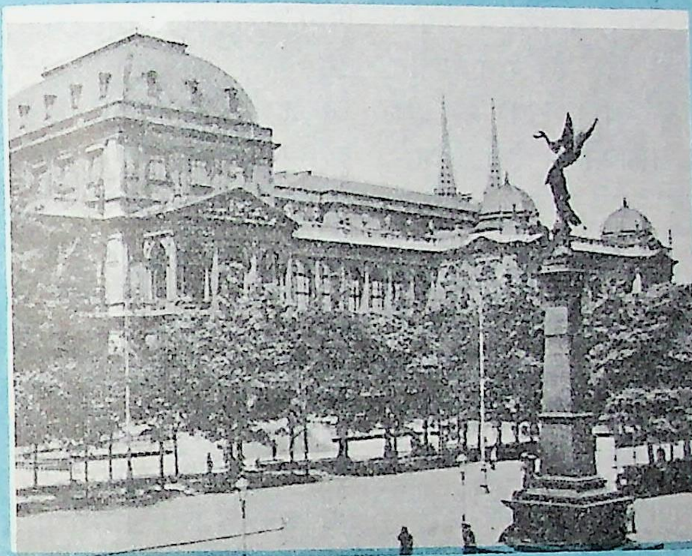
[बुडापेस्ट के निकट किसान खेत में काम कर रहे हैं।]

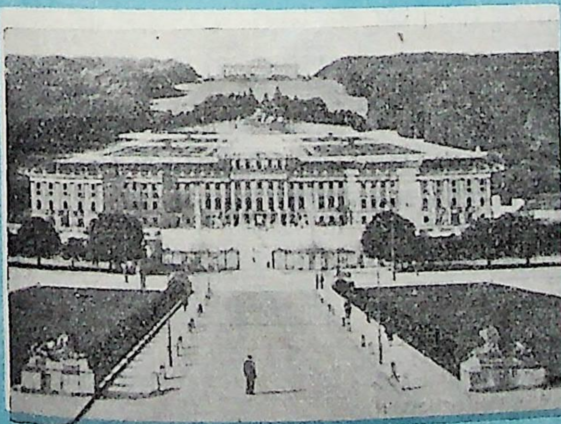
पूर्ति यहाँ अच्छे भोजन से हो गई। हमें यहाँ थोड़े ही समय तक ठहरना था, इसलिए हमने स्थान बदलने की बहुत पर्वा न की। यहाँ का व्यय भोजन के सहित लगभग ८ रुपया प्रतिदिन था। यह व्यय औसत दर्जे का समझा जाता है।

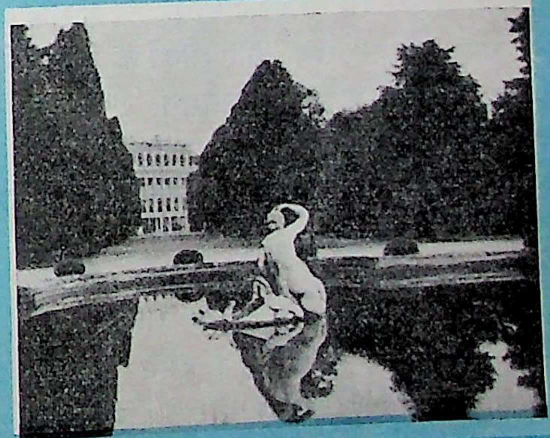
लायड ट्रिस्टिनो लाइन जिसके जहाज़ वेनिस से बम्बई तक आते-जाते हैं, यहाँ बहुत लोक-प्रिय है, क्योंकि हमारे बहुत-से भारतीय यात्री सीधे यहाँ उतरते हैं। लंदन को रवाना होने से पूर्व वे प्रायः यहाँ एक रात व्यतीत करते हैं। इस तरह वेनिस में आपको वर्ष में किसी भी समय अपने देशवासियों के दर्शन हो सकते हैं। हमें बहुत-से मित्रों से मिलने का यहाँ अवसर प्राप्त हुआ, जो वायना का विशेष चिकित्सा के लिए जा रहे थे।

वेनिस कच्छ-प्रदेश में स्थित है, इसलिए सारा शहर नहरों से घिरा हुआ है। किसी भी इमारत में जाइए, आपको नहरों से होकर ही जाना होगा। हमारा होटल 'ग्रेंड कैनल' के किनारे पर था। यह शहर की मुख्य नहर है। नहरों के बीच में द्वीप की भाँति खड़ी हुई इमारतों को देखना हमारे लिए एक अभूतपूर्व दृश्य था। यात्रियों को यह दृश्य बहुत ही सुहावना मालूम पड़ता है।

तीसरे पहर हमने एक 'गोंडोन्ला' किराये पर लिया और नहर में लगभग ११ मील के भ्रमण का अत्यन्त आनन्द उठाया। निशा का दृश्य वास्तव में विराट् था। दोनों किनारों पर बिजली की हजारों बत्तियाँ जगमगा रही थीं और रात को दिन बना रही थीं। नवयुवक







(१) वायना का विश्वविद्यालय (२) आस्ट्रिया के भूतपूर्व शाह का ग्रीष्म-निवास (३) ग्रीष्म-निवास बाग़ का एक दृश्य

प्रेमी, खिलाड़ी, सुन्दरी, युवतियाँ सब सैर करने को निकले थे। सुरीली आवाज़ में गाती हुई सुन्दर स्त्रियों और अच्छी पोशाक़ पहने हुए दर्शनीय पुरुषों से वह स्थान अत्यन्त रमणीक हो उठा था।

इसी समय हमारी नौका एक तंग नहर से गुज़री। यह ग्रैंड कैनाल की एक शाखा थी। यहाँ पानी से दुर्गन्धि आ रही थी, और यह हमें बहुत असुखकर प्रतीत हुआ। इस नहर के मार्ग से हम 'आह के पुल' के पास पहुँचे, जिसके पार से उत्पीडन के दिनों में अभागे क़ैदी न्यायालय से क़त्ल-गाह को ले जाये जाते थे। लार्ड बायरन ने अपनी एक अमर रचना के लिए यहाँ एक रात व्यतीत करके अनुप्राणिता प्राप्त की थी। सवेरे हम इस स्थान पर पहुँचे और उन गुफाओं को देखा जिनमें बीते युग में दण्डित मनुष्य रक्खे जाते थे। नदी में एक घण्टा भ्रमण करने के बाद हम अपने होटल को लौट आये और खाना खाया। भोजन बढ़िया था और हमें बहुत-सी अच्छी निरामिष वस्तुएँ खाने को मिलीं। वेनिस के ये होटल भारतीय यात्रियों का सत्कार करना जानते हैं, क्योंकि ये हमारी रुचि से अधिक अच्छी तरह परिचित हैं।

दूसरे दिन सवेरे जलपान के बाद हम १४ वीं शताब्दी के एक भव्य महल में ले जाये गये। यह महल ग्रैंड कैनाल पर स्थित है, और इसमें डोज लोग रहा करते थे। ये पहले वेनिस के शासक थे और अपने अपार धन और शौर्य्य के लिए सारे देश में विख्यात थे। यह लगभग २५० कमरों की एक विशाल इमारत है। इसमें इटली के बहुत-से प्रसिद्ध चित्र अङ्कित हैं और छत की मोसाइक शैली की कारीगरी प्रशंसनीय है।

सेंट मारकोंस का गिर्जा और 'बेलटावर' वेनिस के एक फ़ैशनेबुल मुहल्ले में स्थित हैं। नगर की बड़ी बड़ी दूकानें भी यहीं हैं। हमने वेनिस की कौतूहलवर्धक वस्तुएँ ख़रीदीं और तब गिर्जा देखने गये। यह गिर्जा बहुत पुराना था, पर इसमें वह भव्य सजावट न थी जो रोम के गिर्जों में आम तौर पर देखने को मिलती है। किसी समय वेनिस तुर्कों के हाथ में था। कुछ प्राचीन तुर्की परिवार अब भी वहाँ रहते हैं।

वेनिस में कोई पुरातत्त्व-सम्बन्धी वस्तुएँ नहीं मिली हैं और यह नगर बहुत स्वच्छ भी नहीं है। इस शहर में नाविकों की भरमार रहती है, जो यहाँ प्रत्येक बार छुट्टी पाने पर दो-चार दिन ठहरते हैं। वेनिस का काँच का व्यवसाय बहुत विख्यात है। यहाँ की काँच की वस्तुओं की ११वीं शताब्दी से बड़ी माँग चली आ रही है और अब भी उम्दा कारीगरी की काँच की वस्तुओं के लिए यह नगर अपना निराला स्थान रखता है। नगर के प्रमुख काँच के व्यापारी से हम लोग मिले। उन्होंने हमें बड़े प्रेम से अपना कारख़ाना दिखलाया और काँच की बहुमूल्य वस्तुओं के निर्माण के विभिन्न प्रयोग बतलाये। चटर्जी साहब ने मेज़ की सजावट की काँच की चीज़ों के कुछ सेट माँगे। हमने 'आर्डर-बुक' भी देखा जिसमें बहुत-से भारतीय नरेशों के बहुमूल्य मोसाइक और काँच की वस्तुओं के आर्डर दर्ज थे। प्रत्येक यात्री जो इस नगर में उतरता है, इस आश्चर्यजनक संस्था में ले जाया जाता है। यहाँ मोसाइक कारीगरी की वस्तुओं में नवयुवतियाँ जिस चपल गति से पत्थर जड़ रही थीं उसे देखकर हम दंग रह गये। यह कारीगरी वास्तव में बड़े ऊँचे दर्जे की है, पर साथ ही ख़र्चीली भी है। वेनिस में अपने ठहरने के दूसरे दिन सन्ध्या को हम एक स्थानीय संगीतभवन देखने गये। हम वहाँ एक घंटे से अधिक न ठहर सके, क्योंकि वहाँ जो नृत्य हो रहे थे वे हमें पसन्द नहीं आये। इनमें कला के बजाय कामुकता का ही अधिक प्रदर्शन था और दर्शक भी शिष्ट-वर्ग के नहीं थे।

पूर्णरूप से देखने से वेनिस हमें वैसा पसन्द नहीं आया जैसा कि उसका वर्णन किया जाता है। हाँ, नहर का भ्रमण निःसन्देह बहुत आनन्द-प्रद है।

दूसरे दिन दो बजे हम आस्ट्रिया की राजधानी वायना के लिए गाड़ी पर सवार हुए। यह यात्रा ज़रा लम्बी थी और चूँकि हम कुछ अनुभव प्राप्त करना चाहते थे इसलिए हम सबने तीसरे दर्जे का टिकट ख़रीदा। केवल चटर्जी साहब हमारा साथ न दे सके, क्योंकि उनके पास इटालियन रेलवे का पास था। तीन विभिन्न स्थानों में हमें गाड़ी बदलनी पड़ी और इटली की सीमा पर चुङ्गीवालों ने बड़ी कड़ाई के साथ हमारे असबाब की जाँच की। उसके बाद हम वायना जानेवाली गाड़ी पर सवार हुए और आस्ट्रियन 'टिरोल' से होकर गुज़रे। यह टिरोल यात्रियों के समक्ष एक भव्य दृश्य उपस्थित करता है। प्रत्येक वर्ष हज़ारों यात्री यहाँ छुट्टी बिताने आते हैं। यहाँ बहुत-सी स्वास्थ्यप्रद जगहें हैं, जहाँ लोग स्वास्थ्य-लाभ करने पहुँचते हैं। यहाँ बहुत-से प्राकृतिक सोते हैं, जो अपने रोग-नाशक गुणों के लिए विख्यात हैं।

दूसरे दिन क़रीब २ बजे हम वायना पहुँचे और पूर्व-व्यवस्था के अनुसार एक नवयुवक विद्यार्थी हमसे मिलने आया। श्रीचटर्जी साहब का इस विद्यार्थी से परिचय था। नगर के मध्य में हम एक दूसरे दर्जे के होटल में ठहराये गये। चटर्जी साहब को वायना में एक महीना ठहरना था, इसलिए वे दूसरे दिन एक किराये के मकान में चले गये। अब मैं और मेरे मित्र श्रीयुत लाल अकेले रह गये। वायना में हम सात दिन ठहरे।

किसी समय वायना योरप में 'नगरों की रानी' कहलाता था और सभ्यता और ऐश्वर्य का केन्द्र था। इस समय इसकी जन-संख्या २० लाख है और इसमें बहुत-से सुन्दर बाग़, संग्रहालय और महल हैं। इसका नक़शा रोम से अधिक सुंदर है। सड़कें अत्यन्त स्वच्छ और चौड़ी हैं। यहाँ की नाटकशालायें सारे योरप में विख्यात हैं। एक दिन हम नाटक देखने गये और यद्यपि हम भाषा नहीं समझ सके, तथापि यहाँ का कलापूर्ण नाट्य हमें पसन्द आया। रङ्गमंच अब सर्वथा आधुनिक रूप में है और विशाल यन्त्रों से युक्त है। नाटकशाला की इमारत का क्या कहना! इसके निर्माण में अपार धन लगा होगा। यह इतनी सुन्दर है जितना महल। यह पत्थरों की बनी है और बहुत सुन्दर नक़्क़ाशी और मूर्तियों से सुशोभित है।

वायना चिकित्सा-पद्धति का एक प्रसिद्ध केन्द्र है। प्रतिवर्ष यहाँ सहस्रों विद्यार्थी आधुनिक शल्य-विद्या तथा अन्य चिकित्सा-प्रणालियों में योग्यता प्राप्त करने आते हैं। यद्यपि इसका राजकीय ठाट-बाट तो अब कुछ बाक़ी नहीं रहा, तथापि कला और शिक्षण के लिए इसका स्थान अब भी वैसा ही गौरव-पूर्ण है।

आस्ट्रिया की आर्थिक स्थिति निश्चय ही बुरी है। आस्ट्रिया-हङ्गरी का व्यवसाय-प्रधान भाग अब ज़ेकोस्लोवाकी के अन्तर्गत है और वर्तमान आस्ट्रिया केवल कृषि-प्रदेश ही रह गया है। इस राज्य की जन-संख्या ६० लाख से ऊपर है जो सब जर्मन हैं। राजनैतिक कठिनाइयों के कारण यहाँ के जर्मन जर्मनी से नहीं मिल सकते। वायना का शाही महल अब एक संग्रहालय में परिणत है। हमारे गाइड ने जो एक चतुर व्यक्ति था, हमें महल घुमाकर दिखाया और विस्तार के साथ हमें प्रदर्शन के लिए रक्खी गई ऐतिहासिक वस्तुओं का महत्त्व बतलाया। इसी महल में समस्त शाही ख़ज़ाना भी रक्खा है। महारानी मेरिया थेरेसा जो किसी समय आधे योरप पर शासन करती थीं, यहीं रहती थीं। बड़ी बड़ी गैलरियों में बहुत-से सुन्दर चित्र और शाही जिरहबख़्तर रक्खे हैं।

भूतपूर्व बादशाह का ग्रीष्म-निवास जो 'स्कोन-ब्रौन' के नाम से विख्यात है, एक अत्यन्त सुन्दर आरामगृह है। यह बाग़ योरप के श्रेष्ठ बाग़ों में से एक है और अब भी राष्ट्र की ओर से इसकी व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध है। महल के भीतरी भाग के भी संरक्षण का वैसा ही प्रबन्ध है। यात्रियों

को यहाँ वह महान् ठाट-बाट देखने को मिलता है जिनके बीच में यहाँ के प्राचीन सम्राट् रहा करते थे।

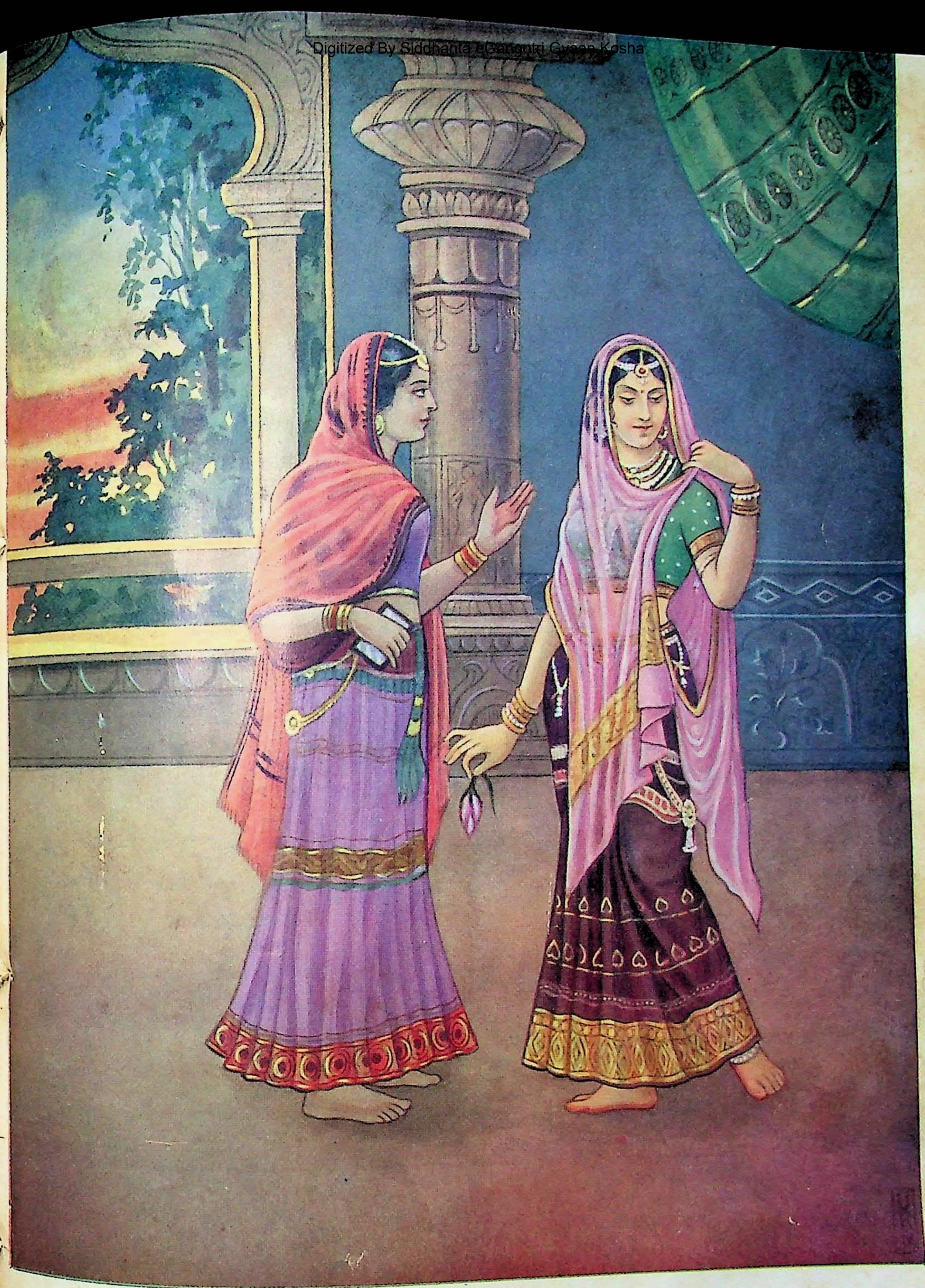
हङ्गरी की राजधानी बुडापेस्ट वायना से बहुत दूर नहीं है, इसलिए हम वहाँ भी गये। हमारे मित्र श्रीयुत रामेश्वरदयाल वहीं ठहरे थे। हम वहाँ शाम को पहुँचे और स्टेशन के निकट एक होटल में ठहरे। मिस्टर दयाल ने अपना पता हमें दिया था, इसलिए हमने होटल के दरबान की सहायता से उन्हें खोज लिया।

बुडापेस्ट में हम जितने समय तक रहे, श्रीयुत दयाल जी ने अपना सारा समय हमारे मनोरञ्जन में लगाया। यह शहर डैन्यूब नदी के तट पर है। नदी के दोनों किनारों पर बहुत-से विशाल होटल और बहु-संख्यक उपहार-गृह धूमधाम से चल रहे हैं। राजनैतिक दृष्टि से हङ्गरी बहुत निर्बल है और कुछ कृषि-सम्बन्धी यन्त्र बनानेवाली दूकानों के अतिरिक्त यहाँ कोई और व्यवसाय नहीं है। अब यह मुख्यतः कृषि-प्रधान देश है और गेहूँ, जौ और मक्का की पैदावार होती है। यह पैदावार अधिकांश में इटली को भेजी जाती है।

प्रयत्न

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

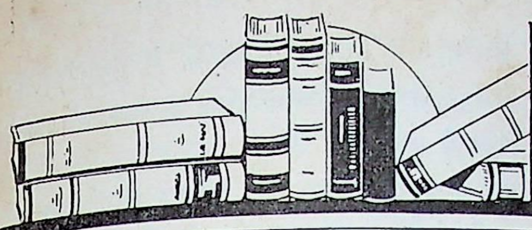
सुखद घन की बूँद मैं उन्मुक्त था उल्लास मेरा।
पूर्ण शशि की किरण में था छिटकता मृदु हास मेरा॥
कुसुम के परिहास में थी खिल रही अभिलाष बाँकी,
झर रहे निर्झर झरों की 'फुहर' में उठ साँस झाँकी।
हाय, मन्दाकिनी-सा मैं बह रहा हूँ आज नीचे,
भव-उदधि में मधुरिमा खारी बनी है आँख मीचे॥
काल की चंचल परिधि से दूर था सुख-राग मेरा।
आज जीवन मृत्यु की अशिथिल कड़ी में भाग मेरा॥
विश्व था उलझी कहानी-सा न उसका छोर पाया,
राग था जिसमें न लय थी, स्वर न था, रव घोर छाया।
आज मैं भी हूँ पहेली है न जिसका आदि कोई,
प्रात आकर रात को जाना इसी में शक्ति सोई॥
कौन आकर बाँध चित्रित कर रहा निश्वास मेरा।
सुखद घन की बूँद मैं उन्मुक्त था उल्लास मेरा॥
काल की कड़ियाँ हमारे हृदय पर नित तान देतीं,
छेद शतशत युत असित पट रात आ परिधान देती।
सुबह केवल प्रेम स्वर भर नित जगाता और रोता,
'दिन यहाँ किसके सुखी हैं' स्वयं रविजल शीत होता।
शिथिल हो बन्धन कहीं हो दूर तारों में बसेरा।
सुखद घन की बूँद-सम फिर मुक्त हो उल्लास मेरा॥
कमल जल की सतह से उठ चाहता आकाश छूना,
किन्तु हिम का वज्र गिर करता हृदय उल्लास सूना।
भेजता हूँ ख़बर लेने नित्य अपनी 'आह' ऊपर,
लौट आती है समा जाती मुझी को चाह भू पर॥
फिर उड़े यदि कल्पना के पंख पर संसार मेरा।
सुखद घन की बूँद-सा उन्मुक्त हो व्यापार मेरा॥



मुख-मोरि उतै मुसिक्यानी तिया, इत नाँइन हूँ मुसिक्यानि लगी।

—द्विजदेव

[श्री महारानी अयोध्या के सौजन्य से प्राप्त



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—रेणुका (कविता)—लेखक, श्रीयुत दिनकर, प्रकाशक, पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय, पटना हैं और मूल्य २।।) है।

२—निःश्वास—(कविता)—लेखिका, श्रीमती रामकुमारी चौहान, प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली कार्यालय दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य ।।=) है।

३—महात्माजी का महाव्रत—लेखक, श्रीयुत ब्योहार राजेन्द्रसिंह, प्रकाशक, महाकोशल-हरिजन-सेवक-संघ, जबलपुर हैं। मूल्य ।।=) है।

४—काल्पी (नाटिका)—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत भगवतीप्रसाद 'पान्थरी', टेहरी, गढ़वाल हैं। मूल्य ।।=) है।

५—हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति-साहित्य—लेखक, श्री दयाशंकर दुबे और श्री भगवानदास केला, प्रकाशक, व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन हैं। मूल्य ।।।) है।

६—फूलों की माला—लेखक, रायबहादुर सर पुरोहित गोपीनाथ, एम० ए०-सी० आई० ई०, प्रकाशक, श्रीराजस्थान पुस्तक-मन्दिर, जयपुर हैं। मूल्य ।।।) है।

७—अम्बा (नाटक)—लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। मूल्य ।।=) हैं।

८—सुभाषित-पद्य रत्नाकर (गुजराती)—लेखक, श्रीयुत मुनिराज विशाल विजयजी, प्रकाशक, विजयधर्मसूरि-जैन-ग्रन्थमाला, छोटा सराफ़ा, उज्जैन हैं। मूल्य १) है।

९—श्री भारतधर्म अने अंधारा रंगमहेलनी राजा (गुजराती)—अनुवादक, नरसिंह भाई, ईश्वर भाई पटेल, प्रकाशक, सस्तुम् साहित्यवर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद, मूल्य १।।) है।

१०—श्री वैष्णव जन (गुजराती)—लेखक, श्रीयुत मथुरादास जी महाराज, प्रकाशक, अवधकिशोरदास श्री वैष्णव, अयोध्या हैं। मूल्य ।) है।

११—नव शक्ति-सुधा—सम्पादक, श्रीयुत देवव्रत, प्रकाशक, नवशक्ति-प्रकाशन-मन्दिर, पटना, हैं। मूल्य ।) है।

१२—जीवनामृतम्—लेखक, श्रीयुत मुनिराज न्यायविजय जी, प्रकाशक, श्रीमती लीलावती देवीदास, बालकेश्वर रोड, विजयमहल, नं० १२ फ़र्स्टफ़्लोर, बम्बई हैं। मूल्य =) है।

१३—अन्तर्नाद—लेखक व प्रकाशक, श्री जगदीशनारायण तिवारी, राधिका-पुस्तकालय, हिमन्तपुर, सुरेमनपुर, बलिया हैं। मूल्य ।।) है।

१४—लता (सामाजिक नाटक)—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र सक्सेना, बी० ए०, प्रकाशक, बाबू रामदयालसिंह, सुकविकार्यालय, फ़ीलख़ाना, कानपुर और मूल्य ।।) है।

१५—दक्षिण-भारत की यात्रा (यात्रा-सम्बन्धी)—लेखक, श्रीयुत सत्येन्द्रनारायण, प्रकाशक, श्रीनाथ साह, शर्माराम, दुर्गाकुण्ड, काशी हैं। मूल्य ।-) है।

१६—उच्छ्वास (कविता)—श्रीयुत कालीप्रसाद 'विरही', प्रकाशक, 'हृदय-हिलोर'-पुस्तक-माला, चाचोड़ा, ग्वालियर हैं। मूल्य ।) है।

१७—निबन्ध-माला (भाग दूसरा)—सम्पादक, श्रीयुत सूर्यकुमार वर्मा, प्रकाशक, आलीजाह-दरबार प्रेस, ग्वालियर हैं।

१८-१९—राजपूत-मराठा संघ, ग्वालियर की २ पुस्तकें हैं।

(१) राजपूत-मराठा एक हैं। (दूसरा भाग)

(२) राजपूत-मराठा एक हैं। (कुछ प्रमाण)

२०—देवी जी का वरदान—लेखक, श्रीयुत शक्तीश, प्रकाशक, ज्ञान-धर्म-प्रचार-ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग हैं।

२१—संघ-व्यायाम और बोधक पत्र—लेखक, श्रीयुत राजरत्न प्रोफ़ेसर माणिकराव, विठ्ठल-क्रीड़ा भवन, बड़ोदा हैं। मूल्य ।) है।

२२—राज्यारोहण-गौरव-ग्रन्थ—सम्पादक, श्रीयुत सूर्यकुमार वर्मा, श्री नारायणदेव केशव सोरटी, प्रकाशक, राज्यारोहण-गौरव-कमेटी, देवास (जूनियर)

२३—गोहर वेवहा—संग्रह-कर्त्ता स्वर्गीय लाला दीवानचन्द जैन, श्रीजैनसुमतिमित्रमण्डल, रावलपिण्डी हैं।

१—कृष्ण-चन्द्रिका—सम्पादक, श्रीयुत उदयशङ्कर भट्ट, प्रकाशक, श्री मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, हिन्दी-संस्कृत पुस्तक-विक्रेता, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहैार हैं। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥) है।

कृष्ण-चन्द्रिका व्रज-भाषा का एक पुराना महाकाव्य है। इसके रचयिता व्रज-भाषा के कवि गुमानी मिश्र हैं। ये बुन्देलखण्ड-वासी थे। संवत् १८८३ में यह ग्रन्थ लिखा गया था। आज लगभग एक सौ दस वर्षों के पश्चात् यह पहले-पहल और सो भी अति सुन्दर ढंग से प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादन तथा प्रकाश में लाने का समस्त श्रेय हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पण्डित उदयशंकर जी भट्ट को है।

केशव की रामचन्द्रिका व्रज-भाषा का ख्याति-प्राप्त एक महाकाव्य है। जिस प्रकार उसमें विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार इस 'कृष्णचन्द्रिका' में भी व्रज-भाषा में प्रचलित अधिकांश छन्दों का प्रयोग हुआ है। श्री गुमानी मिश्र छन्द तथा अलङ्कारशास्त्र के प्रकांड पण्डित थे, यह बात ग्रन्थ के पढ़ते ही स्वीकार कर लेनी पड़ती है। इस ग्रन्थ के विद्वान् सम्पादक ने पाद-टिप्पणियों में छन्द के लक्षण आदि देकर विषय को स्पष्ट और उपयोगी बना दिया है।

इस ग्रन्थ की रचना का आधार श्रीमद्भागवत का 'कृष्णचरित' है। इस ग्रन्थ की कविता सरल, प्रसाद-गुण-समन्वित तथा मर्मस्पर्शिनी है। व्रज-भाषा की कविता होते हुए भी इसमें कहीं भी अश्लील शृंगार नहीं आने पाया है। देव-चरित के चित्रण में लेखक ने जिस सात्विक मनोवृत्ति का आश्रय लिया है वह पद-पद पर परिलक्षित होता है। कविता इतनी मनोरम है कि उसे पढ़ते पढ़ते चित्त आनन्द से भर जाता है। यह ग्रन्थ केवल हिन्दी के उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों के उपयोग के लिए ही नहीं होगा, वरन् श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए स्वाध्याय का भी काम देगा।

पंडित उदयशंकर जी भट्ट ने व्रज-भाषा-साहित्य के इस छिपे हुए रत्न को प्रकाश में लाकर उसकी जो गौरव-वृद्धि की है उसके लिए हिन्दी-प्रेमी उनके चिरकाल के लिए ऋणी रहेंगे।

२—राजस्थान का दूहा—संग्रहकार और सम्पादक, श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०, विशारद, प्रकाशक, नवयुग-साहित्य-मन्दिर, पोस्ट बॉक्स नं० ७८, दिल्ली हैं। मूल्य सजिल्द प्रति का २) है।

'दूहा' राजस्थानी साहित्य का एक छन्द है। जिस प्रकार हिन्दी में दोहा है उसी प्रकार दूहा छन्द इस साहित्य में बहुत अधिक प्रचलित है। इस छन्द में नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, उपदेश-जनित कवितायें लिखी गई हैं। परन्तु राजस्थानी साहित्य का अटूट भाण्डार अभी तक अप्रकाशित पड़ा है। प्रसन्नता की बात है कि श्रीयुत नरोत्तमदास जी स्वामी ने राजस्थानी साहित्य के दूहों का संग्रह किया है। उन्होंने जो दूहे संग्रह किये हैं उनमें से लगभग सवा बारह सौ इस संग्रह में प्रकाशित किये हैं। संग्रह सिलसिलेवार और अध्यवसाय के साथ किया गया है। छपने के पहले महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशङ्कर जी ओझा ने देख लिया है, अतएव इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में किंचित् भी सन्देह नहीं रह जाता है।

समग्र राजस्थान वीरों की जन्म-भूमि है। एक माता पलने में पड़े हुए अपने अबोध शिशु को झुलाती हुई लोरी गाती है—

इला न देणी आपणी, रण-खेता भिड़ जाय।
पूत सिखावे पालणें, मरण बड़ाई माय॥

"हे पुत्र! मर जाना, प्राण दे देना, पर अपनी भूमि को दूसरों के हाथ न जाने देना।" एक वीर पत्नी युद्ध में जाते हुए अपने पति से कहती है—

कंथ लखीजै उभय कुल, नाँह घिरंती छाँह!
मुड़ियाँ मिलसी गींदवो, मिलै न घरणी बाँह॥

"हे पति, अपने और मेरे, दोनों, कुलों की ओर देखना, सांसारिक सुख तो छाया के समान आता-जाता रहता है। उसके लिए युद्ध से विमुख होकर दोनों कुलों को कलंकित न करना। यदि ऐसा किया तो तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण होने की नहीं। लौटने पर अपना सिर तकिये पर रखकर ही सोना, तुम्हारी प्रियतमा की बाँह सिर रखने के लिए नहीं मिलेगी, यह निश्चय समझ रखना।"

बचपन के साथियों के लिए एक कवि की वेदना को देखिए—

आसी सावण मास बरखा रुत आसीवले।
साईनारो साथ बले न आसी बींझरा॥

"यह सावन का महीना फिर लौट आयगा, वर्षा भी फिर आ जायगी, पर जिन साथियों के संग बचपन में खेले हैं, उनका संग जीवन में फिर नहीं मिलेगा।"

प्रियतम युद्ध से विजय प्राप्त कर, लौटकर द्वार पर आ गये हैं। उनका सत्कार कैसे हो? उन्हें क्या भेंट दी जाय? पत्नी गजमोतियों के थाल में अपनी आँखें निकाल कर सजाकर ले आई है।

सायब आया, हे सखी, काँईं भेंट कराँह?
गजमोतियन को थाल ले, ऊपर नैण धराँह॥

प्रस्तुत संग्रह में संग्रहीत इस प्रकार की राजस्थानी सामाजिक जीवन की कहानियों को पढ़कर समग्र राजस्थान का चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। राजस्थान का इतिहास तथा प्राचीन आचार-विचार-जनित जीवन प्रत्येक भारतवासी के गौरव तथा अभिमान की चीज़ है। प्रत्येक व्यक्ति को इस संग्रह को एक बार अवश्य पढ़कर संग्रहकार के दीर्घकालीन परिश्रम को अवश्य ही सार्थक करना चाहिए।

३—प्रदीप—लेखक, श्रीयुत वाचस्पति पाठक, प्रकाशक, भारती-भण्डार, काशी, विक्रेता, लीडर प्रेस, इलाहाबाद तथा मूल्य १) है।

पाठक जी ने अपनी कहानियों का यह दूसरा संग्रह प्रकाशित किया। 'द्वादशी' नाम से उनका एक संग्रह निकल चुका है। अपने पहले संग्रह-द्वारा यदि उन्होंने एक कुशल कहानी लेखक होने का दावा किया था तो इस संग्रह से उन्हें उसकी डिगरी मिल गई है।

इस संग्रह में कुल आठ कहानियाँ संग्रहीत की गई हैं। छोटी कहानियों में व्यक्ति के जीवन के एक अंश की झलक तथा उपन्यास में अनेक व्यक्तियों की मनोवृत्ति के अनुकूल-प्रतिकूल चरित्र का उत्थान-पतन दिखाया जाता है। इस संग्रह की 'काग़ज़ की टोपी' तथा 'मुन्नू' बाल-स्वभाव को चित्रित करती हैं। बाल-स्वभाव का चित्रण कठिन होते हुए भी लेखक ने सदभिरुचि से काम लिया है। 'सूरदास', 'यात्रा' तथा 'कल्पना' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। सूरदास के लिए संसार में जो कुछ आँखों से देखा जा सकता है तथा निगूढ़ एवं अपरिज्ञानावस्था में पाप-पुण्य का जो देन-लेन चल रहा है उसका जान सकना सम्भव नहीं है। उसी का 'सूरदास' में बड़े ही स्वाभाविक ढङ्ग से चित्रण किया गया है। 'यात्रा' एक नारी के एक ऐसे अपरिसीम दुख की कहानी है जिसे पढ़कर आँसुओं को रोकना कठिन हो जाता है। नागरिक जीवन से दूर, पहाड़ी प्रान्त में, रहकर मनुष्य सुख और शान्ति की खोज करता है। पर जब वहाँ भी उसके लिए सुख और शान्ति नहीं है तब वह कहाँ मिलेगी, यही एक प्रश्न हृदय में बारबार उठने लगता है। 'कल्पना' कहानी में लेखक ने एक मेहतर दम्पति की दिनचर्या को लेकर एक सजीव चित्र सामने रख दिया है। जिन अभागे अछूतों के लिए वज्र-हृदय हिन्दू-समाज में किंचित् भी दया-मया नहीं है उनके भी हृदयों में यह कहानी अवश्य ही सहानुभूति का भाव उत्पन्न करेगी। मनुष्य के अन्तस्थल में सदाचार,

अनाचार तथा स्वार्थान्धता से जिस एक राक्षस को अपनी नारकीय लीला दिखाने का अवसर मिलता है उस राक्षस को—दानव से देव बनाने में, नर से नारायण बनाने की ओर जिस लेखक की कला सङ्केत करती है, वही लेखक श्रेष्ठ और वन्दनीय होता है। प्रसन्नता की बात है कि पाठक जी की कला में सर्वत्र उसी का आभास मिलता है। आशा है, भविष्य में वे अपनी कला में और भी अधिक सफलता प्राप्त करेंगे।

४—करुण-सतसई—रचयिता अध्यापक रामेश्वर 'करुण'; प्रकाशक, श्रीसहदेव जी 'भगवान', करुण-काव्य-कुटीर, कृष्ण-नगर, लाहौर; हैं। मूल्य २) है।

इस सतसई के रचयिता 'करुण' वस्तुतः हिन्दी-माता की गुदड़ी के लाल हैं। वे कहते हैं—"कवि न सही, लेखक, विचारक अथवा विद्वान् भी न सही, मैं एक भुक्त-भोगी तो हूँ, दरिद्रता देवी का दारुण दृश्य तो अपनी ही आँखों देखे बैठा हूँ, क्रूर, कुटिल और सत्यनाशक समाज का अनन्य आखेट तो हूँ, विषमता की विषमयी ज्वाला से जला हुआ एक मृतप्राय प्राणी तो हूँ! बस, इतने प्रमाण-पत्र बहुत हैं।" इस दारुण अवस्था में उनके निर्मल हृदय में जो चोट पहुँची होगी वह किसी सहृदय व्यक्ति से छिपी नहीं रह सकती। वस्तुतः इस सतसई का प्रत्येक दोहा उनके चोट खाये हुए हृदय की एक हूक है, जिसे उन्होंने अविकल रूप में अभिव्यक्त करने में सफलता पाई है। जान पड़ता है, लेखक को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में उनकी आदर्श पत्नी अध्यापिका श्रीमती प्रफुल्लबाला देवी ने अनन्य प्रोत्साहन दिया है। योग्य जीवन-सहचरी के योग्य साहचर्य्य को पाकर लेखक के हृदय का सकरुण बाँध मानो अनन्त धाराओं में फूट पड़ा है। इस रचना का प्रत्येक दोहा बड़ी ही सरल तथा सुबोध भाषा में लिखा गया है। लेखक थोड़े पढ़े-लिखे लोगों के मर्म तक अपने संदेश को बड़ी ही सुगमता से पहुँचा सके हैं। मेरा विश्वास है, भारतवर्ष के नैतिक चरित्र को बलिष्ठ बनाने में यह रचना साधक होगी। तुलसी, रहीम तथा अन्य गण्यमान्य कवियों के उपदेशात्मक दोहों के समान, सर्वसाधारण में, किसी समय इनका भी प्रचार होगा तथा लेखक के दोहे सूक्तियों के रूप में भी प्रचलित होंगे, इसमें किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं। लेखक ने समय की पुकार को उच्च स्वर में साहस के साथ घोषित किया है, इसमें किसी को भी मत-भेद नहीं हो सकता।

कुछ उदाहरण लीजिए। जब दारुण विपन्नावस्था से लेखक का अन्तस्तल क्षत-विक्षत हो गया तब उन्होंने परमात्मा को भी एक उपालम्भ दे डाला—

सङ्कट क्यों न गरीब के, हरत गरीब निवाज।
बनि बैठे क्या व्यर्थ ही, सत्ताधर सिरताज?

× × × ×

देखत दारुन दीनता अकसन भये असेस!
ऐसे निठुर निसील कौं कौन कहैं 'करुनेस'?

विधवाओं के आधिक्य का परिणाम क्या है—

जाति रसातल जाति क्यों मंगल-मूल पजारि?
'अमंगला' होती न तो, तरुन तपस्विनि नारि!!

× × × ×

कोटिन विधवा बाल के, आहन के अभिशाप।
लहत न छिनहू छेम हम, सहत सदा संताप॥

× × × ×

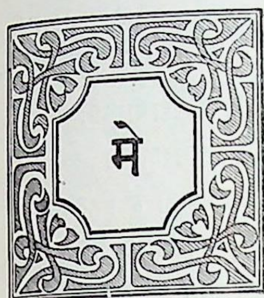
यौवन अरु सौन्दर्य कौ याँचक सकल जहान!
हिन्दू-विधवा-हेतु है क्यों ये व्याधि महान?

लेखक ने अपनी रचना को सात शतकों में विभाजित किया है। भिन्न-भिन्न विषयों पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं। इन उद्धृत कतिपय दोहों से उनके विचार और लेखन-प्रणाली का निदर्शन हो जाता है। कवियों के सूक्ति-जनित कौशल को नहीं, बरन उनकी अनुभूति तथा भाव-प्रकाशन की सरलता एवं सुगमता को परख की कसौटी बनाने से लेखक उत्तीर्ण होंगे। इस देश के विद्यार्थियों को प्रारम्भ से ही ऐसी रचनायें हाथ में देने से भारतीय समाज का भविष्य में यथेष्ट कल्याण हो सकता है।

—मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

सामयिक साहित्य

अबीसीनिया के विरुद्ध प्रचार



मेजर इ० डब्ल्यू० पोल्सन न्यूमैन एक प्रसिद्ध अँगरेज़ राजनीतिज्ञ हैं। इटली और अबीसीनिया का युद्ध आरम्भ होने से कुछ ही घंटे पहले आप अबीसीनिया की यात्रा समाप्त करके लंदन लौटे थे। अबीसीनिया के सम्राट्, मुसोलिनी और अँगरेज़ अधिकारियों से भी आप ने उस सम्बन्ध में बातें की थीं। आप इसी नतीजे पर पहुँचे हैं कि इटली को अबीसीनिया को जीत लेने देना चाहिए। क्यों? इसके उत्तर में आपने गत नवम्बर की 'नाइन्टीन्थ सेञ्चुरी' नामक पत्रिका में एक लम्बा लेख प्रकाशित कराया है। लेख का सारांश हम नीचे देते हैं—

मैंने एक महीना आदिस अबाबा में, कुछ दिन डीरेडाक और हरार में, दस दिन जिबूटी में, दो सप्ताह मिस्र में, दस दिन रोम में बिताये हैं और पेरिस होता हुआ इँगलैंड लौटा हूँ। मैंने इथोपिया के सम्राट् से दो बार बातें की हैं। फ्रेंच सोमालीलेंड के गवर्नर और जिबूटी में रहनेवाले फ़्रांसीसी फ़ौजी अफ़सरों से विचार-विनिमय किया है। मिस्र के उच्च अधिकारियों से मैं मिला हूँ। रोम में सिगनोर मुसोलिनी ने मेरा स्वागत किया और उन्होंने मुझसे सिवा अबीसीनिया के किसी और विषय पर बात नहीं की। अँगरेज़ और फ्रेंच राजदूतों से भी मैंने बातें की हैं। लन्दन में पहुँचने के बाद ही मैंने अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार और ब्रिटेन-निवासी वास्तविकता की ओर ध्यान न देकर आदर्शवाद की लहर में बहे चले जा रहे हैं।

यद्यपि आदिस अबाबा में एक आधुनिक होटल, एक अप-टु-डेट सिनेमाघर और सुखप्रद मोटरगाड़ियाँ हैं, तथापि वहाँ के निवासी बिना खिड़की के अँधेरे झोपड़ों में रहते हैं। सड़कों पर मौसम के अनुसार धूल या कीचड़ फैला रहता है। सफ़ाई का कोई प्रबन्ध नहीं है। पानी कुओं से निकाला जाता है। अदालतें सड़क के किनारे लगती हैं और राह चलतों में से कोई पकड़कर जज बना दिया जाता है। क़ैदी बहुत-से एक ही ज़ंजीर में बाँध दिये जाते हैं और बुरी तरह पीटे जाते हैं। अस्पताल, स्कूल और ऐसी अन्य संस्थायें विदेशियों के हाथ में हैं। आवागमन का साधन एक-मात्र खच्चर है। हाँ, आदिस अबाबा से जिबूटी तक फ्रेंच रेलवे चलती है। उत्तर में जहाँ इस समय लड़ाई हो रही है, भारत की उत्तर-पश्चिम-सीमा की भाँति पहाड़ी मार्ग हैं। अडोवा, आक्सुम, मकाले और गोंडार आदि वहाँ की बड़ी बस्तियाँ हैं, जिन्होंने आधुनिक सभ्यता का नाम तक नहीं सुना। योरपीय दृष्टिकोण से देखा जाय तो वहाँ कोई सुसंगठित शासन नहीं है। सिर्फ़ राजधानी के आस-पास अराजकता कम है। हर गाँव में एक मुखिया होता है और ज़िले में हाकिम जो अपने अधीन निवासियों से बलपूर्वक मनमाना कर वसूल करते हैं। किसान ज़मीन के बदले सरकारी फ़ौज में बिना तनख़्वाह कुछ दिन काम करते हैं। धर्म ईसाई है, पर वह इतने नीचे दर्जे का है कि ग़ुलामी की भी स्वीकृति देता है। आबादी का पाँचवाँ भाग ग़ुलामी का जीवन व्यतीत करता है। सभी घरों में सारा काम ग़ुलाम ही करते हैं, और अबीसीनियन मोटा काम करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं। गिर्जे के पादरी भी ग़ुलाम

रखते हैं। सरकारी नियंत्रण होने पर भी धड़ल्ले से ग़ुलाम पकड़े और बेचे जाते हैं। जवान ही नहीं, दूध पीते बच्चे तक माताओं से छीन लिये जाते हैं और उनका क़ाफ़िला का क़ाफ़िला बेचा जाता है। अबीसीनिया उपजाऊ देश है, पर वहाँ के निवासी कृषि की उन्नति करने में असमर्थ हैं - और किसी योरपीय को वे यह कार्य्य करने देते नहीं। योरपीय की सहायता से वे कितनी उन्नति कर सकते हैं, इस प्रश्न पर वे विचार ही नहीं करते, न करना चाहते हैं। वे यह नहीं सोचते कि यदि वे योरप की बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए अपना द्वार खोल देंगे तो उनकी कितनी उन्नति हो सकती है। इस समय उपनिवेश की खोज सबसे अधिक इटली को है, इसी लिए उनका यह अनिवार्य्य संघर्ष इटली से हुआ है।

मैंने लीबिया में इटालियनों का जो कुछ कार्य देखा है उससे मैं कह सकता हूँ कि वे अवसर पाने पर अबीसीनिया को स्वर्ग बना दे सकते हैं। कदाचित् ही कोई अनाज, तरकारी या फल हो जो अबीसीनिया में न पैदा किया जा सके। वहाँ की भूमि संसार में सर्वश्रेष्ठ है। अनुमान किया जाता है कि यदि इटली अबीसीनिया में आधुनिक ढंग से खेती का विधान करे तो वह अपनी ज़रूरत भर का ग़ल्ला तो पैदा ही कर सकता है; और दूसरे देशों को यहाँ तक कि हिन्दुस्तान को भी ग़ल्ला दे सकता है। इस तरह १० वर्ष में वहाँ दस लाख इटालियन आबाद हो सकते हैं। फिर अबीसीनिया की आबोहवा भी योरपीयों के रहने के लायक है। आदिस अबाबा के नये राजमहल में मुझसे बातें करते हुए सम्राट् ने कहा कि उन्हें योरपीय प्रभाव से चिढ़ नहीं है, पर वह सर्वथा आर्थिक होना चाहिए और राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध न होना चाहिए। परन्तु इससे न तो इटालियनों को सन्तोष होगा और न अबीसीनियन सरदारों को। पहली बात तो यह है कि बिना संगठित सरकार के यह कार्य सम्भव नहीं है, दूसरी यह कि अबीसीनियनों के हृदय में गोरी जातियों से अत्यन्त घृणा है।

सम्राट् हेल सिलासी शिक्षित हैं और योरपीय विचार-धाराओं का उन्हें अच्छा ज्ञान है। परन्तु उनके मंत्री इतने अविश्वासी हैं कि उन्हें छोटी-से-छोटी बात की भी जानकारी रखनी पड़ती है। सम्राट् नये परिवर्तनों के इच्छुक हैं। पर वे कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि उन्हें भय है कि तुरन्त बलवा मच जायगा।

अबीसीनिया में सभी हथियार रखते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि वे अपने पड़ोस के देशों में डाके डालते हैं और वहाँ की सरकार इस बात की उपेक्षा करती है। ये हमले कीनिया और सूडान की सीमाओं पर उसी तरह होते हैं, जिस तरह इरीट्रिया और इटालियन सुमालीलेंड की सीमाओं पर होते हैं। कई वर्षों से यह स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि सशस्त्र अबीसीनिया अपने पड़ोसी देशों के लिए एक भयानक ख़तरा है। इस स्थिति को इसी तरह रहने देना उचित नहीं है। लीग आफ़ नेशन्स का अबीसीनिया सदस्य है, यह माना, पर इसी लिए वह अफ़्रीका का 'प्लेग-स्पाट' नहीं बना रह सकता। उसके निवासी पिछड़े, गुंडे और घमंडी हैं। उनकी कुरीतियों के लिए उनका धर्म उन्हें आज्ञा देता है। चाहे जैसी संधियाँ हो चुकी हों, कोई सुधार तब तक सम्भव नहीं है जब तक युद्ध करके वह जीत न लिया जाय।

इटली के उपनिवेशों पर उनके हमले बराबर जारी रहते हैं। सन् १९३१ में १०,००० अबीसीनियनों ने इटली की ओगाडन-सीमा पर चढ़ाई की थी। गत वर्ष एक ऐसे ही हमले में वे ३,६५६ बैल, ५५४ बकरे, १७ ऊँट और ४ गदहे लूट ले गये। यदि केन्द्रीय सरकार ने इन हमलों को उत्साहित नहीं किया तो उसने इन्हें रोका भी नहीं। पिछले वर्षों से अबीसीनियावाले अस्त्र-शस्त्र से ख़ूब सुसज्जित हो रहे हैं। इटली ने हाल में वहाँ की सरकार को इसलिए शस्त्र दिये थे कि वह क़ानून की स्थापना करे। परन्तु वही शस्त्र आज इटली के ख़िलाफ़ काम में लाये जा रहे हैं। पर इटली के युद्ध शुरू करने का एक और भी कारण है। योरप में प्रायः सभी के पास उपनिवेश हैं। सिर्फ़ इटली के पास नहीं हैं। यदि इटली अबीसीनिया पर क़ब्ज़ा कर ले तो उससे दोनों का भला होगा।

यह दुःख की बात है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट लीग आफ़ नेशन्स को इटली के विरुद्ध ऐसे आचरण करने के लिए

मजबूर कर रही है जिनमें योरप की ही शान्ति नहीं भङ्ग हो सकती, बल्कि अफ़्रीका की काली जातियों में योरपीय सभ्यता के विरुद्ध बग़ावत करने का भाव भी उदय हो सकता है। प्रतिबन्धों से क्या होगा? क्या मुसोलिनी पूर्वी अफ़्रीका से वापस चला आवेगा या अपने उपनिवेशों में इतनी कम सेना रक्खेगा कि अबीसीनियन पहुँचकर उसका क़त्ले आम कर दें? क्या मिस्टर ईडन यह समझते हैं कि अबीसीनिया को अस्त्र-शस्त्र देने का यह अर्थ होगा कि काली जातियाँ योरपीय सभ्यता से युद्ध करेंगी? क्या वे यह अनुभव करते हैं कि इटली की हार से काली जातियाँ मन-बढ़ हो जायँगी और ब्रिटिश साम्राज्य के लिए खतरा सिद्ध होंगी? प्रतिबन्धों का अन्तिम परिणाम युद्ध ही होगा। इस मामले में हमें फ्रांस की सलाह से कार्य्य करना चाहिए, क्योंकि अपनी स्थिति के कारण वह वस्तुओं को अधिक निष्पक्ष दृष्टि से देख सकता है।

हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी

इन प्रान्तों की भाषा का क्या नाम हो, हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी और वह कैसी हो, इस सम्बन्ध में अलग-अलग लोग अलग-अलग सम्मतियाँ रखते हैं। इस जटिल प्रश्न को श्रीयुत सच्चिदानंद सिनहा ने भी 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के गत सम्मेलन में सभापति के आसन से दिये गये अपने भाषण में सुलझाने का प्रयत्न किया है। आपका कहना है—

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उर्दू या हिन्दी दोनों ही के उदीयमान लेखक को पहले बड़े-बड़े दुरूह और आडम्बरपूर्ण शब्दों के व्यवहार में सिद्धहस्तता प्राप्त करनी पड़ती है। इस खेदपूर्ण परिस्थिति का कारण यही है कि यहाँ के अधिकांश लेखक और वक्ता आज भी माध्यमिक युग की ही मनोवृत्ति रखते हैं—बहुत कुछ सोलहवीं सदी के अँगरेज़ी साहित्यिक लिली तथा उसी के भाई-बन्दों के ढंग की। पर जब कि दीर्घकाल से अँगरेज़ी साहित्यिक इस मनोवृत्ति को छोड़ चुके हैं, हम अब भी इसके वशीभूत हैं और फलतः बड़ी-बड़ी कठिन, दुरूह और आडम्बरपूर्ण शब्दयोजना के मोह में पड़कर अरबी-फ़ारसी और संस्कृत की अपरिचित और दुर्बोध पदावली का सहारा लेकर अर्थ को आडम्बर की, और सरलता तथा सुगमता को दिखावट तथा पांडित्य-प्रदर्शन की वेदी पर बलिदान कर रहे हैं। एकेडेमी के अधिकारीवर्ग चाहे कितना भी पीछा छुड़ावें, पर इस प्रश्न का सामना उन्हें अब करना है, और उनके सामने प्रश्न यह है कि वे कौन-सा ऐसा उपाय करें जिससे लिखने और बोलने का एक ऐसा माध्यम विकसित हो जो सहज में सबकी समझ में आवे और जो कि सचमुच 'हिन्दुस्तानी' कहा जा सके।

सभापति के पद से दिये गये एक भाषण में हमारे वर्तमान साहित्यिक जगत् की स्थिति को सुधारने के सारे उपायों का निर्देश कर देना या इस सम्बन्ध के विधानात्मक प्रस्ताव करना सहज नहीं है। इसके लिए उन विशेषज्ञों के सम्मिलित विचार की आवश्यकता है जो हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्य की उन्नति में दिलचस्पी रखते हैं। मैं केवल कुछ ऐसी बातों का निर्देश कर सकता हूँ जो कि हमारे भावी कार्यक्रम के विचार की आधार-भित्ति हो सकती हैं। इनमें से प्रथम तो यह है कि हमारी भाषा के दो रूपों के दो नाम न रखकर एक ही नाम स्वीकार करने का गम्भीर प्रयत्न किया जाय, क्योंकि इस हिन्दी-उर्दू-विवाद में प्रधान हाथ इन दो भिन्न नामों का ही है।

अब जहाँ तक इस भाषा के उर्दू नाम का सम्बन्ध है, यह नाम न तो प्राचीन है और न ऐसा है कि इसके पक्ष में जनता का कोई बड़ा वर्ग भाव-जन्य कारण रख सकता है। अपने विचारों के समर्थन में मैं एक प्रसिद्ध विद्वान् और कवि—पटने के स्वर्गीय शम्सुल-उलेमा सैयद अली मुहम्मद 'शाद' की प्रसिद्ध पुस्तक 'फ़िक्रे-बलीग़' से एक उद्धरण दूँगा। वे लिखते हैं—"कुछ ऐसे लोग हैं जो कहते हैं (और दुर्भाग्यवश जिनकी कुछ अपढ़ लोग पुष्टि भी करते हैं) कि यह भाषा उर्दू इसलिए कहलाई कि इसका जन्म विजेता मुसलमानों के बाज़ार में हुआ। क्या ऐसे लोग मुझे कोई भी ऐसा इतिहास, रोज़नामचा या तज़करा दिखला सकते हैं जो छठी और तेरहवीं (हिज्री) सदियों के बीच लिखा गया हो और जिसमें यह

भाषा उर्दू कही गई हो। जहाँ कहीं भी इस भाषा की चर्चा आई है, यह हिन्दी या हिन्दुस्तानी कही गई है। इस लेखक ने उर्दू का नाम ढूँढ़ निकालने के लिए इतिहास, रोज़नामचे और तज़करे छान डाले हैं, परन्तु वह यह नाम कहीं भी नहीं पा सका है। सच बात तो यह है कि यह उ ं नाम अकस्मात् तेरहवीं सदी हिज्री के मध्य-भाग में उपयोग में आया।" जिसका तात्पर्य यह है कि यह नाम उन्नीसवीं सदी ईसवी में पहले-पहल प्रयोग में आया।

यही विचार बहुत वर्ष हुए मेरे सम्मानित मित्र स्वर्गीय शम्सुल-उलेमा सैयद अली बिलग्रामी ने भी प्रकट किये थे, और ये महोदय निस्सन्देह एक प्रकांड विद्वान् थे, जिनकी बराबरी के विद्वान् अँगरेज़ी राज्य में बहुत कम हुए हैं और जिन्हें न केवल अरबी, फ़ारसी और उर्दू पर अधिकार प्राप्त था, बरन जो संस्कृत और तद्भव कई आधुनिक देशी भाषायें भी जानते थे। इस प्रकार 'उर्दू' शब्द के 'हिन्दुस्तानी' शब्द की अपेक्षा अधिक मान्य होने के विशेष ऐतिहासिक या भाव-जन्य कारण नहीं हो सकते। मेरे इस विचार का समर्थन अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी जैसे विख्यात विद्वान् और लेखक-द्वारा भी होता है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता होती है। पटने में विगत सितम्बर में एक व्याख्यान देते हुए आपका यह कहना बताया जाता है—"हमारी भाषा का नाम 'उर्दू' बहुत बड़ी भूल है और इसे अब त्याग देना चाहिए। हमारी भाषा का नाम अब 'हिन्दुस्तानी' होना चाहिए - उसी सिद्धान्त पर जिस पर कि इँगलिस्तान की भाषा का नाम अँगरेज़ी है, फ़ांस की भाषा का फ़ांसीसी, जर्मनी की भाषा का जर्मन और इटली की भाषा का इटैलियन इत्यादि।" जिन विख्यात विद्वानों के उद्धरण मैंने दिये हैं; उनकी बातों को और भी सँवार कर कहना मेरे लिए धृष्टता होगी।

हिन्दी के समर्थकों-द्वारा यह बात कही गई है कि 'हिन्दी' शब्द के व्यवहार पर उस प्रकार की आपत्ति नहीं की जा सकती जैसी कि 'उर्दू' शब्द के व्यवहार पर। वे इस पर ज़ोर देते हैं कि उत्तरी हिन्दुस्तान की भाषा का नाम हिन्दी एक पुराना ऐतिहासिक नाम है और इस नाम का उपयोग मुस्लिम लेखकों ने अरबी और फ़ारसी पुस्तकों में भी बराबर किया है। वे यह भी कहते हैं कि ('हिन्दुस्तानी' शब्द की भाँति) 'हिन्दी' शब्द संस्कृत से बना हुआ शब्द नहीं है, 'हिन्दुस्तानी' शब्द भी नहीं है, यह ठेठ फ़ारसी शब्द है और इसलिए मुसलमानों के लिए विशेष कर आपत्तिजनक न होना चाहिए। इन दोनों तर्कों को यथार्थ मानकर भी यह कहना पड़ेगा कि 'हिन्दी' शब्द भी 'उर्दू' शब्द की भाँति एक अवांछित रीति से हिन्दी-उर्दू प्रश्न पर जो राजनैतिक विवाद छिड़ा हुआ है उससे सम्बद्ध है। इस कारण मैं यह परामर्श देने का साहस करूँगा कि एकेडेमी को न केवल हिन्दी और उर्दू शब्दों का त्याग करना चाहिए और अपने प्रकाशनों में केवल हिन्दुस्तानी शब्द का उपयोग करना चाहिए, बरन इस शब्द के प्रचार का भी जहाँ तक हो उद्योग करना चाहिए।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी और जातीय एकता

'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के चतुर्थ सम्मेलन के अवसर पर महामान्य सर तेजबहादुर सप्रू ने स्वागताध्यक्ष के आसन से जो भाषण किया उसमें आपने दो महत्त्वपूर्ण बातें बतलाईं। पहली यह कि ऐसी एकेडिमियाँ केवल सरकारी सहायता से नहीं चल सकतीं। इसके लिए जनता का सहयोग आवश्यक है और दूसरी यह कि जातीय एकता के लिए भारत में सम्मिलित साहित्य या भाषा की परम आवश्यकता है। नीचे हम आपके भाषण का यह महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत करते हैं—

इस एकेडेमी की दूसरी एकेडेमियों से तुलना करना इस समय न्यायोचित न होगा। फ़ांस में जो एकेडेमी है वह राजकीय आज्ञा से १६३५ ई० में स्थापित की गई थी। आरम्भ में उसके केवल चालीस सदस्य थे। सन् १७६५ ई० में जब कि फ़ांस में राज्यक्रांति हो रही थी, नेपोलियन ने इसका पुनः संगठन किया और इसके बाद भी इसमें

परिवर्तन होते रहे। मैथ्यू आर्नल्ड ने इस एकेडेमी के विषय में यह लिखा है कि "यह साहित्य का सर्वोच्च न्यायालय और सच्ची साहित्यिक रुचि का केन्द्र है।" एक फ्रांसीसी साहित्यिक ने इन साहित्य-प्रेमियों के विषय में लिखा है कि "यह न कहो कि इनके जीवन व्यर्थ गये। यद्यपि उनके नाम प्रतिक्षण लोगों के सामने नहीं हैं, तथापि उनकी कृतियाँ हमारे समस्त जीवन पर छाई हुई हैं। अर्थात् उन्हीं के कारण फ्रांसीसी भाषा की वृद्धि तथा परिशुद्धि हुई है।"

पिछले जून में मैं पेरिस में था, उस समय इस एकेडेमी की तीसरी शताब्दी का समारोह हो रहा था। मैं भी इस अधिवेशन में उपस्थित था। इसी अधिवेशन के सिलसिले में इसके विशाल और विस्तृत भवन में प्रदर्शनी भी हुई थी, जिसके देखने के लिए एक सप्ताह भी पर्याप्त नहीं हो सकता था। इस एकेडेमी के पुस्तकालय और प्रदर्शनी के देखने के लिए एक दिन में एक लाख से अधिक दर्शकों ने टिकट ख़रीदे थे। फ़्रांस के एक-एक स्त्री-पुरुष को एकेडेमी के अस्तित्व पर गर्व था। उस एकेडेमी का आधार केवल सरकार की सहायता पर नहीं, बरन सम्पूर्ण जाति के उत्साह और उदारता पर है।

हमारी एकेडेमी को स्थापित हुए आठ वर्ष हुए। जिन एकेडेमियों को स्थापित हुए तीन-तीन सौ वर्ष हो गये उनसे इस आठ वर्ष के बच्चे की तुलना करना स्पष्टरूप से अनुचित और व्यर्थ है। परन्तु जब हमारी जाति में, विशेषकर इस समय, यह भावना नित्य बढ़ती जाती है कि किसी जाति की शिक्षा का अन्य भाषा में होना दुःसाध्य है, और सच्ची शिक्षा के प्रचार के लिए वास्तव में अपनी ही भाषा उपयुक्त हो सकती है, ऐसी स्थिति में यह आशा करना अनुचित न होगा कि हमारे धनी देशवासी इस एकेडेमी को भी अपनी उदारता से सहायता पहुँचावेंगे। मेरे विचार में इस एकेडेमी की नींव उस समय तक दृढ़ नहीं हो सकती जब तक इसके पास पर्याप्त धन न हो जावे और इसके कार्य के तथा पुस्तकालय के लिए एक स्थायी भवन न बन जावे। मैं आशा करता हूँ कि आप महोदय हमारे इस प्रयत्न में पूरी सहायता करेंगे।

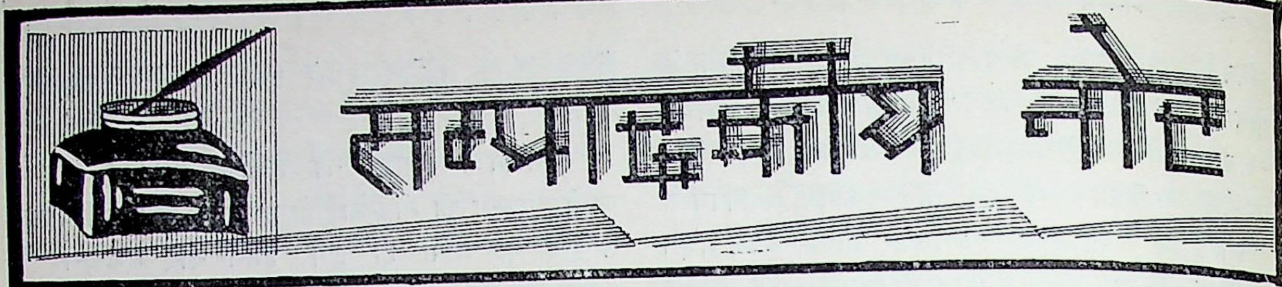
मेरा निजी विश्वास यह है कि यदि हिन्दुस्तान में जातीय एकता की नींव कोई हो सकती है तो वह सम्मिलित साहित्य या भाषा ही है। हममें यदि एक-दूसरे के साहित्य व कविता और इतिहास तथा दर्शन के लिए आदर उत्पन्न हो जावे या दूसरे शब्दों में यदि हम एक-दूसरे को समझने लगें तो बहुत कुछ मिथ्या भेद और विरोध जो इस समय हमारे लिए लज्जाजनक है, दूर हो सकता है और इस प्रकार एक सम्मिलित हिन्दुस्तान का स्वप्न स्पष्ट रूप से फलित हो सकता है। इस एकेडेमी का यह कर्त्तव्य है कि वह इस उद्देश की पूर्ति के लिए प्रयत्न करे और हमारे देशवासी, यदि इस उद्देश को वे शुभ समझते हैं तो, इसमें उसकी सहायता करें।

सर्वज्ञ टेलीफोन

फ़्रांस में एक नई संस्था क़ायम हुई है। लोकमान्य में उसका परिचय इस प्रकार छपा है—

फ़्रांस में एक ऐसी टेलीफोन-कम्पनी क़ायम हुई है जो अपने ग्राहकों के लिए 'सजीव विश्वकोष' बन रही है। ग्राहक उससे किसी ट्रेन के खुलने, सिनेमा में किसी तमाशे के शुरू होने का समय पूछें या कुछ भी पूछें—कम्पनी उसकी प्रत्येक जिज्ञासा को तृप्त करेगी। कम्पनी का संक्षिप्त नाम 'एस० बी० पी०' है। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने का चार्ज उत्तर-प्राप्ति की कठिनाई के अनुसार १ से २० फ्रांक तक है। (एक फ्रांक इस समय क़रीब ≈) के बराबर है)।

कम्पनी ने ५० साइकिलिस्ट, २० ट्रिसाइकिलिस्ट और १० मोटर साइकिलवाले नियुक्त कर रक्खे हैं। उनसे आप बाज़ार से फूल मँगाइए, किसी मित्र को मँगनी दी हुई पुस्तक का तकाज़ा कराइए, वे आज्ञा का पालन करने को तैयार रहेंगे। यही नहीं, सवेरे आपके बताये समय पर जाकर आपको जगा देंगे और यह भी बता देंगे कि आप आज कौन-सा विशेष कार्य करनेवाले हैं।



सम्राट् जार्ज का स्वर्गवास

महान् ब्रिटिश साम्राज्य के ही नहीं, सारे संसार के सर्वप्रधान पुरुष तथा परम गौरवशाली सम्राट् जार्ज का २० जनवरी की रात को ११ बजकर ५५ मिनट पर स्वर्गवास हो गया। आप अचानक ही रोगग्रस्त हुए थे और तीन ही चार दिन बीमार रह कर आप एकाएक परलोकवासी हो गये। नार्फ़ोक के सैंड्रिंघम-राजमहल में आपने महारानी, युवराज एवं अन्य राजकुमारों के समक्ष शान्तिपूर्वक अपनी इहलीला संवरण की। आपके २५ वर्ष के महत्त्वपूर्ण शासन की रौप्य-जुबली का आनन्द अभी आपके साम्राज्य में जैसा का तैसा ही व्याप्त था कि सहसा उसे आपकी मृत्यु के दारुण दुःख का सामना करना पड़ गया। आपके इस तरह अकस्मात् दिवंगत हो जाने से आपके साम्राज्य में ही नहीं, किन्तु सारे भूमण्डल में शोक की एक लहर छा गई है। आप संसार के वैसे ही अप्रतिम पुरुषसिंह थे।

सम्राट् जार्ज अपने पिता के देहावसान पर सन् १९११ में ब्रिटिश साम्राज्य के राजसिंहासन पर बैठे थे। आपने गत २५ वर्ष तक जिस न्यायनिष्ठा एवं मनस्विता के साथ अपने साम्राज्य का शासन किया है उससे आपका नाम संसार के सफल सम्राटों की नामावली में विशेष स्थान पर अंकित होगा। संसारव्यापी योरपीय महायुद्ध जिसमें रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया-हङ्गरी और तुर्की जैसे प्रबल देशों के प्राचीन राजसिंहासन धूल में मिल गये, आपके शासन के प्रारम्भ-काल में ही प्रारम्भ हुआ था, और यह आपका ही प्रताप था कि उस महाप्रलय को पार कर ब्रिटिश साम्राज्य और भी अधिक गरिमा के साथ प्रतिष्ठित हुआ है।

सम्राट् जार्ज जब राजसिंहासन पर आसीन हुए थे उस समय आपका वय ४५ वर्ष था, और उस समय तक अपने भविष्यत् उच्च पद के अनुरूप आप पूर्ण रूप से शिक्षित और दीक्षित हो चुके थे। आपके शासन-काल में आपकी सरकार को एक अभूतपूर्व प्रलयंकर महायुद्ध में विजय प्राप्त करने का ही अवसर नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु आयलैंड, मिस्र, भारत एवं स्वराज्य-प्राप्त डोमिनियनों की महत्त्वाकांक्षाओं के जटिल प्रश्नों को भी सँभालना तथा, महायुद्ध के फल-स्वरूप संसार के दूसरे राज्यों की राजनीतियों में सामञ्जस्य बनाये रखना पड़ा। इन सब प्रयत्नों में साम्राज्य-सरकार ने आशातीत सफलता प्राप्त की और इन सबमें सम्राट् जार्ज का विशेष हाथ बराबर रहा है।

साम्राज्यान्तर्गत भिन्न-भिन्न देशों के सम्बन्धों को अधिकाधिक घनिष्ठ बनाये रखने के लिए सम्राट् जार्ज सदैव प्रयत्न-शील रहे। आप पहले अँगरेज़ सम्राट् हैं जो भारत आकर राजसिंहासन पर बैठे और इस तरह साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिए एक नई परम्परा डाली। यहाँ आपने अपनी शाही घोषणा-द्वारा अपनी भारतीय प्रजा को पूर्ण नागरिकता के अधिकार प्रदान करने का मौखिक आश्वासन ही नहीं दिया, किन्तु बंग-भंग की व्यवस्था को रदकर अपनी न्यायनिष्ठा तथा सच्ची सहानुभूति का भी परिचय दिया, जिससे सम्राट् अपनी भारतीय प्रजा में विशेष रूप से लोकप्रिय हो गये।

सम्राट् जार्ज वैधानिक शासक थे। आपने शासन-विधान का पूर्ण रूप से सम्मान किया। आपके ही समय में पार्लियामेंट के चुनाव में पहले-पहल मज़दूर-दल का बहुमत हुआ था। तब सम्राट् ने बड़ी प्रसन्नता के साथ मज़दूर-दल की सरकार को अधिकारारूढ़ किया था। इस अवसर पर आपने जिस समदर्शिता का प्रमाण दिया उससे आपकी लोकप्रियता और भी बढ़ गई। ऐसे न्यायनिष्ठ, मनस्वी तथा समदर्शी सम्राट् के परलोकवासी

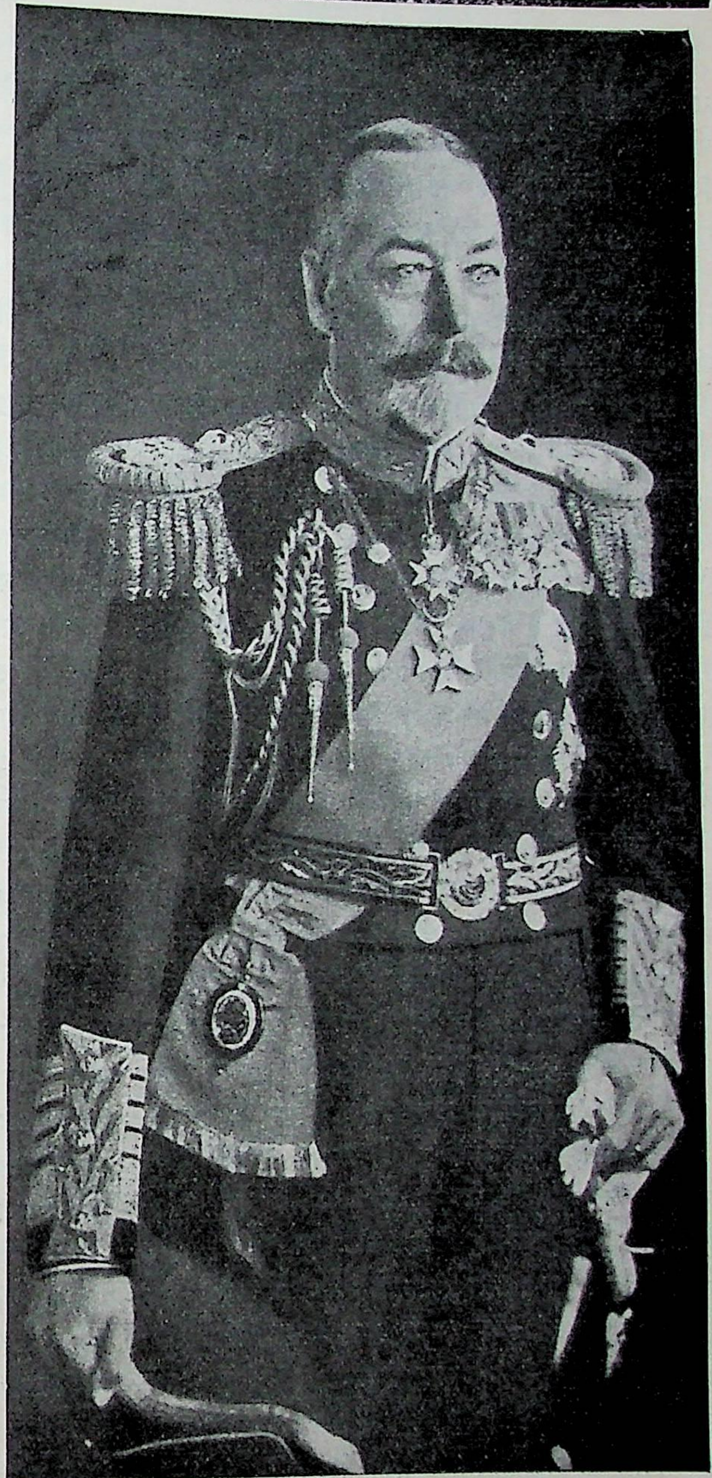
हो जाने से आपके साम्राज्य की ही नहीं, संसार की भी भारी हानि हुई है, हम सम्राट् की महान् आत्मा की चिर शान्ति के इच्छुक हैं और राजपरिवार के साथ इस महान् दुःख के अवसर पर अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

सम्राट् जार्ज के अवसान पर उनके ज्येष्ठ पुत्र एडवर्ड अष्टम के नाम से सम्राट् घोषित किये गये हैं। आप इस समय ४२ वर्ष के हैं और सारे साम्राज्य में आप शान्ति के दूत के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसे स्वर्गीय सम्राट् अपनी प्रजा के प्रियपात्र थे, वैसे ही आप भी हैं।

नये सम्राट् ने सम्राट् के रूप में अपना जो भाषण किया है उसमें आपने कहा है—

"आज से २६ वर्ष पूर्व यहाँ खड़े होकर मेरे पिता ने घोषणा की थी कि मेरे जीवन का एक उद्देश वैधानिक शासन-प्रणाली को उन्नत करना होगा। इस विषय में मैं भी अपने पिता के पदचिह्नों का अनुसरण करूँगा और उन्हीं की भाँति अपनी प्रजा की भलाई और समृद्धि के लिए कार्य करूँगा। मेरा भरोसा मेरे साम्राज्य की प्रजा के प्रेम और राजभक्ति व उनकी पार्लियामेंटों की बुद्धिमत्ता पर है, जो मेरे इस विशाल उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य में मेरी मदद करेंगी। मुझे परमात्मा इसे पूरा करने का सामर्थ्य दें।"

इस प्रकार नये सम्राट् ने अपना उत्तर-दायित्व-पूर्ण पद ग्रहण किया। हम उनके दीर्घजीवी होने की कामना प्रकट करते हैं और चाहते हैं कि आपका शासनकाल आपके परमप्रतापी स्वर्गीय पिता से भी अधिक महिमामण्डित हो।



स्वर्गीय सम्राट् जार्ज (पञ्चम)

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति

लन्दन की नौ-बल सभा भंग हो गई। ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य और जापान एकमत न हो सके। जापान ने ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य के समान अपना नौ-बल रखने का दावा किया था। यह प्रस्ताव न ग्रेट ब्रिटेन को स्वीकार हुआ, न संयुक्त-राज्य को। फलतः जापान को उस सभा से अलग हो जाना पड़ा और अब इन राष्ट्रों में नौ-बल बढ़ाने में प्रतिस्पर्धा होगी। इनकी देखा-देखी अन्य राष्ट्र भी अपने जहाज़ी बेड़े बढ़ायेंगे। स्थल-सेना और वायु-सेना को बढ़ाकर जर्मनी ने पहले से ही मार्ग प्रशस्त कर दिया था। अब जापान ने समानता का दावा पेश कर सारे राष्ट्रों के लिए वही स्थिति उपस्थित कर दी है। और इस प्रगति का परिणाम महायुद्ध होगा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जा रहे हैं, पिछले महायुद्ध का भीषण रूप लोगों के ध्यान से उतरता जा रहा है। इसके सिवा यह बात भी है कि जो राष्ट्र पिछले महायुद्ध में अधिक लाभ नहीं उठा सके, साथ ही जो अब अधिक शक्ति-सम्पन्न हो गये हैं, वे वर्तमान परिस्थिति से लाभ उठाने में प्रवृत्त हैं। इस समय संसार के सभी राष्ट्र अर्थ-संकट से पीड़ित हैं, साथ ही उनमें एक-दूसरे से वैसी घनिष्ठता भी नहीं है। पन्तुर सबसे बड़ी बात यह है कि संसार के प्रधान राष्ट्र लड़ने को उत्सुक नहीं हैं। अतएव इटली अबीसीनिया को और जापान चीन को अपने अधिकार में कर लेने का उपक्रम कर रहा है। ऐसी दशा में उपर्युक्त सभा का अनायास भंग हो जाना यह व्यक्त कर रहा है कि कोई राष्ट्र अपने को सुरक्षित नहीं समझ रहा है और सभी एक-दूसरे से चौकन्ने रहते हैं। ऐसे अविश्वास के वायुमण्डल में इटली और जापान अपने अपने साम्राज्य के बढ़ाने की योजना कर रहे हैं, क्योंकि यही उनके उद्देश की सिद्धि का उपयुक्त समय है। उनके मार्ग में बाधा डालने का कोई एक राष्ट्र तो साहस ही न करेगा और न इसके लिए भिन्न-भिन्न राष्ट्र ही सहयोग करने को तैयार होंगे। यह स्पष्ट है कि संयुक्त-राज्य योरप के झमेले में नहीं पड़ेगा और न अकेले वह चीन के लिए जापान से युद्ध करेगा। योरप में इटली अबीसीनिया से लड़ ही रहा है और इसके कारण उसका ब्रिटेन से संघर्ष हो जाने की आशंका है। फ़्रांस की बदौलत अभी तक मामला थँमा हुआ था, परन्तु अब वह बात नहीं रही। इस अवस्था को देखकर जर्मनी अलग चंचल हो रहा है। वह अपने उपनिवेशों की ही माँग नहीं कर रहा है, किन्तु उस राइनलैंड में भी वह फ़ौजी तैयारी करने लगा है जहाँ वैसा करना उसके लिए वर्सेलीज़ की सन्धि से वर्जित है। अभी हाल में फ़्रांस के राजदूत ने जर्मनी की सरकार से इस बात की शिकायत की है और कहा है कि अगर जर्मनी अपने प्रयत्न से विरत नहीं होगा तो उसके प्रतीकार के लिए फ़्रांस को सैनिक कार्रवाई करनी पड़ेगी। योरप की इस जोखिम की अवस्था में ब्रिटेन योरप के बाहर अपना ध्यान कैसे दे सकता है? जैसे फ़्रांस ने इटली और ब्रिटेन के संघर्ष को अभी तक नहीं होने दिया, वैसे ही ब्रिटेन को फ़्रांस और जर्मनी के संघर्ष के रोकने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। कहने का मतलब यह है कि योरप में इस समय बड़ी पेचीदा राजनैतिक चालें चली जा रही हैं और वहाँ के तथा बाहर के राष्ट्र इस सारी परिस्थिति से भले प्रकार परिचित हैं, यही नहीं, उनमें से कुछ उससे लाभ उठाने में भी संलग्न हैं, और जो लाभ उठाने के लिए यत्नवान् नहीं हैं वे उसके लिए समर्थ हो जाने की भीतर ही भीतर तैयारी कर रहे हैं। उदाहरण के लिए रूस को लीजिए। उसके पास विशाल स्थल और आकाश-सेना है, तो भी यह कहकर कि उसे जर्मनी और जापान से भय है, वह बराबर अपना सामरिक बल बढ़ाये जा रहा है। ऐसी दशा में लन्दन की उक्त सभा का विफल होना सर्वथा स्वाभाविक था और अब संसार के प्रमुख राष्ट्र ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य, जापान आदि भी अगले महायुद्ध की तैयारी की कमी पूरी करने के लिए अग्रसर होंगे। उक्त सभा में जो भाषण हुए हैं तथा योरप में इस समय जो कुछ हो रहा है उस सब पर विचार करने से यही जान पड़ता है कि योरप के पिछले महायुद्ध से संसार को कुछ भी शिक्षा नहीं मिली है।

मुसलमान राज्यों का नया प्रयत्न

एशिया के मुसलमानी राष्ट्र परस्पर मैत्री के बन्धन में आबद्ध हो रहे हैं। तुर्की के कमाल अतातुर्क ने उनका एक

संघ बनाया है। उस संघ में तुर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और ईराक शामिल हुए हैं। इन राज्यों में यह समझौता हुआ है कि वे चारों परस्पर मित्र होकर रहेंगे तथा संकट पड़ने पर एक-दूसरे की सहायता करेंगे। यह देख कर अरब के स्वाधीन राज्य अर्थात् ईराक, नेज्द, यमन आदि भी आपस में ऐसा ही समझौता करने की बात-चीत बग़दाद में कर रहे हैं। यद्यपि तुर्की आदि के संघ में ईराक को छोड़ कर अरब के ये राज्य अभी शामिल नहीं हुए हैं और वे अपना एक अलग संघ बनाने की तैयारी कर रहे हैं, तथापि मुसलमानों की यह राजनैतिक कार्यवाही अपने ढंग की अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है और इससे यह प्रकट होता है कि मुसलमान राष्ट्रों में नवजीवन का काफ़ी संचार हो गया है और वे संसार में स्वाधीन रह कर ही रहना चाहते हैं। यह भी है कि इस समय सभी मुसलमान देशों के शासक काफ़ी कार्यकुशल और नीति-निपुण हैं, इसी से आज सभी मुसलमान देशों में राष्ट्र-निर्माण का कार्य ज़ोरों से हो रहा है। और अब संसार की राजनैतिक अवस्था की विषमता को देखकर वे अपना राजनैतिक संगठन भी कर रहे हैं। यदि एशिया के ये मुसलमान राज्य कुछ काल के लिए भी एकता के सूत्र में ग्रथित हो जायँगे तो इससे मुसलमानों का एक बार फिर बल बढ़ जायगा, जिससे संसार में इस्लाम का गौरव बढ़ेगा, साथ ही एशिया का वह भाग समृद्धि-पूर्ण भी हो जायगा। तुर्की के कमाल अतातुर्क, ईरान के रज़ाशाह और नेज्द के इब्न साऊद मुसलमान जाति के युगनिर्माता हैं और इनके नेतृत्व में आज वास्तव में मुसलमान देशों का कायापलट हो रहा है। अतएव यदि उनमें परस्पर सहायता करने के सुदृढ़ समझौते हो रहे हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इस समय सभी लोग जब अपने अपने अभ्युदय की बात ही नहीं सोच रहे हैं, किन्तु उसके लिए प्रयत्न कर रहे हैं तब ये चाणाक्ष मुसलमान शासक इस उपयुक्त अवसर को अपने हाथ से क्योंकर जाने दे सकते हैं?

चीनी का कारबार

चीनी का कारबार उन्नति पर है। सरकार ने इस व्यवसाय को संरक्षण देकर बड़ा उपयोगी कार्य किया है। सन् १९३१ में भारत में चीनी के कुल ३१ कारख़ाने थे। पर १९३५ में उनकी संख्या ११५ हो गई है, और इस संख्या में ७५ फ़ी सदी भारतीयों के कारख़ाने हैं। इनकी वृद्धि से देश के भिन्न-भिन्न भागों में ईख की खेती बढ़ गई है। १९३३-३४ में ३३,०५,००० एकड़ भूमि में ईख की खेती हुई थी। इनमें १७,३१,००० एकड़ संयुक्त-प्रान्त, ४,६७,००० एकड़ पंजाब, ४,१८,००० एकड़ बिहार और उड़ीसा, २,५७,००० एकड़ बंगाल, १,२०,००० एकड़ मदरास, १,०२,००० एकड़ बम्बई और ४,६९,००० एकड़ देशी राज्यों में। सरकार के कोइमबटोर के खोज-कार्यालय ने एक नये ढंग की ईख चलाई है। पुरानी ईख एक एकड़ में बोने से जहाँ ३५० मन माल तैयार होता था, वहाँ इस नई ईख के उतनी ही भूमि में बोने से ६०० मन माल तैयार होता है और यदि जावा की प्रणाली से उसकी खेती की जाय तो एक हज़ार मन माल तैयार हो। इस प्रकार इस कारबार की चौमुखी उन्नति करने का सफल प्रयत्न हो रहा है। नीचे के आँकड़ों से पता लगेगा कि इस कारबार की कितनी उन्नति हो रही है तथा उससे देश का कितना हित हुआ है—

साल	भारत में तैयार हुई	बाहर से आई
१९३१-३२	४,७८,००० टन	५,१६,००० टन
१९३२-३३	६,५६,००० "	३,९९,५०० "
१९३३-३४	१०,००,००० "	२,५०,००० "
१९३४-३५		१,१०,००० "

उपर्युक्त आँकड़ों से प्रकट होता है कि भारत में उतनी चीनी बनने लगी है जितनी उसकी यहाँ खपत है। आशा है, अब यहाँ वह और भी अधिक परिमाण में बनने लगेगी ताकि बाहर भेजी जा सके।

बड़ौदा-नरेश की जुबली

महाराज सयाजी राव गायकवाड़ को अपने राज्य पर शासन करते हुए ६० वर्ष हो गये। इसके उपलक्ष्य में

बड़ौदा-राज्य ने बड़ी धूम-धाम से हीरक जुबली मनाई है। इस अवसर पर ग्राम-सुधार के लिए एक करोड़ रुपया ख़र्च करने का आदेश देकर महाराज ने जुबली-महोत्सव को और भी सार्थक कर दिया है।

बड़ौदा-राज्य भारत के चार बड़े राज्यों में एक है। इसका क्षेत्रफल ८ हज़ार वर्गमील, जन-संख्या २५ लाख और आय २॥ करोड़ रुपया है। अपने गत शासन-काल में महाराज ने अपनी प्रजा को स्वस्थ और समृद्ध बनाने में कोई उपाय बाक़ी नहीं रख छोड़ा और उसको संस्कृत बनाने के सभी प्रयत्न किये। इसी से आज बड़ौदा एक आदर्श राज्य बन सका है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होने से वहाँ साक्षर ३५ प्रतिशत हैं। राज्य भर में २५ सौ स्कूल हैं, जिनमें ढाई लाख छात्र-छात्रायें शिक्षा पा रही हैं। सारे राज्य में पुस्तकालयों का काफ़ी प्रचार है। नगरों में ४२७, स्त्रियों और बच्चों के लिए १४ तथा गाँवों में १ हज़ार पुस्तकालय हैं। तीन सौ चलते-फिरते पुस्तकालय हैं और १२७ वाचनालय हैं। ४० लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा पर व्यय होता है। इसी का परिणाम है कि आज वहाँ की प्रजा अधिक संस्कृत है और महाराज ने क़ानून बनाकर जो तरह तरह के सामाजिक सुधार किये हैं उनका वहाँ स्वागत हो रहा है।

कृषि की उन्नति के लिए राज्य ने किसानों को बराबर सहायता दी है। दो हज़ार सहयोग-समितियाँ किसानों की सहायता के लिए स्थापित की गई हैं, जिनके निरीक्षण में १२ हज़ार पक्के और ६० हज़ार कच्चे कुएँ बनाये गये हैं। घरेलू उद्योग-धन्धों को उन्नत करने के लिए भी सरकार ने समुचित व्यवस्था की है। इसी प्रकार सरकार की सहायता से अनेक कारख़ाने खोले गये हैं, जिससे कारबार और रोज़ी-रोज़गार की वृद्धि हुई है।

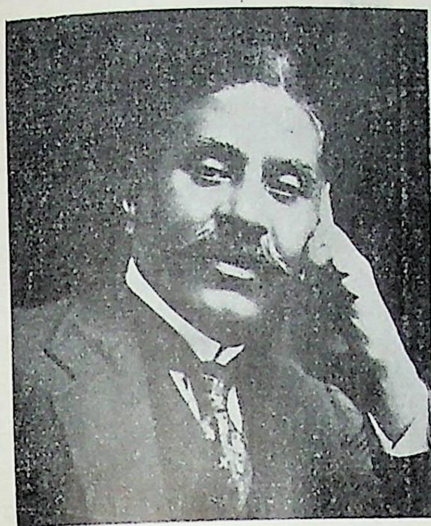
इस प्रकार महाराज ने अपने शासन-काल में अपनी प्रजा को सुशिक्षित और समृद्ध बनाने का ही सफल प्रयत्न नहीं किया है, किन्तु उसमें जो कहीं थोड़ी-बहुत कोर-कसर भी रह गई होगी उसका उन्मूलन करने के लिए महाराज ने इस शुभ अवसर पर एक करोड़ रुपये का एक ट्रस्ट क़ायम कर दिया है जो अब ग्रामों का सुधार करेगा।

दो भारत-हितैषी अँगरेज़

पंजाब यूनिवर्सिटी के लोकप्रिय वाइस चांसलर डाक्टर ऊलनर और कलकत्ता-हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज सर जान उडरफ़ उन अँगरेज़ों में थे जिन्हें भारत से तथा उसकी संस्कृति से प्रगाढ़ प्रेम था। सर जान उडरफ़ तो यहाँ तक आगे बढ़ गये थे कि उन्होंने भारत की प्राचीन और रहस्यपूर्ण तांत्रिक पूजा तक की वकालत की थी और अपनी सुन्दर पाण्डित्यपूर्ण रचनाओं-द्वारा उसके गौरव को पुनः स्थापित किया। इसके सिवा उन्होंने भारत की प्राचीन संस्कृति के सम्बन्ध में जो अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं उनसे उनके पाण्डित्य का ही निदर्शन नहीं होता, किन्तु उस सच्ची सहानुभूति का भी जो उनमें भारत और उसके निवासियों के प्रति थी। इसी प्रकार डाक्टर ऊलनर भी भारत के बड़े भारी हिमायती थे। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने देश की जो सेवा की है, सो तो है ही, साहित्य के क्षेत्र में वे और भी उत्साह के साथ लगे रहते थे। चन्द बरदाई के रासो के उद्धार के लिए उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया है उससे उनकी पैनी बुद्धि का ही नहीं, किन्तु भारत-प्रेम का भी पूरा पता मिलता है। दुख की बात है कि इन दोनों विद्वानों का गत जनवरी में देहावसान हो गया।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी का चतुर्थ साहित्यिक सम्मेलन गत १२, १३ और १४ जनवरी को श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा के सभापतित्व में समारोह के साथ मनाया गया। इसमें इन प्रान्तों के हिन्दी और उर्दू के विद्वानों के अतिरिक्त बहुत-से बाहर के भी गण्य-मान्य सज्जन उपस्थित थे। पहले दिन हिन्दी और उर्दू के विद्वानों का सम्मिलित सम्मेलन हुआ और दूसरे और तीसरे दिन प्रत्येक का अलग-अलग। यद्यपि एकेडेमी का उद्देश हिन्दी और उर्दू दोनों के साहित्यों की अलग-अलग श्रीवृद्धि करना है, तथापि जितने भाषण हुए उन सबमें यही प्रवृत्ति दिखाई पड़ी कि दोनों भाषाओं को मिलाकर एक कर देना चाहिए और उस सम्मिलित भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' होना चाहिए।



[श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा]

इस सम्बन्ध में हम स्वागताध्यक्ष सर तेजबहादुर सप्रू और सभापति श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा के भाषण अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं। एकेडेमी के सुयोग्य प्रधान मंत्री डाक्टर ताराचन्द ने अपने हिन्दुस्तानी भाषा के भाषण से श्रोताओं को मुग्ध कर लिया। यह कहना ठीक हो सकता है कि उर्दूवाले आज-कल उर्दू में फ़ारसी और अरबी शब्दों की भरमार करते जा रहे हैं, पर यह कहना कि हिन्दी-वाले भी संस्कृत शब्दों को वैसे ही हिन्दी में भर रहे हैं हिन्दी के साथ अन्याय करना है। यह बात स्वयं श्रीयुत सच्चिदानन्द सिनहा के मुख से सुनकर हमें आश्चर्य हुआ। यदि वे हिन्दी का कोई भी पत्र या नव-प्रकाशित पुस्तक उठाकर देखते तो उन्हें यह मानना पड़ता कि आज-कल की हिन्दी ने सरलपने की हद कर दी है। गद्य में ही नहीं, पद्य में भी यह सरलता स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। यह बात न होती तो उसका राष्ट्र-भाषा कहलाने का दावा सर्वमान्य कैसे होता ? सच बात तो यह है कि आधुनिक 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' में जिसे हमने डाक्टर ताराचन्द के मुँह से सुना, कोई अन्तर नहीं है। यह बात दूसरी है कि उर्दूवालों को सन्तुष्ट रखने के लिए हम उसके दो नाम बनाये रहें।

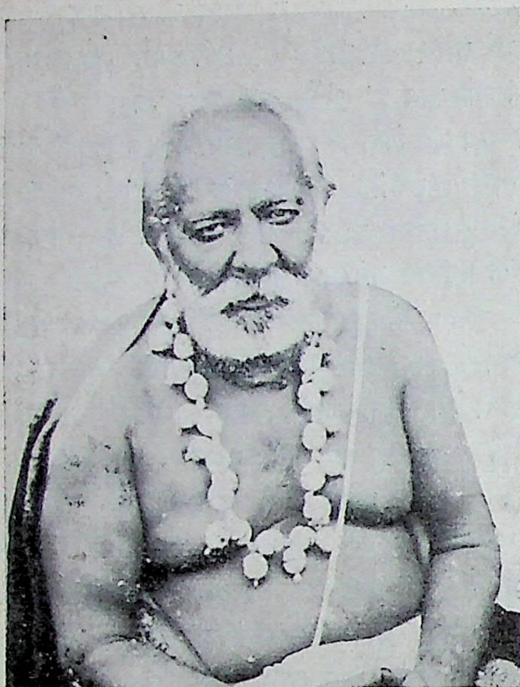
पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के साथ अन्याय

मई सन् १९३५ की 'सरस्वती' में हमने 'कृष्णार्जुन-युद्ध का लेखक कौन है' शीर्षक एक लेख 'स्वराज्य' से उद्धृत किया था। उस लेख में श्रीयुत मोहनलाल सोहनी नाम के एक सज्जन ने यह सिद्ध किया था कि 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नामक नाटक के रचयिता वास्तव में वे ही हैं, पंडित माखनलाल जी नहीं। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी एक योग्य सम्पादक, कुशल लेखक और सहृदय कवि हैं। यह सब जानते हुए भी हमने वह लेख उद्धृत किया था, क्योंकि चतुर्वेदी जी पर वह अभियोग सार्वजनिक रूप से लगाया गया था। पर चतुर्वेदी जी ने उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं किया। इस सम्बन्ध में हमने चतुर्वेदी जी से इन्दौर में 'सम्मेलन' के और अभी हाल में प्रयाग में 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के उत्सव के अवसर पर बातें कीं, जिनसे प्रकट हुआ कि उक्त नाटक के रचयिता चतुर्वेदी जी हैं और वैसा आक्षेप करके उनके साथ अन्याय किया गया है। खेद है, चतुर्वेदी जी अपने नियम के अनुसार अपने ऊपर किये गये व्यक्ति-गत आक्षेपों का उत्तर नहीं देते, नहीं तो उस प्रश्न का निराकरण तभी हो जाता।

उज्जैन के एक प्रसिद्ध विद्वान् का स्वर्गवास

हाल में उज्जैन के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित नारायण जी व्यास का ७६ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। व्यास जी पुरानी पद्धति के उन पंडितों में थे जो परम्परागत विद्या को गुरुमुख से पढ़ते हैं और द्रव्यादि की परवा न कर अपनी विद्या-परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आजीवन विद्या-दान करते रहते हैं। पंडित जी का जन्म संवत् १९१७ में हुआ था। आपने पंडित दीनानाथ जी से ज्योतिष पढ़ा था। आपके पढ़ाये हुए कई हज़ार छात्र मालवा एवं अन्य प्रान्तों में विद्यमान हैं। लोकमान्य तिलक ने संवत् १९६१ की ज्योतिष-परिषद् में आपको सम्मानित किया था। काशी के स्वर्गीय बापूदेव शास्त्री एवं पंडित सुधाकर द्विवेदी ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आपको 'सिद्धान्तवागीश' की उपाधि दी थी।

प्राचीनता के साथ-साथ वर्तमान राजनीति पर भी



[स्वर्गीय पण्डित नारायण जी व्यास]

आपकी आस्था कम न थी। सत्याग्रह-आन्दोलन के समय से ही आप के घर में खद्दर ने स्थान कर लिया। उज्जैन में हरिजनों के गणपति के रामघाट पर जाने में कोई हर्ज नहीं है, यह न्याय-पूर्ण सम्मति आज से आठ वर्ष पूर्व ही देकर हरिजनों के प्रति प्रेम-भाव प्रदर्शित कर चुके थे। आप उज्जैन के भूषण थे और ग़रीब तथा दुखियों के आश्रय थे।

आपके निधन से आप के कुटुम्बियों के साथ-साथ नगर-निवासियों का भी बहुत अहित हुआ है। आपके ज्येष्ठ पुत्र पंडित सूर्यनारायण जी व्यास ज्योतिषाचार्य हिन्दी-साहित्यिकों में सुपरिचित हैं। द्वितीय पुत्र पण्डित चन्द्रशेखर जी व्यास ब्रह्मचर्य-अवस्था में खद्दर-प्रचार और ग्रामोद्धार के कार्य में संलग्न हैं। वे मध्यप्रान्त में एक आश्रम चला रहे हैं। आपके शेष दो पुत्र अभी विद्याभ्यास कर रहे हैं।

साम्प्रदायिक समस्या

सम्प्रदायवाद ने जिस रूप में देश का अहित किया है वह दिन की तरह स्पष्ट है। देश की यह महाव्याधि यहाँ एक ज़माने से ही अस्तित्व में नहीं है, किन्तु इसने अब व्यापक रूप धारण कर लिया है। इसके इस भीषण रूप को देखकर देश के लोकनेता और सरकारी अधिकारी तक समय समय पर इससे जनता को सावधान रखने को सचेत रहते हैं। यही नहीं, अभी उस दिन अपने एक भाषण में स्वयं वायसराय महोदय ने भी साम्प्रदायिक कलह की निन्दा की है। ब्रिटिश सरकार के उच्चाधिकारियों ने साम्प्रदायिक बँटवारा करके जिस महारोग के विनाश का उपक्रम किया था, जान पड़ता है उससे भी इसका प्रतीकार न हो सकेगा। अन्यथा जब भूतपूर्व प्रधान मंत्री मिस्टर राम्से मैकडानल्ड ने पूरा पूरा साम्प्रदायिक बँटवारा कर ही दिया है तब तो इस सम्बन्ध के सारे झगड़े अपने आप बन्द हो जाने चाहिए। यही नहीं, नूतन विधान में भी जब अल्पसंख्यकों के विशेष स्वत्वों की रक्षा के लिए वायसराय और गवर्नरों को विशेष अधिकार अलग-अलग प्रदान कर दिये गये हैं तब तो सभी तरह के साम्प्रदायिक झगड़े बन्द हो जाने चाहिए। परन्तु जान पड़ता है कि सरकार की यह सारी व्यवस्था व्यर्थ हुई अन्यथा साम्प्रदायिक समस्या इस प्रकार दिन प्रतिदिन भीषण रूप न धारण करती जाती। राष्ट्र के नेताओं को ही नहीं, सरकार को भी इसको सुलझाने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील होना चाहिए। शान्ति और व्यवस्था की रक्षा के लिए इसका शीघ्र से भी शीघ्र सुलझ जाना परमावश्यक है।

एक बङ्गाली यात्री

एक बङ्गाली युवक ने अभी हाल में २७ हज़ार मील की पैदल यात्रा समाप्त की है। उनका नाम श्री सुशील कुमार दे है। वे अभी २१ वर्ष के ही हैं। १८ अक्टूबर १९३० को जैसोर से रवाना हुए थे और भारत, बिलूचिस्तान, मकरान, मलार, ईरान, ईराक, अरब आदि देशों का भ्रमण करके अभी हाल में कलकत्ता लौटे हैं। यहाँ से आवश्यक पासपोर्ट प्राप्त करके क्वेटा से होकर वे फिर लन्दन को पैदल जायँगे। अपनी यह दूसरी यात्रा उन्होंने जनवरी १९३६ से शुरू की है।

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

१—फ़ोटोग्राफ़ी **मूल्य ७)**
प्रयाग-विश्वविद्यालय के अध्यापक डाक्टर गोरखप्रसाद ने इस पुस्तक में फ़ोटोग्राफ़ी के सम्बन्ध की सभी उपयोगी बातें संग्रहीत कर दी हैं। इसकी सहायता से आप घर बैठे फ़ोटोग्राफ़र बन सकते हैं।

२ - भू-प्रदक्षिण **मूल्य ५)**
पुस्तक क्या है, बहुत ही मनोरञ्जनकारी सखा तथा ज्ञान-विज्ञान की बातें सिखलानेवाला परम प्रवीण गुरु है। इसे पढ़कर आप घर बैठे संसार का हाल जान सकते हैं।

३—दुःखी भारत **मूल्य ५)**
मिस मेयो नामक अमेरिकन महिला ने 'मदर इंडिया' नामक पुस्तक के द्वारा भारतवासियों के चरित्र पर कलंक की कालिमा लगाने का जो दुःसाहस किया था, उसी का लाला लाजपतराय ने इस पुस्तक में मुँहतोड़ जवाब दिया है।

४—दयानन्द-दिग्विजय **मूल्य ४)**
इस २१ सर्ग के महाकाव्य में आर्य्य-समाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द के जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है। प्रत्येक संस्कृत-श्लोक के नीचे उसकी विस्तृत हिन्दी-टीका दी हुई है।

५—योरप-यात्रा में छः मास **मूल्य ३)**
इसे पढ़कर आप योरप की सभ्यता, वहाँ के भिन्न भिन्न देशों की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्था और मुख्य-मुख्य स्थानों का हाल घर बैठे जान सकेंगे।

६—सोहागरात **मूल्य ४)**
स्त्री-जीवन की पूर्णता के लिए जिन-जिन बातों का जानना आवश्यक है, उन सभी का इसमें समावेश किया गया है।

७—तुलनात्मक भाषा-शास्त्र अथवा भाषा-विज्ञान **मूल्य २।।=)**
गवर्नमेंट संस्कृत-कालेज, बनारस के रजिस्ट्रार डाक्टर मंगलदेव शास्त्री की यह पुस्तक अपने विषय की अद्वितीय है।

८—विद्यापति ठाकुर की पदावली **मूल्य २)**
मैथिल-कोकिल विद्यापति ठाकुर की सरस और सुमधुर रचनाओं का यह सबसे सुन्दर संग्रह है।

९—अशोक की धर्मलिपियाँ **मूल्य ३)**
इस पुस्तक में सम्राट् अशोक की धार्मिक आज्ञायें संग्रहीत की गई हैं।

१०—राधाकृष्ण-ग्रन्थावली **मूल्य ३)**
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास की विभिन्न प्रकार की रचनाओं का यह अनुपम संग्रह है।

११—अकबरी दरबार मूल्य (पहला भाग) २।।)
इसमें मुग़ल बादशाह अकबर की विस्तृत जीवनी के साथ ही भारत की उस समय की सामाजिक, राजनैतिक और साम्पत्तिक अवस्था तथा उसके अमीरों और दरबारियों आदि का विशद वर्णन किया गया है।

१२—अकबरी दरबार (दूसरा भाग) मूल्य ३।।)
इसमें अकबर के प्रसिद्ध दरबारियों के सम्बन्ध की प्रायः सभी मुख्य मुख्य घटनाओं का वर्णन किया गया है। पुस्तक क्या है अकबर-कालीन भारत का सजीव चित्र है।

१३—भारतेन्दुनाटकावली **मूल्य ३।।)**
इस पुस्तक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समस्त नाटकों का संग्रह किया गया है और आरम्भ में बहुत ही विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी दी हुई है।

१४—ध्रुपद-स्वर-लिपि **मूल्य ४)**
काशी-निवासी श्री हरिनारायण मुकर्जी की यह रचना बहुत ही प्रामाणिक है। प्रत्येक संगीत-प्रेमी को इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

———

साहित्यिक पुस्तकें

१—हिन्दी-भाषा और साहित्य मूल्य ६)
रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० की अमर लेखनी से लिखा हुआ हिन्दी-भाषा और साहित्य का बहुत ही प्रामाणिक इतिहास है।

२—हिन्दी-साहित्य का इतिहास मूल्य ४॥)
हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ समालोचक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने इस पुस्तक में हिन्दी-साहित्य का बहुत ही विवेचनापूर्ण इतिहास लिखा है।

३—कोशोत्सव स्मारक संग्रह मूल्य ५)
यह पुस्तक हिन्दी-शब्दसागर की निर्विघ्न समाप्ति के अवसर पर रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास को समर्पित की गई है।

४—हिन्दी-गद्यशैली का विकास मूल्य २)
पण्डित जगन्नाथ शर्मा, एम० ए० ने इस पुस्तक में हिन्दी-गद्य के विकास का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है।

५—रूपक-रहस्य मूल्य २)
इस पुस्तक के लेखक हैं रायबहादुर श्यामसुन्दर-दास, बी० ए० तथा डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, डी० लिट०। इसमें नाट्यशास्त्र का विशद विवेचन किया गया है।

६—हिन्दी-रस-गंगाधर मूल्य ३॥)
यह संस्कृत के उद्भट विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ के ग्रन्थ का हिन्दी-रूपान्तर है।

७—गद्य कुसुमावली मूल्य २)
रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० के साहित्यिक लेखों का संग्रह।

८—आलोचनाञ्जलि मूल्य १)
इस पुस्तक में साहित्य-महारथी पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत के कई प्राचीन और प्रतिष्ठित ग्रन्थों का परिचय दिया है।

९—आलोचनादर्श मूल्य १॥)
इस पुस्तक के लेखक हैं पण्डित रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०। इसमें आलोचना-कला का मार्मिक और शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

१०—साहित्य-प्रकाश मूल्य १॥)
यह पुस्तक भी रसाल जी की ही लिखी है। इसमें साहित्यिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है।

११—साहित्य-समीक्षा मूल्य ॥)
इस पुस्तक में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए० के साहित्यिक तथा समालोचनात्मक लेखों का संग्रह किया गया है।

१२—विनोद-वैचित्र्य मूल्य १)
पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० के लिखे हुए साहित्यिक, दार्शनिक तथा वर्णनात्मक लेखों का संग्रह। इसमें दो महान् व्यक्तियों का जीवन-चरित भी संग्रहीत किया गया है।

जीवन-चरित

१—विद्यासागर मूल्य ३)
प्रातःस्मरणीय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का यह विस्तृत और प्रामाणिक जीवन-चरित है। पुस्तक में १५ चित्र भी हैं।

२—भक्तचरितावली मूल्य २॥)
इस पुस्तक में जगद्गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्य आदि १७ भक्तों तथा महात्माओं का परिचय दिया गया है। पुस्तक सजिल्द और सचित्र है।

३—गोस्वामी तुलसीदास मूल्य १।)
हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक तथा हिन्दी-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट इतिहास-लेखक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का लिखा हुआ गोस्वामी जी का यह जीवन-चरित बहुत ही उपयोगी और प्रामाणिक है।

४—भीष्म-पितामह मूल्य १।)
परम धर्मनिष्ठ तथा दृढ़निश्चयी राजर्षि भीष्म-पितामह का यह जीवन-चरित बहुत ही रोचक तथा सजीव भाषा में लिखा गया है।

५—६—महादेव गोविन्द रानाडे मूल्य १।)
रानाडे जी के जीवन-चरित का मनन करके तथा उनके अनुसार आचरण करके मनुष्य अपने जीवन को देवताओं का-सा बना सकता है।

न्यायमूर्ति रानाडे जी का एक दूसरा भी जीवन-चरित हमारे यहाँ से प्रकाशित हुआ है, जो गुजराती की एक बहुत ही खोजपूर्ण पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इसकी पृष्ठ-संख्या पौने चार सौ से ऊपर है। मूल्य १॥)

७—नेपोलियन बोनापार्ट मूल्य १।)
महावीर नेपोलियन का जीवन-चरित पढ़कर कायर मनुष्य के भी रोम रोम में स्फूर्ति आ जाती है।

८—गुरु गोविन्दसिंह मूल्य १।)
गुरु गोविन्दसिंह की धर्मबलि और वीरता का वर्णन तथा धर्म-रक्षा के लिए उनके पुत्रों के प्राण-त्याग का हाल पढ़कर शरीर में रोमाञ्च हो आता है।

संस्कृत-ग्रन्थों के बालकोपयोगी हिन्दी-संस्करण

१—बाल-हितोपदेश मूल्य ।॥)
मनोरञ्जक तथा रोचक कहानियों के द्वारा बालक-बालिकाओं को व्यावहारिक ज्ञान सिखलाने के लिए इससे बढ़कर कोई भी उत्तम पुस्तक नहीं है।

२—बाल-पञ्चतन्त्र मूल्य ।|=)
इसमें भी नीति-सम्बन्धी कहानियाँ संग्रहीत की गई हैं। पुस्तक क्या है, ज्ञान का भाण्डार है।

३—बाल-भोजप्रबन्ध मूल्य ।|=)
राजा भोज के दरबार में विद्वानों का किस प्रकार आदर हुआ करता था, इसी सम्बन्ध के इस पुस्तक में कई रोचक और शिक्षाप्रद आख्यान संग्रहीत किये गये हैं।

४—बाल-रघुवंश मूल्य ।|)
यह महाकवि कालिदास के रघुवंश का सारांश है। सारी पुस्तक बहुत ही सरल और रोचक भाषा में लिखी गई है। साथ ही कथा का भी कोई अंश नहीं छूटने पाया।

५—बाल-कालिदास मूल्य ।=)
कालिदास के भिन्न भिन्न ग्रन्थों में जितनी भी उपदेशप्रद सूक्तियाँ आई हैं, वे सभी संग्रहीत कर दी गई हैं। ऊपर मूल श्लोक हैं और नीचे हिन्दी-अनुवाद।

विद्यार्थियों के उपयोग की कुछ पुस्तकें

१—बाल-निबन्ध-माला मूल्य ।|=)
इस पुस्तक में भिन्न भिन्न शिक्षाप्रद तथा उपयोगी विषयों पर लिखे गये ३५ निबन्धों का संग्रह है, साथ ही निबन्ध लिखने की रीति भी बतलाई गई है।

२—बाल-स्वास्थ्य-रक्षा मूल्य ।|=)
किस प्रकार के भोजन-वस्त्र और आचरण से मनुष्य सुखी और आरोग्य रह सकता है, यह बात इस पुस्तक में विस्तारपूर्वक बतलाई गई है।

३—बाल-सद्बोध मूल्य ॥)
इस पुस्तक के द्वारा बालकों को तरह तरह की मनोरञ्जक पौराणिक कहानियों की सहायता से धर्म और सदाचार की गूढ़ से गूढ़ बातें सिखलाने का प्रयत्न किया गया है।

४—शरीर और शरीर-रक्षा मूल्य ॥)
इस पुस्तक में शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों का विवरण तथा उनकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है। शरीर के ढाँचे को भली भाँति समझाने के लिए कई चित्र भी दिये गये हैं।

५—आरोग्य-विधान मूल्य ।=)
इस पुस्तक में स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रायः सभी बातें बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई हैं।

६—बाल-हिन्दी-व्याकरण मूल्य ॥)
हिन्दी का व्याकरण जानने तथा शुद्ध शुद्ध हिन्दी लिखना सीखने के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

७—पृथिवी की परिक्रमा मूल्य ।=)
इस पुस्तक में पृथिवी के भिन्न भिन्न देशों के मुख्य मुख्य स्थानों का रोचक वर्णन बड़ी ही मनोरञ्जक भाषा में लिखा गया है। आर्ट पेपर पर छपे हुए कई पूरे पृष्ठ के चित्र भी हैं।

८—बच्चों की बातें मूल्य ।)
पुस्तक क्या है, ज्ञान का ख़ज़ाना है। गुजराती में तो इसकी बीसों हज़ार प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

९—बही-खाता मूल्य ।≡)
हिसाब-किताब रखने का नये से नया तरीक़ा।

बालकों के लिए उपदेश-सम्बन्धी पुस्तकें

१—बाल-गीता मूल्य ॥।)
इस पुस्तक में गीता के अठारहों अध्यायों का सारांश सरल भाषा में लिखा गया है।

२—बाल-दुर्गा मूल्य ॥=)
यह दुर्गा-सप्तशती के तेरहों अध्यायों का सारांश है।

३—बाल-गीतावली मूल्य ॥=)
भगवद्गीता के अतिरिक्त और भी कई गीतायें हैं और सभी एक से एक बढ़कर हैं। उनमें से छाँट कर नौ गीतायें इसमें संग्रहीत की गई हैं।

४—बाल-स्मृतिमाला मूल्य ॥=)
भिन्न भिन्न ऋषियों ने मनुष्य को संयम और सदाचार के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए जो नियम बनाये हैं, वे स्मृतियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस पुस्तक में उन्हीं अठारह स्मृतियों का सारांश दिया गया है।

५—बाल-नीति-माला मूल्य ॥=)
यह संस्कृत के प्रामाणिक नीति-ग्रन्थों का सारांश है। इसे पढ़कर तथा इसमें लिखी हुई बातों का मनन करके बच्चे नीतिमान् और चतुर बन सकते हैं।

६—बालोपदेश मूल्य ।=)
इसमें ऐसी ऐसी शिक्षायें संग्रहीत की गई हैं, जो केवल बालक-बालिकाओं के ही लिए नहीं, बल्कि बड़ों-बूढ़ों के लिए भी लाभदायक हैं।

७—बाल-मनुस्मृति मूल्य ।=)
मनुस्मृति के चुने हुए श्लोकों का सारांश।

८—बाल-शिक्षा मूल्य ≡)
यह कविता-पुस्तक है। इसमें बालकों के कण्ठस्थ करने योग्य सुपाठ्य और उपदेश-प्रद पद्य संग्रहीत किये गये हैं।

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमाला की पुस्तकें

(स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलती हैं)

	मूल्य
(१) (२) स्वराज्य का सरकारी मसविदा-पृष्ठ ५८७, दोनों भागों का ...	।।।=)
(३) अब्राहम लिंकन	।।)
(४) प्राचीन भारत (अप्राप्य) ...	१।।।=)
(५) इटली के विधायक महात्मागण ...	२।)
(६) यूरोप के प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारक	१।।=)
(७) बिहारी की सतसई (अप्राप्य) ...	२)
(८) बनारस के व्यवसायी ...	।।=)
(९) गृहशिल्प	।।)
(१०) वैज्ञानिक अद्वैतवाद ...	१।।।=)
(११) जापान की राजनीतिक प्रगति ...	३।।=)
(१२) रूस का पुनर्जन्म	।।।=)
(१३) रोम-साम्राज्य	२।।)
(१४) खाद का उपयोग	१)
(१५) सारनाथ का इतिहास ...	१।।)
(१६) ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास मूल्य सजिल्द १।-), अजिल्द	१-)
(१७) राजनीतिशास्त्र ...	२।=)
(१८) राष्ट्रीय आय-व्यय-शास्त्र ...	३।)
(१९) अँगरेज़ जाति का इतिहास ...	२।।)
(२०) भारतवर्ष का इतिहास ...	२।।।)
(२१) अशोक के धर्मलेख (प्रथम भाग)	२।।।)
(२२) पृथ्वीप्रदक्षिणा कमीशन काटकर	१३=)
(२३) अन्तर्राष्ट्रीय विधान—पृष्ठ-संख्या ५००	३।)

	मूल्य
(२४) पश्चिमी योरप का इतिहास (प्रथम भाग)	२।।)
(२५) मीरक़ासिम	१।।)
(२६) अफलातून की सामाजिक व्यवस्था	१।=)
(२७) हिन्दू भारत का उत्कर्ष (अर्थात् राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास)	३।)
(२८) A Short History of England	Price 12 Annas.
(२९) हिन्दीशब्दसंग्रह	४)
(३०) पश्चिमी योरप (दूसरा भाग) सजिल्द	२।)
(३१) इब्नबतूता की भारत-यात्रा ...	२)
,, ,, सजिल्द ...	२।=)
(३२) भारत का सरकारी ऋण ... दोनों भाग	१।=)
(३३) कल्याणमार्ग का पथिक ...	१।।)
(३४) गणेशशङ्कर विद्यार्थी जी की जीवनी—	१।।), सजिल्द २)
(३५) विक्रमांकदेवचरितम् (संस्कृत) ...	१।।)
(३६) तैरने की कला (सचित्र) ...	।≡)
(३७) अभिधर्मकोश:	५)
(३८) बुद्धचर्या	५)
(३९) ग्रीस और रोम के महापुरुष ...	३।।।)
(४०) साम्राज्यवाद	२।।)

दूकान—चौक, काशी

ज्ञानमंडल पुस्तक भण्डार कार्यालय कबीरचौरा, बनारस सिटी

स्काउट-मास्टरों के लिए अत्यन्त उपयोगी पुस्तक

स्काउट-मास्टरी और ट्रुप-संचालन

लेखक, श्रीयुत जानकीशरण वर्मा, बी० ए०

हेडक्वार्टर्स कमिश्नर, सेवासमिति ब्वाय स्काउट एसोसिएशन, इलाहाबाद

इस पुस्तक में स्काउट-मास्टरों के लिए बहुत-सी व्यावहारिक बातें दी गई हैं, जैसा कि विषय-सूची के निम्नलिखित विषयों से प्रमाणित होता है :—

ट्रुप का आरम्भ—

स्काउट-शिक्षा की विधि

ट्रुप का प्रारम्भिक कार्य-क्रम

ट्रुप-रैली के कार्य-क्रम के नमूने

आगे का कार्य-क्रम

स्काउटिङ्ग-शिक्षा-सम्बन्धी कुछ ज़रूरी इशारे

कबिङ्ग, स्काउटिङ्ग और रोवरिङ्ग की विशेषतायें

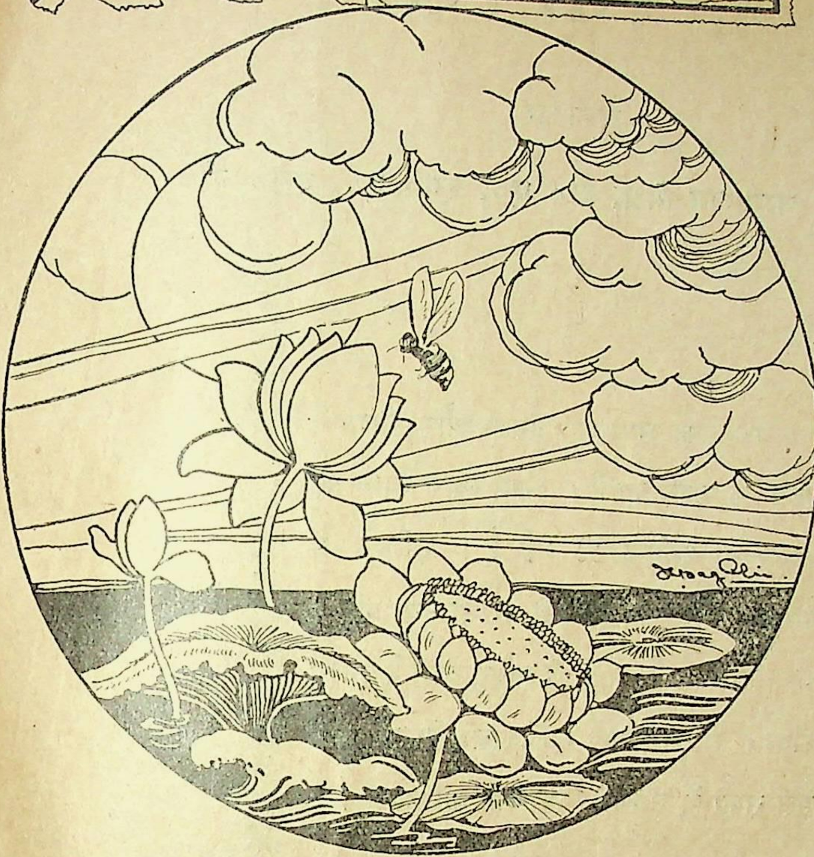
असफलता के कारण

इत्यादि, इत्यादि

इस पुस्तक के अनुसार चलनेवाले स्काउट-मास्टर ट्रुप-संचालन में निस्सन्देह सफल होंगे। मूल्य ॥।)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

नीरजा



— महादेवी —

यह आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी-कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा की चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। प्रत्येक कविता में संगीत का बहुत ही सुन्दर प्रवाह है। लेखिका ने हृदय के अमूर्त भावों को भी नव नव उपमाओं एवं रूपकों-द्वारा बड़ी सुघरता से एक एक सजीव रूप प्रदान किया है। इस पुस्तक के लिए सम्मेलन ने इस वर्ष का ५००) रुपये का सेकसरिया पुरस्कार श्रीमती वर्मा जी को प्रदान किया है। मूल्य १) एक रुपया।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

कवितावली

टीकाकार

रायबहादुर चम्पाराम मिश्र, बी० ए०, एम० ए०, एस० बी०

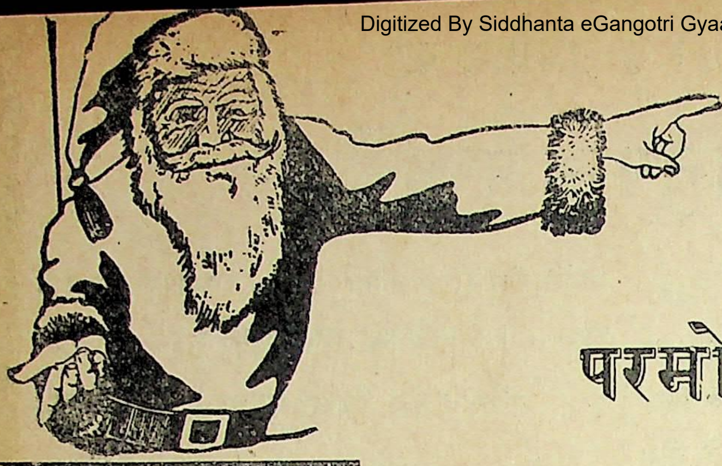
यह टीका साधारण जनता और विद्यार्थी दोनों के काम की है। इसमें स्थान स्थान पर कथायें भी अधिक दी गई हैं। भूमिका में गोस्वामी जी की जीवनी पर तो नया प्रकाश डाला ही गया है, साथ ही कवितावली में उनकी जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें मिल सकी हैं, उनकी आलोचना की गई है।

इस टीका की प्रशंसा करते हुए लाहौर के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् ने लिखा है:—

टीका के सम्बन्ध में क्या कहूँ वह तो एक अन्यत्र दुर्लभ ध्यान है। ऐसी सुन्दर, सरल, एवं विद्वत्ता-पूर्ण टीका मैंने नहीं पढ़ी। × × × × आप जैसे विद्वद्वरेण की मझी हुई क़लम से जो कुछ निकलेगा वह अपूर्व अमर्यादित एवं साधारण कैसे होगा यही सन्देहास्पद है। मूल्य १॥।) पौने दो रुपये।

पं० उदयशंकर भट्ट शास्त्री, काव्यतीर्थ

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग



तीन परमोपयोगी पुस्तकें

(१) **दुखी भारत**—यह वही ग्रन्थरत्न है, जिसे लिख कर स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने संसार के समस्त सभ्य देशों में भारत का मुख उज्ज्वल किया है। भारतवासियों को कलंकित करने के विचार से लिखी गई मिस मेयो की मदर इंडिया पुस्तक का यह मुँहतोड़ जवाब है। मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

(२) **सोहागरात**—हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक पण्डित कृष्णकान्त मालवीय ने यह पुस्तक विवाह के अवसर पर अपनी पुत्र-बधू को समर्पित करने के लिए लिखी थी। स्त्री-जीवन की सफलता के लिए जितनी भी आवश्यक बातें हैं, उन सभी का इसमें समावेश किया गया है। मूल्य ४) चार रुपये।

(३) **शिक्षा**—अपने बालक-बालिकाओं को हम किस तरह सुशिक्षित तथा सदाचारी बना सकते हैं, यह बात इस पुस्तक में विस्तृत रूप से लिखी गई है। इसके मूल-लेखक हैं सुप्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर तथा अनुवादक आचार्य द्विवेदी जी। मूल्य ३॥)

मैनेजर (बुकडिपो),

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सबके लिए

शक्ति और स्फूर्ति से भरपूर

स्वादिष्ट

झंडु द्राक्षासव

विशेषकर स्त्रियों के लिए

बिना विलम्ब सेवन कीजिए

तन्दुरुस्ती और ताक़त से भरपूर

प्रदरादि रोगों की
अक्सीर दवा

झंडु अशोकारिष्ट

स्त्रियों की निर्बलता में स्थायी प्रभाव डालनेवाला
—हर एक घर में रहना चाहिए—

सच्ची शक्ति के संग्रह के लिए

झंडु की सुवर्णमिश्रित

मकरध्वजगुटी

शक्ति की सर्वोत्तम दवा
फ़ौरन व्यवहार कीजिए

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि० पो० बो० नं० ५५१३—बम्बई नं० १४

इलाहाबाद के चीफ़ एजेन्ट—एल० एम० धोलकिया एण्ड ब्रादर्स, ४६ जान्स्टनगंज।
बिलासपुर के एजेन्ट—कविराज रवीन्द्रनाथ वैद्यशास्त्री।
दिल्ली और यू० पी० के सोल एजेन्ट—कान्तिलाल आर० परीख, चाँदनी चौक, देहली।
कानपुर के एजेन्ट—मोहनलाल आर० परीख, ३४।३५ मेस्टन रोड।
पंजाब के एजेन्ट—परशोतम ब्रादर्स, हॉल बाजार, अमृतसर।

बाल-शब्दसागर

'शब्दसागर' हिन्दी का बहुत बड़ा कोष है; अधिक मूल्य होने के कारण उसे सर्वसाधारण, विशेषतः विद्यार्थी, नहीं ले सकते। इस आवश्यकता पर दृष्टि रखकर ही काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए० ने इस बाल-शब्दसागर का सम्पादन किया है। यह ठीक है कि इसमें मूल शब्दसागर की भाँति, किसी शब्द के पर्यायवाची शब्दों और मुहाविरों तथा उदाहरणों आदि का विस्तार नहीं है; परन्तु आवश्यक शब्दों का सन्निवेश यथायोग्य रहने दिया गया है। यह कोष विशेषतः स्कूल के विद्यार्थियों के लिए बनाया गया है; फिर भी अपनी व्यावहारिक उपयोगिता के कारण यह सभी के काम में आ सकता है। इसकी शब्द-संख्या ३५,००० के लगभग है। इसका आकार भी ऐसा है कि इसको लाने ले जाने में कोई कठिनाई नहीं। हिन्दी में यह अपने ढङ्ग का बिलकुल नया कोष है। ८०० से अधिक पृष्ठों की, सुन्दर, सजिल्द पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ दो रुपये। डाक-महसूल अलग।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

जाड़े की ऋतु है

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध वैद्य, कविविनोद वैद्य-भूषण पण्डित ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य आविष्कारक "अमृतधारा" की देख भाल में तैयार की हुई निम्नलिखित कुछ बलदायक औषधियों में से किसी एक का सेवन करके बल का कोष भर लें।



विस्तारपूर्वक जानकारी के लिए "नपुंसकत्व" पुस्तक मुफ़ मँगावें।

दत्त मकरध्वज वटी नं० १—हृदय तथा मस्तिष्क के लिए पौष्टिक है। दूध, घृत पाचक, शरीर को बलवान् बनाती है। वात, कफनाशक शरीर में फुर्ती लाती है। कास, श्वास, प्रतिश्याय, कटिपीड़ा, गठिया, गाउट, मूत्रातिसार सबको लाभ देती है। मूल्य ८ वटी १)।

दत्त मकरध्वज वटी नं० २—स्वर्णभस्म, कस्तूरी, फौलाद, भस्म आदि सम्मिलित होने से हृदय, मस्तिष्क और यकृत को बल देती है, वर्ण को लाल करती है। वीर्य्य को बढ़ा कर गाढ़ा करके शिथिलता को दूर करती चली जाती है, शुक्रमेह, शीघ्रपतननाशक है। मूल्य ५ वटी १)

दत्त मकरध्वज वटी नं० ३—यह विशेषकर शीघ्रपतन-नाशक है, दिन-प्रति-दिन शीघ्रपतन दूर होकर स्तम्भन बढ़ता जाता है। वीर्य्य शुष्क नहीं होता, प्रत्युत बढ़ता है। कोई मादक वस्तु इसमें नहीं है। मूल्य ८ वटियों का ४)

दत्त मकरध्वज वटी नं० ४—यह औषधि विशेषकर शुक्र-मेह, स्वप्नदोष का नाश करनेवाली है, डायबिटीज़, प्रमेह, स्त्रियों की श्वेत आर्द्रता और मूत्रअधिकता के लिए लाभदायक है। मूल्य ८ वटियों का १) है।

दत्त मकरध्वज वटी नं० ५—यह असली रसायन है। इसको सदैव सेवन करनेवालों की आयु बड़ी लम्बी हो जाती है, और बुढ़ापा आता नहीं, बूढ़ा खाय तो वह भी युवा हो जाता है, क्योंकि सब अङ्गों को बल प्राप्त होता है। वीर्य्यविकार दूर होकर वीर्य्य बढ़ता है। मूल्य ३ गोली १) 'दर्जा अव्वल' ३ गोली ३)

किरण जवानी—इसमें हैवानी गदूद या उनके रस नहीं हैं फिर भी समस्त श्रेष्ठ अवयवों पर इसका प्रभाव होता है। जवानी की किरणें शरीर में दौड़ने लगती हैं। नपुंसकता तथा तत्सम्बन्धी रोग और साथ ही नज़ला, ज़ुकाम, पट्ठों की सुस्ती इत्यादि दूर होती हैं, रंग निखरता है और झुर्रियाँ भी दूर हो जाती हैं। मूल्य १०० गोली ४), २४ गोली १) है।

दत्त तिला—नया आविष्कार है। इसमें सब गुण प्रस्तुत हैं, विशेष बात यह है कि न बाँधने की आवश्यकता, न नहाने का परहेज़, न किसी स्थान के बचाने की आवश्यकता है। जब तक चाहें बर्तें। मूल्य प्रतिशीशी २)

तिला नं० १४—यह तिलाओं का बादशाह है। इसमें ताक़त बेहद है। चन्द दिनों में सब प्रकार की कमज़ोरी दूर होती है, उपाड़ थोड़ा करता है। मूल्य प्रतिशीशी ६), आधी शीशी ३)

पत्र-व्यवहार तथा तार का पता—**अमृतधारा ११, लाहौर**

सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ४।।) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य।=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६।।।), छः महीने का ३।=) और प्रतिसंख्या का ।।-) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य ।।=) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिखकर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे ग्राहक नं० उल्लेख करके हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए। पत्र लिखते समय अवश्य ग्राहक-नम्बर उल्लेख कीजिए नहीं तो जवाब मिलना मुश्किल होगा।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद," के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर करें

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

सरस्वती के विज्ञापन-छपाई के रेट

कवर का दूसरा पृष्ठ	४५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	४५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	८०)	,,
पाठ्य विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के तीसरे पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३५)	,,
,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
रङ्गीन चित्र से पहलेवाला पृष्ठ ...	३५)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,

साधारण नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या	२ कालम की छपाई	...	३०)	प्रतिमास
$\frac{१}{२}$,, या	१ ,, ,,	...	१६)	,,
$\frac{१}{४}$,, या	$\frac{१}{२}$,, ,,	...	९)	,,
$\frac{१}{८}$,, या	$\frac{१}{४}$,, ,,	...	५)	,,

१—"सरस्वती" में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते, अतः कुरुचि-पूर्ण विज्ञापन न भेजिए।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है, औरों को नहीं।

३—छपाई का रेट जो ऊपर दिया है यह अकाट्य (FINAL) है। इसके लिए लिखा-पढ़ी करना व्यर्थ है।

४—जितने समय तक के लिए कन्ट्रैक्ट किया गया है, उतने समय तक विज्ञापन छपाना होगा। विज्ञापन न छपाने पर भी उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा।

पत्र-व्यवहार करने का पता—

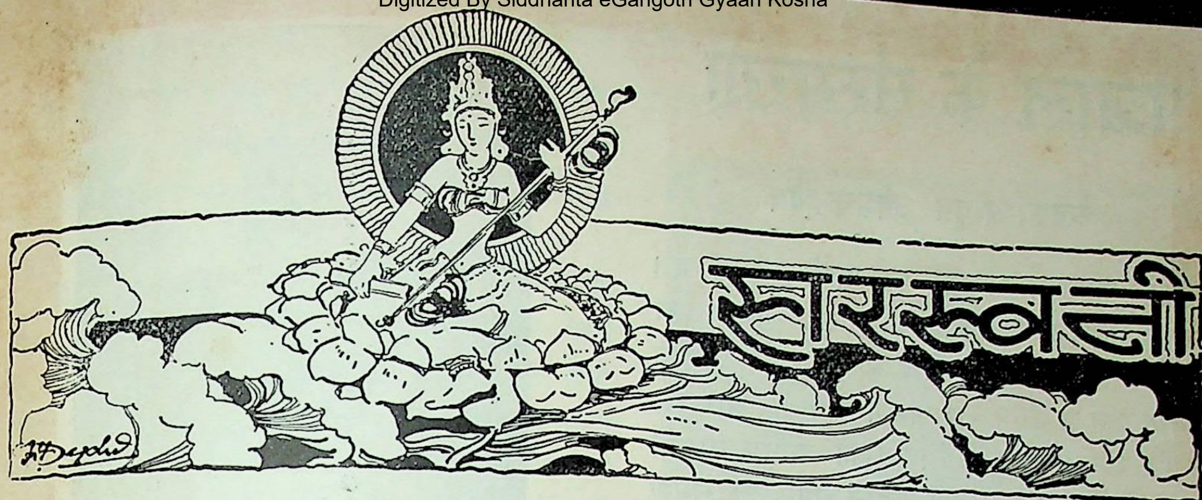
लेख-सूची

चित्र-सूची



भिक्षार्थी बुद्ध

चित्रकार—श्रीयत शम्भनाथ मिश्र



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जनवरी १९३८ } भाग ३९, खंड १ संख्या १, पूर्ण संख्या ४५७ { पौष १९९४

टूटी कड़ियाँ

लेखक, श्रीयुत विश्वम्भरनाथ

विरह-जनित पीड़ा के रव से, उपजा था सङ्गीत;
धरणी औ' अम्बर के, कण कण में छाये थे गीत!

कालिदास की मुग्ध लेखनी, उमड़ी गतिधारा-सी;
राग-रागिनी गूँज रही थी, मग्न दिशा हारा-सी!

शत शत युग के गोपनीय, भावों की बनकर भाषा;
हुई सहस्रों गीतों से, मुखरित मोहक प्रत्याशा!

छाया मन का भाव गगन में, या अन्तर-ध्वनि खोई;
तीव्र व्यथा की जीर्ण साधना, अलस-भाव से रोई!

कितनी पीड़ा सही, हृदय को मैं कैसे समझाऊँ?
नीरव सन्ध्या में वियोग का, कोई गीत सुनाऊँ!

सोचा था मेरी आहों से, व्याकुल गीत बनेंगे;
टूटे अक्षर जोड़ जोड़, कोमल सङ्गीत बनेंगे!

विरह-पीर की गाथा गूँजेगी, सब वन-उपवन में;
सिहर उठेगी राधा रानी, मन के वृन्दावन में!

अपने मन की वीणा के, छूकर दो तार जगाये;
धूल-धूसरित कलियों के, कितने उपहार बनाये!

सोचा था शायद यौवन की, सुखद कल्पना जागे;
सोचा था शायद जीवन की, क्षुब्ध निराशा भागे!

मेरी टूटी कड़ियों पर, सारी वसुधा मुसकाती;
मेरे मन की तीव्र वेदना, रह रह कर शरमाती!

पञ्चाल के संस्मरण

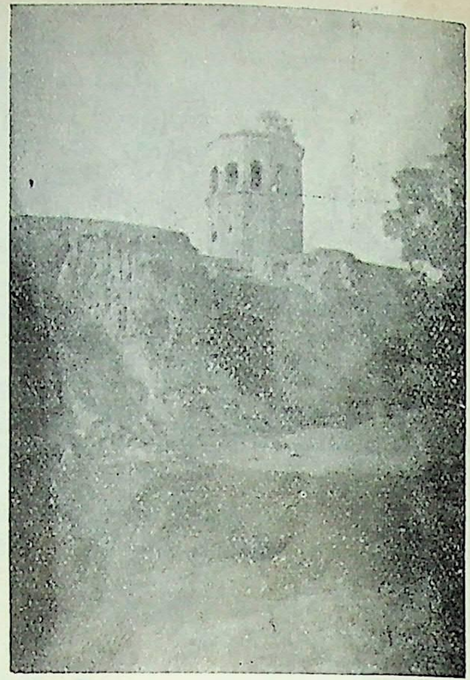
लेखक, श्रीयुत उमेशचन्द्रदेव

पञ्चाल फ़र्रुख़ाबाद-ज़िले का प्राचीन नाम है। लेखक महोदय ने इसी ऐतिहासिक भूभाग का सप्रमाण परिचय इस लेख में दिया है। उन्होंने समस्त पञ्चाल का ४ बार भ्रमण किया है और उस पर एक ग्रन्थ लिखने के लिए काफ़ी अधिक सामग्री एकत्र की है। इस लेख में उन्होंने अपने उक्त भ्रमण के अनुभवों का संक्षेप में परिचय दिया है। यह लेख अपने विषय का नया ही नहीं, किन्तु पहला भी है।



र्रुख़ाबाद से छोटी लाइन के द्वारा मथुरा की ओर चलने पर, क़ायमगंज और रुदायन के बीच में, रेल से उत्तर की ओर एक झील दिखाई देती है। यह झील गर्मियों में सूखी-सी रहती है, पर वर्षाकाल में बारह-चौदह मील के घेरे में फैल जाती है। इसके किनारों पर आम के घने बाग़ हैं। यहाँ के निवासी इसे 'सरदीपक ताल' कहते हैं। साधारणतः इस ताल का कोई महत्त्व नहीं है, न किसी यात्री का इसकी ओर आकर्षण ही होता है; पर दस-बीस वर्ष बाद जब आश्विन के महीने में सोमवती पड़ जाती है तब इस ताल के आस-पास की भूमि भारत के विभिन्न प्रान्तों के निवासियों से भर जाती है। सप्ताह, दो सप्ताह बड़ी चहल पहल रहती है, एक्के-मोटरों का ताँता लग जाता है, सहस्रों डेरे-तम्बू दिखाई देते हैं। सैकड़ों चौकों में खीर पकती दिखाई देती है। पण्डितों व पुरोहितों का भाव चढ़ जाता है। श्राद्ध व पिण्डदान की बाढ़ आ जाती है। मन्त्रोच्चारण का ऐसा शब्द होता है, मानों सतयुग आ गया हो। एक छोटा-पूरा कुम्भ हो जाता है।

पास-पड़ोस के यजमान तो पिण्डदान करके घर की राह लेते हैं, पर वे यात्री जो बङ्गाल, बम्बई प्रभृति दूर के स्थानों से आते हैं, पिण्डदान से निवृत्त होकर यथावकाश पञ्चाल की भूमि के दर्शन भी करते हैं। इस प्रकार यह 'सरदीपक' नामक एक नगण्य जलाशय अपनी महत्ता के



[राजा द्रुपद के कोट का एक-मात्र टूटा हुआ बुर्ज–कम्पिल।]

कारण इतिहास–प्रेमियों का ध्यान दस-बीस वर्ष बाद हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

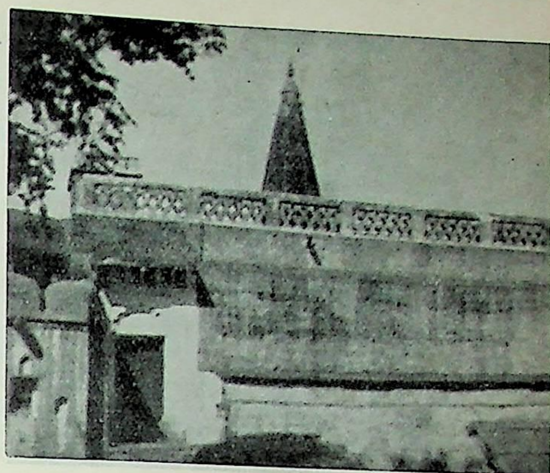
क्वारी सोमवती बार बार नहीं पड़ती। अस्सी वर्ष के बूढ़ों के जीवन में भी यह संयोग दो तीन बार से अधिक नहीं आता। एक जनश्रुति है कि पांडव लोग इस तालाब के पास उक्त पुण्यपर्व की प्रतीक्षा में निरन्तर कई वर्ष तक पड़े रहे थे। इस तालाब के चारों ओर सैकड़ों मील के घेरे में विशाल पञ्चाल की भग्नावशिष्ट विभूतियाँ बिखरी पड़ी हैं। इन विभूतियों के अध्ययन के लिए ओझा जी के मस्तिष्क की सहायता नहीं लेनी पड़ती। कोई भूला-भटका पथिक जब इधर से आ निकलता है तब ये विभूतियाँ प्रत्येक बच्चे के मुख से अपनी रामकहानी कहने लगती हैं। इन ऐतिहासिक स्थानों के नाम तत्समता के इतने सन्निकट हैं कि महाभारतकालीन नामों से इनका सामंजस्य करने में खींचतान नहीं करनी पड़ती। महाभारत तथा हरिवंशपुराण में इस तालाब का नाम 'शरद्दीप-तीर्थ' लिखा है। इसका माहात्म्य लिखते हुए कहा गया है कि शरद्दीप के चक्रवाक,[१] मानसरोवर के राजहंस और गौड़

१—चक्रवाकाः शरद्दीपे मानसे राजहंसकाः।
ब्राह्मणा गौडदेशेषु प्रभवन्ति न संशयः॥
ततः पश्चान्नृपश्रेष्ठ शरद्दीपमितिस्मृतम्।
तीर्थमस्ति महापुण्यं ········· ॥—महाभारते

देश के ब्राह्मण तीनों की समान गति है। आश्विन मास में सोमवती पड़ने पर यहाँ पिण्डदान करने से गया-श्राद्ध का फल होता है[१]।

इस शरद्वीप से पश्चिम डेढ़ मील की दूरी पर 'रुदायन' गाँव है। यहाँ बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे का स्टेशन है। महाभारत में इसका नाम 'रुद्रायण-तीर्थ' और 'सोमाश्रयायण[२]-तीर्थ' दिया हुआ है। जब पांडव लोग द्रौपदी का स्वयंवर देखने के लिए द्रुपद की राजधानी काम्पिल्य को जा रहे थे तब उन्हें रुद्रायण-तीर्थ बीच में मिला था[३]। पांडव लोग 'एका' नामक ग्राम में ब्राह्मण के घर पर रहते थे। यह एका सम्प्रति मैनपुरी-ज़िले में है। वहाँ से कम्पिल जाने के लिए रुदायन होकर ही मार्ग है। रुदायन और शरद्वीप के बीच में एक गढ़ा है। इस गढ़े की मिट्टी में, न जाने क्यों, केवड़े की सुगन्ध आती है। लोग इसकी मिट्टी पुड़ियों में बाँध कर दूर-दूर ले जाते हैं। रुदायन से दो मील पश्चिम 'भारागैन' नाम का एक बड़ा गाँव है। महाभारत में इसका नाम 'भार्गवायन' दिया हुआ है। पांडव इसी ग्राम में एक कुम्हार के घर ठहरे थे। आज कल इस गाँव में मुसलमान भट्टियों के घर अधिक हैं। भार्गव का अर्थ कुम्हार है। जहाँ पांडवों को आश्रय देनेवाले कुम्हार का घर रहा होगा, उस स्थान की स्मृति आज तक सुरक्षित है। भारागैन के कुम्हार जो अपने को उसी कुम्हार का वंशज बतलाते हैं, उस स्थान पर मिट्टी का एक स्तूपाकार स्मारक परंपरा से बनाते चले आये हैं। भारागैन के कुम्हार कुम्हारों में चौधरी और कुलीन माने जाते हैं। बिरादरी में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा है।

पांडव लोग कुम्हार के घर पर क्यों ठहरे थे? इसका उत्तर यह है कि पांडव लोग उन दिनों संन्यासी के



[जैन-मंदिर विक्रमीय ५४६ का।]

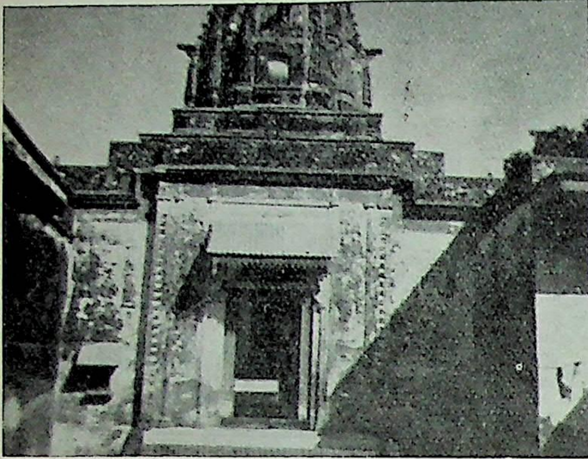
वेश में थे, और जाबालोपनिषद् में संन्यासी का निवास निम्न स्थानों में कहा है—

शून्यगृह, देवालय, पर्णकुटी, वल्मीकि, वृक्षमूल वा कोटर, गिरिकन्दरा, विपिनस्थली, निर्जन सरित्तट और कुलाल-शाला (कुम्हार की चौपाल)। भारागैन से कम्पिल की ओर चलने पर एक छोटा-सा ग्राम 'धौमपुरा' मिलता है। यहाँ पांडवों के पुरोहित धौम्य जी का निवास-स्थान था। ये धौम्य जी वही थे जो अपने शिष्यों की 'अग्नि-परीक्षा' लिया करते थे। आरुणी आदि शिष्यों की परीक्षा की कहानी अनेक पाठक जानते होंगे। महाभारत में कहा है कि पञ्चाल को जाते हुए पांडव लोग आधी रात के समय गंगातट पर पहुँचे। उस समय एक यक्ष अपनी स्त्रियों के सहित गंगा जी की धारा में जल-क्रीड़ा कर रहा था। पांडवों को तट पर खड़ा देखकर उसे बड़ा क्रोध आया। यक्ष ने बाहर निकल कर कहा कि "स्मृति के आज्ञानुसार मनुष्य को प्रहर रात्रि से प्रत्यूषकाल तक मार्ग नहीं चलना चाहिए, क्योंकि यह समय यक्ष, किन्नर, भूत, प्रेत और निशाचरों के लिए नियत है। आप लोग अनधिकारपूर्वक यहाँ क्यों आये? मैं अभी तुमको इसका मज़ा चखाता हूँ।" अर्जुन ने उत्तर दिया कि "गंगा जी प्राणिमात्र की माता हैं। वे किसी व्यक्ति या योनि-विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। माता के पास जो पुत्र जिस समय चाहे आ-जा सकता है। इसी अधिकार से हम यहाँ आये हैं। तुम हमें कदापि नहीं रोक सकते।" यक्ष

१—सोमवत्याममावास्यामाश्विने मासि यो नरः।
श्राद्धं कुर्य्यादत्र तस्य गयाश्राद्धफलं भवेत्।

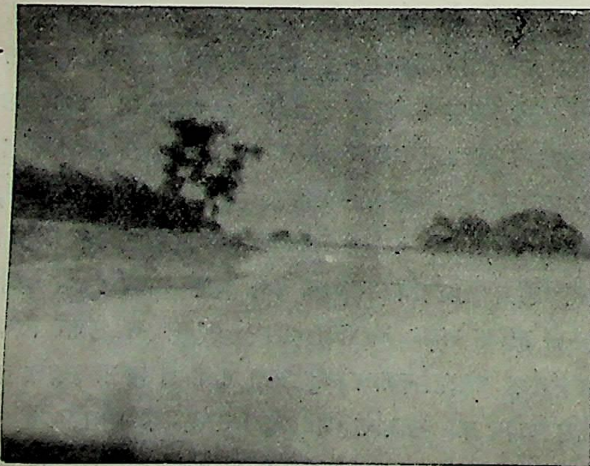
२—सोमाश्रयः रुद्रः तस्य अयनम्, सोमाश्रयायणम्
रुद्रायणम् इति,
—तट्टीकाकारः

३—ते त्वगच्छन्नहोरात्रात् तीर्थं सोमाश्रयायणम्।
—महाभारत



[जैन-मंदिर १६०४ विक्रमीय ।]

स्त्रियों की उपस्थिति में अपनी अवज्ञा सहन न कर सका। निदान अर्जुन और यक्ष में युद्ध होने लगा। यक्ष पराजित हुआ और पांडवों की शरण में आया। धर्मराज ने उसे क्षमा करके अपना मित्र बना लिया। यक्ष ने धर्मराज को सम्मति दी कि बिना पुरोहित किये क्षत्रिय राजा की गति नहीं होती। अतः आप एक योग्य पुरोहित अवश्य कर लीजिए। यहाँ पास ही धौम्य ऋषि रहते हैं; वे बड़े विद्वान् तथा कर्मनिष्ठ हैं। आप लोग उनसे पौरोहित्य के लिए याचना करें। पांडवों ने उसी दिन धौम्य जी के दर्शन किये और उन्हें अपना पुरोहित नियुक्त कर लिया। धौम्य-सा आदर्श पथ-प्रदर्शक पाकर पांडवों को विश्वास हो गया कि स्वयंवर में उनकी विजय अवश्य होगी।



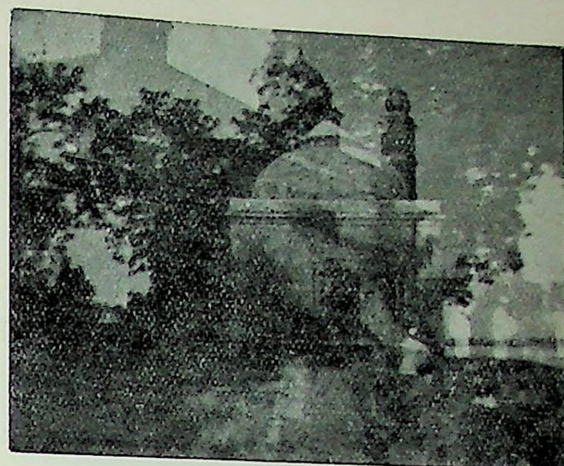
[सरदीपक ताल का एक दृश्य।]

'धौमपुरा' से आगे 'जाजपुरा' मिलता है। यहाँ जाजमुनि के आश्रम के चिह्न हैं। द्रोणाचार्य से तिरस्कृत द्रुपद-नरेश एक ऐसा ब्राह्मण चाहते थे जो लालची भी हो और यथेष्ट रुपया लेकर उन्हें ऐसा यज्ञ करा दे जिसके फल-स्वरूप द्रोण को मार सकनेवाली तेजस्वी सन्तान पैदा हो जाय। जाज इस पर राज़ी होगये। यज्ञ कम्पिल में हुआ। फलतः उस कुण्ड से जो 'द्रौपदी-कुण्ड' नाम से प्रसिद्ध है, धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी का जन्म हुआ। जाजपुरा से आगे 'जिंजवटा' ग्राम है। इसका शुद्ध नाम 'यज्ञवाट्' था। यहाँ राजा द्रुपद का कोट था। 'मत्स्यवेध' यहीं हुआ था। जिस कुण्ड में मत्स्यवेध हुआ था उसे 'वेधूकुंडा' कहते हैं। आज वह कोट एक ऊँचे खेरे में बदल गया, कुंड भी मिट्टी के नीचे दब गया। दो गज़ गहरा खोदने पर आज भी कुण्ड के पत्थर दिखाई देते हैं। यहाँ सैकड़ों वर्ष तक अष्टधातु के कड़ाह का एक भाग पड़ा रहा था, जिसके एक कने का भार बीस मन के लगभग रहा होगा। जनता का विश्वास है कि यह वही कड़ाह था जिसके तेल में मत्स्य-वेध के समय मत्स्य का प्रतिबिंब देखा जाता था। खुदाई होने पर जिंजवटा में चाँदी व ताँबे के कुछ सिक्के व ताम्र-पत्र निकले थे। सिक्कों पर 'राम-पंचायतन' की मूर्ति थी। अब ये समस्त वस्तुएँ पुरातत्त्व-विभाग के अधिकार में होगई हैं। द्रुपद के कोट का सिलसिला पटियाली से कम्पिल तक बराबर चला गया है। इस बीच के ग्रामों के नाम महा-भारत-काल के नामों से मिलाने पर किसी विद्वान् को इसी प्रदेश के पञ्चाल होने में सन्देह नहीं रह सकता। उदा-हरणार्थ भटमयी, रौकरी (रवकरी), भैंसरी (भयस्मरी), कुमुदीनगर (कौमुदीनगर) पर्याप्त होंगे। भैंसरी से कुछ दूर पश्चिम एक खेरे पर बहुत पुरानी देवी की मठिया बनी हुई है। जब गंगा जी की धार यहाँ वृष्टिकाल में आती है और खेरे को काटने का प्रयत्न करती है तब धार का अधिकांश ख़ूनी रंग का हो जाता है। धार में यह लाल पट्टी ४-५ फ़र्लांग तक श्वेत जल से पृथक् दिखाई देती है। लोग कहते हैं कि गंगा जी और देवी जी में युद्ध हो रहा है। सम्भव है, खेरे में गैरिक मिट्टी का कोई पर्त्त हो। ये सब ग्राम उस सड़क पर हैं जो कम्पिल से पटियाली होती हुई दिल्ली तक चली गई है। कम्पिल, काम्पिल्य, काम्पील, कंपिला, ये सब कम्पिल के ही नाम हैं। कम्पिल

के साथ हज़ारों वर्ष के पुरातन इतिहास का संबंध है। हिन्दुओं के प्राचीन साहित्य में स्थान स्थान पर इसका उल्लेख है। जैनग्रन्थों में पांडव-पुराण, आदि-पुराण, ब्रह्मदत्त-पुराण और जैन-पद्मपुराण में कम्पिल व पञ्चाल का वर्णन मिलता है। पुराणों से भी पूर्व के यजुर्वेद[१] में कम्पील का नाम मिलता है। यद्यपि स्वामी दयानन्द जी ने वहाँ काम्पील शब्द के अर्थ और लिये हैं क्योंकि वे वेदों में भौगोलिक संज्ञायें नहीं मानते थे, पर उवट[२] और महीधर[३] ने इस शब्द का अर्थ कम्पिलनगरी ही लिया है।

पुराणों में देवी का नाम 'काम्पिलवासिनी' बतलाया है। वहाँ इसकी व्याख्या में यह आख्यायिका दी है कि एक बार रुद्र-द्वारा सन्ताड़ित उनकी दोनों स्त्रियों—गंगा व गौरी—में ब्रह्मा ने कलह करवादी। शंकर जी के प्रयत्न करने पर भी जब दोनों का झगड़ा शान्त न हुआ तब उन्होंने शाप दिया कि तुम दोनों जाकर भूलोक में रहो। पार्वती से यह भी कहा कि तुम्हें 'अम्बेऽम्बिके' इस मंत्र से यज्ञ की पूर्णाहुति भक्षण करनी होगी। देवी ने शाप को अंगीकार करते हुए कहा[४] कि अच्छा मैं 'काम्पीलवासिनी' नाम से कम्पिलनगरी में निवास करूँगी और उपर्युक्त मंत्र के विनियोग-द्वारा यज्ञ की पूर्णाहुति का भक्षण किया करूँगी।

आयुर्वेद की प्राचीनतम संहिता चरक में भी कम्पिल का प्रसंग आया है। ज्येष्ठ मास का अन्तिम भाग था, भगवान् आत्रेय पुनर्वसु धन-जन-पूर्ण पञ्चाल देश के सुरम्य वनों में अपनी शिष्य-मंडली के साथ विचर रहे थे।



[कपिल-कुटी—कंपिल।]

अचानक भगवान् ने आकाश की ओर देखकर अपने शिष्य अग्निवेश से कहा—देखो, नक्षत्र, वायु, आकाश, जल आदि विक्रिय हो रहे हैं। किसी जनपदध्वंसी रोग का निदान उपस्थित है। ओषधियों का शीघ्र संग्रह कर लो, जिससे उनके रस, वीर्य, प्रभाव आदि विकृत न हो जायँ और हम महामारीपीड़ितों की यथेच्छ सेवा कर सकें[१]। इन प्रमाणों से कम्पिल की पुरातनता का अनुमान किया जा सकता है। जैनियों ने इसे सृष्टि के आदिम पंच नगरों में माना है। एक जैनमुनि का वाक्य है कि "कम्पिल की गहराई काल के पैमाने से नहीं नप सकती"।

कम्पिल और पञ्चाल के नाम पहले कुछ रहे हों, पर इनके उपर्युक्त नाम, जहाँ तक पुराण साक्ष्य देते हैं, राजा बाह्याश्व के समय से पड़े हैं। बाह्याश्व द्रुपद से सात पीढ़ी पूर्व इसी जनपद का राजा था। भागवत में इसका नाम भर्म्याश्व दिया हुआ है। इसके पाँच पुत्र थे। इनमें सबसे बड़े का नाम मुद्गल था।

इसी की सन्तान मौद्गल्य ब्राह्मण कहलाये, जो कम्पिल से चार मील दक्षिण 'खिलसटी' में अब तक रहते हैं। तीसरे पुत्र का नाम काम्पिल्य था। इसी के नाम पर इस नगरी

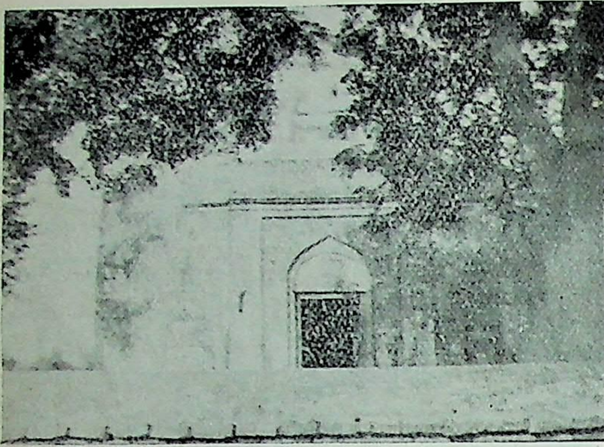
१—अम्बेऽम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।
—यजुर्वेदे अ० २३। मं० १८

२—काम्पीलवासिनीम् काम्पीलनगरे हि सुभगाः सुरूपा विदग्धाः स्त्रियो भवन्ति।
—उवटः

३—...किंभूतां सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्, काम्पील-नगरे वसतीति काम्पीलवासिनी, ताम्। तत्र हि सुरूपा विदग्धाः कामिन्यो भवन्तीति।
—महीधरः

४—अहमत्र वसिष्यामि नाम्ना काम्पीलवासिनी।
अम्बे ऽम्बिकेति मंत्रेण भोक्ष्ये पूर्णाहुतिं मखे॥

१—जनपदमण्डले पाञ्चालक्षेत्रे द्विजातिभिरध्युषिते काम्पिल्यराजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगण-परिवृतः पश्चिमे घर्ममासे गंगातीरे वनविचारमनु-विचरन् शिष्यमग्निवेशमब्रवीत्।
—चरक वि०। अ० ३। सू० ३



[श्री रामेश्वरनाथ महादेव—कंपिल ।]

का नाम काम्पिल्य पड़ा। वाह्याश्व ने एक बार अपने पुत्रों की दक्षता व वीरता की प्रशंसा करते हुए कहा कि ये मेरे पाँच पुत्र इन विषयों (देशों) की रक्षा करने में समर्थ हैं। इस प्रकार पंडितों ने उनका नाम पञ्चाल रख दिया। उनके अधिकृत जनपद को पञ्चाल का नाम दिया गया[१]।

कम्पिल अब प्रायः खंडहर है। जिसे द्रुपद का कोट कहते हैं वह एक ऊँचा खेरा है, केवल एक गुंबद शेष रह गया है। कोट पर तम्बाकू बहुत होती है। वह तम्बाकू 'कोट की तम्बाकू' के नाम से प्रख्यात है तथा २०) मन तक बिकती है। यही कारण है कि कोट पर के खेत पचीस रुपये बीघे से कम दर पर कभी नहीं उठते। इन खेतों में तम्बाकू की उपज का औसत अन्यत्र की अपेक्षा चौगुने से भी अधिक है। जिसके पास दस-पाँच बीघे खेत हैं वह राजा बना बैठा है। कम्पिल में ही एक शुक्र जी रहते हैं, जिनके अधिकार में कोट का अधिक भाग है। ये स्वयं बहुत बड़े काश्तकार हैं। इनके पास ऊँचे-से-ऊँचे बैलों की चालीस जोड़ियाँ तक रहती हैं और दो-दो सौ बीघे तम्बाकू कराते हैं। कोट के नीचे गंगा जी की पुरानी धार है, जिसे आजकल 'बूढ़ी गंगा' कहते हैं।

१ — वाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमाः।
पञ्चैते रक्षणायालं विषयाणामिति श्रुतम्।
पञ्चानां विद्धि पञ्चालान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान्।
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुतः ॥
हरिवंशपुराण पर्व १। अ० ३२। श्लोक ६४
श्रीमद्भागवत स्कंद ९। अ० २१। श्लोक ३२ ...

नगर के समीप ही उत्तर ओर गंगातट पर रामेश्वर का मंदिर है। किसी समय इसके चारों ओर पक्की चहारदीवारी थी। पूर्व की ओर के दो गुंबद अब भी बने हुए हैं। मन्दिर में अनेक गुफायें हैं। एक बड़ी पक्की सुरंग भी है। कहते हैं, यह सुरंग काशी तक चली गई है। मन्दिर का ऊपरी भाग बिजली के गिरने से कुछ तिर्छा होगया है। इसकी भीतरी डाट बहुत सुन्दर है।

पुराणों का मत है कि इसकी मूर्ति रामचन्द्र जी अशोक-वाटिका से लाये थे। लवणासुर को मारकर अयोध्या को लौटते हुए शत्रुघ्न जी ने इसकी प्रतिष्ठा की थी[१]। इस स्थान को 'सिद्धपीठ' भी कहते हैं। कई प्रख्यात सन्तों ने यहाँ तपस्या करके सिद्धि-समाधि का लाभ किया है। मन्दिर के भीतर काग़ज़ों पर अनेक श्लोक लिखकर भक्तों ने समय-समय पर लगा दिये हैं। पूर्व की दीवार में लगे एक काग़ज़ पर कविवर तोषनिधि का, उन्हीं के हाथ से लिखा, निम्न दोहा दिखाई दिया—

"तनिक न लाये बेर सुनि द्रुपद-सुता की टेर।
कैसी कान रुई दई, दई हमारी बेर ॥"

इस दोहे से कवि जी की तत्कालीन खोज का परिचय मिलता है। वृद्धों ने बतलाया कि कवि जी कायस्थों से अपमानित होकर उन दिनों रामेश्वर जी के दरबार में अनशन-पूर्वक धरना दे रहे थे।

रामेश्वर से दक्षिण गंगातट पर, लगभग उसी उँचाई पर, कपिल-कुटी है। यहाँ कपिल मुनि ने तपस्या की थी[२]। इसके नीचे ही प्रसिद्ध 'द्रौपदी-कुण्ड' है। यह पन्द्रह फ़ुट लम्बा, इतना ही चौड़ा और इतना ही गहरा होगा। इसका मुख्य भाग पत्थर का बना है, जो आज-कल जलमग्न है। इसी कुण्ड से धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी का जन्म होना प्रसिद्ध है। कुछ दिन हुए इसमें चाँदी के दो सिक्के मिले थे। इन पर शीलादित्य की छाप थी। एक पोस्टल इन्स्पेक्टर साहब अपने बच्चे के गले में पहनाने के लिए

१—काम्पिल्ये त्रिधनुर्भूमिः सिद्धपीठस्तदन्तरे।
शत्रुघ्नारोपितं लिङ्गं रामेश्वर इति स्मृतम्।

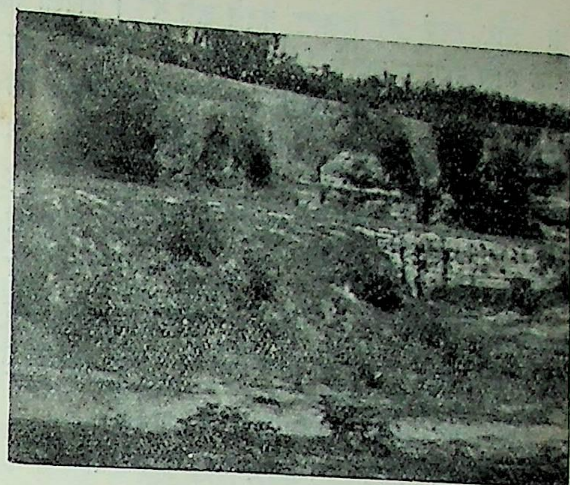
२—तन्मुख्यः कपिलाश्रमः।
कपिलोऽत्र तपस्तप्त्वा गङ्गासागरमभ्यगात्।
...यतेऽद्यापि काम्पिल्ये कपिला कुटी ॥

इन्हें माँग ले गये। कपिल-कुटी से दक्षिण में कालेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह अष्टभुज है। इसमें शिव जी की मूर्त्ति जो काले रङ्ग की है, गहराई में रक्खी हुई है। तोरणों और द्वार पर बौद्धकालीन तक्षणकला के नमूने हैं। पुरानी खंडित मूर्त्तियों में मत्स्य भगवान्, हयग्रीव, बुद्ध व चतुर्भुज ज़ी की कलापूर्ण मूर्त्तियाँ हैं। पुराणों के मतानुसार इसकी स्थापना द्रौपदी ने की थी।

कम्पिल जैनियों का भी प्रख्यात तीर्थ है। यहाँ वर्ष में दो बार जैनियों के दो बड़े बड़े मेले होते हैं, जो चार-चार दिन तक रहते हैं। ये मेले चैत्र अमावस्या और क्वारसुदी २ से आरम्भ होते हैं। इनमें देश-विदेश के हज़ारों जैन एकत्र होते हैं। ऐसे मेलों को ये लोग 'धर्मोत्सव' कहते हैं। तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ जी के चार कल्याण (गर्भ, जन्म, दीक्षा, कैवल्यज्ञान) यहाँ हुए थे। इसी कारण जैन इसे अपना तीर्थस्थान मानते हैं। किसी समय कम्पिल में जैनियों के साढ़े उन्नीस सौ घर थे, आज एक भी नहीं है। यहाँ दो बड़े बड़े जैन-मन्दिर हैं, एक श्वेताम्बरों का, दूसरा दिगम्बरों का। श्वेताम्बरों का मन्दिर अपेक्षाकृत नया है। इसमें तीन मूर्त्तियाँ श्वेत हैं, इनकी बग़ल में एक काली मूर्त्ति भी रक्खी है। मन्दिर के निर्माण में पर्याप्त संगमरमर लगाया गया है। मूर्त्तियों के सामने पीठ पर स्फटिक के चार जोड़ी चरण बने हुए हैं, जो विमलनाथ जी के चारों कल्याणों के प्रतीक कहे जाते हैं। तीर्थ में तीर्थंकरों के जितने अधिक कल्याण होते हैं उसे उतना ही महत्त्व दिया जाता है। कल्याणों की परिधि में मन्दिर की निर्माण-तिथि संवत् १६०४ विक्रमीय माघ शुक्ल २ बुधवार दी है।

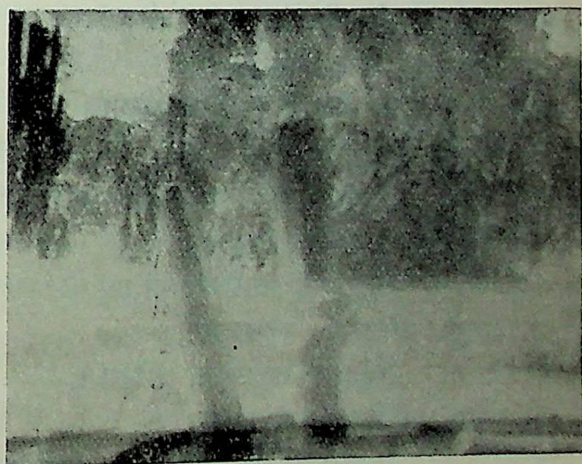
दूसरा दिगंबरोंवाला मन्दिर बहुत प्राचीन है। इसमें दो चौक हैं। इसमें पार्श्वनाथ जी व विमलनाथ जी की मूर्त्तियाँ हैं। चार कल्याण इसमें भी हैं। निर्माण-तिथि ५४६ विक्रमी खुदी है। यदि यह संवत् ठीक हो तो यह मन्दिर १४५० वर्ष का पुराना है।

गंगा के उत्तर-प्रदेश को उत्तर-पञ्चाल कहते थे। यह देश द्रोणाचार्य ने अपने भाग में लिया था। इसकी राजधानी कम्पिल से ३५ मील उत्तर 'अहिच्छत्र' थी। इसे आज-कल 'अहिच्छता' कहते हैं। यहाँ बौद्धों का एक विहार था। इस विहार का वर्णन सुएन्च्वांग ने अपनी



[द्रुपद के कोट का भग्नावशिष्ट पार्श्व जिंजवटा—कंपिल।]

यात्रा-पुस्तक में किया है। विहार के खंडहर व गुफायें अभी मौजूद हैं। एक ग्राम मुंडौन है, जो प्राचीन काल में 'मुंडवन' था। पास ही एक ग्राम 'सोन सूवा' है, जो स्थूणश्रुवा यक्ष की नगरी थी। इसी यक्ष ने राजकन्या शिखंडिनी को पुंस्त्व प्रदान किया था। यहाँ से कुछ पूर्व पलावन गाँव है। यह प्रसिद्ध उत्पलावन-तीर्थ था। यहाँ विश्वामित्र जी ने तप करके इन्द्र के साथ सोमपान किया



[भीमसेन की गदा।]

(यह कंपिल व फ़र्रुख़ाबाद के बीच में एक चबूतरे पर है।)

था और स्वयं को ब्राह्मण कहने लगे थे[१]। कंपिला से साठ मील पश्चिम नदरई के पुल के समीप एक घंटा रक्खा है, जिसका भार अस्सी मन के लगभग होगा। इसे भीमसेन का घंटा कहते हैं। इसी प्रकार मदार दरवाज़े के पास अष्टधातु-निर्मित गदा के दो टुकड़े एक चबूतरे में गड़े हुए हैं। इनको भीमसेन की गदा कहते हैं और पूजा की जाती है। सैकड़ों वर्ष से पड़े रहने पर भी इन पर ज़ंग का प्रभाव नहीं हुआ। जिसे आज-कल शमशाबाद कहते हैं वह प्रसिद्ध 'खोर नगरी' थी। जयचंद के लड़के कन्नौज से भाग कर यहीं रहे थे। यहाँ से एक लड़का रामपुर चला गया था, दूसरा खिमसेपुर और तीसरा जोधपुर। ये तीनों स्थान अब भी राठौरों की प्रतिष्ठित गद्दियाँ हैं। कम्पिल में ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि तोषनिधि जी के पौत्र जी से भी भेंट हुई। आपने कवि जी के कई हस्तलिखित ग्रंथ दिखलाये जो अब तक अप्रकाशित हैं। ब्रज-साहित्य-प्रेमियों को इधर ध्यान देना चाहिए।

रुदायन के पास ही बिलसड़ का ऐतिहासिक गढ़ है, जो आल्हखंड का 'बिरियागढ़' था। हरोसिंह और वीरसिंह के वंशज अब भी यहाँ रहते हैं, जो अपना वंश-वृक्ष दिखलाते हैं। पुरातत्त्व-विभाग ने यहाँ कुछ खुदाई कराई है। इसका वर्णन किसी स्वतंत्र लेख में किया जायगा।

१—पाञ्चालेषु च कौरव्य, कथयन्त्युत्पलावनम्।
विश्वामित्रोऽयजद्यत्र पुत्रेण सह धीमता॥
म० भा० व० ३७

शिक्षा

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

शिशु ने दुनिया में आकर,
रो-रोकर हँसना सीखा।
लघु होकर बढ़ना सीखा,
गिर-गिरकर चलना सीखा।
वीरों ने इस वसुधा में
मर-मरकर जीना सीखा।
प्रेमी ने आँसू पी पी
अधरामृत पीना सीखा।
कितने ही चक्कर खाकर,
चक्रों ने चढ़ना सीखा।
भूखे प्यासे रह-रहकर,
विहगों ने उड़ना सीखा।
उर छेद-छेद कर अपना,
मुरली ने गाना सीखा।
मिट-मिटकर वारिधरों ने,
पानी बरसाना सीखा।
सिर पटक-पटक पत्थर पर,
झरनों ने झरना सीखा।
गुरु गिरिवर से गिर-गिरकर,
नदियों ने बहना सीखा।
पहले पतङ्ग ने आकर,
निज देह जलाना सीखा।
जल-जलकर दीप-शिखा में,
फिर प्रेम निभाना सीखा।
घट-बढ़ कर शशि ने जग को,
पीयूष पिलाना सीखा।
नीचे गिर उदय-शिखर पर,
सविता ने आना सीखा।
हो क़ैद कञ्ज-कलिका में
अलि ने मँडराना सीखा।
हो छन्द-बद्ध कविता ने,
प्रिय रस सरसाना सीखा॥

मा

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए०, एल-एल० बी०

(१)



से कठिन समय में मा के दिल पर जो कुछ बीत रही थी उसे दूसरा कौन जान सकता है ? कितनी ही वार जगत की बात लगी, पर पण्डित जी की 'ख्याति' के कारण टूट गई। एक तो सिरे से ही दूसरी शादी, फिर लड़के का पिता शराबी और जुवाड़ी! कौन ऐसा क़साई बाप होगा जो अपनी लड़की को ऐसे शरीफ़ आदमी के घर ब्याहना पसन्द करेगा ? आम के पेड़ में आम ही लगते हैं और कड़वे नीम में निबौलियाँ ही। कौन कह सकता है, 'योग्य' पिता का पुत्र भी 'योग्य' न होगा ? दुर्व्यसनों में फँसने के अवसर तो बहुत मिल जाते हैं, हाँ, बच निकलने के कम होते हैं। यही कारण था कि जब जब नाई और पुरोहित के प्रयत्नों से जगत की सगाई हुई, पण्डित जी की 'शोहरत' के कारण टूट गई, और अब जब फिर सगाई हुई तब शादी का ही कोई डौल न था।

पण्डित जी को इस बात की चिन्ता हो, यह बात न थी। इस सिलसिले में उन्होंने कभी नहीं सोचा था। उन्हें तो आठों पहर बोतल और लाल परी से काम था। कोई मरे चाहे जिये, लड़के की शादी हो या न हो, घर में सम्पन्नता हो अथवा विपन्नता, उनके लिए सब एक बराबर था। पीते थे और सब कुछ भूल कर पीते थे। हाँ, जब कभी तबीयत होती तब नशे में झूमकर अलाप उठते—

शामा मेरे अवगुण चित न धरो।

और निश्चिन्त हो जाते, जैसे उन्हें विश्वास हो जाता कि सर्वशक्तिमान् ने उनके सब गुनाह माफ़ कर दिये हों।

यह सब तो था, पर यदि गाड़ी के दोनों पहिये बिगड़ जायँ तो वह चले ही कैसे ? पिता अपने कर्तव्य को भूला हुआ था, मा उसे यथाशक्ति पूरा किये जा रही थी और यही कारण था कि किसी तरह सब काम चल रहा था। अन्दर से हालत चाहे कितनी ही बुरी हो गई हो, पर बाहर से साख बनी हुई थी।

जगत अपने मा-बाप का इकलौता लड़का था। नूर-महल के एक हाई-स्कूल में साधारण टीचर था। पण्डित जी ने नौकरी के दिनों में कुछ जमा नहीं किया था, प्रावीडेंट-फ़ंड बाद को शराब की नज़र हो गया और जो एक-दो गहने थे वे धीरे धीरे जगत की पत्नी की बीमारी में चौधराइन के यहाँ गिरवी रक्खे जाने लगे। और इधर गहने ख़त्म हुए, उधर उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। अब इस विवाह के लिए क्या किया जाय, कहाँ से गहने लाये जायँ, इसी बात की चिन्ता मा को खाये जा रही थी।

इस अन्धकार में जगत की मा को केवल एक ओर से प्रकाश की किरण दिखाई देती थी। उसके मैके में ऐसी दरिद्रता न थी; उसके पिता धनी-मानी और सम्पन्न व्यक्ति थे। जगत के पहले विवाह पर उन्होंने हाथ का एक आभूषण और मूल्यवान् वस्त्र दिये थे। कोई पाँच-छः सौ की चीज़ रही होगी। उसे आशा थी कि इस बार भी उसके पिता कुछ न कुछ अवश्य देंगे। पाँच-छः सौ न सही, तीन-चार सौ ही सही। मगर इन तीन-चार सौ से क्या बनेगा ? गहने-कपड़े, लाग-विहार, मिठाई-शीरीनी, शादी में क्या क्या न चाहिए ? गुड्डे-गुड़िया के विवाह में भी सौ व्यवस्थायें करनी पड़ती हैं और फिर यह तो स्त्री-पुरुष का विवाह था। सोचती—यदि इस बार भी विवाह न हो सका तो क्या होगा ? सब आशाओं पर पानी फिर जायगा। उस समय उसे पण्डित जी के व्यवहार पर दुख होता था किन्तु पुराने विचारों की हिन्दू नारी थी, शिकायत का एक शब्द भी ओंठों पर लाना पाप समझती थी, कष्ट सहती थी, दुख झेलती थी, पर ज़बान नहीं हिलाती थी।

(२)

रात का तीसरा पहर था, सारी दुनिया मीठी नींद सो रही थी, किन्तु जगत की मा को नींद कहाँ ? वह तो ऐसी भाग गई थी जैसे विपत्ति के समय सौभाग्य! पिंजरे का पट बन्द था, पर नींद के पंछी उड़ चुके थे।

विवाह होने में केवल बीस दिन रह गये थे और गहनों का अभी तक कोई भी प्रबन्ध नहीं हुआ था। रुपये होते तो चौधराइन से ही गहने छुड़ाती और रुपये—रुपये कहाँ

से आते ? कोई युक्ति सूझ नहीं रही थी। इसी सोच में रात बीत गई। अँधेरा कुछ कुछ छट गया। मुहल्ले के कुएँ में किसी ने गागर डुबोई। प्रातःकाल पानी भरनेवालों का आगमन आरम्भ हो गया था। सामने के घर से चक्की चलने के साथ किसी के गाने की आवाज़ आने लगी। शायद विधवा कंसो प्रातःकाल उठकर अपने काम में लग गई थी। दूर कहीं प्रातः का मुअज़्ज़न मुर्ग़ अपनी पूरी आवाज़ से बोल उठा। मा उठी, और फिर, जैसा उसका नित्य का क्रम हो गया था, अन्दर कमरे में गई, ट्रंक खोलकर उसने उसमें से छोटा-सा डिब्बा निकाला और एक एक चीज़ बाहर निकाल कर देखने लगी। था ही क्या ? चाँदी के लच्छे और ढोल था, सोने की दो अँगूठियाँ थीं, पुराने फ़ैशन की एक माला और छः माशे का एक सौकनमोहरा[1] था। शादी दूसरी थी, इसलिए एक अँगूठी तुड़वाकर सौकनमोहरा बनवा लिया था। भारी गहने तो सब चौधराइन के यहाँ गिरवी रक्खे थे। एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उसने इन सबको डिब्बे में बन्द किया, डिब्बे को ट्रंक में रक्खा और ताला लगा दिया। फिर वहीं सिर को घुटनों पर रखकर सोचने लगी। कई दिनों से वह प्रतिदिन ऐसा ही करती थी। सुबह उठकर गहनों को निकालकर गिनती और फिर वहीं बैठकर सोचती, किन्तु कोई उपाय समझ में न आता। पर आज अचानक एक बात सूझ गई और इसके साथ ही उसके शरीर में स्फूर्ति की एक लहर दौड़ गई। वह उठी, घर में झाड़ू-बुहारी देकर पूजा करने बैठी और सच्चे दिल से उसने भगवान् से प्रार्थना की कि इस बार उसे असफलता का मुँह न देखना पड़े और फिर वह चौधराइन के घर की ओर चल दी।

चौधराइन का घर समीप ही था। जगत की मा तेज़ी से जा रही थी, उसने जल्दी जल्दी देहली पार की, किन्तु निचले आँगन में जाकर रुक गई। ऊपर जाय कि न जाय ? उसकी बाईं आँख फड़कने लगी। मन में सन्देह-सा उत्पन्न हो उठा। उसके कान में जैसे किसी ने कहा—आज काम न बनेगा। उसने चाहा, मुड़ जाय। पर मुड़कर जाय कहाँ ? विवश हो आगे बढ़ी। धीरे धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचा। मालूम हुआ, चौधराइन अभी सो रही हैं। वह दहलीज़ पर ही एक ओर होकर बैठ गई।

कोई एक घंटे के बाद जब चौधराइन की नींद टूटी तब एक हलकी सी मुसकराहट के बाद उसने जगत की मा से उसके आने का कारण पूछा।

जगत की मा चुप-सी हो गई। यहाँ कहने के लिए घर से जो कुछ सोचकर आई थी वह सब भूल गया। कह सकी तो मुश्किल से इतना ही—"जगत के विवाह में केवल बीस दिन रह गये हैं।"

चौधराइन फिर मुसकराई—"बधाई हो। मैं तो उधर आ ही नहीं सकी।" फिर लम्बी साँस खींचकर बोली—"यह कमर का निगोड़ा दर्द कुछ ऐसा चिमटा है कि कहीं जाने ही नहीं देता। मैं तो स्वयं बधाई देने के लिए जाना चाहती थी।"

"आपको ही बधाई है"—जगत की मा ने धीमे स्वर से कहा।

चौधराइन ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"परमात्मा करे, फिर घर बस जाय। बेचारा उदास उदास रहता है। मैं तो जब देखती हूँ, जी मसोस कर रह जाती हूँ। इस बार कहाँ बात लगी है ?"

जगत की मा ने उत्साहित होकर कहा—"नकोदर में रिश्ता हुआ है, पर विवाह हो सकेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। उनकी आदत तो आप जानती ही हैं—और पैसे के बिना कुछ होता नहीं।"

अब चौधराइन ने कुछ शंकित नेत्रों से उसकी ओर देखा।

जगत की मा कहती गई—"मैं आपको तीन सौ रुपया दे दूँगी। आप मुझे कृपा कर मेरे सब गहने दे दें। इस बात का मैं वचन देती हूँ कि गौने के बाद सब गहने आपके पास फिर रख जाऊँगी।"

चौधराइन ने बेरुख़ी से कहा—"मैं सोचकर उत्तर दे सकूँगी। शाम को खीराम आ जायगा तब उससे सलाह करके तुम्हें बताऊँगी। आपकी ओर पिछले तीन महीने का सूद भी तो है।"

"वह भी मैं तीन सौ के साथ ही दे दूँगी।" जगत की

१—सौकनमोहरा—यह सोने का एक पत्र होता है, जिस पर पहली पत्नी का नाम खुदा होता है। दूसरी शादी के समय यह नई पत्नी के गले में पहनाया जाता है।

मा ने कहा। लेकिन चौधराइन ने यह नहीं सुना। उस समय तक वह उठकर अन्दर जा चुकी थी। जगत की मा चुपचाप सीढ़ियाँ उतर आई और फिर आकर धम से फ़र्श पर बैठ गई। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे मुसीबतों का अँधेरा पहले से कई गुना गहरा हो गया हो। उसने दुपट्टे से मुँह छिपा लिया और रोने लगी। उस समय पण्डित जी ने बैठक से तान लगाई—

"शामा मेरे अवगुण चित न धरो"

(३)

शाम को चौधराइन का जवाब आगया। वही जिसकी सम्भावना थी। मा ने शान्ति से उसे सुना और फिर अपने काम में लग गई। उसकी आँखें एक बार भर आईं, किन्तु उसने उन्हें पोंछ डाला। यदि आँसू बहाने से ही विवाह हो जाता तो आज तक जितने आँसू उसने बहाये थे उनसे मुहल्ले भर के लड़कों की शादियाँ हो जातीं।

जगत की मा एक असाधारण प्रकृति की स्त्री थी। वह न होती तो घर कब का चौपट हो गया होता और पण्डित जी या तो यमुना के किनारे धूनी रमा लेते या जेल की रोटियाँ तोड़ते। कई बार अवसर पड़ने पर जगत की मा उनके आड़े आई थी, कई बार उसने उनके लिए रुपये का प्रबंध किया था। साहस और हिम्मत की वह मूर्ति थी। उसने जगत को एक पत्र लिखवाया कि छुट्टी लेकर आ जाय और स्वयं अपने मैके को रवाना हो गई।

होशयारपुर में उसका मैका था। उसके पिता के पास धन का अभाव न था। वे चाहते तो एक छोड़ बीस शादियाँ करवा देते। किन्तु उन्होंने पुरोहिताई से रुपया कमाया था, पैसा पैसा करके, पेट काट काट कर, धन एकत्र किया था। वे कंजूस थे और उन्हें पैसे की जुदाई बहुत अखरती थी। फिर सबसे बढ़कर यह बात थी कि उनकी पत्नी दूसरी थी। सौतेली मा की उपस्थिति में जगत की मा को कुछ अधिक मिलने की सम्भावना न थी, फिर भी वह सब तरफ़ से निराश होकर वहीं जा रही थी। किनारा कितना भी चिकना क्यों न हो, उस पर सहारा देने की कोई वस्तु हो या न हो, किन्तु और कोई आश्रय न पाकर डूबता हुआ उसे ही पकड़ने के लिए हाथ-पाँव मारता है। वहाँ पहुँची तब उसकी सौतेली मा ने अड़चन डाल दी। बहुत कुछ झगड़-रगड़ के बाद जगत की मा चार सौ रुपया पा सकी। वहाँ से चली तब भविष्य की चिन्ताओं ने उसे घेर लिया। जैसे क्षुधातुर व्यक्ति रोटी का एक टुकड़ा पाने पर भूख से और भी व्याकुल हो उठता है, उसी तरह जगत की मा इन चार सौ रुपयों को पाकर और भी चिन्तित हो गई थी। अब उसका मस्तिष्क किसी न किसी तरह इन्हीं से काम निपटाने की तरकीबें सोच रहा था। चौधराइन के व्यवहार ने उसके हृदय में अलग आग सुलगा दी थी, उसके यहाँ अपना एक भी आभूषण नहीं रखना चाहती थी।

घर पहुँचते ही उसने एक सौ रुपया तो मिठाई इत्यादि के लिए रख लिया और बाक़ी तीन सौ लेकर बीबी अमरकौर के पास पहुँची ताकि उससे कुछ और रुपया लेकर चौधराइन से गहने ले ले और उन्हें अमरकौर के पास रख दे। इस बात में तो अमरकौर को कोई आपत्ति न हो सकती थी, लेकिन जगत की मा चाहती थी कि रुपये तो ले ले, पर गहने गौने के बाद ले, और इस बात पर अमरकौर का राज़ी होना ज़रा मुश्किल था। कारोबार के मामले में वह भी कम सख़्त न थी, पर जगत की मा घर से निश्चय करके निकली थी कि जैसे भी होगा उसे मना ही लेगी। अमरकौर के दिल में भी अभी दया का सर्वथा लोप न हुआ था, इसलिए जगत की मा के बहुत अनुनय-विनय करने पर वह मान गई। उसने इस शर्त पर रुपया दे दिया कि गौने के बाद उसे गहने मिल जायँगे। अमरकौर से रुपया लेकर जगत की मा ने चौधराइन से सब गहने ले लिये और ख़ुशी ख़ुशी दूसरी तैयारियाँ करने लगी। सन्ध्या को जब जगत नूरमहल से आया तब उसने देखा मा का चेहरा खिला हुआ है।

(४)

निश्चित तारीख़ को मुहल्ले की स्त्रियों के सुहावने गीतों में बाजे-गाजे के साथ बारात रवाना हुई। जगत की मा ने शेष सब प्रबन्ध कैसे किया, यह न पूछिए। अपने पुत्र का घर बसाने के लिए वह घर घर फिरी। अपने स्वाभिमान को भी उसने कुछ दिनों के लिए भुला दिया और किसी से बीस, किसी से तीस लेकर काम चलता किया। उसे आशा थी कि दहेज़ में कुछ न कुछ ज़ेवर अवश्य मिलेगा और सौ डेढ़ सौ न सही, इक्यावन रुपये तो टीके में अवश्य ही दिये जायँगे। इससे छोटी-मोटी

रक़में उतर जायँगी। अमरकौर से जिन गहनों के बदले रुपया लाई है वे उसे पहुँचा देगी। इस तरह सुगमता से सब काम हो जायगा।

तीसरे दिन बारात आगई। ख़ुशी ख़ुशी जगत की मा बहू को लेने गई। पण्डित जी के सम्बन्ध में पूछा तब मालूम हुआ कि शराबख़ाने में औंधे मुँह पड़े हुए हैं।

विवाह के गीत गाते गाते मुहल्ले की स्त्रियाँ बहू को घर लाईं। सब रस्में भली भाँति अदा की गईं। दहेज़ का सामान नीचे बैठक में रख दिया गया। बहू का सुन्दर मुखड़ा देखकर सबके दिल खिल गये। कोई कहती—जगत पहले जन्म में मोतियों का दान करके आया है, कोई कहती चाँद का टुकड़ा ब्याह लाया है। छोटी छोटी लड़कियाँ बहू का मुँह देखने के लिए टूटी पड़ती थीं। घर में ख़ूब चहल-पहल थी, किन्तु जगत की मा इन सबसे अलग एक कोने में एक व्यक्ति से धीरे धीरे कुछ पूछ रही थी।

"तो क्या आपको कुछ भी मालूम नहीं ?"

"कुछ भी नहीं, ज़रा भी नहीं, मुझे किसी ने पता भी नहीं चलने दिया।"

"आप अगुआ थे।"

"वहाँ मुझे कौन पूछता था ? अगुआ तो वहाँ मास्टर जी थे। मैं तो जैसे उनके हाथ की पुतली था।"

"तो क्या आपको विदा की भेट का भी पता नहीं ! मिली भी या नहीं मिली ?"

"मैं कहता हूँ, मुझे बिलकुल पता नहीं। चाननराम वहाँ था ही कौन। सब कुछ तो मास्टर जी करते थे। मुझ तक तो किसी बात की गन्ध तक भी नहीं आई।"

मा निराशा से सिर हिलाकर फिर काम में लग गई। जिस आशा के आधार पर आज तक सब कुछ करती आई थी वह आधार ही छिन गया। उल्लास की जगह फिर विषाद ने ले ली। अन्तर में दुख का पारावार छिपाये वह सब काम करने लगी। पण्डित जी की मद्यपता के कारण उसने चाचा चाननराम के हाथ में ही विवाह का सब काम सौंप दिया था। वे जगत के सगे चचा तो न थे, पर जगत की मा को उन पर पूरा भरोसा था। पर वहाँ उनको किसी ने पूछा भी नहीं। वहाँ जगत के एक मित्र जो उसके साथ ही स्कूल में पढ़ाते थे, सब बातों के कर्ता-धर्ता थे। आपस में गुप-चुप सब बातें होतीं और चाचा चाननराम के बिना पूछे ही सब कुछ तय हो जाता। मास्टर जी लड़कीवालों से इस तरह घुल-मिल गये थे, जैसे उन्हीं में से एक हों। इधर लड़केवालों की ओर से भी वही काम करते। दहेज़ का दिखावा ही उन्होंने बन्द करा दिया। हाँ, इधर से सब गहने भिजवा दिये। पण्डित जी शादी के प्रबन्ध में चाहे कुछ भाग न ले सकते हों, पर उसकी ख़ुशी में वे किसी से पीछे नहीं रहना चाहते थे, इसलिए इन दिनों उन्हें अपने तन-बदन का भी होश न था। सुबह पीते थे, दोपहर पीते थे, शाम को पीते थे। उधर से क्या मिला, बिदा में कितने रुपये रक्खे गये, इस बात का किसी को भी पता न लग सका और चाचा चाननराम अगुआ होने का चाव दिल में लिये हुए ही वापस आगये।

जगत की मा प्रकट रूप में सब काम पूर्ववत् कर रही थी। परन्तु उसका मस्तिष्क और मन तो कहीं और ही थे, हाँ, हाथ-पाँव अवश्य चलते हुए नज़र आते थे। बड़े यत्न से उसने आशा का जो दुर्ग बनाया था वह उसे ढहता हुआ प्रतीत हो रहा था। नींव हिल गई थी, दीवारों में शिगाफ़ आ गये थे। अब गिरा कि अब गिरा। चेतनाहीन-सी, संज्ञाहीन-सी वह सब काम कर रही थी। दो बार उसके हाथ से मिठाई की तश्तरी गिर पड़ी, लस्सी पीने लगी तब दुपट्टे में ही गिरती गई। वह जाग रही थी या सो रही थी, उसे कुछ भी मालूम नहीं था।

सन्ध्या को जब जगत ऊपर आया तब एकान्त में मा ने सब कुछ पूछने का यत्न किया। किन्तु जगत ने साफ़ तौर पर कुछ भी उत्तर ही नहीं दिया। पूछा—"गहने कौन कौन मिले" ? कहा—"उसके पास ही हैं। जाकर देख लो।" पूछा—"विदा में क्या रक्खा गया ?" कहा—"मास्टर जी जाने या चाचा चाननराम।" और यह कहकर वह अन्दर कमरे में चला गया। मा वहीं खड़ी की खड़ी रह गई, और फिर सिर को दोनों हाथों से थामकर वहीं बैठ गई।

(५)

दूसरी सुबह बहू को अपने मैके जाना था। गौना यद्यपि साथ ही दे दिया गया था, पर प्रथा के अनुसार दुलहन का एक बार अपने माता-पिता के घर जाना आवश्यक था। रात को मा ने एक-दो बार नीचे बैठक में आकर दहेज़ का सामान देखने की कोशिश की, पर हर बार मास्टर

जी यम के दूत की भाँति दरवाज़े में बैठे दिखाई दिये। अपमान और तिरस्कार से वह जल उठी। सारी रात उसने छत पर घूम घूमकर बिता दी और जब दिन चढ़ा तब उसमें हिलने तक की शक्ति न थी। सारी रात वह पण्डित जी की राह देखती रही थी, पर वे न आये थे। चाचा चाननराम को भी उसने दो बार बुलवा भेजा था, पर वे तो विवाह से आने के बाद ऐसे भागे कि फिर सूरत ही न दिखाई। उस समय जगत की मा अपने आपको सर्वथा असहाय और बेवस महसूस कर रही थी।

विद्युत्-वेग से सब तैयारियाँ हो गईं। सब कुछ तो पहले से ही तय था। जगत की मा को कुछ सुझाई न दे रहा था, उसका अंग-अंग शिथिल हो रहा था, फिर भी मशीन की भाँति सब काम किये जा रही थी। दूसरी स्त्रियों के साथ वह भी दुलहिन को ताँगे पर चढ़ाने गई। उसने देखा, वह बड़ा-सा ट्रंक जिसमें दहेज़ का सब सामान--गहने-कपड़े रक्खे थे, ताँगे पर रक्खा हुआ है। उसे एक वस्त्र तक देखना नसीब न हुआ।

जब ताँगा चलने लगा तब जगत की मा ने अपना सारा साहस बटोरकर कहा—'कल ही गौना ले आना, इस अवसर पर ससुराल में अधिक नहीं अटका करते।'

बेपरवाही से जगत ने उत्तर दिया—"मैं इधर न आ सकूँगा। मेरी छुट्टी ख़त्म हो गई है। मुझे वहाँ से सीधे नौकरी पर जाना है। वहीं से सीधा नूरमहल चला जाऊँगा ?

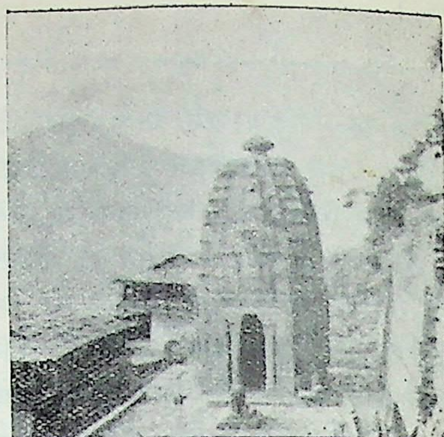
ताँगा चल पड़ा। मास्टर जी ने धीरे से कहा, शुक्र है यह झंझट ख़त्म हुआ। भई रोगी का खाया, शराबी का कमाया एक बराबर होता है। हम तो तुम्हारे लाभ की ही बात कहेंगे। एक-दो बच्चे हो गये तो फिर क्या करोगे ? शराबी के घर में इन गहनों की क्या बिसात है ?

मा खड़ी की खड़ी रह गई, जैसे उसकी समस्त शक्तियाँ शिथिल हो गई हों। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा छा गया। वह देर तक वहीं खड़ी रही। जब ताँगा दृष्टि से ओझल हो गया तब चुपचाप चली आई। एक आह भी उसने नहीं भरी, एक निःश्वास भी उसने नहीं छोड़ा, जैसे प्राणों से भी प्रिय पुत्र की कृतघ्नता ने उसकी वेदना का गला घोंट दिया हो। बैठक में एक हलका-सा कोंच का सेट रक्खा हुआ था। कोई बीस रुपये का होगा। बस, इतने परिश्रम, इतनी मेहनत के बाद उसे यह देखने को मिला। उस समय उसे महसूस हुआ, जैसे विपत्तियों के अथाह सागर में वह एकाकी गोते खाने के लिए छोड़ दी गई हो। जगत वापस न आयेगा। वह अमरकौर को कौन से गहने देगी; नेगियों का नेग कैसे देगी; मुहल्ले-वालों की छोटी-छोटी रक़में कैसे भुगतायेगी। जब वे सब उससे तक़ाज़ा करेंगे तब वह क्या उत्तर देगी। जो कुछ आज तक नहीं हुआ वह अब होकर रहेगा। उसे कितना अपमानित होना पड़ेगा। उसने अमरकौर से कहा था—हाथ की पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं; संसार से दयानतदारी का ख़ात्मा नहीं हो गया। अब वह उसे कैसे मुँह दिखायेगी ? इस बेशरमी से तो मृत्यु अच्छी। मा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सहसा उसे एक ख़याल आया। पण्डित जी की अलमारी में अफ़ीम की एक डिबिया रक्खी रहती थी। जब शराब के लिए पैसे नहीं होते थे, वे अफ़ीम से ही काम चला लेते थे। उसने बढ़कर डिबिया उठा ली! उसे खोला, खिल उठी, जैसे उसे विष नहीं, जीवनामृत मिल गया हो। एक बार ही सारी की सारी अफ़ीम डिबिया से निकाल कर उसने मुँह में रख ली और कोंच में धँस गई। जीवन के सब दुख, सारी विपत्तियाँ, समस्त हारें एक एक करके उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। एक विचित्र प्रकार की तन्द्रा उसकी आँखों पर छाने लगी। उस समय बाहर से गाने की आवाज़ आई—वही चिर-परिचित, जानी-पहचानी, सुरीली तान—

शामा मेरे अवगुण चित न धरो।

और दूसरे क्षण बग़ल में पगड़ी दवाये झूमते-झामते पण्डित जी बैठक में दाख़िल हुए।

लाहुल की राह में



[कार्तिकेय का मंदिर ।]

लेखक, श्रीयुत भदन्त आनन्द कौसल्यायन

भदन्त आनन्द कौसल्यायन हिन्दी में यदा-कदा ही लिखते हैं। पर जब लिखते हैं तब काफ़ी रोचक लिखते हैं। इस लेख में आपने पंजाब के एक प्रसिद्ध पहाड़ी अंचल की यात्रा का वर्णन बहुत ही सरस और सरल ढंग से लिखा है।



अमृतसर से जो रेलवे-लाइन पठानकोट जाती है उसका अन्तिम स्टेशन है योगेन्द्र-नगर। ९ मई के प्रातःकाल दो बौद्ध भिक्षु योगेन्द्र-नगर स्टेशन पर दिखाई दिये। एक थे श्रद्धेय राहुल सांकृत्यायन और दूसरा इन पंक्तियों का लेखक।

योगेन्द्र-नगर से कुल्लु जानेवाली मोटरलारी तैयार थी। एक एक करके आदमी उसमें चढ़ रहे थे--नहीं लड़ रहे थे – आदमी और उनका सामान एक साथ। हमें पता लगा कि इसके बाद एक मोटरलारी और छूटनेवाली है। इस आशा से कि शायद उसमें आदमियों की तरह बैठने को जगह मिल जाय हम मोटर में लड़नेवालों को खड़े देखते रहे। लारी छूट गई। पीछे पता लगा कि दूसरी लारी अपराह्न में दो बजे से पहले न जायगी। मैंने तो संतोष ही माना। पठानकोट से योगेन्द्र-नगर तक रेल-डिब्बे में 'सफ़र' (suffer) किया था। अब कुछ आराम करने का मौक़ा मिला।

दो बजे योगेन्द्र-नगर से चलकर शाम को मण्डी-रियासत पहुँचे और वहाँ से अगले दिन सुबह फिर मोटर-लारी में सवार हो ग्यारह बजते बजते कुल्लु। रास्ता—ख़ासकर मण्डी से कुल्लु तक का—प्राकृतिक दृश्यों से सजा हुआ था। हम उसकी आँति ? भर मार सके, आनन्द नहीं ले सके। क्योंकि प्राकृतिक दृश्यों का यथार्थ आनन्द तो मनुष्य ले सकता है पैदल-यात्रा में ही। रेल-गाड़ी में यात्रा करने और पार्सल बनाकर एक जगह से दूसरी जगह भेज दिये जाने में विशेष अन्तर नहीं। और मोटर-लारी में जो पेट्रोल की गन्ध—मैं तो उसे बदबू ही कहूँगा—रहती है उसके मारे तो मेरा दिल और दिमाग़ इतना परेशान हो जाता है कि मुझे समझ ही नहीं आता कि कभी कभी मैं मोटर-लारीवालों के कुचक्र में क्यों फँस जाता हूँ। पैसे ख़र्च करना और ज़हमत मोल लेना, इसी को कहते हैं।

× × ×

१० से १८ तारीख़ तक हम कुल्लु में रहे। यहाँ ठाकुर मङ्गलचन्द और ठाकुर पृथ्वीचन्द की एक कोठी है। ऐसी अच्छी जगह कि दिन भर मलयानिल का आनन्द मिलता रहता है। सामने व्यास की अपनी उमङ्गों पर तरङ्गें, रहने के लिए सुन्दर स्वच्छ जगह, भ्रमण करने के लिए प्रकृति की गोद, साथी राहुल सांकृत्यायन और इसके साथ ही ठाकुर मङ्गलचन्द का आतिथ्य, फिर किसी को क्या ज़रूरत पड़ी कि और कुछ चाहे ? एक सप्ताह बड़ी मौज से कटा। यह मौज और भी बढ़ गई, क्योंकि इसी सप्ताह में दो दिन के लिए हम मान्यवर प्रोफ़ेसर रोएरिक का सान्निध्य प्राप्त कर आये और देख आये उनका हिमालय-रिसर्च-इन्स्टिट्यूट।

कुल्लु से कटराइन ११ मील है और कटराइन से नगर, जिस स्थान को रोएरिक-परिवार ने अपने निवास और

इस महान् संस्था की संस्थापना से पवित्र किया है, दो मील है। कटराइन तक लारी जाती है। अगले दो मील तो चीड़ और देवदारु के सुन्दरतम वृक्षों के बीच से होकर ऐसा अनुपम रास्ता गया है कि कितना भी सवारी में चलने का कोई आदी हो, मन बिना पैदल चले नहीं मानेगा। और यदि किसी सवारी में ही जाना चाहे तो वहाँ चढ़ाई इतनी है कि सवारी जा ही न सकेगी। हाँ, घोड़े अवश्य जा सकते हैं। लेकिन फिर पहाड़ पर आने का फ़ायदा ?

जिस समय हम पहुँचे, मध्याह्न हो गया था। राहुल जी का विज़िटिंग कार्ड पाते ही श्री जार्ज रोएरिक (प्रोफ़ेसर रोएरिक के ज्येष्ठ पुत्र) बाहर आये और बड़े ही प्रेम से अपने अध्ययन-मन्दिर में लिवा ले गये। राहुल जी और जार्ज रोएरिक ने एक-दूसरे को पहली ही बार देखा था, लेकिन भेंट ऐसे हुई मानो चिर-परिचित हों। एक-दूसरे की कृतियों को पढ़ते रहने से क्या पण्डितजन चिर-परिचित नहीं हो जाते। श्री रोएरिक से मालूम हुआ कि वे उस दिन राहुल जी की "तिब्बत में बौद्ध-धर्म" पढ़ रहे थे।

आज तिब्बती-पुरातत्त्व के दो पंडितों की भेंट हुई थी। बातचीत भोट-भाषा में ही होती, लेकिन मेरी ख़ातिर अँगरेज़ी में होती रही। भोजन के समय मेज़ के सिरे पर प्रोफ़ेसर रोएरिक थे। उसके बाद राहुल जी, मैं और श्री जार्ज रोएरिक, एक डाक्टर, जार्ज रोएरिक के छोटे भाई और रोएरिक संस्था के मन्त्री। १९३३ में जब मैं पेरिस में था, मुझे रोएरिक-इन्स्टीट्यूट के पेरिस-स्थित प्रतिनिधि ने प्रोफ़ेसर रोएरिक का एक चित्र दिया था, जिसके चित्रकार थे स्वयं प्रोफ़ेसर रोएरिक के सुपुत्र। आज पिता-पुत्र के एक साथ दर्शन कर मन बहुत ही प्रसन्न हुआ।

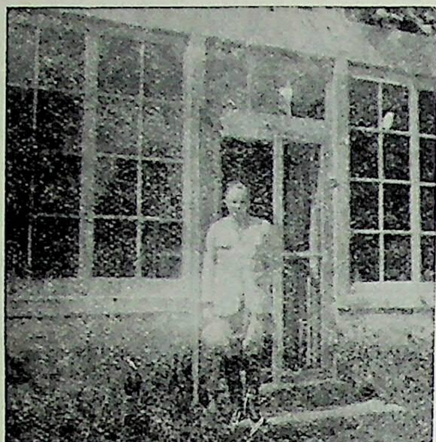
१२ मई की रात को हमने 'उरुसवती' की अतिथि-शाला में विश्राम किया। उरुस = रूस, वती = वाली। उरुसवती नाम से हिमालय-रिसर्च-इन्स्टीट्यूट की एक वार्षिक पत्रिका भी निकलती है। उसमें अनेक खोज-पूर्ण लेखों के अतिरिक्त संस्था के साल भर के काम का विवरण रहता है। १३ मई को प्रातःकाल सोकर उठते समय मेरे पाँव में कुछ ऐसा झटका लगा कि कंधे की एक नस हिल गई। अब दर्द की कुछ न पूछो। ... इधर से उधर करता कि चीख़ मारने का मन होता। डेढ़ दिन यही हालत रही। ख़ाली क्या करता, पड़े पड़े उरुसवती की पिछले तीन चार वर्ष की संख्यायें ख़त्म कर डालीं।

जार्ज रोएरिक चाहते थे कि राहुल जी यहाँ अधिक दिन ठहरें। दुबारा आने का वादा कर राहुल जी ने (और उनके साथ मैंने भी) अगले दिन बिदा ली। मेरा दर्द प्रोफ़ेसर रोएरिक के छोटे सुपुत्र की मालिश से बहुत कम हो गया था। मैंने कहा—"आपको केवल एक श्रेष्ठ चित्रकार समझनेवाले ग़लती पर हैं। आप तो चिकित्सक भी हैं।" उनके हाथों के स्पर्श ने मेरे हृदय को जा छुआ था।

मैं प्रोफ़ेसर रोएरिक की संस्था को अधिक घूम-फिर कर नहीं देख सका। मेरा दुर्भाग्य ! लेकिन जो कुछ देखा उसके आधार पर कह सकता हूँ कि खोज के कार्य के लिए जिस शान्ति की ज़रूरत है, जिस उद्बोधन की आवश्यकता है, वे दोनों जिस मात्रा में यहाँ विद्यमान हैं, शायद ही अन्य किसी जगह उपलब्ध हों।

१४ तारीख़ की शाम को हम कुल्लु पहुँचे और १८ तारीख़ के दोपहर को फिर कटराइन आये। आज ठाकुर मङ्गलचन्द, उनका नौकर किरपाराम और दुम्बु (कुत्ता) साथ थे। ठाकुर मङ्गलचन्द वास्तव में लाहुल के रहनेवाले हैं। वहाँ के वज़ीरे माल (Revenue officer) हैं। कुल्लु प्रायः आना होता है, इसलिए एक कोठी यहाँ भी बना रक्खी है। वैसे असली मकान केलाङ्ग और कोलङ्ग में हैं। आज हम सबने कुल्लु से केलाङ्ग के लिए प्रस्थान किया। कटराइन से और दस मील आगे हरीपुर तक हम मोटर-लारी में गये। दो मील आगे मनाली तक जा सकते थे, लेकिन हरीपुर में भी ठाकुर साहब की एक कोठी है। वहीं ठहर गये। कोठी, कोठी के सामने फूल, चारों तरफ़ हरा मैदान, चारों तरफ़ चीड़ और देवदारु के सौन्दर्य से ढँके पहाड़, उन पहाड़ों के शिखरों पर चाँदी-सी सफ़ेद बर्फ़—बहुत ही आनन्द था। दो-तीन घंटे इसे लूटते रहे।

शाम को नज़दीक के गाँव में गये। सुना था कि वहाँ कार्तिकेय का मन्दिर है। किसी पुरानी मूर्ति या मन्दिर का पता लग जाय और राहुल जी शान्ति से बैठे रहें, यह हो नहीं सकता। थोड़ी थोड़ी बूँदें पड़ रही थीं। ठाकुर



[प्रोफ़ेसर रोएरिक के ज्येष्ठ पुत्र श्री जार्ज रोएरिक ।]

साहब और हम दोनों खेतों को लाँघते-फाँदते मन्दिर को देखने चले। पाँच-सात घरों का एक छोटा-सा गाँव था और उसके ऊपर की तरफ़ मन्दिर। पहाड़ी घर प्रायः लकड़ी के बने दोतल्ले होते हैं और उन पर छत होती है पत्थर की स्लेटों की। ठाकुर साहब एक तो इलाक़े के मालिक हैं, दूसरे रोगियों को दवा-दारू देते रहते हैं। गाँव में पहुँचते ही झुक झुककर फ़र्शी सलाम होने लगे। मन्दिर का पुजारी बुलाया गया। और कई लोग यों ही साथ हो लिये। दरवाज़ों और चौखटों पर जो चित्रकारी थी उससे मन्दिर बहुत पुराना नहीं मालूम होता था। अन्दर मूर्ति अच्छी थी। पता लगा कि इस गाँव में एक ओझा भी है, जिसके सिर पर देवता आता है! वह भी बुलाया गया। एक बूढ़ा आदमी हाथ-मुँह धोकर आ हाज़िर हुआ। हम लोग छतरी के नीचे मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठे। ओझा सामने के चबूतरे पर सीढ़ियों के नीचे खुले मैदान में। उस बूढ़े आदमी को उस सर्दी में, उस बूँदा-बाँदी में, उस खुले मैदान में, उस गीले पत्थर पर बैठते देख उस पर दया, अपने पर लज्जा और अपने समाज के प्रति घृणा का भाव उदय हुआ। मैंने पूछा—क्या वह मन्दिर के चबूतरे पर नहीं आ सकता? पता लगा, नहीं, वह अछूत है। ज़रा-सी देर में कुछ नाम-मात्र का धूप-अक्षत और एक फूल के दो-चार टुकड़े इधर-उधर बिखेरने पर वह वृद्ध जो पहले से ही ठिठुर रहा था, थरथर काँपने लगा। यह देवता के आगमन का पूर्व-लक्षण था। और एक-दो मिनट में वृद्ध की बदली हुई आवाज़ ने देवता का आगमन प्रमाणित कर दिया। पास बैठे पुजारी ने कहा—कोई प्रश्न पूछना हो तो पूछो। राहुल जी बोले—देवता से पूछो कि यह जो व्यास नदी कुल्लु की ओर जा रही है इसका प्रवाह कब उलटा होगा? विचारा देवता इधर-उधर की हाँकने लगा। और भी जो दो-एक प्रश्न पूछे गये, सब इसी ढंग के। देवता ने समझा था कि कोई मुक़द्दमे की बात, कोई बीमारी की बात, किसी खोई चीज़ की बात पूछी जायगी। सो उसके पास उत्तर तैयार थे। उसे क्या मालूम कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन उससे यह जानना चाहेंगे कि व्यास नदी कब उलटी बहेगी। देवता से कहा गया कि अब वह विदा हो जाय। पहले की ही तरह बूढ़े को एक हलका-सा झकझोरा देकर देवता चला गया। ठाकुर साहब ने पुजारी को मन्दिर दिखाने के लिए और ओझा को देवता बुलाने के लिए कुछ पैसे दिये। एक घर के पास से गुज़र रहे थे कि धड़ाम से कोई चीज़ छत पर से ज़मीन पर आ गिरी। अरे! यह क्या? यह तो आदमी है! बच गया, किसी पत्थर पर सिर पड़ता तो राम-नाम सत्य था। लेकिन इसे हुआ क्या? यह लुगड़ी* पीकर बेहोश था, लुढ़क गया। उस घर के पास थोड़ी ही देर के लिए खड़े हुए थे कि कई मरीज़ों ने आकर ठाकुर साहब को घेर लिया। उन्होंने सबको कहा कि कोठी पर आकर औषध ले जाना। एक-दो को औषध बता भी दी।

बूँदा-बाँदी हो रही थी। हम लौटे तब कुछ भीग गये थे। रास्ते भर तरह तरह की बातें होती रहीं। ठाकुर साहब को वनस्पतियों का बहुत ज्ञान है। वे लगभग हर पौधे की पहचान और गुण-दोष कहते चलते थे। सुनने को मैं यह सब सुनता और कभी कभी कुछ पूछता भी जाता था, लेकिन मन की निचली सतह पर कोई पूछ रहा था, "रोग-दरिद्रता—मिथ्याविश्वास—यही है क्या इन बेचारों का ग्रामीण-जीवन? जिससे कुछ आशा हो उसके सामने गिड़गिड़ाना, जिससे कुछ आशा न हो उसकी परवा न करना। क्या इसका कोई इलाज नहीं?"

उस रात को मैं यही सोचते सोचते सोया।

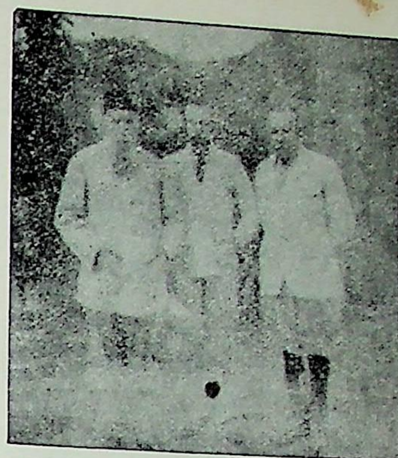
× × ×

*चावल या जौ के आटे की बनी शराब।

१९ मई को मध्याह्न के भोजन के बाद जब हम हरीपुर से चले तब मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब बहुत दिन तक मोटर-लारी से भेंट न होगी। पैदल-यात्रा का यथार्थ आनन्द आयेगा।

हरीपुर से मनाली कुल दो मील है। हलके हलके टहलते हुए चल रहे थे—एक घंटा लगा होगा। रास्ते में सड़क के किनारे ही देवदारु का एक जङ्गल इतना सुन्दर था कि बरबस खड़े हो गये। मनाली में तार है, डाकख़ाना है, मोटर है, मोटर की सड़क है। वर्तमान सभ्यता की चीज़ों में से यदि कोई चीज़ नहीं है तो केवल रेल नहीं। दूकानें काफ़ी हैं और सभी आवश्यक चीज़ें मिल जाती हैं। चौरस्ते पर किन्हीं महात्मा की एक कुटिया है। हम पास से गुज़रे तब अन्दर बैठे साधुओं ने आकर बैठने का आग्रह किया। अभी कुल दो मील चले थे। क्या बैठते? लेकिन पाँच-दस क़दम आगे एक दूकान पर बैठना ही पड़ा। ठाकुर मङ्गलचन्द अपना और हमारा सामान लिवा चलने के लिए एक कुली और चाहते थे। कुछ प्रतीक्षा करनी पड़ी। लाला मेलाराम ने चाय बनवाई। ठंडी हवा हो, बूँदा-बाँदी हो, फिर चाय अच्छी न लगे! मनाली से चले तब दिन इतना थोड़ा रह गया था कि चार-पाँच मील से अधिक नहीं जा सकते थे। चलना आरम्भ होते ही व्यास का पुल पार करना पड़ा। दूध की-सी सफ़ेद धार और उसके मोतियों के-से चमकदार छींटे। जहाँ पानी नहीं वहाँ हरियाली, जहाँ हरियाली नहीं वहाँ पानी। बड़े बड़े ऊँचे वृक्ष, लेकिन पर्वतों के सान्निध्य के कारण छोटे बने हुए थे। चलने में बड़ा ही आनन्द आ रहा था। बीच बीच में महकमा जङ्गलात की ज़्यादतियों की चर्चा होती चलती थी।

सरकारी महकमों में पुलिस बहुत बदनाम है। लेकिन इधर लोग कहते हैं कि महकमा जङ्गलात की ज़्यादतियाँ पुलिस से दस गुनी हैं। जो मिलता है, इस महकमे की जान को रोता है। तीन मील पर एक जगह में कई मर्द और औरतें खेत गोड़ रहे थे, साथ ही गाते भी जाते थे। राहुल जी को उनका वह खेत गोड़ना और उसके आस-पास का दृश्य इतना सुन्दर लगा कि वे उसे अपने कैमरे में बन्द करने के लोभ को संवरण न कर सके। डेढ़-दो मील पर पास ही एक गाँव था। रात को हमारा डेरा



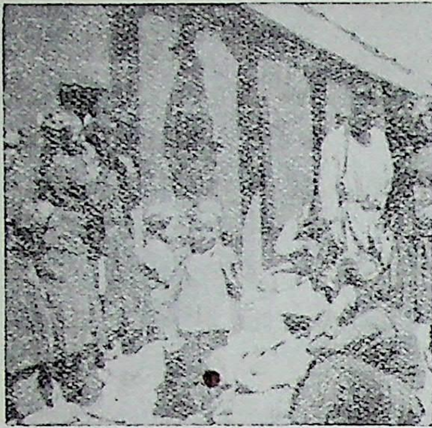
[प्रोफ़ेसर रोएरिक अपने पुत्रों के साथ।]

उसी में लगा। चौकीदार ने आगे जाकर ठाकुर साहब के आगमन की सूचना दे दी थी। एक घर ख़ाली कर दिया गया। उसके बरामदे में अभी बैठे ही थे कि दो-चार रोगी पहुँच गये। औषध के लिए वे ठाकुर साहब को तो घेरते ही थे, लेकिन साथ ही हमें भी। हमें ओषधियों का ज्ञान नहीं, कहकर मुश्किल से छुट्टी पाते। एक आदमी अपने एक लड़के को लेकर आया। और बोला—इस लड़के की जन्मपत्री अच्छी नहीं है। पता नहीं, कितने दिन जियेगा। इसे आप ले लें। अपना शिष्य बना लें। राहुल जी ने मेरी ओर इशारा करते हुए जवाब दिया—ये महात्मा अब कुछ दिन लाहुल में रहेंगे। जल्दी करने की ज़रूरत नहीं। उचित समझेंगे तो पीछे बना लेंगे। बच्चा छोटा था। कुल पाँच-छः वर्ष का। पता नहीं, उसका पिता कैसे उसे छोड़ने को तैयार हो गया। बेचारे की माता न होगी! और पिता अपने को उसे पालने में असमर्थ पाता होगा। फिर जन्म-पत्री जो ख़राब थी !!!

× × ×

आज २० मई थी। आज हमको वह चढ़ाई चढ़नी थी जिसका ख़याल कर अभी तक की किसी चढ़ाई को हम चढ़ाई ही न कहते थे। आज हमें रतन-जोत पार करनी थी।

प्रातःकाल किरपाराम ने कुछ पराठे और चाय पिलाई। चढ़ाई थी, इसलिए ठाकुर साहब ने एक कुली और ले लिया, जिसमें कुलियों का बोझ बँट जाय और उन्हें अधिक तकलीफ़ न हो। चलते-चलाते सवा सात बज



[मार्ग में मिलनेवाले एक गाँव के निवासी ।]

गये। इस जोत को ही पार करने के लिए मैं लाहौर से एक पिशावरी ढंग का चप्पल लेता आया था, लेकिन कुल्लु में ठाकुर साहब ने यह कह कर कि चप्पल में तो बर्फ़ घुस जायगी, एक जूता और ले दिया था। जुर्राबें (शायद दो) पहनी और उस पर जूता कस लिया। अब पैरों की ओर से कुछ निश्चिन्त था। लेकिन बर्फ़ पर चलना हो तो पैरों से ज़्यादा हिफ़ाज़त आँखों की करनी होती है। यदि बर्फ़ की चमक से कहीं आँख जल जाय तो एक-दो सप्ताह बहुत तकलीफ़ होती है। बर्फ़ की चमक से बचने का उपाय है हरे रङ्ग की ऐनक। राहुल जी तो रोज़ के बर्फ़ानी यात्री ठहरे। उनके पास हरी ऐनक पहले से थी। मुझे भी एक कुल्लु में ले दी गई थी। उसे आँखों पर चढ़ाया और चले।

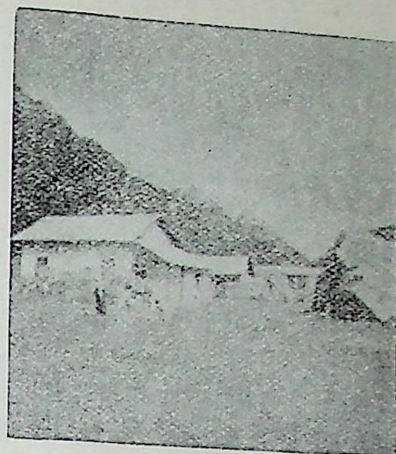
व्यास का किनारा। उसका कलरव। आकाश से बातें करनेवाले पहाड़। उन पर सुन्दर देवदारु वृक्ष। उन वृक्षों की ठंडी-ठंडी छाया। चढ़ाई का रास्ता होने से माथे पर पसीने की छोटी-छोटी बूँदें—यही हाल दो-तीन मील तक रहा। रास्ते से ज़रा हट कर एक डाक-बँगला मिला। यदि कल मनाली में देर न होती तो रात के हम इसी बँगले में ठहरते। मैंने पूछा कि असली चढ़ाई शुरू हुई या नहीं। ठाकुर साहब बोले—अभी नहीं। ३२वें मील के पत्थर के पास जब हमने व्यास के एक बार फिर लाँघा तब ठाकुर साहब ने कहा कि अब यहाँ से चढ़ाई शुरू होती है।

सीधी सड़क बहुत घूमकर जाती थी। उसे छोड़ दिया। एक पगडंडी से चलना शुरू किया। यह क्या! यह तो प्रत्येक पाँच-दस क़दम पर साँस फूलने लग गई। मैं अपने लिए डर रहा था, लेकिन देखा राहुल जी की साँस मुझसे भी अधिक फूल रही है। उनका अभी पिछले दिनों टान्सिल का आपरेशन हुआ था। शायद उसकी कमज़ोरी कारण थी। वे कहते थे कि कई महीने बैठे-बैठे केवल क़लम घिसते रहे हैं, उससे चलने का अभ्यास कम हो गया है। आध मील चढ़ते-चढ़ते टाँगें काफ़ी फूल गईं—मेरी और मुझसे ज़्यादा राहुल जी की। एक जगह कुछ देर विश्राम करने का बहाना मिल गया। पता लगा कि यहाँ एक 'साँपों की ढेरी (?)' है। यहाँ साँप निकल कर आ बैठते हैं और लोग उन्हें ला लाकर दूध पिलाते हैं। यही ९, १० बजे सुबह का समय साँपों के बाहर निकलने का होता है। हमने कुछ देर खड़े होकर इन्तज़ार किया। किसी नाग-देवता ने दर्शन नहीं दिये। चढ़ाई में थोड़ा आराम मिल गया। इतना ही फ़ायदा सही। फिर क़दम गिन-गिन कर चढ़ना शुरू किया, फिर आराम। मैं पतला-दुबला होने से राहुल जी की अपेक्षा ज़रा नफ़े में था। जल्दी से दस-बीस क़दम आगे बढ़ जाता और फिर उनकी प्रतीक्षा करने के बहाने काफ़ी आराम ले लेता। जब तक वे जैसे-तैसे करके मेरे पास पहुँचते, मैं आगे चल देता। इसी प्रकार करते-करते एक बार राहुल जी पत्थरों की ओट में आँखों से ओझल हो गये, और मैंने देखा, ऊपर चढ़ाई के शिखर पर ठाकुर साहब रुमाल हिला रहे हैं। मुझे ऐसा लगा, मानो रुमाल जल्दी से जल्दी आने के लिए कह रहा है। मैं नाक की सीध हो लिया। कहीं रुका रुमाल देखने के लिए; कहीं रुका सीधा रास्ता देखने के लिए; कहीं रुका साँस लेने के लिए; लेकिन फिर भूलता-भटकता गिरता-फिसलता ऊपर पहुँच ही गया। ऊपर पहुँच कर देखा कि एक ढलवान मैदान है, जिस पर हरी घास बिछी है और हवा इतनी तेज़ चल रही है कि उड़ा ले जाय।

कोई आध टे या उससे कुछ कम देर तक इन्तज़ारी करने के बाद राहुल जी भी आ गये। एक जल के चश्मे के किनारे, जिसका पानी इतना ठंडा कि कलकत्ते में हो तो दो पैसे गिलास और लाहौर में हो तो चार पैसे गिलास बिके—बैठकर आराम किया। किरपाराम ने खाने-पीने की सामग्री निकाली। राहुल जी के छोड़कर सबने थोड़ी-थोड़ी

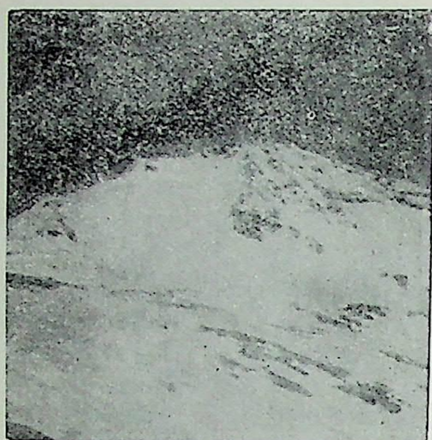
ली। मुझे तो चढ़ाई में ख़ूब भूख लग गई थी, लेकिन राहुल जी की रुचि न थी। गरम पानी की बोतल में से थोड़ी-थोड़ी चाय पीकर गर्म हुए और फिर चल दिये। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते थे, राहुल जी की रफ़्तार सुस्त होती जाती थी। तेज़ तो उस चढ़ाई में कोई भी न चल सकता था, लेकिन राहुल जी तो मानो बिलकुल चूर-चूर हो रहे थे। तब हमें मालूम हुआ कि पिछली बीमारी का उन पर कितना असर पड़ा है। अभी हमें ६-७ मील जाना था और हम लोग घंटे में एक मील भी नहीं चल रहे थे। आयु के लिहाज़ से हममें सबसे बड़े थे ठाकुर साहब और सबसे छोटा मैं। सो हम दोनों मिलकर राहुल जी को ऐसे ही बढ़ावा देकर ले चलने लगे, जैसे मातायें छोटे बच्चों को। ठाकुर साहब पचीस क़दम आगे जाकर दो-तीन पत्थर ऊपर-नीचे रखकर एक निशान बना देते और मैं कोशिश करता कि राहुल जी उस निशान से इधर कहीं न बैठने पावें। यह कहना भूल गया कि अब बीच-बीच में हमें बर्फ़ पर भी चलना पड़ता था। मैं कभी-कभी नंगी आँख से बर्फ़ देखने के लिए ऐनक को ज़रा उतारता, लेकिन आँख जलने के डर से तुरन्त ढँक लेता।

जैसे-तैसे ३९वें मील पर एक नाला आया। अब आगे जहाँ तक नज़र जाती थी, बर्फ़ ही बर्फ़ थी। यहाँ हमने ज़रा देर ठहर कर अपने को ताज़ा करना चाहा। चाय की बोतल खोली गई। देखा, उसमें जो दूध मिला दिया गया था वह फट गया है। गर्म पानी के लालच से मैंने दो-चार घूँट पीने चाहे, लेकिन गले से नीचे नहीं उतरे। राहुल जी तो थकावट का ही इतना अधिक अनुभव कर रहे थे कि बैठे रहने को छोड़कर और कुछ चाहते ही न थे—न चाय, न पानी। शाम के चार बजने को आये और फ़ासला अभी काफ़ी था। इतने में ठण्डी हवा चलनी शुरू हुई। ठाकुर साहब ने कहा, यदि यह हवा ज़्यादा हो गई तो फिर मुश्किल है। लाचार हिम्मत बाँध कर चलने की तैयारी करनी पड़ी। मैंने जीवन में पहली बार बर्फ़ का इस प्रकार विस्तृत रेगिस्तान देखा था। इसलिए मैं अपने में उस उत्साह का अनुभव कर रहा था जिसका जनक नया अनुभव होता है। आगे-आगे मैं ही हो लिया। हो तो लिया, लेकिन आगे जाकर मुझे अपनी ग़लती मालूम



[खोकसर।]

कुछ दूर चलने पर राहुल जी और उनके साथ ठाकुर साहब पीछे छूट गये थे—आँखों से ओझल हो गये। मैंने खड़े होकर प्रतीक्षा करनी चाही, लेकिन कहाँ खड़ा होऊँ। उस सर्दी में चलते रह कर पैरों को गरम रखना ज़रूरी था। नहीं तो वे सुन्न हुए जा रहे थे। दो-एक जगह तजुर्बे के लिए खड़ा हुआ, लेकिन देखा अधिक देर ठहरना असम्भव है। बहुत आगे जाकर एक बड़ा पत्थर आया। मैं उस पर चढ़ गया कि यहाँ सूखे में खड़े रहकर कुछ देर इन्तज़ार करूँ। लेकिन सूखा कहाँ, जुर्राबों और जूतों में पहले से ही काफ़ी बर्फ़ घुस गई थी, जो अन्दर ही अन्दर पिघल कर पैरों को ठंडा कर रही थी। अब क्या किया जाय? राहुल जी के साथ ठाकुर साहब थे, इसलिए उनकी ओर से तो निश्चिन्त था, लेकिन साथ चिन्ता थी अपनी। बर्फ़ में जिसने जहाँ तबीयत चाही रास्ता बनाया था। एक से अधिक रास्ते फूट पड़ने पर मैं चकरा जाता कि किसको ग्रहण करूँ और किसको छोड़ूँ। ख़ैर, दूसरा कोई उपाय न देखकर मजबूरी अमर बढ़ता चला गया। हाँ, नाले के इस पार से उतराई शुरू हो गई थी। इसलिए रफ़्तार कुछ क्या, काफ़ी तेज़ थी। एकादशी की कसर द्वादशी को निकल रही थी। उतरते उतरते पहाड़ी के सिरे पर जा पहुँचा। अब ज़रा घूमा नहीं कि वह सारा मैदान जिस पर अभी तक दौड़ता आया था, आँखों से ओझल हो जायगा। पहाड़ के नीचे के रास्तों को बर्फ़ ने ढँक लिया था। कहीं कहीं नंगी सड़क दिखाई देती थी, लेकिन वह किधर से किधर जाती है, ठीक तक पता नहीं लगता था। एकाएक मुझे अपना एक कुली



[बर्फ़ का रेगिस्तान।]

जाता दिखाई दिया। जिधर वह जा रहा था, उधर ही मैं हो लिया और थोड़ी देर में सड़क पर आ रहा। कुली का पीछा करने की जल्दी में एक जगह गिर पड़ा, घुटने में ज़रा-सी चोट आई। और अधिक चोट लगती तो भी बर्फ़ में बैठना तो उसका इलाज था नहीं। घुटने को ज़रा रगड़ कर गर्म किया और चल दिया।

चालीसवाँ या इकतालीसवाँ मील-पत्थर मिला। जान में जान आई। लिखा था—खोकसर दो मील। और खोकसर सामने दिखाई दे रहा था। आज रात को खोकसर में ही विश्राम करना था।

रास्ते पर जगह जगह बर्फ़ पड़ी रहने से रास्ता अभी साफ़ न था, लेकिन चार-पाँच मील लगातार बर्फ़ पर चल चुकने के बाद ऐसी छोटी-मोटी बर्फ़ की कौन परवा करता है। हर दस-पन्द्रह मिनट पर खड़े होकर मैं पीछे की ओर देखता कि कहीं राहुल जी आ रहे हों। लेकिन कहाँ? हरी ऐनक में से देखने से मालूम होता कि बस शाम सिर पर है, लेकिन जब चश्मा उतार कर देखता तब काफ़ी धूप दिखाई देती और दिल कुछ बेफ़िक्र हो जाता।

सूरज डूबने से पहले पहल मैं चन्द्रा के किनारे स्थित खोकसर के डाक-बँगले में पहुँच गया। सबसे आगे पहुँचने की उतनी ख़ुशी न थी, जितना अकेले पहुँचने का अफ़सोस।

आते ही जूता खोलकर गीली जुर्राबें उतारीं। पैर ऐसे हो गये थे, जैसी भीगी हुई डबल रोटी। कपड़े से सुखाकर, रगड़ कर कम्बल ओढ़कर बैठा।

शाम होती जा रही थी। राहुल जी नहीं आये थे। यह लो, सूर्य्य भी डूब गया। अभी भी नहीं आये। अँधेरा हो चला। अभी भी नहीं आये। मैंने किरपाराम को बुला कर पूछा कि टार्च कहाँ है, उसके पास है या ठाकुर साहब के पास। वह बोला—मेरे पास है। मैंने उसे टार्च लेकर आगे जाने को कहा। थोड़ी देर में ठाकुर साहब आते दिखाई दिये। यह क्या अकेले! राहुल जी कहाँ हैं? मैंने बेसब्री से पूछा। बोले उनसे बिलकुल नहीं चला जा रहा है। सख़्त प्यास लगी है। मैं आगे चला आया हूँ कि कुछ चाय बनवाकर भेजूँ। मैंने पूछा—अभी कितनी दूर पर होंगे? वे बोले—होंगे एक डेढ़ मील पर। क्या करूँ और क्या न करूँ? कुछ समझ में नहीं आता था। यह मालूम होता कि आज राहुल जी को इतना कष्ट होगा तो क्यों उनका साथ छोड़ता। कम से कम इस समय उनके कष्ट का समाचार सुनकर इस तरह दुखी तो न होता।

उठूँ, उठकर उन्हें लेने वापस जाऊँ? किस बूते पर! अपने ही राम राम करके न जाने कैसे पहुँच गया हूँ। मैं बार बार उठता, रास्ते की ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देखता। और किरपाराम उन्हें लिवा लाने जा ही चुका था। ख़ैर, बेचैनी के मारे एकाएक पीछे की ओर से कोई आता दिखाई दिया। यह क्या? राहुल जी। "इधर किधर से?" "रास्ता भूलकर पुल के दूसरी ओर चला गया था।" "किरपाराम मिला"? "हाँ"।

मैंने बात न की। झट-पट बिस्तरा लगा दिया। तब तक किरपाराम गरम गरम नमकीन चाय ले आया, जिसे पीते ही राहुल जी अपनी काली गुदड़ी में घुस कर सो गये।

उस दिन चले हम कुल १३ मील, लेकिन वैसी थकावट शायद ही और कभी हुई हो।

इतनी तकलीफ़ उठाकर पहुँचने पर भी सोते समय राहुल जी के मुँह में निराशा या दुःख का एक शब्द न था।

भारत तथा प्रान्तीय सरकारों की माली हालत

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

श्रीयुत वर्मा जी हिन्दी के उत्साही लेखक हैं। इस लेख में उन्होंने भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक अवस्था का सप्रमाण परिचय दिया है। इस विषय के पाठकों के लिए यह एक उपादेय लेख सिद्ध होगा।

भारतीय संघ बनने जा रहा है अथवा उसके निर्माण की चेष्टा की जा रही है। ऐसे अवसर पर सभी समझदार यह सोच रहे हैं या सोचने की चेष्टा कर रहे हैं कि संघ की माली हालत क्या होगी। जिस समय संघ-सरकार का प्रथम अर्थ-मंत्री शासन की बागडोर अपने हाथ में लेगा, उस समय क्या उसे भारतीय कोष बहुत ही दृढ़ और ठोस हालत में मिलेगा या उसको भी युक्त-प्रान्त, मदरास तथा पञ्जाब-प्रान्त की वर्तमान सरकारों की तरह घाटेवाले बजट के साथ २ करोड़ रुपये के क़र्ज़ से अपना काम शुरू करना होगा? हमारे इस लेख का उद्देश इस प्रश्न का सापेक्षिक उत्तर देना है और शुद्ध आँकड़ों-द्वारा यह दिखलाना है कि वास्तविक माली हालत क्या है।

यह बात कितनी बार कही जाय कि भारत की मौजूदा आर्थिक विपत्ति का कारण भारत-सरकार की मुद्रा-नीति है। १९२० में ही रुपये की विनिमय-दर तय करने में तथा रुपये को स्टर्लिंग की पूँछ में बाँध रखने की जो ग़लती की गई थी उसका रोना रोते रोते तो आँखें पथरा-सी गई हैं। अरबों का सोना बाहर चला गया! और अब भी १२-१५ लाख फ़ी हफ़्ते का औसत है। चाँदी के सट्टे में लोग करोड़ों रुपया खो तथा बना बैठे। चाँदी ही हमारे पास अब विनिमय की वस्तु रह गई है।

देश में रोज़गार के मन्दा होने तथा लाभ-युक्त अनेक साधनों के अभाव के कारण बहुत-सा रुपया बेकार पड़ा हुआ है। इसी स्थिति से आज बैंक-रेट बहुत गिरा हुआ है। बैंकों की तुलना में सरकारी हुण्डियों में रुपया रखना अच्छा समझा जाने लगा है, इससे अपने बैंकिंग व्यवसाय पर भी अविश्वास प्रकट होता है। इसी लिए पिछले वर्ष मई के महीने में जब भारत-सरकार ने १२ करोड़ रुपये का नया क़र्ज़ लेने की घोषणा की, उसी एक दिन में ऋण मिल गया और वह भी कुछ ही घण्टों में। सन् १८९६ के बाद सूद की इतनी कम दर पर और कोई भी क़र्ज़ सरकार ने नहीं लिया। यह ऋण २$\frac{3}{4}$ प्रतिशत की दर पर लिया गया है। २६ मई सन् १९३६ को चालू किया गया और उसी दिन सारा का सारा नक़द रुपया मिल गया। क़ीमत पूरे १००)। सरकार अधिक-से-अधिक ११ जून १९५२ में इसे चुका देगी, पर १ जून १९४८ के बाद कभी भी इसे अदा कर देने का उसे अधिकार होगा। सूद छमाही अदा होगा और उस पर आय-कर लगेगा। ५००) रुपया से कम किसी से नहीं लिया गया। इस प्रकार इस ऋण ने यह साबित कर दिया कि सरकारी काग़ज़ों पर जनता का पूर्ण विश्वास है तथा व्यापार की मन्दी में उसके लिए इन काग़ज़ों पर टूट पड़ने के अलावा कोई दूसरा साधन नहीं रहा।

१९३६-३७ में कई नये ऋण चालू किये गये और तुरन्त उनका रुपया मिल गया। इससे यह स्पष्ट है कि सरकारी के ही नहीं, हर एक प्रकार के ऋण में रुपया लगाकर लोग अपने पास पड़े हुए बेकार रुपये को काम में लगाना चाहते हैं। उपरिलिखित सरकारी ऋण के बाद ही, यानी ७ अगस्त १९३६ को, १००) मूल्य का, ३ प्रतिशत दर पर, ३० लाख रुपये का ऋण कलकत्ता-इम्प्रूवमेण्ट-ट्रस्ट ने लिया। ७ अगस्त १९६६ को यह ऋण चुका दिया जायगा। पहला छमाही सूद ७ फ़रवरी १९३७ को देना था और वह चुका दिया गया। इस ऋण को भी तुरन्त प्राप्त कर लेने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई। इसके सूद की अगली की क़िस्त भी अदा हो गई है।

इसी के बाद 'न्यू हबड़ा-ब्रिज-लोन' चालू हुआ, जिसकी ज़ामिन बंगाल की सरकार है। इस ऋण में १५० लाख रुपया ३¼ प्रतिशत सूद पर अगस्त १९३६ में लिया गया और यह २६ अगस्त १९६६ को चुका दिया जायगा। इसका सूद भी छमाही अदा होगा और इसकी २६ फ़रवरी १९३७ तथा २६ अगस्त १९३७ की क़िस्तें अदा हो गई हैं।

इसी वर्ष कलकत्ता-कारपोरेशन ने दो ऋण लिये। पहला सितम्बर १९३६ में ६० लाख रुपये का था, जो पहली अक्टूबर १९६६ को अदा होगा; दूसरा ७,७८,४००) रुपये का था, जो १९५३ में ही अदा हो जायगा। पहला ऋण 'डिबेंचर-लोन' है। इन दोनों का भी सूद नियमित रूप से अदा हो रहा है। सूद की दर ३ प्रतिशत है। यहाँ यह लिख देना उचित होगा कि ये सभी ऋण भारत-सरकार की अनुमति से लिये गये हैं।

अक्टूबर १९३६ में रंगून-कारपोरेशन ने ३¾ प्रतिशत सूद पर १५० लाख रुपये का 'डिबेंचर-ऋण' लिया, जो ३०-४० वर्ष के बाद अदा होगा। नवम्बर १९३६ में कराची-पोर्ट-ट्रस्ट ने १२ लाख रुपये का ऋण लिया। सूद की दर ३ प्रतिशत है। इसी वर्ष प्रान्तीय सरकारों में केवल युक्त-प्रान्तीय सरकार ने २ करोड़ रुपये का ऋण लिया, जिसका ज़िक्र आगे किया गया है। सन् १९३७ में प्रधान ऋण प्रान्तीय सरकारों का ही रहा, पर कम सूद के रूप में जो लाभ भारत-सरकार ने प्राप्त किया वह किसी ने नहीं, और यह एक विशेष महत्त्व की बात है। पर इससे स्पष्ट है कि जनता का अपना इतना रुपया इतनी आसानी से दे देना उसकी व्यापारिक समृद्धि का उलटा रूप ही बतलाता है और यह साबित करता है कि १९३६-३७ से सरकार की मुद्रा-नीति के कारण भारत से सोने का जो भयंकर निर्यात हो रहा है वह हमें और भी ग़रीब कर रहा है।

गत ३१ मार्च १९३७ तक भारत-सरकार की माली हालत क्या थी तथा उसके आय-व्यय का लेखा उसके क़र्ज़ के अनुपात से किस रूप में था, यह आगे दिये गये आँकड़ों से मालूम होगा। २० सितम्बर १९३७ को राज-परिषद् में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए मिस्टर ए० जे० ग्राइसमैन ने ये आँकड़े दिये थे।

भारत-सरकार का देना

भारत में देना	(करोड़ रुपयों में)
ऋण	४३,७८,८
ट्रेज़री-बिल	२६,६१
अन्य देना—पोस्ट-आफ़िस-सेविंगबैंक	७४·७५
डिप्रिसिएशन एण्ड रिज़र्व फ़ण्ड	१९,०५
प्रान्तीय बैलेंस	१·३७
प्राविडेण्ट फ़ण्ड	१९·०५
पोस्टल कैश सर्टिफ़िकेट	६५·२३
कुल	७३०·२४

इँग्लेंड में देना	(दस लाख पौंड में)
ऋण	३००·७२
लड़ाई का चन्दा	१६·७२
ऐसा देना जो वाजिबुलअदा होनेवाली रेलवे की वार्षिक रक़मों के कारण मूल्य में कम हो रहा है	३९·८५
प्राविडेण्ट फ़ण्ड इत्यादि	१·४९
इँग्लेंड में—कुल	३५८·७८

पावना

[भारत-सरकार की सूद की आमदनीवाली पूँजियाँ]

भारत में	(करोड़ रुपयों में)
रेलवे को पेशगी दी गई रक़म	७५२,२१
अन्य व्यापारिक महकमों की पेशगी	२४,७३
प्रान्तों को दी गई पेशगी	१८६,४८
देशी रियासतों को दी गई पेशगी तथा अन्य सूदवाले ऋण (दिये गये)	२०,८६
कुल—भारत में	९८४,३१

इँग्लेंड में	(दस लाख पौंड में)
ट्रेज़री खाते में—नक़द—स्वर्ण-कोष तथा सिक्यूरिटी में	१९,३७
ऊपर दी गई संख्या के अलावा अन्य सूदवाली लागतों से	२०४,९३
कुल—इँग्लेंड में	२२४,३०

अब नीचे हम भारत-सरकार के उन क़र्ज़ों का जो उसने स्वयं इँग्लेंड तथा भारत में लिये हैं, ब्योरा देते हैं। इनसे सरकारी काग़ज़ों में लेन-देन करनेवालों को बड़ा

गवर्नमेंट आव् इण्डिया लोन्स

भारत-सरकार की कुल रुपये की सिक्यूरिटी का मूल्य ४,३५,११,७२,८००) रुपया है। कुल स्टर्लिंग सिक्यूरिटी का मूल्य २७६,५८४,४७३ पौंड है। १९३७ तक यही परिस्थिति थी और इस तालिका के प्रकाशित होने तक कोई परिवर्तन न होगा।

सीमित-काल के ऋण

ऋण	चालू	देना	जब वापस होंगे
३ प्रतिशतवाला ऋण	१९३४	१०,६७,३२,०००	१६४१
,, ,, ,,	१९३५	१५,१२,८५,०००	१६५१-५४
३½ ,, ,,	१९३३-३४	५५,६४,३७,०००	१६४७-५०
४½ ,, ,,	१९२८	९,०५,७०,०००	१६५५-६०
५ ,, लड़ाई का ऋण	१९१९-२५	५६,७४,६४,०००	१९४५-५५
४ ,, बांड	१६२६-३३	५३,३०,२६,०००	१९६०-७०
५½ ,, ऋण	१९३२	१६,१३,९०,०००	१९३८-४०
५ ,, ,,	१९२९	२७,७८,१२,०००	१९३९-४४
५ ,, ,,	१९३२	२५,१८,४७,८००	१९४०-४३
४ ,, ,,	१९३३	१४,९७,१८,०००	१९४३
२¾ ,, ,,	१९३६	१२,००,००,०००	१९४८-५२
	कुल	३०९,९३,११,८००	

असीमित-काल के ऋण

३ प्रतिशतवाले ऋण	१८९६-६७	३,१६,२४,०००	३ महीने का नोटिस देकर जब चाहे सरकार चुका सकती है।
३½ ,, ,, ,,	१८४२-४३	२३,७५,९५,०००	
,, ,, ,, ,,	१८५४-५५	२१,५८,७३,०००	
,, ,, ,, ,,	१८६५	३७,४७,३४,०००	
,, ,, ,, ,,	१८७६	२,८०,६१,०००	
,, ,, ,, ,,	१९००-१	३६,३९,७४,०००	
	कुल—	१२५,१८,६१,०००	

स्टर्लिङ्ग-सिक्यूरिटी

प्रतिशतवाले ऋण		पौं०	५ अक्टूबर, १६४८
२½ ,,		११,५३९,९६६	के बाद एक वर्ष का
३ ,, ,, ,,		७७,०२४,१८५	नोटिस देकर चुकाये जा सकते हैं।
३½ ,, ,, ,,		८८,६६७,८८४	५ जनवरी १६३१- ,, ,,
४½ ,, ,, ,,	९९२२-२३	३६,८५२,४१८	१६५०-५५
४½ ,, ,, ,,	१६२८-२६	१७,५००,०००	१९५८-६८
५ ,, ,, ,,	१९३२	१०,०००,०००	१९४२-४७
४ ,, ,, ,,	१९३३	१२,०००,०००	१६४८-५३
३½ ,, ,, ,,	१९३३	१०,०००,०००	१६५४-५९
३ ,, ,, ,,	१९३५	१०,०००,०००	१९४९-५२
	कुल—	२७६,५८४,४७३	

इतना लिखने के उपरान्त यह आवश्यक है कि सरकारी-गिल्ट-एण्ड-सिक्यूरिटियों (जो सुनहरी सरकारी हुण्डी कहलाती हैं तथा बाज़ार में जिनकी बहुत काफ़ी ख़रीद-बिक्री होती है और जिनका सरकारी ज़मानतों के लिए बहुत ही उपयोग होता है) की स्थिति भी बतलाई जाय। इन हुण्डियों का दाम गिरने के दो मतलब होते हैं। या तो विदेशी वातावरण ऐसा हो कि लड़ाई छिड़ने इत्यादि की सम्भावना हो और सरकारी मुद्रा की साख के गिरने का भय हो या देश में उद्योग-व्यवसाय इतना काफ़ी हो कि इनकी पूछ कम हो या यह भी सम्भव है कि देश के पास पैसा ही न हो कि इनमें रुपया लगावे। पिछला कारण सम्भव नहीं है। लाख दारिद्र्य होने पर भी रुपया तो बाज़ार में होगा ही और व्यवसाय के अभाव में लोग इन्हीं की ओर दौड़ेंगे, अतएव उनका दाम बढ़ता ही रहेगा—माँग ज़्यादा होने पर ऐसा होता ही है। ये सिक्यूरिटियाँ वास्तव में सरकारी ऋण-पत्र हैं, पर ऋणदाता या ऋण लेनेवाला दोनों के हाथ में अन्त में पहुँचने के पहले इनका हज़ारों के हाथ में लेन-देन हो जाता है। हर एक काग़ज़ का ब्योरा बतलाना तो कठिन है, पर थोड़े में यह तो बतला ही सकते हैं कि इनका उलट-फेर कैसा होता है। सबसे अधिक प्रिय या चालू सुनहरा काग़ज़ ३½ प्रतिशत का है। इसी का उतार-चढ़ाव जानने से इस विषय का कुछ ज्ञान हो जायगा।

इनका भाव लंदन के रुख़ तथा लंदन की सलाह पर बहुत कुछ निर्भर करता है, यह हम ऊपर दिखला चुके हैं। यही सरकारी काग़ज़ लंदन की 'दृढ़' मुद्रा-रिपोर्ट तथा रुपये के सरल बाज़ार तथा अनुकूल विदेशी परिस्थिति के कारण १९३५ के दिसम्बर में, बड़े दिन की छुट्टियों में, ९६ रहा। यानी १००) का काग़ज़ ९६) रुपये में मिलता था। छुट्टी के बाद इनमें का लेन-देन कम रहा। फिर भी जनवरी १९३६ में भाव बढ़कर ९६।।।) हो गया, फ़रवरी में ९६।।।-) हो गया। इस समय ३ प्रतिशत-वाले काग़ज़ ९०।।।=) के थे। तीन प्रतिशतवाले असीमित काल के भी हैं। अतः इनका दबना स्वाभाविक ही है। पर इस काग़ज़ की शक्ति का ३½ प्रतिशत पर प्रभाव पड़ता है। जब असीमित काल के ऋणवाला काग़ज़ ८०-८१) रुपये के बजाय ९०) था तब ३½ प्रतिशतवाले का ९६।।।-) से बढ़कर फ़रवरी के मध्य तक ९७।-) हो जाना असम्भव नहीं है। फ़रवरी के अन्त तक ३ प्रतिशत का काग़ज़ ९१) हो गया। इसके फल-स्वरूप ३½ प्रतिशतवाले काग़ज़ का दाम भी बढ़कर ९९।।-) तक पहुँच गया। वर्षों के बाद ऐसे मज़े का भाव बढ़ा था। पर मार्च में जर्मनी की सेना राइन देश की भूमि में जो अन्तर्राष्ट्रीय कब्ज़े में थी, अनधिकार प्रवेश कर गई। इससे योरप में हलचल मच गई। इस हलचल से इस सरकारी काग़ज़ का दाम तुरन्त गिरकर ९६।।।) हो गया। ३ प्रतिशत भी ८८) पर आ गया। पर जर्मनी की इस चेष्टा का कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ, अतएव बाज़ार सँभलने लगा और उसका भाव ९७।।) तक आ गया। मध्य अप्रेल तक ९८।।=) तक हो गया। स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटी भी ९७ पौंड १५ शि० तक पहुँच गई। इसी के बाद आस्ट्रिया में सेना-सञ्चालन होते देखकर लोग फिर घबराये, पर दाम ज़्यादा न गिरा। मई में सरकार का १२ करोड़ का ऋण-पत्र निकला। इससे, यानी इसकी ज़बर्दस्त माँग को देखकर ३½ प्रतिशतवाला काग़ज़ भी उत्साहित होकर ९९।।) तक पहुँच गया। जून-जुलाई में २-३ आने भाव बढ़ता ही रहा। सितम्बर में फ़्रैंक (फ़्रांस की मुद्रा) का मूल्य कम होने से इस सिक्यूरिटी-पत्र की माँग और बढ़ी और वह ९९।।।) हो गई। पर यह माँग और भी बढ़ी, यहाँ तक कि अगस्त में १००।।।-) हो गई—मूल्य अपनी सीमा से आगे चला गया। पहले के ख़रीदारों को बड़ा लाभ हुआ। नवम्बर में सम्राट् एडवर्ड के विवाह की ख़बर—उनके राजगद्दी-त्याग की हलचल—से यह भाव गिरकर ९८।।-) हो गया, पर नये सम्राट् के गद्दी पर बैठते ही पुनः १००।।) हो गया।

सन् १९३७ में स्पेन के युद्ध, इटली-जर्मनी के मेल से उत्पन्न परिस्थिति तथा जापान-चीन की लड़ाई के कारण भाव बहुत चढ़-उतर रहा है। पर जहाँ तक हमें मालूम है, ९७-९८) से कम नहीं गया। अभी इसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। वर्ष भर का ब्योरा तो वर्ष के अन्त में ही दिया जा सकता है। इस प्रकार सरकार की माली हालत का कुछ अन्दाज़ हमें मिल गया। अब हम प्रान्तीय सरकारों का संक्षेप में ज़िक्र करेंगे।

प्रान्तीय सरकार के ऋण

हर एक प्रान्तीय सरकार ने जो ऋण लिये हैं तथा इस समय उनकी जो माली हालत है उसका जो कुछ

थोड़ा-बहुत विवरण हम दे सकेंगे वही यहाँ देंगे। पर १९३६ की उनके ऋण की दशा पूरी तरह बतला देना उचित होगा। १९३६ में असल में प्रान्तीय ऋणों का 'युग' नहीं था। यह युग तो १९३७ में था। १९३७ के सितम्बर में ही क्रमशः पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त तथा बंगाल व मदरास की सरकारों ने २ करोड़ रुपये का (प्रत्येक) क़र्ज़ लिया है। ये क़र्ज़े भी तुरन्त वसूल हो गये और इनको प्राप्त करने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई।

पर १९३६ में प्रान्तीय ऋणों में केवल युक्त-प्रान्त की सरकार का दो करोड़ रुपये का ऋण है, जिसका हमें ज़िक्र करना है। १५ सितम्बर १९३६ को इस ऋण के लिए एक दिन के भीतर ही रुपये प्राप्त कर लिये गये। यह ऋण-प्रान्तीय सरकार की 'हाइड्रो-इलेक्ट्रिक योजना', ग्रामों में ट्यूब-वेल के प्रचार की योजना तथा कृषकों और म्युनिसिपल संस्थाओं को ऋण देने की योजना के लिए चालू किया गया था। ३ प्रतिशत सूद है तथा चालू १००) ही था। १५ सितम्बर १९६१ इसके भुगतान की अन्तिम तिथि है तथा सरकार इसके पहले भी ३ महीने का नोटिस देकर इसको अदा कर सकती है। आय-कर इस पर भी लगेगा। ऋण-पत्र १००)-५००) १०००) १०,०००), २५,०००) ५०,०००) तथा १,००,०००) रुपये के प्रामिसरी नोटों में चालू किया गया था। इन प्रामिसरी नोटों की पुश्त पर हस्ताक्षर दूसरे के नाम ट्रांसफ़र भी किया जा सकता है। इन ऋण-पत्रों की अदायगी या इनके मूल्य के गिरने के अवसर के लिए प्रान्तीय सरकार १९३७-३८ के बजट से प्रतिवर्ष समूचे ऋण का १$\frac{१}{४}$ प्रतिशत बचाकर रखती चलेगी। इसके लिए बेचनेवाले दलालों को (जो प्रान्तीय सरकार के द्वारा दलाल के रूप में स्वीकृत हों) दो आना प्रतिशत दलाली भी दी गई थी और दलालों ने काफ़ी फ़ायदा उठाया था।

१९३६ में जिन दो प्रमुख प्रान्तीय ऋणों के आँकड़े हमें प्राप्त हो सके हैं वे नीचे दिये जाते हैं। इनसे बहुत कुछ अन्दाज़ लगाया जा सकता है और यह भी ज्ञात हो सकता है कि कम-से-कम दो प्रान्त कितने ऋण-ग्रस्त हैं।

ऋण—	चालू हुए	वाजिब	कब अदा होंगे
५ प्रतिशत युक्त-प्रान्तीय-ऋण	१९३२	२,५७,८९,१००	१९४४
३ प्रतिशत ,, ,, ,,	१९३६	२,००,०००,००	१९६१-६६
५$\frac{३}{४}$,, पंजाब-ऋण	१९२५	८५,९२,८००	१९३७
४ ,, ,, ,,	१९३३	३,२४,४१,६००	१९४८

यहाँ यह लिख देना सामयिक होगा कि पंजाब-सरकार ने अपना १९३७ का ऋण १९२५ वाले ऋण की अदायगी के लिए भी लिया था। प्रान्तीय सरकारों की माली हालत के बारे में यह भी कहा जा सकता है कि इस वर्ष बम्बई, पञ्जाब, बंगाल, मदरास, संयुक्त-प्रान्त—प्रायः सभी के बजट में घाटा रहा और किसी भी प्रान्त ने नवीन शासन-विधान में बहुत ही सन्तुलित बजट के साथ नहीं प्रवेश किया, अतएव भविष्य के विषय में कोई अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता।

जहाँ तक देशी रियासतों का ताल्लुक़ है, केवल मैसूर, ट्रावंकोर तथा कोचीन की सरकारों के ऋण बाज़ार में बहुतायत के साथ काफ़ी चालू दशा में पाये जाते हैं। ये सभी ऋण पिछले १६-१७ वर्षों के भीतर के हैं और या तो व्यापारिक अभ्युदय के काल में अथवा एकदम गिरी हालत के समय लिये गये हैं। मैसूर-सरकार पर सन् १९२० का १,०८,५७,२२५) रुपये का ऋण है, जिसे अब तीन ही वर्ष में चुकाना पड़ेगा। १९२१ में उसने २५,५०,८१२$\frac{१}{२}$) रुपये का ऋण पुनः लिया, जिसे उसको १९४१-४५ के भीतर चुकाना होगा। उसने १९३० में १,६३,४४,३००) का ऋण लिया, जो १९५५ में चुकता होगा। इसी वर्ष उसने २,४५,९२,०००) का एक ऋण और लिया है, जो अगले वर्ष ही दे देना होगा। इस सरकार ने १९३३ में २,४८,२९,०००) रुपये का क़र्ज़ फिर लिया, जो १९५३-६३ के भीतर चुकाया जायगा। १९३४ में ५० लाख रुपये का क़र्ज़ फिर लिया गया, जो १९५१-५८ में वाजिबुलअदा होगा। १९३६ में ५० लाख रुपया फिर लिया, जो १९५६-६१ में दिया जायगा। इस प्रकार कुल [illegible]) मैसूर-सरकार को देना है, और वह भी

अधिक-से-अधिक सन् १९६३ तक। मैसूर में आज जो इतनी उन्नति देखी जा रही है वह इसी का परिणाम है। पर इतना अधिक क़र्ज़ कैसे अदा होगा, जब मैसूर के व्यावसायिक उद्योगों में से अधिकांश विशेष लाभदायक नहीं हैं ? यह उसके विशेषज्ञों के सोचने की बात है। १९३६ में कोचीन तथा ट्रावंकोर की सरकारों ने क्रमशः ३० व ५० लाख रुपया क़र्ज़ लिया, जिसे क्रमशः १९५६-६१ तथा १९५६ में उन्हें चुकाना होगा। ये रक़में इन सरकारों के लिए ज़्यादा नहीं हैं।

नई सभ्यता तथा नये आर्थिक विचारों के अनुसार किसी सरकार का ऋणी होना बुरा नहीं, बल्कि अच्छा समझा जाता है। पर इस ऋण का कभी अन्त नहीं होता। एक लेकर दूसरे का भुगतान होता रहता है। पर जब चुकाते-चुकाते ऋण का चक्कर बहुत ही पेचीदा हो जाता है और राष्ट्र पर युद्ध ऐसी कोई विपत्ति आ जाती है, उस अवसर पर वही दशा होती है जो आज जर्मनी की हुई है। जब उसने देखा कि वह ज़्यादा चुकता न कर सकेगा तब उसने कह दिया कि "हम न देंगे। लेना हो तो ज़बर्दस्ती ले लो।" या फ़्रांस ऐसे राज्यों की तरह परेशानी होती है। कई मंत्रिमण्डल बनते-बिगड़ते हैं और परेशान होकर ऋणदाता से भीख माँगी जाती है कि भाई, बहुत दे चुके, बक़ाया छोड़ दो। फ़्रांस तथा ब्रिटेन ने अमरीका से ऐसी ही प्रार्थनायें की थीं। इसलिए ऋण का लेना राष्ट्र के लिए आवश्यक होते हुए भी उसकी आर्थिक शक्ति का द्योतक नहीं होता। क़र्ज़ तो क़र्ज़ ही है, चाहे वह व्यक्ति ले या राष्ट्र। भारत पर ऋण का उतना बोझ नहीं है जितना कि 'ब्रिटेन के चार्ज' और इनका बन्धन न होने पर वह ऋण के बन्धन से भी छूट सकता है।

कौन ?

लेखिका, श्रीमती दिनेशनंदिनी चोरड्या

१

तारों की तड़पन हो तुम या
हो जूही के मधुर हास
गजरों के कोमल बन्धन हो
या मधुवन की सुरभित साँस।

२

जटिल ग्रन्थि हो जीवन की
या अलियों का अमृत गुञ्जन,
उलझे कुन्तल किरण बाल के
या वसुधा का सम्मोहन।

३

प्रथम मिलन की मादकता हो
या विछोह का चिरकम्पन
सिन्धु हृदय की चंचल लहरी
या भावों का शुचि मन्थन

४

जर्जर आँचल के प्रसून हो
या साधक की अथक चाह,
मन-मन्दिर की चेतन प्रतिभा
या हो उसके उर की चाह !!

मरण-बेला

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

(१)

समय—मध्यनिशा, भयानक अन्धकार, कभी कभी बिजली की छटा।

स्थान—रणस्थली। कोसों तक फैली हुई।

दृश्य—संख्यातीत घायल तड़प रहे हैं, दम तोड़ रहे हैं। "पानी" "पानी" चिल्ला रहे हैं, ऐंठ रहे हैं, कराह रहे हैं। मुर्दों पर शृगाल और कुत्तों के हमले हो रहे हैं, कोलाहल मचा हुआ है। हवा में विषाद भरा हुआ है, हाहाकार भरा हुआ है, उदासी और कठोरता भरी हुई है। रक्त की कीच में घायल लोट रहे हैं, प्यास के मारे अपना ही ख़ून चाट रहे हैं। महामरण का मेला लगा हुआ है। भीम भैंसे पर सवार यमराज प्रकट होते हैं—क्षीण, लाल, मटमैला प्रकाश छा जाता है।

एक आहत योद्धा—"तुम कौन हो महाबाहो ?"

यमराज—मैं! मैं हूँ यमराज, अन्तक। मेरे सिपाही! मैं तुम जैसों को पीड़ा से मुक्त करके स्वर्ग के सिंहासन पर बैठाता हूँ, मैं स्वर्ग का दूत हूँ, मार्ग-प्रदर्शक हूँ, साथी हूँ, मैं शान्तिप्रदाता और नवजन्म का संदेशवाहक हूँ। मैं यहाँ, इस पवित्र भूमि पर आया हूँ तुम्हें वहाँ ले चलने, जहाँ अणिमा आदि सिद्धियाँ आसन, पाद्य, अर्घ्य लेकर तुम्हारा पथ निहार रही हैं, भगवती रणचंडी तुम्हारे लिए मुंडमाला लेकर खड़ी हैं और भूतनाथ तुम्हें अपना रूप प्रदान करने को आकुल हैं—वीर! मैं यमराज हूँ, महाकाल हूँ। यह मेरा यमदंड तुम्हें क्षण भर में समस्त कष्टों से दूर कर देगा। बोलो—हो तैयार ?

आहत योद्धा—देव! प्रणाम। मैं—मैं तुम्हें जानता था देव! पर इस रूप में नहीं, इस भयानक आकार-प्रकार में नहीं। मैं नहीं कह सकता—नहीं सोच सकता कि सचमुच तुम कौन हो। यदि शक्ति होती, यदि आहत न होता, तो मैं तुम्हारी परीक्षा लेता तलवार की कसौटी पर खरे-खोटे की—देवता हो या मनुष्य,

देव! यह शृगाल मेरी आँत खींच रहा है। ऐसी लाचारी है।

हाँ, तो मैं जानता था, तुम सदा मेरी तलवार की छाया में विचरण करते हो, यही तुम्हारा निवास-स्थान है। मैं जानता था, तुम सच्चे वीर के प्रबल रोष में रहते हो। मैं जानता था, तुम 'मारू-राग' में रहते हो। मैं जानता था, तुम मेरी रोषभरी दृष्टि में रहते हो। पर यह क्या देख रहा हूँ ? भैंसे पर सवार पुञ्जीभूत ज्वाला की तरह एक प्रज्वलित मूर्ति! नहीं, तुम यमराज नहीं हो। नहीं, तुम महाकाल नहीं हो। आर्य! जो अन्धकारमयी निशा में, अपने आपको छिपाकर, किसी आहत, लाचार, मरणोन्मुख योद्धा के सामने अस्त्र धारण करके जाता है वह संसार को अपने चरणों के नीचे दबाकर तांडव-नृत्य करनेवाला महाकाल नहीं कहा जा सकता। मैं सोचता हूँ, तुम भी सोचो हे वीर! मैंने जन्म भर ख़तरे से आँख-मिचौनी खेली है, मरण को अपनी म्यान में क़ैद करके रक्खा है, जीवन को गेंद समझकर दोनों हाथों से उछाला है—एक बार नहीं, दो बार नहीं, बार-बार। यही मेरा प्यारा खेल रहा है, यही मेरा एक लुभावना मनोविनोद रहा है। मुझे क्या चिन्ता यदि मेरे सामने मरण आकर दहाड़े, यमराज आकर यमदंड के महातेज से मेरी आँखों को झुलसाना चाहें या मृत्यु आकर पिशाचिनों के साथ किलकारियाँ भरे? मैंने भय का हृदय चीरकर उसका ख़ून पी लिया है—संसार में भय का अस्तित्व ही नहीं रहा। फिर उसका डर कैसा ? तुम कहते हो, मैं स्वर्ग जाऊँगा। पर तुम जानते हो, देव, तुम्हें मालूम है, महाबाहो, वीरों का स्वर्ग कहाँ है, किधर है, कैसा है। नहीं जानते? अफ़सोस! जहाँ सुख से बैठने को आसन मिले, पंचदशी कामिनियाँ सेवा करती हों। संसार के कोलाहल से परे जो स्वर्ग है वह है कायरों का स्वर्ग। उस

गंदे कीटों को वहाँ जाकर बसा देना। योद्धाओं का स्वर्ग वह नहीं है, जहाँ तुम मुझे ले जाना चाहते हो। हमारा स्वर्ग यही है, जहाँ मैं पड़ा हूँ, तलवारों की झनझनाहट में जहाँ हमारा स्वर्गीय संगीत गूँजता है। आघात-प्रतिघातों में हमारा स्वर्ग बसा हुआ है, महाकर्म कोलाहल में हमारा स्वर्ग शतदल की तरह फूल रहा है। खाइयों में, मैदान में, घाटी में आहत होकर या सिर कटवा कर मैदान में मरना ही हम योद्धाओं का चरम सुख है। काँटों का आसन ही हमारा आसन है और ये गृद्ध, सियार, कुत्ते हमारे अपने हैं, मित्र हैं, पुरजन हैं, हितैषी हैं और हमारी टूटी हुई तलवार ही स्वर्ग की नसेनी है। याद रहे, महाबाहो, तुम एक योद्धा के सम्मुख खड़े हो।

देव! मैं तुम्हारे बतलाये हुए स्वर्ग को ठोकर मारता हूँ। मुझे यह दुःख ही रहेगा कि तुम्हारे यमदंड के प्रहार का कोई उत्तर मैं नहीं दे सकूँगा। आज तक किसी भी प्रहारकर्ता का एक भी प्रहार मेरे यहाँ ऋण-रूप में नहीं है। यदि एक पाया तो चार लौटाये। पर देव! तुम्हारा यह अन्तिम प्रहार मेरे यहाँ रह गया, मुझे इसका दुःख है। यदि तुम मनुष्य-रूप में अवतरित हुए और मैं भी मनुष्य ही रहा तो मुझे... इ...स...की...यां...द...दि...ला...ना...ख़ै...र!

(२)

उषाकाल। सुरम्य-वाटिका। मधुऋतु। वृक्ष फूलों से लदे हुए हैं। डाल पर कोयल बोल रही है। इठलाता हुआ मलयानिल डोल रहा है। उषाकाल की सुनहरी विभा पृथ्वी पर मचलती हुई उतर रही है। बाग़ में एक सुन्दर चौतरा है। कवि मृत्यु के पालने पर हौले हौले झूल रहा है। सर्वत्र आलस्यमयी शान्ति।

मृत्यु का प्रवेश—श्वेतवस्त्रावृता परम कमनीय मूर्ति। शान्त, गम्भीर, सकरुण कोमल मुखमंडल, झुकी हुई आँखें और भीगी हुई पलकें। हाथों में नन्दनवन के पुष्पों के कंकण। परम लुभावनी छटा चन्द्रविभानना। मराल गति।

कवि—वनदेवी! मेरी चिरसाधना की मूर्ति! तेरे अरुण कोमल चरणों में कोटिशत प्रणाम। किधर पधारीं मेरी कविते! किन शब्दों में अपने मनोभाव व्यक्त करूँ मेरी कामना की देवी? मैंने जन्म भर तेरी आराधना की, पर तू आई भी तो उस घड़ी जब मैं अपने जीवन-नाटक का अन्तिम अंक लिखना समाप्त कर रहा हूँ। अब इतना ही लिखना बाक़ी है कि क़लम को फिर से दावात का संयोग नहीं होगा। उस पर जितनी रोशनाई चढ़ी हुई है बस उतनी ही यथेष्ट है। मेरी हृदयेश्वरी! तू ऐसे अवसर में आई तो क्यों? बोल बोल मेरी चिरध्यान की रानी!

मृत्यु—मेरे कोमल कवि! मैं शब्द खोज रही हूँ अपना परिचय देने के लिए। मुझे भय है कि संसार जिस नाम से मुझे पुकारता है, यदि उसी नाम से अपना परिचय दूँ तो सम्भवतः तुम्हारे कोमल हृदय को एक आघात लगेगा। तुम सदा कोमल भावना के प्रियतम बने रहे। मेरे कवि! सँभाल लो अपने हृदय को। मैं अपना नाम लेती हूँ। मैं मृत्यु हूँ। (कवि सिहर उठता है) सुन लिया, मैं कौन हूँ। चलो, तुम्हें मा विश्वभारती बुला रही हैं। उनकी वीणा का शृंगार एक युग से नहीं हुआ है। उनके पादपीठ पर आज तक तुम्हारे सजाये हुए पुष्प पड़े हैं। माता के चरणों के स्पर्श से उनमें अब तक म्लानता नहीं आने पाई। पर नये रूप से शृंगार-पूजा तो होनी ही चाहिए। चलो, आकाश-गंगा का तट तुम्हारे बिना सूना है। वहाँ शशि-संभवा के बिना उदास-सी दिखलाई पड़ती है। सौन्दर्य है, पर उसमें जीवन नहीं है। आदि कवि उदास हृदय से 'श्रीराम' 'श्रीराम' गुनगुनाया करते हैं। उनका आश्रम भी थका-सा जान पड़ता है। मेरे प्यारे कवि! चलो।

कवि—मेरी प्यारी मृत्यु! आ हृदयेश्वरी! तेरे ठंडे और चेतनाहीन हाथों को चूम लूँ मेरी साधना की अन्तिम निधि! यह संसार क्या है देवी? मरण की आँधी के नीचे खिले हुए पुष्पों का एक अभागा बाग़ है। केवल 'गति', एक क्षण भी विराम नहीं—क्षण, पल, घटिका के रूप में जीवधारी अविराम गति से तुम्हारी ओर चले जा रहे हैं। देखने में संसार का बाह्यरूप स्थिर है, बहुत कम परिवर्तन लक्षित होता है, पर भीतर ही भीतर परिवर्तन की जो चर्ख़ी चल रही है उसका कोई ठिकाना नहीं है। फूल का अल्हड़, कोमल मनोहर शैशव निदाघ की ज्वाला में अत्यन्त

है। घटायें जल की नन्हीं-नन्हीं बूँदों के रूप में अपने को परिवर्तित करके धरित्री की माँग को मोतियों से भर देती हैं। पर मेरी प्यारी जीवन सहचरी! ज़रा सोच लो, उनका अन्त भी हो जाता है, उनकी सत्ता भी विलीन हो जाती है, उनका जीवन भी दो बूँद आँसुओं की तरह मिट्टी में मिल जाता है। मैं अपने विषय में नहीं सोचता, अपनी चिन्ता नहीं करता रानी! मैं जानता हूँ, जीवन बिजली की चमक है, कल्पना की तरंग है। इसमें स्थायित्व कहाँ? पर चाहता हूँ कि मेरे हृदय में जो वेदना है, जो निराशा है, जो कसक है, अपने लिए लेता जाऊँ और मेरे पद्यों में जो माधुर्य है, जो मादकता है, जो अपनापन है, वह संसार के, विश्वदेवता के चरणों पर न्योछावर करता जाऊँ। मैं कल फूलों में हँसूँगा, तरंगों में गाऊँगा, चाँदनी बनकर संसार की कोमलता पर मचलूँगा, किसी की याद बनकर सहृदयों के मानसपटल से खेलूँगा। आज मैं रेखाओं के भीतर क़ैद हूँ, कल विश्व का सिहरन बनकर किसी को हँसाऊँगा, किसी को उदास कर दूँगा। आज मैं 'यत्र हूँ', 'तत्र हूँ', कल 'सर्वत्र' के रूप में परिणत होकर अनन्त बन जाऊँगा। देवि! इस पुण्यप्रभात-वेला में मैं अपने प्राणों के शतदल की स्नेहाञ्जलि तुम्हारे चरणों पर अर्पित करता हूँ—

अष्टकुलाचलसप्तसमुद्रा ब्रह्मपुरंदरदिनकररुद्राः।
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः॥

(३)

समय—दोपहर। जनपद। कोलाहलपूर्ण। सुन्दर गृह-पुरजन-परिजन-समवेत। एक शान्त कमरा। खाट पर एक जराजर्जर वृद्ध, मृत्यु की प्रतीक्षा। अर्धोन्मीलित कोटरगत आँखें। सुन्दर वस्त्रावृत मरण का प्रवेश—हाथ में सोने की छड़ी, सिर पर रत्नमय मुकुट। मुखमंडल प्रभापूर्ण। अगरु-धूप से कमरा का वायुमंडल आकुल हो उठता है। गम्भीर शान्ति।

मरण—गृहस्थ! तुम मुझे पहचानते हो? मैं मरण हूँ। तुम्हारे दिन पूरे हुए, तुमने सौ वर्ष तक गृहस्थाश्रम का सुखोपभोग किया। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, मान, धन, ... लोक में जहाँ तुम्हारे पिता, माता, मित्र तुम्हारा स्वागत करने को आकुल हैं, तुम्हारी पतिप्राणा साध्वी पत्नी तुम्हारे लिए नन्दनवन के पारिजात की माला बनाकर उत्सुकता-पूर्वक तुम्हारी राह देख रही है। अक्षय यौवन प्राप्त करो और इस जराजीर्ण, क्लान्त शरीर को केंचली की तरह उतारकर फेंक दो मेरे मित्र! मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। सुनो, स्वर्ग के बाजे बज रहे हैं, स्वर्ग के धूप की महक आ रही है। आज पुण्य का दिन है। महाशिवरात्रि है। चलो—समय हो गया।

वृद्ध—अहो भाग्य मेरे आराध्यदेव! अहो भाग्य! मुझ-सा सुखी कौन होगा नाथ? अब गृहस्थी में, इस प्रपंच में क्या धरा है? मैं उसी दिन से तुम्हारी व्याकुल प्रतीक्षा कर रहा था, कृपालो, जिस दिन मेरी जीवन-सहचरी मुझे त्यागकर, मेरी वृद्धावस्था का कोई मोह मन में न रखकर, कल्याणपथ से अमरधाम को चली गई। जाते समय उसने मेरे चरणों की धूलि को सिर पर चढ़ाया था और कहा था, 'फिर मिलूँगी।' आज बड़े भाग्य से, पर पूरे बीस साल के बाद, वह शुभ अवसर आया। मुझे दुःख है कि मैंने उस ग़रीबनी को जिसका एकमात्र आधार मैं ही था, बीस वर्ष तक एक अनजान देश में एकाकी निरवलम्ब अवस्था में छोड़ दिया। वह न जाने क्या सोचती होगी, मेरे प्रति उसके मन में कैसे कैसे भाव उठते होंगे? आह! तुम आये, तुम्हें आना था आ गये, पर बड़ा विलम्ब किया। मैं राह देखता देखता थक गया प्रभो!

मैं जानता हूँ, सब काम समय पर होता है। जब समय आ जाता है तभी कुछ होता-हवाता है, यों नहीं। मैं आज पूर्ण सुखी हुआ, पर—बस, एक विनय है। क्या पौत्र का ब्याह देख सकता हूँ? छोटा पौत्र है, मातृहीन है। मैंने ही उसे पाला है, वृक्ष की तरह स्नेह-सलिल से सींच सींच कर बड़ा किया है। इसी मास में ब्याह होने को था। मेरी अवस्था देखकर रोक दिया गया। बस, इतनी ही विनय है। किन्तु सोचता हूँ, भगवन्, यह मोह है, यह आत्म-प्रवंचना है, यह अशोभन विचार है। नहीं, मैं चलूँगा। आशी-

मात्र अधिकारी है, खेलौना है, दुलारा है। वह फूले-फलेगा। अब यहाँ रहकर क्या करना है? महीनों से खाट पर पड़ा हूँ। दवा खाते खाते जी ऊब उठा है। मैं कहता हूँ, मैं मरूँगा। चिकित्सक कहते हैं, तुम्हें जीना पड़ेगा। क्यों? इस तनातनी के क्या मानी? मैं किसी उपयोग का नहीं रहा। देखना, सुनना, चलना-फिरना, बोलना सभी एक एक करके जवाब दे चुके हैं, इन्द्रियों ने जवाब दे दिया है, कर्म-लालसा मिट-सी रही है, फिर भी लोग मुझे जिलाने पर तुले हुए हैं। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सभी मुझे नहीं मरने देना चाहते। इस टूटे हुए देह-पिंजर में प्राणपखेरू पंख फड़फड़ा रहे हैं, पर इसे लोग स्नेह से घेरकर बन्दी के रूप में रखना चाहते हैं। शरीर निर्बल हो चुका है, जीवन का भार, साँसों का भार वहन करने में अक्षम हो चुका है, फिर भी मेरे स्नेही मुझे जिलाये रखना चाहते हैं। मेरे प्रभु! अब दया करो। मैं तुम्हारे साथ ही जाऊँगा। बिदा। मेरा हरा-भरा परिवार का बाग़ बिदा, मेरे पुण्य-पाप, यश-अपयश बिदा, मेरे अपने पराये बिदा। यह नाटक का अन्तिम अङ्क जितनी शीघ्रता से समाप्त हो, उतना ही अच्छा। बहुत देखा, बहुत सुना। संसार की रङ्गीनियों को देखा, धूपछाँह का नर्तन देखा, सुख-दुःख के चक्र को घूमते देखा, जीवन-मरण की भाँवरें देखीं। अब अन्तिम बार आँखें बन्द कर लेना चाहता हूँ। आँखें थक गई हैं, मन थक गया है, प्राण इस घर से ऊब उठे हैं। चलो प्रभो! मैं प्रस्तुत हूँ। हरिः ओ३म्!

काया-सराय में जीव मुसाफ़िर
कहा करत उन्माद रे!
रैन-बसेरा कर ले डेरा
चला सवेरे लाद रे।

(४)

समय—संध्या। रात की काली छाया सुनहरी पृथ्वी पर पड़ रही है। स्थान—एक धनी महाजन का घर। एक कोठरी। शिला जैसे प्रचंड द्वार। दीवार के सहारे बड़ी बड़ी तिजोरियाँ। बीच में टूटी हुई खाट पर कथरी लपेटे एक अधेड़ पड़ा है। मैली धुँधली आँखों के कोने में कीच

कमरे में पाख़ाने और पेशाब की बदबू। हवा विषाक्त। सर्वत्र कूड़ा-कतवार। खाट के नीचे बहियों का ढेर। एक मोटी घिनौनी-सी बिल्ली चूहे की ताक में खाट के नीचे बैठी है—बस। काल का प्रवेश। काली डरावनी मूर्ति। हाथ में मोटा डंडा। सिर पर बड़ा-सा लाल साफ़ा। शरीर पर लाल कुर्ता, मानो आग की लपटें हों—ख़ूनी आँखें। दाढ़ी-मूँछों से भरा हुआ क्रूर चेहरा। चौड़ी छाती, लम्बा क़द—डकैत की तरह।

काल—होश कर। तुझे चलना होगा। एक बार अपनी पाप की कमाई को आँखें भरकर देख ले। इन तिजोरियों में ग़रीबों का ख़ून तूने जमा किया है। याद कर ले अपनी करनी को। तेरे प्रत्येक रुपया पर किसी न किसी ग़रीब के ख़ून का दाग़ लगा हुआ है। तेरे लिए नरकाग्नि में मैं थोड़ी-सी लकड़ी डाल आया हूँ। तेरे स्त्री, पुत्र आदि सब वहाँ घी लिये खड़े हैं। तू पूर्णाहुति बनकर उसमें पड़ेगा। क्या सोचता है रे अर्थपिशाच? अब छल-प्रपंच की घड़ी व्यतीत हो गई। बोल है तैयार चलने को या लगाऊँ एक डंडा तेरी पापी खोपड़ी पर। मैं चाहता हूँ कि तेरी अधम काया को मुझे स्पर्श न करना पड़े। मेरा कहा मान जा और चलने को तैयार हो जा। जल्दी कर।

महाजन—तुम—तुम कौन हो दादा? देखने में तो डकैत की तरह लगते हो। बाप रे! दिन दहाड़े लूट! सरकारी राज्य का भी कुछ ध्यान है? पकड़े गये तो एकदम कालापानी, अंडमन की ज़हरीली हवा में। अच्छी बात है। कुछ तुम भी ले लो। मेरे पास इन तिजोरियों की ताली नहीं है। मैं इस ख़तरे से सावधान रहता हूँ। खोज लो, विश्वास न हो तो। मैंने इस बार बड़ा घाटा उठाया है। रुई के बाज़ार में एकदम गिरती आ गई। बस मेरी गाढ़ी कमाई के बीस हज़ार स्वाहा हो गये। अरे! बीस हज़ार एक बड़ी रक़म होती है। समझे? केवल मेरा नाम बड़ा है। कुछ है नहीं। सस्ते ने चौपट कर दिया। (कुछ देर सोचकर) हाँ, तुमने क्या कहा? काल! तो क्या तुम मेरे काल हो? मैं अभी मरना ही नहीं चाहता। जानते हो? शिवदेनी पर मामला दायर करना है। तीन सौ

हुए। जोड़ा तो कितना हुआ। ४३२) सूद और ३००) नक़द, कुल ७३२)। बड़ा उपजाऊ खेत है। डिग्री हुई नहीं कि एक, दो, तीन। पैरों पड़ता हूँ, मेरे दादा। एक साल के बाद आना। उस समय चलूँगा और अवश्य चलूँगा। शिवदेनी का काग़ज़ तमादी हो जायगा और खेत भी हाथ से निकल जायँगे। हरिभगत का भी मामला दायर हो चुका है। इसी महीने में समझौता हो जाने की बात है। ७४) नक़द और ३६६) सूद। १०) छोड़ दिया। बस ४६०) कुल! हिसाब बेबाक! भाई, अत्याचार मत करो। मेरे गाढ़े पसीने की कमाई है। जिनके सोने के गहने गिरवी हैं उनकी चिन्ता नहीं है। ५०) का सोना पाया १५) दिया। पच गया तो लाभ ही लाभ है। पर हैण्डनोटों का क्या होगा? नहीं दादा, मैं नहीं जाता। कुछ ले लो तुम भी और चलते बनो। पान-तम्बाकू के लिए ५०) काफ़ी हैं। बस, अधिक इस समय नहीं बन सकता। कहो तो दो-चार रुपये और हाज़िर कर दूँ, पर घाटे से जी छोटा हो गया है। यदि पिछले साल आते तो १००) देता। तीसी में बड़ा लाभ हुआ था—एक-दम ५,०००) समझते हो न जी?

हाँ जी, क्या सोच रहे हो? बोलते क्यों नहीं भाई? कह तो दिया कि मैं नहीं जाता। क्या ईश्वर के यहाँ भी ऐसी धाँधली चलती है? न्याय नहीं है? तभी तो संसार से ईश्वर की सत्ता उठी जा रही है। अभी मेरी उम्र ही कितनी हुई है? केवल चौहत्तर साल की। मेरे पिता ६५ वर्ष तक जीवित रहे। सामनेवाली तीनों तिजोरियाँ उन्हीं की ख़रीदी हुई हैं। छोटा व्यापार था। यही महाजनी ५।६ हज़ार की। पर अफ़ीम के व्यवसाय में काफ़ी कमा लिया। अब आबकारीवाले बड़ी जाँच करते हैं। पहले यह बात न थी। हम गुड़ की चक्की में छिपाकर अफ़ीम भेजते थे। वे दिन चले गये। अरे! अरे! मेरा गला क्यों दबाते हो? सौ ले लो, नहीं नहीं, पाँच सौ। हाय मेरी सम्पत्ति!

(५)

समय—रात का प्रथम प्रहर। स्थान—निविड़वन। झिल्लीरव मुखरित एक झाड़ी। दुर्गम पथ। सघन वन। निर्जनता, भयानक वातावरण। सामने सूखी नदी—जङ्गली नाले के रूप में। शुक्ला पंचमी की उदास चाँदनी। हवा में भारीपन, शुष्कता, कुछ कुछ गर्मी-धूलि और व्याकुलता। झाड़ी के किनारे एक 'सर्वहारा' पड़ा है कुश-कंटकों पर। सूखा हुआ शरीर, तेजोमयी आँखें और कठोर गम्भीर मुख-मुद्रा। पीड़ा के कारण या कुछ मानसिक उत्तेजना के कारण दाहनी मुट्ठी कस कर बाँधे हुए दाँतों से होंठ चबा रहा है। कराहना क्या है, ग़ुर्राना है। एक सैनिक के रूप में अन्तक का प्रवेश। कमर में लटकती हुई बिजली-सी तलवार, हाथ में लम्बा शूल। शरीर वर्माच्छादित। प्रसन्न मुखमण्डल, स्नेहस्निग्ध-कोमल दृष्टि।

अन्तक—मेरे मित्र! मुझे पहचानते हो? तुमने जीवन भर मुझे बुलाया, पर मैं सदा तुम्हारे साथ रहने पर भी सामने नहीं आया। तुमने मुझसे साक्षात्कार करने के लिए क्या-क्या नहीं किया, ख़तरे से आँख-मिचौनी खेली, विपत्ति को गले लगाये रहे, विनाशाग्नि में समिधा बन कर बार बार गिरे, पर मित्र, मैं नहीं आया, नहीं आया, तुम्हें बार बार ललचाता रहा। आज वह अवसर आ गया है कि मैं तुम्हें अपने साथ उस धाम को ले जाऊँ जहाँ ऊँच-नीच का सवाल नहीं है, धनी-ग़रीब का दुराव नहीं है, बड़े-छोटे का मापदण्ड नहीं है। एकमात्र सत्, चित् और आनन्दमय लोक में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है—वहाँ न शोषक हैं न शोषित, न शासक हैं न शासित। चलो मित्र। तुम्हारी स्त्री जो अपनी 'आत्मा' की रक्षा के लिए जल में डूब गई थी, वहाँ प्रस्तुत है। तुम्हारा छोटा बच्चा जो अपनी मा के आँचल से बँधा हुआ था, वहाँ तितलियों के साथ खेल रहा है। तुम्हारा बड़ा बच्चा जो भीख माँगता माँगता किसी धनी के मोटर से दबकर मर गया था, वहाँ माता की सेवा में लगा रहता है। एक तुम्हारी ही कमी है। चलो प्यारे साथी! विलम्ब हो रहा है। मैं अन्तक हूँ, काल हूँ। मैं संसार को नूतन जन्म का संदेश सुनाने प्रतिक्षण धरातल पर आता हूँ—मैं मृत्यु के रूप में नवजन्म का सुन्दर स्वप्न दिखलानेवाला जादूगर हूँ। चलो—शीघ्रता करो।

सर्वहारा—अरे अभागे! तुम आज आये और वह भी बिना बुलाये। बेशर्म! उस दिन तुम कहाँ थे जब अपनी जवानी के अभिशाप के कारण, सुन्दरता के अभिशाप के कारण, रक्षक-स्वामी के अत्याचार के कारण—हाय! आज भी उसकी याद छाती में प्रतिहिंसा की ज्वाला भड़का देती है—अपने दुधमुँहे बच्चे के साथ तालाब में कूद कर मेरी पत्नी को मरना पड़ा। क्या ग़रीबों का जीवन जीवन नहीं होता? क्या ग़रीबों के आत्माभिमान, सत्य, धर्म, प्रतिष्ठा से कोई मतलब नहीं? मैं उस अत्याचारी की ज़मींदारी में रहता था। बस, यही अपराध था और दूसरा अपराध मेरी पत्नी का सुन्दर होना, हँसमुख होना। ख़ैर, देखा जायगा, यदि मैं जीवित रह गया! सुनो, मैं कहता हूँ, मेरे अन्तक, मैं कहता हूँ, मैं मरना नहीं चाहता। यदि मैं मरा तो संसार को आराम की साँस लेने का अवसर प्राप्त हो जायगा जैसा कि मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ, मेरी एकान्त इच्छा है कि संसार को नरक बना कर मरूँ। मोटी तोंदवाले जिनके पास अपरिमित धन है, साधन है, पापों के छिपाव के योग्य ऊँची इमारतें हैं, गढ़ हैं, वे संसार को एक ओर तो मन्दिरों, धर्मशालाओं, अनाथालयों, विधवा-आश्रमों, निःशुल्क शिक्षालयों आदि से भर रहे हैं, दूसरी ओर शराबख़ाने, वेश्यालय, क़साईख़ाने, जूआख़ाने, ख़ूनियों के अड्डे, सर्वहाराओं के क्लब, भिखमंगों की पलटन, जेल, कोढ़ियों के अस्पताल भी इन्हीं के अनुग्रह की झलक हैं। मैं चाहता हूँ, मेरे नेक मित्र, मैं चाहता हूँ कि संसार, यह सौन्दर्यमय संसार जो धीरे-धीरे चुपके से नरक बनाया जा रहा है, इसका सक्रिय विरोध, खुलेआम वसुधातल पर नरक की प्रतिष्ठा करके करूँ। क्या मैं जीवित रह सकता हूँ?

आह! मैं मरने की बात सोचकर अब काँप उठता हूँ। पहले आत्मा पापों से डरती थी, मिथ्या से भागती थी, ख़ून, चोरी, डकैती का नाम सुनते ही बिलख उठती थी और चाहती थी कि इन कुकर्मों में लिप्त होने के पहले ही संसार से कूच कर जाना अच्छा है, पर अब मैं अपने सामने ख़ुद पूरी तरह बेशर्म हो चुका हूँ—पापों के प्रति मोह हो गया है, अपने पतित जीवन का रस मिल चुका है। मैं जिस पथिक को लूटता हूँ उसकी बेकली को देखकर, उसके हाहाकार को सुन कर, उसकी पत्नी या बच्चे की विकलता के भय का अनुभव कर मेरी आत्मा की कली खिल उठती है और एक प्रकार का ऐसा राक्षसी आनन्द प्राप्त होता है जिसका वर्णन ही नहीं हो सकता। संसार रोता है, मैं हँसता हूँ। संसार विकल होता है और मैं अपनी शराब की बोतल लेकर, ख़ून से भरे हुए छुरे को लेकर, तांडवनृत्य करता हूँ। खेतों का अन्त हुआ धनेसर तेली के रुपयों के सूद-दरसूद में। जो सम्पत्ति बची वह ज़मींदार से मुक़दमा लड़ने में वकीलों की जेबों में समा गई। स्त्री अपनी सुन्दरता की वेदी पर बलि! उफ़! छोटा बच्चा माता के साथ गया और मेरी जेलयात्रा की अनुपस्थिति में भीख माँगता हुआ मेरा बड़ा बच्चा भगवती मोटर देवी की भेंट हो गया। इतना सा इतिहास है! आह! सुन लो। आज मैं महायात्रा कर रहा हूँ। संसार! सुख की नींद सोना। कौन जाने, मेरे दलवाले मेरे कार्यक्रम को पूरा कर सकेंगे या नहीं? सबको ठिकाने लगाया, पर जिसने मेरे बच्चे को मोटर से कुचल कर मार डाला था उसी का पता आज तक नहीं चला। यही एक कसक है, यही एक वेदना है हृदय में, जो सम्भवतः मरने के बाद तक मुझे पीड़ा पहुँचाती रहे। प्रतिहिंसा, घोर प्रतिहिंसा--मैं अपनी ही प्रतिहिंसा की ज्वाला में जल रहा हूँ--जल रहा हूँ, जल जाने दो मुझे............उफ़! अच्छा देखा जायगा............अगले जन्म में! मोटरवाले! अगले जन्म में मिलूँगा, अभी सुख...की...नींद... सो......लो......वि......दा।

(६)

समय—रात, प्रथम प्रहर। स्थान—कारागार की निर्जन कालकोठरी। चट्टान की दीवारें—दरवाज़ों में मोटे-मोटे घने लोहे के छड़। अत्यन्त मनहूस प्रकाश, विषाद की छाया-सी। कोठरी का वातावरण करुणा-पूर्ण, भयोत्पादक, कठोर। एक क़ैदी कम्बल पर लेटा हुआ मौत की प्रतीक्षा कर रहा है—आँखें छत से जा लगी हैं। शरीर ढाँचा-मात्र। साँस अटक अटककर आती है। एक

बड़ा-सा चमगादर कोठरी में उड़ रहा है—दीवार पर दो-तीन छिपकलियाँ रेंग रही हैं। यही दृश्य है उस नन्हीं-सी कोठरी का। हाथ में प्रज्वलित प्रकाश लिये मुक्तिदूत का प्रवेश। सुन्दर शरीर दो सुनहरे पंख और पीत उत्तरीय, कोमल स्निग्ध मुखमंडल, उज्ज्वल ललाट!

मुक्तिदूत—बन्दी, आज तुम्हारे बन्दी-जीवन का अन्तिम क्षण उपस्थित हो गया है। मेरी ओर आँखें फेर कर देखो। मैं मुक्ति का दूत स्वर्गीय प्रकाश लेकर आया हूँ। तुम सभी प्रकार के कारागारों से छुटकारा पाने के अधिकारी हो। तुम्हें अस्तित्व की क़ैद से मुक्त कर मैं अनन्त बना दूँगा। बन्दी! स्वर्ग और नरक दोनों क़ैदख़ाने हैं, दोनों में एक निश्चित घेरे के भीतर ही प्राण रहते हैं। मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा, जहाँ 'स्व' और 'पर' की भावना ही नहीं है, अपना-पराया कोई नहीं है। बन्दी, प्रस्तुत हो जाओ। समय हो गया। स्वतन्त्रता की देवी तुम्हें पुकार रही है।

बन्दी—तुम कौन हो? मुक्तिदूत! मुझे मुक्त करने आये हो, जिसके जीवन का तीन-चौथाई भाग इसी कोठरी में समाप्त हो गया? इन सीख़चों से पूछो, इन ठोस दीवारों से पूछो। इनमें जितने अणु होंगे, मेरी उतनी ही आहें इनसे टकरा चुकी हैं, इन पर सिर पटक कर हवा में मिल चुकी हैं। अब तुम आये मुक्ति का संदेश लेकर, अमर संगीत का उपहार लेकर, चिर शान्ति का महामंत्र लेकर! अफ़सोस! मेरे देवदूत, अफ़सोस! अब मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, नरक में ही रहने दो। पिंजरे में ही बन्दी पक्षी ने अपने परों का घोंसला तैयार कर लिया है। वह चमन की याद भूल गया, फूलों की महक भूल गया, हवा की मस्ती भूल गया है और भूल गया है स्वतन्त्र जीवन के मज़े। जब हृदय में विकलता थी, वहिर्जगत्—जेल के बाहर की दुनिया—जब मेरे मन को बार बार पकड़कर अपनी ओर खींचता था, हृदय कलेजा फाड़कर बाहर निकलने के लिए बाँसों उछलता था और बाहर की स्मृति दिन-रात आकर गुदगुदाया करती थी, उस समय 'मुक्ति' की बात सोचना भी कितना प्रिय था, सुखकर था, आनन्दप्रदाता था। पर हाय देवदूत! आज मन पथरा गया है। लगातार बीस साल के एकान्तवास ने कल्पना को बेढंगी शिला का एक ढोका बना दिया है। स्वतन्त्रता की रुचि ही नहीं पैदा होती। मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे हृदय में से वह तत्त्व मानो सहसा सूख गया है जिसके रहने से मन स्वतन्त्रता की ओर दौड़ता था। आँखों की भूख भी मिट चुकी है, सुन्दर-असुन्दर की पहचान नष्ट हो गई है। मैं फूल और 'कुकुरमुत्ते' का प्रभेद आज भूल गया हूँ। मैं कह नहीं सकता कि दोनों में क्या अन्तर है। सत्-असत् की पहचान करने-वाली विवेक-शक्ति का अन्त हो चुका है मेरे देव! अब मैं मुक्त होकर क्या करूँगा? मेरे सामने मुक्ति का कोई भी महत्त्व नहीं रहा। मैं अपनी लालसाओं से, मुक्ति-सम्बन्धी इच्छाओं से मुक्त हो चुका हूँ, जिनके कारण कारागार को मैं कारागार समझता था और बन्धन को बन्धन।

मुझे याद है, पहले मेरे परिवार के बहुत-से सम्बन्धी मुझसे मिलने आते थे। मैं उनकी प्रतीक्षा में आकुल रहता था; बड़ा आनन्द आता था उस दिन जिस दिन उनमें से एक दो आ जाते। कुछ सालों के बाद प्रत्येक मिलनेवाला किसी न किसी का मृत्युसंवाददाता बन गया। मेरे छोटे भाई ने एक दिन रोकर कहा—पिता जी मर गये! मेरा हृदय शोकाकुल हो उठा, पर साल भर के बाद मेरे लड़के ने सुनाया—चाचा—मेरे बड़े भाई—चल बसे। यह दूसरा प्रहार! इसके बाद मेरी स्त्री ने ख़बर दी कि मेरे छोटे भाई भी परलोक सिधारे और चार साल के बाद मेरे पुत्र ने फिर समाचार सुनाया कि उसकी अम्मा महायात्रा करने चली गई। इसके बाद तीन-चार साल तक मेरा एकलौता बेटा आता रहा, पर फिर उसकी झाँकी भी मिलनी बन्द हो गई। पता नहीं, वह भी चल बसा या मेरी ही तरह किसी जेल में घोंसला बनाकर जीवन की घड़ियाँ गिन रहा है। २० साल में यह सब कुछ हो गया। उस समय मेरा एकलौता १० साल का था और आज ३० साल का—यदि जीवित है तो—होगा। मेरे मुक्तिदूत! तुम उनकी हथकड़ियाँ काटो जिनके पंखों में बल है, हृदय में लालसा है, मन में उमंगें हैं। मेरे मन को लकवा मार गया है। मुझे अनन्त काल

तक इसी बन्दीख़ाने में सड़ने दो। मुझे भय है कि कहीं मैंने इस कोठरी को सदा के लिए ख़ाली कर दिया तो कोई दूसरा अभागा इसमें बन्द कर दिया जायगा। मैं नहीं चाहता कि इस नरक में किसी को घुसने का अवसर दूँ। यदि मेरा वश चले तो संसार भर की समस्त जेलों को केवल अपने ही शरीर में ऐसा भर दूँ कि उनमें एक तितली को भी घुसने का स्थान न रह जाय। मुक्तिदूत! मैं तो नहीं चाहता, पर विधि का विधान अटल होता है। यदि तुम मुझे ले जाना ही चाहते हो तो मैं क्या कर सकता हूँ? पर इतना कहूँगा कि मैं अपने बन्दी-जीवन को अब प्यार करने लगा हूँ। इसी के भरोसे अपना सब कुछ स्वाहा कर चुका हूँ। यदि मैं सजीव अवस्था में जेल के बाहर निकाल दिया जाऊँ तो निश्चय ही मेरा कलेजा फट जायगा। उफ़! बड़ी ज्वाला! बड़ा कष्ट। अब निर्बल ठठरी को फाड़कर प्राण निकलना चाहते हैं...क्षमा ...शान्ति!

(७)

समय—मध्यनिशा। भयानक बदली। शूचीभेद अन्धकार।

स्थान—एक गली। खुले हुए द्वार पर एक नवयौवना उग्रचंडा की मूर्ति बनी हाथ में नंगी तलवार लिये खड़ी है। अनगिनत हताहतों का ढेर लग रहा है। नगर में हाहाकार मचा हुआ है। कहीं ज्वाला की लपटें उठ रही हैं तो कहीं मार-मार की पुकार मची हुई है। रह रह कर भयानक गड़गड़ाहट के साथ धमाके की आवाज़ सुनाई देती है। शहर मुर्दों से पट-सा गया है—भयंकर अव्यवस्था, ख़ून-ख़राबी, मार-काट! मातायें अपने बच्चों को रौंदती हुई प्राण-भय से भाग रही हैं। पुरुषों का हाल अकथनीय है। जिस घर के द्वार पर उक्त कृपाणधारिणी खड़ी है उस घर के पिछले हिस्से में एक कूड़ाख़ाना है। गन्दी अँधेरी कोठरी में टूटी खाट, टूटे संदूक़, टोकरियाँ, ईंधन, उपले, चक्की आदि चीज़ें कसरत से भरी हुई हैं। एक युवक जिसके हाथों में मेहँदी और आँखों में काजल लगा हुआ, है छिपा हुआ धीरे धीरे 'रामनाम' का जप कर रहा है। चूहे-छछूँदर के दौड़ने की आहट मिलते ही चिल्ला उठता है—दौड़ो बचाओ, सतीश की अम्मा! यमदूत का मुसलमानी भेष में प्रवेश। सिर पर तुर्की टोपी, लुंगी, वह भी चारख़ाने की। शरीर पर ख़ाली नीमास्तीन, काला शरीर, ख़ूनी आँखें, एक हाथ में लम्बा-सा ख़ून से सना हुआ चमकदार छुरा और दूसरे हाथ में लालटेन।

यमदूत—अबे मूज़ी! निकल बाहर। देखता नहीं, मैं कौन हूँ। तूने कायरों की-सी ज़लील ज़िन्दगी बिता कर मनुष्य-जाति का अपमान ही किया है। रे नारकी! चल। तुझे कुंभीपाक की हवा खिलाऊँ। पहचान ले। मैं तेरा काल हूँ और तेरी घड़ी पूरी हो चुकी है। विलम्ब मत कर। तूने पुरुषत्व को रौंद डाला है, पुरुष-जाति के रूप में उसका पाप जन्मा है रे पतित! धराधाम पर तेरे जैसों की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। निकल बाहर। अब सोच क्या रहा है? अपनी पतित ज़िन्दगी का अन्त समझ। यदि कभी भूल से किया हो तो तू अपने उन पुण्यों को एक बार, दो बार, सौ बार पुकार ले। सुन रे! अभागे! कायरों के हाथों से पुण्य हो ही नहीं सकता। अब सावधान हो जा। मैं आ गया हूँ तेरा कृतान्त।

कायर—बड़े मियाँ, रहम करो चाचा। मैं किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं। घर में रहता हूँ, सबसे डरता हूँ, बच्चों को खेलाता हूँ और जो कुछ परमात्मा दे देता है, खाकर बच्चों को छाती से लगाकर सो जाता हूँ। मेरे बच्चे अपनी अम्मा से बढ़कर मुझे प्यार करते हैं। बड़े मियाँ, मेरी जान मत लो। भई, एक बात मैं कहे देता हूँ। मैं अपनी 'उनकी', अरे 'उन्हीं' की बात कह रहा हूँ जो दरवाज़े पर खड़ी होकर तलवार भाँज रही हैं। हाँ, तो मैं उनकी बात नहीं चलाऊँगा, बड़ी ज़िद्दी औरत हैं चाचा! तुम्हें मेरे सिर की क़सम। उनसे कह न देना कि सुरेश के बाबू जी ऐसा बोलते थे। भाई, मैं झगड़े से डरता हूँ। उनका मिजाज़ तेज़ है। अमीर की लड़की ठहरीं। नाक पर ग़ुस्सा रहता है। मैं ख़ुद तंग आगया हूँ। बात बात में दुत्कारती रहती हैं। बच्चों का मुँह देखकर जीता हूँ। नहीं तो जी चाहता है कि (रोनी आवाज़ में) कुछ खा-पीकर सो रहूँ। कलेजे में ऐसी ही चोट लगती है। भला देखो न! दरवाज़े पर न जाने कब से खड़ी तलवार भाँज रही हैं। शहर में दंगा हो रहा है। इस वक़्त भी

कोई दरवाज़ा खोल कर बाहर झाँकता है ? बाप रे बाप ! मर्दानी औरत ! भई बड़े मियाँ, अपना जान कर यह सब कह रहा हूँ। पैरों पड़ता हूँ, चाचा, कहीं कह न देना। हटो। मैं कुछ नहीं कहूँगा। तुम तो कुछ बोलते ही नहीं। रहम करो बड़े मियाँ ! मैं हिन्दू-मुसलमान का भेद अपने दिल में नहीं रखता। जो हिन्दू-मुसलमान बाहर लड़ रहे हैं वे पल्ले सिरे के गुंडे हैं। समझ गये न। मैं तो उस्मानअली की दूकान पर बराबर बैठता हूँ, चाय पीता हूँ, कलिया खाता हूँ। तुम सुरेश की अम्मा को मारो या पकड़ कर ले जाओ। वे ही तलवार भाँज रही हैं। मैं पैरों पड़ता हूँ। मैं निरपराध हूँ। मुझे गऊ--नहीं सूअर समझो। अरे ! अरे ! कलेजे में छुरा घुसेड़ रहे हो--रहम ! दया--अरी ओ सुरेश की अम्मा ! दौड़ियो, बचाइयो--मैं ... म ... रा ...! हा ... य... री ... दै... या !

जीवन-तरङ्ग

लेखक, श्रीयुत जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन'

(१)

आ ! एक बार जीवन-तरङ्ग;
तेरी वह आदि प्रसूति कहाँ ?
बतला दे निज आरम्भ कोष।
क्या परिभाषा है कौन रूप !
तू शान्ति चली तज कहाँ घोष !
ले वह उद्भव ले वह उमङ्ग,
आ ! एक बार जीवन-तरङ्ग ॥

(२)

शिशु-शशि-दोला-सी बनी रम्य,
या सलिल-स्वप्न साकार धन्य।
बनते मिटते हैं पुनः पुनः,
आकार तुम्हारे हैं अगण्य ॥
सिखला दे सबको यही ढङ्ग।
आ ! एक बार जीवन-तरङ्ग ॥

(३)

तू बारि-बेलि-सी मूल-हीन,
या छुईमुई-सी क्षीणगात।
बिकसाती फेनिल-फूल कहीं,
सकुचाती करती है न बात ॥
तू लेकर पतनोत्थान सङ्ग,
आ ! एक बार जीवन-तरङ्ग ॥

(४)

मुसकान मञ्जु मुग्धा की-सी,
या बारि-परी-सी रूपवान।
नर्तन वक्षस्थल पर जल के,
करती है अति ही वेगवान ॥
सिहरण होता है अङ्ग अङ्ग
आ ! एक बार जीवन-तरङ्ग ॥

(५)

मृदु स्मृति-सी सोच्छ्वास कभी,
उठती हो लेकर स्वयं छोर।
या जन्म-मरण-इतिहास पृष्ठ,
के उलट दिखाती ओर छोर ॥
कर देती क्षण में रङ्गभङ्ग,
आ ! एक बार जीवन-तरङ्ग ॥

(६)

जग की इस नाटकशाला में,
कर दो यदि अङ्गुलिपरिचालन।
तो महानाश भव-उद्भव का,
हो जाय साथ ही संचालन ॥
हो नव जीवन रसधार अङ्ग,
आ ! एक बार जीवन-तरङ्ग ॥

भारत में गोवंश का बुरी तरह ह्रास हो रहा है, इस बात को लेखक महोदय ने यहाँ सप्रमाण सिद्ध किया है।

गो-धन का ह्रास

लेखक, श्रीयुत एम० पी० केदार, आई० डी० डी०



भी कुछ ही दिन हुए भारत-सरकार के शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि के विभाग की ओर से एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी, जिसमें यह प्रकट किया गया था कि हिन्दुस्तान में पशुओं की संख्या बढ़ गई है। परन्तु सरकार की यह घोषणा निर्मूल और भ्रम फैलाने-वाली जान पड़ती है; क्योंकि हिन्दुस्तान में पशुओं की संख्या संसार के अन्य देशों से किसी हालत में भी ज़्यादा नहीं है। नीचे मुख्य-मुख्य देशों की तुलना की गई है। ये आँकड़े कुछ समय हुआ संयुक्त-प्रान्त के पशु-विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर ने प्रस्तुत किये थे।

नाम देश	सब पशुओं की संख्या प्रतिशत मनुष्यों के पीछे	गाय-भैंसों की संख्या प्रतिशत मनुष्यों के पीछे
ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड	२६	१०
डेन्मार्क	८२	३३
फ्रांस	३४	१८
जर्मनी	२६	१३
रूस	२५	१४
कैनेडा	१०४	३६
अमरीका	६१	२३
अर्जनटाइन	३८५	३६
दक्षिण-अफ्रीका	८८	३३
आस्ट्रेलिया	२४०	४२
न्यूज़ीलैंड	२५०	१००
ब्रिटिश भारत	५६	१५

ऊपर के आँकड़ों से स्पष्ट प्रकट होता है कि कुल पशुओं की संख्या के विचार से हिन्दुस्तान का नम्बर आठवाँ है और जहाँ तक गाय-भैंसों की संख्या का सम्बन्ध है उसका नम्बर नवाँ रह जाता है। सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया है कि भारतवर्ष में ५ प्रतिशत पशुओं की वृद्धि हम देखते हैं कि इस देश की मनुष्य-गणना में यहाँ की आबादी बत्तीस करोड़ से पैंतीस करोड़ अर्थात् दस प्रतिशत बढ़ गई है। ख़ैर, उक्त वृद्धि किस प्रकार के पशुओं में हुई है, सरकारी विज्ञप्ति ने इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला है।

बात यथार्थ में यह है कि पशुओं की संख्या में जो वृद्धि हुई है वह भैंसों और बच्चों की बढ़ती के कारण है। जहाँ तक गायों, बैलों और साँड़ों का प्रश्न है, उनकी संख्या में भारी कमी हुई है। कुछ मास हुए जनवरी १९३५ में हिन्दुस्तान में होनेवाली पशुओं की गणना की सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। उसके अनुसार १९३० और १९३५ में गाय-बैलों की संख्या इस प्रकार थी—

नाम पशु	१९३० में संख्या,	१९३५ में संख्या,	जितनी कमी हुई
बैल और साँड़	३,५३,०२,४३८	३,४८,९०,७४३	४,११,६९५
गाय	२,४७,४२,३२४	२,४६,२९,९८५	१,१२,३३९
		कुल कमी	५,२४,०३४

पशु-गणना की सरकारी रिपोर्ट में गाय-बैलों की इस कमी का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया गया है। हमें एक मिनट के लिए भी यह न भूलना चाहिए कि हिन्दुस्तान में सब पशुओं की अपेक्षा गाय-बैलों को सबसे अधिक महत्त्व प्राप्त है, जैसा कि वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने भी कहा है—"गाय-बैल के ऊपर ही इस देश की सब खेती और काश्तकारी निर्भर है।" और खेती और काश्तकारी से हिन्दुस्तान के अस्सी प्रतिशत बाशिंदों का जीवन-निर्वाह होता है। गाय-बैल का स्थान इस देश में कोई दूसरा पशु और मशीनरी आदि नहीं ले सकते। और इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी कि इनकी संख्या पिछले कुछ वर्षों में ही पाँच लाख से ऊपर घट गई है।

दूसरी ओर संसार के अन्य देशों में इसके बिलकुल उलटा देखने में आता है। बहुत-से देशों में जहाँ पहले

वृद्धि हो रही है। १६३५ की पशु-गणना की रिपोर्ट में ही कुछ देशों में गाय-बैलों की प्रतिशत वृद्धि का इस प्रकार उल्लेख किया गया है। स्मरण रहे, यह वृद्धि कुछ ही वर्षों में हुई है।

नाम देश	प्रतिशत वृद्धि
ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड	१२·७
फ्रांस	१·६
बेल्जियम	४·६
नीदरलैंड	११·५
डेन्मार्क	·०५
जर्मनी	२·४
नारवे	६·२
रूमानिया	८·३
पोलैंड	३·१
संयुक्त-राज्य	१·६
आस्ट्रेलिया	१६·६
न्यूज़ीलैंड	१४·१

कितने आश्चर्य की बात है कि वे देश जहाँ गोवंश को अब तक न कोई विशेष महत्त्व दिया जाता था, न शिल्प और व्यापार की प्रधानता के कारण खेती को ही महानता प्राप्त है और न सर्व-साधारण मांसाहारी होने से दूध-घी पर ही अपने स्वास्थ्य और बल के लिए निर्भर रहते हैं, वहाँ गोवंश की इतनी वृद्धि हो रही है और दूसरी तरफ़ अभागे भारतवर्ष में जन-संख्या बढ़ने के साथ-साथ पिछले कुछ ही वर्षों में पाँच लाख से ऊपर की कमी हो गई है!

वास्तव में भारतवर्ष में गोवंश की संख्या में भारी कमी होगई है और होती जा रही है। यह केवल हमारा ही मत नहीं, सरकारी अधिकारियों की रिपोर्टों से भी इसकी पुष्टि होती है। उत्तरी भारत की फ़ौजी डेरियों के कंट्रोलर लेफ़्टिनेंट कर्नल जे० मेट्सन का कथन नीचे दिया जाता है—

"पन्द्रह-बीस वर्ष के पूर्व शहरों की आवश्यकता पूरी करने के लिए ढोर मुख्यतः पंजाब में मिलते थे। अमृतसर में साहीवाल की गायें काफ़ी संख्या में बिका करती थीं और हरियाने से भी बहुत-सी गायें मामूली भाव पर आती थीं। ये दोनों स्रोत अब सूख गये हैं। सिंध में गायें हैं, परन्तु काफ़ी नहीं हैं। आज-कल शहरों में भैंसें आने लगी हैं, परन्तु अच्छी भैंसें भी पर्याप्त नहीं आतीं। सन् १६११ में ही मैंने रोहतक, हिसार और फ़ाज़िलका के आस-पास के भागों से तीन मास में १,५०० दुधार भैंसें १००) औसत की दर से मोल ली थीं। आज उतनी ही कोशिश से मुश्किल से ५०० या ६०० भैंसें मिल सकती हैं और दाम भी सौ के स्थान पर दो सौ और तीन सौ रुपया देना पड़ता है।

"हिन्दुस्तान के शहरों में ढोरों की अवनति हो रही है, ऐसी दशा संसार के किसी देश में नहीं है। स्थिति गंभीर हो गई है, और भविष्य में तो इससे भी भयंकर स्थिति का हो जाना सम्भव है।"

कर्नल मेट्सन साहब का वर्णन इस समय की स्थिति का सच्चा दिग्दर्शन है। गायों-बैलों की कमी और ह्रास दोनों का उन्होंने ठीक चित्र खींचा है। भारतवर्ष में केवल दूध के पशुओं की संख्या ही कम हो रही हो सो बात नहीं है। संख्या कम होने के साथ ही उनकी अवनति भी होती जा रही है। एक तरफ़ बैलों में काश्त करने और बोझा ढोने का पहला-सा सामर्थ्य नहीं रहा, दूसरी तरफ़ गायों में दूध देने की शक्ति का लोप हो रहा है। और गो-जननोपयोगी साँड़ों का तो अभाव ही होगया है।

हिन्दू-राज्य-काल में प्रतिदिन मन-मन भर तक दूध देनेवाली कामधेनु गायों का उल्लेख मिलता है। उसके पीछे अकबर आदि मुसलमानी बादशाहों के समय में भी बीस-बीस सेर दूध देनेवाली गायों का वर्णन आया है। आज से बीस-पचीस वर्ष के पूर्व भी रोज़ाना पन्द्रह-सोलह सेर दूध देनेवाली गायों का प्राप्त करना एक साधारण-सी बात थी। परन्तु आज अवस्था इतनी ख़राब हो चुकी है कि आठ-दस सेर दूध देनेवाली गाय का मिलना कठिन हो गया है। और औसत दूध प्रतिगाय तो दो-चार सेर रह गया भी प्रतीत नहीं होता। इसका अवलोकन आप घर-गृहस्थियों और ग्रामनिवासियों के यहाँ जाकर गोवंश की दशा देखने से भली भाँति कर सकते हैं।

कर्नल मेट्सन के कथन का समर्थन और भी स्पष्टरूप से भारत-सरकार के भूतपूर्व इम्पीरियल-डेरी-एक्सपर्ट मिस्टर विलियम स्मिथ इन शब्दों में करते हैं—

"मैं हिन्दुस्तान में १६½ वर्ष से हूँ। इस बीच में पंजाब, युक्तप्रांत, मध्यप्रांत, सिंध, बम्बई तथा मदरासप्रांत में पशु-पालन के धंधे से मेरा निकट सम्बन्ध रहा है।

मेरा विचार-पूर्वक मत है कि मेरे आने के बाद से पशुओं की यहाँ अवनति हुई है। अथवा अधिक सँभल कर यह कहूँगा कि सोलह वर्ष पहले जिस प्रकार के अच्छे गाय-बैल मिलते थे, वैसे अब कितना भी दाम देने पर काफ़ी संख्या में नहीं मिलते।"

इससे अधिक गोवंश के पतन का और क्या प्रमाण चाहिए? परन्तु इतना ही नहीं, और भी देखिए। कलकत्ता-हाईकोर्ट के न्यायाधीश सर जान उडरफ़ ने लार्ड चेम्सफ़ोर्ड को एक पत्र में लिखा था—"यहाँ पशु इतने कम हैं कि हिन्दुस्तान की आबादी के आठवें हिस्से को भी पूरा दूध नहीं पहुँचा सकते। देशी गायें सात महीने तक प्रतिदिन औसत सवा सेर के हिसाब से दूध देती हैं। इसी हिसाब से २५,४०,००,००० मनुष्यों को (यह जन-संख्या अँगरेज़ी भारत की है) दूध देनेवाले ५ करोड़ पशु एक दिन में लगभग पौने चार करोड़ सेर दूध देते हैं (५ करोड़ पशुओं में से कुछ सूखी गायों को घटाकर हिसाब लगाया गया है)। अर्थात् एक मनुष्य के पीछे रोज़ाना अढ़ाई छटाँक दूध भी नहीं बैठता और साधारणतः प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम डेढ़ सेर दूध तो मिलना ही चाहिए।"

आगे चलकर सर जान उडरफ़ बैलों के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"देशी बैल अधिक-से-अधिक एक फ़सल के लिए ५ एकड़ भूमि जोत सकता है। ब्रिटिश भारत में लगभग २२,८०,००,००० एकड़ भूमि जोती जाती है और उसे जोतने के लिए कुल पशु लगभग ४,९०,००,००० हैं। बोझ उठानेवाले, वृद्ध, अशक्त और रोगी पशु ५० प्रतिशत घटा दिये जायँ तो २२,७०,००,००० एकड़ भूमि जोतने के लिए केवल २,४०,००,००० पशु शेष रहते हैं। अर्थात् एक जोड़ी बैल के लिए १९ एकड़ भूमि का औसत पड़ता है। परन्तु साधारण तौर पर इतनी भूमि जोतने के लिए ४ जोड़ी बैल होने चाहिए। दूसरे देशों की तुलना में यहाँ फ़सल बहुत थोड़ी होती है। उसका मुख्य कारण यही बैलों की कमी है।"

उपर्युक्त विवरण से भारतवर्ष के दुर्भाग्य का काफ़ी परिचय हो जाता है। इसके साथ यहाँ दूसरे देशों के सौभाग्य की एक-आध झाँकी भी देख लेना ठीक होगा।

दूध के पशुओं की वृद्धि के आँकड़े हम ऊपर दे ही आये हैं, परन्तु वह बात केवल संख्या के बढ़ने तक ही समाप्त नहीं हो जाती। डेन्मार्क में पिछले तीस वर्ष के समय में गायों का औसत वार्षिक दूध प्रतिगाय ४५०० पौंड से ५४५० पौंड होगया। इँग्लेंड के औसत दूध में भी २० से ३० प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। परन्तु अमरीका की इस सम्बन्ध में उन्नति तो आश्चर्यजनक हुई है। वहाँ की एक पुस्तक में डाक्टर वारेन लिखते हैं—

"१९०० से १९१० तक दस वर्षों में बछड़ों और साँड़ों की संख्या २० प्रतिशत कम होगई है। परन्तु दूध देनेवाली गायों की संख्या जन-संख्या के अनुसार ही बढ़ी है। १९१० में एक औसत परिवार में ४.५ व्यक्ति इकट्ठे रहते थे, और साठ वर्ष तक संयुक्त-राज्यों में प्रतिपरिवार के पीछे १ गाय से अधिक का औसत बराबर बैठता रहा है"। नीचे दिये हुए आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जायगा—

वर्ष	जन-संख्या	गौओं की संख्या
१८५०	२,३१,९१,८७६	६३,८५,०९४
१८६०	३,१४,४३,३२१	८५,८५,७३५
१८७०	३,८५,५८,३७१	८९,३५,३३२
१८८०	५,०१,५५,७८३	१,२४,४३,१२०
१८९०	६,२९,४७,७१४	१,६५,११,९५०
१९००	७,५९,९४,५७५	१,७१,३५,६३३
१९१०	९,१९,७२,२६६	२,०६,२५,४३२

उसी पुस्तक में प्रोफ़ेसर एकल्ज़ के आँकड़े दिये हुए हैं, जिनसे सब जाति की गायों के दूध और मक्खन के वार्षिक औसत का पूरा ज्ञान हो जाता है। वे आँकड़े इस प्रकार हैं—

नाम जाति	तौल दूध पौंड	तौल मक्खन पौंड
होलस्टीन	८६९९ ,,	३०० ,,
जरसी	५५०८ ,,	२८३ ,,
शार्टहार्न	६०१७ ,,	२१८ ,,
रेड पोलज़	५६०६ ,,	२३८ ,,
गारेनसी	५५०९ ,,	२७४ ,,
आरशायर	६५३३ ,,	२५२ ,,

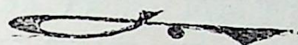
भारत में अच्छी-से-अच्छी जाति की गायों के दूध का वार्षिक औसत २,००० पौंड के लगभग होता है और मक्खन का औसत १०० पौंड भी मुश्किल से बैठता है।

परन्तु साधारण जाति की गायों का दूध अब औसत तौर पर ५०० पौंड वार्षिक भी नहीं रहा है। और गायों का मक्खन-घी का तो औसत नहीं के बराबर हो गया है।

अमरीका के संयुक्त-राज्यों में इस समय एक नहीं, सैकड़ों गायें ऐसी मिलती हैं जिनके एक वर्ष में १५,००० से ३०,००० पौंड तक दूध और ६०० से १२०० पौंड तक मक्खन होता है। एक गाय "सेगिस पीटर-जी प्रास्पैक्ट" ने जो वहाँ के कारोनेशन-फ़ार्म की सम्पत्ति है, एक वर्ष में ३७,३८१·४ पौंड दूध दिया, जो औसत तौर पर १०५ पौंड अर्थात् सवा मन प्रतिदिन होता है। एक दूसरी गाय 'दरबूलारा' ने जो मेलवा स्थान की है, एक वर्ष में १,६१४·० पौंड मक्खन उत्पन्न किया।

भारतवर्ष में ऐसी गायें अब कल्पना-मात्र समझी जाती हैं और गोवंश का जिस प्रकार से पतन और ह्रास हो रहा है, यदि कुछ वर्ष और यही दशा रही तो गाय केवल दर्शन-मात्र की वस्तु रह जायगी। इस ख़राबी के जो दुष्परिणाम हो रहे हैं वह भी एक लम्बी और दर्दभरी कहानी है और उसके निरूपण के लिए एक अलग स्वतंत्र लेख की आवश्यकता है।

यहाँ हमें इतना ही दिखाना अभीष्ट था कि इस देश के गाय-बैलों का बुरी तरह से विनाश हो रहा है। आवश्यकता है कि भारत-सरकार और देश के नेता इस सम्बन्ध में समुचित ध्यान दें। अन्य देशों के गोवंश की उन्नत अवस्था को देखकर ही यहाँ की स्थिति को सँभालें और राष्ट्र को एक आनेवाले भारी ख़तरे से बचावें।

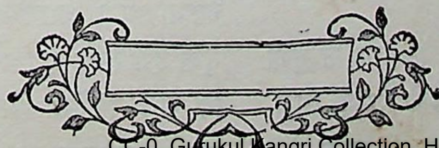


गीत

लेखक, श्रीयुत कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

अस्त रे, जीवन !
धीर-पद आता मरण
असहाय तू न शरण !
क्षीण, मलिन प्रकाश निष्फल,
यहाँ लोहित तिमिर केवल,
डूबते युग, कल्प काल—

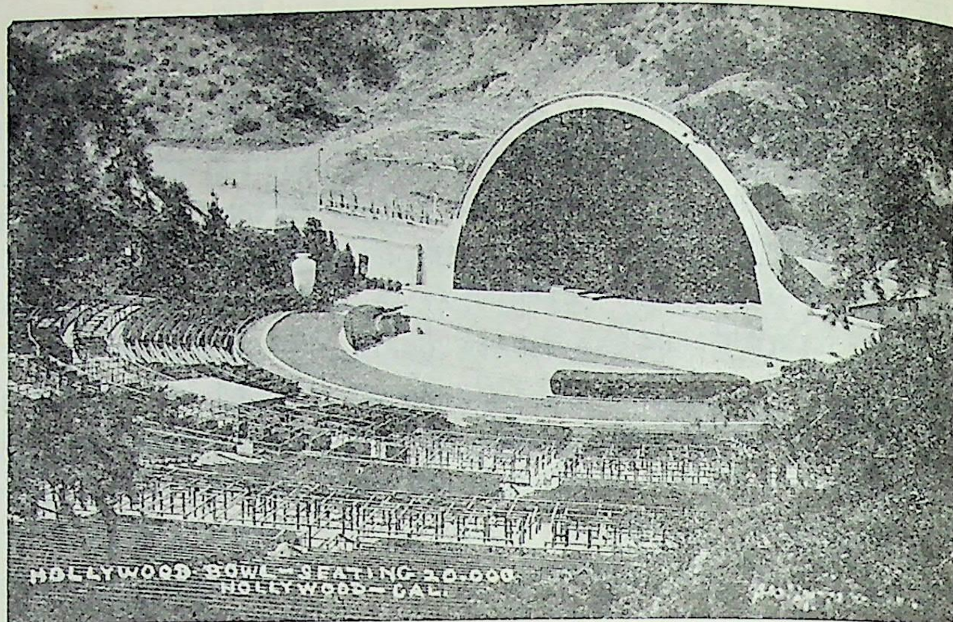
अबाध यह सावन !
देख प्रति-पल प्रलय निश्चय,
लीन छायायें—सतत क्षय;
खोज अब भी, नहीं पाये
यदि अभय-प्रद चरण।



होलीउड

लेखक,
श्रीयुत भगवानदीन दुबे

श्रीमान् दुबे जी अपने पिछले भू-पर्यटन में चित्रपटों की नगरी 'होलीउड' भी गये थे। इस लेख में आपने उसी जगत्प्रसिद्ध स्थान का संक्षेप में परिचय दिया है।



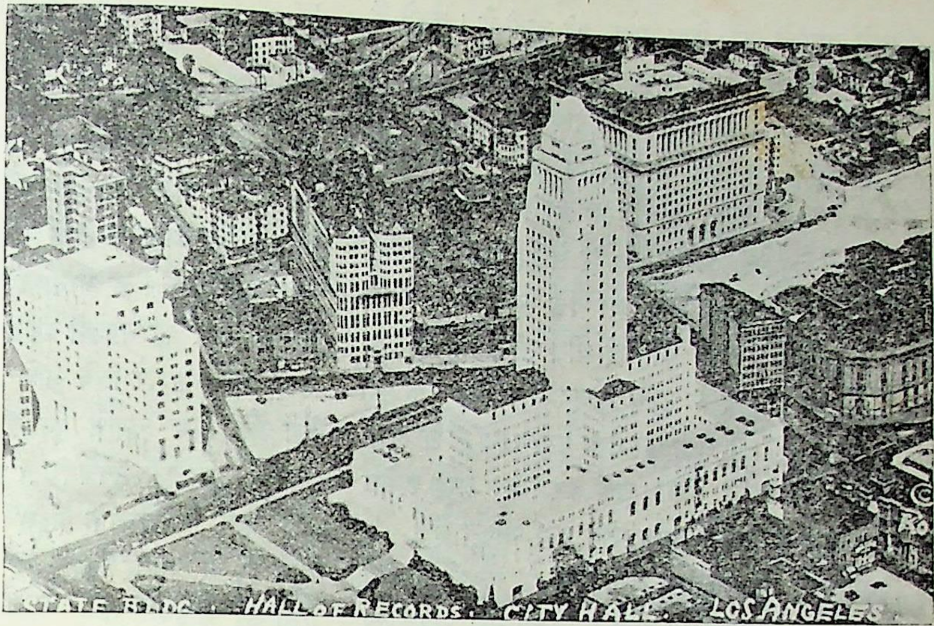
[होलीउड बाउल जहाँ एक लाख आदमी बैठकर कन्सर्ट सुन सकते हैं।]

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने सिनेमा का नाम सुना हो, पर होलीउड से अज्ञात हो। अमेरिकन फ़िल्मों की उत्पत्ति का केन्द्र होलीउड ही है। यद्यपि आज-कल फ़िल्में हर देश में बनाई जाती हैं, पर उनका क्षेत्र परिमित है। होलीउड में फ़िल्में सारे संसार के दर्शक-स्वरूप मानकर बनाई जाती हैं। वहाँ रुपया पानी की तरह बहाया जाता है। फ़िल्म-स्टारों की तनख़्वाहें सुननेवालों को अवाक् कर देती हैं। हिन्दुस्तान के छोड़कर औसत लगाया जाय तो सिनेमा-दर्शकों में औरतों की संख्या कहीं ज़्यादा है। सिनेमा-स्टारों के ऊपर बहुत-सी साप्ताहिक और मासिक पत्रिकायें निकलती हैं और बड़े चाव से संसार में पढ़ी जाती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ तथा थोड़े से मूर्ख नौजवान लौंडे सिनेमा-स्टारों की तरह अपना चेहरा-मोहरा बनाने तथा पोशाक पहनने में गौरव समझते हैं। यहाँ तक कि भारत में जैसे कोई शिव को, कोई विष्णु को, कोई देवी को अपना आराध्य समझता है, उस तरह सिनेमा-प्रेमीगण अपना अपना सिनेमा-स्टार बाँट-सा लेते हैं और उनके पक्ष-विपक्ष में वाद-विवाद कर कभी कभी तो लड़ तक पड़ते हैं।

अपनी अपनी राय भिन्न होती है। सिनेमा से मुझे ज़रा भी प्रेम नहीं है। कोई असंगत पड़ने पर ही साल-छः महीने में कभी मैं सिनेमा देखने चला जाता हूँ। दो-चार मशहूर सिनेमा-पात्रों को छोड़कर मैं औरों का नाम तक नहीं जानता। विदेश-भ्रमण में हर क़िस्म के लोगों से वार्तालाप का अवसर मिलता है। बहुत-सी नौजवान औरतें तो सिनेमा-संसार से मेरा इतना अनभिज्ञ होना मुश्किल से यक़ीन कर पाती हैं। क्वचित् ही कोई ऐसा खेल आता है जिसमें कोई दर्दनाक वाक़या न हो। सिनेमा या नाटक देखनेवाले इमोशन-प्रूफ़ हो जाते हैं। संसार में काफ़ी सुख और दुख है। दुखपूर्ण दृश्य अथवा कहानी का मेरे दिल पर बड़ा असर पड़ता है। दिन भर काम में व्यस्त रह शाम को घर आकर पारिवारिक सुखास्वादन में जब समय अच्छी तरह कटता है तब फिर पैसे ख़र्च कर गर्मी और सिगरेट के धुएँ में अकड़कर दो घंटे बैठ बहुधा निहायत असंभव और साररहित, निर्दयता अथवा करुणपूर्ण अश्लील और गंदे दृश्यावलोकन में दिन भर के थके हुए शरीर को अधमराकर घर लौटने में सिनेमा-प्रेमियों को क्या आनंद मिलता है, मेरी क्षुद्र समझ के बाहर है। घर की बीबी से जो चौबीसों घंटे सेवा कर रही है, प्रेम नहीं, प्रेम है ग्रेटा गार्बो से!

न्यूयार्क से हवाना-पनामा होते हुए मैं लास ऐंजेल्स आया। यहाँ मुझे तीन दिन जापानी जहाज़ पाने के लिए रुकना था। अनिच्छा होते हुए भी जब प्रेरित कर्मों ने मुझे इस तरह इस स्थल पर ला पटका तब मैंने तय किया कि अब सिनेमा-रंग में रँग कर प्रस्तुत मौक़े का लाभ उठाना चाहिए।

लास एँजेल्स के बन्दरगाह से शहर क़रीब २५ मील दूर है। मैं क्या, मेरे जैसे अनेक व्यक्ति होलीउड को एक अलग शहर ही समझते होंगे। पर वास्तव में वह लास एँजेल्स का एक 'सुवर्ब' है। बन्दरगाह से शहर के लिए बिजली की ट्रेन से रवाना होने पर तेल के असंख्य कुओं के लम्बे लम्बे मचान दिखाई पड़ते हैं। तेल निकलने की वजह से लास एँजेल्स की वृद्धि हुई और लास एँजेल्स का एक कृत्रिम बन्दरगाह बनाया गया। एक तो तेल जो आज-कल संसार में अनिवार्य चीज़ है, दूसरा होलीउड जहाँ जगत् के तमाशबीनों का पैसा खिंचकर चला आता है। इन दोनों के बेजोड़ मिलाप से लास एँजेल्स एक लाजवाब शहर हो गया है। इस शहर में क़रीब चार लाख मनुष्य निवास करते हैं, पर इसका घेरा क़रीब ४।। सौ वर्गमील में है। बँगलों की क़तारें बनी हुई हैं। पानी तीन सौ मील से लाया जाता है। पानी की यहाँ इतनी प्रचुरता है कि सिर्फ़ औसत १४ इंच सालाना बारिश होने पर भी चारों तरफ़ हरी हरी दूब और वनस्पतियाँ लहलहाती नज़र आती हैं। यह स्थान मरुस्थल में ओसिस-सा बना हुआ है। अनेक बाग़ीचे बने हुए हैं। ताड़ के वृक्षों की क़तारें सड़कों के दोनों तरफ़ अजीब शोभा लाती हैं। प्रायः हर एक बँगले के सामने दूब की बहार देखने में आती है, जिसमें फुहारे की सिंचाई बड़ी सुरम्य मालूम होती है।



[होलीउड की इमारतें।]

जहाज़ से उतरकर ट्रेन से शहर गया। पूछने पर सलाह मिली कि रासलिन-होटल में ठहरना उचित होगा। टैक्सी से वहाँ गया। शहर इतना लम्बा-चौड़ा है और टैक्सी का किराया इतना अधिक है कि अलग टैक्सी कर मनमानी सैर करने का हौसला छोड़ देना पड़ा। टैक्सी का तीन डालर यानी नौ रुपये प्रतिघंटा किराया था। सिनेमा स्टडिओ की सैर का विज्ञापन पढ़ा। उसमें दिन भर की सैर का ४।। डालर किराया लिखा था। विज्ञापन हमेशा की तरह प्रलोभनों से भरा था, जैसे सारे स्टडिओ की भीतरी सैर तथा स्टारों के साथ लंच इत्यादि। स्टडिओ देखने का यही ज़रिया समझकर मैंने टिकट ख़रीदा। दूसरे दिन ९ बजे होटल में एक बड़ी आरामदेह बस आई, जिसमें मेरे जैसे कुल बीस सैलानी भरे गये। कुर्सियाँ गद्दीदार थीं।

होटल से बस निकलकर होलीउड की तरफ़ चली। पहले रङ्ग-भूमि दिखलाई गई। इसमें सवा लाख व्यक्तियों के बैठने की जगह है। बड़ा आलीशान भवन देखने में आया। उसके प्रायः चारों तरफ़ बड़ा सुरम्य बाग़ीचा है। फिर होलीउड की अनेक सड़कों से गुज़रते हुए जापानी बाग़ीचे में जाकर बस रुकी। होलीउड की यह एक दर्शनीय जगह है। दो जर्मन यहूदी भाइयों ने इस बाग़ीचे को एक टीले पर बड़ी योग्यता से बनाया है। कुल रक़बा क़रीब २८ एकड़ है। जापानी ढंग का घर टीले पर है। नीचे अनेक प्रकार के पौधे छोटी छोटी सुरम्य नहरों के आस-पास लगाये गये हैं। कहते हैं कि इस बाग़ीचे के बनाने में २० लाख डालर लग चुके हैं। जर्मन भाई अब नहीं हैं। जान पड़ता है, बाग़ीचा म्युनिसिपेल्टी के प्रबन्ध में होगया है। दर्शकों से २५ सेंट याने क़रीब १२ आने लिये जाते

हैं, जिससे बाग़ीचे की देख-भाल की जाती है। कहते हैं, बाग़ीचा १० लाख डालर में बिकाऊ है।

बाग़ीचे की सैर कर अनेक स्टडिओं से गुज़रते हुए बस 'यूनीवर्सल स्टडिओ' के नज़दीक गई। क़रीब १ बज चुका था। वहीं रेस्ट्राँ में भोजन करने को कहा गया। अभी तक तो स्टडिओ का सिर्फ़ बाहर से ही मुलाहिज़ा होता रहा। कंडक्टर समझाता जाता था कि फ़लाँ फ़िल्म के बनाने में कैसी रचना की गई थी। रचित खंभों, घरों, सड़कों, जहाज़ों इत्यादि के ढाँचे मौजूद थे। फ़िल्म के पूरी हो जाने पर ढाँचों को जैसा का तैसा पड़ा रहने दिया जाता है। तोड़ने में कौन पैसा ख़र्च करे? इस तरह अनेक फ़िल्मों में काम आये हुए भग्नावशेष वहाँ मौजूद हैं।

विज्ञापन में यह प्रलोभन दिया गया था कि भोजनालय में सिनेमा-स्टारों से मुलाक़ात होगी। उसमें यह भड़कीला वाक्य लिखा था—स्टारों के साथ भोजन कीजिए। भीतर जाने पर जीते-जागते स्टार का नामोनिशान नहीं मिला। हाँ, दीवारों पर स्टारों की तसवीरें अवश्य भरी हुई थीं। विज्ञापन में कोई ज़्यादती नहीं थी। सिर्फ़ पढ़नेवालों की कमबुद्धि थी जो यह अर्थ लगा बैठे कि चार्ली चैप्लिन जैसे स्टार वहाँ मौजूद होंगे और दर्शकों के साथ भोजन करेंगे। पचहत्तर सेंट भोजन की क़ीमत थी। भोजन औसतन अच्छा था।

दो बजे तक निराश तमाशबीन फिर बस में आ गये। यह आशा थी कि स्टडिओ के भीतर जाया जायगा। पर बस दूसरे स्टडिओ की तरफ़ चली और फ़िल्मोंवाले खंडहरों की गाथा फिर शुरू हुई।

३॥ बजे वार्नर ब्रादर्स के स्टडिओ पर बस रुकी और कहा गया कि अब स्टडिओ के अंदर चला जायगा। फाटक पर स्टडिओ का सिपाही ड्राइवर के बग़ल में आकर बैठ गया और बस फाटक के अंदर घुसी। फाटक के अंदर विशाल जगह देखने में आई। फ़िल्मों में अक्सर शहर की सड़कें और मकान बने मिलते हैं। मेरा यह ख़याल था कि तसवीरें वास्तविक सड़कों में ली जाती होंगी। पर यहाँ महल्ले के महल्ले बने पाये। न्यूयार्क, हालीउड अथवा जिस शहर को केन्द्र मानकर फ़िल्म उतारी जानेवाली होती है उस शहर का नक़ली ढाँचा हूबहू तैयार किया जाता है। उसमें आदमी भर दिये जाते हैं। मोटर दौड़ने लगते हैं। रेलें और ट्रामें चलने लगती हैं। विशाल थियेटर बनाये जाते हैं, जिनकी उपयोगिता बस एक मिनट के लिए रहती है। बाहर के दृश्य के लिए नक़ली घर इत्यादि बनाये जाते हैं, पर भीतर का दृश्य स्टडिओ में उतारा जाता है। ऐसी कई आश्चर्यजनक बातें देखते हुए क़रीब आध घंटे के बाद फिर स्टडिओ के फाटक पर लौटे और सिपाही को वहाँ उतारकर बस आगे रवाना हुई।

'हालीउड बाल' जिसकी तसवीर यहाँ दी जाती है, एक विचित्र जगह है। पहाड़ियों के बीच इसकी कटोरे जैसी शकल है। पहाड़ी काटकर बेंचें बना दी गई हैं। क़रीब १ लाख आदमी यहाँ बैठकर कन्सर्ट सुन सकते हैं। दुनिया के मशहूर कंडक्टर अथवा गायक यहाँ आकर अपना हुनर दिखाते हैं।

'माउंट विल्सन आब्ज़र्वेटरी' भी यहाँ स्थित है, जिसमें एक अद्वितीय दूरबीन स्थापित की गई है।

लास ऐंजेल्स में बसे हुए जापानियों की काफ़ी तादाद है। इटालियन भी बहुत हैं। हालीउड की वजह से दुनिया के प्रमुख उस्तादों का यहाँ अच्छा जमघट रहता है। इस तरह दिन भर की सैरकर ५। बजे होटल में वापस आगये।



ग़दर और बाद की दिल्ली

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल

मौलवी साहब ने मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्रों का उर्दू में एक बृहत् संस्करण तैयार किया है। इसमें उन्होंने ऐसे अनेक पत्रों का समावेश किया है जो अभी तक अप्रकाशित थे। ऐसे ही पत्रों के आधार पर उन्होंने यह लेख लिखा है और इससे विद्रोह-कालीन दिल्ली की अवस्था पर एक नया प्रकाश पड़ता है। वास्तव में मिर्ज़ा साहब के पत्र महत्त्व के हैं, जैसा इस लेख से स्पष्ट होता है। क्या ही अच्छा होता, यदि कोई सज्जन भारतेन्दु बाबू के पत्रों को भी पुस्तक-रूप में प्रकाश में लाते।



मिर्ज़ा ग़ालिब ने दस्तम्बो नामक पुस्तक में ग़दर का हाल, अपना हाल व कुछ अन्य लोगों का हाल लिखकर जल्दी प्रकाशित कराया और बड़े बड़े अँगरेज़ अफ़सरों व अन्य लोगों के पास इसलिए भेजा कि वे अँगरेज़ों के मित्र समझे जायँ न कि राजद्रोही और राजद्रोहियों के मित्र समझे जायँ एवं उनकी जो पेन्शन बन्द हो गई थी वह फिर जारी हो जाय, अँगरेज़ी दरबारों में उनको जगह मिले और उनका मान किया जाय। निदान ऐसा ही हुआ।

उक्त बात से यह अनुमान करना अनुचित नहीं कि दस्तम्बो में मिर्ज़ा ने जो कुछ लिखा बहुत बचकर लिखा, किन्तु उस ग्रन्थ के सिवा मिर्ज़ा के जिन अन्य लेखों से उनका अपना व ग़दर आदि का हाल मालूम होता है वे मिर्ज़ा के पत्र हैं, जिनको उन्होंने अपने मित्रों तथा शिष्यों को लिखा है। मिर्ज़ा या किसी अन्य को क्या पता था कि किसी समय इन पत्रों के प्रकाशित होने की नौबत आयेगी। इस कारण इन पत्रों की ग़दर-सम्बन्धी बातें दस्तम्बो से कहीं अधिक माननीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि जिस समय ये पत्र लिखे गये थे उस समय जनता की डाक देखी-भाली जाती रही हो, इस कारण मिर्ज़ा ने पत्रों में जो कुछ लिखा है उसे भी बहुत ही बचकर लिखा हो। तथापि पत्रों की सामग्री ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े काम की माननी पड़ती है और दस्तम्बो से कहीं अधिक प्रामाणिक ठहरती है।

दिल्ली में ११ मई १८५७ ई० को ग़दर हुआ था। मिर्ज़ा के जो पत्र इस तारीख़ के बाद के मिलते हैं उनमें [illegible] सन् १८५७ ई० का पत्र ऐसा है जिसमें सबसे पहले कुछ चर्चा है। यह पत्र मिर्ज़ा ने अपने प्यारे शिष्य मुंशी हरिगोपाल को लिखा था। इसमें की कुछ बातें ये हैं—

(क) यहाँ बाहर से भीतर कोई बिना टिकट के आने-जाने नहीं पाता। तुम कदापि यहाँ आने का विचार न करना।

(ख) अमीर-ग़रीब सब निकल गये। जो रह गये थे वे निकाले गये। जागीरदार, पेंशनदार आदि कोई भी नहीं है। विस्तारपूर्वक हाल लिखते हुए डरता हूँ। क़िला के नौकरों पर कड़ी दृष्टि है। उन लोगों की पूछ-गछ अधिक है और उनकी धर-पकड़ हो रही है।

(ग) सैनिक प्रबन्ध ११ मई से आज अर्थात् ५ दिसम्बर सन् १८५७ ई० तक बराबर है।

ग़दर होने पर दिल्ली १४ सितम्बर सन् १८५७ ई० को अँगरेज़ों के हाथ में आई थी। उस समय से १० जनवरी सन् १८५८ ई० तक उनकी ओर से दिल्ली में सैनिक प्रबन्ध रहा। किन्तु इसके पहले ११ मई को जब विद्रोहियों ने अपना अधिकार दिल्ली पर जमाया था, उस समय उनकी ओर से सैनिक प्रबन्ध था। इसी कारण मिर्ज़ा ने सैनिक प्रबन्ध ११ मई से लिखा है।

इस अवसर पर यह भी जान लेना चाहिए कि दिल्ली पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अँगरेज़ों ने जनता की डाक का प्रबन्ध शीघ्र ही कर दिया था, क्योंकि मिर्ज़ा के पास अपना पत्र मुंशी हरिगोपाल ने डाक के द्वारा ही भेजा था और उसका उत्तर भी मिर्ज़ा ने डाक के द्वारा ही दिया था। जब दिल्ली अँगरेज़ों के हाथ में आई तब काले व गोरे दोनों सिपाहियों ने ख़ूब लूट-मार की थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में जनता की क्षति कुछ

पूरी की गई थी, क्योंकि मिर्ज़ा ने अपने ३१ दिसम्बर के एक पत्र में यह लिखा है—

इतना सुना गया है कि एक कार्यालय लाहौर में प्रजा की हानि का बदला देने के लिए नियुक्त हुआ है और आज्ञा यह है कि प्रजा का जो धन कालों ने लूटा है, निस्सन्देह उसके बदले में दसवाँ भाग सरकार की ओर से दिया जायगा। अर्थात् हज़ार रुपया माँगनेवाले को सौ रुपये मिलेंगे। और जो लूट गोरों के समय की है उसके निमित्त कुछ न होगा।

ग़दर के बाद बहुत-से लोगों के घरों को सरकार ने अपने अधिकार में कर लिया था। किन्तु बाद को कुछ लोगों को उनके घर वापस मिल गये थे और कुछ को नहीं मिले थे। इस सम्बन्ध में मिर्ज़ा ने सन् १८५९ ई० के एक पत्र में एक बड़े मज़े की बात यह लिखी है—

एक मज़ेदार बात परसों की सुनो। हाफ़िज़ मम्मू निर्दोष साबित हो चुके, छूट चुके। हाकिम के सामने हाज़िर हुआ करते हैं, अपनी जायदाद माँगते हैं। उनके अधिकार का सबूत हो चुका है। केवल आज्ञा की देरी थी। परसों वे हाज़िर हुए थे। मिसिल पेश हुई। हाकिम ने पूछा—हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श कौन ? निवेदन किया कि मैं। फिर पूछा कि हाफ़िज मम्मू कौन ? निवेदन किया कि मैं। असल नाम मेरा मुहम्मद बख़्श है। मम्मू, मम्मू प्रसिद्ध हूँ। कहा—यह कुछ बात नहीं। हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श भी तुम और हाफ़िज़ मम्मू भी तुम, सारा जहान भी तुम, जो कुछ दुनिया में है वह भी तुम। हम मकान किसको दें ? मिसिल दफ़्तर में दाख़िल हुई, मियाँ मम्मू अपने घर चले आये।

दिल्ली में चुंगी के जारी होने का हाल मिर्ज़ा ने अपने ६ नवम्बर सन् १८५९ ई० के एक पत्र में नवाब ज़ुलफ़िक़ार उद्दीन हैदर अर्थात् हुसेन मिर्ज़ा को इस प्रकार लिखा है—

पौन टोटी (चुंगी) के विषय में कौंसल हुई। परसों सात नवम्बर से जारी हो गई। शालिग्राम ख़ज़ानची, छन्नामल, महेशदास तीन व्यक्तियों को यह काम ठीके पर मिला है। अनाज और उपले को छोड़कर कोई और वस्तु ऐसी नहीं है जिस पर महसूल (चुंगी) न हो।

दिल्ली भारत के मुसलमान बादशाहों का भी केन्द्र थी। यही कारण था कि ग़दर के काफ़ी समय के बाद तक वहाँ आना-जाना आसान काम न था, क्योंकि मिर्ज़ा ने २ फ़रवरी सन् १८५६ ई० के एक पत्र में अपने एक शिष्य को लिखा है—

मेरठ से आकर देखा कि यहाँ बड़ी सख़्ती है और यह हालत है कि गोरों के निरीक्षण पर सन्तोष नहीं है। लाहौरी दरवाज़े का थानेदार मोढ़ा बिछाकर सड़क पर बैठता है। जो बाहर से गोरे की आँख बचाकर आता है उसको यह पकड़कर हवालात में भेज देता है। हाकिम के यहाँ से पाँच बेत लगते हैं अथवा दो रुपया जुर्माना लिया जाता है। आठ दिन क़ैद रहता है।

इसी विषय में मिर्ज़ा ने अपने २७ मार्च सन् १८५६ ई० के पत्र में यह लिखा है—

भाई ! यहाँ (दिल्ली) का नक़शा ही कुछ और है। समझ में किसी के नहीं आता कि क्या तौर है। अँगरेज़ी मास के आरम्भ में रोक-टोक की सख़्ती होती थी। आठवीं-दसवीं तक वह कड़ाई कम होती थी। इस मास में बराबर वही सूरत रही है। आज २७ मार्च है। पाँच-चार दिन महीने में बाक़ी हैं। आँच वैसी ही तेज़ है। ख़ुदा अपने बन्दों पर दया करे।

ग़दर के बाद ही कई महल्लों के गिराये जाने और कई सड़कों के निकलने की नौबत आई थी। इस सम्बन्ध में २२ दिसम्बर सन् १८५८ ई० के पत्र में अपने एक शिष्य को मिर्ज़ा ने लिखा है—

लो सुनो ! अब तुम्हारे दिल्ली की बातें हैं। चौक में बेगम के बाग़ के दरवाज़े के सामने हौज़ के पास जो कुआँ था उसको पत्थर, ईंट व मिट्टी डालकर बन्द कर दिया। बल्लीमारों के दरवाज़े के पास की कई दूकानें ढाकर मार्ग चौड़ा कर लिया।

२८ जुलाई सन् १८५९ ई० के पत्र में मिर्ज़ा को यूसुफ़ लिखते हैं—

यहाँ दो सड़कें दौड़ती फिरती हैं। एक ठण्डी सड़क और एक लोहे की सड़क (रेलवे लाइन)। स्थान उनका पृथक्-पृथक्। इससे बढ़कर बात यह है कि गोरों का बैरिक भी शहर में बनेगा और क़िला के सम्मुख जहाँ लालडिग्गी है, एक मैदान निकाला जायगा। महबूब की दूकानें, बहिलयों के घर, हाथीख़ाना, बलाक़ी बेगम के

कूचा से ख़ालिस बाज़ार तक यह सब मैदान हो जायगा। इस प्रकार समझो कि अम्मूजान के दरवाज़े से क़िला के खंदक़ तक लालडिग्गी और दो-चार कुओं को छोड़कर किसी घर का चिह्न बाक़ी न रहेगा। आज जाँनिसारख़ाँ के छत्ते के मकान ढहने शुरू हो गये।

इसी विषय के सम्बन्ध में अपने एक शिष्य मीर मेहदी 'मजरुह' को ८ नवम्बर सन् १८५९ ई० के पत्र में वे यह लिखते हैं—

जामा मस्जिद के गिर्द पचीस-पचीस फ़ुट गोल मैदान निकलेगा। दूकानें व हवेलियाँ ढहाई जावेंगी। दारुलबक़ा मिट्टी में मिल जायगी। रहे नाम अल्लाह का! खानचन्द का कूचा शाहबूला के बड़ से ढहेगा। दोनों तरफ़ से फावड़ा चल रहा है। बाक़ी ख़ैर वआफ़ियत है।

२ दिसम्बर सन् १८५९ ई० के पत्र में मीर मेहदी को फिर लिखते हैं—

तुम आते हो, चले आओ। जाँनिसारख़ाँ के छत्ते की सड़क, खानचन्द के कूचा की सड़क देख जाओ। बुलाक़ी बेगम के कूचे का ढहना, जामा मस्जिद के गिर्द सत्तर-सत्तर गज़ गोल मैदान निकलना सुन जाओ।

खुदखुदाकर कई महल्लों व कुँओं का जो हाल कुछ काल में हो गया उसका वर्णन मिर्ज़ा के सन् १८६० ई० के एक पत्र में इस प्रकार है—

बड़ी भारी आफ़त यह है कि क़ारी का कुआँ बन्द हो गया। लालडिग्गी के कुएँ बिलकुल बन्द हो गये। ख़ैर! खारी ही पानी पीते, गर्म पानी निकलता है। परसों मैं सवार होकर कुओं का हाल जानने गया था। मस्जिद जामा होता हुआ राजघाट-दरवाज़ा को चला। मस्जिद जामा से राजघाट-दरवाज़ा तक निस्सन्देह एक सुनसान जंगल हो गया है। ईंटों के जो ढेर पड़े हैं, यदि वे उठ जायँ तो वह भयानक स्थान हो जाय। याद करो। मिर्ज़ा गौहर के बाग़ीचा के उस ओर कई बाँस नीचा था, अब वह बाग़ीचा के आँगन के समान हो गया। यहाँ तक कि राजघाट का दरवाज़ा बन्द हो गया। चहारदीवारी के कँगूरे खुले हुए हैं। बाक़ी सब अट गया। कश्मीरी-दरवाज़ा का हाल तुम देख गये हो। अब लोहे की सड़क (रेलवे लाइन) के लिए कलकत्ता-दरवाज़ा से काबुली-दरवाज़ा तक मैदान हो गया। पंजाबी कटरा, धोबीवाड़ा, रामजीगंज, सआदत ख़ाँ का कटरा, जर्नैल की बीबी की हवेली, रामजीदास गोदामवाले के घर, साहबराम का बाग़ व हवेली, इनमें से किसी का पता नहीं मिलता। निदान नगर जंगल हो गया। अब जो कुएँ जाते रहे और पानी का अभाव हो गया तो यह जंगल 'कर्बला' का मैदान हो जायगा।

ग़दर व उसके कुछ समय के बाद तक दिल्ली पर जो आपत्ति अधिकारियों की ओर से रही थी वह तो थी ही, किन्तु दैवी आपत्तियाँ भी दिल्ली पर आईं। सन् १८६० ई० में वर्षा नहीं हुई। वस्तुएँ मँहगी हो गईं। मारहरा (ज़िला एटा) के निवासी चौधरी अब्दुल ग़फ़ूर को मिर्ज़ा सितम्बर सन् १८६० ई० में लिखते हैं—

यहाँ शहर ढह रहा है। बड़े बड़े नामी बाज़ार, ख़ास बाज़ार और उर्दू बाज़ार और ख़ानम का बाज़ार जो कि इनमें से प्रत्येक एक नगर था, अब पता भी नहीं कि कहाँ थे। घर व दूकान के मालिक यह नहीं बता सकते कि हमारा घर कहाँ था और हमारी दूकान कहाँ थी। बरसात में भी पानी नहीं बरसा। अब बसूला व फावड़ा की बाढ़ से घर गिर गये। अनाज मँहगा है, मृत्यु सस्ती है। फल के भाव अनाज बिकता है। उड़द की दाल ८ सेर, बाजरा १२ सेर, गेहूँ १३ सेर, चना १६ सेर, घी डेढ़ सेर, तरकारी मँहगी। इन सब बातों से बढ़कर बात यह है कि कुआर का महीना जिसे जाड़े का द्वार कहते हैं, पानी गर्म, धूप तेज़ और लू चलती है। जेठ-अषाढ़ की-सी गरमी पड़ती है।

९ जनवरी सन् १८६१ ई० को मीर मेहदी 'मजरुह' साहब को इसी सम्बन्ध में यह लिखा था—

चार दिन से पुरवाई हवा चलती है। बादल आते हैं, किन्तु केवल छिड़काव होता है। पानी नहीं बरसता। गेहूँ, चना, बाजरा तीनों अनाज एक भाव हैं। नौ सेर साढ़े नौ सेर।

किन्तु सन् १८६२ ई० में वर्षा बहुत ज़्यादा हुई थी, क्योंकि मिर्ज़ा ने २९ जुलाई के एक पत्र में मीर मेहदी को लिखा था—

एक ग़दर कालों का, एक आपदा गोरों की, एक आपत्ति घरों के गिराये जाने की, एक आफ़त बीमारी* की,

---

*सन् १८६१ ई० में दिल्ली में हैज़ा भी ज़ोरों के साथ फैला था। —लेखक।

एक विपत्ति काल की। अब यह बरसात समस्त बातों से पूर्ण है। आज इक्कीसवाँ दिन है, सूर्य इस प्रकार देखने में आ जाता है, जैसे बिजली चमक जाती है। रात को कभी कभी यदि तारे दिखाई देते हैं तो लोग उनको जुगनू समझ लेते हैं। अँधेरी रातों में चोरों की बन आई है। कोई दिन नहीं कि दो-चार घरों की चोरी का हाल न सुना जाय। अत्युक्ति न समझना, हज़ारों घर गिर गये। सैकड़ों मनुष्य इधर-उधर दबकर मर गये। गली गली नदी बह रही है। निदान वह अन्न-काल था कि पानी नहीं बरसा, अनाज नहीं पैदा हुआ। यह पन-काल है। पानी ऐसा बरसा कि बोये हुए दाने बह गये। जिन्होंने अभी नहीं बोया था वे बोने से रह गये। सुन लिया दिल्ली का हाल। इसके सिवा कोई नई बात नहीं है।

बहुत-से लोगों ने जब यह देखा कि दिल्ली पर फिर अँगरेज़ों का अधिकार हुआ चाहता है तब उन्होंने झट दिल्ली छोड़ दी। परन्तु जब दिल्ली पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया तब उन्होंने बहुतों को निकाल दिया। यही कारण है कि ५ दिसम्बर सन् १८५७ ई० के पत्र में मिर्ज़ा ने लिखा है—

अपने घर में बैठा हूँ। दरवाज़े से बाहर नहीं निकल सकता। सवार होना और कहीं जाना तो बहुत बड़ी बात है। रहा यह कि कोई मेरे पास आवे! शहर में है कौन, जो आवे? घर के घर बिना दीपक के पड़े हैं।

५ दिसम्बर सन् १८५८ ई० को मिर्ज़ा ने जो पत्र मौलवी अज़ीज़उद्दीन को लिखा था उससे पता लगता है कि उस समय तक आबादी का क्या हाल था—

साहब! कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो। दिल्ली को वैसी ही बसी हुई जानते हो, जैसी पहले थी। क़ासिम जान की गली, मीर ख़ैराती के फाटक से फ़तेहउल्ला बेग ख़ाँ के फाटक तक बेदीपक है। हाँ, यदि आबादी है तो यह है कि ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ की हवेली अस्पताल है और ज़्याउद्दीन ख़ाँ के कमरे में डाक्टर साहब रहते हैं और काले साहब के घर में एक और अँगरेज़ साहब रहते हैं। ज़्याउद्दीन ख़ाँ और उनके भाई अपने बाल-बच्चों-समेत लोहारू में जा बसे। लालकुएँ के महल्ला में धूल उड़ती है, आदमी का नाम नहीं। तुम्हारे मकान में जो छोटी बेगम फिरंगी की बीबी रहती थी उसके पास इस इश्तहार को

भेजा था। मालूम हुआ, वह लाहौर को गई है। खेमी की दूकान में कुत्ते लोटते हैं। मुफ़्ती सदरउद्दीन साहब लाहौर गये हैं।

अँगरेज़ों ने दिल्ली के मुसलमानों को विशेष रूप से विद्रोही समझा था, इस कारण जब दिल्ली पर विजय प्राप्त की तब उनके साथ कड़ा व्यवहार किया। निदान ५ दिसम्बर सन् १८५७ ई० के पत्र में मिर्ज़ा लिखते हैं—

ख़ुदा की क़सम! ढूँढ़ने पर मुसलमान इस शहर में नहीं मिलता। क्या अमीर, क्या ग़रीब, क्या कारीगर, यदि कुछ हैं तो बाहर के हैं। हिन्दू अवश्य कुछ कुछ बस गये हैं।.........अभी देखा चाहिए, मुसलमानों की आबादी का हुक्म होता है या नहीं।

५ मार्च सन् १८५८ ई० के पत्र में मिर्ज़ा यह लिखते हैं—

तुम्हारे इस ख़त का जवाब न लिख सका। जवाब तो लिख सकता था, किन्तु कल्याण का पैर सूज गया था। वह चल नहीं सकता था। मुसलमान आदमी शहर में सड़क पर बिना टिकट के फिर नहीं सकता। ऐसी मजबूरी से तुमको ख़त न भेज सका। कई दिनों के बाद जब कहार अच्छा हुआ तब मैं तुमको आगरा में समझकर सिकन्दराबाद ख़त न भेज सका।

मिर्ज़ा तथा अन्य बहुत-से बड़े बड़े लोग ग़दर के पश्चात् कितने घोर संकट में पड़ गये थे, इसका भी उल्लेख मिर्ज़ा के पत्रों में पाया जाता है। २८ नवम्बर सन् १८५९ ई० के एक पत्र में उन्होंने लिखा है—

मेरा सगा भाई पागलपन की अवस्था में मरा। उसकी बेटी, उसके चार बच्चे, उसकी माता अर्थात् मेरी भौजाई जयपुर में पड़े हुए हैं। इस तीन वर्षों में एक रुपया उनको नहीं भेजा। भतीजी क्या कहती होगी कि मेरा भी कोई चचा है। यहाँ धनिकों और बड़े बड़े लोगों की स्त्रियाँ व सन्तानें भीख माँगती फिरें और मैं देखूँ! इस आपत्ति को देखने के निमित्त हृदय चाहिए। लोहारू के नवाब अलाउद्दीन ख़ाँ बहादुर (जो रिश्ते में मिर्ज़ा की बीबी के भतीजे थे) को मिर्ज़ा १६ फ़रवरी सन् १८६२ ई० के पत्र में लिखते हैं—

ऐ मेरी जान! यह वह दिल्ली नहीं है जिसमें तुम पैदा हुए हो। वह दिल्ली नहीं है जिसमें तुमने विद्या

प्राप्त की थी। वह दिल्ली नहीं है जिसमें तुम शाबानबेग की हवेली में मुझसे पढ़ने आते थे। वह दिल्ली नहीं है जिसमें सात वर्ष की आयु से आता-जाता हूँ। वह दिल्ली नहीं है जिसमें ५१ वर्ष से ठहरा हुआ हूँ। एक कैम्प है। मुसलमान काम-काजी अथवा हाकिमों के नौकर-चाकर हैं, बाक़ी सबके सब हिन्दू।

पृथक् किये गये बादशाह के घराने के पुरुष जो बचे हुए हैं वे पाँच पाँच रुपये महीना पाते हैं। स्त्रियों में से जो बुढ़िया हैं वे.........और युवा.........। बड़े बड़े मुसलमानों में से मृतकों को गिनो। हसनअली ख़ाँ बहुत बड़े बाप का बेटा सौ रुपया रोज़ का पेन्शन्दार सौ रुपया मासिक की जीविकावाला बनकर मर गया! अमीर नासिर-उद्दीन पिता की ओर से उच्च कुलीन और नाना व नानी की ओर से बहुत बड़ा अमीर था। वह निर्दोष मारा गया। आग़ा सुल्तान बख़्शी मुहमम्दअली ख़ाँ का पुत्र जो स्वयं भी बख़्शी हो चुका है। बीमार पड़ा, दवा न भोजन! अन्त में मर गया! तुम्हारे चचा की ओर से मृतक संस्कार हुआ। जीवित लोगों को पूछो! नाज़िर हुसेन मिर्ज़ा जिसका बड़ा भाई मारा गया था उसके पास एक पैसा नहीं, टके की आय नहीं। मकान यद्यपि रहने को मिल गया है, किन्तु देखिए छुटा रहे अथवा ज़ब्त हो जाय। बुड्ढे साहब सब जायदाद बेचकर और सब कुछ खा-पकाकर सीधे भरतपुर चले गये। ज़्याउद्दौला की पाँच सौ रुपया किराया की जायदाद छूट-छाट कर फिर क़ुर्क़ हो गई। बुरी दशा में लाहौर गया, वहाँ पड़ा हुआ है। देखिए, क्या होता है। निदान क़िला, झज्जर, बहादुरगढ़, बल्लबगढ़ और फ़र्रुख़नगर लगभग तीस लाख रुपया की रियासतें मिट गईं। शहर के अमीर मिट्टी में मिल गये।......

अब अन्त में यह कहना है कि मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्रों में अनेक साहित्यिक तथा मनोरञ्जक बातें हैं, किन्तु इनके सिवा दिल्ली से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक करुणामय बातें भी हैं और उनसे ऐतिहासिक लाभ हो सकता है तथा तत्कालीन सामयिक बातों पर दृष्टि पड़ सकती है।

पहचान

लेखक, श्रीयुत बलराम दुबे, बी० ए०

(१)

कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।
हिन्दू, इसाई और मुसलिम एक हैं सच मान लूँगा।
आदि-अन्त समान जब तो मध्य भी मैं मान लूँगा।
कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।

(२)

देश और विदेश क्या निज देश सब मैं मान लूँगा।
चार दिन के बाद तो यह देह-जग को त्याग दूँगा।
सौख्य-सम्पद, धर्म-बन्धन तक धरा पर वार दूँगा।
कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।

(३)

इन दिनों में किन्तु जग का शाप या वरदान हूँगा।
मूल्य अपने कर्म का अपयश-सुयश से आँक लूँगा।
सुन्दर-असुन्दर, लघु-बड़ा जग में इसी से जान लूँगा।
कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।

रिज़र्व बैंक

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल

भारत में रिज़र्व बैंक स्थापित हो गया है। परन्तु इसका क्या महत्त्व है तथा इसका सङ्गठन किस प्रकार किया गया है, इन बातों को सभी लोग नहीं जानते। इस लेख में लेखक महोदय ने इन्हीं बातों की चर्चा की है।



सार के सभी मुख्य-मुख्य देशों में उनके अपने प्रधान बैंक हैं जिन्हें सेंट्रल बैंक या कहीं-कहीं रिज़र्व बैंक कहते हैं। सेंट्रल बैंक की बहुत-सी परिभाषायें हैं। आसान भाषा में सेंट्रल बैंक वह संस्था है जो मनुष्यों की चलन और ऋण की माँग को पूरा करता है और राजनीति के प्रभाव या फ़ायदे के लोभ से अलग रहता है।

सेंट्रल बैंक का ख़ास व असली मतलब यह है कि वह रुपये के मूल्य को, जहाँ तक संभव हो, स्थिर रक्खे। आज-कल कुल आर्थिक कार्य उधार किये जाते हैं। माल पैदा करनेवाले को, शुरू शुरू में, मशीन वग़ैरह के लिए रुपये की आवश्यकता होती है। जब माल बनने लगता है तब उसे कच्चा माल ख़रीदने और मज़दूरी देने के लिए रुपये की ज़रूरत पड़ती है। जब माल बिक जाता है तब तत्काल ही उसे उसका रुपया नहीं मिल जाता, क्योंकि थोक ख़रीदनेवाले उधार पर माल ख़रीदते हैं। इतना अधिक रुपया एक मनुष्य अपने पास से नहीं लगा सकता और वह बैंक से उधार लेता है। थोक ख़रीददार माल को रेज़गारी पर बेचनेवाले को उधार देता है और रेज़गारीवाला भी, किसी हद तक, अपने ख़रीददारों से फ़ौरन रुपया नहीं पाता। अब अगर इन सब मनुष्यों को उनकी आवश्यकता के अनुसार ऋण न मिला तो चीज़ों की पैदावार कम होगी, व्यापार मंदा रहेगा और देश ग़रीबी में फँसा रहेगा। इसलिए आवश्यक यह है कि ऋण की सच्ची और बेजोखिम जितनी माँग हो, उतना ऋण अवश्य मिलना चाहिए। इसलिए प्रत्येक देश के लिए एक ऐसी संस्था की आवश्यकता है जो ऋण की पूर्ति पर क़ाबू रक्खे।

केंद्रीय बैंक का ख़ास और असली मतलब है ऋण और चलन की आवश्यकता के अनुसार भरती करना। इसके साथ-साथ केंद्रीय बैंक रुपये के बाज़ार को अधिकार में रखता है, दूसरे बैंकों की रक्षा करता है, चेक के प्रयोग और बट्टा-बाज़ार की उन्नति करता है, इत्यादि-इत्यादि।

बिना केंद्रीय बैंक के देश की आर्थिक उन्नति और मज़बूती का होना सम्भव नहीं है। इसकी मिसाल हमें संयुक्त-राष्ट्र अमरीका से मिल सकती है। सन् १९१३ के पहले वहाँ कोई केन्द्रीय बैंक नहीं था। नतीजा यह हुआ कि वहाँ बहुत-से आर्थिक संकट आये, जिनमें १९०७ का संकट सबसे ज़्यादा हानिकारक था। अंत में वहाँ फ़ेडरल रिज़र्व-बैंक-प्रणाली क़ायम करनी पड़ी।

भारतवर्ष में एक सेंट्रल या रिज़र्व बैंक खोलने के प्रश्न पर १८३६ में ही विचार हुआ था और इस विषय पर १८५९ में भारतवर्ष के प्रथम और सबसे बड़े आर्थिक मन्त्री जेम्स विल्सन ने एक रिपोर्ट भी दी। १८६७ में डिक्सन महाशय ने, जो बैंक ऑव् बेंगाल के मंत्री थे, तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों के मिला देने का प्रस्ताव किया। इस तरह इस प्रश्न पर बराबर विचार होता रहा, पर उस समय कोई ख़ास परिणाम नहीं हुआ। हाँ, सन् १९२१ में तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों को मिलाकर एक 'इम्पीरियल बैंक आव् इंडिया' की स्थापना की गई, जो इस देश के बैंकिंग इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण बात है। पर इम्पीरियल बैंक भी एक केंद्रीय बैंक की ज़रूरत को पूरी न कर सका। यह आधा तो केंद्रीय बैंक था और आधा एक मामूली व्यापारिक बैंक था। इस कारण सन्तोषजनक रीति से यह दोनों में से किसी का भी काम अच्छी तरह न कर सका। केन्द्रीय बैंक की माँग बनी ही रही। फलतः सन् १९०४ में 'रिज़र्व बैंक आव् इंडिया ऐक्ट' बनाया गया और 'रिज़र्व बैंक आव् इंडिया' की स्थापना हुई।

रिज़र्व बैंक का मूलधन ५ करोड़ रुपया है, जो सौ सौ रुपये के हिस्सों में बँटा हुआ है। इसका मूलधन सरकार ने नहीं दिया है। यह एक शेयरहोल्डरों का बैंक है। रिज़र्व बैंक का मूलधन सरकार दे या आम जनता—इस प्रश्न पर काफ़ी बहस हुई। अंत में पिछला प्रस्ताव ही पास रहा। संसार के जिन देशों में केंद्रीय बैंक हैं उनमें से अधिकतर बैंक शेयरहोल्डरों के ही हैं, सरकार के नहीं। बैंक को राजनैतिक प्रभाव से बचाने के लिए ऐसा होना आवश्यक है।

रिज़र्व बैंक को नोट चलाने का पूरा अधिकार दे दिया गया है। गवर्नर-जनरल ने अब नोट निकालना बंद कर दिया है और भारतवर्ष में प्रथम बार एक बैंक को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि वह चलन पर, और उसके द्वारा ऋण पर, क़ाबू रख सके। अब यह उम्मीद की जाती है कि खेत बोने के समय और पैदावार काटने के समय रुपये की कमी नहीं हुआ करेगी, अब तक इन समयों में इम्पीरियल बैंक केवल १२ करोड़ का चलन बढ़ा सकता था, जिससे माँग पूरी नहीं पड़ती थी। रिज़र्व बैंक को देश के अन्य बैंकों पर कुछ अधिकार देने के लिए यह नियम बना दिया गया है कि जो रुपया उन्हें माँगने पर ही देना पड़ेगा उसका ५ फ़ी सदी और जो कुछ समय के बाद देना पड़ेगा उसका २ फ़ी सदी रुपया वे रिज़र्व बैंक में जमा करें। क़ानून के द्वारा इस प्रकार एक ख़ास प्रतिशत क़ायम कर देना लाभदायक भी है और हानिकारक भी। लाभ तो यह है कि अगर यह क़ानून होगा तो सब बैंक अपनी आर्थिक ज़िम्मेदारियों के पीछे कुछ स्थायी कोष अवश्य रक्खेंगे और रिज़र्व बैंक भी, सच्चे रूप से, बैंकों का 'बैंक' हो सकेगा। नुक़सान यह है कि इससे बैंकों को एक झूठा विश्वास हो जाता है कि ५ फ़ी सदी और २ फ़ी सदी रिज़र्व से अधिक रिज़र्व रखने की आवश्यकता ही नहीं। रिज़र्व बैंक को फ़ायदे के लोभ से अलग रखने के लिए यह क़ानून बना दिया गया है कि शेयरहोल्डरों को मूल-धन पर अधिक से अधिक ५ फ़ी सदी फ़ायदा दिया जायगा और अगर किसी साल यह नहीं दिया जा सकता तो दूसरे साल दिया जायगा। शेड्यूल ४ के अनुसार ५ फ़ी सदी के ऊपर किन्हीं दिशाओं में १ फ़ी सदी लाभ और मिल सकता है। यह नियम भी प्रशंसनीय है। यदि फ़ायदा ५ या ६ फ़ी सदी से अधिक हुआ तो वह सब सरकार को दे दिया जायगा बशर्ते कि बैंक का स्थायी कोष मूलधन के बराबर हो गया हो। यदि ऐसा न हुआ तो ५०,००,०००) स्थायी कोष को दे दिया जायगा और यदि कुछ बचा तो सरकार को। जो रुपया सरकार को दिया जायगा उससे सरकार देश की उन्नति के काम और कर का बोझ हलका करेगी।

रिज़र्व बैंक का प्रबन्ध एक बोर्ड के द्वारा होगा। इस बोर्ड में १६ मेम्बर होंगे। उनमें एक गवर्नर और एक सहायक गवर्नर को गवर्नर-जनरल चुनेंगे। इनके सिवा और ४ मेम्बरों को भी गवर्नर-जनरल ही नियुक्त करेंगे और १ सरकारी अफ़सर भी बोर्ड का मेम्बर हुआ करेगा। शेष ८ मेम्बरों को शेयरहोल्डर चुनेंगे। इस तरह बोर्ड में ८ सरकारी मेम्बर और ८ ग़ैर-सरकारी मेम्बर रहेंगे। इतने अधिक सरकारी मेम्बरों का होना किसी दशा में भी उपयुक्त नहीं है और ऐसी हालत में बैंक का राजनैतिक प्रभाव से मुक्त रहना सम्भव नहीं मालूम पड़ता। संसार के अन्य देशों के ऐसे बैंकों के बोर्डों में २ या ३ सरकारी मेम्बरों से अधिक नहीं होते हैं।

काग़ज़ी मुद्रा अर्थात् नोट के पीछे जो स्थायी कोष रक्खा जायगा उसमें ४ फ़ी सदी सोने के सिक्के, सोना और स्टर्लिंग सिक्योरिटियाँ होंगी, बाक़ी ६ फ़ी सदी में रुपये के सिक्के। भारत-सरकार की रुपयेवाली सिक्योरिटियाँ और कुछ ख़ास व्यवस्थित हुंडिया होंगी। अमरीका के संयुक्त-राज्य में भी ४ फ़ी सदी सोना काग़ज़ी मुद्रा के पीछे रक्खा जाता है। जर्मनी में भी ४ प्रतिशत का ही नियम है। इस तरह हम देखते हैं कि हमारे देश का यह नियम संतोषजनक है। बड़ी अच्छी बात तो यह है कि इस विषय में 'रिज़र्व बैंक ऐक्ट' में इँग्लेंड की नक़ल नहीं की गई है, इँग्लेंड में स्थिर स्थायी कोष की प्रणाली है। यह प्रणाली केवल उसी देश के लिए उपयुक्त है, जहाँ रुपये की माँग में अधिक लोच नहीं होता, जिससे रुपया बढ़ाने की साधारणतया ज़रूरत नहीं होती। पर भारतवर्ष ऐसे खेतिहर देश में रुपये की माँग बहुत घटती-बढ़ती रहती है। खेती के समय व उपज कटने और बिकने के समय रुपये की माँग बढ़ जाती है और बाद को घट जाती है। इसलिए यहाँ यह आवश्यक है कि पहली दशा में काग़ज़ी मुद्रा बढ़ा दी जाय और बाद को घटा दी जाय। यदि यहाँ स्थिर-स्थायी-कोष-प्रणाली क़ायम की जाती तो बहुत सम्भव था कि आवश्यकता के अनुसार रुपया न बढ़ाया जा सकता, क्योंकि रिज़र्व बैंक को यदि १०० फ़ी सदी स्वर्ण रखना पड़ता तो उसे मुद्रा बढ़ाने में कोई उत्साह ही न होता। खेतिहर देशों के लिए तो अमरीकावाली प्रतिशत-स्थायी-कोष-प्रणाली ही अधिक लाभदायक है।

फिर, यदि ज़रूरत पड़े तो ४ फ़ी सदी सोने का बंधन ढीला भी किया जा सकता है। यदि स्थायी कोष में सोना

४ फ़ी सदी से कम पर ३½ फ़ी सदी से अधिक हो तो बैंक को एक टैक्स देने पर कम कोष रखने की आज्ञा दी जा सकती है। यह टैक्स बैंक-रेट से १ फ़ी सदी अधिक होगा, इसके बाद स्थायी कोष में प्रत्येक २½ फ़ी सदी की कमी के लिए १½ फ़ी सदी कर अधिक देना होगा, इस प्रकार यदि आवश्यकता हो तो बैंक बिना १ रत्ती सोना रक्खे हुए भी काग़ज़ी मुद्रा चला सकता है बशर्ते कि वह क़ानूनी कर देता जाय। इस नियम में अमरीका के संयुक्त-राज्य की पूरी नक़ल की गई है और इसके लिए सरकार बधाई का पात्र है।

वस्तुतः भारत के रिज़र्व बैंक के नियम बहुत अच्छे और उपयुक्त हैं और उनके बनाने में संसार के आर्थिक अनुभवों का पूरा-पूरा लाभ उठाया गया है। सिर्फ़ एक यही भूल हुई है कि बैंक पर सरकार ने अपना अधिक प्रभाव रक्खा है। इसी लिए डर यह है कि सिर्फ़ इसी नियम की वजह से कहीं रिज़र्व बैंक भी इम्पीरियल बैंक की कहानी को न दुहरावे।

उत्तर

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्म्मा, "चातक", कविरत्न

इन फूलों से उन फूलों पर,
उड़ते फिरते मधु लुब्ध भ्रमर।
मैंने हँस करके कहा "अरे!
क्या यही प्रेम का तत्त्व हरे!"
भनभन कर कहने लगे भ्रमर,
कुछ हुआ क्रुद्ध-सा उनका स्वर।
"मानव! पहले तुम निज चरित्र—
देखो! तब हम पर हँसो मित्र!"
ऐसे दुख की क्या बात दीप!
जलते जो सारी रात दीप!
सिर हिला दीप ने यही कहा—
"मेरा प्रकाश सब व्यर्थ रहा!
मानव! तव मन का अन्धकार—
कब क्षण भर भी मैं सका टार
बस इस चिन्ता ही से अधीर—
युग युग से मैं जल रहा वीर!"
लो! अभी सुनाई पड़ी यहाँ
प्रतिध्वनि विलुप्त हो गई कहाँ?
उड़ गई दूर क्या क्षितिज-पार
निज प्रियतम को करने दुलार?
मेरे मन की हलचल अपार—
क्या समझ गई प्रतिध्वनि उदार?
जो वह मेरे ही संग संग—
बोली करके निज मौन भंग।
"जो कुछ तुम कहते वही कहूँ,
अपनी मैं कुछ भी नहीं कहूँ,
हाँ में हाँ करती रहूँ सदा—
क्या यही भाग्य में हाय! बदा।
मानव! तेरा यह अनाचार—
मुझको असह्य है बार बार।
इससे मैं अबला अवश हाय!
लुक-छिप दिन काटूँ क्या उपाय?"
तट से टकराकर लोल लहर।
जब फोड़ रही थी अपना सर।
मैंने पूछा "यह सर्वनाश—
किससे करती होकर हताश"!
कलकल करके वह बोल उठी
हृद्गत भावों को खोल उठी।
"मानव! तेरा सुन सुयश-गान—
आई थी ले आशा महान।
पर देख तुम्हें यों विकृत, भ्रान्त—
मैं हूँ निराश मरती अशान्त।
जगदीश तुम्हारा करे क्षेम
उपजे तुममें बंधुत्व-प्रेम!"

बीच भँवर में

लेखिका, श्रीमती उषादेवी मित्रा

(१)



ते वर नदी के उस पार एक छोटी पहाड़ी थी। ठीक पहाड़ी के बीच में ऊँचे वृक्षों से घिरा एक छोटा-सा सफ़ेद मकान था। उसी मकान की दालान में सुरीला बैठी नदी को एकटक निहार रही थी। ठंडी हवा से हाथ-पैर वर्फ़ जैसे जम रहे थे। किन्तु उसका शरीर जमी हुई वर्फ़-सा स्पन्दनहीन-सा था; उसकी घनी पलकों से घिरी हुई आँखों में एक आग्रह था।

वर्षा की बूँदें झर-झर झर रहीं थीं। नदी का जल कल-कल, छल-छल वह रहा था और दाँड़ पर बैठी मैना गा रही थी—"जल-थल-नभ में एक सपन है"।

सुरीला के आगे-पीछे, आस-पास एक सूनापन था—एकदम सूना और उसी सूनेपन में कभी जुगनू के दिये-सो एक क्षीण आशा जल-सी उठती। बस वहो था उसके जीवन का सहारा।

पास ही घनी झाड़ी में दबका हुआ कोई पक्षी चिल्ला उठा—"भूत! भूत! भूत! भूत!" उस पुकार को सुनकर सुरीला रोमाञ्चित होने लगी। वह पुकार केवल पहाड़ी में ही नहीं हुई थी, उसके शरीर के रन्ध्रों में भी सदा होती रहती थी। फिर वह डरती किससे? वह तो स्वयं ही एक भूत थी। और तभी तो इस एकान्त में रह भी सकी थी। भूत?—हाँ, भूत ही तो वह थी। एक अँधेरी रात में नदी से जल लेकर लौटते समय साँप ने उसे डस लिया था और मृतक-लोक से लौटकर उसने भूतयोनि पाई थी। पृथ्वी ने बार बार उसे सतर्क कर दिया था कि मृतक-लोक से लौटा हुआ प्राणी जीवित-लोक में स्थान नहीं पा सकता। तब से वह वन के भीतर पशुओं के साथ उन्हीं का एक व्यक्ति होकर रहने लग गई थी। पशु-पक्षियों ने उसे अपना लिया था।

मृतक-लोक? किन्तु मृतक-लोक की बातें तो उसे कुछ भी स्मरण नहीं थीं। सर्प ने डस लिया था। उसके बाद एक नशे ने उसे आच्छन्न-सा कर लिया था। हाँ, वह सास, श्वसुर, ननद, देवर आदि का रोना सुन रही थी। डाक्टर, वैद्य, झाड़-फूँक—सब चल रहा था। केवल अपने पति हिमांशु को देखने की इच्छा थी। वह रंगून चला गया था। फिर भी सुरीला ने जीना चाहा, अपनी पूरी शक्ति लगाकर जीना चाहा। वह केवल एक बार उन्हें देखना चाहती थी। वह पुकारना चाहती थी कि वह सब तुम्हारी भूल थी, तुम्हारे ही प्रेम में यह छोटा-सा हृदय मस्त रहता है, केवल लज्जावश उसे प्रकाश नहीं कर सकती। किन्तु यह सब न हो पाया। उसकी आँखों के सामने एक अँधेरा छा गया, यहाँ तक कि वह अँधेरा गाढ़ ही होता गया। अन्त में उसी अन्धकार में वह डूब-सी गई। चेतना लौटी तब अपने को नदी के किनारे पाया। सब वस्त्र भीगे हुए थे। हाथों-पैरों में एक भी गहना नहीं था। विस्मय-विमूढ़ होकर वह उठकर बैठ गई। कुछ समझ में नहीं आया—वह नहीं जानती थी कि किसने कौन से अपराध के लिए उसे नदी में वहा दिया।

मुश्किल से वह चली। न जाने कितने हो दिनों वह भूखी-प्यासी चलती चली गई।

सुरीला बैठी सोच रही थी। "भूत! भूत! भूत"! पर्वत पर पक्षी पुकार रहा था। नदी अपनी धुन में मस्त थी। और दाँड़ पर मैना गा रही थी—

"जीवन सपना—
सपने का है जाल।"

(२)

सुरीला सोच रही थी। उसके बाद? हाँ, वह घर लौट जाना चाहती थी। भीख माँगती, रोती, बिलखती लोकालय में पहुँच गई। उसकी ससुराल उस ग्राम के बाद के गाँव में थी। पथ में एक परिचिता स्त्री मिल गई। एक ने दूसरी की ओर देखा। फिर स्त्री चिल्लाकर भागी। विस्मित सुरीला खड़ी रह गई। कुछ समझ ही न सकी। वह देर तक विचारती रह गई।

घर के चरवाहे का लड़का अपनी ससुराल से लौट

रहा था, कजली गाता खुशी में मस्त चला जा रहा था। सुरीला ने उसे देख लिया, उसने आह्लाद से उसे ज़ोर-ज़ोर से पुकारा। वह लौटा, निकट आया, पर दूसरे ही क्षण वह भाग निकला। किन्तु सुरीला उसका साथ नहीं छोड़ना चाहती थी। उसने उसका पीछा किया। वह चिल्लाता जा रहा था--"भूत"! "भूत"! लोग 'कहाँ'-'कहाँ' कहते दौड़ पड़े। "पीछे चुड़ैल आ रही है"---वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था। और तब मन्त्र, फूँक-फाँक की धूम मच गई।

अन्त में सब कुछ समझ सकने के बाद सुरीला को जंगल में अपना आश्रय ढूँढ़ना पड़ा। वह जान गई कि वह जीवित नहीं, मृतक है।

सुरीला अपनी चिन्ता में मग्न थी। वर्षा की बूँदें घनी थीं। "भूत! भूत! भूत!" पक्षी पुकार उठा। और मैना झूम झूम कर गा रही थी --

"जीना--सपना—मरना—सपना -"

हाँ, तो सुरीला ने उस दिन अपने को जाना और साथीस्वरूप जंगली पशु-पक्षियों को अपने संगी-साथी पाया। आहार के लिए जंगली फल थे।

इस उजड़े मकान में उसने डेरा डाल दिया था। कभी जंगल से तोते-मैने पकड़ कर अपने पास रखती थी, और जब अन्न-वस्त्र की ज़रूरत पड़ती थी तब सन्ध्या के अन्धकार में नदी तैर कर उस पार चली जाती और कम दाम में उन्हें बेचकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करती थी। दिन के प्रकाश से वह डरने लग गई थी। दिन का प्रकाश उसे निगलने-सा लगता था, अपनी छाया उसे निगलने दौड़ती थी। अपनी ही छाया से वह डर जाती थी।

रात का अन्धकार जब मकान में फैल जाता तब सुरीला चुपके से उठती और लेट रहती। आँखें इस तरह दबाती कि दर्द होने लगता। फिर भी उन बन्द आँखों के भीतर अन्धकार पुञ्जीभूत होता रहता और उसी अन्धकार में न जाने कितने भूत-प्रेत चलने-फिरने लग जाते।

रात्रि के समय वह अपने-आप से डरती थी। उसे लगता, उसके हाथ-पैर लम्बे-लम्बे हो गये हैं—हाथ ऐसे लम्बे कि अभी-अभी वे आकाश तक को छू लेंगे और पैर ऐसे कि सामने के बट के शिखर पर एक पैर चला जायगा और दूसरा पहुँचेगा नदी के उस पार—बस, वहीं खड़ी वह झूमती रहेगी और न जाने कितनी नावों को डुबा देगी और यात्रियों का रक्त चूस लेगी।

नानी-आजी तो भूतों की ऐसी ही कथा सुनाया करती थीं। और आज वह सुनी कहानी उसके जीवन में सच्ची हो रही है। वह स्वयं एक प्रेतिनी है।

सुरीला रात्रि में भय से एक-दम काठ-सी हो जाती थी। उसके रोम रोम खड़े हो जाते थे। साँस भारी हो जाती थी। वह शंकित रहती थी कि न जाने कौन से वक्त प्रेतिनी अपने असली रूप में उसके भीतर से निकल आवेगी और तब यह छद्म आवरण मिट्टी पर पड़ा लोटता रहेगा। उस ओर देखकर वह ज़ोर ज़ोर से हँसेगी—शायद तालियाँ भी बजावेगी।

नदी का जल फूल-सा रहा था। मेघ पानी ढोने में लगे हुए थे। "भूत! भूत! भूत"! का दर्द-भरा स्वर जल-स्थल में व्याप-सा रहा था। सुरीला की चिन्ता अतीत में मस्त थी। और मैना अपने गान में तन्मय थी— "निविड़ सपन का जाल।"

(३)

अतीत का भाषामय चित्रपट सुरीला की आँखों के सामने खुला हुआ था। जहाँ सुन्दरी वधू लज्जा से सिमटी पलंग के कोने में अपने अस्तित्व को छिपाना चाह रही थी और उसका पति—एक श्रीमान् युवक पत्नी से एक छोटा शब्द सुनने के लिए व्याकुल हो रहा था।

न जाने कितनी ऐसी रातें आईं और निकल गईं। किन्तु नवोढ़ा की लज्जा लिये वधू नवोढ़ा-सी ही रह गई। वह उस छोटे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी और न पति के निकट असंकोच भाव से ही जा सकी।

पति पत्नी का मुँह देखने के लिए लालायित ही रह गया। किन्तु अवगुंठन की दीर्घता पल भर के लिए भी न घटने पाई।

कभी काम-काज के अवसर पर वधू दबे पैर कमरे में गई तो घड़ी ने रात्रि का एक बजा दिया। वधू ने शंकित किन्तु प्रेम-आग्रह-पूर्ण नेत्रों से चकित दृष्टि से उस सुप्त युवक को एक बार देखा और फिर पलंग के एक ओर एक भीरु बालिका-सी सिमट कर सो रही। उस सुन्दर आकृति को देखने को उसका जी चाहने लगा। किन्तु वह देख न सकी।

निविड़ वर्षा हो रही थी। रात की नारी धरती पर उतर पड़ी थी। "भूत! भूत! भूत!" पक्षी पुकार उठा। और मैना के गान को विराम ही न था--

"रोना सपना हँसना सपना—"

अतीत का एक भीषण चित्र सुरीला के सामने था। उस दिन ग्रीष्म-ऋतु की बिदा-वेला में वेला फूल पड़ा था। मीठी गन्ध से कमरा भरा हुआ था। चारों ओर विदा की रागिनी बज रह थी। और उस विदा की वेला में भी सुरीला मूक-बधिर-सी रह गई थी। पति सामने खड़ा अन्तिम बिदा माँग रहा था। कह रहा था--"मैं जा रहा हूँ और जन्म भर के लिए चला जा रहा हूँ। तुम पूछ सकती हो कि 'क्यों'। और नहीं भी पूछ सकती हो, क्योंकि तुम जानती हो कि इस गूँगी-बहरी पत्थर की मूर्ति को लेकर मेरे दिन नहीं कट सकते। मैंने यह बात क्या तुम्हें नहीं जताई थी? सिर भी न हिलाओगी? अच्छा जाने दो। हाँ, मैं जानता हूँ, मैंने तुम्हें जताया था और कई बार जताया था। नहीं अनुरोध किया था, विनय की थी। मैंने रंगून में नौकरी कर ली है। वहीं रहूँगा। यदि किसी दिन मेरी ज़रूरत तुम्हें पड़ जाय, यदि तुम कभी मन से मुझे पुकारोगी, तो शायद उस दिन चला भी आऊँ—कह नहीं सकता।"

इतना कहने के बाद वह चुप हो गया था। किन्तु सुरीला फिर भी घूँघट हटा न सकी थी, यद्यपि बहुत कुछ कहने के लिए उसका मन मचल रहा था, रोम-रोम में कहने की कथा भरी हुई थी। किन्तु वह मौन ही रह गई थी। और जब कहने के लिए तैयार हुई थी तब आँसुओं ने उसका स्वर रोक लिया था, तब उसे उन आँसुओं को छिपाने की व्यस्तता थी।

अन्त में वह अटारी पर चढ़ गई थी। वहाँ से यह विकराल नदी दीखती थी। काँपते हुए शरीर को दीवार से टिकाकर वह देखती रह गई थी। जहाज़ नदी-तट पर लगा हुआ था। यात्री साफ़ नहीं दिख रहे थे। फिर भी वह दूर से उन्हें पहचान गई थी। देखते ही देखते जहाज़ आँखों के बाहर हो गया था।

उसके बाद कई वर्ष कट गये। फिर तो साँप ने ही डसकर उसके सब कुछ का निपटारा कर दिया। निपटारा? चाहे निपटारा ही रहा हो, किन्तु मन ने तो निपटारा नहीं किया न? इस भूतयोनि में भी उसी आशा के बल पर वह टिकी हुई है। एक दिन वे आवेंगे और जहाज़ इसी नदी पर लगेगा ही। उसी एक दिन की प्रतीक्षा में वह बैठी हुई है। वह उनसे बोलेगी, उनके उस छोटे प्रश्न का उत्तर देगी और फिर प्रेत-शरीर को लेकर प्रेतों के साथ चली जाय! बस।

सुरीला अपने विचार में मग्न थी।

"भूत! भूत! भूत! भूत!" पक्षी एक-सा चिल्ला रहा था। नदी में बाढ़ आ गई। और मैना गा रही थी—

"सपने में है रमा संसार"।

(४)

नदी फूली हुई थी और उसके जल में एक नौका उतरा रही थी। और सुरीला के नेत्र उसी नौका में आबद्ध हो रहे थे।

अन्त में? अन्त में नौका किनारे लगी।

सुरीला के द्वार पर अतिथि आकर खड़ा हो गया। उषा के प्रथम प्रकाश में पृथ्वी नवोढ़ा-सी खड़ी थी।

"भूत! भूत! भूत! भूत!" चीत्कार एक-सा था।

सुरीला अपने अतिथि को एकाग्र दृष्टि से देख रही थी। और मैना हँस रही थी—"पाना सपना खोना सपना लुट जाना है सपना"।

"भद्रे, एक अतिथि का स्थान यहाँ हो सकेगा?" आगन्तुक पूछ रहा था।

और सुरीला उसका मुँह निहार रही थी।

"इस भूतवासा में तुम भूतों के साथ रह सकोगे?" सुरीला ने कुछ देर के बाद पूछा।

"भूतवासा को मैं बचपन से जानता हूँ। भूतों के उपद्रव से यहाँ कोई नहीं रह सकता। किन्तु तुम तो मानवी हो।"

"तुम मुझे पहचानते हो?"

"नहीं।"

"बिलकुल नहीं?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

नहीं—उत्तर सुनकर सुरीला का मुँह वेदना से पीला पड़ गया। इसी पति की प्रतीक्षा में वह इस भूत का बोझ वहन कर रही थी। उसने फिर सुना—

"यद्यपि उसका मुँह मैंने अच्छी तरह से नहीं देखा,

फिर भी उसका कुछ सादृश्य तुममें है। किन्तु तुम्हें मैं नहीं पहचानता।"

"मुझे तुम नहीं पहचानते?"—घुमा फिराकर वह पूछने लगी—"बिलकुल नहीं पहचानते?"

"नहीं।"

"मैं जीवित नहीं हूँ।"

यह सुनकर वह व्यक्ति ऐसा काँपा कि वहीं बैठ गया।

"मैं सुरीला की प्रेतिनी हूँ"।

"तुम प्रेतिनी हो?"

"हाँ, प्रेतिनी हूँ। एक दिन तुम्हारा समय आया था। उस दिन तुम्हारे मन का प्रेमी पुरुष प्रेम के लिए उन्मत्त हो गया था और अधीर होकर अपनी बाँह बढ़ा दी थी। याद है न?"

मन्त्रमुग्ध की भाँति उस व्यक्ति ने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया।

सुरीला कहने लगी—"किन्तु उस दिन मेरे मन की नारी प्रेम-पिपासा से नहीं जागी थी। उस दिन उसे समय न था। किन्तु आज वह व्याकुल है और बाँह बढ़ाये खड़ी है। उसके मिलन की वेला निकली जा रही है। उसका समय उपस्थित है। इस भूत-लोक में वह केवल तुम्हारी ही होकर रहना चाहती है।"

और सुधांशु? वह उस प्रेतिनी की ओर देख भी न सका। अपने भय-विवर्ण मुख को दोनों हाथों से छिपाकर बैठ रहा।

सुरीला ने एक, दो, तीन वार उसे देखा और पूर्ण दृष्टि से उसे देखा। उत्तर की प्रतीक्षा की। फिर बोली—"तो आज तुम्हें समय नहीं है? अच्छा तो मृतक-लोक में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। यदि कभी समय हो तो आ जाना। किन्तु यदि उस दिन समय मेरा निकल जायगा तो मुझे दोष न देना। अच्छा विदा"।

झर झर झर वर्षा झर पड़ी। भर भर भर नदी बहने लगी। "भूत! भूत! भूत! भूत!" पक्षी चिल्ला उठा। वन के गहन में सुरीला झपटी चली जा रही थी और मैना खुशी में मस्तानी-सी गा रही थी—

'जीवन सपना—
सपने का है यह संसार।'

—

छिपे हुए देवता के प्रति

लेखक, श्रीयुत गिरीशचन्द्र पन्त

नयनों में जाग्रत व्यग्र खोज,
वाणी में अविरल तरुण टेर,
श्वासों में चिन्ता, आतुरता,
प्राणों में करुणा भरी हेर!

× × ×

मृदु कलियों में सङ्केत बाल,
औ' अलियों में करुणा-गुहार;—
उन जड़ पर्वत का तप गँभीर;—
मानव की निशि-दिन की पुकार!!

× × ×

युग-युग द्रुततर हैं बीत रहे;—
चेतना बनी अर्पित पतङ्ग।
जलकर तुममें हो भस्म, मौन,
खेलने, कभी से, रास-रङ्ग!!

—

स्वामी दयानन्द और उर्दू

लेखक, श्रीयुत चन्द्रबली पाँड़े

इस लेख के लेखक श्रीयुत पाँड़ेजी हिन्दी-साहित्य के नामी समीक्षक हैं। अपने इस लेख-द्वारा उन्होंने इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया है कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्र-भाषा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती संस्कृत के पंडित और वैदिक धर्म के आचार्य थे। संस्कृत उनकी मातृभाषा[1] थी। पहले संस्कृत में ही व्याख्यान किया करते थे। उनके एक व्याख्यान का अनुवाद पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने अशुद्ध किया। उस[2] दिन से उन्होंने निश्चय कर लिया कि हिन्दी-भाषा-द्वारा ही उपदेश दिया करेंगे।' स्वामी जी ने संस्कृत को छोड़ हिन्दी-भाषा को अपने विचारों का माध्यम केवल इसी लिए बनाया कि वह वस्तुतः आर्य या आर्यावर्त की भाषा थी। स्वामी जी उसी को राष्ट्रभाषा समझते थे। विचार करने की बात है कि श्री लल्लू जी लाल, महात्मा गांधी और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिनकी जन्म-भाषा गुजराती थी, गुजराती का पक्ष न ले हिन्दी-भाषा का पक्ष क्यों ग्रहण किया; और क्यों स्वामी जी ने तथा महात्मा गान्धी ने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में काम करना शुरू कर दिया। बात यह है कि सचमुच हिन्दी ही हिन्द की राष्ट्रभाषा थी और उसी के द्वारा जनता तक अपने विचार व्यक्त किये जा सकते थे। पढ़े-लिखे पंडितों का माध्यम संस्कृत-भाषा थी और जनता की लोक-भाषा हिन्दी थी। यदि इसे और स्पष्ट करना चाहें तो आसानी से कह सकते हैं कि संस्कृत हिन्दियों की 'फ़ारसी' और हिन्दी हिन्दियों की 'उर्दू' थी यानी जिस तरह दरबारी या सरकारी लोगों में फ़ारसी और उर्दू का प्रचलन था, उसी तरह जनता या लोक में संस्कृत और हिन्दी का बोलबाला था। स्वामी दयानन्द ने अच्छी तरह देख लिया कि जिन लोगों से उन्हें काम लेना है और जो सचमुच अन्धकार में पड़े हुए हैं उनके उद्धार के लिए उन्हीं की व्यवहार की भाषा से काम लेना उचित है। इतना विचार उठना था कि उन्होंने संकल्प कर लिया कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का अभ्यास करो और उसी को अपने व्याख्यानों तथा विचारों को माध्यम बनाओ। स्वामी जी का हिन्दी के मैदान में आना था कि हिन्दी-भाषा में नवीन जीवन आ गया। वह पनप उठी। यारों ने देखा कि स्वामी जी संस्कृत के पंडित हैं, वैदिक धर्म के प्रचारक हैं, भारत के प्राचीन गौरव का गान करते हैं—संक्षेप में हिन्दी के उपासक और आर्यभाषा के स्तम्भ हैं, इसलिए यह हल्ला करना आवश्यक है कि उन्होंने अरबी-फ़ारसी शब्दों का बहिष्कार किया। उनका अनुमान ठीक निकला। बहुत-से विज्ञ भी उनके चकमे में आ गये और यह निश्चित कर लिया कि सचमुच स्वामी जी ने फ़ारसी-अरबी शब्दों को निकाल फेंका है। इतना भी नहीं सोचा कि जो निकाले और फेंके हुए लोगों को भी अपने समाज में शुद्ध करके दाख़िल कर लेता है वह अपने यहाँ आये हुए शब्दों को क्यों निकाल फेंकेगा। सारांश यह कि श्री लल्लू जी लाल की तरह स्वामी दयानन्द सरस्वती पर भी व्यर्थ ही यह लांछन लगाया गया कि उन्होंने फ़ारसी-अरबी शब्दों का बहिष्कार किया। इस लांछन अथवा अभियोग से यारों का जो हित हुआ उसके निदर्शन की ज़रूरत नहीं। यहाँ तो इतना दिखा देना काफ़ी है कि स्वामी जी ने फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग उचित मात्रा और उचित रूप में बिना किसी संकोच के स्वभावतः किया है। इतना ही नहीं, फ़ारसी और उर्दू के पठन-पाठन का भी विधान किया है। उन्हें देशनिकाला नहीं किया। परन्तु जो लोग नासिख़ (मृ० सं० १८९५ वि) के क़लाम राष्ट्रभाषा की कसौटी ठहराते और आँख-कान तक को मतरुक या सलीस उर्दू के बाहर की गँवारी चीज़ समझते हैं उनके लिए तो स्वामी दयानन्द सचमुच कृतान्त हैं। उनकी ज़बान को ज़रूर देशनिकाला कर दिया, लाख करें, अब वह ज़बान हमारी ज़बान नहीं पकड़ सकती। स्वयं

---

(१) स्वामी जी संस्कृत को मातृभाषा क्यों कहते थे, इस पर विचार होना चाहिए।

(२) खेद है कि इस तिथि का निश्चित पता न लगा। अनुमान है कि संवत् १९३१ या उससे कुछ पहले यह घटना घटी होगी। (देखिए महर्षि का संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त, शताब्दी संस्करणम् पृ० ३४)

उर्दूवालों ने उनकी ज़बान पर लगाम लगा दी है और उनकी ग़लतियों पर पछता रहे हैं।

हाँ, तो स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्म-भाषा हिन्दी न थी। हिन्दी का उन्होंने अध्ययन भी नहीं किया था। जन्म-भाषा के साथ ही साथ जो राष्ट्रभाषा का परिचय हो गया था उसी के आधार पर स्वामी जी ने हिन्दी-भाषा में लिखना आरम्भ कर दिया। किसी सनदी ज़बान की ज़रूरत उन्हें न पड़ी। उन्होंने स्वयं[1] लिखा है—

"जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है इसलिए इस ग्रन्थ को भाषाव्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया।"

स्वामी जी के ग्रन्थों में कुछ ऐसे भी हैं जिनकी भाषा पंडितों ने बनाई है। श्री हरविलास सारडा[2] ने ठीक ही कहा कि--

"वेदभाष्यों की संस्कृत तो स्वामी जी महाराज की ही, परन्तु हिन्दी समग्र स्वामी जी के पास काम करने-वाले पंडितों की बनाई हुई है।"

स्वामी जी के पत्रों से पता चलता है कि स्वामी जी को पंडितों की भाषा पसन्द न आती थी। किसी के लिए लिखते हैं —

"यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता किन्तु घास ही काटता है।"

तो किसी में दोष निकालते हैं—

"अपनी ग्रामीण भाषा लिख देता है।"

साथ ही उन मुंशियों को भी आगाह कर देते हैं जो हिन्दी को फ़ारसी बनाकर उसे बिलकुल किताबी चीज़ बना देते हैं। तभी तो श्री ज्वालादत्त[4] लिखते हैं-- "भाषा बनाने के लिए जो गोदग़ाद शिवदयालु मुंशी से करा रहे हैं यह तनिक शोचविचार के होना चाहिए। इस भाषा बनाने में बहुत जगह कठिन पड़ती और आगे पीछे बहुत ख़्याल रखने पड़ता। इस काम में जो आपके पास दो बरस न रहा हो और जिसने आपका ठीक सिद्धान्त न जाना हो उससे इस भाषा का बनवाना इस काम का ढंग बिगड़वाना है।... फ़ारसी शब्दों के बचाने के लिए गमारू[1] शब्द भी मिल जाय तो गमारू शब्द धर देता हूँ। जहाँ तक बच सकते वहाँ तक बचा भी देता हूँ।"

उक्त अवतरणों के आधार पर आसानी से कहा जा सकता है कि भाषा के सम्बन्ध में स्वामी जी का निजी सिद्धान्त था फ़ारसी और 'गमारू' से बचकर प्रचलित राष्ट्र-भाषा में भाष्य करना।

स्वामी जी के उक्त सिद्धान्त को सामने रखकर उनकी भाषा पर विचार कीजिए। आपको स्पष्ट अवगत होगा कि स्वामी जी ने फ़ारसी के किताबी शब्दों और फ़ारसियत को अपनाने की चिन्ता नहीं की है, बल्कि मुंशियों को उनसे सावधान भी कर दिया है। साथ ही फ़ारसी के उन शब्दों को हाथ से जाने भी नहीं दिया है जो जनता या लोकभाषा के शब्द हो गये हैं। उचित होगा, यदि हम यहाँ यह दिखलाने की चेष्टा करें कि स्वामी जी ने निजी, अपने हाथ के पत्रों में कहाँ तक फ़ारसी के शब्दों को जगह दी है और इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं किया है कि वे मुसलमानी या आर्यों की गुलामी के वक़्त के लफ़्ज़ हैं। स्वामी जी ने 'हिन्दू'[2] शब्द को त्याग दिया। इसलिए नहीं कि वह फ़ारसी या इस्लामी शब्द था, बल्कि इसलिए कि उसमें घृणा और अपमान या द्वेष का विधान था और 'आर्य' को इसीलिए अपनाया या चालू किया कि वह वस्तुतः आर्यत्व का द्योतक और मंगल का विधायक

(१) सत्यार्थप्रकाश 'द्वितीय संस्करण' की भूमिका का आरम्भ।

(२) शताब्दी संस्करण, प्रथम भाग, भूमिका पृ० १६।

(३) " " " पृ० १८।

(४) ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार प्रथम भाग, गुरुकुल काँगड़ी पृ० ४१९।

(१) इसी 'गमारू शब्द' को लक्ष्य करके स्वामी जी ने लिखा था, "अपनी ग्रामीण भाषा लिख देता है।" स्वामी जी 'फ़सीह ज़बान' या 'ग्रामीण भाषा' के क़ायल न थे बल्कि प्रचलित भाषा के भक्त थे।

(२) हिन्दू शब्द के 'सांकेतिकार्थ हैं काला, लुटेरा और गुलाम।' देखिए ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन दू० भा० पृ० ७१।

था। स्वामी जी से जब आर्यभाषा के प्रचार के लिए अनुरोध किया गया तब उन्होंने आर्यसमाजों को[1] लिखा—

"यह बात बहुत उत्तम है क्योंकि अभी कलकत्ते में इस विषय की (स्कूलों में कौन-सी भाषा पढ़ाई जाय) सभा हो रही है। इसलिए जहाँ तक बने वहाँ शीघ्र संस्कृत और मध्यदेश की भाषा के प्रचार के वास्ते, बहुत प्रधान पुरुषों की सही कराके कलकत्ते की सभा में भेज दीजिए और भिजवा दीजिए।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि स्वामी जी के सामने कभी फ़ारसी-अरबी शब्दों के बहिष्कार का प्रश्न होता तो इस समय अवश्य ही 'वास्ते' और 'सही' को जगह नहीं देते और अनायास ही 'हेतु' और 'हस्ताक्षर' लिख जाते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कारण प्रत्यक्ष है। उन्हें मुसलिम शब्दों से चिढ़ न थी। उन्हें भी प्यार की निगाह से देखते और आर्यभाषा का अंग समझते थे। आर्यभाषा के भीतर आ जाने से उन्हें भी आर्य ही समझते थे। स्वामी जी की दृष्टि में 'वास्ते प्रचार' अनार्य और 'प्रचार के वास्ते' आर्य था। किन्तु पत्र-व्यवहार में इस प्रकार की भाषा को अनुचित नहीं समझते थे। क्योंकि कागजात[2] का जो अर्थ निकलता है वह काग़ज़ों या कागदों में नहीं है। इसी लिए[3] लिखते हैं—

"यहाँ हमारे पास सिवाय एक रजष्टर के दूसरा काग़ज़ात कुछ भी नहीं है।"

इसे स्वामी जी की कचहरी की भाषा समझना

(१) पत्र और विज्ञापन चतुर्थ भाग पृ० ३६

(२) उर्दू में तीन तरह से बहुवचन बनते हैं—हिन्दी, फ़ारसी और अरबी। जो लोग हिन्दी और उर्दू के व्याकरण को एक ही बताते हैं उन्हें इस पर विचार करना चाहिए और यह सिद्ध कर देना चाहिए कि हिन्दी में भी उसी प्रकार के बहुवचन बनते हैं अथवा उसी मात्रा में संस्कृत के बहुवचन काम करते हैं। सच तो यह है कि उर्दू के व्याकरण ने भी बहुत कुछ उसे विदेशी बना दिया, चाहे आप उसे स्वदेशी ही समझें।

(३) पत्र और विज्ञापन, तृ० भाग पृ० ३५।

चाहिए। कचहरी या हिसाब-किताब की भाषा में फ़ारसी-अरबी के शब्दों की भरमार है। स्वामी जी ने उनका ठीक उसी प्रकार प्रयोग किया है, जिस प्रकार अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का। उदाहरण के लिए उनका यह कथन[1] लीजिए—

"बिल के रुपैयों की पहुँच की रसीद न होने और रसीदों के बिल न होने से जालसाजी उसकी विदित हो जायगी। और उसकी चिट्ठियों से निश्चित है कि कलकत्ते का हिसाब चुकता कर दिया, तो बिल का होना और रसीदों का न होना सिवाय चोरी के क्या कह सकते हैं।"

स्वामी जी उर्दू से अनभिज्ञ थे। उस समय उर्दू का राज्य था। वह सरकारी ज़बान थी। स्वामी जी को भी उर्दू में ख़तकिताबत करनी पड़ती थी। जो लोग हिन्दी-उर्दू में केवल शब्दकोष का अन्तर समझते हैं उन्हें उर्दू की तरकीब और हिन्दी की पदयोजना पर ध्यान देना चाहिए। इन्हीं स्वामी दयानन्द के 'उर्दू ख़त'[2] की उर्दू पर ग़ौर कीजिए और भूल न जाइए कि पद-विन्यास क्या है—

"हस्बुल ईमा आपके मैं यहाँ चन्द्रिका तलाश कर रहा हूँ। अनकरीब बशरते दस्तयाबी अरसाल खिदमत होगी। कैफ़ीयत यहाँ की यह है कि जमीअ असबाब छापेखाने का मय कागज रौशनाई व प्रूफ सीट वगैरा के कलकत्ता से यहाँ आ गया।" आप कहीं यह न समझ लें कि यह ख़त किसी मौलाना के पास भेजा गया था और इसी लिए इसकी भाषा को यह रूप दिया गया। नहीं, हर्गिज़ नहीं। यह ख़त एक आर्य मुंशी इन्द्रमन साहब के नाम भेजा गया था जो आर्यसमाजी और स्वामी जी के दल के आदमी थे। बात यह थी कि उस समय सरकार की ओर से उर्दू को इतनी मदद मिल रही थी कि लोग जीविका और प्रतिष्ठा के लिए उसी को अपनाते थे। स्वामी जी के उपदेश से बहुत-से मसिजीवी और सभ्य लोग वैदिक तो बन गये, पर उर्दू के साथ ही आर्यभाषा न सीख सके। इसलिए स्वामी जी को उनके पास उर्दू में

(१) वही पृ० ४७।

(२) पत्र और विज्ञापन चतुर्थ भाग पृ० २

पत्र भेजना पड़ा। इस उर्दू का मतलब था फ़ारसी का[१] वारिस न कि देश-भाषा। इसको समझने के लिए फ़ारसी का जानना अनिवार्य था। निदान स्वामी जी को लाला जीवनदास से कहना[२] पड़ा—

"यहाँ पारसी ख़त पढ़नेवाले बहुत कम हैं, इँग्लिश के पाठक बहुत हैं। इसलिए जब कभी लिखें तब नागरी वा इंगरेजी में लिखें। इस पत्र का मतलब हम ठीक ठीक नहीं समझते हैं।"

स्वामी जी पर रहम कर कुछ उर्दू-भक्तों ने हिन्दी लिखने का साहस किया। चुनांचे जुवाहरसिंह[३] लिखते हैं—

"मुझे हिन्दी लिखनी नहीं आती। यदि लिखता हूँ तो बहुत अशुद्ध लिखी जाती है जैसे इस पत्र से विदित होगा यिस कारण उर्दू वा अँगरेज़ी में पत्र लिखता रहा हूँ और अब भी अँगरेज़ी में लिखने लगा था। प्रन्तू जैसे आई वैसे लिख दी यिस कारण कि शायद तकलीफ़ न हो।"

अब तक जो सामग्री आपके सामने आई है उसमें कहीं भी इस बात का संकेत नहीं है कि स्वामी जी उर्दू या फ़ारसी-अरबी-शब्दों के शत्रु थे। जुवाहरसिंह के कहने से यह मान लेना चाहिए कि सहूलियत और आसानी के लिए लोग हिन्दी को अपनाने लगे थे और स्वयं स्वामी जी से निवेदन करने लगे थे कि देवनागरी में लिखा कर भेजें। सेवकलाल कृष्णदास का[४] अनुरोध है—

"आपके आने बिना समाज का मंदिर होना कठीन है और सब समाजों का अँगरेजी वा हिंदि में (देव नागरी लिपि में) लिखा के कृपा कर भेज देना।"

हिन्दी की व्याख्या में देवनागरी-लिपि का निर्देश इस लिए करना पड़ा कि दक्षिण में यही हिन्दी फ़ारसी-लिपि में दक्खिनी के रूप में प्रचलित थी और उर्दू हो जाने पर भी कभी कभी हिन्दी के नाम से याद की जाती थी। हैदराबाद ने आज इसकी जगह फ़सीह उर्दू को पसंद कर लिया है, नहीं तो आरम्भ में वहाँ 'दक्खिनी' हिन्दी का ही प्रचार था। प्रसंगवश इतना स्पष्ट करने की ज़रूरत इसलिए पड़ी कि वस्तुतः हिन्दी ही राष्ट्रभाषा थी और इसी लिए उसके जानकार मुंबई में भी मौजूद थे, जो हिन्दी को देवनागरी में पढ़ते-लिखते थे, फ़ारसी में नहीं।

हिन्दी ही नहीं, संस्कृत में भी पत्र लिखने के लिए स्वामी जी से आग्रह किया जाता था। खानदेश के लक्ष्मण गोपाल देशमुख की[१] आशा है—

"हम इच्छा करते हैं कि आपके पत्र हमकु सब संस्कृत में आवे सो इच्छा आप पूर्ण कीजिए। इससे हमकु भी संस्कृत पत्र-व्यवहार का मार्ग समजा जायेगा।"

इतने पर भी यदि लोग यही कहें कि स्वामी जी हिन्दी और संस्कृत को 'बिला वजह, बग़ैर ज़रूरत' राष्ट्र पर लादना चाहते थे तो उनसे हम क्या कहें। उनका इलाज तो हमारे पास नहीं है। पर जो लोग सत्यनिष्ठ और हक़परस्त हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि शांतचित्त से प्रश्न पर विचार करें और ठंडे दिल से देखें कि असलियत क्या है। क्यों स्वामी जी पर यह लांछन[२] लगाया गया कि

"वह तरह तरह से अपनी नई हैसियत और इन्फ़रा-दियत जताने लगे। और जिस तरह एक बेवक़ूफ़ औरत ने अपनी ख़ूबसूरत अँगूठी दिखाने की ख़ातिर घर को आग लगा दी थी, उन्होंने भी बनेबनाये घर को बिगाड़ना शुरू किया। सबसे पहले नज़ला उर्दू ज़बान पर गिरा।"

जिस देश में बैठकर आज उर्दू के परम प्रचारक

---

(१) मौलाना अब्दुलहक़ साहब ने 'उर्दू' जनवरी सन् ३३, पृ० १४ में फ़रमाया है—

"जिस तरह बाप का जानशीन बेटा होता है उसी तरह फ़ारसी की क़ायममुक़ाम उर्दू हो गई।"

जो लोग उर्दू को राष्ट्रभाषा या मुल्की ज़बान मानते हैं उन्हें ज़रा ठंडे दिल से इस पर ग़ौर करना चाहिए।

(२) पत्र और विज्ञापन प्र० भाग पृ० ३६।

(३) पत्रव्यवहार प्रथम भाग पृ० १२९।

(४) " " पृ० २५०।

---

(१) पत्रव्यवहार प्रथम भाग पृ० २४५।

(२) आल इंडिया मुसलिम एजूकेशनल कान्फ़रेंस की उर्दू-कान्फ़रेंस में गत २८ अप्रेल के व्याख्यान में अलीगढ़ में मौलाना अब्दुलहक़ ने यह दावा पेश किया और फिर उसी महीने की 'उर्दू' पत्रिका में छापा। कहने की ज़रूरत नहीं कि मौलाना हक़ एकता के प्रेमी और राष्ट्र के भक्त हैं। मुल्की ज़बान के फ़ैसले के लिए नेताओं से बराबर मिलते रहते हैं और 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' को 'फूट-नगर' का रास्ता बताते हैं।

मौलाना अब्दुल हक़ उर्दू को मुल्की ज़बान का ख़िताब दे रहे हैं उसी देश से स्वामी जी के पास पुकार आती है कि 'हिन्दी, देवनागरी लिपि में', 'पत्रव्यवहार संस्कृत में' हो। ख़ैर, इस प्रसंग को यहीं छोड़िए और देखिए कि उर्दू पर कौन-सा नज़ला गिरा। स्वामी जी ने उर्दू के लिए क्या किया, इसे भी देख लें। संस्कृत के प्रचार को समाने रखते हुए स्वामी जी[1] लिखते हैं—

"अब इसके साधनार्थ यह होना चाहिए कि कुल पठन-पाठन समय के छः घंटों में ३ घंटे संस्कृत २ घंटे अँगरेज़ी और १ घंटा उर्दू फ़ारसी पढ़ाई जाया करे।" ध्यान देने की बात है कि स्वामी जी ने 'हिन्दी' या आर्यभाषा का विधान न कर 'उर्दू' का उल्लेख किया है। कारण स्पष्ट है। हिन्दी का सामान्य ज्ञान सबको था। संस्कृति के बोध के लिए संस्कृत और सरकार तक पहुँच के लिए अँगरेज़ी और उर्दू की ज़रूरत थी। फ़ारसी के बिना उर्दू का काम ही न चलता, क्योंकि वह 'फ़ारसी की क़ायममुक़ाम' थी। इसलिए उसका भी पठन-पाठन आवश्यक था। इस बात का पता पंडित ज्वालादत्त जी के पत्र से चल जाता है। स्वामी जी ने उनसे फ़ारसी पढ़ने को कहा था। उन्होंने फ़ारसी पढ़ना उचित समझा था, पर किसी कारणवश आरम्भ नहीं किया। निदान[2] लिखते हैं—

"पढ़ने के लिए जो आपसे मैं कह आया था सो फारसी तो मुंशी जी से नहीं पढ़ी और संक्रत का अभी प्रारंभ नहीं किया।"

समझ में नहीं आता कि हम उन लोगों की क्या दवा करें जो स्वामी जी पर इस तरह का लांछन लगाते हैं और अपने घर की बात नहीं देखते कि आज भी राष्ट्रभाषा या 'मुल्की ज़बान' के नाम पर किस प्रकार उर्दू में फ़ारसी-अरबी की तरकीब भरी जाती है और हिन्दी तथा भाषा का नाम तक मिटाना[3] इष्ट समझा जाता है। स्वामी जी ने एक

(१) पत्र और विज्ञापन च० भाग पृ० २८।

(२) पत्रव्यवहार प्र० भाग पृ० ४१८।

(३) उर्दू की जगह हिन्दुस्तानी का प्रयोग इसी लिए ज़ोरशोर से सामने आ रहा है कि वह हिन्दी की हस्ती को हिन्दुस्तान के नाम पर आसानी से मिटा सके। उसके भ्रम में कहीं हम हिन्दी को खो न बैठें, इसलिए उसको खरी कसौटी पर कस कर उसको राष्ट्रभाषा का वाचक बनाना चाहिए।

अपराध अवश्य किया। वह सीधा और प्रत्यक्ष अपराध यह था कि वे भी चाहते थे कि सरकार देश की भाषा हिन्दी को अपने यहाँ जगह दे और उर्दू के रूप में प्रच्छन्न फ़ारसी से निरीह जनता को मुक्त करे। प्रच्छन्न फ़ारसी से कुढ़ें नहीं, बल्कि उस मसविदा पर ध्यान दें जो स्वामी जी की ओर से सरकार में पेश किया गया था। उसका एक अंश[1] है—"लिहाज़ा बावजूद मलहूज़ रखने तमामतर एज़ाज़ और आदाब क़ानून मज़कूर हसबज़ैल इलतमास करता हूँ, कि अगरचे एक्ट मज़कूर का असली मंशा सरीह इन्साफ़ और मसलिहत आमा कायिम करना और हिन्दुओं के असली और इन्साफ़ी क़ानून को बमुक़ाबला जायिज़ रस्मोरिवाज बे बुनियाद के तरजीह देता है और उसकी तासीर से बेवगान हनूद के झूठे रस्मोरिवाज की पाबन्दी से बचा कर आदिल गवर्नमेंट ने क़ानूनी हक़ उनका बहाल फ़रमाया है।"

यह तो स्वामी जी का आर्य मसविदा[2] है। 'फ़सीह मसविदा' का सामना करना हो तो कचहरी में पहुँच जाइए और अपनी उस मुल्की ज़बान को पहचान लीजिए जो आपकी मादरी ज़बान है। आज नहीं तो कल यही आपके घर की बोली होगी। आज तक खेल में आप 'चे मे' कहा कर छोड़ दिये जाते थे, पर अब सचमुच आपको इसी 'चे मे' का जाप करना होगा। इसी से रोटी नसीब होगी। स्वामी जी के सामने इस रोटी का प्रश्न न था। वे आर्यावर्त की उन्नति चाहते थे और आर्यावर्त की उन्नति में विश्व की उन्नति समझते थे। तभी तो स्पष्ट कहते हैं[3]—

"हम लोगों का तो यही अभीष्ट, यही कामना और यही उत्साह है कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी।" तथा

"[4]हमने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के कारण अपने समाधि और ब्रह्मानंद को छोड़ कर यह कार्य ग्रहण किया है।"

(१) पत्र और विज्ञापन द्वि० भाग पृ० ७४-५।

(२) आर्यसमाजियों की उर्दू आर्यसमाजी उर्दू के नाम से पुकारी जाती है और नजीबों को खटकती है।

(३) पत्र और विज्ञापन प्र० भाग पृ० ६६।

(४) " " च० भाग पृ० १८।

अस्तु, परमार्थ और स्वदेशोन्नति के लिए स्वामी जी अनिवार्य समझते थे कि प्रच्छन्न फ़ारसी यानी उर्दू की जगह आर्य यानी आर्यावर्त (हिन्दुस्तान) की भाषा हिन्दी का प्रचलन हो। याद रहे, स्वामी जी की आर्यभाषा या हिन्दी का अर्थ है हमारी वह राष्ट्र-भाषा जिसमें "मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होय।"[१] यही कारण है कि उनके धार्मिक और पवित्र ग्रंथों में भी फ़ारसी-अरबी के शब्दों का प्रयोग हुआ है और उनसे कभी किसी प्रकार का परहेज़ नहीं किया गया है। प्रसंग के अनुसार स्वामी जी ने किस तरह फ़ारसी-अरबी के कितने शब्दों का प्रयोग किया है इसको अच्छी तरह जानने के लिए उनके ग्रंथों का स्वतः अध्ययन करना चाहिए। फिर भी पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ कुछ अवतरण पेश करते हैं और यह जानना चाहते हैं कि स्वामी जी उन्हें किस रूप में रखते कि उर्दू पर नज़ला गिराने और फ़ारसी-अरबी शब्दों के देश-निकाले के अभियोग से बच जाते और राष्ट्रभाषा के पोषक माने जाते। याद रहे, स्वामी जी संस्कृत के पंडित थे और फ़ारसी तथा उर्दू से बिलकुल अनभिज्ञ थे। क्योंकि वे स्वयं[२] कहते हैं—

"जो कुरान अर्बी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्यभाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहिले खंडन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे"।

इस्लाम के समीक्षक की भाषा का नमूना[३] यह है—

"जब मुसलमान लोग सिवाय ख़ुदा के किसी के साथ ईमान नहीं लाते और न किसी को ख़ुदा का साझी मानते हैं तो पैग़म्बर साहेब को क्यों ईमान में ख़ुदा के साथ शरीक किया? अल्लाह ने पैग़म्बर के साथ ईमान लाना लिखा इसी से पैग़म्बर भी शरीक हो गया।"

गया के पंडों को इन शब्दों में याद[४] करते हैं—

"जो लोग आँख के अंधे गाँठ के पूरे उनके जाल में जा फँसते हैं उनको गयावाले उलटे उस्तरे से ख़ूब हजामत बनाते हैं।"

बस, स्वामी जी की भाषा का कथावाला नमूना भी देख[१] लीजिए—

"कभी एक आधी रात में किसी साहूकार का नौकर एक हज़ार रुपयों की थैली लेके किसी साहूकार की दुकान पर जमा करने को जाता था। बीच में उचक्के आकर रुपयों की थैली छीन कर भागे। उसने जब पुकारा तब थाने के सिपाहियों ने आकर पूछा कि क्या है? उसने कहा कि अभी उचक्के मुझसे रुपयों को छीन कर लिये जाते हैं। सिपाही धीरे धीरे चल के किसी भले आदमी को पकड़ लाये कि तू ही चोर है। उसने उनसे कहा कि मैं फलाने साहूकार का नौकर हूँ चलो पूछ लो।"

चलो चलें हम भी नामधारी राष्ट्रप्रेमियों से पूछ लें कि स्वामी जी की यह भाषा राष्ट्रभाषा या हिन्दुस्तानी है या नहीं। यदि है तो आप स्वामी जी पर यह अभियोग क्यों चलाते हैं कि उन्होंने फ़ारसी-अरबी के शब्दों को देश-निकाला दे दिया? यदि नहीं तो कृपा कर उस 'हिन्दुस्तानी' का नमूना पेश कर दीजिए जिसे आप सचमुच राष्ट्रभाषा समझते हैं। यदि आप सचमुच उसी उर्दू को हिन्दुस्तानी या मुल्की ज़बान समझते हैं जो सरकार में या कचहरियों में बरती जाती है और जो मुल्की ज़बान की उपाधि से दफ़्तरों[२] में दाख़िल हुई है तो हमें आपसे स्पष्ट कह देना है कि वह हिन्दी नहीं, हिन्दुस्तानी नहीं, उर्दू यानी प्रच्छन्न फ़ारसी है। वह राजभाषा भले ही बनी रहे, पर हमारी राष्ट्रभाषा तो नहीं बन सकती। हमारी राष्ट्रभाषा सदा से हिन्दी रही है और आज भी वही है। हिन्दी ने सदा से फ़ारसी-अरबी के 'प्रकट' शब्दों को अपनाया है और स्वामी जी ने अपनी आर्यभाषा में उनका विधान भी किया है। आँख खुले अंधों को सुझा देना हमारा काम नहीं, हक़ की बरकत है। देखनेवाले देखें और सुननेवाले सुनें। भूँकनेवालों की सुनता कौन है।

(१) काव्यनिर्णय, भिखारीदास

(२) सत्यार्थप्रकाश अनुभूमिका ४ पृ० ७०३।

(३) ,, शताब्दी संस्करण पृ० ७३०।

(४) ,, श० सं० पृ० ६२९-३०।

(१) सत्यार्थप्रकाश शताब्दी संस्करण पृ० ७६३।

(२) उर्दू सन् १८३८ ई० में फ़ारसी की जगह सरकारी दफ़्तरों में दाख़िल हुई।

एक ऐतिहासिक कहानी

शीत-भवन

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

नवम्बर सन् १९२७ की बात है। योरपीय महायुद्ध ख़त्म नहीं हुआ था। थोड़े-से साम्राज्यों के बरन उनमें भी थोड़े-से पूँजीपतियों के लाभ के वास्ते सारी दुनिया में मातम मचा हुआ था। योरप में शायद ही कोई घर बचा हो, जहाँ किसी न किसी प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु का शोक-समाचार न पहुँच चुका हो और उससे भी अधिक यह कि हज़ारों लँगड़े-लुंजे अपाहिज बनाकर घर वापस न पहुँचाये गये हों। रूस भी इन्हीं दुर्घटनाओं का शिकार था। परन्तु वहाँ ऐसे लोग पैदा हो गये थे जिन्हें अपने ही देश के कुशासन में अपनी यह दुर्दशा दिखने लगी थी। इन लोगों में सभी श्रेणियों और सभी वर्गों के लोग थे। जहाँ धनपति इस वास्ते उसमें सम्मिलित हुए थे कि ज़ार को निकालकर शासन-भार अपने ऊपर लें, वहाँ मज़दूर-किसान और अन्य दरिद्र और भूखे वेकार लोग अपनी दशा के सुधार के वास्ते सम्मिलित हुए थे। ज़ार को निकालने तक दोनों का उद्देश एक ही था। उसमें वे सफल हो चुके थे और शासन की बागडोर पूँजीपतियों के हाथ आ चुकी थी। करेंस्की का बोलबाला था।

यहाँ से दोनों पार्टियों का उद्देश अलग अलग हो चुका था। परन्तु इसके पहले ही एक के सौभाग्य से और दूसरे के दुर्भाग्य से मज़दूर और किसान-पेशा और अन्य व्यवसायों के लोग शहर शहर और गाँव गाँव 'सोवियेट' या पंचायतें स्थापित कर चुके थे, यद्यपि उनके हाथ में कोई शक्ति नहीं थी। ग़रीब दुखिया जनता या ते सोवियटों (पंचायतों) में सम्मिलित थी या उनसे सहानुभूति रखती थी। करेंस्की के शासनकाल में जब इन ग़रीब मज़दूरों तथा किसानों की दशा में कोई सुधार न हुआ तब उनकी पुकार यह होगई कि युद्ध बन्द किया जाय और ताक़त पंचायतों के हाथ में दी जाय। इस पुकार का घोर विरोध हुआ और शिक्षित समाज भी यहाँ तक कि वे लोग भी जो ग़रीबों की दुर्दशा की दोहाई देते हुए बरसों तक भोग चुके थे और ज़ार के काल में तरह तरह के कष्ट भोग चुके थे, पूँजीपतियों की सरकार का साथ देने लगे और आपस में फिर खींचातानी शुरू हो गई तथा ग़रीबों और अमीरों में युद्ध छिड़ गया।

ज़ार के ज़माने में स्मोलनी ग्राम राजा-बाबुओं और पूँजीपतियों की लड़कियों के पढ़ने का केंद्र था। यह नीवा नदी के किनारे बसा है। इस बड़े शिक्षा-भवन में आज पंचायतों का अधिवेशन होने को था और हज़ारों कोस से प्रतिनिधि जमा हो रहे थे। इनमें जहाँ किसानों, मज़दूरों और व्यवसायियों के प्रतिनिधि थे, वहाँ उन लोगों के भी थे जो वर्षों के बाद जेलों से छूटे थे तथा विदेशों से घर लौटने पाये थे। समुद्री और दूसरी फ़ौजें भी प्रतिनिधि भेज रही थी। रात का समय था। पौने ग्यारह बजे से इन पंचायतों का अधिवेशन शुरू होने को था। शायद रात का समय इस वास्ते रक्खा गया था कि उनके नेता, लेनिन और ज़िनोवियव, जिनकी वर्तमान सरकार शत्रु हो रही थी, आनेवाले थे। इन प्रतिनिधियों में उत्साह भरा था और बड़ी श्रद्धा से ये आज इस शिक्षा-भवन में आ रहे थे। हलकी बर्फ़ पड़ रही थी।

भीतर सौ लैम्प जगमगा रहे थे। फटे मैले कपड़े पहने एक डाढ़ीदार अधेड़ अवस्था का मज़दूर आया। पहले उसने टोपी उतारी और सिर झुका और हाथ फैला कर कुछ प्रार्थना की और एकदम प्रसन्नमुख चिल्ला उठा—"यह जनता का है। क्रान्ति चिरजीवी हो!"

इतना कहकर वह भवन के भीतर घुस गया और अपार भीड़ में मिल गया। इस तरह भीड़ बढ़ती गई। क्रान्ति के गीतों से वह विशाल भवन गूँज रहा था और उसके साथ साथ सिमेंट के फ़र्श पर मशीनगनों का इधर से उधर खींचा जाना और सिपाहियों के टहलने का काफ़ी गुल था। पौने ग्यारह बजे लेनिन और ज़िनोवियव कहीं से ऐसे आगये, जैसे ज़मीन फाड़कर निकले हों। प्रतिनिधियों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। हज़ारों गलों से, बरन गलों-द्वारा दिल से बड़े जोरों के शब्द निकले—"क्रान्ति ज़िंदा-

बाद !" "लेनिन ज़िंदाबाद !" "ज़िनोवियव ज़िंदाबाद !" उस काली अँधेरी रात के ये शब्द सुनकर शत्रुओं के कलेजे बैठ गये।

बोलशेविक पार्टी का ज़ोर था। वहाँ की सरकार अपने किसी वादे के पूरा न कर सकी थी। शायद पूरा करना चाहती भी नहीं थी। वह चाहती थी, युद्ध जारी रहे। जनता युद्ध से थक चुकी थी, वह यह देख चुकी थी कि ज़ार के निकाले जाने के बाद भी उसकी दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसने इसी वास्ते आवाज़ उठाई कि "कुल ताक़त पंचायत के हाथ में हो"। यही बात तय करने के आज की सभा एकत्र हुई थी। आज जनता पंचायत के रूस की सरकार बनाने की घोषणा करनेवाली थी। यह बात सरकार और उसके अनुयायी शिक्षित समाज के मालूम थी और वे भी इस तरफ़ से उदासीन न थे, मगर लड़ाई के पहले वे इस सभा में भी अपनी ताक़त आज़माने और हथखंडे चलाने के उपस्थित हो गये थे।

यह शायद दुनिया भर के शिक्षित समाज का दस्तूर है कि जहाँ तक हो सकता है, काम टालने की कोशिश करते हैं, वादविवाद में सारा समय नष्ट कर देना तो उसके बायें हाथ का खेल है। कार्यकारिणी समिति के चुनाव में १४ बोलशेविक और ११ दूसरी पार्टियों के सदस्य चुने गये। पुरानी समिति ने नये सदस्यों के वास्ते जगह ख़ाली कर दी और नये सदस्य जिनमें से कुछ लोग अभी तक छिपे फिरते थे, उनके स्थान पर जा बैठे। मगर करेंस्की-पार्टी के डैन नामक एक सज्जन सभापति थे, जो बहुमत पार्टी के विरोधी थे। यही शिक्षित समाज के वहाँ अगुआ थे।

डैन ने कहा—"मित्रो, यह चुनाव बे-क़ायदा हुआ है। इसकी नामज़दगी ठीक नहीं थी।"

इस विषय पर घंटा भर वादविवाद होता रहा। ऊल-जलूल बहसें पेश हुईं। एक किसान आख़िर में बोला—"भाइयो, इस वाद-विवाद से क्या लाभ? काम करना चाहिए। तू सदस्य है या मैं, इसमें क्या धरा है? कोई भी हो, काम करे।"

उपस्थित जनता ने यह राय पसन्द की। लेनिन ने कहा—"क्या हम सब इस बात पर सहमत हैं कि यह घोषणा कर दी जाय कि यह पंचायत रूस की वर्तमान सरकार है?"

डैन ने इसका विरोध किया—"हम भी प्रतिनिधि और देश के शुभचिंतक की हैसियत से यह कह देना चाहते हैं कि इस प्रस्ताव के स्वीकार होने से हमारी पंचायत बाग़ी संस्था कहलावेगी। वर्तमान सरकार इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकती।"

डैन के पक्ष में कुछ दूसरे सदस्य भी बोले।

लेनिन ने कहा—"मुझे आश्चर्य है कि डैन ऐसे सज्जन ऐसी बात कहें। वे तो स्वयं आज बीस वर्ष से जनता की आज़ादी पर जान दे रहे हैं। कौन-से कष्ट उन्होंने ग़रीबों के वास्ते नहीं उठाये? उन्होंने जेल भोगी, देश से निकाले गये, भूखों तक मरे। फिर आज क्यों ऐसा कायापलट?"

डैन ने कहा—"हमारी देश-भक्ति तो सब पर विदित है। आप लोगों को इसी से समझ लेना चाहिए कि इसमें हमारा स्वार्थ नहीं। हम तो देश का शासन ऐसा चाहते हैं कि जनता के दुख-दर्द दूर हों। भला गँवारों और सिपाहियों में वह दिमाग़ कहाँ, जिसकी आज आवश्यकता है? अब हम आपस की लड़ाई नहीं देखना चाहते। जनता का इसी में भला है। अनपढ़ किसान या मज़दूर या फ़ौज के सिपाही भला कैसे सरकारी काम चला सकेंगे? उन्हें अपनी जगह ही रहना ठीक है।"

मारटोव ने कहा—"भाइयो, कुछ ऐसी बात सोचो कि आपस का यह भावी युद्ध न हो।"

हज़ारों गलों से यह उत्तर मिला—"हमारी जीत ही इसका अंतिम जवाब देगी।"

फ़ौजी अफ़सर कूचिन ने कहा—"पंचायतें अकेली पड़ जायँगी। फ़ौज उनका साथ न देगी।"

एक फ़ौजी सिपाही उठ खड़ा हुआ—"झूठ बात है। फ़ौज पंचायत के साथ है। हाँ, अफ़सर चाहे न हों। हम सिपाही पंचायती राज की तरफ़ हैं।"

जनता बहुत उत्तेजित हो उठी थी। उसने एक स्वर से चिल्लाकर कहा—"वाद-विवाद बंद करो। पंचायती राज की घोषणा करो। अब हम दूसरा प्रस्ताव नहीं चाहते।"

प्रस्ताव स्वीकार हुआ। एबरेमोविच बोले—"अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं। ये लोग ख़ून बहाने पर उतारू हैं। सारे प्रतिनिधि यहाँ से उठ चलें।" [illegible]

और ८० आदमी उठ गये। बाक़ी सब वहीं उपस्थित रहे और क्रान्ति की जय पुकारते रहे।

सभा समाप्त भी नहीं हुई थी कि तोपों के चलने के शब्द सुनाई दिये। "हैं! यह क्या?" सभी के मुँह से निकला और सभी चिंतित हो गये। इतने में समाचार मिला कि अरोरा जहाज़ के सिपाही क्रांति की तरफ़ मिल गये और वे ख़ाली बारूद तोपों में भर कर शीत-भवन पर छोड़ रहे हैं, मानो कह रहे हैं—"पंचायत को पूरी ताक़त दो"। ज़रा ही देर में हाँफते हुए कीचड़ में सने दूतों-द्वारा ख़बरें आती गईं कि अमुक फ़ौज, अमुक संस्था पंचायत की तरफ़ आ गई और उसे वर्तमान सरकार मान रही है।

(२)

शीत-भवन उस सभा-भवन से बहुत दूर नहीं था। सौ वर्षों से ज़ार और उसके चाटुकार दरबारी उस भवन में विहार किया करते थे। वह विशाल भवन जहाँ सैकड़ों आदमी ख़ूब फैलकर रह सकते थे, केवल इस वास्ते बना था कि ज़ार और उनके दरबारी उसमें विहार कर सकें।

उस विशाल भवन के बड़े बड़े कमरे ख़ूब सजे थे और बहुमूल्य रंग और ग़लीचे उनमें बिछे थे। दरवाज़ों और खिड़कियों में बहुमूल्य रंग-बिरंगे पर्दे पड़े थे, आराम से बैठने को गद्देदार कुर्सियाँ रक्खी थीं और सजाने के सोने-चाँदी के सामान स्थान स्थान पर सजे थे। मूल्यवान् धातुओं की मूर्तियाँ भी जगह जगह खड़ी थीं। बाहर कितनी ही सर्दी क्यों न हो, इस भवन में घुसते ही बदन में गर्मी आ जाती थी।

आज यह भवन ज़ार से छीना जा चुका था और वर्तमान सरकार के मंत्री वहाँ इस रात को सलाह-मशविरा कर रहे थे और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि पंचायत कुछ निर्णय करे तो वे अपनी कार्रवाई शुरू करें। उनके सिपाही जो 'यनकर्स' कहलाते थे, उस भवन के बाहर अँधेरे में उपस्थित जन-समूह को शत्रु मानकर समय समय पर गोली चलाते थे और पंचायत के निर्णय के पहले ही पंचायत के कितने सिपाहियों की हत्या कर चुके थे। जहाज़ अरोरा की तोपों के दगने और सिपाहियों के कम्युनिस्टों से मिल जाने के समाचार ने उन्हें पस्त कर दिया और सवेरा होने के पहले ही वे चिल्ला उठे—

"यनकर्स हार मानते हैं और तुम्हारी शरण में आते हैं।"

लाल सेना के सैनिक (पंचायत की सेना लाल झंडों का प्रयोग करती थी) उन बड़े डीलवाले सिपाहियों के सामने बच्चे लग रहे थे, फिर भी उनके शब्द के पीछे क्रांति का ज़ोर था। सुननेवाले कुछ देर को दहल उठे। एक लंबा-चौड़ा सिपाही एक कम्बल लेकर जाने लगा।

होव ने कम्बल पकड़ लिया और कहा—"रख दो"।

सिपाही ने कम्बल को उससे छीनते हुए कहा—"यह मेरा है। इसे छोड़ दो।"

होव ने उत्तर दिया—"नहीं, यह तुम्हारा नहीं है, यह जनता का है। आज रात को इस भवन से कुछ नहीं जा सकता।"

सिपाही खिन्न होकर बोला—"यह आज ही जायगा। बाहर बारिक में बड़ी सर्दी है।"

होव ने कहा—"भाई, सर्दी खाना उससे अच्छा है कि तुम क्रान्ति को बदनाम करो।"

"तो क्रान्ति हमने किसके वास्ते की है?"

"ठीक है। मगर समय पर तुम्हें सब कुछ मिलेगा। आज नहीं।"

सिपाही बड़बड़ाता हुआ कम्बल छोड़कर चला गया।

दूसरी तरफ़ एक छोटे क़द के बोलशेविक ने एक बड़े भारी भरकम सिपाही को ललकारा—

"ख़बरदार! वह मेज़ न छूना।"

बाहर सेना घेरे खड़ी थी। उसका एक अफ़सर बोला—"हमारी शरण यनकर्स लोग माँगते हैं। फिर भी बड़ी सावधानी से भवन में घुसो। अपने तईं बचाते रहो।"

बाहर अँधेरा छाया था, हलकी बर्फ़ पड़ रही थी और सर्दी बढ़ रही थी। उस अँधेरे और सर्दी से लाल सेना भीतर रोशनी और गर्मी में घुसी। शायद उसके सैनिकों ने अपने सारे जीवन में ऐसी रोशनी और गर्मी नहीं देखी थी। कभी उन्हें इतने नर्म फ़र्श पर चलने का अवसर नहीं मिला था कि जहाँ जूतों का शब्द होना तो दूर, जूते स्वयं घुस जाते थे। कुछ लोगों को उसे लूटने की प्रबल इच्छा हुई और कुछ संदूक़ तोड़े भी गये। परन्तु यह मालूम हुआ कि अधिक मूल्य की चीज़ें यनकर्स पहले ही

लूट ले गये हैं। सिपाही कम्बल-कपड़े इत्यादि की लूट में लगे थे और गुल-शोर हो रहा था कि एक गंभीर शब्द करते हुए ठिंगने व्यवसायी होव ने कहा—"ख़बरदार! कुछ न लेना। क्रांति कुछ भी छूने को मना करती है। यह प्रजा का माल है। लूटा नहीं जा सकता।"

उस ठिंगने दृढ़ व्यक्ति के साथ कुछ और भी वैसे ही छोटे बरन दृढ़ लोग सिपाहियों के साथ शीत-भवन में घुसे थे।

"तुम कौन होते हो? जैसे तुम भवन में घुसे, वैसे हम। हम किसी के कहे में नहीं हैं।"

"तुम्हारी ज़िम्मेदारी क्रान्ति के साथ है।"

मेज़ ज्यों की त्यों ही रह गई।

इतने में हुक्म मिला कि भवन ख़ाली कर दो। उसके प्रत्येक दरवाज़े पर एक एक बोलशेविक खड़ा होकर तलाशी लेने लगा और सब चीज़ें ज्यों की त्यों अपने स्थानों पर रख दी गईं।

अब मंत्रि-मण्डल और यनकर्स लोग अपने छिपने की जगहों से ढूँढ़ कर निकाले गये। विजेताओं ने बिना कुछ दुर्वचन कहे उन्हें फाटक तक पहुँचाया। भीड़ के क्रोध से मुश्किल से बचाकर उन्हें निकाला। जाते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे लाल सेना से कभी नहीं लड़ेंगे। परन्तु वहाँ से छुटकारा पाते ही सरकारी सेना में फिर भर्ती हो गये।

स्त्री-सिपाहियों का जत्था सबसे पीछे निकाला गया। जनता ने उन्हें फटकारा—"बड़े लज्जा की बात है कि मज़दूरी पेशा स्त्रियाँ मज़दूरी पेशा पुरुषों से लड़ें।"

एक स्त्री इतनी लज्जित हुई कि उसी रात को आत्म-घात करके मर गई। कुछ समाचारपत्रों ने दूसरे दिन अपनी भावना के अनुसार शीत-भवन की लूट और स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार का समाचार छापा।

दूसरे दिन यानी आठ नवम्बर की सुबह से देश का शासन कम्यूनिस्टों के हाथ में आ गया। शिक्षित समाज ने उनसे सहयोग करने से इनकार किया। शिक्षितों ने कहा—"देखें ये लुटेरे कैसे राजकाज चला सकते हैं? हम इन्हें सहायता नहीं देंगे तो ये सीधे हो जायँगे।" इस पर एक बोलशेविक ने उत्तर दिया—"हाँ, यह सच है। हम पढ़े नहीं, परन्तु जब हम तुम्हारी रक्षा करने को रुधिर में हाथ रँग रहे थे तब तुम हमारे ख़र्च पर पढ़ रहे थे। फिर आज यह नमक-हरामी! ख़ैर, हम काम सँभाल लेंगे।"

जहाँ जहाँ भी पुराने काम करनेवालों ने हड़ताल बोली, वहाँ नये रँगरूट भर्ती होते गये और तीन दिन में पञ्चायत का काम काफ़ी आसानी से चलने लगा।

इस बीच में करेंस्की और उसके अनुयायी जो तीन दिन पहले राजपद से निकाले गये थे, उदासीन नहीं थे। उन लोगों ने गुप्त सभा की, जिसमें यह तय किया कि पेट-रोग्रेड में टेलीफोन के दफ़्तर पर छापा मारा जाय। टेली-फोन का दफ़्तर शहर के बीच में था, जैसे दिल में से नसें चारों तरफ़ बदन में दौड़ी होती हैं, उसी तरह उस भवन से हज़ारों तार शहर बल्कि सारे देश में दौड़े हुए थे। भवन के फाटक पर सिपाहियों का गारद बैठा था और बदली के समय साथियों के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में २० यनकर सिपाही जो लाल सेना का भेस बनाये थे, आ पहुँचे और पहरे की बदली करने के बाद उन्हीं के कानों पर तमन्चे तान कर खड़े हो गये।

"भाई, यह क्या?"

"चुप सूअर के बच्चो! इस कमरे में चुपचाप बैठे रहो। नहीं तो तुम्हारी लाश दिखाई देगी।"

(३)

लाल सेना के पास नेताओं की कमी थी। एक के भी पकड़े जाने से उन्हें काफ़ी धक्का पहुँचता था। जिस समय ऊपर लिखी घटना घट रही थी, पञ्चायत के फ़ौजी मन्त्री एनेटोव उस टेलीफोन भवन के पास से मोटर पर जा रहे थे। यनकर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया और एक कमरे में क़ैद कर दिया। अब वे फूले नहीं समाते थे। वे समझते थे कि उन्होंने क्रान्ति को तोड़ दिया। उन्हें क्या मालूम था कि जब परमेश्वर मदद पर होता है तब किसी के कम होने या मरने से कोई अधिक हर्ज नहीं होती।

एनेटोव के पकड़े जाने और टेलीफोन भवन पर यनकर और सफ़ेद सेना के क़ब्ज़ा कर लेने की ख़बर बिजली की तरह शहर में दौड़ गई और कुछ देर के बाद लाल सेना के सिपाही आ पहुँचे। लाल सेना के सिपाही अभी तक जन-समूह से कुछ ही ऊँचे उठे थे। ज़ार के समय ये लोग जब जुलूस निकालते थे तब इन पर गोलियाँ बर्साई जाती थीं। परन्तु वे उस आग की वर्षा के होते हुए भी आगे बढ़े

जाते थे और मुर्दों को भी साथ लिये जाते थे। यह बात अभी भूली न थी। लाल सेना को आते देख फ़ौजी अफ़सर कूचिन ने आज्ञा दी—"भून डालो सूअर के बच्चों को।"

मगर ये भी अब फ़ौजी हथकंडे सीख चुके थे। होव ने तुरन्त ही उन्हें आड़ में छिप जाने की आज्ञा दे दी और छिपे छिपे सारे भवन को घेर लिया और समय समय पर उस पर गोलियाँ बरसाने लगे। बहुत देर अड़े रहने के बाद जब उन्होंने देखा कि लाल सेना का काफ़ी ज़ोर है तब सफेद झंडा दिखाकर सन्धि का प्रस्ताव किया। होव ने कहा—"तीन ही दिन की बात है। हमने तुम्हें क्षमा प्रदान की थी। फिर तुमने दग़ा की। तुम्हारा हमें एतबार नहीं है।"

कूचिन ने कहा—"हम एनेटोव को छोड़ देंगे। तुम हमें जाने दो।"

"हम ख़ुद उन्हें छुड़ा लेंगे। तुम होते कौन हो? यदि एनेटोव का बाल भी बाँका हुआ तो हम तुम लोगों में से एक एक को मार डालेंगे।"

यद्यपि लाल सेना लड़ाई के समय गोली चलाती थी, तो भी घायलों की सेवा करने में बाधा नहीं डालती थी। उसकी यह भलमंसी या कमज़ोरी जो भी समझो सफेद सेना को मालूम थी। उसके पास लड़ाई का सामान ख़त्म हो चुका था और बाहर से मदद आने का कोई समाचार न था। अफ़सरों ने धोखेबाज़ी की सोची। एक 'रेड-क्रास' कार पर कई अफ़सर सवार होकर घायलों के वास्ते मरहम-पट्टी लेने के बहाने चले। लाल सेना ने बाधा न डाली। वहाँ से जब लड़ाई का सामान लेकर भीतर जा रहे थे तब संतरी ने रोका।

"तलाशी होगी।" उसने कहा।

"मरहम-पट्टी का सामान है। घायलों के वास्ते जल्दी जाना है। तलाशी में समय नष्ट होगा।" अफ़सर ने उत्तर दिया।

नाम के वास्ते तलाशी लेकर उसने जाने की आज्ञा दी।

"कैसे गदहे हैं ये लोग"! हँसते हुए अफ़सर लोग भीतर पहुँचे और मदद के वास्ते आरमर्डकार के शीघ्र ही आने का शुभ समाचार सुनाया। मगर थोड़ी देर के वास्ते जो आरमर्डकार सिपाहियों से लदा इनकी सहायता के वास्ते चला था वह लाल सेना से जा मिला, उनकी तरफ़ से लड़ने के बदले उसने उन्हीं पर आग बरसानी शुरू की। भीतर योद्धाओं पर ऐसा डर छाया कि वे सीढ़ियों और अन्य सुरक्षित स्थानों में छिपने लगे। वर्दी, शस्त्र इत्यादि फेंक फेंककर फटे पुराने कपड़े जिस किसी को भी हाथ लगे, पहनने लगे, जिससे वे मज़दूर जान पड़ें। सिपाहियों ने अफ़सरों को पुकारा, परन्तु वे तो जान बचाकर भाग चुके थे। पहले तो उन्होंने लड़कर जान देने की ठानी। एक युवक ने सलाह दी—"देखो, एनेटोव हमारा क़ैदी है। उसकी शरण में चलो। उससे जीवन की भिक्षा माँगो।"

दूसरे ने कहा—"कहता सच है। इस समय लड़ने से काम न चलेगा। ये लोग हमारे ख़ून के प्यासे हैं। और कैसे न हों? हमने धोखा भी तो दिया है। अब तो एनेटोव का ही सहारा है। मौक़ा पड़ने पर फिर इन पाजियों से बदला लिया जायगा।"

कुछ देर से गोली चलनी बन्द थी। भीतर से बंद हुई तो बाहरवालों ने भी बन्द कर दी। एनेटोव एक कमरे में बड़ी चिन्ता में बैठे थे। गोली के शब्द सुनते समय यह समझ रहे थे कि लड़ाई हो रही है। आशा बनी थी। अब सब सन्नाटा था। क्या लाल सेना भाग खड़ी हुई, क्या क्रांति मर गई, क्या थोड़ी देर में उन्हें भी गोली मारी जायगी? वे यह जानते थे कि सफ़ेद सेना के अफ़सर सभी शत्रुओं को गोली मार देते हैं, इस बात का विचार नहीं करते हैं कि लाल सेना की तरफ़ से उन्हें एक दफ़े से ज़्यादा क्षमा प्रदान हो चुकी है। इसी सोच में एनेटोव और उनके साथी अँधेरे में बन्द थे कि उन्हें दरवाज़ा खोले जाने का शब्द सुनाई दिया। अब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि उनका अंत समय आ गया है, मगर दरवाज़ा खोलनेवाले ने हर्षनाद से कहा—"बधाई है! अफ़सर भाग गये और यनकर तुम्हारी शरण चाहते हैं।"

एनेटोव सफ़ेद सेना के सिपाहियों के पास आ गये। उन्होंने एक स्वर में कहा—"दोहाई है, एनेटोव! हमें जीवन-प्रदान करो। हमने पाप किया है। हमें अपनी शरण में लो।"

"अच्छी बात है। तुम्हें बचाऊँगा।"

"यदि उन्होंने तुम्हारी न सुनी तो हम क्या करेंगे?"

"तुम्हें मारने के पहले वे मुझे पहले मारेंगे।"

"मगर हम तो मरना नहीं चाहते। हमें उससे क्या लाभ होगा?" लाल सेना ने जब एनेटोव को दरवाज़े पर देखा तब उसके हर्ष का ठिकाना न था। "एनेटोव ज़िंदा-बाद" के नारे लगाने लगे।

एनेटोव ने गम्भीर स्वर में कहा—"भाइयो! अफ़सर भाग गये। सिपाही हमारी शरण में आये हैं।"

शोर हुआ—"सबको फाँसी दे दो। बड़े धोखेबाज़ हैं। शैतान हैं!"

एनेटोव ने फिर कहा—"नहीं, जो हमारी शरण में आया उसे क्षमा ही प्रदान करना क्रान्ति का संदेश है। उन्हें तुम नहीं मार सकते।"

"हम एक को भी जीता न छोड़ेंगे।"

"तुम उन्हें नहीं मार सकते। वे हमारे बंदी हैं।"

भीड़ सहम उठी। फिर एनेटोव ने कहा—"उन्होंने शस्त्र रख दिये हैं, मैंने उन्हें जीवन-प्रदान कर दिया है।"

"परन्तु हम जीवन-प्रदान उन्हें नहीं कर सकते।" एक भारी-भरकम सिपाही ने कहा।

एनेटोव तमंचा निकालकर खड़े हो गये—"मैंने उन्हें जीवन-प्रदान किया है। मैं अपनी बात की रक्षा इस तमंचे से करूँगा।"

"यह क्या? उन शैतानों के वास्ते हमारे ऊपर हथियार चलेगा? बाग़ी!"

"हाँ, मैं तुम पर शस्त्र चलाऊँगा। तुम क्रांति के सिपाही नहीं। तुम निहत्थों को मारने को कहते हो। हत्यारे हो। निहत्थे को मारना क्रांति को मारना है।"

सिपाही समझ गये, मगर जो जन-समूह बाहर जमा था, नहीं समझा। तब एक एक आदमी के साथ कुछ सिपाही जाकर उन्हें जेल तक पहुँचा आये। क्रांति की जय हुई। पंचायती राज स्थापित हुआ।

परिवर्तन

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल बी०

आज न वह अतुलित उमङ्ग है
आज न वह मस्ती है
आज न दिल में अरमानों की,
हरी-भरी बस्ती है।
उन उजड़ी अभिलाषाओं का
धुँधला-सा सूनापन,
आज तड़प कर कह जाता है,
तेरी क्या हस्ती है।
आज न उर में पुलक न मन में
आशा का नर्तन है

आज न जीवन में मधु श्वासों में
सुख का स्पन्दन है।
आज न वह मञ्जुल तन्मयता
आज न वह तड़पन है
सिर्फ़ कसक उठता रह रह कर,
प्राणों में क्रन्दन है।
आज नहीं सुन्दर स्वप्नों का,
मधुमय मृदु गुञ्जन है
आज विश्व के निठुर सत्य का
उर में गुरु गर्जन है॥

फ़्रांस में भारत

लेखक, श्रीयुत वासुदेव विष्णुदयाल, बी० ए० (आनर्स)

जो फ़्रांसीसी विद्वान् संस्कृत-भाषा जानता होगा, भारत से प्रेम का नाता अवश्य जोड़ेगा। फ्रेञ्च-भाषा अँगरेज़ी की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है। मुझे इस बात का ज्ञान उस समय हुआ जब सन् १९३५ में मैं काँगड़ी-गुरुकुल में ब्रह्मचारियों को फ्रेञ्च पढ़ाने में लगा था। मैंने ब्रह्मचारियों को फ्रेञ्च के कई ऐसे शब्द बताये जो संस्कृत से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। 'सरस्वती' के पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उनमें से कुछ शब्द यहाँ लिखता हूँ—

फ्रेञ्च-शब्द	उच्चारण	अर्थ	संस्कृत-शब्द
Genou	ज़ेनु	घुटना	जानु
Hier	ह्येर	कल	ह्यः
Don	दोन्	दान	दानम्
Tes	ते	तेरा	ते
Mon	मों	मेरा	मम
Dent	दाँ	दान्त	दन्तः
Gravier	ग्राव्ये	कङ्कड़	ग्रावन् (यहाँ कुछ भेद है; ग्रावन् कङ्कड़ नहीं है)
Joug	ज़ु*	दासता	युगः
Sept	सेत*	सात	सप्तन्
Nos	नो	हमारा	नः †
Vos	वो	तुम्हारा	वः †
Oeil-de-boeuf ‡	ओय दे बफ़	गवाक्ष	गवाक्षः
Sommes	सोम	(हम) हैं	स्मः

* Joug में 'ग' तथा Sept में 'प' हैं, परन्तु उच्चरित नहीं होते।

† नः और वः नो और वो हो जाते हैं हश् के परे होने पर।

‡ यहाँ उच्चारण में भेद है, अर्थ में नहीं। इस शब्द का अर्थ है "गौ की आँख"।

मेरा उपर्युक्त कथन सर्वथा सत्य है। किसे नहीं मालूम है कि दे ला वाले पुसें, बेरनुफ़, ज़ाकोल्यो, सिलवें लेवी, मिय्ये प्रभृति फ्रेञ्च विद्वान् भारत को पूजा की दृष्टि से देखते आये हैं?

कई शताब्दियों से फ़्रांस का कोई न कोई लेखक भारत के सम्बन्ध में लिखता आया है। अठारहवीं सदी में वोल्तेर भारत की प्रशंसा का पुल बाँधते दिखाई देते हैं। जब यजुर्वेद की एक प्रति फ़्रांस में भेजी गई थी तब उन्होंने उसे पश्चिम को भारत का सबसे मूल्यवान् उपहार बताया था।

वोल्तेर के पश्चात् बेरनुफ़ का नाम आता है। उनके लिखे हुए भारत-सम्बन्धी ग्रन्थ आज भी पढ़े जाते हैं।

ज़ाकोल्यो का नाम भारत के बच्चे बच्चे को आदर के साथ लेना चाहिए। उनकी की हुई सेवाओं को भूल जाना अपने ऊपर कृतघ्नता का कलंक पोतना है। उनकी 'भारत में बाईबल' नाम की पुस्तक की पहली पंक्तियों को पढ़कर हर एक भारतीय का हृदय आनन्द से नाच उठता है। ज़ाकोल्यो साहब लिखते हैं—

"हे प्राचीन भारत-भूमि! हे मनुष्य-जाति की आदि जननी! तेरा जयजयकार हो! पूज्य एवं समर्थ धात्री! क्रूर परचक्रों की शताब्दियाँ भी तुझे आज तक विस्मृति-धूलि के नीचे नहीं दबा सकीं—मा! तेरी जय हो! हे धर्म की, प्रेम की, कविता की एवं विज्ञान की पितृभूमि! हम तुझे प्रणाम करते हैं और चाहते हैं कि तेरे भूतकाल का पुनरावर्तन हमारे पश्चिम के भविष्यकाल में होवे।"

यह है प्रार्थना जो एक पक्षपात-रहित विदेशी के हृदय से निकली है। उन इतिहास-लेखकों को जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए भारत को गिराते रहते हैं, इसे पढ़कर अपना हृदय टटोलना चाहिए। ज़ाकोल्यो के अनेक ग्रंथों में से हर एक भारतीय को कम से कम La Bible daus l' Iude ('भारत में बाईबल') तथा Christna et le Christ (कृष्ण और क्राइष्ट) से अवश्य परिचित होना चाहिए।

एद्वार शुरे का नाम भी उल्लेखनीय है। रोमें रोलाँ की तरह विश्व-प्रेम की स्थापना करने के लिए उन्होंने पर्याप्त कार्य किया है। एक स्थान पर उन्होंने भारत के बारे में यह कहा है—

"जैसे एक आर्य्य सती चितारूढ़ हुई अपनी सन्तति की ओर मोतियों की माला फेंकती है, ऐसे ही भारतमाता मरते मरते अल्प-वयस्क योरप को एक दयायुक्त धर्म और अनेक फल देनेवाले पुनर्जन्म के सिद्धान्त को उपहार-रूप में समर्पित कर रही है।"

यदि आज फ़्रांस में भारत की घटनाओं को जानने के लिए लोगों में इतनी उत्सुकता है तो अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि उस देश के प्रमुख लेखक तथा विचारक रोमें रोलाँ अपनी लेखनी-द्वारा वहाँ भारत का प्रकाश फैलाते रहते हैं। उन्होंने महात्मा गांधी की जो जीवनी लिखी है वह साठ बार से अधिक छप चुकी है। इसी जीवनी को पढ़कर श्रीमती मीराबेन ने महात्मा जी की शिष्यता ग्रहण की है। रोमें रोलाँ ने स्वामी विवेकानन्द तथा उनके गुरु परमहंस रामकृष्ण का भी जीवन-चरित लिखा है। परमहंस जी के जीवन-चरित में लेखक महोदय ने भारत के अन्य कई सुपुत्रों पर भी थोड़ा-बहुत लिखा है। रोमें रोलाँ ने महर्षि दयानन्द के भारत के प्रति किये हुए उपकार को एक वाक्य में इस तरह लिखा है—

"दयानन्द ने भारत के मृतप्राय शरीर में अपनी प्रबल शक्ति, विश्वास और सिंह-समान पराक्रम का संचार किया।"

रोमें रोलाँ ने संसार का सबसे बड़ा उपन्यास* लिखा है, जिस पर उन्हें 'नोबेल प्राइज़' मिला है। इसके नायक के मुख से उन्होंने गीता का एक श्लोक कहलवाया है।

कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा डाक्टर राधाकृष्णन की रचनाओं का अनुवाद फ़्रांस में छपता रहता है।

* Jean Christophe

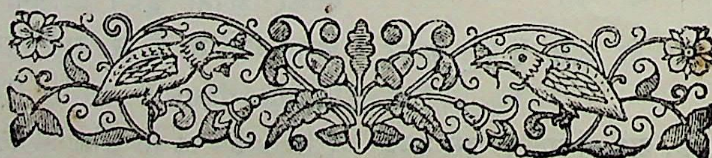
पाण्डिचेरी में ज़ाँ एरबेर योगीन्द्र अरविन्द घोष के ग्रंथों तथा लेखों का उल्था करने में लगे हुए हैं। जब 'मदर इंडिया' का फ़्रेञ्च में अनुवाद छपा था, भारत के मित्रों ने सोचा कि इसका उत्तर भी फ़्रेञ्च में छपना चाहिए। मादाम ज़िरेत ने स्वर्गीय लाला लाजपतराय की पुस्तक का भाषान्तर तुरन्त कर दिया और वह प्रकाशित हो गया। उसमें रोमें रोलाँ ने एक लघु भूमिका लिखी थी, जो पठनीय है। भूमिका के अन्त में वे लिखते हैं—

"अपने पददलित देश का परित्राण करते हुए लाजपतराय ने उसे 'दुःखी भारत' कहा है। मैं तो उस भूमि को 'सुखी भारत' कहूँगा जिसने गांधी, दयानन्द, विवेकानन्द तथा इस पञ्जाब-केसरी लाजपतराय को जन्म दिया है।"

L' Humanite' तथा कई अन्य समाचार-पत्रों में भारतीय समाचारों का प्रकाशन होता है। फ़्रांस में एक ऐसी वार्षिक पत्रिका है जिसका नाम ही "भारत और उसकी आत्मा" है। वह १९२८ से निकलने लगी है। वर्षों से फ़्रांस के महाविद्यालय* में संस्कृत पढ़ाई जाती है। ये सब बातें बताती हैं कि आज-कल पहले से कहीं ज़्यादा फ़्रांस का ध्यान हमारी ओर आकृष्ट है।

रोमें रोलाँ एक नई दुनिया का स्वप्न देख रहे हैं, जो पश्चिम और पूर्व का मेल होगा। इस दुनिया के निर्माण में फ़्रांस के कई लाल लगे हुए हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" भारत का आदर्श है। अगर यह दुनिया बनी तो उसका स्वागत करने के लिए भारत किसी दूसरे देश से पीछे नहीं रहेगा। इस समय जब यहाँ स्वतन्त्रता का संग्राम हो रहा है, भारत संसार के तमाम अन्य देशों की सहानुभूति का भिक्षुक है। आशा है, भारत और फ़्रांस सरीखे उन्नत देश के बीच जो सम्बन्ध है, हर एक सूर्योदय के साथ दृढ़तर होता जायगा।

* College de France



वस्तु-जगत् और भाव-जगत्

लेखक, श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न

वयोवृद्ध श्रीयुत सान्याल महोदय सुदूर बंगाल के शान्तिपुर में बैठे हिन्दी की उन्नति की कामना ही नहीं करते रहते, किन्तु उसकी उन्नति के लिए क्रिया-शील भी रहते हैं। उनका यह आदर्श हिन्दी-प्रेम हिन्दीवालों के लिए अनुकरणीय है! अपने इस महत्त्वपूर्ण लेख में उन्होंने भाव-जगत् की अच्छी मीमांसा की है।



न वस्तुएँ मनुष्य के लिए अपरिहार्य हैं—अन्न, वस्त्र तथा वास-स्थान। अन्न के बिना जीवन-धारण नहीं हो सकता, वस्त्र के बिना लज्जा-निवारण नहीं होता और वास-स्थान के बिना शीत, आतप तथा वर्षा से रक्षा नहीं होती। आदिम-अवस्था में अपनी प्रकृति के उपयोगी जैसा-तैसा खाद्य मिलने से, जैसे-तैसे आच्छादन से शरीर को आवृत कर सकने से और जहाँ-तहाँ थोड़ा-सा आश्रय पाने से मनुष्य सन्तुष्ट रहता था। पर इन सामान्य अभावों की पूर्ति करना भी उसके लिए उस काल में कभी कभी असंभव हो जाता था—अनेक चेष्टाओं के द्वारा, अनेक संकटों का सामना करके उसे अपने अभावों की पूर्ति करनी पड़ती थी। पहले-पहल वह अपने शारीरिक अभावों को दूर करना ही यथेष्ट समझता था। किन्तु क्रमशः वह केवल उसी से सन्तुष्ट नहीं रहा—केवल आवश्यक वस्तुओं में ही उसकी रुचि सीमित नहीं रही। वह पहले से उत्तम खाद्य से अपनी रसना को तृप्त करने का और पहले से अच्छे आच्छादन से अपनी देह को सज्जित करने का अभिलाषी हुआ। अधिक सुखद वास-भवन के सिवा सामान्य कुटीर से उसके मन को सन्तोष नहीं होता था। भाव-प्रवणता उसके मन को अपने अधिकार में करने लगी। उन्नततर जीवन-यात्रा के उपकरणों का संग्रह करना उसका लक्ष्य बना और उन उपादानों के उद्भावन तथा निर्माण में उसे अपने मस्तिष्क को खपाना पड़ा। इस मस्तिष्क-संचालन से उसकी बुद्धि का विकास होने लगा और नये नये आराम के द्रव्य उत्पन्न होने लगे। किन्तु उपभोग-प्रवृत्ति के साथ साथ मनुष्य अधिक ऐश की वस्तुओं के लिए व्यग्र होने लगा। वह पुराने द्रव्यों पर वीतराग और अनावश्यक नवीन द्रव्यों के लिए लालायित होने लगा। मनुष्य-समाज में असन्तोष का आविर्भाव हुआ। ये सब भाव—अर्थात् हृदय के आवेग—के काम हैं। अवास्तव भाव से वास्तव अभाव, अभाव से असन्तोष, असन्तोष से उद्यम और उद्यम से मानव-सभ्यता। सुतरां सभ्यता के मूल में भाव का ही प्रभाव है।

मोटा खाकर, मोटा पहनकर और झोपड़ी में रहकर भी आदमी जी सकता है। तब क्यों लोग पूरी-कचौड़ी, हलुआ-रबड़ी के लिए ललचाते हैं? तब क्यों लोग अद्धी-मलमल, रेशम-पशमीना के लिए व्यग्र होते हैं? तब क्यों लोग वास के लिए मर्मर-मण्डित आलीशान दो-मंज़िले चौ-मंज़िले महल बनवाते हैं? अनावश्यक द्रव्यों में मनुष्य की इतनी रुचि क्यों होती है? बहुत लोग कहेंगे कि विलास-प्रवणता ही इसका कारण है। किन्तु उपभोग-प्रवृत्ति का ही दूसरा नाम विलासिता है। साधारण वस्तुएँ जब मन को सन्तोष नहीं दे सकतीं तब उत्कृष्टतर वस्तुओं से प्रत्येक इन्द्रिय को तृप्त करने की आकांक्षा उत्पन्न होती है। आनन्द प्राप्त करने के निमित्त ही यह आकांक्षा है। आनन्द वास्तव पदार्थ नहीं—वह एक भाव-मात्र है।

कुछ वस्तुएँ आवश्यक और कुछ अनावश्यक मानी जाती हैं। जो वस्तुएँ हमारे काम की नहीं हैं वही अनावश्यक हैं। सब कोई अनावश्यक वस्तुओं से बाज़ आना चाहते हैं। किन्तु कौन कौन वस्तुएँ आवश्यक हैं और कौन कौन अनावश्यक, इसका सम्यक् निरूपण होना चाहिए। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जो साधारणतः अनावश्यक सिद्ध होती हैं, किन्तु वास्तव में वे आवश्यक हैं। कुछ ऐसे कार्य हैं जो अनर्थक समझे जाते हैं, किन्तु यथार्थ में उनका प्रयोजन है। जीव-जन्तुओं की श्वास-वायु पौधों के लिए उपकारी है। उसी तरह उद्भिदों के द्वारा दिवा-भाग में परित्यक्त वायु जीव-देह के लिए कल्याणकर है।

दाल, तरकारी तथा फलों के छिलके अनावश्यक गिने जाकर परित्यक्त होते हैं, किन्तु गोरू, बकरे इत्यादि पशुओं के वे उपादेय खाद्य हैं। मनुष्य का ज्ञान सीमित है, इसी से अनेक वस्तुओं को वह अप्रयोजनीय समझता है। जड़ के साथ जड़ के और जड़ के साथ जीव के सम्बन्ध के अनुसन्धान में विज्ञान नियत है। एक दिन ऐसा आनेवाला है जब कोई वस्तु का कार्य अनावश्यक नहीं विवेचित होगा।

जो लोग तापस-जीवन-पथ के पथिक हैं वे कठोर तपःसाधन के निमित्त संसार की जितनी चीज़ें हैं और जितने काम हैं उनका त्याग करते हैं और क्षुत्पिपासा, शीत-ग्रीष्म को हटाकर मनुष्य को जड़ की अधीनता से मुक्त होने का परामर्श देते हैं। वे कहते हैं कि जीवात्मा के लिए बाहर का कोई द्रव्य प्रयोजनीय नहीं। जड़ की अधीनता जीवात्मा को त्याज्य है। तपस्वियों के लिए जो कुछ करना चाहिए वह साधारण लोगों के लिए सम्भव नहीं। यद्यपि मनुष्य को भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी इत्यादि विषयक हज़ारों कष्ट सहने पड़ते हैं, तथापि उस कारण जड़ के भय से एकाएक तपोवन को भागकर अपनी मुक्ति की चेष्टा के बदले जड़ को ही अपना ग़ुलाम बना रखने को चेष्टा करने से अधिक लाभ होता। विज्ञान यही काम साधारण जनों के लिए कर रहा है। अतएव मनुष्य-जाति को यदि स्थायी-रूप में जड़ के बन्धन से छुटकारा पाना हो तो उसके लिए विज्ञान का अनुशीलन सबसे पहले आवश्यक है।

इस क्रम-विकासमान संसार को अधिक आनन्दमय बनाने की प्रवृत्ति मनुष्य-जाति के मन में जाग उठी और वह संघबद्ध होकर परस्पर प्रीति का बन्धन स्थापित करने को व्यस्त हो गई। इसी का नाम समाज है। केवल जड़ के साथ मानव का सम्बन्ध-स्थापन और उसका उन्नति-विधान ही मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य नहीं रहा, क्योंकि केवल शुष्क जड़-प्रकृति के गुणागुण से ही विज्ञान का सम्बन्ध है। स्नेह, कृतज्ञता, स्वार्थ-विसर्जन, करुणा प्रभृति कोमल मनोवृत्तियों का उसमें स्थान नहीं। तथापि जीवन को मधुर तथा उपभोग्य बनाने के लिए इन कोमल वृत्तियों को अस्वीकार करने का उपाय नहीं। ये धरातल को नन्दन-कानन में परिणत करती हैं। यदि संसार की बाध से अत्यावश्यक ज्ञान-विज्ञान के सिवा बाक़ी सब चीज़ों को बिदा करना पड़े तो समाज का काम—गृहस्थ-जीवन का काम कैसे चल सकेगा?

यद्यपि आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में नारी का हाथ अधिक नहीं है, तथापि जगत् में नारी-जाति नगण्य नहीं— गृहस्थ-जीवन में नारी का स्थान अति उच्च है। शत बाधाओं के भीतर भी कितने माधुर्य के साथ, कितने शान्तरूप में, कितने धैर्य का अवलम्बन कर वह गृह-नौका को खेती है—कितनी व्रीड़ा के साथ वह पग बढ़ाती है, कितने विनय के साथ वह बोलती है, कितनी मिठास के साथ वह हँसती है, कितनी ममता के साथ वह हर काम में प्रवृत्त होती है! प्रकृति ने कोमल तथा मधुर को मिलाकर उसे गढ़ा है। उस स्वाभाविक कोमलता तथा माधुर्य की रक्षा करनी उसका कर्तव्य है। वेश-विन्यास में थोड़ा-सा ध्यान देना उसके लिए अनुचित नहीं। सौन्दर्य का ज्ञान न रहने से क्या वह गृह को इतना उत्तम ढंग से सँवार सकती और हमारी माता का काम, हमारी पत्नी का काम ऐसी चारुता के साथ सम्पन्न कर सकती? वह उदासीन रहती तो असहाय सन्तानों का पालन तथा निरुपाय पुरुषों का सन्तोष-विधान कौन करता? गृहस्थाश्रम के चलाने में वास्तव की अपेक्षा भाव का प्राधान्य अधिक है।

विज्ञान और दर्शन युक्ति तथा तर्क के ऊपर प्रतिष्ठित हैं। किन्तु केवल युक्ति और तर्क के द्वारा संसार के काम नहीं चल सकते। बुद्धि के जगत् को छोड़कर एक दूसरा जगत् भी है—वह है हृदय का जगत्, भाव का जगत्, वेदना का जगत्, राग का जगत्, रस का जगत्। संसार में युक्ति की अपेक्षा भाव का गुरुत्व अधिक है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, राग, द्वेष, अहङ्कार, धैर्य, क्षमा, दया, स्नेह, स्वार्थ-त्याग इत्यादि का सम्पर्क भाव के साथ है; और चिन्ता, युक्ति, स्मृति, गणित, विज्ञान, दर्शन इत्यादि का सम्पर्क बुद्धि के साथ।

भाव से ही सौन्दर्य आदि मधुर अनुभूतियों की उत्पत्ति तथा सुकुमार वृत्तियों की सृष्टि होती है, और जीवन में सुख की धारा प्रवाहित होती है। यह विश्व सौन्दर्य का एक विशाल सागर है। कवि, चित्रकार, गायक इत्यादि शिल्पी इस महार्णव से नाना रत्नों का

आहरण करते हैं और अपने अन्तरस्थ भाव के प्रयोग के द्वारा संगृहीत रत्न-समूह का संस्कार करके हमारे सामने उपस्थापित करते हैं। उन रत्नों के सौन्दर्य से हमें चकाचौंध हो जाती है। विभिन्न प्रकार के शिल्पी उनकी उपलब्धि कर विभिन्न प्रकार से उनका उपयोग करते हैं—कवि भाषा के द्वारा, चित्रकार आलेख्य के द्वारा, भास्कर मर्मर-मूर्ति के द्वारा, गायक स्वर-लहरी के द्वारा, नर्तक शारीरिक गतियों तथा भंगियों के द्वारा अपनी अपनी शक्ति के अनुसार विश्व के अनिर्वचनीय तथा अक्षय सौन्दर्य का कथञ्चित् परिचय देने को समर्थ होते हैं; और जन-साधारण को अपने अपने आनन्द का भाग देकर कृतार्थ करते हैं।

कभी कभी वे अपने अन्तर में ही किसी सुन्दर भाव की सृष्टि करते हैं और वास्तव उपादानों की सहायता से उसे स्थायी रूप देकर हमें चमत्कृत करते हैं। वे जगत् से ही उपादान-समूह चयन करते हैं और उन्हें सुन्दर करके व्यक्त करना चाहते हैं। कितनी स्मृतियाँ, कितनी व्यथायें, कितने आवेग, कितने उच्छ्वास जो साधारण लोगों के चित्त में सुख-दुःखों की लहरें उठाकर, उद्योग वा शक्ति के अभाव से, विलीन हो जाते हैं, वे शिल्पी के अन्तर में संचित होते हुए उनके सौन्दर्य के आदर्शानुसार काव्य के, चित्र के, भास्कर्य के, संगीत के अथवा नृत्य के आकार में परिस्फुट होते हैं। जिसकी प्रतिभा जितनी अधिक है उसे उसी परिमाण में सांफल्य मिलता है। अति उच्च प्रतिभावान् शिल्पी की अनेक कृतियाँ अमर हो जाती हैं। रैफ़ेल की मैडोना, शाहजहाँ का 'ताज, शेक्सपियर की नाटकावली, वाल्मीकि का रामायण, कालिदास की शकुन्तला तथा मेघदूत अमर शिल्प के उदाहरण हैं।

सृजन का एक विपुल आनन्द है और उसके वितरण से भी निविड़ तृप्ति होती है। विश्वकर्मा ने इस सौन्दर्यमय विश्व का सृजन करके अपार आनन्द प्राप्त किया था और उसे हमारे उपभोग के लिए देकर आनन्दमय होकर विराज रहे हैं। हम उस सौन्दर्य को प्रत्यक्ष कर चिर दिन आनन्द से अभिभूत होते हैं। सौन्दर्य की अनुभूति वा सृजन भाव का ही कार्य है, बुद्धि का नहीं। प्रबल कल्पना-शक्ति के बिना सौन्दर्य का यथार्थ अनुभव वा सृष्टि सम्भव नहीं।

शिशुगण अवास्तव भाव-राज्य के अधिवासी हैं। उनके खेलों में कल्पना की इयत्ता नहीं। प्राप्तवयस्क व्यक्तिगण मानो वास्तव की अपेक्षा अवास्तव राज्य में विचरण करना अधिक पसन्द करते हैं। जो लोग काव्य, नाटक वा कथा-साहित्य की रचना वा पाठ करते हैं वे सामयिक तौर पर स्वप्निल अनुभूति-समूह के द्वारा परिव्याप्त रहते हैं। नाटकाभिनय-काल में और अवाक् वा सवाक् चलचित्र की प्रदर्शनावस्था में दर्शकगण कल्पना-लोक में स्थानान्तरित होते हैं। गायक जब अपने गान में कोई वेदना परिस्फुट करने को व्यस्त रहता है तब वह वास्तव जगत्-सम्बन्धीय चेतना खो बैठता है। साधक जब अनन्यमना होकर अपने उपास्य देवता के ध्यान में नियत रहता है तब वह इस स्थूल-जगत् के अस्तित्व को भूलकर जिस राज्य को पहुँचता है, वहाँ अपने उपास्यदेवता के अतिरिक्त और कुछ भी उसके देखने में नहीं आता। पागल की बात ही क्या है। वह तो अवास्तव में ही डूबा रहता है। कोई कोई स्वेच्छा से पागल बनते हैं। मादक द्रव्य सेवन का तात्पर्य क्या है? वास्तव-जगत् को छोड़कर अवास्तव-जगत् में रहने की आकांक्षा के सिवा वह और क्या है?

देखा जाता है कि वास्तव को लेकर मनुष्य का जितना कारबार है, अवास्तव को लेकर उससे अधिक है। पैण्डोरा की पिटारी में दुष्ट कीटों के भीतर आशा नाम्नी क्षुद्र परी रक्खी गई थी, इस हेतु जीवन किसी क़दर सहनीय हुआ है। किन्तु यह परी किस उपादान से गठित है? वह उपादान अवास्तव-तन्तु-निर्मित जाल से भिन्न और कुछ भी नहीं। विरहिणी भाव-रूपी बेड़े पर चढ़कर प्रवासी प्रियतम के कण्ठलग्न होती है। मानिनी का मान तो एक प्रकार का नाट्याभिनय है। स्नेह, ममता, सहानुभूति, दया, दान, कृतज्ञता, धैर्य, क्षमा, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य इत्यादि सभी हृदय की वृत्तियाँ हैं। अतएव वे भाव से समुत्पन्न हैं। इसी से कहना पड़ता है कि वास्तव-जगत् की अपेक्षा भाव-जगत् के साथ हमारा सम्बन्ध घनिष्टतर है।

सर जगदीशचन्द्र बोस

लेखक, श्रीनाथसिंह

सर जगदीशचन्द्र बोस की मृत्यु वर्तमान समय की एक बहुत भारी दुःखद घटना है। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने लगभग ८० वर्ष की एक ऐसी परिपक्व अवस्था में शरीर-त्याग किया है जिस उम्र तक बहुत कम भारतीय पहुँच पाते हैं। इसमें भी सन्देह नहीं कि उन्होंने अपने पूरे पचास वर्ष अपने प्रिय कार्य—वैज्ञानिक अनुसंधान में लगाये और उनके हृदय में कदाचित् ही कोई महत्त्वाकांक्षा रही हो जो उनके जीवन-काल में न पूरी हो चुकी हो। तथापि हम दुःखी हैं, इसलिए कि उनकी मृत्यु से वैज्ञानिक जगत् में भारत का जो स्थान रिक्त हो गया है उसकी पूर्ति होनी अभी सम्भव नहीं जान पड़ती।

संसार में साहित्य में जिस प्रकार श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत के लिए एक आदरणीय स्थान प्राप्त किया है, संसार की राजनीति में जिस प्रकार महात्मा गांधी ने भारत को दृढ़ स्थान प्रदान कराया है, वैसे ही स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस ने वैज्ञानिक जगत में भारत का मस्तक ऊँचा किया है। सच तो यह है कि विश्व में भारत की धाक उन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्र और महात्मा गांधी से भी पहले जमाई थी। विश्व को जो सन्देश कवीन्द्र ने अपनी वाणी-द्वारा और महात्मा गांधी ने अपने कार्यों-द्वारा दिया है, वही संदेश सर जगदीश ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों-द्वारा दिया है। उनके वैज्ञानिक अनुसन्धान पाश्चात्य वैज्ञानिकों की भाँति नर-संहारक या सांसारिक सुख-भोग-प्रेरक न थे। उन्होंने उसी चिरन्तन सत्य को वैज्ञानिक प्रयोगों-द्वारा प्रामाणिक किया है जिसे भारत के प्राचीन ऋषियों ने अपने तपोवनों में देखा था। सब संसार प्राणमय है, इसलिए सब प्रेममय हो, यही सर जगदीश का सन्देश था और यह सन्देश कोरी कल्पना नहीं था, उन्होंने इसको अपटुडेट वैज्ञानिक प्रयोगों-द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखा दिया था। फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक रोम्याँ रोला ने उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए ठीक ही कहा था—

"ओ जादूगर! तुमने हमें विश्व के उस मूक जीवन के द्वार तक पहुँचाया है जो अभी कल तक मृत और निशा के अन्धकार में विलीन समझा जाता था। यह स्पष्ट है कि इस शताब्दी में भारत बिना कुछ गँवाये योरप के बौद्धिक प्रयत्नों में इतना भाग लेगा कि संसार को आत्मज्ञान हो जायगा।"

वृक्ष-पौधों और घासों में भी जान होती है, वे भी सुख-दुख का अनुभव करते हैं और हँसते तथा रोते हैं, यह भारतीय दार्शनिक कहा अवश्य करते थे, परन्तु इन सबको प्रत्यक्ष दिखा देने का श्रेय सर जगदीश को ही प्राप्त हुआ है। उन्होंने ऐसे भावग्राही नाज़ुक यन्त्र बनाये जिनके द्वारा इन जड़ पदार्थों का सुख-दुःख जानना भी सम्भव हो गया। योरप-अमरीका के अनेक वैज्ञानिकों ने इन यंत्रों की परीक्षा की और इनकी क्षमता को स्वीकार किया।

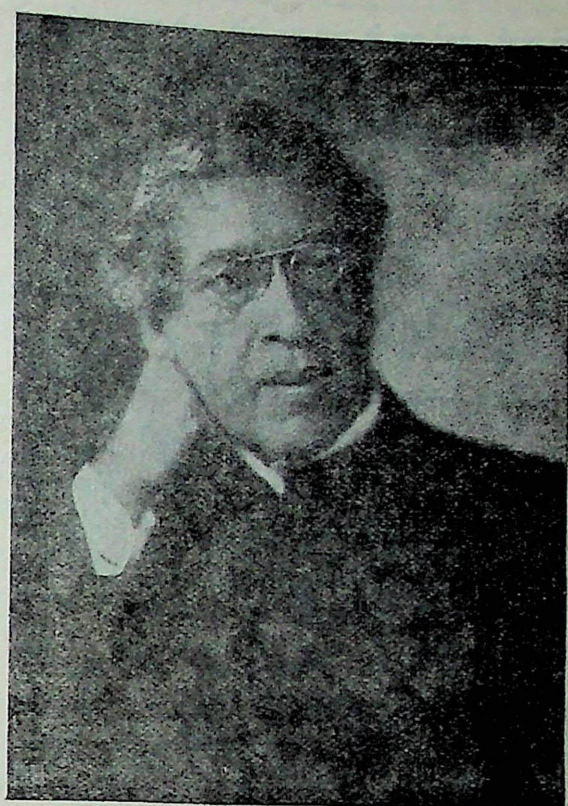
वनस्पतियों में एक प्रकार की चेतन-शक्ति होती है, इसमें सर जगदीश और महात्मा गांधी दोनों महापुरुषों का बराबर विश्वास रहा है। इस सिलसिले में यहाँ एक मनोरञ्जक घटना का उल्लेख करना अनुचित न होगा। सन् १९१५ ईसवी की बात है। महात्मा गांधी पहले-पहल कलकत्ता में सर जगदीश की प्रयोग-शाला देखने गये थे। जब सूर्य डूबने लगा तब महात्मा गांधी ने अपने नित्य के अनुसार प्रार्थना करने की इच्छा प्रकट की। सर जगदीश और उनके शिष्य भी इस प्रार्थना में सम्मिलित हुए। उस समय इन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब इन्होंने देखा कि स्क्रीन पर एक विद्युत्यंत्र की सुई एक ताड़ की पत्तियों की गति अङ्कित कर रही है। ऐसा जान पड़ता था मानो पत्तियाँ प्रार्थना में निरत मनुष्य की भाँति अपने हाथ जोड़ रही हैं। इस घटना का महात्मा गांधी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसके बाद से उन्होंने अपने किसी अनुयायी को कभी सूर्यास्त के बाद फूल या पत्ती नहीं तोड़ने दिया। उनका ख़याल है कि सूर्यास्त के पश्चात् ये वनस्पतियाँ विश्राम करती हैं या प्रार्थना करती हैं।

विलायत के प्रसिद्ध पत्र 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने सर जगदीश के सम्बन्ध में एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित किया है। उसमें उनकी युवावस्था की विलायत की उन यात्राओं का ज़िक्र किया गया है जो वे विश्राम

ग्रहण करने से पूर्व प्रतिवर्ष किया करते थे और पौधों की सजीवता प्रमाणित करने के लिए वहाँ के विश्वविद्यालयों में लेक्चर देते थे। योरपवालों के हृदय में पौधों की चेतन-शक्ति के प्रति सहानुभूति-युक्त ज्ञान उत्पन्न करने की उन्हें इतनी धुन थी कि उन्होंने २० वर्ष तक प्रतिवर्ष इँग्लैंड का दौरा किया था। उक्त लेख में पत्र के संवाददाता की एक मीटिंग का संवाद भी उद्धृत किया गया है, जिससे सर जगदीश के चरित पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उक्त अंश इस प्रकार है—

"गार्जियन के संवाददाता को महायुद्ध के पश्चात् की एक स्मरणीय मीटिंग की याद है। यह मीटिंग 'इंडिया आफ़िस' में तीसरे पहर हुई थी। लार्ड बालफ़ोर सभापति के आसन पर विराजमान थे। सर जगदीश अपने पौधों का संकेत अंकित करनेवाले यंत्र के साथ भाषण कर रहे थे। उस यंत्र को उन्होंने अपने ही निरीक्षण में तैयार कराया था और उसमें बराबर सुधार करते रहते थे। वह यंत्र बहुत ही नाज़ुक था। सर जगदीश का क़द छोटा था, उनके बाल भूरे और घने थे और उनका सिर बङ्गाली के सिर का एक अच्छा नमूना था। वे अँगरेज़ी बहुत शुद्ध लिख सकते थे, परन्तु साफ़ साफ़ अँगरेज़ी बोलने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया। वे अपने विषय में तल्लीन थे और अन्त तक बराबर उत्साह से बोलते रहे। प्रत्येक बात का प्रदर्शन वे बालकों की-सी उत्सुकता और प्रसन्नता के साथ करते थे और अपने सम्भाषण में हास्य का भी अच्छा पुट देते थे। उनकी जैसी ख्याति किसी भारतीय वैज्ञानिक ने संसार में नहीं प्राप्त की। साथ ही किसी 'रिसर्च' करनेवाले का उसके समय में इतना विरोध भी नहीं हुआ जितना कि उनका हुआ था। परन्तु उनके मित्रों ने उन्हें कभी उदास या आलोचकों के प्रति कटु शब्द का प्रयोग करते हुए नहीं देखा। उनमें बहुत बड़ा आत्मविश्वास था और उन्हें इस बात का विश्वास था कि उनके प्रयोगों और परिणामों को संसार को मानना ही पड़ेगा।"

'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जी और प्रयाग-विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर मेघनाद साहा उनके शिष्यों में थे। श्री रामानन्द चटर्जी ने उन्हें अपने एक लेख में विज्ञान का योद्धा कहा है और उन



[स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस।]

दिनों के संस्मरण लिखे हैं जब वे प्रेसीडेंसी कालेज में प्रोफ़ेसर थे। रामानन्द बाबू का कहना है कि यदि वे वैज्ञानिक न होते तो बङ्गाल के बहुत बड़े साहित्यकार हुए होते। बँगला-भाषा के वे एक अच्छे लेखक थे और वङ्गीय-साहित्य-परिषद् के सभापति रह चुके थे। वे बहुत ही भावुक थे और कला से उन्हें विशेष प्रेम था। कुरूपता उन्हें ज़रा भी सह्य नहीं थी। वे सदैव साफ़-सुथरी पोशाक में रहते थे। 'बोस-इंस्टीट्यूट' की दीवारों के चित्र उनकी कला-प्रियता के प्रमाण हैं। विज्ञान के क्षेत्र में ही वे देश के सेवक नहीं थे। वे राष्ट्रीयतावादी भी थे और भारतीय संस्कृति के बहुत बड़े भक्त थे। गाँवों के प्रति उनके हृदय में अगाध स्नेह था। इस सम्बन्ध में रामानन्द बाबू ने एक मनोरञ्जक घटना का उल्लेख किया है। एक बार जब वे योरप का भ्रमण करके स्वदेश लौटे और उनके सामने जलपान के लिए अच्छे से अच्छे पदार्थ रक्खे गये तब उन्होंने बिना उनको हाथ लगाये हुए कहा—"पहले लाई और हरा मिर्चा लाओ।" जब ये

चीज़ें लाई गईं तब वे उन पर ऐसे टूटे मानो महीनों के भूखे हों। डाक्टर मेघनाद साहा ने 'लीडर' में उनके प्रति जो श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है उसमें उन्होंने भी लिखा है कि "सर जे० सी० बोस महान् वैज्ञानिक ही नहीं किन्तु महान् देश-भक्त भी थे। हमारी मातृभूमि की प्राचीन संस्कृति से उन्हें अगाध स्नेह था।"

सर जगदीश का जीवन-वृत्तान्त किसी उपन्यास से कम रोचक नहीं है। एक ऐसे समय में जब योरप के वैज्ञानिक यह मानने के लिए तैयार ही नहीं होते थे कि भारतीय भी विज्ञान में चमत्कार दिखा सकते हैं, उनका इस ओर अग्रसर होना उन्हीं के जैसे अजेय साहसी का काम था। उन्हें पग पग पर जो कठिनाइयाँ भोगनी पड़ी हैं उनका भी विस्तार के साथ यहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता।

सर जगदीशचन्द्र वसु का जन्म ढाका-प्रांत के रारीखाल नामक ग्राम में ३० नवम्बर सन् १८५८ को हुआ था। उनके पिता श्री भगवानचन्द्र वसु सब डिवीज़नल अफ़सर थे।

उनके पिता ने उनको गाँव की पाठशाला में ही पढ़ने को भेजा। मातृ-भाषा-द्वारा शिक्षा प्राप्त करने एवं ग़रीब किसानों और मज़दूर बच्चों के साथ पढ़ने से उन पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता की गहरी छाप लग गई।

सन् १८७५ में उन्होंने सेंट ज़ेवियर कालिजिएट स्कूल से मैट्रिक, सन् १८७७ में उसी कालेज से एफ़० ए० और १८८० में बी-एस० सी० की परीक्षा पास की।

भारत में बी-एस० सी० पास करने के पश्चात् उन्होंने १८८४ में केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय से नेचरल साइन्स में बी० ए० और १८८३ में लन्दन-विश्वविद्यालय से बी-एस० सी० आनर्स के साथ पास किया। शिक्षा समाप्त कर भारत लौटने पर वे प्रेसीडेन्सी-कालेज में सन् १८८७ में विज्ञान के प्रोफ़ेसर हो गये।

कालेज में प्रोफ़ेसर होते ही उन्होंने विद्युत्तरंग-सम्बन्धी खोज आरंभ की। तीन मास में उन्होंने उस यन्त्र का आविष्कार किया जिससे विद्युत्-चुम्बकीय-विकिरण (इलेक्ट्रो मेगनेटिक-रिओलिशन)-सम्बन्धी खोज हो सकती थी। उन्होंने एक ऐसा यंत्र बनाया जिससे विद्युत्किरण का ध्रुवीय भवन देखा जा सकता था। अपार दर्शक पदार्थों (ओपेक सब्स्टेंस) में अदृश्य विकिरण (इनविज़िबिल रेडियेशन) की वक्रांश संख्याओं की भी खोज की।

उनकी इन खोजों से वैज्ञानिक जगत् चकित हो गया। रायल एशियाटिक सोसाइटी ने उन्हें अपनी खोज जारी रखने के लिए पार्लियामेंट से सोसाइटी को मिलनेवाली ग्रांट का कुछ भाग दिया। केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय ने एम० ए० की और लन्दन ने डी० एस० सी० की आनरेरी डिग्रियाँ उन्हें दीं।

सन् १८९५ में उन्होंने बेतार के तार का आविष्कार किया और कलकत्ते में गवर्नर के सामने उसका सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया।

१८९६ में वे लन्दन गये तब 'फ्राईडे ईवनिंग डिस्कोर्स' नामक व्याख्यान-माला के व्याख्यान देने को आमन्त्रित किये गये।

इसके बाद उन्होंने विद्युत्तरंग-ग्राहक (इलेक्ट्रिकवेज़-रिसीवर) का आविष्कार किया, जिसकी ग्राहक-शक्ति सर ओलिवर लाज के यन्त्र से कहीं अधिक थी। इस यन्त्र से बेतार के तार की तारबर्क़ी में भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस खोज से एक बार फिर वैज्ञानिक जगत् आश्चर्य में डूब गया।

उन्होंने सिद्ध किया कि क्षुद्र से क्षुद्र वनस्पति में भी मज्जातन्तु हैं और जीवधारियों से उनका इतना साम्य है कि उनकी विभिन्नता का पता लगाना कठिन है। बाह्योत्तेजन का उन पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। शीत से आकुंचन, मादक द्रव्य से नशा और विष से उनकी भी मृत्यु होती है। उन्होंने लीपज़िग-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर विलियम फेफ़र के सिद्धांत का खण्डन कर यह भी दिखला दिया कि लाजवन्ती के पौधे में भी स्नायु हैं। पौधों में हृदय की-सी धड़कन, उसकी नाड़ियों-द्वारा नीचे से ऊपर को रस-प्रवाह, साँस के साथ कार्बोनिक-गैस खींचना आदि का भी उन्होंने अपने यन्त्रों-द्वारा प्रत्यक्ष प्रदर्शन करके दिखला दिया।

उन्होंने अनेक यन्त्र बनाये, जिनसे पौधों के हृदय की धड़कन, उनकी वृद्धि का स्वतः लेखन, उनकी संवेदना आदि देखे जा सकते हैं और दुख होने पर रोना भी सुना जा सकता है। पौधों के सोने के घण्टों का भी उन्होंने पता लगाया।

उनका सबसे अद्भुत यन्त्र तो हाई-मेगनिफिकेशन-क्रेस्कोग्राफ है, जिससे कोई भी वस्तु १० लाख गुनी बड़ी दीखती है। इससे पौधों की प्रतिमिनिट की वृद्धि देखी जा सकती है।

भारत-सरकार ने उनको ३ बार—(१९००, १९०७ और १९१४ में) अपने आविष्कार संसार के सामने रखने के लिए योरप भेजा। इसी समय इँग्लेंड में २८ मई सन् १९१४ को उन्होंने दूसरी बार फ़्राईडे-ईवनिंग डिस्कोर्स का व्याख्यान दिया। लन्दन में उनकी 'मेडवल-प्रयोग-शाला' को देखने के लिए दूर-दूर से प्रसिद्ध वैज्ञानिक देखने आये। इसी समय वे अमरीका भी बुलाये गये। अमरीका में उनको इतनी संस्थाओं ने निमंत्रित किया कि यदि वे प्रतिदिन दो व्याख्यान देते तो भी एक साल में सब जगह व्याख्यान न दे पाते। भारत-मन्त्री ने उनकी अपूर्व खोजों के लिए उनको ३०,०००) रुपये की रिकरिंग ग्रांट ५ साल के लिए दी।

१८ दिसम्बर १९१३ को उनको रायल कमीशन आफ़ पब्लिक सर्विस ने गवाही देने को बुलाया। उन्होंने अपनी गवाही में अँगरेज़ों और हिन्दुस्तानियों के वेतनों के अन्तर का विरोध किया और बिना रंग के पक्षपात के योग्यतानुसार नौकरियाँ देने की अपील की।

सन् १९१३ में उन्होंने ५ लाख रुपये की लागत से कलकत्ता में 'बोसइन्स्टीट्यूट' स्थापित किया। वहाँ अपनी खोजें और आविष्कार संग्रह किये। बाद में यह संस्था उन्होंने देश को दान कर दी।

सर जगदीश बहुत मितव्ययी थे। उनकी वार्षिक आय लगभग ५०,००० रुपया थी। इसमें वे लगभग ४०,००० रुपया बचा लेते थे। परन्तु इस बचे हुए धन को वे व्यक्तिगत कार्यों में न लगाकर भारत में विज्ञान की उन्नति और प्रसार करने में व्यय करते थे। इस सम्बन्ध में अपने जीवन-काल में वे लगभग सवा लाख रुपया दान कर चुके थे। वे चार लाख रुपया छोड़ कर मरे हैं, परन्तु यह भी उन्होंने अपनी मृत्यु के समय शिक्षा-सम्बन्धी विभिन्न संस्थाओं को दान कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने अपना सारा ज्ञान, अपनी सारी शक्ति और अपनी सारी कमाई देश के लिए उत्सर्ग कर दी है। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि वे कितने महान् थे।

कौन ?

लेखक, श्रीयुत रामकुमार अवस्थी

व्यथित मानस ऊर्म्मियों से
खेलती है कौन बाला ?
कौन जाने के समय है
दे रही मधुपूर्ण प्याला ?

कौन अपने इन्दु-मुख से
खींचती मम लोल लहरें ?
कौन पहनाती हमें है
आज नीरव अश्रु-माला ?

नीर से नीरज भरे हो
देखते अपलक हमें हैं,
कह रहे हैं मूक भाषा
मैं तुम्हारा प्रण-निराला।

देखिए मैं तो पथिक हूँ
जा रहा अविराम गति से,
यह जगत तो मार्ग में है
ध्येय मेरा दूर बाला !

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

चौबीसवाँ परिच्छेद

खिन्नता

प्रायः संध्या हो चली थी। देखते ही देखते पूर्व-दिशा प्रभाहीन हो उठी। अस्ताचलगामी मरीचिमाली की किरणों से पश्चिम गगन सिन्दूर-रञ्जित हो उठा। धीरे धीरे अन्धकार फैलने लगा, चारों दिशायें उसमें विलीन हो गईं। सिराजगञ्ज की एक एक सड़क पर अगणित दीप-शिखायें प्रज्वलित हो उठीं। समीप ही नदी-तट पर बँधी हुई नौकाओं के समूह का प्रकाश खद्योत-माला के समान प्रतीयमान हो रहा था। वर्षा के जल से उमड़ी हुई यमुना की जल-राशि उन्नत वेग से ब्रह्मपुत्र के संगम की ओर प्रवाहित हो रही थी। नदी के तट पर वसु महोदय की अट्टालिका के बरामदे में खड़ी होकर वासन्ती एकाग्र चित्त से यह सब देख रही थी। उसने एक लम्बी साँस ली और सोचने लगी कि मानव-जीवन में भी इसी तरह एक दिन आशा का आलोक उज्ज्वल हो उठता है, बाद को वही निराशा के अन्धकार से आच्छादित हो जाता है। मेरे जीवन में भी तो एक दिन आशा का आलोक उदित हुआ था, बाद को वही आलोक निराशा के अन्धकार में विलीन हो गया। क्या उसके फिर से प्रज्वलित हो उठने की कोई आशा नहीं है? इस यमुना को ही देखो। यह साल भर तक विरह के ताप से संतप्त होने के बाद नव-यौवन के दर्प से गर्वित होकर आज प्रियतम के दर्शन की आकांक्षा से आकुल हो उठी है। यही कारण है कि अपने दोनों ही तटों को प्लावित करके बहुकाल की सञ्चित व्यथा को प्रियतम के चरणों में अर्पित करने के विचार से दौड़ी चली जा रही है। आज कितने आनन्द से उसका हृदय परिपूर्ण हो उठा है! इतने दिनों तक प्रिय की विरह-ताप से संतप्त होने के बाद उसे मिलन की जो आशा हुई है उसके कारण उत्कण्ठा से अधीर होकर उसने अपना शरीर डुबो दिया है और चञ्चल-गति से दौड़ रही है। परन्तु क्या मेरी भी आशा के पूर्ण होने का कोई उपाय है? मृत्यु के बिना मेरा छुटकारा नहीं है।

अमावस्या की रात्रि का घोर अन्धकार क्रमशः घनीभूत होने लगा, अन्त में उससे पृथ्वी आच्छादित हो गई। अट्टालिका के समीप जो वृक्ष लगे थे उन पर बैठे हुए चमगादर किचमिच किचमिच करने लगे। दूर से दो-एक उल्लुओं का कर्कश स्वर सुनाई पड़ा। ज़रा ही दूर पर नदी के तट पर जो नौकायें बँधी थीं उन पर क्षीण आलोक उस समय भी प्रज्वलित हो रहा था। वासन्ती दोनों हथेलियों पर मस्तक रक्खे हुए सोच रही थी कि शिशु-काल से ही तो मेरा जीवन मरुभूमि हो रहा है। मूलहीन शैवाल के समान संसार-रूपी स्रोत में प्रवाहित होते होते मेरी मा ने मुझे लेकर जब मामा के यहाँ आश्रय लिया था उसके केवल चार वर्ष तक वे जीवित रह सकीं। इस प्रकार शैशव-काल में केवल चार वर्ष तक मैं मातृ-स्नेह से वर्द्धित हुई हूँ। अब वह समय मुझे स्वप्न-सा मालूम पड़ रहा है। बाद को जब माता की मृत्यु होगई तब फिर मामी की अशेष यन्त्रणा सहन करते ही करते बड़ी हुई। मेरे

उज्ज्वल भविष्य की क्षीण आलोक-रेखा की चर्चा जब जगह जगह होने लगी, सखियाँ तब मुझे घेर कर बैठ गईं और कहने लगीं कि बड़े आदमी की बहू हो जाने पर यह कितनी सुखी होगी, कितने ऐश्वर्य की अधिकारिणी होगी। इसी तरह की न जाने कितनी अद्भुत बातें मेरे सम्बन्ध में कही जाने लगीं। उस समय की बातें मानो परियों की कहानियाँ थीं। वह सब सुन सुनकर मेरा क्षुद्र हृदय किस तरह के अपरिसीम आनन्द का अनुभव कर रहा था। अन्त में जब सचमुच राजप्रासाद के समान विशाल भवन में नववधू का वेष धारण करके मैंने पहले-पहल प्रवेश किया तब मैं यथार्थ ही विस्मित हो उठी थी।

वासन्ती की विचार-धारा पूर्ववत् जारी रही। वह मन ही मन कहने लगी—धीरे धीरे मेरे हृदय में जब ज्ञान का सञ्चार हुआ तब मैंने अपनी अवस्था पर विचार करना सीखा। जिसकी बदौलत मैं इतने बड़े ऐश्वर्य की अधिकारिणी हुई और जिसके हृदय पर अधिकार न कर सकने के कारण सुखोपभोग से वञ्चित रही उसके घृणित व्यवहार से मैं सर्वथा स्तम्भित होगई। जीवन के सहचर से वञ्चित होने के कारण यह बृहत् अट्टालिका मेरे लिए बहुत ही कष्टकर प्रतीत होने लगी। उस समय स्नेह के एकमात्र आधार श्वशुर के अत्यधिक आदर-यत्न के कारण मैं अपने विडम्बनापूर्ण जीवन की असह्य यन्त्रणा को बहुत कुछ भूल गई। परन्तु वे भी जब मुझे त्याग कर चले गये तब मेरे हृदय का कितना अंश शून्य हो गया, यह भगवान् के अतिरिक्त और कोई भी न समझ सकेगा।

वासन्ती के हृदय में स्वामी के प्रति सहानुभूति भी जाग्रत हो उठी। वह फिर सोचने लगी—कदाचित् स्वामी के जीवन की गति को परिवर्तित करने के ही लिए मैं उस दिन श्वशुर के दृष्टिपथ पर पड़ी थी। जिस प्रकार दुष्ट नक्षत्र पर क्रूर ग्रह के आ जाने से मनुष्य का जीवन सङ्कटापन्न हो जाता है, उसी प्रकार उनके भी तरुण जीवन में धूमकेतु के समान उदय होकर मैंने उनके जीवन के सारे सुखों, सारी शांति का हरण कर लिया। आज यदि मेरे साथ उनका इस प्रकार का सम्बन्ध न होता तो सम्भव है कि उनके जीवन की गति परिवर्तित न होती। शायद वे बाबू जी का स्नेह भी न खो सकते। अतुलित ऐश्वर्य के अधिकारी होकर भी वे आज दीन-हीन [illegible]

समान गली गली भटकते न फिरते, अपने जन्म-गृह से इस प्रकार विदा न ले लेते।

दानपत्र के द्वारा वसु महोदय अपनी सारी सम्पत्ति वासन्ती को दे गये थे। उसके लिए भी आज वह दुःखी हो रही थी। मन ही मन वासन्ती कहने लगी—बाबू जी ने ही यह क्या किया? वे यदि सारी सम्पत्ति मेरे नाम न लिख जाते तो वे गृहत्यागी तो न होते! वे यदि घर में रहते तो मुझे इस तरह की अपार वेदना न सहन करनी पड़ती। साँझ तक कम-से-कम एक बार तो इष्ट-देवता के चरणों के दर्शन प्राप्त करके चिर-जीवन की अतृप्त पिपासा निवृत्त कर ही पाती। विवाहिता पत्नी को वे घर से बहिष्कृत तो कर सकते नहीं थे! वैसी दशा में मेरे हृदय के देवता मुझसे इतना दूर दूर तो न रहते। आज मैं एक ऐसे मन्दिर की पुजारिन हूँ जिसमें देवता की मूर्ति नहीं है। परन्तु यदि वे यहाँ होते तो मुझे इस तरह शून्य मन्दिर में रहकर निराशा के अन्धकार में जीवन न व्यतीत करना पड़ता। पता नहीं, और कितने दिन तक, कितने युग-युगान्तर तक, कितने दिन-रात मुझे इस घर में देवता के दर्शन की आकांक्षा से इसी तरह व्यतीत करने पड़ें। यह पत्थर की अट्टालिका तो शून्य है, प्राणहीन है, इसमें निवास करना कितना कष्टकर है! किन्तु उपाय?

यही सब सोचते सोचते वासन्ती की आँखों की पलकें भीग उठीं। अनायास ही कमरे से एक आह निकल पड़ी। तब वासन्ती हाथ जोड़ कर राधा-वल्लभ के मन्दिर की ओर ताकती हुई कहने लगी—हे दयामय, अनाथों के नाथ, दीनबन्धु, तुम कहाँ हो? कितनी दूरी पर छिपे हो? अन्तर्यामी, व्यथाहारी, हे नारायण, मधुसूदन, तुमने मेरी यह कैसी दशा कर दी है? समस्त दिन की असह्य वेदना का भार लेकर जब सन्ध्या के अन्धकार में तुम्हारे चरणों के समीप, तुम्हारे ध्यान में, तुम्हारे नाम-स्मरण के द्वारा तृप्त होने जाती हूँ, तब धीरे धीरे मेरा रुद्ध द्वार उन्मुक्त करके चन्दन से सुशोभित एक मुख, आँखों का एक जोड़ा रूपी तारे, दूर—बहुत दूर—किसकी उज्ज्वल मूर्ति में उदित हो आते हैं? उस समय मैं तुम्हारी यह चराचर को लुभा लेनेवाली अनुपम मूर्ति, अरुण चरण, मधुर नाम तथा समस्त संसार भूल जाती हूँ। [illegible] कैसे एक अनिर्वचनीय आनन्द, आशा के उज्ज्वल

आलोक से हृदय परिपूर्ण हो उठता है ! उस समय पता नहीं, कौन-सी ऐसी मोहरूपी मदिरा मुझे उन्मत्त कर देती है। समस्त दिन का हृदय का असह्य भार लेकर जो कुछ तुम्हारे चरणों में निवेदन करने आती हूँ उसे फिर नहीं निवेदन कर पा सकती। हाथ-पैर निश्चल हो जाते हैं, समर्पित किया हुआ अर्घ्य हाथ में ही पड़ा रह जाता है, जिह्वा अकर्मण्य हो उठती है, तुम्हारा नाम भी नहीं उच्चरित हो पाता, मुँदे हुए नेत्रों से तुम्हारा दर्शन नहीं कर पाती हूँ, व्यर्थता के भार से हृदय दब जाता है, वेदना के ताप से सन्तप्त निःश्वास हृदय को भेद कर निकल पड़ते हैं और विभिन्न दिशाओं में विलीन हो जाते हैं। यह सब क्या तुम्हारे हृदय को स्पर्श करता है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि पूजा का सारा आयोजन ही निष्फल हो गया। वह तो केवल गगन पर से गिरे हुए नक्षत्र के समान अवलम्बनहीन होकर गाढ़ अन्धकार में कहीं पड़ा होगा। कौन उसे खोजेगा जी ? कौन उसे खोजेगा ?

रात्रि अधिक बीत गई। चारों दिशायें नीरव, निस्तब्ध हो उठीं। सड़क पर पथिकों का आना-जाना भी कम हो गया। वासन्ती तब भी नहीं उठी। एक कोच पर बैठी हुई दोनों हथेलियों पर मस्तक रक्खे वह गम्भीर चिन्ता में निमग्न थी। चमेली कब से आकर उसके पास खड़ी थी, इसका उसे पता नहीं चल सका। कुछ देर के बाद वासन्ती की चिन्ता भंग करने के विचार से चमेली ने उसके शरीर पर हाथ रक्खा और कहने लगी—इतनी देर से क्या सोच रही हो भाभी ? परन्तु वासन्ती उस समय चिन्ता से इस प्रकार अभिभूत थी कि चमेली ने क्या कहा, यह उसके कान तक में न पड़ सका। उसके शरीर में केवल किसी के शीतल हाथ का स्पर्श भर हुआ, इसी से वह चौंक पड़ी और कहने लगी—कौन है ? दीदी ? काम से फ़ुर्सत मिल गई ?

चमेली ने हँस कर कहा—इतनी देर के बाद होश आया है ? मैं क्या क्या कह गई, यह सब शायद तुम्हारे कान में नहीं पड़ सका।

वासन्ती ने कहा—क्या कह रही थीं दीदी ? मैं इन माँझियों का तमाशा देख रही थी।

चमेली ने कहा—साँझ से ही तुम आई हो। तब से यहाँ अकेले में बैठी बैठी क्या कर रही हो ? मैं घर घर में तुम्हें खोज आई। कहीं पता नहीं चल सका। अन्त में यहाँ आकर देखा तो तुम्हें बैठी पाया। परन्तु तुम मेरे आने की आहट नहीं पा सकीं। रात-दिन इतनी चिन्ता में क्यों पड़ी रहती हो भाभी ?

वासन्ती सहम गई। वह कहने लगी—किसी भी चिन्ता में तो नहीं पड़ी थी दीदी ? चिन्ता किस बात की करूँगी ?

वासन्ती चमेली से यह बात कह तो गई, परन्तु अपने मन के सामने वह सच्ची बात छिपा नहीं सकी। सचमुच उस समय वह चिन्ता में पड़ी थी। क्या उसकी चिन्ता की कोई सीमा थी ?

ज़रा देर के बाद चमेली ने कहा—क्या सुषमा कल आवेगी ?

वासन्ती उस समय चिन्ता के जाल में इस तरह फँसी थी कि उसे चमेली के वहाँ रहने की याद तक नहीं रह सकी। एकाएक चमेली के इस प्रश्न से चौंक कर वह कहने लगी—सुषमा दीदी ने चिट्ठी में लिखा तो यही है। देखो दीदी, सुषमा दीदी जब आ जायँ तब हम लोग थोड़े दिनों तक घूम आवें। ताई जी बहुत दिनों से तीर्थ करने के लिए उत्सुक हैं। मैंने बुआ जी को लिखा है कि फूफा जी से पूछ कर जैसा वे कहें वैसा लिख दें। परन्तु अभी तक उनका कोई उत्तर नहीं आया। वे यदि कहें तो थोड़े दिनों तक कहीं घूम आवें। तुम भी चलोगी न ?

चमेली ने कहा—मा की चिट्ठी आई है। तुम जब पूजा के घर में थीं तभी मैं वह चिट्ठी तुम्हारे डेक्स में रख आई हूँ। बाबू जी को कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु उन्होंने पूछा है कि तुम लोगों के साथ पुरुष कौन जा रहा है। मा ने यह भी लिखा है कि आज-कल सन्तोष भाई वहीं हैं। उनकी तबीयत बहुत ख़राब है।

एक लम्बी साँस लेकर वासन्ती ने कहा—शायद उन्होंने शरीर की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। इसके सिवा परदेश में वे अकेले रहते हैं। कौन उनके सुख-दुःख की चिन्ता करनेवाला है ? यदि बुआ जी के पास वे कुछ दिन रह जाते—

वासन्ती की बात समाप्त भी नहीं हो पाई थी कि चमेली ने कहा—मा ने भी तो यही लिखा है। वे उन्हें कुछ दिनों तक वहाँ रखने का प्रयत्न करेंगी। परन्तु शायद वे अधिक दिनों तक वहाँ रहेंगे नहीं।

वासन्ती ने इन कई वर्षों में स्वामी का मनोभाव ख़ूब अच्छी तरह से परख लिया था। वह चमेली से कहने लगी—मैं समझती हूँ दीदी, उन्हें भय है कि वहाँ कहीं मैं न पहुँच जाऊँ। देखो दीदी, मैंने कहा था न कि मैं जब तक इलाहाबाद में रहूँगी तब तक वे न आवेंगे। उस समय आप लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। अन्त में वही बात ठीक निकली। आप बुआ जी को लिख दें कि उन्हें कोई भय नहीं है। मेरी संगति से यदि वे इस प्रकार दुःखी होते हैं या मुझसे घृणा करते हैं—

चमेली ने कहा—दुर पगली, यह भी कोई बात है? क्या वे पागल हैं? उन्हें विवेक-बुद्धि नहीं है?

वासन्ती ने रुद्ध कण्ठ से कहा—आप लोग उन्हें पहचानतीं नहीं। सुषमा दीदी जब मुझे लेकर उनके पास गई थीं उस समय का उनका व्यवहार जब याद आ जाता है तब दाँतोंतले अँगुली दबानी पड़ती है। साधारण पशु के प्रति मनुष्य के हृदय में जितनी दया रहती है, मेरे प्रति उनके हृदय में उतनी भी नहीं है। इसके सिवा उन्होंने मेरे मुँह पर यह बात स्पष्ट रूप से कह दी है कि मैं तुमसे कभी प्रेम न कर सकूँगा। परन्तु इससे कोई मतलब नहीं है। मैं तो अब उसी बात का प्रयत्न करूँगी जिससे वे सुखी हो सकें। वे मुझे चाहे जितना ही तुच्छ, जितना ही घृणित समझकर दूर रक्खें, मैं उन्हीं की हूँ और वे ही मेरे सर्वस्व हैं। मेरे इस पद पर से मुझे कोई भी हटा न सकेगा। शायद वे भी न हटा सकेंगे। यदि भगवान् मुँह उठा कर देखें, यदि कभी वे लौट कर अपने घर में आवें, तब दीदी उसी समय मैं अपना अधिकार उनके लिए त्याग कर चली जाऊँगी। उनके सुख के मार्ग में मैं कण्टक न बनूँगी।

चमेली ने कहा—क्या कहती है पगली? तू जायगी कहाँ?

वासन्ती ने कहा—वे मूर्ख नहीं हैं, शराबी नहीं हैं, बुद्धिहीन नहीं हैं। परन्तु फिर क्या हैं, यह मैं आज तक नहीं खोज पाई। यौवन की उमङ्ग में उनके मन में जो भाव आया था उसी को ध्रुव सत्य मानकर उन्होंने धारण कर रक्खा है। इधर उनके साथ जो एक आदमी चिरदिन के बन्धन में आबद्ध है उसके सम्बन्ध में क्या उन्होंने ज़रा-सा विचार करके देखा है?

वासन्ती सोच रही थी कि क्या मनुष्य मनुष्य से इस प्रकार घृणा कर सकता है, क्या मैं ज़रा-सी भी दया, ज़रा-सी भी सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सकती हूँ, मेरा अपराध क्या है। यह तो आशातीत व्यथा है, इस व्यथा की निवृत्ति कहाँ है, इस ज्वाला का अन्त नहीं है, सीमा नहीं है, केवल ज्वाला ही सहन करनी है! चमेली उसके वेदना-क्लिष्ट मुँह की ओर ताकती हुई स्तब्ध भाव से खड़ी रही।

पचीसवाँ परिच्छेद

परिवर्तन

सन्ध्या को रमाकान्त बाबू कचहरी से लौटने के बाद बैठे जलपान कर रहे थे। पास ही उनकी पत्नी बैठी थी। उन्होंने कहा—सुनते हो? बहू ने चिट्ठी लिखी है कि यदि फूफा जी आज्ञा दें तो मैं मामा जी को साथ में लेती जाऊँ।

रमाकान्त बाबू ने कहा—क्या तुम भी जा रही हो? तब भला इस बुढ़ापे में मेरी क्या दशा होगी?

महामाया ने क्रुद्ध स्वर से कहा—तुम्हें तो हर बात में हँसी ही सूझती है। मैं कब कहाँ जाती हूँ। मेरे पैरों में तो तुमने ऐसी बेड़ियाँ डाल रक्खी हैं कि ज़रा-सा हिल-डुल भी नहीं सकती, कहीं जाना तो दूर रहा। मैं जो पूछ रही हूँ, पहले उसका उत्तर दो। तुम्हारी जो कुछ सम्मति होगी वह मैं बहू को लिखूँगी, उसी के अनुसार वह अपना प्रबन्ध करेगी।

रमाकान्त बाबू ने कहा—बहू के मामा यदि साथ में जा रहे हैं तो फिर क्या आपत्ति हो सकती है? परन्तु मैं सचमुच पूछ रहा हूँ कि तुम जा रही हो या नहीं।

महामाया ने कहा—मेरा जाना नहीं होगा। चमेली क्या बहू का साथ छोड़ेगी? इसके सिवा मेरे चले जाने पर तुम लोगों का घड़ी भर भी निर्वाह नहीं हो सकता। ऐसी दशा में मैं कैसे घर से पैर निकाल सकती हूँ? उस अभागी का अदृष्ट ही ऐसा है। नहीं तो क्या अभी उसकी तीर्थ करने की अवस्था है?

यह कहकर महामाया ने अञ्चल से आँखें पोंछ लीं। रमाकान्त बाबू पत्नी के आँसुओं से भीगे हुए मुँह की

ओर ताकते हुए तथा वासन्ती के दुर्भाग्य का स्मरण करके व्यथित कण्ठ से कहने लगे—तो यात्रा की सब व्यवस्था करने के लिए लिख दो।

यह बात समाप्त भी न हो पाई थी कि प्रयाग में जितने भी दर्शनीय स्थान हैं उन सबको देखकर सन्तोष आगया और बाहर के दरवाज़े पर से ही कहने लगा—कहाँ जाओगी बुआ जी?

बुआ जी ने कहा—जाऊँगी कहाँ बेटा! तुम जल-पान न करोगे?

सन्तोष ने कहा—विनय ने आज मुझसे इतने चक्कर लगवाये कि मैं थककर चूर हो गया हूँ।

रमाकान्त बाबू तब तक जलपान समाप्त करके बाहर चले गये। महामाया ने सफ़ेद पत्थर की एक रकाबी में तरह तरह के फल और घर की बनी हुई मिठाई आदि सजाकर एक आसन के पास रख दिया। सन्तोष ने कहा—ज़रा विनय को बुला लूँ। उसके लिए भी ले आइए।

थोड़ी ही देर के बाद दोनों भाई आकर जलपान के लिए बैठे। रकाबी में सजाई हुई थोड़ी-सी सामग्री खा चुकने के बाद बुआ जी की ओर देखा। बुआ जी के हास्य से सदा विकसित रहनेवाले मुखमण्डल पर आज मानो गम्भीर विषाद की रेखा अङ्कित थी। यह नहीं मालूम हो रहा था कि इस कमरे में तीन व्यक्ति विराजमान हैं। उसमें गम्भीर नीरवता थी। कुछ क्षण के बाद सन्तोष ने वह नीरवता भङ्ग करते हुए कहा—कहाँ जाने को कह रही थीं बुआ जी?

बुआ जी ने रुद्ध कण्ठ से कहा - मैं कहाँ जाऊँगी बेटा! बड़ी बहू की चिट्ठी आई है। उन्होंने लिखा है कि फूफा जी यदि आज्ञा दें तो एक बार पश्चिम घूम आऊँ। इसी से वे कह रहे थे कि किसी को साथ में लेकर घूम आने के लिए लिख दो। लड़की है, तबीयत ऊबी है, चार जगह घूम फिर कर देखने से बहुत कुछ—

बुआ जी की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि विनय बोल उठा—कौन कौन जा रहे हैं?

महामाया ने कहा—सभी तो जा रहे हैं। किसको किसको गिनाऊँ? क्या बहू का अभी इस तरह तीर्थ-धर्म करने का समय है? लेकिन उसका अदृष्ट तो है?

विनय ने कहा—तो क्या चमेली भी जायगी? जाते समय वे लोग यहाँ आवेंगे न?

महामाया ने सन्तोष को सुनाने के विचार से कहा—यहाँ वे लोग न आवेंगे। पहले-पहल वे लोग पुरी की ओर जायँगे और उस लाइन में जितने भी तीर्थ-स्थान हैं उन सबमें होकर लौटते समय सम्भव है कि यहाँ आवें। और चमेली भला बहू का साथ कब छोड़नेवाली है? उसने पहले ही चिट्ठी लिखी है। बहू ने लिखा है कि सब तीर्थ करके हमें देश लौटने में सात-आठ मास लग जायँगे। यहाँ का सारा काम-काज मैं दीवान जी को समझाये दे रही हूँ। उन्हें जब किसी प्रकार के परामर्श की आवश्यकता होगी तब वे फूफा जी को पत्र लिखेंगे, फूफा जी का पत्र पाते ही दीवान जी उनके निर्देश के अनुसार सारी व्यवस्था कर लेंगे। आज इन्होंने भी बहू को पत्र लिख दिया है कि तुम जा सकती हो।

महामाया ने सोचा कि सन्तोष बाद को कहीं कोई झंझट न खड़ा कर दे, इससे उन्होंने सारी बातें खोलकर कह दीं।

जलपान से निवृत्त होने के बाद दोनों भाई उठे। बुआ जी ने सन्तोष के मुँह की ओर देखा। पहले वासन्ती की चर्चा सुनने से उसके मुख पर जो विरक्ति की रेखा उदित हो आया करती थी, आज वह नहीं दिखाई पड़ी।

रात्रि के समय सन्तोष शय्या पर पड़े पड़े सोने के लिए निरर्थक प्रयत्न कर रहा था, परन्तु निद्रा किसी प्रकार भी नहीं आती थी। उसके कान में बुआ जी का केवल वही वाक्य "क्या उसकी अभी तीर्थ-धर्म करने की अवस्था है" रह रह कर झङ्कृत हो रहा था। सन्तोष सोचने लगा—क्या सचमुच मेरा ही दोष है? क्या मेरे ही अत्याचार के कारण आज वासन्ती ने यह कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर रक्खा है? सुषमा ने जो कुछ कहा था, क्या वही सच है? क्या मेरे ही उत्पीड़न से आज वासन्ती की इस प्रकार की दुर्दशा है? परन्तु मैं क्या करूँ? पिता जी ने इन सब बातों पर क्यों नहीं विचार किया?

आज सन्तोष की विचार-धारा ने निद्रा को पास तक नहीं फटकने दिया। वह बराबर वासन्ती की ही चिन्ता में पड़ा रहा। ज़रा ही देर में उसके जी में आया—पिता जी का ही क्या दोष है? मैंने तो उनसे कुछ कहा भी नहीं। सुषमा ठीक ही कह रही थी। मनुष्य के ऊपर मनुष्य बल का प्रयोग कर सकता है, परन्तु क्या बल से

मन भी कहीं वशीभूत हो सकता है ? यदि मैं विवाह के समय कहीं चला जाता तो शायद घटना और ही तरह की होती। परन्तु ऐसा तो मैं कर नहीं सका, पिता से बदला लेने का प्रयत्न करके बदला किससे लिया ? सांसारिक ज्ञान से शून्य एक बालिका के साथ इस प्रकार निष्ठुरता का व्यवहार करके कितनी वेदना मैंने उसे पहुँचाई है ? परन्तु आज इन सब बातों पर विचार करने से लाभ ही क्या है ? सुषमा ने उस दिन कहा भी तो था कि प्रतिहिंसा-परायण पशु के हृदय में भी जितना दया का भाव होता है, मेरे हृदय में उतना भी नहीं है। क्या सुषमा की यह बात सच है ? यदि हाँ तो मेरे हृदय में यह पशुता का भाव किसने उत्पन्न कर दिया है ? मेरे दुर्बल हृदय ने या और किसी ने ? क्या मैं चिरदिन ही ऐसा था।

सन्तोष सोचने लगा—हृदय पर असह्य वेदना का यह गुरु-भार कब तक लाद रखना पड़ेगा ? इस निरानन्दमय संसार के पथ पर कब तक सङ्गीहीन होकर विचरण करते रहना पड़ेगा ? यौवन के प्रारम्भ-काल में जिस समय नवीन आकांक्षा से हृदय को परिपूर्ण करके संसार के द्वार-देश में आकर खड़ा हुआ था, उस समय किसी रुष्ट ग्रह के प्रकोप में पड़ जाने के कारण मेरे हाथ में आई हुई सिद्धि को, हृदय के परिपूर्ण आयोजन को, निमेष भर में किसने व्यर्थ कर दिया था ? यह जो जीवन की अपरिमित क्षति हुई है, यह जो किसी सहचर के बिना एकाकी रह कर जीवन-व्यापी दुःसह वेदना सहन कर रहा हूँ, इसका कहीं अन्त है ? यह विच्छेद यदि विधाता को चिरदिन के ही लिए अभीप्सित था तो दो दिन के लिए संसार के पथ पर हम एक-दूसरे से क्यों मिल गये थे ? व्यर्थता की निर्मम वेदना वक्ष पर धारण करके कितने दिन, कितने वर्ष, मुझे इस प्रकार व्यतीत करने पड़ेंगे, यह कौन जानता है ?

विधाता मङ्गलमय हैं। अपने मङ्गलमय हाथों से ही उन्होंने इस जगत् की सृष्टि की है। उन्हीं के बनाये हुए इस जगत् में जितनी आशा-निराशा, वेदना-विरह और दुःख-शोक है, वह क्या उन्हीं की सृष्टि है ? अपने ही उत्पन्न किये हुए पुत्र-कन्या के प्रति उन्होंने इस तरह के निष्ठुरता के अभिनय की सृष्टि क्यों की है ? जगत् में जो नर-नारी रहते हैं उन सबके हृदय-विदारक हाहाकार के, उन मङ्गलमय भगवान् के, चरणों के समीप पहुँचने की क्या कोई आशा नहीं है ?

आत्मग्लानि के कारण सन्तोष अधीर हो उठा। वह सोचने लगा—विशाल दुःख का चितानल निरन्तर जलते जलते हृदय को भस्मीभूत कर रहा है ! विपुल वेदना के निष्पीड़न से वक्षःस्थल चूर चूर हुआ जा रहा है ! जीवन के प्रभात-काल के प्रथम मुहूर्त में ही निराशा की जिस अत्यधिक व्यथा से वक्ष-पञ्जर जर्जरित हुआ जा रहा था, जीवन के अन्त में भी उसकी निवृत्ति की कोई आशा नहीं है। तो भी मैं किसलिए बचा हूँ ? इस 'किसलिए' का उत्तर मैं कहाँ से खींच कर निकालूँ ?

निद्रा न आ सकने के कारण सन्तोष खिड़की के समीप आकर खड़ा हो गया। बाहर ज्योत्स्ना की रजतधारा से पृथ्वी उद्भासित हो उठी थी। सन्तोष सोचने लगा कि मेरे हृदय में जो प्रगाढ़ अन्धकार फैला हुआ है उसे भेद कर वहाँ ज्योत्स्ना की उज्ज्वल धारा कब प्रवाहित होगी ? चन्द्रमा के शीतल किन्तु उज्ज्वल प्रकाश से मेरा हृदय कब प्रकाशित होगा ? परन्तु यह तो अब होने का नहीं है। यह मेरा इच्छाकृत है। मैं तो स्वेच्छा से ही यह सब परित्याग करके आया हूँ। तब भला मेरा बुभुक्षित हृदय आज नवीन आशा की मादकता से विह्वल क्यों हो उठा ? वही तो मेरी विवाहिता पत्नी है, जिसके अयाचित प्रेम, हृदय में लबालब भरी हुई आशा को, पैर की ठोकर से चूर चूर करके आया हूँ, जिसे एक ज़रा-सी सान्त्वना की बात तक कहने में घृणा का अनुभव किया था, वाण-विद्ध हरिणी के समान दुर्दशा-ग्रस्त होकर जो तड़फ रही थी और मैं स्वयं नीरव भाव से खड़ा होकर जिसे देख रहा था, छः वर्ष के सुदीर्घ समय तक जिस पत्नी की चिन्ता एक बार भी मैंने नहीं की, आज एकाएक बार-बार उसी अनादृता परित्यक्ता पत्नी की स्मृति क्यों जाग्रत हो रही है ?

सन्तोष बार-बार इस चिन्ता से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करने लगा। परन्तु जैसे जैसे वह उस चिन्ता से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा था, वैसे ही वैसे उसी चिन्ता के अन्तराल से बुआ जी की वही वाणी कि "क्या यह उसकी तीर्थ-धर्म करने की अवस्था है", बार-बार प्रतिध्वनित होने लगी।

कमरे में जो घड़ी लगी थी उसमें एक कभी को बज

चुका था। दो बजने को भी आगये। सुशीतल समीरण आकर सन्तोष के मस्तक के बालों को उड़ाने लगा। वायु का एक प्रबल झकोरा आया, जिसके कारण टेबिल पर रक्खी हुई किताब गिर पड़ी। उसके शब्द से चौंककर वह उठ बैठा। उसने किताब टेबिल पर रख दी और वह शय्या पर फिर लेट रहा। परन्तु आज निद्रा उसे किसी प्रकार भी नहीं स्पर्श कर रही थी। सन्तोष उस समय भी सोच रहा था—मैंने विश्वस्तहृदय बालिका के प्रेम-पूर्ण हृदय पर बड़े ज़ोर का आघात पहुँचाया है। अपने और उसके बीच में इतने बड़े अन्तर की सृष्टि क्या मैंने स्वयं नहीं की? अपना अधिकार क्या मैं स्वयं नहीं छोड़ आया हूँ? वासन्ती के सम्बन्ध में इसी तरह की कितनी ही बातें सोच सोचकर सन्तोष व्याकुल हो रहा था, हृदय की अदम्य इच्छा हृदय में ही घूम घूम कर रह जाती थी। उस इच्छा को वह किसी प्रकार भी नहीं रोक पाता था। उसके लिए आज शय्या कण्टक के समान हो उठी थी। वह बन्द कमरे के भीतर इधर-उधर टहलने लगा।

वर्णन

लेखक, श्रीयुत सी० विजयानन्द

(१)

सूत्रधार ने गगन-मंच पर,
प्रणयनाट्य का कर आयोजन।
सकल प्रकृति को भावुक कवि को,
हर्षित हो भेजा आमन्त्रण॥

(२)

सज्जित हो जब चन्द्र नायिका,
मध्य-निशा में नभ में आई।
लखकर दर्शक मूक मण्डली,
विस्मित, हर्षित हो मुस्काई॥

(३)

सुरभि पवन ने शशिबाला के,
अधरों का जब स्पर्श किया था।
रोषित होकर तब जलदों ने,
भीषण स्वर में नाद किया था॥

(४)

वीजित हो तब वेग पवन से,
करतलध्वनि की तृण तरुवर ने।
परिणत होकर जब प्रवात में,
विजय प्राप्त की वेग अनिल ने॥

(५)

गये उदधि के निकट जलद तब,
अपमानित हो प्रतिद्वन्द्वी से।
प्रकट हुए पर शीघ्र क्षितिज पर,
शक्तिदान पाकर सागर से॥

(६)

इंगित पाकर तब हिमांशु का,
फैल गये घन सद्यः नभ में।
शक्तिमान की विजय हुई, अब
मेघों का साम्राज्य गगन में॥

(७)

स्थगित हुआ पर प्रम-प्रदर्शन,
लज्जित लखकर चन्द्र प्रिया को।
विघ्न विहत तब किया गगन को,
आच्छादित कर नक्षत्रों को॥

(८)

अस्थिरता से चन्द्र-प्रणय की,
पीड़ित था पर प्रेमी का मन।
आलिंगित कर प्राणेश्वरि को,
किया जलद ने अश्रु-विसर्जन॥



जाग्रत नारियाँ

चीन के रणाङ्गण में नारी

लेखक, श्रीयुत परमेश्वरसिंह

जो आशङ्का थी वह सत्य सिद्ध हो गई। गत १२ दिसम्बर के जापान ने उत्तर-चीन की राजधानी नानकिङ्ग पर पूर्ण अधिकार कर लिया। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि चीन पर जापान ने पूरी विजय पा ली, तथापि क्षणभर के लिए यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि एशिया के रणाङ्गण में साम्राज्यवाद जयी हुआ। जापान की इस जय-यात्रा से अनेक व्यक्तियों की यह धारणा हो गई है कि चीन की स्वाधीनता विलुप्त हो गई। किन्तु यह धारणा सत्य नहीं है। जापान की इस क्षण-स्थायी विजय से यह समझना कि चीन अब जापान का हो गया, भ्रम है। चीन का स्वाधीनता-संग्राम तो अभी वर्षों अविरत गति से गतिशील रहेगा। चीन के राष्ट्रप्राण जनरल चिआंग काई शेक ने अपनी महत्त्व-पूर्ण घोषणा में कहा है—"चीन के, अंत में, अपनी विजय की पूरी आशा है। क्षण भर की विजय-पराजय से वह तनिक भी विचलित नहीं है। चीन तो तब तक लड़ता रहेगा जब तक उसके शरीर में प्राण अवशेष रहेगा।" इस वीरोचित घोषणा से स्पष्ट है कि चीन पराजित नहीं हुआ है।

यह न समझना चाहिए कि चीन के इस संग्राम में एकाकी पुरुष ही लड़ रहे हैं। इसमें वहाँ की महिलाओं का भी महत्त्वपूर्ण भाग है।

दो युग पहले की बात है, जब चीनी महिलाओं को अपनी दुःखद और अपमानजनक अवस्था का किंचित् ज्ञान हुआ, जब उनको यह चेतना हुई कि विश्व का अर्द्ध-भाग होकर भी हम किस विषम अवस्था में पड़ी हैं, समाज में हमें क्या स्थान प्राप्त है। इसी सजगता का यह परिणाम हुआ कि चीनी महिलाओं ने अपने स्वत्वों की प्राप्ति के लिए आन्दोलन का सूत्रपात किया। तब से अब तक चीन में जब जब कोई राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर चली, महिलायें दिलोजान से उसमें कूद पड़ीं और अपना कर्त्तव्य-पालन कर आन्दोलन के सबल बनाया। आरम्भ में तो उन्हें समाज, संकीर्णता, रूढ़िवाद आदि के विरुद्ध ज़बर्दस्त मोर्चा लेना पड़ा, पर धीरे धीरे उन्होंने समाज में अपना उपयुक्त स्थान बना लिया। वे केवल सामाजिक क्षेत्र में ही आगे बढ़ी हों, ऐसी बात नहीं है, वे राजनीति के मैदान में भी कूदीं और पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिला कर राष्ट्र के संगठन के कार्य में समुचित योग-दान दिया। यही कारण है कि आज वे साम्राज्यवादी जापान का दर्प खण्ड-खण्ड करने के लिए पुरुषों की तरह रण-क्षेत्र में युद्ध कर रही हैं। चीन की सेना में वहाँ की महिलाओं की भी एक सेना है।

चीन के महिला-आन्दोलन की प्रगति में वहाँ की छात्राओं का प्रमुख भाग रहा है। महिलाओं के स्वत्व-



[श्रान० मिसेज़ बी० दत्त (लार्ड सिनहा की पुत्री) हाल ही में विलायत का भ्रमण करने गई हैं।]

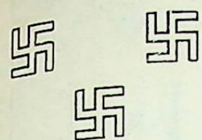
प्राप्ति के आन्दोलन को अग्रसर करने में इन छात्राओं को समय-समय पर और स्थान-स्थान पर पुलिस की दारुण यंत्रणाओं को वरण करना पड़ा है। गत १९३५ में ९ दिसम्बर को पीपिङ्ग नगर में जो प्रदर्शन चीन की छात्राओं ने किया था उसका नेतृत्व दो बालिकाओं ने किया था। इसके लिए उन्हें भीषण यंत्रणायें सहन करनी पड़ीं, पर वे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुईं। जापान के चंगुल से छुटकारा पाने के लिए जो सर्वप्रथम राष्ट्रीय मुक्ति-संघ नामक संस्था सन् १९३५ के २१ दिसम्बर को स्थापित की गई थी उसका श्रेय चीन के नारी-समाज को है। स्थापना के दिन जो विरा् सार्वजनिक सभा हुई थी उसमें ओजस्वी भाषण करते हुए सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी चीनी महिला होसियांग नादन ने यह कहा था—

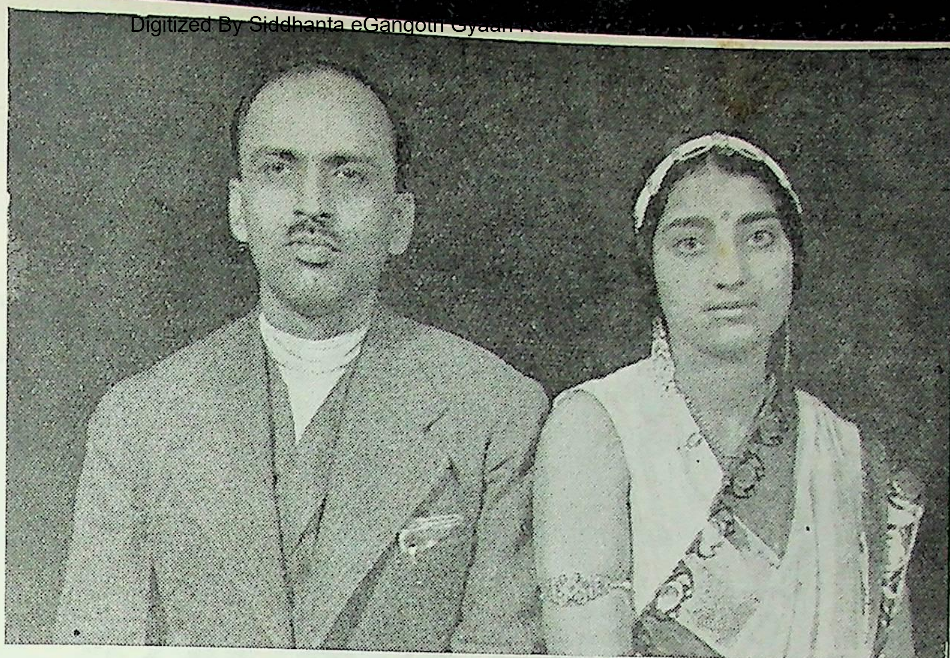
"हम सजग हैं। हमें अब पूर्ण सशस्त्र होकर अधिक काल तक पराधीन बने रहने से इनकार कर देना चाहिए। हमें अब बच्चे पैदा करने की मशीन बने रहना मंज़ूर नहीं। हमें राष्ट्रीय अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए पुरुषों के साथ स्वाधीनता-संग्राम में पूर्ण-रूप से अपना भाग लेना चाहिए। आओ, हम रणक्षेत्र की ओर पयान करें।"

उक्त संस्था में प्रबल आन्दोलन के परिणामस्वरूप उसकी शाखा-प्रशाखायें समस्त देश में स्थापित हो गई हैं, जिनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलायें महत्त्वपूर्ण भाग ले रही हैं। प्रत्येक प्रदर्शन और युद्ध में वे सम्मिलित हैं। वे जापान के विरुद्ध सर्वस्व अर्पित करके भी लड़ने को कटिबद्ध हैं। किसानों और मज़दूरों की महिलायें भी किसी से पीछे नहीं हैं। वे भी पूँजीवादी और साम्राज्यवादी हथकण्डों से सुपरिचित हैं और अपनी मुक्ति के लिए प्रबल रूप से आन्दोलनशील हैं। वे राष्ट्र के इस संकट-काल में सारे सुखों पर लात मार कर स्वदेश के स्वाधीनता-संग्राम में सम्मिलित हैं।

उन्होंने बन्दूकें उठा ली हैं और पुरुषों के साथ जुट कर रण-चण्डी की तरह लड़ रही हैं। उनमें अधिकांश छात्रायें हैं। कुछ तो सैनिक का काम करती हैं और कुछ घायलों की सेवा-सुश्रूषा, मरहम-पट्टी का काम। इन किशोरियों ने शंघाई के बाहर अनेक घनघोर संग्रामों में भी हिस्सा लिया था और इनमें अनेक स्वाधीनता की वेदी पर अपने प्राणों की बलि भी चढ़ा चुकी हैं। इसके अलावा वास्तविक स्थिति के जानकारों का यह भी कहना है कि चीन की समस्त छात्राओं ने पढ़ना-लिखना छोड़ कर देश की रक्षा के लिए लड़ना आरम्भ किया है। वे सच्चे अर्थ में रण-चण्डी बन गई हैं।

चीन के इस महिला-जागरण और उसको इस स्थिति पर ले आने का अधिक श्रेय चीन के प्रसिद्ध सुँग-परिवार की तीन सगी बहनों को है। सौभाग्यवश तीनों का विवाह ऐसे महापुरुषों से हुआ जिन पर चीन के भाग्य-निर्माण का उत्तरदायित्व था और आज भी है। इन तीनों में सबसे बड़ी चीन के अर्थमंत्री श्री कूँग की धर्मपत्नी हैं। मझली से चीन के उद्धारक डाक्टर सनयातसेन ने विवाह किया था। श्रीमती सनयातसेन का 'जीवन रोमांस' से भरा हुआ है। ये अपनी किशोरावस्था से ही सनयातसेन के कार्यों में

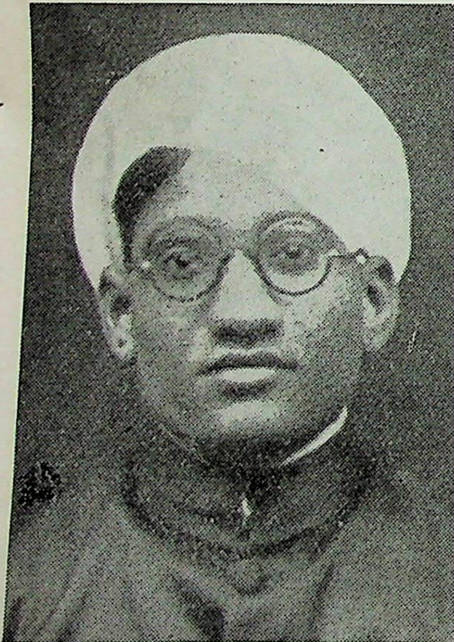




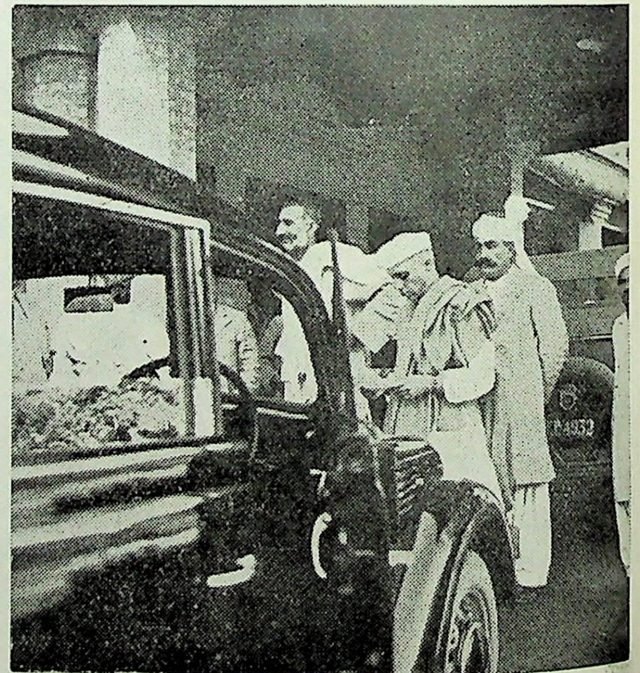
मिस्टर सद्गोपाल एम० एस-सी०--लन्दन के "एस० पी० सी०" के संयुक्त सम्पादक, जिनका लाहौर की ग्रेज्युएट कुमारी कमला बी० ए० से हाल में व्याह हुआ है।

हवाई जहाज़ से लिया गया शंघाई के एक भाग का चित्र, जहाँ जापानियों ने बम-वर्षा करके एक ही दिन में सहस्रों को आहत किया।

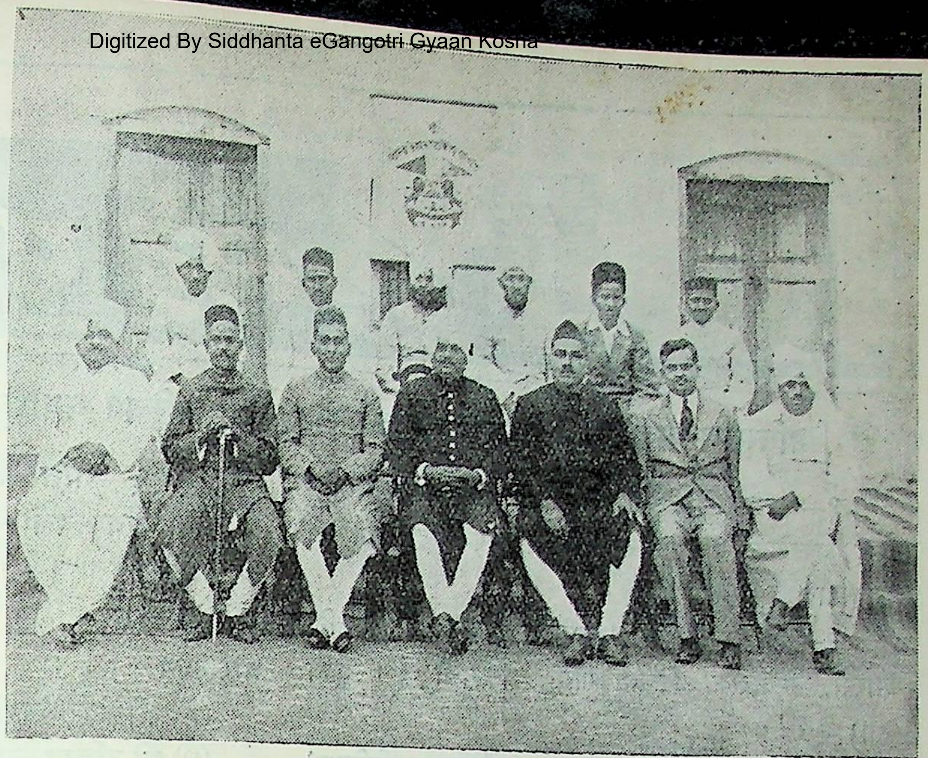
युद्ध में हारकर भागे हुए चीनी सैनिकों के अस्त्रों की जापानी सैनिक परीक्षा कर रहे हैं।



श्रीयुत हमीरलाल जी मुरड़ा बी० ए०, एल-एल० बी०, उदयपुर। आपने हस्तरेखा-विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की है।

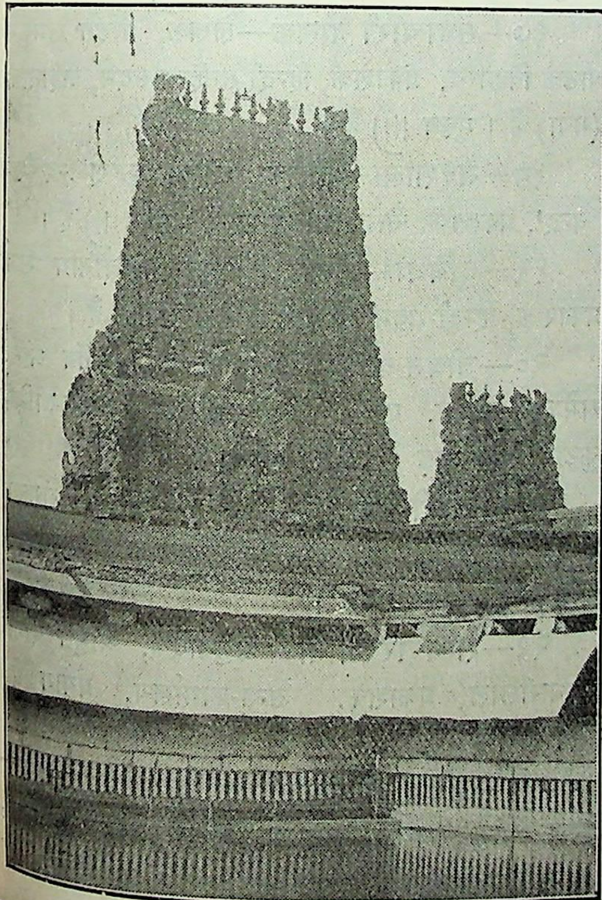


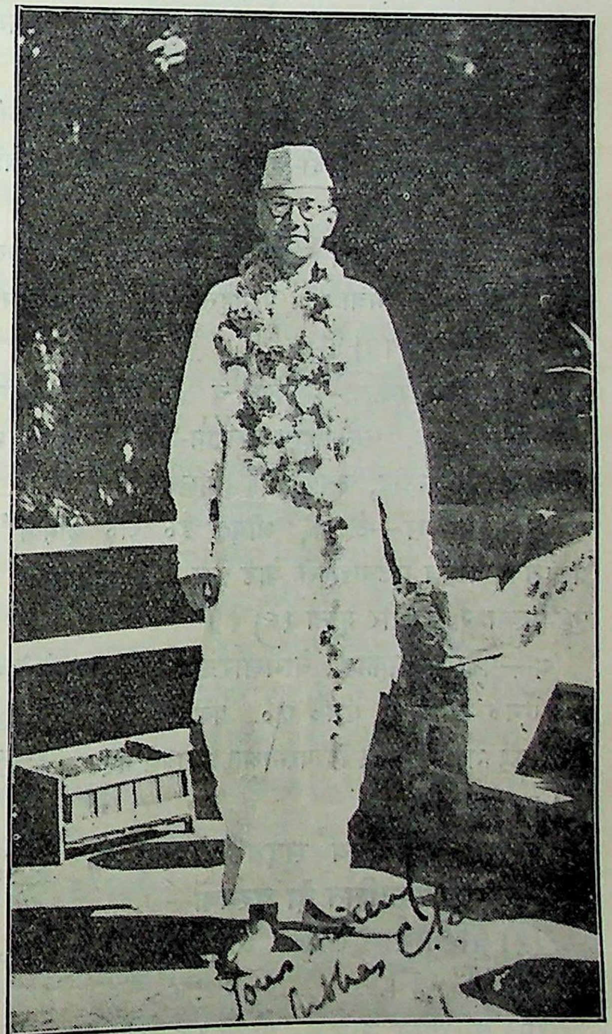
राष्ट्रपति और श्री अब्दुलगफ़्फ़ार ख़ाँ—सीमा-प्रान्त के प्रधान मंत्री के निवासस्थान पर। सीमा-प्रान्त का दौरा आरम्भ करते समय का चित्र।



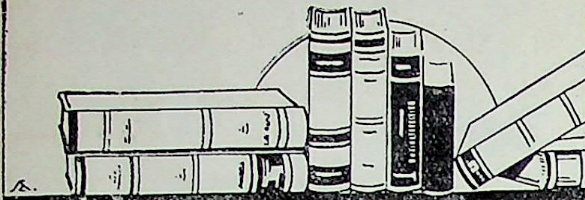
श्री वीरेन्द्रकेशव साहित्य-परिषद् की प्रबन्धकारिणी समिति के पदाधिकारी तथा सदस्य, अगली पंक्ति में बाईं ओर से—(१) श्री बालकृष्णदेव जी तैलंग 'साहित्य-रत्न'। (२) पं० गौरीशङ्कर जी द्विवेदी 'शङ्कर'। (३) पं० रमाशङ्कर शुक्ल, प्रधान मंत्री। (४) कैप्टेन पं० चन्द्रसेन जी। (५) पं० लक्ष्मीनाथ जी मिश्र सभापति। (६) कैप्टेन डाक्टर हरिलाल अमृतलाल जी कोठारी। (७) बाबू मनोहरसिंह जी बख्शी। पिछली पंक्ति में दाहनी ओर से—

(१) पं० ठाकुरदास जी जैन साहित्य-मंत्री। (२) बाबू अम्बिका प्रसाद जी वर्मा अन्वेषण-मंत्री। (३) मौ० अब्दुलरहमान जी 'मंज़र'। (४) पं० दुर्गाप्रसाद जी समाधिया पुस्तकालयाध्यक्ष। (५) बाबू गुरुचरनलाल जी खरे प्रबन्ध-मंत्री। (६) पं० वामदेव जी तैलङ्ग।





श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस—हाल में आप स्वास्थ्य-सुधार



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची । परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१—**राम-रहीम**—लेखक, राजा राधिकारमणप्रसाद-सिंह, प्रकाशक, श्री राजराजेश्वरी-साहित्य-मन्दिर, सूर्यपुरा, शाहाबाद हैं। मूल्य ३) है।

२—**रसिक-रसाल**—रचयिता, प्रोफ़ेसर, कुमारमणि शास्त्री, संचालक, विद्या-विभाग, कांकरोली हैं। मूल्य १॥) है।

३—**तीरे-नज़र**—सम्पादक, कविवर 'बिस्मिल' इलाहाबादी, प्रकाशक, सरस्वती-सदन, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १।=) है।

४—**मौक्तिकमाल**—लेखिका, कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या, प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई हैं। मूल्य १) है।

५—**यथार्थ प्रबोध**—लेखक, श्रीयुत रामलगनप्रसाद गुप्त, प्रकाशक, मंत्री श्री परमहंसाश्रम, बरहज-बाज़ार, गोरखपुर हैं। मूल्य ।) है।

६—**पत्रकारकला**—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत विष्णुदत्त शुक्ल, ।सत्साहित्य-प्रकाशन-मन्दिर, १२०।१ वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य २॥) है।

७—**सायंस**—लेखक, ,श्रीयुत ई० जे० होमयार्ड, प्रकाशक, पंजाब एडवाइज़री बोर्ड फ़ार बुक्स, लाहौर, हैं। पृष्ठ-संख्या २७० और मूल्य १=) है।

८—**परमात्मप्रकाशः योगसारश्च**—सम्पादक, प्रोफ़ेसर ए० एन० उपाध्याय, एम० ए०, प्रकाशक, सेठ मनीलाल रेवाशंकर झावेरी, फ़ार दि परमाश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई हैं। मूल्य ४॥) है।

९-१०—**स्वाध्याय सदन मोहनलाल रोड, लाहौर-द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकें**—

(१) **वीरगाथा**—लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० और मूल्य १।) है।

(२) **अभिषेक नाटक**—अनुवादक, श्रीयुत प्रेमनिधि शास्त्री और मूल्य ॥।) है।

११-१६—**गीता-प्रेस गोरखपुर की ६ पुस्तकें**—

(१) **कवितावली**—अनुवादक, श्रीयुत इन्द्रदेवनारायण और मूल्य ॥=) है।

(२) **भक्त नरसिंह मेहता**—लेखक, श्रीयुत मंगल और मूल्य ।=) है।

(३) **श्रीमद्भगवद्गीता भाषा**—मूल्य ।) है।

(४) **श्री उड़िया स्वामी जी के उपदेश**—मूल्य ।=) है।

(५) **नवधाभक्ति**—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयेन्दका और मूल्य =) है।

(६) **ध्यानावस्था में प्रभु से वार्तालाप**—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयेन्दका और मूल्य -)॥ है।

१७—**सदाचारी बालक**—लेखक, पंडित रामसुभग पाठक विशारद, प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-सदन, जहानाबाद (गया) हैं। मूल्य ॥।) है।

१८—**मदशाला**—लेखक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र', प्रकाशक, चैत्यधाम, मेरठ हैं। मूल्य ॥) है।

१९—**दुविधा**—लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा, प्रकाशक, हिन्दी-भवन, लाहौर हैं। मूल्य ॥) है।

२०—**जीवन का सपना**—लेखिका, स्वर्गीय श्रीमती रामेश्वरी गोयल, एम० ए०, प्रकाशक, प्रभात-साहित्य-कुटीर, आज़मगढ़ हैं। मूल्य ॥।) है।

२१—**फ़िजी-दिग्दर्शन**—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र शर्मा, प्रकाशक, श्री रामचन्द्रपुस्तकालय, मण्डावर, बिजनौर हैं। मूल्य ॥) है।

२२—**शानदार मोती**—अनुवादक, श्रीयुत दीवान वंशधारीलाल, प्रकाशक, सन्त-कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य १=) है।

२३—**संक्षिप्त जैन-इतिहास भाग ३ खंड १**—लेखक, श्रीयुत कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, कापड़िया-भवन, सूरत है। मूल्य १) है।

२४—**वीर-विभूति**—लेखक, श्रीयुत न्यायविजय जी, प्रकाशक, श्री जैन-युवक-संघ-घड़ीवाणी पोल, बड़ोदा हैं।

२५—**स्त्री-रोग-प्रकाश**—लेखक व प्रकाशक कविराज सत्यदेव वैद्य, मोहनलाल रोड, लाहौर हैं। मूल्य ।।=) है।

२६—**श्याम-बावनी**—प्रणेता व प्रकाशक, कविरत्न पण्डित लक्ष्मीनारायण शर्मा (कृपाण), मंत्री-सत्यधर्म-संकीर्तन-समाज, सीतापुर हैं। मूल्य श्यामप्रेम।

२७—**कविवर भूधरदास और जैनशतक**—लेखक, श्रीयुत बाबू शिखरचन्द जी जैन, प्रकाशक, श्रीवीर सार्वजनिक वाचनालय, इन्दौर हैं।

१—**मानस के दो नये संस्करण**—रामचरित-मानस के इधर दो नये संस्करण निकले हैं। एक संस्करण पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने निकाला है, दूसरा लीडर-प्रेस के भारती-भंडार ने प्रकाशित किया है। दोनों संस्करणों के सम्पादकों ने इस बात का दावा किया है कि अब तक के प्रकाशित संस्करणों की अपेक्षा उनके सम्पादित संस्करण अधिक प्रामाणिक हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इन दोनों संस्करणों में भी पाठ-भेद है। ऐसी दशा में इनकी अतर्क्य प्रामाणिकता पर विश्वास करना सचमुच साहस का काम होगा।

वस्तुतः मानस का एक भी प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध नहीं है। प्रामाणिक संस्करण वही कहा जा सकता है जो गोस्वामी जी की लिखी प्रति के अनुसार प्रकाशित हो। दुर्भाग्य से गोस्वामी जी की लिखी एक भी प्रति अभी तक नहीं मिली है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले काशी की सभा ने क़दम उठाया और उसने काशिराज की प्रति के आधार पर सबसे पहले मानस का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया। उसमें यथासम्भव प्रामाणिकता लाने के लिए सभा ने काफ़ी परिश्रम किया। फलतः उस संस्कारण का मानसप्रेमियों में अधिक प्रचार हुआ और आज भी वही संस्करण सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। उस संस्करण का महत्त्व देखकर इस ओर अन्य लोगों का भी ध्यान गया। प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ ने भी एक संस्करण तैयार किया और उन्होंने भी अपने संस्करण की प्रामाणिकता का दावा किया। और अब वैसे ही ये और दो नये संस्करण अस्तित्व में आ गये हैं। इन सबके प्रकाशन से यह बात ज़रूर स्पष्ट हो गई है कि मानस के शुद्ध संस्करण के लिए अभी कहीं अधिक खोज करने की ज़रूरत है और सबसे अधिक तो गोस्वामी जी के हाथ की लिखी प्रति के खोजने की ज़रूरत है। इस दिशा में अभी उतने परिश्रम के साथ काम भी नहीं हुआ है। खीरी-ज़िला के धौरहरा के पंडित रामसुख त्रिपाठी 'रसाल' ने हमें हाल में लिखा है कि उस ओर खोज होने से गोस्वामी जी के सम्बन्ध की काफ़ी सामग्री मिल सकती है। उनकी लिखी हुई बालकाण्ड की एक पोथी रामवटी के मन्दिर के महन्त ब्रजमोहनदासजी के पास है। इसके सिवा गोस्वामी जी के हाथ की लिखी सुन्दरकांड की भी एक पोथी दुलही नाम के गाँव में है।

कहने का मतलब यह है कि गोस्वामी जी की लिखी मानस की प्रति मिल सकती है, यदि परिश्रम-पूर्वक खोज की जाय। और तभी मानस का प्रामाणिक संस्करण भी सुलभ हो सकेगा। ऐसी दशा में किसी का यह दावा करना कि मेरा संस्करण सबसे अधिक प्रामाणिक है, विडम्बना-मात्र है।

इन संस्करणों के सम्बन्ध में हम यह ज़रूर कह सकते हैं कि इनके सम्पादकों ने प्राप्त सामग्री का उपयोग करके इनमें यथासाध्य प्रामाणिकता लाने में पूरा परिश्रम किया है। इनमें पंडित रामनरेश त्रिपाठी का संस्करण सानुवाद है और उन्होंने पद्यों का अति सरल अर्थ देने का बहुत यत्न किया है। इस दृष्टि से उनका संस्करण अधिक उपयोगी हो गया है। यह आकार में भारी भरकम है और इसका मूल्य ५) है। त्रिपाठी जी ने अपने संस्करण में जो प्रस्तावना लिखी है वह स्वयं ही एक ग्रन्थ का रूप धारण कर गई है। फिर वह विवादग्रस्त भी है। हमारी समझ से इतनी बड़ी प्रस्तावना का मानस के साथ गँठजोड़ नहीं होना चाहिए था। यदि इस संस्करण में आवश्यकता के अनुसार छोटी-सी प्रस्तावना होती तो पाठकों के लिए उसका आकार अधिक सुभीते का रहता।

लीडर-प्रेस का संस्करण मूल मात्र है। इसका सम्पादन मानस के मर्मज्ञ पंडित विजयानन्द त्रिपाठी ने किया है और बहुत अच्छे ढंग से किया है। उन्होंने तीन-चार पुरानी प्रतियों के फ़ुटनोटों में पाठ-भेद देकर इस संस्करण का

महत्त्व बढ़ा दिया है। यह काफ़ी सुन्दर छापा गया है तथा उसका गेटअप भी बहुत अच्छा है। यह संस्करण पाठ करने-वालों के लिए अधिक उपयोगी है। इसका भी मूल्य ४) है।

२—ज्योतिष-प्रकाश-निधि—इस पुस्तक के लेखक ज्योतिर्कुलभूषण तथा ज्योतिषतीर्थ पण्डित नीलकंठ-मंगलजी जोशी हैं। इसका मूल्य ३।) है। पुस्तक सजिल्द है। पृष्ठ-संख्या २१५ है। काग़ज़ साधारण लगाया गया है। तथापि पुस्तक अपने विषय की हिन्दी में पहली है। जो लोग केवल हिन्दी के द्वारा ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसके प्रणेता ज्योतिष-शास्त्र के निष्णात हैं और उन्होंने अपनी इस पुस्तक की रचना में ज्योतिष-विषय का थोड़े में और सो भी शास्त्रीय रीति से क्रम से वर्णन किया है। यह पुस्तक २१ 'पुंजों में विभक्त है। इन 'पुंजों' में पंचांग देखना, जन्मपत्री आदि बनाना और उनका फल बताना एवं आयु-आरोग्य, कृषि-व्यापार आदि में लाभालाभ आदि के विचार ऐसे ढंग से बताये गये हैं कि एक-मात्र इस पुस्तक को ज्योतिष के किसी पंडित की सहायता से पढ़ जाने पर कोई भी ज्योतिषशास्त्र का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। फलित ज्योतिष के विषय की हिन्दी में यह एक उपयोगी पुस्तक है। इस विषय के प्रेमियों को इसका प्रचार करना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि इसका एक सस्ता संस्करण भी निकाला जाय।

३—अनुभव—इस पुस्तक के 'अनुभव' भारतीय बनस्पतियों पर विलायती डाक्टरों के हैं। इन्हें डाक्टर विश्वपाल ने संग्रह करके हिन्दी जानने वाले चिकित्सकों के लिए इस पुस्तक-द्वारा सुलभ कर दिया है। पुस्तक उप-योगी है। उन देशी चिकित्सकों को तो इसे ज़रूर ही पढ़ना चाहिए जो रोगों के नुस्ख़े जान लेना भर ही चिकित्सा-शास्त्र का मुख्य ध्येय समझते हैं। पाश्चात्य चिकित्सकों ने एतद्देशीय चिकित्सा-सम्बन्धी जिन वनौषधियों तथा दूसरे द्रव्यों का प्रयोग करके जो अनुभव प्राप्त किये हैं उनमें से कोई १०६ औषधों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। इस पुस्तक से देशी चिकित्सक तथा इतर लोग भी काफ़ी लाभ उठा सकते हैं। इसका मूल्य २) है। पुस्तक सजिल्द है। पृष्ठ-संख्या ५०९ है। मिलने का पता—सुख-संचारक कम्पनी, मथुरा।

४—हैज़ा—इस पुस्तक के प्रणेता कविराज प्रभाशंकर वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं। यह पुस्तक उनकी धन्वन्तरि-ग्रन्थ-माला का तीसरा पुष्प है। 'प्रमेह की अनुभूत चिकित्सा' और 'नाड़ी-परीक्षा के सरल उपाय' नाम से इसके २ पुष्प निकल चुके हैं। उन्हीं की तरह उनकी यह पुस्तक भी भले प्रकार लिखी गई है। हैज़ा-रोग-सम्बन्धी आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, बायोकेमिक, यूनानी आदि मतों की आवश्यक जानकारी इसके द्वारा हो जाती है। इसके ९१ पृष्ठों में हैज़े के रोग का निदान और रोगी की चर्या का विधान बताया गया है। पुस्तक के शेष भाग में रोग दूर करने के लिए लेप, चूर्ण, तेल, गोलियाँ, रस आदि के नुस्ख़े, यहाँ तक कि सुधासिन्धु आदि पेटेंट दवाइयों तक के नुस्ख़े भी छाप दिये गये हैं। पेटेंट दवाइयों के नुस्ख़े वैद्यजी को कैसे ज्ञात हो गये, यह उन्होंने नहीं लिखा है और न आयुर्वेदिक योगों आदि का ही कुछ पता दिया है कि वे कहाँ से लिये गये हैं। यदि ऐसा कर देते तो पुस्तक की प्रामाणिकता ही अधिक हो जाती। तथापि पुस्तक उपयोगी और हैज़े की चिकित्सा करने में इस पुस्तक से काफ़ी सहायता मिल सकती है। पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १।।) है। पता—मैनेजर, धन्वन्तरि-ग्रन्थ-माला, सदर बाज़ार, सागर (सी० पी०)

५—आयुर्वेद-दर्शन—हिन्दी में आयुर्वेद-सम्बन्धी पुस्तकें बहुत प्रकाशित होती हैं। उनमें अधिकांश का दावा यही रहता है कि उनको पढ़कर लोग घर बैठे साक्षात् धन्वन्तरि बन जा सकते हैं। और तो और, बड़े बड़े निष्णात चिकित्सक-चूडामणियों तक ने ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। लाचार होकर कहना पड़ता है कि ऐसी पुस्तकों या ग्रन्थों से आयुर्वेद के न तो गौरव की वृद्धि हुई है, न उसके ज्ञान का ही प्रचार हुआ है। परन्तु उपर्युक्त पुस्तक इस कोटि की नहीं है। आयुर्वेद के ज्ञान के प्रसार के लिए जिस पुस्तक-माला के प्रकाशन की सबसे अधिक आवश्यकता है उसकी, हमारी तुच्छ सम्मति में, यह पहली पुस्तक हो सकती है। यह बात बहुतेरे यहाँ तक स्वयं आयुर्वेद-चिकित्सक भी न जानते होंगे कि आयुर्वेद का अपना अलग दर्शन भी है, उसमें केवल कोरी चुटकुलेबाज़ी ही नहीं है। उसी दर्शन की इस आलोच्य पुस्तक में विस्तार के साथ क्रमपूर्वक चर्चा की गई है।

चरक-संहिता में प्राचीन कालीन ऐसी परिषदों का उल्लेख है जिनमें तत्कालीन आयुर्वेद के विशेषज्ञ एकत्र होकर अपने अपने मत की स्थापना करते थे और अन्त में परिषद् का अध्यक्ष विवादग्रस्त मसले पर अपना निर्णय देता था। ऐसी ही एक 'यज्ज: पुरुषीय परिषद्' बाह्लीक देश में बैठी थी। पुनर्वसु आत्रेय इसके अध्यक्ष थे। इसके वाद-विवाद में वायक, मौद्गल्य, शरलोया, वार्योविद, कुशिक, कौशिक, भद्रकाप्य, भारद्वाज, कांकायन और भिक्षु आत्रेय आदि विभिन्न मतवादी आचार्यों ने भाग लिया था। यह परिषद् कब बैठी थी, इसका पता तो नहीं लगता, परन्तु इतना स्पष्ट है कि भारतीय युद्ध के पहले इसका अधिवेशन हुआ था। इसमें उपर्युक्त आचार्यों ने अपने मतवादों की जो चर्चा की थी उसका विवेचन चरकसंहिता में विस्तार के साथ हुआ है। उसी को इस पुस्तक के लेखक 'वैद्य महादेव चन्द्रशेखर पाठक' ने अपनी इस पाण्डित्य-पूर्ण रचना में बड़ी ख़ूबी के साथ लिखा है। इसके पढ़ने से प्रकट हो जाता है कि आयुर्वेद का दर्शन कितना बढ़ा-चढ़ा था तथा उसके दार्शनिक विचारों में कैसी भिन्नता थी तथा उनका समन्वय करने की ओर तत्कालीन आचार्यों की कैसी प्रवृत्ति थी। पाठक जी ने इस पुस्तक के परिशिष्ट में वातपित्तश्लेष्मा के प्रकारों के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है उससे इस गवेषणापूर्ण पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। वास्तव में पाठक जी ने यह अनूठी पुस्तक लिखकर इस देश के 'चिकित्सक-चूडामणियों' के लिए पुस्तक-रचना का एक नया आदर्श उपस्थित कर दिया है। चिकित्सकों को इस पुस्तक का संग्रह कर इससे लाभ उठाना चाहिए। इस २१५ पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।।) है। पता—७३ जूनी कसेरा बाखल के पते पर लेखक को लिखने से पुस्तक मिल सकती है।

६-८—वैदिक पुस्तकमाला की तीन पुस्तकें—

(१) **दुर्गा सप्तशती**—यह एक प्रसिद्ध धर्मपुस्तक हैं। सप्तशती के न मालूम कितने संस्करण निकल चुके हैं। परन्तु खेद है कि ऐसी महत्त्व की पुस्तक का अभी तक कोई वैसा प्रामाणिक संस्करण नहीं निकला। बंगाल, मिथिला, बनारस और बम्बई आदि के जो संस्करण उपलब्ध हैं उन सबके पाठ में तथा मंत्र-क्रम में दोनों में अन्तर है। यद्यपि ये अन्तर संख्या में बहुत नहीं हैं, तथापि अन्तर तो है। सप्तशती का प्रत्येक श्लोक मंत्र में परिगणित है तब उसके एक मंत्र का भी पाठभेद या क्रमभेद अनर्थकर हो सकता है। परन्तु विद्वानों का इस अवस्था की ओर समुचित ध्यान नहीं जा रहा है और लोग अपने अपने मनमाने पाठ के संस्करण निकालते ही जा रहे हैं। वैदिक पुस्तकमाला का यह संस्करण भी ऐसा ही निकला है। हम इसे मैथिल-संस्करण के रूप में ग्रहण कर सकते थे। परन्तु जो एक मैथिल-संस्करण पहले से मौजूद है उसके और इसके पाठ और मंत्रक्रम में अन्तर है। हमने यह सब यहाँ इस कारण लिखने का साहस किया है कि वैदिक पुस्तकमाला सप्तशती का एक प्रामाणिक संस्करण निकाल सकती थी, परन्तु उसने भी इस ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। तथापि उसके इस संस्करण में यह एक विशेषता ज़रूर है कि सप्तशती का संस्कृत टिप्पणी-सहित ऐसा सस्ता संस्करण अभी तक नहीं निकला है। यदि टिप्पणी हिन्दी में होती तो यह संस्करण और भी उपयोगी होता। बड़े बड़े टाइप में छपी हुई सप्तशती के इस संस्करण की एक प्रति का मूल्य केवल =)।। है।

(२) **बलिदानप्रदीप**—धार्मिक अवसरों पर आस्तिक हिन्दू छाग, मेष या महिष का बलिदान करते हैं। इस पुस्तक में छाग और महिष के बलिदान की विस्तृत पद्धतियाँ, संस्कृत-भाषा में दी गई हैं। इसका संग्रह पण्डित श्री गोवर्द्धन झा शर्मा ने किया है और इसके पुनः प्रकाशन आदि का 'सर्वाधिकार' अपने हाथ में रक्खा है। उन्होंने 'सर्वाधिकार' अपने हाथ में रख कर अच्छा ही किया है, क्योंकि इस समय तो सारे देश में पशुबलि-विरोध का ही आन्दोलन छिड़ा हुआ है। बलिदान करने-वालों के लिए यह पुस्तक अधिक उपयोगी है। इस पुस्तक का मूल्य नहीं दिया है। पृष्ठ-संख्या ३६ है।

(३) **एकोद्दिष्टसारिणी**—एकोद्दिष्ट-श्राद्ध-सम्बन्धी यह एक अलभ्य प्रामाणिक निबन्ध है। मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित रत्नपाणि शर्मा ने इसकी रचना की थी। वे तिरहुत के महाराज रुद्रसिंह के राजपण्डित थे। यह निबन्ध अभी तक अप्राप्य था। इसे पंडित श्री गौरीनाथ शर्मा ने टिप्पणी के सहित प्रकाशित करवाया है। कर्मकाण्डियों के काम की पुस्तक है। मूल्य =)।। है।

९—**सुन्दर पुस्तक**—यह वास्तव में एक सुन्दर पुस्तक है—वस्तु से भी और रूप-रेखा से भी। यह आर्य-समाजी सन्ध्या-वन्दन की पुस्तक है। यह विधि और हिन्दी अनुवाद के सहित है। इसका प्रत्येक पृष्ठ रंगीन बार्डर देकर छापा गया है। पुस्तक के अन्त में ईश्वर-स्तुति-सम्बन्धी १८ वेद-मन्त्र भी दिये गये हैं। इसके सिवा ६ भजन तथा आरती भी दी गई है। इस प्रकार यह सन्ध्या-पुस्तक अधिक उपयोगी बनाई गई है। परन्तु इसकी विशेषता इसकी सुन्दर सचित्र रंगीन छपाई तथा गेटअप में है। ऐसा सुन्दर छपा हुआ सन्ध्या-वन्दन का संस्करण अभी तक देखने में नहीं आया। सन्ध्या की पुस्तक का ऐसा नयनाभिराम संस्करण निकालने के लिए लाहौर के बागबनपुरा के 'सुन्दर-पुस्तकालय' के अध्यक्ष सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य नहीं दिया गया है।

१०—**श्रीदुर्गासप्तशती**—यह दुर्गासप्तशती का हिन्दी-अनुवाद है। अनुवाद विविध छन्दों में व्रजभाषा में किया गया है। सप्तशती के अलावा कवच, अर्गला, कीलक, देवीसूक्त, नैधप्रतीकरहस्य, वैकृतिक रहस्य और मूर्ति-रहस्य आदि तत्सम्बन्धित स्तवों के भी पद्यात्मक अनुवाद इसमें दिये गये हैं। यह इस संस्करण की विशेषता है। प्रत्येक श्लोक का अनुवाद किया गया है, परन्तु हिन्दी-पद्य शिथिल और लयभंग-दोष से युक्त हैं। अनुवाद भी कहीं-कहीं भ्रष्ट है। पाँचवें अध्याय में देवताओं की स्तुतिवाला अंश नहीं रक्खा गया है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते ऐसे देवीभक्त इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। अनुवादक पंडित ब्रह्मदत्त दीक्षित ललाम बी० ए०, एल-टी० म्युनिसिपल बोर्ड, मिर्ज़ापुर हैं। मूल्य नहीं दिया है। शायद अनुवादक महोदय को लिखने से पुस्तक मिल सकेगी।

११—**धर्म और शिक्षा**—संग्रहकर्त्ता, श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद भार्गव, प्रकाशक भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या २९६ और मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में ऋषि-महर्षियों के वाक्यों से लेकर नीतिशास्त्र के आचार्यों, सन्तों, कवियों तथा कितने ही देशी-विदेशी महापुरुषों के सुभाषितों का संग्रह किया गया है। इसमें जितने भी वाक्य या सुभाषित संग्रह किये गये हैं उनका हिन्दी-भाषान्तर भी साथ ही दे दिया गया है। इसका अधिकांश इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसका मनन करके मनुष्य अपनी ऐहलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति कर सकता है।

यह पुस्तक हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी तथा सिख आदि सभी धर्मों के अनुयायियों के लिए समान-रूप से उपयोगी है। इसमें भगवद्भक्ति, समाज-सेवा, शिष्टाचार तथा शारीरिक और मानसिक पवित्रता आदि उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। संग्रहकर्त्ता ने इस पुस्तक को आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के लिए समान रूप से उपयोगी बनाने के लिए काफ़ी परिश्रम किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। किन्तु कुछ दुरूह और गूढ़ वाक्यों की यदि थोड़ी व्याख्या भी कर देने का कष्ट किया जाता तो इस पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती। जैसे 'वर्ष बड़ी बातें सिखलाता है जिसको दिन नहीं जानते' (पृष्ठ १११), "मूर्ख और उसके भाषण शीघ्र ही पृथक् हो जाते हैं" (पृष्ठ १२३), "भक्ति ही मनुष्य को सदा प्रेरित करती है" (पृ० १३४) तथा "पति के कठोर वचन कहने पर तथा करने पर भी जो स्त्री पति से प्रसन्न रहती है, वह धर्मभागिनी होती है।" (पृ० १९६) आदि ऐसे उद्धरण हैं जिनका अर्थ पाठकों को भली भाँति हृदयङ्गम नहीं हो पाता। पुस्तक सजिल्द है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

१२—**नवदल**—रचयिता, पंडित गयाप्रसाद द्विवेदी "प्रसाद" प्रकाशक, वाणी-मन्दिर, खरगोन (होलकर राज्य) हैं। मूल्य ।।) है।

"प्रसाद" जी का यह दूसरा प्रयास है। कुछ दिन हुए, उनकी 'हृदय-निकुञ्ज' नाम की कविता-पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उनकी यह रचना भी हृदय-निकुञ्ज की तरह सरस और 'प्रसाद-गुण' से युक्त है। काव्य-प्रेमियों के लिए इसमें काफ़ी मनोरञ्जन का सामान है।

१३—**सहेली के पत्र**—इसकी लेखिका मिसेज़ क़ासिम-अली बेगम हैं। इसमें २० स्त्रियोपयोगी आवश्यक विषयों की ललित ढंग से चर्चा की गई है। यह सारी चर्चा पत्रों के रूप में है। लेखिका ने इन्हें अपनी सहेली के नाम से लिखा है। पत्रों की भाषा रोचक, साथ ही मानव-विज्ञान की गंभीरता से पूर्ण है। स्त्री-जाति को क्या करना चाहिए और किस आदर्श के साथ अपना जीवन उत्तम बनाना

चाहिए, यही इस सुन्दर रचना का लक्ष्य है। कला, स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अङ्गों पर जितना प्रकाश डाला गया है, उतना ही दम्पति-जीवन पर भी। इस रचना पर लेखिका को मध्य-प्रान्तीय लिटररी एकेडेमी और कलकत्ता के स्त्रीमंडल ने पुरस्कार दिया है। हिन्दीप्रेमियों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए। पुस्तक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से छपी है। इसका गेट-अप भी अच्छा है।

१४—ग्रामसुधार—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पाण्डेय, एल० एजी० और श्रीयुत रमेशचन्द्र पाण्डेय, एम० ए०, प्रकाशक, कृषि-कार्यालय, जौनपुर यू० पी० हैं। पृष्ठ-संख्या १६६ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में ग्राम-सुधार-सम्बन्धी अनेक बातों की चर्चा की गई है। इसमें अनेक ऐसे उपाय बताये गये हैं जिनका अनुसरण करके ग्रामीण जनता अपना सुधार आसानी से कर सकती है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में ग्राम-सम्बन्धी अनेक बातों की चर्चा की गई है जो ग्रामीणों के रोज़मर्रा के कामों में आती हैं। यही नहीं, ग्रामों की रचना कैसी होनी चाहिए तथा उनकी व्यवस्था में ग्राम-वासियों का कैसा सहयोग होना चाहिए, जैसी गम्भीर और ऊँची बातों से लेकर खेती-बारी, घरेलू उद्योग-धन्धे, पशु-पालन तथा स्वास्थ्य आदि विषयों पर विस्तार के साथ महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है। इसके एक रचयिता कृषि के विशेषज्ञ भी हैं। अतएव यह पुस्तक अधिक उपयोगी बन सकी है। भाषा बहुत ही सरल और बोधगम्य है। ग्रामीण जनता को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

१५-२२—हिन्दी-मंदिर प्रयाग की ८ पुस्तकें—

(१) **नेता बुझौवल**—इस पुस्तक से बालकों को अपने देश के नेताओं के विषय में काफ़ी जानकारी प्राप्त हो सकती है। मूल्य ।) है।

(२) **खोजो, खोज निकालो**—इस पुस्तक में फूल, फल, पेड़, नदियाँ, शहर आदि सभी चीज़ों के नाम कविता-द्वारा बताये गये हैं। मूल्य ।) है।

(३) **बानर-संगीत**—यह बालोपयोगी गीतों का संग्रह है। मूल्य ।) है।

(४) **हंसू की कहानी**—इस पुस्तक में एक मनोरंजक कहानी कविता में लिखी है। मूल्य ।=) है।

(५) **बताओ**—(पहला भाग) यह एक मनोरञ्जक चित्रसंग्रह है। मूल्य ॥) है।

(६)-(७) **गुपचुप कहानियाँ**—पहला और दूसरा भाग—इन दोनों पुस्तकों में कई कहानियाँ चित्रों के रूप में दिखलाई गई हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य ।) है।

(८) **कबड्डी**—इस पुस्तक में कबड्डी नामक खेल पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य ।) है।

उपर्युक्त आठों पुस्तकें बालोपयोगी हैं। क्या विषय की दृष्टि से और क्या पुस्तक की रूप-रेखा की दृष्टि से, ये सभी पुस्तकें काफ़ी रोचक और रुचिवर्द्धक हैं। बालकों के लिए इनका संग्रह करना ज़रूरी है।

२३—नीतिनिबन्धावली—लेखक, श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, प्रकाशक, चाँदप्रेस लि० चन्द्र-लोक, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या २५० और मूल्य २) है।

इस पुस्तक में नीति-सम्बन्धी १७ निबन्धों का संग्रह है। इसके सभी निबन्ध सुन्दर और सुपाठ्य और उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी हैं। लेखक ने प्रत्येक निबन्ध में विषय के सभी पहलुओं पर विद्वत्ता के साथ विचार किया है, जिससे पाठक की समझ में लेखक का मनोभाव भली-भाँति आ जाता है। इसके कुछ निबन्धों की रचना लेखक ने स्वयं की है और कुछ को अँगरेज़ी के निबन्धों के आधार पर लिखा है। निबन्धों की भाषा विषय के अनुसार बहुत साफ़-सुथरी है।

२४-२६—पुस्तक-भण्डार, लहेरिया सराय, की ३ पुस्तकें—

(१) **बालकों का योरप**—लेखक, प्रोफ़ेसर कृपानाथ मिश्र एम० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या ६८ और मूल्य ।=) है।

इसमें एक मानचित्र, आर्ट पेपर पर छपे हुए २६ चित्र और सचित्र लेख हैं। यह पुस्तक इस ढंग से लिखी गई है कि इसको पढ़कर बालक योरप की भौगोलिक स्थिति की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं तथा अन्य आवश्यक बातें जान सकते हैं।

(२) **प्रतापादित्य**—लेखक, श्रीयुत परमानन्द दत्त 'परमार्थी' हैं। पृष्ठ-संख्या ७५ और मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में बादशाह अकबर के समकालीन वीर प्रतापादित्य की जीवनी लिखी गई है। प्रतापादित्य ने

शक्तिशाली मुग़ल-साम्राज्य से बंगाल को स्वाधीन करने में जो सजीव प्रयत्न किया था उसका इस पुस्तक में सरल और सुन्दर भाषा में वर्णन किया गया है। इसको पढ़कर बालक अपने आचरण को उच्च बनाने में समर्थ हो सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल और बोल-चाल की है। उपर्युक्त दोनों पुस्तकें बालकोपयोगी हैं।

(३) झलक—लेखक, श्रीयुत अवधनारायण हैं। पृष्ठ-संख्या ९५ और मूल्य ।=) है।

यह पुस्तक पाँच कहानियों का संग्रह है। सभी कहानियाँ मौलिक हैं, पर सभी कहानियाँ उत्तम नहीं हैं। पाँचों कहानियाँ सामाजिक हैं। इसमें 'हृदय' नामक कहानी अधिक अच्छी है। इस कहानी में एक छलहीन हृदय की अवस्था और भावना का सजीव वर्णन है। इसकी कल्पना यदि असंगत नहीं है तो उच्च भी नहीं है। कहानी के पाठकों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए।

२७—महाराणा प्रताप—लेखक, प्रोफ़ेसर लक्ष्मीचन्द, एम० ए०, प्रकाशक, भारतीभवन, मोहनलाल रोड, लाहौर, हैं। पृष्ठ-संख्या १७२ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में महाराणा प्रताप के वंश-परिचय के साथ-साथ उनके जीवन की समस्त घटनाओं का वर्णन किया गया है। महाराणा की इस वीरतापूर्ण गाथा को पढ़कर पाठक के हृदय में पुरुषार्थ का संचार होता है। भाषा सरल और वर्णन आकर्षक है। पुस्तक संग्रहणीय है।

२८—पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह—लेखक, प्रोफ़ेसर हंसराज, एम० ए०, प्रकाशक, दि पंजाब पब्लिशिंग एजेंसी, फ़ीरोज़पुर सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या १९६ और मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में महाराज रणजीतसिंह की जीवन-गाथा लिखी गई है। सिक्खों के उत्थान और महाराज के वंश का परिचय आदि में दिया गया है। महाराज का शासन-प्रबन्ध, राज्य-विस्तार, सैन्यबल, और नौकरों-चाकरों से व्यवहार आदि बातों पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इसके पढ़ने से तत्कालीन अनेक बातों का पता लगता है। भारतीय युवकों के लिए विशेष उपयोगी है।

२९-३० गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ की २ पुस्तकें—

(१)—फूलों की सेज—लेखक, श्रीयुत विजयबहादुरसिंह, बी० ए०। पृष्ठ-संख्या ३३९ और मूल्य २) है।

यह पुस्तक स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। सम्पूर्ण पुस्तक दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में स्त्रियों की यौवनावस्था के प्रारम्भ से लेकर गर्भाधान की अवस्था से पूर्व की सभी बातों का वर्णन है। दूसरे खंड में उस समय से लेकर उनके तमाम गृहस्थ जीवन पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक-रचना उपदेश के रूप में है और एक विदुषी-द्वारा एक नवयुवती को सभी बातें आदि से अन्त तक समझाई गई हैं। इस ढंग की रचना होने के कारण पुस्तक विशेष रोचक हो गई है। नवयुवतियों को क्यों अधिक कष्ट होता है, उनका जीवन क्यों दुखी होता है, उन्हें किस किस तरह के रोगों का शिकार होना पड़ता है आदि बातों पर इसमें स्पष्ट रीति से प्रकाश डाला गया है। युवतियों को किस तरह अपना गृहस्थ-जीवन चलाना चाहिए, बच्चों का पालन-पोषण करना चाहिए, बड़ों का आदर करना चाहिए आदि बातों का इसमें पूर्ण विवेचन है। इसे पढ़कर भारतीय स्त्रियाँ अपने जीवन को आदर्श बनाने में समर्थ हो सकती हैं। पुस्तक की भाषा सरल और बोल-चाल की है। थोड़ी पढ़ी-लिखी बहनें भी इसे आसानी से पढ़ सकती हैं। अतः उनको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

(२) फिर निराशा क्यों?—लेखक, श्रीयुत गुलाबराय, एम० ए० हैं। मूल्य ॥) है।

इस पुस्तक में विभिन्न शीर्षकों में दार्शनिक विचारों की क्रमबद्ध श्रृङ्खला उपस्थित करके लेखक इस परिणाम पर पहुँचाते हैं कि हमें किसी भी अवस्था अथवा परिस्थिति में निराश होने की आवश्यकता नहीं है। अनेक स्थलों पर विचारों की अभिव्यक्ति ऐसी सुन्दर भाषा तथा शैली में हुई है कि वे अनायास हृदयपटल पर अंकित हो जाते हैं। पुस्तक का यह तृतीय संस्करण है, जिससे इसकी लोकप्रियता का पता चलता है। पुस्तक में प्रूफ़-सम्बन्धी अशुद्धियों की ओर प्रकाशक महोदय को ध्यान देना चाहिए।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

वर्ग नं० १७ का नतीजा

इस बार दो प्रतियोगियों ने शुद्ध पूर्ति भेजी और ७ प्रतियोगियों ने १ अशुद्धि की। पुरस्कार नीचे लिखे अनुसार बाँटा गया—

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित दो व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १५०) मिला।

(१) सरस्वतीदेवी, ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।

(२) सत्यानन्द तिवारी, कुंजनिवास, जसेडी (बिहार) ई० आई० आर०।

द्वितीय पुरस्कार ११९) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १७) मिला।

(१) श्यामा अग्रवाल c/o डा० जी० पी० अग्रवाल, ४६ गाड़ीवानटोला, इलाहाबाद।
(२) शैलकुमारी c/o ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।
(३) लक्ष्मीदेवी c/o ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।
(४) श्रीकृष्णचन्द्र, पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ।
(५) सुशीलादेवी गुप्ता, तहसीलदारभवन, तलाक़महल, कानपुर।
(६) भवानीप्रसाद बी० ए०, अजयगढ़ स्टेट (सी० आई०)।
(७) कैलाशचन्द्र, ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।

तृतीय पुरस्कार ४४) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २२ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २) मिला।

(१) विद्यावतीदेवी गुप्त c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६ पानदरीबा, इलाहाबाद।

(२) कैलाशचन्द्र जैन, ब्रह्मनान मुहल्ला, बिजनौर।

(३) श्रीमती देवी जैन 'चतुर' नाथूराम डोंगरीय, जैन-पाठशाला, बिजनौर।

(४) हरिनाथ मिश्र c/o श्रीमती सावित्रीदेवी, ७८३ कटरा-परेड, इलाहाबाद।

(५) सरस्वती देवी, १३९, गाड़ीवान टोला, इला-

(६) मोहनकिशन c/o बा० रघुनन्दनप्रसाद सेठ, शीतलागली, आगरा।

(७) पं० सम्पतराम नागर, गनेशगंज, लखनऊ।

(८) मिश्रीलाल शर्मा c/o पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, मदन मोहन फ़ारमेसी, धनकुट्टी, कानपुर।

(९) एस० एल० गर्ग c/o ला० नहनेराम अग्रवाल, बाग़ मुजफ़्फ़र ख़ाँ, आगरा।

(१०) मिसेज़ रघुनन्दनप्रसाद सेठ c/o बा० रघुन-

(११) गोपीनाथ आर्य, गली लखेरान, बरेली।

(१२) मुंशी श्यामलाल c/o बा० हरनन्दनप्रसाद सेठ, शीतलागली, आगरा।

(१३) श्री सरस्वती देवी, छत्रधारी भगत, सत्यनारायन राम, पो० आ० बलिया।

(१४) व्रजेन्द्रकुमार ठाकुर c/o हेडमास्टर, मारवाड़ी हाई स्कूल। (डिब्रूगढ़ आसाम)

(१५) केदारनाथ गुप्त क्लास ७, दारागंज हाई स्कूल, इलाहाबाद।

(१६) जगदीशप्रसाद c/o बा० भृगुनाथसहाय, अकाउन्टैन्ट डिस्ट्रिक्टबोर्ड, खीरी।

(१७) पी० एस० बाजपेयी, स्टेशन फ़तेहपुर, फ़तेहपुर।

(१८) कुमारी सुशीला यादव c/o चौधरी सूरतसिंह, पी० सी० एस०, रेवन्यू असिस्टेन्ट, गुरदासपुर।

(१९) सावित्री देवी c/o फारेस्ट ट्रेजर, रामपुर बाशहर, शिमला हिल।

(२०) गुरुसरन c/o श्रीकृष्ण चन्द्र, पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ।

(२१) राधादेवी वर्मा c/o डी० पी० वर्मा, इंजीनियर लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

(२२) मिसेज़ श्रीकृष्णचन्द्र c/o श्रीकृष्णचन्द्र, पी० एम० जी० आफ़िस लखनऊ।

चतुर्थ पुरस्कार ३७) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) वीडीलाल, ओरियन्टल स्कूल, सीतामढ़ी।

(२) भगवानदास भार्गव c/o रामप्रसाद वर्मा, अ० म० प्रायमरी स्कूल, पँचमढ़ी सी० पी०

(३) भँवर विश्वनाथसिंह कक्षा ६ c/o कंवर शेरसिंह एम० ए०, एल-एल० बी०, जज, श्री गंगानगर (बीकानेर)

(४) सुखवासीलाल द्विवेदी c/o बा० शेरसिंह एम० ए०, एल-एल० बी०, डिस्ट्रिक्ट जज, श्री गंगानगर (बीकानेर स्टेट)।

(५) मिसेज़ मोहनकिशन c/o बा० रघुनन्दनप्रसाद सेठ, शीतलागली, आगरा।

(६) श्री० कमलादेवी c/o बा० हरनन्दनप्रसाद सेठ, शीतलागली, आगरा।

(७) शीतलाप्रसाद c/o बा० हरनन्दनप्रसाद सेठ, शीतलागली, अगरा।

(८) गौरीशंकर c/o बा० हरनन्दनप्रसाद सेठ, शीतलागली, आगरा।

(९) रामप्रकाश पाण्डे कक्षा ६, गवर्नमेन्ट, इंटरमीडियट कालेज, इलाहाबाद यू० पी०।

(१०) पंडित बद्रीप्रसाद शर्मा, मु० वीरपुर स्टेट, पो० करछना, इलाहाबाद।

(११) श्री रामचन्द्र अग्रवाल बी० ए० बी० टी०, हेड मास्टर, डी० बी० स्कूल रत्तिया, हिसार।

(१२) मिसेज़ एम० बी० लाल c/o श्रीसरर एम०

(१३) राधाकृष्ण c/o हरीकृष्ण कपूर, कैंएट बोर्डस आफ़िस, आगरा।

(१४) दुर्गाप्रसाद वर्मा, इंजीनियर, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

(१५) शचीदेवी c/o मु० अम्बिकाचरण १६। ३२ बीबी हटिया, बनारस सिटी।

(१६) मोहनदास, नन्दव योलियार c/o मु० अम्बिकाचरण, १६। ३२ बीबी हटिया, बनारस सिटी।

(१७) रामचन्द्र सुल्लेर, सेकण्ड मास्टर, स्टेट हाई स्कूल, अजैगढ़, सी० आई०।

(१८) सतीशचन्द्र c/o श्रीकृष्णचन्द्र, पी० यम० जी० आफ़िस, लखनऊ।

(१९) कु० सावित्रीदेवी नायक c/o राधिकाप्रसाद नायक, गवर्नमेन्ट वीविंग एण्ड क्लाथ प्रिंटिंग स्कूल, बुलंदशहर।

(२०) राधिकाप्रसाद नायक, गवर्नमेण्ट वीविंग एण्ड क्लाथ प्रिंटिंग स्कूल, बुलंदशहर।

(२१) अखिलेश्वरप्रसाद, ओरियन्टल स्कूल, सीतामढ़ी।

(२२) विनोदकुमार c/o श्री कृष्णचन्द्र, पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ।

(२३) मिसेज़ मुरारीलाल अग्रवाल c/o जगदीश-भण्डार कूचा सीताराम, बरेली।

(२४) मिसेज़ गोपाललाल पाण्डे c/o दामोदरस्वरूप

(२५) बिट्टोदेवी c/o डा० पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, मदनमोहन फार्मेसी, धनकुट्टी, कानपुर ।

(२६) सरस्वती कुमारी गुप्त c/o बा० रमाकान्त जी रईस, आलमगीरगंज, बरेली, (यू० पी०)

(२७) रामनिवास शर्मा, नं० ५७ पँच कुईयाँ रोड, नई देहली ।

(२८) हरिहरप्रसाद c/o जानकीप्रसाद मूलचन्द, पो० सीतामढ़ी ।

(२९) एस० आर० चोपड़ा, बाग़ मुज़फ्फ़र ख़ाँ, आगरा ।

(३०) मूलचन्द मेहरा, ओवरसियर, सीतलागली, छत्ताधोन, आगरा ।

(३१) गोपाललाल पाण्डे c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६ पानदरीबा, इलाहाबाद ।

(३२) मिसेज़ चन्द्रपाल शुक्ल c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६ पानदरीबा, इलाहाबाद ।

(३३) ओंकारनाथ गुप्त, ७९ पानदरीबा, इलाहाबाद ।

(३४) लक्ष्मीदेवी, नया पूरा उर्फ़ रविसेनगंज, मकान नं० २१, इलाहाबाद ।

(३५) रामनारायणलाल गुप्त c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६ पानदरीबा, इलाहाबाद ।

(३६) दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६, पानदरीबा, इलाहाबाद ।

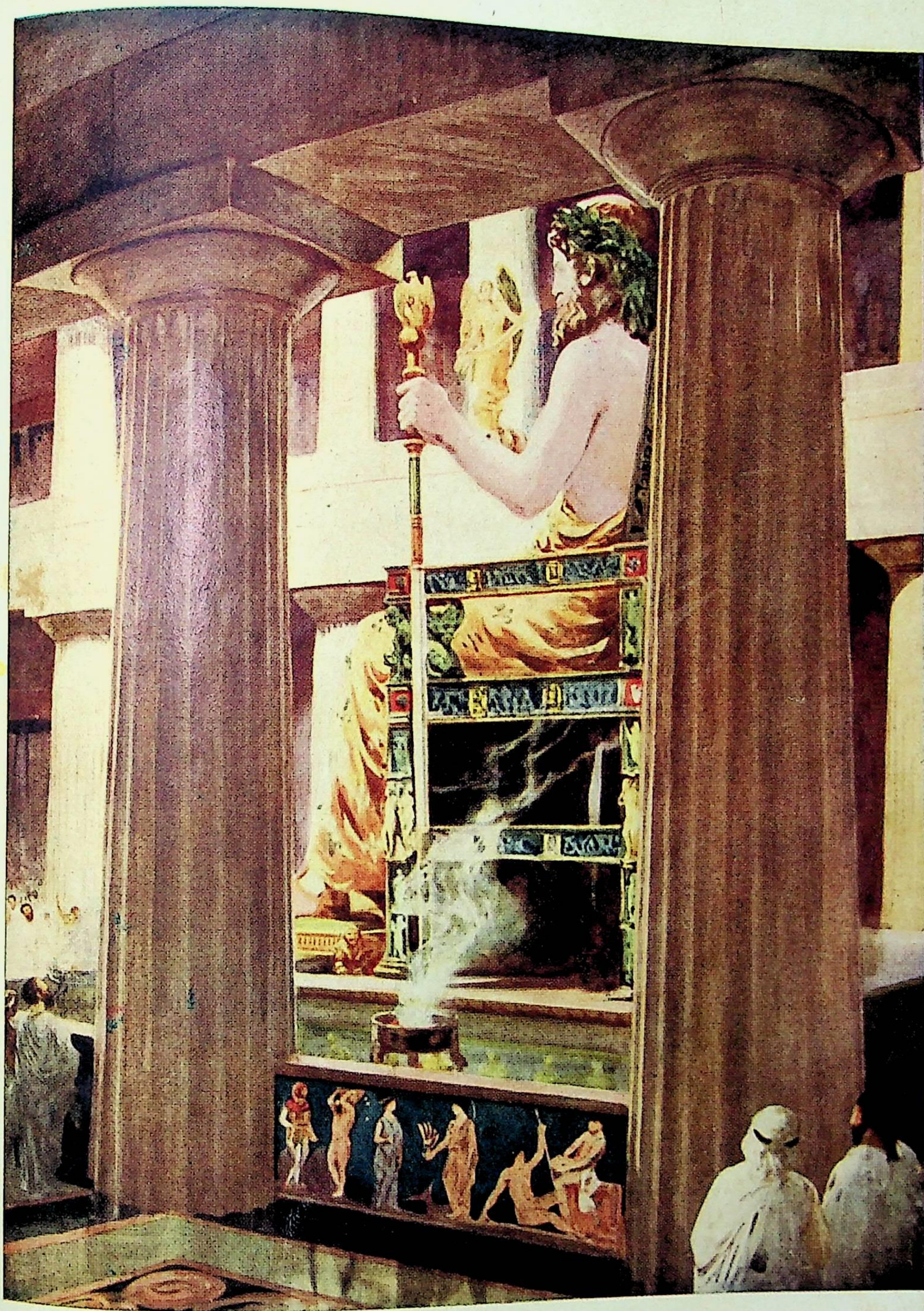
(३७) रामेश्वरप्रसाद तेली, बड़ा बघाड़ा, कैण्टोन्मैंट, इलाहाबाद ।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २५ जनवरी को भेज दिये जायँगे ।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा ।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं ।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम २ के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे ।



[redacted]

वर्ग नं० १७ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० १७ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ______

पता ______

______

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

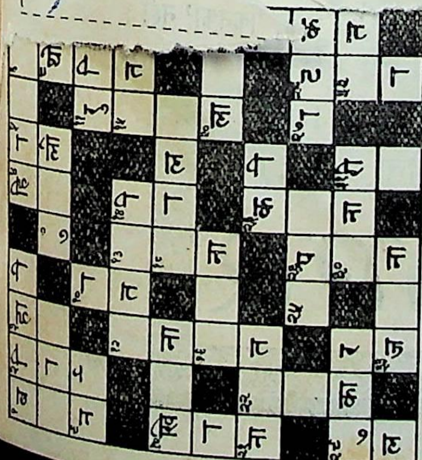
नोट—पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० १८

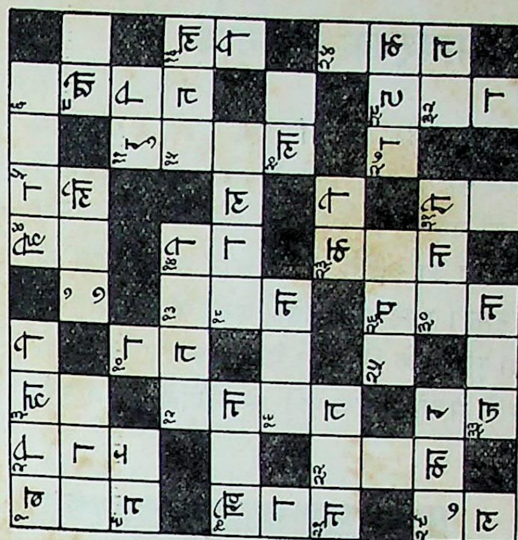
इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद



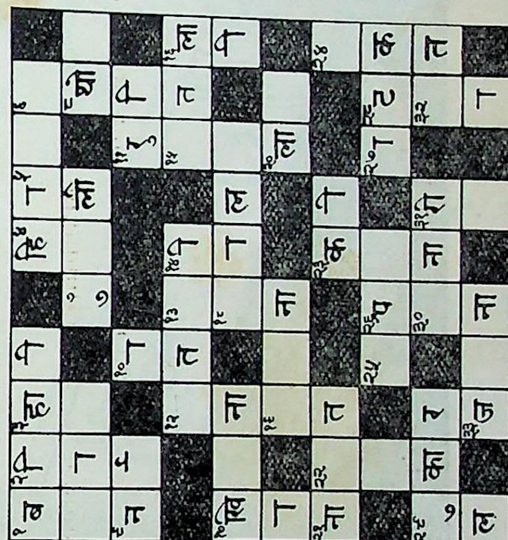
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग

वर्ग नं० १८ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

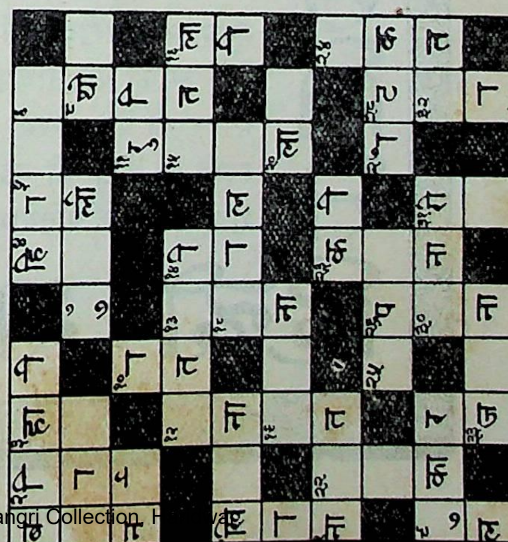


वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

इस लाइन से काटिए



वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



नाम ______ पता ______

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ १०२ पर देखिए।

यानी सहायक या मदद जैसा वे चाहते हों जिस
पद ग्रहण किया है उसके मुवाफ़िक कोई
ायता नहीं मिल रही हो तो वे निश्चय ही
या पद से अलग हो जायँगे। इसलिए 'सहकार'
नी नहीं काट सकता।

२—खटाना-हटाना

'हटाना' भी, कोई बुरा नहीं है, परंतु 'खटाना'
समझना भारी भूल है। 'खटाना' के अर्थ हुए
ज़ारा होना। लड़नेवाली यानी झगड़ालू स्त्रियों का
कठिन होता है अस्तु, 'खटाना' ही शब्द शुद्ध है।

३—मटका-लटका

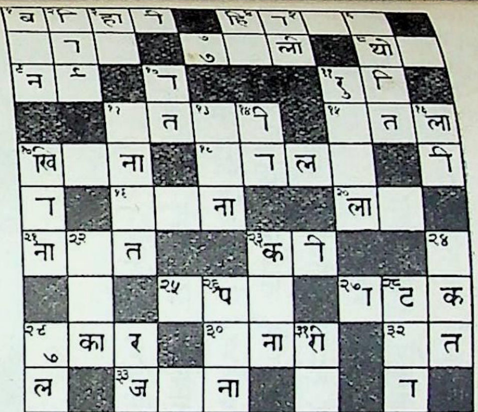
र्ता ने 'मटका' शब्द को भी अशुद्ध माना
अनेक शब्द जैसे—लटका, भटका, अटका,
का, सटका इत्यादि बनाने को लोग बना सकते
का' शब्द शुद्ध है। प्रश्नकर्ता ने 'मटका' का
के घड़े से लगाया है। ठीक है। परन्तु यहाँ तो
अर्थ 'मटक' के भावों से यानी 'मटकना' से
ा गया है न कि मिट्टी के घड़े से। 'लटका' तो
ं ही नहीं आता। हाँ 'मटका' समझ में भी
शुद्ध भी है।

४—किरका-किनका

ने 'किनका' को शुद्ध समझा है। किनका
हलवे को भी कहते हैं। इसके लिए तो
उठाना पड़ेगा। ग़रीबों को कहाँ मिले? परन्तु
दाने या चावल के खुद्दी के लिए कष्ट उठाना
जँचता। 'किरका' ख़ूब जँचता है, क्योंकि
नने लगती हैं तब बहुतों को कष्ट उठाना
[illegible] है, 'किनका' नहीं।







अपनी याददाश्त के लिए वर्ग १८ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

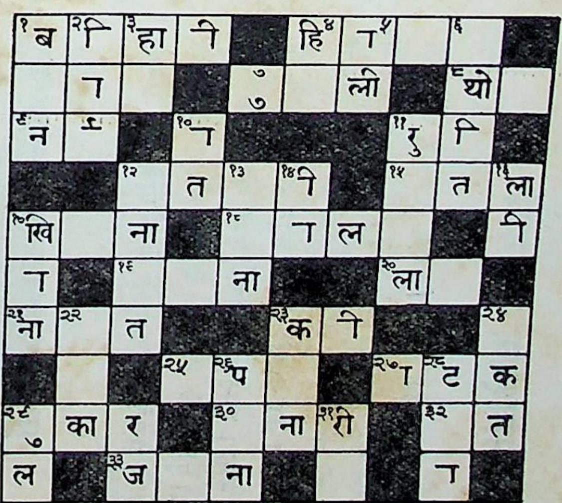
वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ||)



वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ||)



वर्ग नं० १८ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



नाम——————————पता——————————

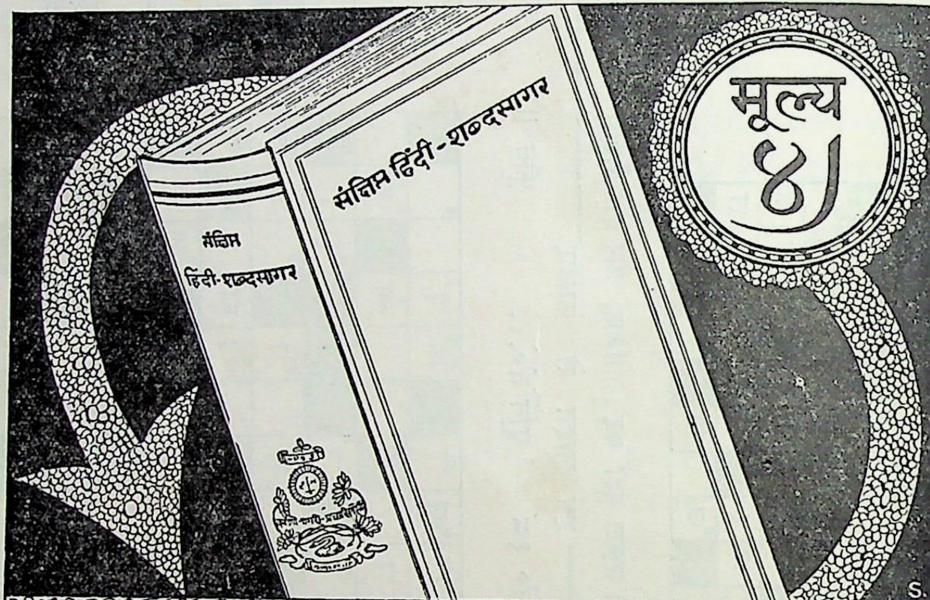
नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ १०२ पर देखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० १८ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर १८ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २७ जनवरी सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।



भारतीय ओलम्पिक

लेखक, श्रीयुत हरिदास माणिक

जीवित जातियाँ खेलों से बड़ा अनुराग रखती हैं। हमारा भारत तो इनका क्रीड़ाक्षेत्र ही रहा है। प्राचीन काल में देश-देशान्तर के लोग भारत में जमा होकर अपने बल-वीर्य का परिचय देते रहते थे। रामायण-महाभारत में नाना प्रकार के खेलों का वर्णन मिलता है। भगवान् कृष्ण का कालीदह में कूदकर गेंद को निकाल लाना एक आश्चर्य-जनक खेल था। भीम और जरासन्ध की कुश्ती की कथा कौन नहीं जानता है।

दौड़, तैराकी तथा कुश्ती में भारत संसार का शिरोमणि है। अभी गत वर्ष जर्मनी में जो ओलम्पिक खेल हुए थे उनमें भारत ने भी कई विषयों में बाज़ी मारी थी। हाकी में तो वह सर्वप्रथम रहा। इसके अतिरिक्त वह अन्य खेलों में भी पीछे नहीं रहा। अमरावती की हनुमान-व्यायाम-शाला का मालखम्भ तथा अन्य भारतीय खेलों का जो प्रदर्शन जर्मनी में हुआ था उसको देखकर योरपीय खेलाड़ियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी।

यह सब होते हुए भी भारत को अभी खेल-कूद के सम्बन्ध में बहुत कुछ करना है। प्रयत्न जारी है, पर उसकी रफ़्तार बहुत धीमी है। हाकी की नाईं बंगाल वाटरपोलो में दुनिया में सबको हरा सकता है। पर गत वर्ष वह जर्मनी के ओलम्पिक में इस कारण नहीं शामिल हो सका कि उसके पास काफ़ी धन नहीं था। अगले ओलम्पिक टूर्नामेंट में शरीक़ होने के लिए वह अभी से प्रयत्न कर रहा है।

भारत में भी ओलम्पिक खेल कई वर्षों से हो रहे हैं। अब आठवाँ अखिल भारतवर्षीय ओलम्पिक खेल कलकत्ता के तल्लापार्क में होने जा रहा है। भारतीय ओलम्पिक के मंत्री श्री एन० अहमद ने इस सम्बन्ध में जो सूचना निकाली है उसे हम यहाँ देते हैं। आशा है, इससे भारत की जनता कुछ सजग होकर इसकी ओर अपना ध्यान देगी। यह आठवाँ ओलम्पिक खेल १९३८ ई० के फ़रवरी मास में होगा।

यदि सम्भव हो सका तो आर्गनाइज़िंग कमिटी तल्लापार्क के पास एक ओलम्पिक गाँव बसावेगी, जहाँ स्त्री व पुरुष खेलाड़ी आराम से ठहरेंगे। शहर के बीच में यह स्थान ऐसे मौक़े पर है कि वहाँ आधी रात तक मोटर-लारी व गाड़ियाँ आसानी से मिल सकती हैं। अधिकारियों से इस बात की भी लिखापढ़ी हो रही है कि कलकत्ता के प्रत्येक स्टेशन से ट्राम ओलम्पिक गाँवों को दौड़ सके। जहाँ तक हो सकेगा, सब प्रकार की सुविधाओं की वहाँ व्यवस्था की जायगी।

इसके अतिरिक्त खेल में भाग लेनेवाले खेलाड़ियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जायगा। रात्रि में अभ्यास के लिए फ़्लड लाइट की भी व्यवस्था की जायगी।

संसार के नामी नामी तैराकों के सुभीते के लिए आस-पास के तालाबों में तैरने की व्यवस्था की जायगी। यदि सम्भव हुआ तो उसमें नाप के मीटर पानी पर अंकित किये जायँगे। इन्हीं तालाबों में तैराकी के सब खेल होंगे तथा वाटरपोलो की भी व्यवस्था होगी।

ओलम्पिक गाँव में पोस्टआफ़िस, टेलीफोन व रेडियो की भी व्यवस्था की जायगी।

सारे खेल सम्भवतः फ़रवरी के पहले सप्ताह में होंगे और यह आशा की जाती है कि भारतीय देशी राज्यों के तथा फ़ौजों व प्रांतीय असोसिएशनों के सभी क्लब उसमें भाग लेंगे। निम्नलिखित खेल-कूद होंगे—

मैदानी खेल (पुरुषों के लिए)

१०० गज़ की दौड़
२०० ,, ,,
४०० ,, ,,
८०० ,, ,,
१,५०० ,, ,,
५,००० ,, ,,
१०,००० ,, ,,

मोराथेन रेस—४२, १९५ मीटर या २६ मील व ३८५ गज़

स्टीपलीचेन—३००० गज़

हडल रेस—४०० गज़

दौड़कर लम्बी कुदान

पोल वाल्ट

डिस्कस फेंकना

हथौड़े का फेंकना
रिले रेस—४०० गज़
सड़क पर टहलने की रेस—४०,००० गज़
साइकिल ट्रेक रेस—१०,००० गज़
हर्डल रेस—११०
दौड़कर ऊँची कूद
दौड़कर—(हापस्टेप और कूद)
जेवलिन का फेंकना
गोला फेंकना
डिकाथलोन
रिले रेस—४ × ४०० मीटर
साइकिल ट्रेक रेस—३०,००० मीटर
साइकिल रोड रेस—१०० किलोमीटर
मैदानी खेल (स्त्रियों के लिए)
१०० गज़ की दौड़
२०० " " दौड़
८० " " (हर्डल रेस)
रिले रेस—४ × १००
ऊँची कूद दौड़कर
डिस्कस का फेंकना
जेवलिन का फेंकना

कुश्ती

बैंटम वेट	... ...	१२३ पाउंड तक	...
फ़ेदर	... ...	१३४ ...	...
लाइट	... ...	१४५ ...	...
वेल्टर	... ...	१५८ ...	...
मिडिल	... ...	१७४ ...	...
लाइट हेवी	... ...	१९१ ...	...
हेवी	... ...	१९१ के ऊपर	...

अन्य प्रतिद्वन्द्वितायें

बास्केट बाल
वालीबाल—(एक ओर)

नेशनल गेम

कबड्डी (व्यूक रूल के मुताबिक़)
या हा-डू - डू - डू

नुमाइशी खेल

स्त्रियों का बास्केट बाल

तैराकी (मर्दों की)

१०० गज़ की दौड़ फ़्री स्टाइल
१०० " " उलटा तैरना व बैक स्ट्रोक
२०० " " ब्रेस्ट स्ट्रोक (मल्लाही)
४०० " " फ़्री स्टाइल ...
१,५०० " " फ़्री स्टाइल ...
कूदना - (३ज़रूरी व २ अपनी इच्छा पर)

लोबोर्ड या स्प्रिंग बोर्ड १ मीटर

(ज़रूरी) दौड़कर हेडर फ़ारवर्ड (आगे)
मिडिल बोर्ड व स्प्रिंग बोर्ड
३ मीटर (ज़रूरी) बैकवर्ड (पीछे) स्प्रिंग
फ़ारवर्ड (आगे) कूदना

हाई बोर्ड व टाप (सबसे ऊँचा) बोर्ड

खड़े होकर हेडर—फ़ारवर्ड आगे (स्वालो पोज़िशन)
रिले रेस—४ × २०० गज़ (फ़्री स्टाइल)
रिले रेस ३ × ३०० गज़
रिले १०० गज़ (फ़्री स्टाइल)
रिले " " (उलटा तैरकर)
रिले " " (ब्रेस्ट स्ट्रोक) मल्लाही
वाटरपोलो—पानी का फ़ुटबाल तैराकी (स्त्रियों की)
५० गज़ की दौड़ फ़्री स्टाइल
१०० " " फ़्री स्टाइल
१०० " " उलटा तैरना
२०० " " ब्रेस्ट स्ट्रोक
४०० " " फ़्री स्टाइल
कूदना अपनी इच्छा पर
रिले ४ × ५० गज़ (फ़्री स्टाइल)

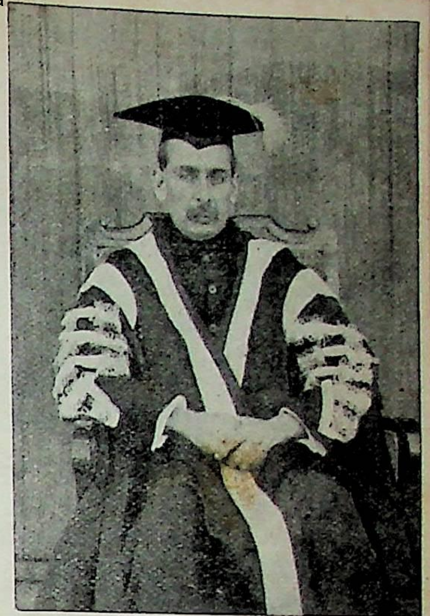
जातीय खेलों में हा-डू - डू - डू पहली बार स्त्रियों के लिए रक्खा गया है।

स्त्रियों के लिए बास्केट बाल का खेल नुमाइशी होगा और यदि दो-तीन प्रान्तों ने निम्नलिखित खेलों के रखने की स्वीकृति दे दी तो वे भी खेल रक्खे जायँगे (१) वज़न उठाना, (२) पेन्टाथ्लोन, (३) पुरुषों के लिए मुक्की, (४) स्त्रियों के लिए साइकिल रेस और (५) लम्बी कूद।

भारतीय ओलम्पिक ऐसोसियेशन शीघ्र ही दिल्ली में अपनी बैठक करेगा और यदि वहाँ यह निश्चित हो गया तो शीघ्र ही आगामी सिडनी तथा पेलेस्टाइन में होनेवाले खेलों में यह भाग लेगा।


सर सुन्दरलाल
(वाइस-चान्सलर १९१२-१९१७)


डाक्टर गंगानाथ झा
(वाइस-चान्सलर १९२३-१९३२)

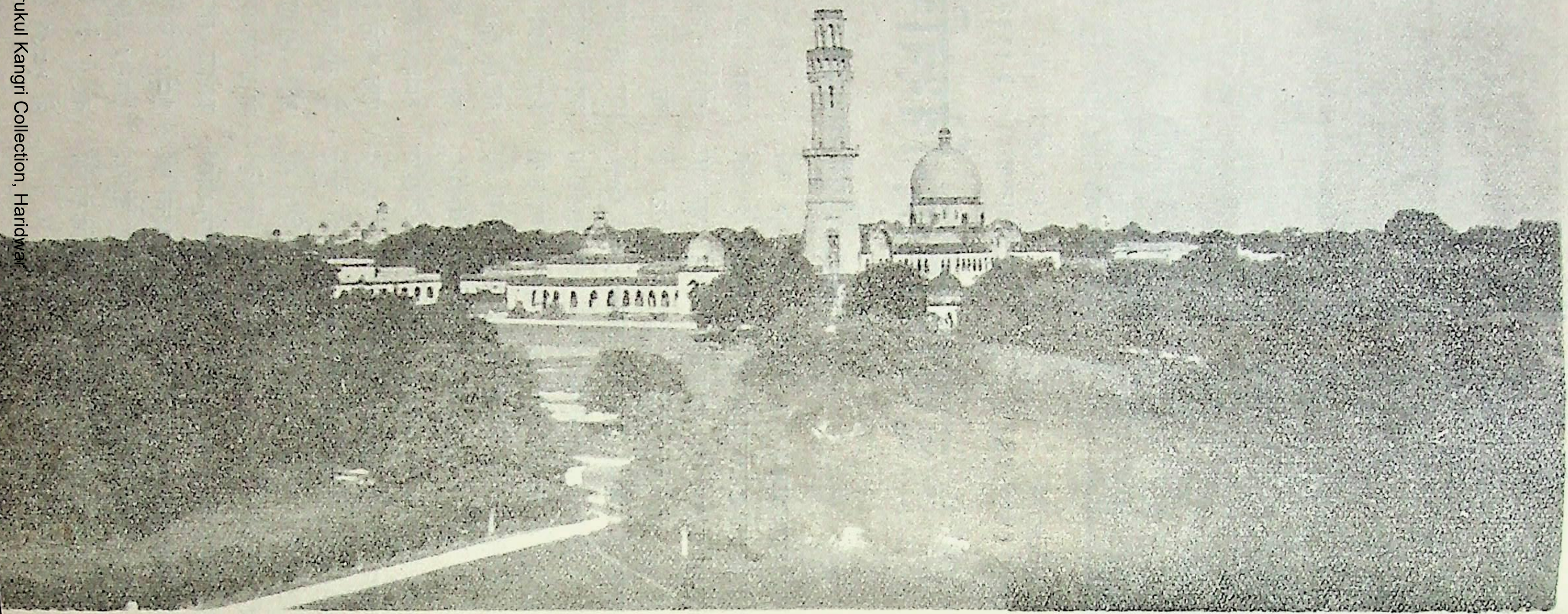

ंडित इक़बाल नारायण गुर्टू

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय

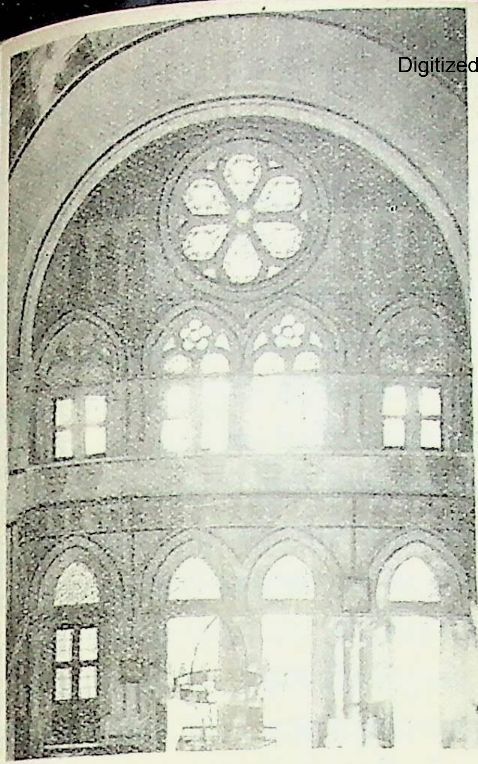
लेखक, श्रीयुत भगवानदास अवस्थी

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय को स्थापित हुए ५० वर्ष हो गये। इस उपलक्ष्य में गत १३ से १६ दिसम्बर तक इस विश्वविद्यालय की स्वर्णजयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई। इन पचास वर्षों में इस यूनिवर्सिटी ने कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, यह स्वर्ण-जयन्ती में सम्मिलित होनेवाले संसार के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों, वैज्ञानिकों और अन्य प्रमुख व्यक्तियों के नामों की लम्बी सूची से सहज ही अनुमान किया जा सकता है। पेरिस, आक्सफ़ोर्ड, जेनेवा, ग्लासगो, एडिनबरा, हावर्ड, शिकागो, न्यूयार्क आदि अन्य देशीय और कलकत्ता, बम्बई, मदरास, लाहौर, हैदराबाद आदि भारतीय विश्वविद्यालयों ने इस अवसर पर अपनी शुभ कामनायें भेजी थीं। इनमें से अधिकांश के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। अमेरिकन फिलासफ़िकल सोसाइटी, फ़िलाडेल्फ़िया और रायल सोसाइटी, लन्दन, जैसी विद्वत्-समितियों ने भी अपनी शुभ कामनायें भेजी थीं। सबसे महत्त्व की बात यह थी कि विश्वविद्यालय के प्रत्येक वर्ष के जीवित ग्रेजुएटों में से एक एक उस वर्ष के प्रतिनिधि-स्वरूप निमंत्रित किये गये थे।

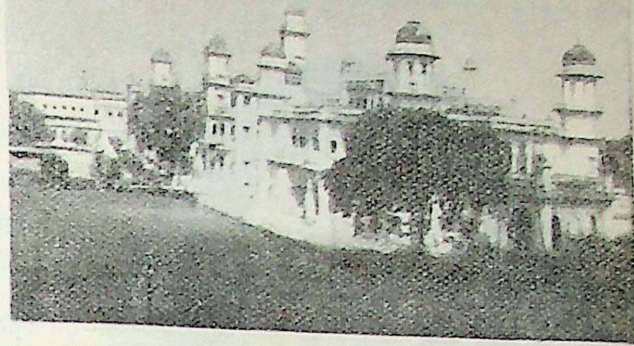
इस अवसर पर प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा-द्वारा लिखा गया विश्वविद्यालय का एक सुन्दर छपा हुआ अप-टु-डेट सचित्र इतिहास भी प्रकाशित किया गया है। इस इतिहास के देखने से ज्ञात होता है कि भारत में अँगरेज़ी-शिक्षा का श्रीगणेश सन् १७९२ ईसवी में हुआ था। पहले-पहल अँगरेज़ी के शिक्षक विलायत से भेजे गये थे। उन दिनों लोगों में अँगरेज़ी सीखने का इतना अधिक उत्साह था कि सन् १८२३ में राजा राममोहन राय ने संस्कृत-शिक्षा पर किये जानेवाले सरकारी व्यय का विरोध किया था। १८३५ ईसवी में लार्ड विलियम बेंटिंक ने एक प्रस्ताव पास करते हुए कहा था कि ब्रिटिश सरकार को भारतीयों में योरपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार करना चाहिए और शिक्षा के लिए निर्धारित समस्त धन अँगरेज़ी-शिक्षा के प्रचार में ही लगाना चाहिए। बनारस का संस्कृत-कालेज लार्ड कार्नवालिस ने १७९१ में खोला था। १८४४ में यह एंग्लो-संस्कृत कालेज बना दिया गया। १८२४ ईसवी से १८२७ तक में आगरा, दिल्ली और बरेली में अँगरेज़ी के कालेज खोले गये। १८५४ ईसवी से १८७१ ईसवी तक इस प्रान्त में इस प्रकार चार कालेज



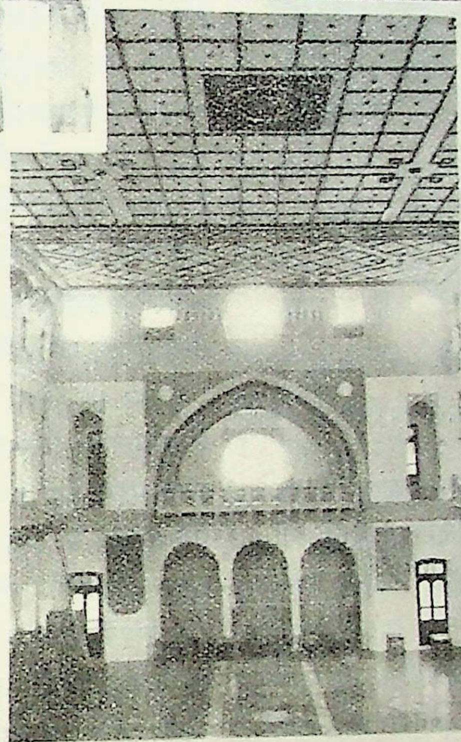
म्योर कालेज दूर पर सेनेट हाउस है ।



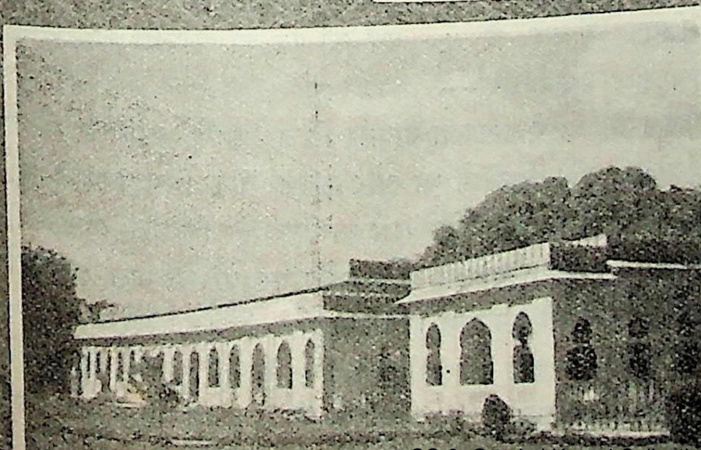
विजयानगरम हाल के भीतर का दृश्य



विश्वविद्यालय



सिनेट हाल के भीतर





म्योर कालेज दूर पर सेनेट हाउस है।



[पंडित मदनमोहन मालवीय जिन्होंने हिन्दी में मौखिक दीक्षान्त भाषण कर एक नवीन परम्परा स्थापित की।]

थे और उनका सम्बन्ध कलकत्ता-विश्वविद्यालय से था। ग़दर के दिनों में इनकी अवस्था शोचनीय होगई थी। १८७० ईसवी में इलाहाबाद में एक केन्द्रीय कालेज खोलने की चर्चा उठी। उसी के फल-स्वरूप १८७३ ईसवी में म्योर-सेंट्रल-कालेज की नींव पड़ी। सन् १८८६ ईसवी में यह कालेज बनकर तैयार होगया और लार्ड डफ़रिन ने जो उस समय वाइसराय थे, बाक़ायदा इसका उद्घाटन किया। इलाहाबाद में एक केन्द्रीय कालेज खोलने की चर्चा के साथ साथ उत्तर-भारत के लिए एक विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा भी उठी थी। विश्वविद्यालय की स्थापना १८८७ ईसवी में हुई। सन् १८८९ ईसवी में बी० ए० और एल-एल० बी० की प्रथम बार परीक्षायें यहाँ ली गईं। १८९० ईसवी में इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एम० ए० तक शिक्षा देने-वाले कालेज लखनऊ, बनारस, अलीगढ़, आगरा, अजमेर, जयपुर, अलमोड़ा, ग्वालियर और मंसूरी आदि में थे। सन् १८८९ ईसवी में एंट्रेंस की जो प्रथम परीक्षा हुई थी उसमें गवर्नमेंट कालेज, अजमेर, महेन्द्र-कालेज पटियाला और बम्बई, अहमदाबाद जैसे दूर के कालेजों के विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। तब इस विश्वविद्यालय के क्षेत्र की सीमा निश्चित नहीं थी। सन् १९०४ में एक क़ानून बना और इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की सीमा निर्धारित कर दी गई। संयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, अजमेर-मेरवाड़ा, राजपूताना और मध्य-भारत की रियासतों के स्कूल और कालेज इसकी सीमा के अन्दर थे। यह सीमा लगभग ४,५२,८३० वर्ग मील थी, जिसकी जन-संख्या ८,०९,४४,४३२ थी। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय का सीमा-विस्तार सन् १९१५ से कम होना आरम्भ हुआ, जब बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सन् १९२० में लखनऊ-विश्वविद्यालय और अलीगढ़-विश्वविद्यालय अस्तित्व में आये। १९२३ में नागपुर और १९२७ में आगरा के विश्वविद्यालय स्थापित हुए। सन् १९२७ के बाद म्योर-सेन्ट्रल-कालेज, ईविङ्ग क्रिश्चियन कालेज और कायस्थ-पाठशाला-कालेज को छोड़ कर शेष सब सम्बद्धित संस्थायें इन पाँचों विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत हो गईं।

सन् १९२१ में सरकार ने एक क़ानून बनाया, जिसके अनुसार इस विश्वविद्यालय का पुनः संगठन किया गया। इसके पहले यह विश्वविद्यालय सिर्फ़ परीक्षायें लेता था। नये संगठन के अनुसार यह शिक्षा की व्यवस्था भी करने लगा और इसके वर्तमान विभिन्न विभाग विकसित हुए।

विश्वविद्यालय की इस स्वर्णजयंती के अवसर पर सबसे महत्त्व की बात यह हुई कि इसके ५० वर्ष के जीवन में प्रथम बार दीक्षान्त भाषण हिन्दी में किया गया। इस कार्य के लिए महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी निमंत्रित किये गये थे। आपने अपने भाषण में अब से ५० वर्ष की पूर्व की अवस्था का उल्लेख इस प्रकार किया—

मेरा पहला अवसर शिक्षा प्राप्त करने का कलकत्ता-यूनिवर्सिटी में था और उसके बाद इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी में। ईश्वर को परम धन्यवाद है कि इस यूनिवर्सिटी की गोल्डेन जुबिली के अवसर पर हर्ष में भाग लेने के लिए मैं भी उपस्थित हो सका हूँ।

इस यूनिवर्सिटी का पिछले ५० वर्ष का इतिहास बहुत उज्ज्वल है। इन ५० वर्षों में इसने जो काम किया है वह बहुत प्रशंसनीय है और उसे आप सब जानते हैं।

५० वर्ष पहले इस नगर में बहुत थोड़ी पाठशालायें थीं। जिस पाठशाला में मैंने शिक्षा आरम्भ की थी उसका नाम धर्मज्ञानोपदेश-पाठशाला था और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि वह पाठशाला भी अभी तक चल रही है। इस पाठशाला के स्थापित करनेवाले पण्डित हरदेव जी थे। वे बड़े त्यागी और सन्त पुरुष थे। भिक्षा माँगकर लड़कों को पढ़ाते थे और ग़रीब विद्यार्थियों को भोजन भी देते थे। उनका संकल्प था कि अक्षर-पाठशाला स्थापित करूँ और इस उद्देश की पूर्ति उन्होंने की भी थी। हिन्दी और संस्कृत इसमें पढ़ाई जाती थी, जो अब तक पढ़ाई जाती है। उसके बाद यहाँ गवर्नमेंट स्कूल खुला, जो पहले इस समय के क्लाक टावर के पास चुंगी-घरवाले मकान में खोला गया था। आज उस दशा को देखते हुए मालूम होता है कि यहाँ शिक्षा में कितनी उन्नति हुई है। इस ५० साल में इस यूनिवर्सिटी ने महान् उन्नति की है और उसके लिए मैं इसे धन्यवाद देता हूँ। इस यूनिवर्सिटी ने सार्वजनिक जीवन में तथा जीवन के भिन्न भिन्न मार्गों में कितने ही काम करनेवाले हमें दिये हैं। इसने इस प्रान्त को कितने सावजनिक कार्यकर्ता, कितने जज, एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर, अध्यापक और इंजीनियर दिये हैं। इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी ने जितनी सफलता प्राप्त की है उसके लिए किसी भी यूनिवर्सिटी को गर्व हो सकता है। मैं तो इतना कहूँगा कि जितनी शिक्षा की उन्नति इस प्रान्त में हुई है उसके लिए मेरा रोम-रोम प्रसन्न है और इसमें जितना कार्य इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी ने किया है उसका मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

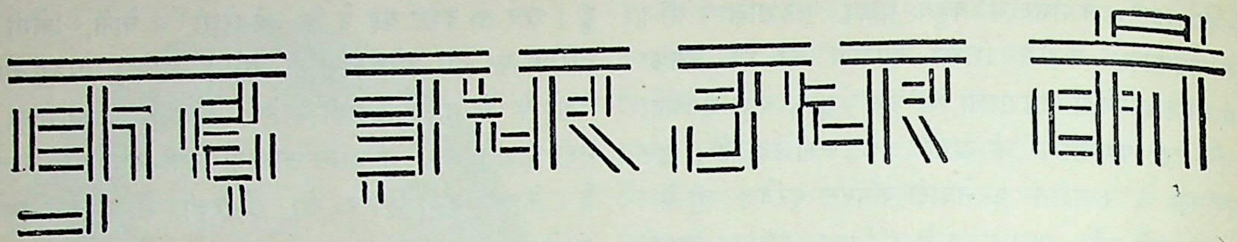
मातृभाषा-द्वारा शिक्षा देने की बात पर ज़ोर देते हुए मालवीय जी ने कहा—

कोई देश किसी अन्य देश की भाषा-द्वारा शिक्षा दे, यह नहीं हो सकता। इँग्लेंड में जर्मनी की भाषा-द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती और न जर्मनी इटली की भाषा-द्वारा शिक्षा देता है। सब देश अपनी मातृभाषा-द्वारा शिक्षा देते हैं। भारत में भी अब अँगरेज़ी-द्वारा शिक्षा देने के दिन गये। (हर्ष-ध्वनि) मुझको अँगरेज़ी-भाषा से वैर नहीं। मैं उसे प्यार करता हूँ। जब मैं ७ वर्ष का था तब से इसे पढ़ता हूँ। ज़्यादातर सभाओं में मैं अँगरेज़ी में ही बोला हूँ। अब तो दशा यह है कि अँगरेज़ी में बोले, लोगों ने तारीफ़ कर दी और ख़ुश हो गये। (हँसी) परन्तु अन्य देशों के लोग ऐसा नहीं करते। अँगरेज़ जर्मन-भाषा में नहीं बोलते और न जर्मन लोग अँगरेज़ी-भाषा में बोलते हैं। केवल हमीं ऐसे हैं जो अँगरेज़ी में बोलना पसन्द करते हैं। मगर जन्म-भर अँगरेज़ी में बोले और फिर भी अँगरेज़ी ठीक ठीक बोलना नहीं आया। (हँसी) मैं एक भी ऐसे हिन्दुस्तानी को नहीं जानता जो यह कह सकता हो कि हमें अँगरेज़ी पूरी आ गई। हम तो केवल नक़ल करते हैं। हमारे अँगरेज़ भाइयों को देखिए कि ३५ वर्ष तक हिन्दुस्तान में रह कर नौकरी की, पर वे अच्छी हिन्दी या उर्दू नहीं बोलते। (ज़ोरों की हँसी) वे हिन्दुस्तानी के पूर्ण ज्ञाता होने की चिन्ता नहीं करते। जापानी लोग अँगरेज़ी बोलना पसन्द नहीं करते। इसी तरह अन्य कोई भी देश विदेशी भाषा पसन्द नहीं करता।

देश में शीघ्र से शीघ्र शिक्षा-प्रचार कैसे हो इस सम्बन्ध में पूज्य मालवीय जी ने निम्नलिखित विचार प्रकट किया—

आज आपके सामने मैं एक स्कीम रख रहा हूँ। मेरा यह प्रस्ताव है और जिसे मैं सब वाइस-चान्सलरों के सामने रखना चाहता हूँ कि तीन महीने का समय शिक्षा-प्रचार के लिए निर्धारित किया जाय और इस समय में समस्त शिक्षित भारतीय चाहे वे गवर्नर हों, चीफ़ जस्टिस हों, मिनिस्टर हों, कोई बड़े से बड़े और छोटे से छोटे अफ़सर हों, सब यह प्रतिज्ञा कर लें कि किसी न किसी लड़के को अवश्य पढ़ावेंगे। अगर यह आन्दोलन आप शुरू कर देंगे तो देखेंगे कि कितना विद्या का प्रचार इन तीन महीनों में होता है। अविद्या और निरक्षरता दूर होगी, अगर सोलह आने नहीं, तो आठ आने, आठ आने नहीं, तो चार आने तो वह ज़रूर ही दूर होगी। इसलिए मैं सब सज्जनों से अनुरोध करूँगा कि वे इस आन्दोलन को उठावें।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की जयन्ती के समारोह में बड़ी धूमधाम रही और सारा महोत्सव पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसके लिए इसके प्रबन्धक सर्वथा बधाई के पात्र हैं।



जीवित महापुरुषों के हस्ताक्षर-संग्रह करने का आजकल संसार में सर्वत्र फ़ैशन है। हमारे देश में भी प्रायः देखा गया है कि सार्वजनिक सभाओं के अन्त में लड़के-लड़कियाँ अपनी कापियाँ लेकर लोकनेताओं के पास उनके हस्ताक्षर लेने पहुँच जाते हैं। यहाँ यह विनोद अभी बहुत सस्ता है, क्योंकि हस्ताक्षर-संग्रह करनेवालों को सिवा कापी ख़रीदने के और कुछ व्यय नहीं करना पड़ता। सिर्फ़ महात्मा गांधी एक ऐसे नेता हैं जिनके हस्ताक्षर के लिए कभी कभी लोगों को ५) तक व्यय करना पड़ता है। परन्तु पाश्चात्य देशों में यह विनोद बड़ा ख़र्चीला है। वहाँ संग्रह करनेवालों को एक एक हस्ताक्षर के लिए सैकड़ों रुपये तक व्यय करने पड़ते हैं। इँग्लेंड में किपलिङ्ग के हस्ताक्षर बहुत महँगे बिका करते थे। पर इसका पता स्वयं किपलिङ्ग को नहीं था। यह बात उसने कैसे जानी, इसकी एक मनोरञ्जक घटना है। वह एक पंसारी के यहाँ से जो चीज़ें ख़रीदता था उनके लिए उसके पास बैंक के 'चेक' भेज देता था। परन्तु वह पंसारी उन चेकों को बैंक में भुनाने के लिए कभी नहीं भेजता था। जब किपलिङ्ग का आश्चर्य बहुत बढ़ा तब उसने पंसारी से इसका कारण पूछा। पंसारी ने बताया कि वह उन चेकों को कहीं अधिक दामों पर हस्तात्तर-संग्रह करनेवालों के हाथ बेच देता है। आधुनिक लेखकों में बर्नार्ड शा के हस्ताक्षर बहुत महँगे बिकते हैं। शा के हस्ताक्षर मुफ़्त में प्राप्त करने के लिए एक सौदागर ने एक चाल चली थी। वह प्रतिवर्ष शा को एक सभा में भाषण करने के लिए निमन्त्रित करता था। पर शा इनकार कर देता था। इनकार की चिट्ठी के साथ सौदागर को शा का हस्ताक्षर मिल जाता था और उसे वह बेच देता था। इसकी ख़बर शा को बहुत देर बाद लगी। योरप के आधुनिक प्रसिद्ध पुरुषों में

कदाचित् इसका कारण यह है कि ये बहुत उदारतापूर्वक हस्ताक्षर देते हैं।

× × ×

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि वह काशी के स्वर्गीय साहित्यिक श्रीयुत जयशङ्करप्रसाद जी की एक विस्तृत और प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित करना चाहती है। इस सूझ के लिए इस सभा की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस अवसर पर सभा के ध्यान में हिन्दी-साहित्य का एक और अभाव आना चाहिए। वह यह कि हिन्दी में किसी भी श्रेष्ठ साहित्यकार का जीवन-वृत्तान्त स्वयं उसी के शब्दों में उपलब्ध नहीं है। द्विवेदी-युग के बहुत से दीपक अभी प्रकाशमान हैं। यदि वे एक एक करके बुझ गये तो यह कार्य फिर एक पीढ़ी पिछड़ जायगा। इसलिए क्या अच्छा हो कि सभा उन नर-रत्नों से उनका जीवन-वृत्तान्त लिखवाने की चेष्टा करे। नागरी-प्रचारिणी-सभा के मुख्य स्तम्भ बाबू श्यामसुन्दर दास जी अभी हमारे बीच में विद्यमान हैं। उन्होंने हज़ारों पृष्ठों के ग्रन्थ लिखे हैं और उनकी लेखन-शक्ति और प्रतिभा अभी क्षीण नहीं हुई है। सभा थोड़ा भी प्रयत्न करे तो वे अपनी एक बृहत् आत्मकथा लिख सकते हैं। वह आत्मकथा हिन्दी-साहित्य के एक युग का जीवित इतिहास होगी। इसी प्रकार महाकवि हरिऔध, पंडित रामचन्द्र शुक्ल से भी उनकी आत्मकथायें लिखाई जा सकती हैं। सुनते हैं, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने पूज्य द्विवेदी जी का जीवन-वृत्तान्त उनके पास बैठकर लिखने की इच्छा प्रकट की है। इसमें सन्देह नहीं, इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए चतुर्वेदी जी सर्वथा उपयुक्त हैं। आशा है, वे शीघ्र ही इस कार्य का श्रीगणेश करेंगे।

हमारे देश में दीर्घ आयुवाले मनुष्यों की इतनी कमी हो गई है कि जब कोई दीर्घजीवी मनुष्य मरता है तब वह सार्वजनिक चर्चा का विषय बन जाता है। हाल में सूरत के सबसे वृद्ध व्यक्ति श्री अब्दुलग़फ़्फ़ार का ११५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हुआ है। उनके सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में इस आशय का समाचार प्रकाशित हुआ है—

सूरत नगर की ओर शायद तमाम सूरत-ज़िले के वे सबसे वृद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने १८५७ के ग़दर के दृश्य देखे थे और वे उनका बड़ा सजीव वर्णन किया करते थे। ग़दर के समय उनकी अवस्था ३० वर्ष से कुछ अधिक थी।

यद्यपि वृद्धावस्था के कारण वे झुक गये थे, किन्तु कहा जाता है कि असेम्बली के अभी पिछले चुनाव में भी उन्होंने अपने मताधिकार का उपयोग किया था। अगले सप्ताह म्यूनिसिपैल्टी के चुनाव में भी उन्होंने वोट देने का वादा किया था।

१८९९ ई० के अकाल में एक अभाव-ग्रस्त मुसलमान स्त्री को उन्होंने अपने यहाँ शरण दिया था और बाद को वह उनकी पत्नी बन गई थी। अपनी इस विधवा की जीविका की ठीक व्यवस्था कर देने के बाद उन्होंने अपनी जायदाद एक मस्जिद के नाम वक़्फ़ कर दी थी। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है।

ऐसे दीर्घजीवी मनुष्यों को देखकर उनके आस-पास रहनेवाले लोग आश्चर्य करते हैं, पर उनसे बातें करके और उनकी जीवनचर्या का अध्ययन करके यह पता लगाने की कोशिश नहीं करते कि उनके दीर्घजीवन का क्या रहस्य है। जब तक इस प्रकार के प्रयत्न आरम्भ नहीं होंगे, हमारी आयु के वर्ष बढ़ नहीं सकेंगे।

× × ×

अमरीका के विद्वानों ने राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू के पास इस आशय का तार भेजा है कि भारत में जापानी माल का बहिष्कार किया जाय। इन विद्वानों के तार से यह स्पष्ट है कि अमरीका जैसा सबल राष्ट्र भी इस विपत्ति-काल में चीन की सक्रिय सहायता करने के लिए तैयार नहीं है। जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया था तब भी संसार में इटालियन माल के बहिष्कार की आवाज़ उठी थी। परन्तु उससे इटली का कुछ बिगड़ा नहीं था। और जिस अमरीका के विद्वानों ने यह तार भेजा है, कहते हैं, वह इटलीवालों के हाथ अन्त तक युद्ध-सामग्री बेचता रहा। आज-कल भारतवर्ष के बाज़ारों में जापानी माल की धूम है। उसके आगे अमेरिकन, जर्मन या अन्य योरपीय राष्ट्रों के मालों की खपत नहीं। इस आन्दोलन का यह अर्थ तो नहीं है कि भारतवासी जापानी माल का बहिष्कार करके अमरीकन माल ख़रीदने लगें। भारतवर्ष को स्वदेशी की उन्नति में जुटना चाहिए और उसे सब विदेशी मालों को चाहे वह अमरीकन हो चाहे जापानी, समान दृष्टि से देखना चाहिए।

× × ×

कलकत्ता और कराची में हवाई आक्रमण से बचने के उपाय सोचे जाने लगे हैं। इस समस्या पर विचार करने के लिए उन नगरों में प्रमुख नागरिकों और सरकारी अफ़सरों की बाक़ायदा मीटिंगें भी होने लगी हैं। कहा जाता है कि जनवरी में किसी रात को सारे कलकत्ते की रोशनी बुझा दी जायगी और उसी दिन से ऐसी व्यवस्था कर ली जायगी कि आवश्यकता पड़ने पर सारा शहर बात की बात में प्रकाशहीन बनाया जा सके। रात के अँधेरे में ऊपर से हवाई जहाज़ों-द्वारा कलकत्ते के चित्र भी लिये जायँगे ताकि यह मालूम हो सके कि आक्रमण-कारियों को रात में बम गिराने का कोई मौक़ा तो नहीं है। कराचीवाले और भी आगे बढ़े हैं। वहाँ शहर के विभिन्न भागों में ऐसे कमरे बनाये जाने की चर्चा चल रही है जहाँ ज़हरीली गैसें प्रवेश न पा सकें और गैस-मास्कों की भी व्यवस्था की बात सुनाई पड़ने लगी है। इन सब तैयारियों से यह तो सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस बार महायुद्ध होगा तो भारतवर्ष के भी बड़े बड़े शहरों और बन्दरगाहों पर हवाई आक्रमण होंगे। यदि इस प्रकार की चर्चा कुछ मास भी गरम रही तो भारतवर्ष के प्रत्येक नगर में गैस-मास्कों की अच्छी बिक्री होने लगेगी। जान पड़ता है इस बहाने भी भारत का काफ़ी धन विदेशों को जायगा।

× × ×

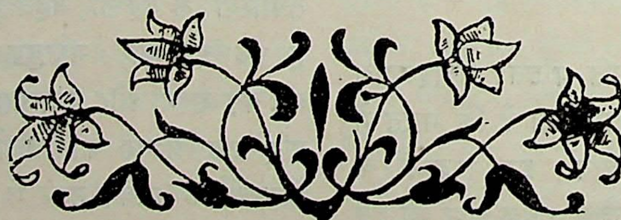
असोसिएटेड प्रेस को ज्ञात हुआ है कि मध्यप्रान्त की सरकार ने एक कमिटी बनाई है जो इस बात की जाँच करेगी कि चित्र-पट से बालक-बालिकाओं की शिक्षा में कितनी सहायता मिल सकती है। मध्य-प्रान्त की सरकार को कदाचित् पता नहीं है कि चित्रपटों-द्वारा सफल शिक्षा के प्रयोग विदेशों में हो चुके हैं और हो रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हीं चित्रपटों के ढङ्ग के भारत में भी भारतीय बालक-बालिकाओं की रुचि और ग्राह्य-शक्ति के अनुसार चित्रपट बनाये जायँ। पर यह काम व्यय-साध्य है और यह तब सम्भव हो सकता है जब समस्त प्रान्तीय सरकारें सम्मिलित रूप से इस प्रश्न पर विचार करें और कुछ व्यय करने के लिए भी तैयार हों।

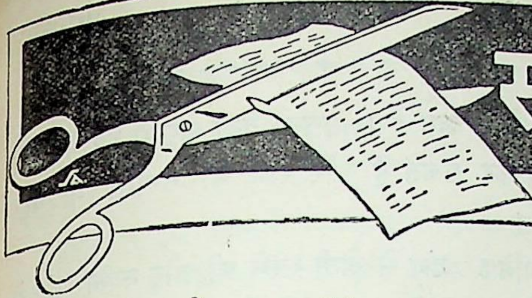
× × ×

भारतवर्ष में शिक्षा-सम्बन्धी जाँच-पड़ताल करने के लिए एक अँगरेज़ विशेषज्ञ दौरा कर रहे हैं। हाल में हमने समाचार-पत्रों में उनका एक वक्तव्य पढ़ा है, जिसमें उन्होंने कहा है कि भारतवर्ष में उच्च शिक्षा की जैसी उत्तम व्यवस्था है वैसी प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। इसका कारण कदाचित् यही है कि शिक्षा के अधिकारियों ने ग्रामों में घुसकर इस प्रश्न का अध्ययन करने की कभी कोशिश नहीं की। इस सम्बन्ध में हम यहाँ एक घटना का उल्लेख करते हैं। इसका ज़िक्र श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव ने अपने 'प्रयाग-प्रदीप' नामक हाल के प्रकाशित ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

ग़दर के कुछ दिन पीछे सर विलियम म्योर इस प्रांत के लेफ़्टिनेंट गवर्नर नियुक्त हुए। वे बड़े विद्वान् और शिक्षा-प्रेमी थे। उस समय गाँवों में लोग अपने लड़कों को सरकारी मदरसों में भेजने में बहुत संकोच करते थे। उनके प्रोत्साहन के लिए उक्त लाट साहब देहात में पैदल दौरा किया करते थे। किसी एक केंद्र में पड़ाव डाल कर आस-पास के स्कूलों के हज़ारों लड़के सड़क के किनारे मीलों तक बिठाये जाते थे। वे स्वयम् बीच में चलकर लड़कों से इतना सरल प्रश्न करते थे कि उनको उसके उत्तर देने में तनिक भी कठिनाई न हो। जैसे किसी से पूछते "क्यों जी! इलाहाबाद में कौन दो बड़ी नदियाँ मिलती हैं?" वह उत्तर देता, "गंगा और यमुना।" इस पर आप ख़ुश होकर कहते, "शाबाश तुम बड़े होशियार लड़के हो।" राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद उस समय वहाँ के स्कूलों के इंस्पेक्टर थे। वे साथ-साथ रहते थे। उनको आज्ञा होती थी कि ऐसे लड़कों का नाम इनाम पानेवालों में तुरन्त लिख लिया जाय। इसके अतिरिक्त बड़े दिन की छुट्टियों में थोड़े-थोड़े लड़के ज़िले भर के स्कूलों में बुलाकर "ख़ुसरो-बाग़" में इकट्ठे किये जाते थे और उनको मिठाई बाँटी जाती थी।

प्रान्तों में शिक्षा की समस्या तभी हल हो सकती है जब नये विधान के अनुसार बने हुए शिक्षा-मंत्री उसी उत्साह से पैदल गाँवों का दौरा करें और जनता की आवश्यकताओं को समझें।





सामयिक साहित्य

सरदार नर्मदाप्रसादसिंह का भाषण

गत १८-१९ दिसम्बर को भरवारी में इलाहाबाद-ज़िला राजनैतिक कान्फ़रेंस का जलसा धूम के साथ हुआ था। लगभग ४० हज़ार किसान इस जलसे में सम्मिलित हुए थे और राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री कैलाशनाथ काटजू आदि नेता भी उपस्थित हुए थे। इस कान्फ़रेंस में सरदार नर्मदाप्रसादसिंह जी ने सभापति के आसन से जो भाषण किया वह ज़िला ही नहीं प्रान्त तथा सारे देश की समस्याओं पर भी प्रकाश डालनेवाला है। यहाँ हम उक्त भाषण के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत करते हैं—

हमें देखना है कि हमारी नीति आज असली मार्ग से कुछ अलग तो नहीं जा रही है। आपको मालूम है कि हज़ारों किसान असहयोग-आन्दोलन में बेदख़ल किये गये थे। हज़ारों भाई उस आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपनी नौकरियों से पृथक् किये गये थे। सैकड़ों के लाइसेन्स छीन लिये गये थे। यह सब हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई बंद करने के लिए किया गया था।

लगान-बन्दी-आन्दोलन के समय जिन किसानों ने कांग्रेस का साथ दिया था और उस साथ देने के कारण अपनी ज़मीन से जो हाथ धो बैठे हैं, अब उन्हें अपनी ज़मीन वापस पाना उनका वास्तविक हक़ है। जो मुलाज़िम अपनी नौकरी से हाथ धो बैठे हैं उन्हें अब फिर से नौकरी भी मिलनी चाहिए। बम्बई की कांग्रेस-मिनिस्टरी जिन किसानों की ज़मीन आन्दोलन के समय अँगरेज़ी-सरकार-द्वारा नीलाम कर दी गई थी, आज पुनः उन्हीं किसानों को वापस दिला रही है। और इस उचित कार्य के लिए उसे हम आपकी ओर से बधाई देते हैं। हमें भी इस ओर बढ़ना चाहिए। अगर इसके लिए कोई नया क़ानून बनाना पड़े तो शीघ्र ही उसे बनाना चाहिए और सन् ३२ से सन् ३४ तक में बेदख़ल किये गये किसानों को उनकी ज़मीन वापस मिलनी चाहिए।

स्थानीय बोर्डों के वे मुलाज़िम जिनकी न केवल नौकरी ली गई, बल्कि जिनका प्राविडेन्ट फ़ंड भी ज़ब्त हो गया है उन्हें भी शीघ्र ही उनकी नौकरियाँ मिलनी चाहिए और उनका प्राविडेन्ट फ़ंड भी उन्हें मिलना चाहिए।

यह ज़ाहिर-सी बात है कि केवल पद-ग्रहण से हमें स्वराज्य न मिलेगा। हमें फिर से बड़ी ज़बर्दस्त लड़ाई लड़नी होगी, इसलिए देश की आज़ादी के लिए हम अपने सैनिकों को इसका विश्वास दिलायें कि लड़ाई में अँगरेज़ी-सरकार तथा उसके समर्थकों-द्वारा किये गये नुक़सानों की पूर्ति स्वराज्य पाते ही हम करेंगे। अगर हम ऐसा नहीं करते तो हम अपने सैनिकों का उत्साह भङ्ग करते हैं।

यह मानी हुई बात है कि जब हमारी लड़ाई फिर से शुरू होगी तब मिनिस्टरी नहीं रहेगी और तब पुनः हमारा साथ देने में किसान बेदख़ल होंगे, मुलाज़िम बरख़ास्त होंगे और लोगों के अख़्तियारात छिनेंगे। अब यह सोचने की बात है कि जब किसान यह देखेंगे कि कांग्रेस का साथ देने पर जो क्षति उनकी हो जाती है उसकी पूर्ति करने लायक़ होने पर भी कांग्रेस नहीं करती तो क्या वे हमारा साथ देंगे? यह लड़ाई की नीति है। इसे हमें सोचना है और इसी के अनुसार हमें चलना है। तभी हमारी सेना बढ़ेगी और जीतेगी।

किसानों के सम्बन्ध में जो सरकारी घोषणा हमारे सूबे में हुई है और जिसके द्वारा पिछला बक़ाया लगान की वसूली मुलतवी की गई है और बक़ाया के लिए बेदख़ली या कुर्की आदि की कार्यवाही बन्द की गई है उसके लिए हमारे मिनिस्टर धन्यवाद के पात्र हैं। किन्तु उसमें थोड़ी-सी कमज़ोरी कतिपय ज़मींदारों के शोर-गुल मचाने से आ गई है, इसका मुझे खेद है। सन् १३४४ की ख़रीफ़ तक का बक़ाया मुलतवी किया गया था, यह आप जानते ही हैं। अब बहुत-से किसानों ने जब रबी का लगान दिया तब वह ख़रीफ़ के पिछले बक़ाया में लगाया गया और रबी की जमा बाक़ी रक्खी गई। हमारी ज़िला-कांग्रेस-कमिटी ने इस ओर कांग्रेस-मिनिस्टरी का ध्यान आकर्षित किया

था। मैं लखनऊ गया और मिनिस्टरों से बातें कीं कि एक ऐसा हुक्म निकाल दिया जाय कि जो जमा किसानों ने रबी में दी है उसकी पावती पहले रबी की हाल जमा में लगाई जाय। आज तक ऐसा नहीं हुआ। मैं आशा करता हूँ कि हमारे मिनिस्टर इस पर उचित ध्यान देंगे और उस घोषणा की इस कमी को पूरा करेंगे।

मेरी राय में किसानों का लगान उनकी ग्राम-पंचायतों-द्वारा वसूल कराया जाना चाहिए। इन पंचायतों की इमदाद में हलक़ा पटवारी काम करे और जो १५ फ़ी सदी ज़मींदारों से वसूली के लिए लिया जाय उसी रक़म से इन पंचायतों तथा पटवारियों का ख़र्च चलाया जाय। इस प्रथा के क़ायम होने से सरकारी तहसील के मुहकमें में काफ़ी कमी हो जायगी। इन पंचायतों का हर साल चुनाव होगा। बेदख़ली-सरसरी आदि की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। उधर ज़मींदारों को कोई झंझट न रहेगा, इधर किसान भी ठीक ढंग से पनपेंगे और जो रियायतें उनके साथ की जायँगी उनसे वे पूरा फ़ायदा उठा सकेंगे।

एक बात और ग़ौर तलब है। जिस प्रकार छोटे छोटे गाँवों में किसानों की बस्ती है उसे क़ायम रखते हुए हम किसानों की दशा विशेष नहीं सुधार सकते। किसानों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध, उनका संगठन करना, उनके लिए अस्पताल खोलना, मनोरंजन का प्रबन्ध करना, उनके मवेशियों की नस्ल सुधारना, बेकारी दूर करने के लिए उद्योग-धन्धों का खोलना, ये सब बातें हम उस समय तक नहीं कर सकते जब तक किसान इस प्रकार छोटे छोटे ग्रामों में बिखरे रहेंगे। हमें किसानी क़स्बे आबाद करने चाहिए ताकि हम उन्हें पक्की सड़कें, पार्क, स्कूल, अस्पताल, बाग़ और अच्छे मकान दे सकें। इस ओर भी हमारी कांग्रेस-सरकार को ध्यान देना चाहिए। ग्राम-सुधार-विभाग को इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए और एक योजना बना कर इसकी शुरुआत करनी चाहिए।

लगान में कमी करके हम किसानों को थोड़ी राहत पहुँचा सकते हैं। परन्तु यदि हम उनके जीवन का सुख और ऊँचा करना चाहते हैं तो हमें ज़मीन की उपजाऊ शक्ति भी बढ़ानी होगी ताकि वे थोड़े परिश्रम से अधिक धन पैदा कर सकें। यह वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के तरीक़े से ही हो सकता है। हमारे देश की उपजाऊ शक्ति सब मुल्कों से कम है। उसको बढ़ा कर ही हम किसानों को सुखी कर सकते हैं और राष्ट्र की सम्पत्ति भी बढ़ा सकते हैं।

वैज्ञानिक ढंग से खेती करने की और नवीन ढंग के हलों और कलों से काम लेने के लिए बड़े लम्बे-चौड़े फ़ार्मों की ज़रूरत है। यानी हमें कलेक्टिव फ़ार्म के ढंग पर खेती करनी होगी। इस हेतु भी मौजूदा ढंग की आबादी काम नहीं दे सकती।

लेकिन इन सुधारों में अधिक समय और धन का आवश्यकता है। फ़िलहाल लगान में कमी का होना, रसीदों का देना अनिवार्य करना, बेदख़ली बन्द करना, किसानों को मकान-कुआँ बनाने तथा दरख़्त लगाने का अधिकार देना, जमा के अलावा अन्य सभी करों को बन्द करना, उनके क़र्ज़ की जाँच करके उनका बोझ हलका करना, मवेशियों की नस्ल के सुधारने की चेष्टा करना, पिछला बक़ाया जो मुलतवी किया गया है उसे माफ़ करना और जमा की वसूली के लिए पंचायतें क़ायम करना तत्कालीन आवश्यकताओं में हैं। हमें उम्मीद है कि हमारी कांग्रेसी मिनिस्टरी इन सुधारों को शीघ्र ही करेगी।

भारत के जङ्गलों के सम्बन्ध में वायसराय का भाषण

गत मास के द्वितीय सप्ताह में दिल्ली में जङ्गल कान्फ़रेंस का उद्घाटन करते हुए हिज़ एक्सेलेंसी वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया। नीचे उसका सारांश हम 'भारत' से उद्धृत करते हैं—

प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के बाद भारत के जङ्गलों की रक्षा और प्रबन्ध का दायित्व पूरी तरह से जनता-द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों के हाथ में चला गया है। मुझे इस अवसर पर यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि मुझे इस बात का हार्दिक विश्वास है कि नये मन्त्री भी इन जङ्गलों की रक्षा और उन्नति में उसी उत्साह का परिचय देंगे जिसका उनके पूर्ववर्तियों ने दिया है। मुझे विश्वास है कि अपने इस कार्य में वे फ़ारेस्ट सर्विस के सदस्यों की वास्तविक सहायता और निःस्वार्थ परामर्श प्राप्त कर सकते हैं। अतीत

में इन सदस्यों की सेवायें अतिशय महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो चुकी हैं।

आप मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि जङ्गल-विषयक प्रबन्ध-कार्य ऐसा विषय है कि यदि इससे सर्वोत्तम लाभ उठाना है तो इसे एक प्रान्त की सीमाओं में बाँध कर नहीं रख सकते। वर्तमान समय में योग्यता बढ़ाने और उसे स्थायी बनाने का एकमात्र उपाय साधारण अवस्थाओं और नये नये वैज्ञानिक अनुसन्धानों का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त अर्वाचीन बने रहना है। यदि हम इसे एक दूसरे पहलू से जाँचें तो मकान बनाने की लकड़ी संसारव्यापी आर्थिक महत्त्व की वस्तु दिखाई देगी और कोई भी उत्पादक अपने बाज़ार की माँग और अपने प्रतियोगियों की वैज्ञानिक निपुणता की उपेक्षा नहीं कर सकता जब उस वैज्ञानिक निपुणता के द्वारा वे प्रतियोगी बाज़ार में और भी बढ़िया और सस्ता माल रख सकते हैं। यह सत्य है कि प्रत्येक प्रान्त अपने जङ्गलों के लिए ज़िम्मेदार है, लेकिन मेरे विचार से ऐसा होने से भी समय-समय पर परामर्श करने की उपयोगिता और आवश्यकता को कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जा सकता। मेरे विचार से इस दिशा में भारत-सरकार प्रान्तों की पूरी सहायता कर सकती है और इस प्रकार के परामर्श की भी पूरी सुविधा हो सकती है जिसका मैंने उल्लेख किया है।

यदि आज-कल के युग में वर्तमान प्रणाली से लाभ उठाना है तो उसमें आधुनिक युग की बातें लानी होंगी और इस दिशा में कान्फ़रेन्स या किसी सदस्य-द्वारा जो भी रचनात्मक प्रस्ताव किया जायगा उस पर सहानुभूति के साथ अच्छी तरह विचार किया जायगा।

बरमा अपने बड़े बड़े जङ्गलों के साथ भारत से पृथक् हो गया है, लेकिन इस पर भी भारत में जङ्गल का क्षेत्र ६६,७४६ वर्ग मील है, जिसमें ७१,३५४ वर्ग मील सुरक्षित है। उस साल (१९३३-३४ में) १ करोड़ १५ लाख जानवर चराये गये। २० लाख रुपये से अधिक मकान बनाने की लकड़ी का निर्यात हुआ। जङ्गल से प्राप्त कुल मालगुज़ारी २½ करोड़ रुपये से अधिक थी, जिसमें से २ करोड़ रुपये जङ्गल के प्रबन्ध-कार्य में ख़र्च हो गये।

विदेशों में 'वन्दे मातरम्' का प्रभाव

एक ऐसे समय में जब कि भारत में 'वन्दे मातरम्' पर स्वयं भारतीय आपत्ति करने लगे हैं, यह जान लेना मनोरञ्जक होगा कि 'वन्दे मातरम्' का विदेशों में क्या प्रभाव है और विदेशों में बसनेवाले भारतीय चाहे वे हिन्दू हों चाहे मुसलमान, इसका कितने गर्व के साथ उच्चारण करते हैं। विश्वभ्रमणकारी श्रीयुत रामनाथ विश्वास का इस सम्बन्ध में एक लेख 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुआ है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

मुझे तेहरान की एक घटना याद आती है। लखनऊ का एक शिया मुसलमान तेहरान में जाकर धन-शून्य हो गया। तेहरान के व्यापारियों में प्रधानतः सिख, पारसी और हिन्दू हैं; पर उनमें कुछ भारतीय मुसलमान भी हैं। इत्तफ़ाक की बात कि मुझे उसके साथ एक ही मकान में रहना पड़ा। एक दिन शाम को एक बड़ा जलूस रास्ते से जा रहा था और उसमें उनके अपने राष्ट्रीय नारे लगाये जा रहे थे। हम इस मकान की दूसरी मंज़िल पर खड़े हो गये। मैं नहीं जानता, भारत के उस शिया मुसलमान के मन में क्या भाव आया कि वह ज़ोर से 'वन्दे मातरम्' चिल्लाने लगा। उस दिन तो मैंने उससे नहीं पूछा कि उसने 'वन्दे मातरम्' क्यों कहा था। दो दिन बाद एक बड़े रेस्टोरेण्ट में उससे फिर मुलाकात हुई। तब जिज्ञासावश मैंने पूछा कि उस दिन 'वन्दे मातरम्' चिल्लाने का क्या कारण था। वह ज़रा खिन्न होकर बोला—"भारतीयों को ईरानी, तुर्की और अरब सब हृदय से घृणा करते हैं। ऐसी अवस्था में विपत्ति के अवसर पर यह प्रकट करने को कि अमुक आदमी भारतीय है, उसके पास कौन-सा नारा ऐसा है जिसे वह लगावे। हाँ, केवल एक शब्द है—और वह है 'वन्दे मातरम्'। उसने आगे कहा; देखो बाबू, वे बड़े पेट के लोग चाहे हिन्दू हों, मुसलमान हों या पारसी, उनमें से कोई भी मज़दूरों के हिताकांक्षी नहीं हैं। उनका अल्लाह केवल रुपया है। भूल से भी उन्हें वन्दे मातरम् से कोई वास्ता नहीं। भारतीय मज़दूर तो जहाँ भी जायगा, 'वन्दे मातरम्' उसके साथ ही जायगा।

बग़दाद की बात

एक दिन मैं बग़दाद में साइकल पर घूम रहा था।

एकाएक एक शब्द सुना, बाबू, इधर आओ। साइकल रोकी और वहाँ जाकर देखा कि एक सूरती मुसलमान मक्खन की दूकान लगा कर बैठा है। उस आदमी ने मुझसे पूछा—माखन खाओगे ? मैंने कहा—खायँगे क्यों नहीं भाई ? पहले दाम तो सुन लूँ। वह एकदम ज़ोर से चिल्ला उठा—'वन्दे मातरम्' 'वन्दे मातरम्'। मैं तुमसे दाम नहीं लूँगा। अरबों ने मेरा बायकाट किया है। तुम हिन्दुस्तानी हो और मैं भी हिन्दुस्तानी हूँ, तुमको मैं माखन खिलाऊँगा तो मुझे आनन्द होगा। मैंने माखन खाया और उसके बाद जब बिदा होने लगा तब उस मुसलमान दूकानदार ने वन्दे मातरम् कहकर मुझे बिदा किया, सलाम-वालेकुम नहीं।

'अली' की जगह 'वन्दे मातरम्'

एक भारतीय मुसलमान स्त्री को कर्बला तीर्थ तक ले जाकर वापस लौट जाने के लिए मुझे कर्बला जाना था। मगर रास्ते में उस स्त्री का देश-भाई मिल जाने से मैं उसे वहीं सौंपकर चला आया। रास्ते में जब मैं एक गाड़ी में बैठने लगा तब उस समय कुछ भारतीय फ़क़ीर हमें हिन्दुस्तानी समझ कर 'वन्दे मातरम्' जी कहकर भीख माँगने लगे। मैंने हर एक को कुछ न कुछ दिया। उन फ़क़ीरों का वन्दे मातरम् बोलने का कारण यह है कि वे 'अली के वास्ते' कहकर भीख माँगते थे, पर ईराक के मुसलमान हिन्दुस्तान के मुसलमानों से इतनी घृणा करते हैं कि वे उन्हें भीख तक नहीं देते। इससे इन फ़क़ीरों ने रुष्ट होकर वहाँ का रवाज छोड़ कर अपनी भारतीय रस्म अख़्तयार की है।

मस्जिद पर राष्ट्रीय पताका

अदाना तुर्की का एक बड़ा शहर है। वहाँ क़रीब ५० भारतीय मुसलमान हैं। उनमें एक बंगाली मुसलमान हैं। वे उन सबके सरदार हैं। उन्होंने अपने भारतीय समाज में 'वन्दे मातरम्' को चालू किया है। वहाँ भारतीयों की मस्जिद के बाहर तुर्की हर्फ़ों में वन्दे मातरम् लिखा हुआ है। छोटे छोटे तुर्की लड़के उसको पढ़ते हैं और मस्जिद के सामने 'वन्दे मातरम्' बोलकर चिल्लाते हैं। मस्जिद की चोटी पर भारत की राष्ट्रीय पताका फहराती है। हर शुक्रवार की सुबह उस राष्ट्रीय पताका की सफ़ाई की जाती है और जुम्मे की प्रार्थना के समय वन्दे मातरम् की ध्वनि के साथ झण्डा फहराया जाता है, तब कहीं नमाज़ पढ़ते हैं।

'हिप हिप हुर्रे' नहीं 'वन्दे मातरम्'

मैं वियेना गया। वहाँ मैं श्री अग्निहोत्री जी से मिला। उनसे मालूम हुआ कि वहाँ एक 'इन्डो-अमेरिकन असोसिएशन' है। वहाँ मैंने एक भाषण दिया। भाषण के पश्चात् अमेरिकन लोग हिप-हिप-हुर्रे बोल उठे। भारतीय भी चुप नहीं रह सके। वे भी 'वन्दे मातरम्' चिल्ला उठे।

अधीर प्रवासियों का सहारा

एक वृद्ध पंजाबी मुसलमान श्री अलादित्य जो अनातंग शहर में रहते हैं, अपने मुल्क में वापस आने को बहुत इच्छुक हैं। किन्तु वे स्वदेश नहीं आ सकते। कारण कि एक बार वे ग़दर-पार्टी में सम्मिलित हो गये थे। इस बुढ़ापे में जब वह बूढ़ा अपनी दूकान की तीसरी मंज़िल से चीनियों का जुलूस देखता है तब पागल की तरह वन्दे मातरम् बोलकर चिल्लाता है। मैंने उनसे पूछा कि ऐसा क्यों करते हो। वे बोले—मालूम होता है, आप कभी किसी राजनैतिक संकट में नहीं फँसे हैं। हमारा देश हिन्दुस्तान है। मेरा हृदय चाहता है कि एक बार स्वदेश आकर अपने हृदय का दुःख दूर करूँ। मेरी जब देश जाने की इच्छा प्रबल हो उठती है तब मैं अधीर हो उठता हूँ। इसी लिए एकमात्र शान्तिदायक यह देववाणी वन्दे मातरम् चिल्ला उठता हूँ। टियेनसिन और अनातांग शहर के बृहत् भूमिखण्ड के बीच जितने भारतीय रहते हैं, उन्होंने वन्दे मातरम् को अपना चिरसंगी बना रक्खा है। जब उन्हें अपने देश का स्वप्न पागल कर देता है उस समय वन्दे मातरम् उन्हें शान्ति देता है।

राजस्थान-संघ

श्रीयुत हरीभाऊ उपाध्याय और उनके ही जैसे कतिपय अन्य त्यागी कार्यकर्त्ताओं के परिश्रम से राजस्थान-संघ अपने क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहा है। हाल में उसने अपनी पहली वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित की है। उसकी कुछ ज्ञातव्य बातें हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

वीरभूमि राजस्थान की राष्ट्रीय शक्तियों को संगठित और व्यवस्थित करने की ज़रूरत अर्से से मालम हो रही थी

और इस दिशा में समय समय पर प्रयत्न भी होता रहता था। हमारे ख़याल से आम तौर पर कार्यकर्ताओं में कोई इतना बड़ा सैद्धान्तिक मतभेद नहीं रहा, जिसकी वजह से आपस में मिल-जुल कर काम करना कठिन होता, तथापि प्रवृत्ति, प्रकृति और पद्धति की भिन्नता के कारण उनका एक संगठन में शामिल होना काफ़ी मुश्किल बना रहा। ऐसी हालत में यह सोचा गया कि जिन कार्यकर्ताओं के मिलने में कम-से-कम कठिनाई है वे फ़िलहाल मिलकर काम करना शुरू कर दें और आगे के लिए आशा रक्खें कि धीरे-धीरे और लोग भी शामिल होते जायँगे। इस विचार के अनुसार गांधी-आश्रम (हटूण्डी) और जीवन-कुटीर (वनस्थली) के कार्यकर्त्ताओं ने ता० २२-१०३६ को वनस्थली में 'राजस्थान-संघ' की योजना स्वीकार कर ली।

'राजस्थान-संघ' उन सार्वजनिक सेवकों की सोसाइटी है जो राजस्थान की सेवा करते रहे हैं और जो आयन्दा मुख्यतया इसी प्रान्त की सेवा करते रहना चाहते हैं। इस संघ का कार्यक्षेत्र 'राजस्थान' है और उद्देश 'राजस्थान का राष्ट्रीय हित-साधन करना' है। सत्य, शान्ति और न्याय इस संघ के आधारभूत सिद्धान्त हैं तथा कांग्रेस की नीति के भीतर रहना इसकी मर्यादा है। संघ का मुख्य काम प्रान्त की राष्ट्रीय सेवा करना चाहनेवाले सेवकों का संग्रह करना और उसके लिए निर्वाह-ख़र्च की सुविधा करना है।

संघ का प्रधान कार्यालय गान्धी-आश्रम, हटूण्डी (अजमेर), में है और व्यवस्था की दृष्टि से 'हटूण्डी शाखा' और 'जीवनकुटीर (जयपुर) शाखा' इस प्रकार संघ की दो शाखायें हैं।

इस वर्ष संघ के पास ख़र्च के मुक़ाबिले में आमदनी कम हुई। १०००) के क़रीब ज़्यादा ख़र्च हुए। सो आयन्दा साल की आमदनी में से चुकाना पड़ेगा। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि माल स्टॉक के खाते में नाम-मात्र की रक़म नाम लिखी गई है, जिसका अर्थ यह हुआ कि 'संघ' के पास चल सम्पत्ति नहीं के बराबर है। 'संघ' के प्रधान कार्यालय और हटूण्डी शाखा के लिए, 'गान्धी-सेवा-संघ' की ओर से गान्धी-आश्रम (हटूण्डी) के मकानात हैं, और जीवन-कुटीर शाखा (जयपुर) का काम किराये के मकानों से निकल जाता है, इसलिए 'संघ' के पास निज की कोई अचल सम्पत्ति भी नहीं है। हम इस स्थिति को इसलिए संतोषजनक मानते हैं कि 'राजस्थान-संघ' में अधिकतर वे 'फक्कड़' लोग शामिल हैं जो व्यक्तिगत-सम्पत्ति से परहेज़ रखने के साथ साथ जहाँ तक सम्भव हो, सार्वजनिक-संपत्ति से भी दूर रहना चाहते हैं। इस सिलसिले में यह प्रकट कर देना भी अनुपयुक्त न होगा कि 'जीवन-कुटीर' (वनस्थली) की प्रायः कुल चलाचल-संपत्ति क़ीमत से श्री 'राजस्थान-बालिका-विद्यालय' को दी जा चुकी है।

नये वर्ष के बजट के १५०००) और इस वर्ष की कमी के १०००)—इस प्रकार 'संघ' को कुल १६०००) आयंदा साल इकट्ठा करना है।

दुर्भाग्य से हमारे प्रान्त की स्थिति और प्रान्तों की जैसी नहीं है। 'अजमेर-मेरवाड़ा' को छोड़ कर सारा प्रान्त देशी राज्यों से भरा है। देशी राज्यों की स्थिति में और अजमेर-मेरवाड़ा की स्थिति में हमको विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता है। हमारी राय में सारा प्रान्त राष्ट्रीय दृष्टि से पिछड़ा हुआ रह गया है। चारों ओर का वातावरण अपना कुछ कुछ असर करता है, और कुछ स्वभाव से और कुछ उस असर की वजह से इस प्रान्तवालों के जी में भी दौड़ने की-सी आती है। दौड़ लगनेवाली भी है। और यह सच भी है कि जब सारा देश ही आगे बढ़ेगा तब उसके कुछ 'अङ्ग' पीछे लटकते हुए नहीं रह सकते। फिर भी इसमें कोई शक नहीं है कि जितना काम पिछड़ा हुआ है, उसको पूरा करके बराबर लाने में इस प्रान्त को न केवल समय लगेगा, बल्कि कई झंझटों और मुसीबतों का सामना भी करना पड़ेगा। इसीलिए यह ज़रूरी है कि प्रान्त के बाहर की सहायता की बाट देखे बिना हम लोग प्रान्त के भीतर आगे बढ़ने की ताक़त पैदा करें। रजवाड़ों में शंका, डर और वहम का राज्य है। वहाँ यह कल्पना करना नहीं चाहा जाता है कि रजवाड़ों को भी बदलना ही पड़ेगा और उन्हें आगे भी बढ़ना ही पड़ेगा।

नोटबुक के पन्ने

ऊपर के शीर्षक से काशी के प्रसिद्ध दैनिक "आज" में प्रायः बहुत-सी ज्ञातव्य और मनोरञ्जक

बातें प्रकाशित होती रहती हैं। नीचे हम उसका एक लेख उद्धृत करते हैं—

पाश्चात्य देशों में मुर्दे जलाने की चाल बढ़ रही है। सन् १९३३ से सन् १९३५ तक जर्मनी में ११,४५६, सोवियट रूस में १२,०८३, ब्रिटेन में ६,६१४, फ़्रांस में १,३३०, स्विट्ज़रलेंड में ६,३६७, आस्ट्रिया में ३,११६, डेनमार्क में ३,३०४ और चेकोस्लोवाकिया में ५,६६२ मुर्दे जलाये गये। इन दो वर्षों में सारे योरप में इनकी संख्या १,०५,२८७ से बढ़कर १,१२,८८५ हो गई। जर्मनी में ११५, ब्रिटेन में २६ और स्विट्ज़रलेंड में २० क्रेमोटेरियम हैं, जहाँ मुर्दे बिजली से जलाये जाते हैं। योरप में इस प्रथा का प्रचार करने के लिए कई समितियाँ बनी हुई हैं। गत सितंबर में लंदन में इनका सम्मेलन हुआ था, जिसमें प्रचार-कार्य के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ स्थापित किया गया है।

× × ×

सन् १९३४ में अमरीका की राष्ट्रीय आमदनी १ खरब २० अरब रुपया हुई। सन् १९३५ में ३६,७१,७७३ आदमियों की १५ हज़ार, ४१ की ३० लाख, २३ की ३० से ४५ लाख, ८ की ४५ से ६० लाख, २ की ६० से ९० लाख, ७ की ९० लाख से १। करोड़ और १ की १। करोड़ से १॥ करोड़ रुपये तक सालाना आमदनी रही। ३० लाख रुपये सालाना आमदनीवालों की संख्या में पिछले साल से ८ की वृद्धि हुई। इन सबने कुल मिलाकर १२ करोड़ ३५ लाख रुपया इनकम टैक्स में दिया। सन् १९३६ में ग्रेट ब्रिटेन और आयरलेंड में २५ हज़ार रुपया साल कमानेवालों की संख्या ८५,४४६ और ४ लाखवालों की ८२४ थी। इन दोनों में क्रम से २,०३० तथा ४९ की वृद्धि हुई! देशी नरेशों को छोड़कर ब्रिटिश भारत में केवल ३५५ ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी आमदनी १ लाख रुपया साल है।

× × ×

इँग्लेंड तथा वेल्स में सड़कों की सफ़ाई करने तथा कूड़ा फेंकने के लिए प्रति वर्ष १४ करोड़ ३० लाख रुपया ख़र्च किया जाता है। पिछले वर्ष वहाँ १ करोड़ १५ लाख टन कूड़ा निकला। सन् १९२४ की अपेक्षा इसमें ३॥ लाख टन की वृद्धि हुई। एक टन कूड़ा उठाने का ख़र्च ११ रुपये के लगभग पड़ता है। लंदन के साफ़-सुथरे महल्लों में १ हज़ार आदमी पीछे प्रति दिन १६ मन कूड़ा निकलता है। छोटे छोटे शहरों में इसका औसत अधिक होता है। कहीं कहीं तो यह ६० मन तक पहुँच जाता है। अपने यहाँ तो इतना रुपया सारे स्वास्थ्य-सुधार पर भी नहीं ख़र्च होता।

× × ×

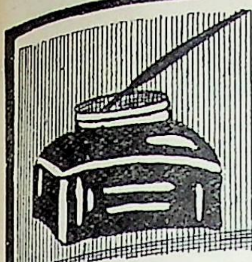
संसार भर में प्रति वर्ष १० करोड़ २५ लाख मन साबुन बनता है, जिसमें से एक तिहाई अमरीका में तैयार होता है। जितना साबुन तैयार होता है उसका ६२ प्रतिशत कपड़ा धोने के काम में आता है। साबुन का सबसे अधिक ख़र्च अमरीका में है। वहाँ आदमी पीछे साल भर में १२॥ सेर का औसत बैठता है। हालेंड में यह औसत १२, ब्रिटेन में १० और सोवियट रूस में ३ सेर है। भारत में इसका ख़र्च आदमी पीछे आध पाव से अधिक नहीं पड़ता। अपने देश में भी अब काफ़ी साबुन बनने लगा है, पर तब भी ३४ लाख रुपये साल का बाहर से आ जाता है।

× × ×

अमरीका की आबादी १२,२७,७५,०४६ है। वहाँ प्रति वर्ष ८,८२,२२,१९,२७२ रुपया शिक्षा पर ख़र्च होता है। स्कूलों की सम्पत्ति का मूल्य ३६ अरब १५ करोड़ रुपया है। उनकी इमारतों की संख्या २,४१,४२८ है। शहर के स्कूलों में पढ़ाई का ख़र्च छात्र पीछे ३०० और गाँवों में १६० रुपया पड़ता है। छात्रों की संख्या २,५६,७८,०१५ और अध्यापकों की १०,१८,००० है।

× × ×

सन् १९३५ में हवाई जहाज़ के यात्रियों की संख्या जर्मनी में २,०६,८२५, ब्रिटेन में २,००,०००, रूस में ६५,०००, फ़्रांस में ५६,३६३ और इटली में ५३,६६४ रही। इनके द्वारा सबसे अधिक माल रूस में भेजा गया। यहाँ इसका औसत ९,०५५, जर्मनी में ३,८३०, ब्रिटेन में १,८६८, फ़्रांस में १,०१६ और इटली में १,११६ टन रहा। हवाई डाक रूस में ४,२३२, जर्मनी में १,३८६, ब्रिटेन में ६१४, फ़्रांस में २७५ और इटली में २७० टन गई। योरप में १४,६३,४२,००० मील की यात्रा हुई। उसमें पिछले साल से ५० प्रतिशत की वृद्धि हुई। एशिया में यात्रियों की संख्या २३,३८५, आस्ट्रेलिया में ५०,८०४ और अफ़्रीका में २२,६२२ रही। माल तथा हवाई डाक का औसत क्रम से २४४, ८,५२३ तथा १८६ टन रहा।



सम्पादकीय नोट

रूस का अभ्युदय

रूस में बोल्शेविकों को राज्य करते हुए बीस वर्ष हो गये। अपने शासन के इस अल्प काल में उन्होंने रूस को कुछ का कुछ बना दिया है। हाल में उनके शासन की २०वीं वर्ष-गाँठ मनाई गई है। इस अवसर पर बताया गया है कि गत दस वर्षों में दो पंचवार्षिक योजनाओं-द्वारा रूस की कितनी अधिक उन्नति हुई है। पहली पंचवार्षिक योजना १६२८ में और दूसरी १९३३ में ज़ारी की गई थी। पहली योजना के फल-स्वरूप जहाँ ३८·८ मिलियर्ड रूबल का माल तैयार हुआ था, वहाँ दूसरी योजना में ८०·६ मिलियर्ड रूबल का माल तैयार हुआ। याद रहे, इन योजनाओं के पहले सन् १९२८ में १६०८ मिलियर्ड रूबल का ही माल तैयार हुआ था। इस प्रकार उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में सोवियट रूस योरप के अन्य सभी देशों के आगे निकल कर दुनिया में दूसरे नम्बर पर पहुँच गया है।

अब शिक्षा-प्रचार की बात लीजिए। ज़ार के समय में सन् १६१४ में रूस में प्रारम्भिक और माध्यमिक स्कूलों में ८०,२५,००० लड़के पढ़ते थे। पर सन् १९२८-२६ में उनकी संख्या १,२६,०४,००० हो गई और १६३६-३७ में तो वह बढ़कर २,८८,४२,००० पहुँच गई है। टेकनिकल स्कूलों में जानेवालों की संख्या सन् १६१४ में ६,२५,००० थी। वही सन् १९२८ में ३७,१७,००० हो गई, जो बढ़कर सन् १६३६ में २,८८,४२,००० जा पहुँची है।

दूसरी पंचवार्षिक योजना के चार वर्षों के भीतर गाँवों में १३,७८४ और शहरों में २,९४१ नये स्कूल बनाये गये। सन् १९२८ में जहाँ विशेषज्ञों और इंजिनियरों की संख्या ९२,००० थी, वहाँ अब वह ५,८०,००० हो गई है।

रूस में अब ८५,००० किलोमीटर रेलवे लाइन हो गई है। वहाँ खेती में ३,५६,००० ट्रेक्टर काम कर रहे हैं।

ज़ारों के समय में रूस में एक लाख की आबादी से ऊपर के १४ शहर थे, पर आज वहाँ ऐसे ७५ शहर हैं। सन् १९१३ में मास्को की आबादी १०-१२ लाख थी, परन्तु इस समय उसकी आबादी ६० लाख के लगभग है।

परन्तु जहाँ रूस का यह अभ्युदय हो रहा है, वहाँ उसका दूसरा रुख़ बहुत ही निराशा-जनक है। रूस के वर्तमान भाग्य-विधाता स्टेलिन की सरकार अपनी राजनैतिक संहार-लीला से तो ज़ार की सरकार के भी कान काट रही है। वह स्वयं अपने दल के उन्हीं लोगों का अब विश्वास नहीं कर रही है जिन्होंने अपना सब कुछ लगाकर रूस को इतना उन्नत और शक्तिशाली बनाया है। आज रूस के बड़े से बड़े अधिकारी सन्देह की दृष्टि से देखे जा रहे हैं और ऐसे सैकड़ों व्यक्ति पिछले दिनों तलवार के घाट उतारे जा चुके हैं। सेना के अफ़सर, वैदेशिक विभाग के अधिकारी, इंजीनियर आदि आदि श्रेणी के लोग देशद्रोह के अपराध में पकड़े जाकर मारे जा चुके हैं। कहा जाता है कि ये लोग किसी विदेशी सरकार (अर्थात् जर्मनी) से मिलकर वर्तमान सरकार को उखाड़ फेंकने का षड्यंत्र कर रहे थे। यदि ऐसा ही है तो अब तक जितने लोगों को प्राणदण्ड दिया जा चुका है तथा जो इस सिलसिले में जेलों में पड़े सड़ रहे हैं उनकी विशाल संख्या को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि रूस का बोलशेविक गुड़ सबका सब गोबर हो गया है। और यदि रूस में यह अविश्वास का राज्य और कुछ समय तक अपने वर्तमान त्रासजनक रूप में जारी रहा तो यह दशा रूस के हक़ में अच्छी न होगी। इस समय शक्तिशाली रूस का संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो दयनीय रूप दिखाई दे रहा है उसका एक-मात्र कारण उसकी यह अन्तरङ्ग दशा ही है।

फ्रांस का सङ्कट

महायुद्ध में विजय प्राप्त करके फ़्रांस योरप का सर्वेसर्वा हो गया था, पर वही फ़्रांस आज बड़े चक्कर में पड़ा दिखाई दे रहा है। इटली और जर्मनी ने अपनी इतनी अधिक शक्ति बढ़ा ली है कि अब उसकी योरप में पहले जैसी

मर्यादा नहीं रह गई है। उसका ब्रिटेन से भी पहले का-सा गाढ़ प्रेम-बन्धन नहीं रहा और मध्य-योरप के नये राज्यों तथा रूमानिया आदि से उसकी जो घनिष्ठता थी उसमें भी इस समय शिथिलता आ गई-सी जान पड़ती है। एक-मात्र रूस ही उसका ऐसा साथी है जो अवसर पर उसका साथ दे सकता है। परन्तु उसके इस साथ का एक यह अनीप्सित परिणाम हुआ है कि स्वयं फ़्रांस में ही एक ऐसा दल उठ खड़ा हुआ है जो फ्रांस में प्रजातन्त्र के स्थान में राजतन्त्र की स्थापना करना चाहता है। वहाँ की पुलिस ने ऐसे एक षड्यन्त्र का हाल में ही भंडाफोड़ किया है और तलाशी लेने पर उसे काफ़ी युद्ध-सामग्री भी मिली है। इन सब बातों से प्रकट होता है कि फ़्रांस की भीतरी दशा भी सन्तोषजनक नहीं है। उधर उसके उत्तरी अफ़्रीका के अलजीरिया और मोरक्को में असन्तोष का बवंडर उठा हुआ है। अभी अभी वहाँ के २०० आन्दोलनकारी देश-बदर किये गये हैं। ये लोग अलजीरिया, ट्यूनीशिया और मोरक्को को स्वाधीन करने का आन्दोलन कर रहे थे। कहा जाता है कि इन सभी बातों में इटली और जर्मनी का हाथ है। यही देश फ़्रेंच राजतन्त्रवादियों को हथियार जुटा रहे हैं और इन्हीं देशों के जासूस फ़्रेंचों के उत्तरी अफ़्रीका में विद्रोह की भावना का प्रचार कर रहे हैं। और फ़्रांस की सरकार इन सब कठिनाइयों के आगे किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गई है।

परन्तु फ़्रांस उपर्युक्त राजतन्त्रवादियों के षड्यन्त्र से उतना चिन्तित नहीं है, क्योंकि वहाँ प्रजातन्त्र की भावना इतना अधिक जड़ पकड़े हुए है कि अब उस भूमि में राजतन्त्र का पौधा नहीं पनप सकता। राजतन्त्रवादियों के नेता दक दे गुइसे ने जो यह घोषणा की है वे अपने बाप-दादों के राजसिंहासन को लड़कर पुनः प्राप्त करेंगे उसे फ़्रांस की सरकार एक सनकी की सनक भर समझती है। यह सच है कि पेरिस में राजतन्त्रवादियों का एक दल है, परन्तु वह नगण्य है। और यदि फ़्रांस में किसी तरह का राज्य-परिवर्तन होवेगा ही, तो वहाँ ओर्लीयन के ड्यूकों के सिरों पर राजमुकुट रखने के स्थान में देशकाल के अनुसार किसी प्रबल राजनैतिक दल के नेता की तानाशाही ही स्थापित की जायगी। निस्सन्देह दक दे गुइसे ओर्लीयन के घराने के हैं और ओर्लीयन का घराना फ़्रांस के पिछले बोर्बन राजवंश की एक शाखा ही है। परन्तु फ़्रांस को अब राजतन्त्र से अनुराग नहीं है।

फ़्रांस के आगे तो इससे कहीं अधिक भीषण समस्या उपस्थित है। जर्मनी और इटली के गँठजोड़ से वह समझता है कि योरप में उसका प्रभाव नहीं रह गया है। यद्यपि अपना पक्ष प्रबल बनाये रखने के लिए बहिष्कृत रूस को उसने पहले ही जैसा अपना अन्तरङ्ग मित्र फिर बना लिया है, मध्य-योरप के नये राज्य तथा रूमानिया आदि तो उसके साथ पहले से ही बँधे थे। परन्तु इधर जब उसने देखा कि जर्मनी और इटली पोलेंड, ज़ेचोस्लेवेकिया, जुगोस्लाविया को और रूमानिया को भी अपनी अपनी ओर फोड़ने का बार बार प्रयत्न कर रहे हैं और उन्हें कहीं कहीं सफलता भी प्राप्त हो रही है तब उसके कान खड़े हो गये और वह अब अपने पुराने मित्रों की नाड़ियाँ टटोल रहा है कि कठिन अवसर पर ये साथ देंगे या नहीं। इसी सिलसिले में रूमानिया के बादशाह केरोल ने पेरिस की यात्रा की और स्वदेश लौटने पर उन्होंने प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ टेटेलस्कू को फिर प्रधान मन्त्री बना दिया। ये फ़्रांस के पुराने मित्र हैं। अभी हाल में फ़्रांस के वैदेशिक मन्त्री डेल्बोस साहब भी पोलेंड, ज़ेचोस्लेवेकिया और जुगोस्लाविया गये थे और वे अपनी इस यात्रा से बहुत सन्तुष्ट होकर लौटे हैं। इस तरह फ़्रांस अपने को तोल रहा है कि फ़ैसिस्ट राज्यों के संघ के आगे वह कैसा ठहरेगा। चाहे जो हो, इस समय फ़्रांस काफ़ी विकट समस्याओं के फेर में पड़ गया है।

चीन का पराभव

जापान ने आज इस बीसवीं सदी में चीन के महान् राष्ट्र का जिस निर्दयता से दलन किया है उससे नये युग की ज्ञान-गरिमा का अभिमान करनेवालों की आँखें खुल जानी चाहिए। सन् १९११ में चीन में डाक्टर सनयात सेन के नेतृत्व में इसलिए क्रान्ति हुई थी कि चीन भी सुव्यवस्थित और सुगठित होकर संसार के सभ्य राष्ट्रों के बीच अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करे। सन् १९११ से चीन के नेताओं ने जो दायित्व अपने कन्धों पर उठाया था उसका वे अब तक बराबर निर्वाह करते आये हैं। उनके प्रयत्नों से चीन ने सभी क्षेत्रों में व्यापक

रूप से उन्नति की है और अधिक महत्त्व की बात यह हुई कि चीन की राष्ट्रीय सरकार मुख्य चीन के अठारहों प्रान्तों में अपनी सत्ता स्थापित करने में सफलमनोरथ हो गई। यहाँ तक कि अब बोल्शेविक प्रान्तों ने भी केन्द्रीय सरकार की सत्ता को स्वीकार कर लिया है। इस तरह चीन जब अपनी शक्ति के संगठन तथा शान्ति एवं व्यवस्था के कार्य में संलग्न था तब एकाएक जापान ने चीन पर फिर धावा बोल दिया। पहले धावे में वह मंचूरिया को हथिया ही चुका था। इस बार उत्तरी चीन के ५ प्रान्तों तथा शंघाई और नानकिंग पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया है। गत चार महीने के भीषण संघर्ष में ३ लाख के ऊपर चीनी मारे गये हैं और शंघाई तथा नानकिंग जैसे नगर ढहाये गये हैं। और यह सब लीला संसार के उन प्रमुख राष्ट्रों की जानकारी में हुई तथा हो रही है जो संसार की शान्ति और राष्ट्रों की स्वतन्त्रता क़ायम रखने के लिए वचनबद्ध हैं। परन्तु उन्होंने केवल शाब्दिक विरोध के सिवा और कुछ नहीं किया। यही नहीं, इस युद्ध के कारण फ़्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका के संयुक्त राज्यों के चीन में जो स्वार्थ हैं, स्वत्व हैं, उनको भारी धक्का ही नहीं पहुँचा है, किन्तु समय समय पर उनके नागरिकों तथा अधिकारियों एवं जहाज़ों पर आक्रमण भी हुए हैं और इतने पर भी ये प्रबल राष्ट्र सिवा राजनैतिक लिखा-पढ़ी के कुछ कर-धर नहीं रहे हैं। उधर जापान अपनी आधुनिक वैज्ञानिक युद्ध-सामग्री के बल पर चीन के विनाश के कार्य में तत्परता के साथ संलग्न है। चीन की राष्ट्रीय सरकार के अधिकारी और राष्ट्रपति चिआंग-काई-शेक नानकिंग को छोड़कर देश के और भीतर चले जाने को बाध्य हुए हैं। तथापि इस भयानक पराजय से उनका उत्साह नहीं भंग हुआ है और वे जापानियों का मार्गावरोध तथा अपने राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा करने के कार्य में जुटे हुए हैं। यह सच है कि जापान के आगे चीन की सेनायें नहीं ठहर सकती हैं, और चीन में अभी ऐसे लोग भी काफ़ी संख्या में मौजूद हैं जो जापान से मिलकर अपनी देशद्रोहिता का नंगा नाच कर सकते हैं, परन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि चीन एक जाग्रत राष्ट्र है और वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए अन्त तक युद्ध करने का उत्साह के साथ आयोजन कर रहा है।

दक्षिण-अमरीका में तानाशाही का ज़ोर

अमरीका के संयुक्तराज्यों की प्रबलता के कारण अमरीका-महाद्वीप के अन्य राज्य संसार की राजनीति से सदैव अलग रहते आये हैं। संयुक्त-राज्यों की यह घोषणा रही है कि अमरीका-महाद्वीप के राज्यों के मामलों में वे बाहर के राज्यों का हस्तक्षेप नहीं सहन कर सकेंगे। परन्तु अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि संयुक्तराज्यों की यह नीति अधिक समय तक टिक न सकेगी। इसका मुख्य कारण यह है कि स्वयं अमरीका के राज्य भी संयुक्तराज्यों की उक्त नीति को अपने लिए अपमानजनक समझते हैं और वे स्वयं भी बाहर के देशों की बातों से सहानुभूति दिखलाने लगे हैं। इनमें मेक्सिको तो बहुत पहले से अपनी स्वाधीन भावना व्यक्त करता आ रहा है। कुछ दिन हुए, रूस के निर्वासित ट्राटस्की को अपने यहाँ आश्रय देकर उसने अपनी सोवियट मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया था। यही नहीं, उसने रूस की तरह स्पेन की सरकार की अपनी शक्ति के अनुसार सहायता भी की है। इसी तरह दक्षिण-अमरीका के ब्रेज़िल, पेरागुआ आदि राज्य भी संयुक्तराज्य की संरक्षा के विरोध में अपनी स्वाधीन भावना व्यक्त कर रहे हैं। ये दोनों राज्य फ़ैसिस्ट भावना के प्रति विशेष अनुराग दिखा रहे हैं। पहले से भी दक्षिण-अमरीका के राज्यों में प्रजातंत्र की भावना नाममात्र को ही रही है, वहाँ तानाशाहों का ही बोलबाला रहा है। तब यदि आज वहाँ जर्मनी या इटली का प्रभाव बढ़ता हुआ दिखाई दे तो यह बात सर्वथा स्वाभाविक ही होगी। पेरागुआ में इस समय सैनिक नेता अधिकारारूढ़ हैं और वे अपने शासन को 'किसानों और मज़दूरों की सरकार' घोषित करते हैं। परन्तु है वहाँ हिटलर-शाही ही। यहाँ तक कि वहाँ यहूदियों का प्रवेश निषिद्ध है। समाचार-पत्र सरकार के नियंत्रण में हैं। मज़दूर काम छोड़कर घर बैठने नहीं पाते। उधर सन् १९३० से ब्रेज़िल में गुटूलिओ वरगस की तानाशाही क़ायम है। ब्रेज़िल में इस समय इटली के फ़ैसिस्ट आन्दोलन का प्राधान्य बढ़ रहा है। अर्जेन्टाइन में भी सन् १९३१ के विप्लव के बाद से प्रेसीडेंट जस्टो के नेतृत्व में तानाशाही दृढ़ता ग्रहण करती जा रही है। और इन राज्यों का मध्य तथा दक्षिणी अमरीका के दूसरे राज्यों पर प्रभाव नहीं

पड़ेगा, यह कौन कह सकता है ? ऐसी दशा में संयुक्त-राज्यों की उपर्युक्त नीति कहाँ तक स्थिर रह सकेगी, यह तो अलग रहा, उलटा इसकी सम्भावना दिख रही है कि योरप की डिक्टेटरशाही से अमरीका के डिक्टेक्टरों का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जायगा और इसका अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में असाधारण प्रभाव पड़ेगा। परन्तु संसार की प्रजातंत्रवादी सरकारें कदाचित् ऐसा घटित होने की कल्पना नहीं कर रही हैं या जानबूझकर इस परिस्थिति की उपेक्षा कर रही हैं। चाहे जो हो, यह स्पष्ट है कि संसार में इस समय तानाशाही का ज़ोर बढ़ती पर है और प्रजातंत्रवाद का नाममात्र का प्रभाव रह गया है।

क्षय-रोग के सम्बन्ध में लेडी लिनलिथगो का सद् प्रयत्न

क्षय-रोग भी भारत का क्षय करने में जुटा हुआ है। इस विषय के जानकारों का कहना है कि यह रोग धीरे धीरे देश में व्यापक रूप धारण करता जा रहा है और केवल नगर-निवासी ही नहीं, किन्तु ग्राम-वासी भी इसके शिकार हो रहे हैं। अनुमान किया गया है कि सारे देश में इस रोग के रोगियों की संख्या बीस लाख के लगभग होगी और प्रतिवर्ष तीन लाख से छः लाख तक लोग इस रोग से मर जाते हैं। अमीर-ग़रीब सभी श्रेणियों के लोग इस रोग से आक्रान्त होते हैं। सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि इस रोग के प्रतीकार के वैज्ञानिक साधनों से यह देश अभी तक वञ्चित ही है। यही नहीं, इसकी रोक-थाम करने की भी यहाँ कोई वैसी व्यवस्था नहीं है, चिकित्सा की समुचित सुविधा तो है ही नहीं। और जो थोड़ी-बहुत है वह सर्वसाधारण को सुलभ नहीं है। बम्बई में ४ और बम्बई-प्रान्त में ६ सेनिटोरियम अवश्य हैं, जहाँ क्षय-रोग की चिकित्सा के साधन जुटाये गये हैं। बंगाल में कलकत्ते में एक छोटा-सा अस्पताल है तथा कुर्सियांग में एक सेनिटोरियम है। इसी तरह अन्य प्रान्तों में एक-आध सेनिटोरियम या अस्पताल हैं। इनसे इतनी बड़ी संख्या के रोगियों की चिकित्सा की व्यवस्था कैसे सम्भव हो सकती है ?

प्रसन्नता की बात है कि लेडी लिनलिथगो का ध्यान इस दुरवस्था की ओर गया है। हाल में आपने इस सम्बन्ध में चन्दे की जो एक अपील की है उससे प्रकट होता है कि आप इस भयानक रोग की रोक-थाम के लिए कैसी व्यवस्था करना चाहती हैं। आपने कहा है—

यदि मुझे सफलता मिली जिसकी मुझे आशा है, तो इरादा यह है कि भारत के लिए एक तपेदिक़-निवारक संघ स्थापित किया जाय, जिसमें एक केन्द्रीय संस्था हो और प्रान्तीय तथा देशी रियासतों की संस्थाओं की सहायता प्राप्त हो और जिन स्थानों में तपेदिक़ प्रचलित है, वहाँ की दशाओं के अनुकूल एक समान नीति ग्रहण की जाय। प्रान्तों तथा देशी राज्यों में ख़र्च मुख्य रूप से अस्पतालों को जारी रखने में तथा जहाँ सम्भव हो सेनिटोरियम और बीमारी के बाद हिफ़ाज़त रखनेवाले स्थानों पर किया जायगा और केन्द्रीय संस्था का ख़र्च विशेषज्ञों तथा सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधियों के परामर्श से होगा। यह ख़र्च अनुसन्धानों, विशेष सलाह देने और सम्मिलित प्रयत्न तथा दिल्ली के एक केन्द्रीय माडल अस्पताल पर किया जायगा। परन्तु चूँकि प्रयत्न प्रभावशाली और वास्तविक कार्य प्रान्तों तथा देशी रियासतों में होना है, मेरी यह तजवीज़ है कि प्रान्तों और देशी राज्यों में इस अपील-द्वारा एकत्र हुई रक़म का ९५ प्रतिशत भाग स्थानीय ख़र्च के लिए वापस कर दिया जाय और शेष ५ प्रतिशत रक़म और साथ ही जो चन्दे लोग स्वेच्छा से विशेष रूप से केन्द्रीय संस्था को दें वह केन्द्रीय संस्था में रक्खा जाय।

आपके उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में अब कोई न कोई ठोस काम अवश्य होगा। आपकी अपील का देश में जो स्वागत हुआ है उससे भी ऐसा ही भासित होता है।

ग्वालियर के महाराज का सत्परामर्श

ग्वालियर के नवयुवक महाराज श्री जीवाजीराव सिंधिया राज्य-सञ्चालन के कार्यों में तत्परतापूर्वक जिस उत्साह के साथ अपनी कर्तव्य-परायणता का परिचय दे रहे हैं, उसी तरह आप अपने मौलिकता से युक्त उदार विचार प्रकट करने का अवसर भी हाथ से नहीं जाने देते। यही नहीं, आप उन्हें एक स्वाधीन नृपति की ही तरह [illegible] भी करते हैं। इस समय भारत के देशी राज्यों में

शासक और प्रजा का जो संघर्ष छिड़ा हुआ है तथा उसके जो दुःखद परिणाम हो रहे हैं वह सब यहाँ उल्लेख करने की ज़रूरत नहीं है। इस सम्बन्ध में ग्वालियर के महाराज ने हाल में अपना जो महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया है वह राजनीति की ही दृष्टि से ही नहीं, किन्तु देश-काल की दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण है। आप बीकानेर के महाराज की रजत-जयन्ती के सिलसिले में बीकानेर गये थे। वहाँ एक अवसर पर भाषण करते हुए आपने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि राजाओं के उस परस्पर के एका का क्या मूल्य है, यदि एक राजा का अपने प्रजावर्ग से मेल नहीं है। यदि राजाओं पर उनके प्रजाजनों का विश्वास और प्रेम है तो उनके परम्परागत अधिकारों और मर्तबे को कुछ भी क्षति नहीं पहुँच सकती। अतएव एकता का प्रारम्भ उन्हें अपने घर से करना चाहिए। इससे अधिक उपयोगी सलाह देशी राजाओं के लिए और क्या हो सकती है? आख़िर उनके वर्तमान सामन्तों तथा प्रजाजनों के पूर्वजों ने ही तो समय समय पर अपना ख़ून बहाकर उनके राज्यों के अस्तित्व की रक्षा की थी। परन्तु आज इनके इस महत्त्व का कोई मूल्य नहीं रहा। इसी का यह परिणाम है कि अधिकांश देशी राज्यों में राजा और प्रजा में कलह छिड़ा हुआ है। ऐसे अवसर पर ग्वालियर के प्रतिभावान् नवयुवक नरेश का उपर्युक्त सत्परामर्श राजाओं और महाराजाओं के ध्यान देने योग्य ही नहीं, कार्य में परिणत करने के योग्य है।

घूसख़ोरी की व्याधि

घूसख़ोरी बन्द करने के लिए संयुक्तप्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने एक नया विभाग खोला है। इस विभाग के अध्यक्ष ख़ुफ़िया-विभाग के डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल के असिस्टेंट श्रीयुत टी० पी० भल्ला नियुक्त किये गये हैं। इन्हें कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए पुलिस के तीन सब इन्सपेक्टर दिये गये हैं। देखना है कि यह विभाग अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफलता प्राप्त करता है, क्योंकि घूँस लेने और देने का इस दरिद्र देश में व्यापक प्रचार हो गया है। इस प्रसंग में हम यहाँ एक रोचक घटना का उल्लेख करते हैं, जो दिल्ली के 'अर्जुन' में छपी है। वह घटना बिहार की है और उसका सम्बन्ध वहाँ की सरकार के एक मिनिस्टर माननीय जगलाल चौधरी से है। घटना इस प्रकार है—

एक सख़्ती से पेश आनेवाले रिश्वतख़ोर थानेदार के विरुद्ध लोगों को बहुत-सी शिकायतें थीं। श्री जगलाल तक जब ये बातें पहुँचीं, एक दिन वे थाने में साधारण पोशाक में चुपके से जा पहुँचे और थानेदार साहब को झुककर सलामी बजाते हुए हाथ जोड़कर खड़े हो गये। थानेदार साहब ने गरज कर पूछा—

"क्या है?"

श्री जगलाल—सरकार, एक 'रपट' लिखवानी है।

थानेदार—क्या रिपोर्ट है?

श्री जगलाल—हजूर, एक बछड़ा चोरी हो गया है!

थानेदार—(डाँटकर) चलो यहाँ से। कहीं चरने गया होगा। जाओ, भागो।

श्री जगलाल—(दीनता से) नहीं सरकार, बहुत तलाश कर चुके।

थानेदार—(ऐंठ कर) तुम्हारे बछड़े की हम रिपोर्ट लिखें, उसके बाद उसे ढूँढ़ते फिरें, जैसे हम लोग तुम्हारे नौकर हैं! बाहर निकलो।

श्री जगलाल—हजूर, बछड़ा बड़ा मोटा और जवान था। हम पर रहम कीजिए।

थानेदार—यह थाना है। कांग्रेस का आश्रम नहीं है। समझा कि नहीं? कुछ चढ़ाना है तो चढ़ाओ, वर्ना भागो यहाँ से।

इस पर श्री जगलाल चौधरी ने दो रुपये निकाल कर दिये। उन्हें थानेदार साहब ने यह कह कर फेंक दिया कि "मानो हम ख़ैरात माँगते हैं"। इस पर एक रुपया और बढ़ाया गया, मगर वे राज़ी न हुए। तब चार रुपये में फ़ैसला हुआ और थानेदार साहब उन्हें जेब में डाल कर डायरी में रपट लिखने बैठे। कुछ बातें लिख कर पूछा—

"तुम्हारा नाम?"

श्री जगलाल—सरकार, जगलाल चौधरी!

थानेदार—जात क्या है?

श्री जगलाल—पासी।

थानेदार—पेशा?

श्री जगलाल—हजूर, पेशा······? मिनिस्टरी।

थानेदार—क्या कहा, मिस्त्री?

श्री जगलाल—नहीं सरकार, मिनिस्टरी।

थानेदार—(हैरत में पड़ कर) मिनिस्टरी क्या ?

श्री जगलाल—सरकार, आबकारी की मिनिस्टरी।

थानेदार—(घबराकर) ऐं ! क्या मतलब ?

श्री जगलाल—(दृढ़ता से) मतलब कुछ नहीं। महकमा आबकारी का मंत्री हूँ। मेरा बछड़ा··!

थानेदार—(जल्दी से खड़े होकर काँपते हुए) तुम··आप··हुज़ूर··सरकार··आनरेबिल··मिस्टर जगलाल चौधरी··।

श्री जगलाल—जी हाँ, वही हूँ।

थानेदार को बहुत घबराया देखकर माननीय चौधरी जी ने, सुनते हैं, उसे क्षमा करते हुए आगे के लिए काफ़ी देर तक शिक्षा दी। और अपने स्थान को लौट गये।

इससे प्रकट होता है कि घूँस की महाव्याधि आज भी किस उग्र रूप में फैली हुई है। और वह केवल पुलिस-विभाग में ही नहीं, किन्तु अन्य विभागों में भी उसी रूप में फैली हुई है। कहने का मतलब यह है कि इस महाव्याधि को दूर करने के लिए असाधारण आयोजन की ज़रूरत है।

तिब्बत की राजनीति

दलाईलामा से शून्य और ताशालामा से रहित तिब्बत आज-कल लामाओं की एक कौंसिल तथा रेजेंट के शासन में है। परन्तु इनकी शासन-व्यवस्था से तिब्बत में कोई नई बात नहीं हुई है और वही १४वीं सदी की अवस्था आज भी वहाँ प्रचलित है। उदाहरण के लिए स्वामी अन्नदानन्द बरुआ का हाल का मामला लीजिए। बरुआ महोदय हिन्दू बौद्ध-भिक्षु हैं और चटगाँव के निवासी हैं। वे तिब्बत की तीर्थयात्रा करने गये थे। तिब्बत से वे चीन जाना चाहते थे तथा मार्गगत मठों को भी देखना चाहते थे। लासा में उन्होंने लोगों को बतला दिया कि वे बंगाली हैं। यह भेद खोल देने पर उन पर निगरानी रक्खी जाने लगी, उनको चीन जाने का पासपोर्ट भी नहीं दिया गया और उनसे कह दिया गया कि वे फोटो भी न उतारें। अन्त में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि उन्हें स्वदेश लौट आना पड़ा। बरुआ महोदय के साथ जो यह दुर्व्यवहार किया गया है उसका यह कारण बताया जाता है कि तिब्बती लोग स्वर्गीय रायबहादुर शरच्चन्द्र दास के समय से बंगालियों से नाराज़ हैं। स्वर्गीय दास बाबू ने, बहुत दिन हुए, गुप्त रूप से तिब्बत की यात्रा की थी, जिसके कारण तत्कालीन ताशीलामा तक को दण्ड दिया गया था। खेद की बात है कि इतना समय बीत जाने पर भी तिब्बत की अभी वही रफ़्तार है।

भारत में वायुयानों की प्रगति

भारत-सरकार के डायरेक्टर आफ़ सिविल एविएशन ने सन् १९३५-३६ की जो रिपोर्ट प्रकाशित की है उससे प्रकट होता है कि भारत-सरकार अब यहाँ वायुयानों का प्रचार अधिकाधिक देशव्यापी कर देना चाहती है। उसने 'एम्पायर-एयर-मेल' नाम की एक नई योजना तैयार की है और १९३८ से इसके अनुसार काम भी शुरू हो जायगा। इस रिपोर्ट का सारांश 'भारत' ने दिया है। उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

समस्त ब्रिटिश साम्राज्य में फ़र्स्ट क्लास डाक एक देश से दूसरे देश के हवाई जहाज़ों के द्वारा ले जाई जायगी और इस काम में डाक का महसूल भी ज़्यादा न बढ़ेगा।

भारत के लिए पाँच सर्विसें होंगी, जिनमें दो ज़मीन पर उतरनेवाले हवाई जहाज़ों की होंगी। ये दोनों सर्विसें साधारण भूमि-मार्ग से जारी होंगी और कलकत्ते में जाकर समाप्त हो जायँगी। तीन सर्विसें पानी पर उतरनेवाले हवाई जहाज़ों की होंगी। इन सर्विसों का रास्ता भी उत्तरी भारत के ऊपर से प्रायः वही होगा, लेकिन बीच में दिल्ली छूट जायगी और सिंगापुर की सर्विस जारी रहेगी। दो सर्विसें आस्ट्रेलिया को चली जायँगी। इनसे इँग्लेंड से कराची का मार्ग सिर्फ़ २॥ दिन में और कलकत्ते का ३॥ दिन में पूरा होगा।

पानी और हवा दोनों में चलनेवाले २८ हवाई जहाज़ों के लिए फ़र्माइश दे दी गई है। इन हवाई जहाज़ों में चार-चार इंजन होंगे, जो ३॥ टन का बोझ उठाकर १६५ मील फ़ी घंटे की रफ़्तार से उड़ेंगे। इसमें २४ मुसाफ़िर बैठ सकेंगे और जब बैठने का स्थान सोने के स्थान के रूप में परिणत कर दिया जायगा तब १६ मुसाफ़िर इसमें सो सकेंगे।

ज़मीन पर उतरनेवाले १२ हवाई जहाज़ों के लिए

फ़र्माइश दी गई है। इनमें से ८ भारतीय मार्ग में उड़ेंगे। इनमें चार-चार इंजन होंगे, जो कुल ३,५२० हार्स पावर के होंगे। इनमें दिन को २७ मुसाफ़िर बैठ सकेंगे और रात को उतनी ही जगह में २० मुसाफ़िर सो सकेंगे। इनमें २०० मील फ़ी घंटे के हिसाब से उड़ने की ताक़त होगी।

तख़मीना लगाकर देखा गया है कि भारत से जो डाक भेजी जाती है उसका सालाना वज़न लगभग २११ टन होता है, जो प्रत्येक सर्विस के हिस्से ८१ टन पड़ता है। उक्त योजना के लिए भारत और बरमा के ज़िम्मे प्रतिवर्ष १३·७ लाख रुपये डाले गये हैं, जिसमें से बरमा १·१४ लाख देगा। इस प्रकार आकाश-मार्ग से डाक भेजने में भारत का जो ख़र्च पड़ता था उसमें बहुत बड़ी हद तक कमी हो जायगी।

दक्षिण-भारत में हवाई सर्विसों का काम टाटा सन्स लिमिटेड को सौंपा गया है, जो सप्ताह में पाँच बार डाक पहुँचाया करेगी। सीलोन-सरकार के साथ समझौता हो गया है और जिस दिन से उक्त योजना अमल में आयेगी उसी दिन से हवाई सर्विस कोलम्बो तक बढ़ा दी जायगी। आकाश-मार्ग के विस्तार का काम, जिसमें त्रिचनापली में एक एयरोड्रोम बनाना भी शामिल है, हो रहा है। मार्ग के उत्तरी भाग में वायरलेस स्टेशन आकाश-मार्ग और एयरोड्रोम में प्रकाश का प्रबन्ध भी हो रहा है। इस सर्विस में नये हवाई जहाज़ उड़ाये जायँगे जिनमें दो इञ्जनवाले हवाई जहाज़ भी शामिल हैं। ये दो इञ्जनवाले हवाई जहाज़ जिनमें रेडियो भी लगा होगा, कराची-बम्बई-सेक्शन में उड़ेंगे। नये हवाई जहाज़ों में डाक के अलावा मुसाफ़िरों के बैठने की भी जगह होगी।

कराची कोलम्बो के मार्ग से सालाना ५,००,००० पाउन्ड डाक ढोई जायगी जिसके लिए टाटा सन्स लिमिटेड को सालाना १५ लाख रुपये दिये जायँगे।

कराची-लाहौर सर्विस के लिए जो ठेका इंडियन नेशनल एयरवेज़ को दिया गया है उसमें सप्ताह में ५ सर्विसों की व्यवस्था की गई है। इस सर्विस में जो डाक ढोई जायगी उसका तख़मीना सालाना १,३०,००० पाउन्ड लगाया गया है, जिसके लिए इंडियन नेशनल एयरवेज़ को ३.२५ लाख रुपया दिया जायगा।

मार्ग के कराची जैकोबाबाद सेक्शन में एयरोड्रोम बनाये जा रहे हैं और वायुयानों के उड़ने में सुविधा पहुँचाने के लिए मार्ग में प्रकाश का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। इंडियन नेशनल एयरवेज़ की माल ढोने की शक्ति सालाना ३०,००० टन मील से ९४,००० टन मील हो जायगी।

१९११ में ५० हार्स पावर का हवाई जहाज़ २३ पाउन्ड डाक ५० मील प्रतिघंटा के हिसाब से ले जाता था। लेकिन १९३८ में ३,००० हार्स पावर के हवाई जहाज़ ३॥ टन डाक और मुसाफ़िरों को १५० मील प्रतिघंटे के हिसाब से ले जा सकेंगे।

हवाई जहाज़ों पर काम करनेवाले भारतीयों की संख्या बढ़ रही है। सन् १९३६ के अन्त में पाइलट, ग्राउन्ड इञ्जीनियर, वायरलेस आपरेटर या एयर नेविगेटर का लाइसेन्स रखनेवाले भारतीयों की संख्या बढ़कर ५८·५ प्रतिशत हो गई। जिन व्यापारिक हवाई जहाज़ों के चालकों को सन् १९३६ में लाइसन्स मिला था उनमें से ५० प्रतिशत चालकों ने भारत में ही शिक्षा पाई थी जब कि सन् १९३५ में केवल २५ प्रतिशत चालकों को यहाँ शिक्षा मिली थी।

उद्योग-धंधों के लिए एक लाख

प्रांतीय सरकार ने एक लाख रुपया शिक्षित नवजवानों को वज़ीफ़ा देने के लिए मंज़ूर किया है। इसका विवरण समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है। उसका आवश्यक अंश हम 'आज' से यहाँ उद्धृत करते हैं—

ये वज़ीफ़े उन शिक्षित नवजवानों को मिलेंगे जो किसी ख़ास उद्योग में शिक्षा पा चुके हैं ताकि वे उस उद्योग, व्यापार या व्यवसाय का काम शुरू कर सकें। ये वज़ीफ़े उन लोगों को भी अपने रोज़गार को बढ़ाने और तरक़्क़ी देने के लिए दिये जायँगे जो इस वक़्त कोई रोज़गार या व्यवसाय कर रहे हैं। इस उद्देश के लिए संगठित व्यक्तियों के समूहों को या कोआपरेटिव संस्थाओं को तरजीह दी जायगी।

नीचे के उद्योग-धन्धे मिसाल के तौर पर दिये जाते हैं। धातुओं का ढालना, चाक़ू-सरौते का काम, चमड़े का काम, ख़श्क धुलाई, रँगाई और छपाई, तालों का बनाना, टोकरी बनाना, मरम्मत के कारख़ाने, बेल-बूटे काढ़ना,

सूत का रँगना और गोला बनाना, बेंत का सामान बनाना, ब्रश बनाना, ग्रामोफ़ोन और रेडियो सेट तैयार करना, बिजली के लैम्प का शेड बनाना, हैट बनाना, होल्ल-बाल बनाना, कास्मेटिक बनाना, खिलौना बनाना, हाथ से काग़ज़ बनाना, चमड़े का कमाना, महीन सूत कातना, बटन बनाना, पिन बनाना, निब बनाना, चेन बनाना, आरे की छोटी मिल बनाना, पेंसिल बनाना, सेफ़्टीरेज़र के ब्लेड बनाना, सैन्ड पेपर बनाना, तेल का पेरना और साफ़ करना, साबुन बनाना, रस्सी बनाना, रुई धुनना, सूत कातनेवालों को पूनी पहुँचाना, चाकू-उस्तरे बनाना, पेच-कस बनाना, टीन पर छापना, सेल्यूलैड और रबर के खिलौने बनाना, रिबन और फ़ीते बनाना, छाते बनाना, तामचीनी के बर्तन बनाना, ऐनक के फ़्रेम बनाना वग़ैरह वग़ैरह।

ये वज़ीफ़े कुछ शर्तों के साथ दिये जायँगे।

दरख़्वास्तों में योजना की तफ़सील निम्नलिखित शीर्षकों के साथ आनी चाहिए—(१) रोज़गार चलाने की जगह, (२) दरख़्वास्त देनेवाले की व्यापारिक और टेकनिकल योग्यता, (३) औज़ारों और मशीनों के नाम, उनका ब्योरा और उनकी क़ीमत, (४) कच्चा माल ख़रीदने के ज़रिये, (५) पूँजी कितनी लगी हुई हैं या लगाना है, (६) उपज के ख़र्च का अन्दाज़ा और मुनाफ़े का अन्दाज़ा, (७) माल जो बनाया जायगा उसकी बिक्री के लिए बाज़ार, (८) जिस तरह से और जिस हद तक आर्थिक सहायता की ज़रूरत हो वह साफ़-साफ़ लिखना चाहिए, (९) इसके अलावा और कोई दूसरी लाभदायक सूचना।

सारी दरख़्वास्तें उद्योग-विभाग और कामर्स के डाइरेक्टर के पास आनी चाहिए।

इलाहाबाद का प्रश्न

संयुक्त-प्रान्त की राजधानी नाम के लिए तो आज भी इलाहाबाद है, पर व्यवहार में राजधानी लखनऊ ही है, क्योंकि प्रान्त के गवर्नर, उनका मन्त्रिमण्डल तथा अन्य उच्च राजकर्मचारी एवं उन सबके दफ़्तर कतिपय वर्षों से लखनऊ में ही अवस्थान करते हैं। प्रान्तीय सरकार की इस नीति का इलाहाबाद के नागरिक बराबर विरोध करते आये हैं। अभी हाल में जब प्रधान मंत्री इलाहाबाद आये थे तब इसी सिलसिले में यहाँ के नागरिकों का एक डेपुटेशन प्रधान मंत्री से मिला था। प्रधान मंत्री ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे इस प्रश्न पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे।

इलाहाबाद के नागरिकों की इच्छा है कि यदि इस समय यह सम्भव न हो सके कि सारे सरकारी दफ़्तर इलाहाबाद चले आयें तो कम से कम इतना तो ज़रूर होना चाहिए कि कुछ विभागों के दफ़्तर यहाँ लाये जायँ, व्यवस्थापिका सभा का एक अधिवेशन यहीं किया जाय तथा मन्त्री साल में कुछ महीनों तक यहाँ रहा करें।

इलाहाबाद के नागरिकों की इतनी ही माँग है। परन्तु काशी के 'आज' को इलाहाबादवालों की यह माँग ठीक नहीं जँची। उसने सरकारी स्वर में कहा है कि 'लखनऊ को ही राजधानी होने का गौरव मिल गया है। उसमें परिवर्तन करना सर्वथा अनुचित है।' परन्तु उसकी दृष्टि में 'आवश्यकता इस बात की है कि प्रान्त की सरकार अब काशी की ओर भी कुछ ध्यान दे।' इलाहाबाद की 'इज़्ज़त' का ख़याल करने में 'शासन का व्यय बढ़ जायगा' और काशी की आवश्यकता की पूर्ति करने में क्या बढ़ेगा, इसके बताने की कृपा सम्पादक महोदय ने नहीं की। जहाँ अपनी अपनी बात की लगी होती है, वहाँ न्याय की बात बिरले ही कहते हैं। इसी से 'आज' इलाहाबाद के साथ न्याय नहीं कर रहा है।

प्रसन्नता की बात है कि इलाहाबाद के नागरिक इस अन्याय के प्रतीकार के लिए कटिबद्ध हो गये हैं और इस सम्बन्ध में संगठित आन्दोलन करने के लिए उन्होंने एक कमिटी भी बनाई है। हम उसकी सफलता चाहते हैं।

मैसूर में बिजली की नई योजना

भारत के सुशासित एवं उन्नत देशी राज्यों में मैसूर को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। राज्य तथा प्रजा की आर्थिक दशा के सुधारने में वहाँ की सरकार विशेषरूप से दत्तचित्त रहती है। वर्तमान मैसूर-नरेश के शासन-काल में मैसूर में बिजली की शक्ति का उपयोग करने की ओर विशेषरूप से ध्यान दिया गया है। अभी हाल में मैसूर के महाराज ने शिमसा में एक नये बिजलीघर के बनाने की नींव रक्खी

है। इसके बन जाने पर राज्य की आय में ख़ासी वृद्धि होगी, साथ ही राज्य में अनेक कारख़ाने खुलेंगे और बेकारों के लिए जीविका के नये साधन प्राप्त हो जायँगे। इस बिजलीघर की योजना के कार्य में परिणत होने पर राज्य को २० लाख रुपया की वार्षिक आय होने लगेगी तथा इसमें ५० शिक्षित एवं १०० कर्मचारियों को काम मिल जायगा। इस बिजलीघर के कारण जो नये कारख़ाने खुलेंगे उनमें ५० से १०० तक शिक्षितों तथा ५०० से ७५० तक श्रमिकों को नौकरियाँ मिल सकेंगी। इस प्रकार राज्य और उसके प्रजाजनों दोनों का काफ़ी हित होगा। मैसूर की यह प्रगति अन्य देशी राज्यों के लिए अनुकरणीय है।

दिल्ली के देहातों में रेडियो

पाश्चात्य देशों में लोकशिक्षण के कार्य में रेडियो का जो उपयोग किया गया उसका कल्याणकारी परिणाम हुआ है। प्रसन्नता की बात है कि भारत में भी उसके उपयोग की ओर समुचित ध्यान दिया जा रहा है। हाल में दिल्ली के समीप के गाँवों में उसके लगाये जाने का उपक्रम किया जा रहा है। इसका विवरण 'भारत' में दिया गया है जो इस प्रकार है—

दिल्ली के समीप गाँवों में रेडियो लगाने की योजना की जा रही है। इसके द्वारा न केवल प्रान्तों के ही समाचार प्राप्त किये जा सकेंगे किन्तु विदेशी समाचार भी मिलेंगे। इस प्रकार देहातों में फिलस्तीन तथा अफ़्रीका के अन्य प्रान्तों के भी समाचार प्राप्त किये जा सकेंगे। ऐसा समझा जाता है कि इस योजना के अनुसार देहातों में १२० रेडियो स्टेशन स्थापित किये जायँगे। दिल्ली प्रान्त में इस तरह इसके छः केन्द्र होंगे। हर एक केन्द्र में रेडियो का मेकेनिक और जेंनरेटर (समाचार देनेवाला पत्र) होगा। इस तरह उस केन्द्र से समाचार दिये जायँगे। मेकेनिक आस-पास के गाँवों में लगे हुए रेडियो के यंत्रों की देख-रेख करता रहेगा। और यदि उसमें कुछ ख़राबी होगी तो वह ठीक कर देगा। इसके अतिरिक्त सरकार की ओर से निरीक्षक (सुपरवाइज़र) नियुक्त किये जायँगे। वे इस बात का पता लगायेंगे कि देहात की जनता किस प्रकार के समाचार पसन्द करती है। और वे लोग कुछ ही रुचि के अनुसार समाचार देने का यत्न करेंगे। और इस प्रकार रेडियो की योजना कहाँ तक सफल होती है इसका एक रेकार्ड रक्खा जायगा। लाभदायक सिद्ध होने पर भारत के अन्य प्रान्तों में भी इस योजना को कार्यान्वित किया जायगा। यदि यह योजना स्वीकृत हो गई तो इस कार्य के लिए तीन वर्ष तक का ख़र्च एक लाख से अधिक नहीं होगा। मंज़ूरी मिल जाने पर तीन महीने के भीतर अर्थात् जाड़े के अन्त तक दिल्ली के देहातों में रेडियो लग जायँगे। बहुत सम्भव है कि दिल्ली से सफलता मिलने पर इसके लिए सरकार की ओर से एक सलाहकार रक्खा जायगा जो भारत के अन्य प्रान्तों में जाकर वहाँ के अधिकारियों को इस योजना को लागू करने की सलाह देगा जिससे भारत के सभी प्रान्तों के देहातों के लोग रेडियो से लाभ उठा सकें।

श्रीयुत व्रजमोहन वर्मा का स्वर्गवास

'विशाल-भारत' के सहकारी सम्पादक श्रीयुत व्रजमोहन वर्मा का १० दिसम्बर को कानपुर में स्वर्गवास हो गया। इधर वे कई महीने से ज्वरग्रस्त थे और स्वास्थ्य-सुधार के लिए कलकत्ते से इटावा गये थे, जहाँ से कानपुर आये थे। अभी वे ३३ वर्ष के ही थे और अपने इस लघु-जीवन में 'विशाल-भारत' के द्वारा उन्होंने राष्ट्र-भाषा की जो सेवा की है वह किसी भी हिन्दी-प्रेमी नवयुवक के लिए अनुकरणीय है। वे एक प्रतिभाशाली लेखक थे। हमारी उनके दुखी परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना है।

खेद-प्रकाश

दिसम्बर १९३७ की सरस्वती में 'धर्मादा' शीर्षक एक लेख छपा है। उसे इन्दौर के सनावद के पण्डित लक्ष्मीनारायण दीनदयालु अवस्थी ने छपने को भेजा था और उन्होंने हमें यह नहीं लिखा था कि वह लेख मराठी के लेख का अनुवाद है। यह तो तब मालूम हुआ जब हमें उसके सम्बन्ध में पूना के 'सह्याद्रि' के श्रीयुत डी० वी० काले तथा उक्त लेख के लेखक अमरावती के श्रीयुत वी० एल० खरे की शिकायती चिट्ठियाँ मिलीं। हमें खेद है कि उक्त लेख 'सरस्वती' में मौलिक लेख के रूप में छप

गया। पाठक उस लेख को 'सह्याद्रि' में प्रकाशित लेख का हिन्दी-अनुवाद समझें। यहाँ लेखक महानुभावों से हमारा आग्रह-पूर्वक निवेदन है कि वे बिना अनुमति लिये कोई अनुवाद किया हुआ लेख छपने को न भेजा करें, क्योंकि ऐसा करना क़ानून में अपराध है।

कुछ विशेषांक तथा नये पत्र

'प्रताप' का 'विजयाङ्क'—सम्पादक, श्रीयुत हरिशंकर विद्यार्थी, प्रकाशक, प्रताप-प्रेस, कानपुर हैं। इस अंक का मूल्य =) है।

कानपुर के प्रसिद्ध 'प्रताप' का यह विशेषांक उपयोगी लेखों से विभूषित है। मुख-पृष्ठ पर श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस का सुन्दर चित्र दिया गया है। साथ ही कविताओं और कहानियों से इसकी रोचकता बढ़ाई गई है। इसके अतिरिक्त इस अंक में अनेक चित्रों का संग्रह है। पाठकों को यह अंक अवश्य पढ़ना चाहिए।

नव-शक्ति—पटना की यह साप्ताहिक पत्रिका एक राष्ट्रीय पत्रिका है और गत ४ वर्ष से सफलता के साथ निकल रही है। ६ अक्टूबर को इसका 'विजयांक' निकला है, जिसमें सामयिक राजनैतिक विचार-सम्बन्धी कतिपय महत्त्वपूर्ण लेखों एवं मनोरंजनार्थ कविताओं एवं कहानियों तथा दूसरे ज्ञातव्य विषयों के लेखों का संग्रह किया गया है।

नवराजस्थान—यह अकोला से निकलता है। इसका 'दीपावली अंक' ११६ पृष्ठों में बड़ी सज-धज के साथ निकला है। भिन्न भिन्न विषयों के महत्त्वपूर्ण लेखों का इसमें संग्रह किया गया है। पर राजस्थान-सम्बन्धी केवल २ लेख हैं। अन्य लेखों में सैद्धान्तिक लेखों की ही अधिकता है। कहानियाँ भी हैं। कवितायें भी हैं। चित्र भी अधिक संख्या में हैं। सब तरह सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है।

'सचित्र दरबार' का 'ग्वालियर-अंक'—सम्पादक व प्रकाशक श्रीयुत ऋषभचरण जैन, रूपवानी प्रिंटिंग हाउस, सिविल लाइन्स, देहली हैं। इस अंक का मूल्य ३) है।

दिल्ली से 'सचित्र दरबार' नाम का एक सचित्र साप्ताहिक निकलता है। इसमें देशी रियासतों के सम्बन्ध में लेख छपते हैं। उपर्युक्त विशेषांक उसका 'ग्वालियर-अंक' है और यह बड़ी सजधज के साथ निकला है। ३०६ पृष्ठों में ग्वालियर-सम्बन्धी अनेक लेखों का सुन्दर संकलन किया गया है। यह अंक अनेक रंगीन और सादे चित्रों-द्वारा भली भाँति सजाया गया है। इसके पढ़ने से पाठकों को ग्वालियर के सम्बन्ध की अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम हो सकती हैं। हिन्दी-प्रेमियों को यह अंक अवश्य पढ़ना चाहिए।

सचित्र भारत—सम्पादक श्रीयुत प्रबोधकुमार समाद्दार एम० ए०, प्रकाशक, आर्ट प्रेस, २० ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीट कलकत्ता, वार्षिक मूल्य ३।।) है।

यह पत्र जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, सुरुचिपूर्ण, सुन्दर और सचित्र साप्ताहिक है। इसकी विशेषता यह है कि यह चित्रों-द्वारा प्रत्येक सप्ताह की प्रमुख घटनाओं और व्यक्तियों को उपस्थित करता है। कलापूर्ण नृत्यों के पोज़, शौक़िया फोटोग्राफरों के लिए विविध चित्रों और प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में पड़े मानव सभ्यता के परिचायक चित्रों के अतिरिक्त इसमें एक सुन्दर सचित्र कहानी भी रहती है। पत्र अपने ढङ्ग का नया है। हम इसका स्वागत करते हैं।

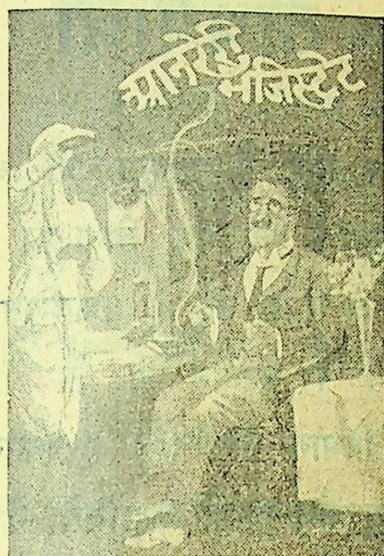
समाज (साप्ताहिक)—सम्पादक व प्रकाशक श्रीयुत ओंकारनाथ शास्त्री, श्री सेवा प्रेस, हेविट रोड, इलाहाबाद हैं। वार्षिक मूल्य ३) है।

यह एक नया पत्र है। इसमें किसानों, मज़दूरों आदि की समस्याओं एवं सामाजिक क्रान्ति की बातों की प्रमुखता रहती है। इन विषयों के पाठकों को इस पत्र का अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

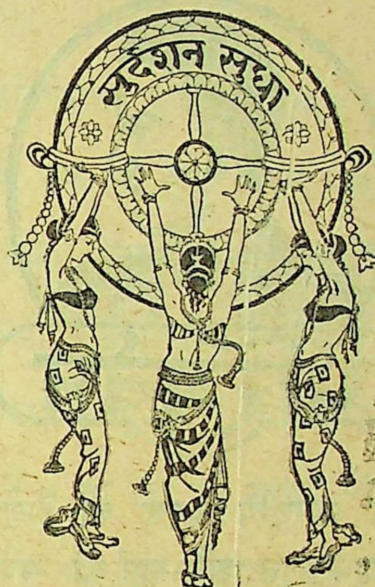


Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

श्रीसुदर्शन जी की उत्तमोत्तम पुस्तकें



प्रस्तुत पुस्तक में आनरेरी मजिस्ट्रेटी का असली ख़ाका खींचा गया है। गंडूशाह और झंडूशाह दोनों बिलकुल मूर्ख, डरपोक और कंजूस बनिये हैं। थोड़ा-सा धन होने से ही ख़ुशामदी टट्टू बनाने के लिए डिप्टी कमिश्नर दोनों को आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाने को बुलाते हैं। दोनों ही अपने अपने घरों में चपरासी की आवाज़ सुनते ही इतने डर जाते हैं कि मरने का बहाना बनाने को तैयार हो जाते हैं। चपरासी को रुपया भी देते हैं पर वह लिवा ही जाता है। अन्त में मुश्किल से आनरेरी मजिस्ट्रेटी स्वीकार कर ख़ुश होते हुए घर आते हैं और आनरेरी मजिस्ट्रेटीपने में जो करतूतें करते हैं, इस पुस्तक में उन सभी बातों का बड़ी रोचकता से वर्णन किया गया है। मूल्य ॥≈) दस आने।



सुदर्शन जी हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कहानी-लेखक हैं। इस पुस्तक में उनकी न्याय-मंत्री, कमल की बेटी, संन्यासी, ग़रीब की आत्म-कथा, सच का सौदा, माया, प्रारब्ध-परिवर्तन, पुनर्जन्म, प्रेम का पापी, २१ अगस्त १९०३, प्रणय-रात्रि, लोकाचार, मातृ-स्नेह और स्त्री का हृदय शीर्षक एक से एक बढ़िया कहानियाँ हैं। इन सबके बाद छाया नामक एक नाटक है। इसकी एक एक लकीर में जादू है। ३२४ पृष्ठ की सुन्दर सचित्र कवर-सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

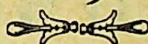
नई पुस्तक ! नई पुस्तक !!

परीदेश

लेखक, श्रीनाथसिंह

यह पुस्तक छोटी अवस्था के बालक-बालिकाओं के लिए ख़ास तौर से लिखी गई है। यही कारण है कि इसमें एक भी ऐसा विषय नहीं आने पाया, जिसके समझने में ज़रा भी बुद्धि को क्लेश देना पड़े। प्रतिदिन के व्यवहार की बातें ऐसी मनोरञ्जक शैली में लिखी गई हैं कि बच्चे उन्हें पढ़कर ख़ुशी के मारे उछल पड़ेंगे। पुस्तक बड़े आकार में है और रंग-बिरंगे चित्रों तथा फूल-पत्तियों की डिज़ाइनों से सुशोभित है। दो रंग की स्याही में आदि से अन्त तक छपी होने के कारण यह और भी नयनाभिराम हो गई है।

मूल्य केवल ।=) छः आने।



नई पुस्तक ! नई पुस्तक !!

सुशील कन्या

लेखक, श्रीयुत सन्तराम बी॰ ए॰

किसी भी आदर्श परिवार की कन्या के लिए जिन जिन बातों की जानकारी आवश्यक है, उन सभी का इसमें समावेश किया गया है। इसे पढ़ कर बालिकायें स्वास्थ्य, सदाचार तथा नीति आदि सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें हर एक विषय कहानी के रूप में लिखे गये हैं।

मूल्य केवल ॥) आठ आने।

मैनेजर (बुकडिपो) इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

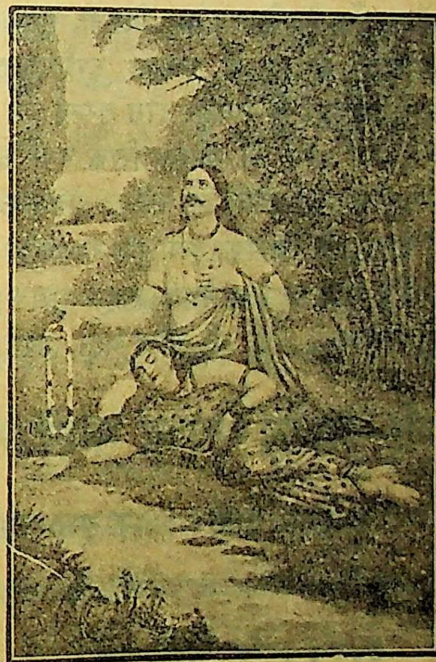
पुरावृत्त

लेखक—पूज्य आचार्य श्री पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

इस पुस्तक का प्रत्येक लेख किसी कहानी से अधिक सुन्दर, किसी उपन्यास से अधिक मन लगानेवाला, किसी शिक्षाप्रद पुस्तक से अधिक उपदेश-प्रद है। मनोरञ्जन की पूरी सामग्री समझिए, इतिहास का एक अंग समझिए। लेखों के विषय से ही कुछ अनुमान लग सकेगा—१ महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र, २ अँगरेज़ी प्रजा का पराक्रम, ३ जहाँगीर के आत्मचरित का एक नमूना, ४ मुग़ल बादशाहों की दिनचर्या, ५ शिवाजी और अँगरेज़, ६ फ़र्रुख़सियर और अँगरेज़ एलची, ७ पुराना सती-संवाद, ८ लोमहर्षण शारीरिक दण्ड, ९ कलकत्ते की कालकोठरी, १० भारतवर्ष का नौकानयन, ११ मौर्य-साम्राज्य के नाश का कारण, १२ चन्देल-राजवंश। सभी लेख उपयोगी और पढ़ने ही लायक़ हैं।

१५४ पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ॥।≈) चौदह आने।

कविता-कलाप



यह हिन्दी के ख्यातनामा कवि स्व० पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की सचित्र और कमनीय कविताओं का अपूर्व संग्रह है। पुस्तक के अधिकांश चित्र राजा रविवर्मा के बनाये हैं। खड़ी बोली की कविता का ऐसा अनुपम संग्रह आज तक नहीं निकला। मूल्य ३) तीन रुपये मात्र।

चरितचर्य्या

जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करनेवाले कितने ही आदरणीय व्यक्तियों के संक्षिप्त चरित्रों का संग्रह। मूल्य केवल ॥।≈) चौदह आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

सितम्बर १९३८ } भाग ३९, खंड २ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४६५ { भाद्रपद १९९५

अनुगामी

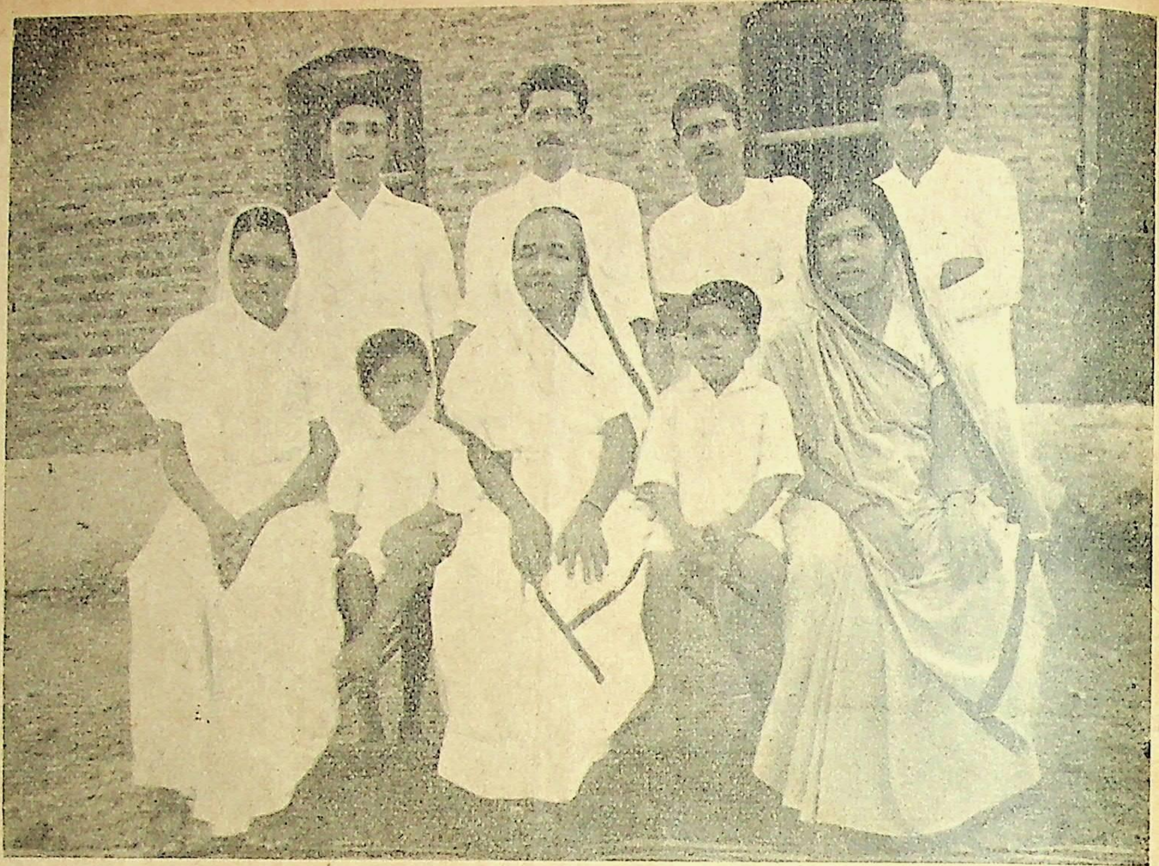
लेखक, श्रीयुत गोपालशरणसिंह

मैं तो हूँ अनुगामी।

जहाँ जहाँ तुम ले जाओगे,
जाऊँगा मैं स्वामी!
जग से जिसे छिपा रक्खा था
बड़े यत्न से मैंने।
जान गये वह भेद हृदय का,
हो तुम अन्तर्यामी॥

चलूँ तुम्हारे साथ नाथ! मैं
विश्व-मार्ग में कैसे?
मैं हूँ बन्धनयुक्त मन्द-गति
तुम स्वतन्त्र द्रुतगामी॥
किस विधि एक हृदय होकर मैं
तुममें ही मिल जाऊँ।

मैं हूँ निज उन्नति-अभिलाषी
तुम हो जग-हित-कामी॥



[कस्तूर बा सकुटुम्ब]

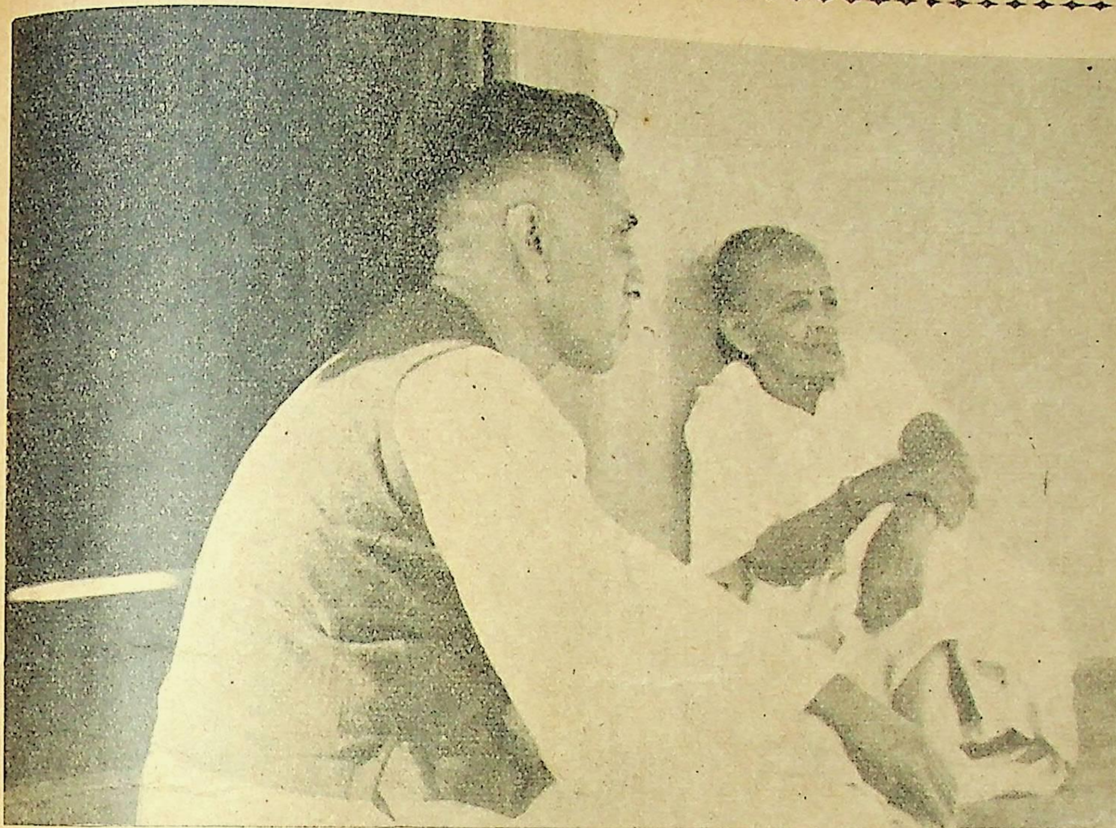
राष्ट्रमाता कस्तूरबाई

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम०ए०



कुछ महीने पहले की बात है। शायद रविवार था; क्योंकि उसी दिन मुझको अक्सर सेगाँव जाने का मौका मिलता है। महात्मा गान्धी की तन्दुरुस्ती चिन्ताजनक थी। कई नेता और कांग्रेस के मंत्री उन्हें देखने के लिए गये थे। मैंने इतनी भीड़भाड़ में गांधी जी के पास जाना उचित नहीं समझा। सोचा कि तब तक श्रीमती कस्तूरबाईजी के पास ही थोड़ी देर बैठ लूँ। वे तो लीडरों से दूर ही भागती हैं। इस उम्र में भी उनको सेवा के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं। उन नेताओं की भीड़ में वे चुपचाप रसोईघर में महात्माजी के लिए खाना तैयार कर रही थीं। खाना खुद इसलिए नहीं बना रही थीं कि अन्य कोई मदद करनेवाला न था, किन्तु इसलिए कि उनके रोम-रोम में मातृत्व और सेवा-भाव छलकता है। एक प्रेमल मा चूल्हे से दूर बैठकर घर के लोगों को भूखा देखना कैसे सहन कर सकती है? और फिर वे तो राष्ट्र-माता हैं। अगर महात्मा जी दिन भर देश की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने और दरिद्रनारायण की सेवा में लगे रहें और एक भूखे और कंगाल राष्ट्र की माता-स्वरूप कस्तूरबाई अपना अधिक समय चूल्हे के आस-पास ही बितावें तो इसमें आश्चर्य ही किस बात का है? जिस देश के करोड़ों लोगों के लिए रूखी और सूखी रोटी का टुकड़ा ही जीवन है उसकी माता के लिए तो चूल्हे से अधिक प्रिय शायद दूसरी जगह न होगी।

मुझको देखकर वे रसोईघर के बाहर आ गईं।



[एक डाक्टर श्रीमती कस्तूर बाई का चोटीला पैर देख रहा है।]

मुस्कराकर मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा। लेकिन मैंने उनसे तुरन्त पूछा—

"बा, बापू जी की तबीअत कैसी है?"

मेरा प्रश्न सुनकर वे तुरन्त गंभीर और कुछ उदास-सी हो गईं। धीमे स्वर में बोलीं—"बापू जी आज-कल बहुत थक गये हैं।"

"ये नेता लोग तो उनका पीछा ही नहीं छोड़ते!" मैंने थोड़ा मुस्कराकर कहा।

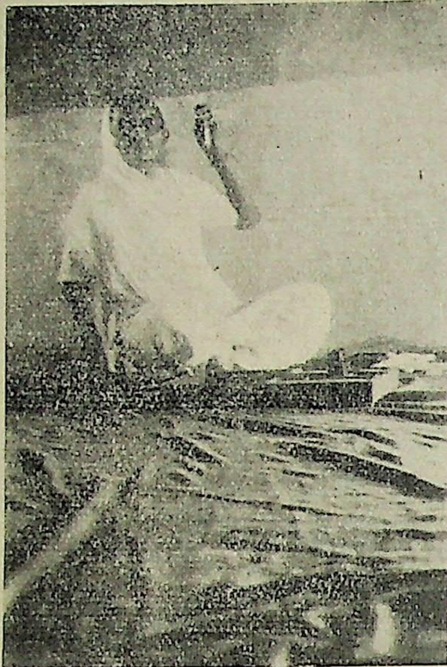
"नेता भी क्या करें?" उन्होंने मुस्कराकर कहा—"वे भी सब चक्कर में फँसे हैं। बापू जी के पास आना ही पड़ता है। फिर बापू जी तो ख़ुद उन्हें बुलाते हैं।"

"लेकिन बा, इस समय तो बापू जी को आराम की बहुत ज़रूरत है।"

"हाँ, उन्हें आराम तो ज़रूर चाहिए। इधर कई महीने से उनका स्वास्थ्य बहुत नाज़ुक हो गया है। क्या करें? कुछ समझ में नहीं आता! सुना है, आज उनको ख़ून का दबाव बहुत हो गया है।"

उनके शब्दों में कितनी वेदना थी, कितनी चिन्ता थी, और कितना प्रेम था, यह तो शब्दों में लिखना कठिन है। वे आदर्श मातृत्व की सजीव मूर्ति हैं। महात्मा जी ख़ुद भी बहुत वर्षों से उनको माता के रूप में ही मानते हैं। और वे महात्मा जी से उम्र में भी कुछ महीने बड़ी हैं। जब महात्मा जी लंका गये थे तब किसी मीटिंग में एक सज्जन ने अनजाने पूछा भी था कि महात्मा जी, आज आपकी मा नहीं आईं। उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया था—"वे कस्तूरबा संसार के नाते मेरी पत्नी हैं। लेकिन आपका प्रश्न ठीक है, क्योंकि मैं उनको अब मा के रूप में ही देखता हूँ।"

यह तो हुई महात्मा जी और जनता की दृष्टि। लेकिन हमको उनकी भावनायें भी समझनी चाहिए। वे आदर्श मा हैं। इसी से हम उनका आदर्श पत्नी का रूप देखना भूल गये हैं। एक हिन्दू स्त्री अपने पति को देवता के समान मानती है और उसी की सेवा में अपना कल्याण समझती है। आज-कल तो इस आदर्श की हँसी उड़ाई



[श्रीमती कस्तूर बाई सूत कात रही हैं]

जाती है और समानता का बोलबाला है। लेकिन उनको तो महात्माजी जैसे आदर्श पति मिले हैं। तब वे उनको देवता-स्वरूप क्यों न मानें? मैंने जब उस दिन महात्मा जी के स्वास्थ्य के बारे में उनसे बातें कीं तब मैंने पहली बार उनमें आदर्श पत्नी की झलक देखी।

× × ×

लेकिन पत्नी की हैसियत से उनको कम कष्ट सहन नहीं करने पड़े! जिन्होंने गांधी जी की आत्म-कथा पढ़ी है वे जानते हैं कि महात्मा जी के कड़े नियमों और आदर्शों का पालन करने में उन्हें कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ी है। बीमारी की हालत में उन्हें महात्मा जी के पानी और मिट्टी के प्रयोगों का ही सहारा लेना पड़ा। एक बार जब महात्मा जी ने उन्हें नमक छोड़ने के लिए कहा तब वे झुँझलाकर बोलीं—"नमक छोड़ने के लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे।" जब महात्मा जी ने तुरन्त नमक न खाने की प्रतिज्ञा कर ली तब उनको कितना दुःख हुआ होगा, यह एक पत्नी का हृदय ही समझ सकता है। लेकिन महात्मा जी के कठिन आदर्शों और प्रयोगों की आँच में तपकर उन्होंने कई बार अपूर्व दृढ़ता का भी परिचय दिया है। अफ़्रीका में एक बार जब कस्तूरबा सख़्त बीमार हो गई थीं और डाक्टर ने कहा कि उनको मांस का शोरवा देने की ज़रूरत है तब महात्मा जी ने उत्तर दिया—'मांस के शोरवे के लिए मैं तो इजाज़त नहीं दे सकता। लेकिन कस्तूरबाई आज़ाद हैं। वे लेना चाहें तो ज़रूर दीजिए।' पूछने पर उन्होंने दृढ़ता से उत्तर दिया—"मैं मांस का शोरवा नहीं लूँगी। यह मनुष्य-देह बार बार नहीं मिला करती। आपकी (बापू जी की) गोदी में मर जाऊँ तो परवा नहीं, पर अपनी देह को मैं भ्रष्ट न होने दूँगी।"

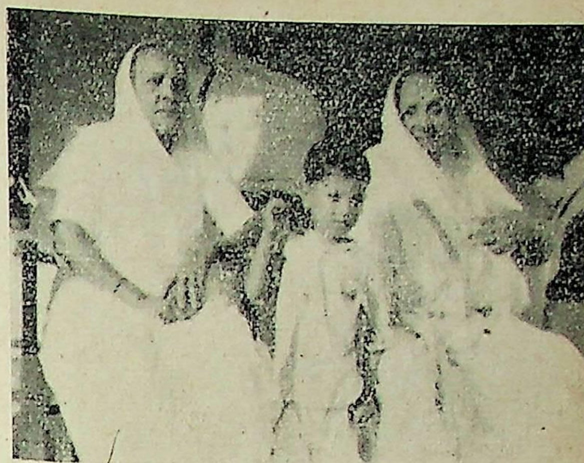
× × ×

विवाह के समय वे बिलकुल निरक्षर थीं। महात्मा जी ने शुरू में उनको पढ़ाने की कोशिश की। लेकिन सार्वजनिक कामों में जल्दी ही फँस जाने से उनकी शिक्षा अधूरी ही रह गई। आज भी उनको गुजराती का केवल साधारण और हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान है। जब कभी भाषण करने को खड़ी होती हैं तब गुजराती और हिन्दी दो सहेलियों की तरह गले में हाथ डालकर साथ साथ चलती हैं। हिन्दी का ज्ञान बढ़ाने के लिए आज-कल उन्होंने तुलसी की रामायण का कीर्तन शुरू किया है। लेकिन इस पढ़ाई-लिखाई में वे अधिक समय नहीं दे सकतीं और शायद उनको ज़्यादा रुचि भी नहीं है। देश की विभिन्न पेंचीदा समस्याओं का भी उनको अधिक ज्ञान नहीं है। लेकिन उनको अशिक्षित कहना अपने अज्ञान और नासमझी का परिचय देना होगा। यद्यपि वे संसार की दृष्टि में अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हैं, तथापि उनके व्यक्तित्व के सामने धुरन्धर विद्वानों और ज्ञानियों का माथा अवश्य झुकेगा। इसलिए नहीं कि वे महात्मा जी की पत्नी हैं, किन्तु इसलिए कि वे सौजन्य, सुसंस्कृति, सरल और मीठे स्वभाव की मूर्ति हैं। उनका दिमाग़ तीखा है, हृदय अत्यन्त सरल और प्रेम तथा सेवा-भाव से परिपूर्ण है। उनका शरीर इस ७० वर्ष की उम्र में भी मज़बूत है। जिस व्यक्ति का शरीर, दिल और दिमाग़, तीनों सुन्दर तथा स्वाभाविक रूप से विकसित हैं उसको अशिक्षित कहना 'शिक्षा' का अपमान करना है।

× × ×

शुरू में तो मेरा झुकाव महात्माजी की ही तरफ़ हुआ

था। जब मैं सेगाँव जाता, महात्मा जी के ही जीवन को देखने और समझने का कोशिश करता और जैसा कि मैं अपने सेगाँव का सन्त' शीर्षक लेख में पहले लिख चुका हूँ। मैं तो महात्मा जी की मानवता से ही मुग्ध हुआ हूँ। आज भी मैं उनका महान् नेता की हैसियत से ही आदर करता हूँ और माता कस्तूरबाई से तो शुरू में मेरा अधिक परिचय भी नहीं था। हाँ, ज्यों-ज्यों मैंने उनके अधिक निकट आने की कोशिश की, मेरा हृदय उनकी ओर खिंचता गया. और आज जब मैं सेगाँव जाता हूँ, चाहे एक बार महात्मा जी से न मिलूँ, उनसे मिले बिना कभी नहीं लौटता। इसका कारण है, और वह है उनकी सरलता। महात्मा जी के सामने हम लोगों ने उनके व्यक्तित्व का अभी तक नजदीक से पहचानने और समझने की कोशिश नहीं की है। लेकिन मेरा पक्का विचार है कि महात्मा जी से स्वतन्त्र उनका एक मनन करने योग्य व्यक्तित्व है। उनकी सहृदयता, भोलापन, सहानुभूति और प्रेम अनुभव करने से ही जाने जा सकते हैं। सेगाँव-आश्रम में महात्मा जी से लेकर साधारण से साधारण व्यक्ति की प्रेम और सेवा-वृत्ति से चिन्ता करना, अपने कष्ट का ख़याल न करके सभी के दुख-दर्द का ध्यान रखना वे ही कर सकती हैं। एक बार बहुत दिनों तक उनके पैर में चोट रही। हड्डी भी शायद चटक गई थी। डाक्टर ने चलना-फिरना मना किया था। तो भी उनको बिना सबका इन्तिज़ाम देखे चैन न था। अपने सुख और आराम का ख़याल तो उन्हें कभी शायद होता ही नहीं। इतनी उम्र होने पर भी वे अपना सब काम ख़ुद कर लेती हैं। अपने लिए किसी की भी सेवा स्वीकार नहीं करतीं। सुबह से शाम तक उनका सारा समय काम करते ही बीतता है। और उनका सब काम शान्ति और स्वाभाविकता से होता है। उनके चेहरे पर मैंने कभी क्रोध की झलक भी नहीं देखी। उनको तो मैं एक आदर्श कर्मयोगिनी मानता हूँ। यह उनके कर्मयोग का ही फल है कि सेगांव-आश्रम में सबसे अधिक उम्र होते हुए भी उन्हीं का स्वास्थ्य सबसे अच्छा है। पैर की उक्त चोट के समय डाक्टर ने उनके पैर को देखकर कहा—"बा का साधारण स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं मालूम होता। उनको काफ़ी आराम चाहिए।" महात्मा जी हँसकर बोले—"डाक्टर साहब, आप ग़लती



[श्रीमती कस्तूर बाई और श्री जमनालाल बजाज़ की मा]

पर हैं। मेरे आश्रम भर में इन्हीं की तन्दुरुस्ती सबसे अच्छी है। ये बहुत ही कम बीमार पड़ती हैं!" सब लोग मुस्करा दिये। वे भी हँस पड़ीं।

× × ×

आज हिन्दुस्तान की स्त्रियों में जाग्रति फैल रही है। वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही हैं और पर्दे से बाहर निकलकर जनता के सामने आ रही हैं। यह तो अच्छा ही है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए स्त्रियों की तरक्क़ी ज़रूरी है। लेकिन जब मैं वर्तमान पीढ़ी की युवतियों के जीवन की पुरानी पीढ़ी की महिलाओं के जीवन से तुलना करता हूँ तब मुझे अक्सर शक हो जाता है कि आज-कल की स्त्रियों की उन्नति 'उत्थान' है या 'पतन'। कालेजों से निकली हुई युवतियों का कृत्रिम जीवन और उनके कमज़ोर शरीर देखकर अक्सर निराशा की भावनायें मन में उत्पन्न हो जाती हैं। स्त्री-शिक्षा का क्या उद्देश्य होना चाहिए? अगर शिक्षा-द्वारा हमारी बहनों के दिमाग़, दिल और शरीर, तीनों का ही स्वाभाविक विकास न हुआ तो फिर यह स्त्री-शिक्षा की पुकार किस काम की? इसलिए जब मैं स्त्री-शिक्षा की समस्या पर विचार करता हूँ तब मेरे सामने माता कस्तूरी बाई की जाग्रत मूर्ति आकर खड़ी हो जाती है और मानो कहती है—"भारत की युवतियो, आओ। मेरे पास आओ। तुम शिक्षा ग्रहण करने के बहाने भारत की संस्कृति से दूर मत भागो।" जब मैं श्री जमनालाल बजाज़ की ७५ वर्ष की

वृद्धा माता को देखता हूँ तब भी मेरे मन में इसी प्रकार के विचार आते हैं। वे भी इतनी आयु की होती हुई भी दिन भर घर के काम में लगी रहती हैं, और आज भी कई घंटे तक सूत कातती हैं।

× × ×

मैं तो मानव-धर्म का पुजारी हूँ। मैं तो जब किसी प्रेम और सहानुभूति से भरे मानव को देखता हूँ, मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। माता कस्तूरी बाई में मानवता पूर्णरूप से पुष्पित है।

अगर हम सब इन दोनों विभूतियों को इसी नज़र से देख सकें और सच्चे मनुष्य बनने की कोशिश करें तो संसार में कितनी शान्ति और प्रेम का संचार हो सके।

मूक-माँग

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

हा! मेरे सुख का वह लघु पल क्यों इन्द्रधनुष-सा बन आता!
मैं निरख न जी भर भी पाती वह मिट क्षण भर में ही जाता!
तम-निभृत-व्योम पर नीरव वह
जो तेजपुञ्ज-सा खिल उठता।
मैं उसे न चुम्बित कर सकती,
वह हाय! मुझे कितना छलता।

पर कितना मादक है प्रिय का पल भर का यह अज्ञात-मिलन।
कितना मधुमय सुखप्रद है रे, यह चिरवियोग यह अचिरमिलन!
कितना प्रिय है रोते दृग में,
उनका सपना बनकर आना।
मेरे सोते उच्छ्वासों को,
सपनों मिस आ बिखरा जाना।

मेरे लघु सपने के जग में वे मुग्ध हँसी बन कर आवें।
यह मेरी जीवन-रजनी के खो स्वप्न न पल भर में जावें।
मानस-पट पर वह नित आवें,
पलकों पर सरसिज पग धरके।
मैं हृदय-नीड़ में छिपा रखूँ,
वह कुहुक उठें कलरव करके।

छाया-से दूर देश से आ कुछ भूठी याद दिला जावें।
क्षण भर उर में हँस बस कर वे मीठी वेदना जगा जावें।
छलकें पलकों की सीपी में,
बनकर वे सपनों के मोती।
मैं भर लूँ रीता हृदय-कोष,
मेरी यह निधि न कभी खोती।

मेरे आँचल से सपनों की माया जब हो लुट जाने को!
निज चरणों की रेखा अंकित कर दें धीरज बँधवाने को!
यदि फूलों-से हँसते आवें।
प्राणों में सौरभ बस जावे।
यदि मधुर राग बन वे आवें,
झंकार भरो तो रह जावे!

एक करुण कहानी

मुख़बिर

लेखक, पण्डित मोहनलाल महतो

(१)

जगदीश के पिता ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—"सुनो जी, अब तुम बड़े हुए। सोच लो—हाँ, आख़िर सच्ची बातों को ज़ाहिर कर देने में डर किसका है? मैं अगर होता—विश्वास करो—मैं अगर होता तो सच्ची बातों को खोलकर रख देता।"

जगदीश बोला—"आप ठीक कह रहे हैं—पर...।"

"मैं यह नहीं पूछता।"—झल्लाकर वृद्ध भवानीदीन बोले, जिनकी रीढ़ क्लर्की करते करते झुक गई थी—"साफ़ बात है। हाँ, कहो। तुमने क्या देखा?"

धीरे से जगदीश ने उत्तर दिया—"मैं कहता हूँ। पहले वह सुन तो लीजिए।"

"क्या सुन लूँ?" भवानीदीन व्यग्रतापूर्वक बोले—"कुछ बात भी हो। तुमने हमारे किये-दिये पर पानी फेर दिया! मैं मुँह दिखलाने लायक़ भी कहाँ रहा? मैंने, सच कहता हूँ, तुम्हारे लिए नौकरी ठीक कर रक्खी थी। सब किया, पर तुम तो किसी की सुनते ही नहीं।"

जगदीश चुपचाप बैठा रहा। उसकी चुप्पी ने भवानीदीन को थोड़ा-सा और उत्तेजित कर दिया। वे तनकर बैठ गये और कहने लगे—"तुम्हें चाहिए कि सच्चा बयान दो। कोई कालेपानी जाय या फाँसी चढ़े। तुम्हें इससे क्या वास्ता? जो हो चुका सो हो चुका। अभी तक कुछ बिगड़ा नहीं है। साहब मुझसे......।"

जगदीश ने कहा—"आख़िर आप चाहते क्या हैं? मैं ऐसी बातों को पसन्द नहीं करता—मेरी जान भले ही चली जाय। कलङ्क का अमिट टीका लगाकर समाज के सामने बेशर्मी के साथ जाना—छिः छिः!"

भवानीदीन असमंजस में पड़ गये। उन्हें मालूम था कि जगदीश पूरा हठी है। फिर भी अपना पिता होने का नैसर्गिक दावा वे नहीं छोड़ सके। विश्वास था कि लड़के को समझा लेंगे, उसे ठीक रास्ते पर ले आवेंगे, पर जगदीश के रुख़ ने उन्हें थोड़ा-सा हताश कर दिया। फिर भी भवानीदीन अपने प्रयत्न के प्रति कातर नहीं हुए, और समझाने के तर्ज़ को ज़रा-सा बदल दिया। 'गुरुत्व' की जगह पर 'पितृत्व' को अधिक प्रश्रय देते हुए उन्होंने फिर कहा—"बेटा, आख़िर हमारी गति क्या होगी? तुम्हारी बूढ़ी मा तो—किन शब्दों में कहें—जान देने पर तुली हुई हैं। उसका कहना है कि बिना जगदीश को देखे अन्न नहीं छुऊँगी, खाना तो दूर की बात है!"

इतना कह कर—अपनी बातों का असर देखने के विचार से भवानीदीन चुप हो रहे और अपनी बाज़ जैसी तेज़ आँखों से जगदीश के मुख की ओर देखने लगे, जो सूखा हुआ और पीला पर कठोर दिखलाई पड़ता था। वह दीवार की ओर देख रहा था, जहाँ एक छिपकली बैठी थी। मानव-सम्प्रदाय का यह नियम है कि हम एक-दूसरे की कमज़ोरियों से लाभ उठाने का सतत प्रयत्न करते हैं। अपनी बातों से हम दूसरे की उन भावनाओं को उद्दीप्त कर देते हैं जो कमज़ोरियों को जगाने का काम करती हैं। भवानीदीन ने जगदीश के कठोर हृदय में मातृस्नेह की भावना को जगाने का प्रयत्न किया। वे जानते थे कि जगदीश का हठी हृदय मा की याद—सकरुण याद—की आँच में पड़कर विगलित हुए बिना न रहेगा। यह स्वाभाविक भी है। जब वह अपने अन्तर की सकरुण भावनाओं से द्रवित हो जायगा तब भवानीदीन के लिए अपनी बातें मनवा लेना कठिन न होगा। निश्चय ही एक बार जगदीश का हृदय काँप उठा, उसका मन अपनी स्नेहमयी जननी की गोद में खेलने के लिए मचलने लगा, पर तत्काल उसने अपने आपको सँभाल लिया—उसे ऐसा लगा कि वह पथभ्रष्ट होने जा रहा है। अपने निश्चय पर अड़े रहने की वह एक बार फिर—मन ही मन—प्रतिज्ञा कर सिर झुका कर बैठ गया और धीरे धीरे तर्जनी से ज़मीन कुरेदने लगा, मानो अचला धैर्यशालिनी पृथ्वी को खोदकर थोड़ा-सा साहस और धैर्य अपने लिए प्राप्त करना चाहता हो। भवानीदीन पछताकर बोले—"सोच लो, तुम्हें क्या करना चाहिए। जब बुरे दिन आते हैं तब कोई साथ नहीं देता। सौभाग्य के मज़े लूटने के लिए बहुत-से साथी जुट जाते हैं,

पर दुर्भाग्य के लोहे के चने तो ख़ुद चबाने पड़ते हैं। तुम हठ छोड़कर मेरा कहा मानो—अपने को बचा लो, चाहे जैसे हो।" जगदीश खिन्न स्वर में बोला—"आप तो मेरी जान लेने की व्यवस्था कर रहे हैं और कहते हैं कि 'अपने को बचा लो।'

चौंककर भवानीदीन ने जगदीश के तमतमाये हुए चेहरे की ओर देखा। उन्हें विश्वास नहीं था कि जिस जगदीश ने कभी उनके सामने आँखें उठाने की गुस्ताख़ी भी नहीं की वही जगदीश आज इस तरह एकाएक तलवार का वार कर बैठेगा। भवानीदीन सन्नाटे में आ गये। सहसा वे नहीं सोच सके कि उनका अगला कर्तव्य क्या है। अपने बिखरे हुए साहस को कंठ पर केन्द्रित कर काँपते हुए स्वर में बोले—"बेटा, क्या कहा तुमने? मैं तुम्हारी जान का गाहक हूँ? यह कैसा आक्षेप है जगदीश? मैं......मैं......क्या कहूँ...।"

भवानीदीन कुछ कह न सके। गला रुँध गया। जगदीश पत्थर की तरह सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा। उसके चेहरे का रङ्ग रह रहकर बदल जाता—एक रङ्ग जाता, दूसरा आता। मानसिक उथल-पुथल के डरावने चिह्न उसकी टेढ़ी भौंहों और सिकुड़े हुए ललाट से स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। जगदीश मानसिक आघात-प्रतिघातों से मानो मन ही मन व्यग्र हो रहा था। वह मानो थके हुए तैराक की तरह विकल होकर हाथ-पाँव मारता, पर तेज़ धारा के आगे कोई वश न चलता और डूबता-उतराता उस ओर बहता जाता जिधर जाना उसे मंज़ूर न था। ऐसी अवस्था थी उस नवयुवक जगदीश की जो भयानक अपराधों के कारण अपने साथियों के साथ पिछले डेढ़ साल से जेल में बन्द था और जिसके पिता आये थे समझाकर मुख़बरी करने के लिए उसे राज़ी करने। इसी में कल्याण था।

दिन का अन्त हो गया। वर्षा की मनहूस संध्या जेल के आँगन में धीरे धीरे उतरी। घास पर दो-चार तितलियाँ उड़ती नज़र आईं।

(२)

निश्चय की मज़बूत गाँठ परिस्थिति के हाथों से ढीली पड़ने लगती है। हम अगर इस्पात की तरह कठोर रहने के लिए क़सम खाकर बैठ जाते हैं तो अपनी क़सम की रक्षा तभी तक कर सकते हैं जब तक परिस्थिति साथ देती रहती है। जहाँ इसने अपना रवैया बदला, फिर अपने आपको सँभालकर रखना कठिन हो जाता है। जगदीश एक ठोस नवयुवक था, उठती जवानी थी और स्वभावतः गम्भीर होने के कारण उसकी प्रकृति में चंचलता का प्रवेश नहीं हो सका था। अपने निश्चय को वह बहुत ही कठिनता से बदलता। पिता की बातों ने पहले तो उसे उत्तेजित कर दिया, पर उसने यह अनुभव किया कि उसके हृदय में दुर्बलता का भी स्थान है, जो अनुकूल अवसर पाकर धीरे-धीरे अपना प्रभाव फैला रही है। संशय-रहित जगदीश का हृदय द्विधा में फँस गया। कभी-कभी वह यह भी सोचने लगा कि मुख़बरी करके इस ज़लील ज़िन्दगी को एक किनारे लगा देना अच्छा होगा। पहले वह ऐसी बातों को हृदय के निकट फटकने भी नहीं देता था—यह ऐसी बातों को मन में लाना भी कमीनापन समझता था, पर अब उसने इस प्रश्न पर सोचना आरम्भ किया। कभी वह अपनी मा के विषय में सोचता और कभी पयोमुख छोटी सी बहन के विषय में। वह अपने पड़ोस की उस भोली-भाली लड़की के विषय में भी सोचता जो किसी दिन जगदीश के यह कहने पर कि मैं फाँसी पर चढ़ूँगा, रो पड़ी थी। अपनी कोठरी में चुपचाप पड़ा-पड़ा वह छटपटाने लगा। पिछले जीवन के अनेक लुभावने दृश्य उसकी आँखों को आकर चूमने लगे, मोटे-मोटे सींखचों के उस पार बुलाने लगे, हरे-भरे खेतों में और अमराई में चलने के लिए उकसाने लगे।

कभी जगदीश अपने को धिक्कारता और कभी चुप रहकर सोचता कि क्या करना चाहिए। जेल की एक रसना ने उसके जीवन के सौन्दर्य को चूस लिया था। एक ही प्रकार के वातावरण में साँस लेते-लेते, एक ही तरह के स्वाद का भोजन खाते-खाते, एक ही कमरे में रहते-रहते और एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते-करते वह मन ही मन ऊब उठा। धीरे-धीरे उसके हृदय की दृढ़ता भाफ बनकर कैसे उड़ गई, इसका पता किसी को न चला और उसकी जगह पर दुर्बलता का साम्राज्य कैसे स्थापित हो गया, यह बतलाना भी कठिन है। जगदीश अपने को रोक नहीं सका। वह सिद्धान्तों की ऊँची चोटी से लुढ़क पड़ा था। बीच बीच में पत्थरों के ढोकों से

टकराकर रुक जाने की कभी संभावना थी, पर दुर्भाग्यवश कोई ऐसी बाधा भी नहीं उपस्थित हुई। वह बड़े आराम से लुढ़कता-लुढ़कता पहाड़ की जड़ तक चला आया।

अख़बारों के पाठकों ने चकित होकर एक दिन पढ़ा कि जगदीश मुख़बिर हो गया है। उसने सप्रमाण सत्य को नग्नरूप में उपस्थित कर दिया। लोगों ने हृदय पर हाथ रखकर उसके बयान को पढ़ा। इस तरह पानी में आग लगाकर एकाएक जगदीश जेल के फाटक से ऐसे जुआड़ी की तरह मुँह छिपाकर निकल आया जो अपना सब कुछ हार जाने के बाद अपने बच्चों को और अपनी जीवनसहचरी को भी हार आया हो। आज़ाद जगदीश ने बाहर निकलकर एक बार फिर अपनी ओर ध्यान देने का प्रयत्न किया। अपने उत्तेजनापूर्ण अतीत को लज्जा-मनस्तापमय वर्तमान से मिलाकर उसने जब विचार किया तब उसका हृदय बड़े वेग से धड़ककर एकाएक बैठ गया। जिस सुख की, रस की, जीवन की आकांक्षा से वह जेल से बाहर आया था वह आकांक्षा उसे उतनी ही दूरी पर नज़र आती, जितनी दूरी पर जेल के भीतर से दिखलाई पड़ती थी—जगदीश जितना आगे बढ़ता उसकी आकांक्षा उसी अनुपात से पीछे खिसकती। इस तरह दोनों में जितना अन्तर था, उतना अन्तर ज्यों का त्यों बना रहा। जेल से छूटने के पहले उसने जिस उल्लास का अनुभव छूट जाने की कल्पना के रूप में किया था वह उल्लास छूट जाने पर न जाने कहाँ छिप गया। जगदीश ने जेल से निकलकर भी अपने आपको अकूलसागर में ही पाया, जिसमें चट्टान जैसी तरंगें उठ-उठकर बड़े वेग से गिरती हों। इतना ही नहीं, जो दिशा और समय के बन्धनों से बिलकुल मुक्त हो ऐसा सागर! गाँव के मित्रों ने जगदीश का स्वागत किया, पर म्लानमुख से, कुछ कुछ सकुचाये से, मानो उन्हें ऐसा लग रहा हो कि वे किसी अवांछनीय काम को बलपूर्वक करने जा रहे हों। जगदीश ने भी अपनी रूखी-सूखी मुस्कान से उनके विरस स्वागत का उत्तर दिया। मित्रों ने भी जगदीश की मनस्थिति का अनुभव किया और जगदीश ने भी लोकरुचि को भाँप लिया, पर दोनों एक-दूसरे के सामने अपने आपको छिपाना चाहते थे। जो भी हो, पर उसके लिए गाँव का वातावरण ऐसा नहीं था कि वह वहाँ के वातावरण में उन तत्त्वों को पावे जिनसे प्राणों में बल मिलता है, जीवन को उत्साह मिलता है, विचारों में मनोहरता आती है। एक दबी हुई घृणा, उपेक्षा, दुराव और झल्लाहट की झलक सर्वत्र उसे मिलती। पर वह जाय तो कहाँ? शहर की झलमलाती हुई बिजली के प्रकाश में जगदीश अपने आपको प्रकट करते हुए झिझकता था, उसकी आत्मा चोर बन चुकी थी जिसे अन्धकार से प्रेम हो गया था। वह चाहता था कि कभी सूर्योदय न हो, कभी प्रकाश न हो, सदा अन्धकार बना रहे। है कोई ऐसा स्थान संसार में, जहाँ केवल अन्धकार ही अन्धकार रहे, जहाँ कुछ दिनों तक रह कर—अपने आपको छिपा कर—जगदीश सुख की साँस ले, आत्मग्लानि के मूक धिक्कारों से अपने को बचा सके।

एक दिन भवानीदीन बोले—"तुम उदास क्यों रहते हो?" जगदीश एक ठंडी साँस लेकर चुप रहा। भवानीदीन फिर बोले—"भाई, इस तरह तो काम नहीं चलेगा। कहीं नौकरी वग़ैरह की खोज करो—सरकार को लिखो। वह तुम्हारी ओर ध्यान देगी।"

जगदीश मानो मन ही मन रो उठा, उसका हृदय कराह उठा, पर वह चुप रहा। उसकी निष्ठुर चुप्पी ने भवानीदीन को कुछ चिढ़ा दिया। वे अपने भावों को बड़े यत्न से छिपाकर बोले—"बेटा, मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी पिछली बातों को भूल जाओ। तुमसे जो भयानक नालायक़ी हो गई है उसका संशोधन हो चुका। अब तुम्हें चाहिए कि भले आदमियों से मिलो और ऐसा प्रयत्न करो कि समाज तुम्हें ग्रहण कर ले। इस तरह एकान्तवास से क्या होगा?"

जगदीश ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप उठा और कमरे में चला गया। भवानीदीन को उसकी यह गुस्ताख़ी अच्छी नहीं लगी। वे जगदीश को सुनाकर कहने लगे—"इतना पढ़ाया-लिखाया, सिर पर क़र्ज़ का भार लादा, घर की लोटा-थाली बेंच कर बबुआ को आदमी बनाया, पर उसका फल हाथों हाथ मिला। कोई किसी का नहीं है—हे नारायण, इस संसार से उठा लो! अब नहीं सहा जाता। शरण दो अशरण-शरणनाथ!" कमरे में पहुँचकर अपने दोनों कानों में कसकर उँगलियाँ डालकर जगदीश खाट पर लेट गया।

उसके हृदय में समुद्र-मंथन का भयानक दृश्य उपस्थित था। वह उसी तरह अपने भीतर ही भीतर तड़प रहा था, जैसे अन्धकार में किसी ओर से सनसनाता हुआ एकाध बाण आकर कलेजे में घुस जाय और घायल को यह पता ही न चले कि किसने किधर से क्यों आघात किया, वह किधर भागे, कहाँ अपने आपको छिपावे—आह कैसी भयानक स्थिति !

(३)

"क्या सुन रही हूँ ?"

"कहो तब न ! मैं भी सुनूँ !"

"गाँववाले कहते हैं कि......।"

"क्या कहते हैं ?"

"कहते हैं कि तुमने विश्वासघात किया है सो......।"

"सो क्या ?"

"कहा नहीं जाता ! कितनी बातें सुनती हूँ—क्या बतलाऊँ ? ख़ून का घूँट पीकर रहना पड़ता है—अब मुझसे नहीं सहा जाता।"

× × ×

शरद् की मन्दगामिनी स्वच्छ सरिता के तट पर जगदीश और कजली दोनों बैठे हैं। दिन का अन्त हो चुका है। शुभ्राकाश में दो-चार तारे मुस्कराते नज़र आते हैं। कजली गाँव की लड़की है, गोरी गोरी पर तितली की तरह चंचल, हरिणी की तरह भोली-भाली। जगदीश की बाल्य सखी है। दोनों ने दोनों के हृदय की धड़कन को मन के कानों से सुना है, दोनों ने दोनों की आँखों में छलकनेवाले लज्जामिश्रित मूक भावों को समझा है, दोनों ने दोनों के गरम उच्छ्वासों का अनुभव किया है, दोनों ने दोनों के विचारों पर, कल्पना पर, महत्त्वाकांक्षाओं पर अपनी छाया डाली है, दोनों ने दोनों को यौवन के रंगीन प्रकाश से निखरे हुए उषा-काल में अपने प्राणों के पड़ोसी-रूप में देखा है।

कजली बहुत ही कम बोलती थी, बहुत ही कम हँसती थी, बहुत ही कम अपने हृदय की कसक को भावों से व्यक्त करती थी। उसे आत्मसंगोपन से सुख मिलता था, पर जगदीश की वाणी उसके मन की सहचरी थी—मन की बातों को वाणी व्यक्त कर देती, पर कजली को अपने हृद्गत भावों की कसकसाहट को चुप रहकर महसूस करने में ही सुख मिलता था। उस दिन दोनों नदी-तट पर मिले और दोनों ने दोनों को बहुत दिनों पर आँखें भरकर देखा।

जगदीश बोला—"कजली, तुम झूठ तो नहीं बोलोगी ?"

कजली ने संक्षेप में उत्तर दिया—"ऊँहूँ !"

इधर-उधर देखकर जगदीश ने कहा—"तुम मुझसे घृणा तो नहीं करतीं ? सच सच बतला दो।"

भोली-भाली कजली बोली—"घृणा नहीं करती, पर तुम जेल से क्यों आये ? सुना है, तुमने विश्वासघात किया है। लोग तो यही कह रहे हैं।"

जगदीश ने कराहकर उत्तर दिया—"कजली, क्या कहूँ ?—आह !"

"मैं सच कहती हूँ।" अपनी कजरारी आँखों को ऊपर उठाकर कजली बोली—"लज्जा से मरी जाती हूँ। मुझे सुना सुनाकर लोग ताने मारते हैं। मैं तुम्हें—क्या कहूँ ! शब्द नहीं मिलते।"

"सत्य है।" जगदीश ने सिर नीचे करके कहा—"मैं भी अनुभव करता हूँ। पर अब क्या करूँ देवी ? अतीत का संशोधन कैसे हो ताकि मन की असहनीय पीड़ा मिटे ?"

"मैं क्या कहूँ ?"—दीर्घ निश्वास छोड़कर कजली बोली।

जगदीश ने व्यग्रतापूर्वक कहा—"कुछ तो कहो।"

कजली बोली—"मैं कितना लज्जित होती हूँ जब तुम्हें देखती हूँ। जब तुम जेल में थे, मैं गर्व से फूली नहीं समाती थी। न जाने क्यों मेरा हृदय गर्व से पागल बना रहता था ? तुम्हारी बहादुरी की बातें सुनती तब ऐसा लगता कि मैं आसमान पर पैर रखकर चल-फिर रही हूँ। हाय ! यह क्या हो गया ?"

जगदीश सिर झुकाकर चुपचाप बैठा रहा। उसके हृदय में भूकम्प के धक्के पर धक्के आते रहे। कजली कुछ क्षण चुप रहकर फिर कहने लगी—"तुम पुरुष हो, कीर्ति तुम्हारी चेरी है। पर मैं तो तुम्हारे ही तप से तपस्विनी, तुम्हारे ही बल से बलशालिनी, तुम्हारे ही यश से यशशालिनी बनूँगी। जब तुम्हीं कलंक-कालिमा में डूब जाओगे तब फिर मेरा क्या ठौर-ठिकाना है ? मैं जिस स्कूल में पढ़ती हूँ, वहाँ की सखियों ने जब मुझसे तुम्हारा हाल

कहा तब मैं किन शब्दों में बतलाऊँ कि मेरी दशा कैसी हो गई। अध्यापिकाओं के मुँह से जो कुछ मैंने सुना वह वर्णनातीत ही है। मैं......।"

जगदीश दोनों हाथों से कजली के पैर पकड़कर बोला—"देवी, क्षमा करो। चुप रहो। अब नहीं सहा जाता।"

पश्चिम के आकाश में विभावरीश की अमल विभा निखर गई। सरिता के जल पर ज्योत्स्ना की हल्की चमकदार लकीरें चमकने लगीं। शीतल हवा के मन्दमधुर झोंकों ने आकर जल की लहरियों को चूम लिया। नदी के उस पार की वनश्रेणी फिर एक बार स्वप्न की तरह—अस्पष्ट-सी—दिखलाई पड़ने लगी। धीरे धीरे सुधाकर ऊपर उठे। तारकाओं ने मानो दोनों ओर हटकर तारापति के मार्ग दे दिया।

(४)

दारोग़ा साहब 'वेस्टपेपर बास्केट' में पान की पीक थूकते हुए, सामने पड़े हुए काग़ज़ पर नज़र जमाकर, बोले—"हाँ, जगदीशकुमारसिंह, बाप का नाम भवानीदीन, क़ौम राजपूत, उम्र बीस साल—ठीक तो है!"

भवानीदीन आगे झुककर साग्रह बोले—"हुज़ूर ने क्या फ़र्माया?"

"कुछ नहीं जी"—रूखे स्वर में दारोग़ा साहब ने उत्तर दिया—"तुम्हारा लड़का बड़ा ख़तरनाक है। उसे रोज़ थाने पर हाज़िरी देनी चाहिए। समझ गये? समझा देना।"

भवानीदीन सकपकाये से बोले—"उसने तो सरकार का साथ दिया है।"

"बड़े उल्लू हो तुम जी"—दारोग़ा जी ने गम्भीर स्वर में घोषणा की—"मैं क्या जानूँ? उसने डाके डाले हैं, लूट-पाट की है। ऐसे ख़तरनाक आदमी को गोली से उड़ा देना चाहिए।"

भवानीदीन के काटो तो लहू नहीं। उनकी आशा-लतिका पर तुषार-पात नहीं, असनिपात हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि उनकी आँखों के सामने का सारा दृश्य घूम रहा है।

दारोग़ा जी ने फिर कहा—"जाओ, यही काम था। आज से ठीक चार बजे संध्या-समय—क्या नाम है तुम्हारे लड़के का?"

भवानीदीन ख़ुशामद-भरे स्वर में बोले—"हुज़ूर के ग़ुलाम का नाम है जगदीश!"

"हाँ, जगदीश"—दारोग़ा जी ने काग़ज़ उलटते हुए कहा—"उससे कह देना, रोज़ संध्या-समय चार बजे आकर हाज़िरी दे जाय, नहीं तो तुम लोगों के हक़ में बुरा होगा।"

"जो आज्ञा"—यह कहकर मर्माहतचित्त भवानीदीन थाने से लौटे। उनके पैरों के जूतों से जो आवाज़ निकल रही थी उससे भी उनके मन की अकथनीय खिन्नता, उदासी, पीड़ा प्रकट होती थी। वे हारे हुए जुआरी की तरह बेमन घर की ओर चले। रास्ते में एक पड़ोसी मिला। वह एक बातूनी किसान था तथा भवानीदीन का मित्र था। दोनों बैठकर घंटों ग़प्पें मारा करते थे। भवानीदीन कलकत्ते की कथा सुनाते और वह भूत-प्रेत की चर्चा करता। अचानक अपने मित्र को थाने से निकलते देखकर उस किसान के आश्चर्य हुआ। उसने आगे बढ़ कर पूछा—"क्या काम था भैया? सुना है, दारोग़ा जी बड़े क्रोधी हैं—सीधी तरह बोलते ही नहीं।"

भवानीदीन ने कहा—"मुझसे तो बेचारे सीधी तरह बोले। मेरे पुराने मित्र भी हैं। मुलाक़ात हुई तो कहने लगे कि मित्र, मैं तो आपके यहाँ ख़ुद आनेवाला था। बिना आप लोगों की सहायता के हम क्या कर सकते हैं?" यह कह कर वृद्ध भवानीदीन अचानक चुप हो गये। वह किसान विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखता रह गया। फिर ठहरकर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"वे जगदीश पर बहुत प्रसन्न हैं। कहने लगे—'भाई अपने लड़के के रोज़ संध्या-समय मेरे पास भेज दिया करो। क्या वह मेरा लड़का नहीं है?' बात सही है। जब दारोग़ा का मुझसे इतना प्रेम है तब फिर जगदीश तो उनका भतीजा ही ठहरा। हम दोनों भाई-भाई हैं।"

किसान सभक्ति अभिवादन करके बिदा हुआ। आज उसकी नज़रों में भवानीदीन का मूल्य बढ़ गया था। ख़ुद दारोग़ा साहब जिस पर इतनी कृपा रक्खें उसका मित्र होना गौरव की बात है और यह गौरव उस भोले-भाले किसान के प्राप्त था। भवानीदीन सोच-विचार में डूबते-उतराते घर लौटे। वे जगदीश की प्रकृति से बुरी तरह परिचित थे। उस दिन से पहले भी उन्होंने उसे काफ़ी समझाया था,

भय दिखलाया था, बड़ी-बड़ी नौकरियाँ दिलवाने के सुनहरे सपने दिखलाये थे। गरज़ यह कि भय-प्रीत-लोभ सभी उपायों को काम में लाकर भवानीदीन थक चुके थे, पर जगदीश अपने पथ से तनिक भी नहीं डिगा। जब वह पकड़कर जेल में बन्द किया गया तब उसने अपनी भूल को जाना। जेल से छूटने के बाद उसने अपना रवैया बदल दिया। भवानीदीन की अनुभवी आँखों से कोई भी रहस्य छिपा नहीं था। पर बेचारे अनन्योपाय थे। करते क्या? संध्या-समय जगदीश को एकान्त में बुलाकर उन्होंने समझाने का प्रयत्न किया। वे बोले—"बेटा, दारोग़ा अपने आदमी हैं। वे चाहते हैं कि एक बार नित्य तुम उनसे मुलाक़ात कर लिया करो। मैं समझता हूँ, इसमें कोई हेठी या बुराई नहीं है।"

जगदीश ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठा रहा।

भवानीदीन फिर बोले—"मैं तुमसे अपने प्रश्न का उत्तर सुनना चाहता हूँ। चुप रहने से काम नहीं चलेगा।"

इस बार जगदीश का कंठ फूटा—"मैं क्यों दारोग़ा से मुलाक़ात करने जाऊँ? मैं कोई चोर हूँ, जो थाने पर हाज़िरी लिखवाया करूँ?"

"हाज़िरी!"—भवानीदीन कुछ चिढ़कर बोले—"हाज़िरी की तो कोई बात ही नहीं है। वे तुमसे मुलाक़ात करना चाहते हैं।"

जगदीश ने रुखाई के साथ कहा—"किसी दिन जाऊँगा, रोज़ रोज़ की दौड़ मुझे पसन्द नहीं। मैं किसी का नौकर नहीं हूँ। दारोग़ा हों या...।"

भवानीदीन इस चिन्ता में पड़े कि अब क्या कह कर समझाया जाय। जब वह कुछ सुनता ही नहीं तब फिर भवानीदीन करें तो क्या? कुछ देर चुप रहकर उन्होंने फिर कहा—"बात यह है कि सरकार यह चाहती है कि कुछ दिनों तक तुम्हारे चाल-चलन पर निगाह रक्खी जाय। मेरी समझ से इसमें कोई बुराई की बात नहीं है। जब तुममें कोई बुराई नहीं है तब फिर झिझक भी नहीं होनी चाहिए। मैं तो यही ठीक समझता हूँ।"

जगदीश झल्ला उठा। उसका यौवन से भरा हुआ चेहरा एक बार तमतमाकर तत्काल पीला पड़ गया। अपने मनस्ताप की आग को छाती में छिपाकर उसने दो-तीन मास गाँव में व्यतीत किये थे, पर अत्यन्त बेकली के साथ। उस दिन अपने पिता के मुख से थाने पर हाज़िरी देने की बात सुनकर जगदीश अत्यन्त व्यग्र हो उठा। उसे ऐसा लगा कि उसकी कुचली हुई आत्मा पर 'रोलर' चलाया जा रहा है। चारों ओर एक धिक्कार की जो आँधी उठ रही थी उसका अनुभव जगदीश चुपचाप करता था और मन ही मन अकुलाता था, पर धीरे धीरे उसका सहनभावुक हृदय पथरा रहा था। इस हाज़िरीवाली बात ने उसे अधीर कर दिया। उसने पाप किया था, भूलें की थीं, ग़लत मार्ग को अपने लिए पसन्द किया था। यह सब तो हो चुका था विधि-विडम्बना के रूप में, पर वह चाहता था एक कोने में मुँह छिपाकर जीवन के दिनों को समाप्त कर देना, पर यह भी नहीं हो सका। वह ऐसी जगह पर खड़ा था जिसके एक ओर भयानक अन्धकूप था, जिसके सड़े हुए पानी में साँप-बिच्छू कलबला रहे थे और दूसरी ओर काँटों से भरी हुई अतलस्पर्शी खाई थी। ऐसी अवस्था में तत्काल अपने लिए कल्याणप्रद मार्ग ढूँढ़ना ग़रीब जगदीश के लिए एक बेबूझ पहेली-सी थी। वह धीरे धीरे उठा और घर से बाहर चला गया।

कार्तिक की लुभावनी सुनहरी संन्ध्या थी। हवा में हल्की सर्दी और दिशायें स्वच्छ थीं। आकाश गम्भीर नीलिमा में डूबा हुआ सा दिखलाई पड़ता था, मानो किसी बच्चे की स्वच्छ नीली आँखों की पुतलियाँ हों। सूर्यास्त हो चुका था। वह नदी-तट की ओर अनमना-सा चला। रास्ते में जो किसान मिले उनसे आँखें बचाकर आगे बढ़ जाने के लिए जगदीश की आत्मा छटपटा उठी। पर उपाय? वह अपने आपको प्रकाश का मनुष्य नहीं, अन्धकार का जीव समझता था। जनमनरंजन प्रकाश उसके लिए विडम्बना का कारण था, दिन का जाज्वल्यमान रूप जगदीश के चोर हृदय को राक्षस की तरह भयानक लगता था। किसानों में से एक ने छेड़ कर पूछा—"किधर चले भैया?" जगदीश का हृदय धड़क उठा। वह खड़ा हो गया। किसान ने फिर भोलेपन से अपने प्रश्न को दोहराया। जगदीश चौंककर बोला—"यों ही . नदी की ओर।" "सुना है कि"—किसान बोला—"दारोग़ा जी तुम्हें थाने पर बुलाते हैं। गाँव का चौकीदार—अरे वही भदैया—कह रहा था।"

जगदीश इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार न था। प्रश्न इतनी सीधी भाषा में किया गया था कि उसका उत्तर देना उसके लिए कठिन हो गया। कुछ देर चुप रह कर वह बोला—"मुझे तो नहीं मालूम है।"

मुस्कराकर किसान ने कहा—"वाह, अच्छा अनजान बनते हो! सारा गाँव जिस बात को जानता है उसी बात से तुम अपने को अनजान रखना चाहते हो। न कहो। यह तुम्हारी इच्छा, पर......।"

जगदीश का चेहरा उतर गया। उसने धीरे से कहा—"पर मैं सच कह रहा हूँ भैया, विश्वास करो या न करो। तुम्हारी मर्ज़ी।"

घृणा और अविश्वास भरी हँसी हँसकर किसान बोला—"तुमने—ख़ैर, जाने दो! थाने पर तो चोर हाज़िरी देते हैं। तुम्हें शायद याद न हो। यहाँ एक गोंड़ था—मँगरू। पक्का चोर। रोज़ थाने पर हाज़िरी देने जाता था। पास-पड़ोस में कभी चोरी होती तो वह ज़रूर पकड़ा जाता और उस पर जूते पड़ते। ऊब कर वह गाँव छोड़कर भाग गया। पर कम्पनी बहादुर का राज्य छोड़कर कहाँ जा सकता है? उदय से अस्त तक कम्पनी बहादुर का राज्य है। इसके राज्य में सूर्यास्त नहीं होता। यह बात सही है न जगदीश भाई?" ऊबकर जगदीश बोला—"मैं नहीं जानता।"

किसान ने कहा—"वाह तुमने अँगरेज़ी पढ़ी है सो।"

जगदीश बोला—"सब भूल गया। माफ़ करो।"

किसान बड़बड़ाता हुआ चला गया, पर जगदीश के हृदय की सुप्त पीड़ा को कुरेद कर जगाता गया, उसके मन की दबी हुई आग पर फूँक मारकर उसे भड़काता गया। मर्माहतचित्त जगदीश नदी-तट पर पहुँचा और हारा-सा बालू पर बैठ गया, मानो एक साँस में विश्वप्रदक्षिणा करके अभी अभी आया हो।

दिन का अन्त हो गया। आकाश में तारे टिमटिमाने लगे। संध्या की धुँधली छाया मन्दगामिनी सरिता पर पड़ने लगी। अपने श्वेत पंख फैलाकर बगुले उड़ उड़कर नदी-तट पर आने लगे। शान्ति तथा निस्तब्धता का स्वप्न-सा फैल गया। ठंडी हवा के हल्के-मधुर स्पर्श से जगदीश के हृदय को कुछ आराम मिला। वह चुपचाप लेट गया और धीरे धीरे सो गया। सारी चिन्तायें, सारे मनोद्वेग निद्रा की गम्भीरता में विलीन हो गये। जगदीश जिस प्रकार अपनी मा की गोद में पयोमुख शिशु आराम से मीठी नींद लेता है, उसी प्रकार अनन्त बालुकाराशि पर आराम से सो गया।

(५)

मानसिक उद्वेगों ने उग्ररूप धारण करके जगदीश के हृदय को छिन्न-भिन्न कर दिया। रात-दिन की व्याकुल भावनाओं के निष्ठुर प्रहारों को सहते सहते उसका दिमाग़, उसका मन उकता उठा। वह जिधर भी जाता, उसे ऐसा लगता कि सभी उसकी ओर घृणाव्यंजक दृष्टि से देखते हैं। वह अनुभव करता कि एक साथ ही ३५ करोड़ उँगलियाँ उठी हुई हैं और आकाश-पाताल तथा सभी दिशाओं से छिः छिः की मर्मान्तक ध्वनि अनवरत गूँज रही है। कभी अभागा जगदीश घर में घुसता और कभी सुनसान नदी-तट या पहाड़ियों की घाटियों में जाकर बैठता। कहीं भी उसके मन को शान्ति न मिलती, विराम न मिलता, आश्वासन न मिलता और करुणा न मिलती। एकबारगी ही सारा संसार उससे मुँह मोड़ चुका है और जीवमात्र उससे घृणा करने लग गये हैं, ऐसी मनहूस कल्पना का शिकार बना हुआ जगदीश बड़ी बेकली से अपने जीवन के बुरे दिन समाप्त कर रहा था! वह कभी अत्यन्त उत्तेजित हो उठता और कभी तकिये में मुँह छिपाकर बच्चे की तरह फूट फूटकर रोता और अपने उमड़ते हुए हृदय को क्षण भर के लिए धीरज बँधाता या बँधाने का असफल प्रयत्न करता। उसके उद्भ्रान्त चित्त को कहीं भी विश्राम न मिलता। एक कजली थी, जिसकी याद उसे जेल में भी बाहर निकलने के लिए तड़पाती थी, पर अब वह कजली की कल्पना करके भी सिहर उठता। जगदीश की दशा ऐसी हो गई थी कि शीशे के सामने खड़ा होकर अपना मुँह देखना भी उसके लिए कठोर साहस का काम था। ऐसी मनोदशा के फ़ेर में पड़ा हुआ जगदीश एक दिन कजली के सामने जाकर एकाएक खड़ा हो गया। आम की घनी बारी में वह अकेली घूम रही थी और थी शान्त दुपहरी। कोमल धूप फैली हुई थी। पेड़ों की छाया में बैठकर गायें आराम से आँखें बन्द किये जुगाली कर रही थीं।

जगदीश ने कजली को पुकारा। वह चौंक कर खड़ी हो गई। चकित हरिणी की तरह उसकी भोली

आँखें जगदीश के चेहरे पर पड़ते ही आपसे आप झुक गईं।

जगदीश ने निकट जाकर पूछा—"कजली, आज एक बात पूछने आया हूँ। साफ़ साफ़ उत्तर देना।"

कजली का कोमल हृदय जगदीश की बात सुनकर धड़क उठा। वह डर रही थी कि जगदीश क्या पूछेगा। उसे ज्ञात था कि आज-कल वह विक्षिप्त-सा हो गया है। उसने उस अभागे नवयुवक को समझाने-बुझाने का अनेक बार प्रयत्न भी किया था, पर परिणाम उलटा ही हुआ। पैर का काँटा थोड़ी-सी कोशिशों के बाद निकाल डाला जाता है, पर हृदय का काँटा चिताग्नि में ही जलकर शरीर के साथ ही राख होता है - वह निकालने की चीज़ नहीं। उसे मालूम था कि जगदीश के कोमल कलेजे में काँटा चुभ गया है और वह निकाले नहीं निकलने का।

कजली ने सकपका कर धीरे से पूछा—"क्या पूछते हो?"

"यही कि"—जगदीश तेज़ी से बोला—"तुम मुझे प्यार करती हो या घृणा।"

"तुमने आज शराब तो नहीं पी ली"—कजली धीरे से बोली।

जगदीश ने व्यग्रतापूर्वक कहा—"तुम जो समझो, पर मुझे विश्वास है कि मेरे होश ठीक हैं—मैं नशा तो छूता भी नहीं। बोलो। क्या उत्तर देती हो?"

कजली भौंहें टेढ़ी करके बोली—"मैं ऐसे किसी प्रश्न का उत्तर देना पसन्द नहीं करती। तुम घर जाकर सो रहो।"

जगदीश दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोला—"तुम भी मुझसे घृणा करने लगी हो।"

कजली डर गई, पर साहस करके बोली—"मैं कौन हूँ तुमसे घृणा करनेवाली जगदीश बाबू? तुम पागलों की-सी बातें कर रहे हो। मैं कहती हूँ, कल मुलाक़ात करना। जाओ, इस समय जाकर सो रहो। अरे तुम्हारी आँखें कितनी लाल लाल हैं! सच कहो। तुमने शराब तो नहीं पी ली है।"

"मैं शराब पी लूँ या ज़हर।" जगदीश ज़ोर से बोला—"तुम कौन होती हो मुझसे पूछनेवाली? हटो अपना रास्ता लो। उफ़्—अब इस जीवन में केवल विडम्बना शेष रह गई है। पटाक्षेप—बहुत शीघ्र पटाक्षेप!"

जगदीश तेज़ी से मुड़ा और चल पड़ा। कजली ने व्यग्र स्वर में पुकारा—"जगदीश बाबू! जगदीश बाबू!!" कजली की तीखी पर थकी हुई आवाज़ सन्नाटे में गूँज उठी, ध्वनिप्रतिध्वनि की तरंगों में परिणत होकर समाप्त हो गई, पर कोई उत्तर न आया। कजली पगली की तरह पुकारती हुई दौड़ी—"जगदीश बाबू! जगदीश बाबू!!" आवाज़ वृक्षों के पत्तों में हलका कम्पन पैदा करके महाशून्य में विलीन हो गई। जगदीश ने कोई उत्तर नहीं दिया। अब वह कजली की आँखों से भी ओझल हो चुका था। दौड़ती हुई कजली ने फिर पुकारा—"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ जगदीश बाबू—लौटो। मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रही हूँ।

कोई उत्तर नहीं। आम की बारी में 'सायँ-सायँ' हवा चल रही थी—वृक्षों की फाँक से कोमल धूप हरी भूमि पर सोने की टुकड़ियों की तरह चमक रही थी।

धीरे-धीरे दिन का अन्त हो गया। संध्या आई और आम की बारी में अन्धकार छा गया। गम्भीर निर्जनता के हृदय को मसलकर पुकार रही थी किसी दुखिया की आत्मा—"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—लौटो।"

पर लौटे कौन?

संसार में लौटने का नियम नहीं है। दिन नहीं लौटते, रात नहीं लौटती, झरकर गिरे हुए कोमल फूल नहीं लौटते, आँखों से ढुलककर आँसू की बूँदें नहीं लौटतीं, सुख के सपने नहीं लौटते! जब कोई नहीं लौटता तब फिर अनन्त-पथ का पथिक जगदीश कैसे विधि का विधान टालकर कजली की पुकार पर लौटता?



भारतीय नृत्यकला

लेखक, श्रीयुत एल० सी० माथुर

हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में नृत्यकला का अतीत काल से एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसकी प्रशंसा की बातें चारों वेदों में मिलती हैं और उस युग के महापुरुषों में इन्द्र, अर्जुन, कर्ण आदि इसके लिए विख्यात हैं।

प्राचीन काल में हिन्दू-सम्राटों के यहाँ यह पद्धति थी कि वे नृत्य और संगीत के लिए एक पृथक् भवन रखते थे। उसकी दीवारों पर नृत्य के विविध आकार-प्रकार अङ्कित रहते थे ताकि नृत्यकारों को उत्तेजना मिले और वे अपनी भूलें सुधार सकें।

गुप्तकाल में समुद्रगुप्त (३२६-३७५ ई० से पूर्व) ने अपने सिक्के चलाये थे। उनमें उसका चित्र वीणा के साथ अङ्कित है।



[ताण्डव-नृत्य का एक नमूना]

प्राचीन काल में नृत्य सम्राटों और राजकुमारों का एक अत्यन्त प्रियविनोद था। सरदारों और महिलाओं में भी इसका प्रचार था। दक्षिण-भारत में द्रविड़ों की सभ्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। आर्यों के आने से पहले वे इस कला में पारङ्गत थे।

कहा जाता है कि उत्तर-भारत में जब कृष्ण के नृत्य अत्यन्त लोकप्रिय हुए तब शिव के ताण्डव नृत्य पीछे पड़ गये।

प्राचीन ग्रन्थों में एक विचित्र घटना का उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि उत्तर-भारत के एक राजा ने दक्षिण की यात्रा की। उसका उद्देश्य चिदम्बरम् में स्थापित शिव की मूर्ति को रिझाना था। चिदम्बरम् के निकट उसने एक कुएँ में स्नान किया। स्नान करते ही उसका शरीर स्वर्ण का हो गया। इसके बदले में उसने चिदम्बरम् के शिव के मंदिर को स्वर्ण से मढ़वा दिया।

उस मंदिर के भीतर ताण्डव-नृत्य के १०८ प्रकार अङ्कित हैं। नाट्य-शास्त्र में इन सबों का उल्लेख हुआ है।

दक्षिण-भारत में आर्यों और द्रविड़ों दोनों की धार्मिक भावना नृत्य के द्वारा अत्यधिक जाग्रत हुई है। ईश्वर से साक्षात्कार करने का नृत्य भी वहाँ एक साधन माना गया है। ईसवी सन् के ५००-६०० वर्ष पहले से ही वहाँ ६३



[कृष्ण-नृत्य का एक नमूना]



[गन्धर्व-नृत्य]



[कृष्ण-नृत्य का एक नमूना]

शैव कवियों ने मंदिर मंदिर में जाकर शिव की प्रशंसा के गीत गाये हैं।

शिव के ताण्डव नृत्यों के साथ साथ भागवत के अनुसार कृष्ण के नृत्यों का भी विकास और प्रचार हुआ है। इस प्रकार के नृत्यों का केन्द्र मथुरा था। जन्माष्टमी के अवसर पर आज दिन भी कृष्ण के मंदिरों में रासलीलायें होती हैं।

मुसलमानों के शासन-काल में हिन्दुओं की यह श्रेष्ठ कला नष्ट हो गई। यदि थोड़ी-बहुत बच सकी तो केवल कतिपय हिन्दू रियासतों में। इस प्रकार जब मुस्लिम शासन का अन्त हुआ और पटपरिवर्तन हुआ तब नृत्य और संगीत का जीर्णोद्धार पुनः आरम्भ हो गया, परन्तु मुस्लिम-शासन-काल के पश्चात् उनका रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। उत्तर-भारत में कथक-नृत्यों का उसी समय से प्रचार हुआ।

जिस समय मुस्लिम-प्रभाव दक्षिण-भारत में बढ़ा, मुसलमानों की मूर्तिभञ्जन की प्रवृत्ति बहुत कुछ कुण्ठित हो चुकी थी, इसलिए दक्षिण-भारत की प्राचीन परम्परा, संस्कृति और कला एक सीमा तक सुरक्षित रही।

भारतीय नाट्य-शास्त्र के नियमों के अनुसार नृत्य का एक अच्छा नमूना कथाकालीन नृत्य है। इसमें अभिनय, गायन और वादन तीनों का सम्मिश्रण रहता है। यह नृत्य सम्भवतः १६ वीं शताब्दी में अस्तित्व में आया। दक्षिण-भारत में आज दिन भी इसका अच्छा प्रचार है।

भारतीय नृत्य के दो स्पष्ट भेद हैं। लास्य और ताण्डव। लास्य नृत्य में स्त्री का प्रभाव अधिक रहता है और ताण्डव पौरुष का परिचायक है।



[पञ्चाङ्ग-नृत्य]

नाविक

लेखक, श्रीयुत जानकीवल्लभ शास्त्री

नाविक, अभी सवेरा है,
तरी खोल झट; कह, वह तट भी पहचाना क्या तेरा है?
तय करनी है कितनी दूरी?
खे लेने की ताक़त पूरी?
तब ले चल; हाँ, अतल सलिल का रहता डर बहुतेरा है?
सभी ओर दिखता कुहरा ही,
तू बैठा ज्यों थककर राही,
सुनता हूँ—उस ओर सभी का होता रैन-बसेरा है!
नाविक, अभी सवेरा है।

इक़बाल की कविता

लेखक, श्रीयुत शमशेरबहादुर सिंह, बी० ए०



उर्दू और फ़ारसी की कविता के इतिहास में ग़ालिब के बाद हम इक़बाल के अतिरिक्त और कोई दूसरा प्रसिद्ध नाम नहीं ले सकते; और आधुनिक युग में भारत के रवीन्द्र और इक़बाल ही दो कवि हैं, जिनको संसार ने अपने महाकवियों में स्थान दिया है। आज वे उन अमर सत्वों के साथ एक हो गये हैं जो समय के असित प्रवाह में समुज्ज्वल रूप से चिर काल के लिए स्थिर हैं। संसार की कुछ विभूतियों के लिए हमें अतिशयोक्ति का प्रयोग करना पड़ता है; क्योंकि यदि वे कवि हैं तो केवल कवि ही नहीं हैं; यदि वे राष्ट्र के निर्माता हैं तो केवल राष्ट्र के निर्माता ही नहीं हैं; दार्शनिक हैं तो दार्शनिक के अतिरिक्त और भी कुछ हैं। जीवन की गति-विधि को मोड़ने, देश की संस्कृति को अधिक परिष्कृत और माधुर्यपूर्ण करने, मनुष्य के वर्तमान को अधिक मूल्यवान् बनाने, उसके भविष्य को अनन्त ज्योति की सत्ता से अधिक सजीव करने का पुण्य श्रेय इन्हीं आत्माओं को प्राप्त होता है।

दार्शनिक इक़बाल

मनुष्य का जीवन कितना विवश है; उसे सँभालने, उसे आशा की सांत्वना से शांत, सशक्त और मंगलमय करने की कितनी आवश्यकता है, यह युग-प्रवर्तक कवियों की वाणी के स्वर और कंपन, उनकी विह्वल आशाओं, उनके प्राणों की असह्य वेदना से ही कुछ-कुछ हम जान सकते हैं।

अपनी एक शुरू की कविता में इक़बाल कहते हैं कि मुझे इस तमपूर्ण संसार में हृदय-हृदय के अंतर-प्रकाश की दीपावली करनी है—

'जलाना है मुझे हर शमए-दिल को सोज़े-पिन्हा से
तेरी ज़ुल्मत में मैं रौशन चिराग़ाँ करके छोड़ूँगा।'

इस समय तक इक़बाल योरप नहीं गये थे। आँखों में देश की स्वतन्त्रता का स्वप्न था और हृदय में स्वदेश-प्रेम का दर्द। नवयुवक कवि को अपनी उच्चाकांक्षा और कल्पना के विहार के लिए एक क्षेत्र मिल गया था। अपनी वाणी के द्वारा देश की सब जातियों को प्रेम के एक सूत्र में बाँधना ही कवि ने अपना लक्ष्य बनाया—

'पिरोना एक ही तस्बीह में इन बिखरे दानों को—
जो मुश्किल है तो इस मुश्किल को आसाँ करके छोड़ूँगा!'

इस प्रेम-सूत्र के द्वारा अपनी निहित शक्तियों को जानने और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए कवि विकल है। वह विश्व की एकता का मनुष्य और प्रकृति में, जड़ और चेतन में, सबमें प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहता है।

'बस्तए-रंगे-ख़ुसूसियत न हो मेरी ज़बाँ;
नौए-इन्साँ क़ौम हो मेरी, वतन मेरा जहाँ;
दीदए-बातिन प राज़े-नज़्मे-क़ुदरत हो अयाँ;
हो शनासाए-फ़लक शमए-तख़य्युल का धुआँ;
उक़दए-अज़दाद की काविश न तड़पाए मुझे;
हुस्ने-इश्क़-अंगेज़ हर शै में नज़र आए मुझे!

अर्थात्—गुण-भेद के बंधन में मेरी वाणी न फँसे, बल्कि मानव-मात्र को मैं अपनी जाति और संसार भर को अपना वतन समझूँ; प्रकृति के रहस्य मेरे अंतर-चक्षुओं पर प्रकट हों; मेरी कल्पना का दीप-धूप आकाश की गहनता से परिचित हो;—मैं विभिन्नता की समस्याओं में पड़कर विकल न रहूँ; बल्कि वस्तु-वस्तु में मुझे प्रेममय सौंदर्य दिखाई दे।

दीपक का प्रकाश सब स्थानों में एक-सा रहता है, किन्तु मनुष्य का हृदय तो मन्दिर-मस्जिद के भेद-भाव में फँसा हुआ है, अस्तु, कवि खिन्न होकर कहता है—

'काबे में बुतकदे में है यकसाँ तेरी ज़िया,
मैं इम्तियाज़े-दैरो-हरम में फँसा हुआ!'

किन्तु—शमा हुई, चाँद हुआ, सूर्य हुआ; ये अपनी हक़ीक़त को नहीं जानते, जानने-समझने की मनुष्य की-सी विकल क्षमता भी इनमें नहीं। इस ज्ञान से कवि को कुछ सांत्वना मिलती है और अपने पथ की ओर संकेत भी—

'फिर भी ए माहे-मुबीं! मैं और हूँ, तू और है!
दर्द जिस पहलू में उठता है व' पहलू और है!
—'चाँद'

वह अपनी विह्वलता के दर्पण में चिर-मिलन का

आकर्षण देखकर तन्मय हो जाता है। वास्तव में अंतर की विकल आकांक्षा जिसे प्राप्त करना चाहती है वही सत्य है, शाश्वत है, वही सच्ची स्वाधीनता है; वह वस्तु-वस्तु के भेद से परे है और ज्ञानातीत है; किन्तु प्रेमी को वह सुलभ है।

'जो तू समझे तो आज़ादी है पोशीदा मोहब्बत में
गुलामी है असीरे-इम्तियाज़े-मा-व-तू रहना !'

अर्थात्, 'मैं' और 'तू' के भेद में बँध जाना ही पराधीनता है।

'जलाना दिल का है गोया सरापा नूर हो जाना
य' परवाना जो सोज़ाँ हो तो शमए-अंजुमन भी है'

अर्थात् यह उर-शलभ यदि जल उठे तो यही सभा का दीप—संपूर्णतः ज्योतिर्मय—हो जाय !

हृदय मस्तिष्क से कहता है—

'इल्म तुझसे, तो मारफ़त मुझसे—
तू ख़ुदा-जू ख़ुदा-नुमा हूँ मैं !'

[मारफ़त—ईश्वर की पहचान] अर्थात्, तू ईश्वर का खोजी सही, उस ओर पथ-प्रदर्शक मैं ही हूँ।

'तू मकानों-ज़माँ से रिश्ता-ब-पा
तायरे - सिद्रह - आशना हूँ मैं !'

['सिद्रह'—सातवें आकाश का एक विटप] अर्थात् तू काल और स्थान के पग-बंधनों में पड़ा है, किन्तु मेरे पंख स्वर्ग के अंत-तम उपवनों से परिचित हैं।

उसकी सूक्ष्म-दर्शी कल्पना उस अवस्था में जब कुछ क्षण के लिए उसे पहुँचा देती है तब वह आश्चर्य और द्विधा से पूछ उठता है—

'मैं हुस्न हूँ कि इश्क़ सरापा-गुदाज़ हूँ
खुलता नहीं कि नाज़ हूँ मैं या नियाज़ हूँ'।

अर्थात् मैं पूर्णतः द्रवित प्रेम का स्वरूप हूँ अथवा पूर्ण सौंदर्य ? समझ में नहीं आता कि मैं स्वयं नाज़ हूँ अथवा नाज़ उठानेवाला !

नव-युवक इक़बाल की इस बेताबी, जोश और तड़प से हम पहले-पहल 'तसवीरे-दर्द' में प्रभावित होते हैं। कवि के स्वदेश-प्रेम, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए उसकी महत्त्वाकांक्षा और उसकी ओर प्रेरणा, एकता और प्रेम की अद्भुत विश्व-विजयिनी शक्ति और चमत्कार—इन सबका सुन्दर दिग्दर्शन इसमें होता है। और फिर कैसी प्रवाहमय, ओजपूर्ण भाषा में प्रबल कल्पना-द्वारा इस भाव-शृंखला का पोषण हुआ है ! कुछ शेर देखिए—

नहीं मिन्नत-कशे-ताबे-शुनीदन दास्ताँ मेरी
ख़मोशी गुफ़्गू है, बेज़बानी है ज़बाँ मेरी !

किसी में सुनने की ताब हो, ऐसी मेरी कहानी नहीं; मौन ही मेरा वार्तालाप, मेरी मूकता ही मेरी ज़बान है।

य' दस्तूरे-ज़बाँ बंदी है कैसा तेरी महफ़िल में ?
यहाँ तो बात करने को तरसती है ज़ुबाँ मेरी !

कुछ कहने को हम विकल हैं; मगर क़ानून से हमारा मुँह बंद कर दिया गया है।

× × ×

टपक ए शमा ! आँसू बन के परवाने की आँखों से !
सरापा दर्द हूँ, हसरत भरी है दास्ताँ मेरी !

सरापा—सिर से पाँव तक, पूर्णतः।

× × ×

परेशाँ हूँ मैं मुश्ते-ख़ाक, लेकिन कुछ नहीं खुलता,
सिकंदर हूँ, कि आईना हूँ, या गर्दे-कदूरत हूँ !

मैं उड़ती हुई एक मुट्ठी धूल हूँ। किन्तु कौन जाने यह (अमरत्व की खोजी) सिकंदर बादशाह की मिट्टी हो !—यह प्रतिबिंब हो विश्व-जीवन का ! अथवा कलुषता की गर्द हो केवल !

य' सब कुछ है मगर हस्ती मेरी मक़सद है क़ुदरत का !
सरापा नूर हो जिसकी हक़ीक़त, मैं व' ज़ुल्मत हूँ !

कुछ भी हो, मेरा जीवन प्रकृति का उद्देश्य है; ज्योति जिसकी वास्तविकता है, मैं वह अंधकार हूँ।

× × ×

असर यह भी है इक मेरे जनूनें-फ़ितना-सामाँ का,
मेरा आईनए-दिल है क़ज़ा के राज़दानों में !

एक असर यह भी है मेरे इस उपद्रवपूर्ण पागलपन का कि मेरे हृदय का दर्पण भी मृत्यु का रहस्य जानने-वालों में से है।

रुलाता है तेरा नज़्ज़ारा, ए हिन्दोस्ताँ, मुझको;
कि, इबरत-ख़ेज़ है तेरा फ़साना सब फ़सानों में !

'इबरत-ख़ेज़,' करुण शिक्षा-पूर्ण।

× × ×

फ़िदा करता रहा दिल को हसीनों की अदाओं पर
मगर देखी न इस आईने में अपनी अदा तूने !

'आईना', अर्थात् दिल।

तअस्सुब छोड़ नादाँ ! दह के आईना-ख़ाने में
य' तसवीरें हैं तेरी जिनको समझा है बुरा तूने !

ओ नादान, असहिष्णु न बन ! इस दुनिया के शीश-महल में सब तेरे ही प्रतिबिंब हैं, जिन्हें तू बुरा बताता है।

बाद को यह कवित्व-शक्ति 'शमा-ओ-शायर,' 'ख़िज़्रे-राह', 'तुलूए-इस्लाम,' 'साक़ी-नामा' आदि कविताओं में आध्यात्मिकता की दृष्टि से अधिक पुष्ट तथा गम्भीर और गहन हो गई है। जिस महासागर के संगम के लिए उसकी मानस-धारा विकल थी, मानो वह उसे प्राप्त हो गया है, जहाँ से (मुस्लिम-जगत् के द्वारा ही सही) एक आह्वान-स्वर समस्त संसार के लिए उठता रहता है।

सुनिए—

आश्ना अपनी हक़ीक़त से हो ए दहक़ाँ ! ज़रा,—
दाना तू, खेती भी तू, बाराँ भी तू, हासिल भी तू !

रे गँवार ! अपने अस्तित्व से अभिज्ञ हो; देख कि बीज, खेती, वर्षा और खेत की पैदावार—तू ही सब कुछ है !

आह ! किसकी जुस्तजू आवारा रखती है तुझे ?—
राह तू, रहरौ भी तू, रहबर भी तू, मंज़िल भी तू !

तू किसकी खोज में भटक रहा है ? अरे, पथ और पथिक, पथ-प्रदर्शक और लक्षित स्थान, सब कुछ तू ही तो है !

काँपता है दिल तेरा अंदेशए-तूफ़ाँ से क्या !
नाख़ुदा तू, बह तू, कश्ती भी तू, साहिल भी तू !

तूफ़ान का डर क्या जब कि तू ही नाविक और तू ही सागर और तू ही उस पार का तट है ?

देख आकर कूचए-चाके-गरेबाँ में कभी !
क़ैस तू, लैला भी तू, सहरा भी तू, महमिल भी तू !

ओ विक्षिप्त, तेरी धज्जियों के चीर-चीर में जो गलियाँ-सी बन गई हैं उनमें घूम-घूमकर देख कि तू ही मजनूँ, तू ही लैला, तू ही वन और बयाबान और तू ही वह पर्दा है जिसमें लैला छिपी हुई है !

वाय नादानी ! कि तू मोहताजे-साक़ी हो गया;
मै भी तू, मीना भी तू, साक़ी भी तू, महफ़िल भी तू

कितना अज्ञान कि तू स्वयं साक़ी का मोहताज हो गया जब कि मधु, मधुपात्र, साक़ी और महफ़िल सब तेरे ही अंदर हैं ?

शोला बनकर फूँक दे ख़ाशाके-ग़ैरुल्लाह को !
ख़ौफ़े-बातिल क्या ? कि है ग़ारत-गरे-बातिल भी तू !

अनीश्वरता के तृण को आग की लपट बन कर फूँक दे ! क्या भय असत्य का ? आख़िर असत्य और मिथ्या का नाश करनेवाला भी तू ही है।

—'शमा-ओ-शायर' से

पुनः कहते हैं—

य' मौजे-नफ़स क्या है, तलवार है !
ख़ुदी क्या है, तलवार की धार है !

'मौजे-नफ़स,' साँसकी गति-लहर; 'ख़ुदी', अहम्।

ख़ुदी—जल्वा-बदमस्त-ओ-ख़िल्वतपसन्द !
समुंदर है इक बूँद पानी में बंद !

अहं ज्योति-दर्शन से विभोर एकांत का प्रेमी है; इस एक बूँद पानी में सागर की शक्ति छिपी हुई है।

अँधेरे उजाले में है ताबनाक !
मनो-तू से पैदा, मनो-तू से पाक !

अँधेरे और उजाले में बराबर तेज-पूर्ण; 'मैं' और 'तू' की रागात्मिकता से उत्पन्न भी, किन्तु फिर राग-मुक्त भी है।

अज़ल इसके पीछे, अबद सामने !
न हद इसके पीछे, न हद सामने !

इसका आदि अनादि है और अंत अनंत।

ज़माने के दरिया में बहती हुई !
सितम इसकी मौजों के सहती हुई।

यह अहं समय-सागर में प्रवाहित और इसकी लहरों से प्रताड़ित है।

तजस्सुस की राहें बदलती हुई
दमादम निगाहें बदलती हुई।

सब ओर दृष्टि-संचालन करती हुई यह प्रत्येक पथ से खोज में लीन है।

सुबक इसके हाथों में संगे-गराँ !
पहाड़ इसकी ज़र्बों से रेगे-रवाँ !

शैल-खंड का भार इसके हाथों में क्या है ? इसकी चोटों से गिरि-शृंग भी रेणु-रेणु है !

सफ़र इसका अंजाम-ओ-आग़ाज़ है
यही इसकी तक़वीम का राज़ है!

यात्रा में ही इसका आदि और अन्त है। इसकी शक्ति का रहस्य यही है।

किरन चाँद में है, शरर संग में
य' बेरंग है डूबकर रंग में!

यही चन्द्रमा में शीतल किरण है और पत्थर में आग की चिंगारी है। यह सब रंगों में है, किन्तु इसका कोई रंग नहीं।

ख़ुदी का नशेमन तेरे दिल में है
फ़लक जिस तरह आँख के तिल में है।

आँख के तिल में जैसे आकाश, उसी प्रकार तेरे हृदय में इस अहं का नीड़-निवास है।

अस्तु, देश-प्रेम के लोक-प्रिय तरानों का स्थान इक़बाल की बाद की कविता में इस्लामी-धर्म से अभिभावित एक अधिक व्यापक प्रकार के आदर्शवाद ने ले लिया, जिसमें इस्लामी दुनिया का सांस्कृतिक और धार्मिक संगठन का भाव अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। वास्तव में स्वदेश-प्रेम से ऊपर उठकर इक़बाल ने अपने धर्मानुयायियों को जिस आदर्श की ओर प्रेरित किया है उसे हम अनुदार कदापि नहीं कह सकते, यद्यपि कुछ पाठकों का इसके बारे में हमसे भिन्न मत है। क्योंकि इक़बाल के 'मुस्लिम' की व्याख्या करने पर हम उसे संसार-समाज का एक आदर्श व्यक्ति पाते हैं। यह 'मुस्लिम' कोरी फ़िलासफ़ी की अकर्मण्यता और 'फ़िरंगी तहज़ीब' के चित्ताकर्षक याथातथ्यवाद के समकक्ष अपनी एकेश्वरवादी आस्था, अपना दृढ़ आत्म-विश्वास और सूफ़ियों के-से विश्व-विजयी प्रेम की अभूतपूर्व शक्ति को रखता है। इनके बल पर क्या वस्तु, क्या शक्ति उसके अधिकार में नहीं! वह मृत्युञ्जय है और पूर्ण अर्थ में स्वतन्त्र है। 'मर्दे-मुसलमान' की पंक्तियाँ हैं—

हर लहज़ा है मोमिन की नई शान नई आन,
गुफ़्तार में, करदार में, अल्लाह की बुरहान!

धर्म-भीरु पुरुष प्रतिक्षण नवीन गौरव को प्राप्त होता है; अपनी वाणी और कर्म से वह स्वयं ईश्वर की सत्ता का प्रमाण है।

'क़ह्हारी'-ओ-'ग़फ़्फ़ारी'-ओ-'क़ुद्दूसी'-ओ-'जबरूत'
यह चार अनासिर हों तो बनता है मुसलमान!

ईश्वरीय रोष तथा ईश्वरीय क्षमा, पवित्रता तथा गुरु-तेजस्व, ये चार गुण-तत्त्व जब मिलते हैं तब मुसलमान का आविर्भाव होता है।

हमसायए-जब्रीले-अमीं बंदए-ख़ाकी!
है इसका नशेमन न बुख़ारा न बदख़्शान!

ख़ाक से बने इस दीन-जन का वास तो ईश्वर के परम-सेवक (फ़िरिश्ता) हज़रत जब्रील के समकक्ष है; पृथ्वी के बुख़ारा, बदख़्शाँ आदि को उसका घर न समझो।

यह राज़ किसी को नहीं मालूम, कि मोमिन—
क़ारी नज़र आता है, हक़ीक़त में है क़ुरआन!

यह रहस्य किसी को ज्ञात नहीं कि मोमिन स्वयं क़ुरान-शरीफ़ है, यद्यपि प्रकट-रूप से वह इस धर्म-पुस्तक का पारायण करनेवाला ही जान पड़ता है।

क़ुदरत के मक़ासिद का अयार इसके इरादे
दुनिया में भी मीज़ान, क़यामत में भी मीज़ान!

उसके संकल्प प्रकृति के चरम उद्देश्यों का परिमाण हैं। जैसा कि संसार में, वैसा ही न्याय के अंतिम दिवस भी, तुला के समान, वह सदैव पूरा—आदर्श-रूप—उतरता है।

जिससे जिगरे-लाला में ठंडक हो, व' शबनम;
दरियाओं के दिल जिससे दहल जाएँ, व' तूफ़ान!

लाला के छोटे से फूल के हृदय पर वह ओस की शीतलता के समान है; किन्तु वह ऐसा तूफ़ान भी है जिससे दरियाओं के दिल दहल जायँ।

फ़ितरत का सरोदे-अज़ली इसके शबो-रोज़,
आहंग में यकता सिफ़ते-सूरए-रहमान!

उसके दिवा-निशि में प्रकृति का अनादि संगीत है, जिसका स्वर-नाद 'सूरए-रहमान' [क़ुरान-शरीफ़ का एक अध्याय] सा ही अद्वितीय और असामान्य है।

किन्तु वह संसार की विजय अपने ऐश्वर्य के लिए नहीं चाहता। उसका तो वैयक्तिक जीवन निःसंग दीनता पर—फ़क़ीरी पर—निर्धारित है, जो प्रतिक्षण सर्वशक्तिमान् से उसे मिलाये रखती है। उसकी दिग्विजय का भौतिक रूप तो एक गौण रूप है, यद्यपि उसका यह रूप उपेक्षा के योग्य नहीं।

न तख़्तो-ताज में, ने लश्करो-सिपाह में है
जो बात मर्दे-क़लंदर की बारगाह में है !

'मर्दे-क़लंदर की बारगाह', त्यागी तपस्वी का डेरा कवि कहता है कि ताज, निशान, लश्कर ये तो फ़क़ीरों के चमत्कार हैं—

फ़ुक्र के हैं मुअजज़ात—ताजो-सरीरो-सिपाह
फ़ुक्र है मीरों का मीर, फ़ुक्र है शाहों का शाह !
इल्म का मक़सूद है पाकीए-अक़्लो-ख़िरद !
फ़ुक्र का मक़सूद है इफ़्फ़ते क़ल्बो-निगाह !

ज्ञान का ध्येय बुद्धि के निर्मल करना है, फ़ुक्र का दृष्टि और मन के पवित्र करना।

इल्म फ़क़ीहो-हकीम, फ़ुक्र मसीहो-कलीम
इल्म है जोयाए-राह, फ़ुक्र है दानाए-राह।

'ज्ञान' तत्त्वान्वेषक दार्शनिक है, किन्तु 'फ़ुक्र' (फ़क़ीरी, तप, साधना) स्वयं मसीह और हज़रत मूसा की शक्ति से अभिभूत है। ज्ञानी केवल पथ खोजता रहता है, किन्तु फ़क़ीर उसको जानता और समझता है।

फ़ुक्र मुक़ामे-नज़र, इल्म मुक़ामे-ख़बर
फ़ुक्र में मस्ती सवाब, इल्म में मस्ती गुनाह !

तप साक्षात्कार है, ज्ञान केवल श्रुति है। मस्ती फ़क़ीर के लिए आध्यात्मिक सुख है, किन्तु, ज्ञानी के लिए विडम्बना है, पाप है।

दिल अगर इस ख़ाक में जिंदा-ओ-बेदार हो
तेरी निगह तोड़ दे आइनए-मह्रो-माह !

इस विभूति के प्रसाद से यदि कहीं हृदय (मन) जाग उठे तो तेरी एक दृष्टि सूर्य और चन्द्र का आईना तोड़ दे सकती है।

संसार की जो भी जाति अथवा राष्ट्र इस महान् (मुस्लिम) आदर्श का पालन करने में समर्थ होगा वही बड़े से बड़े ऐहिक और पारलौकिक सम्मान-पद और शक्ति का अधिकारी होगा।

अगर है इश्क़, तो है कुफ़्र भी मुसलमानी;
न हो, तो मर्दे-मुसलमाँ भी काफ़िर-ओ-ज़िंदीक़ !

'ज़िंदीक़' (ज़िंदाअवस्ता को माननेवाला) अर्थात् विधर्मी।

पश्चिमी सभ्यता के बारे में भी कहते हैं—

सरूरो-सोज़ में नापायदार है, वर्ना
मये-फ़िरंग का तह-जुरआ भी नहीं नासाफ़ !

यानी इसकी ज्वाला, इसका नशा ठहरनेवाला नहीं, नहीं तो इस 'फ़िरंगी' हाला की भी तलछट ना-साफ़ नहीं, अर्थात् साफ़ है।

इक़बाल और वतन

इस्लाम का सच्चा पथ अलौकिक साधना का पथ है। सद्विचार, सद्भक्ति और एकेश्वरी आस्था से ही प्राचीन महापुरुषों की-सी क्षमता फिर मनुष्य में पैदा हो सकती है। आधुनिक राष्ट्रों का अस्थिर बल-प्रदर्शन तथा पूर्व-देशों में नाना देवों की पूजा-आराधना आत्म-निहित परब्रह्म की ज्योति के सम्मुख तृण के समान है।

पश्चिमी आदर्शों से अनुप्राणित देश-भक्ति भी जीवन की सच्ची महान् प्रेरणाओं के एक संकुचित सीमा में ही परतन्त्र कर देती है। यह भी एक प्रकार की मूर्ति-पूजा है। इसकी पूजा के मोह के पीछे अपनी आंतरिक स्वतंत्रता के जीवन-स्रोत को तथा उसके परम उद्गम से अपने सम्बन्ध के हम विस्मृत कर देते और खो देते हैं। हम यहाँ 'वतनीय्यत' शीर्षक कविता ('बांगे-दरा' पृष्ठ १७३-४) का सार-भाव देते हैं—

आधुनिक सभ्यता के मूर्ति-भवन में सबसे विशालकाय मूर्ति 'वतन' की है। 'जो पैरहन (वस्त्र) इसका है व' मज़हब का कफ़न है !' अस्तु, ए इस्लाम को ही अपना 'देश' माननेवाले, 'ए मुस्तफ़वी ! ख़ाक में इस बुत को मिला दे !' सीमा-बन्धन का परिणाम तबाही है; तू स्थान की सीमा से स्वतन्त्र हो जा ! 'वतन' का राजनीति की भाषा में कुछ और अर्थ है और धर्म की भाषा में (हमारे नबी का इरशाद) कुछ और है। इसी 'वतन' के कारण संसार की जातियों में प्रतिद्वंद्विता है। यही विदेश-विजय के व्यापार का ध्येय बना देता है। राजनीति सत्य से ख़ाली हो जाती है और कमज़ोर का घर ग़ारत हो जाता है। ईश्वर की सृष्टि जातियों में बँट जाती है तथा इस्लाम के भ्रातृत्व का मूलोच्छेद हो जाता है।

अपनी स्वतंत्र शक्ति से यदि मनुष्य आध्यात्मिक गौरव को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो तो संसार की कोई शक्ति उसे कभी परतंत्र नहीं रख सकती। अनेक स्थलों पर इक़बाल ने मनुष्य की पावन श्रेष्ठता का गुण-

गान किया है। सर्व-नियंता के सम्मुख अनेक बार उसे सृष्टि की अन्य विभूतियों तथा फ़रिश्तों तक से अधिक पवित्र तथा ईश्वर की शक्ति व अनुकम्पा का एकमात्र अधिकारी और आधार बताया है। मनुष्य अपनी शक्तियों को पहचाने, उनके द्वारा निरन्तर उत्थान को प्राप्त होता हुआ अधिकाधिक ज्योतिर्मय होता जाय—इक़बाल की कविता इसी लक्ष्य की ओर संसार को प्रेरित करती है।

इस ज़र्रे को रहती है वसअत की हवस हरदम
यह ज़र्रा नहीं, शायद सिमटा हुआ सहरा है!

इस कण को प्रतिपल विकास की अभिलाषा है। संभवतः यह कण नहीं, कोई सिमटा हुआ मरु-प्रदेश है!

चाहे तो बदल डाले हैय्यत चमनिस्ताँ की
यह हस्तीए-दाना है, बीना है, तवाना है!

इसका प्रबुद्ध, चक्षुष्मान् शक्तिमय जीवन चाहे तो संसार का अस्तित्व ही बदल दे।

—'इन्सान' (बाँगे-दरा)

उरूजे-आदमे-ख़ाकी से अंजुम सहमे जाते हैं—
कि यह टूटा हुआ तारा महे-कामिल न बन जाए!

इस मिट्टी के पुतले का उत्थान देखकर नक्षत्र सहमे जाते हैं कि कहीं स्वर्ग-लोक से गिरा हुआ यह तारा बढ़ते बढ़ते व्योम का पूर्ण चन्द्र न बन जाय!

यहाँ दो अतीव सुन्दर ग़ज़लें हम देते हैं। इनका अर्थ-गौरव जिस पूर्णता के साथ मनुष्यात्मा की महत्ता का द्योतक है, अनुवाद में उसकी झलक-मात्र भी कहाँ आ सकती है!

(१)

इस ग़ज़ल में विश्व की गति-विधि पर मनुष्य की गर्वोक्ति-पूर्ण टिप्पणी है; प्रश्नों के रूप में ईश्वर के प्रति एक हलका-सा उलाहना है।

अगर कज-रौ हैं अंजुम, आसमाँ तेरा है या मेरा?
मुझे फ़िक्रे जहाँ क्यों हो! जहाँ तेरा है या मेरा?

अर्थात् मुझे संसार की चिंता क्यों हो? नक्षत्रों की गति उल्टी है तो हुआ करे! आख़िर यह विश्व, यह व्योम तेरा है या मेरा? (तू ही तो इनका नियंता है, मैं तो नहीं!)

अगर हंगामाहाए-शौक़ से है ला-मकाँ ख़ाली
ख़ता किसकी है, या रब! ला-मकाँ तेरा है या मेरा!

अगर यह असीम महत्त्वाकांक्षाओं के संघर्ष से शून्य है तो किसका अपराध है, प्रभु? तुम्हारा ही तो है यह असीम! न कि मेरा!

उसे सुबहे-अज़ल इन्कार की जुरअत हुई क्योंकर
मुझे मालूम क्या! वह राज़दाँ तेरा है या मेरा!

मैं क्या जानूँ, उसे अनादि के प्रभात-काल में अवज्ञा का साहस कैसे हुआ? तेरे ही तो अंतरङ्ग रहस्यों का ज्ञाता है वह! (अर्थात् मेरी उत्पत्ति पर इब्लीस (शैतान) क्यों नत-मस्तक नहीं हुआ, इसका कारण तू ही जानता है!)

मोहम्मद भी तेरा, जब्रील भी, क़ुरआन भी तेरा!
मगर यह हर्फ़े-शीरीं तर्जुमाँ तेरा है या मेरा?

यह सब तेरे हैं—पैग़म्बर भी (फ़रिश्तों में अन्यतम) जब्रील भी और क़ुरान भी; मगर यह (मानव की) सुमधुर वाणी किसकी भाष्यकार है? तेरी या मेरी?

इसी कौकब की ताबानी से है तेरा जहाँ रौशन,—
ज़वाले-आदमे-ख़ाकी ज़ियाँ तेरा है या मेरा?

इसी नक्षत्र की ज्योति से तेरे संसार में उजाला है; अब इस धूलि-कण-विनिर्मित मानव के ह्रास में बता हानि किसकी है? तेरी या मेरी?

(२)

यह ग़ज़ल तो मनुष्यात्मा की महत्ता की स्तुति ही है।

मेरी नवाए-शौक़ से शोर हरीमे-ज़ात में!
ग़ल्ग़लाहाए-अल्-अमाँ बुतकदए-सिफ़ात में!

मेरी आकांक्षाओं के राग-स्वर की परब्रह्म के गृह में धूम है। उसके नाद से गुणों के मूर्ति-मंदिरों में "त्राहि-माम्!" मच रही है।

हूरो-फ़रिश्ता हैं असीर मेरे तख़य्युलात में—
मेरी निगाह से ख़लल तेरी तजल्लियात में!

अप्सरायें और स्वर्गदूत मेरी कल्पनाओं के बंदी हैं। मेरे दृष्टि-पात से तेरी ज्योति के पारावार में ख़लल पैदा हो जाता है!

गरचे है मेरी जुस्तजू दैरो-हरम की नक़्शबंद
मेरी फ़ुग़ाँ से रुस्तख़ेज़ काबा-ओ-सोमनात में!

यद्यपि मेरी खोज की भावना ही मंदिर और मस्जिद के चित्र निर्माण करनेवाली है, तथापि मेरा कातर क्रंदन काबा और सोमनाथ दोनों के लिए क़यामत है!

गाह मेरी निगाहे-तेज़ चीर गई दिले-वजूद
गाह उलझ के रह गई मेरे तवह्हुमात में !

कभी तो मेरी तीक्ष्ण दृष्टि स्थायित्व के मर्म तक को भेद जाती है और कभी ऐसा होता है कि अपनी शंकाओं में ही उलझ कर रह जाती है।

तूने य' क्या ग़ज़ब किया ! मुझको भी फ़ाश कर दिया
मैं ही तो एक राज़ था सीनए-कायनात में !

(ए कवि !) सृष्टि के उर में मैं ही तो एक रहस्य था। उसे खोलकर तूने यह क्या उत्पात किया ?

इक़बाल की काव्य-कला

इक़बाल का संदेश प्रेम-साधना-द्वारा आत्म-विश्वास और आत्म-ज्ञान का संदेश है। यह आत्म-ज्ञान 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' ('ला-इलाह-इल्-लिल्लाह') पर निर्धारित है, अर्थात् ईश्वर एक है और कोई दूसरा उसका सानी नहीं। इस मंत्र-द्वारा संसार में नव-जाग्रति पैदा करने की ओर इस महाकवि ने अपनी काव्य की सभी शक्तियों को केंद्रित कर दिया है। इक़बाल ने प्रकृति-चित्रण के सर्वोच्च उदाहरण उर्दू-कविता को प्रदान किये हैं—; मनुष्य के साधारण हर्ष-विषाद तथा रागानुराग का वर्णन;—स्वयं अपने सुख-दुख की लिरिक अभिव्यक्ति; इन सबको इक़बाल ने अलंकार-रूप से केवल अपने आध्यात्मिक विश्वासों के प्रतिपादन तथा मुस्लिम-संस्कृति को अपनी वाणी-द्वारा परिष्कृत तथा समुत्थित करने के कार्य में लगा दिया है। फलतः इक़बाल के पद्य नाना अर्थ-संकेतों से पूर्ण हैं; अनेक संचारी भावों से पुष्ट हैं; श्रेष्ठ तथा अत्यंत सजीव कल्पना-शक्ति से अनुप्राणित हैं; चमत्कारपूर्ण शब्द-विन्यास से सुसंस्कृत और अलंकृत हैं; ओजस्विनी भाषा के प्रवाह से गंभीर हैं। भावों में एक पैग़म्बराना शान, सूफ़ियों की सी एक मस्ती है, जिसके कारण छंद और गति में लोच और स्वर में एक हलकी-सी झंकार और कंपन पैदा हो गई है। नाद की गर्मी में एक स्थिर, दृढ़ यौवन की-सी गूँज है, जो कवि की अंतिम काल की कविताओं में अभिमंत्रित-सी हो गई जान पड़ती है। नाद और लोच और कंपन का अभी ज़िक्र किया गया है। उसका आभास पिछले उद्धरणों में मिल चुका होगा। फिर भी यहाँ उनकी 'मैं और तू' शीर्षक प्रसिद्ध कविता में इसके सौंदर्य का हम विशेष रसास्वादन कर सकते हैं।

'मैं और तू'

न सलीक़ा मुझमें कलीम का, न क़रीना तुझमें ख़लील का;
मैं हलाके-जादुए-सामरी, तू क़तीले-शेवए-आज़री !

न तो मुझमें हज़रत मूसा की-सी प्रतिभा है (जो तुझे, ऐ मुस्लिम ! धर्म-संकट से निकाल सकूँ) और न तुझमें हज़रत इब्राहीम की एकेश्वर-वादी आस्था के से ढंग हैं। अवस्था यह है कि इधर मैं झूठे चमत्कार के जादू पर मिटा जाता हूँ, उधर तू अपनी मूर्ति-पूजा के स्वभाव पर बलि है।

मैं नवाए-सोख़्ता दर गुलू, तू परीदा रङ्ग, रमीदा बू;
मैं हिकायते-ग़मे-आरज़ू, तू हदीसे-मातमे दिलबरी !

मैं कंठ का जला-बुझा स्वर हूँ, तू उड़ा हुआ-सा रङ्ग और विलीन हुई-सी सुगन्ध; मैं अभिलाषाओं की करुणा का उपदेश हूँ और तू प्रेमात्म-समर्पण के अंत पर एक शोक-अध्याय है !

मेरा ऐश ग़म, मेरा शहद सम, मेरी बूद हम-नफ़से-अदम;
तेरा दिल हरम, गिरवे-अज़म, तेरा दीं ख़रीदए-काफ़िरी !

दुख मेरा ऐश और गरल मेरा मधुपान हैं, मेरा अस्तित्व नास्त्यावस्था के निकट है। तेरा हृदय जो पवित्र काबा है, मूर्ति-स्थानों में गिरवी पड़ा है। तेरा धर्म अधर्म से मोल लिया हुआ है।

दमे-ज़िंदगी रमे-ज़िंदगी, ग़मे-ज़िंदगी समे-ज़िंदगी;
ग़मे-रम न कर, समे-ग़म न खा, कि यही है शाने-क़लंदरी !

जीवन की साँस ही जीवन की गति है, जीवन का शोक ही जीवन का विष है। ओ, रे ! इस गति का शोक न कर, इस शोक-विष का पान न कर; क्योंकि साधुओं की यही शान है !

तेरी ख़ाक में है अगर शरर, तो ख़याले-फ़क्रो-ग़ना न कर,
कि जहाँ में नाने-शईर पर है मदारे-क़ुव्वते-हैदरी !

तेरी मिट्टी में अगर चिंगारी है तो अमीरी और फ़क़ीरी का ख़याल न कर, क्योंकि संसार में हैदरे-कर्रार (इस्लाम-धर्म के एक संत) की-सी शक्ति का आधार जौ की रोटी ही है।

कोई ऐसी तर्ज़े-तवाफ़ तू मुझे ए चिराग़े-हरम बता
कि तेरे पतंग को फिर अता हो वही सरिश्ते-समंदरी !

ऐ काबा के पवित्र दीपक ! मुझे परिक्रमा की कोई ऐसी विधि बता जो तेरे पतङ्ग को फिर वही अग्निवासी समंदर का-सा स्वभाव प्राप्त हो।

गिलए-जफ़ाए-वफ़ा-नुमा कि हरम को अहले-हरम से है—
किसी बुतकदे में बयाँ करूँ तो कहे सनम भी 'हरी! हरी!'

भक्ति के रूप में जो विश्वासघात काबावालों ने काबा के साथ किया है उसकी शिकायत की चर्चा कहीं यदि किसी मन्दिर में मैं करूँ तो मूर्तियाँ भी 'हरि:! हरि:!' कह उठें!

× × ×

करम, ऐ शहे-अरबो-अजम, कि खड़े हैं मुंतज़िरे-करम—
व' गदा कि तूने अता किया है जिन्हें दिमाग़े-सिकंदरी!

ए अरब और अजम (अरब के अतिरिक्त और भी देशों) के बादशाह! (हज़रते-पैग़म्बर!) तेरी अनुकंपा की प्रतीक्षा में वे भिखारी खड़े हुए हैं जिन्हें तूने सिकन्दर का-सा मस्तिष्क प्रदान किया है!

इक़बाल की कविता में वह शक्ति है जो मुर्दा दिलों में जान डाल देती है; बुझे हुए सर्द हृदय को गर्माकर मन को कर्म की प्रबल प्रेरणा से अस्थिर कर देती है। जीवन को अपनी सत्ता का आभास देकर आत्म-विश्वास के विजयोल्लास से भर देती है। यह कथन अतिशयोक्ति नहीं। इन पद्यों को पढ़कर भी क्या कोई संदेह कर सकता है—

गुलामी में न काम आती हैं शमशीरें, न तदबीरें!
जो हो ज़ौक़े-यक़ीं पैदा तो कट जाती हैं ज़ंजीरें!

ज़ौक़े-यक़ीं = दृढ़ विश्वास की आकांक्षा।

कोई अंदाज़ा कर सकता है उसके ज़ोरे-बाज़ू का?—
निगाहे-मर्दे-मोमिन से बदल जाती हैं तक़दीरें!

निगाहे-मर्दे-मोमिन = स्वधर्मारूढ़ पुरुष की दृष्टि।

विलायत, पातशाही, इल्मे-अशिया की जहाँगीरी—
य' सब क्या हैं? फ़क़त इक नुक़्तए-इमाँ की तफ़्सीरें!

उपनिवेश, साम्राज्य, विज्ञान का संसाराधिपत्य—यह सब केवल एक धर्म-तत्त्व के ही अर्थ-विस्तार हैं।

बराहीमी नज़र पैदा मगर मुश्किल से होती है;
हवस छिप-छिप के सीनों में बना लेती है तसवीरें!

संसार में एक ईश्वर-शक्ति को ही देखनेवाली हज़रत इब्राहीम की-सी दृष्टि का पैदा होना सहज नहीं; लोभी आकांक्षायें हृदय में गुप्त रीति से विविध मूर्तियों का निर्माण कर लेती हैं।

तमीज़े-बंदओ-आक़ा फ़िसादे-आदमीयत है!
हज़र, ऐ चीरा-दस्ताँ! सख़्त हैं फ़ित्रत की ता'ज़ीरें!

सेवक और स्वामी का भेद-भाव मनुष्यता का दुर्गुण है। ऐ धन-मान की पगड़ी से सजनेवालो, बचो!—क्योंकि (चाहे मनुष्य के क़ानून और ताज़ीरें तुम्हारी रक्षा कर भी सकें) प्रकृति के नियम अति कठोर हैं!

हक़ीक़त एक है हर शै की, ख़ाकी हो कि नूरी हो!
लहू ख़ुरशीद का टपके अगर ज़र्रे का दिल चीरें!

प्रत्येक वस्तु चाहे वह ज्योति से निर्मित हो अथवा धूल-कण से, एक ही सत्य से पूर्ण है। किसी कण का यदि हृदय चीरें तो उसमें से सूर्य का रक्त टपकेगा।

यक़ीं मोहकम, अमल पैहम, मोहब्बत फ़ातहे-आलम
जहादे-ज़िंदगानी में हैं यह मर्दों की शमशीरें!

जीवन के संघर्ष में मर्दों की खंग और तलवार क्या है—दृढ़ विश्वास, अनवरत कर्म और विश्व-विजयनी प्रेम-भाव!

आधुनिक युग के कितने ही विषयों का समावेश इक़बाल की कविता में हुआ है, जिसका कुछ अनुमान इन शीर्षकों से हो सकेगा—'वतनीयत', 'तालीम और उसके नहायज' (शिक्षा और उसके फल), 'तहज़ीबे-हाज़िर' (आधुनिक सभ्यता), 'मोटर', 'असीरी', (परतंत्रता, 'ख़िज़्रे-राह' में—'सल्तनत', 'सरमायाओ-मेहनत' (पूँजी और मेहनत), आदि, 'लेनिन', 'दीनोसयासत' (धर्म और राजनीति), 'मुसोलिनी', 'सिनेमा' 'योरप', 'फ़िरंग-ज़द:' (अँगरेज़ी, अर्थात् पाश्चात्य, सभ्यता से ग्रस्त) इत्यादि इत्यादि। जीवन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय पर गंभीर गहन विचारों का निष्कर्ष उनकी कविता में हमें मिलता है, जो श्रेष्ठ स्पष्ट कवित्व-शैली में प्रभाव-पूर्ण रीति से व्यक्त किये गये हैं।

प्रकृति-चित्रण

इक़बाल का प्रकृति-चित्रण तो एक स्वतन्त्र लेख का विषय है। इसमें जहाँ एक ओर आकार रूप रंग और स्वभाव के गहरे निरीक्षण का पता चलता है, वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनसे उत्पन्न 'मूड' के ठीक-ठीक प्रतिबिंब भी उन्होंने कितनी सफलता-पूर्वक उतारे हैं। 'एक आरज़ू' 'कनारे-रावी' 'एक शाम—दरियाए-नेकर के किनारे पर' मशहूर उदाहरण हैं।

ख़ामोश है चाँदनी क़मर की
शाख़ें हैं ख़मोश हर शजर की

'क़मर', चाँद; 'शजर', पेड़

× × ×

फ़ित्रत बेहोश हो गई है
आग़ोश में शब के सो गई है

'फ़ितरत', प्रकृति; 'आग़ोश', गोद; 'शब', रात।

कुछ ऐसा सकूत का फ़सूँ है
नेकर का ख़राम भी सकूँ है

'सकूत', शांति; 'फसूँ', जादू; 'ख़राम', मंद गति; 'सकूँ', शांत।

तारों का ख़मोश कारवाँ है
यह क़ाफिला बे-दरा रवाँ है

'बे-दरा', बिना घंटी की आवाज़ के।

ख़ामोश हैं, कोहो-दश्तो-दरिया
क़ुदरत है मराक़बे में गोया!

'कोह', पहाड़; 'दश्त', जंगल—बयाबान; 'मराक़बा', ध्यान की स्थिति या आसन।

ए दिल! तू भी ख़मोश हो जा
आग़ोश में ग़म के लेके सो जा!

—'दरियाए-नेकर के किनारे' से

उनकी इन दो पंक्तियों में संध्यावसान का पूरा चित्र है—

सूरज ने जाते-जाते शामे-सियः-क़बा के
तश्ते-उफ़क़ से लेकर लाले के फूल मारे!

—'बज़्मे-अंजुम' से

'शामे-सियः-क़बा', असित-वस्त्राभूषित संध्या; 'तश्ते-उफ़क़', अरुण द्वाभा की (क्षितिज की सीमा से गोल) तश्तरी; 'लाला', लाल रंग का एक वन-कुसुम।

अर्थात्—विदा के समय सूर्य ने संध्या-बाला को क्षितिज की तश्तरी से लेकर कुछ लाले के फूल मारे। प्रकृति में प्रेम-परिहास-पूर्ण रोमांस, अर्थात् जीवन-स्थित प्रेरणाओं की गति का आभास—और समय के सतत नव-अनुरंजित प्रवाह की एक छाया-सी—दो पंक्तियों में जाग्रत कर दी गई है। इसमें विदा-भाव का उपहास-सा है, करुणा का हास-सा;...कवि! यह प्रकृति के किस आंतरिक जीवन की झलक है?

पुरानी इमारतों के साथ प्राकृतिक दृश्यों का एकीकरण करके ऐतिहासिक स्मृतियों से कल्पना के जगाते हुए कवि अपने भाव-संकेतों-द्वारा काल-परिवर्तन के पर्दों में से जीवन के अमर तत्त्वों के प्रकाशित करता है। यथा, 'गोरिस्ताने-शाही', "सिक़लैया (जज़ीरए-सिसिली)', 'मस्जिदे-क़ुरतबा' इत्यादि में।

× × ×

शायद इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि कहीं-कहीं (विशेषतः अंतिम प्रौढ़तम रचना-काल के कुछ फुटकर पद्यों में) इस दार्शनिक कवि के कर्तव्योपदेश और आह्वान में उपदेश की मात्रा ने भाव के काव्यांश के किंचित् गौण-सा कर दिया है कि हमें बरबस उक्तियों और नीति के दोहों की याद हो आती है। वास्तव में इक़बाल की गंभीर विचार-धारा में हास्य-रस के सहकारी भाव का एकदम अभाव है। इसका पुट इक़बाल के वास्तविक गुरु ग़ालिब की रचनाओं में हमें अक्सर मिलता है। इस रसाभाव के कारण यद्यपि यहाँ यह ध्यान में आता है कि यह अभाव इक़बाल के यहाँ इतना कभी नहीं खटकता जितना साधारणतया मिल्टन की रचनाओं में—इस रसाभाव के कारण मनुष्य का साधारण गार्हस्थ्य जीवन उनकी काव्य-दृष्टि के आकृष्ट नहीं करता। उनकी अहंमन्य आशावादिता हमें ब्राउनिंग की याद दिलाती है। अंतर यह है कि भारतीय कवि को मनोवैज्ञानिक समस्याओं के चित्रण में दिलचस्पी नहीं है; उनका क्षेत्र एकदम दार्शनिक है। वे धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं की व्याख्या अक्सर करते हैं, लेकिन एक दार्शनिक की दृष्टि से। उनका धार्मिक आदर्शवाद दान्ते की-सी कल्पना के पंख फैलाकर, ग्येटे के व्यावहारिक ज्ञान-वैचित्र्य के क्षेत्र से भी ऊपर उठकर, भारतीय दर्शन-शास्त्र मात्र को कल्पना-जनक संघर्षहीन आदर्शवाद से पूर्ण कहकर, उसकी कवित्वपूर्ण आलोचना करता हुआ 'ला-इलाह' के परम-पद की प्रदक्षिणा में लीन हो जाता है तथा 'मुस्लिम' के व्यक्तित्व-द्वारा श्रेष्ठ कविता के सब प्रेमियों को अपने शक्ति-प्रद काव्य-रसानंद में किसी भी समय तन्मय कर देने की पूर्ण क्षमता रखता है। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, संसार के इस महाकवि पर और अधिक वास्तविक गर्व होगा, इसमें संदेह नहीं है।

उन्नीस सौ पैंतीस

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

पात्र

सुरेन्द्र—	एक ग्रेजुएट
बूढ़ी—	सुरेन्द्र की मा
शशी—	सुरेन्द्र की स्त्री
महेश—	सुरेन्द्र का मित्र

गोविन्द, मकानमालिक, रामधन आदि।

समय १० बजकर ३० मिनिट, प्रातःकाल।

(एक बड़े नगर का तिमंज़िला मकान, जिसमें कई किरायेदार रहते हैं। नीचे के भाग में बैठकनुमा कमरा, जिसका एक दरवाज़ा मकान की दहलीज़ में और एक बाहर सड़क की ओर है। दो खिड़कियाँ भी उधर ही खुलती हैं। सड़क के दरवाज़े में एक टूटी चिक ऊपर बँधी है। दोनों खिड़कियाँ खुली हुई हैं। १० × १५ फुट का कमरा है। कमरे के दक्षिण की ओर एक और दरवाज़ा है, जो रसोई की ओर है। कमरे में तीन अलमारियाँ हैं। दो में बेतरतीबी से किताबें भरी हैं, एक बंद है। तीन टूटे हुए सन्दूक़ एक ओर रक्खे हैं। पूर्व की अलमारी के पास एक मेज़ है, जिस पर मेज़पोश के बजाय 'आयल क्लाथ' बिछा है। कुर्सियाँ बहुत पुरानी हैं, मेज़ पर एक होल्डर, एक पेंसिल है। एक तरफ़ शीशे की जापानी दवात रक्खी है। सड़क की ओर दरवाज़े के पास एक टूटी हुई सीतलपाटी बिछाये एक बूढ़ी औरत बैठी कुछ सी रही है। उससे ज़रा दूर एक टाट पर एक नवयुवती बैठी दाल बीन रही है। बूढ़ी की उम्र लगभग पचास साल—बाल सब सफ़ेद, मुँह पर झुर्रियाँ, आँखों के कोये काले और छोटी घुसी हुई आँखें। एक डोरे से बँधी कमानी का चश्मा लगाये हुए है। मुँह पिचका हुआ, दाँत थोड़े से और बेढंगे। रंग गेहुँआ, शरीर चिंता से दबा हुआ। नवयुवती की धोती फटी हुई है, जिसके छेदों में पीठ तक बिखरे हुए लम्बे लम्बे बाल दीख रहे हैं। छींट की एक फटी हुई बंडी पहने है। देखने में सुन्दर, लगभग सत्रह साल की उम्र है। नाक लम्बी और उस पर फोड़े का एक निशान है। आँखें बड़ी बड़ी, मुँह लम्बा, ओठ पतले, इकहरा बदन, रंग गोरा कुछ पीलापन लिये। बुढ़िया सीती हुई बड़बड़ाने लगती है। फिर चुप हो जाती है।)

बूढ़ी—(क्रोध से) क्या अभी दाल नहीं बिन पाई? पहाड़ पर तो नहीं चढ़ रही है। न किसी काम की, न सलीके की। जो काम करने बैठी उसी में दुपहर कर दो। क्या मा ने ऐसे ही लक्षण सिखाये हैं कि कोई काम कभी पूरा करना ही नहीं।

बहू—बस, बीन चुकी मा जी।

बूढ़ी—बस, बीन चुकी मा जी! मरी मा जी को तो समझा है कि इसकी भूँकने की आदत है, भूँकने दो। ऐसी बहू से तो आदमी बिनब्याहा रह जाय। यहीं बैठी रहोगी कि चूल्हे का भी कुछ ख़याल है। लकड़ियाँ धाँय धाँय जल रही होंगी। अरी, कुछ तो गत का काम किया कर। न मालूम कैसी कुलच्छिनी से पाला पड़ा है। क्यों मेरे प्राण पिये जाती है? अदहन मरा पड़ा सड़ रहा होगा। (और ज़ोर से) चावल भला कब बिनोगी रानी जी?

बहू—(हाथ में थाली लेकर खड़ी होती है) चावल कहाँ हैं? वे तो उसी दिन ख़त्म हो गये थे। (रसोई में चली जाती है)

बूढ़ी—(चश्मे के बाहर से झाँकती हुई ऐसे देखने लगी, मानो किसी ने तमाचा जड़ दिया हो) (और भी ज़ोर से) क्या कहा? अभी से सब चावल ख़त्म हो गये? अभी उस दिन तो चार आने के आये थे। अभी तो उस रामभजन को पैसे भी नहीं दिये। यह पेट मरा कि भट्ठी। जो पड़ा सब भस्म। (माथा पीटकर) क्या करूँ? कहाँ से रोज़ डेढ़ सेर इनकी नाँद में डालने के लिए लाऊँ? उनके आँख मींचने के बाद ख़ून और पसीना एक करके इस लड़के को पढ़ाया। जो कुछ गहना-पत्ता, जमाजथा थी, पढ़ाई में लग

गई। (दहलीज़ के दरवाज़े पर खड़ा मकानमालिक आवाज़ लगाता है।)

मालिक—मा जी, ओ मा जी!

बूढ़ी—न नौकरी, न चाकरी। कहता था, बी० ए० पास करने के बाद बीसियों नौकरियाँ मिल जायँगी मा।

मालिक—मा जी, ओ मा जी!

बूढ़ी—ब्याह किया। वही क़र्ज़ा कौन अभी उतरा है! (मुँह पर हाथ फेरती हुई) इस निगोड़ी ज़िन्दगी में दाँत भी तो न लग पाये।

मालिक—मा जी! (भीतर घुसता हुआ) बोलती भी नहीं। कुछ फ़ैसला होगा या नहीं? तीन महीने होने आये। इस सब्र की भी कोई हद है!

बूढ़ी—आओ भैया। हाँ, तुम्हारे रुपये तो......आ लेने दो लड़के को। कहीं न कहीं से कोई प्रबन्ध किये देती हूँ बेटा।

(बूढ़ी के लड़के सुरेन्द्र का प्रवेश। उम्र २३ साल, रंग गोरा। दाढ़ी और सिर के बाल बढ़े हुए। खद्दर का कुर्ता पहने है, जो पीठ की तरफ़ से पसीने से भीग गया है सिर पर गांधीटोपी। आँखों में सैलोलाइट की कमानी का चश्मा है। क़द मँझोला, कुछ उद्विग्न और अस्थिर प्रकृति-सा।)

सुरेन्द्र—मा, क्या है? (मकानमालिक की ओर देखकर) अच्छा आप हैं! अब घबराने की कोई बात नहीं। केवल कुछ दिनों की बात है, आपका हिसाब बेबाक़ कर दूँगा। इसके अलावा (मा से) हमें इस तंग अँधेरे मकान में नहीं रहना है। देखती हो, कैसा अँधेरा है? तुम्हारी आँखें ख़राब हो गईं। शशी कितनी पीली पड़ गई है? मुझे तो एक बड़ा-सा मकान चाहिए महोदय।

मालिक—बाबू, अब आप दो-तीन दिन में मकान का किराया चुका दें। मैं बहुत धीरज नहीं रख सकता। ऐसे किरायेदार दो-चार और मिल जायँ तो बस होगया!

बूढ़ी—हाँ भैया, कुछ दिन और...।

सुरेन्द्र—कह तो दिया। एकदम सब हिसाब साफ़ कर दूँगा। कुछ दिन और ठहर जाओ सेठ जी।

मालिक—(झल्लाकर) देखो बाबू, अब मुझे बार बार न आना पड़े। इस तीन महीने का तीन आना तो सूद ही हो गया। हम लोगों का समय यों ही नहीं है। (ज़ोर से) इस बार हिसाब साफ़ हो जाना चाहिए। (जाता है)

सुरेन्द्र—(उसी जोश से) हाँ, हाँ, कह तो दिया। सिर क्यों खाये जाते हो?

मालिक—(लौटकर) इसमें सिर खाने की क्या बात है? अपना किराया न लें? वाह! भले आये। वह तो कहो कि मैं भलमनसाहत से बातें कर रहा हूँ। नहीं तो उठाकर असबाब बाहर फिकवा दिया होता। हो किस ख़याल में बाबू साहब?

बूढ़ी—(उठकर) अरे भैया लड़ते क्यों हो? हम कब कहते हैं कि तुम्हारा किराया नहीं देंगे।

सुरेन्द्र—देखो! सेठ जी, इसमें बिगड़ने की कोई बात नहीं है। मुझे भी तुम्हारे मकान में नहीं रहना है। बस कुछ दिनों में अपना किराया लेना। क़िस्सा ख़त्म। ज़्यादा चिल्लाने की क्या बात है? और मैं ही ऐसे मकानों में कब रहने लगा! न रोशनी, न हवा, न कुशीदगी!

मालिक—यह तुम्हारी ख़ुशी। हम आपको कोई बुलाने तो गये नहीं थे। आप नहीं आपके भाई बहुतेरे आ जायँगे।

सुरेन्द्र—(झल्लाकर) हाँ, हाँ। जाओ, तुम्हारे जैसे हमें भी बहुतेरे मकान.........(मकानमालिक बड़बड़ाता हुआ चला जाता है)

बूढ़ी—(आश्चर्य से मुस्कराती हुई) कोई नौकरी मिल गई क्या बेटा? आज इतना हड़बड़ी में क्यों रहा?

सुरेन्द्र—हाँ मा, ज़रा ऐसा ही काम था। इन मकान-मालिकों ने कितना तंग किया है! न किसी के साथ ज़रा सहानुभूति, न कुछ। (कुर्सी पर बैठ जाता है) बस, मैंने सोच लिया इस बार ईश्वर ने चाहा तो तुम्हें नये दाँत लगवा दूँगा।

बूढ़ी—(उत्सुकता दबाकर) कोई नौकरी मिल गई क्या?

सुरेन्द्र—(एक दम खड़ा होकर) नौकरी, नौकरी ऐसी कि तुम निहाल हो जाओगी। विश्वास तो है, वह जगह मेरे सिवा और किसी को नहीं मिल सकती।

बूढ़ी—(एकदम पास जाकर) कहाँ? कहाँ मिली? कहो।

हे भगवान् दया करो। अरी बहू! ओ बहू! (शशी आती है) हाँ बता तो सही।

सुरेन्द्र—डेढ़ सौ रुपये की नौकरी है। बँगला रहने को मुफ़्त। नौकर-चाकर अलग। और क्या चाहिए? (अख़बार का कटिंग जेब से निकालकर उसकी तरफ़ देखता है। फिर सँभाल कर उसे मेज़ की दराज़ में रख देता है।) और क्या चाहिए मा? अब तो तुम .खुश हो न! रियासत में राजकुमार को पढ़ाने की नौकरी है।

बूढ़ी—(बीच के कुछ दाँत निपोरती हुई) हे भगवान् जगन्नाथ स्वामी! सत्यनारायण की कथा धूम-धाम से कराऊँगी महाराज! (ऐसा मालूम होता है, संसार की शक्ति उस बूढ़ी के शरीर में भर गई है, पहले की अपेक्षा अधिक उत्साह से शशी से) अरी देख तो घी है कि नहीं। क्या करे बिचारी? बेटा, मेरी बात का बुरा न माना कर। मैं पूरी बूढ़ी हूँ। देख तो चीनी है! न हो तो रामभजन से और ले आऊँ! (बहू जाती है। फिर आकर खड़ी हो जाती)।

सुरेन्द्र—(अख़बार का टुकड़ा दराज़ से निकालकर पढ़ता है। फिर उसी में रखता है) तुमने राजपूताना तो न देखा होगा मा। अर्ज़ी टाइप कराकर मैं डाकख़ाने में रजिस्ट्री से भेज आया हूँ। (.खुशी से आँखें चमकने लगती हैं) मा, यहाँ टाइमटेबिल कहीं नहीं मिल सकता। ऊपर बाबू बदरीनारायण के यहाँ होगा। ज़रा देखना। कौन-सी गाड़ी से जाना होगा। पहले मैं अकेला ही जाऊँगा।

बूढ़ी—नौकरी मिल ले। पहले से ही इतनी उछल-कूद मचाना ठीक नहीं। (यह कहती हुई भी स्वयं इतनी .खुशी में है कि सीधे पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे हैं) हाँ बहू, आज दूध नहीं लिया क्या?

बहू—घर में घी और चीनी ज़रा भी नहीं है।

बूढ़ी—हाँ, हाँ, चीनी तो ज़रूर चाहिए। मेरा सुरेन्द्र चीनी के बिना खाना कहाँ खा पाता है? अच्छा मैं अभी लाती हूँ। (रसोई के दरवाज़े से भीतर चली जाती है)

सुरेन्द्र—(एक दम स्त्री के पास जाकर उसका हाथ छूकर) सुनती हो शशी? अब मैं थोड़े ही दिनों में बड़ा आदमी होने जा रहा हूँ। अरे! धोती इतनी मैली! और धोतियाँ नहीं हैं क्या? (उसके गाल पर हलकी सी चपत जमाता हुआ) थोड़े ही दिनों की बात है मेरी रानी! सोने से पीली कर दूँगा।

शशी—(घूँघट खोलकर फीकी हँसी हँसती हुई) कहाँ? कोई नौकरी मिल गई क्या?

सुरेन्द्र—पगली अब भी कोई सन्देह है? आज ही अर्ज़ी डाक से भेजकर आया हूँ। राजकुमार का ट्यूटर होना होगा। समझी।

शशी—राजकुमार हो जाओगे?

सुरेन्द्र—राजकुमार का अध्यापक। (कंधे पर हाथ रखता है)

शशी—समझी। कब तक जा रहे हो? पहले तो शायद तुम अकेले ही जाओगे न?

सुरेन्द्र—हाँ, कुछ दिनों के............

(दहलीज़ के दरवाज़े से कोई पुकारता है। सुरेन्द्र बाबू हैं क्या?)

सुरेन्द्र—(एकदम दरवाज़े के पास जाकर) कौन है? (शशी रसोई में चली जाती है)

आगन्तुक—(कमरे में दाख़िल होता हुआ) बाबू, मैं हूँ गोविन्द! बहुत दिन हो गये बाबू। दूध का हिसाब अभी नहीं हुआ। हमें भी तो दूसरों को देना पड़ता है। कहाँ तक धीरज धरें?

सुरेन्द्र—दो-चार दिन की देर है गोविन्द। सब हिसाब चुका दिया जायगा। बस, थोड़े दिन की।

आगन्तुक—हाँ बाबू, दो महीने होने आये। देर होने से काम न चलेगा सरकार।

सुरेन्द्र—नहीं गोविन्द, घबराने की कोई बात नहीं है। मुझे अब नौकरी मिल गई है। १५०) रुपये की। एक राजा के लड़के को पढ़ाना होगा।

गोविन्द—दूध तो सरकार और चाहिएगा न? आज से कुछ ज़्यादा दे जाया करूँ?

सुरेन्द्र—हाँ यह तो मुझे मालूम हो रहा है।

(इतने में उसी दरवाज़े से सुरेन्द्र सुरेन्द्र चिल्लाता एक आदमी एकदम अन्दर चला आता है। गोविन्द सिर झुकाकर चला जाता है। आगन्तुक का नाम महेश है। उसी प्रकार खद्दर के कपड़े, सुडौल शरीर, हँसमुख चेहरा। उम्र २२-२३ साल।)

महेश—दूसरी बार आया हूँ। जनाब थे कहाँ? कुर्सी पर बैठ जाता है।

सुरेन्द्र—ज़रा एक काम से बाहर गया था भई!

महेश—आज वर्ड-कम्पनी के मैनेजर से मिलने चलोगे न? मैंने हेड-क्लार्क से बातचीत की थी। उसने कहा, तीस रुपये से अधिक न दे सकेंगे।

सुरेन्द्र—पागल हुए हो। सुरेन्द्र तीस की नौकरी करेगा? जनाब, अब वह राजकुमार को पढ़ायेगा—राजकुमार को।

महेश—(प्रसन्नता से) अरे कोई जगह मिल गई क्या?

सुरेन्द्र—मिली तो नहीं, पर मिली ही समझो। आज सवेरे वे जो अपने नलिन बाबू हैं न, जो आर्कोलाजिकल डिपार्टमेण्ट में क्यूरेटर हैं, उनके यहाँ गया था। वे तो थे नहीं, बैठक में रामधन सफ़ाई कर रहा था। मैं वहीं कुर्सी पर बैठ गया। देखता क्या हूँ, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के वाण्टेड का कालम खुला पड़ा है, मानो किसी ने वह पोर्शन (अंश) मेरे लिए ही खोलकर रख दिया था। (दराज़ से वह काग़ज़ का टुकड़ा निकालकर) देखो इसी में वह आवश्यकता छपी है। एक राजकुमार के ट्यूटर के लिए। मैं रामधन से पूछकर वह कटिंग ले आया हूँ। कहोगे न, उस्ताद। (महेश की पीठ पर ज़ोर का हाथ मारता हुआ) वहाँ से एकदम दौड़कर डाक्टर पाण्डेय से 'करेक्टर सार्टिफ़िकेट' लाया। ओह, उन्होंने बिना कुछ पूछे ही मुस्कराकर सार्टिफ़िकेट लिख दिया। फिर अर्ज़ी टाइप कराई और भेजी। इस सबमें देर हो गई।

महेश—मुझे बड़ी ख़ुशी है, सुरेन्द्र। (कटिंग हाथ में लेकर पढ़ता है) पर यह है कौन-सी तारीख़ का?

सुरेन्द्र—मालूम है, डाक्टर पाण्डेय ने कितनी अधिक प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि 'मुझे अपने जीवन में ऐसा प्रतिभाशाली, परिश्रमी और ईमानदार विद्यार्थी नहीं मिला है।'

महेश—ऐसा!

सुरेन्द्र—हाँ मित्र। डाक्टर पाण्डेय जैसा आदमी होना कठिन है।

(सुरेन्द्र ख़ुशी न दबा सकने के कारण टहलने लगता है, महेश कुर्सी पर बैठा कभी इधर उसकी ओर मुँह करके बात करता है, कभी उधर। उसके क़दम ज़ोर-ज़ोर से ज़मीन पर पड़ रहे हैं) आशा है, पोस्ट ज़रूर मिल जायगी। महेश, तुम तो कभी कभी उधर आओगे न!

महेश—आऊँगा क्यों नहीं। पर यार तुम्हीं मुझे भूल जाओगे। राजाओं के साथ बैठकर कौन याद करता है किसी को?

सुरेन्द्र—महेश, खद्दर तो वहाँ चल नहीं सकता। कपड़े तो दूसरे ही होंगे न!

महेश—अरे अभी से इतना चेंज! वह कालेज-हाल की प्रतिज्ञा कहाँ जायगी? भई, इतना मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। मेरा तो निश्चय है, मैं तो महात्मा गांधी की नई शिक्षा-योजना के वर्धा-ट्रेनिङ्ग-क्लास में भर्ती होना चाहता हूँ। मुझे रुपये की ज़रा भी परवा नहीं है। मैं गाँवों में जाकर किसानों की सेवा करूँगा। यही मेरे जीवन का उद्देश्य है। हम लोग पढ़-लिख कर यदि ग़रीबों की सेवा न कर सके तो इतना पढ़ने से फ़ायदा? याद है न? उस दिन कालेज के डिबेट (वाद-विवाद) में तुम्हारे ही व्याख्यान से प्रभावित होकर मैंने यह प्रतिज्ञा की थी।

सुरेन्द्र—याद है, सब याद है। (गम्भीरता से) ओह! अब वह सब कुछ नहीं हो सकता। मेरी इस बूढ़ी मा ने सब कुछ इसी आशा में वहा दिया है। इस समय मेरे ऊपर काफ़ी क़र्ज़ है। शशी ने आकर कोई सुख नहीं देखा। मैं ख़ुद किसी भी अच्छी नौकरी के लिए सदा तैयार रहा हूँ। ग़रीब की कहीं गुज़र नहीं है। हम लोग जवानी में जिसे जीवन समझते हैं, क्लासरूम में बैठकर जिसे ध्येय समझते हैं, वह स्वप्न निकलता है। देश की सेवा कौन नहीं करना चाहता? ग़रीबों के उत्थान की किसको फ़िक्र नहीं है। पर परिस्थिति भी तो कोई चीज़ है। मा की आशा को, स्त्री की उमंगों को अपनी ग़रीबी में ढँककर और ज़्यादा नहीं रख सकता महेश। इसके अलावा यदि मन में सेवा का भाव हो तो वह किसी भी अवस्था में की जा सकती है।

महेश—परिस्थिति मनुष्य की कमज़ोरी का दूसरा नाम है।

सुरेन्द्र—हो सकता है। लेकिन परिस्थिति से ही मनुष्य बनता

भी है। क्या आज देश में ऐसे आदमियों की कमी है जो पिछली असहयोग को लड़ाई में सर्वस्व होम कर देने के बाद समाज के स्टेट्स में अब तक वहीं खड़े हैं? रुपया परिस्थिति बनानेवाला और सबसे बड़ा मित्र है। हमारे देश के बड़े बड़े आदमी केवल इसलिए बड़े हैं कि उन्होंने सबसे अधिक विद्या के बल पर धन का त्याग किया है। उनके धनी होकर त्याग करने का ही यह महत्त्व है कि वे बड़े हैं। अगर आप बहुत ऊँचे से उतरकर पाताल में पड़े हुए को उठाते हैं तभी आप बड़े हैं। मैं तो यही समझा हूँ भाई। वह ग़रीब जिसके पास पहले ही कुछ नहीं है क्या त्याग करेगा? समाज में उसकी कुछ भी स्थिति नहीं है। त्याग और सेवा का महत्त्व आज धन की नींव पर खड़ा है। जिस पक्षी के पंख छोटे और निर्बल हैं वह क्या दूर तक उड़ सकता है? नहीं, कभी नहीं। ग़रीब बुद्धिमान् भी मूर्ख ही समझा जाता है महेश!

महेश—सेनापति का ऊँचा स्थान होने पर भी सिपाही का महत्त्व कभी कम नहीं हुआ है। संसार उन्हीं के सामने हाथ जोड़े खड़ा रहता है जो यश, मान, मर्यादा से ऊपर रहते हैं।

सुरेन्द्र—उन्हीं के नहीं, उसी के कहो। न तो ऐसे लोग बहुत होते हैं और न परिस्थितियाँ उन्हें वैसा बनने देती हैं। स्वप्न और जागरण दो भिन्न वस्तुएँ हैं। जिस आदर्श को लक्ष्य बनाकर मनुष्य ऊपर उठता है, जिस सत्य का पालन करने की धुन में वह बढ़ता है, वे दोनों इस संसार से भिन्न जगत् की चीज़ें हैं।

महेश—इतना होते हुए भी उन दोनों का महत्त्व तो कम नहीं हो जाता। हम लोग जो कुछ जीवन को समझते हैं वह उतना ही नहीं है सुरेन्द्र!

सुरेन्द्र—पर क्या तुम बता सकोगे, उस जीवन का रूप क्या है? क्या अपलाप, तिरस्कार और त्याग उसकी सीढ़ियाँ नहीं हैं? इतना होते हुए भी कौन कह सकता है कि जीवन के जिस पथ पर वह चलता है वह ठीक ही होगा। मैं तो मानता हूँ, मनुष्यता का सबसे बड़ा रूप जीवननिर्वाह करते हुए सचाई की ओर बढ़ना है।

महेश—यह कहते हुए तुम एक भूल कर जाते हो सुरेन्द्र! मैं तुम्हारी बात ही दुहराता हूँ, न तो ऐसे लोग बहुत होते हैं और न परिस्थितियाँ उन्हें वैसा बनने देती हैं। परन्तु वह बात भी ठीक है। परस्थितियाँ कमज़ोरी का दूसरा नाम है। प्रेरणा और आत्मबल को क्या तुम कुछ नहीं मानते? ये दोनों हृदय की शुद्धता और आत्मबल के ऊपर निर्भर हैं। उच्च जीवात्मा इन्हीं को लेकर संसार में अवतीर्ण होती हैं। और वे अपने प्रभाव से देश में एक नया जीवन फूँक देती हैं। जिस प्राणी का आत्मबल, हृदय की शुद्धता और प्रेरणा जितनी ही अधिक और तीव्र होगी वह प्राणी उतना ही ऊँचा और साधक होगा। और जितना ही उसका तप होगा उतनी व्यापकता उसे प्राप्त होगी। सत्य का स्पष्टरूप यही है।

सुरेन्द्र—तुम जो बात कह रहे हो वह व्यक्ति की है, समाज की नहीं। हम लोग समाज के अङ्ग होते हुए भी एक तरह से व्यक्ति नहीं, समाज हैं। व्यक्तित्व केवल उन्हीं का होता है जो कोई एक विशेष आदर्श को लेकर जीवनपथ पर अग्रसर होते हैं। साधारण भूख-प्यास के अतिरिक्त उनका व्यक्तित्व समाज के आंशिक व्यक्तित्व से सर्वथा परे और भिन्न होता है। उनमें प्रत्येक रूप में मौलिकता रहती है। वह मौलिकता ही उनका व्यक्तित्व है। हमारा देश आज हमसे जिस बलिदान की इच्छा कर रहा है उसकी यह माँग व्यक्ति से नहीं, समाज से है। परन्तु जानते हो, समाज का अधिक भाग अपङ्ग है? वह चाहता हुआ भी उस माँग को पूरा करने में पराधीन है।

महेश—मैं तुम्हारी इस बात को नहीं मानता। यह ठीक है, वह व्यक्ति भिन्न है, समाज का नेता है, पर उस माँग में तो समाज का ही हित है। अगर वह उस माँग की उपेक्षा कर देता है तो दोष किसका? उसी का न! देश समाज से भिन्न तो कोई वस्तु नहीं है। यह केवल पारिभाषिक भेद है। या तो समाज को वैसा होने के लिए तैयार होना पड़ेगा, नहीं तो फिर उसका नाश तो निश्चित ही है। देश की माँग सत्य की माँग है। आगे हो, पीछे हो, उसे तो करना ही पड़ेगा। जो लोग पहले करेंगे वे बहादुर कहलायँगे। इतिहास यही बात तो बार बार दोहराया करता है।

सुरेन्द्र—(सोचकर) तुम्हारा कहना ठीक है। पाण्डित्य का चाहे और कोई उपयोग हो या न हो, इतना तो अवश्य है कि वह तर्क के सहारे सत्य को असत्य सिद्ध करने की चेष्टा करता है। मैं मानता हूँ, मेरी कमज़ोरी है।

महेश—मैं हृदय से चाहता हूँ, तुम्हें वह नौकरी मिल जाय।

सुरेन्द्र—(एकदम) मुझे पूरा विश्वास है। डाक्टर पाण्डेय को इतनी बड़ी सिफ़ारिश क्या व्यर्थ हो जायगी? मुझे पूरा विश्वास है। (एकदम तेज़ी से कमरे में टहलने लगता है)।

महेश—ईश्वर करे। अच्छा, फिर मैं चला!

सुरेन्द्र—नहीं। तुम अभी नहीं जा सकते। तुमने मुझे एक बार फिर पागल बना दिया है महेश! मैं भी इस जीवन में देश-सेवा की उतनी ही ऊँची उमंग लेकर चला था, उतने ही वेग से कठिनाइयों के पहाड़ लाँघ जाना चाहता था, उतने ही वज्र हृदय से अपनी पीड़ाओं को पी जाना चाहता था। पर क्या करूँ? मैं सब भूल गया हूँ। मेरा मन इन दो प्राणियों की दुरवस्था को देखकर किरकिरा हो गया है। क़र्ज़ का पहाड़ मेरे सिर पर है। मकान का किराया तीन महीने से नहीं दिया गया। दूधवाला अभी तुम्हारे सामने ही गया है। मैं स्वार्थ को पूजा का हामी बन गया हूँ भाई! मैंने क्षणिक उमंगों में देश को, त्याग को भूल जाने का प्रयास करना आरम्भ कर दिया है। (सोचकर) मुझे पूरा विश्वास है। वह स्थान मुझे ज़रूर प्राप्त होगा।

महेश—तुम्हारा कहना सच हो। (बूढ़ी मा का घी और चीनी लिये प्रवेश)

बूढ़ी—रामभजन के पाँच होगये हैं बेटा! पर अब उसकी क्या चिन्ता है? (रसोई में चली जाती है)

सुरेन्द्र—कुछ सोच न करो मा। राजकुमार का ट्यूटर होते ही सब। बस......।

महेश—एक बार मैं ज़रूर आऊँगा।

सुरेन्द्र—एक बार क्यों? तुम्हें तो बार बार आना होगा। (नलिनी बाबू का चपरासी दरवाज़े पर खड़ा होकर आवाज़ लगाता है)

रामधन—सुरेश बाबू! सुरेश बाबू!

सुरेन्द्र—(दरवाज़े पर आकर) हाँ, रामधन क्या बात है? (चपरासी अन्दर आता है)

रामधन—बाबू!

सुरेन्द्र—देखो रामधन, अगर मुझे नौकरी मिल गई, जैसा कि पूरा विश्वास है तो तुम्हें भरपूर इनाम दूँगा।

रामधन—नलिनी बाबू का......।

सुरेन्द्र—(उत्तेजित प्रसन्नता से) हाँ, नलिनी बाबू का मैं धन्यवाद करता हूँ। उन्हीं के कारण मैं वह स्थान प्राप्त कर सकूँगा। तुम्हारा इनाम तो निश्चित ही है।

रामधन—वह टुकड़ा जो आप ले आये हैं, बाबू ने माँगा है।

सुरेन्द्र—(आश्चर्य से) क्या वे भी उस जगह के लिए अर्ज़ी भेज रहे हैं? वे तो बड़े मज़े में सरकारी नौकरी कर रहे हैं रामधन! नौकरी अलग और भत्ता घाते में। लगभग ५००) रुपये माहवार।

रामधन—बाबू, वह टुकड़ा उनके बड़े काम का है। उसके पीछे के भाग में उनके काम का कोई लेख है। उसी को पढ़ने के लिए वे दफ़्तर से वह अख़बार लाये थे। वह तो १९३५ का है।

महेश—(उछलकर) १९३५ का?

सुरेन्द्र—क्या कहा? क्या वह अख़बार नया नहीं है?

रामधन—नहीं सरकार!

सुरेन्द्र—फिर कहो। क्या वह विज्ञापन १९३५ का है?

(रामधन चुप होकर खड़ा रहता है, सुरेन्द्र मूर्छा से जागता हुआ कटिंग लौटाकर) मा!

(मा आती है)

मा—हाँ बेटा, क्या है?

सुरेन्द्र—रेत का पहाड़ पानी पड़कर एकदम दब गया। मा, मैं आज खाना नहीं खाऊँगा। (एकदम बाहर निकल जाता है)

महेश—सुरेन्द्र! ओ सुरेन्द्र! ठहरो भाई। (पीछे चला जाता है)

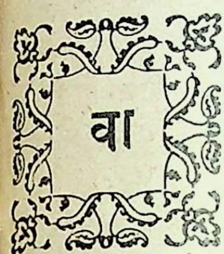
(मा और स्त्री सुन्न-सी होकर सुरेन्द्र की ओर देखती रहती हैं)।

(पर्दा गिरता है)

हिन्दुस्तानी

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

श्रीमान् कुँवर राजेन्द्रसिंह एक विचार-पूर्ण लेखक हैं। अपने इस रोचक लेख में आपने 'हिन्दुस्तानी' में लिखने की कठिनाइयों का उल्लेख सुन्दर ढङ्ग से किया है। उनके विचारों से मतभेद हो सकता है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि उन्होंने अपने इस लेख में जो प्रश्न उठाया है वह विचार करने के योग्य है।



स्तव में हिन्दी लिखनेवालों की समझ में ही नहीं आ रहा है कि 'हिन्दुस्तानी' किस तरह लिखें। कहने को तो यह कहा जाता है कि वह भाषा लिखो जिसमें संस्कृत और फ़ारसी के शब्द न हों, परन्तु व्यवहार में जो दिखलाई देता है वह कुछ और है। प्रत्येक जाति को अपनी भाषा से प्रेम होता है। एक तो हम हिन्दुओं को हिन्दी से प्रेम ही नहीं है। उस पर अब यह धुन है कि चाहे भाषा चौपट हो जाय और चाहे साहित्य सत्यानाश हो जाय, परन्तु 'हिन्दुस्तानी' लिखी जाय। प्रत्येक लेखक की यही इच्छा होती है कि उसका लिखा सब समझ लें, परन्तु सिवा अपनी भाषा के प्रयोग करने के और वह क्या कर सकता है। किसी को भी यह शौक़ नहीं है कि निष्प्रयोजन कड़े शब्दों का प्रयोग करे, परन्तु कुछ अवसर ऐसे होते हैं जब कड़े शब्द बचाये नहीं जा सकते। अगर उनके समझने के लिए नहीं लिखा जा रहा है 'हवा जिनके पहलू से बचकर है चलती' तो शरीर के भिन्न भिन्न अंगों के लिए असाधारण शब्दों का प्रयोग अवश्य ही करना पड़ेगा। उन शब्दों का महत्त्व असाधारण होता है जिनका प्रयोग सर्वसाधारण नहीं करते हैं। 'जन्म'-शब्द और 'पैदा' का उदाहरण लीजिए। भाव दोनों का एक ही है कि आज ही महाराज कृष्णचन्द्र का 'जन्म' हुआ था और आज ही महाराज कृष्णचन्द्र 'पैदा' हुए थे, परन्तु दोनों वाक्यों की गम्भीरता में और महत्त्व में बड़ा अन्तर है। असाधारण शब्द 'जन्म' के प्रयोग से साफ़ पता चलता है कि पैदा होनेवाला कोई असाधारण पुरुष था। यही हाल सब भाषाओं का है। उर्दू जाननेवाले 'मृत्यु' शब्द के स्थान में 'इन्तक़ाल' शब्द का प्रयोग करते हैं। इन्तक़ाल के ही अर्थ का अँगरेज़ी का शब्द 'डिमाइज़' है, जो मृत्यु के अर्थ में प्रयुक्त होता है। किसी को क्या पता है कि मरने के बाद कौन कहाँ गया—स्वर्ग को या कहीं और, परन्तु मरनेवाले के लिए हिन्दी में 'स्वर्गवासी' शब्द का प्रयोग किया जाता है और उर्दूवाले 'आँजहानी' लफ़्ज़ का इस्तेमाल करते हैं। भाव एक होते हुए भी साधारण या असाधारण शब्दों के प्रयोग से बड़ा अन्तर हो जाता है।

कोई भी लेखक अन्य भाषा-भाषियों के लिए नहीं लिखता है। और यदि लिखना भी चाहे तो कैसे लिख सकता है? कालिदास ने 'शकुन्तला' जर्मन देशवालों के लिए नहीं लिखी थी, यद्यपि उसकी क़द्र पहले उन्हीं लोगों ने की। जिनको अपनी भाषा से प्रेम है वे उन अवसरों पर भी उसी का प्रयोग करते हैं जहाँ उसके समझनेवाले भी नहीं होते हैं। जब १९१४ के बाद सन्धि-सभा हुई थी तब उसका उद्घाटन फ़्रांस के क्लीमेंसो ने किया था। सभी देशों के प्रतिनिधि वहाँ उपस्थित थे। क्लीमेंसो साहब ने उस अवसर पर अपनी ही भाषा का प्रयोग किया था। यदि यहाँ कोई हिन्दू किसी अखिल भारतीय सम्मेलन या सभा में हिन्दी बोल देता तो लोग उसकी जान खा जाते और यही कहा जाने लगता कि ऐसा करना राजनैतिक एकता के रास्ते की अड़चन है। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने 'गीता-रहस्य' मराठी में लिखा था। महात्मा गांधी ने अपनी 'आत्मकथा' अपनी मातृभाषा गुजराती में लिखी है। कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर बँगला में ही लिखते हैं। एक हम लोग हैं कि अपनी भाषा में लिखते ही नहीं और लिखते हैं तो उसकी वजह से हम पर आक्षेप होते हैं।

अब यह देखना है कि कम से कम इस सूबे में किसको समझाने के लिए 'हिन्दुस्तानी' लिखी जाय—उन्हीं

के लिए न जो उर्दू-भाषा-भाषी हैं। हज़ारों क्या लाखों हिन्दू मिलेंगे जो उर्दू जानते हैं, परन्तु प्रतिसहस्र शायद एक-दो उर्दू-भाषा-भाषी मिलेंगे जो शायद त, म कर लेते हों। मेरा अक्षरारम्भ केवल पुरानी प्रथा का पालन करने के लिए हिन्दी में हुआ था, परन्तु दूसरे ही रोज़ से 'अलिफ़' और 'बे' का सामना करना पड़ा। ज़ेर, ज़बर और पेश की बदौलत मौलवी साहब की रोज़ डाँट और फिटकार पड़ती थी। एक हिन्दी के कवि ने ख़ूब कहा है, 'नुकता बिन बे किन पै किन से'। उर्दू भी पढ़ी, फ़ारसी भी पढ़ी, परन्तु एक दफ़े भी किसी हिन्दू ने मुझसे यह नहीं कहा कि उर्दू या फ़ारसी क्यों पढ़ते हो। परन्तु जब मेरे लड़के हिन्दी और संस्कृत पढ़ रहे थे तब मेरे एक हिन्दू मित्र ने मुझसे पूछा कि लड़के क्या पढ़ते हैं और जब मैंने बतलाया तब कहने लगे कि क्या उनको दहक़ान (देहाती) बनानेवाले हो। यह उर्दू और फ़ारसी जाननेवाले हिन्दुओं का हाल है! उनका तो ख़ैर क्या कहना जिनकी यह ज़बान ही है। देहाती मदरसों में सैकड़ों हिन्दू लड़के उर्दू पढ़नेवाले मिलेंगे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के स्थान में पहले उसे 'अपनी भाषा' बनाने का उद्योग होना चाहिए।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपना जीवन-चरित अँगरेज़ी में लिखा है और उसका 'हिन्दुस्तानी' हिन्दी में अनुवाद हुआ है। पर वह हिन्दी-लिपि में लिखी हुई एक प्रकार की उर्दू है। जिसमें चित्तवृत्ति के लिए 'जज़बात' शब्द का प्रयोग किया गया हो उसे शायद ही कोई हिन्दी कह सके। साहित्य को बिगड़ने न देना चाहिए। हाली साहब ने कहा है—"रहे आख़िरश शायरी को डिबोकर"। स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के ज़माने में जो 'बनारस गज़ट' निकलता था उसकी कुछ ऐसी ही भाषा होती होगी। उस पर आक्षेप करते हुए उसी तरह की भाषा में उन्होंने लिखा था—"बनारस में इक जो बनारस गज़ट है, भाषा तो उसकी अजब ऊटपट है। मुहर्रिर बिचारा तो है बासलीका, इसे क्या करे जो कि तहरीर भट है"। किसी गिरे हुए देश का पुनरुत्थान करना उतना कठिन नहीं है, जितना किसी साहित्य का निर्माण करना होता है। भाषा बिगड़ी कि सब कुछ बिगड़ा। कहा जाता है कि किसी मुसलमान कवि ने पण्डित दयानारायण (गुलज़ारनसीम के रचयिता) को चिढ़ाने के लिए कहा कि मैं एक मिसरा कहता हूँ और आप दूसरा मिसरा कह कर शेर पूरी कर दीजिए। पण्डित जी ने कहा कि कहिए। उसने कहा—"शेख़ ने मसजिद बना मिस्मार (गिरवा) बुतख़ाना किया"। पण्डित जी ने फ़ौरन जवाब दिया—"तब तो इक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया।" कहीं वही हालत हिन्दी की न हो जाय। मैं उर्दू जानता हूँ। इसके ख़िलाफ़ या और किसी भाषा के ख़िलाफ़ मैंने कभी एक शब्द भी नहीं कहा है, परन्तु मैं अपनी भाषा का पक्षपाती अवश्य हूँ।

अभी बहुत थोड़े दिनों की बात है कि जब महात्मा गांधी और मिस्टर जिन्ना में कांग्रेस और मुस्लिम-लीग में समझौते की बात-चीत हो रही थी। महात्मा के कितने विनीत शब्द थे और यह भी सभी को मालूम है कि किन शब्दों में उधर से जवाब दिया गया। ख़ैर, यह दूसरा विषय है। समझौते की जो शर्तें थीं उनमें से एक यह भी थी कि उर्दू-भाषा को किसी तरह नुक़सान न पहुँचने पावे।

जो 'हिन्दुस्तानी' के पक्षपाती हैं वे कहने को तो यह भी कह जाते हैं कि उन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जिन्हें देहाती बोलते और समझते हैं। प्रत्येक देश के देहातों में उन शब्दों का प्रयोग होता है जो सभ्य समाज में नहीं बोले जाते। भाषा की पवित्रता तभी तक रहती है जब तक शुद्ध शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यदि इस पर ध्यान न दिया जाय तो भी कठिनाइयों का अन्त नहीं होता। सबसे बड़ी कठिनाई यह पड़ेगी कि जो शब्द देहात में बोले जाते हैं वे उर्दू जाननेवालों के क्या बहुत से हिन्दी जाननेवालों की समझ में नहीं आयेंगे। जो देहात में ही पैदा हुए हैं और वहीं उनका लालन-पालन हुआ है वे भी स्कूल और कालेज से निकलने के बाद वहाँ की भाषा नहीं समझ पाते हैं और एक कारण यह भी है कि वे फिर कभी देहात का मुँह नहीं देखते हैं। वहाँ शहरों के आमोद और प्रमोद कहाँ? फिर कैसे तबीअत लगे? स्कूल और कालेज से पढ़कर निकलनेवाले चाहे शहर में भीख माँगें, परन्तु कोई मेहनत का काम करके देहात में जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। देहात में लोग अपने ढंग से शब्दों का उच्चारण करते हैं, ज़बान को तोड़ना-मरोड़ना नहीं जानते और इसी वजह से उनका उच्चारण

ऐसा हो जाता कि लोगों को समझने में कठिनता होती है। बहुत से शब्द ऐसे हैं जो शहरवालों के कान में भी कभी न पड़े होंगे। हिन्दी का एक कवि कहता है, "हित मानि अई-गई कीजतु हैं"। 'अई-गई' शब्द का समझना कोई सहज काम नहीं है। देहात में यह शब्द प्रचलित है। जब कोई किसी चीज़ को गिरों रखता है और ब्याज इतना बढ़ जाता है कि मूलधन जोड़कर उस वस्तु का मूल्य आ जाता है तब महाजन उसे ले लेता है और लेना-देना कुछ नहीं रह जाता है। कवि ने इन्हीं अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया है कि तुमसे प्रेम होने के कारण जो तुम कहते या करते हो उसको हम अई-गई' कर जाते हैं। देहात में रहनेवाले मुसलमान अच्छी तरह हिन्दी समझते हैं। अगर न समझें तो काम भी तो न चले।

एक भाषा का दूसरी भाषा से लेन-देन लगा रहता है और जब फिर उर्दू हिन्दी से ही बनी है तब स्वाभाविक है कि उर्दू में हिन्दी के शब्द अधिक हों। उनसे उर्दू के कवि नहीं बच पाये और अपनी शायरी में उनका प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(१) 'जलन' शब्द हिन्दी का है और उसी अर्थ में उर्दू में भी प्रयुक्त होता है। उर्दू का शायर ज़लील कहता है—"अंजाम क्या हो दाग़ मुहब्बत का देखिए, सीने में इब्तिदा से जलन इन्तिहा की है।" इस शेर में सिवा जलन शब्द के और कोई ऐसा शब्द नहीं है जो उसकी समझ में आ जाय जो उर्दू नहीं जानता। (२) 'जल्दी' शब्द भी हिन्दी का है। इसका भी उर्दू-भाषा के कवियों ने प्रयोग किया है—"मैं कहता हूँ कि जल्द आओ चला मैं, वह कहते हैं कि जल्दी क्या पड़ी है।" यह शेर किसी की भी समझ में पूरा आ जायगा। यद्यपि हिन्दी में प्रायः जल्दी शब्द का प्रयोग करते हैं 'जल्द' का नहीं, तथापि शब्दों के संगठन से बहुत कुछ समझ में आ जाता है। उर्दूवालों ने 'आरामे जान' शब्द को हिन्दी का शब्द बतलाया है। इसका अर्थ 'ख़ासदान' (पान रखने का डिब्बा) है। यह शब्द हिन्दी का नहीं है। यह लखनऊ की ज़बान का शब्द है। यह किसी हिन्दी के कोष में नहीं मिलेगा। यह 'हिन्द' में बना है, इस वजह से इसे हिन्दी का शब्द कहते हैं। तस्लीम शायर कहता है—"हमने जो पान माँगा बातों में ज़हर घोला, और आ गया जो दुश्मन 'आरामे जान' खोला।" हिन्दी जाननेवाले क्या, बहुत-से उर्दू जाननेवाले इस शब्द का अर्थ नहीं जानते हैं। उर्दू-कवियों की प्रशंसा में कहा जाता है कि वे बहुत सादी ज़बान का प्रयोग करते हैं। अगर शेर भर में एक शब्द किसी दूसरी भाषा का आ जाय तो यह नहीं कहा जा सकता है कि जिस ज़बान का वह शब्द है उस ज़बान के बोलनेवाले पूरे शेर समझ सकते हैं। उर्दू के शायर अफ़सर ने लिखा है—"मुक़द्दर की ख़राबी से न काम आई वफ़ा मेरी, तुम्हारे वास्ते तड़पी हमेशा आत्मा मेरी"। लिखने को तो अफ़सर साहब लिख गये, लेकिन जिनके लिए लिखा उनमें कितने हैं जो 'आत्मा' का अर्थ जानते हैं। 'त्रिशूल' कवि ने लिखा है—"न हममें कोई वहशी न डैमफ़ूल होता, होते हम और ही कुछ जो होमरूल होता।" डैमफ़ूल और होमरूल, दो शब्दों के आ जाने से यह नहीं कहा जा सकता है कि सब अँगरेज़ इस पद को समझ लेंगे या वे हिन्दुस्तानी जो अँगरेज़ी नहीं पढ़े हैं, समझ लेंगे। यद्यपि हिन्दुस्तानियों को समझना चाहिए, क्योंकि उनकी स्तुति में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'नेटिव' शब्द भी इसी ढंग का है। किसी अँगरेज़ के मुँह से जहाँ नेटिव शब्द निकला कि हम लोगों ने समझ लिया कि हम हिन्दुस्तानियों के ही तरफ़ इशारा है। एक ने ख़ूब कहा है—"जब कुछ कहते उत्तर मिलता बकता नेटिव काला है।" ऊपर दिये हुए शेरों से यह साफ़ पता चलता है कि उर्दू के कवियों को जब ज़रूरत हुई है तब फ़ारसी और अरबी के शब्दों से काम लिया है। 'यक़ीन' शब्द अरबी का है। इसको अब सभी बोलते और समझते हैं। परन्तु मुझे मालूम नहीं है कि संस्कृत के किसी शब्द ने इस तरह उर्दू-भाषा में स्थान प्राप्त किया हो।

मैं दोष किसी का नहीं देता हूँ। हिन्दी का भी यही हाल है और स्वाभाविक है। दिखाने के लिए कि कविता में भी उर्दू के ढंग की शायरी की जा सकती है, एक हिन्दी का कवि कहता है—"कुछ नाज़ जफ़ा पर है उनको तो भरोसा बड़ा हमें आह का है", दूसरा कहता है—"मुर्ग़-दिल को फँसा दाम गेसू में हा तीर मिज़गाँ का ज़ालिम बनाया शिकार।" हिन्दी-लिपि होने से और 'शेर' के स्थान में 'कवित्त' होने से भाषा की कठिनता तो नहीं कम पड़ी। हिन्दुओं को किसी भाषा से ईर्ष्या नहीं है, क्योंकि

अपनी भाषा से प्रेम नहीं है। अँगरेज़ी के एक लेखक ने लिखा है कि बिना ईर्ष्या के प्रेम के बन्धनों में शिथिलता आ जाती है। लाखों की संख्या में हिन्दू मिलेंगे जो उतनी ही अच्छी उर्दू जानते हैं जितनी वे जो उसे अपनी ज़बान कहते हैं। उर्दू को उसके वर्तमान पद पर पहुँचाने में हिन्दुओं ने मुसलमानों का बहुत अच्छी तरह हाथ बँटाया है, और मुसलमान हिन्दीलेखकों की इनी-गिनी दो-चार ही मिसालें हैं। तो भी हिन्दी-साहित्य सदैव उनका आभारी रहेगा। हम लोग चाहे उर्दू और फ़ारसी के असाधारण से असाधारण शब्द समझ लें, परन्तु वे लोग हिन्दी के साधारण से साधारण शब्द नहीं समझ सकते हैं और न समझने की कोशिश करते हैं। ऐसी हालत में कौन भाषा लिखी जाय जो उनकी समझ में आवे और वे भी उसे अपना लें?

उर्दू-भाषा के बहुत-से शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं और देहात में भी बोले जाते हैं। हिन्दी-लेखक 'ज्ञात' शब्द की जगह पर 'मालूम' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'सायंकाल' और 'संध्या' की जगह पर 'शाम' लिखते हैं। 'प्रातःकाल' की जगह 'सुबह' शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु यदि उनसे यह कहा जाय कि वे 'सुब्ह' लिखा करें तो उनसे नहीं लिखा जायगा।

यह मान्य है कि भाव पर भाषा निर्भर होती है। यदि भाव गम्भीर है तो भाषा अवश्य ही गम्भीर होगी, नहीं तो हलकापन आ जायगा। हम हिन्दी लिखनेवाले उन उर्दू-शब्दों का अवश्य प्रयोग करते हैं जिनके लिए जानते हैं कि सर्वसाधारण को समझने में कठिनता नहीं होगी। परन्तु हमारे शब्दों का प्रयोग उर्दूवाले बचाते हैं। पहले वे यह तो मानें कि हिन्दी 'दहक़ानों' की ज़बान नहीं है।

जो भाषा-विज्ञान के जाननेवाले हैं उन सबका यह कहना है कि हिन्दी की वर्णमाला इतनी सम्पूर्ण और निर्दोष है कि किसी और भाषा की नहीं है। यदि इस निगाह से देखा जाय तो भी हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा हो सकती है। मैं तो पहले इस बात के लिए उत्सुक हूँ कि हिन्दी हिन्दुओं की भाषा हो जाय; फिर बाद को इसके राष्ट्र-भाषा होने का स्वप्न देखा जाय।

जिनको अरब देश छोड़े हज़ारों वर्ष हो गये हैं जिनका इसी देश में जन्म और लालन-पालन हुआ है, जो 'इस ख़ाक से उठे हैं और इस ख़ाक में मिलेंगे' वे अभी भी उसी सभ्यता के गीत गाते हैं। हम सृष्टि के आदि से यहीं के रहनेवाले हैं और सृष्टि के अन्त तक यहीं रहेंगे, परन्तु नहीं, हम स्वयं अपनी ही निगाहों में गिरे हुए हैं—न अपने देश का अभिमान है, न अपनी सभ्यता का अभिमान है और न अपनी भाषा का अभिमान है—अगर अभिमान है तो यह कि "हर एक को दावा है हम भी हैं कोई चीज़, और हमको यह नाज़ कि हम कुछ भी नहीं हैं।"

राजनैतिक क्षेत्र से साहित्यिक क्षेत्र पृथक् है, यद्यपि भाषा राजनैतिक भावों की प्रतिबिम्ब होती है। जैसी देश की दशा होगी, वैसी भाषा होगी। आज से शताब्दियों के बाद जो इस देश का वर्तमान साहित्य देखेगा उसे प्रकट हो जायगा कि उस समय देश पराधीन था और स्वतन्त्र होने के लिए व्याकुल हो रहा था। प्रत्येक देश के हितैषी का यह स्वप्न होता है—यही इच्छा होती है और यही ईश्वर से प्रार्थना होती है कि समस्त देश भर की एक भाषा हो, परन्तु यदि यह सम्भव नहीं है तो यह कहाँ तक उचित है कि अधिकांश मनुष्यों का साहित्य सत्यानाश कर दिया जाय। यह बग़ैर याद आये नहीं रहता—"ज़माना भला आपको क्या कहेगा।"

रोमन-लिपि के द्वारा भारतवर्ष की जनता को शिक्षित करने का प्रश्न अभाग्यवश अभी बहुतों की समझ में नहीं आता है। तुर्की का उदाहरण दिया जाता है। हाँ, अगर वही होने लगे जो वहाँ हुआ था तो दूसरी बात है। जब अफ़ग़ानिस्तान की पहली पार्लियामेंट की बैठक अमानुल्ला के सामने हुई थी तब जो उसके सदस्य थे उनकी दाढ़ी मुँडवा दी गई और चप्पलों, पायजामों और कुर्तों की जगह बूट, पतलून और कोट ने ली थी। वहाँ की क्रान्ति का यह भी एक कारण था। उसका जो परिणाम हुआ वह सभी जानते हैं।

उस नमूने की हिन्दुस्तानी लिखना जिसका नमूना सामने रक्खा जाता है वह कम से कम हिन्दुओं के लिए कठिन है।

पंजाब की वर्तमान स्थिति

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री



वीन शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय स्वायत्त शासन का कुछ आभास भारतीयों को मिला है। सौभाग्य से भारत की एकमात्र राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने नवीन शासन-विधान के अनुसार सात प्रान्तों में शासन-सूत्र सँभाला है, जिसके कारण विधान के अनुसार अनंत अधिकार होते हुए भी प्रान्तीय गवर्नरों ने मंत्रियों की इच्छा के अनुसार शासन चलाने की अनेक परम्परायें स्थापित कर दी हैं। यदि कांग्रेस ऐसे अवसर पर पद-ग्रहण न करती तो इसका भारतीय राजनीति पर बुरा प्रभाव पड़ता। आज कांग्रेसी प्रान्तों में जनता को खुली साँस लेने का जो अवसर मिला है वह न मिलता। युक्त-प्रान्त के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि आज जनता यह अनुभव कर रही है कि वह कुछ कर सकती है, नहीं तो पिछली दो शताब्दियों से भारत अवसाद से ऊपर उठने का साहस करना भी पसन्द नहीं करता था।

बीच बीच में विविध आन्दोलनों के कारण जनता में जागृति अवश्य हुई, पर एक तो वह जागृति सर्वसाधारण की नहीं थी, कुछ वर्गों का आन्दोलनों के साथ सीधा सम्पर्क था, और फिर कुछ दूर चलकर लोग असफल ही होते रहे, इसलिए भारतीयों को आत्मविश्वास न हो सका। इधर कुछ ही सही, शासन हाथ में लेने से जनता को कांग्रेस के कार्यक्रम पर विश्वास तो हुआ है। अब यदि कांग्रेस शासन-भार छोड़कर लड़ाई भी छेड़ दे तो भी जनता का विश्वास उस पर पूर्ववत् बना रहेगा।

एक और बात भी है। कांग्रेस ने चुनाव-आन्दोलन में पड़कर भारत को राजनैतिक दृष्टि से शिक्षित कर दिया है। पिछले चुनाव से पूर्व जब कांग्रेस चुनाव नहीं लड़ती थी, सर्वत्र जात-पाँत, पैसा और दुनियाबी दबाव के बल पर चुनाव लड़ा जाता था। कांग्रेस ने चुनाव लड़कर इन सब बुराइयों का क्रियात्मक प्रतीकार किया है। इस प्रकार जनता को राजनैतिक दृष्टि से शिक्षित करने का भी कांग्रेस को सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जनता को जो शक्ति आज मिली है उसका श्रेय हमारे विचार में मुख्यतया कांग्रेस को ही है, शासन-विधान को नहीं। यदि इस सत्य का साक्षात्कार करने की इच्छा किसी को हो तो वह नवीन शासन-विधान के अनुसार शासनारूढ़ ग़ैर-कांग्रेसी प्रान्तों की स्थिति का समीप से निरीक्षण करे। मेरा अभिप्राय पंजाब और बंगाल से है। मैं क़रीब पौने दो बरस के बाद पंजाब गया था। बीस रोज़ रहकर लौटा हूँ। मैंने पंजाब में जो देखा है वही प्रस्तुत लेख में पाठकों के सम्मुख रखता हूँ।

राजनीति

पंजाब में यूनियनिस्ट-पार्टी की सरकार है। पार्टी के नेता सर सिकन्दर हयातख़ाँ ही प्रधान मंत्री हैं। पार्टी के जन्मदाता स्वर्गीय सर फ़ज़लीहुसेन बहुत बड़े राजनीतिज्ञ थे। वे जानते थे कि पंजाब में वही पार्टी बल पा सकती है जो हिन्दू-मुसलमान और सिक्खों की सम्मिलित पार्टी हो तथा उसका कार्यक्रम प्रगतिशील हो। परन्तु दुर्भाग्य से सर फ़ज़लीहुसेन का चुनाव से पूर्व ही निधन हो गया। हमारा विश्वास है, यदि आज सर फ़ज़लीहुसेन जीते होते तो पंजाब की स्थिति कुछ और ही होती। सर सिकन्दर हयातख़ाँ नेक आदमी हैं, शान्तिप्रिय तथा समझदार और गम्भीर व्यक्ति हैं। मंत्रि-मंडल की बागडोर सँभालते ही उन्होंने जिस प्रकार से कार्य का प्रारम्भ किया था और जिस प्रकार वे पंजाब की जनता के प्रीति-भाजन बनते जा रहे थे वह क्रम यदि बना रहता तो सर सिकन्दर शायद पंजाब के 'हीरो' हो जाते। परन्तु शहीदगञ्ज-आन्दोलन ने सर सिकन्दर को बदल दिया। शहीदगंज-आन्दोलन के समय अपने मन्त्रि-मंडल को बनाये रखने के लिए उन्हें मुस्लिम-लीगी बाना पहनना पड़ा, और जो सिकन्दर चुनाव के समय जिन्ना को पंजाब में आने देने के भी विरोधी थे वे ही शहीदगंज-आन्दोलन के लिए श्री जिन्ना की क़दमबोसी करने के लिए विवश हुए। यहीं से पंजाब की यूनियनिस्ट-पार्टी के पतन का अध्याय प्रारम्भ होता है। यदि इस अवसर पर सिकन्दर मिनिस्ट्री

का मोह छोड़कर, साम्प्रदायिकता से ऊपर रहकर, कार्य करते रहते—फिर चाहे कुछ ही होता, तो भारतीय साम्प्रदायिकता का वर्तमान नग्नरूप हमें देखने का अवसर न मिलता।

अब क्या है? कहने को तो पंजाब में यूनियनिस्ट-पार्टी की सरकार है, परन्तु वस्तुत: सरकार है मुस्लिम-लीग की, यद्यपि अभी तक बाक़ायदा मुस्लिम-लीग-पार्टी का जन्म नहीं हुआ है। पंजाब में कांग्रेस-विरोधी पार्टी है। कांग्रेस का पंजाब में जो कुछ महत्त्व है वह कांग्रेस-हाईकमांड के बल-बूते पर है। पंजाब में कोई भी ऐसा कांग्रेसी नेता नहीं है जिसको अपनी प्रतिष्ठा से कांग्रेस की प्रतिष्ठा अधिक अच्छी लगती हो, इसी लिए कमज़ोर होते हुए भी वहाँ कांग्रेस में दो पार्टियाँ हैं—गोपीचन्द-पार्टी और सत्यपाल-पार्टी। मालूम होता है, पंजाब के कांग्रेसियों ने कांग्रेस के विविध विभागों को जिनमें प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी, चर्खा-संघ आदि मुख्य हैं, अपना अपना मठ बना लिया है। यही कारण है, जहाँ आज कांग्रेस की श्रीवृद्धि के युग में पंजाब में भी और प्रान्तों की तरह कांग्रेस की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होनी चाहिए थी, वहाँ वह उसके प्रतिकूल रहा है। पंजाब की राजनैतिक दशा हिन्दू विधवा से अच्छी नहीं। जिस पंजाब ने लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे वीरों को जन्म दिया जो भारत का नेतृत्व करते थे, वही पंजाब आज नेतृविहीन है। पंजाब में शुद्ध कांग्रेस-पक्षपाती एक भी दैनिक पत्र नहीं है। कांग्रेस का बल पंजाब में हिन्दुओं पर आश्रित है। इधर पंजाब के हिन्दू कांग्रेस के हाथों में अपने को असुरक्षित समझने लगे हैं। बात यह है कि कांग्रेस हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को प्रान्तीय दृष्टि से नहीं, बल्कि भारतीय दृष्टि से देखती है, हालाँ कि इस समस्या का रूप विभिन्न प्रान्तों में है भिन्न भिन्न। उदाहरण के लिए कांग्रेस किसानों के भले के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है, साथ ही अल्पसंख्यकों के हित सुरक्षित रखने की भी उसने गारंटी दी है। किसानों की रक्षा के लिए कांग्रेस ने युक्त-प्रान्त में एक क़ानून का प्रस्ताव किया है। इसी प्रकार मदरास, मध्य-प्रान्त आदि प्रान्तों में जहाँ मुसलमान अल्पसंख्या में हैं, वहाँ उनकी रक्षा करने के अपने दूसरे वादे का भी पालन किया है। इसी प्रकार सीमाप्रान्त में जहाँ हिन्दू अल्प संख्या में है, वहाँ भी कांग्रेस ने उनकी रक्षा करने का भरसक प्रयत्न किया है। परन्तु पंजाब में इन दोनों में टक्कर हो गई है। पंजाब की वर्तमान सरकार ग़ैर-काश्तकारों की है। पंजाब-असेम्बली में नम्बरदार और ज़ैलदारों का ही बहुमत है, अर्थात् उन्हीं का प्रतिनिधित्व है। पंजाब में पहले से ही क़ानून बना हुआ है कि काश्तकार की ज़मीन ग़ैर-काश्तकार नहीं ले सकता। अब पिछले शिमला-अधिवेशन में वह क़ानून और भी कड़ा कर दिया गया है। इसके अनुसार ग़ैर-काश्तकारों के पास काश्तकारों की जो ज़मीनें हैं वे बिना कुछ दिये ही काश्तकारों को फिर मिल जायँगी।

दुर्भाग्य से पंजाब की अल्पसंख्यक जाति हिन्दू हैं और वे अधिकतर ग़ैर-काश्तकार हैं। इन क़ानूनों का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ेगा। इसी कारण आज-कल इन क़ानूनों के विरुद्ध पंजाब की हिन्दू-जनता में क्षोभ की अदम्य लहर-सी उठ खड़ी हुई है। पंजाब-कांग्रेस के अधिकतर असेम्बली-सदस्य हिन्दू काश्तकारों के प्रतिनिधि हैं, इसलिए वोटरों की माँग है कि हमारे प्रतिनिधियों को हमारा साथ देना चाहिए और इन क़ानूनों का विरोध करना चाहिए। परन्तु कांग्रेस-पार्टी कांग्रेस-हाईकमाण्ड के आदेश के अनुसार ऐसा नहीं कर सकती। कमाण्ड चाहता है कि ये क़ानून काश्तकारों के हित के लिए हैं, इसलिए कांग्रेस-पार्टी इनके पास करने में यूनियनिस्ट-पार्टी का साथ दे। उधर पंजाब की शासनारूढ़ पार्टी में अधिकतर सदस्य ऋणग्रस्त हैं, साथ ही फ़िज़ूलख़र्च भी हैं। वे अनायास ऋणमुक्त होने की फ़िक्र में हैं। पंजाब की हालत इस समय यह है कि हिन्दुओं को नौकरी तो मिलती नहीं, उधर व्यापार पर सरकार नियंत्रण कर रही है। साहूकारा कारोबार क़ानून से चौपट किया जा रहा है। मैंने २० रोज़ पंजाब में रहकर देखा है कि इस समय पंजाब के हिन्दू यह समझ रहे हैं कि वर्तमान सरकार इन क़ानूनों से हिन्दुओं को पंजाब से बाहर निकल जाने पर बाधित कर रही है—कम से कम वे असुरक्षित तो हैं ही। पंजाब के हिन्दुओं का कहना है कि जिस ज़मीन को हमने पिछले क़ानून के अनुसार पैसा देकर लिया है, यदि वह नये क़ानून से बिना कुछ लिये-दिये वापस कराई जा सकती है तो इसका अर्थ हुआ कि कल पंजाब सरकार फिर कोई ऐसा क़ानून भी पेश कर सकती है कि ग़ैर-काश्तकारों ने जो

ज़मीनें कभी काश्तकारों से ली थीं और जिससे वे काफ़ी फ़ायदा उठा चुके हैं उनको भी वापस कर दें। और कभी पंजाब से बाहर भी कर देने का भी प्रस्ताव हो सकता है। यह आशंका कहाँ तक ठीक है, यहाँ इसकी समीक्षा नहीं करनी है। यह सत्य है कि पंजाब के हिन्दुओं को यह आशंका है।

कांग्रेस-हाईकमाण्ड की आज्ञा पालन करना ठीक है, परन्तु पंजाब की स्थिति में और युक्त-प्रान्त की स्थिति में अन्तर है। मतलब यह है कि आज पंजाब में कांग्रेस की स्थिति दयनीय है। यदि इस समय कांग्रेस दुबारा चुनाव लड़े तो शायद उसका एक भी प्रतिनिधि सफल नहीं हो सकेगा। तो क्या हिन्दू-महासभा का बल पंजाब में बढ़ रहा है? यह भी नहीं है। हिन्दू-महासभा के नेता भाई परमानन्द ने पिछले चन्द सालों के कार्यों से बता दिया है कि वे हिन्दुओं का नेतृत्व नहीं कर सकते। कांग्रेस को गाली देने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकते। पंजाब के दूसरे हिन्दू नेता डाक्टर गोकुलचन्द, राजा नरेन्द्रनाथ आदि अन्ततोगत्वा सरकार से विरोध मोल नहीं लेना चाहते और सबसे बड़ी बात यह है कि ये लोग त्याग करने को तैयार नहीं। यह ठीक है कि पंजाब की वर्तमान स्थिति ऐसी है कि कोई देशभक्त नेता पंजाब का नेतृत्व करने की क्षमता रखता हो और त्याग करने को तैयार हो तो वह नेता बन सकता है। मैदान तैयार है। परन्तु पंजाब का नेतृत्व करनेवाले को यह समझना होगा कि उसके सिर पर सदा तलवार लटकती रहेगी।

कांग्रेस को और प्रान्तों की तरह पंजाब में जनता के हृदय में पैठने का अवसर क्यों नहीं मिला? इस प्रश्न का उत्तर एक है और वह है पंजाबी नेता रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास नहीं रखते। केवल चुनाव के समय वोट माँगने जाना और कांग्रेस-हाईकमाण्ड के बल पर वोट माँगना कितना बल रखता है? मेरा तो विश्वास है कि कांग्रेस को भारत में जो कुछ बल मिला है वह पूज्य गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम से मिला है। हमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि का ध्यान न रखकर और वोट आदि का स्वार्थ भी हटाकर जनता की सेवा और उसकी भूख मिटाने के उद्देश्य से—खादी, हरिजनोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, मद्य-निषेध आदि—कार्य ग्रामों में करने चाहिए ऐसा करते करते प्रान्त एक दिन अपने आप कांग्रेस का हो जायगा। परन्तु दुःख है कि पंजाब में इस प्रकार के कार्य-क्रम पर विश्वास रखनेवाला कोई नहीं है।

और रचनात्मक कार्यक्रम के बिना पंजाब में कांग्रेस की जड़ नहीं फैल सकती। इसके लिए पंजाब में गांधी-आश्रमों के खोलने की आवश्यकता है। पंजाब में खादी का कार्य ख़ूब चल सकता है। पंजाब के किसान अधिकतर खादी ही पहनते हैं। परन्तु वहाँ के कांग्रेसी खादी को कोई महत्त्व नहीं देते। तात्पर्य यह है कि पंजाब की राजनैतिक स्थिति डावाँडोल है।

साम्प्रदायिकता

पंजाब साम्प्रदायिकता का तो घर ही है। साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने की विद्या का आचार्य पंजाब ही है। साम्प्रदायिकता-विद्यालय के कुलपति तो बम्बई में बैठे हैं, परन्तु विद्यालय पंजाब है। पंजाब के हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख प्रत्येक बात को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखते हैं। आज-कल तो पंजाब में साम्प्रदायिकता अपने नग्नरूप में नाच रही है। साधारण मुसलमानों को कहा जाता है कि तुम्हारा राज्य हो गया है। और हिन्दू भी इसी तरह की बेसिर-पैर की बातें उड़ाने में ख़ूब होशियार हैं। मैंने पंजाब के प्रायः सभी उर्दू दैनिक पत्रों को देखा है। मुझे एक भी दैनिक राष्ट्रीय नहीं प्रतीत हुआ। एक बात और है। पंजाब के पत्रों की कोई निश्चित नीति नहीं। कभी कांग्रेसी तो कभी हिन्दू और कभी कुछ नहीं। हिन्दू पत्र 'प्रताप', 'मिलाप', 'वीर भारत' और मुस्लिम पत्र 'इन्क़लाब,' 'ज़मींदार', 'मदीना' सब पंजाब के शरीर में प्रतिदिन ज़हर का इंजेक्शन करते रहते हैं। भाई परमानन्द का 'हिन्दू' तो बिलकुल ही साम्प्रदायिक पत्र है। जिस शरीर में प्रतिदिन लाखों मन ज़हर पहुँचता हो वह क्यों न बौरा जाय? इसका इन्तिज़ाम होना चाहिए, नहीं तो इस विष के सारे देश में फैल जाने का भय है।

नवीन शासन-विधान के जारी होने के बाद से पंजाब में साम्प्रदायिकता नये रूप में व्याप्त हो रही है। अन्दर-अन्दर आग सुलग रही है। आज तक जो साम्प्रदायिकता गुंडों का काम समझी जाती थी वह शरीफ़ आदमियों का काम हो गया है। 'साक्षर' उल्टा हो जाय तो 'राक्षस' बन जाता है।

हिन्दी

पंजाब में उर्दू का अबाध राज्य है। सेवा, ईश्वर, परन्तु, प्रार्थना आदि शब्द हिन्दी के नहीं, संस्कृत के समझे जाते हैं। मैंने देखा है, हिन्दीवालों ने इधर जब से उर्दू-शब्दों को अपनाना प्रारम्भ किया है तब से उर्दू-वाले समझने लगे हैं, चलो अच्छा हुआ, वही इधर आने लगे। हिन्दी में अनेक उर्दू-शब्दों का व्यवहार होने लगा है, परन्तु उर्दू के साहित्य पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उलटा वे और भी सख़्त होते जाते हैं।

पंजाब में हिन्दी की जो कुछ भी उन्नति है उसका श्रेय आर्यसमाज को है। परन्तु पंजाब में आजतक हिन्दी औरतों की ही भाषा समझी जाती है और बात है भी ठीक। पंजाब की हिन्दू स्त्रियाँ प्रायः पढ़ी हैं और वे सब हिन्दी जानती हैं। छोटे छोटे गाँव में भी आर्यसमाज की पुत्री-पाठशालायें हैं। मैं ऐसे कई उदाहरण जानता हूँ कि केवल अपनी स्त्री को पत्र लिखने के ही लिए कुछ शिक्षितों को हिन्दी पढ़नी पड़ी है। पंजाब के मुलतान शहर में संस्कृत और हिन्दी का बहुत प्रचार है। परन्तु वहाँ भी हिन्दी की पत्रिकायें बहुत कम खपती हैं। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि मुलतान में बड़े बड़े हिन्दी-प्रचारकों को भी इसका पता तक नहीं कि शिमला में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कब होनेवाला है। इधर लाहौर में कुछ हिन्दी-प्रचार का सूत्रपात हुआ है। परन्तु उर्दू का वहाँ बहुत ही प्रचार है। यहाँ तक कि हिन्दी-प्रचार का सूत्रधार आर्यसमाज भी (आर्य-प्रतिनिधि-सभा, पंजाब) उर्दू में एक साप्ताहिक निकालता है, जिसका नाम है 'आर्य-मुसाफ़िर'। लाहौर से दो हिन्दी दैनिक भी निकलते हैं—हिन्दी-मिलाप और शक्ति। मेरा दृढ़ मत है कि उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि विचारों को ठीक ठीक व्यक्त नहीं कर सकती, इसलिए पंजाब को उन्नत करने और पंजाब को ऊँचे विचार देने के लिए भी यह आवश्यक है कि हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि का प्रचार पंजाब में किया जाय।

हम लोगों को जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान रहे हैं, पंजाब में हिन्दी की विधवा-सम दशा पर ध्यान देना चाहिए। लेकिन एक बात—पंजाब में हिन्दी का प्रचार हिन्दू-हित और मुस्लिम-विरोध के नाते नहीं करना चाहिए। इससे हानि होगी। उर्दू के मुक़ाबिले में हिन्दी यदि लाई जाय तो अवश्यमेव हिन्दी की विजय होगी। कम से कम इतना तो होगा ही कि पंजाब में भी हिन्दुस्तानी राजभाषा हो जायगी, नहीं तो आज यह हालत है कि पंजाब-सरकार हिन्दुस्तानी शब्द सुनना भी नहीं चाहती। सर सिकन्दर के शब्दों में तो उर्दू सारे हिन्दुस्तान की 'मादरी ज़बान' है।

इस प्रकार पंजाब के क्षितिज पर इस समय नवीन शासन-विधान के जारी होने के बाद से भय, आतंक, विद्वेष और हिंसा के बादल छा रहे हैं। यद्यपि कुछ अधिकाराभास पाकर होना इसके प्रतिकूल चाहिए था। पंजाब इस समय नेतृविहीन अथवा नेत्रविहीन है।

इसका इलाज ? इलाज है और वह यह है कि कांग्रेस-हाईकमाण्ड पंजाब में कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को जारी करने का प्रयत्न करे, साथ ही कांग्रेस-वर्किङ्ग कमिटी का कोई मुस्लिम सदस्य सदा के लिए पंजाब में जाकर बस जाय और वह पंजाब के मुसलमानों में राष्ट्रीय वातावरण पैदा करे।

एक और भी इलाज है। यदि सिकन्दर जिन्ना से नाता तोड़ दें और गान्धी से नाता जोड़ लें तो यूनियनिस्ट-सरकार के रहते हुए भी शान्ति हो सकती है, क्योंकि यूनियनिस्ट-पार्टी और कांग्रेस दोनों का आर्थिक कार्यक्रम एक है। अथवा एक और भी इलाज है—मन्त्रिमंडल संयुक्त पार्टियों का हो और कांग्रेस सिन्ध की तरह संतुलन का कार्य करे। परन्तु यह सब भविष्य के गर्भ में है। अभी तक तो सिकन्दर-मिनिस्ट्री की हार होने के आसार नहीं हैं। यदि पंजाब में कांग्रेस का राज्य हो जाय तो वह अपने कार्यक्रम को और प्रान्तों से पंजाब में अधिक सफल कर सकती है, क्योंकि वहाँ के लोग साधारणतया ख़ुशहाल हैं, भावुक भी हैं। और प्रान्तों की अनेक समस्यायें वहाँ नाम को भी नहीं।

तसवीर

अनुवादक, पंडित रूपनारायण पाण्डेय

(१)



ह कहानी जिस समय की है, उस समय भी वर्मा अँगरेज़ों के हस्तगत नहीं हुआ था। उस समय भी उसके अपने राजा-रानी थे, पात्र-मित्र थे, सेना और सामन्त थे। उस समय भी वर्मा के लोग आप ही अपने देश का शासन करते थे।

मंडाले राजधानी थी; किन्तु राजवंश के अनेक व्यक्ति देश के विभिन्न शहरों में ही निवास करते थे।

इसी तरह का राजवंश का कोई आदमी शायद बहुत समय पहले पेंगू से पाँच-छः कोस दक्षिण इमेदिन ग्राम में आकर रहा था।

उनके वड़ा भारी महल, वाग़, काफ़ी रुपये-पैसे और वहुत वड़ी ज़मींदारी थी। इन सब चीज़ों के जो मालिक थे उन्हें जब भगवान् के यहाँ से बुलावा आया तब उन्होंने अपने एक मित्र को बुलाकर उससे कहा—वा-को (मित्र का नाम), मेरी इच्छा थी कि तुम्हारे लड़के के साथ अपनी लड़की की शादी कर जाऊँगा। लेकिन उसके लिए अब समय नहीं रहा। मा-शोये (लड़की का नाम) है। इसे तुम देखना।

इससे अधिक कुछ कहने की ज़रूरत उन्होंने नहीं देखी। वा-को उनका लड़कपन का मित्र था। एक समय उसके भी बहुत संपत्ति थी। केवल फयार-मंदिर बनवाकर और बौद्ध-भिक्षुओं को खिलाकर उसने अपनी सब संपत्ति ही नहीं ख़र्च कर डाली थी, बल्कि आज भी उस पर ऋण यथेष्ट है। तथापि इस आदमी को ही अपने सर्वस्व के साथ अपनी एकमात्र कन्या को बेखटके सौंप देने में उस मरने-वाले आदमी को कुछ भी संकोच नहीं हुआ, मन में कुछ भी दुबधा नहीं पैदा हुई। मित्र को पहचान लेने का ऐसा ही वड़ा सुयोग उन्होंने इस जीवन में पाया था।

लेकिन यह ज़िम्मेदारी वा-को को भी अधिक दिन उठाने का मौक़ा नहीं मिला। उन्हें भी उस पार का सम्मन आ गया और उस महामान्य परवाने को शिरोधार्य करके वृद्ध वा-को भी एक साल के भीतर ही इस संसार का भार यहीं छोड़कर अज्ञात लोक के लिए प्रस्थान करने को विवश हो गये।

इस धर्म्मात्मा ग़रीब आदमी को गाँव के लोग जैसे प्यार करते थे, श्रद्धाभक्ति करते थे, वैसे ही प्रचण्ड आग्रह के साथ उन्होंने इसकी मृत्यु का उत्सव मनाना भी शुरू कर दिया।

वा-को की मृत-देह माला-चन्दन आदि से सुसज्जित करके पलँग पर लिटाई रही, और नीचे खेल-कूद, नाच-गान और आहार-विहार का प्रवाह दिन-रात बराबर बहने लगा (यह उस देश की प्रथा है)। जान पड़ता था, जैसे इस उत्सव की समाप्ति ही कभी न होगी।

पितृ-शोक के इस उत्कट आनन्द से क्षण भर के लिए किसी तरह भागकर वा-थिन (वा-को का पुत्र) एक सुनसान स्थान में पेड़ के नीचे बैठा रो रहा था। एकाएक चौंककर फिरकर उसने देखा, मा-शोये उसके पीछे आकर खड़ी है। मा-शोये ने ओढ़नी के छोर से चुपचाप वा-थिन की आँखों के आँसू पोंछ दिये और पास बैठकर उसका दाहना हाथ अपने हाथ में लेकर चुपके-चुपके कहा—पिता जी मर गये हैं, लेकिन तुम्हारी मा-शोये अभी जीवित है।

(२)

बा-थिन तसवीर बनाता था। अपनी आख़िरी तसवीर उसने तैयार करके एक सौदागर की मार्फ़त राजा के दरबार में भेज दी थी। राजा ने वह तसवीर ले ली और ख़ुश होकर अपने हाथ की क़ीमती अँगूठी इनाम के तौर पर दी।

आनन्द के मारे मा-शोये की आँखों में आँसू भर आये। उसने बा-थिन के पास खड़े होकर कोमल स्वर में

कहा—बा-थिन, दुनिया में तुम सबसे बड़े—सर्वश्रेष्ठ चित्रकार होओगे।

बा-थिन हँसा, बोला—पिता जी का क़र्ज़ जान पड़ता है, मैं अदा कर सकूँगा।

उत्तराधिकार-सूत्र से इस समय मा-शोये ही बा-थिन का महाजन थी, उसी का वह ऋणी था; क्योंकि उसके पिता ने मा-शोये के बाप से ही ऋण लिया था, जो अब तक अदा न हो सका था। इसी से बा-थिन की यह बात सुनकर मा-शोये को ही सबसे अधिक लज्जा का अनुभव हुआ। मा-शोये ने कहा—तुम बार बार इस तरह खोंचा दोगे तो मैं फिर तुम्हारे पास नहीं आऊँगी।

बा-थिन चुप हो रहा। लेकिन ऋण न चुकने के कारण उसके पूज्य प्रिय पिता की मुक्ति न होगी, इतनी बड़ी विपत्ति की बात का स्मरण करके उसका सारा हृदय जैसे काँप उठा।

बा-थिन आज-कल बहुत अधिक परिश्रम करने लगा है। वह बुद्ध-जातक से भाव लेकर एक नया चित्र बनाने लगा था—आज दिन भर उसने तसवीर से सिर उठा कर किसी ओर ताका तक नहीं।

मा-शोये नित्य जैसे आती थी, वैसे ही आज भी आई थी। बा-थिन के सोने का कमरा, बैठने का कमरा, चित्र बनाने का कमरा, सब अपने हाथ से साफ़ करके वह नित्य सजा जाती थी। नौकर-चाकरों के ऊपर इस काम का भार छोड़ने का साहस उसे किसी तरह नहीं होता था।

सामने एक आइना लगा था। उसी के ऊपर बा-थिन का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। मा-शोये बहुत देर तक एकटक उधर ही ताकती रही। उसके बाद सहसा एक लम्बी साँस लेकर बोली—तुम अगर हम लोगों की तरह औरत होते तो अब तक इस देश की रानी हो सकते।

बा-थिन ने सिर उठाकर हँसते हुए कहा—क्यों? बतलाओ तो सही।

मा-शोये ने कहा—राजा तुम्हें ब्याह कर सिंहासन पर बिठाते। उनके अनेक रानियाँ हैं सही, लेकिन इस तरह का सुन्दर रङ्ग, ऐसे बाल, ऐसा मनोहर मुख किसी भी रानी का है भला? तुम्हीं बताओ।

इतना कहकर मा-शोये घर सजाने का अपना काम करने लगी। किन्तु बा-थिन को यही ख़याल बार-बार आने लगा कि मंडाले में जब वह चित्र बनाना सीख रहा था तब भी उसे इसी तरह की बातें बीच-बीच में सुनने को मिलती थीं। उसने हँसकर कहा—लेकिन रूप चुराने का अगर कोई उपाय होता तो जान पड़ता है, मुझे चर्का देकर तुम्हीं अब तक राजा की बाईं ओर जा बैठतीं।

मा-शोये ने इस अभियोग का कुछ भी उत्तर न दिया। केवल अपने मन में कहा—तुम नारी के समान दुर्बल, नारी के समान कोमल और उन्हीं के समान सुन्दर हो। तुम्हारे रूप और सौन्दर्य की सीमा नहीं है।

इस रूप के निकट मा-शोये अपने को बहुत ही छोटा समझती थी।

(३)

वसन्त के प्रारम्भ में इमेदिन ग्राम में हर साल बड़ी धूम-धाम के साथ घुड़दौड़ का जल्सा होता था। आज वही जल्सा था और उसी के उपलक्ष में गाँव के छोरवाले मैदान में लोगों की भीड़ इकट्ठी थी।

मा-शोये धीरे-धीरे बा-थिन के पीछे आकर खड़ी हो गई। वह एकाग्र मन होकर चित्र बना रहा था, इसी से मा-शोये के पैरों की चाप उसने नहीं सुन पाई।

मा-शोये ने कहा—मैं आई हूँ। इधर घूम कर देखो।

बा-थिन ने चौंककर घूमकर देखा, विस्मित होकर पूछा—एकाएक इतनी सजावट क्यों की है?

मा-शोये ने कहा—वाह, तुमको जान पड़ता है, ख़याल नहीं है। आज हमारे गाँव की घुड़दौड़ है। जो जीतेगा वह आज मुझको माला पहनावेगा।

"कहाँ? मैंने तो यह नहीं सुना था।" यह कहकर बा-थिन फिर लापरवाही के साथ रङ्ग की कूची उठाने को तैयार हुआ। मा-शोये ने उसके गले से लिपटकर कहा—नहीं सुना था तो न सही। अब तो सुन लिया। लो, उठो। अब और कितनी देर करोगे?

इन दोनों की अवस्था प्रायः समान ही थी—शायद बा-थिन दो-चार महीने बड़ा हो तो हो सकता है। लेकिन बचपन से इसी तरह इन दोनों ने हँस-खेलकर अपनी अपनी आयु के उन्नीस बरस बिता दिये हैं। साथ खेले हैं, झगड़ा किया है, मार-पीट भी की है और परस्पर एक दूसरे को प्यार भी किया है।

सामने के बड़े आइने में दोनों के सुन्दर मुख खिले

हुए दो बड़े कमलों या गुलाब के फूलों के समान देख पड़ रहे थे। बा-थिन ने उधर इशारा करके मा-शोये से कहा—वह देखो।

मा-शोये कुछ देर तक चुपचाप उस दृश्य की ओर अतृप्त दृष्टि से देखती रही। अकस्मात् आज पहले-पहल उसे यह ख़याल आया कि वह भी बड़ी सुन्दरी है। उसके दोनों बड़े-बड़े नेत्र आवेश से बन्द हो गये।

मा-शोये ने बा-थिन के कान में चुपके से कहा—मैं जैसे चन्द्रमा का कलङ्क जान पड़ती हूँ।

बा-थिन ने उसका मुख और भी अपने मुख के पास खींच कर कहा—न। तुम चन्द्रमा का कलङ्क नहीं हो—तुम किसी का भी कलङ्क नहीं हो—तुम चन्द्रमा की चाँदनी हो। एक बार अच्छी तरह आँख खोलकर देखो तो सही।

किन्तु मा-शोये को आँखें खोलने का साहस नहीं हुआ; वह वैसे ही अपनी आँखें मूँदे रही।

शायद इसी तरह बहुत-सा समय बीत जाता, किन्तु नर-नारियों की एक भारी भीड़ नाचती गाती हुई सामने के रास्ते से होकर उत्सव में सम्मिलित होने जा रही थी। मा-शोये व्यस्तभाव से उठकर खड़ी हो गई। बोली—चलो जी। समय हो गया है। फिर देर हो जायगी।

बा-थिन बोला—लेकिन मेरा जाना तो इस समय एकदम असम्भव है मा-शोये।

मा-शोये—क्यों?

बा-थिन—मैंने इस चित्र को पाँच दिन में तैयार कर देने का ठेका लिया है।

मा-शोये—अगर न दो।

बा-थिन—तो ख़रीदार मंडाले चला जायगा। अतएव न तसवीर ही फिर लेगा और न रुपया ही देगा।

रुपयों के उल्लेख से मा-शोये को कष्ट होता था, लज्जा भी मालूम पड़ती थी। उसने कुछ तुनककर कहा—लेकिन इसी लिए मैं तुमको ऐसा जानलेवा परिश्रम भी तो दिन-रात नहीं करने दे सकती।

बा-थिन ने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया। पिता के ऋण की बात यादकर उसके मुख के ऊपर जो मलिन छाया दौड़ गई वह एक और आदमी की नज़रों से नहीं छिपी रही।

मा-शोये ने कहा—जाने दो ख़रीदार को। तुम मेरे हाथ बेंच डालना—मैं दूने दाम दूँगी।

बा-थिन को इस बारे में कुछ भी सन्देह न था। उसने हँसकर पूछा—लेकिन तुम इसे लेकर करोगी क्या?

मा-शोये ने अपने गले का बहुमूल्य हार दिखाकर कहा—इसमें जितने मोती, जितने चुन्नी हैं, सब इसी तसवीर के चौखटे में जड़ाकर अपने सोने के कमरे में अपनी आँखों के सामने इसे टाँग दूँगी।

बा-थिन—उसके बाद?

मा-शोये—उसके बाद जिस दिन रात को ख़ूब बड़ा पूरा चाँद निकलेगा और खुली खिड़की से उसकी चाँदनी का उजियाला सोते हुए तुम्हारे मुख पर क्रीड़ा करेगा—

बा-थिन—उसके बाद?

मा-शोये—उसके बाद तुमको जगाकर—

बात पूरी नहीं होने पाई। नीचे मा-शोये की बैलगाड़ी खड़ी थी, गाड़ीवान उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। देर होती देखकर वह ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगा। उसकी आवाज़ मा-शोये के कानों में पहुँची। बा-थिन ने भी सुना। उसने व्यस्त होकर कहा—अच्छा, उसके बाद की बात फिर सुनूँगा, इस समय नहीं। तुम्हारे जाने का समय हो गया है, देर हो रही है, तुम जल्दी जाओ।

लेकिन समय बीत जाने की घबराहट या जाने की जल्दी का कोई लक्षण मा-शोये के आचरण में नहीं दिखाई दिया। उसने और अच्छी तरह जमकर बैठकर कहा—मुझे मालूम पड़ता है, तबीअत ख़राब है। मैं नहीं जाऊँगी।

बा-थिन—नहीं जाओगी? जाने का वादा कर चुकी हो, सब लोग उद्ग्रीव होकर तुम्हारी राह देख रहे होंगे। जानती हो?

मा-शोये ने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा—देख रहे होंगे! वादा तोड़ देने की ऐसी लज्जा मुझे नहीं है। मैं नहीं जाऊँगी।

बा-थिन—छिः!

मा-शोये—तो फिर तुम भी चलो।

बा-थिन—जा सकता तो निश्चय हो चलता। लेकिन मैं नहीं जा सकता, इसलिए तुमको वादा नहीं तोड़ने दूँगा। अब देर न करो, जाओ।

बा-थिन के गंभीर मुख और शान्त अथच दृढ़ कंठ-स्वर को सुनकर मा-शोये 'नहीं' न कर सकी, जाने के लिए

उठकर खड़ी हो गई। क्षोभ व अभिमान से मुख मलिन करके उसने कहा—तुम अपनी सुविधा के लिए मुझे दूर करना चाहते हो। अच्छा, मैं जाती हूँ, लेकिन फिर कभी तुम्हारे पास न आऊँगी।

दम भर में ही बा-थिन की कर्तव्य की दृढ़ता स्नेह के जल में गल गई। उसने मा-शोये को अपने पास खींचकर हँसते हुए कहा—इतनी बड़ी प्रतिज्ञा न कर बैठना मा-शोये। मैं जानता हूँ, इसका अन्त क्या होगा। लेकिन अब और विलम्ब न करो।

मा-शोये ने वैसे ही विषण्ण मुख से उत्तर दिया—मेरे न आने से खाने-पीने से शुरू करके सभी बातों में तुम्हारी जो दशा होगी उसे मैं न सह सकूँगी, यह तुम जानते हो, इसी से तुम मुझे यहाँ से भगा सके।

इतना कहकर प्रत्युत्तर की अपेक्षा न कर वह तेज़ी के साथ वहाँ से चली गई।

(४)

तीसरे पहर के लगभग मा-शोये की चाँदी से मढ़ी हुई मोरपंखी बैलगाड़ी जब मैदान में पहुँची, वहाँ एकत्र जन-मण्डली प्रचण्ड कोलाहल कर उठी।

वह युवती है, वह सुन्दरी है, वह अभी तक अविवाहित है और बहुत बड़ी सम्पत्ति की अधिकारिणी है। मनुष्य के यौवन-राज्य में उसका स्थान बहुत ऊँचे पर है। इसी से उस जगह भी सबसे बड़े सम्मान का आसन उसी के लिए निर्दिष्ट हुआ था। वह आज पुष्पमाला अपने हाथ से बाँटेगी। उसके बाद जो भाग्यशाली पुरुष उस रमणी के गले में सबके आगे जयमाला पहना दे सकेगा, उसका भाग्य आज जैसे जगत् में ईर्ष्या करने को एकमात्र वस्तु होगा।

सजे हुए घोड़ों की पीठ पर लाल रङ्ग की पोशाक पहने हुए सवार लोग उत्साह और चंचलता के आवेग को मुश्किल से सँभाले हुए थे। देखने से जान पड़ता था, आज संसार में उनके लिए असाध्य या कठिन कुछ भी नहीं है।

क्रमशः समय निकट हो आया और जो कई आदमी आज अपने भाग्य की परीक्षा करने को तैयार थे वे कतार बाँधकर खड़े हो गये और क्षण भर के बाद ही घंटा बजने के साथ ही, मरने-जीने की परवा न कर, तेज़ी के साथ उन्होंने अपना-अपना घोड़ा छोड़ दिया।

यह वीरत्व है, यह युद्ध का एक अंश है। मा-शोये के बाप-दादे सब युद्ध का व्यवसाय करनेवाले सिपाही थे। उनके रक्त का उन्मत्त वेग, नारी होने पर भी, मा-शोये की नसों में दौड़ रहा था। जो विजयी होगा, संपूर्ण हृदय की श्रद्धा के साथ संवर्द्धना-सम्मान न करने की साध उसकी नहीं थी।

इसी से दूसरे गाँव का रहनेवाला एक अपरिचित युवक जब मा-शोये के पास उपस्थित हुआ—जिसका शरीर परिश्रम और प्रसन्नता के आवेश से लाल हो रहा था, चेहरा काँप रहा था, हाथ पसीने से भीगे हुए थे—और उसने मा-शोये के मस्तक में जयमाला पहना दी तब उसके आग्रह की अधिकता वहाँ उपस्थित अनेक प्रतिष्ठित रमणियों की आँखों में खटक गई।

लौटते समय राह में मा-शोये ने उस युवक को अपनी ही गाड़ी में अपने ही पास स्थान दिया और गद्गद स्वर में कहा—आपके लिए मुझे बड़ा डर लग रहा था। एक बार ऐसा भी जान पड़ा था कि इतनी ऊँची दीवार है, किसी तरह अगर कहीं पैर उलझ गया तो क्या होगा!

युवक ने विनीत भाव से गर्दन झुका ली। किन्तु इस असम-साहसी बलिष्ठ वीर के साथ मा-शोये मन ही मन अपने उस दुर्बल, कोमल और सभी कामों में अनिपुण चित्रकार बा-थिन को तुलना किये बिना नहीं रह सकी।

इस युवक का नाम था पो-थिन। बातों ही बातों में परिचय लेने से मालूम हुआ कि वह भी एक ऊँचे ख़ानदान का लड़का है, धनी है और मा-शोये का दूर के नाते से आत्मीय भी है।

मा-शोये ने आज अनेक लोगों को अपने महल में शाम को भोजन करने का निमन्त्रण दिया था। वे लोग तथा और भी बहुत-से लोगों की भीड़ उसकी गाड़ी के साथ-ही-साथ आ रही थी। आनन्द के आग्रह से उन लोगों के ताण्डव नृत्य से उड़ी हुई धूल के बादल और संगीत के असह्य—कानों का पर्दा फाड़नेवाले—निनाद से सन्ध्या का आकाश उस समय एकदम आच्छन्न हो पड़ा था।

वह भयंकर भीड़ जब बा-थिन के घर के सामने से

होकर आगे बढ़ गई तब क्षण भर के लिए बा-थिन अपना काम छोड़कर खिड़की के पास आकर खड़ा होगया और चुपचाप देखता रहा।

(५)

सन्ध्या के भोज के प्रसंग में दूसरे दिन मा-शोये ने बा-थिन से कहा—कल की सन्ध्या बड़े आनन्द से बीती। दया करके अनेक मेहमान आये थे। केवल तुमको फ़ुर्सत न थी, इसलिए तुम्हें मैंने नहीं बुलाया।

बा-थिन उसी तसवीर को प्राणपण से परिश्रम करके समाप्त कर रहा था। सिर उस पर से उठाये बिना ही उसने कहा—अच्छा ही किया।

इतना कहकर वह फिर काम करने लगा।

मा-शोये अपार विस्मय से स्तंभित होकर बैठी रही। बातों के बोझ से उसका पेट फूल रहा था। कल बा-थिन काम में फँसे रहने के कारण उत्सव में सम्मिलित नहीं हो सका, इसी से आज बहुत देर तक वहाँ की बहुत-सी बातें उसके साथ करने के इरादे से ही मा-शोये आई थी, लेकिन बा-थिन के कुछ भी कौतूहल प्रकट न करके पहले ही दिन की तरह काम में जुटे रहने से सब उलटा हो गया। अकेले प्रलाप किया जा सकता है, परन्तु वार्तालाप का काम तो नहीं चलता। इसी से मा-शोये केवल स्तब्ध होकर बैठी रही। किसी तरह दूसरे पक्ष की प्रबल उदासीनता और गहरी चुप्पी के बंद द्वार को ठेलकर भीतर प्रवेश करने का आज उसे साहस नहीं हुआ।

प्रतिदिन मा-शोये आकर बा-थिन के जो छोटे-मोटे काम कर जाती थी वे सब आज वैसे ही पड़े रह गये—किसी तरह उनमें हाथ लगाने को उसका जी न चाहा। इसी तरह बहुत समय बीत गया। बा-थिन ने एक बार भी तसवीर से सिर नहीं उठाया, अपनी ओर से उससे एक बार भी कोई प्रश्न नहीं किया। कल के इतने बड़े व्यापार के प्रति भी जैसे उसे लेशमात्र कौतूहल न था, वैसे ही काम बन्द करके दम भर साँस लेने की फ़ुर्सत भी न थी।

बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद कुंठित और लज्जित होकर अन्त को मा-शोये उठ खड़ी हुई और कोमल स्वर में बोली—अच्छा तो आज मैं चलती हूँ।

बा-थिन ने चित्र के ही ऊपर दृष्टि रखकर कहा—अच्छा।

जाते समय मा-शोये को जान पड़ा, जैसे इस आदमी के अन्तर की बात उसने समझ ली। उससे पूछे, ऐसी एक बार इच्छा भी हुई, किन्तु उसका मुँह ही न खुल पाया, वह चुपचाप उठकर चल दी।

घर में पैर रखते ही मा-शोये ने देखा, पो-थिन बैठा है। गत रात्रि के आनन्द-उत्सव के लिए वह धन्यवाद देने आया था। मा-शोये ने अतिथि को यत्न के साथ आदर करके बिठलाया।

पो-थिन ने पहले मा-शोये के ऐश्वर्य का बखान किया; उसके बाद वह उसके वंश और पिता की प्रसिद्धि-प्रतिष्ठा के साथ उसके राजद्वार में सम्मान आदि की अनेक बातें आप ही आप बिना रुके, बिना दूसरे के कुछ कहने की प्रतीक्षा किये बराबर कहता गया।

उन बातों में से कुछ तो मा-शोये ने सुनीं और कुछ उसके अन्यमनस्क कानों में पहुँची ही नहीं। किन्तु पो-थिन केवल बलिष्ठ और अतिसाहसी घुड़सवार ही नहीं, अत्यन्त धूर्त भी था। मा-शोये की यह उदासीनता उससे छिपी नहीं रही। उसने मंडाले के राजपरिवार का प्रसंग छोड़कर अन्त को जब सौन्दर्य की आलोचना करना शुरू कर दिया और कृत्रिम सरलता या बनावटी भोलापन धारण करके जब उस रमणी को लक्ष्य करके बार बार उसके रूप और जवानी का इशारा करने लगा तब मा-शोये को मन ही मन अत्यन्त लज्जा मालूम पड़ने लगी, लेकिन एक सुन्दर आनन्द और गौरव का अनुभव किये बिना भी उससे नहीं रहा गया।

वार्तालाप समाप्त होने पर पो-थिन जब बिदा हुआ तब आज शाम के लिए भोजन का निमन्त्रण भी वह मा-शोये से लेता गया।

किन्तु उसके चले जाने पर उसकी बातें अपने मन में याद करके मा-शोये का जी ओछा पड़ गया और हृदय ग्लानि से भर गया तथा रात को उसे भोजन का निमन्त्रण देने के लिए अपने ऊपर बेहद खीझ और घृणा होने लगी। उसने चटपट और भी कई एक बन्धु-बान्धवों को निमन्त्रण-पत्र लिखकर नौकर के हाथ भेज दिये। अतिथि लोग यथासमय आकर हाज़िर हुए तथा आज भी खूब हँसी-दिल्लगी, बातचीत और नृत्य-गीत के साथ भोजन का कार्य समाप्त हुआ। तब रात अधिक बाक़ी नहीं थी।

क्लान्त-परिश्रान्त होकर वह सोने गई; किन्तु आँखों में नींद नहीं आई। विस्मय की बात यही थी कि जिस दावत में आज इतना समय इस तरह बीता उसकी एक बात भी उसके मन में नहीं आई। वे सब बातें जैसे कितने ही युगों की पुरानी और मामूली हों, ऐसी ही शुष्क, ऐसी ही नीरस प्रतीत होने लगीं। उसे केवल वही आदमी रह रहकर याद आने लगा, जो उसी के बाग़ के छोर पर बने हुए एक निर्जन घर में उस समय निर्विघ्न बैठा हुआ था—आज की इतनी बड़ी दावत—इतने बड़े उत्सव के वृत्तान्त या कोलाहल का लेशमात्र भी शायद जिसके कानों में जाने की राह भी कहीं नहीं ढूँढ़ पाया।

(६)

तड़का होते ही बहुत दिनों का अभ्यास मा-शोये को वा-थिन के निवास-स्थान की ओर रह-रहकर खींचने लगा। वह फिर वा-थिन के घर में जा बैठी। रोज़ की तरह आज भी वा-थिन ने केवल "आओ" शब्द का उच्चारण कर, उसकी सहज अभ्यर्थना समाप्त कर, अपने काम में मन लगा दिया, किन्तु निकट बैठकर भी और एक आदमी को आज केवल यही जान पड़ने लगा कि वह काम में लगा हुआ चुपका आदमी जैसे चुपचाप ही उससे बहुत दूर हट गया है।

बहुत देर तक मा-शोये को कहने के लिए कोई बात ही नहीं सूझी। उसके बाद संकोच को बलपूर्वक हटाकर उसने पूछा—तुम्हें इस तसवीर का और कितना काम करना बाक़ी है?

वा-थिन ने कहा—अभी बहुत बाक़ी है।

मा-शोये—तो फिर इन दो दिनों में तुमने क्या किया?

वा-थिन ने इसका जवाब न देकर चुरुट का बक्स उसकी ओर बढ़ाकर कहा—यह शराब की गंध मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।

मा-शोये इस इशारे को समझ गई। जलकर बक्स को ज़ोर से वा-थिन की ओर हाथ से ठेलकर वह बोली—मैं सवेरे चुरुट नहीं पीती और चुरुट से गन्ध छिपाने का काम भी मैंने नहीं किया। मैं क्षुद्र मनुष्य की लड़की नहीं हूँ।

वा-थिन ने सिर उठाकर शान्त स्वर में कहा—शायद तुम्हारे कपड़ों में किसी तरह लग गई होगी। शराब की गन्ध की बात मैंने बनाकर नहीं कही है।

मा-शोये बिजली की-सी तेज़ी से तीर की तरह उठ खड़ी हुई। वह बोली—तुम जैसे नीच हो, वैसे ही जलनेवाले हो, इसी से बिना दोष के तुमने मेरा अपमान किया है! ख़ैर, यही अच्छा है। अपने कपड़े-लत्ते मैं तुम्हारे घर से सदा के लिए हटाये लिये जाती हूँ।

यह कहकर प्रत्युत्तर की अपेक्षा किये बिना ही वह तेज़ी के साथ वहाँ से चली जा रही थी कि वा-थिन ने पीछे से आवाज़ देकर वैसे ही संयत शान्त स्वर में कहा—मुझे नीच या जलनेवाला कभी किसी ने नहीं कहा। तुम बिना जाने एकाएक अधःपात के मार्ग में बढ़ने को उद्यत हुई हो, इसी से मैंने तुमको सावधान भर किया था।

मा-शोये ने घूमकर, खड़े होकर कहा—अधःपात के मार्ग में मैं कैसे जा रही हूँ?

वा-थिन—मुझे तो यही जान पड़ता है।

मा-शोये—अच्छा, तुम ऐसा ही दूषित मन लेकर रहो; किन्तु जिसका बाप आशीर्वाद छोड़ गया है, सन्तान के लिए अभिशाप नहीं जमाकर गया है, उसके साथ तुम्हारे मन का मेल नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता!

इतना कहकर वह चली गई। वा-थिन सन्नाटे में आकर जहाँ का तहाँ स्थिर बैठा रहा। कोई किसी भी कारण से किसी को ऐसी मर्मघाती चोट पहुँचा सकता है, इतना अधिक असीम प्यार एक ही दिन में कैसे इतना बड़ा विष हो सकता है, इसे वह सोच भी नहीं सका।

मा-शोये ने घर आते ही देखा, पो-थिन बैठा है। उसने संभ्रम के साथ उठ खड़े होकर अत्यन्त मधुर भाव से मुसकिरा दिया।

उसका मुसकिराना देखकर मा-शोये की दोनों भौंहें शायद उसके अनजान में ही कुञ्चित हो उठीं। उसने कहा—आपका कुछ विशेष प्रयोजन है?

पो-थिन ने सिटपिटाकर कहा—न, प्रयोजन तो ऐसा—

"तो इस समय मुझे अवकाश न होगा।" यह कहकर बग़ल की सीढ़ियों से चढ़कर मा-शोये ऊपर चली गई।

गत रात्रि की बातें स्मरण कर और उनके साथ इस समय के उसके व्यवहार का सामञ्जस्य न देखकर पो-थिन एकदम हतबुद्धि-सा हो गया। किन्तु बैरा के सामने आते

ही सूखी हँसी के साथ उसके हाथ में एक रुपया रखकर सीटी बजाता हुआ वह वहाँ से चल दिया।

(७)

लड़कपन से ही जिन दोनों जनों में कभी घड़ी भर के लिए भी विच्छेद नहीं हुआ, भाग्य की विडम्बना से आज महीने से भी अधिक समय बीत गया होगा, किसी ने किसी से भेंट तक नहीं की।

मा-शोये यह कहकर अपने के समझाने की चेष्टा करती कि यह एक तरह से अच्छा ही हुआ कि जिस मोह के जाल ने इतने दिनों से उसे कठिन बन्धन में अभिभूत कर रक्खा था वह टूट गया। अब उसके साथ अपना रत्ती भर भी लगाव नहीं है!

उस धनी की कन्या ने नवीन उद्दण्ड-प्रकृति के पिता के रहते भी अनेक बार ऐसे अनेक काम करने चाहे थे जिन्हें केवल गम्भीर और संयत-चित्त बा-थिन की नाराज़ी के डर से ही वह नहीं कर सकी थी। किन्तु आज वह स्वाधीन है—बिलकुल अपना मालिक आप है, सोलहो आने खुद मुख़्तार है, कोई उसे रोकनेवाला नहीं—कहीं किसी के आगे अपने किसी काम की रत्ती भर भी जवाबदेही करने को नहीं है।

इस एक ही बात को लेकर उसने मन ही मन बहुत कुछ ऊहापोह किया, बहुत-सी कल्पना की इमारत गढ़ी और गिराई; किन्तु एक दिन भी उसने कभी अपने हृदय की निगूढ़ कोठरी का द्वार खोलकर नहीं देखा कि वहाँ क्या है। अगर वह देखती तो देख पाती कि इतने दिन उसने केवल अपने को ही आप धोखा दिया है। उस एकान्त गुप्त कोठरी में दिन-रात दोनों (मा-शोये और बा-थिन) आमने-सामने बैठे रहते हैं—न तो प्रेमालाप करते हैं और न कलह ही करते हैं; केवल चुपचाप बैठे आँखों से आँसू बहा रहे हैं।

अपने, दोनों आदमियों के, जीवन का यह अत्यन्त करुण चित्र उसकी मानस दृष्टि के अगोचर होने के कारण ही इसी बीच में उसके घर में अनेक उत्सव-रात्रियों का निष्फल अभिनय हो गया—पराजय की लज्जा ने उसे धराशायी नहीं कर दिया, उसने सिर नहीं झुकाया।

किन्तु आज का दिन ठीक उसी तरह क्यों नहीं बीत पाया, यही बात यहाँ कहनी है।

जन्मतिथि के उपलक्ष में हर साल उसके यहाँ एक आमोद-आह्लाद और खाने-पीने का जल्सा हुआ करता था। आज की बरस-गाँठ का वह आयोजन कुछ अतिरिक्त आडम्बर के साथ हो रहा था। घर के नौकर-चाकरों से लेकर पड़ोसी तक उसमें शामिल हुए थे। केवल मा-शोये ही जैसे उसमें शरीक़ न थी, उसका किसी काम या बात में मन नहीं लगता था।

आज सवेरे से ही उसे जान पड़ने लगा, सब वृथा है, सब व्यर्थ का श्रम है। न जाने क्यों, इतने दिनों तक मा-शोये को जैसे जान पड़ रहा था कि वह आदमी (बा-थिन) भी दुनिया के और सभी लोगों की तरह है, वह भी मनुष्य है—वह भी ईर्ष्या से अतीत नहीं है। उसके घर में जो यह सब आनन्द-उत्सव का अत्यधिक, अनन्त और नित्य नया आयोजन होता है, इसकी ख़बर क्या बा-थिन की बन्द खिड़की को फोड़कर उस एकान्त कोठरी में जाकर नहीं पहुँचती—उसके काम में बाधा नहीं पहुँचाती?

शायद वह अपनी रङ्ग की कूची हाथ से फेंककर कभी स्थिर होकर बैठ जाता है, कभी अस्थिर द्रुत पग रखता हुआ अपनी कोठरी में टहलने लगता है, कभी निद्रा-विहीन नेत्रों से तप्त शय्या पर करवटें बदलता हुआ ईर्ष्या की आग में जल-भुनकर ख़ाक हुआ करता है और कभी – लेकिन जाने दो इन सब बातों को।

कल्पना-द्वारा मा-शोये इतने दिनों तक एक प्रकार के तीक्ष्ण आनन्द का अनुभव कर रही थी; किन्तु आज अकस्मात् रह-रहकर उसे यही जान पड़ता था—कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं। उसका कोई भी काम बा-थिन के काम में बाधा नहीं डालता। सब मिथ्या है, सब धोखा है। बा-थिन न दूसरे को अपने हाथ में करना चाहता है और न आप ही दूसरे की मुट्ठी में होना चाहता है। वह महा दुर्बल देह अकस्मात् न जाने किस तरह जैसे एकदम पहाड़ की तरह कठिन और अटल हो गई है—कहीं की कोई भी आँधी उसे अब रत्ती भर डिगा नहीं सकती, विचलित नहीं कर सकती।

किन्तु तो भी जन्मतिथि के उत्सव का विराट् आयोजन आडम्बर के साथ ही चल रहा था। पो-थिन आज सर्वत्र सभी कामों में देख पड़ता था। यहाँ तक कि परिचित लोग

आपस में यह काना-फूसी भी कर रहे थे कि एक दिन यही आदमी इस घर का मालिक हो जायगा, और जान पड़ता है, वह दिन बहुत दूर भी नहीं है।

गाँव की नर-नारियों से मा-शोये का महल परिपूर्ण हो गया था—चारों ओर आनन्द-कलरव हो रहा था। केवल जिसको उपलक्ष्य करके यह सब हो रहा था वही आदमी उदास देख पड़ता था, उसी के मुख पर निरानन्द की छाया छाई हुई थी। किन्तु यह निरानन्द की छाया बाहर के किसी आदमी की नज़र में नहीं पड़ी—पड़ी केवल इस घर के दो-चार पुराने दास-दासियों की दृष्टि में। और शायद उन्होंने भी उसे देख लिया, जो अलक्ष्य रह कर सबका सब हाल देखते हैं। केवल वही अन्तर्यामी देखने लगे कि उस लड़की के निकट आज का सब उत्सव और आडम्बर केवल विडम्बना है।

इस जन्मतिथि के दिन हरसाल जो आदमी सबसे पहले गुप्तरूप से मा-शोये के गले में आशीर्वाद-स्वरूप माला पहना देता था, आज न वह आदमी वहाँ था और न वह माला ही थी—उस आशीर्वाद का आज एकान्त अभाव था।

मा-शोये के बाप के समय के वृद्ध ने आकर कहा—बिटिया रानी, आज वे यहाँ क्यों नहीं देख पड़ते?

वृद्ध कुछ समय पहले नौकरी से अवकाश लेकर चला गया था। उसका घर अन्य ग्राम में था, इन दोनों की मन-मैली का हाल उसे नहीं मालूम था। आज आने पर नौकर-चाकरों से उसने सुन पाया था।

मा-शोये ने उद्धत-भाव से कहा—देखने की दरकार हो तो उनके घर जाओ। मेरे यहाँ क्यों?

"अच्छा, वहीं जाता हूँ।" यह कहकर वृद्ध चला गया। मन ही मन कह गया कि केवल अकेले उन्हीं (बा-थिन) को देखने से तो काम नहीं चलेगा—तुम दोनों को एक साथ मैं देखना चाहता हूँ। नहीं तो इतना रास्ता तय करके मेरा यहाँ आना व्यर्थ ही न होगा!

किन्तु बुड्ढे के मन की बात उस नवयुवती से छिपी नहीं रही। तभी से वह एक तरह से चौकन्नी रह कर ही सब कामों में समय बिता रही थी। सहसा एक दबे गले का अस्फुट शब्द सुनकर उसने आँख उठाकर देखा, सामने बा-थिन खड़ा है। उसके सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई किन्तु पल ही भर में अपने को सँभालकर मुँह फेरकर वह अन्यत्र चली गई।

दम भर के बाद बूढ़े ने आकर कहा—बिटिया रानी, चाहे जो हो, इस समय वे तुम्हारे मेहमान हैं। क्या तुमको उनसे मुँह से बोलना भी न चाहिए? एक बात भी न करनी चाहिए?

मा-शोये ने कहा—लेकिन मैंने तो तुमसे उन्हें बुला लाने के लिए नहीं कहा था।

"यही मुझसे अपराध हो गया!" यह कहकर वह वृद्ध चला जा रहा था। मा-शोये ने पुकार कर कहा—अच्छा तो मेरे सिवा और भी आदमी तो हैं। क्या वे नहीं बात कर सकते—बोल सकते?

वृद्ध ने कहा—बोल क्यों नहीं सकते? लेकिन जान पड़ता है, अब उसकी ज़रूरत न होगी। वे चले गये।

मा-शोये क्षण भर के लिए सन्नाटे में आ गई। उसे शायद यह आशा न थी। उसके बाद बोली—मेरा भाग्य! नहीं तो तुम क्या उनसे खा-पीकर जाने के लिए नहीं कह सकते थे?

"न, मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूँ!" इतना कहकर वृद्ध नाराज़ होकर चला गया।

(८)

इस अपमान से धीर-गंभीर बा-थिन की आँखों में आँसू भर आये। किन्तु उसने किसी को दोष नहीं दिया, केवल अपने को बार-बार धिक्कार देकर कहने लगा—यह ठीक ही हुआ। मुझ-सरीखे लज्जाहीन के लिए इसी की ज़रूरत थी।

किन्तु अपमान का प्रयोजन इसी जगह—इसी एक रात में ही—समाप्त नहीं हुआ था, इससे भी बड़ा—बहुत अधिक अपमान उसके भाग्य में लिखा था, इस बात की उसे ख़बर ही न थी। ख़बर मिली दो-तीन दिन के बाद। और इस तरह मिली कि उस लज्जा को अपने सारे जीवन में वह कहाँ रक्खेगा, इसका कुछ ओर-छोर उसे नहीं देख पड़ा।

जिस तसवीर का प्रसंग लेकर यह कहानी शुरू हुई है, जातक के भाव को लेकर बनाया गया वह गोपा का चित्र इतने दिनों के बाद बनकर तैयार हुआ था। एक महीने से अधिक दिन-रात घोर परिश्रम का फल आज पूरा

हुआ था। सवेरे का सारा समय उसी की प्रसन्नता में उसने बिताया।

तसवीर राजा के दरबार में जायगी। जो दाम देकर ले जानेवाले थे वे ख़बर पाकर बा-थिन के पास तसवीर लेने को उपस्थित हुए। किन्तु चित्र का आवरण खोला जाने पर वे देखकर चौंक उठे। चित्रकला के बारे में वे अनाड़ी नहीं थे। बहुत देर तक एकटक देखते रहकर अन्त में वे क्रुद्ध स्वर में बोले—यह चित्र मैं राजा को उपहार न दे सकूँगा।

बा-थिन ने भय और विस्मय से हतबुद्धि होकर कहा—क्यों?

उस व्यक्ति ने कहा—क्यों क्या? इस मुख को क्या मैं पहचानता नहीं हूँ? मनुष्य का चेहरा बनाकर देवता की मूर्ति गढ़ने से देवता का अपमान होता है, यह जानते हो? राजा यह बात जान जायँगे तो मेरा मुँह नहीं देखेंगे।

इतना कहकर चित्रकार की विस्मय-विस्फारित व्याकुल दृष्टि की ओर क्षण भर ताकते रहकर मुस्कुराते हुए कहा—ज़रा मन लगाकर देखोगे तो देख पाओगे कि यह कौन है? किसका चेहरा है? यह चित्र बेकार है।

बा-थिन की आँखों के सामने से धीरे-धीरे एक कुहासे का पर्दा-सा हट गया। उस भद्र पुरुष के चले जाने पर भी वह वैसे ही एकटक चित्र की ओर ताकता हुआ खड़ा रहा। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। उसे यह समझने को अब बाक़ी नहीं रह गया कि इतने दिन प्राणान्त परिश्रम करके अपने हृदय के अन्तस्तल से जो सौन्दर्य, जो माधुर्य उसने निकालकर बाहर रक्खा है, पट पर अंकित किया है, देवता के रूप से जिसने उससे दिन रात छलना की है, वह जातक की गोपा नहीं है, वह उसी की मा-शोये है।

आँसू पोंछकर उसने मन ही मन कहा—भगवन्! मुझे इस तरह विडम्बना में क्यों डाला? मैंने आपके चरणों में क्या अपराध किया था?

(९)

पो-थिन ने साहस पाकर एक दिन कहा—तुमको पाने की कामना तो देवता भी करते हैं मा-शोये। मैं तो मनुष्य ही हूँ।

मा-शोये ने अन्यमनस्क की तरह उत्तर दिया—लेकिन जो नहीं करता वह जान पड़ता है देवताओं से भी बड़ा है।

किन्तु इस प्रसंग को उसने और आगे बढ़ने नहीं दिया। कहा—सुना है, दरबार में आपकी बड़ी चलती है। मेरा एक काम आप करा दे सकते हैं—बहुत जल्दी?

पो-थिन ने उत्सुक होकर पूछा—क्या?

मा-शोये—एक आदमी से मुझे बहुत रुपये मिलने हैं; लेकिन वसूल नहीं कर पाती। कोई लिखा-पढ़ी या काग़ज़-पत्र नहीं है। आप रुपये वसूल होने का कुछ उपाय कर दे सकते हैं?

"कर सकता हूँ। लेकिन क्या तुम जानती नहीं हो कि वह राजकर्मचारी कौन है?"—इतना कहकर पो थिन हँसा।

इस हँसी में ही स्पष्ट उत्तर था—अर्थात् यह काम जिसके हाथ में है वह राजकर्मचारी मैं ही हूँ। मा-शोये ने व्यग्रभाव से उसका हाथ पकड़कर कहा—तो फिर इसका कोई उपाय कर दीजिए। आज ही। मैं अब एक दिन की भी और देरी करना नहीं चाहती।

पो-थिन ने गर्दन हिलाकर कहा—अच्छी बात है। ऐसा ही होगा।

यह ऋण हमेशा इतना तुच्छ, इतना असम्भव और एक मज़ाक़ की बात समझा जाता रहा कि इसके बारे में कभी दोनों में से किसी पक्ष ने कुछ भी ख़याल नहीं किया, कुछ भी ध्यान नहीं दिया। किन्तु राजकर्मचारी के मुख से आशा की बात सुनकर मा-शोये का सारा शरीर दम भर में उत्तेजना से उत्तप्त हो उठा। उसने दोनों आँखें प्रदीप्त कर, सारा इतिहास ब्योरेवार बताकर कहा—मैं कुछ भी नहीं छोड़ूँगी—कौड़ी-कौड़ी ले लूँगी। जोंक जैसे जहाँ लगती है, वहाँ का सब रक्त सोख लेती है, ठीक उसी तरह!—आज ही।

इस बारे में पो-थिन से अधिक कहने की कोई आवश्यकता न थी। यह उसकी आशा से भी परे था—इसकी वह आशा ही नहीं कर सकता था। उसने भीतर के आग्रह और आनन्द को किसी तरह सँभालकर, छिपाकर कहा—राजा का आईन कम से कम सात दिन का अवसर चाहता है। इतने समय तक किसी तरह धैर्य धारण करके रहना ही होगा। इसके बाद जिस तरह जी चाहे, जितना जी चाहे, रक्त चूस लेना, मैं आपत्ति नहीं करूँगा।

मा-शोये—अच्छी बात है। लेकिन इस समय आप जाइए।

इतना कहकर वह वहाँ से एक तरह जैसे दौड़ती हुई भाग गई।

उस दुर्बोध लड़की के ऊपर पो-थिन रीझ गया था, उसके लोभ और लालसा की सीमा नहीं थी। इसी से वह अब तक बहुत कुछ अवहेला और अनादर चुपचाप हज़म कर चुका था। आज भी इस अवहेला को उसी तरह पो गया। बल्कि घर लौटते समय रास्ते में आज उसका पुलकित चित्त बारबार यही अपने आप कहने लगा कि अब डर नहीं है—उसकी सफलता का रास्ता साफ़ होने में, निष्कण्टक होने में अब जान पड़ता है, अधिक देर न होगी। विलम्ब न होगा, यह सत्य है। किन्तु कितनी जल्दी और कितना बड़ा विस्मय भगवान् ने उसके भाग्य में लिख रक्खा है, इस बात की कल्पना करना भी आज उसके लिए सम्भव नहीं था।

(१०)

ऋण के दावे की चिट्ठी आई। काग़ज़ हाथ में लिये बा-थिन बड़ी देर तक चुपका बैठा रहा। ठीक इसी बात की आशा अवश्य ही उसने नहीं की थी,- लेकिन वह पत्र पाकर उसे आश्चर्य भी नहीं हुआ। समय थोड़ा ही है, शीघ्र ही कुछ-न-कुछ उपाय करना चाहिए।

एक दिन मा-शोये ने क्रोध के आवेश में बा-थिन के पिता के अपव्यय के लिए विद्रूप किया था, ताना मारा था। उसके इस अपराध को बा-थिन भूला नहीं था और न उसने क्षमा ही किया था। इसी से उसने मा-शोये से समय बढ़ाने की भिक्षा माँगकर अपने पूज्य पिता को और भी अपमानित करने की कल्पना भी नहीं की थी। केवल चिन्ता यही थी कि उसका जो कुछ है, सो सब देकर भी पिता को संपूर्ण रूप से ऋणमुक्त कर सकने में उसे संदेह था।

गाँव में ही एक महाजन था। दूसरे दिन सवेरे ही उसके पास जाकर गुप्तरूप से अपना सर्वस्व बेचने का प्रस्ताव बा-थिन ने उससे किया। देखा, महाजन जो कुछ देना चाहता है, वह ऋण से मुक्त होने के लिए काफ़ी है।

बा-थिन सर्वस्व बेंच कर महाजन से रुपये ले कर घर आया। किन्तु एक जन की अकारण हृदयहीनता ने उसके समस्त शरीर और मन के ऊपर अज्ञात रूप से कितना बड़ा आघात किया था, यह उसे तब मालूम हुआ, जब उसे ज़ोर का ज्वर आ गया और वह पलँग पर पड़ गया।

एक दिन-रात कब किस तरह बीती, इसका उसे कुछ अनुभव भी नहीं हो सका। ज्ञान होने पर वह उठकर बैठ गया। देखा, वही दिन रुपया अदा करने का क़ानूनी मियाद का आख़िरी दिन है।

आज आख़िरी याने सातवाँ दिन था। अपने सुनसान एकान्त कमरे में बैठकर मा-शोये कल्पना का जाल फैला रही थी। उसके अपने अहङ्कार ने हर घड़ी चोट पर चोट खा-खाकर और एक जन के अहङ्कार को एक दम आसमान पर पहुँचा दिया था। इसमें आज मा-शोये को लेशमात्र संदेह नहीं था कि बा-थिन का वह विराट् अहङ्कार आज उसके पैरों पर गिर कर मिट्टी में मिल जायगा।

इसी समय नौकर ने आकर ख़बर दी, नीचे बैठक में बा-थिन बैठा उसकी राह देख रहा है। मा-शोये ने मन ही मन क्रूर हँसी हँसकर कहा—यह तो मैं जानती ही थी। वह स्वयं भी इसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

मा-शोये के नीचे आते ही बा-थिन उठकर खड़ा हो गया। किन्तु उसके मुख की ओर देखकर, उसके चेहरे की हालत देखकर, मा-शोये तड़प उठी—उसके कलेजे में जैसे किसी ने भाला भोंक दिया हो। वास्तव में वह रुपये नहीं चाहती थी, उसे रुपये की ज़रूरत भी नहीं थी, रुपये के लिए उसके मन में रत्ती भर भी लोभ नहीं था; किन्तु उसी रुपये के नाम से कितना बड़ा भयङ्कर अत्याचार किया जा सकता है, यह मा-शोये ने आज अभी देख पाया।

बा-थिन ही पहले बोला। उसने कहा—आज सात दिनों के अन्तिम दिन ही मैं तुम्हारा रुपया ला सका हूँ।

हाय रे, मनुष्य मरते समय भी दर्प को नहीं छोड़ना चाहता। नहीं तो इसके प्रत्युत्तर में मा-शोये के मुख से ऐसी बात कैसे निकल पाई कि उसने क़र्ज़ के कुछ थोड़े से रुपये ही नहीं माँगे थे। वह आज ऋण की पाई पाई चुका लेना चाहती है।

बा-थिन के शुष्क, पीड़ित मुख पर हँसी की ज्योति खेल गई। उसने कहा—ठीक है, मैंने वही किया है, तुम्हारे कुल रुपये ले आया हूँ।

मा-शोये ने आश्चर्य से कहा—सब रुपये ले आये हो ? पाया कहाँ ?

बा-थिन ने कहा—कल जान जाओगी। उस बक्स में रुपये हैं। किसी से गिनकर रख लेने के लिए कहो।

गाड़ीवान ने फाटक पर से बा-थिन को लक्ष्य करके पूछा—और कितनी देर होगी ? अगर दिन रहते रहते यहाँ से न चला जायगा तो पेगू में रात को ठहरने के लिए जगह नहीं मिलेगी।

मा-शोये ने गर्दन निकालकर देखा, सड़क पर एक बैलगाड़ी खड़ी है, जिस पर बक्स, बिछौने वग़ैरह सामान लदा हुआ है। पल भर में ही भय से उसका चेहरा उतर गया—ज़र्द पड़ गया। व्याकुल होकर एक साथ ही उसने सैकड़ों प्रश्न कर डाले—पेगू कौन जायगा ? गाड़ी किसकी है ? इतने रुपये तुमने कहाँ पाये ? चुप क्यों हो ? तुम्हारा चेहरा इतना सूखा हुआ क्यों है ? आँखें लाल क्यों हो रही हैं ? कल क्या जानूँगी ? आज कहने में क्या तुम्हें—

कहते-कहते आत्म-विस्मृत होकर, पास आकर, मा-शोये ने सहसा बा-थिन का हाथ पकड़ लिया। और, तुरन्त ही हाथ छोड़ देकर उसके मत्थे पर हाथ रखते ही चौंक उठी—बोली—अहो ! तुम्हें तो बुख़ार है—बड़े ज़ोर का है ! वही तो मैं कह रही थी कि तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो रहा है ?

बा-थिन ने अपने को मा-शोये के हाथ से छुड़ाकर शान्त कोमल स्वर में कहा—मैं मंडाले जा रहा हूँ। आज क्या तुम मेरा एक अन्तिम अनुरोध सुनोगी ?

मा-शोये ने सिर हिलाकर जताया कि हाँ, वह सुनेगी।

बा-थिन ने ज़रा देर स्थिर रहकर कहा—मेरा अन्तिम अनुरोध यही है कि किसी भले आदमी को देखकर उसके साथ शीघ्र विवाह कर लेना। इस तरह अविवाहित अवस्था में और अधिक दिन न रहना। और एक बात है—

इतना कहकर वह और कुछ देर चुप रहकर और भी कोमल कण्ठ से कहने लगा—और एक बात सदा याद रखने के लिए तुमसे कहता हूँ। यह बात कभी न भूलना कि लज्जा की तरह रूठना भी स्त्रियों का अलङ्कार अवश्य है; लेकिन अधिक होने से—

मा शोये अधीर होकर बीच में ही कह उठी—ये सब बातें और किसी दिन सुनूँगी। पहले यह बतलाओ कि तुमने रुपये कहाँ पाये ?

बा-थिन हँसा। वह बोला—यह बात क्यों पूछती हो ? मेरी कौन सी बात तुम नहीं जानती हो ?

मा-शोये—रुपये कहा पाये ?

बा-थिन ने लार घूँटकर कुछ इधर-उधर करके अन्त में कहा—पिता जी का ऋण उन्हीं की संपत्ति से अदा हुआ है—नहीं तो मेरे पास और क्या है ?

मा-शोये – तुम्हारा फूलों का बाग़ ?

बा-थिन—वह भी तो पिता जी का है।

मा-शोये—तुम्हारी इतनी किताबें ?

बा-थिन—किताबें रखकर अब क्या करूँगा ? इसके सिवा वे भी तो उन्हीं की हैं।

मा-शोये ने एक साँस छोड़कर कहा—ख़ैर, जाने दो, अच्छा ही हुआ। अच्छा, ऊपर चलकर लेट रहो, चलो।

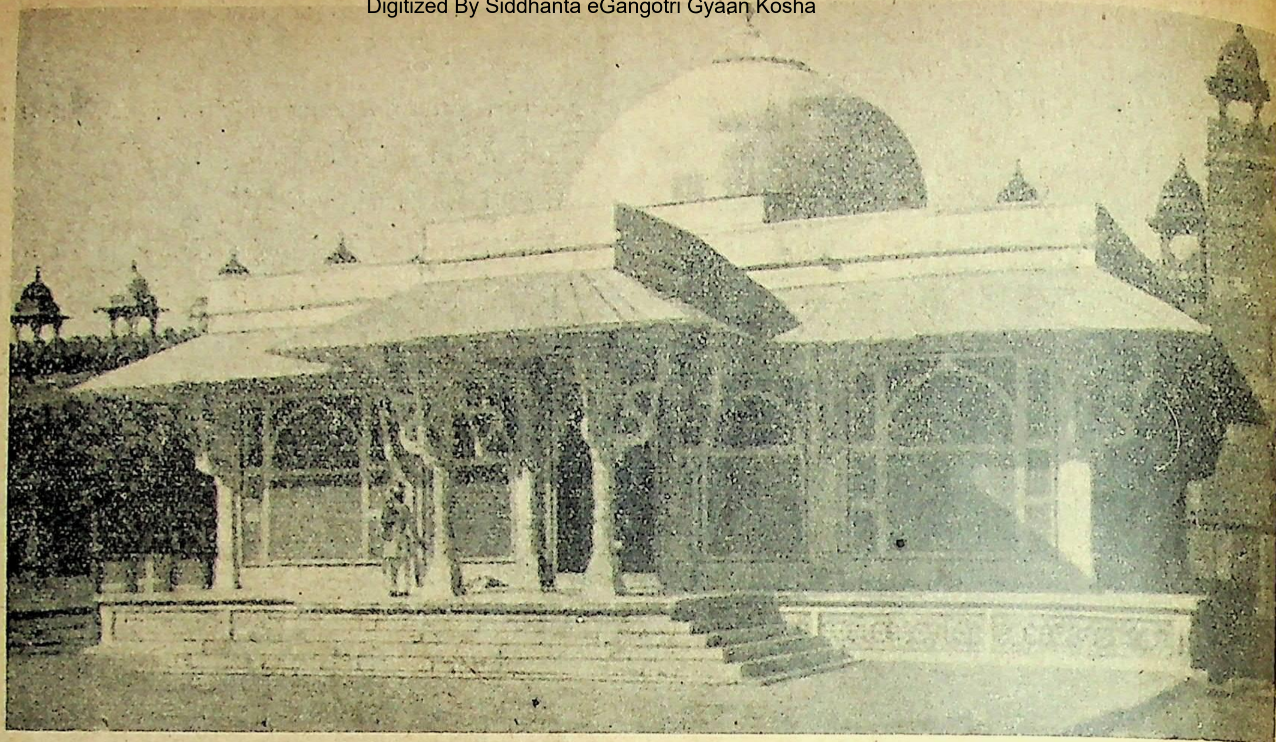
बा-थिन—लेकिन आज मुझे जाना है।

मा-शोये—इतने बुख़ार में ? यह क्या तुम सचमुच विश्वास करते हो कि मैं इस अवस्था में तुमको जाने दूँगी ?

इतना कहकर, पास आकर, उसने फिर बा-थिन का हाथ पकड़ लिया। अबकी बा-थिन ने विस्मय के साथ देखा, मा-शोये का चेहरा पल ही भर में एकदम बदल गया है। उस मुख में विषाद, विद्वेष, लज्जा, अभिमान या रूठने का कुछ भी चिह्न नहीं है। है केवल विराट् स्नेह, और वैसी ही भारी लज्जा। इस मुख ने उसको एकदम मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया। वह चुपचाप धीरे धीरे उसके पीछे-पीछे ऊपर शयन-कक्ष में आकर उपस्थित हुआ।

उसे पलँग पर लिटाकर मा-शोये उसके पास बैठ गई। दो सजल तृप्त नेत्र उसके पाण्डुर मुख पर निबद्ध करके बोली—तुम क्या समझते हो कि कुछ रुपये ले आये हो, इतने से ही मेरा ऋण चुक गया ? मंडाले की बात छोड़ दो, मेरी आज्ञा के बिना इस कमरे के बाहर अगर तुमने क़दम निकाला तो मैं छत पर से नीचे फाँदकर आत्महत्या कर लूँगी। मुझे तुमने बहुत दुःख दिया है, किन्तु अब और दुःख किसी तरह नहीं सहूँगी—यह मैं तुमसे निश्चितरूप से कहे देती हूँ।

बा-थिन ने कुछ जवाब नहीं दिया। पैरों के पास से चादर खींचकर एक लम्बी साँस लेकर करवट बदलकर वह सो रहा।



[शेख़ सलीम चिश्ती का मज़ार, फ़तेहपुर सिकरी

कुछ मुसलमान सन्त और उनके मक़बरे

लेखक, श्रीयुत गंगाधर राव



मुसलमानों में ऐसे अनेक संत हो गये हैं जो अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न माने गये हैं और जिनके रौज़ों और क़ब्रों की भावुक लोग यात्रा तथा उनकी पूजा करते हैं। इन संतों के जो चरित मुसलमानों ने लिखे हैं उनसे मालूम होता है कि ये लोग बड़े बड़े चमत्कार दिखलाया करते थे। मरे हुए को जिला देना, भविष्य कथन करना, अभिशाप देना तथा लोगों के मन की बात को जान लेना इनके करिश्मे माने जाते हैं और इसी कारण इन लोगों की जनता में ख़ूब सम्मान-पूजा होती है। यहाँ हम ऐसे ही कुछ सन्तों का तथा उनके रौज़ों का वर्णन करेंगे जो एक लम्बा समय बीत जाने पर भी जनता में आज भी पूजे जा रहे हैं।

भारतीय मुसलमान सन्तों में ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती अपने समय के बड़े भारी महात्मा हो गये हैं। उनकी दरगाह अजमेर में है। प्रतिवर्ष इसकी ज़ियारत को भारत के भिन्न-भिन्न भागों के मुसलमान लाखों की संख्या में एकत्र होते हैं।

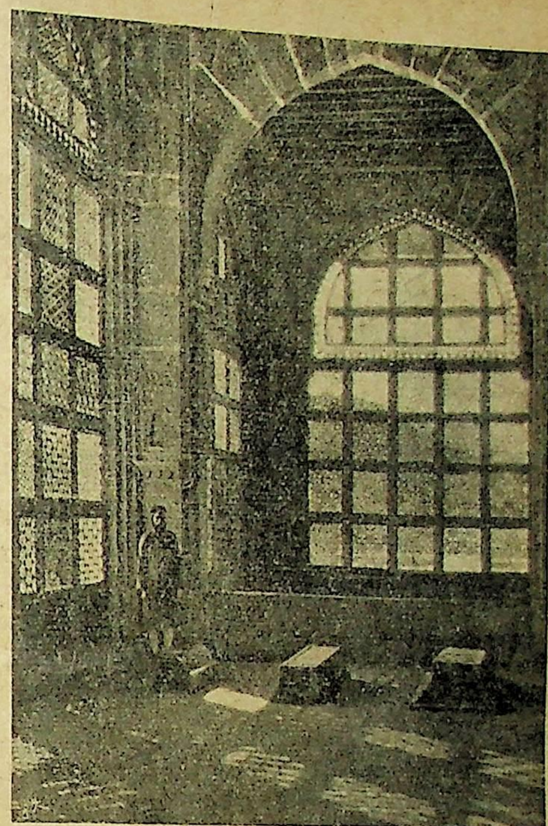
ख़्वाजा साहब का जन्म ईरान के सीस्तान में सन् ११४२ में हुआ था। जब वे अफ़ग़ानिस्तान में थे, उन पर इब्राहीक क़न्दोज़ नाम के एक साधु का बड़ा प्रभाव पड़ा था। इसके बाद वे हिसामुद्दीन बोख़ारी के शिष्य हो गये। साधु हो जाने पर वे प्रायः देशाटन ही करते रहे। उनको यात्रा से बड़ा प्रेम था। मक्का, बग़दाद आदि स्थानों की उन्होंने यात्रा की। अन्त में अजमेर आकर ठहर गये। यहाँ पास की एक पहाड़ी की गुफा में रहते थे। मृत्यु के सात वर्ष पहले उन्होंने एक सैयद की पुत्री से विवाह किया था। इससे उनके तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। उनकी मृत्यु ९२ वर्ष की उम्र में सन् १२३६ के मार्च में हुई थी।

ख़्वाजा साहब बड़े त्यागी साधु थे। उनकी रहन-सहन बहुत ही सीधी-सादी थी। कपड़े के नाम से एक लुङ्गी को छोड़कर वे अपने पास कुछ नहीं रखते थे। भोजन भी बिलकुल मामूली करते थे। कभी-कभी तो आठवें दिन सिर्फ़ एक चपाती खाते थे। स्वभाव के बड़े नेक थे। अपने साधुतापूर्ण जीवन के द्वारा उन्होंने आसपास के लोगों को भले प्रकार आकृष्ट कर लिया था। परन्तु जैसी ख्याति उनकी आज है, वैसी उनके जीवनकाल में नहीं थी। वे उसी गुफा में दफ़नाये गये थे जिसमें रहते थे।

उनकी मृत्यु के कोई दो सौ वर्ष बाद दिल्ली के सुल्तान ग़यासुद्दीन ने उनकी क़ब्र पर एक पक्का मक़बरा बनवा दिया। उसी समय से उनकी ओर लोगों की श्रद्धा फिर जाग्रत हुई। सम्राट् अकबर उनके बड़े भक्त थे। सम्राट् ने सन् १५७० में उनकी दरगाह में एक सुन्दर मस्जिद उनकी यादगार में बनवा दी। सम्राट् उनकी दरगाह की प्रत्येक वर्ष ज़ियारत भी करते थे। कहा जाता है कि अकबर ने एक बार आगरा और फ़तेहपुर सीकरी के बीच में मन्दखोर में शिकार खेलते समय देहातियों को उनकी प्रशंसा के गीत गाते सुना था। उन गीतों का सम्राट् पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे ख़्वाजा साहब के भक्त हो गये।

ख़्वाजा साहब की दरगाह उनकी महिमा के सर्वथा उपयुक्त बनी है। इसका फ़र्श संगमरमर का है। दीवारों पर बड़ा सुन्दर काम है। छत का भीतरी भाग बहुत सफ़ेद और चिकना है। इसके बीच में उनकी क़ब्र है, जो बहुमूल्य चादर से ढँकी रहती है। क़ब्र के सिरे पर चाँदी का धूप-पात्र रक्खा रहता है, जिसमें रातदिन सुगन्धित धूप जलती रहती है।

तेरहवीं सदी के दिल्ली के सैयद मौला भी बड़े करामाती फ़क़ीर थे। वे एक मकतब चलाते थे। सभी जाति के ग़रीबों और यात्रियों को उनके यहाँ भोजन और आश्रय मिलता था। वे पूरे त्यागी साधु थे। न उनके स्त्री थी और न सेवा-टहल के लिए गुलाम। वे केवल चावल का ही आहार करते थे। वे किसी से दान-दक्षिणा भी नहीं लेते थे। उल्टा ख़ुद ही ख़ैरात करते रहते थे। उनके ख़र्च को देखकर लोग दंग रहते थे। किसी प्रसिद्ध खानदान को अर्थ-सङ्कट में देखकर दो-तीन हज़ार अशर्फ़ियाँ उसे दे डालना उनके लिए मामूली बात थी। ग़रीबों को

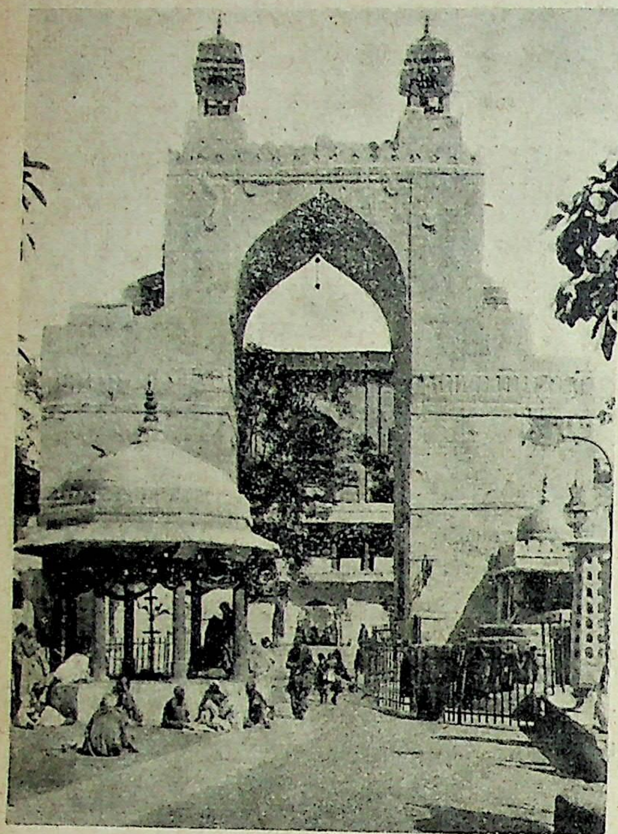


[मुहम्मद गौस के मक़बरे का भीतरी दृश्य (ग्वालियर)]

भोजन देने में वे राजाओं जैसा ही मुक्तहस्त होकर ख़र्च करते रहते थे। ग़रीबों को खिलाने-पिलाने में वे नित्य एक हज़ार मन आटा, पाँच सौ मन मांस और अस्सी मन चीनी ख़र्च करते थे। इनके सिवा यथा मात्रा चावल, तेल, घी आदि दूसरी आवश्यक चीज़ें भी ख़र्च होती थीं। कहा जाता है कि वे कीमियागर थे।

बाद को उन्होंने अपने चेलों को उपाधियाँ और अधिकार के पद देना शुरू किया, और राज्याधिकार हस्तगत कर लेने की भी इच्छा प्रकट की। इस षड्यन्त्र का भेद खुल गया और बादशाह की आज्ञा से वे हाथी से रौंदाकर मार डाले गये। यह घटना सन् १२९१ में हुई थी। परन्तु कुछ लेखक इस घटना को असत्य ठहराते हैं। चाहे जो हो। सैयद मौला वास्तव में ग़रीबों के लिए मौला ही थे।

अहमदाबाद के शेख़ अहमद खत्तूगञ्जबख़्श अपने समय के ऊँचे दर्जे के लोकपूज्य महात्माओं में थे। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहकर परमात्मा की



[ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह, अजमेर]

याद में लीन रहे। राजा-नवाबों को ज़रा सी बात पर दुतकार दिया करते थे।

ये बड़े उग्र तपस्वी साधु थे। ब्रिग साहब ने लिखा है कि इनकी रहन-सहन बहुत ही सीधी-सादी थी। एक बार एक मुसलमान शासक ने इनको धन-दौलत और सुख की सारी सामग्री प्रस्तुत कर देने का बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु इन्होंने उसकी ओर आँख तक नहीं उठाई। इनके चमत्कारों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ कही जाती हैं। इन्होंने अपना रौज़ा अपनी मृत्यु के पहले बनवाया था। मज़दूरों की मज़दूरी ये नित्य अपने पास से देते थे। कहा जाता है कि आवश्यक धन एक जिन इनकी दरी के नीचे रोज़ रख दिया करता था और वही रक़म ये नित्य ख़र्च किया करते थे।

परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। गंजबख़्श ने रौज़ा नहीं बनवाया था। उसका बनना शेख़ जी की मृत्यु के बाद १४४५ ईसवी में शुरू हुआ था और छः वर्ष में बनकर तैयार हुआ था। अहमदाबाद के तत्कालीन शासक सुलतान अहमद के पुत्र दूसरे मुहम्मद ने उसका निर्माण प्रारम्भ किया था और उसके पुत्र ने उसे पूर्ण किया था। इसकी कारीगरी भी प्रशंसनीय है तथा इसमें हिन्दू-शिल्पकला का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। अहमदाबाद से कुछ दूर सरखेज में शेख़ अहमद खत्तू गंजबख़्श का उक्त विशाल मक़बरा स्थित है।

इस रौज़े से कुछ दूरी पर एक और रौज़ा है। यह रौज़ा बाबा अलीशेर नाम के एक प्रसिद्ध फ़क़ीर का है। गंजबख़्श से इनकी अधिक महिमा है। लोग अधिक संख्या में इनके रौज़े की यात्रा करते हैं। परन्तु यह रौज़ा छोटा, असुन्दर तथा सफ़ेद पुता हुआ है। इमारत की दृष्टि से भी इसका कोई महत्त्व नहीं है, पर महिमा में बढ़ा-चढ़ा है।

फ़तेहपुर-सीकरी का सलीम चिश्ती शेख़ का रौज़ा एक भारत-प्रसिद्ध इमारत है। इन फ़क़ीर का सम्राट् अकबर अत्यधिक आदर करते थे। इनके पिता बहाउद्दीन शेख़ फ़रीद शकरगंज के पुत्र थे। ये दिल्ली में सन् १४७८ में पैदा हुए थे। सीकरी के पास एक पहाड़ी पर रहा करते थे। सम्राट् अकबर की आर्थिक सहायता से इन्होंने उस पहाड़ी पर एक मसजिद बनवाई। इसके बन जाने के कुछ ही महीनों के बाद ये १५७२ ईसवी में मर गये। ये अपने समय के भारत के बहुत बड़े फ़क़ीर थे और इनकी शिक्षायें आज भी लोग बड़ी श्रद्धा के साथ पढ़ते और मनन करते हैं। कहते हैं कि इन्होंने मक्का की २४ बार यात्रा की थी। यह भी कहा जाता है कि इन्होंने सम्राट् के पुत्र होने की भविष्यवाणी की थी, इसी से अकबर ने अपनी राजधानी बनाने के लिए फ़तेहपुर नगर के निर्माण का निश्चय किया था। फ़तेहपुर सिकरी में इनका रौज़ा आज भी इनके गौरव और माहात्म्य का वहाँ की नीरव शान्ति में उद्घोष करता रहता है।

अकबर के श्रद्धा-भाजन एक और फ़क़ीर शाह सूफ़ी थे। कहा जाता है कि इन्होंने बादशाह को चँदवार का क़िला जीतने में मदद की थी। बादशाह क़िले का घेरा डाले हुए पड़े थे और वह उनके क़ब्ज़े में नहीं आ रहा था। एक रात को बड़ा तूफ़ान आया, जिससे शाही सेना के सभी दीपक बुझ गये, दूर पर नदी की झाबर में शाह

सूफ़ी की कुटिया थी। उस तूफ़ान में उनकी कुटिया का चिराग़ नहीं बुझा था। इसकी सूचना पाकर बादशाह को बड़ा विस्मय हुआ। फलतः उनके दरबारी एक दिन शाह सूफ़ी से मिले और क़िले के जीतने के लिए बादशाह को दुआ देने की प्रार्थना की। शाह सूफ़ी ने कह दिया कि अमुक दिन क़िले पर शाही सेना का अधिकार हो जायगा। उनकी इस भविष्यवाणी की ख़बर क़िले के स्वामी को भी मिली। राजा बहुत डर गया और वह उनके शरणागत हुआ। शाह सूफ़ी के प्रभाव से राजा उस क़िले को छोड़कर अपने प्राण बचाकर भाग गया और क़िले पर बादशाह का अधिकार हो गया। बादशाह ने प्रसन्न होकर आधा चंदावर शाह सूफ़ी को दे दिया, जहाँ उनके वंशधर आज भी निवास करते हैं। मृत्यु होने पर शाह सूफ़ी अपनी कुटिया के पास ही दफ़नाये गये और उनकी क़ब्र पर एक सुन्दर रौज़ा बनाया गया।

ग्वालियर के क़िले के ठीक बाहर मुहम्मद गौस का भारत-प्रसिद्ध रौज़ा स्थित है। इसकी कुछ खिड़कियों की तराशी का काम बहुत उत्कृष्ट माना जाता है। मुहम्मद गौस का जन्म शेख़ बयाज़िद बिस्तमी के वंश में हुआ था। इन्होंने चुनार की पहाड़ियों पर रहकर साधना की थी। १५५८ में ये आगरा गये, पर वहाँ इनका आदर-सम्मान नहीं हुआ। अतएव ये ग्वालियर चले गये। आगरे के इनके एक प्रतिद्वन्द्वी मुसलमान साधु ने इनका विरोध किया। उसका कहना था कि इनका ईश्वर से साक्षात् बातचीत करने का दावा मुसलमान-धर्म के विरुद्ध है।

मुहम्मद गौस बड़े दानी थे। यहाँ तक कि उनका दान स्वधर्मियों तक ही नहीं परिमित था। उनकी मृत्यु आगरा में ८० वर्ष की उम्र में अतीसार के रोग से हुई थी। उनका जेठा पुत्र बादशाह के यहाँ नौकर हो गया था और सबसे छोटा अपने पिता का अनुयायी हुआ। उनकी क़ब्र पर जो रौज़ा स्थित है उसे अकबर ने बनवाया था। यह सौ फ़ुट लम्बा-चौड़ा है। इसके चारों कोनों पर चार बुर्ज हैं। भीतर ४३ फ़ुट लम्बा-चौड़ा हाल है। इसकी दीवारें साढ़े पाँच फ़ुट मोटी हैं।

हैदराबाद-राज्य में मुहम्मद गेसू दराज़ का रौज़ा बहुत ही पूज्य दृष्टि से देखा जाता है। यह रौज़ा गुलबर्गा में है। गद्दी पर बैठने के बाद प्रत्येक निज़ाम इस रौज़े का दर्शन करने को जाते हैं। इस रौज़े की यात्रा दक्षिण के मुसलमान बहुत बड़ी संख्या में करते हैं।

मुहम्मद गेसू दराज़ १५ वीं सदी में दिल्ली से गुलबर्गा आये थे। इनका यहाँ सुलतान फ़िरोज़शाह ने ख़ूब स्वागत-सत्कार किया था। परन्तु बाद को सुलतान की इनके प्रति वैसी श्रद्धा नहीं रह गई। हाँ, उसका भाई अहमद इनकी सेवा में बराबर उपस्थित रहता था, अतएव उस पर इनकी विशेष कृपा हो गई। बाद को सुलतान ने अपने पुत्र हसन के लिए जिसे उसने अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, इनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहा। परन्तु इन्होंने इनकार कर दिया और कहा कि राजसिंहासन तो अहमद के पुत्र को ईश्वर ने पहले से ही निर्दिष्ट कर दिया है। इस पर सुलतान नाराज़ हो गया और इनको शहर छोड़ देने का हुक्म दिया। जिस स्थान पर इनका रौज़ा बना है, वहाँ ये कई वर्ष रहे थे और अपने साधु-जीवन के लिए बड़ी कीर्ति प्राप्त की थी। इनके रौज़े की निज़ाम की सरकार की ओर से विशेष रूप से देख-रेख रक्खी जाती है।

मैसूर-राज्य में बाबा बूदन की पहाड़ियों में हज़रत दादा हयात मीर कलंदर का प्रसिद्ध स्थान है। यह एक छोटी गुफा है। यहाँ उपर्युक्त फ़क़ीर की चाँदी से मढ़ी खड़ाऊँ की एक जोड़ी रक्खी है। यहीं वह छोटा चबूतरा है जिस पर बैठकर शाहज़ादी अलक्षित रह कर फ़क़ीरों को रोटियाँ बाँटा करती थी। कहा जाता है कि यह शाहज़ादी जान-पकुसाई की पुत्री थी और इसका नाम मनाजुनी था। इसकी दिल्ली के बादशाह से सगाई हो गई थी। इसकी सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर होयशाल नरेश वीर वल्लल ने इसे अपने आदमियों से सोते से उठवा मँगाया। मार्ग में हवा लगने से जब वह जाग पड़ी तब उसे उन लोगों से राजा का उद्देश्य मालूम हुआ। उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह राजा की दृष्टि में असुन्दर प्रतीत हो। उसकी प्रार्थना ईश्वर ने सुन ली। जब राजा के सामने पेश की गई तब वह राजा को बदसूरत मालूम पड़ी। अतएव राजा ने उसे दादा हयात मीर कलंदर को दे दिया। कलदर ने उसे अपनी रक्षा में रख लिया और वह अलक्षित रूप में फ़क़ीरों को रोटियाँ बाँटा

करती थी। एक बार एक फ़क़ीर ने रोटी देते समय उसका हाथ पकड़ लिया, जिससे तत्क्षण उस फ़क़ीर का सिर कट कर गिर गया। इस प्रकार इस फ़क़ीर के सम्बन्ध में तरह तरह के चमत्कारों की कथायें कही जाती हैं। इसकी गुफा की यात्रा यहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों करते हैं।

औरंगाबाद तो रौज़ों का घर गिना जाता है। पर यहाँ के सैयद हज़रत बुढ़ाबुद्दीन का रौज़ा अधिक प्रसिद्ध है। इनकी १३४४ में मृत्यु हुई थी। ये उत्तर से दक्षिण में हिन्दुओं में इस्लाम का प्रचार करने १३वीं सदी के अन्त में आये थे। कहते हैं कि इनके रौज़े में अपार धन गड़ा हुआ है। इस रौज़े के बनने के कुछ वर्षों के बाद सैयद के शिष्यों के पास धन का अभाव हो गया। कहते हैं कि उनके प्रार्थना करने पर स्वर्गीय सैयद बाबा ने अपने प्रभाव से प्रतिरात को वहाँ चाँदी के वृक्ष रौज़े के दक्षिण ओर उत्पन्न करना शुरू किया। उनके शिष्य उन्हें तोड़कर और बाज़ार में बेचकर धन एकत्र करने और उससे अपना और रौज़े का ख़र्च मज़े में चलाने लगे। कहते हैं कि चाँदी की यह उत्पत्ति कई वर्ष तक होती रही। बाद को जब उस रौज़े में एक रियासत लगा दी गई तब वृक्षों का उगना बन्द हो गया—उनके स्थान में रात में चाँदी की कलियाँ निकलती थीं, जो दिन होते ही लुप्त हो जाती थीं।

देश के अन्य भागों में भी मुसलमान संतों के इस तरह के प्रसिद्ध प्रसिद्ध रौज़े हैं, जिनकी भावुक लोग यात्रा करते हैं और अपनी मुराद भर पाते हैं। यद्यपि कुछ मुसलमान इस प्रथा का विरोध भी करते हैं, तथापि इनकी महिमा आज भी पहले जैसी ही बनी हुई है।

कवि !

लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल दीक्षित 'निर्गुण'

१

कवि, अरे कहीं से लाकर,
वह प्रखर-अमृत बरसाओ।
युग युग के मृत-जीवन में,
नव-जीवन तुम भर जाओ!

२

यह पाप-शाप की ज्वाला,
कवि, देख न तुम डर जाओ।
जलने न जगत यह पावे,
कवि, तुम चाहे जल जाओ!

३

कवि, अरे खोल लो बंधन,
यह सुन लो, यदि सुन पाओ।
जग तुमको खोज रहा है,
तुम जग में मत खो जाओ।

४

देखो, कह रहीं दिशायें,
कवि, मेरी सुनते जाओ!
देखो, पृथ्वी चिल्लाती,
कवि आओ, आओ, आओ!

५

कवि, इस जलती ज्वाला में,
तुम वह आँधी बन आओ।
सब पाप-शाप जल जाये,
फिर नव नव रस बरसाओ।



चित्रकार—श्रीयुत पी० मुकर्जी

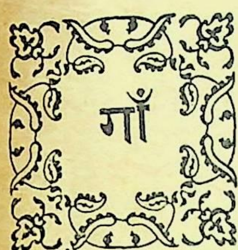
पावस

सघन-मेघों का भीमाकाश गरजता है जब तमसाकार।
दीर्घ भरता समीर निःश्वास, प्रखर झरती जब पावस-धार॥
न जाने, तड़क तड़ित में कौन मुझे इङ्गित करता तब मौन !—श्री सुमित्रानन्दन पंत

हील्ली

मूललेखक, श्रीयुत उमाशंकर जोशी
अनुवादक, श्री काशीनाथ त्रिवेदी

(१)



व के दक्खिन में एक जीर्ण-शीर्ण मंदिर था। मंदिर के चौतरे के पास दूर के स्टेशन तक जानेवाले यात्री सुबह-शाम लारी की बाट जोहते खड़े रहते। शाम को जब वह नये यात्रियों को लेकर लौटती तब इस चौतरे के पास कुछ देर ठहरकर रात में पास के एक बड़े गाँव में ठहरती। मंदिर के इस चौतरे से लारीवालों को बहुत-से यात्री मिल जाते थे। और जब दूर-पास से आनेवाले यात्री स्टेशन से मोटरलारी में बैठकर इस मंदिर के पास आते और उसे रोकने को हाथ का इशारा करते तब मोटर-ड्राइवर को भी अचम्भा-सा होता! किन्तु बाद में धीरे-धीरे उसकी यह आदत-सी हो गई कि मोटर में कोई यात्री हो या न हो, मंदिर के चौतरे के पास कुछ देर के लिए उसे ठहराये बिना वह आगे न बढ़ता।

और सच तो यह था कि मोटर के इस स्टैंड पर, जाते और आते, शाम और सवेरे, मोटरवालों को एक यात्री के दर्शन तो हमेशा हो ही जाया करते थे। यह यात्री थी एक नन्हीं-सी लड़की, जो दोनों वक्त मोटर के इंतज़ार में उस चौतरे से सटी हुई खड़ी रहती थी। इसमें कोई शक नहीं कि लड़की मोटर में कभी बैठी न थी। फिर भी मोटर के लिए उसके मन में एक ऐसी गहरी प्रीति थी कि सुबह-शाम वह वहीं खड़ी उसकी प्रतीक्षा किया करती। जब मोटर के आने का समय होता तब किसी अज्ञात नियम से, यात्रियों से भी पहले, मोटर के हॉर्न की आवाज़ इस बालिका को सुनाई पड़ जाती। बालिका आकर चौतरे के पास नीचे खड़ी रहती और उसके कोने पर अपना माथा टेककर कान लगा देती। और जब वह 'कुछ' सुन लेती तब उसका मन एकाएक नाच उठता और वह पुकार उठती—"वह आई! वह आई!!"

एक बार जब वह बालिका इस तरह खड़ी ख़ुशी के मारे नाच रही थी कि मंदिर के टूटे-फूटे—बेमरम्मत—द्वार के अन्दर से शरीर में भभूत रमाये एक बूढ़े व्यक्ति ने मीठी, काँपती हुई आवाज़ में उसे पुकारा—"बेटा हील्ली, इधर आओ!"

"क्या है बाबा?" कहती हुई हील्ली दौड़कर मंदिर में चली गई।

"सुनो बेटी! तुमने वे जामुनें कहाँ रक्खी हैं? लाकर इन्हें दे दो।" पास में खड़े हुए एक नौजवान की ओर इशारा करते हुए बाबा जी ने हील्ली को जामुन ले आने की आज्ञा दी। हील्ली तीर की तरह जामुन लाने अन्दर चली गई।

"मगर बाबा जी, बम्बई में जामुनों की क्या कमी है?" बम्बई जानेवाले नौजवान ने प्रणाम करते हुए कहा।

"मैं जानता हूँ, जामुन की बम्बई में कोई कमी नहीं। लेकिन तुम्हारे भाई की लड़की को अम्बा जी की जामुन बहुत पसन्द हैं। समझे?"

"जी हाँ, समझा। अम्बा जी की दी हुई तो वह है ही। वर्ना थीं ही कहाँ?" युवक ने भक्ति-भाव से अम्बा जी की मूर्ति को प्रणाम किया। इतने में हील्ली पलाश के एक हरे दोने में जामुन भरकर ले आई और दोना उस तरुण के हाथ में रख दिया। युवक दोना लेकर चल दिया। उसी समय बम्बई जानेवाली दो-तीन स्त्रियों ने दूर से अम्बा माता को प्रणाम किया और बाबा जी के पैर छुए। बाबा जी ने भी अपने दोनों हाथ उठाकर उन्हें आशीर्वाद दिया—"सबका भला हो।"

"बाबा जी, हील्ली को सँभालना, अच्छा !" एक स्त्री ने कहा। हील्ली इसके बहुत पहले उस मोटर-स्टैंड पर पहुँच चुकी थी। दूसरी स्त्री बोली—

"बाबा, हील्ली को इधर-उधर भटकने मत देना। आज-कल यह मोटर-लारी जो है, बच्चों का काल बनकर आने लगी है।"

"मैया ! प्यारा राम-रमैया सबका रखवाला है !" चिमटे से धूनी का एक धधकता अंगारा उठाकर चिलम पर रखते हुए बाबा जी ने कहा—"भाई, राम सबका रखवाला है !..........आया समझ में ?"

जाते-जाते एक तीसरी स्त्री बोली—"बेचारी बिना मा की लड़की है—पर है बड़ी सुकुमार ! बड़ी सुघड़ !"

"तुम सब उसकी मा ही न हो !"

"हें...हें...हें...बाबा जी, आप यह क्या कहते हैं ?"

और फिर एक बार प्रणाम करके बाहर मोटर के भोंपू की आवाज़ सुन वे सब वहाँ से झटपट चल दीं।

"अच्छा,......तो तुम्हें मा क्यों कहूँ ? .....मा तो मैं ख़ुद ही हूँ......आया समझ में ?" आस-पास कोई सुननेवाला न होने पर भी उन्होंने अपनी हमेशा की आदत से एक बार फिर मन में गुनगुनाते हुए कहा—निश्चयपूर्वक कहा—"मा तो मैं ख़ुद ही हूँ......आया समझ में ?"

लेकिन जब हील्ली पूछती, 'मेरी मा कहाँ है' तब बाबा जी उसे एक अजीब-सा जवाब देते—"हील्ली, तेरी कोई मा नहीं है......अथवा तू ही तेरी मा है ! समझी ?"

ऐसे समय अगर गाँव का कोई आदमी धूनी के पास बैठा होता तो सम्भव न था कि बाबा जी की इस बात को सुनकर वह ज़ोर से हँस न पड़ता ? किन्तु हील्ली के जन्म को उसकी मृत्यु से दूर रखने का काम बाबा जी का ही था। ठेठ बचपन से एक गृहस्थ की-सी चिन्ता के साथ उन्होंने उसको पाला-पोसा था। गाँववालों ने उसे उस समय बाबा जी की गोद में देखा था जब वह केवल दूध पीती थी। मंदिर में बाबा जी ने उसके लिए एक बकरी पाली थी। बकरी के लिए घास-पात भी वे स्वयं लाते थे। बकरी बर्फ़-सी सफ़ेद थी। दोपहर को जब वह बाबा जी की चौकी के नीचे लेटकर आराम करती तब मंदिर में प्रवेश करनेवाले का ध्यान पहले उसी की ओर जाता। बाबा जी ने एक बार उसका नाम 'हीरली' रख दिया था। संगमरमर की-सी सजीव, सुकोमल और सुंदर राशि-सी हीरली जब अपनी छोटी, चमकदार शांत आँखों को चमकाती तब उसकी शोभा देखते ही बनती थी। इस शोभा के कारण ही कदाचित् बाबा जी ने उसकी आँखों में हीरे के दर्शन किये थे, और उसका नाम 'हीरली' रख दिया था। उस हीरली का दूध पी-पीकर ही वह बालिका बढ़ी थी और हीरली की 'बैं-बैं' की नक़ल करते-करते ही वह बोलना सीख गई थी। अपनी तोतली बोली में वह हीरली को बैं...एँ...एँ की-सी फटी हुई काँपती-सी आवाज़ में ही...ल्...ल्...ल्...लीं...कहकर पुकारा करती। इस प्रकार बालिका को पाल-पोसकर वह बकरी एक दिन मर गई और बाबा जी ने फिर दूसरी बकरी न पाली। अब वे गाँव में जाकर जब-तब उस बालिका के लिए थोड़ा-बहुत दूध माँग लाते और कभी कभी तो आटे की पतली रबड़ी-सी पकाकर उसी से उसकी भूख बुझाते। हीरली के गुज़र जाने के बाद भी लड़की द्वार पर आकर अपनी आदत के अनुसार 'हील्ली' !—'हील्ली' ! पुकारा करती और उसकी 'ओ ! ही...ल्...ल्...ल्...ली !' की वह पुकार उठकर हवा में एक प्रकार की कँपकँपी-सी पैदा कर देती।

फिर तो बाबा जी ने उस लड़की का नाम ही 'हील्ली' रख दिया। उसे 'हील्ली' कहते सुनकर गाँववाले भी बालिका को हील्ली कहते और 'हील्ली...बैं...एँ . एँ' कहकर चिढ़ाने लगे। गाँव में कइयों के इकलौते बालक एकाएक मर जाते, और दूसरे भी बहुतेरे बालक बड़ों की इस दुनिया से, बहुत-कुछ सार-सँभाल और लाड़-दुलार के बावजूद, अचानक कूच कर जाते। लेकिन एक हील्ली थी जो एकदम अनाथ होते हुए भी बाबा जी की सार-सँभाल के कारण जी गई थी। जब उसे जिलाने में सक्रिय सहायता देने का समय था तब तो गाँववालों ने उसके प्रति पूरी-पूरी उदासीनता दिखलाई थी। लेकिन जब वह एक बार जी गई तब गाँववालों का भी यह फ़र्ज़ हो गया कि बाबा जी के साथ वे भी उसके भरण-पोषण का प्रबन्ध करें। दूसरी कोई गति न थी। कभी कोई श्रद्धालु स्त्री बाबा जी की सेवा में पहुँचकर अपने बालक के लिए चिरजीवी होने का आशीर्वाद ले जाती और हील्ली

को एक छोटी-सी पचरंगी ओढ़नी ओढ़ा जाती। और फिर तो धीरे धीरे गाँव भर में लोगों का यह ख़याल हो गया कि हील्ली की तरह ही उनके बच्चे भी पल-पुलकर बड़े हो सकते हैं; सूने घर बच्चों से भर सकते हैं; जैसे हील्ली बढ़ी और खेली-कूदी, वैसे ही वे भी खेल-कूद सकते हैं—बाबा जी के आशीर्वाद से! इस धारणा के दृढ़ हो जाने से हील्ली बड़े लाभ में रहने लगी। अकसर लोग हील्ली के लिए कुछ न कुछ भेंट लाते और अकसर ही बाबा जी उनको लेने से इनकार कर देते और बदले में अपनी ओर से हील्ली के लिए चुनकर लाये हुए बेर, जामुन या और कोई फल उन्हें देकर धीरे से कहते—"सबका भला हो!........आया समझ में?"

(२)

जाड़ों में जब सूरज जल्दी-जल्दी डूबने लगता था, बाबा जी अपनी धूनी को ज़रा ज़्यादा जगा दिया करते और पास के कोने में हील्ली को सुलाकर आप आसन पर बैठ जाते और रह-रहकर दरवाज़े की ओर देखा करते। इतने में काम से छुट्टी पाकर और ब्यालू करके जगराम बढ़ई सिर पर लकड़ी का एक बड़ा-सा गट्ठर लादे मंदिर में आ पहुँचता। कभी-कभी तो वह दिन में अपनी चीरी हुई लकड़ी के छिलके और चीपियों का गट्ठड़ बाँध लाता, और उस रात बाबा जी की धूनी देर तक धधकती रहती। गाँव के दो नौ-जवान पाटीदार खीमजी और बोंदर भी अकसर बाबा जी के पास बैठने आते और साधारण दर्शनार्थियों के चले जाने पर भी, बड़ी रात तक, बैठे-बैठे ग़प-शप लड़ाया करते। इन दोनों नौ-जवानों में बोंदर ज़रा तेज़मिजाज़ था; फिर भी बाबा जी के साथ उसकी ख़ूब पटती थी। कभी कभी जब बोंदर का पारा बहुत चढ़ जाता तब जगराम उसे बात की बात में उतार देता। बाबा जी के साथ उसकी ख़ासी अच्छी दोस्ती थी ही, इसलिए वह उन्हें भी समझा लेता और कहता—"महाराज! बोंदर कहते समय चाहे जो कह डाले और बक जाय, मगर मन उसका मैला नहीं है!"

रात का वक़्त था। सब बैठे बातें कर रहे थे। धूनी में धू-धू करके एक लकड़ी जल रही थी! आग की सुनहरी लपटें मानो सबके ललाट पर सोने का लेप कर रही थीं। पास ही कोने में लेटी हुई हील्ली हवा से फरफराती हुई लपटों को अपनी नन्हीं-सी जीभ निकाले ताक रही थी। इतने में जगराम बढ़ई बोला—

"बोंदर, तुम तो कहते हो, लेकिन इसमें बाबा जी कर ही क्या सकते हैं?"

"क्यों नहीं कर सकते?" ख़ीम जी ने बोंदर का पक्ष लेकर कहा—"नहीं-नहीं, तुम्हीं कहो; भला मैं क्या करूँ।" आशीर्वाद की चोरी तो मैं कर नहीं सकता—हर्गिज़ नहीं कर सकता; किसी हालत में नहीं कर सकता। तुम कुछ ही क्यों न कहो ....आया समझ में?" कहते-कहते बाबा जी ने जगराम से चिलम लेकर ज़ोर का एक दम खींचा और 'ले यह तुझसी ही 'कड़का' है', कह कर चिलम बोंदर के हाथ में थमा दी।

खीम जी ने कहा—"तुम आँखें खोलकर देखो तो। आँख मूँदने से काम नहीं चलेगा। मैं कहता हूँ, बाबा जी के आशीर्वाद का ही यह प्रताप है कि आज गाँव में एक भी घर ऐसा नहीं, जो सूना हो, जहाँ पालना न झूलता हो!"

"तो यह ख़ुश होने की बात है या........?"

जगराम को बीच में ही रोककर बोंदर बोल उठा—"जब गाँव बच्चों से ख़ुश है तब गाँव में रहते हुए इस मुट्ठी भर मांस की चिंता बाबा जी के सिर क्यों होनी चाहिए?" उसने हील्ली की ओर देखकर इशारा किया।

अपनी तनी हुई सफ़ेद भौंहों को शिथिल करते हुए बाबा जी ने कहा—"सो तो ठीक है। अपना काम मैं कर सकता हूँ। लेकिन मेरा मतलब यह है कि जब मैं मरघट में रहता था तब तुम्हीं लोग कहते थे कि मेरे वहाँ रहने से गाँव में लोग बहुत मरते हैं। और अब यहाँ रहता हूँ तब कहते हो, बहुत पैदा होते हैं! आख़िर मैं करूँ क्या? मैं तो अपना आशीर्वाद सबको देता रहता हूँ।"

"नहीं, नहीं। आख़िर मरते कितने थे? वही दो-चार, जिनके पैर क़ब्र में लटक रहे थे! बाक़ी इन दो बरसों में—जब से हील्ली जी गई है—गाँव में कई बालक जन्मे हैं, ओह! ढेरों बालक!" बोंदर बाबा जी के सामने दिल खोलकर बातें कर लेता था।

'सो तो कौन जाने? जो मरते थे, सो सीधे मरघट में आते थे; मुझे भी उनका पता रहता था। लेकिन पैदा होनेवाले सबके सब अम्बा जी के इस मन्दिर में नहीं आते! मैं उन्हें कैसे जानूँ? यहाँ मन्दिर के अन्दर आकर

खिड़की की राह कोई बच्चों को दिखा दिया करे—अम्मा मैया की मेहर समझकर—तो हमको कुछ पता रहे...... आया समझ में ?"

सब ठठाकर हँस पड़े—"इसमें समझने की क्या बात है ?

'बाबा जी तो अजीब दीवाने हैं !' कहकर लोग उनकी ऐसी बातों पर हँस देते थे।

एक दिन बोंदर ने हठपूर्वक कहा—"बाबा जी, और चाहे जो हो, इसमें शक नहीं कि इस हील्ली को रखकर आपने किसी बनिये ब्राह्मण की लाज रख ली है। सम्भव है, किसी दिन मन्दिर के चौतरे पर कोई किसी विधवा के नवजात बालक को छोड़ गया हो या, हो सकता है कि आप सब कुछ जानते हुए भी अनजान बने हैं और किसी को कुछ बतलाते नहीं हैं।"

बाबा जी ने आँखें मूँद लीं; आँखों के कानवाले कोनों पर मुस्कुराहट के कारण झुर्रियाँ पड़ गईं; वे दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—"और यह भी तो हो सकता है कि कोई पटेलन किसी की रखनी बनकर जा रही हो और जाने से पहले अपने बच्चे को यहाँ छोड़ती गई हो ?"

बोंदर को बाबा जी का यह उत्तर बिलकुल न रुचा और फिर न तो कभी उसने, न मंडल के किसी अन्य सदस्य ने ही इस सवाल को उठाया। हाँ, कभी-कभी चिढ़-कर उनमें से कोई इतना ज़रूर कह दिया करता था—"अब इस साठ बरस की उम्र में बाबा जी को क्या पड़ी है कि वे संसारियों की इतनी चिन्ता करते हैं ? और उत्तर में बाबा जी भी कभी-कभी कह दिया करते—"अरे भाई, एक बच्चा सुखी तो सब बच्चे सुखी; सबका भला हो !..... आया समझ में ?"

(३)

हील्ली बचपन से ही गाँव के बालकों में हिल-मिल गई थी। उन बालकों की मातायें भी अक्सर हील्ली को बहुत दुलराया करती थीं। वैसे भी हील्ली किसी को बुरी न लगती थी। उसके रूप-गुण और शील-स्वभाव के कारण सभी उस पर ममता करते थे। जब गाँव में कोई उसे कुछ देता तब बिना बाबा जी की आज्ञा के वह उसमें से एक कण भी नहीं उठाती थी। सुबह जब बाबा जी गाँव में भीख माँगने जाते, हील्ली भी उनके साथ जाती। जब वह कुछ सयानी हो गई तब बाबा जी की बीमारी में अकेली ही भीख माँगने जाने लगी। इस पर एक दिन बाबा जी ने उसे टोका और कहा—"पगली, बाबा मैं हूँ, भिखारी मैं हूँ। हील्ली ! तू भिखारिन नहीं है !" जब बाबा जी रसोई बनाते तब कभी-कभी हील्ली उनसे कह उठती—"बाबा, मेरे लिए दो बड़ी-बड़ी रोटियाँ बनाना भला। मैं उन्हें खाकर बड़ी हो जाऊँगी और तुम्हारे लिए खाना पका दिया करूँगी।" वह पनघट पर जाती और ख़ुशी ख़ुशी पानी भर लाती। उसे हमेशा इस बात का अफ़सोस ही रहता कि गाँव में रहनेवाली उसकी सखी-सहेलियाँ अपने घरों में जो-जो काम करती हैं वे सब उसे करने को नहीं मिलते।

और काम कितने ही क्यों न हों, सुबह-शाम, मोटर के समय तो, हील्ली मन्दिर के चौतरे पर ही खड़ी मिलती। गाँव की कुछ और लड़कियाँ भी जो उसकी हमजोली थीं, वहाँ आया करतीं। किसी की मा बम्बई जाती तो किसी की मौसी; किसी की मामी आनेवाली होती तो किसी की चाची। किन्तु हील्ली को कभी इस बात का पता न चला कि उसका कौन कहाँ से आनेवाला है।

एक दिन की बात है। उसकी एक सखी चंचल की फूफी बम्बई से आनेवाली थी। साँझ का समय था। हील्ली को मोटर के स्टैंड पर देखकर चंचल ने पूछा—"तेरा कौन आनेवाला है ? तू यहाँ क्यों खड़ी है ?"

"तू अपनी तो कह। तू क्यों आई है ?"

"मेरी मा, अरे नहीं, फूफी आनेवाली हैं। तेरे ?"

"मेरी भी मा आनेवाली हैं।"

मोटर-लारी आई और फूफी की अँगुली पकड़कर चंचल उनके साथ घर चली गई। इधर हील्ली अपना मुँह सहज खुला रखकर उस दौड़ती हुई मोटर-लारी को एकटक देखती रही। वह सोच रही थी—मोटर में वह जो औरत बैठी है उसकी साड़ी का रंग मेरी ओढ़नी के रंग जैसा ही है। हो-न-हो, वही मेरी मा है ! लेकिन जब मोटर खड़ी रहे तब न वह अन्दर जाकर अपने नन्हे-नन्हें हाथों से उसकी आँखें मीचे ? पर लारी तो एक मिनट के लिए भी न ठहरी ! और ठहरती ही क्यों ?

"बाबा जी, अम्मा कहाँ हैं ?" एक दिन हील्ली हठ

पकड़ गई और पूछने लगी—"बताओ, अम्मा कहाँ है ?" "बोलो, बोलो"—'मेरी मा......मा !"

बाबा जी हँस दिये—गुस्से से या यों ही, कोई समझ न सका। बोले—"माँ मोटर-लारी में है। जा, खड़ी रह।" वे हील्ली की आदत से वाक़िफ़ थे। गाँव के अन्दर भी अपनी सभी सखी-सहेलियों की माताओं में उसने अपनी मा को खोज डाला। किंतु कहीं पता न चला। फिर तो उसे यह विश्वास हो गया कि मोटर से आने-जानेवालों में ही उसकी मा का पता लग सकता है; और वह रोज़ कहीं क्यों न हो, सुबह-शाम, बिला नाग़ा, मोटर-स्टैंड पर आकर खड़ी रहने लगी। अपनी छोटी सहेलियों के साथ किसी के खेत पर गई हो या किसी के घर बैठी मंदिर का धान कूट रही हो; कहीं किसी के घर खेल रही हो या जंगल में बेर-जामुन बीनने गई हो; कहीं भी क्यों न हो; सुबह-शाम, मोटर के समय पर तो वह अपनी जगह आकर खड़ी हो ही जाती। एक दिन की बात है। गाँव की एक सेठानी ने बड़ी मुश्किल से उसे अपनी चक्की से चने दल लेने की इजाज़त दी। वह दल रही थी कि इतने में कहीं से उसे मोटर का भोंपू सुनाई पड़ा।

"सेठानी काकी, इसे यों ही रहने देना भला। मैं अभी आई !"

"क्यों ? मोटर से तुझे ऐसा क्या काम है ?" सेठानी ने पूछा।

"काम ? यह तुम क्या पूछती हो ? अरे, मेरी मा आये और मुझे वहाँ न पाकर कहीं आगे चली जाय तो ?

"ओह हो ! बड़ी आई है मावाली !"

जब लौटकर आई तब देखा, चक्की को घर में बंद करके और बाहर ताला डालकर सेठानी कहीं चली गई है। आँगन में पड़ी हुई उसकी दाल पर एक गाय बे-फ़िक्री से मुँह चला रही है। अलबत्ते, ग़नीमत थी कि चने की टोकनी उसे आले में रक्खी हुई मिली। "परवा नहीं" कहकर हील्ली ने टोकनी उठाई और लेकर घर चली आई। उसने सोचा, कुछ ही क्यों न हो, मोटर को मैं कैसे छोड़ूँ ? मानो मोटर ही उसकी मा हो !

मंदिर के अंदर कभी-कभी हील्ली 'मा-मा' की ऐसी पुकार मचा देती कि बाबा जी से मिलने आनेवाले लोग व्याकुल हो उठते और कहते—"बाबा जी ! इस छोकरी को अब किसी के साथ ब्याह दो; इसके लिए कोई घर ढूँढ़ दो !"

"ले जाओ; तुम्हीं ले जाओ। इसे अपनी लड़की समझकर रक्खो। आया समझ में ?"

"मैं ? महाराज, मैं तो ग़रीब आदमी ठहरा। मैं इसे लेकर क्या करूँ ? मैं तो आपके बुढ़ापे को देखकर कहता हूँ कि अब इसके लिए किसी भले आदमी का घर ढूँढ़ दो !"

"सब साले......कुछ नहीं, ... कुछ नहीं। ...आया समझ में ?" बाबा जी कहते कहते रुक जाते।

"क्या है, महाराज ?" कोई नम्रतापूर्वक पूछ बैठता।

"होगा क्या ? मैं कहता हूँ, कहने को सब मुझी से कहते हैं, ऐसा करो, वैसा करो ! लेकिन कोई इस बात के लिए तैयार नहीं दीखता कि इसे अपनी लड़की समझकर रक्खे। आया समझ में ?"

एक रात बोंदर ने कहा—"बाबा जी, न मालूम किस बनिये-ब्राह्मण की यह औलाद है। बताइए हम पटेल हो कर इसे अपने यहाँ कैसे रक्खें ? हाँ, यहाँ इसके खाने-पीने में कोई बाधा न पहुँचने देंगे।"

शुरू का व्यङ्ग और बाद की दया, दोनों, बाबा जी को शूल-से चुभे। उन्होंने चिमटा उठाया और उसे धूनी पर फटकारते हुए बोले—"यही तो बात है !" और फिर ग़म खाकर कहने लगे—"अच्छी बात है। जैसी आई है, वैसी ही चली जायगी ......। आया समझ में ?"

कभी-कभी हील्ली भी इन बातों को सुन पाती थी। किंतु इनमें कहीं भी उसे मा-नाम की जीती-जागती 'हाज़िर नाज़िर, चीज़ का पता न चलता ! जब वह बाबा जी को बहुत सताती, ख़ूब परेशान करती, तब बाबा जी उसे झूठमूठ को चिढ़ाते-फुसलाते और फिर धीरे-धीरे गुस्सा भी होने लगते। और जब गुस्सा होते तब हील्ली का पीछा करके उसे दरवाज़े से बाहर खदेड़ आते। कभी उसे 'पगली' और 'गँवार' तक कह बैठते।

आज हील्ली की एक सखी मैना की मा बंबई से आने-वाली थी। हील्ली और मैना दोनों मोटर के 'टैम' से बहुत पहले चौतरे पर आकर खड़ी हो गई थीं।

"आज तो ज़रूर ही मेरी मा आवेगी।"

"जा, जा। तू तो रोज़ ही ऐसा कहा करती है।" मैना ने मुँह बिचकाकर कहा।

"अच्छा तो देख लेना !"

"हाँ, हाँ, देखूँगी। और तू भी देखना कि मा मेरी आती है या तेरी !"

"याद रख मैना ! अगर मेरी मा आई तो मैं उससे तुझे एक भी चीज़ न दिलाऊँगी। समझी ?" कह कर हील्ली खिलखिला उठी।

"ऐसी बात है ! नहीं दिलवायेगी ? तो देख लेना, तेरी मा आज आवेगी ही नहीं !"

"आज नहीं तो कल आवेगी। ज़रूर आवेगी।"

"कल दोपहर को भी नहीं आवेगी।" मैना ने तुनक कर कहा।

"दोपहर को नहीं तो सुबह आवेगी।" हील्ली ने हिम्मत के साथ कहा।

"मैं कहती हूँ, पगली, वह सुबह भी नहीं आवेगी !"

"सुबह नहीं तो दोपहर को आवेगी। पगली ! तू पगली, तू पगली !" और फिर दोनों हाथ नचा-नचाकर इस तरह चीख़ने-चिल्लाने लगीं, मानो झगड़ रही हों !

(४)

शाम के अँधेरा छा जाने के बाद मैना अपनी मा का आँचल पकड़े मन्दिर में आई और मा का इशारा पाकर पहले अम्बा जी के और बाद में बाबा जी के पाँव लगी। अम्बा मैया का आशीर्वाद तो मैना को उसके जन्म से पहले ही मिल चुका था। अब, उसकी मा ने अपने पास की एक छोटी-सी गठरी खोली, हील्ली को अपने निकट बुलाया और उसके हाथों में नन्हीं-नन्हीं पचरङ्गी चूड़ियाँ पहनाने लगी। मैना एकदम बिगड़कर बोली—मा, "तुम इसे चूड़ियाँ क्यों पहनाती हो ? अगर इसी की मा आज आती तो हील्ली मुझे इस तरह चूड़ियाँ कभी न पहनाने देती। ले लो, ये सब चूड़ियाँ, वापस ले लो।" और गठरी फैलाकर बोली—"ओ हो ! तो आप हील्लीबाई के लिए ओढ़नी भी लाई हैं ! अगर इसकी मा आती तो यह उसे मेरे माथे पर टीका तक न लगाने देती। फिर तुम इसे ओढ़नी क्यों पहनाती हो ?" कहकर उसने हील्ली को अँगूठा दिखाया और अपनी मा को एक ओर खींचने लगी।

"पहनाने दे, पगली कहीं की ! हठ करेगी तो अम्बा मैया तुझसे नाराज़ हो जायँगी। हठ नहीं करते, बेटा !"

"मैं कहती हूँ, तुम ये चूड़ियाँ और ओढ़नी घर ले चलो। ले चलती हो या नहीं ?"

"लेकिन ये तो हील्ली की हैं। अपनी थोड़े ही हैं, जो घर ले चलूँ ?"

"वाह रे ! हील्ली की कहाँ से आई ? ले चलो, घर ले चलो। मैं कहती हूँ !"

आख़िर जब मैना बहुत ही परेशान करने लगी तब मा ने कहा—"तुम्हें मालूम नहीं। ये तो हील्ली की मा ने इसके लिए बम्बई से भेजी हैं। अब तो इन्हें यहीं छोड़ जायँगी न ?"

हील्ली जो अब तक चुप बैठी थी, एकाएक उछल पड़ी—"ले, और लेगी ? तेरे पास ऐसी ओढ़नी है भी ? मा ने चूड़ियाँ कैसी मज़े की भेजी हैं !" और मैना की मा से तो उसने न जाने कितने सवाल पूछ डाले—"मा कब आयेंगी ?.........वह क्या करती है ?........ क्या उसे पता है कि मैं यहाँ रोज़ मोटर-स्टैंड पर उसकी राह देखती हूँ ?" अब तो उसके मन में निश्चय हो गया कि जैसे औरों की मातायें बम्बई से आती हैं, वैसे ही उसकी भी मा आयेगी। बस, उसके हर्ष का पार न रहा ! इसके कई दिनों के बाद एक दिन बड़े सवेरे उठकर उसने बाबा जी से कहा—

"बाबा जी, उठो न ?"

"क्यों ?"

"अभी लारी जो आ जायगी ?"

"तो क्या होगा ?"

"हमें बंबई जाना है न ? आप ही ने तो कहा था।"

"अरे बंबई क्यों जाना है ?"

"मा के पास।"

"पगली कहीं की।" कहकर वे हँस दिये। बोले—"जा, सो जा। अभी बहुत अँधेरा है।"

"अरे, अभी-अभी तो आपने कहा था।" हील्ली का गला भर आया।

"सपना देखा होगा, सपना, बेटा !.........आया समझ में ?" बाबा जी के लिए अब यह लड़की सिर की बला-सी बन रही थी। और सब तो वे कर सकते थे, लेकिन गाँव की लड़कियों के पास जो-जो था वह सब इसके लिए कैसे और कहाँ से ला सकते थे ?"

एक दिन की बात है। दोपहर का समय था। हील्ली अपनी सहेलियों के साथ चौपड़ खेल रही थी। खेलते-खेलते आपस में झगड़ा हो गया। या तो इसलिए कि हील्ली बार-बार जीत रही थी या पिछले किसी कारण से। लड़कियाँ एकाएक उस पर नाराज़ हो गईं। सब एक-दूसरी पर पासे फेंकने लगीं। इतने में किसी के हाथ का एक पासा सुखिया के कपाल में जा लगा और लहू की धार बह चली। सुखिया ख़ून से लथपथ रोती रोती घर गई और अपनी मा को बुला लाई। लड़कियों में भगदड़ मच गई। उसने भागती हुई लड़कियों को हाथ पसार-पसार कर रोका और उन्हें झिड़कना शुरू किया। पहले सबने लीला का दोष बताया और सुखिया की मा ने उसे आड़े हाथों लेना शुरू किया। इतने में लीला की मा भी आगई और अपनी बिटिया को लेकर चली गई। जाते-जाते वह भी सबको दो-चार खोटी-खरी सुनाती गई। तब सुखिया की मा ने दूसरी लड़कियों को धमकाना शुरू किया। लड़कियों ने सारा दोष हील्ली के माथे मढ़ दिया और सुखिया ने भी रोते-रोते उनकी हाँ में हाँ मिला दी। बस हील्ली पर आफ़त टूट पड़ी। सुखिया की मा ने उसे जो कई भली-बुरी बातें कहीं वे सब तो उसकी समझ में भी नहीं आईं, परन्तु उसने जो चपतें जमाईं, घूसे मारे और चिकोटियाँ काटीं, उन्हें वह भूल न सकी। बाबा जी के पास जाकर वह उन्हें वे सब गालियाँ तो न सुना सकी जो सुखिया की मा ने उसे दी थीं, लेकिन गालों पर उठी हुई अँगुलियाँ और कमर में जमे हुए ख़ून के क़तरे उसने बार बार दिखाये और वह सिसक-सिसक कर रोने और 'मा ! मा !' पुकारने लगी। वह बोली—"पहले लीला को मार रही थी, पर उसकी मा आकर उसे ले गई ! फिर किसकी हिम्मत थी कि उसे कोई मारता ?" और फिर, अपनी मा की याद आते ही उसका दिल उबल उठा और वह 'मा ! मा !' कहकर फूट पड़ी—फफक-फफक कर रोने लगी।

बाबा जी इस करुण दृश्य को न देख सके। उन्होंने सोचा, शायद हील्ली ने मार के लायक़ काम किया होगा। तभी तो मारा और अब जब वह मार खा चुकी है तब क्या हो सकता है ? कल गाँव में जाकर मारनेवाली को दो बातें सुना सकता हूँ। आगे से कोई मारने न पाये, इसका बंदोबस्त कर सकता हूँ। लेकिन अगर हर बात का नतीजा 'मा ! मा !' की यह पुकार ही हो तो भला मैं क्या कर सकता हूँ ?"

हील्ली पुकार-पुकार कर कहने लगी—"अम्मा, ओ री अम्मा ! इन लोगों की मातायें मुझे मारती हैं।" बाबा जी के धैर्य का बाँध टूट गया। वे गर्जकर बोले—"निकल जा यहाँ से; जा अपनी मा के पास; चली जा !" "कहाँ जाऊँ ?......मा ! ओ...मा !".........."कहाँ ? बम्बई ! जा, निकल यहाँ से।" "मा ! ओ मा ! बाबा जी मारते हैं। लोगों की मायें भी मारती हैं !" चिल्लाती हुई हील्ली मंदिर के बाहर चली गई।

बाबा जी ने सोचा—"पागल हो गई है.........क्या किया जाय ?........घंटे-दो-घंटे में फिर ठिकाने आ जायगी ...." और करवट बदलकर बोले—"क्या किया जाय ?.........आया समझ में ?" लेटे-लेटे एक लंबी उकताहट भरी जमुहाई उन्होंने ली।

"शाम हो चुकी है, फिर भी मोटर अब तक क्यों नहीं आई ?" मंदिर के एक कोने में बैठी हील्ली सोच रही थी और रह-रहकर अपने आँचल के छोर से आँख पोंछती जाती थी। बड़ी देर तक वह मोटर के रास्ते को और रास्ते पर बने हुए पहियों के निशान को अपनी दोनों आँखों से एकटक ताकती रही। धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ने लगा। उसे निश्चय-सा हो गया था कि आज तो उसकी मा, कहीं से क्यों न हो, ज़रूर ही आवेगी। कभी सोचती—और अगर रास्ते में लारी टूट गई तो क्या होगा ? अंधकार घना हो गया। उसने सोचा—अगर मा को पैदल आना पड़ा तो उजाले के अभाव में उसे रास्ता कैसे सूझेगा ? बाबा जी के पास जाकर उनसे एक लालटेन माँग लूँ तो कैसा हो ? लेकिन इस बाबा जी की मरम्मत तो अब मा के आने पर ही हो सकेगी। उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो सारा अँधेरा सिमट सिमटकर पृथ्वी पर घनीभूत हो रहा हो ! सामने दूर पर वह जो पेड़ दिखाई पड़ता था, सो अब ठीक से पहचाना भी नहीं जाता। हाँ, सिर्फ़ आकाश से सटी हुई वे पहाड़ियाँ ही इतनी ऊँची हैं कि अँधेरे का कोई बस उन पर नहीं चलता। तो अब क्या होगा ?......

हील्ली एकाएक चौंक पड़ी। आँखें मलकर उसने अपने चारों ओर देखा और यह समझने की कोशिश

की कि वह कहाँ है। फिर, चौतरे के किनारे-किनारे वह मंदिर के द्वार तक आई और आकर जैसे ही एक पैर दहलीज़ पर रखकर दूसरा उठाने लगी, वैसे ही उसके कानों तक किसी आवाज़ की भनक पहुँची। कानों पर हथेली रखकर उसने ध्यान से सुना.... कुछ नहीं! नीचे उतरकर चौतरे पर कान लगाये......कुछ है तो!......

वह मोटर के रास्ते पर दौड़ चली। थोड़ी दूर तक कुछ भी सुनाई न पड़ा, लेकिन फिर तो सीधे ही मोटर का भोंपू सुनाई दिया। वह कुछ ही दूर और दौड़ी होगी कि इतने में मोटर का उजेला उसके पैरों में खेलने लगा। मोटर का वह लम्बा पथ, उस छिन-छिन बदलते हुए प्रकाश और अँधेरे में, ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो कोई भीमकाय अजगर ज्वाला उगलता आ रहा हो! प्रकाश के कारण हवा में उड़ती हुई धूल के कण भी सोने की रेत-से चमक रहे थे। हील्ली अपने दोनों हाथ फैलाकर दौड़ रही थी। प्रकाश उसके बिलकुल पास पहुँचता-सा दिखाई पड़ा।... हील्ली, हट जाओ। किनारे हो जाओ!.....लेकिन वह दौड़ी चली जा रही थी, और प्रकाश उसके पैरों के बीच से निकल कर दूर उस पार भाग रहा था। उसने सोचा, कहीं मोटर भी इसी तरह निकल गई तो? बीच में ही मोटर मुड़ी और उसकी दिशा बदल गई। फिर सारी सृष्टि अन्धकार में विलीन हो गई। ओह, उजेला तो वह, वहाँ, दिखाई दे रहा है। मोटर वह जा रही है! "गई! गई!......" कहकर हील्ली दौड़ पड़ी। वह मोटर के पास पहुँच गई, और मोड़ को पार करके सीधे रास्ते जाती हुई लारी ने उस अँधेरे में, सीधी दौड़ती हुई एक काली आकृति को, एक ओर उछाल कर एक अँधेरे गड्ढे में फेंक दिया। कोई तड़पा, चिल्लाया, वेदना से कराहने लगा। कुछ खड़खड़ाहट भी हुई। मुसाफ़िरों में से कुछ ने वह दर्दभरी आवाज़ सुनी। लारी रुक गई और पीछे घूमकर उसने दूर तक प्रकाश फेंका। कुछ यात्री नीचे उतर पड़े। धूल में पड़ी हुई एक बालिका आँखें फाड़कर मोटर की उन चौंधियानेवाली बत्तियों को ताक रही थी। एक बहन ने पास पहुँचकर हील्ली के कपड़े ठीक किये। हील्ली ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—'मा! मा! मेरी मा! ये औरों की मायें मुझे मार...... र......ती हैं।"

× × ×

बाबा जी के गुस्से का पार न था। सबसे ज़्यादा गुस्सा तो उन्हें अपने ऊपर आ रहा था। उन्हीं के कारण हील्ली मंदिर से भागी थी और उन्हीं की लापरवाही से उसके पैर में चोट आई थी। बायें पैर की उँगलियों का तो कचूमर निकल गया था......इतने इतने इलाज के बाद भी अब जब वह चलती है तब सारे शरीर की नसें खिँचने लगती हैं। बाबा जी ने फिर से अपनी ममतारूपी धूनी की बुझती हुई आग को फूँककर सतेज किया और अपूर्व प्रेम से हील्ली का पालन करने लगे।

(५)

गर्मी का दिन था। सुबह का समय था। हील्ली जो जंगल में खिरनी बीनने गई थी, अभी लौटी न थी। बाबा जी की धूनी को घेरकर जगराम बढ़ई वग़ैरह लोग बैठे बातें कर रहे थे। "तो अब कोई अच्छा-सा मुहूर्त देखकर इसे ब्याह दो। आप कब तक इसकी रखवाली करते रहेंगे?" "हूँ...!" बाबा जी ने केवल हुँकार मात्र भर दी। "अब तो आप भी थक गये हैं। और हील्ली का भी लाभ इसी में है कि उसे कहीं.........।" बोलनेवाले की बात काटकर, उसे रोकते हुए बाबा जी ने कहा—

"वह जब चाहेगी, अपने आप सब कुछ कर लेगी। मैं उसे कुछ भी न कहूँगा.........कितनी समझदार है वह! भला उसे मैं क्या कहूँ? क्यों कहूँ?" बस ऐसी ही बातों से कभी कभी जगराम को बाबा जी पर गुस्सा हो आता था। अब भी हील्ली बहुत काम करती थी। यद्यपि पैर से वह जल्दी-जल्दी चल नहीं पाती थी, फिर भी खेत का और पीसने-कूटने का काम उसे बहुत प्रिय लगता था। बाबा जी भी अब अस्थिपंजर होकर मंदिर में धूनी के पास पड़े रहते थे। हील्ली बड़ी तत्परता से उनकी शुश्रूषा करती थी और भीख माँगने के बदले गाँव में मज़दूरी करने जाती थी।

उस साल गाँव के निकट किसी धनी सज्जन ने धर्मशाला बनवाना शुरू किया था। औरों के साथ हील्ली भी वहाँ मज़दूरी के लिए जाने लगी। उसने अपने लिए एक ऐसा काम चुन लिया जिसमें उसे ज़्यादा चलने-फिरने की ज़रूरत न पड़ती थी। और, उस काम में उसकी तल्लीनता छिपी न रहती थी।

कड़ाके की सर्दी में भी जब दूसरे मज़दूर पानी ढो-

ढोकर लाते और मिट्टी में उँडेलते, हील्ली उस मिट्टी को फावड़े से मिलाने और गूँधने का काम करती, और सारे दिन गूँधे हुए गारे की टोकरियाँ भर-भरकर दूसरी मज़दूरनियों के सिर पर चढ़ाती रहती।

मकान का काम क़रीब-क़रीब पूरा होने आया था कि इतने में एक दिन सिर पर ईंट ढोनेवाला एक नौजवान मज़दूर हील्ली के पास आकर ठिठक गया। वह उस समय गारे में पैर साने खड़ी थी। यह नौजवान पास के ही एक गाँव से यहाँ मज़दूरी करने आता था। हील्ली जानती थी कि वह तरह-तरह के काम बड़ी होशियारी के साथ करता है। उसने कनखियों से यह भी देखा था कि गारे के पास होकर जाते समय कभी-कभी वह उसे जी भरकर देख लिया करता है।

"जा! जा! सीधा चला जा! आसमान की ओर ताकेगा तो ईंटें गिर पड़ेंगी। ईंटें!"

"गिरें तो मेरी बला से। जितनी गिरेंगी उतनी ही देर यहाँ खड़ा रहने को तो मिलेगा।" और सचमुच ही उसके सिर पर से दो ईंटें गिर पड़ीं।

"सुनती है। ज़रा चढ़ा दे न?"

"वाह! मैं क्यों चढ़ाऊँ?"

"वाह रे, तो फिर जन्म भर तू मेरा काम कैसे करेगी?" और वह हँस दिया।

"पगला कहीं का! मुझ लँगड़ी-लूली को पाकर तू क्या पायेगा?' हील्ली ने ईंट चढ़ाते हुए कहा।

"चल हट। लँगड़ी हुई तो क्या हुआ? पैर तो तेरे गारे में सने रहते हैं, मगर तू ख़ुद कितनी सुन्दर है!" यों धीरे से कह कर किसी के टोकने से पहले वह वहाँ से चल दिया। उसके जाने पर हील्ली ने मन ही मन कहा—"तो क्या यह सच है?'

जिस बात का उसे कभी ख़याल तक न हुआ था वही एकाएक उसकी समझ में आ गई। और एक अच्छे दिन, शुभ मुहूर्त में, बाबा जी का आशीर्वाद पाकर हील्ली पड़ोस के गाँव में धन्ना के घर रहने चली गई। जगराम बढ़ई भी अब दिन में थोड़ा-बहुत काम करके शेष सभी समय बाबा जी के पास मंदिर में ही रहने लगा।

× × ×

कोई दो बरस बाद। एक सुहावने प्रभात में हील्ली और धन्ना मन्दिर में आये और दोनों ने बाबा जी के पैर छुये। धन्ना ने बाबा जी की गोद में एक नन्हीं-सी नवजात बालिका को रख दिया। बाबा जी तो कभी हील्ली की ओर देखते थे और कभी उस नवजात बालिका की ओर।

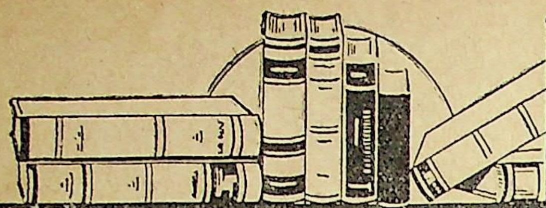
"देखो, जगराम! ठीक हील्ली ही है न? इसकी मा का पैर तो अच्छा नहीं है, पर इसका तो ठीक वैसा ही है, जैसा हील्ली का था।..... राम रखनेवाला है भाई!' और फिर हील्ली की ओर देखकर बोले—"अब अपना नाम इसको दे दे। तू अपना नाम हीराबाई या ऐसा ही कुछ रख ले। कहो, जगराम, ठीक है न? हील्ली तो अब इस बच्ची का नाम है। अब तेरा यह नाम नहीं। आया समझ में?' और हीराबाई को उसकी हील्ली सौंपते हुए बाबा जी मन ही मन गुनगुनाये—"मैं तो कभी से कह रहा था कि तू ही तेरी मा है!"

लौटते समय हील्ली के मन का आनन्द समाता न था। रास्ते भर वह यही सोचती रही कि कब घर पहुँचूँ और कहीं कोने में दिल थाम कर बैठ जाऊँ। उसे डर था कि कहीं कोई उसके आनन्द को जान न ले। उसे अपना बचपन याद आ गया। बचपन की मा याद आ गई। वह सोचने लगी, क्या बचपन में मैं भी ऐसी ही थी और इसी की तरह मेरे भी कोई मा थी?

घर पहुँचते ही उसका हृदय उमड़ उठा। बरबस वह अपनी बिटिया को उछालने लगी, चूमने लगी, उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। एक मा जितना जता सकती थी, उतने सब प्रकार से नन्हीं हील्ली पर वह अपना प्यार जताने लगी। हील्ली, एकाकी, मातृहीना 'हील्ली' अपनी नवजात हील्ली पर असीम प्रेम बरसाने लगी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो बचपन में उसके भी कोई मा थी। स्वयं वात्सल्य की वर्षा करते-करते उसे ऐसा मालूम हुआ मानो कहीं से आकर उसकी मा उस पर भी प्रेम बरसा रही है।

वह प्रेम में पागल-सी हो गई, और अपनी नन्हीं-सी बिटिया को लेकर नाचने लगी। और उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई मोटर दौड़ी आ रही है! उसने हील्ली को और भी ज़ोर से छाती से चिपका लिया।

———



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—हर्षवर्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी एम० ए०, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद हैं। मूल्य २॥) है।

२—पथ-प्रदीप—लेखक, श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक, उपन्यास-बहार आफ़िस, बनारस हैं। मूल्य २) है।

३—पश्चात्ताप—लेखक, श्रीयुत देवनारायण द्विवेदी, प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, बनारस सिटी हैं। मूल्य १॥) है।

४—अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक नियम—लेखक, श्रीयुत प्रेमचन्द्र बी० ए०, प्रकाशक, आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई हैं। मूल्य १॥) है।

५—बलिदान—लेखक, श्रीयुत यादवेन्द्रसिंह, 'प्रकाश' हैं। पता—ठाकुर मुंशीसिंह c/o माधोपब्लिशिंग हाउस, १८७ बैरहना, इलाहाबाद। मूल्य १) है।

६—हमारी परिस्थिति—लेखक, सैयद क़ासिमअली साहित्यालङ्कार, प्रकाशक, बाबू बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, बनारस सिटी हैं। मूल्य १) है।

७-९—श्री हेमचन्द्र लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर, की तीन पुस्तकें—

(१) मकरंद—सम्पादक, श्रीयुत बलदेव शास्त्री और मूल्य १।) है।

(२) भाग्यचक्र—लेखक, श्रीयुत सुदर्शन और मूल्य १।) है।

(३) भग्न-तंत्री—लेखक, श्रीयुत बलदेव शास्त्री और मूल्य ।॥) है।

१०-११—सरस्वती-पब्लिशिङ्ग-हाउस, इलाहाबाद, की दो पुस्तकें—

(१) लखनऊ की बेगम—लेखक, श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव और मूल्य १) है।

(२) जानवरों की कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत शालिग्राम वर्मा, एम० ए० और मूल्य ।≶) है।

१२—चन्द्रशेखर आज़ाद—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत मन्मथनाथ गुप्त, जवाहर स्क्वायर, इलाहाबाद हैं।

१३—संस्कृत-भाषा का सरल व्याकरण (प्रथम भाग)—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, मेयो कालेज, अजमेर हैं।

१४—माता—लेखक, योगराज अरविन्द, प्रकाशक, श्री अरविन्द-ग्रन्थमाला, ४ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य ॥) है।

१५—ज्योतिर्मयी (तीन किरणें)—लेखक, श्रीयुत अनिरुद्ध, प्रकाशक, ज्योतिष्पथ, झाँसी कैण्ट हैं। मूल्य ॥=) है।

१६—षोड़शी—लेखक, श्रीयुत त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, नवलेखोन्मेषिनी-पुस्तकमाला, गोला, गोकरनाथ, खीरी हैं। मूल्य ।=) है।

१७—तारे—लेखक, श्रीयुत अंचल, प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ हैं। मूल्य १) है।

१८—मिस गौहर—सम्पादक, श्रीयुत हुनर, प्रकाशक, सिनेमा-सिरीज़-आफ़िस, काशी हैं। मूल्य ≶) है।

१९-२०—भारतवासी-प्रेस, इलाहाबाद, की दो पुस्तकें—

(१) रूसी साम्यवाद—मूल्य ।) है।

(२) हिन्दुस्तानी टुकड़ेबन्दी—मूल्य ।−) है।

२१-२२—हिन्दी-मन्दिर-प्रेस, प्रयाग, की दो पुस्तकें—

(१) पुष्पबाण—मूल्य ॥) है।

(२) समाज और साहित्य—मूल्य ।॥) है।

२३—अवशेष—लेखक, श्रीयुत अमृतलाल नागर, प्रकाशक, सरस्वती-पुस्तक-भण्डार, आर्यनगर, लखनऊ हैं। मूल्य ॥) है।

१—तुलसीदास और उनकी कविता—लेखक पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग हैं। पृष्ठसंख्या ९४८ (ग्रंथ के दो भाग हमारे सामने हैं, दोनों भागों की यह पृष्ठसंख्या है)। प्रथम भाग का मूल्य २), द्वितीय भाग का २॥), छपाई सुन्दर है।

त्रिपाठी जी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं कवि हैं। आपने यह ग्रंथ लिखकर हिन्दी के एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। इसके दो भाग हमारे सम्मुख हैं और दूसरे भाग के अन्त में तीसरे भाग की विषय-सूची भी दे दी गई है। तीनों भागों की विषय-सूची देखने से ज्ञात होता है कि लेखक महोदय ने तुलसीदास के बारे में लगभग जितने विषय संभव हैं, सब पर प्रकाश डाला है। नमूने के लिए यहाँ हम कुछ विषय उद्धृत करते हैं—तुलसीदास का वाणीविलास, तुलसीदास का बहिर्जगत्, तुलसीदास के समय का हिन्दूसमाज, तुलसीदास के समय का सामाजिक रहन-सहन, वर्णन, महाकाव्य के वर्णन आदि। लेखक महोदय ने तुलसीदासविषयक बड़ी विशद व्याख्या की है और बड़ी खोज के साथ। पुस्तक बहुत उपयोगी है। 'वर्णन' के अन्तर्गत कुछ स्थलों की सुन्दरता इंगित-मात्र से बताई गई है, पर तीनों भागों की विषय-सूची में कोई ऐसा अध्याय नहीं देख पड़ता जिसमें तुलसीदास की कृतियों के सुन्दर स्थानों या अतीव सुन्दर स्थानों का निर्देश किया गया हो। यह अभाव खटकता है। संभव है, पुस्तक बढ़ जाने के डर से ऐसा न किया गया हो, पर पुस्तक तो बढ़ गई ही है, तनिक और बढ़ जाती तो कोई हानि नहीं थी।

तुलसीदास जी के दोष दिखलाते हुए त्रिपाठी जी कहते हैं कि "तुलसीदास जी सर्वत्र राम की सुन्दरता ही पर सबको मुग्ध दिखलाते हैं, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, देवता हो या दानव, राक्षस हो या असुर, जो कोई उनके सामने आता है वह उनके रूप पर पहले मुग्ध हो जाता है, पीछे अन्य काम करता है।" "खरदूषण......एकाएक क्रोध को भूल कर उनके रूप पर आसक्त हो जाता है" हमारा नम्र निवेदन है कि तुलसीदास जी का यह मतलब था कि सब कोई श्रीरामचन्द्र जी के असाधारण रूपमय व्यक्तित्व से प्रभावित होते थे—सब उनके रूप पर 'मुग्ध' और 'आसक्त' नहीं हो जाते थे। जो मुग्धता विषयों से ऊपर उठकर होती है उसी मुग्धता से तुलसीदास का तात्पर्य था। व्यक्तित्व यदि असाधारण रूपमय है तो मनुष्य उससे बहुत प्रभावित होता है। असाधारण व्यक्तित्व का असर तो सब कोई मानते हैं। विष्णु का रूप सदैव सुन्दर कल्पित किया गया है और उनके अधिकांश अवतारों का भी। अस्तु, पुस्तक बड़े काम की है। इसके द्वारा तुलसीदास जी के चरित्र के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलेगी। इसके लिए त्रिपाठी जी बधाई के पात्र हैं। आशा है, इसका समुचित प्रचार होगा।

२—त्रिलोचन कविराज—मूललेखक श्रीयुत रवीन्द्रनाथ मैत्र, अनुवादक श्रीयुत व्रजमोहन वर्मा, प्रकाशक विशाल भारत बुकडिपो, १९५।१ हरिसन रोड, कलकत्ता हैं। पृष्ठसंख्या १५० और मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में स्वर्गीय श्रीयुत रवीन्द्रनाथ मैत्र की सात कहानियों का संग्रह है। आप बँगला के एक उदीयमान लेखक थे, जिनकी असमय में ही मृत्यु हो गई। इसमें सन्देह नहीं कि आपकी कहानियाँ अच्छी होती हैं। आपकी 'त्रिलोचन कविराज' नाम की कहानी के पात्र स्वाभाविक नहीं हैं, न दुनिया में ऐसा वैद्यराज मिलेगा, न ऐसे रोगी। इसमें पात्र अतिरञ्जित हैं। तो भी कहानी में मज़ा आता है। 'समाजसुधारक' भी एक अच्छी कहानी है। उसमें एक नये समाजसुधारक की दुर्दशा का अच्छा चित्र है। 'ज्वार-भाटा' में एक दंपति की अनबन और पुनर्मिलन का अच्छा चित्र है। भाषा प्रौढ़ है, कथोपकथन सुन्दर है। भूमिका में कहा गया है कि इसकी कहानियाँ हास्यरस की हैं। यदि इससे यह मतलब है कि इसमें हास्यरस का पुट है तो ठीक है। पर यदि यह तात्पर्य है कि सब कहानियाँ हास्यरसप्रधान हैं तो हमारी राय में कथन ठीक नहीं है। 'त्रिलोचन कविराज' अवश्य हास्यरसप्रधान कहानी है, पर वह सफल रचना नहीं कही जा सकती। हाँ, सब कहानियों में कुछ न कुछ हास्य-रस अवश्य है। अनुवाद अच्छा हुआ है।

३—पूजा—लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद विद्यार्थी, प्रकाशक, शंकर-सदन, आगरा हैं। पृष्ठसंख्या १०२ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में लेखक के गद्य गीतों का संग्रह है। सब इक्यासी गद्य-गीत हैं। भूमिकालेखक प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यापक श्रीयुत रामकुमार वर्मा

हैं। उनका कहना है—"उसमें (पूजा में) साधक की अनवरत आकांक्षा सांसारिक परिस्थितियों को सुलझाकर प्रियतम का सामीप्य प्राप्त करना चाहती है। असीम की झाँकी इन भावनाओं के बीच में वसन्त के समान सजी हुई है।" हमारा कहना है कि आजकल के बहुत-से गद्य और पद्य के कवियों में असीम का जो अनुभव दिखाई पड़ता है वह झूठा है। इतने लोग अपनी छोटी अवस्था में असीम का अनुभव नहीं कर सकते। उसका अधिकार वृद्धावस्था और जन्म-जन्मान्तर की साधना को ही है। लेखक महोदय अपने प्रियतम शीर्षक गद्य-गीत में कहते हैं—"ऊँचे शिखर थे, चढ़ाई कठिन होती, पर मैं तो तुम्हारे प्रेम-समीर के झोंकों पर उड़ रहा था......"। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि लेखक महोदय को क्या सचमुच ईश्वर से इतना प्रेम है। जिसको प्रभु से इतना प्रेम होगा वह गद्य-गीत का संग्रह लेकर भूमिका लिखाता और छपाता और उसे समालोचना के लिए भेजता नहीं फिरेगा। यदि नहीं तो सारे गद्य-गीत कृत्रिम हो जायँगे। ऐसे कृत्रिम गद्य-गीत साहित्य की शोभा नहीं बढ़ा सकते।

४—दिव्य दोहावली—लेखक तथा चित्रकार, श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद वर्मा, बी० ए० 'दिव्य', प्रकाशक, श्रीयुत गयाप्रसाद वर्मा, टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड) हैं। पृष्ठसंख्या ११८ और मूल्य सजिल्द का १।) तथा बिना जिल्द की पुस्तक का १) है।

यह वर्माजी के दोहों का संग्रह है। दोहे व्रजभाषा में हैं। मुखपृष्ठ पर यह दोहा है—

सीदत भवरुज सौं सदा, गुन न करत रस कोय।
जाहि न लगत कवित्तरस, ताकी दवा न होय॥

जहाँ तक हम समझते हैं, यह दोहा सुन्दर समझकर मुखपृष्ठ पर रक्खा गया है। दोहे से साफ़ जान पड़ता है कि इसकी भाषा बनावटी है। 'दवा' शब्द साधारणतया खड़ी बोली में आता है और उसका प्रयोग इस तरह हुआ है कि उसका खड़ी बोलीपन साफ़ झलक रहा है। 'होय' का प्रयोग 'है' के अर्थ में है, तुक जोड़ने के लिए ही यहाँ 'होय' आया है। कहना नहीं होगा कि इसकी भाषा शिथिल है। अब भाव लीजिए। कवित्तरस जिसको नहीं लगता उस पर क्यों कोई रस असर नहीं करता? कारण कुछ नहीं बताया गया है। कवित्तरस भवरुज की ओषधि है, यह तो कोई भी नहीं मानेगा। ऐसे ही अन्य दोहे भी समझिए।

५—डाली—इसके प्रकाशक श्रीयुत अबोध मिश्र मन्त्री, कवि-कोविद-संघ, फर्रुख़ाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ६४ और मूल्य ॥=) है।

इस पुस्तक में भिन्न भिन्न कवियों की लगभग अस्सी कविताओं का संग्रह है। ये कवितायें वहाँ के कवि-कोविद-संघ में सुनाई गई थीं। इसमें कुछ साधारण कवितायें हैं और कुछ अच्छी हैं। उदाहरण लीजिए—

ऊषा आई, मधु भर लाई प्राची दिशि की प्याली में,
पीकर निकले खग नीड़ों से गाते नभ की लाली में।

यहाँ उषा उत्साह नहीं लाई, जागृति नहीं लाई, मधु भर लाई है। कहना नहीं होगा कि कविता साधारण है। अच्छी कविता का एक नमूना लीजिए—

भाव-सुमनों का सुन्दर हार
तुम्हें पहनाऊँ कृपा-निधान
शीश पर रखकर प्रिय पदपद्म
करूँ आपा तुम पर बलिदान।

यद्यपि इस कविता में भी कोई नवीनता नहीं है, भाव पुराना ही है, पर कुछ है तो।

६—काव्य और संगीत—लेखक, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी, प्रकाशक, लक्ष्मी आर्ट प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य =) है।

इस पुस्तिका में काव्य और संगीत के विषय में अच्छी विवेचना की गई है। पुस्तिका १३ छोटे छोटे परिच्छेदों में विभाजित है, जिनमें से मुख्य हैं—काव्य और संगीत की उत्पत्ति, काव्य और संगीत दोनों में श्रेष्ठ कौन है, क्या संगीत बिना काव्य के सम्भव है, पद्य काव्य में संगीत, गद्य काव्य में संगीत आदि। लेखक महोदय की यह सम्मति जान पड़ती है कि पहले संगीत था, फिर काव्य हुआ। यह बात ठीक ही मालूम होती है, क्योंकि विश्व में आकाश-तत्त्व के बाद नाद की व्यापकता निर्विवाद मानी गई है। आगे चलकर लेखक महोदय ने निर्णय किया है कि संगीत के बिना काव्य सम्भव नहीं। 'पद्य काव्य में संगीत' नामक परिच्छेद में अमर कवि जयदेव की अष्टपदी संगीतमय पद्य बतलाई गई है, जो उचित ही है। पर हिन्दी का एक उदाहरण खटकता है। उससे जान पड़ता है कि लेखक महोदय ने

केवल अनुप्रास को ही संगीत एवं कोमलकान्त पदावली समझ लिया है। इसी तरह गद्यकाव्य में संगीत में जो हिन्दी का उदाहरण है वह भी कृत्रिम गद्य का है। हमारा तो यह कहना है कि बाण का गद्यकाव्य भी इसलिए अच्छा नहीं है कि उसमें विशेष संगीत है, पर इसलिए कि उसमें चमत्कार हैं। काव्य और संगीत के प्रेमियों को वाजपेयी जी की यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

७—पञ्चामृत—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' प्रकाशक, श्रीयुत किशनलाल जालाण (बम्बई) हैं। पृष्ठ-संख्या ७६ और मूल्य ॥) है।

यह पुस्तक पद्यबद्ध है, परन्तु न खण्ड काव्य है, न महाकाव्य। इसे वस्तुतः काव्य कहने में भी संकोच होता है। यह उपदेश देने के लिए लिखी गई है। कहीं राधेश्यामी ढङ्ग है, कहीं हरिगीतिका छन्द में श्री मैथिलीशरण गुप्त का निर्बल अनुकरण है। भाषा भी सब जगह शिथिल है। लिखा खड़ी बोली में गया है, परन्तु 'पुनि' का प्रयोग भी किया गया है।

"सांख्य योग अष्टांग पुनि, ईश्वरप्रकृति-विवेक।"

कहीं 'महा' शब्द का प्रयोग 'बहुत' के अर्थ में किया गया है—

सुख-हेतु धन जन जोड़ता दिन रात पच पच कर महा।

इसके तुक के लिए दूसरी पंक्ति में 'हहा' का प्रयोग किया गया है। छन्दबद्ध उपदेश के प्रेमियों के लिए पुस्तिका अच्छी है।

८—साँवरी—लेखक, श्रीयुत रामस्वरूप शर्मा विशारद 'रसिकेन्द्र', प्रकाशक भारतीभवन, भाँट (मथुरा) हैं। पृष्ठ-संख्या ४८, मूल्य।) है।

यह एक खण्ड काव्य है। इसमें वीर और उल्लाला छन्द या उनके मिश्रण का प्रयोग है। इसका कथाभाग संक्षेप में यह है—कृष्णजी ने छल से स्त्रीवेष धारण करके अपना नाम साँवरी रक्खा और राधा की परीक्षा के लिए उनसे कृष्ण की निन्दा की। राधा बहुत क्रोधित हुईं। साँवरी रूपधारी कृष्णजी ने कहा कि यदि उनका (श्री कृष्ण का) प्रेम तुम पर सत्य है तो उनको यहाँ अभी प्रकट करो। श्री राधा ने प्रार्थना की और साँवरी ने छद्म वेश त्यागकर अपना रूप प्रकट किया। अन्त में उन्होंने भेद खोल दिया। कविता साधारण है—कथाभाग और कविता दोनों में ग्राम्यदोष है। उदाहरणार्थ—

बने चकोर परन्तु प्रिया के मुखशशि के मतवाले हैं।

यहाँ 'परन्तु' के प्रयोग की क्या सार्थकता है, यह लेखक महोदय ही जानें।

९—मधु-दूती—लेखक, श्री प्रियव्रत शर्मा, प्रिय, प्रकाशक, काव्यकुञ्ज, मुस्तफ़ापुर, खगौल (पटना), है। पृष्ठ-संख्या ४२, मूल्य।) है।

समर्पण में कवि जी लिखते हैं—

ले लो यह कुम्हलाया फूल
भय्या, माली कुशल नहीं मैं!

आप कुशल माली न हों, अच्छा हार न बना सकते हों, गुलदस्ते न सजा सकते हों, पर यह देख तो सकते हैं कि फूल कुम्हलाया है या ताज़ा। मधु-दूती शीर्षक कविता में आप लिखते हैं—

मधु-दूती, तुम उधर झूमती
मधु-मादकतामय मंजुल।
इधर बजाता व्यथा वल्लकी
सिसक सिसक यह पिक व्याकुल॥

इसके ऊपर के पद्य में वसन्त-वर्णन है। आपके वसन्त में कोयल रोती है, सिसकती है।

मैं विधवाओं के आँसू, जिनमें रोता अतीत का प्यार।
शून्य जगत है जिनका जिन्हें न कुछ कर सकने का अधिकार!

आपने आँसुओं से प्रभाव डालने का अधिकार भी छीन लिया।

—आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

१०—कवि प्रसाद की काव्यसाधना—लेखक, श्रीयुत रामनाथ 'सुमन', प्रकाशक, छात्रहितकारी-पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य २॥) है।

महाकवि प्रसाद के अनबोले व्यक्तित्व से जिन्हें भी कभी कुछ अभिज्ञता रही है वे उनका नाम सुनकर उनकी याद आने पर न जाने कितनी बार हूक उठे होंगे। प्रसाद जी हिन्दी के उन्नायकों में से एक थे और ऐसी सर्वतोमुखी, विस्तृत और विराट् प्रतिभावाले साहित्यकार हर देश और हर युग में नहीं होते। आज हिन्दी-कविता में जो इतना सौन्दर्य, रूप और यौवन फट पड़ा है, आज हिन्दी

गद्य में जो सुवास एवं मादकता के स्रोत चला करते हैं वे क़रीब क़रीब सभी प्रसाद जी के हैं।

प्रसाद जी सच्चे अर्थों में अखिल भारतवर्षीय लेखक थे। कहानीलेखक, उपन्यासकार, नाटककार, कवि और इतिहासअन्वेषक वे सभी कुछ थे और सबमें उनके महाचेतन, अनुभूति-प्रवण और मर्मी, युगधर्म की ज्वाला में जागरूप प्राणों का अग्रदूत संदेश सुनने को मिलता है। लघुता, दीनता और छोटापन उनके जीवन से जैसे दूर थे, वैसे ही उनकी सृजन-सम्पत्ति में भी नहीं मिलते। उनकी वाणी हिन्दी का प्रगतिघोष और उनकी जीवनी हिन्दी-साहित्य का स्वर्णयुग कहलाने की अधिकारिणी है।

उसी आधुनिक कविता के देवदूत महाकवि और महागायक प्रसाद की काव्यसाधना की प्रस्तुत पुस्तक समीक्षा है। पुस्तक में परिचय, कवि प्रसाद का मनोवैज्ञानिक विकास, कवि का काव्य और उसकी धारा (जिसे चार प्रकरणों में विभक्त कर दिया है—कवि का और कवि के क्रमिक विकास का प्रौढ़ स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए) कविप्रसाद का गीतिकाव्य, कवि के काव्य में रूप और यौवनविलास, कामायनी की कथा, कामायनी की महत्ता, कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि, कामायनी का काव्य-सौन्दर्य, कवि की साहित्यसाधना का चेतनाधार, कवि-प्रसाद—एक अध्ययन आदि १४ प्रकरण हैं। सुमन जी ने यह उपयोगी पुस्तक लिखकर हिन्दी की विशिष्ट सेवा की है। हमें दुःख है कि कवि के काव्यवैभव की ऐसी कवित्व-पूर्ण समीक्षा उनके जीवन-काल में नहीं निकल पाई। एक आलोचक में जो गुण होने चाहिए वे सुमनजी में हैं और उनकी भाषा में जो एक विचित्र मिठास है—व्यंजना में जो एक अचूकपन होता है वह पाठक को सबसे पहले प्रभावित करता है। काव्य के मर्म को समझनेवाले विद्वान्, अध्ययनशील लेखक से हम ऐसे, बल्कि इससे भी गुरु गम्भीर ग्रन्थ की आशा करते थे। कारण एक ओर जहाँ किताब में आलोचना का शुरू से आख़िर तक इमोशनल पहलू है और लेखक—आलोचक से दूर एक साधारण पाठक की कोटि में आ गया है वहीं ऐसा मालूम होता है कि पुस्तक में कलेवरवृद्धि की भी आयोजना की गई है। मीलों तक चलनेवाली कामायनी की कथा क़रीब क़रीब महाकवि की भाषा में महाकाव्य की सकरी-सी मालूम पड़ती है और पाठक कहीं कहीं भारानत हो धैर्य खोने लगता है। इस सुन्दर पुस्तक को यदि कवि प्रसाद की आलोचना न कह कर उनकी कविता का उच्च कोटि का एप्रीशियेशन कहें तो ज़्यादा ठीक होगा, क्योंकि इसमें आलोचनात्मक टचेज़ तो यदा-कदा ही मिलते हैं। कामायनी जैसे युगप्रवर्तक महा-काव्य पर लेखक ने ज़रूर कुछ विचार व्यक्त किये हैं, परन्तु इससे भी अधिक लिखे जाने की ज़रूरत थी।

अन्त में हमें इतना तो कहना ही है कि महाकवि प्रसाद पर अभी बहुत कुछ लिखा जाने को पड़ा है। प्रेमचन्द और प्रसाद ये दो युग-पुरुष हमारे यहाँ हुए और दोनों पर अभी न जाने कितना लिखने को पड़ा है। आधुनिक जागरणकाल के इन दो विधाताओं ने आज हिन्दी को इन्टर नेशनल गैलरी में उच्च आसन पर रख दिया है। दोनों पर ऐसे दर्जनों समीक्षा-ग्रन्थ निकलने की आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि यदि सुमन जी का ध्यान इस दिशा की ओर रहा तो और भी अच्छी चीज़ें पढ़ने को मिलेंगी।

११—रागिनी—लेखक, श्रीयुत गोपालसिंह नेपाली, प्रकाशक, युगान्तर-प्रकाशनसमिति, पटना हैं। मूल्य ।।।) है।

बिहार के प्रसिद्ध कवि नेपाली जी की कुछ फुटकर रचनाओं का यह संग्रह है। ताज़गी और मिठास कवि की रचनाओं का प्राण है। जीवन की परिपूर्ण यथार्थता और यौवन का उद्दाम निर्बन्ध वेग तो कवि से अभी कम परि-चित है, पर एक भीनी भीनी मस्ती का आवरण उनकी कुछ कविताओं पर ज़रूर पड़ा रहता है। आशावाद भी काफ़ी है और कहीं कहीं तो वह पाठक को चैन नहीं लेने देता। संकलित रचनाओं में 'बन्दगी', 'पदध्वनि' और 'भाई-बहन' बहुत अच्छी रचनाओं में हैं। पुस्तक पढ़ने से कवि का जो अपना एक स्वप्नलोक और बहार की समाँ है वह आँखों के सामने घूमने लगती है। किसी में सफल कवि होने के लिए इतना ही काफ़ी है।

इस सुन्दर संग्रह के लिए नेपाली जी को बधाई देते हुए हम उनकी दो पंक्तियाँ प्रस्तुत करते हुए इस नोट को समाप्त करते हैं।

'बन्दे तरु के पीले पत्ते जिनमें कुछ रसधार न हो।
वैसे यहाँ नहीं प्रेमी तो सच कह दूँ संसार न हो।'

आशा है, हमें नेपाली जी की अन्य कविताओं का भी संग्रह देखने को मिलेगा।

—अञ्चल

१२—रोटी का राग—रचयिता, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, प्रकाशक, श्री मार्तण्ड उपाध्याय, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली हैं, मूल्य ॥) है।

श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल हिन्दी के सुन्दर लेखक और कवि हैं। इस पुस्तक में आपकी ४३ कवितायें संग्रहीत हैं। कवितायें प्रायः ग़रीबी, दरिद्रता और उत्पीड़न के भाव और विचारों से ओत-प्रोत हैं। आजकल हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में छायावाद की जो नई धारा प्रवाहित हो रही है, लेखक को वह पसंद नहीं है, इसीलिए उन्होंने अपने इस काव्य-संग्रह का नाम 'रोटी का राग' रक्खा है और सभी कविताओं में किसान और मज़दूर की ग़रीबी और उनके हृदय के दुःख-दर्द से पूर्ण भावों और विचारों का समावेश किया है।

कवितायें तीन भागों में विभाजित की गई हैं। पहले विभाग 'रोटी का राग' शीर्षक में कुछ रचनायें ऐसी हैं जिनमें छायावादी रचनाओं को प्रगति के प्रतिकूल बताया गया है। जैसे—

क्या होगा गाकर 'अनंत' का
'नीरव' और मधुर संगीत,
मलयानिल के उच्छ्वासों का
मर्मर निर्झर झरझर गीत।

कुछ कविताओं में ग़रीबों और किसानों का सुन्दर चित्रण है। जैसे—

है कृषकों की कैसी शान
दिन भर श्रम करते रहते हैं
सब ऋतुओं में दुख सहते हैं,
विविध भाँति के अन्न उगाकर
जग का सदा पेट भरते हैं।
किन्तु स्वयं भूखे ही मरते
छोड़ सभी आदर सम्मान
है कृषकों की कैसी शान।

दूसरे विभाग 'भारत गान' में भारत-सम्बन्धी सुन्दर और भावपूर्ण कवितायें संग्रहीत हैं। जैसे—

आओ गावें भारत गान!
जाति-पाँति का भेद भूलकर,
सब मिलकर बस एक राग ही,
नित्य अलापें हृदय खोलकर
हो कैसे आज़ाद हमारी
प्यारी जननी भारत माता।
पराधीन रहकर भी क्योंकर
हो सकता गौरव अभिमान
आओ गावें भारत गान।

तीसरे भाग में कुछ स्फुट कवितायें संग्रह की गई हैं, जिनमें 'शेगाँव का सन्त' बड़ी सुन्दर कविता है। इसके सिवा कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जो सुन्दर सरल भाषा से युक्त भावपूर्ण हैं।

यह काव्य-पुस्तक सामयिक और नवीन विचारों की ओर कवियों का ध्यान आकर्षित करनेवाली है। इसकी प्रस्तावना आचार्य काका कालेलकर ने लिखी है। 'बापू का आशीर्वाद' भी इसमें है। आशा है, हिन्दी के काव्य-प्रेमी और साहित्यिक इस नवीन भावों से युक्त काव्य-पुस्तक का अवश्य रसास्वादन करेंगे।

—ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'

१३—कापी और प्रूफ़—लेखक, श्रीयुत कृष्णप्रसाद दर, प्रकाशक, दि इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस, इलाहाबाद है। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या १५५ और मूल्य २।) है।

श्रीयुत कृष्णप्रसाद दर इलाहाबाद के ला जर्नल प्रेस के सुयोग्य मैनेजर हैं। प्रेस-सम्बन्धी कामों का आपने अच्छा अनुभव प्राप्त किया है। ला जर्नल प्रेस की प्रसिद्धि का बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। इस पुस्तक में आपने वे सब बातें बड़े सुन्दर ढङ्ग से रक्खी हैं जिनकी ग्रन्थकारों, प्रूफ़रीडरों और मुद्रकों को पग पग पर आवश्यकता पड़ती है। लीडर के सुयोग्य सम्पादक डाक्टर सी० वाई० चिन्तामणि डो० लिट ने पुस्तक की भूमिका में लेखक के इस कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। वास्तव में इस पुस्तक की रचना करके श्री दर साहब ने प्रेस-कार्य से सम्बन्ध रखनेवाले लोगों का बड़ा उपकार किया है। यह पुस्तक आपने अँगरेज़ी में लिखी है। यद्यपि यह अँगरेज़ी के ग्रन्थकारों और प्रूफ़रीडरों आदि के लिए उपयोगी है,

तथापि हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक न होने से अँगरेज़ी पढ़े हिन्दी वाले भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

—श्रीनाथसिंह

१४—चिकित्सा-सम्बन्धी दो पुस्तकें—काशी के स्वर्गीय श्री श्यामसुन्दराचार्य एक योग्य चिकित्सक ही नहीं थे, किन्तु उन्होंने रसों आदि के बनाने में नई प्रक्रिया का भी प्रचार किया था। उन्होंने उस सम्बन्ध की तथा चिकित्सा के अन्य विषयों की कुछ उपयोगी पुस्तकें भी लिखी थीं, जिनमें से अनुपानविधि और नीम के उपयोग नाम की पुस्तकें समालोचनार्थ हमें प्राप्त हुई हैं।

(१) अनुपानविधि—इस पुस्तक में वैद्य जी ने रसों के अनुपान बताये हैं। रसों के अनुपान वैद्यक ग्रन्थों में उतने अधिक तथा ब्योरे के साथ नहीं लिखे गये हैं, अतएव वैद्यों को अपनी बुद्धि के अनुसार यथा आवश्यकता उनकी कल्पना करनी पड़ती है। इस पुस्तक में वैद्य जी ने सभी रसों तथा भस्मों के बहुत उपयुक्त अनुपान लिखे हैं और मात्रा-सहित उनके प्रयोग की विधि भी बतलाई है। चिकित्सकों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए। यह उनके विशेष काम की पुस्तक है। इसका मूल्य ।=) है।

(२) नीम के उपयोग—यह भी एक महत्त्व की पुस्तक है। वैद्य जी ने नीम के सम्बन्ध में तथा उसकी पत्ती, बीज, छाल आदि से बननेवाले योग आदि जो भी उसके उपयोग उन्हें मिले हैं उन सबको इसमें क्रम के साथ समावेश किया है और उन सबकी रोगों के सम्बन्ध में ब्योरेवार विधि भी बतलाई है। चिकित्सकों के लिए यह भी एक उपयोगी पुस्तक है। इसका मूल्य ।।।) है।

इन दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—श्यामसुन्दर-रसायनशाला, गायघाट, बनारस।

१५—प्राचीन जैन-इतिहास (प्रथम भाग)—इस पुस्तक के लेखक बाबू सूरजमल जी जैन हैं। उन्होंने इसकी रचना २२ वर्ष पहले की थी। यह अब तीसरी बार छपी है। यह पुस्तक जैन-शिक्षा-संस्थाओं में इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में शामिल है। यह छोटे छोटे २७ पाठों में विभक्त है। अन्त में छः छोटे छोटे परिशिष्ट भी हैं। प्रारम्भ के तीन पाठों में भारत और संसार के भूगोल का वर्णन है, जिसमें भारत का तथा दूसरे भूखंडों का उल्लेख किया गया है। इसके बाद इतिहास के पाठ हैं। इनमें प्रारम्भ में सृष्टिकाल का निर्देश और बीते हुए काल का विभाग बताया गया है। फिर 'मानवों' के अति प्राचीन इतिहास का वर्णन करते हुए जैनधर्म के तीर्थंकरों की जीवनियाँ दी गई हैं। इस प्रकार जैन-धर्मग्रन्थों के आधार पर भारत के प्राचीन निवासियों का इतिहास इसमें दिया गया है। यह इतिहास तथा इसका भूगोल अपूर्व और अलौकिक है, क्योंकि आधुनिक भूगोल और इतिहास से इसका अधिकांश मेल नहीं खाता है। इसका मूल्य ।।।) है।

पता—दिगम्बर जैनपुस्तकालय, गांधी-चौक, कापड़िया भवन, सूरत।

१६—आसव-विज्ञान—आयुर्वेदिक-चिकित्सा में आसव और अरिष्ट रोगों का उन्मूलन करने में बार बार अव्यर्थ प्रमाणित हुए हैं। परन्तु इनका प्रचार बहुत दिनों तक बंगाल के वैद्यों में ही रहा है। उत्तर-भारत के वैद्य आसव-अरिष्टों का उतना उपयोग नहीं करते थे। अगर हम भूलते नहीं हैं तो सबसे पहले इस त्रुटि की ओर अमृतसर के स्वामी हरिशरणानन्द जी का ध्यान गया और उन्होंने 'आसव-विज्ञान' नाम की एक छोटी पुस्तक लिखकर वैद्यों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। प्रसन्नता की बात है कि उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिली और अन्य लोगों ने भी इस ओर ध्यान दिया और उत्तर-भारत के वैद्य भी आसव-अरिष्ट बनाने और उनका उपयोग करने को प्रवृत्त हुए। स्वामी जी की सफलता का एक यह भी प्रमाण है कि उनकी इस पुस्तक का दूसरा संस्करण निकल गया है। इस संस्करण को उन्होंने और भी उपयोगी बना दिया है। पहले संस्करण में केवल आसव और अरिष्ट के बनाने की 'परिष्कृत' विधि भर थी। इस नये संस्करण में ११२ आसवों व अरिष्टों के नुस्ख़े भी दे दिये हैं। ये नुस्ख़े शास्त्रीय हैं। पुस्तक उपयोगी और प्रामाणिक है। वैद्यों को इसका संग्रह करना चाहिए। पुस्तक की भाषा सरल और शुद्ध है। छपी भी अच्छी है। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १) है।

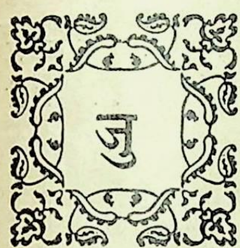
पता—दि पंजाब आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अमृतसर।



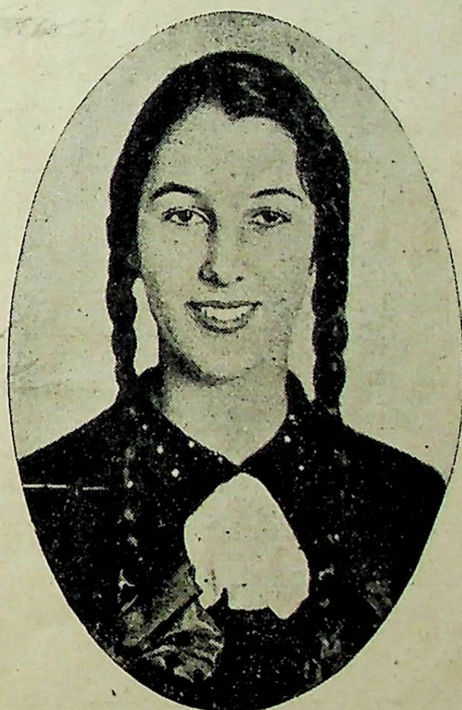
जाग्रत नारियाँ

स्त्री-स्वाधीनता-आन्दोलन का स्वरूप

लेखक, श्रीयुत रतिनाथ गुप्त



जुलाई की 'सरस्वती' में श्रीयुत मन-मथनाथ गुप्त का 'स्त्री-स्वाधीनता-आन्दोलन का स्वरूप' नाम का एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें गुप्त जी ने बताया है कि स्त्री-स्वाधीनता का जो आन्दोलन इस समय हो रहा है वह एकमात्र मध्य-श्रेणी की स्त्रियों का आन्दोलन है और बेजान सा है, क्योंकि वह आन्दोलन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक यहाँ की स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पराधीन हैं। इसके बाद उन्होंने यह बताया है कि इस आन्दोलन का रुख़ भी अब बदल गया है और स्त्री-स्वाधीनता का आन्दोलन करनेवाली स्त्रियाँ 'गृहलक्ष्मी' बनने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझने लगी हैं, क्योंकि योरप में भी उनकी श्रेणी की स्त्रियाँ घरों को ही लौट रही हैं—उन्होंने आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए जो भारी प्रयत्न किया था उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इस तरह दो परस्पर विरोधी बातों को एक साथ रखकर लेखक महोदय यह कहते हैं कि ये मध्य-वित्त-वाली स्त्रियाँ अपने समाज का उद्धार करने के लिए जो कान्फ़रेंसें आदि किया करती हैं उनमें सिवा प्रस्ताव पास करने और पुरुषों को कोसने के और कोई काम ही नहीं होता। यही नहीं, पत्र-पत्रिकाओं में स्त्रियों के जो स्तम्भ रहते हैं उनमें स्त्रियों के जो लेख आदि छपते रहते हैं वे



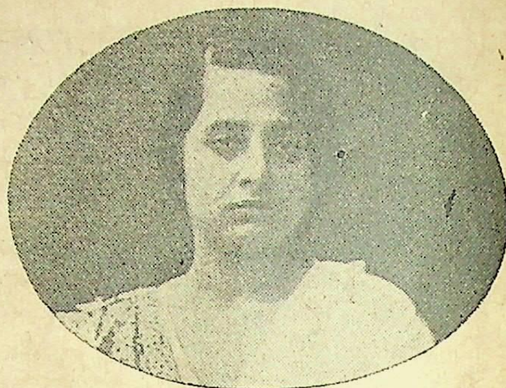
[शाहज़ादी फ़ाज़ीह—ये मिस्र के बादशाह की बड़ी बहन हैं जिनका ईरान के युवराज से विवाह होनेवाला है।]

रद्दी होते हैं और वे स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिए ही छापे जाते हैं।

लेखक महोदय ने अपने लेख में स्त्रियों की प्रगति की इस प्रकार जो रूप-रेखा अंकित की है वह उतनी विवेचना-

पूर्ण नहीं है, जितनी उपहासात्मक है। उन्होंने अपने लेख में लिखा है कि स्त्रियाँ अपनी कान्फ़रेंसों में पुरुषों के कोसने का काम प्रधान रूप से 'करती हैं। ऐसी धारणा रखने के कारण उन्होंने अपने लेख में मध्य-श्रेणी की स्त्रियों का तथा उनकी सभाओं आदि का मखौल उड़ाकर वस्तुतः 'पुरुष' के अनुरूप ही काम किया है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि उन्होंने अपने लेख में उनका जो चित्र अंकित किया है, क्या वह यथार्थ है। वस्तुस्थिति से तो ऐसा नहीं प्रतीत होता।

इसमें सन्देह नहीं है कि स्त्रियों के सारे आन्दोलन का सञ्चालन मध्य-श्रेणी की स्त्रियाँ ही करती आई हैं। परन्तु



[कुमारी अबी जे० मेहता—ये नागपुर की एडवोकेट हैं और नागपुर सिविल स्टेशन कमिटी की सभानेत्री हैं। स्वर्गीय सर फिरोज़शाह मेहता की ये पौत्री हैं।]



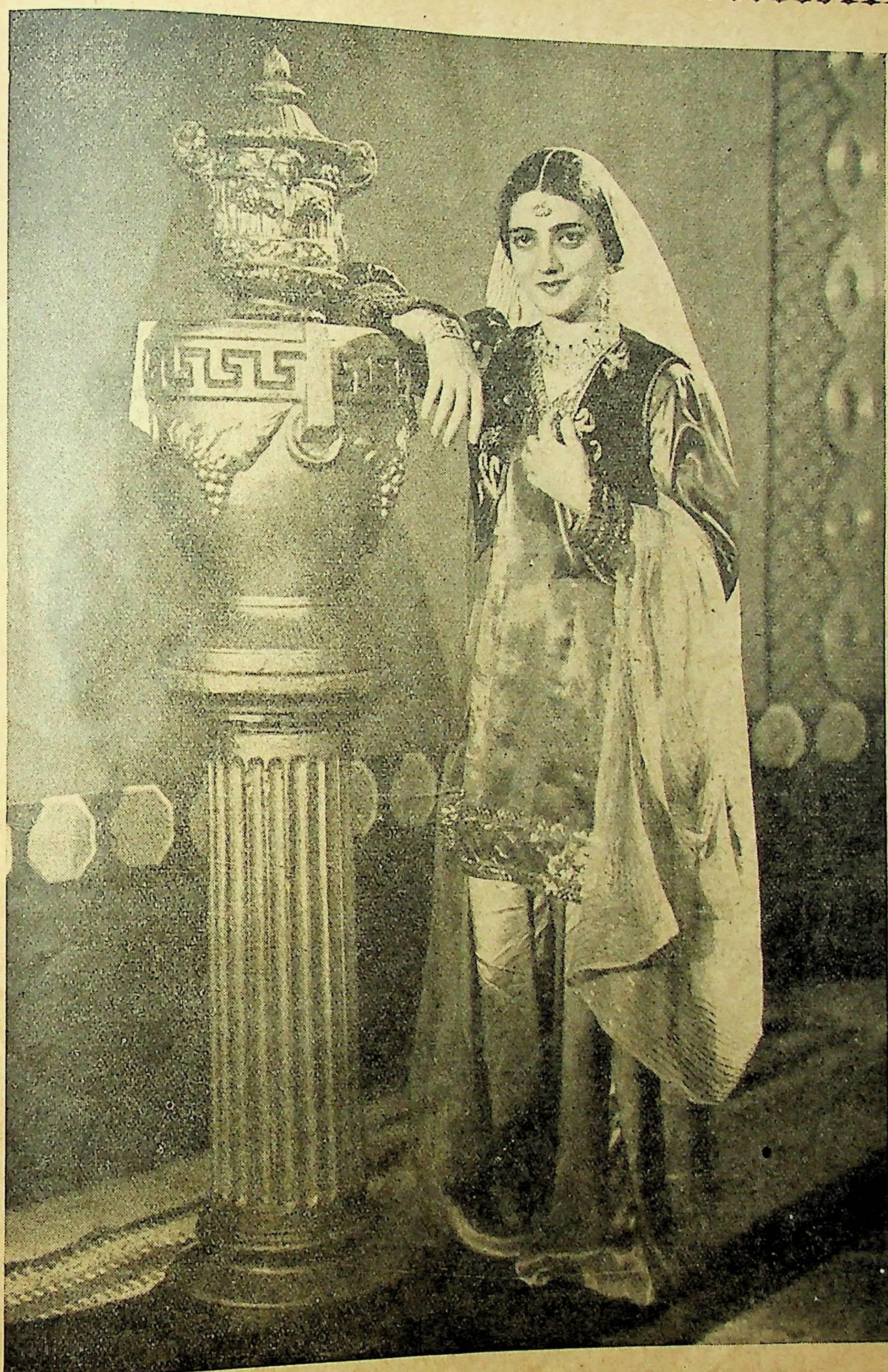
[बेगम शाह नवाज़—इस वर्ष इन्हें एम० बी० ई० की उपाधि मिली है।]

देखना तो यह है कि उनका प्रयत्न सार्थक हुआ है या नहीं, उससे भारत के इस पददलित समाज की स्थिति में सुधार हुआ है या नहीं। फिर क्या पुरुषों के आन्दोलन मध्य-श्रेणी के लोगों के हाथों नहीं चल रहे हैं? तब मध्य-वित्त की स्त्रियों पर ही यह आक्षेप क्यों? आज कांग्रेस के साथ जनता ज़रूर है। परन्तु कब से? स्त्रियाँ भी अपने अवसर की ताक में हैं, और जब उनका अवसर उन्हें प्राप्त होगा तब उनके भी साथ देश का सारा स्त्री-समाज खड़ा दिखाई देगा।

स्त्रियाँ अपने वित्त के अनुसार अपने समाज के उद्धार का प्रयत्न कर रही हैं और उनके प्रयत्न से उनमें काफ़ी जागरण हुआ है। यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम है कि आज वे पुरुषों-द्वारा उठाये गये आन्दोलनों में उनके



[कुमारी सत्यसूरी प्रथम महिला हैं जिन्होंने दिल्ली-विश्वविद्यालय के इतिहास में इस वर्ष बी० ए० पास किया है।]



[सागर फिल्म की सविता 'तीन सौ दिन बाद' नामक चित्रपट में ।]

साथ हैं और उनके मार्ग में बाधक नहीं हो रही हैं। उन्होंने पिछले असहयोग-आन्दोलन में भी उत्साह के साथ भाग ही नहीं लिया था, लाठियाँ खाई थीं, जेल तक गई थीं और अन्त तक कार्य-क्षेत्र में डटी रहीं। क्या शिक्षा के क्षेत्र में और क्या समाज-सुधार के क्षेत्र में उन्होंने आया हुआ अवसर कभी हाथ से जाने दिया है? तब उनके ऐसे कार्यों की पत्र-पत्रिकाओं में प्रशंसा होती है और उनके चित्र छापे जाते हैं तो यह तो उचित ही कहा जाना चाहिए। परन्तु लेखक महोदय को इसमें भी अनौचित्य जान पड़ता है। उन्हें जानना चाहिए कि जब पुरुष-लेखकों की रचनायें छपती हैं और उनमें से विशिष्टों के चित्र भी छापे जाते हैं तब उनके सम्बन्ध में लेखक महोदय ऐसी ही बात क्यों नहीं कहते हैं? स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना न जानती होतीं—उनमें प्रतिभा या विलक्षणता न होती तो वे ऐसा कह भी सकते थे। परन्तु जब वे पुरुषों के समान ही लिखने में प्रवीण हैं, भाषण करने में निपुण हैं और बड़े बड़े आन्दोलनों का नेतृत्व कर सकी हैं तब उनका उपहास करना क्या इस युग के किसी पुरुष को शोभा दे सकता है?

हम मानते हैं कि अभी स्त्रियाँ उतनी उन्नत नहीं हैं, उनका आन्दोलन भी अभी सीमित ही है और कतिपय कारणों से वे अपने मन की नहीं कर पाती हैं, परन्तु हमें उनकी नीयत पर तो सन्देह नहीं करना चाहिए। हमारा तो यही कर्तव्य होना चाहिए कि हम उन्हें उन्नत होने को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दें और वे जो सहायता चाहती हों उसे उत्साह-पूर्वक प्रदान करें।

मध्य-श्रेणी की हों, चाहें उच्च श्रेणी की हों और चाहे निम्न श्रेणी की हों जब अवसर आयेगा, सबकी सब स्त्रियाँ अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए एक पंक्ति में समवेत दिखाई देंगी और उनका वह विराट् संगठित स्वरूप प्राप्त होगा इसी आयोजन की प्रेरणा से जो आज मध्य श्रेणी की स्त्रियाँ इस समय देश में कर रही हैं, जिन्हें श्रीयुत मनमथनाथ गुप्त की श्रेणी के लोग अपनी हँसी के खिलौने समझने में ही अपने 'पौरुष' की सार्थकता मानते हैं।

चीन की आदर्श नारी

चीन-जापान-संग्राम ने चीन की नारियों की तरफ़ संसार का ध्यान आकर्षित किया है। जहाँ के पुरुष ही कुछ काल पूर्व अफ़ीमची और कुसंस्काराच्छन्न मशहूर थे वहाँ की स्त्रियों के विषय में जाग्रति और उन्नति की कल्पना कैसे की जा सकती थी? पर इस युद्ध में वहाँ की नारियों ने देशभक्ति के भाव का जैसा परिचय दिया है उससे उनके विषय में पहले से फैले विचार निर्मूल होने लगे हैं।

चीन की नारियों में इस समय सबसे अग्रगण्य स्थान मैडम चियांग काई शेक का है। यदि यह कहा जाय कि चीन-जापान-युद्ध के इस रूप में इतने अधिक दिन तक चलते रहने का श्रेय आप को ही है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। यह कोमल महिला इस कठिन समय में रणचण्डी का अवतार बनकर दिन-रात घोर परिश्रम करती रहती है। वे चीन के वायुयान-विभाग की मंत्रिणी हैं और प्रायः स्वयं वायुयान-द्वारा रण-क्षेत्र का निरीक्षण किया करती हैं। विदेशों में चीन-सम्बन्धी प्रचार-कार्य का भार भी उन्हीं के ऊपर है। वे अँगरेज़ी और फ्रांसीसी भाषाओं में निपुण हैं और पुस्तक, समाचार-पत्र, विज्ञप्ति आदि के द्वारा संसार के निरपेक्ष राष्ट्रों का ध्यान चीन की तरफ़ बराबर आकर्षित किया करती हैं। चीन के सहायतार्थ उनकी अपीलें प्रायः अमरीका, इँग्लेंड के अख़बारों में निकला करती हैं और उनके प्रभाव से चीन की कष्ट-ग्रसित जनता और घायलों को काफ़ी सहायता प्राप्त हो जाती है।

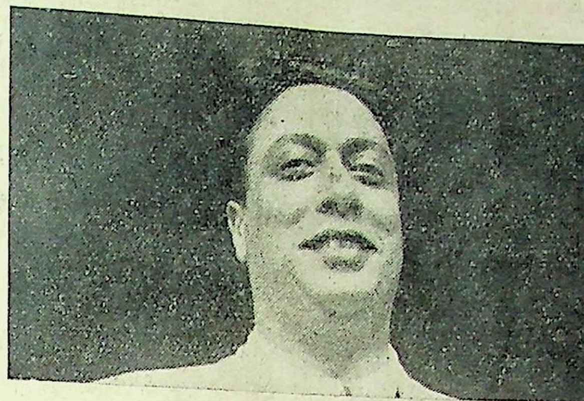
मैडम चियांग काई शेक का चरित्र अत्यन्त पवित्र और आदर्श है। अपने पति और परिवार पर उनके आचरण की विशुद्धता का बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिससे वहाँ सदैव प्रेम, शान्ति और आनन्द का साम्राज्य बना रहता है।

चीनी महिलाओं के उत्थान और जागरण के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किये हैं, और उसके फलस्वरूप उनकी दशा में बहुत अन्तर पड़ गया है। उन्होंने उनको देश-प्रेम, शुद्धाचरण, पतिव्रत, निर्भीकता आदि गुणों की शिक्षा दी है। पश्चिमीय फ़ैशन को रोकने का भी उन्होंने प्रयत्न किया है और सरकारी तौर पर यह नियम बनवा दिया है कि कोई स्त्री ऐसे वस्त्र न पहने जिससे किसी प्रकार की निर्लज्जता प्रकट होती हो। उनकी चेष्टा से चीनी महिलायें वर्तमान युद्ध में भी अधिक से अधिक सहायता और स्वार्थ-त्याग कर रही हैं।

चित्र-संग्रह



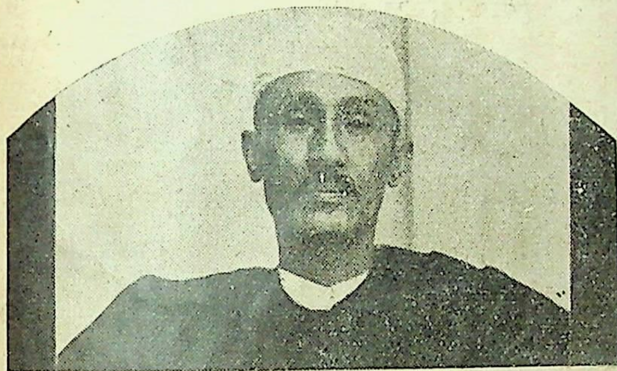
मकल्ला के महाराज—हाल में ही ये विलायत की यात्रा समाप्त करके लौटे हैं।



श्रीयुत एल० जुत्शी—काश्मीर-राज्य के माइनिंग इंजीनियर। ये भी हाल में ही विलायत से लौटे हैं।



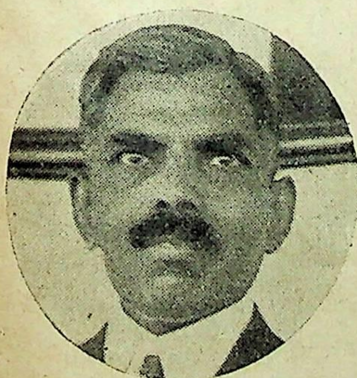
राजा हरकिशनलाल कौल—ये पटियाला की प्रिवी कौंसिल के सभापति नियुक्त हुए हैं।



डाक्टर के० सी० नायक कडप्पा—इम्पीरियल एग्रीकल्चर कौंसिल की ओर से बर्लिन के कृषि-सम्मेलन में गये हैं।



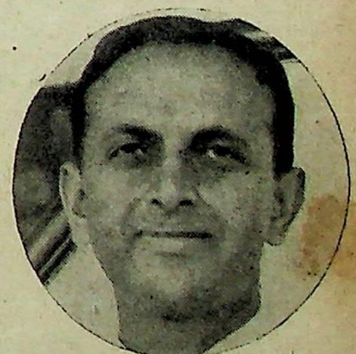
आ० पी० एस० पू० पू—ब्रह्मदेश की वर्तमान सरकार के मंत्रिमंडल के एक लोकप्रिय सदस्य।



दीवान बहादुर सर ए० रामास्वामी मुदालियर भारत वापस आगये।

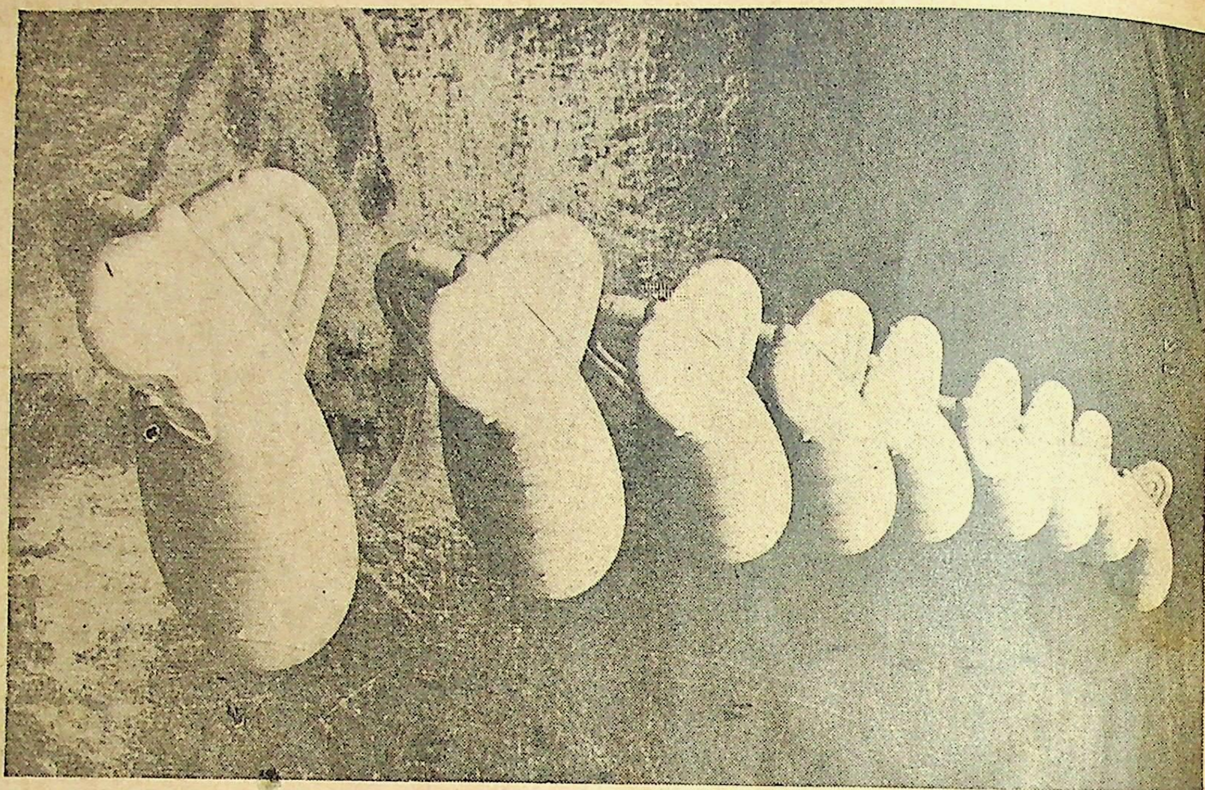


पॉल्टन की रानी साहबा—इन्हें इस वर्ष 'क़ैसरे हिन्द' मेडल मिला है।

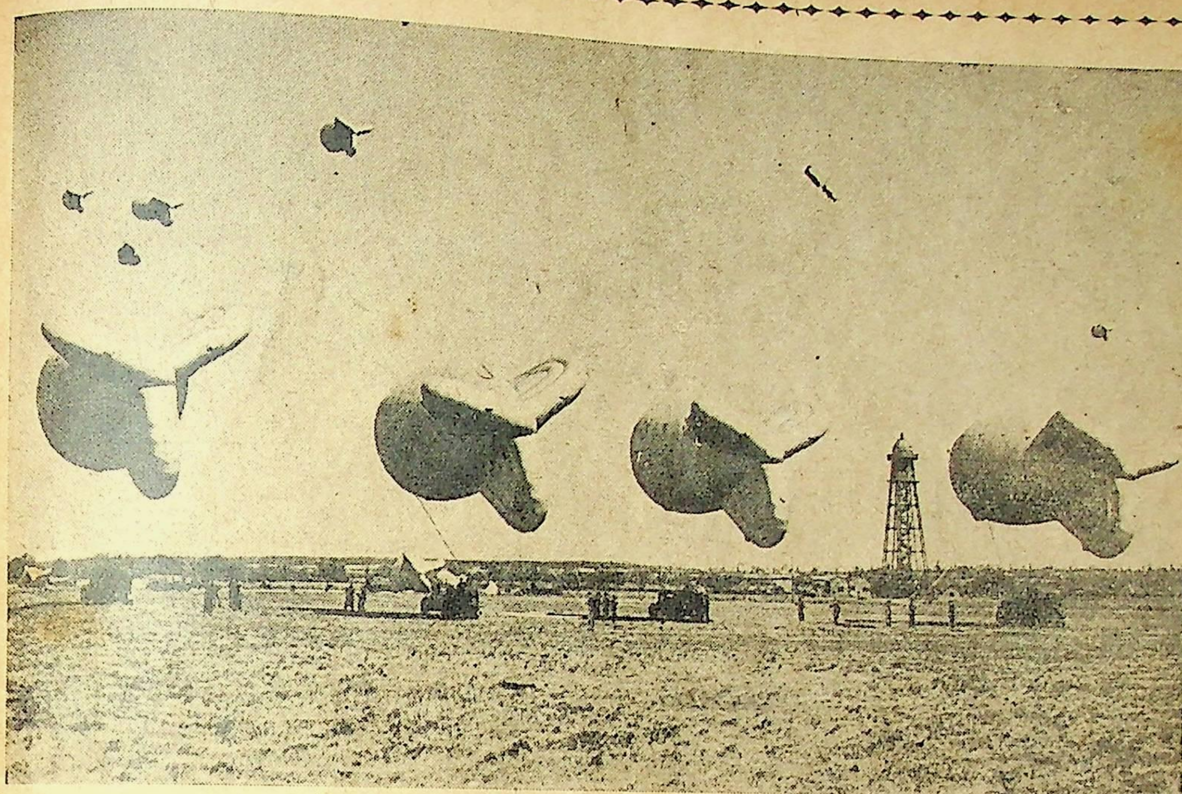


श्री एन० आर० पिल्लई—जो व्यापारी वार्ता के सम्बन्ध में विलायत गये थे, वापस आगये हैं।

(कृपया इधर से देखिए)



हवाई हमले से लन्दन को बचाने के लिए उसके इर्द-गिर्द आकाश में इस प्रकार के गुब्बारों की पंक्ति खड़ी की जा रही है। ये गुब्बारे हाथी के आकार के हैं।



गुब्बारे ऊपर उड़ाये जा रहे हैं। यह कार्य्य इंजन से होता है।



रोम में मुसोलिनी (मध्य में खड़े हुए) अधीनता स्वीकार करनेवाले अबीसीनिया के सरदारों का स्वागत कर रहे हैं।



...रस्पा का महान् जल-प्रपात ... बम्बई-प्रान्त और मैसूर-राज्य की सीमा के बीच में शुभ्र जल-प्रपात प्रकृति की कारीगरी का एक

वर्ग नं० २५ का नतीजा

इस बार प्रतियोगियों ने वर्गनिर्माता को बुरी तरह हराया। १७ व्यक्तियों की शुद्ध पूर्तियाँ आईं और एक अशुद्धिवालों की संख्या ७१ तक पहुँची। पूरा नतीजा नीचे दिया जाता है।

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १७॥=) मिला।

(१) सुशीलादेवी c/o बाबू सतगुरुसरन दफ्तर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, बनारस।
(२) रावतमल अग्रवाल c/o रामेसरलाल रावतमल किशनगंज (पूर्णिमा)।
(३) हरकिशनलाल अग्रवाल हेडमास्टर प्राइमरी स्कूल, पचमढ़ी सी० पी०।
(४) शिवदेवी मिश्र c/o अम्बिकाप्रसाद मिश्र बी० ६।३१ फागली, शिमला।
(५) जनार्दनलाल खन्ना अपर बाज़ार, राँची।
(६) कुशेश्वरप्रसाद वर्मा c/o पोस्ट मास्टर पो० बौंसी, जिला भागलपुर, बिहार।
(७) रामेश्वरदयाल c/o गोपीनाथ आर्य्य गली, लखेरान बरेली।
(८) लक्ष्मणप्रसाद मिश्र मुनीम c/o श्रीराम लक्ष्मीनारायण स्था० पो० महमूदाबाद, जि० सीतापुर।
(९) मुरलीमनोहर व्यास बी० ए०, एल-एल० बी० एडवोकेट, नागौर (मारवाड़)।
(१०) चम्पादेवी c/o सी० बी० वाजपेयी, पोस्ट चाइबासा, सिंहभूम बी० एन० आर०।
(११) श्रीनाथ मिश्र c/o पंडित देवराज मिश्र गाँव कूड़ी, पोस्ट बड़ा गाँव, बनारस।
(१२) हेतराम शर्मा मुहर्रिर रजिस्ट्री, बुलन्दशहर।
(१३) मंगल मिश्र ७ सुखलाल जौहरी लेन बड़ा बाजार, कलकत्ता।
(१४) कुसुमकुमारी देवी c/o बाबू रामायणप्रसाद एम० एल० ए० बाग मंशा पाण्डेय, आरा।
(१५) श्रीमती अरुणा देवी मातृ-भाण्डार विश्वनाथ गली, बनारस सिटी।
(१६) कुमारी प्रीति अदावाल ४ बैंकरोड, प्रयाग।
(१७) डी० एस० काटकी दिगौटी पो० थल (अल्मोड़ा) c/o बी० एस० काटकी।

द्वितीय पुरस्कार १५६) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ६७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २।=) मिला।

(१) श्रीमती सोनादेवी c/o नन्दनसिंह असिस्टेन्ट टीचर जी० बी० कोठ (kooth) शाहाबाद। (२) श्रीमती आर० सी० दुबे, ९७ इन्यारोड, रंगून यूनीवर्सिटी, बरमा। (३) भगवानलाल, पेरिस हाउस, सीतामढ़ी, बी० एन० डबल्यू, आर०। (४) भद्रदत्त शर्मा, सुन्दर मेडिकल हाल, सिकन्दरपुर, वाया गुरुसहायगंज, फ़र्रुखाबाद। (५) राजपति शर्मा, रिटायर्ड मुंसरिम, कटरा, बाँदा, यू० पी०। (६) गणेशदत्त वाजपेयी, कटरा सेवाकली, नया शहर इटावा। (७) पं० बलरामकिशोर शास्त्री c/o पं० केशवदेव शास्त्री, लोकनाथ महादेव, इलाहाबाद। (८) रघुनाथप्रसाद c/o इंडियन प्रेस पोस्ट आफ़िस, इलाहाबाद। (९) श्यामदेवी महेश्वरी, सत्याश्रम, ऊँचामण्डी, इलाहाबाद। (१०) सरोजनीदेवी c/o पं० केशवदेव मालवीय शास्त्री, पाधा लोकनाथ महादेव, इलाहाबाद। (११) कमलादेवी श्रीवास्तव, c/o जमुनाप्रसाद, गाँव हँडिया, पो० आ० हँडिया, इलाहाबाद। (१२) ज्वालाप्रसाद वर्मा, मैनेजर, रुड़की इंजीनियरिङ्ग कम्पनी, केनिङ्ग रोड, इलाहाबाद। (१३) कुमारी सुवीरा अदावाल, ४ बैंक

रोड, प्रयाग। (१४) पुष्पा श्रीवास्तव, c/o डा० बृजविहारीलाल, मेडिकल आफ़िसर, दारागंज, इलाहाबाद। (१५) सुशीलादेवी c/o जयकृष्णनारायण ड्राफ़्टमैन, जी० ई० आफ़िस, एम० ई०, एस०, इलाहाबाद। (१६) सावनमल c/o ला० देवीदयाल लांवा, बुलाक नं० १७ सरगोधा (पंजाब)। (१७) पं० बाबूलाल शर्मा, ऊपर कोट, बनिया पाड़ा, अलीगढ़ सिटी। (१८) हरिदत्त लोडुमी, म्यूनिस्पल स्कूल, तल्लीताल नैनीताल। (१९) श्यामलाल, माधोर टोला, कलकत्ता। (२०) बाबूलाल राजगढ़िया, जी० एन० एम० एच० ई० स्कूल, कतरासगढ़, मानभूम। (२१) डी० सी० राठौर, सदर बाज़ार, सागर, सी० पी०। (२२) सुशीलाबाई c/o हरकिशनलाल अग्रवाल, हेड मास्टर प्राईमरी स्कूल, पचमढ़ी, सी० पी०। (२३) अम्बिकाप्रसाद मिश्र बी० ६/३१, फागली, शिमला। (२४) सन्तोषकुमार मिश्र c/o अम्बिकाप्रसाद मिश्र, बी० ६/३१ फागली, शिमला। (२५) श्रीयुत बृजरमण सेठ, १३५ सिविल लाइन्स, बरेली। (२६) श्रीमती शान्ती रानी सेठ, १३५ सिविल लाइन्स, बरेली। (२७) दयानिधान जौहरी c/o डाक्टर परमात्माशरण पेन्शनर मोकाम, जक़ाती, बरेली। (२८) रुद्रेश्वरी कान्तदत्त c/o पोस्ट मास्टर बौंशी, पो० आ० बौंशी, भागलपुर। (२९) विष्णुनारायण मिश्र, सब रजिस्ट्रार, सफ़ीपुर उन्नाव। (३०) गोपीनाथ आर्य, गली लखेरान, बरेली। (३१) ललिताप्रसाद जायसवाल, पो० देसरी, मुजफ़्फ़रपुर। (३२) नारायणदास, नयापुरा स्कूल, कोटा राजपूताना। (३३) गिरधारीलाल c/o मोहनलाल ज्वालाप्रसाद एण्ड सन्स, लक्ष्मीगञ्ज, कासगञ्ज। (३४) महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, एच० एम० बी०, द्रुग सी० पी०। (३५) रमाकान्त शुक्ल, रमन एन्ड को०, सीतामढ़ी। (३६) श्रीमती देवी 'चतुर' जैन, नाथूराम डोंगरीय जैन, पाठशाला, बिजनौर, यू० पी०। (३७) विश्वम्भरनाथ गर्ग c/o नहनेराम श्यामलाल बाग़ मुजफ़्फ़र ख़ाँ, आगरा। (३८) मिसेज़ शीतलप्रसाद c/o बा० शीतलप्रसाद सक्सेना, पोस्टमास्टर, बाग़ मुजफ़्फ़र ख़ाँ, आगरा। (३९) जी० एल० श्रृंगी c/o राठौड़ ब्रदर्स, कोटा (राजपूताना)। (४०) सी० बी० ढाड़ा, c/o जे० पी० टी० मिडिल स्कूल, अफ़लैरा, रियासत कोठा (राजपूताना)।

(४१) रामनाथ टंडन c/o राजकुमार साहू, ४९ लिमिडी होस्टल, का० वि० विद्यालय, काशी। (४२) कुंजबिहारीलाल गर्ग, गिरधारीलाल दिलसुखराय, पो० नानपारा, बहराइच। (४३) प्रेमादेवी c/o डी० एस० गुप्त, ७६, पानदरीबा, प्रयाग। (४४) प्रेमशङ्कर, १८० बहादुरगंज, इलाहाबाद। (४५) श्री कृष्णचन्द्र, पी० एम० जी० आफ़िस लखनऊ। (४६) सुन्दरलाल, मेल प्यून, बिलासपुर, आर० एस०। (४७) मधुसूदन स्टूडेण्ट, इँगलिश मिडिल स्कूल, धर्मजयगढ़, स्टेट उदयपुर, सी० पी०। (४८) रामशङ्कर, भूसा टोली ६३/३, कानपुर। (४९) विश्वनाथ, कालिका भण्डार, लाटूश रोड, लखनऊ। (५०) हीरादेवी c/o पं० दुर्गाप्रसाद पाठक, पुरवा, पो० गढ़ा, जबलपुर। (५१) रामगोपाल c/o पं० दुर्गाप्रसाद पाठक, पुरवा, पो० गढ़ा, जबलपुर। (५२) आर० जे० लाल c/o बिहारीलाल, दफ़्तर इन्स्पेक्टर जनरल, आफ़ पुलिस, लखनऊ। (५३) कलावती, ब्रिज निकोलसन रोड, लाहौर। (५४) रामचन्द्र अग्रवाल, हेडमास्टर, डी० पी० मिडिल स्कूल, रत्तिया, हिसार। (५५) हरिश्चन्द्र अग्रवाल, c/o एम० अग्रवाल, हाउस नं० ५/३९/७२० साहूकारा, बरेली। (५६) घनश्यामप्रसाद मास्टर, चकराघाट, सागर, सी० पी०। (५७) नरसिंहप्रसाद भक्त c/o श्री चमारी साहू महावीरप्रसाद, तम्बाकू कारख़ाना, गया। (५८) मिस इनदरानीदेवी c/o जगन्नाथप्रसाद गुप्त पो० अजगैन, उन्नाव। (५९) सूर्यनारायण पाण्डेय, कालिम्पोंग जुबिली मिडिल स्कूल, कलिम्पोंग (बंगाल)। (६०) मालेम्पाटि धर्माराव, हिन्दी पंडित बी० एच० स्कूल, कोल्लूर, गुंटूर। (६१) गौरीशङ्कर c/o बाबू हीरालाल इन्स्पेक्टर जनरल आफ़ पुलिस, लखनऊ। (६२) नन्दरानी देवी c/o बा० सतगुरुसरन, दफ़्तर सुपरिंटेण्डेण्ट आफ़ पुलिस, बनारस। (६३) एस० जी० विजयलक्ष्मीदेवी c/o एस० जी० गोस्वामी 'विशारद' सर्वसमुद्रम, राजपालायम रामनाड़ि, दक्षिण भारत। (६४) शोभा देवी भटनागर c/o श्रीमती व्रजदेवी, गोपाल कुटी, ऋषिकेश, देहरादून। (६५) रामलखनसिंह, २ नवाब बदरुद्दीन स्ट्रीट, कलकत्ता। (६६) कुमारी सुशीला श्रीवास्तव, c/o बृजमोहनलाल श्रीवास्तव, सिटी प्रेस, मेस्टन रोड, कानपुर। (६७) अशर्फी देवी c/o बा० रामशङ्करलाल क्लर्क, गवर्नमेंट हाई स्कूल, जौनपुर।

तृतीय पुरस्कार ४०॥) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८१ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ।।) मिला।

(१) मदनकिशोर गोयल, सर्राफ़ धामावाल बाज़ार, देहरादून यू० पी०। (२) विश्वनाथ, पेरिस हाउस, पो० सीतामढ़ी, B.N.W.R., बिहार। (३) वासुदेव सादु ७वाँ क्लास, जी० एन०, एम० एच० ई० स्कूल, पो० कतरासगढ़, ज़िला मानभूम, ई० आई० आर। (४) मधुप त्रिपाठ्य, मन्दिर गजानन, सीसामऊ, शहर कानपुर। (५) महादेव-प्रसाद सिंघानियाँ, महादेवप्रसाद सिंघानियाँ, फर्रुख़ाबाद। (६) प्रेमप्रकाश अग्रवाल, माधवनिवास, सुन्दरबाग़, लखनऊ। (७) श्यामबिहारीलाल त्रिपाठी, उपरहटी वैद्यन टोला, रीवाँ स्टेट-रीवाँ, मध्य भारत। (८) सूर्यमुखी देवी, c/o मेसर्स फोर्ड मैकडानेल्ड, कम्पनी जालपादेवी रोड, बनारस सिटी। (९) गायत्रीदेवी मिश्र, c/o कृपादयाल मिश्र, माधुरी आफ़िस, लखनऊ। (१०) कुँ० महेशचन्द्र-सिंह, जुबिली कालेज होस्टल, लखनऊ। (११) कुमारी नीति अग्रवाल, ४, बैंक रोड, प्रयाग। (१२) राधाविनोद वाजपेयी, चौखंडी, कीटगंज, इलाहाबाद। (१३) जगदीश-प्रसाद सिन्हा, c/o मैनेजर रुड़की, इन्जीनियरिङ्ग कम्पनी, इलाहाबाद। (१४) जगदीशचन्द्र पाँडे, मार्फत रा० ब० लक्ष्मीदत्त पाँडे, कसून, अलमोड़ा। (१५) हरीकुमार, c/o रामलाल गंगवारी, वर्नाक्यूलर माडल स्कूल, बरेली। (१६) मिसेज़ रामलाल गंगावारी, वर्नाक्युलर माडल स्कूल, बरेली। (१७) हरदयाल पाठक, ख़ज़ाँची डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, खीर, लखीमपुर-खीरी। (१८) लक्ष्मीचंद गुप्त, ख़ज़ांची वीर अर्जुन, नया बाज़ार, देहली। (१९) कुमारी पी० चोपरा, बाग़ मुज़फ़्फ़र ख़ाँ, आगरा। (२०) गणेश बिहारी त्रिपाठी, c/o पं० गुरुदयाल जी त्रिपाठी, एडवोकेट राय-बरेली, (अवध)। (२१) विनोदकुमार श्रीवास्तव, c/o बृजनन्दनप्रसाद ११वाँ वर्ग, हजारीमल, हाई स्कूल रक्सौल, पो० रक्सौला (चम्पारन)। (२२) कुँवर जसवन्तसिंह c/o कुँवर शेरसिंह एम० एल-एल० बी० जज श्री गङ्गानगर, (राज बीकानेर)। (२३) पंचवटी भार्गव, द्वारा पं० चंद्रभान भार्गव, निहालगञ्ज, धौलपुर। (२४) प्रभातकुमार जोशी, c/o पं० चतुरादत्त जोशी, डिप्टी कलक्टर, मुरादाबाद। (२५) सुखवासीलाल दुबे, हेडमास्टर स्टेट स्कूल, रतननगर, (बीका-नेर-स्टेट)। (२६) श्रीमती जयालक्ष्मी याज्ञिक, c/o माधवलाल याज्ञिक, हाईस्कूल पो० आ०, फ़ीरोज़ाबाद, ज़िला आगरा। (२७) सरोजकुमारी, c/o बी० एल० अष्ठाना, पो० पडरौना, ज़िला गोरखपुर। (२८) सूर्यदत्त शर्मा, एच० ए० वी० हाईस्कूल, देववन्द, ज़िला सहारनपुर। (२९) चन्द्रकान्त शर्मा, c/o डा० पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, मदनमोहन फार्मेसी, धनकुटी, कानपुर। (३०) श्रीमती रामकुँअरिबाई अध्या-पिका, गवर्नमेंन्ट गर्ल्स स्कूल, लखीमपुर, ज़िला खीरी। (३१) मिसेज़ एम० बी० लाल c/o प्रोफ़ेसर एम० बी० लाल, ९ केशव बहादुरी रोड लखनऊ। (३२) निर्मला-कुमारी c/o ओंकारनाथ मेहरा अलवर गेट अजमेर। (३३) पण्डित लक्ष्मणप्रसाद दीक्षित मु० चौधरियाना जालौन यू० पी०। (३४) कुसुमकुमारी देवी c/o बाबू रामायणप्रसाद, एम० एल० ए० बागमऊ पाण्डेय आरा। (३५) लक्ष्मणदेव c/o लाला झब्बालाल सर्राफ़ बाज़ार धामावाला देहरादून। (३६) रोहिणीकुमार चौबे टीचर लारी स्कूल रायपुर सी० पी०। (३७) गोपालदास गर्ग जैनी ब्रादर्स कम्पनी बग़िया मनीराम, कानपुर। (३८) ज्ञानवती देवी छात्र गवर्नमेंट गर्ल्स स्कूल लखीमपुर कक्षा ३। (३९) राजकुमार साह ४९ लिमडी होस्टेल-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय काशी। (४०) महावीरप्रसाद फ़र्स्ट ग्रेड फायरमैन, लोको, ई० आई० आर० इलाहाबाद। (४१) सुशीला माथुर १ प्रयाग स्टेशन रोड इलाहाबाद। (४२) फ़तेहबहादुर सिंह c/o दी रुरकी इन्जीनियरिङ्ग वर्क्स इलाहाबाद। (४३) श्री नरेन्द्रचन्द्र पन्त c/o श्रीयुत पं० मोहन वल्लभ पन्त, प्रोफ़ेसर, किशोरीरमण कालेज, मथुरा। (४४) राजनारायण माथुर c/o बाबू कुंजबिहारीलाल हाई कोर्ट वकील शाजापुर मालवा। (४५) द्वारकाप्रसाद तिवारी हेडमास्टर मिडिल स्कूल कमासिन, पो० कमासिन, प्रान्त बाँदा। (४६) सुशीला छावड़ा लक्ष्मीविलास, उटाकमंड। (४७) तारादेवी c/o ई० बी० वाजपेयी पो० आ० चाइ-वासा ज़िला सिन्धभूम B. N. Ry.। (४८) मोतीलाल,

छत्रतारी भगत, सत्यनारायणराम, बलिया (यू० पी०)। (४६) एस० डी० त्रिवेदी एच० पी० टी० कालिज होस्टेल-नाशिक। (५०) मिसेज़ डी० बी० पीटर्स चर्च रोड धमतरी सी० पी०। (५१) गोविन्दप्रसाद पांडे सआदतगञ्ज फ़ैज़ाबाद। (५२) वसन्तकुमारी बृजनिकोलसन रोड, लाहौर। (५३) भूपालसिंह बृजनिकोलसन रोड, लाहौर। (५४) विश्वेश्वरप्रसादसिंह, हाउस आफ़ मोन्दू सोनार, ब्राह्मणपारा, रायपुर सी० पी०। (५५) मथुराप्रसाद c/o बाबूरामसिंह डिप्टी इन्सपेक्टर-स्कूल्स, अलीगढ़। (५६) सेठ जगन्नाथप्रसाद मु० अजगैन, पो० अजगैन, ज़िला उन्नाव, यू० पी०। (५७) मदन जी c/o बा० हीरालाल दफ़्तर इन्सपेक्टर जेनरल आफ़ पुलिस, लखनऊ। (५८) चन्द्रकुमारीदेवी c/o बा० सतगुरसरन, दफ़्तर सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ़ पुलिस, बनारस। (५९) पंडित हरदत्त, नायब तहसीलदार, नगर, राज भरतपुर। (६०) पुत्तूसिंह, गवर्नमेंट नार्मल स्कूल, आगरा। (६१) जगन्नाथप्रसाद सिंह मुख़्तार, पो० सीतामढ़ी कोर्ट ज़िला० मुजफ़्फ़रपुर (बिहार)। (६२) रानीसाहेब शिशोदेवी जी पो० बड़ी सादड़ी, (मेवाड़)। (६३) आर० एन० चतुर्वेदी, मेरिसरोड, अलीगढ़। (६४) मिसेज़ आर० एन० चतुर्वेदी c/o आर० एन० चतुर्वेदी मेरिसरोड, अलीगढ़। (६५) हरवल्लभ झा, जोन्सगंज, अजमेर। (६६) मदनमोहन गुगलानी c/o बा० कर्मचन्द्र जी गुगलानी वकील, बाज़ार गण्ढावाला, अमृतसर, (पंजाब)। (६७) बलवीरप्रसाद, गवर्नमेंट इन्टर कालेज, XI A इलाहाबाद। (६८) व्रजेन्द्रसिंह, हिन्दी-सेवा-सदन, धौलपुर, (राजपूताना)। (६९) पूरन c/o हिन्दी-सेवा-सदन, धौलपुर, (राजपूताना)। (७०) कन्हैयालाल वर्मन c/o मोहनलाल श्यामलाल, नन्दनसाहु की गली, बनारस सिटी। (७१) शिवदयाल साहु, पो० आ० कमतौल, दरभंगा, (बिहार)। (७२) बालेश्वरप्रसाद जायसवाल, मुकाम-पोष्ट देसरी, मुजफ़्फ़रपुर, (बिहार)। (७३) जगतारिणीदेवी c/o बालेश्वरप्रसाद जायसवाल, मु० पो० देसरी, मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)। (७४) एस० ए० मुल्तानी, एम्पायर स्टोर्स 60/c चौरंगी रोड, कलकत्ता। (७५) विद्याभूषण c/o पं० सुदर्शन जी, २ चक्रबेरिया रोड, (साउथ), भवानीपुर, कलकत्ता (बंगाल)। (७६) कुमारी माधुरी श्रीवास्तव, c/o बृजमोहनलाल श्रीवास्तव, सिटी प्रेस, मेस्टनरोड, कानपुर। (७७) मिस्टर के० एल० भाटिया c/o एस० एल० भाटिया, स्कायर यू० पी० पुलिस, जोखनबाग़, झाँसी। (७८) शील व्रह्मय्या, इल्लोर (एम० एस० एम० रेलवे)। (७९) हरीकृष्ण शर्मा c/o ओश्मप्रकाश शर्मा, मुकाम खुरजा, कक्षा १२ एन० आर० ई० सी० कालेज, ज़िला बुलन्दशहर। (८०) ठाकुर पूर्णसिंह सजवान्, बुकिङ्ग क्लर्क रेलवे स्टेशन, एन० डब्लू० आर०, शिमला। (८१) शारदामनी c/o आर० सी० अग्रवाल हेडमास्टर रलिया (हिसार)।

उपर्युक्त सब पुरस्कार ३० सितम्बर को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको ॥) का पुरस्कार मिला है उन्हें ॥) का प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिया जायगा, जो नियम २ के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ एक पूर्ति भेज सकेंगे।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली
CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियां पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २६, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ सितम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २४ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

बायें से दाहिने

१–कांग्रेस का सबसे बड़ा अधिकारी ।
४–विधवा का मृत पति के साथ जल मरना ।
८–बच्चों का किसी वस्तु के लिए......जितना अच्छा लगता है बूढ़ों का उतना ही हास्यप्रद ।
१०–एक प्रकार का चलता गाना ।
११–एक प्रकार का छन्द ।
१३–यदि यह न होता तो मनुष्य प्रकृति पर शासन कैसे करता ।
१४–खेल-तमाशा करके निर्वाह करनेवाला । १५–युद्ध ।
१६–मुमकिन नहीं कि जहाँ शराब बने वहाँ यह न हो ।
१७–यदि यह नहीं तो कुछ नहीं ।
१८–रसोईघर में यह ज़रूर मिलेगी ।
२०–यहीं वह नाग रहता था जिसके फन पर श्रीकृष्ण जी ने नृत्य किया था ।
२१–आधुनिक सिनेमा में इसके दृश्य प्रायः दिखाये जाते हैं ।
२२–हल्दी से रँगी धोती जो कहीं कहीं वर या वधू को पहनाई जाती है ।
२४–ख्याल अर्थात् चंग बजाकर गाया जानेवाला गीत ।
२५–कुछ ऊँचा किनारा ।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग २६ की पूर्तियों की नकल यहाँ पर कर लीजिए । और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए ।

१ रा	ष्ट्र	२ प	३ ति	■	४ अ	नु	५	६	७ न
ह	■	८ ल	ल	९ कु	ना	■	१० दा		रा
११ गी	१२ ति	क्रा	■	१३ म	ा	न	■	१४ न	
१५ र		■	१६	ला	र	■	१७ ा	क	■
■	१८ प	१९ ी	ली	■	■	२० का	ली	द	
२१	ह	र	■	२२ पि	२३	री	■	न	■
■	२४ ा	व	नी	■	२५ क		२६ र	■	२७ द
२८ अं	■	र्ती	■	२९ गो		र	ग	णे	
३०	चा	■	३१ खे		र	■		■	
	■	३२ अ		र	■	■	■	३३	ख

१ रा	ष्ट्र	२ प	३ ति	■	४ अ	नु	५	६	७ न
	■	८ ल		९	ना	■	१० दा		रा
११ गी	१२ ति	ा	■	१३ म	ा	न	■	१४ न	
१५ र		■	१६	ला	र	■	१७ ा	क	■
■	१८ प	१९ ी	ली	■	■	२० का	ली	द	
२१	ह	र	■	२२ पि	२३	री	■	न	■
■	२४ ा	व	नी	■	२५ क		२६ र	■	२७ द
२८ अं	■	र्ती	■	२९ गो		र	ग	णे	
३०	चा	■	३१ खे		र	■		■	
	■	३२ अ		र	■	■	■	३३	ख

२९–बेवकूफ़ ही नहीं बदसूरत भी । ३०–ईख ।
३१–आसमान में चलनेवाला ।
३२–आज-कल राह चलते आदमी भी थोड़ा बहुत यह रखते हैं ।
३३–फ़ैशनेबुल स्त्रियाँ इसे अपने सौन्दर्य के अनुकूल बनाने का बराबर प्रयत्न करती रहती हैं ।

ऊपर से नीचे

१–यह एक ही स्थान पर सदैव नहीं रहता । २–पलँग ।
३–इससे तेल निकलता है ।
४–इसकी ओर बढ़ने पर कभी कभी प्राणों पर बन आती है । ५–भीम इसी से लड़ते थे !
६–महादेव जी । ७–राजा ।
९–गृहत्यागी भी इसकी उपेक्षा नहीं करते !
१२–तीन पार्श्ववाला ।
१६–इसका स्वभाव प्रायः मृदुल होता है ।
१७–पान खानेवाले इसकी अक्सर तलाश करते हैं ।
१९–किनारे पर बसनेवाला ! २०–शिल्पकार ।
२३–प्रसिद्ध मुग़लबादशाह ।
२६–अतिशय......करै जो कोई । अनल प्रगट चंदन तें होई । २७–रावण ।
२८–घर-गृहस्थी की शोभा बहुत कुछ इसी पर निर्भर करती है । २९–गौओं के चरने का स्थान ।
३१–इसकी क़द्र किसान ही कर सकता है !

वर्ग नं० २५ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २५ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है ।

१ जा	म	२ वं	३ त	■	४ न	५ र	पि	६ शा	७ च
व	■	८ श	क	■	■	स	■	९ क	म
१० न	११ ली	■	१२ ला	१३ ल	१४ चं	द	न	■	क
■	ला	■	■	१५ क	दा	■	■	१६ बि	दा
१७ भ	व	■	१८ गु	ड़	■	१९ उ	२० न	हा	र
२१ र	ती	■	२२ म	हा	दं	ड	धा	री	■
म	■	२३ पि	टा	रा	■	२४ रा	स	ला	ली
■	२५ गा	य	■	■	२६ भु	ज	मू	ल	■
२७ छा	■	२८ रा	२९ ज	■	जा	■	■	■	३० ख
ज	■	३१ ना	मा	व	ली	■	३२ ब	ह	ल

वर्ग नं० २५ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २५ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। १, २ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म २० सितम्बर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २६

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

वर्ग नं० २६ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

वर्ग नं० २६ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० २६ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ २९४ पर देखिए।

प्रतियोगियों के पत्र और शंका-समाधान

अत्यन्त ख़ुशी

श्रीमान् वर्ग-सम्पादक जी वन्दे !

मैंने जब इस महीने की सरस्वती में अपना नाम देखा और वह भी "प्रथम पुरस्कार" में तो मुझको अत्यन्त ख़ुशी हुई। मैं अबकी का भी कर रहा हूँ आशा है सफल होऊँगा। मैं अपना चित्र इस पत्र के साथ भेजता



श्रीयुत प्रभातचन्द्र मिश्र

हूँ आशा है आप छाप देंगे और मुझको कृतज्ञ करेंगे। मुझको वर्गों के बाबत कुछ शंका है। ७ कोष्ठ में ऊपर से नीचे "तिय" नहीं है और "तिल" क्यों है ? आशा है आप इस शङ्का का उत्तर सितम्बर मास की सरस्वती में छापेंगे। अनेक धन्यवाद !

आपका
प्रभातचन्द्र मिश्र
c/o पी० सी० मिश्रा,
सिटी मजिस्ट्रेट,
कानपुर।

तिय नहीं तिल क्यों ?

वर्ग नम्बर २४ में ७ नम्बर पर ऊपर से नीचे दो शब्द बनते हैं। तिय और तिल। ऊपर के पत्र में वर्ग-निर्माता से यह प्रश्न किया गया है कि तिय क्यों नहीं है। तिल क्यों है ? प्रश्नकर्ता ने स्वयं भी अपनी पूर्ति में तिल शब्द भरा है। इसी से उनकी पूर्ति अशुद्धिरहित आई है। तथापि शंका का समाधान आवश्यक है।

अंक परिचय में जो संकेत दिया गया है उससे कोई भी आदमी जो थोड़ा भी समझदारी का प्रयोग करे इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि ठीक शब्द तिल ही है। ज़रा संकेत पर एक बार फिर ग़ौर कीजिए—"पुराने कवियों ने इसका अच्छा वर्णन किया है।" यदि हम "तिय" शब्द पर विचार करते हैं तो ठीक नहीं उतरता। क्योंकि इसका वर्णन तो आज-कल के नये कवियों ने भी अच्छा किया है जैसे श्रीसुमित्रानन्दन पंत अपनी अनङ्ग शीर्षक कविता में लिखते हैं—

बजा दीर्घ साँसों की भेरी।
सजा सटे-कुच कलशाकार,
पलक पाँवड़े बिछा खड़े कर
रोओं में पुलकित प्रतिहार।
बाल युवतियाँ तान कान तक
चल चितवन के बन्दनवार,
देव ! तुम्हारा स्वागत करतीं,
खोल सतत-उत्सुक दृगद्वार।

परन्तु तिल का वर्णन कदाचित् ही किसी नये कवि ने किया हो। इसके विपरीत पुराने कवियों ने आम तौर पर तिल का वर्णन किया है। एक उदाहरण लीजिए :—

चन्द्रमुखी के चिबुक पै तिल यों लसत ललाम।
मानों चन्द्र बिछाय के बैठे शालगराम ॥

कवि मुबारक ने तो तिलशतक ही लिख डाला है। इसलिए संकेत पर दृष्टि रखते हुए चतुर प्रतियोगी यहाँ सिवाय "तिल" के और शब्द की बात ही नहीं सोच सकता।

'वर्ग-निर्माता'

आपनी यादगश्त के लिए वर्ग २६ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

...र उधर की

रहा है। संगठित ...नाम जाप ...समारोहों ... वर्तमान ...अलग ही ...के सामने ... मण्डली ..., अपने ...ली में जो ...कहती हैं। ...ने द्वार पर ...एक स्त्री ने ...ई, मैं गोरी ... समाचार ... पिकेटिङ्ग ...न हो, पर ... नहीं है। ...भण्डाफोड़

×

...दिया है ...ङ्गीत का ...कीर्तनकारों ...या क़स्बा ...ये कीर्तन- ... लें। इस ...दक-द्रव्य- ... करेंगे। ...ों के सिर्फ़ ... यदि ये ... में धर्म,

अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की दात्री बन जायँ और फिर कोई उनकी ओर उँगली भी न उठा सके।

× × × ×

पिछली फ़रवरी में लखनऊ के श्री बालमुकुन्द वाजपेयी के पास दौरा अदालत में हाज़िर होने के लिए एक सम्मन भेजा गया। वह सिर्फ़ उर्दू में लिखा था और वाजपेयी जी उर्दू नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने सम्मन को लेने से इनकार कर दिया। इस कारण ज़िला-जज की अदालत में उन पर मुक़दमा चलाया गया, परन्तु जब जज को बताया गया कि सरकारी नियम के अनुसार सम्मन का हिन्दीवाला अंश भी भरा जाना चाहिए था तब मामला उनके ऊपर से उठा लिया गया। अब सब ज़िला-मजिस्ट्रेटों को हिदायत की जा रही है कि आइन्दा सम्मन का उर्दूवाला अंश उर्दू में और नागरीवाला अंश नागरी में भरा जाय। जिस कार्य्य में काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा अपने लगभग ३० वर्ष के प्रयत्न में नहीं सफल हुई उसे लखनऊ के वाजपेयी जी ने थोड़ा सा साहस का परिचय देकर एक दिन में सफल बना दिया। १८ अप्रैल १९०० के सरकारी मन्तव्य नम्बर ५८५-३-३४३-सी६८ के अनुसार अदालतों के सभी सम्मन उर्दू और नागरी अक्षरों में जारी होने चाहिए। श्री चन्द्रभान गुप्त के असेम्बली में प्रश्न करने पर सरकार ने इस बात को स्वीकार भी किया। ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि सम्मन हिन्दी में भी न लिखे जायँ? ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि हिन्दी-प्रेमी, ख़ास कर नागरी-प्रचारिणी सभायें समय समय पर उस साहस का परिचय देते रहें जिसका लखनऊ के वाजपेयी जी ने दिया है।

× × × ×

सियाल्दा के आनरेरी मजिस्ट्रेट की अदालत में नीलिमा सेन नामक एक त्रस्ता नारी ने अपने पति पर गुज़ारे का दावा करते समय जो रोमाञ्चकारी बयान दिया है वह मूकभाव से कष्ट सहन करनेवाली अगणित भारतीय युव-

प्रतियोगियों के पत्र और शं

कर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ ए।

स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में लय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और बीच में डाली जा सकती हैं।

वर्ग नम्बर २६ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर ख दिया गया है, ता० २७ सितम्बर सन् १९३८ को म्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं होकर उसे देख सकते हैं।

अत्यन्त ख़ुशी

श्रीमान् वर्ग-सम्पादक जी वन्दे !

मैंने जब इस महीने की सरस्वती में अपना नाम देखा और वह भी "प्रथम पुरस्कार" में तो मुझको अत्यन्त ख़ुशी हुई। मैं अबकी का भी कर रहा हूँ आशा है सफल होऊँगा। मैं अपना चित्र इस पत्र के साथ भेजता



श्रीयुत प्रभातचन्द्र मिश्र

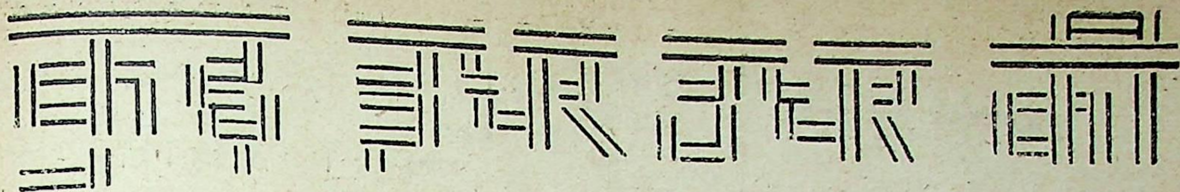
हूँ आशा है आप छाप देंगे और मुझको कृतज्ञ करेंगे। मुझको वर्गों के बाबत कुछ शंका है। ७ कोष्ठ में ऊपर से नीचे "तिय" नहीं है और "तिल" क्यों है? आशा है आप इस शङ्का का उत्तर सितम्बर मास की सरस्वती में छापेंगे। अनेक धन्यवाद !

आपका
प्रभातचन्द्र मिश्र
c/o पी० सी० मिश्रा,
सिटी मजिस्ट्रेट,
कानपुर।

वर्ग न
शब्द बनते
निर्माता से
है। तिल क
तिल शब्द
आई है। त
अंक परि
आदमी जो
पर पहुँचेगा
एक बार फि
अच्छा वर्णन
विचार करते
वर्णन तो आ
है जैसे श्रीसु
में लिखते हैं-



परन्तु तिल
किया हो। इ
तिल का वर्णन
चन्द्रमुखी
मानों चन्द्र
कवि मुबा
इसलिए संकेत
सिवाय "तिल"



आज-कल कीर्तन-समारोहों का बड़ा ज़ोर बढ़ रहा है। प्रत्येक बड़े शहर में कीर्तनकारियों की मण्डलियाँ संगठित हो गई हैं। संगीत और नृत्य के साथ हरिनाम जाप की प्रथा पहले भी इस देश में थी। ऐसे समारोहों में स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं। परन्तु वर्तमान समय में कुछ लोग स्त्रियों को कीर्तनों से अलग ही रखना चाहते हैं। कराची में तो ओ३म मण्डली के सामने बाक़ायदा पिकेटिङ्ग जारी कर दी गई है। ओ३म मण्डली के संस्थापक जो 'दादा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, अपने को कृष्ण का अवतार कहते हैं और उस मण्डली में जो स्त्रियाँ शरीक होती हैं वे अपने को गोपियाँ कहती हैं। गत १५ अगस्त को जब क़रीब २० पिकेटरों ने द्वार पर खड़े होकर जानेवालों को रोकना चाहा तब एक स्त्री ने कहा—"मुझे दादा के पास जाने दो। वे कृष्ण हैं, मैं गोपी हूँ। मैं उनसे अलग नहीं हो सकती।" बाद का समाचार है कि पिकेटिङ्ग विफल हो रही है। सम्भव है, पिकेटिङ्ग करनेवालों का दादा के कृष्णत्व पर विश्वास न हो, पर सुधार का जो तरीक़ा उन्होंने सोचा है वह ठीक नहीं है। यदि 'दादा' में कोई पाखंड है तो उन्हें उसका भण्डाफोड़ करना चाहिए।

× × × ×

संयुक्त-प्रान्त में जिन नशेबाज़ों ने नशा छोड़ दिया है उनके मनबहलाव के लिए सरकार की ओर से सङ्गीत का प्रबन्ध किया जायगा। इसी से संयुक्त-प्रान्त में भी कीर्तनकारों का ज़ोर बढ़ रहा है। कदाचित् ही कोई शहर या क़स्बा हो जहाँ कीर्तन न होता हो। क्या अच्छा हो कि ये कीर्तन-मण्डलीवाले नशेबाज़ों को अपना सदस्य बना लें। इस प्रकार जहाँ वे अपनी संख्या बढ़ावेंगे, वहाँ मादक-द्रव्य-सेवन-निषेध में सरकार की बहुत बड़ी सहायता करेंगे। कहा जाता है कि बहुत-से लोग कीर्तन-मण्डलियों के सिर्फ़ इसी लिए विरुद्ध हैं कि वे राजनैतिक हैं। पर यदि ये मंडलियाँ इस ओर ध्यान देने लगें तो वे वास्तव में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की दात्री बन जायँ और फिर कोई उनकी ओर उँगली भी न उठा सके।

× × × ×

पिछली फ़रवरी में लखनऊ के श्री बालमुकुन्द वाजपेयी के पास दौरा अदालत में हाज़िर होने के लिए एक सम्मन भेजा गया। वह सिर्फ़ उर्दू में लिखा था और वाजपेयी जी उर्दू नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने सम्मन को लेने से इनकार कर दिया। इस कारण ज़िला-जज की अदालत में उन पर मुक़दमा चलाया गया, परन्तु जब जज को बताया गया कि सरकारी नियम के अनुसार सम्मन का हिन्दीवाला अंश भी भरा जाना चाहिए था तब मामला उनके ऊपर से उठा लिया गया। अब सब ज़िला-मजिस्ट्रेटों को हिदायत की जा रही है कि आइन्दा सम्मन का उर्दू-वाला अंश उर्दू में और नागरीवाला अंश नागरी में भरा जाय। जिस कार्य्य में काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा अपने लगभग ३० वर्ष के प्रयत्न में नहीं सफल हुई उसे लखनऊ के वाजपेयी जी ने थोड़ा सा साहस का परिचय देकर एक दिन में सफल बना दिया। १८ अप्रैल १९०० के सरकारी मन्तव्य नम्बर ५८५-३-३४३-सी६८ के अनुसार अदालतों के सभी सम्मन उर्दू और नागरी अक्षरों में जारी होने चाहिए। श्री चन्द्रभान गुप्त के असेम्बली में प्रश्न करने पर सरकार ने इस बात को स्वीकार भी किया। ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि सम्मन हिन्दी में भी न लिखे जायँ? ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि हिन्दी-प्रेमी, ख़ास कर नागरी-प्रचारिणी सभायें समय समय पर उस साहस का परिचय देते रहें जिसका लखनऊ के वाजपेयी जी ने दिया है।

× × × ×

सियाल्दा के आनरेरी मजिस्ट्रेट की अदालत में नीलिमा सेन नामक एक त्रस्ता नारी ने अपने पति पर गुज़ारे का दावा करते समय जो रोमाञ्चकारी बयान दिया है वह मूकभाव से कष्ट सहन करनेवाली अगणित भारतीय युव-

तियों की कष्ट-कथा का एक नमूना है। उसके बयान का एक अंश इस प्रकार है—

मुझे कठिन से कठिन यंत्रणायें दी गईं। जाड़े में मैं रात के समय बाहर खुले में निकाल दी जाती थी और रात भर ठिठुरती हुई खड़ी रहती थी। खाना मुझे अक्सर नहीं दिया जाता था और मुझे भूखे पेट रह जाना पड़ता था। फिर भी मैं दो साल तक अपने पति के साथ रही।

एक बार मैं रस्सी में बाँध दी गई। इसके बाद मेरे पति ने मुझे जी भर कर दाँतों से काटा। पैर से ठोकरें मारीं और जी नहीं भरा तब घूँसों से भी खूब मारा। इसके बाद उनकी मा भी आ गई और मा बेटे ने मिलकर मेरे बाल पकड़ कर मुझे घसीटा। मेरे ससुर भी खड़े होकर यह सब दृश्य देख रहे थे और अपने पुत्र को मुझे पीटने के लिए और प्रोत्साहन दे रहे थे।

मेरे पिता ने मुझे ९००) के आभूषण तथा कपड़े देकर अपने यहाँ से बिदा किया था। मेरे ये सारे आभूषण तथा कपड़े मेरे पति ने मुझसे छीन लिये।

ऐसी परिस्थितियों से लाचार होकर उस स्त्री को पति का घर छोड़कर पिता के घर आना पड़ा। हिन्दू-स्त्री को जब तक तलाक़ का अधिकार नहीं मिल जाता या जब तक दहेज़ आदि की प्रथा क़ानूनन वर्जित नहीं कर दी जाती तब तक ऐसी घटनाएँ होती ही रहेंगी।

× × × ×

शारदा-क़ानून में थोड़ा-सा सुधार हो जाने से अब यह आशा की जा सकती है कि बाल-विवाहों की रोक-थाम की जा सकेगी। इस सम्बन्ध में काशी में पिछले दिनों एक फ़ैसला हुआ है जिसका ख़ुलासा यह है—

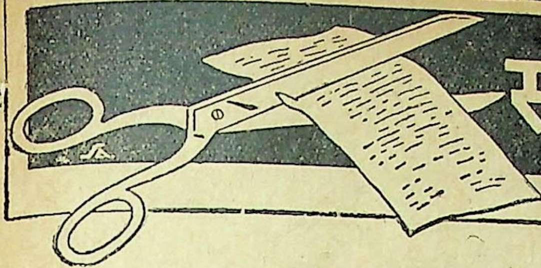
काशी की बाल-विवाह-निषेध-समिति ने यहाँ के सिटी-मजिस्ट्रेट श्री चाँदमल आई० सी० एस० की इजलास में यह मुक़दमा चलाया था कि पिछली लगन के दिनों में चेतगंज हल्क़े के श्री सुक्खू तेली ने अपने १८ वर्ष से कम उम्र के लड़के की शादी उसी हल्क़े के श्री कन्हैयालाल तेली की १४ वर्ष से कम उम्र की लड़की से की है। इस विवाह में कुँवर महाराज ने पुरोहित का कार्य किया है।

मजिस्ट्रेट ने लड़के और लड़की के पिता तथा पुरोहित को अदालत में तलब किया। दोनों पक्षों की बातें सुनकर मजिस्ट्रेट ने उन्हें दो दो सप्ताह की क़ैद और ७५), ७५) रु० जुर्माने की सज़ा दी। इस मामले में हमारी सहानुभूति सबसे अधिक पुरोहित जी के साथ है। इतना तो बेचारों को विवाह कराने का पारिश्रमिक भी न मिला होगा। ऐसे घाटे के काम में आइन्दा वे कदाचित् ही हाथ लगावें। बाल-विवाह-सम्बन्धी मामलों में यदि पुरोहित लोग इसी प्रकार फँसते रहे तो इसमें सन्देह नहीं कि सारदा एक्ट का उद्देश्य सफल हो जायगा।



थका हुआ पति—प्रियतमे! इस बात से अपने मन को परेशान मत करो कि घर में चोर घुस आयेंगे तो क्या होगा? घर में उन्हें सिवाय धूल के और क्या मिलेगा?

(एक विलायती पत्र से)



सामयिक साहित्य

कांग्रेस की वर्तमान परिस्थिति

मध्य-प्रान्त में मंत्रिमंडल का जो नया संगठन अभी हाल में हुआ है उसके फलस्वरूप कांग्रेस की कार्य-समिति तथा पार्लियामेंटरी बोर्ड पर बड़े तीव्र आक्षेप किये गये हैं। उन आक्षेपों का 'हरिजन' में एक लेख लिखकर महात्मा गान्धी ने कांग्रेस की कार्यसमिति के कार्य का बड़े सुन्दर ढंग से औचित्य सिद्ध किया है और इस सिलसिले में कांग्रेस की वर्तमान परिस्थिति का भी खुलासा कर दिया है। उक्त महत्त्वपूर्ण लेख का यह पिछला भाग विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है, जो इस प्रकार है—

अब हम ज़रा कांग्रेस के कार्य को समझ लें। आंतरिक विकास और शासन के लिए वह संसार की किसी भी लोक-तंत्रात्मक संस्था से अच्छी संस्था है। लेकिन इस लोक-तंत्रात्मक संस्था की स्थापना संसार की वर्तमान सबसे बड़ी साम्राज्यवादी सत्ता से लड़ने के लिए हुई है। इसलिए इस बाहरी काम के लिए उसे बतौर एक सेना के समझा जाना चाहिए। इस रूप में उसका लोकतन्त्रीपन चला जाता है। केन्द्रीय सत्ता को अपने अंतर्गत काम करने वाली विभिन्न इकाइयों पर अनुशासन लगाने और उसका पालन करने के लिए पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। प्रांतीय संस्थायें और प्रांतीय पार्लियामेंटरी बोर्ड केन्द्रीय सत्ता के अधीन हैं।

यह कहा गया है कि मेरा सिद्धान्त उस समय के लिए तो ठीक तरह होता है, जब कि सविनय अवज्ञा के रूप में सक्रिय युद्ध जारी हो; लेकिन उसके स्थगित होने की हालत में वह उपयुक्त नहीं हो सकता। मगर सविनय अवज्ञा अथवा सत्याग्रह के स्थगित होने का अर्थ युद्ध का स्थगित होना नहीं है। युद्ध तो तभी बन्द हो सकता है, जब कि भारत के पास अपना बनाया हुआ शासन-विधान हो। तब तक कांग्रेस को एक सेना के रूप में रहना ही होगा। लोकतन्त्री ब्रिटेन ने भारत में ऐसी कौशलपूर्ण पद्धति प्रचलित की है जिसे आप जब उसके नंगे रूप में देखेंगे तब मालूम होगा कि वह एक सर्वथा सुसंगठित और कारगर फ़ौजी नियन्त्रण है। वर्तमान भारत-विधान के अन्तर्गत भी वह इससे कम नहीं है। जहाँ तक वास्तविक नियन्त्रण का सवाल है, मन्त्री लोग महज़ गुड़ियाँ हैं। कलक्टर और पुलिसवाले जो आज उन्हें 'जी हुज़ूर' कहते हैं, अपने असली मालिक गवर्नर के ज़रा से आदेशमात्र पर मंत्रियों को अलग कर सकते हैं, गिरफ़्तार कर सकते हैं और जेल में ठूँस सकते हैं। यही कारण है कि मैंने यह कहा है कि कांग्रेस ने विधान बनानेवालों की धारणा के अनुसार उस पर अमल करने के लिए नहीं, बल्कि उसके बजाय स्वयं भारत-द्वारा निर्मित हितकारी विधान के स्थान लेने का दिन निकट लाने के उद्देश्य से उसका प्रयोग करने के लिए पद ग्रहण किया है।

अतः कांग्रेस को एक युद्धयंत्र के समान नियन्त्रण का केन्द्रीकरण करना और प्रत्येक विभाग तथा प्रत्येक कांग्रेसी का चाहे वह कितने ही बड़े पद पर क्यों न हो, पथप्रदर्शन करना और उससे बिना ननु नच किये आज्ञा-पालन की अपेक्षा रखना ज़रूरी है।

टीकाकार कहते हैं कि यह तो सीधा-सादा 'फ़ासिज़्म' है। पर वे यह भूल जाते हैं कि फ़ासिज़्म तो नंगी तलवार है। उसके नीचे तो डाक्टर खरे का सिर धड़ से अलग हो जाना चाहिए। कांग्रेस तो फ़ासिज़्म-विरोधी संस्था है, क्योंकि वह शुद्ध और निष्कलंक अहिंसा पर स्थित है। उसके सब आदेश नैतिक हैं। उसे अस्त्र-शस्त्र-ढाल-कवच से सुसज्जित काली कुर्तीवालों से अधिकार नहीं मिले हैं। कांग्रेस-राज्य में डाक्टर खरे नागपुर के वीर रह सकते हैं और विद्यार्थी तथा नागपुर (अथवा अन्य स्थानों) के नागरिक मेरी या कार्य-समिति की निंदा कर सकते हैं, और जब तक वे अहिंसात्मक रहेंगे उनका कोई एक बाल भी बाँका न कर सकेगा। यह कांग्रेस का गौरव और उसकी शक्ति है, उसकी कमज़ोरी नहीं। उसे तो अपनी अहिंसा-

त्मक प्रवृत्ति से ही अधिकार मिला हुआ है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, सारे संसार में यही एक प्रमुख विशुद्ध अहिंसात्मक राजनैतिक संगठन है। और कांग्रेस को इस बात का गर्व रहना चाहिए कि वह अपने अनुयायियों और डाक्टर खरे जैसे ग़लती करनेवाले वीरों से, जब तक वे उसमें रहना पसंद करें, स्वेच्छापूर्वक और हृदय से अपनी आज्ञायें मनवाती है।

भारत में हवाई शिक्षण

संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति जोखिम-पूर्ण है। सभी राष्ट्र अपनी अपनी रक्षा करने की चिन्ता में हैं। भारत के लोकनेता भी इस ओर से उदासीन नहीं हैं। यहाँ भी सैनिक शिक्षा की ओर राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आकृष्ट हुआ है। पण्डित कृष्णकान्त मालवीय एम० एल० ए० ने तो वायुयान-सेना तैयार करने के लिए अपनी एक योजना तक बना ली है। इसी सम्बन्ध में उन्होंने 'हिन्दू' में एक रोचक लेख लिखा, जिसका संकलित अंश यह है—

इस समय हमारे सामने दो भारी प्रश्न हैं। एक विश्वव्यापी युद्ध के समय जिसका होना अवश्यम्भावी है, हम क्या करेंगे और यदि भारत पर हमला हुआ तो हम क्या करेंगे? क्या हम देश की रक्षा के लिए अपने को तैयार करने के लिए तत्पर हैं?

हमारे बहुत-से मित्र कहेंगे कि युद्ध का बजट वाइसराय के अधीन होने के कारण वे इस विषय में कुछ नहीं कर सकते। परन्तु मैं कहूँगा कि आज सात प्रांतों में कांग्रेस मन्त्रि-मंडल यह कार्य अपने हाथ में ले सकता है। यूनिवर्सिटियों-द्वारा ही वे लाखों नवयुवकों को इस प्रकार की शिक्षा दे सकते हैं।

हर्ष है कि माननीय पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त ने आत्मरक्षा के लिए ५०,००० रुपये बजट में रक्खे हैं। मैं सिफ़ारिश करूँगा कि यह धन दो-एक केन्द्रीय स्थानों पर ही चार-पाँच हज़ार युवकों को ट्रेन करने में लगाया जाय और इसके लिए पूरक ग्रांट दी जाय। हमें याद रखना चाहिए कि पाश्चात्य देशों में १४-१५ वर्ष के बच्चे 'ग्लाइडिंग' (बिना मशीन के जहाज़ों-द्वारा आकाश में उड़ना) सीखते हैं।

हमारे नवयुवक हवा और पानी में लड़ना सीखें। समुद्र के लिए तो इस समय मैं कोई योजना नहीं बता सकता, परन्तु हवा में उड़ना सीखने की योजना मेरे पास है। आशा है कि देश मेरा प्रस्ताव स्वीकार करके शीघ्र 'ग्लाइडिंग' (उड़न-खटोले) की योजना को कार्यरूप में परिणत कर देगा।

ग्लाइडर सस्ता होता है और उतरते समय १०-१५ मील की ही रफ़्तार होने के कारण इससे उतरने में भय भी नहीं रहता। अतः वायुयान से यह कहीं ज़्यादा सुरक्षित होता है। जर्मनी, फ़्रांस, इटली में तो सैकड़ों क्लब हैं। अकेले जर्मनी में ही ऐसे ३०० क्लब हैं। योरप में लड़के-लड़कियाँ सब ग्लाइडिंग सीखते हैं। यह ग़रीबों का हवाई जहाज़ है। योरप में एक साधारण उड़न-खटोला (ग्लाइडर) २० पौंड (३०० रु०) और एक बढ़िया १०० पौंड (१५०० रु०) में आ जाता है।

रूस ने तो इसे अपनी पंचवर्षीय योजना का एक अंग बनाया था और ३०,००० किसान उड़ाके तैयार किये। और २०,००० किसान अभी इसकी शिक्षा पा रहे हैं।

एक अच्छा उड़न-खटोला (ग्लाइडर) आकाश में २४ घंटे तक ठहर सकता है, ९,००० फ़ुट तक ऊँचा जा सकता है और एक उड़ान में ३०० मील तक की यात्रा कर सकता है।

ब्रिटेन के हवाई मन्त्रि-मंडल के प्रतिनिधि लार्ड सेम्पिल जब सन् १९३४ में भारत आये थे तब उन्होंने भारत के युवकों को ग्लाइडिंग सिखाने और इसे विश्व-विद्यालयों में जारी करने पर ज़ोर दिया था। अब मैं कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों और भारतीय विश्व-विद्यालयों से प्रार्थना करूँगा कि वे आगे बढ़ें और नवयुवकों को इसकी शिक्षा दें।

भारत में 'ग्लाइडर' बनाने का काम घरेलू उद्योग-धन्धों के रूप से ख़ूब फल-फूल सकता है। एक यन्त्रालय भी ५,००० रुपया की लागत में होगा। प्रत्येक प्रांत के प्रत्येक ज़िले में एक ऐसा यन्त्रालय स्थापित किया जा सकता है और ग्लाइडर बनाये जा सकते हैं।

वास्तव में सारी योजना और सारा काम बड़ा सरल है। परन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इसी से हमारा हवाई बेड़ा नहीं तैयार हो जायगा। हमें तो देश में

नवयुवकों को साहस और जोखिम-पूर्ण कार्यों में अग्रसर करने के साथ ही साथ आत्म-रक्षा के लिए अपनी फ़ौज तैयार करनी होगी।

लार्ड विलिंग्डन को उत्तर

१६ जुलाई को लन्दन की रायल एशियायटिक सोसाइटी का वार्षिक भोजोत्सव हुआ था। उस अवसर पर भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड विलिंग्डन ने एक व्याख्यान किया था और अपने भारत के १६ वर्ष के अनुभव के बल पर उसमें कहा था कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू यहाँ ब्रिटेन में अपने भाषणों में जो बातें कह रहे हैं उनसे उनके ९० फ़ी सदी देशवासी सहमत नहीं हैं। वायसराय साहब के इस कथन का भारत में काफ़ी प्रतिवाद हुआ है। भारतीय ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस के सभापति डाक्टर सुरेशचन्द्र बनर्जी ने भी उन्हें करारा उत्तर दिया है। उसका मुख्यांश यह है—

लार्ड विलिंग्डन को मालूम होना चाहिए कि पंडित जवाहरलाल नेहरू किसी राजनैतिक मिशन पर योरप नहीं गये हैं। जवाहरलाल जी की ही तरह का विचार रखनेवाले भारतीयों का यह दृढ़ विश्वास है कि भारतीय स्वाधीनता का संग्राम हिन्दुस्तान के बाहर नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के ही धरातल पर और उसके ही लोगों-द्वारा लड़ा जायगा। अतएव पण्डित जवाहरलाल नेहरू भिक्षुक की झोली लेकर नहीं घूम रहे हैं। नेहरू जी एक ऐसे फ़ौलादी आदमी हैं जिनकी मनोवृत्ति भिक्षा माँगने और समझौता करने की नहीं है। वे इस तरह की कमज़ोरियों से सर्वथा मुक्त हैं। लेकिन फिर भी वे अपना यह फ़र्ज़ समझते हैं और ठीक समझते हैं कि इस समय हिन्दुस्तान में एक विदेशी ताक़त-द्वारा फ़ासिस्टी ढंग का जो शासन हो रहा है और जो लोग बड़ी ऊँची आवाज़ में यह घोषित करते हैं कि वे गणतन्त्र के संरक्षक एवं हिमायती हैं उसका पर्दा फ़ाश कर दें। बड़े साहस के साथ हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन-प्रबन्ध की निन्दा एवं तीव्र आलोचना करने के साथ ही साथ जवाहरलाल जी ने इस बात की घोषणा करने में भी कोई हिचक नहीं की है कि हिन्दुस्तान ऐसे किसी भी विधान को हर्गिज़ मंज़ूर नहीं करेगा जो किसी विदेशी शक्ति-द्वारा उस पर ज़बरन लादा जायगा।

बेशक, भूतपूर्व वायसराय को भारत की अवस्था का अनुभव है। लेकिन वह अनुभव उन्हें भारतीय जनसमूह के निकटतम सम्पर्क से नहीं प्राप्त है, बल्कि ऐसे ग़ैर-ज़िम्मेदार शासन से प्राप्त है जो हृदयहीन नौकरशाही-द्वारा काले क़ानूनों और दमनकारी आर्डिनेन्सों के बल पर चलाया जाता है। समग्र देश की घोर अशान्ति, शहरों में मज़दूरों की हड़तालों, ग्रामों में किसानों के प्रदर्शनों और गत निर्वाचन के परिणामों से ही भूतपूर्व वायसराय को मालूम हो जाना चाहिए कि हिन्दुस्तान की वास्तविक अवस्था क्या है। लेकिन नौकरशाही तो अपनी हुकूमत से कोई सबक़ सीखना नहीं चाहती। अगर परिस्थिति से सबक़ सीखने की क्षमता उनमें होती तो वे यह आसानी से समझ सकते थे। कांग्रेस का यह शक्तिशाली संगठन और मज़दूरों का ज़बर्दस्त जागरण हिन्दुस्तान में क्योंकर संभव हुआ है? भारत के इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का एकमात्र कारण यही है कि भारतीयों का भीषण शोषण हो रहा है और दमनकारी क़ानूनों-द्वारा नागरिक स्वतन्त्रता का अपहरण किया जा रहा है।

भूतपूर्व वायसराय जो चाहें कहा करें। भारत का क्रान्तिकारी जनसमूह तीव्र गति से अग्रसर हो रहा है। निरर्थक गर्जन-तर्जन की अब उसे चिन्ता नहीं है।

भारत में साबुन का कारबार

भारत-सरकार के 'इंडस्ट्रियल रिसर्च ब्यूरो' ने 'भारत में साबुन का बनना' नाम का एक बुलेटिन प्रकाशित किया है। उससे प्रकट होता है कि भारत में साबुन के कारबार का कैसा विकास हुआ है और उसके अभ्युदय की कितनी सम्भावना है। उक्त बुलेटिन का ज्ञातव्य अंश इस प्रकार है—

भारत के इस बढ़ते हुए उद्योग-धन्धे का प्रारम्भ बहुत ही सामान्य ढङ्ग से हुआ था। १८७९ में नार्थ वेस्ट सोप कम्पनी ने मेरठ में एक छोटा सा साबुन बनाने का कारख़ाना खोला, जिसमें स्थानीय उपयोग के लिए बहुत थोड़े परिमाण में साबुन बनता था। बाद में इसी कम्पनी ने कलकत्ते में भी एक कारख़ाना स्थापित किया। इन कम्पनियों को तो अच्छी सफलता न मिल सकी। रिसर्च

ब्यूरो के बुलेटिन में दिये गये हैं जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। इसका नाम 'भारत में साबुन-साज़ी' है।

साबुन के उद्योग-धन्धे को १९०५ के स्वदेश-आन्दोलन से प्रोत्साहन मिला था। लेकिन जो कारखाने उस समय चल रहे थे, ख़ास कर बंगाल के कारखाने, वे पूँजी और वैज्ञानिक अनुभव के अभाव में पनप न सके।

इस उद्योग-धन्धे के उत्कर्ष का दूसरा युग उस समय उपस्थित हुआ जब योरप का महायुद्ध छिड़ा हुआ था। अब की बार इस उद्योग-व्यवसाय के पैर अच्छी तरह जम गये। देश की अन्दरूनी माँग और फ़ौजी माँग के कारण इस व्यवसाय को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला।

सर फ़्रेडरिक निकल्सन की प्रेरणा से मदरास-सरकार ने १९१४ में मदरास प्रान्त के तानूर गाँव में एक कारखाना स्थापित किया। इसके बाद मैसूर और हैदराबाद में भी ऐसे ही कारखाने खोले गये।

१९१८ में ब्रिटिश भारत में ११ कारखाने ऐसे थे जिनमें प्रत्येक में प्रतिवर्ष ६०० टन साबुन बनाया जाता था और ४६ ऐसे थे जिनमें प्रतिवर्ष ४०० टन से कम बनाया जाता था। इस प्रकार प्रतिवर्ष कुल २२,००० टन साबुन बनता था। लेकिन उस समय शृंगार का साबुन सिर्फ़ ७१० टन ही बनता था।

इस समय ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के एक हज़ार छोटे-बड़े कारखानों में प्रतिवर्ष लगभग ७५,००० टन साबुन बनता है, जिसका मूल्य प्रतिवर्ष ३,४२,५०,००० रुपया होता है। इसमें से ५०,००० टन साबुन घर-गृहस्थी के काम का होता है, जिसका मूल्य २,००,००,००० रुपया होता है, १५,००० टन साबुन शृंगार के लिए बनता है जिसका मूल्य १,१२,५०,००० रुपया होता है और १०,००० टन कल-कारखानों के लिए बनता है जिसका मूल्य ३०,००,००० रुपया होता है।

आज से २२ साल पहले भारत में प्रतिव्यक्ति पीछे ९ पौण्ड साबुन विदेशों से आता था या यों कहिए कि प्रतिवर्ष १८,५०० टन साबुन जिसका मूल्य ७५ लाख होता था; लेकिन अब तो भारत में ही साबुन का उत्पादन तिगुना बढ़ गया है जो सिलोन, ईराक, अदन और दूसरे पड़ोसी देशों को भेजा जाता है।

भारत में साबुन का उत्पादन बढ़ जाने से आयात भी घट गया है। १८७६-७७ में भारत में ३,३०,००० रुपया का साबुन बाहर से मँगाया गया था। आयात की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि १९२०-२१ में २,०४,३०,००० रुपया का साबुन बाहर से आया। लेकिन उसके बाद तो आयात में ह्रास होने लगा। यहाँ तक कि १९३६-३७ में बाहर से केवल २६,८५,६३२ रुपया का ही साबुन भारत आया।

भारत की माँग

पण्डित जवाहरलाल नेहरू अपने योरप-प्रवास में दो महीने तक रहे। वहाँ उन्होंने कतिपय सभाओं में भाषण किया और वहाँ के प्रसिद्ध व्यक्तियों और उच्च अधिकारियों से भेंट-मुलाकात भी की। वहाँ से रवाना होते समय उन्होंने एक वक्तव्य दिया है, जो 'मंचेस्टर गार्जियन' नाम के पत्र में प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने ब्रिटेन को सम्बोधन करके भारत की माँग स्पष्ट शब्दों में रक्खी है। उनके वक्तव्य का सारांश यह है—

प्रायः दो महीने तक इँग्लेंड में रहने के कारण मुझे यहाँ के बहुत-से विशिष्ट राजनैतिक नेताओं से मिलने और बातचीत करने का अवसर मिला है। मैंने भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर बातें की हैं। मैं यह साफ़ कह देना चाहता हूँ कि भारतीय समस्याओं के सम्बन्ध में उनका मत बदल गया है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की क्रमशः बढ़ती राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के सम्बन्ध में भारतवासियों का दृढ़ संकल्प ही इस मन-परिवर्तन का कारण है। आसन्न विश्व-संकट के सम्बन्ध में भारत जो रुख़ अख़्तियार करेगा उसी पर उस सङ्कट-सम्बन्धी समस्या का समाधान निर्भर है। चाहे कोई संकट क्यों न उपस्थित हो, भारतवर्ष साम्राज्य-विरोधी दृष्टि से ही उस पर विचार करेगा। विश्वसंकट के सम्बन्ध में भारतवर्ष किस मनोभाव का अवलम्बन करेगा, इसे वह स्वयं ही निर्णय करेगा और एकमात्र स्वाधीन भारत ही ऐसा कर सकता है। पराधीन भारत के ऊपर ज़बर्दस्ती अगर कोई सिद्धान्त लाद दिया जायगा तो उसका विरोध करने के सिवा उसके लिए और कोई उपाय न रह जायगा। जब तक वे समस्यायें बलपूर्वक हमारे ऊपर लदी हैं तब तक हम उनका विरोध ही करते रहेंगे और अपने को

शक्तिशाली बनाते रहेंगे। अगर वह दबाव उठा लिया जायगा तो सारी परिस्थिति में एक प्रकार का परिवर्तन होगा और उस समय ऐसे वातावरण की सृष्टि होगी कि वहाँ संघर्ष का कोई भाव ही न रह जायगा। ब्रिटिश सरकार अगर स्थिर करे और इस बात की घोषणा कर दे कि भारतवासी स्वयं अपने लिए शासनतन्त्र बना सकेंगे और उन्हें इस सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता दी जायगी तो बस इतने से काम बन जायगा।

ऐसी घोषणा कैसे कार्य में परिणत की जा सकती है, इस पर फ़ौरन विचार होना चाहिए और उसके सम्बन्ध में उचित व्यवस्था करनी होगी। यह एकमात्र गणपरिषद की सहायता-द्वारा ही हो सकता है। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में मित्रता-पूर्ण व्यवस्था सम्भव होगी। इसलिए अब इस प्रकार की व्यवस्था में देर करना उचित न होगा।

कांग्रेस अब इस सम्बन्ध में फिर से आगे न बढ़ेगी। कांग्रेस ने मनोभाव की घोषणा साफ़ तौर से कर दी है। इसलिए अब इस सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लामेण्ट को ही आगे बढ़ना चाहिए। ब्रिटिश सरकार अगर बार-बार यही कहती रह जायगी कि भारतीय शासन-विधान में कोई परिवर्तन न होगा तो इस समस्या का समाधान न होगा। ब्रिटिश सरकार के लिए यही कहना होगा कि भारतीय शासन-विधान अस्थायी और परीक्षामूलक है और भारतवासी अपने लिए जो विधान बनायँगे उसे स्थान देने के लिए यह व्यवस्था उठा ली जायगी। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

गाँवों में डाक्टरी सहायता की योजना

बिहार की प्रान्तीय सरकार देहात में चिकित्सा की व्यापक व्यवस्था करने का आयोजन कर रही है। इस सम्बन्ध में पटना को 'नवशक्ति' लिखती है—

यह बात सर्वविदित है कि इलाज की सुविधा जितनी शहरों में है, उसका सहस्रांश भी गाँवों में नहीं है। फल यह होता है कि साधनहीन ग्रामीणों को इलाज के अभाव में घुल घुलकर मरना होता है। उनके इस अभाव की पूर्ति की ओर सरकार का ध्यान जाना बहुत ज़रूरी है, लेकिन प्रान्त की पिछली सरकारों ने इस ओर से पूर्ण उदासीनता ही दिखाई। हर्ष की बात है कि वर्तमान लोकप्रिय सरकार ने इस अहम मसले को अपने हाथ में लिया है और वह हर ज़िले में कुछ चुने हुए केन्द्रों में चार चार चिकित्सक बसाने की व्यवस्था करेगी। इन चिकित्सकों में एलोपैथ, वैद्य, हकीम और होमियोपैथ—सभी प्रचलित प्रणालियों के चिकित्सक होंगे। सरकार एलोपैथों को ४०) मासिक तथा इतर तीन तरह के चिकित्सकों को ३०-३० रुपया मासिक सहायता दिलायेगी। ओषधि तथा अन्य आवश्यक चिकित्सा-सामग्रियों के लिए इन्हें २४०) सालाना सहायता अलग दी जायगी। यह योजना प्रयोगात्मक है और ५ वर्षों तक इसका परिणाम देखने के बाद इसे और अधिक विस्तृत किया जायगा।

इस योजना को कैसी सफलता मिली और आगे कैसी सफलता मिल सकती है, यह तो प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर मालूम होगा, लेकिन इतना तो हम निश्चयपूर्वक कह ही सकते हैं कि जिस सद्भावना से इस योजना को ईजाद किया गया है, यदि उसी सद्भावना से इसे कार्यान्वित किया गया तो निस्सन्देह इसको आशातीत सफलता मिलेगी और आगे इसे काफ़ी विस्तार के साथ लागू करना होगा।

इस स्थल पर हम अपनी ओर से एक सुझाव पेश कर देना चाहते हैं। एक तो एलोपैथी इस देश की प्रणाली नहीं है और दूसरे इसका ज्ञान और प्रयोग बहुत महँगा पड़ता है। फल यह होता है कि इसकी चिकित्सा भी बहुत महँगी पड़ती है और फलतः गाँववालों के लिए यह बहुत ही अनुपयुक्त साबित होती है। इसके विपरीत वैद्यक, यूनानी और होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालियाँ काफ़ी सस्ती पड़ती हैं। इनसे ग़रीब ग्रामीण अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा सकते हैं। एक वैदेशिक चिकित्सा-प्रणाली होते हुए भी होमियोपैथी बहुत सस्ती और लाभप्रद साबित हुई है। ऐसी स्थिति में हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि इस ग्रामीण चिकित्सा-योजना में एलोपैथी के बजाय वैद्यक, होमियोपैथी और यूनानी पद्धतियों को अधिक प्रोत्साहन दिया जाय। वैद्यों, होमियोपैथों और हकीमों को प्राथमिक आवश्यकता की स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिदायतों की जानकारी रहने से ग्रामीणों को चीर-फाड़ के अनिवार्य केस छोड़कर और हालतों में एलोपैथी की कोई ज़रूरत नहीं महसूस होगी। सुनने में आया है कि इन चिकित्सकों के लिए

प्राइवेट बुलाहट पर कहीं जाने पर फ़ीस लेने की कुछ सुविधा रहेगी। यहाँ हम यह व्यवस्था ज़रूरी समझते हैं कि इनको यह स्पष्ट हिदायत रहे कि यदि रोगी धनी न हो तो एक बार क्या अनेक बार उसके घर जाने पर भी ये फ़ीस न लें।

कांग्रेस और हिंसा

महात्मा गांधी 'हरिजन' में लिखते हैं—

महादेव ने कांग्रेसवादियों-द्वारा की जा रही हिंसात्मक कार्रवाइयों की शिकायतें मुझे बतलाई हैं। इनमें से एक शिकायत तो यह है कि शान्त पिकेटिंग के नाम पर धरना देनेवाले लोग ऐसे उपायों का सहारा ले रहे हैं जो हिंसा की हद तक पहुँच जाते हैं—जैसे ज़िन्दा आदमियों को खड़ा करके दीवार-सी बना लेते हैं, जिसे अपने को या दीवार बनानेवालों को चोट पहुँचाये बग़ैर कोई पार नहीं कर सकता। शान्त पिकेटिंग मेरी चलाई हुई है, लेकिन मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं जिसमें मैंने ऐसी पिकेटिंग को प्रोत्साहन दिया हो। एक मित्र ने इस सम्बन्ध में धरासना का हवाला दिया है। वहाँ मैंने नमक के कारख़ाने पर क़ब्ज़ा करने की बात ज़रूर सुझाई थी, लेकिन इस मामले में वह बात बिलकुल लागू नहीं होती। धरासना में तो हमारा लक्ष्य नमक के कारख़ाने पर था, जिसे सरकार के क़ब्ज़े से छीनकर अपने क़ब्ज़े में रखना था। उसे पिकेटिंग मुश्किल से ही कहा जा सकता है। लेकिन यह तो शुद्ध हिंसा है कि कर्मचारियों या मज़दूरों के आगे खड़े होकर उन्हें अपने काम पर जाने से रोका जाय, इसलिए इसे तो छोड़ ही देना चाहिए। ऐसा करनेवाले कांग्रेसवादी अगर इससे बाज़ न आयें तो मिलों या अन्य कारख़ानों के मालिकों का इसके लिए पुलिस की मदद लेना बिलकुल वाजिब होगा और कांग्रेसी सरकार उसे देने के लिए बाध्य होगी।

दूसरा जो उदाहरण मेरे नोटिस में लाया गया वह यह है कि कांग्रेसवादियों के एक दल ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी-द्वारा स्वीकृत कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर पर क़ब्ज़ा कर लिया है। यह तो निश्चित रूप से अक्षम्य उद्दंडता है।

तीसरा उदाहरण शोर मचाकर या गड़बड़ करके सभा भंग करने का है।

चौथा पूँजीपतियों को बुरा-भला कहकर उन्हें लूट लेने के लिए लोगों को उभाड़ने का है।

ये सब हिंसा और अनुशासन-हीनता के स्पष्ट उदाहरण हैं। मुझसे कहा गया है कि ऐसी गड़बड़ी बढ़ ही रही है। मेरे सामने एक पत्र है, जिसमें इस बात की बुरी तरह शिकायत की गई है कि जहाँ पुराने शासन में पूँजीपतियों के साथ आम तौर पर न्याय होता था, वहाँ अब कांग्रेसी हकूमत में उनके साथ न केवल न्याय ही नहीं होता, बल्कि उन्हें अपमानित और लाञ्छित भी किया जाता है।

इसमें कोई शक नहीं कि ब्रिटिश पद्धति पूँजीवाद का पक्ष लेती है जब कि कांग्रेस लाखों भूखों मरनेवालों के साथ पूर्ण न्याय का उद्देश्य रखने के कारण पूँजीवाद का पक्ष नहीं ले सकती। लेकिन जब तक कांग्रेस की बुनियादी नीति अहिंसा है तब तक वह छीना-झपटी का आश्रय नहीं ले सकती। वह किसी कांग्रेसवादी या कांग्रेसवादियों के दल को अपने हाथ में क़ानून लेने की इजाज़त नहीं दे सकती, फिर किसी भी वर्ग के लोगों को अपमानित या लाञ्छित तो वह होने ही कैसे दे सकती है? न हिंसात्मक पिकेटिंग या हिंसा को उत्तेजना देनेवाले भाषणों को ही कांग्रेस बर्दाश्त कर सकती है।

हिंसा पर अगर समय रहते रुकावट न लगाई गई, तो कांग्रेस अपने आन्तरिक पतन से ही चकनाचूर हो जायगी। अतः प्रान्तीय तथा मातहत कमेटियों के अध्यक्षों का यह काम है कि वे फ़ौरन इस बुराई को जड़ से उखाड़ दें। हाँ, अगर कांग्रेसवादी आम तौर पर अहिंसा से ऊब गये हों तो जितनी जल्दी कांग्रेस के विधान की पहली धारा बदल दी जाय, उतना ही देश और सम्बंधित व्यक्तियों के हक़ में अच्छा होगा। इस महान् संस्था के बारे में यह तो नहीं ही कहा जाना चाहिए कि उसने असत्य और हिंसा को ढाँपने के लिए सत्य और अहिंसा को अपना लबादा बना रक्खा है।

प्रख्यात ज्योतिषी की भविष्यवाणी

मिस्टर डेसमंड योरप के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। उन्होंने 'डेली मिरर' नामक प्रसिद्ध अँगरेज़ी-पत्र में

एक सनसनीपूर्ण भविष्यवाणी की है, जिसके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं—

संसार के लिए विशेषकर ब्रिटिश साम्राज्य के लिए—आगामी चार वर्ष बहुत संकटपूर्ण होंगे। मेरा विश्वास है कि दो-तीन वर्षों के अन्दर ब्रिटेन को छोड़कर समस्त संसार एक महासमर में लिप्त दिखाई पड़ेगा।

सन् १९४२ अधिनायक-तन्त्र के लिए सांघातिक वर्ष होगा। आज का हिटलर शासित जर्मनी उस समय कुछ दूसरा ही हो जायगा। योरपीय युद्ध उतना भीषण न होगा जितना कि गृहयुद्ध। इस समय हिटलर निराश है। मुसोलिनी की भी ऐसी ही हालत है। उसकी निराशा का पता मुझे उस समय मिला था जब मैंने योरप में उसके साथ बातें की थीं।

स्टालिन तो सबसे अधिक निराश है। इन तीन डिक्टेटरों में से एक हिंसा-द्वारा मृत्यु के घाट उतारा जायगा और दूसरा मरेगा। जर्मनी और आस्ट्रिया में यहूदी शासन करेंगे न कि हिटलर। इटली अपनी वर्तमान संकटापन्न आर्थिक अवस्था का सामना कर सकता है, परन्तु १९४१ के बाद जो संकट आयेगा उससे वह न उबरेगा।

हिटलर के भाग्य का निपटारा १९४२ में हो जायगा। उस समय जर्मनी में गृहयुद्ध आरम्भ होगा और हिटलरशाही का अन्त होगा।

रूस में भी हम दो वर्ष के अन्दर स्टालिन के ख़ूब संगठित अधिनायक-तन्त्र के विरुद्ध गृहयुद्ध देखेंगे। इस गृहयुद्ध में स्टालिन मारा जायगा। इटली, रूस और जर्मनी में अन्दर ही संघर्ष होगा। जापान में लड़ने की ताक़त नहीं है। जापान की युद्ध-सम्बन्धी बातें जो समाचार-पत्रों में आकर्षक रूप में प्रकाशित होती हैं उनमें कुछ भी सार नहीं है। जापान की मातायें कह रही हैं, हमारे लड़के लौटा दो। जापानी सैनिकों को पद पद पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

आगामी चार वर्षों के बाद इँग्लेंड में प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था न रहेगी, एक प्रकार का अधिनायक-तन्त्र क़ायम होगा।

साम्यवाद का जीवन थोड़ा रह गया है। स्टेलिन के अधिनायक-तन्त्र के ध्वंस होते ही उसका भी अस्तित्व लुप्त हो जायगा।

वंगीय राजनैतिक चक्र

बङ्गाल में हक मंत्रि-मंडल पर आख़िर अविश्वास का प्रस्ताव नहीं ही पास हो सका। परन्तु उस पर सङ्कट के बादल अभी मँडरा रहे हैं। छात्रों की एक सभा में भाषण करते हुए राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस ने इस सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वे ज्ञातव्य हैं। वे कहते हैं—

अन्ततो गत्वा साम्प्रदायिकता कृत्रिम और अवास्तविक चीज़ है और वह लंगड़ी है।

यह सर्वसम्मत बात है कि भारत ने स्वतन्त्र होने का संकल्प कर लिया है। इसलिए समस्या यह नहीं है कि भारत आज़ादी कैसे प्राप्त करे, मगर समस्या यह है कि जल्दी से जल्दी कैसे उसे वह प्राप्त करे और उसको क़ायम रक्खे। इसलिए स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कोशिश करते हुए स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर उसको क़ायम रखने के लिए भी शक्ति-संग्रह करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सात प्रान्तों में ब्रिटिश गवर्नमेंट के आदेश से शासन नहीं हो रहा है; बल्कि कांग्रेस-कार्यसमिति के आदेशानुसार, और यदि अन्य प्रान्तों में भी कांग्रेसी सरकारें स्थापित हुईं तो इसका अर्थ होगा कि कांग्रेस का प्रभाव और अधिक बढ़ गया है।

कांग्रेस ने केवल बल-संग्रह के विचार से मन्त्रित्व ग्रहण किया है और जिस क्षण यह मालूम हो जायगा कि मन्त्रित्व ग्रहण करने का असर शक्ति-संग्रह और बलवान् बनाने के बजाय पतनकारी हो रहा है तब कांग्रेस मन्त्रियों को शासन की बागडोर रख देने की सलाह देगी। यही वजह है कि कांग्रेस पार्लमेंटरी कार्यों के बीच विभिन्न प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों और धारा-सभा के कांग्रेसी सभ्यों की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति जगाये रखने का प्रयत्न करती है।

यद्यपि बङ्गाल असेम्बली में विरोधी दल मन्त्रि-मण्डल के विरुद्ध एक भी अविश्वास के प्रस्ताव को पास कराने में सफल नहीं हुआ है, मगर वह हाउस में अपनी ताक़त बढ़ाने में अब भी प्रयत्नशील है और उसने अपनी विजय की आशा नहीं खोई है।

विरोधी दल के विभिन्न दलों की एक बैठक कांग्रेस पार्टी के चीफ़ ह्विप श्री जे० सी० गुप्त के मकान पर विभिन्न

दलों में और अधिक सहयोग के साथ काम करने और अपना बल बढ़ाने के उपायों पर विचार करने के लिए हुई। उसमें देहाती जनता को शिक्षित करने पर भी विचार हुआ, जिससे वह अविश्वास के प्रस्ताव पर अन्तिम दिन की बहस में शरत बाबू के द्वारा बताये गये कार्यक्रम को मन्त्रि-मण्डल से स्वीकार कराने के लिए आन्दोलन कर सके।

बैठक में जो लोग उपस्थित थे उन्होंने कुछ राजनैतिक दलों-द्वारा साम्प्रदायिक भावनाओं से नाजायज़ फ़ायदा उठाने की बाबत विशेष रूप से विचार किया और वे आशा करते हैं कि बैठक-द्वारा निश्चित कार्य-क्रम को अमल में लाने से विभिन्न सम्प्रदायों की माँग पूरी हो जायगी और उनका साम्प्रदायिक सन्देह दूर हो जायगा।

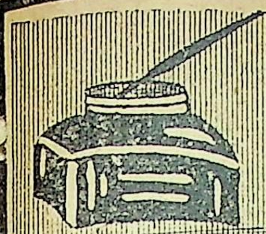
शिक्षा में क्रान्ति

'आज' अपने एक अग्रलेख में लिखता है—

संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द जी बिजली के तार हैं। जिसे छू देते हैं वह तुरन्त उत्तेजित और सजीव हो जाता है। इस प्रान्त में तरह तरह के सुधार हुए हैं और होंगे। पर, किसी अन्य मन्त्री के कार्य की अवहेला किये बिना हम कह सकते हैं कि शिक्षा-विभाग में इस समय जो जान आ गई है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देती। प्राथमिक से लेकर उच्चतम शिक्षा-संस्थाओं में एक हलचल-सी उत्पन्न हो गई है। सर्वत्र नई बातें सुनाई देती हैं, नई आशा दिखाई देती है। शिक्षा-सम्बन्धी कमेटियाँ तो इतनी नियुक्त की गई हैं कि उन सब पर नज़र रखना भी हम ग़रीब पत्रकारों के लिए कठिन हो रहा है। परिवर्तन की क्रान्ति का वातावरण शिक्षा-विभाग में और शिक्षा-संस्थाओं में उत्पन्न हो गया है। इस क्रान्ति में ही हमारे शिक्षा-मन्त्री स्वस्थ रहते हैं—बेकार रहना जैसे जीवन के लिए वैसे ही उनके स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। हम आशा करते हैं कि सारा शिक्षा-विभाग, प्राथमिक स्कूल से लेकर उच्चतम शिक्षा देनेवाले कालेज तक और समस्त शिक्षा-संस्थाएँ, मन्त्री के इस भाव से भावित होंगी और जो क्रान्ति हो रही है उसे सफल कर दिखावेंगी।

शिक्षा-विभाग में जिस क्रान्ति-शकट को श्री सम्पूर्णानन्द जी ने गति दे दी है उसके दो प्रधान चक्र हैं। ये दो कमेटियाँ हैं। एक कमेटी आचार्य नरेन्द्रदेव जी की अध्यक्षता में साधारण शिक्षा का पुनः संघटन करने की और दूसरी कमेटी श्रद्धेय श्री भगवानदास जी की अध्यक्षता में संस्कृत शिक्षा का पुनः संघटन करने की चेष्टा कर रही है। इनके यत्न को सफल करनेवाले शिक्षक प्रस्तुत करने का काम प्रयाग में प्रारम्भ किया गया है। यह वह प्रायोगिक ट्रेनिंग कालेज है जो गत मङ्गलवार को प्रयाग में श्री सम्पूर्णानन्द जी ने खोला है। इस अवसर पर आपने जो भाषण किया था उससे शिक्षा-सुधार के सम्बन्ध में आपके विचार और भाव का कुछ आभास मिल जाता है।

किसी कला को शिक्षा का मध्यबिन्दु बनाने का अर्थ यह नहीं है कि शिक्षा सिर्फ़ मज़दूरी की हो। जिस भाषण में माननीय मंत्री ने इस मध्य-बिन्दु पर ज़ोर दिया है उसी में यह भी कहा है कि शिक्षा का लक्ष्य उत्साही, आत्म-विश्वासी और सुयोग्य नागरिक बनाना है। इतिहास इस प्रकार पढ़ाया जाना चाहिए कि उससे मनुष्य में अपने और अपने राष्ट्र का गौरव उत्पन्न हो, वह विश्वास करे कि हमारा भविष्य उज्ज्वल है तथा वह हमारे ही हाथ में है। नागरिक वह है जो अपना अधिकार तो जानता ही हो, साथ साथ कर्त्तव्य भी जानता हो और उसके पालन के लिए सदा प्रस्तुत रहे। अपना घर साफ़ करके कूड़ा पड़ोस के घर में फेंक देना नागरिकता नहीं है, यह बात जब तक हमारे बालक न सीखेंगे और अपने जीवन में उसका पालन करने का अभ्यास उन्हें न हो जायगा तब तक वे नागरिक नहीं हो सकते। तात्पर्य यह है कि हमें मनुष्य के अधिकार के साथ साथ, बल्कि उसके पहले मनुष्य के कर्त्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए। शिक्षा का यही ध्येय है। इसके लिए भिन्न भिन्न विषयों के ज्ञान की आवश्यकता है। इन सबका मौलिक ज्ञान प्रथम सात वर्ष की मौलिक शिक्षा में हो जाना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त शिक्षक तैयार करने के लिए नये प्रायोगिक ट्रेनिंग कालेज की स्थापना की गई है और उपयुक्त पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए एक कमेटी लखनऊ में और दूसरी काशी में काम कर रही है। हम इन तीनों की सफलता चाहते हैं। अवश्य ही इस विषय के और भी अंग हैं जिन पर भिन्न भिन्न कमेटियाँ विचार कर रही हैं, पर उन सबका परिचय देना इस लेख का विषय नहीं है।



सम्पादकीय नोट

योरप का भीषण रूप

योरप के राजनीतिज्ञों की पेचीली चालों का काम अब ख़त्म-सा हो गया है और होनेवाले युद्ध में कौन देश किस ओर से लड़ेगा, इसकी भी मीमांसा हो गई है। इधर युद्ध के छिड़ जाने के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। ऐसी दशा में कौन देश किस पक्ष में होगा यह जान लेना ज़रूरी है।

पिछले महायुद्ध में जर्मनी की ओर आस्ट्रो-हंगेरी, तुर्की और बलगेरिया थे, परन्तु युद्ध-कला में ये तीनों इतना पिछड़े हुए थे कि इनके युद्ध-क्षेत्रों की भी पूरी सँभाल जर्मनी को ही करनी पड़ी थी। परन्तु अब जर्मनी की ओर इटली हो गया है, जो उसी की तरह युद्ध-कला में निपुण है और साज-सामान से भी लैस है। रहा आस्ट्रिया सो वह अब जर्मनी का एक अंग हो गया है और दोनों देशों के जर्मन एक-सी भावना और एक-से उत्साह से युद्ध में भाग लेंगे। इसके सिवा हंगेरी भी जर्मनी के साथ जायगा जैसा कि उसके हाल के रुख़ से प्रकट होता है। ऐसी मैत्री-स्थापन के लिए ही उसके सर्वेसर्वा एडमिरल हौर्टी अभी उस दिन जर्मनी गये हैं और उनकी वहाँ ख़ूब आवभगत हुई है।

उधर पोलेंड रूस का पहले से ही विरोधी है। उसके वैदेशिक मंत्री कर्नल बेक पिछले तीन महीने में लुथिआ-निया, इस्थोनिया, लेटेविया, फ़िनलेंड, स्वीडन और नार्वे की राजधानियों का चक्कर इसलिए लगा आये हैं कि ये छहों राज्य युद्ध-काल में समवेत होकर रूस का सशस्त्र विरोध करें। ये अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुए हैं, यह तो अभी नहीं कहा जा सकता, परन्तु उन राज्यों के स्वार्थों को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि उनमें से कम से कम चार राज्य पोलेंड से मिलकर रूस के विरुद्ध अवश्य अस्त्र ग्रहण करेंगे, जिसका अर्थ यह है कि ये जर्मनी के पक्ष में होंगे।

कुछ दिन हुए, कोपेनहेगेन में डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडन, फ़िनलेंड, हालेंड और बेलजियम के प्रतिनिधियों की एक सभा हुई थी, जिसमें उन्होंने आनेवाले युद्ध में निरपेक्ष रहने का निश्चय किया है। उनके इस निश्चय से जर्मनी और उसके साथियों के ही बल की वृद्धि हुई है।

अब रहे ज़ेचोस्लोवेकिया तथा बाल्कन के राज्य सो उनके सम्बन्ध में अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु अभी हाल में उनके प्रतिनिधियों की एक बैठक कान्स्टेंटिनोपल में हुई थी, जिसमें जापान के प्रति रोष प्रकट किया गया, क्योंकि उसने मंचूको और सैबेरिया की सीमा पर रूसी चौकी पर आक्रमण कर दिया था। इससे प्रकट होता है कि बाल्कन के राज्य रूस के साथ हैं। और रूस की जर्मनी से प्रकट शत्रुता तथा फ़्रांस से प्रकट मैत्री है।

ब्रिटेन भी सावधान है। उसने तुर्की को १,६०,००,००० पौंड देकर अपनी ओर कर लिया है। यही नहीं, वह और आगे बढ़ गया है। उसके बादशाह जार्ज पेरिस की सैर कर आये हैं, जिससे ब्रिटेन और फ़्रांस की मित्रता में काफ़ी घनिष्ठता हो गई है और वे आज वैसे ही एक दूसरे के मित्र हो रहे हैं, जैसे सन् १९१४ के महायुद्ध के पहले थे। यही नहीं, ब्रिटेन भी कहने लगा है कि वह भी युद्ध के लिए तैयार हो गया है। यदि युद्ध होगा तो पिछले युद्ध की भाँति रूस, फ़्रांस, ब्रिटेन ये तीनों तथा इनके साथ तुर्की भी जर्मनी और उसके मित्रों से युद्ध करेंगे।

यह दलबन्दी दोनों ओर से खुल्लमखुल्ला की गई है और अब तो कहीं कहीं तलवारें भी चमकने लगी हैं। अभी तक स्पेन में और अब चीन में भी योरप के ये दोनों दल टट्टी की ओट में रहकर अपने अपने बल की परीक्षा में ही लगे हुए थे, परन्तु अब जर्मनी ने तो अपने यहाँ ज़ोरों का सैनिक प्रदर्शन शुरू कर दिया है। उसकी देखा-देखी उसके पड़ोस का बेल्जियम भी फ़ौजी प्रदर्शन करने जा रहा है। यह सब क्या हो रहा है, और इस भीषण पशु-शक्ति के आयोजन तथा प्रदर्शन का क्या परिणाम होगा, इस सबका समझना तो साधारण लोगों के लिए कठिन

है, परन्तु इतना तो साफ़ ही है कि यह ज्वालामुखी जब फूटेगा तब इस बार सर्वसंहार का ही दृश्य उपस्थित होगा।

चीन का पुरुषार्थ

आज का चीन एशिया का एक महान् जाग्रत राष्ट्र है। उसके इस जागरण की नींव सन् १९११ में डाक्टर सन यात सेन ने रक्खी थी। उन्होंने चीन में ऐसी देशभक्ति की भावना का प्रचार किया था कि एकाएक सारे देश में क्रान्ति फैल गई और चीनियों ने राजतन्त्र को तोड़कर उसके स्थान में प्रजातन्त्र की स्थापना की। सारा चीन अपने उज्ज्वल भविष्य की आशा से प्रफुल्ल हो उठा। परन्तु क्रान्ति के कारण अनेकों के स्वार्थ की हानि हुई और स्वार्थियों ने अपने कुचक्र से चीन के नौजवानों को पनपने ही न दिया। तो भी राष्ट्रीय चीन दिन दिन प्रबल पड़ता गया। अन्त में उसने राष्ट्रपति च्यांग कैइ-शेक के नेतृत्व में सन् १९२८ में चीन के गृहशत्रुओं का दमन करके केन्द्रीय सरकार की सत्ता की स्थापना कर ही डाली। परन्तु चीनी बोल्शेविक अपनी खिचड़ी अलग ही पकाते रहे। उसकी परवा न कर नानकिंग की नई राष्ट्रीय सरकार देश को समुन्नत करने के काम में बड़ी तत्परता से संलग्न हुई, साथ ही चीन के अवशिष्ट बोल्शेविक प्रान्तों को भी अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न जारी रक्खा। उसकी उक्त सफलता से ही प्रकट होता है कि चीन उन्नति की दौड़ में कितना आगे बढ़ आया था। परन्तु उसका यही बढ़ना उसके लिए काल हो गया। जापान चीन की उन्नति नहीं सह सका। उसने देखा कि चीन गृह-युद्ध में लिप्त है, अतएव झट मंचूरिया को हड़प लिया। और अब तो वह सारे चीन को अपने अधीन करने के लिए उसका सर्वनाश कर रहा है। चीन में जो भयानक युद्ध साल भर से हो रहा है उसमें उसके लाखों आदमी मारे जा चुके हैं, प्रायः सभी बड़े बड़े नगर वायुयानों से गोले चलाकर ध्वंस किये जा चुके हैं और सूबे के सूबे उसके अधिकार से जाते रहे हैं, परन्तु इस विकट परिस्थिति से वह रत्ती भर हतोत्साह नहीं हुआ, वरन और भी अधिक उत्साह से वह जापानियों से लोहा ले रहा है। चीनियों में देशभक्ति का भाव इतना अधिक बढ़ गया है कि जो बोल्शेविक राष्ट्रीय सरकार को अपना शत्रु समझते थे, आज देशभक्ति की प्रेरणा से वे भी राष्ट्रीय सरकार के झंडे के नीचे आ खड़े हुए हैं और जापान से लड़ रहे हैं। वस्तुतः जापान का प्राण रहते तक विरोध करने की सारे राष्ट्र ने प्रतिज्ञा-सी की है और वहाँ के बौद्ध, मुसलमान तथा ईसाई चीनी सबके सब कन्धे से कन्धा भिड़ाकर युद्ध-क्षेत्र में जापानियों से लड़ रहे हैं।

चीन का इस समय ऐसा ही महान् जागरण है। उसने जापान से ऐसी भारी टक्कर ली है कि उससे जापान की नसें ढीली पड़ गई हैं, जैसा कि अभी मंचूको की सीमा पर की घटना से प्रकट होता है। हाल में ही मंचूको और सैबेरिया की सरहद के एक गाँव में रूसी और जापानी सेना का जो चार दिन तक भयानक युद्ध हुआ था उसकी उपेक्षा करके जापान ने रूस से मित्रता करने का ही आग्रह किया। इससे प्रकट होता है कि जापान को चीन में भारी संकट का सामना करना पड़ रहा है। चीन ने जब से छापा मारने का युद्ध शुरू किया है तब से जापानी बड़े पेंच में पड़ गये हैं और वे उन छापा मारनेवालों का अपनी आधुनिक वैज्ञानिक युद्धप्रणाली से दमन करने में असमर्थ-सा जान पड़ते हैं। यह अवस्था चीन के लिए उत्साहप्रद है।

यद्यपि जापान के आक्रमण पहले की ही भाँति बराबर हो रहे हैं, उनके वायुयान वहाँ के नगरों को नित्य ही ध्वंस करते रहते हैं, उनकी फ़ौजें चीन पर अधिकार जमाती हुई आगे बढ़ती चली जा रही हैं, तो भी चीनी लोग युद्ध-क्षेत्र में डटे हुए हैं। जापान का संहार-कार्य उन्हें ज़रा भी हतोत्साह नहीं कर सका है और वे अपना सर्वस्व निछावर कर जापानियों को चीन की भूमि से निकाल बाहर करने को तुल गये हैं। इस प्रकार चीन और जापान का यह युद्ध दोनों के जीवन-मरण का युद्ध हो गया है। यह भविष्य ही बतावेगा कि किसके भाग्य में क्या बदा है।

साम्प्रदायिक समस्या

साम्प्रदायिक समस्या का नये शासन विधान के प्रचलित हो जाने पर अन्त हो जाना चाहिए था, परन्तु उसने तो अब और भी उग्र रूप धारण कर लिया है। पिछले दिनों उसका हल करने के लिए महात्मा गान्धी ख़ुद आगे आये और उसके सम्बन्ध में मुस्लिमलीग के प्रधान मिस्टर

जिन्ना से बातचीत की, परन्तु इस प्रयत्न में महात्मा गान्धी भी नहीं सफल हुए। सफलता तो तब मिलती जब वस्तुतः कोई समस्या भी होती। इस प्रयत्न की विफलता से यह अब स्पष्ट हो गया है कि भारत को इस महाव्याधि का अभी कुछ अधिक समय तक सामना करना पड़ेगा। क्योंकि इस कांग्रेसी युग में कोई तीस वर्ष के बाद भारत में लिखने और बोलने की स्वाधीनता नसीब हो सकी है। फलतः सम्प्रदायवादी इस अवस्था से लाभ उठाकर सम्प्रदायवाद का ज़हर अपने-अपने समुदायों में ज़ोरों से फैला रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि लिखने-बोलने की स्वाधीनता के युग में उनका बाल तक बाँका नहीं हो सकेगा और वे मनमाने ढंग से अपने विचारों का प्रचार करेंगे।

परन्तु देश का राष्ट्रीयतावाद क्या उन्हें ऐसा करने देगा? फिर अब तो बहुत हो गया है। कांग्रेसी शासन के इस नये युग में न मालूम कितनी बार साम्प्रदायिक झगड़े-फ़साद हुए हैं और उनका सिलसिला बराबर क़ायम है। यह अवस्था बड़ी जोखिम की है और इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

यह तो एक प्रकार से स्पष्ट ही हो गया है कि जिन लोगों के दुराग्रह के कारण इस समस्या का हल नहीं हो रहा है वे यह सब जनता के लाभालाभ के विचार से ऐसा नहीं कर रहे हैं। अतएव यह आवश्यक ही नहीं, किन्तु यही एक उपाय है कि कांग्रेसी लोग जनता में घुसकर प्रचार करें कि वे उसके कितने बड़े हितैषी हैं तथा जनता की सहायता पाने पर वे क्या क्या करेंगे। यदि कांग्रेस हिम्मत करके अपना प्रचार-कार्य एक बार हाथ में लेकर मैदान में आ जाय तो इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि साम्प्रदायिक समस्या कुछ ही परिश्रम करने पर अपने आप हल हो जायगी। कांग्रेस के लिए राह खुल गई है और उसे इस महत्त्व के कार्य को अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

प्रौढ़ों की शिक्षा

प्रौढ़ों की शिक्षा के सम्बन्ध में 'न्यू रिव्यू' में एक महत्त्व का लेख प्रकाशित हुआ है। उसका ज्ञातव्य अंश इस प्रकार है—

सन् १९२० से भारतीय प्रान्तों के शिक्षा विभाग भारतीय मन्त्रियों के हाथ में हैं। परन्तु खेद की बात कि प्रारम्भिक शिक्षा अभी तक लोकव्यापी नहीं हो सकी है। इसका प्रधान कारण आवश्यक धन का अभाव रहा है। इसी से महात्मा गांधी ने एक ऐसी योजना तैयार की है जिसके लिए प्रान्तीय शिक्षा-विभागों को अर्थ की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी और देश में शिक्षा का व्यापक प्रचार हो सकेगा। उस योजना के अनुसार खुलनेवाले स्कूल अपने व्यय-भार के लिए आवश्यक धन उपार्जन कर लेंगे, और यदि इस बात की समुचित रोक रक्खी जायगी कि वे स्कूल केवल धनोपार्जन का साधन ही न होंगे तो इसमें सन्देह नहीं है कि भारत के लिए महात्मा जी की यह योजना एक प्रकार का वरदान ही सिद्ध होगी, परन्तु प्रजातन्त्रवादी भारत के लिए बालकों की शिक्षा की अपेक्षा प्रौढ़ों को उन सबसे पहले साक्षर बनाने की आवश्यकता है। प्रसन्नता की बात है कि इस महत्त्व के प्रश्न की ओर कांग्रेसी प्रान्तीय सरकारों का ध्यान भी गया है।

प्रौढ़ों की शिक्षा की ओर मदरास के विश्वविद्यालय ने सन् १९२३ में ही ध्यान दिया था। उसने कुछ केन्द्रों में नियमित रूप ने प्रोफ़ेसरों और विशेषज्ञों के भाषण करने की व्यवस्था की थी, परन्तु उनके भाषण पंडिताऊ होते थे और अशिक्षित लोगों का उनसे कुछ भी उपकार नहीं हुआ।

गत दो वर्ष से बम्बई की प्रौढ़ शिक्षा-सभा ने भी मिल-मालिकों के सहयोग से वहाँ की मिलों में प्रौढ़ों के पढ़ाने की व्यवस्था की है। इसी प्रकार यांग मैनक्रिश्चियन असोसिएशन भी इस ओर अग्रसर हुई है और उसके सदस्य मैजिक लैन्टर्न और भाषणों के द्वारा प्रौढ़ों में शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं।

परन्तु इधर बंगाल की सरकार ने इस दिशा में अधिक व्यवस्थित रूप से प्रयत्न करना प्रारम्भ किया है। १९३७ के मार्च में देहात के सब रजिस्ट्रारों से यह आग्रह किया गया कि वे अपने अवकाश के समय में जितने गाँवों में हो सके, प्रौढ़ों को शिक्षा देने के लिए केन्द्र खोलें, जहाँ उन्हें खेती-बारी, पशु-रक्षा, स्वास्थ्य, रोगों की रोकथाम, सहयोग-समितियों के संगठन, खेती के पैदावार की बिक्री आदि की शिक्षा दी जाय। सामयिक विषयों पर भाषण कराने, अख़बारों और किताबों के उपयोगी लेख आदि

पढ़कर सुनाने की व्यवस्था करने को भी उनसे कहा गया। इन केन्द्रों में भाषण करने के लिए ज़िले के हेल्थ-अफ़सर, सेनीटेरी-अफ़सर, कृषि-अफ़सर, स्कूलों के इन्स्पेक्टर तथा अध्यापकों से मदद लेने को कहा गया। और यह सब कार्य बिना किसी प्रकार के पुरस्कार के करने की व्यवस्था की गई। ग्राम-पुस्तकालयों के लिए कुछ किताबें तथा पत्र आदि के ख़रीदने में जो ख़र्च हुआ वह ग्रामोद्धार के फंड से दिया गया। इसके सिवा शिक्षा-विभाग के मन्त्री ने गाँवों में केन्द्र खोलने के लिए प्रारम्भ के ख़र्च के लिए १००० रुपये दिये। फलतः उन केन्द्रों का सञ्चालन करने के लिए जून के महीने में एक कमिटी बनाई गई। उसके निरीक्षण में ग्रामों में प्रौढ़ों को शिक्षित करने का काम जारी हो गया है।

परन्तु ये प्रयत्न भारत की विशाल अशिक्षित जनता को देखते हुए कुछ भी नहीं हैं। इसके लिए आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकारों के शिक्षा-विभाग इस दिशा में अधिक ध्यान दें और ऐसी व्यवस्था करें कि प्रौढ़ों की शिक्षा का देहातों में उचित प्रबन्ध हो और उस पर उसका पूरा नियन्त्रण हो। और अब तो यह काम आसानी से, साथ ही बिना अधिक व्यय के हो सकता है। प्रान्तों में ग्रामोद्धार और प्रायमरी शिक्षा-प्रचार की व्यापक व्यवस्था की ही जा रही है। तब उसके साथ प्रौढ़ों की शिक्षा की भी उचित व्यवस्था की जा सकती है।

प्रसन्नता की बात है, हमारे प्रान्त की सरकार प्रौढ़ों की शिक्षा की ओर कम प्रयत्नशील नहीं है। वह जहाँ एक ओर शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने जा रही है, वहाँ उसने प्रान्त की भयानक निरक्षरता दूर करने के लिए सात लाख रुपया अलग कर दिया है और इस धन से सारे प्रान्त में ३,६०० वाचनालय और ७०० गश्ती पुस्तकालय खोलना चाहती है। इसके सिवा प्रत्येक ज़िले में बीस पढ़े-लिखे आदमियों की एक टोली के संगठित करने की व्यवस्था कर रही है, जो प्रौढ़ों को शिक्षित बनाने का काम करेंगे। इसी तरह बीस अन्य आदमियों की एक और टोली बनाई जायगी। इन टोलियों के लोग अपने अवकाश के समय प्रत्येक ज़िले में प्रौढ़ों को शिक्षा देंगे।

—

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाना

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने की विधि से संयुक्त-प्रान्त के निवासी परिचित हैं। और वह यह कि वे उसमें बबूल बो देते हैं। इससे उन्हें दोहरा लाभ होता है। ८-१० वर्ष के बाद वे बबूल काट कर बेच लेते हैं, साथ ही उनकी वह भूमि भी खेती करने के योग्य हो जाती है। बबूल की पत्तियों के वहाँ गिरने और सड़ने से ऊसर का बहुत कुछ दोष दूर हो जाता है। पुराने समय में अवध की बहुत कुछ भूमि इसी प्रक्रिया से उपजाऊ बनाई गई थी। अवध में अँगरेज़ी अमलदारी क़ायम होने के समय भी इस प्रक्रिया का ख़ासा प्रचार था। परन्तु सिपाही-विद्रोह के बाद प्रान्त के सारे जंगल काट ही नहीं गिराये गये, किन्तु वे फिर उगने भी नहीं दिये गये। ख़ैर, अब सरकार का ध्यान इस ओर गया है और इन प्रान्तों के विज्ञान के सर्व-श्रेष्ठ विद्वान् डाक्टर धर ऐसे उपाय की खोज में वर्षों से लगे हुए हैं जिससे ऊसर खेती के योग्य बनाये जा सकें। इसके लिए उन्हें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार से काफ़ी आर्थिक सहायता भी मिल रही है। प्रसन्नता की बात है कि डाक्टर धर को अपने परीक्षणों में सफलता मिली है। वे सीरे की खाद देकर ऊसर-भूमि को उपजाऊ बनाने का परीक्षण कर रहे हैं। अभी तक वे अपने परीक्षण इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में तथा केवल इसी कार्य के लिए खोले गये अपने 'इंडियन इन्स्टिट्यूट आफ़ स्वायल साइंस' नाम की संस्था में ही कर रहे थे, परन्तु जब उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिली तब अब वे उसका विस्तृत क्षेत्र में परीक्षण कर रहे हैं। और ऐसा परीक्षण इलाहाबाद-ज़िले की सोराँव तहसील में दस एकड़ के एक भूखण्ड में हो रहा है। इस भूखण्ड में जिन खेतों में सीरे की खाद डाली गई है उनमें धान के पौधे ख़ूब बलवान् दिखाई दे रहे हैं, परन्तु जिन खेतों में उक्त खाद नहीं दी गई है और उनमें धान के पौधे ऐसे ही लगाये गये हैं वे बढ़ने की कौन कहे, अपने आप मुर्झाये जा रहे हैं। इस प्रयोग की सफलता से प्रकट हुआ है कि किसी भी ऊसर को उपजाऊ बनाने के लिए फ़ी एकड़ सौ रुपये का ख़र्च पड़ेगा और यह भी सम्भव है कि वह स्थायी रूप से उपजाऊ बन जाय। इस समय इसका परीक्षण इलाहाबाद-ज़िले के सिवा मेरठ, उन्नाव और गोरखपुर में भी हो रहा है। डाक्टर

धर के परीक्षण की सफलता को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि कुछ ही दिनों में सीरे की उपयोगिता बढ़ जायगी और वह ऊसरों को खेती के योग्य बनाने के ही काम में न लाया जायगा, किन्तु उससे साधारण खाद का भी काम लिया जायगा। यदि सीरे का यह परीक्षण सफल हो गया तो देश की खेती की उपज के बढ़ने की पूरी सम्भावना हो जायगी और किसान लोग भी अपने धन्धे को इस नये साधन के द्वारा उन्नत कर अपनी दरिद्रता बहुत कुछ दूर कर सकेंगे।

ब्रह्मदेश में साम्प्रदायिक उपद्रव

२६ जुलाई को ब्रह्मदेश में बहुत ही भीषण दंगा हो गया। इस दंगे का प्रत्यक्ष कारण एक मुसलमान लेखक का धर्मोन्माद है, जिसने एक पुस्तक लिखकर बौद्ध-धर्म की निन्दा की है। फलतः बौद्ध लोग बिगड़ पड़े और २६ तारीख़ को उन्होंने मुसलमानों पर आक्रमण कर दिया। इस दंगे ने इतना भीषण रूप धारण कर लिया कि रंगून के सिवा देश के अन्य भागों पर भारतीयों पर आक्रमण किये गये और हिन्दू-मुसलमान का भी भेद न रहा। इससे प्रकट होता है कि धर्म का अपमान तो एक बहाना-मात्र था। वस्तुतः बर्मी लोग यह नहीं चाहते हैं कि उनके देश में भारतीय लोग रहें। उन्होंने अपने मनोभाव को बार बार प्रकट किया है और अब जब नये शासन-विधान के अनुसार ब्रह्मदेश भारत से अलग हो गया है तब उसका इस प्रकार के दंगे के रूप में प्रकट होना सर्वथा स्वाभाविक था। यह दंगा रंगून तक ही सीमित नहीं रहा, रंगून के आस-पास की बस्तियों, देहातों और बर्मा के १२ ज़िलों में भी फैल गया। बर्मियों ने हिन्दुस्तानियों को जहाँ पाया, मारा और लूटा। उन्होंने कितने ही घरों को फूक दिया और एक मस्जिद भी जला दी। दंगे के कारण अपार हानि हुई है। कितने का नुक़सान हुआ है, यह अभी नहीं बताया जा सकता, साथ ही हताहतों की ठीक ठीक संख्या भी अभी नहीं मालूम हुई है। अकेले रंगून में ६६ मनुष्य मरे और ४२० घायल हुए बताये जाते हैं। सैकड़ों भारतीय भाग कर भारत चले आये हैं। वहाँ की सरकार ने शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया है। एक शान्ति-समिति बनाई गई है, जिसमें हिन्दुस्तानी और बर्मी दोनों ही शामिल हैं। बर्मा के प्रधान मंत्री ने एक शान्ति-परिषद् की भी योजना की है, जिसका उद्देश्य वर्तमान मनोमालिन्य को दूर कर मित्रता स्थापित करना है।

ब्रह्मदेश की यह समस्या उपेक्षणीय नहीं है। भारत-सरकार को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए और ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि भारतीय ब्रह्मदेश में सुरक्षित रह सकें और उनके हितों की हानि न हो।

बंगाल का मन्त्रिमंडल

बंगाल में वहाँ के मंत्रिमण्डल के विरुद्ध दस अविश्वास के प्रस्ताव उपस्थित किये जाने की सूचना दी गई थी। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मंत्रिमण्डल इस विरोध का सामना न कर सकेगा और उसकी हार होगी। परन्तु उसके सौभाग्य से उसे योरपीय सदस्यों की सहायता मिल गई और ८ अगस्त को असेम्बली में जो अविश्वास के प्रस्ताव पेश किये गये वे गिर गये और मंत्रिमण्डल की रक्षा हो गई।

बंगाल की लेजिस्लेटिव असेम्बली में २४६ सदस्य हैं। पिछले बजट के अवसर पर मंत्रिमण्डल के साथ १३४ सदस्य थे। विरोधी दल में कुल ९८ सदस्य थे। परन्तु इधर वहाँ मंत्रिमण्डल का तीव्र विरोध हुआ, यहाँ तक मंत्रिमण्डल के एक मंत्री उससे अलग हो गये। इन सब बातों के फलस्वरूप विरोधी दल की शक्ति बढ़ गई और उसने समझा कि यदि अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जायगा तो वह १२० वोट प्राप्त कर सकेगा और उस दशा में मंत्रिमण्डल की हार हो जायगी। परन्तु यह अनुमान ग़लत साबित हुआ, क्योंकि वह १११ से अधिक वोट नहीं प्राप्त कर सका। विरोधी दल को आशा थी कि अल्पसंख्यक जाति के प्रतिनिधियों के वोट उसे मिल जायँगे। परन्तु वे वोट उसे नहीं मिले। तथापि इस संघर्ष से प्रकट होता है कि बंगाल का मंत्रिमण्डल उतना लोक-प्रिय नहीं रहा और यदि वह आज शासनारूढ़ है तो इसका एक-मात्र कारण यह है कि उसे योरपीय दल की पूरी मदद प्राप्त है। अर्थात् वह मुस्लिम लीग या प्रधान मंत्री की प्रजा-पार्टी के बल पर शासनारूढ़ नहीं है जिसका कि उसे गर्व रहा है। परन्तु यह दशा अधिक दिनों तक ठहर नहीं सकती, क्योंकि ७ अगस्त को मंत्रिमण्डल के समर्थन में कलकत्ते में जो लज्जाजनक दृश्य उपस्थित हुआ था

उसे कोई भी स्वाभिमानी मुसलमान या हिन्दू भूल न सकेगा और वर्तमान मंत्रिमण्डल के पदभ्रष्ट करने का प्रयत्न वहाँ का विरोधी दल तब तक बराबर करता रहेगा जब तक वह सफल नहीं हो जायगा।

——

मालद्वीप के नये सुलतान

लंका से चार सौ मील के अन्तर पर मालद्वीप नाम का एक द्वीप-समूह भारतीय महासागर में स्थित है। भूगर्भशास्त्रियों का कहना है कि किसी समय भारत अफ़्रीका से जुड़ा हुआ था। जो भूखण्ड इन दोनों देशों को जोड़ता था वह समुद्र के गर्भ में लीन हो गया है। यह द्वीप-समूह उसी प्राचीनतम भूखण्ड या महाद्वीप का अवशेष है। इस द्वीप-समूह में दो हज़ार से अधिक छोटे छोटे द्वीप हैं। यहाँ के निवासी मुसलमान हैं और वे मछली मारकर या नारियल पैदाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनके सुलतान '१२ हज़ार द्वीपों और १७ प्रान्तों के बादशाह' कहलाते हैं। उनकी यह पदवी भी यदि उक्त द्वीप-समूह की तरह प्राचीनतम सिद्ध हो जाय तो कहा जा सकेगा कि समुद्र में समाया हुआ वह पहले का महाद्वीप कम से कम इतने प्रान्तों या द्वीपों का रहा होगा। चाहे जो हो इस नगण्य द्वीप-समूह के अधिपति को उक्त उपाधि प्राप्त है। इसी जुलाई की २१ तारीख़ को वहाँ के नये सुलतान हसन नूरुद्दीन इस्कन्दर (द्वितीय) उक्त पदवी के सहित सिंहासन पर आसीन हुए हैं। गद्दीनशीनी की रस्म को वहाँ 'तलवार ग्रहण करने की रस्म' कहते हैं।

चार वर्ष पहले वहाँ क्रान्ति हो गई थी। चार आदमियों को देश-निकाले का दण्ड दिया गया था। परन्तु तत्कालीन सुलतान के लड़के ने उन्हें आत्मसमर्पण नहीं करने दिया। अन्त में जब शाही महल के सामने लोगों ने प्रदर्शन किया तब शाहज़ादे ने आकर महल की खिड़की से जनता को लक्ष्य करके कहा कि तुम लोग नये शासन-विधान को चाहते हो या अपने सुलतान और शाहज़ादे को चाहते हो। जनता ने शासन-विधान को ही पसन्द किया, जो दो वर्ष पहले वहाँ जारी किया गया था। जनता का मनोभाव देखकर सुलतान अपने कुटुम्ब के साथ स्वेच्छा से निर्वासन में चले गये। उस समय जनता ने इन्हें सर्व-सम्मति से अपना सुलतान बनाया था। वहीं अब इतने दिन के बाद गद्दी पर बिठाये गये हैं। वे भूतपूर्व सुलतान के चचेरे भाई हैं।

यहाँ के सुलतान से अँगरेज़-सरकार की १८ वीं सदी में सन्धि हुई थी। तब से यह द्वीप-समूह अँगरेज़-सरकार की संरक्षा में है। लंका के निकट होने के कारण वहीं की सरकार इस द्वीप-समूह पर अपनी देख-रेख रखती है।

——

कोटी-राज्य में हिन्दी-प्रचार

शिमला के समीपवर्ती राज्यों में एक का नाम कोटी है। प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य के विचार से शिमला की रियासतों में यह एक अति सुन्दर स्थान माना जाता है। प्रत्येक रविवार को यहाँ के सुन्दर और रमणीक वनों का आनन्द लेने को बड़े से लेकर छोटे तक सब लोग शिमला जाते हैं। इन वनों में अनेक होटल बने हुए हैं, जहाँ भ्रमण-प्रिय व्यक्तियों के भोजनादि का सब प्रबन्ध होता है। ऐसे सुन्दर राज्य के वर्तमान शासक राणा रघुवीरचन्द्र जी हैं। आप संस्कृत के बड़े विद्वान् हैं और प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बड़े प्रेमी हैं। आप ८० वर्ष के वृद्ध हैं और आचार-विचार और धर्म के सम्बन्ध में बड़े कट्टर हैं। आप शासन भी प्राचीन पद्धति के अनुसार ही करते हैं। आपका जीवन सीधा-सादा है।



[श्रीमान् राणा रघुवीरचन्द्र]

हाल में आपने अपनी रियासत में हिन्दी को राज-भाषा बनाने की घोषणा की है। इसका श्रेय आपके होनहार युवराज श्री टिका वशिष्ठसिंह जी को है, जो हिन्दी के विद्वान् और कवि भी हैं। अपने पिता की देख-रेख में आप ही सारा राज्य-कार्य करते हैं। आपके दरबार में संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् और कवि आ पाते हैं। अब जब शिमला में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा, आपके इस स्तुत्य कार्य के उसके और भी अधिक सफलता के साथ सम्पन्न होने की सम्भावना हो गई है!

बी० एन० शर्मा बी० ए०

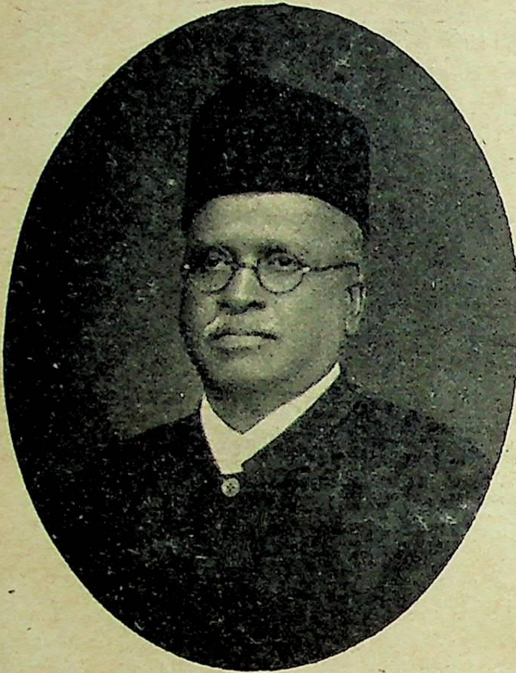
नीम हकीमों की समस्या

हम समझते थे कि 'नीम हकीमों' की धूम-धाम हमारे ही देश में अधिक रहती है, परन्तु जैसा कि लार्ड होर्डर ने कहा है, पाश्चात्य देश भी उनके चमत्कारों से बचे नहीं हैं। हाउस आफ़ लार्ड्स में उन्होंने भाषण करके यह शिकायत की है कि ब्रिटेन के 'नीम हकीम' सारे देश में तबाही फैला रहे हैं। देश में दातव्य औषधालयों तथा म्यूनिसिपल औषधालयों के चलाने में जितना धन व्यय होता है, लगभग उतना ही ब्रिटेन के सभ्य धनी लोग वहाँ के 'नीम हकीमों' की दवाइयाँ ख़रीद कर उनकी जेबों में पहुँचा देते हैं। ऐसा तो भारत जैसे देश में सम्भव हो सकता है, क्योंकि यहाँ ऐसा प्रवाद है कि अस्पतालों में सिवा शुद्ध जल के उपयुक्त दवा सुलभ नहीं है। परन्तु ब्रिटेन जैसे देश में तो ऐसा प्रवाद भी न होगा। तब वहाँ 'नीम हकीमों' के कैसे 'पौ बारह' रहते हैं? लार्ड महोदय ने अपने भाषण में बताया है कि वहाँ के पेटेंट दवाइयाँ बेचनेवाले एक समूह ने इस वर्ष अपने बजट में १० लाख पौंड केवल विज्ञापन छपवाने की मद में रक्खे हैं। गत छः वर्षों में इस समूह को ४० हज़ार पौंड से २०० लाख पौंड मुनाफ़ा हुआ है। उन्होंने यह भी कहा है कि ये पेटेंट ओषधियाँ उतना लाभदायक भी नहीं होतीं, जितना उनके सम्बन्ध में दावा किया जाता है। उनके विज्ञापन निरा धोखा होते हैं। यह हाल है उस देश का जो संसार में सभ्यता का प्रचारक माना जाता है। परन्तु अब जब वहाँ इसका विरोध शुरू हुआ है तब उसकी समुचित रोक-थाम भी हो जायगी। पर अपने भारत में इस ओर कौन ध्यान दे? हालाँ कि यहाँ की दशा इस सम्बन्ध में और भी गई-बीती है! यहाँ सारे देश में नीम हकीमों का जाल-सा बिछा हुआ है और देशी-विदेशी सभी अपने को धन्वन्तरि तथा अपनी ओषधियों को अव्यर्थ घोषित करने का ढिंढोरा पीटते हैं। परन्तु अब देश के अधिकांश में कांग्रेस का बोलबाला हो गया है। उसे चाहिए कि वह इस ओर सबसे पहले ध्यान दे और देश के अबोध लोगों की इन नीम हकीमों की दवाइयों से रक्षा करे। कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों के स्वास्थ्य-विभाग देहातों में रोग-निवारणार्थ व्यापक आयोजन करने की व्यवस्था करने जा रहे हैं। उन्हें इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि उनके प्रभाव-क्षेत्रों में 'नीम हकीम' अपने 'चमत्कार' न दिखलाने पावें, साथ ही यह भी प्रयत्न हो कि उनकी 'पेटेंट' ओषधियाँ भी अपना प्रवेश न पा सकें, क्योंकि मनुष्य के जीवन का अपना भी मूल्य है और वह इन 'नीम हकीमों' के स्वार्थ-साधन के लिए नहीं जन्मा है।

एक आदर्श प्रोफ़ेसर

प्रोफ़ेसर गंगाधर गोविन्द कानेटकर एम० ए०, एल० टी० जबलपुर के स्पेन्स ट्रेनिङ्ग कालेज के अवसर प्राप्त अध्यापक हैं। उन्होंने पूना की डेकन-एजूकेशन-सोसाइटी को पचीस हज़ार रुपये का दान दिया है। उक्त सोसाइटी को बड़े बड़े धनी मानी लोगों ने बड़ी बड़ी रक़में दान की हैं, किन्तु प्रोफ़ेसर महोदय का यह दान श्रीमानों-द्वारा दिये गये दानों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और गौरवपूर्ण है। श्रीमानों का अपनी बढ़ती हुई आय में से कुछ अंश देश की अज्ञानता के निवारणार्थ प्रदान करना उतने महत्त्व का नहीं होता, जितना एक प्रोफ़ेसर जैसे साधारण स्थिति के गृहस्थ का अपना सर्वसंचित धन सरस्वती माता के चरणों में अर्पित करना कहा जा सकता है। राजा रघु के औदार्य-वर्णन-सम्बन्धी कवि-कुल-गुरु कालिदास का यह कथन—'आदानन्तु विसर्गाय सतां वारि मुचामिव', उक्त प्रोफ़ेसर साहब के दान के सम्बन्ध में पूर्णतः घटित होता है। जैसे मेघ पृथ्वी से वाष्प का सेवन करके तथा पर्जन्य वृष्टि-द्वारा भूतल को जल प्रदान करके अपनी निःस्वार्थ सेवा का भाव प्रकट करते हैं, वैसे ही प्रोफ़ेसर महोदय ने बुद्धि

एवं ज्ञान से सम्पादित अपनी सम्पत्ति को ज्ञान-वृद्धि के निमित अर्पित कर सरस्वती के प्रति अपनी भक्ति का परिचय दिया है।



प्रोफ़ेसर श्रीगङ्गाधर गोविन्द कानेटकर, एम० ए०

प्रोफ़ेसर साहब साँगली में रहते हैं और अपना समय साहित्य-सेवा के पुनीत कार्य में बिता रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि ये एक आदर्श व्यक्ति हैं।

वनमालीप्रसाद शुक्ल—

हथियारों का धन्धा

इस मशीन के युग में हाथ के सभी उद्योग-धन्धों का उन्मूल हो गया है। परन्तु अब जब देश पूर्ण रूप से कंगाल हो गया है तब यह सुझाई दिया है कि जनता की दशा सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि पुराने उद्योग-धन्धों को नवजीवन दिया जाय। फलतः उनके पुनरुद्धार का कार्य कई वर्षों से छिड़ा हुआ है। ऐसे ही उद्योग-धन्धों में हथियारों का बनाना भी है। प्रसन्नता की बात है कि कांग्रेसी सरकार हथियारों के क़ानून में उपयुक्त सुधार करने जा रही है। तब तो इस धन्धे को पुनरुज्जीवित करना भी आवश्यक है। संयुक्त-प्रान्त के प्रधान मंत्री ने एलान कर दिया है कि सभी किसान बन्दूकें रख सकेंगे। परन्तु ये किसान तो अँगरेज़ी बन्दूकें ख़रीदने में कभी समर्थ न हो सकेंगे, अतएव उस एलान के साथ इस बात का भी एलान करना ज़रूरी हो गया है कि जो कारीगर बन्दूक आदि बना सकते हों वे उन्हें बनाकर बेच सकेंगे। तभी तो बन्दूक रखने का अधिकार देनेवाला एलान सार्थक हो सकेगा। आशा है, इस प्रश्न की ओर प्रान्तीय सरकार समुचित ध्यान ही न देगी, किन्तु जल्दी से जल्दी ऐसी व्यवस्था भी करेगी जिससे देहाती कारीगर बन्दूकें बनाकर बेच सकें ताकि वे किसानों को सुलभ हो जायँ, साथ ही एक पुराना धन्धा फिर चल निकले।

सूचना

अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का २७वाँ अधिवेशन शिमला में १७,१८ और १९ सितम्बर को होगा। इसी सम्बन्ध में एक साहित्य-प्रदर्शनी भी करने की योजना है। पंजाब एवं इस पहाड़ी प्रान्त में हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से इस प्रदर्शनी को सफल बनाना प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का परम कर्तव्य है। अतएव विभिन्न संस्थाओं एवं हिन्दी-प्रेमियों से सविनय प्रार्थना है कि वे अपनी दर्शनीय कृतियों तथा वस्तुओं को हमारे पास शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें अथवा हमें सूचना दें जिससे हम उन्हें मँगाने का उचित प्रबन्ध कर सकें।

कृतियों तथा वस्तुओं के मँगाने और लौटाने का डाक-व्यय आदि सम्मेलन का प्रदर्शनी-विभाग देगा।

प्रार्थी—रामेश्वरसहाय 'विशारद',
संयोजक, साहित्य-प्रदर्शनी, शिमला



Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.


Compiled
1988-2000